ओ३म्

यजुर्वेद

-भाषा भाष्य-

~महर्षि दयानन्द सरस्वती

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥

अथर्व० १९-७१-१

स्तुति करते हम वेद ज्ञान की,
जो माता है प्रेरक~पालक,
पावन करती मनुज मात्र को।
आयु, बल, सन्तति, पशु कीर्ति,
धन, मेधा, विद्या का दान।
सब कुछ देकर हमें दिया है,
मोक्ष मार्ग का पावन ज्ञान।

शुक्ल

प्रार्थना

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा
राष्ट्रे राजन्यः शूरऽइषव्योऽतिव्याधी
महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः
सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो
युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे-
निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नःऽ-
ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ।

यजुर्वेद अ० २२ मं० २२

ब्रह्मन् ! सुराष्ट्र में हो, द्विज ब्रह्मतेजधारी।
क्षत्री महारथी हों, अरि-दल-विनाशकारी ॥
होवें दुधारु गौवें, पशु अश्व आशुवाही।
आधार राष्ट्र की हो, नारी सुभग सदा ही ॥
बलवान् सभ्य योधा, यजमान-पुत्र होवें।
इच्छानुसार वर्षें, पर्जन्य ताप धोवें ॥
फल फूल से लदी हों, औषध अमोघ सारी ॥
हो योग-क्षेमकारी, स्वाधीनता हमारी ॥

* ओ३म् *

अथ यजुर्वेदभाषाभाष्यारम्भः क्रियते ॥

यो जीवेषु दधाति सर्वसुकृतज्ज्ञानं गुणैरीश्वरः ।
तं नत्वा क्रियते परोपकृतये सद्यः सुबोधाय च ॥
ऋग्वेदस्य विधाय वै गुणगुणिज्ञानप्रदातुर्वरम् ।
भाष्यं काम्यमथो क्रियामययजुर्वेदस्य भाष्यं मया ॥१॥
चतुस्त्र्यङ्कैरङ्कैरवनिसहितैर्विक्रमसरे ।
शुभे पौषे मासे सितदलभविश्वोन्मिततिथौ ।
गुरोर्वारे प्रातः प्रतिपदमतीष्टं सुविदुषां
प्रमाणैर्निर्बद्धं शतपथनिरुक्तादिभिरपि ॥२॥

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒ता॑नि॒ परा॑सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आसु॑व ॥१॥

भावार्थः— अब यजुर्वेद के भाष्य का आरम्भ किया जाता है ॥

जो निर्गुण गुणपुञ्ज से देत सुकृत विज्ञान ।
प्रणतपाल जगदीश्वरहि करि प्रणाम तिहि ध्यान ॥१॥
ज्ञानदायि ऋग्वेद का भाष्याभीष्ट विधाय ।
पर-उपकार विचारि करि शीघ्र सुबोध निधाय ॥२॥
शतपथ ब्राह्मण आदि पुनि निघण्टु निरुक्त निहारि ।
यजुर्वेद जो क्रियापर बनौं ताहि विचारि ॥३॥
एक सहस्र नवशत अधिक विक्रमसर चौंतीस ।
पौष शुक्ल तेरसि तिथि दिन अधीश वागीश ॥४॥

विक्रम के संवत् १९३४ पौष सुदि १३ गुरुवार के दिन यजुर्वेद के भाष्य वनाने का आरम्भ किया जाता है। (विश्वानि०) इस मन्त्र का अर्थ भूमिका में कर दिया है।

ईश्वर ने ऋग्वेद में गुण और गुणी के विज्ञान के प्रकाश के द्वारा सव पदार्थ प्रसिद्ध किये हैं उन मनुष्यों को पदार्थों से जिस-जिस प्रकार यथायोग्य उपकार लेने के लिये क्रिया करनी चाहिये तथा उस क्रिया के जो-जो अङ्ग वा साधन हैं सो सो यजुर्वेद में प्रकाशित किये हैं क्योंकि जव-तक क्रिया करने का दृढ़ ज्ञान न हो तवतक उस ज्ञान से श्रेष्ठ सुख कभी नहीं हो सकता और विज्ञान होने के ये हेतु हैं कि जो क्रियाप्रकाश अविद्या की निवृत्ति अधर्म्म में अप्रवृत्ति तथा धर्म्म और पुरुषार्थ का संयोग करना है। जो कर्म्मकांड है सो विज्ञान का निमित्त और जो विज्ञानकांड है सो क्रिया से फल देने वाला होता है। कोई जीव ऐसा नहीं है कि जो मन प्राण वायु इन्द्रिय और शरीर के चलाये विना एक क्षण भर भी रह सके क्योंकि जीव अल्पज्ञ एकदेशवर्त्ती चेतन है। इसलिये जो ईश्वर ने ऋग्वेद के मन्त्रों से सव पदार्थों के गुणगुणी का ज्ञान और यजुर्वेद के मन्त्रों से सव क्रिया करनी प्रसिद्ध की है क्योंकि (ऋक्) और (यजुः) इन शव्दों का अर्थ भी यही है कि जिस से मनुष्य लोग ईश्वर से लेके पृथिवीपर्यन्त पदार्थों के ज्ञान से धार्म्मिक विद्वानों का संग सव शिल्पक्रिया सहित विद्याओं की सिद्धि श्रेष्ठ विद्या श्रेष्ठ गुण वा विद्या का दान यथायोग्य उक्त विद्या के व्यवहार से सर्वोपकार के अनुकूल द्रव्यादि पदार्थों का खर्च करें इसलिये इसका नाम यजुर्वेद है। और भी इन शव्दों का अभिप्राय भूमिका में प्रकट कर दिया है वहां देख लेना चाहिये क्योंकि उक्त भूमिका चारों वेद की एक ही है॥

इस यजुर्वेद में सव चालीस अध्याय हैं उन एक-एक अध्याय में कितने-कितने मन्त्र हैं सो निम्नांकित कोष्ठ में वनाके सव लिख दिया है और चालीसों अध्याय के सव मिल के १९७५ (उन्नीससौ पचहत्तर) मन्त्र हैं॥

अध्यायः	मन्त्रः	अ०	मं०	अ०	मं०	अ०	मं०
१	३१	११	८३	२१	६१	३१	२२
२	३४	१२	११७	२२	३४	३२	१६
३	६३	१३	५८	२३	६५	३३	९७
४	३७	१४	३१	२४	४०	३४	५८
५	४३	१५	६५	२५	४७	३५	२२
६	३७	१६	६६	२६	२६	३६	२४
७	४८	१७	९९	२७	४५	३७	२१
८	६३	१८	७७	२८	४६	३८	२८
९	४०	१९	९५	२९	६०	३९	१३
१०	३४	२०	९०	३०	२२	४०	१७

इषे त्वेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । इषे त्वेत्यारभ्य भागपर्य्यन्तस्य स्वराड्बृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः । अग्रे सर्वस्य ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ।।

ऋग्वेद के भाष्य करने के पश्चात् यजुर्वेद के मन्त्रभाष्य का आरम्भ किया जाता है । इसके प्रथम अध्याय के प्रथम मन्त्र में उत्तम-उत्तम कामों की सिद्धि के लिये मनुष्यों को ईश्वर की प्रार्थना करनी अवश्य चाहिये इस बात का प्रकाश किया है ।।

ओ३म् इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवं स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽआप्यायध्वमघ्न्याऽइन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाऽअयक्ष्मा मा वस्तेनऽईशत माघशंसो ध्रुवाऽअस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि ।। १ ।।

पदार्थान्वयभाषाः— हे मनुष्य लोगो ! जो (सविता) सब जगत् की उत्पत्ति करने वाला सम्पूर्ण ऐश्वर्य्ययुक्त (देवः) सब सुखों के देने और सब विद्या के प्रसिद्ध करनेवाला परमात्मा है सो (वः) तुम हम और अपने मित्रों के जो (वायवः) सब क्रियाओं के सिद्ध करनेहारे स्पर्शगुणवाले प्राण अन्तःकरण और इन्द्रियां (स्थ) हैं उनको (श्रेष्ठतमाय) अत्युत्तम (कर्म्मणे) करने योग्य सर्वोपकारक यज्ञादि कर्म्मों के लिये (प्रार्पयतु) अच्छी प्रकार संयुक्त करे । हम लोग (इषे) अन्न आदि उत्तम-उत्तम पदार्थों और विज्ञान की इच्छा और (ऊर्जे) पराक्रम अर्थात् उत्तम रस की प्राप्ति के लिये (भागम्) सेवा करने योग्य धन और ज्ञान के भरे हुए (त्वा) उक्त गुणवाले

और (त्वा) श्रेष्ठ पराक्रमादि गुणों के देने हारे आपका सब प्रकार से आश्रय करते हैं। हे मित्र लोगो ! तुम भी ऐसे होकर (आप्यायध्वम्) उन्नति को प्राप्त हों तथा हम भी हों। हे भगवन् जगदीश्वर हम लोगों के (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये (प्रजावतीः) जिनके बहुत सन्तान हैं तथा जो (अनमीवाः) व्याधि और (अयक्ष्माः) जिन में राजयक्ष्मा आदि रोग नहीं हैं वे (अघ्न्याः) जो-जो गौ आदि पशु वा उन्नति करने योग्य है जो कभी हिंसा करने योग्य नहीं कि जो इन्द्रियां वा पृथिवी आदि लोक हैं उन को सदैव (प्रार्पयत) नियत कीजिये। हे जगदीश्वर ! आपकी कृपा से हम लोगों में से दुःख देने के लिये कोई (अघशंसः) पापी वा (स्तेनः) चोर डाकू (मा ईशत) मत उत्पन्न हो तथा आप इस (यजमानस्य) परमेश्वर और सर्वोपकार धर्म्म के सेवन करने वाले मनुष्य के (पशून्) गौ-घोड़े और हाथी आदि तथा लक्ष्मी और प्रजा की (पाहि) निरन्तर रक्षा कीजिये जिससे इन पदार्थों के हरने को पूर्वोक्त कोई दुष्ट मनुष्य समर्थ न हो (अस्मिन्) इस धार्म्मिक (गोपतौ) पृथिवी आदि पदार्थों की रक्षा चाहने वाले सज्जन मनुष्य के समीप (बह्वीः) बहुत से उक्त पदार्थ (ध्रुवाः) निश्चल सुख के हेतु (स्यात) हों।

इस मन्त्र की व्याख्या शतपथ ब्राह्मण में की है उसका ठिकाना पूर्व संस्कृत भाष्य में लिख दिया और आगे भी ऐसा ही ठिकाना लिखा जायगा जिसको देखना हो वह उस ठिकाने से देख लेवे ।।१।।

भावार्थभाषाः – विद्वान् मनुष्यों को सदैव परमेश्वर और धर्म्मयुक्त पुरुषार्थ के आश्रय से ऋग्वेद को पढ़ के गुण और गुणी को ठीक-ठीक जानकर सब पदार्थों के सम्प्रयोग से पुरुषार्थ की सिद्धि के लिये अत्युत्तम क्रियाओं से युक्त होना चाहिये कि जिससे परमेश्वर की कृपापूर्वक सब मनुष्यों को सुख और ऐश्वर्य्य की वृद्धि हो। सब लोगों को चाहिये कि अच्छे-अच्छे कामों से प्रजा की रक्षा तथा उत्तम-उत्तम गुणों से पुत्रादि की शिक्षा सदैव करें कि जिससे प्रबल रोग विघ्न और चोरों का अभाव होकर प्रजा और पुत्रादि सब सुखों को प्राप्त हों यही श्रेष्ठ काम सब सुखों की खान है। हे मनुष्य लोगो ! आओ अपने मिलके जिसने इस संसार में आश्चर्यरूप पदार्थ रचे हैं उस जगदीश्वर के लिये सदैव धन्यवाद देवें। वही परम दयालु ईश्वर अपनी कृपा से उक्त कामों को करते हुए मनुष्यों की सदैव रक्षा करता है ।।१।।

वसोः पवित्रमित्यस्य ऋषिः स एव। यज्ञो देवता। स्वराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ।।

वह यज्ञ किस प्रकार का होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोऽसि विश्वधाऽअसि परमेण धाम्ना दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत् ॥ २ ॥

पदार्थः—हे विद्यायुक्त मनुष्य ! तू जो (वसोः) यज्ञ (पवित्रम्) शुद्धि का हेतु (असि) है । (द्यौः) जो विज्ञान के प्रकाश का हेतु और सूर्य की किरणों में स्थिर होने वाला (असि) है । जो (पृथिवी) वायु के साथ देशदेशान्तरों में फैलनेवाला (असि) है । जो (मातरिश्वनः) वायु को (घर्मः) शुद्ध करनेवाला (असि) है । जो (विश्वधाः) संसार का धारण करनेवाला (असि) है तथा जो (परमेण) उत्तम (धाम्ना) स्थान से (दृꣳहस्व) सुख का बढ़ानेवाला है । इस यज्ञ का (मा) मत (ह्वाः) त्याग कर । तथा (ते) तेरा (यज्ञपतिः) यज्ञ की रक्षा करने वाला यजमान भी उसको (मा) न (ह्वार्षीत्) त्यागे । धात्वर्थ के अभिप्राय से यज्ञ शब्द का अर्थ तीन प्रकार का होता है अर्थात् एक जो इस लोक और परलोक के सुख के लिये विद्या, ज्ञान और धर्म के सेवन से वृद्ध अर्थात् बड़े-बड़े विद्वान् हैं उनका सत्कार करना । दूसरा अच्छी प्रकार पदार्थों के गुणों के मेल और विरोध के ज्ञान से शिल्पविद्या का प्रत्यक्ष करना और तीसरा नित्य विद्वानों का समागम अथवा शुभगुण विद्या सुख धर्म्म और सत्य का नित्य दान करना है ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य लोग अपनी विद्या और उत्तम क्रिया से जिस यज्ञ का सेवन करते हैं उससे पवित्रता का प्रकाश, पृथिवी का राज्य, वायुरूपी प्राण के तुल्य राजनीति, प्रताप, सब की रक्षा, इस लोक और परलोक में सुख की वृद्धि, परस्पर कोमलता से वर्त्तना और कुटिलता का त्याग इत्यादि श्रेष्ठ गुण उत्पन्न होते हैं इसलिये सब मनुष्यों को परोपकार तथा अपने सुख के लिये विद्या और पुरुषार्थ के साथ प्रीतिपूर्वक यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करना चाहिये ॥ ॥

वसोः पवित्रमित्यस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । भुरिग्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उक्त यज्ञ कैसा सुख करता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम् । देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः ॥ ३ ॥

पदार्थः—जो (वसोः) यज्ञ (शतधारम्) असंख्यात संसार का धारण करने

और (पवित्रम्) शुद्धि करनेवाला कर्म्म (असि) है तथा जो (वसोः) यज्ञ (सहस्रधारम्) अनेक प्रकार के ब्रह्मांड को धारण करने और (पवित्रम्) शुद्धि का निमित्त सुख देनेवाला (असि) है (त्वा) उस यज्ञ को (देवः) स्वयं प्रकाशस्वरूप (सविता) वसु आदि तेंतीस देवों का उत्पत्ति करनेवाला परमेश्वर (पुनातु) पवित्र करे। हे जगदीश्वर! आप हमलोगों से सेवित जो (वसोः) यज्ञ है उस (पवित्रेण) शुद्धि के निमित्त वेद के विज्ञान (शतधारेण) बहुत विद्याओं का धारण करने वाले वेद और (सुप्वा) अच्छी प्रकार पवित्र करने वाले यज्ञ से हम लोगों को पवित्र कीजिये। हे विद्वान् पुरुष वा जानने की इच्छा करने वाले मनुष्य! तू (काम्) वेद की श्रेष्ठ वाणियों में से कौन-कौन वाणी के अभिप्राय को (अधुक्षः) अपने मन में पूरण करना अर्थात् जानना चाहता है ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य पूर्वोक्त यज्ञ का सेवन करके पवित्र होते हैं उन्हीं को जगदीश्वर बहुत सा ज्ञान देकर अनेक प्रकार के सुख देता है परन्तु जो लोग ऐसी क्रियाओं के करने वाले वा परोपकारी होते हैं वे ही सुख को प्राप्त होते हैं आलस्य करने वाले कभी नहीं। इस मन्त्र में (कामधुक्षः) इन पदों से वाणी के विषय में प्रश्न है ॥३॥

सा विश्वायुरित्यस्य ऋषिः स एव। विष्णुर्देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

जो पूर्वोक्त मन्त्र में तीन प्रश्न कहे हैं उनके उत्तर अगले मन्त्र में क्रम से प्रकाशित किये हैं ॥

सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः। इन्द्रस्य त्वा भागꣳसोमेना तनच्मि विष्णो हव्यꣳरक्ष ॥४॥

पदार्थः—हे (विष्णो) व्यापक ईश्वर! आप जिस वाणी का धारण करते हैं (सा) वह (विश्वायुः) पूर्ण आयु की देने वाली (सा) वह (विश्वकर्मा) जिससे कि सम्पूर्ण क्रियाकांड सिद्ध होता है और (सा) वह (विश्वधायाः) सब जगत् को विद्या और गुणों से धारण करने वाली है। पूर्व मन्त्र में जो प्रश्न है उसके उत्तर में यही तीन प्रकार की वाणी ग्रहण करने योग्य है इसी से मैं (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (भागम्) सेवन करने योग्य यज्ञ को (सोमेन) विद्या से सिद्ध किये रस अथवा आनन्द से (आ तनच्मि) अपने हृदय में दृढ़ करता हूं तथा हे परमेश्वर! (हव्यम्) पूर्वोक्त यज्ञ सम्बन्धी देने लेने योग्य द्रव्य वा विज्ञान की (रक्ष) निरन्तर रक्षा कीजिये ॥४॥

भावार्थः—तीन प्रकार की वाणी होती है अर्थात् प्रथम वह जो कि

ब्रह्मचर्य में पूर्ण विद्या पढ़ने वा पूर्ण आयु होने के लिये सेवन की जाती है। दूसरी वह जो गृहाश्रम में अनेक क्रिया वा उद्योगों से सुखों की देने वाली विस्तार से प्रकट की जाती है और तीसरी वह जो इस संसार में सब मनुष्यों के शरीर और आत्मा के सुख की वृद्धि वा ईश्वर आदि पदार्थों के विज्ञान को देने वाली वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम में विद्वानों से उपदेश की जाती है। इस तीन प्रकार की वाणी के विना किसी को सब सुख नहीं हो सकते क्योंकि इसी से पूर्वोक्त यज्ञ तथा व्यापक ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करना योग्य है। ईश्वर की यह आज्ञा है कि जो नियम से किया हुआ यज्ञ संसार में रक्षा का हेतु और प्रेम सत्यभाव से प्रार्थित ईश्वर विद्वानों की सर्वदा रक्षा करता है वही सब का अध्यक्ष है परन्तु जो क्रिया में कुशल धार्मिक परोपकारी मनुष्य हैं वे ही ईश्वर और धर्म को जानकर मोक्ष और सम्यक् क्रियासाधनों से इस लोक और परलोक के सुख को प्राप्त होते हैं ॥४॥

अग्ने व्रतपत इत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता। आर्चीत्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

उक्त वाणी का व्रत क्या है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

अग्ने॑ व्रतपते व्र॒तं च॑रिष्यामि॒ तच्छ॑केयं॒ तन्मे॑ राध्यताम्।
इ॒दम॒हमनृ॑तात् स॒त्यमुपै॑मि ॥५॥

पदार्थः—हे (व्रतपते) सत्य भाषण आदि धर्म्मों के पालन करने और (अग्ने) सत्य उपदेश करने वाले परमेश्वर! मैं (अनृतात्) जो झूंठ से अलग (सत्यम्) वेद-विद्या, प्रत्यक्ष आदि प्रमाण, सृष्टिक्रम, विद्वानों का संग, श्रेष्ठ विचार तथा आत्मा की शुद्धि आदि प्रकारों से जो निर्भ्रम, सर्वहित, तत्त्व अर्थात् सिद्धान्त के प्रकाश करनेहारों से सिद्ध हुआ, अच्छी प्रकार परीक्षा किया गया (व्रतम्) सत्य बोलना सत्य मानना और सत्य करना है उसका (उपैमि) अनुष्ठान अर्थात् नियम से ग्रहण करने वा जानने और उसकी प्राप्ति की इच्छा करता हूं। (मे) मेरे (तत्) उस सत्यव्रत को आप (राध्यताम्) अच्छी प्रकार सिद्ध कीजिये जिससे कि (अहम्) मैं उक्त सत्य-व्रत के नियम करने को (शकेयम्) समर्थ होऊं और मैं (इदम्) इसी प्रत्यक्ष सत्यव्रत के आचरण का नियम (चरिष्यामि) करूंगा ॥५॥

भावार्थः—परमेश्वर ने सब मनुष्यों को नियम से सेवन करने योग्य धर्म्म का उपदेश किया है जो कि न्याययुक्त परीक्षा किया हुआ सत्य लक्षणों से प्रसिद्ध और सब का हितकारी तथा इस लोक अर्थात् संसारी और परलोक

अर्थात् मोक्ष सुख का हेतु है यही सब को आचरण करने योग्य है और उस से विरुद्ध जो कि अधर्म कहाता है वह किसी को ग्रहण करने योग्य कभी नहीं हो सकता क्योंकि सर्वत्र उसी का त्याग करना है। इसी प्रकार हमको भी प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हे परमेश्वर! हम लोग वेदों में आप के प्रकाशित किये सत्य धर्म्म का ही ग्रहण करें तथा हे परमात्मन्! आप हम पर ऐसी कृपा कीजिये कि जिससे हम लोग उक्त सत्य धर्म का पालन कर के अर्थ काम और मोक्षरूप फलों को सुगमता से प्राप्त हो सकें। जैसे सत्य-व्रत के पालने से आप व्रतपति हैं वैसे ही हम लोग भी आप की कृपा और अपने पुरुषार्थ से यथाशक्ति सत्यव्रत के पालनेवाले हों तथा धर्म्म करने की इच्छा से अपने सत्कर्म्म के द्वारा सब सुखों को प्राप्त होकर सब प्राणियों को सुख पहुंचाने वाले हों ऐसी इच्छा सब मनुष्यों को करनी चाहिये॥५॥

शतपथ ब्राह्मण के बीच इस मन्त्र की व्याख्या में कहा है कि मनुष्यों का आचरण दो प्रकार का होता है एक सत्य और दूसरा झूंठ का अर्थात् जो पुरुष वाणी मन और शरीर से सत्य का आचरण करते हैं वे देव कहाते और जो झूंठ का आचरण करने वाले हैं वे असुर राक्षस आदि नामों के अधिकारी होते हैं।

कस्त्वेत्यस्य ऋषिः स एव। प्रजापतिर्देवता। आर्चीपंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

किसने सत्य करने और असत्य छोड़ने की आज्ञा दी है सो
अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति। कर्मणे वां वेषाय वाम्॥६॥

पदार्थः—(कः) कौन सुख स्वरूप (त्वा) तुझको अच्छी-अच्छी क्रियाओं के सेवन करने के लिये (युनक्ति) आज्ञा देता है। (सः) सो जगदीश्वर (त्वा) तुम को विद्या आदिक शुभ गुणों के प्रकट करने के लिये विद्वान् वा विद्यार्थी होने को (युनक्ति) आज्ञा देता है। (कस्मै) वह किस-किस प्रयोजन के लिये (त्वा) मुझ और तुझ को (युनक्ति) युक्त करता है (तस्मै) पूर्वोक्त सत्यव्रत के आचरण रूप यज्ञ के लिये (त्वा) धर्म्म के प्रचार करने में उद्योगी को (युनक्ति) आज्ञा देता है (सः) वही ईश्वर (कर्म्मणे) उक्त श्रेष्ठ कर्म्म करने के लिये (वाम्) कर्म्म करने और कराने वालों को नियुक्त करता है (वेषाय) शुभ गुण और विद्याओं में व्याप्ति के लिये (वाम्) विद्या पढ़ने और पढ़ाने वाले तुम लोगों को उपदेश करता है॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में प्रश्न और उत्तर से ईश्वर जीवों के लिये उपदेश करता है। जब कोई किसी से पूछे कि मुझे सत्य कर्म्मों में कौन प्रवृत्त करता है? इसका उत्तर ऐसा दे कि प्रजापति अर्थात् परमेश्वर ही पुरुषार्थ और अच्छी-अच्छी क्रियाओं के करने की तुम्हारे लिये वेद के द्वारा उपदेश की प्रेरणा करता है। इसी प्रकार कोई विद्यार्थी किसी विद्वान् से पूछे कि मेरे आत्मा में अन्तर्यामिरूप से सत्य का प्रकाश कौन करता है तो वह उत्तर देवे कि सर्वव्यापक जगदीश्वर। फिर वह पूछे कि वह हमको किस-किस प्रयोजन के लिये उपदेश करता और आज्ञा देता है? उसका उत्तर देवे कि सुख और सुखस्वरूप परमेश्वर की प्राप्ति तथा सत्य विद्या और धर्म्म के प्रचार के लिये। मैं और आप दोनों को कौन-कौन काम करने के लिये वह ईश्वर उपदेश करता है? इसका परस्पर उत्तर देवें कि यज्ञ करने के लिये। फिर वह कौन कौन पदार्थ की प्राप्ति के लिये आज्ञा देता है? इस का उत्तर देवें कि सब विद्याओं की प्राप्ति और उनके प्रचार के लिये॥ मनुष्यों को दो प्रयोजनों में प्रवृत्त होना चाहिये अर्थात् एक तो अत्यन्त पुरुषार्थ और शरीर की आरोग्यता से चक्रवर्त्ती राज्यलक्ष्मी की प्राप्ति करना और दूसरे सब विद्याओं को अच्छी प्रकार पढ़ के उनका प्रचार करना चाहिये। किसी मनुष्य को पुरुषार्थ को छोड़ के आलस्य में कभी नहीं रहना चाहिये॥६॥

प्रत्युष्टमित्यस्य ऋषिः स एव। यज्ञो देवता। प्राजापत्या जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

सब मनुष्यों को उचित है कि दुष्ट गुण और दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्यों का निषेध करें इस बात का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ताऽअरातयः। उर्वन्तरिक्षमन्वेमि॥७॥

पदार्थः—मुझ को चाहिये कि पुरुषार्थ के साथ (रक्षः) दुष्ट गुण और दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्य को (प्रत्युष्टम्) निश्चय करके निर्मूल करूं तथा (अरातयः) जो राति अर्थात् दान आदि धर्म्म से रहित दयाहीन दुष्ट शत्रु हैं उनको (प्रत्युष्टाः) प्रत्यक्ष निर्मूल (रक्षः) वा दुष्ट स्वभाव दुष्टगुण विद्याविरोधी स्वार्थी मनुष्य और (निष्टप्तम्) (अरातयः) छलयुक्त होके विद्या के ग्रहण वा दान से रहित दुष्ट प्राणियों को (निष्टप्ताः) निरन्तर सन्तापयुक्त करूं। इस प्रकार करके (अन्तरिक्षम्) सुख के सिद्ध करने वाले उत्तम स्थान और (उरु) अपार सुख को (अन्वेमि) प्राप्त होऊं॥७॥

भावार्थः—ईश्वर आज्ञा देता है कि सब मनुष्यों को अपना दुष्ट स्वभाव छोड़कर विद्या और धर्म्म के उपदेश से औरों को भी दुष्टता आदि अधर्म्म के व्यवहारों से अलग करना चाहिये तथा उन को वहु प्रकार का ज्ञान और सुख देकर सब मनुष्य आदि प्राणियों को विद्या धर्म्म पुरुषार्थ और नाना प्रकार के सुखों से युक्त करना चाहिये ।।७।।

धूरसीत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता। [निचृद्] अतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः ।।

सब विद्याओं के धारण करनेवाले ईश्वर और पदार्थविद्या की सिद्धि के हेतु भौतिक अग्नि का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

धूर॑सि॒ धूर्व॒ धूर्व॑न्तं॒ धूर्व॒ तं यो॒ऽस्मान् धूर्व॑ति॒ तं धू॑र्व॒ यं व॒यं धूर्वा॑मः। दे॒वाना॑मसि॒ वह्नि॑तम॒ꣳ सस्नि॑तमं॒ पप्रि॑तमं॒ जुष्ट॑तमं दे॒वहू॑तमम् ।।८।।

पदार्थः–हे परमेश्वर ! आप (धूः) सब दोषों के नाश और जगत् की रक्षा करने वाले (असि) हैं, इस कारण हम लोग इष्ट बुद्धि से (देवानाम्) विद्वानों को विद्या मोक्ष और सुख में (वह्नितमम्) यथायोग्य पहुंचाने (सस्नितमम्) अतिशय कर के शुद्ध करने (पप्रितमम्) सब विद्या और आनन्द से संसार को पूर्ण करने (जुष्टतमम्) धार्मिक भक्तजनों को सेवा करने योग्य और (देवहूतमम्) विद्वानों की स्तुति करने योग्य आप की नित्य उपासना करते हैं। (यः) जो कोई द्वेषी छली कपटी पापी कामक्रोधादियुक्त मनुष्य (अस्मान्) धर्म्मात्मा और सब को सुख से युक्त करने वाले हम लोगों को (धूर्वति) दुःख देता है और (यम्) जिस पापीजन को (वयम्) हम लोग (धूर्वामः) दुःख देते हैं (तम्) उसको आप (धूर्व) शिक्षा कीजिये तथा जो सब से द्रोह करने वाला सब को दुःख देता है उस को भी आप सदैव (धूर्व) ताड़ना कीजिये ।। हे शिल्पविद्या को जानने की इच्छा करने वाले मनुष्य ! तू जो भौतिक अग्नि (धूः) सब पदार्थों का छेदन और अन्धकार का नाश करने वाला (असि) है तथा जो कला चलाने की चतुराई से यानों में विद्वानों को (वह्नितमम्) सुख पहुंचाने (सस्नितमम्) शुद्धि होने का हेतु (पप्रितमम्) शिल्पविद्या का मुख्य साधन (जुष्टतमम्) कारीगर लोग जिस का सेवन करते हैं तथा जो (देवहूतमम्) विद्वानों को स्तुति करने योग्य अग्नि है उस को (वयम्) हम लोग (धूर्वामः) ताड़ते हैं और जिसका सेवन युक्ति से न किया जाय तो (अस्मान्) हम लोगों को (धूर्वति) पीड़ा करता है (तम्) उस (धूर्वन्तम्) पीड़ा करने वाले अग्नि को (धूर्व) यानादिकों में युक्त कर। तथा हे वीर पुरुष ! तुम (यः) जो दुष्ट शत्रु (अस्मान्) हम लोगों को

(धूर्वंति) दुःख देता है (तम्) उस को (धूर्वं) नष्ट कर तथा जो कोई चोर आदि है उस का भी (धूर्वं) नाश कीजिये ॥८॥

भावार्थः—जो ईश्वर सब जगत् को धारण कर रहा है वह पापी दुष्ट जीवों को उन के किये हुए पापों के अनुकूल दण्ड देकर दुःखयुक्त और धर्म्मात्मा पुरुषों को उत्तम कर्म्मों के अनुसार फल देके उन की रक्षा करता है वही सब सुखों की प्राप्ति आत्मा की शुद्धि कराने और पूर्ण विद्या का देने वाला विद्वानों के स्तुति करने योग्य तथा प्रीति और इष्ट बुद्धि से सेवा करने योग्य है दूसरा कोई नहीं। तथा यह प्रत्यक्ष भौतिक अग्नि भी सम्पूर्ण शिल्पविद्याओं की क्रियाओं को सिद्ध करने तथा उनका मुख्य साधन और पृथिवी आदि पदार्थों में अपने प्रकाश अथवा उनकी प्राप्ति से श्रेष्ठ है। क्योंकि जिस से सिद्ध की हुई आग्नेय आदि उत्तम शस्त्रास्त्रविद्या से शत्रुओं का पराजय होता है इस से यह भी विद्या की युक्तियों से होम और विमान आदि के सिद्ध करने के लिये सेवा करने के योग्य है ॥८॥

अह्रुतमसीत्यस्य ऋषिः स एव। विष्णुर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

अब यजमान और भौतिक अग्नि के कर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अह्रुतमसि हविर्धानं दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत्। विष्णुस्त्वा क्रमतामुरु वातायापहतꣳ रक्षो यच्छन्तां पञ्च ॥९॥

पदार्थः—हे ऋत्विग् मनुष्य! तुम जो अग्नि से बड़ा हुआ (अह्रुतम्) कुटिलतारहित (हविर्धानम्) होम के योग्य पदार्थों का धारण करना है उस को (दृꣳहस्व) बढ़ाओ किन्तु किसी समय में (मा ह्वाः) उस का त्याग मत करो तथा यह (ते) तुम्हारा (यज्ञपतिः) यजमान भी उस यज्ञ के अनुष्ठान को (मा ह्वार्षीत्) न छोड़े। इस प्रकार तुम लोग (पञ्च) एक तो ऊपर को चेष्टा होना, दूसरा नीचे को, तीसरा चेष्टा से अपने अङ्गों को संकोचना, चौथा उनका फैलाना, पांचवां चलना फिरना आदि इन पांच प्रकार के कर्म्मों से हवन के योग्य जो द्रव्य हो उसको अग्नि में (यच्छन्ताम्) हवन करो। (त्वा) वह जो हवन किया हुआ द्रव्य है उस को (विष्णुः) जो व्यापनशील सूर्य्य है वह (अपहतम्) (रक्षः) दुर्गन्धादि दोषों का नाश करता हुआ (उरु वाताय) अत्यन्त वायु की शुद्धि वा सुख की वृद्धि के लिये (क्रमताम्) चढ़ा देता ॥९॥

भावार्थः—जब मनुष्य परस्पर प्रीति के साथ कुटिलता को छोड़कर शिक्षा देने वाले के शिष्य होके विशेष ज्ञान और क्रिया से भौतिक अग्नि की विद्या को जान कर उस का अनुष्ठान करते हैं तभी शिल्पविद्या की

सिद्धि के द्वारा सब शत्रु दारिद्र्य और दुःखों से छूटकर सब सुखों को प्राप्त होते हैं इस प्रकार विष्णु अर्थात् व्यापक परमेश्वर ने सब मनुष्यों के लिये आज्ञा दी है, जिसका पालन करना सबको उचित है ।।६।।

देवस्य त्वेत्यस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।।

उस यज्ञ के फल का ग्रहण किस करके होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
अग्नये जुष्टं गृह्णाम्यग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि ।। १० ।।

पदार्थः—मैं (सवितुः) सब जगत् के उत्पन्नकर्त्ता सकल ऐश्वर्य्य के दाता तथा (देवस्य) संसार का प्रकाश करनेहारे और सब सुखदायक परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए इस संसार में (अश्विनोः) सूर्य्य और चन्द्रमा के (बाहुभ्याम्) बल और वीर्य्य से तथा (पूष्णः) पुष्टि करने वाले प्राण के (हस्ताभ्याम्) ग्रहण और त्याग से (अग्नये) अग्निविद्या के सिद्ध करने के लिये (जुष्टम्) विद्या पढ़ने वाले जिस कर्म्म की सेवा करते हैं (त्वा) उसे (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं । इसी प्रकार (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और जल की विद्या कर के (जुष्टम्) विद्वानों ने जिस कर्म को चाहा है उस के फल को (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं ।।१०।।

भावार्थः—विद्वान् मनुष्यों को उचित है कि विद्वानों का समागम वा अच्छे प्रकार अपने पुरुषार्थ से परमेश्वर की उत्पन्न की हुई प्रत्यक्ष सृष्टि अर्थात् संसार में सकल विद्या की सिद्धि के लिये सूर्य्य चन्द्र अग्नि और जल आदि पदार्थों के प्रकाश से सब के बल वीर्य्य की वृद्धि के अर्थ अनेक विद्याओं को पढ़ के उन का प्रचार करना चाहिये अर्थात् जैसे जगदीश्वर ने सब पदार्थों की उत्पत्ति और उन की धारणा से सब का उपकार किया है वैसे ही हम लोगों को भी नित्य प्रयत्न करना चाहिये ।।१०।।

भूताय त्वेति ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । स्वराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ।।

यज्ञशाला आदिक घर कैसे बनाने चाहियें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

भूताय त्वा नारातये स्वरभिविख्येषं दृꣳहन्तां दुर्य्याः पृथिव्यामुर्वन्तरिक्षमन्वेमि । पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्याऽउपस्थेऽग्ने हव्यꣳ रक्ष ।।११।।

पदार्थः — मैं जिस यज्ञ को (भूताय) प्राणियों के सुख तथा (अरातये) दारिद्र्य आदि दोषों के नाश के लिये (अदित्या) वेदवाणी वा विज्ञानप्रकाश के (उपस्थे) गुणों में (सादयामि) स्थापना करता हूं और (त्वा) उसको कभी (न) नहीं छोड़ता हूं। हे विद्वान् लोगो! तुम को उचित है कि (पृथिव्याम्) विस्तृत भूमि में (दुर्य्याः) अपने घर (दृंहन्ताम्) वढ़ाने चाहियें। मैं (पृथिव्याः) (नाभौ) पृथिवी के बीच में जिन गृहों में (स्वः) जल आदि सुख के पदार्थों को (अभिविख्येषम्) सब प्रकार से देखूं और (उर्वन्तरिक्षम्) उक्त पृथिवी में बहुतसा अवकाश देकर सुख से निवास करने योग्य स्थान रचकर [(त्वा) आपको] (अन्वेमि) प्राप्त होता हूं। हे (अग्ने) जगदीश्वर! आप (हव्यम्) हमारे देने लेने योग्य पदार्थों की (रक्ष) सर्वदा रक्षा कीजिये॥ यह प्रथम पक्ष हुआ॥ अब दूसरा पक्ष — हे अग्ने परमेश्वर! मैं (भूताय) संसारी जीवों के सुख तथा (अरातये) दरिद्रता का विनाश और दान आदि धर्म करने के लिये (पृथिव्याः) पृथिवी के (नाभौ) बीच में [ईश्वर की सत्ता और उसकी उपासना से] (स्वः) सुखस्वरूप (त्वा) आपको (अभिविख्येषम्) प्रकाश करता हूं तथा आपकी कृपा से मेरे घर आदि पदार्थ और उनमें रहने वाले मनुष्य आदि प्राणी (दृंहन्ताम्) वृद्धि को प्राप्त हों और मैं (पृथिव्याम्) विस्तृत भूमि में (उरु) बहुत से (अन्तरिक्षम्) अवकाशयुक्त स्थान को निवास के लिये (अदित्या उपस्थे) सर्वत्र व्यापक आपके समीप सदा (अन्वेमि) प्राप्त होता हूं। कदाचित् (त्वा) आपका (न सादयामि) त्याग नहीं करता हूं। हे जगदीश्वर! आप मेरे (हव्यम्) अर्थात् उत्तम पदार्थों की सर्वदा (रक्ष) रक्षा कीजिये॥ यह दूसरा पक्ष हुआ॥ तथा तीसरा और भी कहते हैं — मैं शिल्पविद्या का जानने वाला यज्ञ को करता हुआ (भूताय) सांसारिक प्राणियों के सुख और (अरातये) दरिद्रता आदि दोषों के विनाश वा सुख से दान आदि धर्म करने की इच्छा से (पृथिव्या नाभौ) इस पृथिवी पर शिल्पविद्या की सिद्धि करने वाला जो (अग्ने) अग्नि है उसको हवन करने वा शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये (सादयामि) स्थापन करता हूं क्योंकि उक्त शिल्पविद्या इसी से सिद्ध होती है (अदित्याः) [उपस्थे] तथा जो अन्तरिक्ष में स्थित मेघमण्डल में [हव्यम्] होम द्वारा पहुंचे हुए उत्तम-उत्तम पदार्थों की [रक्ष] रक्षा करने वाला है इसीलिये इस अग्नि को (पृथिव्याम्) पृथिवी में स्थापन करके (उर्वन्तरिक्षम्) बड़े अवकाशयुक्त स्थान और विविध प्रकार के सुखों को [अन्वेमि] प्राप्त होता हूं अथवा इसी प्रयोजन के लिये [त्वा] इस अग्नि को पृथिवी में स्थापन करता हूं॥ इस प्रकार श्रेष्ठ कर्म्मों को करता हुआ (स्वः) अनेक सुखों को (अभिविख्येषम्) देखूं तथा मेरे (दुर्य्याः) घर और उनमें रहने वाले मनुष्य (दृंहन्ताम्) शुभ गुण और सुख से वृद्धि को प्राप्त हों इसलिये इस भौतिक अग्नि का भी त्याग मैं कभी (न) नहीं करता हूं॥ यह तीसरा अर्थ हुआ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है और ईश्वरने आज्ञा दी है कि हे मनुष्य लोगो ! मैं तुम्हारी रक्षा इसलिये करता हूं कि तुम लोग पृथिवी पर सब प्राणियों को सुख पहुंचाओ तथा तुम को योग्य है कि वेदविद्या धर्म्म के अनुष्ठान और अपने पुरुषार्थ द्वारा विविध प्रकार के सुख सदा बढ़ाने चाहियें। तुम सब ऋतुओं में सुख देने के योग्य बहुत अवकाशयुक्त सुन्दर घर बनाकर सर्वदा सुख सेवन करो और मेरी सृष्टि में जितने पदार्थ हैं उनसे अच्छे-अच्छे गुणों को खोजकर अथवा अनेक विद्याओं को प्रकट करते हुए फिर उक्त गुणों का संसार में अच्छे प्रकार प्रचार करते रहो कि जिससे सब प्राणियों को उत्तम सुख बढ़ता रहे तथा तुम को चाहिये कि मुझको सब जगह व्याप्त सब का साक्षी सब का मित्र सब सुखों का बढ़ानेहारा उपासना के योग्य और सर्वशक्तिमान् जानकर सब का उपकार विविध विद्या की वृद्धि धर्म में प्रवृत्ति अधर्म से निवृत्ति क्रियाकुशलता की सिद्धि और यज्ञक्रिया के अनुष्ठान आदि करने में सदा प्रवृत्त रहो ॥

इस मन्त्र में महीधर ने भ्रांति से (अभिविख्येषम्) यह पद (ख्या प्रकथने) इस धातु का दर्शन अर्थ में माना है। यह धातु के अर्थ से ही विरुद्ध होने करके अशुद्ध है ॥११॥

पवित्रे स्थ इत्यस्य ऋषिः स एव। अप्सवितारौ देवते। स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अग्नि में जिस द्रव्य का होम किया जाता है वह मेघमंडल को प्राप्त होके
किस प्रकार का होकर क्या गुण करता है इस बात का
उपदेश ईश्वर ने अगले मन्त्र में किया है ॥

पवित्रे॑ स्थो वैष्ण॒व्यौ॑ सवि॒तुर्वः॑ प्रस॒व उत्पु॑नाम्यच्छि॑द्रेण प॒वित्रे॑ण सूर्य्य॑स्य र॒श्मिभिः॑ । देवी॑रापोऽअग्रेगुवोऽअग्रेपु॒वोऽग्र॑ऽइ॒मम॒द्य य॒ज्ञं न॑यता॒ग्रे य॒ज्ञप॑तिꣳ सु॒धातुं॑ य॒ज्ञप॑तिं देव॒युव॑म् ॥१२॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! तुम जैसे (सवितुः) परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए इस संसार में (अच्छिद्रेण) निर्दोष और (पवित्रेण) पवित्र करने का हेतु जो (सूर्य्यस्य) सूर्य्य की (रश्मिभिः) किरण हैं उन से (वैष्णव्यौ) यज्ञसम्बन्धी प्राण और अपान की गति तथा (पवित्रे) पदार्थों के भी पवित्र करने में हेतु (स्थः) हों और जैसे उक्त सूर्य्य की किरणों से (अग्रेगुवः) आगे समुद्र वा अन्तरिक्ष में चलनेवाले (अग्रेपुवः) प्रथम पृथिवी में रहने वाली सोम ओषधि के सेवन तथा (देवीः) दिव्यगुणयुक्त (वः) वह (आपः) जल पवित्र हों। वैसे (नयत) पवित्र पदार्थों का होम अग्नि में करो

वैसे ही मैं भी (अद्य) आज के दिन (इमम्) इस (यज्ञम्) पूर्वोक्त क्रियासम्बन्धी यज्ञ को प्राप्त करके (अग्रे) जो प्रथम (सुधातुम्) श्रेष्ठ मन आदि इन्द्रिय और सुवर्ण आदि धन वाला (यज्ञपतिम्) यज्ञ का नियम से पालक तथा (देवयुवम्) विद्वान् और श्रेष्ठ गुणों को प्राप्त होने वा उनका प्राप्त कराने (यज्ञपतिम्) यज्ञ की इच्छा करने वाला मनुष्य है उसको (उत्पुनामि) पवित्र करता हूँ ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। जो पदार्थ संयोग से विकार को प्राप्त होते हैं वे अग्नि के निमित्त से अतिसूक्ष्म परमाणुरूप होकर वायु के बीच रहा करते हैं और कुछ शुद्ध भी हो जाते हैं परन्तु जैसी यज्ञ के अनुष्ठान से वायु और वृष्टि जल की उत्तम शुद्धि और पुष्टि होती है वैसी दूसरे उपाय से कभी नहीं हो सकती इससे विद्वानों को चाहिये कि होमक्रिया और वायु अग्नि जल आदि पदार्थ वा शिल्पविद्या से अच्छी-अच्छी सवारी बना के अनेक प्रकार के लाभ उठावें अर्थात् अपनी मनोकामना सिद्ध कर के औरों की भी कामनासिद्धि करें। जो जल इस पृथिवी से अन्तरिक्ष को चढ़कर वहां से लौटकर फिर पृथिवी आदि पदार्थों को प्राप्त होते हैं वे प्रथम और जो मेघ में रहने वाले हैं वे दूसरे कहाते हैं। ऐसी शतपथ ब्राह्मण में मेघ का वृत्र तथा सूर्य्य का इन्द्र नाम से वर्णन करके युद्धरूप कथा के प्रकाश से मेघविद्या दिखलाई है ॥१२॥

युष्मा इन्द्रोऽवृणीतेत्यस्य ऋषिः पूर्वोक्तः। इन्द्रो देवता। निचृदुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। अग्नये त्वेत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता। विराड्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। दैव्याय कर्म्मण इत्यस्य ऋषिः स एव। यज्ञो देवता। भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

उक्त जल किस प्रकार के हैं वा इन्द्र और वृत्र का युद्ध कैसे होता है
सो अगले मन्त्र में कहा गया है॥

युष्माऽइन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्य्ये यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्य्ये प्रोक्षिता स्थ। अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि। दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्वोऽशुद्धाः पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि ॥१३॥

पदार्थः—यह जैसे (इन्द्रः) सूर्य्यलोक (वृत्रतूर्य्ये) मेघ के वध के लिये (युष्माः) पूर्वोक्त जलों को (अवृणीत) स्वीकार करता है। जैसे जल (इन्द्रम्) वायु को (अवृणीध्वम्) स्वीकार करते हैं वैसे ही (यूयम्) हे मनुष्यो! तुम लोग उन जल औषधि

रसों को शुद्ध करने के लिये (वृत्रतूर्य्ये) मेघ के शीघ्रवेग में (प्रोक्षिताः) संसारी पदार्थों के सींचने वाले जलों को (अवृणीध्वम्) स्वीकार करो और जैसे वे जल शुद्ध (स्थ) होते हैं वैसे तुम भी शुद्ध हो। इसलिये मैं यज्ञ का अनुष्ठान करने वाला (दैव्याय) सब को शुद्ध करने वाले (कर्मणे) उत्क्षेपण=उछालना, अवक्षेपण=नीचे फेंकना, आकुञ्चन=सिमेटना, प्रसारण=फैलाना, गमन=चलना आदि पांच प्रकार के कर्म हैं उन के और (देवयज्यायै) विद्वान् वा श्रेष्ठ गुणों की दिव्य क्रिया के लिये तथा (अग्नये) भौतिक अग्नि से सुख के लिये (जुष्टम्) अच्छी क्रियाओं से सेवन करने योग्य (त्वा) उस यज्ञ को (प्रोक्षामि) करता हूं तथा (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और सोम से वर्षा के निमित्त (जुष्टम्) प्रीति देनेवाला और प्रीति से सेवने योग्य (त्वा) उक्त यज्ञ को (प्रोक्षामि) मेघमण्डल में पहुंचाता हूं। इस प्रकार यज्ञ से शुद्ध किये हुए जल (शुन्धध्वम्) अच्छे प्रकार शुद्ध होते हैं। (यत्) जिस कारण यज्ञ की शुद्धि से (वः) पूर्वोक्त जलों के अशुद्धि आदि दोष (पराजघ्नुः) निवृत्त हों (तत्) उन जलों की शुद्धि को मैं (शुन्धामि) अच्छे प्रकार शुद्ध करता हूं॥ यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ है॥ हे यज्ञ करने वाले मनुष्यो! (यत्) जिस कारण (इन्द्रः) सूर्य्यलोक (वृत्रतूर्य्ये) मेघ के वध के निमित्त (युष्माः) पूर्वोक्त जल और (इन्द्रम्) पवन को (अवृणीत) स्वीकार करता है तथा जिस कारण सूर्य्य ने (वृत्रतूर्य्ये) मेघ की शीघ्रता के निमित्त (युष्माः) पूर्वोक्त जलों को (प्रोक्षिताः) पदार्थ सींचने वाले (स्थ) किये हैं इससे (यूयम्) तुम (त्वा) उक्त यज्ञ को सदा स्वीकार करके (नयत) सिद्धि को प्राप्त करो। इस प्रकार हम सब लोग (दैव्याय) श्रेष्ठ कर्म वा (देवयज्यायै) विद्वान् और दिव्य गुणों की श्रेष्ठ क्रियाओं के तथा (अग्नये) परमेश्वर की प्राप्ति के लिये (जुष्टम्) प्रीति कराने वाले यज्ञ को (प्रोक्षामि) सेवन करें तथा (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और सोम से प्रकाशित होने वाले (त्वा) उक्त यज्ञ को (प्रोक्षामि) मेघमण्डल में पहुंचावें। हे मनुष्यो! इस प्रकार करते हुए तुम सब पदार्थों वा सब मनुष्यों को (शुन्धध्वम्) शुद्ध करो (यत्) और जिससे (वः) तुम लोगों के अशुद्धि आदि दोष हैं वे सदा (पराजघ्नुः) निवृत्त होते रहें। वैसे ही मैं वेद का प्रकाश करने वाला तुम लोगों के शोधन अर्थात् शुद्धि प्रकार को (शुन्धामि) अच्छे प्रकार बढ़ाता हूं॥१३॥

भावार्थः—[इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है] परमेश्वर ने अग्नि और सूर्य्य को इसलिये रचा है कि वे सब पदार्थों में प्रवेश कर के उनके रस और जल को छिन्न-भिन्न कर दें जिस से वे वायुमण्डल में जाकर फिर वहां से पृथिवी पर आके सब को सुख और शुद्धि करने वाले हों। इस से मनुष्यों को उत्तम सुख प्राप्त होने के लिये अग्नि में सुगन्धित पदार्थों के होम से वायु और वृष्टि जल की शुद्धि द्वारा श्रेष्ठ सुख बढ़ाने के लिये प्रीतिपूर्वक

नित्य यज्ञ करना चाहिये जिस से इस संसार के सब रोग आदि दोष नष्ट होकर उस में शुद्ध गुण प्रकाशित होते रहें। इसी प्रयोजन के लिये मैं ईश्वर तुम सबों को उक्त यज्ञ के निमित्त शुद्धि करने का उपदेश करता हूं कि हे मनुष्यो ! तुम लोग परोपकार करने के लिये शुद्ध कर्म्मों को नित्य किया करो तथा उक्त रीति से वायु अग्नि और जल के गुणों को शिल्पक्रिया में युक्त करके अनेक यान आदि यन्त्रकला बना कर अपने पुरुषार्थ से सदैव सुखयुक्त होओ ॥१३॥

शर्मासीत्यस्य पूर्वोक्त ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

उक्त यज्ञ किस प्रकार का है और किस प्रकार से करना चाहिये
इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

शर्मास्यवधूतꣳ रक्षोऽवधूताऽअरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु । अद्रिरसि वानस्पत्यो ग्रावासि पृथुबुध्नः प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम्हारा घर (शर्म) सुख देनेवाला (असि) हो । उस घर से (रक्षः) दुष्टस्वभाव वाले प्राणी (अवधूतम्) अलग करो और (अरातयः) दान आदि धर्म्मरहित शत्रु (अवधूताः) दूर हों । उक्त गृह (अदित्याः) पृथिवी की (त्वक्) त्वचा के तुल्य (असि) हो (अदितिः) ज्ञानस्वरूप ईश्वर ही से उस घर को (प्रतिवेत्तु) सब मनुष्य जानें और प्राप्त हों तथा जो (वानस्पत्यः) वनस्पति के निमित्त से उत्पन्न होने (पृथुबुध्नः) अतिविस्तारयुक्त अन्तरिक्ष में रहने तथा (ग्रावा) जल का ग्रहण करनेवाला(अद्रिः) मेघ(असि) है उस और इस विद्या को(अदितिः) जगदीश्वर तुम्हारे लिये (वेत्तु) कृपा करके जनावे । विद्वान् पुरुष भी (अदित्याः) पृथिवी की (त्वक्) त्वचा के समान (त्वा) उक्त घर की रचना को (प्रतिवेत्तु) जानें ॥१४॥

भावार्थः— ईश्वर मनुष्यों को आज्ञा देता है कि तुम लोग शुद्ध और विस्तारयुक्त भूमि के बीच में अर्थात् बहुत से अवकाश में सब ऋतुओं में सुख देने योग्य घर को बना के उस में सुखपूर्वक वास करो तथा उसमें रहने वाले दुष्ट स्वभावयुक्त मनुष्यादि प्राणी और दोषों को निवृत्त करो फिर उसमें सब पदार्थ स्थापन और वर्षा का हेतु जो यज्ञ है उस का अनुष्ठान कर के नाना प्रकार के सुख उत्पन्न करना चाहिये क्योंकि यज्ञ के करने से वायु और वृष्टिजल की शुद्धि द्वारा संसार में अत्यन्त सुख सिद्ध होता है ॥१४॥

अग्नेस्तनूरित्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । हविष्कृदिति याजुषी पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

उक्त यज्ञ किस प्रकार का होता है इस विषय का उपदेश
अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं देववीतये त्वा गृह्णामि बृहद्ग्रावासि वानस्पत्यः सऽइदं देवेभ्यो हविः शमीष्व सुशमि शमीष्व । हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि ॥ १५ ॥

पदार्थः—मैं सब जनों के सहित जिस हवि अर्थात् पदार्थ के संस्कार के लिये (बृहद्ग्रावा) बड़े-बड़े पत्थर (असि) हैं और (वानस्पत्यः) काष्ठ के मूसल आदि पदार्थ (देवेभ्यः) विद्वान् वा दिव्यगुणों के लिये उस यज्ञ को (देववीतये) श्रेष्ठ गुणों के प्रकाश और श्रेष्ठ विद्वान् वा विविध भोगों की प्राप्ति के लिये (प्रतिगृह्णामि) ग्रहण करता हूं। हे विद्वान् मनुष्य ! तुम (देवेभ्यः) विद्वानों के सुख के लिये (सु शमि) अच्छे प्रकार दुःख शान्त करने वाले (हविः) यज्ञ करने योग्य पदार्थ को (शमीष्व) (शमीष्व) अत्यन्त शुद्ध करो। जो मनुष्य वेद आदि शास्त्रों को प्रीतिपूर्वक पढ़ते वा पढ़ाते हैं उन्हीं को यह (हविष्कृत) हविः अर्थात् होम में चढ़ाने योग्य पदार्थों का विधान करने वाली जो कि यज्ञ को विस्तार करने के लिये वेद के पढ़ने से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की शुद्ध सुशिक्षित और प्रसिद्ध वाणी है सो प्राप्त होती है ॥१५॥

भावार्थः—जब मनुष्य वेद आदि शास्त्रों के द्वारा यज्ञक्रिया और उसका फल जान के शुद्धि और उत्तमता के साथ यज्ञ को करते हैं तब वह सुगन्धि आदि पदार्थों के होम द्वारा परमाणु अर्थात् अति सूक्ष्म होकर वायु और वृष्टि जल में विस्तृत हुआ सब पदार्थों को उत्तम कर के दिव्य सुखों को उत्पन्न करता है। जो मनुष्य सब प्राणियों के सुख के अर्थ पूर्वोक्त तीन प्रकार के यज्ञ को नित्य करता है उस को सब मनुष्य हविष्कृत् अर्थात् यह यज्ञ का विस्तार करने वाला, यज्ञ का विस्तार करने वाला उत्तम मनुष्य है ऐसा वारम्वार कहकर सत्कार करें ॥१५॥

कुक्कुटोऽसीत्यस्य ऋषिः स एव । वायुर्देवता । [स्वराड्] ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥ देवो वः सवितेत्यस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी यह यज्ञ कैसा है सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

कुक्कुटोऽसि मधुजिह्वऽइषमूर्जमावद त्वया वयꣳ संघातꣳ संघातं जेष्म वर्षवृद्धमसि प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु परापूतꣳ रक्षः परापूता अरातयोऽपहतꣳ रक्षो वायुर्वो विविनक्तु देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना ॥ १६ ॥

पदार्थः - जिस कारण यह यज्ञ (मधुजिह्वः) जिस में मधुर गुणयुक्त वाणी हो तथा (कुक्कुटः) चोर वा शत्रुओं का विनाश करने वाला (असि) है। और (इषम्) अन्न आदि पदार्थ वा (ऊर्जम्) विद्या आदि बल और उत्तम से उत्तम रस को देता है। इसी से उसका अनुष्ठान सदा करना चाहिये। हे विद्वान् लोगो! तुम उक्त गुणों को देने वाला जो तीन प्रकार का यज्ञ है उसके अनुष्ठान और गुण के ज्ञाता (असि) हो, अतः हम लोगों को भी उसके गुणों का (आवद) उपदेश करो जिस से (वयं) हम लोग (त्वया) तुम्हारे साथ (संघातं संघातम्) जिन में उत्तम रीति से शत्रुओं का पराजय होता है अर्थात् अति भारी संग्रामों को वारम्वार (आ जेष्म) सब प्रकार से जीतें क्योंकि आप युद्धविद्या के जानने वाले (असि) हैं इसी से सब मनुष्य (वर्षवृद्धम्) शस्त्र और अस्त्रविद्या की वर्षा को बढ़ाने वाले (त्वा) आप तथा (वर्षवृद्धम्) वृष्टि के बढ़ाने वाले उक्त यज्ञ को (प्रतिवेत्तु) जानें। इस प्रकार संग्राम करके सब मनुष्यों को (परापूतम्) पवित्रता आदि गुणों को छोड़ने वाले (रक्षः) दुष्ट मनुष्य तथा (परापूताः) शुद्धि को छोड़ने वाले और (अरातयः) दान आदि धर्म से रहित शत्रुजन तथा (रक्षः) डाकुओं का जैसे (अपहतम्) नाश हो सके वैसा प्रयत्न सदा करना चाहिये। जैसे यह (हिरण्यपाणिः) जिसका ज्योति हाथ है ऐसा जो (वायुः) पवन है वह (अच्छिद्रेण) एकरस (पाणिना) अपने गमनागमन व्यवहार से यज्ञ और संसार में अग्नि और सूर्य्य से अति सूक्ष्म हुए पदार्थों को (प्रतिगृभ्णातु) ग्रहण करता है। (हिरण्यपाणिः) वा जैसे किरण हैं हाथ जिस के वह (हिरण्यपाणिः) किरण व्यवहार से (सविता) वृष्टि वा प्रकाश के द्वारा दिव्य गुणों के उत्पन्न करने में हेतु (देवः) प्रकाशमय सूर्य्यलोक (वः) उन पदार्थों को (विविनक्तु) अलग अलग अर्थात् परमाणु रूप करता है वैसे ही परमेश्वर वा विद्वान् पुरुष (अच्छिद्रेण) निरन्तर (पाणिना) अपने उपदेशरूप व्यवहार से सब विद्याओं को (विविनक्तु) प्रकाश करें वैसे ही कृपा करके प्रीति के साथ (वः) तुमको अत्यन्त आनन्द करने के लिये (प्रतिगृभ्णातु) ग्रहण करते हैं ॥१६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—परमेश्वर सब मनुष्यों को

आज्ञा देता है कि यज्ञ का अनुष्ठान, संग्राम में शत्रुओं का पराजय, अच्छे-अच्छे गुणों का ज्ञान, विद्वानों की सेवा दुष्ट मनुष्य वा दुष्ट दोषों का त्याग तथा सब पदार्थों को अपने ताप से छिन्न-भिन्न करने वाला अग्नि वा सूर्य्य और उनका धारण करने वाला वायु है ऐसा ज्ञान और ईश्वर की उपासना तथा विद्वानों का समागम करके और सब विद्याओं को प्राप्त होके सब के लिये सब सुखों की उत्पन्न करने वाली उन्नति सदा करनी चाहिये ॥१६॥

धृष्टिरसीत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब अग्निशब्द से किस किस का ग्रहण किया जाता और इससे क्या क्या कार्य्य होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

धृष्टिरस्यपाऽग्नेऽअग्निमामादं जहि निष्क्रव्यादꣳ सेधा देवयजं वह । ध्रुवमसि पृथिवीं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय ॥ १७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) परमेश्वर! आप (धृष्टिः) प्रगल्भ अर्थात् अत्यन्त निर्भय (असि) हैं इस कारण (निष्क्रव्यादम्) पके हुए भस्म आदि पदार्थों को छोड़ के (आमादम्) कच्चे पदार्थ जलाने और (देवयजम्) विद्वान् वा श्रेष्ठ गुणों से मिलाप कराने वाले (अग्निम्) भौतिक वा विद्युत् अर्थात् बिजुलीरूप अग्नि को आप (सेध) सिद्ध कीजिये। इस प्रकार हम लोगों के मङ्गल अर्थात् उत्तम-उत्तम सुख होने के लिये शास्त्रों की शिक्षा कर के दुःखों को (अपजहि) दूर कीजिये और आनन्द को (आवह) प्राप्त कीजिये तथा हे परमेश्वर! आप (ध्रुवम्) निश्चल सुख देने वाले (असि) हैं इस से (पृथिवीम्) विस्तृतभूमि वा उसमें रहने वाले मनुष्यों को (दृंह) उत्तम गुणों से वृद्धियुक्त कीजिये। हे अग्ने जगदीश्वर! जिस कारण आप अत्यन्त प्रशंसनीय हैं इससे मैं (भ्रातृव्यस्य) दुष्ट वा शत्रुओं के (वधाय) विनाश के लिये (ब्रह्मवनि) (क्षत्रवनि) (सजातवनि) ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा प्राणिमात्र के सुख वा दुःख व्यवहार के देने वाले (त्वा) आप को (उपदधामि) हृदय में स्थापन करता हूं॥ यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ॥ तथा हे विद्वान् यजमान! जिस कारण यह (अग्ने) भौतिक अग्नि (धृष्टिः) अतितीक्ष्ण (असि) है तथा निकृष्ट पदार्थों को छोड़ कर उत्तम पदार्थों से (देवयजम्) विद्वान् वा दिव्य गुणों को प्राप्त कराने वाले यज्ञ को (आवह) प्राप्त कराता है इससे तुम (निष्क्रव्यादम्) पके हुए भस्म आदि पदार्थों

को छोड़ के (आमादम्) कच्चे पदार्थ जलाने और (देवयजम्) विद्वान् वा दिव्य गुणों के प्राप्त कराने वाले (अग्निम्) प्रत्यक्ष वा विजुलीरूप अग्नि को (आवह) प्राप्त करो तथा उसके जानने की इच्छा करने वाले लोगों को शास्त्रों की उत्तम-उत्तम शिक्षाओं के साथ उसका उपदेश (सेध) करो तथा उसके अनुष्ठान में जो दोष हों उनको (अपजहि) विनाश करो। जिस कारण यह अग्नि सूर्य्यरूप से (ध्रुवम्) निश्चल (असि) है इसी कारण यह आकर्षणशक्ति से (पृथिवीम्) विस्तृत भूमि वा उसमें रहने वाले प्राणियों को (दृंह) दृढ़ करता है इसी से मैं (त्वा) उस (ब्रह्मवनि) (क्षत्रवनि) (सजातवनि) ब्राह्मण, क्षत्रिय वा जीवमात्र के सुख दुःख को अलग-अलग कराने वाले भौतिक अग्नि को (भ्रातृव्यस्य) दुष्ट वा शत्रुओं के (वधाय) विनाश के लिये हवन करने की वेदी वा विमान आदि यानों में (उपदधामि) स्थापन करता हूं॥ यह दूसरा अर्थ हुआ॥१७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है॥ सर्वशक्तिमान् ईश्वर ने यह भौतिक अग्नि आम अर्थात् कच्चे पदार्थ जलाने वाला बनाया है इस कारण भस्मरूप पदार्थों के जलाने को समर्थ नहीं है। जिससे कि मनुष्य कच्चे-कच्चे पदार्थों को पका कर खाते हैं [वह आमात्] तथा जिस करके सब प्राणियों का खाया हुआ अन्न आदि द्रव्य पकता है [वह जाठर] और जिस करके मनुष्य लोग मरे हुए शरीर को जलाते हैं, वह क्रव्यात् अग्नि कहाता और जिससे दिव्य गुणों को प्राप्त कराने वाली विद्युत् बनी है तथा जिससे पृथिवी का धारण और आकर्षण करने वाला सूर्य्य बना है और जिसे वेदविद्या के जानने वाले ब्राह्मण वा धनुर्वेद के जानने वाले क्षत्रिय वा सब प्राणिमात्र सेवन करते हैं तथा जो सब संसारी पदार्थों में वर्त्तमान परमेश्वर है, वही सब मनुष्यों का उपास्य देव है तथा जो क्रियाओं की सिद्धि के लिये भौतिक अग्नि है, यह भी यथायोग्य कार्य्यद्वारा सेवा करने के योग्य है॥१७॥

अग्ने ब्रह्मेत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता सर्वस्य। पूर्वस्य ब्राह्मी उष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। धर्त्रमसीति मध्यस्यार्च्ची त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। विश्वाभ्य इत्युत्तरस्यार्ची पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः॥

फिर भी अग्नि शब्द से अगले मन्त्र में फिर दोनों अर्थों का प्रकाश किया है॥

अग्ने ब्रह्म गृभ्णीष्व धरुणमस्यन्तरिक्षं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय। धर्त्रमसि दिवं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय।

विश्वा॑भ्यस्त्वा॒शाभ्य॒ऽउप॑दधामि॒ चित॑ स्थोर्ध्व॒चितो॒ भृगू॑णा॒मङ्गि॑रसां॒ तप॑सा तप्यध्वम् ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) परमेश्वर ! आप (धरुणम्) सब के धारण करने वाले (असि) हैं इससे मेरी (ब्रह्म) वेद मन्त्रों से की हुई स्तुति को (गृभ्णीष्व) ग्रहण कीजिये तथा (अन्तरिक्षम्) आत्मा में स्थित जो अक्षय ज्ञान है उसको (दृंह) बढ़ाइये। मैं (भ्रातृव्यस्य) शत्रुओं के (वधाय) विनाश के लिये (ब्रह्मवनि) सब मनुष्यों के सुख के निमित्त वेद के शाखाशाखान्तरद्वारा विभाग करने वाले ब्राह्मण तथा (क्षत्रवनि) राजधर्म के प्रकाश करनेहारे (सजातवनि) जो परस्पर समान क्षत्रियों के धर्म और संसारी मूर्तिमान् पदार्थ हैं इनका प्राणियों के लिये अलग-अलग प्रकाश करने वाले (त्वा) आपको (उपदधामि) हृदय के बीच में धारण करता हूँ। हे सब के धारण करने वाले परमेश्वर ! जो आप (धर्त्रम्) लोकों के धारण करने वाले [असि] हैं इससे कृपा करके हम लोगों में (दिवम्) अत्युत्तम ज्ञान को (दृंह) बढ़ाइये और मैं (भ्रातृव्यस्य) शत्रुओं के (वधाय) विनाश के लिये (ब्रह्मवनि) (क्षत्रवनि) (सजातवनि) उक्त वेद राज्य वा परस्पर समान विद्या वा राज्यादि व्यवहारों को यथायोग्य विभाग करने वाले (त्वा) आपको (उपदधामि) वारंवार अपने हृदय में धारण करता हूं। तथा मैं (त्वा) आपको सर्वव्यापक जानकर (विश्वाभ्यः) सब (आशाभ्यः) दिशाओं से सुख होने के निमित्त वारंवार (उपदधामि) अपने मन में धारण करता हूँ। हे मनुष्यो ! तुम लोग उक्त व्यवहार को अच्छी प्रकार जानकर (चितः) विज्ञानी (ऊर्ध्वचितः) उत्तम ज्ञान वाले पुरुषों की प्रेरणा से कपालों को अग्नि पर धरके तथा (भृगूणाम्) जिनसे विद्या आदि गुणों को प्राप्त होते हैं ऐसे (अङ्गिरसाम्) प्राणों के (तपसा) प्रभाव से (तप्यध्वम्) तपो और तपाओ ॥ यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ ॥ अब दूसरा भी कहते हैं ॥ हे विद्वान् धर्मात्मा पुरुष ! जिस (अग्ने) भौतिक अग्नि से (धरुणम्) सब का धारण करने वाला तेज (ब्रह्म) वेद और (अन्तरिक्षम्) आकाश में रहने वाले पदार्थ ग्रहण वा वृद्धियुक्त किये जाते हैं (त्वा) उसको तुम होम वा शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये (गृभ्णीष्व) ग्रहण करो (दृंह) वा विद्यायुक्त क्रियाओं से बढ़ाओ और मैं भी (भ्रातृव्यस्य) शत्रुओं के (वधाय) विनाश के लिये (त्वा) उस (ब्रह्मवनि) (क्षत्रवनि) (सजातवनि) संसारी मूर्तिमान् पदार्थों के प्रकाश करने वा राजगुणों के दृष्टान्तरूप से प्रकाश कराने वाले भौतिक अग्नि को शिल्पविद्या आदि व्यवहारों में (उपदधामि) स्थापन करता हूँ। ऐसे स्थापन किया हुआ अग्नि हमारे अनेक सुखों को धारण करता है। इसी प्रकार सब लोगों का (धर्त्रम्) धारण करने वाला वायु (असि) है तथा (दिवम्) प्रकाशमय सूर्य्यलोक को (दृंह) दृढ़ करता है। हे

मनुष्यो ! जैसे उसको मैं (भ्रातृव्यस्य) अपने शत्रुओं के (वधाय) विनाश के लिये (ब्रह्मवनि) (क्षत्रवनि) (सजातवनि) वेद राज्य वा परस्पर समान उत्तम-उत्तम शिल्पविद्याओं को यथायोग्य कार्य्यों में युक्त करने वाले उस भौतिक अग्नि को (उपदधामि) स्थापन करता हूँ वैसे तुम भी उत्तम-उत्तम क्रियाओं में युक्त करके विद्या के बल से (दृंह) उसको बढ़ाओ। हे विद्या चाहने वाले पुरुष ! जो पवन, पृथिवी और सूर्य्य आदि लोकों को धारण कर रहा है उसे तुम अपने जीवन आदि सुख वा शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये यथायोग्य कार्यों में लगाकर उसकी विद्या से (दृंह) वृद्धि करो तथा जैसे हम अपने शत्रुओं के विनाश के लिये (ब्रह्मवनि) (क्षत्रवनि) (सजातवनि) अग्नि के उक्त गुणों के समान वायु को शिल्पविद्या आदि व्यवहारों में (उपदधामि) संयुक्त करते हैं वैसे ही तुम भी अपने अनेक दुःखों के विनाश के लिये उसको यथायोग्य कार्य्यों में संयुक्त करो। हे मनुष्यो ! जैसे मैं वायुविद्या का जानने वाला (त्वा) उस अग्नि वा वायु को (विश्वाभ्यः) सब (आशाभ्यः) दिशाओं से सुख होने के लिये यथायोग्य शिल्पव्यवहारों में (उपदधामि) धारण करता हूँ। वैसे तुम भी धारण करो तथा शिल्पविद्या वा होम करने के लिये (चितः) (ऊर्ध्वचितः) [स्थ] पदार्थों के भरे हुए पात्र वा सवारियों में स्थापन किये हुए कलायन्त्रों को (भृगूणाम्) जिनसे पदार्थों को पकाते हैं उन [अङ्गिरसाम्] अङ्गारों के (तपसा) ताप से (तप्यध्वम्) उक्त पदार्थों को तपाओ ॥१८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है॥ ईश्वर का यह उपदेश है कि हे मनुष्यो ! तुम विद्वानों की उन्नति तथा मूर्खपन का नाश वा सब शत्रुओं की निवृत्ति से राज्य बढ़ने के लिये वेदविद्या को ग्रहण करो तथा वृद्धि का हेतु अग्नि वा सब का धारण करने वाला वायु, अग्निमय सूर्य्य और ईश्वर इन्हें सब दिशाओं में व्याप्त जानकर यज्ञसिद्धि वा विमान आदि यानों की रचना धर्म के साथ करो तथा इन से इन को सिद्ध कर के दुःखों को दूर कर के शत्रुओं को जीतो ॥१८॥

शर्मासीत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता। निचृद् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

इस के अनन्तर ईश्वर ने यज्ञ का स्वरूप और इसके अङ्ग अगले मन्त्र में उपदेश किये हैं॥

शर्मास्यवधूतꣳ रक्षोऽवधूताऽअरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु। धिषणासि पर्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु दिवः स्कम्भनीरसि धिषणासि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्तु॥१९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो यज्ञ (शर्म) सुख का देने वाला (असि) है और (अदितिः) नाशरहित है तथा जिससे (रक्षः) दुःख और दुष्टस्वभावयुक्त मनुष्य (अवधूतम्) विनाश को प्राप्त तथा (अरातयः) दान आदि धर्मों से रहित पुरुष (अवधूताः) नष्ट (असि) होते हैं और जो (अदित्याः) अन्तरिक्ष वा पृथिवी के (त्वक्) त्वचा के समान (असि) है (त्वा) उसे (प्रति वेत्तु) जानो और जिस विद्यारूप उक्त यज्ञ से (पर्वती) बहुत ज्ञान वाली (दिवः) प्रकाशमान सूर्यादि लोकों की (स्कम्भनीः) रोकने वाली [असि] है तथा (पार्वतेयी) मेघ की कन्या अर्थात् पृथिवी के तुल्य (धिषणा) वेदवाणी [(असि)] है (अदित्याः) पृथिवी के (त्वक्) शरीर के तुल्य विस्तार को प्राप्त होती है (त्वा) उसे (प्रतिवेत्तु) यथावत् जानो और जिस सत्संगतिरूप यज्ञ से (पर्वती) उत्तम-उत्तम ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने वाली (धिषणा) द्यौः अर्थात् प्रकाशरूपी बुद्धि (असि) प्राप्त होती है (त्वा) उसे भी (प्रतिवेत्तु) जानो ॥१९॥

भावार्थः—मनुष्यों को अपने विज्ञान से अच्छी प्रकार पदार्थों को इकट्ठा करके उन से यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये जो कि वृष्टि वा बुद्धि का बढ़ाने वाला है वह अग्नि और मन से सिद्ध किया हुआ सूर्य्य के प्रकाश को त्वचा के समान सेवन करता है ॥१९॥

धान्यमसीत्यस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किस प्रयोजन के लिये उक्त यज्ञ करना चाहिये सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है ॥

धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा । दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयोऽसि ॥२०॥

पदार्थः—जो (धान्यम्) यज्ञ से शुद्ध उत्तम स्वभाववाला सुख का हेतु रोग का नाश करनेवाला तथा चावल आदि अन्न वा (पयः) जल (असि) है वह (देवान्) विद्वान् वा जीव तथा इन्द्रियों को (धिनुहि) तृप्त करता है इस कारण हे मनुष्यो ! मैं जिस प्रकार (त्वा) उसे (प्राणाय) अपने जीवन के लिये वा (त्वा) उसे (उदानाय) स्फूर्ति बल और पराक्रम के लिये वा (त्वा) उसे (व्यानाय) सब शुभ गुण शुभ कर्म वा विद्या के अङ्गों के फैलाने के लिये तथा (दीर्घाम्) बहुत दिनों तक (प्रसितिम्) अत्युत्तम सुखबन्धनयुक्त (आयुषे) पूर्ण आयु के भोगने के लिये (धाम्) धारण करता हूं वैसे तुम भी उक्त प्रयोजन के लिये उस को नित्य धारण करो ।

जैसे (वः) हम लोगों को (हिरण्यपाणिः) जिस का मोक्ष देना ही व्यवहार है ऐसा सब जगत् का उत्पन्न करनेहारा (देवः) (सविता) सब ऐश्वर्य्य का दाता ईश्वर (अच्छिद्रेण) अपनी व्याप्ति वा [पाणिना] उत्तम व्यवहार से (महीनाम्) वाणियों के [चक्षुषे] प्रत्यक्ष ज्ञान के लिये (प्रत्यनुगृभ्णातु) अपने अनुग्रह से ग्रहण करता है वैसे ही हम भी उस ईश्वर को (अच्छिद्रेण) निरन्तर (पाणिना) स्तुतियों से ग्रहण करें और जैसे (हिरण्यपाणिः) पदार्थों का प्रकाश करने वाला (देवः) (सविता) सूर्य्यलोक (महीनाम्) लोकलोकान्तरों की पृथिवियों में नेत्र सम्बन्धी व्यवहार के लिये (अच्छिद्रेण) निरन्तर तीव्र प्रकाश से (पयः) जल को (प्रतिगृभ्णातु) ग्रहण कर के अन्न आदि पदार्थों को पुष्ट करता है वैसे ही हम लोग भी उसे (अच्छिद्रेण) निरन्तर (पाणिना) व्यवहार से (महीनाम्) पृथिवी के (चक्षुषे) पदार्थों की दृष्टिगोचरता के लिये स्वीकार करते हैं ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। जो यज्ञ से शुद्ध किये हुए अन्न, जल और पवन आदि पदार्थ हैं, वे सब की शुद्धि, बल, पराक्रम और दृढ़ दीर्घ आयु के लिये समर्थ होते हैं। इस से सब मनुष्यों को यज्ञकर्म का अनुष्ठान नित्य करना चाहिये तथा परमेश्वर की प्रकाशित की हुई जो वेदचतुष्टयी अर्थात् चारों वेदों की वाणी है, उस के प्रत्यक्ष करने के लिये ईश्वर के अनुग्रह की इच्छा तथा अपना पुरुषार्थ करना चाहिये और जिस प्रकार परोपकारी मनुष्यों पर ईश्वर कृपा करता है, वैसे ही हम लोगों को भी सब प्राणियों पर नित्य कृपा करनी चाहिये अथवा जैसे अन्तर्यामी ईश्वर आत्मा और वेदों में सत्य ज्ञान तथा सूर्यलोक संसार में मूर्तिमान् पदार्थों का निरन्तर प्रकाश करता है, वैसे ही हम सब लोगों को परस्पर सब के सुख के लिये सम्पूर्ण विद्या मनुष्यों को दृष्टिगोचर करा के नित्य प्रकाशित करनी चाहिये और उनसे हमको पृथिवी का चक्रवर्ती राज्य आदि अनेक उत्तम उत्तम सुखों को उत्पन्न निरन्तर करना चाहिये ॥२०॥

देवस्य त्वेत्यस्यर्षिः स एव। यज्ञो देवता सर्वस्य। आदौ संवपामीत्यस्य गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। अन्त्यस्य विराड्निचृत् पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

जिन औषधियों से अन्न बनता है, वे यज्ञादि करने से कैसे शुद्ध होती हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। सं वपामि समापऽओषधीभिः समोषधयो रसेन। सꣳ रेवतीर्जगतीभिः पृच्यन्ताꣳ सं मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम् ॥२१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (सवितुः) सकल ऐश्वर्य्य के देने वाले (देवस्य) परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए प्रत्यक्ष संसार में, सूर्य्यलोक के प्रकाश में (अश्विनोः) सूर्य्य और भूमि के तेज की (बाहुभ्याम्) दृढ़ता से (पूष्णः) पुष्टि करने वाले वायु के (हस्ताभ्याम्) प्राण और अपान से (त्वा) पूर्वोक्त तीन प्रकार के यज्ञ का (संवपामि) विस्तार करता हूं, वैसे ही तुम भी उसको विस्तार से सिद्ध करो। जैसे इस उत्पन्न किये हुए संसार में (ओषधीभिः) यवादि ओषधियों से (आपः) जल और (ओषधयः) ओषधी (रसेन) आनन्दकारक रस से तथा (जगतीभिः) उत्तम ओषधियों से (रेवतीः) उत्तम जल और जैसे (मधुमतीभिः) अत्यन्त मधुर रसयुक्त ओषधियों से (मधुमतीः) अत्यन्त उत्तम रसरूप जल, ये सब मिल कर वृद्धियुक्त होते हैं, वैसे हम सब लोगों को भी ओषधियों से जल और ओषधि, उत्तम जल से तथा सब उत्तम ओषधियों से उत्तम रसयुक्त जल तथा अत्युत्तम मधुर रसयुक्त ओषधियों से प्रशंसनीय रसरूप जल इन सबों को यथायोग्य परस्पर (संपृच्यन्ताम्) युक्ति से वैद्यक वा शिल्पशास्त्र की रीति से मेल करना चाहिये ॥२१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् मनुष्यों को ईश्वर के उत्पन्न किये हुए सूर्य्य से प्रकाश को प्राप्त हुए इस संसार में अनेक प्रकार से संप्रयुक्त करने योग्य पदार्थों को मिलाने के योग्य पदार्थों से मेल कर के उक्त तीन प्रकार के यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करना चाहिये। जैसे जल अपने रस से ओषधियों को बढ़ाता है और वे उत्तम रसयुक्त जल के संयोग से रोग नाश करने से सुखदायक होती हैं और जैसे ईश्वर कारण से कार्य्य को यथावत् रचता है तथा सूर्य्य सब जगत् को प्रकाशित करके और निरन्तर रस को भेदन करके पृथिवी आदि पदार्थों का आकर्षण करता है तथा वायु रस को धारण करके पृथिवी आदि पदार्थों को पुष्ट करता है, वैसे हम लोगों को भी यथावत् संस्कारयुक्त संयुक्त किये हुए पदार्थों से विद्वानों का सङ्ग तथा विद्या की उन्नति से वा होम शिल्प कार्य्यरूपी यज्ञों से वायु और वर्षा जल की शुद्धि सदा करनी चाहिये ॥२१॥

जनयत्यै त्वेत्यस्यर्षिः पूर्वोक्तः। प्रथतामितिपर्य्यन्तस्य यज्ञो देवता। स्वराट्-त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। अन्त्यस्याग्निसवितारौ देवते। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

उक्त यज्ञ किस प्रयोजन के लिये करना चाहिये इस विषय का
उपदेश अगले मन्त्र में कहा है॥

जनयत्यै त्वा संयौमीदमग्नेरिदमग्नीषोमयोरिषे त्वा घर्मोऽसि

विश्वायुरुरुप्रथाऽउरु प्रथस्वोरु । ते यज्ञपतिः प्रथतामग्निष्टे त्वचं मा हिंꣳसीद्देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधि नाके ॥२२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे मैं (जनयत्यै) सर्व सुख उत्पन्न करने वाली राज्य-लक्ष्मी के लिये (त्वा) उस यज्ञ को (संयौमि) अग्नि के बीच में पदार्थों को छोड़कर युक्त करता हूँ, वैसे ही तुम लोगों को भी अग्नि के संयोग से सिद्ध करना चाहिये। जो हम लोगों का (इदम्) यह संस्कार किया हुआ हवि (अग्नेः) अग्नि के बीच में छोड़ा जाता है (इदम्) वह विस्तार को प्राप्त होकर (अग्नीषोमयोः) अग्नि और सोम के बीच पहुंच कर (इषे) अन्न आदि पदार्थों के उत्पन्न करने के लिये होता है और जो (विश्वायुः) पूर्ण आयु और (उरुप्रथाः) बहुत सुख का देने वाला (घर्मः) यज्ञ (असि) है, उसका जैसे मैं अनेक प्रकार विस्तार करता हूँ, वैसे (त्वा) उसको हे पुरुषो ! तुम भी (उरु प्रथस्व) विस्तृत करो। इस प्रकार विस्तार करने वाले (ते) तुम्हारे लिये (यज्ञपतिः) यज्ञ का स्वामी (अग्निः) यज्ञ सम्बन्धी अग्नि (ते) (सविता) अन्त-र्यामी (देवः) जगदीश्वर (उरु प्रथताम्) अनेक प्रकार सुख को बढ़ावे [(ते त्वचं) तुम्हारे शरीर को] (मा हिंसीत्) कभी नष्ट न करे तथा वह परमेश्वर (वर्षिष्ठे) अतिशय करके वृद्धि को प्राप्त हुआ (अधिनाके) जो अत्युत्तम सुख है उसमें (त्वा) तुम को (श्रपयतु) सुख से युक्त करे ॥ यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ ॥ अब दूसरा कहते हैं ॥ हे मनुष्यो ! जैसे मैं जो (विश्वायुः) पूर्ण आयु तथा (उरुप्रथाः) बहुत सुख का देने वाला (घर्मः) यज्ञ (असि) है (त्वा) उस यज्ञ को (जनयत्यै) राज्यलक्ष्मी तथा (इषे) अन्न आदि पदार्थों के उत्पन्न करने के लिये (संयौमि) संयुक्त करता हूँ तथा उसकी सिद्धि के लिये (इदम्) यह (अग्नेः) अग्नि के बीच में और (इदम्) यह (अग्नीषोमयोः) अग्नि और सोम के बीच में संस्कार किया हुआ हवि [संवपामि] छोड़ता हूँ, वैसे तुम भी उस यज्ञ को (उरु प्रथस्व) विस्तार को प्राप्त करो जिस कारण यह (अग्निः) भौतिक अग्नि (ते) तुम्हारे (त्वचम्) शरीर को (मा हिंसीत्) रोगों से नष्ट न करे और जैसे (देवः) जगदीश्वर (सविता) अंतर्यामी (वर्षिष्ठे) अतिशय करके वृद्धि को प्राप्त हुआ जो (अधिनाके) अत्युत्तम सुख है, उस में (त्वा) उस यज्ञ को अग्नि के बीच में परिपक्व करता है, वैसे तुम भी उस यज्ञ को (श्रपयतु) परिपक्व करो और (ते) तुम्हारे (यज्ञपतिः) यज्ञ का स्वामी भी उस यज्ञ को (उरु प्रथताम्) विस्तारयुक्त करे ॥२२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार जानना चाहिये। मनुष्यों को इस प्रकार का यज्ञ करना चाहिये कि जिससे पूर्ण लक्ष्मी सकल आयु अन्न आदि पदार्थ रोगनाश और सब सुखों का विस्तार हो, उसको कभी नहीं

छोड़ना चाहिये क्योंकि उसके विना वायु और वृष्टि जल तथा ओषधियों की शुद्धि नहीं हो सकती और शुद्धि के विना किसी प्राणी को अच्छी प्रकार सुख नहीं हो सकता इसलिये ईश्वर ने उक्त यज्ञ करने की आज्ञा सब मनुष्यों को दी है ॥२२॥

मा भेर्मेत्यस्यर्षिः स एव । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

निःशंक होकर उक्त यज्ञ सब को करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मा भेर्मा संविक्था ऽअतमेरुर्यज्ञो ऽतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात् त्रिताय त्वा द्विताय त्वैकताय त्वा ॥२३॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुषो ! तुम (अतमेरुः) श्रद्धालु होकर (यजमानस्य) यजमान के यज्ञ के अनुष्ठान से (मा भेः) भय मत करो और उससे (मा संविक्थाः) मत चलायमान हो। इस प्रकार (यज्ञः) यज्ञ करते हुए तुम को उत्तम से उत्तम (अतमेरुः) ग्लानिरहित श्रद्धावान् (प्रजा) सन्तान (भूयात्) प्राप्त हो और मैं (त्वा) भौतिक अग्नि को उक्त गुणयुक्त तथा (एकताय) सत्य सुख के लिये (द्विताय) वायु तथा वृष्टि जल की शुद्धि तथा (त्रिताय) अग्नि कर्म्म और हवि होने के लिये (संयौमि) निश्चल करता हूं ॥२३॥

भावार्थः—ईश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा और आशीर्वाद देता है कि किसी मनुष्य को यज्ञ, सत्याचार और विद्या के ग्रहण से डरना वा चलायमान कभी न होना चाहिये क्योंकि मनुष्यों को उक्त यज्ञ आदि अच्छे-अच्छे कार्यों से ही उत्तम-उत्तम सन्तान शारीरिक वाचिक और मानस विविध प्रकार के निश्चल सुख प्राप्त हो सकते हैं ॥२३॥

देवस्य त्वेत्यस्यर्षिः स एव । द्योविद्युतौ देवते । स्वराड्ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त यज्ञ कैसा और क्यों उसका अनुष्ठान करना चाहिये, सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददेऽध्वरकृतं देवेभ्यऽइन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजा वायुरसि तिग्मतेजा द्विषतो वधः ॥२४॥

पदार्थः—मैं (सवितुः) अन्तर्यामी प्रेरणा करने (देवस्य) सब आनन्द के देने

वाले परमेश्वर की (प्रसवे) प्रेरणा में (अश्विनोः) सूर्य्य चन्द्र और अध्वर्य्युओं के [बाहुभ्यां] बल और वीर्य्य से तथा (पूष्णः) पुष्टिकारक वायु के (हस्ताभ्याम्) जो कि ग्रहण और त्याग के हेतु उदान और अपान हैं उन से (देवेभ्यः) विद्वान् वा दिव्य सुखों की प्राप्ति के लिये (अध्वरकृतम्) यज्ञ से सुखकारक [(त्वा) उस] कर्म्म को (आददे) अच्छे प्रकार ग्रहण करता हूं और मेरा किया हुआ जो यज्ञ है सो (इन्द्रस्य) सूर्य्य का (सहस्रभृष्टिः) जिसमें अनेक प्रकार के पदार्थों के पचाने का सामर्थ्य वा (शततेजाः) अनेक प्रकार का तेज तथा (दक्षिणः) प्राप्त करने वाला (बाहुः) किरण-समूह (असि) है और जिस (इन्द्रस्य) सूर्य्य वा मेघमण्डल का (तिग्मतेजाः) तीक्ष्ण तेज वाला (वायुः) वायु हेतु (असि) है उस से हम को अनेक प्रकार के सुख तथा (द्विषतः) शत्रुओं का (वधः) नाश करना चाहिये ।।२४।।

भावार्थः—ईश्वर आज्ञा करता है कि मनुष्यों को अच्छी प्रकार सिद्ध किया हुआ यज्ञ जिस में भौतिक अग्नि के संयोग से ऊपर को अच्छे-अच्छे पदार्थ छोड़े जाते हैं वह सूर्य्य की किरणों में स्थिर होता है तथा पवन उस को धारण करता है और वह सब के उपकार के लिये हजारों सुखों को प्राप्त कराके दुःखों का विनाश करने वाला होता है ।।२४।।

पृथिवीत्यस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । विराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

फिर उक्त यज्ञ कहाँ जाके क्या करने वाला होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र किया है ।।

पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं मा हिंसिषं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याᳮ शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ।।२५।।

पदार्थः—हे (देव) सूर्य्यादि जगत् के प्रकाश करने तथा (सवितः) राज्य और ऐश्वर्य्य के देने वाले परमेश्वर ! (ते) आपकी कृपा से मैं (देवयजनि) विद्वानों के यज्ञ करने की जगह (ते) यह जो ((पृथिवि) भूमि है उसके [और (ओषध्याः) जो यवादि ओषधि हैं] उनके (मूलम्) वृद्धि करने वाले मूल को (मा हिंसिषम्) नाश न करूं और मैं (पृथिव्याम्) अनेक प्रकार सुखदायक भूमि में (यः) जिस यज्ञ का अनुष्ठान करता हूँ वह (व्रजम्) जलवृष्टिकारक मेघ को (गच्छ) प्राप्त हो वहां जाकर (गोष्ठानम्) सूर्य्य की किरणों के गुणों से (वर्षतु) वर्षाता है और (द्यौः) सूर्य्य के प्रकाश को (वर्षतु) वर्षाता है। हे वीर पुरुषो ! आप (अस्याम्) इस उत्कृष्ट पृथिवी में (यः) जो कोई अधर्म्मात्मा डाकू (अस्मान्) सब के उपकार करने

वाले धर्मात्मा सज्जन हम लोगों से (द्वेष्टि) विरोध करता है (च) और (यम्) जिस दुष्ट शत्रु से (वयम्) धार्म्मिक शूर हम लोग (द्विष्मः) विरोध करें (तम्) उस दुष्ट (परम्) शत्रु को (शतेन) अनेक (पाशैः) बन्धनों से (बधान) बाँधो और उसको (अतः) इस बन्धन से कभी (मा मौक्) मत छोड़ो ॥२५॥

भावार्थः—ईश्वर आज्ञा देता है कि विद्वान् मनुष्यों को पृथिवी का राज्य तथा उसी पृथिवी में तीन प्रकार के यज्ञ और ओषधियाँ इनका नाश कभी न करना चाहिये। जो यज्ञ अग्नि में हवन किये हुए पदार्थों का धूम मेघमण्डल को जाकर शुद्धि के द्वारा अत्यन्त सुख उत्पन्न करने वाला होता है इस से यह यज्ञ किसी पुरुष को कभी छोड़ने योग्य नहीं है तथा जो दुष्ट मनुष्य हैं उनको इस पृथिवी पर अनेक वन्धनों से बाँधे और उनको कभी न छोड़े जिससे कि वे दुष्ट कर्म्मों से निवृत्त हों और सब मनुष्यों को चाहिये कि परस्पर ईर्ष्या-द्वेष से अलग होकर एक दूसरे की सब प्रकार सुख की उन्नति के लिये सदा यत्न करें ॥२५॥

अपाररुमित्यस्य सर्वस्य ऋषिः स एव। सविता देवता। पूर्वार्द्धे स्वराड्ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः। उत्तरार्धे भुरिग्ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः॥

फिर इस यज्ञ से क्या क्या कार्य सिद्ध होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अपाररुं पृथिव्यै देवयजनाद्वध्यासं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याᳬं शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्। अररो दिवं मा पप्तो द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन् व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याᳬं शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥२६॥

पदार्थः—हे (देव) सर्वानन्द के देने वाले जगदीश्वर! (सवितः) सब प्राणियों में अन्तर्यामी, सत्य प्रकाश करने हारे आप की कृपा से हम लोग परस्पर उपदेश करें कि जैसे यह सब का प्रकाश करने वाला सूर्य्यलोक इस पृथिवी में अनेक बन्धन के हेतु किरणों से खैंचकर पृथिवी आदि सब पदार्थों को बांधता है वैसे तुम भी दुष्टों को बांधकर अच्छे अच्छे गुणों का प्रकाश करो और जैसे मैं (पृथिव्यै) पृथिवी में (देवयजनात्) विद्वान् लोग जिस संग्राम से अच्छे-अच्छे पदार्थ वा उत्तम-उत्तम विद्वानों

की संगति को प्राप्त होते हैं उस से (अररुम्) दुष्ट स्वभाव वाले शत्रुजन को (अपवध्यासम्) मारता हूँ वैसे ही तुम लोग भी उसको मारो तथा जैसे मैं (व्रजम्) उत्तम-उत्तम गुण जताने वाले सज्जनों के संग को प्राप्त होता हूं वैसे तुम भी उसको (गच्छ) प्राप्त हो। जैसे मैं (गोष्ठानम्) पठन-पाठन व्यवहार की बताने वाली मेघ की गर्जना के समतुल्य वेदवाणी को अच्छे-अच्छे शब्दरूपी बूंदों से वर्षाता हूं वैसे तुम भी (वर्षतु) वर्षाओ। जैसे मेरी विद्या की (द्यौः) शोभा सब को दृष्टिगोचर है वैसे (ते) तुम्हारी भी विद्या सुशोभित हो। जैसे मैं (यः) जो मूर्ख (अस्मान्) विद्या का प्रचार करने वाले हम लोगों से (द्वेष्टि) विरोध करता है (च) और (यम्) जिस विद्या विरोधी जन को (वयम्) हम विद्वान् लोग (द्विष्मः) दुष्ट समझते हैं (तम्) उस (परम्) विद्या के शत्रु को (अस्याम्) इस सब पदार्थों की धारण करने और विविध सुख देने वाली (पृथिव्याम्) पृथिवी में (शतेन) बहुत से (पाशैः) बन्धनों से नित्य बांधता हूं कभी उससे उसको नहीं त्यागता वैसे हे वीर लोगो! तुम भी उसको (बधान) बांधो कभी उसको (अतः) उस बन्धन से (मा मौक्) मत छोड़ो और जो दुष्ट जन हम लोगों से विरोध करे तथा जिस दुष्ट से हम लोग विरोध करें उसको उस बन्धन से कोई मनुष्य न छोड़े। इस प्रकार सब लोग उसको उपदेश करते रहें कि हे (अररो) दुष्ट पुरुष! तू (दिवम्) प्रकाश उन्नति को (मा पप्तः) मत प्राप्त हो तथा (ते) तेरा (द्रप्सः) आनन्द देने वाला विद्यारूपी रस (द्याम्) आनन्द को (मा स्कन्) मत प्राप्त करे। हे श्रेष्ठों के मार्ग चाहने वाले मनुष्यो! जैसे मैं (व्रजम्) विद्वानों के प्राप्त होने योग्य श्रेष्ठ मार्ग को प्राप्त होता हूं वैसे तुम भी (गच्छ) उसको प्राप्त हो। जैसे यह (द्यौः) सूर्य का प्रकाश (गोष्ठानम्) पृथिवी के स्थान अन्तरिक्ष को सींचता है वैसे ही ईश्वर वा विद्वान् पुरुष (ते) तुम्हारी कामनाओं को (वर्षतु) वर्षावें अर्थात् क्रम से पूरी करें। जैसे यह (देव) व्यवहार का हेतु (सवितः) सूर्य्यलोक (अस्याम्) इस बीज बोने योग्य (पृथिव्याम्) बहुत प्रजायुक्त पृथिवी में (शतेन) अनेक (पाशैः) बन्धन के हेतु किरणों से आकर्षण के साथ पृथिवी आदि सब पदार्थों को बांधता है वैसे तुम भी दुष्टों को बांधो और (यः) जो न्यायविरोधी (अस्मान्) न्यायाधीश हम लोगों से (द्वेष्टि) कोप करता है (च) और (यम्) अन्यायकारी जन पर (वयम्) सम्पूर्ण हितसम्पादन करने वाले हम लोग (द्विष्मः) कोप करते हैं (तम्) उस (परम्) शत्रु को (अस्याम्) इस (पृथिव्याम्) उक्त गुण वाली पृथिवी में (शतेन) अनेक (पाशैः) साम, दाम, दण्ड और भेद आदि उद्योगों से बांधता हूं और जैसे मैं उसको उस दण्ड से बांधकर कभी नहीं छोड़ता वैसे ही तुम भी (बधान) बांधो अर्थात् बन्धनरूप दण्ड सदा दो। कभी उसको (मा मौक्) मत छोड़ो ॥२६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। ईश्वर आज्ञा देता है कि हे मनुष्यो! तुम लोगों को विद्या के सिद्ध करने वाले कार्य्यों के नियमों में

विघ्नकारी दुष्ट जीवों को सदा मारना चाहिये और सज्जनों के समागम से विद्या की वृद्धि नित्य करनी चाहिये। जिस प्रकार अनेक उद्योगों से श्रेष्ठों की हानि दुष्टों की वृद्धि न हो सो नियम करना चाहिये और सदा श्रेष्ठ सज्जनों का सत्कार तथा दुष्टों को दण्ड देने के लिये उनका बन्धन करना चाहिये। परस्पर प्रीति के साथ विद्या और शरीर का वल सम्पादन कर: क्रिया तथा कलायन्त्रों से अनेक यान वनाकर सव को सुख देना ईश्वर की आज्ञा का पालन तथा ईश्वर की उपासना करनी चाहिये ॥२६॥

गायत्रेणेत्यस्य ऋषिः स एव। यज्ञो देवता। ब्राह्मीत्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

उक्त यज्ञ का ग्रहण वा अनुष्ठान किससे करना चाहिये
सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है॥

गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि जागतेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि। सुक्ष्मा चासि शिवा चासि स्योना चासि सुषदा चास्यूर्जस्वती चासि पयस्वती च ॥२७॥

पदार्थः—जिस यज्ञ से उत्तम पदार्थों के साथ (सुक्ष्मा) यह पृथिवी शोभायमान (असि) होती है (च) तथा जिससे सुखकारक गुण (च) अथवा मनुष्यों के साथ यह (शिवा) मङ्गल की देने वाली (असि) होती है (च) तथा जिस कर के उत्तम से उत्तम सुखों के साथ यह पृथिवी (स्योना) सुख उत्पन्न करने वाली (असि) होती है (च) और जिससे उत्तम-उत्तम सुख करने वाले और चलने के साथ यह (सुषदा) सुख से स्थिति करनेयोग्य (असि) होती है [च] तथा जिन उत्तम यव आदि अन्नों के साथ यह (ऊर्जस्वती) अन्न वाली (असि) होती है (च) और जिन उत्तम मधुर आदि रस वाले फलों करके यह पृथिवी (पयस्वती) प्रशंसा करने योग्य रस वाली (असि) होती है (त्वा) उस यज्ञ को मैं यज्ञविद्या का जाननेवाला मनुष्य (गायत्रेण) गायत्री (छन्दसा) जो कि चित्त को प्रफुल्लित करने वाला है उस से (परिगृह्णामि) सब प्रकार से सिद्ध करता हूं और मैं (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुभ् (छन्दसा) जो कि स्वतन्त्रता रूप से आनन्द का देने वाला है उससे (त्वा) पदार्थसमूह को (परिगृह्णामि) सब प्रकार से इकट्ठा करता हूं तथा मैं (जागतेन) जगती जो कि (छन्दसा) अत्यन्त आनन्द का प्रकाश करने वाला है उससे (त्वा) उस भौतिक अग्नि को (परिगृह्णामि) अच्छी प्रकार स्वीकार करता हूं ॥२७॥

भावार्थः—वेद का प्रकाश करने वाला ईश्वर हम लोगों के प्रति कहता है कि हे मनुष्यो! तुम लोग वेदमन्त्रों के विना पढ़े और उन के अर्थों के विना जाने यज्ञ का अनुष्ठान वा सुखरूप फल को प्राप्त होना और सब शुभ गुणयुक्त सुखकारी अन्न जल और वायु आदि पदार्थ हैं उनको शुद्ध नहीं कर सकते। इससे यह तीन प्रकार के यज्ञ की सिद्धि यत्नपूर्वक सम्पादन कर के सदा सुख ही में रहना चाहिये और जो इस पृथिवी में वायु जल तथा ओषधियों को दूषित करने वाले दुर्गन्ध अपगुण तथा दुष्ट मनुष्य हैं वे सर्वदा निवारण करने चाहियें ॥२७॥

पुरा क्रूरस्येत्यस्य ऋषिः स एव। यज्ञो देवता। विराड् ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

वे दोष कैसे निवारण करने और वहां मनुष्यों को फिर क्या करना चाहिये
इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

पुरा क्रूरस्य॑ वि॒सृपो॑ विरप्शिन्नुदा॒दाय॑ पृथि॒वीं जी॒वदा॑नुम्। यामैर॑यँश्च॒न्द्रम॑सि स्व॒धाभि॒स्तामु॒ धीरा॑सोऽअनु॒दिश्य॑ यजन्ते। प्रोक्ष॑-णी॒रासा॑दय द्विष॒तो व॒धो॑ऽसि ॥२८॥

पदार्थः हे (विरप्शिन्) महाशय महागुणवान् जगदीश्वर! आपने (याम्) जिस (स्वधाभिः) अन्न आदि पदार्थों से युक्त और (जीवदानुम्) प्राणियों को जीवन देने वाले पदार्थ तथा (पृथिवीम्) बहुत सी प्रजायुक्त पृथिवी को (उदादाय) ऊपर उठाकर (चन्द्रमसि) चन्द्रलोक के समीप स्थापन की है इस कारण (ताम्) उस पृथिवी को (धीरासः) धीर बुद्धि वाले पुरुष प्राप्त होकर आपके (अनुदिश्य) अनुकूल चल कर (यजन्ते) यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करते हैं। जैसे—(चन्द्रमसि) आनन्द में वर्त्तमान होकर (धीरासः) बुद्धिमान् पुरुष (याम्) जिस (जीवदानुम्) जीवों की हितकारक (पृथिवीम्) पृथिवी के (अनुदिश्य) आश्रित होकर सेना और शस्त्रों को (उदादाय) क्रम से लेकर (विसृपः) जो कि युद्ध करने वाले पुरुषों के प्रभाव दिखाने योग्य और (क्रूरस्य) शत्रुओं के अंग विदीर्ण करने वाले संग्राम के बीच में शत्रुओं को जीत कर राज्य को [ऐरयन्] प्राप्त होते हैं तथा जैसे इस उक्त प्रकार से धीर पुरुष (पुरा) पहिले समय में प्राप्त हुए जिन क्रियाओं से (प्रोक्षणीः,) अच्छी प्रकार पदार्थों को सींच के उनको [आसादय] सम्पादन करते हैं वैसे ही (विरप्शिन्) महान् ऐश्वर्य्य की इच्छा करने वाले पुरुष! तू भी उसको प्राप्त होके ईश्वर का पूजन तथा पदार्थ सिद्धि करने वाली उत्तम-उत्तम क्रियाओं का सम्पादन कर। जैसे (द्विषतः)

शत्रुओं का (वधः) नाश (असि) हो वैसे कामों को करके नित्य आनन्द में वर्त्तमान रहें ।।२८।।

भावार्थः—जिस ईश्वर ने क्रम से अन्तरिक्ष में पृथिवियें पृथिवियों के समीप चन्द्रलोक चन्द्रलोकों के समीप पृथिवी । एक दूसरे के समीप तारा-लोक और सब के बीच में अनेक सूर्य्यलोक तथा इन सब में नाना प्रकार की प्रजा रच कर स्थापन की है वही परमेश्वर सब मनुष्यों को उपासना करने योग्य है । जब तक मनुष्य बल और क्रियाओं से युक्त होकर शत्रुओं को नहीं जीतते तब तक राज्यसुख को नहीं प्राप्त हो सकते क्योंकि विना युद्ध और बल के शत्रु जन कभी नहीं डरते तथा विद्वान् लोग विद्या, न्याय और विनय के विना यथावत् प्रजा के पालन करने को समर्थ नहीं हो सकते इस कारण सब को जितेन्द्रिय होकर उक्त पदार्थों का सम्पादन करके सब के सुख के लिये उत्तम-उत्तम प्रयत्न करना चाहिये ।।२८।।

प्रत्युष्टमित्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता सर्वस्य । पूर्वार्द्धे भुरिग्जगति छन्दः । निषादः स्वरः उत्तरार्द्धे । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

फिर उक्त संग्राम कैसे जीतना और यज्ञ का अनुष्ठान कैसे करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ताऽअरातयः । अनिशितोऽसि सपत्नक्षिद्वाजिनं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि । प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ताऽअरातयः । अनिशितासि सपत्नक्षिद्वाजिनीं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि ।।२९।।

पदार्थः—मैं जिस (अनिशितः) अतिविस्तृत (सपत्नक्षित्) शत्रुओं के नाश करने वाले संग्राम से (प्रत्युष्टं रक्षः) विघ्नकारी प्राणी और (प्रत्युष्टा अरातयः) जिससे सत्यविरोधी अच्छी प्रकार दाहरूप दण्ड को प्राप्त (असि) होते हैं वा (निष्टप्तं रक्षः) जिस बन्धन से बांधने योग्य (निष्टप्ता अरातयः) विद्या के विघ्न करने वाले निरन्तर संताप को प्राप्त होते हैं (त्वा) उस (वाजिनम्) वेग आदि गुण वाले संग्राम को (वाजेध्यायै) जो कि अन्न आदि पदार्थों से बलवान् करने के योग्य सेना है उसके लिये युद्ध के साधनों को (संमार्ज्मि) अच्छी प्रकार शुद्ध करता हूं अर्थात् उनके दोषों का विनाश करता हूं और मैं जिस (सपत्नक्षित्) शत्रु का नाश करने वाले और (अनिशिता) अति विस्तारयुक्त सेना से (प्रत्युष्टं रक्षः) परसुख का न सहने वाला

मनुष्य वा (प्रत्युष्टा अरातयः) उक्त अवगुणवाले अनेक मनुष्य (निष्टप्तं रक्षः) जुआ खेलने और परस्त्रीगमन करने तथा (निष्टप्ता अरातयः) औरों को सब प्रकार से दुःख देने वाले मनुष्य अच्छी प्रकार निकाले जाते (असि) हैं (त्वा) उस (वाजिनीम्) बल और वेग आदि गुणवाली सेना को (वाजेध्यायै) बहुत साधनों से प्रकाशित करने के लिये (संमार्ज्मि) अच्छी प्रकार उत्तम-उत्तम शिक्षाओं से शुद्ध करता हूं [यह प्रथम अर्थ हुआ] और जो कि (अनिशितः) बड़ी क्रियाओं से सिद्ध होने योग्य वा (सपत्नक्षित्) दोषों वा शत्रुओं के विनाश करनेहारे (प्रत्युष्टं रक्षः) विघ्नकारी प्राणी और (प्रत्युष्टा अरातयः) जिसमें सत्यविरोधी अच्छी प्रकार दाहरूप दण्ड को प्राप्त (असि) होते हैं, वा (निष्टप्तं रक्षः) जिस बन्धन से बांधने योग्य (निष्टप्ता अरातयः) विद्या के विघ्न करने वाले निरन्तर सन्ताप को प्राप्त होते हैं (त्वा) उस (वाजिनम्) यज्ञ को (वाजेध्यायै) अन्न आदि पदार्थों के प्रकाशित होने के लिये (संमार्ज्मि) शुद्धता से सिद्ध करता हूं। [इस प्रकार जिस (सपत्नक्षित्) शत्रुओं का नाश करने वाली (अनिशिता) अतिविस्तारयुक्त क्रिया से (प्रत्युष्टं रक्षः) विघ्नकारी प्राणी और (प्रत्युष्टा अरातयः) दुर्गुण तथा नीच मनुष्य नष्ट होते हैं (निष्टप्तं रक्षः) काम क्रोध आदि राक्षसी भाव दूर होते हैं (निष्टप्ता अरातयः) जिसमें दुःख तथा दुर्गन्ध आदि दोष नष्ट [(असि)] होते हैं (त्वा) उस (वाजिनीं) सत्क्रिया को (वाजेध्यायै) अन्न आदि पदार्थों के प्रकाशित होने के लिये (सम्मार्ज्मि) भली प्रकार सिद्ध करता हूँ। इसी प्रकार आप भी इस यज्ञ तथा सत्क्रिया को पवित्रतापूर्वक सिद्ध करो] यह दूसरा अर्थ हुआ ॥२९॥

भावार्थः—ईश्वर आज्ञा देता है कि मनुष्यों को विद्या और शुभ गुणों के प्रकाश और दुष्ट शत्रुओं की निवृत्ति के लिये नित्य पुरुषार्थ करना चाहिये तथा सदैव श्रेष्ठ शिक्षा शस्त्र अस्त्र और सत्पुरुषयुक्त उत्तम सेना से श्रेष्ठों की रक्षा तथा दुष्टों का विनाश करना चाहिये जिस करके अशुद्धि आदि दोषों के विनाश होने से सर्वत्र शुद्ध गुण प्रवृत्त हो सकते हैं ॥२९॥

अदित्या इत्यस्य ऋषिः स एव। यज्ञो देवता। निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर उक्त यज्ञ किस प्रकार का और कौन फल का देनेवाला होता है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है॥

अदित्यै रास्नासि विष्णोर्वेष्पोस्यूर्ज्जे त्वाऽदब्धेन त्वा चक्षुषावपश्यामि। अग्नेर्जिह्वासि सुहूर्देवेभ्यो धाम्ने धाम्ने मे भव यजुषे यजुषे ॥३०॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! जो आप (अदित्यै) पृथिवी के (रास्ना) रस आदि पदार्थों के उत्पन्न करने वाले (असि) हैं (विष्णोः) व्यापक (वेष्पः) पृथिवी आदि सब पदार्थों में प्रवर्त्तमान भी (असि) हैं तथा (अग्नेः) भौतिक अग्नि के (जिह्वा) जीभरूप (असि) हैं वा (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (धाम्ने धाम्ने) जिनमें कि वे विद्वान् सुख-रूप पदार्थों को प्राप्त होते हैं जो तीनों धाम अर्थात् स्थान नाम और जन्म हैं उन धामों की प्राप्ति के तथा (यजुषे यजुषे) यजुर्वेद के मन्त्र-मन्त्र का आशय प्रकाशित होने के लिये (सुहूः) जो श्रेष्ठता से स्तुति करने के योग्य है इस प्रकार के (त्वा) आप को मैं (अदब्धेन) प्रेमसुखयुक्त (चक्षुषा) विज्ञान से (ऊर्ज्जे) पराक्रम (अदित्यै) पृथिवी तथा (देवेभ्यः) श्रेष्ठ गुणों वा (धाम्ने धाम्ने) स्थान नाम और जन्म आदि पदार्थों की प्राप्ति तथा (यजुषे यजुषे) यजुर्वेद के मन्त्र-मन्त्र के आशय जनाने के लिये [(त्वा) आपको] (अवपश्यामि) ज्ञानरूपी नेत्रों से देखता हूं आप भी कृपा कर के [मे] मुझ-को विदित और मेरे पूजन को प्राप्त (भव) हूजिये ।। यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ ।। अब दूसरा कहते हैं ।। जिस कारण यह यज्ञ (अदित्यै) अन्तरिक्ष के सम्बन्धी (रास्ना) रसादि पदार्थों की क्रिया का कारण (असि) है (विष्णोः) यज्ञसम्बन्धी कार्य्यों का (वेष्पः) व्यापक (असि) है (अग्नेः) भौतिक अग्नि का (जिह्वा) जिह्वारूप (असि) है (देवेभ्यः) तथा दिव्य गुण (धाम्ने धाम्ने) कीर्ति, स्थान और जन्म इनकी प्राप्ति वा [मे] मेरे लिये (यजुषे यजुषे) यजुर्वेद के मन्त्र-मन्त्र का आशय जानने के लिये (सुहूः) अच्छी प्रकार प्रशंसा करने योग्य (भव) होता है इस कारण (त्वा) उस यज्ञ को मैं (अदब्धेन) सुखपूर्वक (चक्षुषा) प्रत्यक्ष प्रमाण के साथ नेत्रों से (अवपश्यामि) देखता हूँ तथा (त्वा) उसे (अदित्यै) पृथिवी आदि पदार्थ (देवेभ्यः) उत्तम-उत्तम गुण [(ऊर्जे) पराक्रम] (धाम्ने धाम्ने) स्थान-स्थान तथा (यजुषे यजुषे) यजुर्वेद के मन्त्र-मन्त्र से हित होने के लिये (अवपश्यामि) क्रिया की कुशलता से देखता हूँ ।।३०।।

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । सब मनुष्यों को जैसे यह जगदीश्वर वस्तु-वस्तु में स्थित तथा वेद के मन्त्र-मन्त्र में प्रतिपादित और सेवा करने के योग्य है वैसे ही यह यज्ञ वेद के प्रति मन्त्र से अच्छी प्रकार सिद्ध प्रतिपादित विद्वानों ने सेवित किया हुआ सब प्राणियों के लिये पदार्थ-पदार्थ में पराक्रम और बल के पहुँचाने के योग्य होता है ।।३०।।

सवितुस्त्वेत्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता सर्वस्य । पूर्वार्द्धे जगती छन्दः । निषादः स्वरः । तेजोऽसीत्यस्यानुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।।

उक्त यज्ञ कैसे पवित्र होता है सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है ।।

सवितुस्त्वा प्रसवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः। सवितुर्वः प्रसवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः। तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धाम नामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि ॥ ३१॥

पदार्थः—जो यज्ञ (सवितुः) परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये संसार में (अच्छिद्रेण) निरन्तर (पवित्रेण) पवित्र तथा (सूर्य्यस्य) प्रकाशमय सूर्य्य की (रश्मिभिः) किरणों के साथ मिल के सब पदार्थों को शुद्ध करता है (त्वा) उस यज्ञ वा यज्ञकर्त्ता को मैं (उत्पुनामि) उत्कृष्टता के साथ पवित्र करता हूं। इसी प्रकार (सवितुः) परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में (अच्छिद्रेण) निरन्तर (पवित्रेण) शुद्धिकारक (सूर्य्यस्य) जो कि ऐश्वर्य्य हेतुओं के प्रेरक प्राण के (रश्मिभिः) अन्तराशय के प्रकाश करने वाले गुण हैं उनसे (वः) तुम लोगों को तथा प्रत्यक्ष पदार्थों को यज्ञ करके (उत्पुनामि) पवित्र करता हूं। हे ब्रह्मन्! जिस कारण आप (तेजोऽसि) स्वयंप्रकाशवान् (शुक्रमसि) शुद्ध (अमृतमसि) नाशरहित (धामासि) सब पदार्थों का आधार (नामासि) वन्दना करने योग्य (देवानाम्) विद्वानों के (प्रियम्) प्रीतिकारक (अनाधृष्टम्) तथा किसी की भयता में न आने योग्य वा (देवयजनमसि) विद्वानों के पूजा करने योग्य हैं इससे मैं (त्वा) आपका ही आश्रय करता हूं॥ यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ॥ जिस कारण यह यज्ञ (तेजोऽसि) प्रकाश और (शुक्रमसि) शुद्धि का हेतु (अमृतमसि) मोक्ष सुख का देने तथा (धामासि) सब अन्न आदि पदार्थों की पुष्टि करने वा (नामासि) जल का हेतु (देवानाम्) श्रेष्ठ गुणों की (प्रियम्) प्रीति कराने तथा (अनाधृष्टम्) किसी को खण्डन करने के योग्य नहीं अर्थात् अत्यन्त उत्कृष्ट और (देवयजनम्) विद्वान् जनों को परमेश्वर का पूजन कराने वाला (असि) है इस कारण इस यज्ञ से मैं (सवितुः) जगदीश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में (अच्छिद्रेण) निरन्तर (पवित्रेण) अति शुद्ध यज्ञ वा (सूर्य्यस्य) ऐश्वर्य्य उत्पन्न करने वाले परमेश्वर के गुण अथवा ऐश्वर्य्य के उत्पन्न कराने वाले सूर्य्य की (रश्मिभिः) विज्ञानादि प्रकाश वा किरणों से (वः) तुम लोग वा प्रत्यक्ष पदार्थों को (उत्पुनामि) पवित्र करता हूं॥ यह दूसरा अर्थ हुआ॥३१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। परमेश्वर यज्ञ विद्या के फल को जनाता है कि जो तुम लोगों से अनुष्ठान किया हुआ यज्ञ है वह सूर्य्य की किरणों के साथ रहकर अपने निरन्तर शुद्ध गुण से सब पदार्थों

को पवित्र करता है तथा वह उसके द्वारा सब पदार्थों को सूर्य्य की किरणों से तेजवान् शुद्ध उत्तम रस वाले सुखकारक प्रसन्नता का हेतु दृढ़ और यज्ञ कराने वाले पदार्थों को उत्पन्न कर के उनके भोजन वस्त्र से शरीर की पुष्टि बुद्धि और वल आदि शुद्ध गुणों को सम्पादन करके सब जीवों को सुख देता है ॥३१॥

ईश्वर ने इस अध्याय में मनुष्यों को शुद्ध कर्म के अनुष्ठान दोष और शत्रुओं की निवृत्ति, यज्ञक्रिया के फल को जानने, अच्छी प्रकार पुरुषार्थ करने, विद्या के विस्तारकरने, धर्म के अनुकूलप्रजा पालने, धर्म के अनुष्ठान में निर्भयता से स्थित होने, सब के साथ मित्रता से वर्त्तने, वेदों से सब विद्याओं का ग्रहण करने और कराने को शुद्धि तथा परोपकार के लिये प्रयत्न करने को आज्ञा दी है सो यह सब मनुष्यों को अनुष्ठान करने के योग्य है ॥

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ द्वितीयाध्यायारम्भः

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ॥१॥

ईश्वरेणैतत् सर्वमाद्येऽध्याये विधायेदानीं द्वितीयेऽध्याये प्राणिनां सुखायोक्तार्थस्य सिद्धि कर्त्तुं विशिष्टा विद्याः प्रकाश्यन्ते ॥ कृष्णोऽसीत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृत्पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब दूसरे अध्याय में परमेश्वर ने उन विद्याओं की सिद्धि करने के लिये विशेष विद्याओं का प्रकाश किया है कि जो-जो प्रथम अध्याय में प्राणियों के सुख के लिये प्रकाशित की हैं। उन में से वेदी आदि पदार्थों के वनाने को हस्तक्रियाओं के सहित विद्याओं के प्रकार प्रकाशित किये हैं उन में से प्रथम मन्त्र में यज्ञ सिद्ध करने के लिये साधन अर्थात् उनकी सिद्धि के निमित्त कहे हैं।

कृष्णोऽस्याखरेष्ठोऽग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वेदिरसि वर्हिषे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वर्हिरसि स्रुग्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥ १॥

पदार्थः — जिस कारण यह यज्ञ (आखरेष्ठः) वेदी की रचना से खुदे हुए स्थान में स्थिर होकर (कृष्णः) भौतिक अग्नि से छिन्न अर्थात् सूक्ष्मरूप और पवन के गुणों से आकर्षण को प्राप्त (असि) होता है इससे मैं (अग्नये) भौतिक अग्नि के बीच में हवन करने के लिये (जुष्टम्) प्रीति के साथ शुद्ध किये हुए (त्वा) उस यज्ञ अर्थात् होम की सामग्री को (प्रोक्षामि) घी आदि पदार्थों से सींचकर शुद्ध करता हूं और जिस कारण यह (वेदिः) वेदी अंतरिक्ष में स्थित (असि) होती है इससे मैं (बर्हिषे) होम किये हुए पदार्थों को अंतरिक्ष में पहुंचाने के लिये (जुष्टाम्) प्रीति से सम्पादन की हुई (त्वा) उस वेदी को (प्रोक्षामिं) अच्छे प्रकार घी आदि पदार्थों से सींचता हूं तथा जिस कारण यह (बर्हिः) जल अन्तरिक्ष में स्थिर होकर पदार्थों की शुद्धि कराने वाला (असि) होता है इससे (त्वा) उसकी शुद्धि के लिये जो कि शुद्ध किया हुआ (जुष्टम्) पुष्टि आदि गुणों को उत्पन्न करनेहारा हवि है उसको मैं (स्रुग्भ्यः) स्रुवा आदि साधनों से अग्नि में डालने के लिये (प्रोक्षामि) शुद्ध करता हूं ॥१॥

भावार्थः—ईश्वर उपदेश करता है कि सब मनुष्यों को वेदी बनाकर और पात्र आदि होम की सामग्री ले के उस हवि को अच्छी प्रकार शुद्ध कर तथा अग्नि में होम कर के किया हुआ यज्ञ वर्षा के शुद्ध जल से सब ओषधियों को पुष्ट करता है। उस यज्ञ के अनुष्ठान से सब प्राणियों को नित्य सुख देना मनुष्यों का परम धर्म है ॥१॥

अदित्या इत्यस्य ऋषिः स एव। यज्ञो देवता। स्वराड्जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

इस प्रकार किया हुआ यज्ञ क्या सिद्ध करनेवाला होता है सो
अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

अदि॑त्यै व्युन्द॑नमसि॒ विष्णो॑ स्तुपो॒ऽस्यूर्ण॑म्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थां दे॒वेभ्यो॒ भुव॑पतये॒ स्वाहा॒ भुव॑नपतये॒ स्वाहा॑ भू॒ताना॒ पत॑ये॒ स्वाहा॑ ॥२॥

पदार्थः — जिस कारण यह यज्ञ (अदित्यै) पृथिवी के (व्युन्दनम्) विविध प्रकार के ओषधि आदि पदार्थों का सींचने वाला (असि) होता है इस से मैं उसका अनुष्ठान करता हूं और (विष्णोः) इस यज्ञ की सिद्धि कराने हारा (स्तुपः) शिखारूप (ऊर्णम्रदसम्) उलूखल (असि) है इस से मैं (त्वा) उस अन्न के छिलके दूर करने वाले पत्थर और उलूखल को (स्तृणामि) पदार्थों से ढांपता हूं तथा वेदी (देवेभ्यः) विद्वान् और दिव्य सुखों के हित कराने के लिये (असि) होती है इस से उसको मैं

(स्वासस्थाम्) ऐसी बनाता हूं कि जिस में होम किये हुए पदार्थ अच्छी प्रकार स्थिर हों और जिस से संसार का पति, भुवन अर्थात् लोकलोकान्तरों का पति, संसारी पदार्थों का स्वामी और परमेश्वर प्रसन्न होता है तथा भौतिक अग्नि सुखों का सिद्ध कराने वाला होता है इस कारण (भुवपतये स्वाहा), (भुवनपतये स्वाहा), (भूतानां पतये स्वाहा) उक्त परमेश्वर की प्रसन्नता और आज्ञापालन के लिए उस वेदी के गुणों से जो कि सत्यभाषण अर्थात् अपने पदार्थों को मेरे हैं यह कहना वा श्रेष्ठवाक्य आदि उत्तम वाणीयुक्त वेद है उसके मन्त्रों के साथ स्वाहा शब्द का अनेक प्रकार उच्चारण करके यज्ञ आदि श्रेष्ठ कर्मों का विधान किया जाता है, इस प्रयोजन के लिये भी वेदी को रचता हूं ।।२।।

भावार्थः—परमेश्वर सब मनुष्यों के लिये उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुमको वेदी आदि यज्ञ के साधनों का सम्पादन करके सब प्राणियों के सुख तथा परमेश्वर की प्रसन्नता के लिये अच्छी प्रकार क्रिया-युक्त यज्ञ करना और सदा सत्य ही बोलना चाहिये और जैसे मैं न्याय से सब विश्व का पालन करता हूं वैसे ही तुम लोगों को भी पक्षपात छोड़कर सब प्राणियों के पालन से सुख सम्पादन करना चाहिये ।।२।।

गंधर्वस्त्वेत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता सर्वस्य। आद्यस्य भुरिगार्च्ची त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। मध्यभागस्य [भुरिग्] आर्च्चीपंक्तिश्छन्दः। अन्त्यस्य पंक्तिश्छन्दः। उभयत्र पंचमः स्वरः ।।

उक्त यज्ञ अग्नि आदि पदार्थों से धारण किया जाता है सो
अगले मन्त्र में उपदेश किया है ।।

गन्धर्वस्त्वा विश्वावसुः परिदधातु विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः। इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः। मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तन्ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः ।। ३ ।।

पदार्थः—विद्वान् लोगों ने जिस (गन्धर्वः) पृथिवी वा वाणी के धारण करने वाले (विश्वावसुः) विश्व को बसाने वाले (परिधिः) सब ओर से सब वस्तुओं को धारण करने वाले (इडः) स्तुति करने योग्य (अग्निः) सूर्य्यरूप अग्नि की (ईडितः) स्तुति (असि) की है, जो (विश्वस्य) संसार के वा विशेष करके (यजमानस्य) यज्ञ

करने वाले विद्वान् के (अरिष्ट्यै) दुःखनिवारण से सुख के लिये इस यज्ञ को (परिदधातु) धारण करता है इससे विद्वान् (त्वा) उसको विद्या की सिद्धि के लिये (परिदधातु) धारण करे और विद्वानों से जो वायु (इन्द्रस्य) सूर्य्य का (बाहुः) बल और (दक्षिणः) वर्षा की प्राप्ति कराने अथवा (परिधिः) शिल्पविद्या का धारण कराने वाला तथा (इडः) दाह प्रकाश आदि गुण वाला होने से स्तुति के योग्य (ईडितः) खोजा हुआ और (अग्निः) प्रत्यक्ष अग्नि (असि) है। वे वायु वा अग्नि अच्छी प्रकार शिल्पविद्या में युक्त किये हुए (यजमानस्य) शिल्पविद्या के चाहने वाले वा (विश्वस्य) सब प्राणियों के (अरिष्ट्यै) सुख के लिये (असि) होते हैं और जो ब्रह्माण्ड में रहने और गमन वा आगमन स्वभाव वाले (मित्रावरुणौ) प्राण और अपान वायु हैं वे (ध्रुवेण) निश्चल (धर्मणा) अपनी धारण शक्ति से (उत्तरतः) पूर्वोक्त वायु और अग्नि से उत्तर अर्थात् उपरान्त समय में (विश्वस्य) चराचर जगत् वा (यजमानस्य) सब से मित्रभाव में वर्त्तने वाले सज्जन पुरुष के (अरिष्ट्यै) सुख के हेतु (त्वा) उस पूर्वोक्त यज्ञ को (परिधत्ताम्) सब प्रकार से धारण करते हैं तथा जो विद्वानों से (इडः) विद्या की प्राप्ति के लिये प्रशंसा करने के योग्य और (परिधिः) सब शिल्पविद्या की सिद्धि को घेरने से अवधि तथा (ईडितः) विद्या की इच्छा करने वालों से प्रशंसा को प्राप्त (अग्निः) विजुलीरूप अग्नि (असि) है वह भी इस यज्ञ को सब प्रकार से धारण करता है। इन के गुणों को मनुष्य यथावत् जान के उपयोग करे ॥३॥

भावार्थः—ईश्वर ने जो सूर्य्य विद्युत् और प्रत्यक्ष रूप से तीन प्रकार का अग्नि रचा है वह विद्वानों से शिल्पविद्या के द्वारा यन्त्रादिकों में अच्छी प्रकार युक्त किया हुआ अनेक कार्य्यों को सिद्ध करने वाला होता है ॥३॥

वीतिहोत्रमित्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब अग्नि शब्द से अगले मन्त्र में उक्त दो अर्थों का प्रकाश किया है ॥

वी॒तिहो॑त्रन्त्वा कवे द्यु॒मन्त॒ꣳसमि॑धीमहि । अग्ने॑ बृ॒हन्त॑मध्व॒रे ॥४॥

पदार्थः – हे (कवे) सर्वज्ञ तथा हर एक पदार्थ में अनुक्रम से विज्ञान वाले (अग्ने) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! हम लोग (अध्वरे) मित्रभाव के रहने में (बृहन्तम्) सब के लिये बड़े से बड़े अपार सुख के बढ़ाने और (द्युमन्तम्) अत्यन्त प्रकाश वाले वा (वीतिहोत्रम्) अग्निहोत्र आदि यज्ञों को विदित कराने वाले (त्वा) आप को (समिधीमहि) अच्छी प्रकार प्रकाशित करें ॥ यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ ॥ हम लोग (अध्वरे) अहिंसनीय अर्थात् जो कभी परित्याग करने योग्य नहीं उस उत्तम यज्ञ में जिस में कि (वीतिहोत्रम्) पदार्थों की प्राप्ति कराने के हेतु अग्निहोत्र आदि

क्रिया सिद्ध होती हैं और (द्युमन्तम्) अत्यन्त प्रचण्ड ज्वालायुक्त (बृहन्तम्) बड़े-बड़े कार्य्यों को सिद्ध कराने तथा (कवे) पदार्थों में अनुक्रम से दृष्टिगोचर होने वाले (त्वा) उस (अग्ने) भौतिक अग्नि को (समिधीमहि) अच्छी प्रकार प्रज्वलित करें ।। यह दूसरा अर्थ हुआ ।।४।।

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—संसार में जितने क्रियाओं के साधन वा क्रियाओं से सिद्ध होने वाले पदार्थ हैं उन सबों को ईश्वर ही ने रच कर अच्छी प्रकार धारण किया है, मनुष्यों को उचित है कि उनकी सहायता से, गुण ज्ञान और उत्तम-उत्तम क्रियाओं की अनुकूलता से अनेक प्रकार उपकार लेने चाहियें ।।४।।

समिदसीत्यस्य ऋषिः स एव। यज्ञो देवता। निचृद्ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ।।

फिर उक्त यज्ञ के साधनों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

समिदसि सूर्य्यस्त्वा पुरस्तात् पातु कस्याश्चिदभिशस्त्यै। सवितुर्बाहू स्थऽऊर्णम्रदसन्त्वा स्तृणामि स्वासस्थन्देवेभ्यऽआ त्वा वसवो रुद्राऽआदित्याः सदन्तु ।।५।।

पदार्थः—(चित्) जैसे कोई मनुष्य सुख के लिये क्रिया से सिद्ध किये पदार्थों की रक्षा करके आनन्द को प्राप्त होता है वैसे ही यह यज्ञ (समित्) वसन्त ऋतु के समय के समान अच्छी प्रकार प्रकाशित (असि) होता है (त्वा) ‍उस को (सूर्य्यः) ऐश्वर्य का हेतु सूर्य्यलोक (कस्याः) सब पदार्थों की (अभिशस्त्यै) प्रकटता करने के लिये (पुरस्तात्) पहिले ही से उनकी (पातु) रक्षा करने वाला होता है तथा जो कि (सवितुः) सूर्य्यलोक के (बाहू) बल और वीर्य्य (स्थः) हैं जिन से यह यज्ञ विस्तार को प्राप्त होता है (त्वा) जिस (ऊर्णम्रदसम्) सुख के विघ्नों के नाश करने (स्वासस्थम्) और श्रेष्ठ अन्तरिक्षरूपी आसन में स्थित होने वाले यज्ञ को (वसवः) अग्नि आदि आठ वसु अर्थात् अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, सूर्य्य, प्रकाश, चन्द्रमा और तारागण, ये वसु (रुद्राः) प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीवात्मा, ये रुद्र (आदित्याः) बारह महीने (सदन्तु) प्राप्त करते हैं। (त्वा) उसी (ऊर्णम्रदसम्) अत्यन्त सुख बढ़ाने (स्वासस्थम्) और अन्तरिक्ष में स्थिर होने वाले यज्ञ को मैं भी सुख की प्राप्ति वा (देवेभ्यः) दिव्य गुणों को सिद्ध करने के लिये (आस्तृणामि) अच्छी प्रकार सामग्री से आच्छादित करके सिद्ध करता हूं ।।५।।

भावार्थः— इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—ईश्वर सब मनुष्यों के लिये उपदेश करता है कि मनुष्यों को वसु, रुद्र और आदित्यसंज्ञक पदार्थों से जो जो काम सिद्ध हो सकते हैं, सो-सो सब प्राणियों के पालन के निमित्त नित्य सेवन करने योग्य हैं तथा अग्नि के बीच जिन-जिन पदार्थों का प्रक्षेप अर्थात् हवन किया जाता है, सो-सो सूर्य्य और वायु को प्राप्त होता है। वे ही उन अलग हुए पदार्थों की रक्षा करके फिर उन्हें पृथिवी में छोड़ देते हैं जिस से कि पृथिवी में दिव्य ओषधि आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं। उनसे जीवों को नित्य सुख होता है, इस कारण सब मनुष्यों को इस यज्ञ का अनुष्ठान सदैव करना चाहिये ॥५॥

घृताच्यसीत्यस्य ऋषिः स एव। विष्णुर्देवता सर्वस्य। षड्षष्टितमाक्षरपर्य्यन्तं ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। अग्रे निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। सर्वस्य धैवतः स्वरः॥

फिर उक्त यज्ञ से क्या-क्या प्रिय सुख सिद्ध होता है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है॥

घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना सेदम्प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सदऽआसीद घृताच्यस्युपभृन्नाम्ना सेदम्प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सदऽआसीद घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना सेदम्प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सदऽआसीद। प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सदऽआसीद ध्रुवाऽअंसदन्नृतस्य योनौ ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञन्यम् ॥६॥

पदार्थः—जो [(नाम्ना)] (जुहूः) हवि अग्नि में डालने के लिये सुख की उत्पन्न करने वाली (घृताची) घृत को प्राप्त कराने वाली आदान क्रिया (असि) है (सा) वह यज्ञ में युक्त की हुई सार ग्रहण की क्रिया है सो (प्रियेण) सुखों से तृप्त करने वाले शोभायमान (धाम्ना) स्थान के साथ वर्त्तमान होके (इदम्) यह (प्रियम्) जिस में तृप्त करने वाले (सदः) उत्तम-उत्तम सुखों को प्राप्त होते हैं उन को (आसीद) सिद्ध करती है। जो (नाम्ना) प्रसिद्धि से (उपभृत्) समीप प्राप्त हुए पदार्थों को धारण करने तथा (घृताची) जल को प्राप्त कराने वाली हस्तक्रिया (असि) है (सा) वह यज्ञ में युक्त की हुई (प्रियेण) प्रीति के हेतु (धाम्ना) स्थल से (इदम्) यह ओषधि आदि पदार्थों का समूह (प्रियम्) जो कि आरोग्यपूर्वक सुखदायक और (सदः) दुःखों का नाश करने वाला है उस को (आसीद) अच्छी प्रकार प्राप्त करती है तथा जो [(नाम्ना)] (ध्रुवा) स्थिर सुखों वा (घृताची) आयु के निमित्त की देने वाली विद्या (असि) होती है (सा) वह अच्छी प्रकार उत्तम कार्यों में युक्त

की हुई (प्रियेण) प्रीति उत्पन्न करने वाले [धाम्ना] स्थिरता के निमित्त से (इदम्) इस (प्रियम्) आनन्द कराने वाले जीवन वा (सदः) वस्तुओं को (आसीद) प्राप्त करता है। जिस क्रिया करके (प्रियेण) प्रसन्नता के करने हारे (धाम्ना) हृदय से (प्रियम्) प्रसन्नता करने वाला (सदः) ज्ञान (आसीद) अच्छी प्रकार प्राप्त होता है (सा) वह विज्ञानरीति सब को नित्य सिद्ध करनी चाहिये। हे (विष्णो) व्यापकेश्वर! जैसे जो-जो (ऋतस्य योनौ) शुद्ध यज्ञ में (ध्रुवा) स्थिर वस्तु (असदन्) हो सके वैसे ही उनकी निरन्तर (पाहि) रक्षा कीजिये तथा कृपा कर के [(यज्ञं)] यज्ञ की (पाहि) रक्षा कीजिये (यज्ञन्यम्) यज्ञ प्राप्त करने (यज्ञपतिम्) यज्ञ को पालन करने हारे यजमान की (पाहि) रक्षा करो और यज्ञ को प्रकाशित करने वाले (माम्) मुझे (च) भी (पाहि) पालिये ॥६॥

भावार्थः—जो यज्ञ पूर्वोक्त मन्त्र में वसु, रुद्र और आदित्य से सिद्ध होने के लिये कहा है वह वायु और जल की शुद्धि के द्वारा सब स्थान और सब वस्तुओं को प्रीति कराने हारे उत्तम सुख को बढ़ाने वाले कर देता है सब मनुष्यों को उनकी वृद्धि वा रक्षा के लिये व्यापक ईश्वर की प्रार्थना और सदा अच्छी प्रकार पुरुषार्थ करना चाहिये ॥६॥

अग्ने वाजजिदित्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता। बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर वह यज्ञ कैसा है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है॥

अग्ने वाजजिद् वाजन्त्वा सरिष्यन्तं वाजजितꣳ सम्मार्ज्मि नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यः सुयमे मे भूयास्तम् ॥७॥

पदार्थः—जिस से यह (अग्ने) अग्नि (वाजजित्) अर्थात् जो उत्कृष्ट अन्न को प्राप्त कराने वाला होके सब पदार्थों को शुद्ध करता है इस से मैं (त्वा) उस (वाजम्) वेग वाले (सरिष्यन्तम्) सब पदार्थों को अन्तरिक्ष में पहुँचाने और (वाजजितम्) [वाज] अर्थात् युद्ध को जिताने वाले भौतिक अग्नि को (सम्मार्ज्मि) अच्छी प्रकार शुद्ध करता हूँ यज्ञ में युक्त किये हुए जिस अग्नि से (देवेभ्यः) सुखकारक पूर्वोक्त वसु आदि से सुख के लिये (नमः) अत्यन्त मधुर श्रेष्ठ जल तथा (पितृभ्यः) पालन के हेतु जो वसन्त आदि ऋतु हैं उनसे जो आरोग्य के लिये (स्वधा) अमृतात्मक अन्न किये जाते हैं वे (सुयमे) बल वा पराक्रम के देने वाले उस यज्ञ से (मे) मेरे लिये (भूयास्तम्) होवें ॥७॥

भावार्थः – ईश्वर उपदेश करता है कि प्रथम मन्त्र में कहे हुए यज्ञ का मुख्य साधन अग्नि होता है। क्योंकि जैसे प्रत्यक्ष में भी उसकी लपट

देखने में आती है वैसे अग्नि का ऊपर ही को चलने जलने का स्वभाव है तथा सब पदार्थों के छिन्न-भिन्न करने का भी उसका स्वभाव है और यान वा अस्त्र-शस्त्रों में अच्छी प्रकार युक्त किया हुआ शीघ्र गमन वा विजय का हेतु होकर वसन्त आदि ऋतुओं से उत्तम-उत्तम पदार्थों का सम्पादन करके अन्न और जल को शुद्ध वा सुख देने वाले कर देता है ऐसा जानना चाहिये ॥७॥

अस्कन्नमद्येत्यस्य ऋषिः स एव । विष्णुर्देवता । विराड् पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त यज्ञ कैसा होकर क्या करता है सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है ॥

अस्कन्नमद्य देवेभ्य आज्यꣳ संभ्रियासमंघ्रिणा विष्णो मा त्वावक्रमिषं वसुमतीमग्ने ते छायामुपस्थेषं विष्णो स्थानमसीतऽइन्द्रो वीर्य्यमकृणोदूर्ध्वोऽध्वरऽआस्थात् ॥८॥

पदार्थः—मैं (देवेभ्यः) उत्तम सुखों की प्राप्ति के लिये जो (अस्कन्नम्) निश्चलसुखदायक (आज्यम्) घृत आदि उत्तम-उत्तम पदार्थ है उसको (अंघ्रिणा) पदार्थ पहुंचाने वाले अग्नि से (अद्य) आज (संभ्रियासम्) धारण करूं और (त्वा) उसका मैं (मावक्रमिषम्) कभी उल्लंघन न करूं । तथा हे अग्ने जगदीश्वर ! (ते) आप के (वसुमतीम्) पदार्थ देने वाले (छायाम्) आश्रय को (उपस्थेषम्) प्राप्त होऊं । जो यह (अग्ने) अग्नि (विष्णोः) यज्ञ के (स्थानम्) ठहरने का स्थान (असि) है उस के भी (वसुमतीम्) उत्तम पदार्थ देने वाले (छायाम्) आश्रय को मैं (उपस्थेषम्) प्राप्त होकर यज्ञ को सिद्ध करता हूं तथा जो (ऊर्ध्वः) आकाश और जो (अध्वरः) यज्ञ अग्नि में ठहरने वाला (आ) सब प्रकार से (अस्थात्) ठहरता है उस को (इन्द्रः) सूर्य्य और वायु धारण करके (वीर्य्यम्) कर्म अथवा पराक्रम को (अकृणोत्) करते हैं ॥८॥

भावार्थः—ईश्वर उपदेश करता है कि जिस पूर्वोक्त यज्ञ से जल और वायु शुद्ध होकर बहुत सा अन्न उत्पन्न करने वाले होते हैं उसको सिद्ध करने के लिये मनुष्यों को बहुत-सी सामग्री जोड़नी चाहिये । जैसे मैं सर्वत्र व्यापक हूँ मेरी आज्ञा कभी उल्लंघन नहीं करनी चाहिये किन्तु जो असंख्यात सुखों का देने वाला मेरा आश्रय है उसको सदा ग्रहण करके अग्नि में जो हवन किया जाता है तथा जिसको सूर्य्य अपनी किरणों से खेंच कर वायु के योग से ऊपर मेघमण्डल में स्थापन करता है और फिर वह उस को

वहाँ से मेघ द्वारा गिरा देता है और जिससे पृथिवी पर बड़ा सुख उत्पन्न होता है उस यज्ञ का अनुष्ठान सब मनुष्यों को सदा करना योग्य है ।।८।।

अग्ने वेरित्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ।।

फिर उस यज्ञ से क्या लाभ होता है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ।।

अग्ने वेर्होत्रं वेर्दूत्यमवतान्त्वान्द्यावापृथिवीऽअव त्वं द्यावापृथिवी स्विष्टकृद्देवेभ्यऽइन्द्रऽआज्ज्येन हविषा भूत्स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः ।। ९ ।।

पदार्थः—हे (अग्ने) परमेश्वर ! जो (द्यावापृथिवी) प्रकाशमय सूर्य्यलोक और पृथिवी यज्ञ की (अवताम्) रक्षा करते हैं उनकी (त्वम्) आप (वेः) रक्षा करो तथा जैसे यह भौतिक अग्नि (होत्रम्) यज्ञ और (दूत्यम्) दूत कर्म को प्राप्त होकर (द्यावापृथिवी) प्रकाशमय सूर्य्यलोक और पृथिवी की रक्षा करता है, वैसे हे भगवन् ! (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (स्विष्टकृत्) उनकी इच्छानुकूल अच्छे-अच्छे कार्य्यों के करने वाले आप हम लोगों की (अव) रक्षा कीजिये जो यह (आज्येन) यज्ञ के निमित्त अग्नि में छोड़ने योग्य घृत आदि उत्तम-उत्तम पदार्थ (हविषा) संस्कृत अर्थात् अच्छी प्रकार शुद्ध किये हुए होम के योग्य कस्तूरी केसर आदि पदार्थ वा (ज्योतिषा) प्रकाश युक्त लोकों के साथ (ज्योतिः) प्रकाशमय किरणों से (स्विष्टकृत्) अच्छे-अच्छे वांछित कार्य्य सिद्ध कराने वाला (इन्द्रः) सूर्य्यलोक भी (द्यावापृथिवी) हमारे न्याय वा पृथिवी के राज्य की रक्षा करने वाला (अभूत्) होता है वैसे आप (ज्योतिः) विज्ञानरूप ज्योति के दान से हम लोगों की (अव) रक्षा कीजिये इस कर्म को (स्वाहा) वेदवाणी कहती है ।।९।।

भावार्थः—ईश्वर ने मनुष्यों के लिये वेदों में उपदेश किया है कि जो-जो अग्नि पृथिवी सूर्य्य और वायु आदि पदार्थों के निमित्तों को जान के होम और दूतसम्बन्धी कर्म का अनुष्ठान करना योग्य है सो-सो उनके लिये वांछित सुख के देने वाले होते हैं। अष्टम मन्त्र से कहे हुए यह साधन का फल नवमे मन्त्र से प्रकाशित किया है ।।९।।

मयीदमित्यस्य ऋषिः स एव । इन्द्रो देवता । भुरिग्ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।।

अब अगले मन्त्र में उक्त यज्ञ से उत्पन्न होने वाले फल का उपदेश किया है ।।

मयीदमिन्द्रऽइन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् । अस्माकꣳ सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिषऽउपहूता पृथिवी मातोप मां पृथिवी माता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात् स्वाहा ॥१०॥

पदार्थः—(इन्द्रः) परमेश्वर (मयि) मुझ में (इदम्) प्रत्यक्ष (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य की प्राप्ति के चिह्न तथा परमेश्वर ने जो अपने ज्ञान से देखा वा प्रकाशित किया है और सब सुखों को सिद्ध कराने वाले जो विद्वानों को दिया है जिस को वे इन्द्र अर्थात् विद्वान् लोग प्रीतिपूर्वक सेवन करते हैं उन्हें तथा (रायः) विद्या सुवर्ण वा चक्रवर्त्ति राज्य आदि धनों को (दधातु) नित्य स्थापन करे और उसकी कृपा से तथा हमारे पुरुषार्थ से (मघवानः) जिन में कि बहुत धन राज्य आदि पदार्थ विद्यमान हैं जिन करके हम लोग पूर्ण ऐश्वर्य्ययुक्त हों वैसे धन (नः) हम विद्वान् धर्मात्मा लोगों को (सचन्ताम्) प्राप्त हों तथा इसी प्रकार (अस्माकम्) हम परोपकार करने वाले धर्मात्माओं की (आशिषः) कामना (सत्याः) सिद्ध (सन्तु) हों और ऐसे ही (नः) हमारी (आशिषः) न्यायपूर्वक इच्छायुक्त जो क्रिया हैं वे भी (सत्याः) सिद्ध (सन्तु) हों तथा इसी प्रकार (माता) धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि से मान्य करनेहारी विद्या और (पृथिवी) बहुत सुख देने वाली भूमि है (उपहूता) जिसको राज्य आदि सुख के लिये मनुष्य क्रम से प्राप्त होते हैं वह (माम्) सुख की इच्छा करने वाले मुझको (उपह्वयताम्) अच्छी प्रकार उपदेश करती है तथा मेरा अनुष्ठान किया हुआ यह (अग्निः) जिस भौतिक अग्नि को कि (आग्नीध्रात्) इन्धनादि से प्रज्वलित करते हैं वह वांछित सुखों का करने वाला होकर (नः) हमारे सुखों का आगमन करावे क्योंकि ऐसे ही अच्छी प्रकार होम को प्राप्त होके चाहे हुए कार्यों को सिद्ध करनेहारा होता है (स्वाहा) सब मनुष्यों के करने के लिये वेदवाणी इस कर्म को कहती है ॥१०॥

भावार्थः—जो मनुष्य पुरुषार्थी परोपकारी ईश्वर के उपासक हैं वे ही श्रेष्ठ ज्ञान, उत्तम धन और सत्य कामनाओं को प्राप्त होते हैं और नहीं। जो सब को मान्य देने के कारण इस मन्त्र में पृथिवी शब्द से भूमि और विद्या का प्रकाश किया है सो ये सब मनुष्यों को उपकार में लाने के योग्य हैं। ईश्वर ने इस वेदमन्त्र से यही प्रकाशित किया है तथा जो नवम मन्त्र से अग्नि आदि पदार्थों से इच्छित सुख की प्राप्ति कही है वही बात दशम मन्त्र से प्रकाशित की है ॥१०॥

उपहूतेत्यस्य ऋषिः स एव। द्यावापृथिवी देवते। ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी अगले मन्त्र में उक्त अर्थ को दृढ़ किया है ॥

उप॑हूतो द्यौष्पितोप॒ मां द्यौष्पिता ह्व॑यताम॒ग्निरा॒ग्नीध्रा॒त् स्वाहा॑ । दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् । प्रति॑ गृह्णाम्य॒ग्नेष्ट्वा॒स्ये॒न॒ प्राश्ना॑मि ॥११॥

पदार्थः—मुझ से जो (द्यौः) प्रकाशमय (पिता) सर्वपालक ईश्वर (उपहूतः) प्रार्थना किया हुआ (माम्) सुख भोगने वाले मुझ को (उपह्वयताम्) अच्छी प्रकार स्वीकार करे इसी प्रकार जो (द्यौः) प्रकाशवान् (पिता) सब उत्तम क्रियाओं के पालने का हेतु सूर्य्यलोक मुझ से (उपहूतः) क्रियाओं में प्रयुक्त किया हुआ (माम्) सब सुख भोगने वाले मुझ को विद्या के लिये (उपह्वयताम्) युक्त करता है तथा जो (अग्निः) जाठराग्नि (स्वाहा) अच्छे भोजन किये हुए अन्न को (आग्नीध्रात्) उदर में अन्न के कोठे में पचा देता है उस से मैं (देवस्य) हर्ष देने (सवितुः) और सब के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर के उत्पन्न किये हुए (प्रसवे) संसार में विद्यमान और (त्वा) उस उक्त भोग को (अश्विनोः) प्राण और अपान के (बाहुभ्याम्) आकर्षण और धारण गुणों से तथा (पूष्णः) पुष्टि के हेतु समान वायु के (हस्ताभ्याम्) शोधन वा शरीर के अङ्ग-अङ्ग में पहुंचाने के गुण से (प्रतिगृह्णामि) अच्छी प्रकार ग्रहण करता हूं। ग्रहण करके (अग्नेः) प्रज्वलित अग्नि के बीच में पकाकर (त्वा) उस भोजन करने योग्य अन्न को (आस्येन) अपने मुख से (प्राश्नामि) भोजन करता हूं ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को अपने आत्मा की शुद्धि के लिये अनन्त विद्या के प्रकाश करने वाले परमेश्वर पिता का आह्वान अर्थात् अच्छी प्रकार नित्य सेवन करना चाहिये तथा विद्या की सिद्धि के लिये उदर की अग्नि को दीप्त कर और नेत्रों से अच्छी प्रकार देख के संस्कार किये हुए प्रमाणयुक्त अन्न का नित्य भोजन करना चाहिये। सब भोग इस संसार में जो कि ईश्वर के उत्पन्न किये पदार्थ हैं उन से सिद्ध होते हैं। वह भोग विद्या और धर्मयुक्त व्यवहार से भोगना चाहिये और वैसे ही औरों को वर्त्तना चाहिये। जो पूर्व मन्त्र से पृथिवी में विद्या से प्राप्त होने वा मान्य के कराने वाले पदार्थ कहे हैं उन का भोग धर्म वा युक्ति के साथ सब मनुष्यों को करना चाहिये। ऐसा इस मन्त्र में प्रतिपादन किया है ॥११॥

एतन्त इत्यस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

किस प्रयोजन के लिये और किस ने यह विद्या का प्रबन्ध प्रकाशित किया है सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है ।।

एतं ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे । तेन यज्ञमव तेन यज्ञपतिं तेन मामव ।। १२ ।।

पदार्थः – हे (देव) दिव्य सुख वा उत्तम गुण देने तथा (सवितः) सब ऐश्वर्य का विधान करने वाले जगदीश्वर ! वेद और विद्वान् आप के प्रकाशित किये हुए (एतम्) इस पूर्वोक्त यज्ञ को (प्राहुः) अच्छी प्रकार कहते हैं कि जिस से (बृहस्पतये) बड़ों में बड़ी जो वेदवाणी है उसके पालन करने वाले (ब्रह्मणे) चारों वेदों के पढ़ने से ब्रह्मा की पदवी को प्राप्त हुए विद्वान् के लिये सुख और श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त होते हैं । इस (यज्ञम्) यज्ञ सम्बन्धी धर्म से (यज्ञपतिम्) यज्ञ को करने वा सब प्राणियों को सुख देने वाले विद्वान् और उस विद्या वा धर्म के प्रकाश से (मा) मेरी भी (अव) रक्षा कीजिये ।।१२।।

भावार्थः— ईश्वर ने सृष्टि के आदि में दिव्यगुण वाले अग्नि, वायु, रवि और अङ्गिरा ऋषियों के द्वारा चारों वेदों के उपदेश से सब मनुष्यों के लिये विद्या प्राप्ति के साथ यज्ञ के अनुष्ठान की विधि का उपदेश किया है जिससे सब की रक्षा होती है क्योंकि विद्या और शुद्धि क्रिया के विना किसी को सुख वा सुख की रक्षा प्राप्त नहीं हो सकती इसलिये हम सब को उचित है कि परस्पर प्रीति के साथ अपनी वृद्धि और रक्षा यत्न से करनी चाहिये । जो ग्यारहवें मन्त्र से यज्ञ का फल कहा है उसका प्रकाश परमेश्वर ही ने किया है ऐसा इस मन्त्र से विधान है ।।१२।।

मनोजूतिरित्यस्य ऋषिः स एव । बृहस्पतिर्देवता । विराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ।।

जिस से यज्ञ किया जा सकता है सो विषय अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ।।

मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳ समिमं दधातु । विश्वे देवास ऽइह मादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ ।।१३।।

पदार्थः—(जूतिः) अपने वेग से सब जगह जाने वाला (मनः) विचारवान् ज्ञान का साधन मेरा मन (आज्यस्य) यज्ञ की सामग्री का (जुषताम्) सेवन करे (बृहस्पतिः) बड़े-बड़े जो प्रकृति और आकाश आदि पदार्थ हैं उनका जो पति अर्थात् पालन करने हारा ईश्वर है वह (इमम्) इस प्रकट और अप्रकट (अरिष्टम्) अहिंसनीय (यज्ञम्) सुखों के भोगरूपी यज्ञ को (तनोतु) विस्तार करे तथा (इमम्) इस

(अरिष्टम्) जो छोड़ने योग्य नहीं (यज्ञम्) जो हमारे अनुष्ठान करने योग्य विज्ञान की प्राप्तिरूप यज्ञ है इस को (संदधातु) अच्छी प्रकार धारण करावे। हे (विश्वेदेवासः) सकल विद्वान् लोगो! तुम इन पालन करने योग्य दो यज्ञों का धारण वा विस्तार करके (इह) इस संसार वा अपने मन में (मादयन्ताम्) आनन्दित होओ। हे (ओ३म्) ओंकार के अर्थ जगदीश्वर! आप (बृहस्पतिः) प्रकृत्यादि के पालन करने हारे (इह) इस संसार वा विद्वानों के हृदय में (प्रतिष्ठ) कृपा करके इस यज्ञ वा वेदविद्यादि को स्थापन कीजिये ॥१३॥

भावार्थः— ईश्वर आज्ञा देता है कि हे मनुष्यो! तुम्हारा मन अच्छे ही कामों में प्रवृत्त हो तथा मैंने जो संसार में यज्ञ करने की आज्ञा दी है उसका उक्त प्रकार से यथावत् अनुष्ठान करके सुखी हो तथा औरों को भी सुखी करो। (ओम्) यह परमेश्वर का नाम है जैसे पिता और पुत्र का प्रिय सम्वन्ध है वैसे ही परमेश्वर के साथ (ओम्) ओंकार का सम्वन्ध है तथा अच्छे कामों के विना किसी की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती इसलिये सव मनुष्यों को सर्वथा अधर्म छोड़कर धर्म कामों का ही सेवन करना योग्य है जिससे संसार में निश्चय करके अविद्यारूपी अन्धकार निवृत्त होकर विद्यारूपी सूर्य्य प्रकाशित हो। वारहवें मन्त्र से जिस यज्ञ का प्रकाश किया था उसके अनुष्ठान से सव मनुष्यों की प्रतिष्ठा वा सुख होते हैं यह इस में प्रकाशित किया है ॥१३॥

एषा ते इत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता सर्वस्य। पूर्वोऽनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। अग्ने वाजजिदित्यत्र निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

यज्ञ में अग्नि से कैसे उपकार लेना चाहिये सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है ॥

एषा तेऽअग्ने समित्तया वर्धस्व चा च प्यायस्व। वर्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि। अग्ने वाजजिद्वाजं त्वा ससृवाꣳसं वाजजितꣳ सम्मार्ज्मि ॥१४॥

पदार्थः— हे (अग्ने) परमेश्वर! (ते) आपकी जो (एषा) यह (समित्) अच्छी प्रकार पदार्थों के गुणों की प्रकाश करने वाली वेदविद्या है (तया) उससे हम लोगों की की हुई स्तुति को प्राप्त होकर आप नित्य (वर्धस्व) हमारे ज्ञान में वृद्धि को प्राप्त हूजिये (च) और उस वेदविद्या से हम लोगों की भी नित्य वृद्धि कीजिये। इसी प्रकार हे भगवन्! आपके गुणों को जाननेहारे हम लोगों से (च) भी प्रकाशित होकर आप (आप्यायस्व) हमारे आत्माओं में वृद्धि को प्राप्त हूजिये। इसी प्रकार हम को भी वढ़ाइये। हे भगवन्! (अग्ने) विज्ञानस्वरूप विजय देने और (वाजजित्) सब

के वेग को जीतने वाले परमेश्वर ! हम लोग (वाजम्) जो कि ज्ञानस्वरूप (ससृवांसम्) अर्थात् सब को जानने वाले (त्वा) आपकी (वर्धिषीमहि) स्तुतियों से वृद्धि तथा प्राप्ति करें (च) और आप कृपा करके हम को भी सब के वेग को जीतने तथा ज्ञानवान् अर्थात् सब के मन के व्यवहारों को जानने वाले कीजिये और जैसे हम लोग आपकी (आप्यासिषीमहि) अधिक-अधिक स्तुति करें वैसे ही आप भी हम लोगों को सब उत्तम-उत्तम गुण और सुखों से (आप्यायस्व) वृद्धियुक्त कीजिये। हम आपके आश्रय को प्राप्त होकर तथा आपकी आज्ञा के पालने से (सम्मार्ज्मि) अच्छी प्रकार शुद्ध होते हैं ॥१॥ जो (एषा) यह (अग्ने) भौतिक अग्नि है (ते) उसकी (समित्) बढ़ाने अर्थात् अच्छी प्रकार प्रदीप्त करने वाली लकड़ियों का समूह है (तया) उससे यह अग्नि (वर्धस्व) बढ़ता और (आप्यायस्व) परिपूर्ण भी होता है। हम लोग (त्वा) उस (वाजम्) वेग और (ससृवांसम्) शिल्पविद्या के गुणों को देने तथा (वाजजितम्) संग्राम के जिताने के साधन अग्नि को विद्या की वृद्धि के लिये (वर्धिषीमहि) बढ़ाते हैं (च) और (आप्यासिषीमहि) कलाओं में परिपूर्ण भी करते हैं जिससे यह शिल्पविद्या से सिद्ध किये हुए विमान आदि यानों तथा वेग वाले शिल्पविद्या के गुणों की प्राप्ति से संग्राम को जिताने वाले हमको विजय के साथ बढ़ाता है इससे (त्वा) उस अग्नि का हम (संमार्ज्मि) अच्छी प्रकार प्रयोग करते हैं ॥२॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। और एक-एक अर्थ के दो-दो क्रियापद आदर के लिये जानने चाहियें। जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा के पालने और क्रिया की कुशलता में उन्नति को प्राप्त होते हैं वे, विद्या और सुख में सब को आनन्दित कर और दुष्ट शत्रुओं को जीतकर शुद्ध होके सुखी होते हैं। जो आलस्य करने वाले हैं वे ऐसे कभी नहीं हो सकते और चार चकारों से ईश्वर की धर्मयुक्त आज्ञा सूक्ष्म वा स्थूलता से अनेक प्रकार की और क्रियाकाण्ड में करने योग्य कार्य्य भी अनेक प्रकार के हैं—ऐसा समझना चाहिये। जो तेरहवें मन्त्र में वेदविद्या कही है उस से सुख के लिये यज्ञ का सन्धान तथा पुरुषार्थ करना चाहिये ऐसा इस मन्त्र में प्रतिपादन किया है ॥१४॥

अग्नीषोमयोरिति सर्वस्य ऋषिः स एव। अग्नीषोमौ देवते। पूर्वार्द्धे ब्राह्मीबृहतीछन्दः। मध्यमः स्वरः। उत्तरार्द्धे इन्द्राग्नी देवते। अतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अब उस यज्ञ से क्या-क्या दूर करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है॥

अग्नीषोमयोरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि । अग्नीषोमौ तमपनुदतां योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि । इन्द्राग्न्योरुज्जितिमनूज्जेष वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि । इन्द्राग्नी तमपनुदतां योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि ॥१५॥

पदार्थः--मैं (अग्नीषोमयोः) प्रसिद्ध भौतिक अग्नि और चन्द्रलोक के (उज्जितिम्) दुःख से सहने योग्य शत्रुओं को (अनूज्जेषम्) यथाक्रम से जीतूं और (वाजस्य) युद्ध के (प्रसवेन) उत्पादन से विजय करने वाले (मा) अपने आप को (प्रोहामि) अच्छी प्रकार शुद्ध तर्कों से युक्त करूं । जो मुझ से अच्छी प्रकार विद्या से क्रिया-कुशलता में युक्त किये हुए (अग्नीषोमौ) उक्त अग्नि और चन्द्रलोक हैं वे (यः) जो कि अन्याय में वर्त्तने वाला दुष्ट मनुष्य (अस्मान्) न्याय करने वाले हम लोगों को (द्वेष्टि) शत्रुभाव से वर्त्तता है (यं च) और जिस अन्याय करने वाले से (वयम्) न्यायाधीश हम लोग (द्विष्मः) विरोध करते हैं (तम्) उस शत्रु वा रोग को (अपनुदताम्) दूर करते हैं और मैं भी (एनम्) इस दुष्ट शत्रु को (वाजस्य) यान वेगादि गुणों से युक्त सेना वाले संग्राम की (प्रसवेन) अच्छे प्रकार प्रेरणा से (अपोहामि) दूर करता हूं मैं (इन्द्राग्न्योः) वायु और विद्युत्रूप अग्नि की (उज्जितिम्) विद्या से अच्छी प्रकार उत्कर्ष को (अनूज्जेषम्) अनुक्रम से प्राप्त होऊं और मैं (वाजस्य) ज्ञान की प्रेरणा के द्वारा वेग की प्राप्ति के (प्रसवेन) ऐश्वर्य्य के अर्थ उत्पादन से वायु और बिजुली की विद्या के जानने वाले (माम्) अपने आप को नित्य (प्रोहामि) अच्छे प्रकार तर्कों से सुखों को प्राप्त होता हूँ और मुझ से जो अच्छे प्रकार सिद्ध किये हुए (इन्द्राग्नी) वायु और विद्युत् अग्नि हैं—वह (यः) जो मूर्ख मनुष्य (अस्मान्) हम विद्वान् लोगों से (द्वेष्टि) अप्रीति से वर्त्तता है (च) और (यम्) जिस मूर्ख से (वयम्) हम विद्वान् लोग (द्विष्मः) अप्रीति से वर्त्तते हैं (तम्) उस वैर करने वाले मूढ़ को (अपनुदताम्) दूर करते हैं तथा मैं भी (एनम्) इसे (वाजस्य) विज्ञान के (प्रसवेन) प्रकाश से (अपोहामि) अच्छी-अच्छी शिक्षा दे कर शुद्ध करता हूं ॥१५॥

भावार्थः—ईश्वर उपदेश करता है कि सब मनुष्यों को विद्या और युक्तियों से अग्नि और जल के मेल से कलाओं की कुशलता करके वेगादि गुणों के प्रकाश से तथा वायु और विद्युत् अग्नि की विद्या से सब दरिद्रता के विनाश और शत्रुओं के पराजय से श्रेष्ठ शिक्षा देकर अज्ञान को दूर कर

और उन मूढ़ मनुष्यों को विद्वान् करके अनेक प्रकार के सुख इस संसार में सिद्ध करने योग्य और औरों को सिद्ध कराने के योग्य हैं। इस प्रकार अच्छे प्रयत्न से सब पदार्थविद्या संसार में प्रकाशित करनी योग्य है। पूर्व मन्त्र में जो कार्य प्रकाश किया उसकी पुष्टि इस मन्त्र से की है ॥१५॥

वसुभ्यस्त्वेति सर्वस्य ऋषिः स एव। पूर्वार्द्धे द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ च देवताः। निचृदार्ची पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः। व्यन्तुवय इत्यारभ्यान्त्यपर्य्यन्तस्याग्निर्देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

उक्त यज्ञ से क्या होता है सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वादित्येभ्यस्त्वा संजानाथां द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम्। व्यन्तु वयोक्तꣳ रिहाणा मरुतां पृषतीर्गच्छ वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमावह। चक्षुष्पाऽअग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि ॥१६॥

पदार्थः—हम लोग (वसुभ्यः) अग्नि आदि आठ वसुओं से (त्वा) उस यज्ञ को तथा (रुद्रेभ्यः) पूर्वोक्त एकादश रुद्रों से (त्वा) पूर्वोक्त यज्ञ को और (आदित्येभ्यः) बारह महीनों से (त्वा) उस क्रियासमूह को नित्य उत्तम तर्कों से जानें और यज्ञ से ये (द्यावापृथिवी) सूर्य्य का प्रकाश और भूमि (संजानाथाम्) जो उन से शिल्पविद्या उत्पन्न हो सके उनके सिद्ध करने वाले हों और (मित्रावरुणौ) जो सब जीवों का बाहिर का प्राण और जीवों के शरीर में रहने वाला उदानवायु है वे (वृष्ट्या) शुद्ध जल की वर्षा से (त्वा) जो संसार सूर्य्य के प्रकाश और भूमि में स्थित है उसकी (अवताम्) रक्षा करते हैं (वयः) जैसे पक्षी अपने-अपने ठिकानों को रचते और (व्यन्तु) प्राप्त होते हैं वैसे उन छन्दों से (रिहाणाः) पूजन करने वाले हम लोग (त्वा) उस यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं और जो यज्ञ में हवन की आहुति (पृश्निः) अन्तरिक्ष में स्थिर और (वशा) शोभित (भूत्वा) होकर (मरुताम्) पवनों के संग से (दिवम्) सूर्य्य के प्रकाश को (गच्छ) प्राप्त होती है वह (ततः) वहां से (नः) हम लोगों के सुख के लिये (वृष्टिम्) वर्षा को (आवह) अच्छे प्रकार वर्षाती है उस वर्षा का जल (पृषतीः) नाड़ी और नदियों को प्राप्त होता है। जिस कारण यह अग्नि (चक्षुष्पाः) नेत्रों की रक्षा करने वाला (असि) है इससे (मे) हमारे (चक्षुः) नेत्रों के बाहिरले भीतरले विज्ञान की (पाहि) रक्षा करता है ॥१६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य लोग यज्ञ में जो आहुति देते हैं वह वायु के साथ मेघमण्डल में जाकर सूर्य्य से खिंचे हुए जल

को शुद्ध करती है, फिर वहां से वह जल पृथिवी में आकर ओषधियों को पुष्ट करता है। वह उक्त आहुति वेदमन्त्रों से ही करनी चाहिये क्योंकि उसके फल को जानने में नित्य श्रद्धा उत्पन्न होवे। जो यह अग्नि सूर्य्यरूप होकर सब को प्रकाशित करता है इसी से सब दृष्टिव्यवहार की पालना होती है। ये जो वसु आदि देव कहाते हैं इन से विद्या के उपकारपूर्वक दुष्ट गुण और दुष्ट प्राणियों को नित्य निवारण करना चाहिये, यही सब का पूजन अर्थात् सत्कार है। जो पूर्व मन्त्र में कहा था उसका इससे विशेषता करके प्रकाश किया है ॥१६॥

यं परिधिमित्यस्य ऋषिर्देवलः। अग्निर्देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

उक्त अग्नि कैसा है सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है॥

यं परिधिं पर्य्यधत्थाऽअग्ने देवपणिभिर्गुह्यमानः। तं तऽएतमनु जोषं भराम्येष नेत्वदपचेतयाताऽअग्नेः प्रियं पाथोऽपीतम् ॥१७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) सर्वत्र व्यापक ईश्वर! आप (देवपणिभिः) दिव्य गुण वाले विद्वानों की स्तुतियों से (गुह्यमानः) अच्छी प्रकार अपने गुणों के वर्णन को प्राप्त होते हुए (यम्) उन गुणों के अनुकूल (जोषम्) प्रीति से सेवन के योग्य (परिधिम्) प्रभुता को (पर्य्यधत्थाः) निरन्तर धारण करते हैं (तम्) आप की उसको (इत्) ही (एषः) मैं (अनुभरामि) अपने हृदय में धारण करता हूं तथा मैं (त्वत्) आप से (मा) (अपचेतयातै) कभी प्रतिकूल न होऊं और (अग्ने) हे जगदीश्वर! आपकी सृष्टि में जो मैंने (प्रियम्) प्रीति बढ़ाने और (पाथः) शरीर की रक्षा करने वाला अन्न (अपीतम्) पाया है उससे भी कभी (मा) (अपचेतयातै) प्रतिकूल न होऊं ॥१॥ हे जगदीश्वर! (ते) आपकी सृष्टि में (एषः) यह (अग्ने) भौतिक अग्नि (देवपणिभिः) दिव्य गुण वाले पृथिव्यादि पदार्थों के व्यवहारों से (गुह्यमानः) अच्छी प्रकार स्वीकार किया हुआ (यम्) जिस (परिधिम्) विद्यादि गुणों से धारण (जोषम्) और प्रीति करने योग्य कर्म्म को (पर्य्यधत्थाः) सब प्रकार से धारण करता है (तमित्) उसी को मैं (अनुभरामि) उसके पीछे स्वीकार करता हूं और उससे कभी (मा) (अपचेतयातै) प्रतिकूल नहीं होता हूं तथा मैंने जो (अग्नेः) इस अग्नि के सम्बन्ध से (प्रियम्) प्रीति देने और (पाथः) शरीर की रक्षा करने वाला अन्न (अपीतम्) ग्रहण किया है उसको मैं (जोषम्) अत्यन्त प्रीति के साथ नित्य (अनुभरामि) क्रम से पाता हूं ॥२॥ १७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। पहिले अन्वय में अग्निशब्द

से जगदीश्वर का ग्रहण और दूसरे में भौतिक अग्नि का है। जो प्रति वस्तु में व्यापक होने से सब पदार्थों का धारण करने वाला और विद्वानों के स्तुति करने योग्य ईश्वर है उसकी सब मनुष्यों को प्रीति के साथ नित्य सेवा करनी चाहिये। जो मनुष्य उसकी आज्ञा नित्य पालते हैं वे प्रिय सुख को प्राप्त होते हैं तथा जो यह ईश्वर ने प्रकाश दाह और वेग आदि गुण वाला मूर्तिमान् पदार्थों को प्राप्त होने वाला अग्नि रचा है उस से भी मनुष्यों को क्रिया की कुशलता के द्वारा उत्तम-उत्तम व्यवहार सिद्ध करने चाहियें जिस से कि उत्तम-उत्तम सुख सिद्ध होवें। जो पूर्व मन्त्र से वृष्टि आदि पदार्थों का साधक कहा है उसका इस मन्त्र से व्यापकत्व प्रकाश किया है ॥१७॥

संस्रवेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। स्वराट्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

वह यज्ञ कैसे और किस प्रयोजन के लिये करना चाहिये सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है॥

सँस्रवभागा स्थेषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाश्च देवाः। इमां वाचमभि विश्वे गृणन्तऽआसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वँ स्वाहा वाट् ॥१८॥

पदार्थः— हे (बृहन्तः) वृद्धि को प्राप्त होने (प्रस्तरेष्ठाः) उत्तम न्याय विद्यारूपी आसन में स्थित होने वाले (परिधेयाः) सब प्रकार से धारणावती बुद्धियुक्त (च) और (इमाम्) इस प्रत्यक्ष (वाचम्) चारों वेदों की वाणी का उपदेश करने वाले (देवाः) विद्वानो! तुम (इषा) अपने ज्ञान से (संस्रवभागाः) घृतादि पदार्थों के होम में छोड़ने वाले (स्थ) होओ तथा (स्वाहा) अच्छे-अच्छे वचनों से (वाट्) प्राप्त होने और सुख बढ़ाने वाली क्रिया को प्राप्त होकर (अस्मिन्) प्रत्यक्ष (बर्हिषि) ज्ञान और कर्मकाण्ड में (मादयध्वम्) आनन्दित होओ वैसे ही औरों को भी आनन्दित करो। इस प्रकार उक्त ज्ञान को कर्मकाण्ड में उक्त वेदवाणी की प्रशंसा करते हुए तुम लोग अपने विचार से उत्तम ज्ञान को प्राप्त होने वाली क्रिया को प्राप्त होकर (बृहन्तः) बढ़ने और (प्रस्तरेष्ठाः) उत्तम कामों में स्थित होने वाले (विश्वे) सब (देवाः) उत्तम-उत्तम पदार्थ (परिधेयाः) धारण करो वा औरों को धारण कराओ और उनकी सहायता से उक्त ज्ञान वा कर्मकाण्ड में सदा (मादयध्वम्) हर्षित होओ ॥१८॥

भावार्थः – ईश्वर आज्ञा देता है कि जो धार्मिक पुरुषार्थी वेदविद्या के प्रचार वा उत्तम व्यवहार में वर्त्तमान हैं उन्हीं को बड़े-बड़े सुख होते हैं।

जो पूर्व मन्त्र में ईश्वर और भौतिक अर्थ कहे हैं उनसे ऐसे-ऐसे उपकार लेना चाहिये सो इस मन्त्र में कहा है ॥१८॥

घृताचीस्थ इत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निवायू देवते। भुरिक् पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अब उक्त यज्ञ से क्या होता है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है॥

घृताची स्थो धुर्यौ पात९सुम्ने स्थः सुम्ने मा धत्तम्। यज्ञ नमश्च तऽउप च यज्ञस्य शिवे सन्तिष्ठस्व स्विष्टे मे संतिष्ठस्व ॥१९॥

पदार्थः—जो अग्नि और वायु (धुर्य्यौ) यज्ञ के मुख्य अङ्ग को प्राप्त कराने वाले (च) और (सुम्ने) सुखरूप (स्थः) हैं तथा (घृताची) जल को प्राप्त कराने वाली क्रियाओं को कराने हारे (स्थः) है और सब जगत् को (पातम्) पालते हैं वे मुझ से अच्छी प्रकार उत्तम-उत्तम क्रिया-कुशलता में युक्त हुए (मा) मुझे, यज्ञ करने वाले को (सुम्ने) सुख में (धत्तम्) स्थापन करते हैं जैसे यह (यज्ञ) जगदीश्वर (च) और (नमः) नम्र होना (ते) तेरे लिये (शिवे) कल्याण में (उपसंतिष्ठस्व) समीप स्थित होते हैं, वे वैसे ही (मे) मेरे लिये भी स्थित होते हैं इस कारण जैसे मैं यज्ञ का अनुष्ठान करके (सुम्ने) सुख में स्थित होता हूं वैसे तुम भी उस में (संतिष्ठस्व) स्थित होओ ॥१९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। ईश्वर कहता है कि हे मनुष्यो! रस के परमाणु करने, जगत् के पालन के निमित्त सुख करने, क्रियाकाण्ड के हेतु और ऊपर को तथा टेढ़े वा सूधे जाने वाले अग्नि वायु के गुणों से कार्य्यों को सिद्ध करो। इस से तुम लोग सुखों में अच्छी प्रकार स्थिर हो तथा मेरी आज्ञा पालो और मुझ को ही वार-वार नमस्कार करो ॥१९॥

अग्नेऽदब्धायो इत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निसरस्वत्यौ देवते। भुरिग्ब्राह्मी-त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

उक्त अग्नि कैसा और क्यों प्रार्थना करने योग्य है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है॥

अग्नेऽदब्धायोऽशीतम पाहि मा दिद्योः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्ट्यै पाहि दुरद्मन्याऽअविषं नः पितुं कृणु। सुषदा योनौ

स्वाहा वाडग्नयें संवेशपतये स्वाहा सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा ॥२०॥

पदार्थः— हे (अवब्धायो) निर्विघ्न आयु देने वाले (अग्ने) जगदीश्वर ! आप (अशीतमम्) चराचर संसार में व्यापक यज्ञ को (दुरिष्ट्यै) दुष्ट अर्थात् वेदविरुद्ध यज्ञ से (पाहि) रक्षा कीजिये (मा) मुझे (दिद्योः) अति दुःख से (पाहि) बचाइये तथा (प्रसित्यै) भारी-भारी बन्धनों से (पाहि) अलग रखिये (दुरद्मन्यै) जो दुष्ट भोजन करना है उस विपत्ति से (पाहि) बचाइये और (नः) हमारे लिये (अविषम्) विष आदि दोषरहित (पितुम्) अन्नादि पदार्थ (कृणु) उत्पन्न कीजिये तथा (नः) हम लोगों को (सुषदा) सुख से स्थिरता को देने वाले घर में (स्वाहा) (वाट्) वेदोक्त वाक्यों से सिद्ध होने वाली उत्तम क्रियाओं में स्थिर (कृणु) कीजिये, जिस से हम लोग (यशोभगिन्यै) सत्यवचन आदि उत्तम कर्मों की सेवन करने वाली (सरस्वत्यै) पदार्थों के प्रकाशित कराने में उत्तम ज्ञानयुक्त वेदवाणी के लिये (स्वाहा) धन्यवाद वा (संवेशपतये) अच्छी प्रकार जिन पृथिव्यादि लोकों में प्रवेश करते हैं उनके पति अर्थात् पालन करनेहारे जो (अग्नये) आप हैं उनके लिये (स्वाहा) धन्यवाद और (नमः) नमस्कार करते हैं ।।१।। हे भगवन् जगदीश्वर ! आपने जो यह (अवब्धायो) निर्विघ्न आयु का निमित्त (अग्ने) भौतिक अग्नि बनाया है वह भी (अशीतमम्) सर्वत्र व्यापक यज्ञ को (दुरिष्ट्यै) दुष्ट यज्ञ से (पाहि) रक्षा करता है तथा (मा) मुझे (दिद्योः) अति दुःखों से (पाहि) बचाता है (प्रसित्यै) बड़े-बड़े दारिद्र्य के बन्धनों से (पाहि) बचाता है तथा (दुरद्मन्यै) दुष्ट भोजन कराने वाली क्रियाओं से (पाहि) बचाता है और (नः) हमारे (पितुम्) अन्न आदि पदार्थ (अविषम्) विष आदि दोषरहित (कृणु) कर देता है वह (सुषदा) सुख से स्थिति देने वाले घर अथवा दूसरे जन्मों में (स्वाहा) (वाट्) वेदोक्त वाक्यों से सिद्ध होने वाली क्रियाओं का हेतु है हम लोग उस (संवेशपतये) पृथिव्यादि लोकों के पालने वाले (अग्नये) भौतिक अग्नि को ग्रहण करके (स्वाहा) होम तथा उसके साथ (यशोभगिन्यै) (सरस्वत्यै) उक्त गुण वाली वेदवाणी की प्राप्ति के लिये (स्वाहा) परमात्मा का धन्यवाद करते हैं ।।२०।।

भावार्थः इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को जो सर्वव्यापक सब प्रकार से रक्षा करने, उत्तम जन्म देने, उत्तम कर्म कराने और उत्तम विद्या वा उत्तम भोग देने वाला जगदीश्वर है, उसी का सेवन सदा करना योग्य है तथा जो यह अपनी सृष्टि में परमेश्वर ने भौतिक अग्नि प्रत्यक्ष सूर्य्यलोक और विजुली रूप से प्रकाशित किया है वह भी अच्छी प्रकार

विद्या से उपकार लेने में संयुक्त किया हुआ सब प्रकार से रक्षा और उत्तम भोग का हेतु होता है। जिसकी कीर्ति के निमित्त सत्यलक्षणयुक्त वेद-वाणी से उत्तम जन्म अथवा सब पदार्थों से अच्छी-अच्छी विद्या प्रकाशित होती हैं वे सब विद्वानों के स्वीकार करने योग्य तथा औरों को भी स्वीकार कराने योग्य हैं। इस मन्त्र में (नमः) और (यज्ञ) ये दोनों पद पूर्व मन्त्र से लिये हैं ॥२०॥

वेदोऽसीत्यस्य वामदेव ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

सो जगदीश्वर कैसा है सो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वेदोऽसि येन त्वं देव वेद देवेभ्यो वेदोऽभवस्तेन मह्यं वेदो भूयाः। देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित। मनसस्पतऽइमं देव यज्ञꣳ स्वाहा वाते धाः॥२१॥

पदार्थः—हे (देव) शुभ गुणों के देनेहारे जगदीश्वर! (त्वम्) आप (वेदः) चराचर जगत् के जानने वाले (असि) हैं सब जगत् को (वेद) जानते हैं तथा (येन) जिस विज्ञान वा वेद से (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (वेदः) पदार्थों के जानने वाले (अभवः) होते हैं (तेन) उस विज्ञान के प्रकाश से आप (मह्यम्) मेरे लिये जो कि मैं विशेष ज्ञान की इच्छा कर रहा हूं (वेदः) विज्ञान देने वाले (भूयाः) हूजिये। हे (गातुविदः) स्तुति के जानने वाले (देवाः) विद्वानो! जिस वेद से मनुष्य सब विद्याओं को जानते हैं उस से तुम लोग (गातुम्) विशेष ज्ञान को (वित्त्वा) प्राप्त होकर (गातुम्) प्रशंसा करने योग्य वेद को (इत) प्राप्त हो। हे (मनसस्पते) विज्ञान से पालन करने हारे (देव) सर्वजगत्प्रकाशक परमेश्वर आप (इमम्) प्रत्यक्ष अनुष्ठान करने योग्य (यज्ञम्) क्रियाकाण्ड से सिद्ध होने वाले यज्ञरूप संसार को (स्वाहा) क्रिया के अनुकूल (वाते) पवन के बीच (धाः) स्थित कीजिये। हे विद्वानो! उस विज्ञान से विशेष ज्ञान देने वाले परमेश्वर ही की नित्य उपासना करो॥२१॥

भावार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो! तुम लोगों को जिस वेद जानने वाले परमेश्वर ने वेदविद्या प्रकाशित की है उस की उपासना करके उसी वेद-विद्या को जान कर और क्रियाकाण्ड का अनुष्ठान करके सब का हित सम्पादन करना चाहिये क्योंकि वेदों के विज्ञान के विना तथा उसमें जो-जो कहे हुए काम हैं उनके किये विना मनुष्यों को कभी सुख नहीं हो सकता। तुम लोग वेदविद्या से जो सब का साक्षी ईश्वर देव है उस को सब जगह व्यापक मानके नित्य धर्म में रहो॥२१॥

सं बर्हिरित्यस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

यज्ञ में चढ़ा हुआ पदार्थ अन्तरिक्ष में ठहर कर किसके साथ रहता है सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है ।।

सं बर्हिरङ्क्ताᳬं हविषा घृतेन समादित्यैर्वसुभिः सम्मरुद्भिः समिन्द्रो विश्वदेवेभिरङ्क्तां दिव्यं नभो गच्छतु यत् स्वाहा ।।२२।।

पदार्थः - हे मनुष्य ! तुम (यत) जब हवन करने योग्य द्रव्य को (हविषा) होम करने योग्य (घृतेन) घी आदि सुगन्धियुक्त पदार्थ से संयुक्त करके हवन करोगे तब वह (आदित्यैः) बारह महीना (वसुभिः) अग्नि आदि आठों निवास के स्थान और (मरुद्भिः) प्रजा के जनों के साथ मिल के सुख का (समक्ताम्) अच्छी प्रकार प्रकाश करेगा । (इन्द्रः) सूर्य्यलोक जो यज्ञ में छोड़ा हुआ (स्वाहा) उत्तम क्रिया से सुगन्ध्यादि पदार्थयुक्त हवि (संगच्छतु) पहुँचाता है उस से (सम्) अच्छी प्रकार मिश्रित हुए (विश्वदेवेभिः) अपनी किरणों से (दिव्यम्) जो उस के प्रकाश में इकट्ठा होने वाले (नभः) जल को (समक्ताम्) अच्छी प्रकार प्रकट करता है ।।२२।।

भावार्थः—जो हवि अच्छी प्रकार शुद्ध किया हुआ यज्ञ के निमित्त अग्नि में छोड़ा जाता है वह अन्तरिक्ष में वायु जल और सूर्य्य की किरणों के साथ मिल कर इधर उधर फैल कर आकाश में ठहरने वाले सब पदार्थों को दिव्य करके अच्छी प्रकार प्रजा को सुखी करता है । इससे मनुष्यों को उत्तम सामग्री और उत्तम-उत्तम साधनों से उक्त तीन प्रकार के यज्ञ का नित्य अनुष्ठान करना चाहिये ।।२२।।

कस्त्वेत्यस्य ऋषिः स एव । प्रजापतिर्देवता । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।।

अग्नि में किसलिये पदार्थ छोड़ा जाता है सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है ।।

कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति । पोषाय रक्षसां भागोसि ।।२३।।

पदार्थः - (कः) कौन सुख चाहने वाला यज्ञ का अनुष्ठाता पुरुष (त्वा) उस यज्ञ को (विमुञ्चति) छोड़ता है अर्थात् कोई नहीं । और जो कोई यज्ञ को छोड़ता है (त्वा) उस को (सः) यज्ञ का पालन करने हारा परमेश्वर भी (विमुञ्चति) छोड़ देता है । जो यज्ञ का करने वाला मनुष्य पदार्थ समूह को यज्ञ में छोड़ता है (त्वा)

उस को (कस्मै) किस प्रयोजन के लिये अग्नि के बीच में (विमुञ्चति) छोड़ता है (तस्मै) जिससे सबको सुख प्राप्त हो तथा (पोषाय) पुष्टि आदि गुण के लिये (त्वा) उस पदार्थ समूह को (विमुञ्चति) छोड़ता है। जो पदार्थ सब के उपकार के लिये यज्ञ के बीच में नहीं युक्त किया जाता वह (रक्षसाम्) दुष्ट प्राणियों का (भागः) अंश (असि) होता है ॥२३॥

भावार्थः—जो मनुष्य ईश्वर के करने कराने वा आज्ञा देने के योग्य व्यवहार को छोड़ता है वह सब सुखों से हीन होकर और दुष्ट मनुष्यों से पीड़ा पाता हुआ सब प्रकार दु:खी रहता है। किसी ने किसी से पूछा कि जो यज्ञ को छोड़ता है उसके लिये क्या होता है। वह उत्तर देता है कि ईश्वर भी उसको छोड़ देता है। फिर वह पूछता है कि ईश्वर उसको किस लिये छोड़ देता है। वह उत्तर देने वाला कहता है कि दु:ख भोगने के लिये। जो ईश्वर की आज्ञा को पालता है वह सुखों से युक्त होने योग्य है और जो कि छोड़ता है वह राक्षस हो जाता है ॥२३॥

सं वर्चसेत्यस्य ऋषिः स एव। त्वष्टा देवता। विराड् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

उक्त यज्ञ से हम लोग किस-किस पदार्थ को प्राप्त होते हैं सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ॥

सं वर्च॑सा पय॑सा सं तनूभि॒रग॑न्महि॒ मन॑सा स॒ᳬ शि॒वेन॑।
त्वष्टा॑ सु॒दत्रो॒ विद॑धातु॒ रायोऽनु॑मार्ष्टु त॒न्वो॒ यद्वि॑लि॑ष्टम् ॥२४॥

पदार्थः—हम लोग पुरुषार्थी होकर (वर्चसा) जिस में सब पदार्थ प्रकाशित होते हैं उस वेद का पढ़ना वा (पयसा) जिस से पदार्थों को जानते हैं उस ज्ञान (मनसा) जिस से सब व्यवहार विचारे जाते हैं उस अन्तःकरण (शिवेन) सब सुख और (तनूभिः) जिन में विपुल सुख प्राप्त होते हैं उन शरीरों के साथ (रायः) श्रेष्ठ विद्या और चक्रवर्त्तिराज्य आदि धनों को (समगन्महि) अच्छी प्रकार प्राप्त हों। सो (सुदत्रः) अच्छी प्रकार सुख देने और (त्वष्टा) दुःखों तथा प्रलय के समय सब पदार्थों का सूक्ष्म करने वाला ईश्वर कृपा करके हमारे लिये (रायः) उक्त विद्या आदि पदार्थों को (संविदधातु) अच्छी प्रकार विधान करे और हमारे (तन्वः) शरीर की (यत्) जितनी (विलिष्टम्) व्यवहारों की सिद्धि करने की परिपूर्णता है उसे (समनुमार्ष्टु) अच्छी प्रकार निरन्तर शुद्ध करे ॥२४॥

भावार्थः—मनुष्यों को सब कामना परिपूर्ण करने वाले परमेश्वर की आज्ञा पालन करके और अच्छी प्रकार पुरुषार्थ से विद्या का अध्ययन,

विज्ञान, शरीर का वल, मन की शुद्धि, कल्याण की सिद्धि तथा उत्तम से उत्तम लक्ष्मी की प्राप्ति सदैव करनी चाहिये । इस सम्पूर्ण यज्ञ की धारणा वा उन्नति से सव सुखों को प्राप्त होके औरों को सुख प्राप्त कराना चाहिये तथा सव व्यवहार और पदार्थों को नित्य शुद्ध करना चाहिये ।।२४।।

दिवीत्यस्य ऋषिः स एव । सर्वस्य विष्णुर्देवता । दिवीत्यारभ्य द्विष्म इत्यन्तस्य निचृदार्ची । तथाऽन्तरिक्षमित्यारभ्य द्विष्मःपर्य्यन्तस्यार्ची पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः । पृथिव्यामित्यारभ्यान्तपर्य्यन्तस्य जगती छन्दो निषादः स्वरश्च ।।

वह यज्ञ तीनों लोक में विस्तृत होकर कौन-कौन सुख का साधन होता है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ।।

दिवि विष्णुर्व्यक्रꣳस्त जागतेन च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्रꣳस्त त्रैष्टुभेन च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः । पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्रꣳस्त गायत्रेण च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽस्मादन्नादस्यै प्रतिष्ठायाऽअगन्म स्वः सं ज्योतिषाभूम ।।२५।।

पदार्थः—(जागतेन) सब लोकों के लिये सुख देने वाले (छन्दसा) आह्लाद-कारक जगती छन्द से हमारा अनुष्ठान किया हुआ यह (विष्णुः) अन्तरिक्ष में ठहरने वाले पदार्थों में व्यापक यज्ञ (दिवि) सूर्य्य के प्रकाश में (व्यक्रंस्त) जाता है; वह फिर (ततः) वहां से (निर्भक्तः) विभाग अर्थात् परमाणुरूप होके सव जगत् को तृप्त करता है (यः) जो विरोधी शत्रु (अस्मान्) यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले हम लोगों से (द्वेष्टि) विरोध करता है (च) तथा (यम्) दण्ड देकर शिक्षा करने योग्य जिस दुष्ट प्राणी से (वयम्) हम लोग यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले (द्विष्मः) अप्रीति करते हैं उसको उसी यज्ञ से दूर करते हैं । हम लोगों ने जो यह (विष्णुः) यज्ञ (त्रैष्टुभेन) तीन प्रकार के सुख करने और (छन्दसा) स्वतन्त्रता देने वाले त्रिष्टुप् छन्द से अग्नि में अच्छी प्रकार संयुक्त किया है वह (अन्तरिक्षे) आकाश में (व्यक्रंस्त) पहुँचता है वह फिर (ततः) उस अन्तरिक्ष से (निर्भक्तः) अलग हो के वायु और वर्षा जल की शुद्धि से सव संसार को सुख पहुंचाता है (यः) जो दुःख देने वाला प्राणी (अस्मान्) सव के उपकार करने वाले हम लोगों को (द्वेष्टि) दुःख देता है (च) तथा (यम्) सब के अहित करने वाले दुष्ट को (वयम्) हम लोग सबके हित करने वाले (द्विष्मः) पीड़ा

देते हैं उसे उक्त यज्ञ से निवारण करते हैं। हम लोगों से जो (विष्णुः) यज्ञ (गायत्रेण) संसार की रक्षा सिद्ध करने और (छन्दसा) अति आनन्द करने वाले गायत्री छन्द से निरन्तर किया जाता है वह (पृथिव्याम्) विस्तारयुक्त इस पृथिवी में (व्यक्रंस्त) विविध सुखों की प्राप्ति के हेतु से विस्तृत होता है (ततः) उस पृथिवी से (निर्भक्तः) अलग होकर अन्तरिक्ष में जाकर पृथिवी के पदार्थों की पुष्टि करता है (यः) जो पुरुष हमारे राज्य का विरोधी (अस्मान्) हम लोग जो कि न्याय करने वाले हैं उन से (द्वेष्टि) वैर करता है (च) तथा (यम्) जिस शत्रुजन से (वयम्) हम लोग न्यायाधीश (द्विष्मः) वैर करते हैं उसका इस उक्त यज्ञ से नित्य निषेध करते हैं। हम लोग (अस्मात्) यज्ञ से शोधा हुआ प्रत्यक्ष (अन्नात्) जो भोजन करने योग्य अन्न है उस से (स्वः) सुखरूपी स्वर्ग को (अगन्म) प्राप्त हों तथा (अस्यै) इस प्रत्यक्ष प्राप्त होनेवाली (प्रतिष्ठायै) प्रतिष्ठा अर्थात् जिस में सत्कार को प्राप्त होते हैं उसके लिये (ज्योतिषा) विद्या और धर्म के प्रकाश से संयुक्त (समभूम) अच्छी प्रकार हों ॥२५॥

भावार्थः—मनुष्य लोग जो-जो सुगन्धि आदि पदार्थ अग्नि में छोड़ते हैं वे अलग-अलग होकर सूर्य्य के प्रकाश तथा भूमि में फैलकर सब सुखों को सिद्ध करते हैं तथा जो वायु, अग्नि, जल और पृथिवी आदि पदार्थ शिल्पविद्यासिद्ध कलायन्त्रों से विमान आदि यानों में युक्त किये जाते हैं वे सब सूर्य्यप्रकाश वा अन्तरिक्ष में सुख से विहार करते हैं। जो पदार्थ सूर्य्य की किरण वा अग्नि के द्वारा परमाणुरूप होके अन्तरिक्ष में जाकर फिर पृथिवी पर आते हैं फिर भूमि से अन्तरिक्ष वा वहाँ से भूमि को आते जाते हैं वे भी संसार को सुख देते हैं। मनुष्यों को उचित है कि इसी प्रकार वार-वार पुरुषार्थ से दोष, दुःख और शत्रुओं को अच्छी प्रकार निवारण करके सुख भोगना भुगवाना चाहिये तथा यज्ञ से शुद्ध वायु, जल, ओषधि और अन्न की शुद्धि के द्वारा आरोग्य, बुद्धि और शरीर के बल की वृद्धि से अत्यन्त सुख को प्राप्त होके विद्या के प्रकाश से नित्य प्रतिष्ठा को प्राप्त होना चाहिये ॥२५॥

स्वयंभूरित्यस्य ऋषिः स एव। ईश्वरो देवता। उष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अब अगले मन्त्र में सूर्य्य शब्द से ईश्वर और विद्वान् मनुष्य का उपदेश किया है॥

स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदाऽअसि वर्चो मे देहि।
सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते ॥२६॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! आप विद्वन् वा (श्रेष्ठः) अत्यन्त प्रशंसनीय और (रश्मिः) प्रकाशमान वा (स्वयंभूः) अपने आप होने वाले (असि) हैं तथा (वर्च्चोदा) विद्या देने वाले (असि) हैं इसी से आप (मे) मुझे (वर्च्चः) विज्ञान और प्रकाश (देहि) दीजिये मैं (सूर्य्यस्य) जो आप चराचर जगत् के आत्मा हैं उनके (आवृतम्) निरन्तर सज्जन जन जिस में वर्त्तमान होते हैं उस उपदेश को (अन्वावर्त्ते) स्वीकार करके वर्त्तता हूं ॥२६॥

भावार्थः—परमेश्वर और विद्वान् जीव का कोई माता वा पिता नहीं है किन्तु यही सब का माता पिता है तथा जिस से बढ़ कर कोई विज्ञानप्रकाशक विद्या देने वाला नहीं है। जैसे सब मनुष्यों को इस परमेश्वर ही की आज्ञा में वर्त्तमान होना चाहिये, वैसे ही जो विद्वान् भी प्रकाश वाले पदार्थों में अवधिरूप और व्यवहारविद्या का हेतु है, जिस के उपदेशरूप प्रकाश को प्राप्त होकर प्रकाशित होते हैं वह क्यों न सेवना चाहिये ॥ २६॥

अग्ने गृहपत इत्यस्य ऋषिः स एव । सर्वस्याग्निर्देवता । पूर्वार्द्धे निचृत्पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । उत्तरार्द्धे गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

गृहस्थ लोगों को इस के अनुष्ठान से क्या-क्या सिद्ध करना चाहिये
सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ॥

अग्ने॑ गृहपते सुगृहपतिस्त्वयाऽग्नेऽहं गृहप॑तिना भूयासꣳ सुगृहपतिस्त्वं मयाऽग्ने गृहप॑तिना भूयाः । अस्थूरि णौ गार्ह॑पत्यानि सन्तु शतꣳ हिमाः सूर्य्य॑स्यावृतमन्वावर्ते ॥२७॥

पदार्थः—हे (गृहपते) घर के पालन करने हारे (अग्ने) परमेश्वर और विद्वान् (त्वम्) आप (सुगृहपतिः) ब्रह्माण्ड, शरीर और निवासार्थ घरों के उत्तमता से पालन करने वाले (असि) हैं उस (गृहपतिना) उक्त गुण वाले (त्वया) आप के साथ (अहम्) मैं (सुगृहपतिः) अपने घर का उत्तमता से पालन करने हारा (भूयासम्) होऊँ। हे परमेश्वर ! विद्वान् वा (मया) जो मैं श्रेष्ठ कर्म का अनुष्ठान करने वाला (गृहपतिना) धर्मात्मा और पुरुषार्थी मनुष्य हूं उस मुझ से आप उपासना को प्राप्त हुए मेरे घर के पालन करने हारे (भूयाः) हूजिये। इसी प्रकार (नौ) जो हम स्त्री-पुरुष घर के पति हैं सो हमारे (गार्हपत्यानि) अर्थात् जो गृहपति के संयोग से घर के काम सिद्ध होते हैं वे (अस्थूरि) जैसे निरालस्यता हो वैसे सिद्ध (सन्तु) हों। इस प्रकार अपने वर्त्तमान में वर्त्तते हुए हम स्त्री वा पुरुष (सूर्य्यस्य) आप और

विद्वान् के (आवृतम्) वर्त्तमान अर्थात् जिसमें अच्छी प्रकार रात्रि वा दिन होते हैं उस में (शतं हिमाः) सौ वर्ष वा सौ से अधिक भी वर्त्तें ॥२७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। हम दोनों स्त्रीपुरुष पुरुषार्थी होकर जो इन सब पदार्थों की स्थिति के योग्य संसाररूपी घर का निरन्तर रक्षा करने वाला जगदीश्वर और विद्वान् है उसका आश्रय करके भौतिक अग्नि आदि पदार्थों से स्थिर सुख करने वाले सब काम सिद्ध करते हुए सौ वर्ष जीवें तथा जितेन्द्रियता से सौ वर्ष से अधिक भी सुखपूर्वक जीवन भोगें ॥२७॥

अग्ने व्रतपत इत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता। भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अब जो सत्याचरण से सुख होता है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है॥

अग्ने॑ व्रतपते व्रतम॑चारिषं तद॑शकं तन्मे॑ऽराधीदमहं यऽएवाऽस्मि सोऽस्मि ॥२८॥

पदार्थः—हे (व्रतपते) न्याययुक्त नियत कर्म के पालन करने हारे (अग्ने) सत्यस्वरूप परमेश्वर! आपने जो कृपा करके (मे) मेरे लिये (व्रतम्) सत्य लक्षण और प्रसिद्ध नियमों से युक्त सत्याचरण व्रत को (अराधि) अच्छी प्रकार सिद्ध किया है (तत्) उस अपने आचरण करने योग्य सत्य नियम को (अशकम्) जिस प्रकार मैं करने को समर्थ होऊँ (अचारिषम्) अर्थात् उसका आचरण अच्छी प्रकार कर सकूँ वैसा मुझको कीजिये। (यः) जो मैंने उत्तम वा अधम कर्म किया है (तदेवाहम्) उसी को भोगता हूं अब भी जो मैं जैसा करने वाला (अस्मि) हूँ वैसे कर्म्म के फल भोगने वाला (अस्मि) होता हूं ॥२८॥

भावार्थः—मनुष्य को यही निश्चय करना चाहिये कि मैं अब जैसा कर्म्म करता हूं वैसा ही परमेश्वर की व्यवस्था से फल भोगता हूं और भोगूंगा। सब प्राणी अपने कर्म्म से विरुद्ध फल को कभी नहीं प्राप्त होते इससे सुख भोगने के लिये धर्म्मयुक्त कर्म्म ही करना चाहिये कि जिससे कभी दुःख नहीं हो ॥२८॥

अग्नय इत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता। स्वराडार्षी अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब संसारी अग्नि और चन्द्रमा कैसे गुण वाले हैं सो
अगले मन्त्र में प्रकाश किया है ॥

अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहा ।
अपहताऽ असुरा रक्षाᳬंसि वेदिषदः ॥२९॥

पदार्थः—मनुष्यों को उचित है कि (कव्यवाहनाय) विद्वानों को हित देने वाले कर्मों की प्राप्ति कराने तथा (अग्नये) सब पदार्थों को अपने आप एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुंचाने वाले भौतिक अग्नि का ग्रहण करके सुख के लिये (स्वाहा) वेदवाणी से (पितृमते) जिस में वसन्त आदि ऋतु पालन के हेतु होने से पितर संयुक्त होते हैं (सोमाय) जिस से ऐश्वर्यों को प्राप्त होते हैं उस सोमलता को लेके (स्वाहा) अपने पदार्थों को धारण करने वाले धर्म से युक्त विधान करके जो (वेदिषदः) इस पृथिवी में रमण करने वाले (रक्षांसि) औरों को दुःखदायी स्वार्थीजन तथा (असुराः) दुष्ट स्वभाव वाले मूर्ख हैं उनको (अपहताः) विनष्ट कर देना चाहिये ॥२९॥

भावार्थः—विद्वानों से युक्ति के साथ शिल्पविद्या में संयुक्त किया हुआ यह अग्नि उनके लिये उत्तम २ कार्यों की प्राप्ति करने वाला होता है. मनुष्यों को यह यत्न नित्य करना चाहिये कि जिस से संसार के उपकार से सब सुख और पृथिवी के दुष्टजन वा दोषों की निवृत्ति हो जाय ॥२९॥

ये रूपाणीत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

उक्त असुर कैसे लक्षणों वाले होते हैं सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है ॥

ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमानाऽअसुराः सन्तः स्वधया चरन्ति ।
परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाँल्लोकात् प्रणुदात्यस्मात् ॥३०॥

पदार्थः—(ये) जो दुष्ट मनुष्य (रूपाणि) ज्ञान के अनुकूल अपने अन्तःकरणों में विचारे हुए भावों को (प्रतिमुञ्चमानाः) दूसरे के सामने छिपा कर विपरीत भावों के प्रकाश करने हारे (असुराः) धर्म को ढांपते (सन्तः) हैं (स्वधया) पृथिवी में जहाँ तहाँ (चरन्ति) जाते आते हैं तथा जो (परापुरः) संसार से उलटे अपने सुखकारी कामों को नित्य सिद्ध करने के लिये यत्न करने (निपुरः) और दुष्ट स्वभावों को परिपूर्ण करने वाले (सन्तः) हैं अर्थात् जो अन्याय से औरों के पदार्थों को धारण करते हैं (तान्) उन दुष्टों को (अग्निः) जगदीश्वर (अस्मात्) इस प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लोक से (प्रणुदाति) दूर करे ॥३०॥

भावार्थः—जो दुष्ट मनुष्य अपने मन, वचन और शरीर से झूठे आचरण करते हुए अन्याय से अन्य प्राणियों को पीड़ा देकर अपने सुख के लिये औरों के पदार्थों को ग्रहण कर लेते हैं ईश्वर उन को दुःखयुक्त करता है और नीच योनियों में जन्म देता है कि वे अपने पापों के फलों को भोग के फिर भी मनुष्य देह के योग्य होते हैं इस से सब मनुष्यों को योग्य है कि ऐसे दुष्ट मनुष्य वा पापों से बचकर सदैव धर्म का ही सेवन किया करें ॥३०॥

अत्र पितर इत्यस्यर्षिः स एव। पितरो देवताः। बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः।

मनुष्य लोगों को धर्मात्मा ज्ञानी विद्वान् पुरुषों का कैसा सत्कार करना योग्य है सो अगले मन्त्र में कहा है ॥

अत्र॑ पितरो मादयध्वं यथाभा॒गमावृ॑षायध्वम्। अमी॑मदन्त पि॒तरो॑ यथाभा॒गमावृ॑षायिषत ॥३१॥

पदार्थः—हे (पितरः) उत्तम विद्या वा उत्तम शिक्षाओं और विद्यादान से पालन करने वाले विद्वान् लोगो! (अत्र) हमारे सत्कारयुक्त व्यवहार अथवा स्थान में (यथाभागम्) यथायोग्य पदार्थों के विभाग को (आवृषायध्वम्) अच्छी प्रकार जैसे कि आनन्द देने वाले बैल अपनी घास को चरते हैं वैसे पाओ और (मादयध्वम्) आनन्दित भी होओ तथा आप हम लोगों के जिस प्रकार (यथाभागम्) यथायोग्य अपनी-अपनी बुद्धि के अनुकूल गुण विभाग को प्राप्त हों वैसे (आवृषायिषत) विद्या और धर्म की शिक्षा करने वाले हों और (अमीमदन्त) सब को आनन्द दो ॥३१॥

भावार्थः—ईश्वर आज्ञा देता है कि मनुष्य लोग माता और पिता आदि धार्मिक सज्जन विद्वानों को समीप आये हुए देखकर उनकी सेवा करें। प्रार्थनापूर्वक वाक्य कहें कि हे पितरो! आप लोगों का आना हमारे उत्तम भाग्य से होता है सो आओ और जो अपने व्यवहार में यथायोग्य और भोग आसन आदि पदार्थों को हम देते हैं उनको स्वीकार करके सुख को प्राप्त हों तथा जो-जो आप के प्रिय पदार्थ हमारे लाने योग्य हों उस-उस की आज्ञा दीजिये क्योंकि सत्कार को प्राप्त होकर आप प्रश्नोत्तर विधान से हम लोगों को स्थूल और सूक्ष्म विद्या वा धर्म के उपदेश से यथावत् वृद्धियुक्त कीजिये। आप से वृद्धि को प्राप्त हुए हम लोग अच्छे-अच्छे कामों को करके तथा औरों से अच्छे काम कराके सब प्राणियों का सुख और विद्या की उन्नति नित्य करें ॥३१॥

नमो व इत्यस्यर्षिः स एव। पितरो देवताः। मन्यवे पर्यन्तस्य ब्राह्मी बृहती। अग्रे च निचृद् बृहती छन्दः। पंचमः स्वरः॥

अब पितृयज्ञ किस प्रकार से और किस प्रयोजन के लिये किया जाता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

नमो॑ वः पितरो॒ रसा॑य॒ नमो॑ वः पितरः॒ शोषा॑य॒ नमो॑ वः पितरो॒ जीवा॑य॒ नमो॑ वः पितरः॒ स्वधा॑यै॒ नमो॑ वः पितरो॒ घोरा॑य॒ नमो॑ वः पितरो॒ मन्यवे॒ नमो॑ वः पितरः॒ पित॑रो॒ नमो॑ वो गृहान्नः॑ पितरो दत्त स॒तो वः॑ पितरो देष्मै॒तद्वः॑ पितरो॒ वासः॑ ॥३२॥

पदार्थः—हे (पितरः) विद्या के आनन्द को देने वाले विद्वान् लोगो! (रसाय) विज्ञानरूपी आनन्द की प्राप्ति के लिये (वः) तुम को हमारा (नमः) नमस्कार हो। हे (पितरः) दुःख का विनाश और रक्षा करने वाले विद्वानो! (शोषाय) दुःख और शत्रुओं की निवृत्ति के लिये (वः) तुमको हमारा (नमः) नमस्कार हो। हे (पितरः) धर्मयुक्त जीविका का ज्ञान कराने वाले विद्वानो! (जीवाय) जिससे प्राण का स्थिर धारण होता है उस जीविका के लिये (वः) तुम को हमारा (नमः) शील-धारण विदित हो। हे (पितरः) विद्या अन्न आदि भोगों की शिक्षा करने हारे विद्वानो! (स्वधायै) अन्न, पृथिवी, राज्य और न्याय के प्रकाश के लिये (वः) तुम को हमारा (नमः) नम्रीभाव विदित हो। हे (पितरः) पाप और आपत्काल के निवारक विद्वान् लोगो! (घोराय) दुःखसमूह की निवृत्ति के लिये (वः) तुम को हमारा (नमः) क्रोध का छोड़ना विदित हो। हे (पितरः) श्रेष्ठों के पालन करनेहारे विद्वानो! (मन्यवे) दुष्टाचरण करने वाले दुष्ट जीवों में क्रोध करने के लिये (वः) तुम को हमारा(नमः) सत्कार विदित हो। हे (पितरः)ज्ञानी विद्वानो! (वः) तुमको विद्या के लिये (नमः) हमारी विज्ञान ग्रहण करने की इच्छा विदित हो। हे(पितरः) प्रीति के साथ रक्षा करने वाले विद्वानो! ((वः) तुम्हारे सत्कार होने के लिये हमारा (नमः) सत्कार करना तुम को विदित हो। आप लोग (नः) हमारे(गृहान्) घरों में नित्य आओ और आके रहो। हे (पितरः) विद्या देने वाले विद्वानो! (नः) हमारे लिये शिक्षा और विद्या नित्य (दत्त) देते रहो। हे पिता माता आदि विद्वान् पुरुषो! हम लोग (वः) तुम्हारे लिये जो-जो (सतः) विद्यमान पदार्थ हैं वे नित्य (देष्म) देवें। हे (पितरः) सेवा करने योग्य पितृ लोगो! हमारे दिये (वासः) इन वस्त्रादि को ग्रहण कीजिये॥३२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में अनेक वार (नमः) यह पद अनेक शुभगुण

और सत्कार प्रकाश करने के लिये धरा है। जैसे वसन्तग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर ये छः ऋतु, रस, शोष और जीव, अन्न, कठिनता, क्रोध के उत्पन्न करने वाले होते हैं वैसे ही पितर भी अनेक विद्याओं के उपदेश से मनुष्यों को निरन्तर सुख देते हैं। इस से मनुष्यों को चाहिये कि उक्त पितरों को उत्तम-उत्तम पदार्थों से सन्तुष्ट करके उनसे विद्या के उपदेश का निरन्तर ग्रहण करें ॥३२॥

आधत्त इत्यस्य ऋषिः स एव। पितरो देवताः। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

उक्त पितरों को क्या क्या करना चाहिये सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्। यथेह पुरुषोऽसत् ॥३३॥

पदार्थः—हे (पितरः) विद्यादान से रक्षा करने वाले विद्वान् पुरुषो! आप (यथा) जैसे यह ब्रह्मचारी (इह) इस संसार वा हमारे कुल में अपने शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त होके विद्या और पुरुषार्थयुक्त मनुष्य (असत्) हो वैसे (गर्भम्) गर्भ के समान (पुष्करस्रजम्) विद्या ग्रहण के लिये फूलों की माला धारण किये हुए (कुमारम्) ब्रह्मचारी को (आधत्त) अच्छी प्रकार स्वीकार कीजिये ॥३३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। ईश्वर आज्ञा देता है कि विद्वान् पुरुष और स्त्रियों का चाहिये कि विद्यार्थी, कुमार वा कुमारी को विद्या देने के लिये गर्भ के समान धारण करें। जैसे क्रम-क्रम से गर्भ के बीच देह बढ़ता है वैसे अध्यापक लोगों को चाहिये कि अच्छी-अच्छी शिक्षा से ब्रह्मचारी, कुमार वा कुमारी को श्रेष्ठ विद्या में वृद्धियुक्त करें तथा (उनका) पालन करें वे विद्या के योग से धर्मात्मा और पुरुषार्थयुक्त होकर सदासुखी हों। यह अनुष्ठान सदैव करना चाहिये ॥३३॥

ऊर्जमित्यस्यर्षिः स एव। आपो देवता। भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

उक्त पितर कौन-कौन पदार्थों से सत्कार करने योग्य हैं सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्। स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन् ॥३४॥

पदार्थः—हे पुत्रादिको! तुम (मे) मेरे (पितॄन्) पूर्वोक्त गुण वाले पितरों

को (ऊर्जम्) अनेक प्रकार के उत्तम-उत्तम रस (वहन्तीः) सुख प्राप्त करने वाले स्वादिष्ठ जल (अमृतम्) सब रोगों को दूर करने वाले ओषधि मिष्टादि पदार्थ (पयः) दूध (घृतम्) घी (कीलालम्) उत्तम-उत्तम रीति से पकाया हुआ अन्न तथा (परिस्रुतम्) रस से चूते हुए पके फलों को देके (तर्पयत) तृप्त करो। इस प्रकार तुम उनके सेवन से विद्या को प्राप्त होकर (स्वधाः) परधन का त्याग करके अपने धन के सेवन करने वाले (स्थ) होओ ॥३४॥

भावार्थः—ईश्वर आज्ञा देता है कि सब मनुष्यों को पुत्र और नौकर आदि को आज्ञा देके कहना चाहिये कि तुम को हमारे पितर अर्थात् पिता-माता आदि वा विद्या के देने वाले प्रीति से सेवा करने योग्य हैं जैसे कि उन्होंने बाल्यावस्था वा विद्यादान के समय हम और तुम पाले हैं वैसे हम लोगों को भी वे सब काल में सत्कार करने योग्य हैं जिससे हम लोगों के बीच में विद्या का नाश और कृतघ्नता आदि दोष कभी न प्राप्त हों ॥३४॥

ईश्वर ने इस दूसरे अध्याय में जो-जो वेदी आदि यज्ञ के साधनों का बनाना, यज्ञ का फल गमन, वा साधन, सामग्री का धारण, अग्नि के दूतपन का प्रकाश, आत्मा और इन्द्रियादि पदार्थों की शुद्धि, सुखों का भोग, वेद का प्रकाश पुरुषार्थ का सन्धान युद्ध में शत्रुओं का जीतना, शत्रुओं का निवारण, द्वेष का त्याग, अग्नि आदि पदार्थों को सवारियों में युक्त करना, पृथिवी आदि पदार्थों से उपकार लेना, ईश्वर में प्रीति, अच्छे-अच्छे गुणों का विस्तार और सबकी उन्नति करना, वेद शब्द के अर्थ का वर्णन, वायु और अग्नि आदि का परस्पर मिलाना, पुरुषार्थ का ग्रहण, उत्तम-उत्तम पदार्थों का स्वीकार करना, यज्ञ में होम किये हुए पदार्थों का तीनों लोक में जाना आना. स्वयम्भू शब्द का वर्णन, गृहस्थों का कर्म, सत्य का आचरण, अग्नि में होम, दुष्टों का निवारण और जिन-जिन का सेवन करना कहा है उन-उन का सेवन मनुष्यों को प्रीति के साथ करना अवश्य है। इस प्रकार से प्रथमाध्याय के अर्थ के साथ द्वितीयाध्याय के अर्थ की संगति जाननी चाहिये ॥

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

* ओ३म् *

अथ तृतीयोऽध्यायारम्भः

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ १ ॥

तत्र समिधेत्यस्य प्रथममन्त्रस्याङ्गिरस ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब तीसरे अध्याय के पहिले मन्त्र में भौतिक अग्नि का किस-किस काम में उपयोग करना चाहिये इस विषय का उपदेश किया है ॥

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥ १ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! तुम (समिधा) जिन इन्धनों से अच्छे प्रकार प्रकाश हो सकता है उन लकड़ी घी आदिकों से (अग्निम्) भौतिक अग्नि को (बोधयत) उद्दीपन अर्थात् प्रकाशित करो तथा जैसे (अतिथिम्) अतिथि को अर्थात् जिसके आने जाने वा निवास को कोई दिन नियत नहीं है उस संन्यासी का सेवन करते हैं वैसे अग्नि का (दुवस्यत) सेवन करो और (अस्मिन्) इस अग्नि में (हव्या) सुगन्ध कस्तूरी केसर आदि, मिष्ट गुड़ शक्कर आदि, पुष्ट घी, दूध आदि, रोग को नाश करने वाले सोमलता अर्थात् गुडूची आदि ओषधी, इन चार प्रकार के साकल्य को (आजुहोतन) अच्छे प्रकार हवन करो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे गृहस्थ मनुष्य आसन, अन्न जल, वस्त्र और प्रियवचन आदि से उत्तम गुण वाले संन्यासी आदि का सेवन करते हैं वैसे ही विद्वान् लोगों को यज्ञ, वेदी, कलायन्त्र और यानों में स्थापन कर यथायोग्य इन्धन, घी, जलादि से अग्नि को प्रज्वलित

करके वायु वर्षाजल की शुद्धि वा यानों की रचना नित्य करनी चाहिये ॥१॥

सुसमिद्धायेत्यस्य सुश्रुत ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह भौतिक अग्नि कैसा है किस प्रकार उपयोग करना चाहिये
इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! तुम (सुसमिद्धाय) अच्छे प्रकार प्रकाशरूप (शोचिषे) शुद्ध किये हुए, दोषों को निवारण करने वा (जातवेदसे) सब पदार्थों में विद्यमान (अग्नये) रूप, दाह, प्रकाश, छेदन आदि गुण स्वभाव वाले अग्नि में (तीव्रम्) सब दोषों के निवारण करने में तीक्ष्ण स्वभाव वाले (घृतम्) घी मिष्ट आदि पदार्थों को (जुहोतन) अच्छे प्रकार गेरो ॥२॥

भावार्थः—मनुष्यों को इस प्रज्वलित अग्नि में जल्दी दोषों को दूर करने (वाले) या शुद्ध किये हुए पदार्थों को गेर कर इष्ट सुखों को सिद्ध करना चाहिये ॥२॥

तं त्वेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्यों को उक्त अग्नि की नित्य वृद्धि करनी चाहिये इस विषय का
उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥ ३ ॥

पदार्थः—हम लोग जो (अङ्गिरः) पदार्थों को प्राप्त कराने वा (यविष्ठ्य) पदार्थों के भेद करने में अति बलवान् (बृहत्) बड़े तेज से युक्त अग्नि (शोच) प्रकाश करता है (त्वा) उसको (समिद्भिः) काष्ठादि वा (घृतेन) घी आदि से (वर्द्धयामसि) बढ़ाते हैं ॥३॥

भावार्थः— मनुष्यों को जो सब गुणों से बलवान् पूर्व कहा हुआ अग्नि है वह होम और शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये लकड़ी घी आदि साधनों से सेवन करके निरन्तर वृद्धियुक्त करना चाहिये ॥३॥

उपत्वेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह अग्नि कैसा है सो अगले मन्त्र में कहा है ॥

उप त्वाग्ने हविष्मतीर्घृताचीर्यन्तु हर्यत । जुषस्व समिधो मम ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (हर्य्यत) प्राप्ति का हेतु वा कामना के योग्य (अग्ने) प्रसिद्ध अग्नि (मम) यज्ञ करने वाले मेरे (समिधः) लकड़ी घी आदि पदार्थों को (जुषस्व) सेवन करता है जिस प्रकार (तम्) उस अग्नि को घी आदि पदार्थ (यन्तु) प्राप्त हों वैसे तुम (हविष्मतीः) श्रेष्ठ हवियुक्त (घृताचीः) घृत आदि पदार्थों से संयुक्त आहुति वा काष्ठ आदि सामग्री प्रतिदिन सञ्चित करो ।।४।।

भावार्थः— मनुष्य लोग जब इस अग्नि में काष्ठ घी आदि पदार्थों की आहुति छोड़ते हैं तब वह उनको अति सूक्ष्म करके वायु के साथ देशान्तर को प्राप्त कराके दुर्गन्धादि दोषों के निवारण से सब प्राणियों को सुख देता है ऐसा सब मनुष्यों को जानना चाहिए ।।४।।

भूर्भुवः स्वरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निवायुसूर्य्या देवताः । दैवी बृहती छन्दः । द्यौरिवेत्यस्य निचृद् बृहती छन्दः । उभयत्र मध्यमः स्वरः ।।

फिर उस अग्नि का किसलिये उपयोग करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

भूर्भुवः स्वः॒ द्यौरि॑व भू॒म्ना पृ॑थि॒वी॑व वरि॒म्णा । तस्या॑स्ते पृथिवि देवयजनि पृ॒ष्ठेऽग्निम॑न्ना॒दम॒न्नाद्या॒याद॑धे ।।५।।

पदार्थः—मैं (अन्नाद्याय) भक्षण योग्य अन्न के लिये (भूम्ना) विभु अर्थात् ऐश्वर्य्य से (द्यौरिव) आकाश में सूर्य्य के समान (वरिम्णा) अच्छे अच्छे गुणों से (पृथिवीव) विस्तृत भूमि के तुल्य (ते) प्रत्यक्ष वा (तस्याः) अप्रत्यक्ष अर्थात् आकाश युक्त लोक में रहने वाली (देवयजनि) देव अर्थात् विद्वान् लोग जहां यज्ञ करते हैं वा (पृथिवि) भूमि के (पृष्ठे) पृष्ठ के ऊपर (भूः) भूमि (भुवः) अन्तरिक्ष (स्वः) दिव अर्थात् प्रकाशस्वरूप सूर्यलोक इनके अन्तर्गत रहने तथा (अन्नादम्) यव आदि सब अन्नों को भक्षण करने वाले (अग्निम्) प्रसिद्ध अग्नि को (आदधे) स्थापन करता हूं ।।५।।

भावार्थः—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं । हे मनुष्य लोगो ! तुम ईश्वर से तीन लोकों के उपकार करने वा अपनी व्याप्ति से सूर्यप्रकाश के समान तथा उत्तम-उत्तम गुणों से पृथिवी के समान अपने-अपने लोकों में निकट रहने वाले रचे हुए अग्नि को कार्य की सिद्धि के लिये यत्न के साथ उपयोग करो ।।५।।

आयमित्यस्य सर्प्पराज्ञी कद्रूर्ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।।

अब अग्नि के निमित्त से पृथिवी का भ्रमण होता है इस विषय को अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ॥

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥६॥

पदार्थः--(अयम्) यह प्रत्यक्ष (गौः) गोलरूपी पृथिवी (पितरम्) पालन करने वाले (स्वः) सूर्यलोक के (पुरः) आगे-आगे (असदत्) चलती है वा (मातरम्) अपनी योनिरूप जलों के साथ सहवर्त्तमान (प्रयन्) अच्छी प्रकार चलती हुई (पृश्निः) अन्तरिक्ष अर्थात् आकाश में (आक्रमीत्) चारों तरफ घूमती है ॥६॥

भावार्थः—मनुष्यों को जानना चाहियें कि जिससे यह भूगोल पृथिवी जल और अग्नि के निमित्त से उत्पन्न हुई अन्तरिक्ष वा अपनी कक्षा अर्थात् योनिरूप जल के सहित आकर्षणरूपी गुणों से सब की रक्षा करने वाले सूर्य के चारों तरफ क्षण-क्षण घूमती है इसी से दिन रात्रि शुक्ल वा कृष्ण पक्ष, ऋतु और अयन आदि काल-विभाग क्रम से सम्भव होते हैं ॥६॥

अन्तरित्यस्य सर्पराज्ञी कद्रूर्ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

वह अग्नि कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती । व्यख्यन् महिषो दिवम् ॥७॥

पदार्थः—जो (अस्य) इस अग्नि की (प्राणात्) ब्रह्माण्ड और शरीर के बीच में ऊपर जाने वाले वायु से (अपानती) नीचे को जाने वाले वायु को उत्पन्न करती हुई (रोचना) दीप्ति अर्थात् प्रकाशरूपी विजुली (अन्तः) ब्रह्माण्ड और शरीर के मध्य में (चरति) चलती है वह (महिषः) अपने गुणों से बड़ा अग्नि (दिवम्) सूर्यलोक को (व्यख्यत्) प्रकट करता है ॥७॥

भावार्थः—मनुष्यों को जानना चाहिये कि जो विद्युत् नाम से प्रसिद्ध सब मनुष्यों के अन्तः करण में रहने वाली जो अग्नि की क्रान्ति है वह प्राण और अपान वायु के साथ युक्त होकर प्राण, अपान, अग्नि और प्रकाश आदि चेष्टाओं के व्यवहारों को प्रसिद्ध करती है ॥७॥

त्रिंशद्धामेत्यस्य सर्पराज्ञी कद्रूर्ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह अग्नि कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

त्रिंꣳशद्धाम विराजति वाक् पतङ्गाय धीयते । प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥८॥

पदार्थः—मनुष्यों को जो अग्नि (द्युभिः) प्रकाश आदि गुणों से (प्रतिवस्तोः) प्रति-दिन (त्रिंशत्) अन्तरिक्ष, आदित्य और अग्नि को छोड़ के पृथिवी आदि जो तीस (धाम) स्थान हैं उनको (विराजति) प्रकाशित करता है उस (पतङ्गाय) चलने चलाने आदि गुणों से प्रकाशयुक्त अग्नि के लिये (प्रतिवस्तोः) प्रतिदिन विद्वानों को (अह) अच्छे प्रकार (वाक्) वाणी (धीयते) अवश्य धारण करनी चाहिये ॥८॥

भावार्थः—जो वाणी प्राणयुक्त शरीर में रहने वाले बिजुलीरूप अग्नि से प्रकाशित होती है उस के गुणों के प्रकाश के लिये विद्वानों को उपदेश वा श्रवण नित्य करना चाहिये ॥८॥

अग्निरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निसूर्यौ देवते । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ज्योतिरित्यस्य याजुषी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अग्नि और सूर्य्य कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा । अग्निर्वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा सूर्यो वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा । ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो ज्योतिः स्वाहा ॥९॥

पदार्थः—(अग्निः) परमेश्वर (स्वाहा) सत्य कथन करने वाली वाणी को (ज्योतिः) जो विज्ञानप्रकाश से युक्त करके सब मनुष्यों के लिये विद्या को देता है इसी प्रकार (अग्निः) जो प्रसिद्ध अग्नि (ज्योतिः) शिल्पविद्या साधनों के प्रकाश को देता है । (सूर्यः) जो चराचर सब जगत् का आत्मा परमेश्वर (ज्योतिः) सब के आत्माओं में प्रकाश वा ज्ञान तथा सब विद्याओं का उपदेश करता है कि (स्वाहा) मनुष्य जैसा अपने हृदय से जानता हो वैसे ही बोले । तथा जो (सूर्यः) अपने प्रकाश से प्रेरणा का हेतु सूर्यलोक (ज्योतिः) मूर्तिमान् द्रव्यों का प्रकाश करता है (अग्निः) जो सब विद्याओं का प्रकाश करने वाला परमेश्वर मनुष्यों के लिये (वर्च्चः) सब विद्याओं के अधिकरण चारों वेदों को प्रकट करता है । तथा जो (ज्योतिः) बिजुली-रूप से शरीर वा ब्रह्माण्ड में रहने वाला अग्नि (वर्च्चः) विद्या और वृष्टि का हेतु है । (सूर्यः) जो सब विद्याओं का प्रकाश करने वाला जगदीश्वर सब मनुष्यों के लिये (स्वाहा) वेदवाणी से (वर्च्चः) सकल विद्याओं का प्रकाश और (ज्योतिः) बिजुली सूर्य्य और प्रसिद्ध अग्नि नाम के तेज का प्रकाश करता है तथा जो (सूर्यः) सूर्यलोक

भी (वर्च्चः) शरीर और आत्माओं के बल का प्रकाश करता है तथा जो (सूर्यः) प्राणवायु (वर्च्चः) सकल विद्या के प्रकाश करने वाले ज्ञान को बढ़ाता है और (ज्योतिः) प्रकाश स्वरूप जगदीश्वर अच्छे प्रकार से हवन किये हुए पदार्थों को अपने रचे हुए पदार्थों में अपनी शक्ति से सर्वत्र फैलाता है वही परमात्मा सब मनुष्यों का उपास्य देव और भौतिक अग्नि कार्य्यसिद्धि का साधन है ॥९॥

भावार्थः—स्वाहा शब्द का अर्थ निरुक्तकार की रीति से इस मन्त्र में ग्रहण किया है अग्नि अर्थात् ईश्वर ने सामर्थ्य करके कारण से अग्नि आदि सब जगत् को उत्पन्न करके प्रकाशित किया है उनमें से अग्नि अपने प्रकाश से आप वा और सब पदार्थों का प्रकाश करता है तथा परमेश्वर वेद के द्वारा सब विद्याओं का प्रकाश करता है इसी प्रकार अग्नि और सूर्य भी शिल्पविद्या का प्रकाश करते हैं ॥९॥

सजूरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । पूर्वार्द्धस्याग्निरुत्तरार्द्धस्य सूर्यश्च देवते । पूर्वार्द्धस्य गायत्र्युत्तरार्द्धस्य भुरिग्गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

भौतिक अग्नि और सूर्य ये दोनों किस की सत्ता से वर्त्तमान हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सजूर्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्या । जुषाणोऽअग्निर्वेतु स्वाहा । सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या । जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥१०॥

पदार्थः—(अग्निः) जो भौतिक अग्नि (देवेन) सब जगत् को ज्ञान देने वा (सवित्रा) सब जगत् को उत्पन्न करने वाले ईश्वर के उत्पन्न किये हुए जगत् के साथ (सजूः) तुल्य वर्त्तमान (जुषाणः) सेवन करता वा (इन्द्रवत्या) बहुत बिजुली से युक्त (रात्र्या) अन्धकार रूप रात्रि के साथ (स्वाहा) वाणी को सेवन करता हुआ (वेतु) सब पदार्थों में व्याप्त होता है। इसी प्रकार (सूर्यः) जो सूर्यलोक (देवेन) सबको प्रकाश करने वाले वा (सवित्रा) सब के अन्तर्यामी परमेश्वर के उत्पन्न वा धारण किये हुए जगत् के साथ (सजूः) तुल्य वर्तमान (जुषाणः) सेवन करता वा (इन्द्रवत्या) सूर्यप्रकाश से युक्त (उषसा) दिन के प्रकाश के हेतु प्रातःकाल के साथ (स्वाहा) अग्नि में होम की हुई आहुतियों को (जुषाणः) सेवन करता हुआ व्याप्त होकर हवन किये हुए पदार्थों को (वेतु) देशान्तरों में पहुंचाता है, उसी से सब व्यवहार सिद्ध करें ॥१०॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो भौतिक अग्नि ईश्वर ने रचा है वह इसी की सत्ता से अपने अपने रूप को धारण करता हुआ दीपक आदि

रूप से रात्रि के व्यवहारों को सिद्ध करता है। इसी प्रकार जो प्रातःकाल को प्राप्त होकर सब मूर्त्तिमान् द्रव्यों के प्रकाश करने को समर्थ है वही काम सिद्धि करने हारा है, इसको जानो ॥१०॥

उपेत्यस्य गोतम ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः षड्जः स्वरः॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर ने अपने स्वरूप का प्रकाश किया है॥

उपप्रयन्तोऽअध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये। आरेऽअस्मे च शृण्वते ॥११॥

पदार्थः—(अध्वरम्) क्रियामय यज्ञ को (उपप्रयन्तः) अच्छे प्रकार जानते हुए हम लोग (अस्मे) जो हम लोगों के (आरे) दूर वा (च) निकट में (शृण्वते) यथार्थ सत्यासत्य को सुनने वाले (अग्नये) विज्ञानस्वरूप अन्तर्यामी जगदीश्वर है इसी के लिये (मन्त्रम्) ज्ञान को प्राप्त कराने वाले मन्त्रों को (वोचेम) नित्य उच्चारण वा विचार करें ॥११॥

भावार्थः—मनुष्यों को वेदमन्त्रों के साथ ईश्वर की स्तुति वा यज्ञ के अनुष्ठान को करके जो ईश्वर भीतर बाहर सब जगह व्याप्त होकर सब व्यवहारों को सुनता वा जानता हुआ वर्त्तमान है इस कारण उससे भय मानकर अधर्म करने की इच्छा भी न करनी चाहिये। जब मनुष्य परमात्मा को जानता है तब समीपस्थ और जब नहीं जानता तब दूरस्थ है ऐसा निश्चय जानना चाहिये ॥११॥

अग्निर्मूर्द्धेत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब अगले मन्त्र में अग्नि शब्द से ईश्वर और भौतिक अग्नि का प्रकाश किया है॥

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याऽअयम्। अपाᳬं रेताᳬंसि जिन्वति ॥१२॥

पदार्थः—(अयम्) जो यह कार्य कारण से प्रत्यक्ष (ककुत्) सब से बड़ा (मूर्द्धा) सब के ऊपर विराजमान (अग्निः) जगदीश्वर (दिवः) प्रकाशमान सूर्य आदि लोक और (पृथिव्याः) प्रकाशरहित पृथिवी आदि लोकों का (पतिः) पालन करता हुआ (अपाम्) प्राणों के (रेतांसि) वीर्यों की (जिन्वति) रचना को जानता है उसी को पूज्य मानो ॥१॥ (अयम्) यह अग्नि (ककुत्) सब पदार्थों से बड़ा (दिवः) प्रकाशमान पदार्थों के (मूर्द्धा) ऊपर विराजमान (पृथिव्याः) प्रकाश रहित पृथिवी आदि लोकों के (पतिः) पालन का हेतु होकर (अपाम्) जलों के (रेतांसि) वीर्यों को (जिन्वति) प्राप्त करता है ॥२॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जो जगदीश्वर प्रकाश वा अप्रकाशरूप दो प्रकार का जगत् अर्थात् प्रकाशवान् सूर्य आदि और प्रकाश-रहित पृथिवी आदि लोकों को रच कर पालन करके प्राणों में बल को धारण करता है तथा जो भौतिक अग्नि पृथिवी आदि जगत् के पालन का हेतु होकर विजुली जाठर आदि रूप से प्राण वा जलों के वीर्यों को उत्पन्न करता है वह सुखों का सिद्ध करने वाला होता है ॥१२॥

उभा वामिन्द्राग्नी इत्यस्य भरद्वाज ऋषिः। इन्द्राग्नी देवते स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अगले मन्त्र में भौतिक अग्नि और वायु का उपदेश किया है॥

उभा वामिन्द्राग्नीऽआहुवध्याऽउभा राधसः सह मादयध्यै।
उभा दातारविषाꣳ रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥१३॥

पदार्थः—मैं जो (उभा) दो (दातारौ) सुख देने के हेतु (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि हैं (वाम्) उनको (आहुवध्यै) गुण जानने के लिये (हुवे) ग्रहण करता हूं (राधसः) उत्तम सुखयुक्त राज्यादि धनों के भोग के (सह) साथ (मादयध्यै) आनन्द के लिये (वाम्) उन (उभा) दोनों को (हुवे) ग्रहण करता हूं तथा (इषाम्) सब को इष्ट (रयीणाम्) अत्यन्त उत्तम चक्रवर्ति राज्य आदि धन वा (वाजस्य) अत्यन्त उत्तम अन्न के (सातये) अच्छे प्रकार भोग करने के लिये (उभौ) उन दोनों को (हुवे) ग्रहण करता हूं ॥१३॥

भावार्थः—जो मनुष्य ईश्वर की सृष्टि में अग्नि और वायु के गुणों को जान कर कार्य्यों में संप्रयुक्त करके अपने-अपने कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वे सब भूगोल के राज्य आदि धनों को प्राप्त होकर आनन्द करते हैं इन से भिन्न मनुष्य नहीं ॥१३॥

अयन्त इत्यस्य देववातभरतावृषी। अग्निर्देवता। स्वराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर भी अगले मन्त्र में ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया है॥

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातोऽअरोचथाः। तं जानन्नग्नऽ-
आरोहाथा नो वर्द्धया रयिम् ॥१४॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जगदीश्वर! (ते) आपकी सृष्टि में जो (ऋत्वियः) ऋतु-ऋतु में प्राप्ति कराने योग्य अग्नि और जो वायु से (जातः) प्रसिद्ध हुआ (अरोचथाः) सब प्रकार प्रकाश करता है वा जो सूर्य आदि रूप से प्रकाश वाले

लोकों की (आरोह) उन्नति को सब ओर से बढ़ाता है और जो (नः) हमारे (रयिम्) राज्य आदि धन को बढ़ाता है (तम्) उस अग्नि को (जानन्) जानते हुए आप उससे (नः) हमारे (रयिम्) सब भूगोल के राज्य आदि से सिद्ध हुए धन को (वर्द्धय) वृद्धियुक्त कीजिये ॥१४॥

भावार्थः--मनुष्यों को जो सब काल में यथावत् उपयोग करने योग्य वा जो वायु के निमित्त से उत्पन्न हुआ तथा जो अनेक कार्य्यों की सिद्धिरूप कारण से सब को सुख देता है उस अग्नि को यथावत् जानकर उसका उपयोग करके सब कार्य्यों की सिद्धि करनी चाहिये ॥१४॥

अयमिहेत्यस्य वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर वह अग्नि कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठोऽअध्वरेष्वीड्यः। यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥१५॥

पदार्थः--(अप्नवानः) विद्यासन्तान अर्थात् विद्या पढ़ाकर विद्वान् कर देने वाले (भृगवः) यज्ञविद्या के जानने वाले विद्वान् लोग (इह) इस संसार में (वनेषु) अच्छे प्रकार सेवन करने योग्य (अध्वरेषु) उपासना अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध-पर्यन्त और शिल्पविद्यामय यज्ञों में (विशेविशे) प्रजा प्रजा के प्रति (विभ्वम्) व्याप्त-स्वभाव वा (चित्रम्) आश्चर्यगुणवाले (यम्) जिस ईश्वर और अग्नि को (विरुरुचुः) विशेष कर के प्रकाशित करते हैं (अयम्) वही (धातृभिः) यज्ञक्रिया के धारण करने वाले विद्वान् लोगों को (ईड्यः) खोज करने योग्य (प्रथमः) यज्ञक्रिया का आदि साधन (होता) यज्ञ का ग्रहण करने वाला (यजिष्ठः) उपासना और शिल्पविद्या का हेतु है, उसका (इह) इस संसार में (धायि) धारण करते हैं ॥१५॥

भावार्थः--इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। विद्वान् लोग यज्ञ की सिद्धि के लिये मुख्य करके उपास्यदेव और साधन भौतिक अग्नि को ग्रहण करके इस संसार में प्रजा के सुखों को नित्य सिद्ध करें ॥१५॥

अस्य प्रत्नामित्यस्यावत्सार ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अस्य प्रत्नामनु द्युतꣳ शुक्रं दुदुह्रेऽअह्रयः। पयः सहस्रसामृषिम् ॥१६॥

पदार्थः—(अह्वयः) सब विद्याओं को व्याप्त करने वाले विद्वान् लोग (अस्य) इस भौतिक अग्नि की (सहस्रसाम्) असंख्यात कार्यों को देने वा (ऋषिम्) कार्यसिद्धि की प्राप्ति की हेतु (प्रत्नाम्) प्राचीन अनादिस्वरूप से नित्य वर्त्तमान (ध्रुतम्) कारण में रहने वाली दीप्ति को जानकर (शुक्रम्) शुद्ध कार्यों को सिद्ध करने वाले (पयः) जल को (अनुदुदुह्रे) अच्छे प्रकार पूरण करते हैं अर्थात् अग्नि में हवनादि करके वृष्टि से संसार को पूरण करते हैं ॥१६॥

भावार्थः—मनुष्यों को जैसे गुणसहित अग्नि का कारणरूप वा अनादिपन से नित्यपन जानना योग्य है वैसे ही जगत् के अन्य पदार्थों का भी कारणरूप से अनादिपन जानना चाहिये। इनको जानकर कार्यों में उपयुक्त करके सब व्यवहारों की सिद्धि करनी चाहिये ॥१६॥

तनूपा इत्यस्यावत्सार ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब ईश्वर और भौतिक अग्नि क्या करते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

तनूपाऽअग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दाऽअग्नेऽस्यायुर्मे देहि वर्चोदाऽअग्नेऽसि वर्च्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनं तन्मऽआपृण ॥१७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जगदीश्वर! (यत्) जिस कारण आप (तनूपाः) सब मूर्तिमान् पदार्थों के शरीरों की रक्षा करने वाले (असि) हैं इससे आप (मे) मेरे (तन्वम्) शरीर की (पाहि) रक्षा कीजिये। हे (अग्ने) परमेश्वर! आप जैसे (आयुर्दाः) सब को आयु के देने वाले (असि) हैं वैसे (मे) मेरे लिये (आयुः) पूर्ण आयु अर्थात् सौ वर्ष तक जीवन (देहि) दीजिये। हे (अग्ने) सर्वविद्यामय ईश्वर! जैसे आप (वर्च्चोदाः) सब मनुष्यों को विज्ञान देने वाले (असि) हैं वैसे (मे) मेरे लिये भी ठीक ठीक गुणज्ञानपूर्वक (वर्च्चः) पूर्ण विद्या को (देहि) दीजिये। हे (अग्ने) सब कामों को पूरण करने वाले परमेश्वर! (मे) मेरे (तन्वाः) शरीर में (यत्) जितना (ऊनम्) बुद्धि बल और शौर्य आदि गुण कर्म है (तत्) उतना अंग (मे) मेरा (आपृण) अच्छे प्रकार पूरण कीजिये ॥१॥ (अग्ने) यह भौतिक अग्नि (यत्) जैसे (तनूपाः) पदार्थों की रक्षा का हेतु (असि) है वैसे जाठराग्निरूप से (मे) मेरे (तन्वम्) शरीर की (पाहि) रक्षा करता है (अग्ने) जैसे ज्ञान का निमित्त यह अग्नि (आयुर्दाः) सब के जीवन का हेतु (असि) है वैसे (मे) मेरे लिये भी (आयुः) जीवन के हेतु क्षुधा आदि गुणों को (देहि) देता है (अग्ने) यह अग्नि जैसे (वर्च्चोदाः) विज्ञानप्राप्ति का हेतु (असि) है वैसे (मे) मेरे लिये भी (वर्च्चः) विद्याप्राप्ति के निमित्त बुद्धिबलादि को (देहि) देता है तथा (अग्ने) जो कामना के पूरण करने में हेतु भौतिक अग्नि है

वह (यत्) जितना (मे) मेरे (तन्वाः) शरीर में बुद्धि आदि सामर्थ्य (ऊनम्) कम है (तत्) उतना गुण (आपृण) पूरण करता है ॥२॥ ॥१७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जिस कारण परमेश्वर ने इस संसार में सब प्राणियों के लिये शरीर के आयुनिमित्त विद्या का प्रकाश और सब अङ्गों की पूर्णता रची है, इसी से सब पदार्थ अपने अपने स्वरूप को धारण करते हैं इसी प्रकार परमेश्वर की सृष्टि में प्रकाश आदि गुणवान् होने से यह अग्नि भी सब पदार्थों के पालन का मुख्य साधन है ॥१७॥

इन्धानास्त्वेत्यस्याऽवत्सार ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर भी अगले मन्त्र में परमेश्वर और भौतिक अग्नि का प्रकाश किया है॥

इन्धानास्त्वा शतꣳ हिमा द्युमन्तꣳ समिधीमहि। वयस्वन्तो वयस्कृतꣳ सहस्वन्तः सहस्कृतम्। अग्ने सपत्नदम्भनमदब्धासोऽअदाभ्यम्। चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय ॥१८॥

पदार्थः—हे (चित्रावसो) आश्चर्यरूप धन वाले (अग्ने) परमेश्वर! (अदब्धासः) दम्भ, अहंकार और हिंसादि दोषरहित (वयस्वन्तः) प्रशंसनीय पूर्ण अवस्थायुक्त (सहस्वन्तः) अत्यन्त सहनस्वभावसहित (अदाभ्यम्) मानने योग्य (सपत्नदम्भनम्) शत्रुओं के नाश करने (वयस्कृतम्) अवस्था की पूर्ति करने (सहस्कृतम्) सहन करने कराने तथा (द्युमन्तम्) अनन्त प्रकाश वाले (त्वा) आपका (इन्धानाः) उपदेश और श्रवण करते हुए हम लोग (शतम्) सौ वर्ष तक वा सौ से अधिक (हिमाः) हेमन्त ऋतुयुक्त (समिधीमहि) अच्छे प्रकार प्रकाश करें वा जीवें, इस प्रकार करता हुआ मैं भी जो (ते) आपकी कृपा से सब दुःखों से (पारम्) पार होकर (स्वस्ति) सुख को (अशीय) प्राप्त होऊं ॥१॥ (अदब्धासः) दम्भ, अहङ्कार, हिंसादि दोषरहित (वयस्वन्तः) पूर्ण अवस्थायुक्त (सहस्वन्तः) अत्यन्त सहन करने वाले (त्वा) उस (अदाभ्यम्) उपयोग करने योग्य (सपत्नदम्भनम्) आग्नेयादि शस्त्र अस्त्रविद्या में हेतु होने से शत्रुओं को जिताने (वयस्कृतम्) अवस्था को बढ़ाने (सहस्कृतम्) सहन का हेतु (द्युमन्तम्) अच्छे प्रकार प्रकाशयुक्त (अग्ने) कार्यों को प्राप्त कराने वाले भौतिक अग्नि को (इन्धानाः) प्रज्वलित करते हुए हम लोग (शतम्) सौ वर्ष पर्यन्त (हिमाः) हेमन्तऋतुयुक्त (समिधीमहि) जीवें, इस प्रकार करता हुआ मैं भी जो यह (चित्रावसो) आश्चर्यरूप धन के प्राप्ति का हेतु अग्नि है (ते) उसके प्रकाश से दारिद्र्य आदि दुःखों से (पारम्) पार होकर (स्वस्ति) अत्यन्त सुख को (अशीय) प्राप्त होऊं ॥२॥ ॥१८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को अपने पुरुषार्थ, ईश्वर की उपासना तथा अग्नि आदि पदार्थों से उपकार लेके दुःखों से पृथक् होकर उत्तम उत्तम सुखों को प्राप्त होकर सौ वर्ष जीना चाहिये अर्थात् क्षणभर भी आलस्य में नहीं रहना किन्तु जैसे पुरुषार्थ की वृद्धि हो वैसा अनुष्ठान निरन्तर करना चाहिये ॥१८॥

सन्त्वमित्यस्यावत्सार ऋषिः। अग्निर्देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर भी परमेश्वर और अग्नि कैसे हैं सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है॥

सं त्वमग्ने सूर्यस्य वर्चसागथाः समृषीणाꣳ स्तुतेन। सं प्रियेण धाम्ना समहमायुषा सं वर्चसा सं प्रजया सꣳ रायस्पोषेण ग्मिषीय ॥१९॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जगदीश्वर! जो आप (सूर्यस्य) सब के अन्तर्गत प्राण वा (ऋषीणाम्) वेदमन्त्रों के अर्थों को देखने वाले विद्वानों की जिस (संस्तुतेन) स्तुति करने (संप्रियेण) प्रसन्नता से मानने (संवर्चसा) विद्याध्ययन और प्रकाश करने (धाम्ना) स्थान (समायुषा) उत्तम जीवन (संप्रजया) सन्तान वा राज्य और (रायस्पोषेण) उत्तम धनों के भोग पुष्टि के साथ (समगथाः) प्राप्त होते हैं। उसी के साथ (अहम्) मैं भी सब सुखों को (संग्मिषीय) प्राप्त होऊं ॥१॥ जो (अग्ने) भौतिक अग्नि पूर्व कहे हुए सबों के (समगथाः) सङ्गत होकर प्रकाश को प्राप्त होता है उस सिद्ध किये हुए अग्नि के साथ (अहम्) मैं व्यवहार के सब सुखों को (संग्मिषीय) प्राप्त होऊं ॥२॥ ॥१९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्य लोग ईश्वर की आज्ञा का पालन, अपना पुरुषार्थ और अग्नि आदि पदार्थों के संप्रयोग से इन सब सुखों को प्राप्त होते हैं ॥१९॥

अन्धस्थेत्यस्य याज्ञवल्क्य ऋषिः। आपो देवता। भुरिग्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अब अगले मन्त्र में यज्ञ से शुद्ध किये ओषधी आदि पदार्थों का उपदेश किया है॥

अन्ध स्थान्धो वो भक्षीय मह स्थ महो वो भक्षीयोर्ज स्थोर्जं वो भक्षीय रायस्पोष स्थ रायस्पोषं वो भक्षीय ॥२०॥

पदार्थः—जो (अन्धः) बलवान् वृक्ष वा ओषधि आदि पदार्थ (स्थ) हैं (वः) उनके सकाश से मैं (अन्धः) वीर्य को पुष्ट करने वाले अन्नों को (भक्षीय) ग्रहण

करूं। जो (महः) बड़े बड़े वायु अग्नि आदि वा विद्या आदि पदार्थ (स्थ) हैं (वः) उनसे मैं (महः) बड़ी बड़ी क्रियाओं की सिद्धि करने वाले कर्मों का (भक्षीय) सेवन करूं। जो (ऊर्जः) जल, दूध, घी, मिष्ट वा फल आदि रसवाले पदार्थ (स्थ) हैं (वः) उनसे मैं (ऊर्जम्) पराक्रमयुक्त रस का (भक्षीय) भोग करूं और जो (रायस्पोषः) अनेक गुणयुक्त पदार्थ (स्थ) हैं (वः) उन चक्रवर्तिराज्य और श्री आदि पदार्थों के मैं (रायस्पोषम्) उत्तम-उत्तम धनों के भोग का (भक्षीय) सेवन करूं ॥२०॥

भावार्थः—मनुष्यों को जगत् के पदार्थों के गुण-ज्ञान-पूर्वक क्रिया की कुशलता से उपकार को ग्रहण करके सब सुखों का भोग करना चाहिये ॥२०॥

रेवतीरित्यस्य याज्ञवल्क्य ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। उष्णिक् छन्दः ऋषभः स्वरः॥

अब विद्वानों के सत्कार के लिये उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

रेवती रमध्वमस्मिन्योनावस्मिन् गोष्ठेऽस्मिँल्लोकेऽस्मिन् क्षये। इहैव स्त मापगात ॥२१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जो (रेवतीः) विद्या, धन, इन्द्रिय, पशु और पृथिवी के राज्य आदि से युक्त श्रेष्ठ नीति (स्त) हैं वे (अस्मिन्) इस (योनौ) जन्मस्थल (अस्मिन्गोष्ठे) इन्द्रिय वा पशु आदि के रहने के स्थान (अस्मिँल्लोके) संसार वा (अस्मिन् क्षये) अपने रचे हुए घरों में (रमध्वम्) रमण करें ऐसी इच्छा करते हुए तुम लोग (इहैव) इन्हीं में प्रवृत्त होओ अर्थात् (मापगात) इनसे दूर कभी मत जाओ ॥२१॥

भावार्थः—जहाँ विद्वान् लोग निवास करते हैं वहाँ प्रजा विद्या उत्तम शिक्षा और धनवाली होकर निरन्तर सुखों से युक्त होती है। इससे मनुष्यों को ऐसी इच्छा करनी चाहिये कि हमारा और विद्वानों का नित्य समागम बना रहे अर्थात् कभी हम लोग विरोध से पृथक् होवें ॥२१॥

सं हितेत्यस्य वैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। पूर्वार्द्धस्य भुरिगासुरी गायत्री। उपत्वेत्यन्तस्य गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब अगले मन्त्र में अग्निशब्द से बिजुली के कर्म्मों का उपदेश किया है॥

सꣳहितासि विश्वरूप्यूर्जा माविश गौपत्येन। उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्तऽएमसि ॥२२॥

पदार्थः—(नमः) अन्न को (भरन्तः) धारण करते हुए हम लोग (धिया) अपनी बुद्धि वा कर्म्म से जो (अग्ने) अग्नि विजुली रूप से सब पदार्थों के (संहिता) साथ (ऊर्जा) वेग वा पराक्रम आदि गुणयुक्त (विश्वरूपी) सब पदार्थों में रूपगुणयुक्त (गौपत्येन) इन्द्रिय वा पशुओं के पालन करने वाले जीव के साथ वर्त्तमान होने से (मा) मुझ में (आविश) प्रवेश करता है (त्वा) उस (दोषावस्तः) रात्रि को अपने तेज से दूर करने वाले (अग्ने) विद्युद्रूप अग्नि को ज्ञान के प्रकाश होने के लिये (दिवेदिवे) प्रतिदिन (उपैमसि) समीप प्राप्त करते हैं ॥२२॥

भावार्थः—मनुष्यों को ऐसा जानना चाहिये कि जिस ईश्वर ने सब जगह मूर्त्तिमान् द्रव्यों में विजुलीरूप से परिपूर्ण सब रूपों का प्रकाश करने चेष्टा आदि व्यवहारों का हेतु विचित्र गुण वाला अग्नि रचा है उसी की उपासना नित्य करनी चाहिये ॥२२॥

राजन्तमित्यस्य वैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर ईश्वर और अग्नि के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्द्धमानꣳस्वे दमे ॥२३॥

पदार्थः—(नमः) अन्न से सत्कारपूर्वक (भरन्तः) धारण करते हुए हम लोग (धिया) बुद्धि वा कर्म से (अध्वराणाम्) अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेधपर्यन्त यज्ञ वा (गोपाम्) इन्द्रिय पृथिव्यादि की रक्षा करने (राजन्तम्) प्रकाशमान (ऋतस्य) अनादि सत्यस्वरूप कारण के (दीदिविम्) व्यवहार को करने वा (स्वे) अपने (दमे) मोक्षरूप स्थान में (वर्धमानम्) वृद्धि को प्राप्त होने वाले परमात्मा को (उपैमसि) नित्य प्राप्त होते हैं ॥१॥ जिस परमात्मा ने (अध्वराणाम्) शिल्पविद्यासाध्य यज्ञ वा (गोपाम्) पश्वादि की रक्षा करने वाला, (राजन्तम्) प्रकाशमान (ऋतस्य) जल के (दीदिविम्) व्यवहार को प्रकाश करने वाला वा (स्वे) अपने (दमे) शान्तस्वरूप में (वर्धमानम्) वृद्धि को प्राप्त होता हुआ अग्नि प्रकाशित किया है उसको (नमः) सत्क्रिया से (भरन्तः) धारण करते हुए हम लोग (धिया) बुद्धि और कर्म से (उपैमसि) नित्य प्राप्त होते हैं ॥२॥ ॥२३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है और नमः, भरन्तः धिया, उप, आ, इमसि, इन छः पदों की अनुवृत्ति पूर्वमन्त्र से जाननी चाहिये। परमेश्वर आदिरहित सत्यकारणरूप से सम्पूर्ण कार्यों को रचता और भौतिक अग्नि जल की प्राप्ति के द्वारा सब व्यवहारों को सिद्ध करता है, ऐसा मनुष्यों को जानना चाहिये ॥२३॥

स न इत्यस्य वैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर ही का उपदेश किया है ॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥२४॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जगदीश्वर ! जो आप कृपा करके जैसे (सूनवे) अपने पुत्र के लिये (पितेव) पिता अच्छे अच्छे गुणों को सिखलाता है वैसे (नः) हमारे लिये (सूपायनः) श्रेष्ठ ज्ञान के देने वाले (भव) हैं वैसे (सः) सो आप (नः) हम लोगों को (स्वस्तये) सुख के लिये निरन्तर (सचस्व) संयुक्त कीजिये ॥२४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे सब के पालन करने वाले परमेश्वर ! जैसे कृपा करने वाला कोई विद्वान् मनुष्य अपने पुत्रों की रक्षा कर श्रेष्ठ-श्रेष्ठ शिक्षा देकर विद्या, धर्म, अच्छे-अच्छे स्वभाव और सत्य विद्या आदि गुणों में संयुक्त करता है वैसे ही आप हम लोगों की निरन्तर रक्षा करके श्रेष्ठ-श्रेष्ठ व्यवहारों में संयुक्त कीजिये ॥२४॥

अग्ने त्वमित्यस्य सुबन्धुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्ने त्वं नोऽअन्तमऽउत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः । वसु-रग्निर्वसुश्रवाऽअच्छा नक्षि द्युमत्तमᳪ रयिं दाः ॥२५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) सब की रक्षा करने वाले जगदीश्वर ! जो (त्वम्) आप (वसुश्रवाः) सब को सुनने के लिये श्रेष्ठ कानों को देने (वसुः) सब प्राणी जिसमें वास करते हैं वा सब प्राणियों के बीच में वसने हारे और (अग्निः) विज्ञानप्रकाश-युक्त (नक्षि) सब जगह व्याप्त अर्थात् रहने वाले हैं सो आप (नः) हम लोगों के (अन्तमः) अन्तर्यामी वा जीवन के हेतु (त्राता) रक्षा करने वाले (वरूथ्यः) श्रेष्ठ गुण कर्म और स्वभाव में होने (शिवः) तथा मङ्गलमय मङ्गल करने वाले (भव) हूजिये और (उत) भी (नः) हम लोगों के लिये (द्युमत्तमम्) उत्तम प्रकाशों से युक्त (रयिम्) विद्या, चक्रवर्ति राज्य आदि धनों को (अच्छ दाः) अच्छे प्रकार दीजिये ॥२५॥

भावार्थः—मनुष्यों को ऐसा जानना चाहिए कि परमेश्वर को छोड़-कर और हमारी रक्षा करने वा सब सुखों के साधनों का देने वाला कोई

नहीं है क्योंकि वही अपने सामर्थ्य से सब जगह परिपूर्ण हो रहा है ॥२५॥

तन्त्वेत्यस्य सुबन्धुर्ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराड्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः। स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णोऽअघायतः समस्मात् ॥२६॥

पदार्थः—हे (शोचिष्ठ) अत्यन्त शुद्धस्वरूप (दीदिवः) स्वयं प्रकाशमान आनन्द के देने वाले जगदीश्वर! हम लोग (नः) अपने वा (सखिभ्यः) मित्रों के (सुम्नाय) सुख के लिये (तं त्वा) आप से (ईमहे) याचना करते हैं तथा जो आप (नः) हम को (बोधि) अच्छे प्रकार विज्ञान को देते हैं (सः) सो आप (नः) हमारे (हवम्) सुनने सुनाने योग्य स्तुतिसमूह यज्ञ को (श्रुधि) कृपा करके श्रवण कीजिये और (नः) हम को (समस्मात्) सब प्रकार (अघायतः) पापाचरणों से अर्थात् दूसरे को पीड़ा करने रूप पापों से (उरुष्य) अलग रखिये ॥२६॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को अपने मित्र और सब प्राणियों के सुख के लिये परमेश्वर की प्रार्थना करना और वैसा ही आचरण भी करना कि जिससे प्रार्थित किया हुआ परमेश्वर अधर्म से अलग होने की इच्छा करने वाले मनुष्यों को अपनी सत्ता से पापों से पृथक् कर देता है वैसे ही उन मनुष्यों को भी पापों से बचकर धर्म के करने में निरन्तर प्रवृत्त होना चाहिये ॥२६॥

इड एह्यवत इत्यस्य श्रुतबन्धुर्ऋषिः। अग्निर्देवता। विराड्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

फिर उस की प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इडऽएह्यदितऽएहि काम्याऽएत। मयि वः कामधरणं भूयात् ॥२७॥

पदार्थः—हे परमेश्वर! आपकी कृपा से (इडे) यह पृथिवी मुझ को राज्य करने के लिये (एहि) अवश्य प्राप्त हो तथा (अदिते) सब सुखों को प्राप्त कराने वाली नाशरहित राजनीति (एहि) प्राप्त हो। इसी प्रकार हे भगवन् अपनी पृथिवी और राजनीति के द्वारा (काम्याः) इष्ट-इष्ट पदार्थ (एत) प्राप्त हों तथा (मयि) मेरे बीच में (वः) उन पदार्थों की (कामधरणम्) स्थिरता (भूयात्) यथावत् हो ॥२७॥

भावार्थः—मनुष्यों को उत्तम उत्तम पदार्थों की कामना निरन्तर करनी तथा उनकी प्राप्ति के लिए परमेश्वर की प्रार्थना और सदा पुरुषार्थ करना चाहिए। कोई मनुष्य अच्छी वा बुरी कामना के विना क्षणभर भी स्थित होने को समर्थ नहीं हो सकता इससे सब मनुष्यों को अधर्मयुक्त व्यवहारों की कामना को छोड़कर धर्मयुक्त व्यवहारों की जितनी इच्छा बढ़ सके उतनी बढ़ानी चाहिए ॥२७॥

सोमानमित्यस्य प्रबन्धुर्ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। विराड् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उस जगदीश्वर की किसलिये प्रार्थना करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

सोमान॑ᳬ स्वर॑णं कृणुहि ब्रह्मणस्पते। कक्षीव॑न्तं य॒ऽऔशि॒जः॥२८॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मणस्पते) सनातन वेदशास्त्र के पालन करने वाले जगदीश्वर! आप (यः) जो मैं (औशिजः) सब विद्याओं के प्रकाश करने वाले विद्वान् के पुत्र के तुल्य हूं उस मुझ को (कक्षीवन्तम्) विद्या पढ़ने में उत्तम नीतियों से युक्त (स्वरणम्) सब विद्याओं का कहने और (सोमानम्) ओषधिओं के रसों का निकालने तथा विद्या की सिद्धि करने वाला (कृणुहि) कीजिये। ऐसा ही व्याख्यान इस मन्त्र का निरुक्तकार यास्कमुनिजी ने भी किया है सो पूर्व लिखे हुए संस्कृत में देख लेना॥२८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। पुत्र दो प्रकार के होते हैं, एक तो औरस अर्थात् जो अपने वीर्य से उत्पन्न होता और दूसरा जो विद्या पढ़ाने के लिये विद्वान् किया जाता है। हम सब मनुष्यों को इसलिये ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये कि जिससे हम लोग विद्या से प्रकाशित सब क्रियाओं में कुशल} और प्रीति से विद्या के पढ़ाने वाले पुत्रों से युक्त हों॥२८॥

यो रेवानित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर वह ईश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

यो रे॒वान् योऽअ॑मीव॒हा व॑सु॒वित् पु॑ष्टि॒वर्द्ध॑नः। स नः॑ सिषक्तु यस्तु॒रः॥२९॥

पदार्थः—(यः) जो वेदशास्त्र का पालन करने (रेवान्) विद्या आदि अनन्त धनवान् (अमीवहा) अविद्या आदि रोगों को दूर करने वा कराने (वसुवित्) सब

वस्तुओं को यथावत् जानने (पुष्टिवर्द्धनः) पुष्टि अर्थात् शरीर वा आत्मा के बल को बढ़ाने और (तुरः) अच्छे कामों में जल्दी प्रवेश करने वा कराने वाला जगदीश्वर है (सः) वह (नः) हम लोगों को उत्तम उत्तम कर्म वा गुणों के साथ (सिषक्तु) संयुक्त करे ।।२९।।

भावार्थः—जो इस संसार में धन है सो सब जगदीश्वर का ही है। मनुष्य लोग जैसी परमेश्वर की प्रार्थना करें वैसा ही उनको पुरुषार्थ भी करना चाहिये। जैसे विद्या आदि धन वाला परमेश्वर है ऐसा विशेषण ईश्वर का कह वा सुन कर कोई मनुष्य कृतकृत्य अर्थात् विद्या आदि धन वाला नहीं हो सकता, किन्तु अपने पुरुषार्थ से विद्या आदि धन की वृद्धि वा रक्षा निरन्तर करनी चाहिये जैसे परमेश्वर अविद्या आदि रोगों को दूर करने वाला है, वैसे मनुष्यों को भी उचित है कि आप भी अविद्या आदि रोगों को निरन्तर दूर करें। जैसे वह वस्तुओं को यथावत् जानता है वैसे मनुष्यों को भी उचित है कि अपने सामर्थ्य के अनुसार सब पदार्थ-विद्याओं को यथावत् जानें जैसे वह सब की पुष्टि को बढ़ाता है, वैसे मनुष्य भी सब के पुष्टि आदि गुणों को निरन्तर बढ़ावें। जैसे वह अच्छे-अच्छे कार्यों को बनाने में शीघ्रता करता है, वैसे मनुष्य भी उत्तम उत्तम कार्यों को त्वरा से करें और जैसे हम लोग उस परमेश्वर की उत्तम कर्मों के लिये प्रार्थना निरन्तर करते हैं, वैसे परमेश्वर भी हम सब मनुष्यों को उत्तम पुरुषार्थ से उत्तम उत्तम गुण वा कर्म्मों के आचरण के साथ निरन्तर संयुक्त करे ।।२९।।

मान इत्यस्य सप्तधृतिर्वारुणिर्ऋषिः। ब्रह्मणस्पतिर्देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ।।

फिर भी उस परमेश्वर की प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

मा नः॒ शꣳसो॒ऽअर॑रुषो धू॒र्तिः प्रण॒ङ् मर्त्य॑स्य। रक्षा॑ णो ब्रह्मणस्पते ।।३०।।

पदार्थः—हे (ब्रह्मणस्पते) जगदीश्वर! आप की कृपा से (नः) हमारी वेद-विद्या (मा प्रणक्) कभी नष्ट मत हो और जो (अररुषः) दान आदि धर्मरहित पर-धन ग्रहण करने वाले (मर्त्यस्य) मनुष्य की (धूर्तिः) हिंसा अर्थात् द्रोह है उस से (नः) हम लोगों की निरन्तर (रक्ष) रक्षा कीजिये ।।३०।।

भावार्थः—मनुष्यों को सदा उत्तम-उत्तम काम करना और बुरे-बुरे

काम छोड़ना तथा किसी के साथ द्रोह वा दुष्टों का सङ्ग भी न करना और धर्म की रक्षा वा परमेश्वर की उपासना स्तुति और प्रार्थना निरन्तर करनी चाहिये ॥३०॥

महि त्रीणामित्यस्य सप्तधृतिर्वारुणिर्ऋषिः। आदित्यो देवता। विराड् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर भी उसकी प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

महि॒ त्री॒णामवो॑ऽस्तु द्यु॒क्षं मि॒त्रस्या॑र्य॒म्णः। दु॒रा॒धर्षं॒ वरु॑णस्य ॥३१॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मणस्पते) जगदीश्वर! आप की कृपा से (मित्रस्य) बाहर वा भीतर रहने वाला जो प्राणवायु तथा (अर्यम्णः) जो आकर्षण से पृथिवी आदि पदार्थों को धारण करने वाला सूर्य्यलोक और (वरुणस्य) जल (त्रीणाम्) इन तीनों के प्रकाश से (नः) हम लोगों के (द्युक्षम्) जिस में नीति का प्रकाश निवास करता है वा (दुराधर्षम्) अति कष्ट से ग्रहण करने योग्य दृढ़ (महि) बड़े वेदविद्या की (अवः) रक्षा (अस्तु) हो ॥३१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से (ब्रह्मणस्पते, नः) इन दो पदों की अनुवृत्ति जाननी चाहिये। मनुष्यों को सब पदार्थों से अपनी वा औरों की न्यायपूर्वक रक्षा करके यथावत् राज्य का पालन करना चाहिये ॥३१॥

महि तेषामित्यस्य सप्तधृतिर्वारुणिर्ऋषिः। आदित्यो देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

न॒हि तेषा॑म॒मा च॒न नाध्व॑सु वा॒र॒णेषु॑। ईशे॑ रि॒पु॒र॒घशं॑सः ॥३२॥

पदार्थः—जो ईश्वर की उपासना करने वाले मनुष्य हैं (तेषाम्) उनके (अमा) गृह (अध्वसु) मार्ग और (वारणेषु) चोर, शत्रु, डाकू, व्याघ्र आदि के निवारण करने वाले संग्रामों में (चन) भी (अघशंसः) पापरूप कर्मों का कथन करने वाला (रिपुः) शत्रु (नहि) नहीं स्थित होता और (न) न उनको क्लेश देने को समर्थ हो सकता उस ईश्वर और उन धार्मिक विद्वानों के प्राप्त होने को मैं (ईशे) समर्थ होता हूं ॥३२॥

भावार्थः—जो धर्मात्मा वा सब के उपकार करने वाले मनुष्य हैं

उनको भय कहीं नहीं होता और शत्रुओं से रहित मनुष्य का कोई शत्रु भी नहीं होता ॥३२॥

ते हीत्यस्य वारुणिः सप्तधृतिर्ऋषिः । आदित्यो देवता । विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

आदित्यों के क्या क्या कर्म हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

ते हि पुत्रासोऽअदितेः प्र जीवसे मर्त्याय । ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥३३॥

पदार्थः—जो (अदितेः) नाशरहित कारणरूपी शक्ति के (पुत्रासः) बाहिर और भीतर रहने वाले प्राण, सूर्यलोक पवन और जल आदि पुत्र हैं (ते) वे (हि) ही (मर्त्याय) मनुष्यों के मरने वा (जीवसे) जीने के लिये (अजस्रम्) निरन्तर (ज्योतिः) तेज या प्रकाश को (यच्छन्ति) देते हैं ॥३३॥

भावार्थः—जो ये कारणरूपी समर्थ पदार्थों के उत्पन्न हुए प्राण, सूर्यलोक, वायु वा जल आदि पदार्थ हैं वे ज्योति अर्थात् तेज को देते हुए सब प्राणियों के जीवन वा मरने के लिये निमित्त होते हैं ॥३३॥

कदा चनेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । पथ्या बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

वह इन्द्र कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे । उपोपेन्नु मघवन् भूयऽइन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥३४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सुख देने वाले ईश्वर ! जो आप (स्तरीः) सुखों से आच्छादन करने वाले (असि) हैं और (दाशुषे) विद्या आदि दान करने वाले मनुष्य के लिये (कदाचन) कभी (इत्) ज्ञान को (नु) शीघ्र (सश्चसि) प्राप्त (न) नहीं करते तो उस काल में हे (मघवन्) विद्यादि धन वाले जगदीश्वर ! (देवस्य) कर्म्मफल के देने वाले (ते) आप के (दानम्) दिये हुए (इत्) ही ज्ञान को (दाशुषे) विद्यादि देने वाले के लिये (भूयः) फिर (नु) शीघ्र (उपोपपृच्यते) प्राप्त (कदाचन) कभी (न) नहीं होता ॥३४॥

भावार्थः—जो जगदीश्वर कर्म्म के फल को देने वाला नहीं होता तो कोई भी प्राणी व्यवस्था के साथ किसी कर्म्म के फल को प्राप्त नहीं हो सकता ॥३४॥

तत्सवितुरित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

उस जगदीश्वर की कैसी स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

तत् स॑वि॒तुर्वरे॑ण्यं॒ भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि । धियो॒ यो नः॑ प्र॒चोदया॑त् ॥३५॥

पदार्थः—हम लोग (सवितुः) सब जगत् के उत्पन्न करने वा (देवस्य) प्रकाशमय शुद्ध वा सुख देने वाले परमेश्वर का जो (वरेण्यम्) अति श्रेष्ठ (भर्गः) पापरूप दुःखों के मूल को नष्ट करने वाला (तेजः) स्वरूप है (तत्) उसको (धीमहि) धारण करें और (यः) जो अन्तर्यामी सब सुखों का देने वाला है वह अपनी करुणा करके (नः) हम लोगों की (धियः) बुद्धियों को उत्तम-उत्तम गुण, कर्म, स्वभावों में (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे ॥३५॥

भावार्थः—मनुष्यों को अत्यन्त उचित है कि इस सब जगत् के उत्पन्न करने वा सब से उत्तम सब दोषों के नाश करने तथा अत्यन्त शुद्ध परमेश्वर ही की स्तुति प्रार्थना और उपासना करें। किस प्रयोजन के लिये जिससे वह धारण वा प्रार्थना किया हुआ हम लोगों को खोटे-खोटे गुण और कर्म्मों से अलग करके अच्छे-अच्छे गुण, कर्म्म और स्वभावों में प्रवृत्त करे इस-लिये। और प्रार्थना का मुख्य सिद्धान्त यही है कि जैसी प्रार्थना करनी वैसा ही पुरुषार्थ से कर्म्म का आचरण करना चाहिये ॥३५॥

परि त इत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

वह परमेश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

परि॑ ते दू॒डभो॒ रथो॒ऽस्माँ२॥ऽअ॑श्नोतु वि॒श्वतः॑ । येन॒ रक्ष॑सि दा॒शुषः॑ ॥३६॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! आप (येन) जिस ज्ञान से (दाशुषः) विद्यादि दान करने वाले विद्वानों को (विश्वतः) सब ओर से (रक्षसि) रक्षा करते और जो (ते) आपका (दूडभः) दुःख से भी नहीं नष्ट होने योग्य (रथः) सब को जानने योग्य विज्ञान सब ओर से रक्षा करने के लिये है वह (अस्मान्) आपकी आज्ञा के सेवन करने वाले हम लोगों को (परि) सब प्रकार (अश्नोतु) प्राप्त हो ॥३६॥

भावार्थः—मनुष्यों को सब की रक्षा करने वाले परमेश्वर वा विज्ञानों

की प्राप्ति के लिये प्रार्थना और अपना पुरुषार्थ नित्य करना चाहिये जिससे हम लोग अविद्या अधर्म आदि दोषों को त्याग करके उत्तम-उत्तम विद्या, धर्म्म आदि शुभगुणों को प्राप्त होके सदा सुखी होवें ॥३६॥

भूर्भुवरित्यस्य वामदेव ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

फिर उस जगदीश्वर की प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳬ सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः। नर्य प्रजां मे पाहि शᳬस्य पशून् मे पाह्यथर्य पितुं मे पाहि ॥३७॥

पदार्थः—हे (नर्य) नीतियुक्त मनुष्यों पर कृपा करने वाले परमेश्वर! आप कृपा करके (मे) मेरी (प्रजाम्) पुत्र आदि प्रजा की (पाहि) रक्षा कीजिये वा (मे) मेरे (पशून्) गौ घोड़े हाथी आदि पशुओं की (पाहि) रक्षा कीजिये। हे (अथर्य) सन्देह रहित जगदीश्वर! आप (मे) मेरे (पितुम्) अन्न की (पाहि) रक्षा कीजिये। हे (शंस्य) स्तुति करने योग्य ईश्वर! आपकी कृपा से मैं (भूर्भुवः स्वः) जो प्रिय-स्वरूप, प्राण, वल का हेतु उदान तथा सब चेष्टा आदि व्यवहारों का हेतु व्यान वायु है, उनके साथ युक्त होके (प्रजाभिः) अपने अनुकूल स्त्री, पुत्र, विद्या, धर्म्म, मित्र, भृत्य, पशु आदि पदार्थों के साथ (सुप्रजाः) उत्तम विद्या, धर्म्म युक्त प्रजा-सहित वा (वीरैः) शौर्य, धैर्य, विद्या शत्रुओं के निवारण प्रजा के पालन में कुशलों के साथ (सुवीरः) उत्तम शूरवीरयुक्त और (पोषैः) पुष्टिकारक पूर्ण विद्या से उत्पन्न हुए व्यवहारों के साथ (सुपोषः) उत्तम पुष्टि उत्पादन करने वाला (स्याम्) नित्य होऊँ ॥३७॥

भावार्थः—मनुष्यों को ईश्वर की उपासना वा उस की आज्ञा के पालन का आश्रय लेकर उत्तम उत्तम प्रजा, शूरता, पुष्टि आदि कारणों से प्रजा का पालन करके निरन्तर सुखों को सिद्ध करना चाहिये ॥३७॥

आगन्मेत्यस्यासुरिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। अनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

अब अग्नि शब्द से ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया है ॥

आगन्म विश्ववेदसमस्मभ्यं वसुवित्तमम्। अग्ने सम्राडभि द्युम्नमभि सहऽआयच्छस्व ॥३८॥

पदार्थः—हे (सम्राट्) प्रकाशस्वरूप (अग्ने) जगदीश्वर ! आप (अस्मभ्यम्) उपासना करने वाले हम लोगों के लिये (द्युम्नम्) प्रकाशस्वरूप उत्तम यश वा (सहः) उत्तम बल को (अभ्यायच्छस्व) सब ओर से विस्तारयुक्त करते हो इसलिये हम लोग (वसुवित्तमम्) पृथिवी आदि लोकों के जानने वा (विश्ववेदसम्) सब सुखों के जानने वाले आपको (अभ्यागन्म) सब प्रकार प्राप्त होवें ॥१॥ जो यह (सम्राट्) प्रकाश होने वाला (अग्ने) भौतिक अग्नि (अस्मभ्यम्) यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले हम लोगों के लिये (द्युम्नम्) उत्तम-उत्तम यश वा (सहः) उत्तम उत्तम बल को (अभ्यायच्छस्व) सब प्रकार विस्तारयुक्त करता है उस (वसुमित्तमम्) पृथिवी आदि लोकों को सूर्यरूप से प्रकाश करके प्राप्त कराने वा (विश्ववेदसम्) सब सुखों को जनाने वाले अग्नि को हम लोग (अभ्यागन्म) सब प्रकार प्राप्त होवें ॥२॥३८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को परमेश्वर वा भौतिक अग्नि के गुणों को जानने वा उसके अनुसार अनुष्ठान करने से कीर्ति यश और बल का विस्तार करना चाहिये ॥३८॥

अयमग्निरित्यस्यासुरिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिग्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया है॥

अयमग्निर्गृहपतिर्गार्हपत्यः प्रजाया वसुवित्तमः। अग्ने गृहपतेऽभि द्युम्नमभि सहऽआयच्छस्व ॥३९॥

पदार्थः—हे (गृहपते) घर के पालन करने वाले (अग्ने) परमेश्वर ! जो (अयम्) यह आप (गृहपतिः) स्थान विशेषों के पालन के हेतु (गार्हपत्यः) घर के पालन करने वालों के साथ संयुक्त (प्रजया वसुवित्तमः) प्रजा के लिये सब प्रकार धन प्राप्त कराने वाले हैं सो आप जिस कारण (द्युम्नम्) सुख और प्रकाश से युक्त धन को (अभ्यायच्छस्व) अच्छी प्रकार दीजिये। तथा (सहः) उत्तम बल पराक्रम (अभ्यायच्छस्व) अच्छी प्रकार दीजिये ॥१॥ जिस कारण जो (गृहपतिः) उत्तम स्थानों के पालन का हेतु (प्रजायाः) पुत्र मित्र स्त्री और भृत्य आदि प्रजा को (वसुवित्तमः) द्रव्यादि को प्राप्त कराने वा (गार्हपत्यः) गृहों के पालन करने वालों के साथ संयुक्त (अयम्) यह (अग्ने) बिजुली सूर्य वा प्रत्यक्षरूप से अग्नि है इससे वह (गृहपते) घरों का पालन करने वाला (अग्ने) अग्नि हम लोगों के लिये (अभिद्युम्नम्) सब ओर से उत्तम उत्तम धन वा (सहः) उत्तम उत्तम बलों को (अभ्यायच्छस्व) सब प्रकार से विस्तारयुक्त करता है ॥३९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। गृहस्थ लोग जब ईश्वर की

उपासना और उसकी आज्ञा में प्रवृत्त होके कार्य्यं की सिद्धि के लिये इस अग्नि को संयुक्त करते हैं तब वह अग्नि अनेक प्रकार के धन और बलों को विस्तारयुक्त करता है। क्योंकि यह प्रजा में पदार्थों की प्राप्ति के लिये अत्यन्त सिद्धि करने हारा है ॥३९॥

अयमग्निः पुरीष्य इत्यस्यासुरिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर भौतिक अग्नि कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अयमग्निः पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिवर्द्धनः। अग्ने पुरीष्याभि द्युम्नमभि सहऽआयच्छस्व ॥४०॥

पदार्थः—हे (पुरीष्य) कर्मों के पूरण करने में अतिकुशल (अग्ने) उत्तम से उत्तम पदार्थों के प्राप्त कराने वाले विद्वन्! आप जो (अयम्) यह (पुरीष्यः) सब सुखों के पूर्ण करने में अत्युत्तम (रयिमान्) उत्तम-उत्तम धनयुक्त (पुष्टिवर्द्धनः) पुष्टि को बढ़ाने वाला (अग्निः) भौतिक अग्नि है उस से हम लोगों के लिये (अभिद्युम्नः) उत्तम-उत्तम ज्ञान को सिद्ध करने वाले धन वा (अभिसहः) उत्तम-उत्तम शरीर और आत्मा के बलों को (आयच्छस्व) सब प्रकार से विस्तारयुक्त कीजिये ॥४०॥

भावार्थः—मनुष्यों को परमेश्वर की कृपा वा अपने पुरुषार्थ से अग्नि-विद्या को सम्पादन करके अनेक प्रकार के धन और बलों को विस्तारयुक्त करना चाहिये ॥४०॥

गृहा मेत्यस्यासुरिर्ऋषिः। वास्तुरग्निर्देवता। आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अब अगले मन्त्र में गृहस्थाश्रम के अनुष्ठान का उपदेश किया है॥

गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्जं बिभ्रतऽएमसि। ऊर्जं बिभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः ॥४१॥

पदार्थः—हे ब्रह्मचर्याश्रम से सब विद्याओं को ग्रहण किये गृहाश्रमी तथा (ऊर्जम्) शौर्यादिपराक्रमों को (बिभ्रतः) धारण किये और (गृहाः) ब्रह्मचर्याश्रम के अनन्तर अर्थात् गृहस्थाश्रम को प्राप्त होने की इच्छा करते हुए मनुष्यो! तुम गृहस्थाश्रम को यथावत् प्राप्त होओः उस गृहस्थाश्रम के अनुष्ठान से (मा बिभीत) मत डरो तथा (मा वेपध्वम्) मत कम्पो तथा पराक्रमों को धारण किये हुए हम लोग (गृहान्) गृहस्थाश्रम को प्राप्त हुए तुम लोगों को (एमसि) नित्य प्राप्त होते रहें और (वः) तुम लोगों में स्थित होकर इस प्रकार गृहस्थाश्रम में वर्त्तमान (सुमनाः) उत्तम ज्ञान

(सुमेधाः) उत्तम बुद्धि युक्त (मनसा) विज्ञान से (मोदमानः)हर्ष उत्साह युक्त (ऊर्जम्) अनेक प्रकार के बलों को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ मैं अत्यन्त सुखों को (एमि) निरन्तर प्राप्त होऊं ॥४१॥

भावार्थः—मनुष्यों को पूर्ण ब्रह्मचर्याश्रम को सेवन करके युवावस्था में स्वयंवर के विधान की रीति से दोनों के तुल्य स्वभाव, विद्या, रूप, बुद्धि और बल आदि गुणों को देखकर विवाह कर तथा शरीर-आत्मा के बल को सिद्ध कर और पुत्रों को उत्पन्न करके सब साधनों से अच्छे-अच्छे व्यवहारों में स्थित रहना चाहिये तथा किसी मनुष्य को गृहास्थाश्रम के अनुष्ठान से भय नहीं करना चाहिये क्योंकि सब अच्छे व्यवहार वा सब आश्रमों का यह गृहस्थाश्रम मूल है इस गृहस्थाश्रम का अनुष्ठान अच्छे प्रकार से करना चाहिये और इस गृहस्थाश्रम के बिना मनुष्यों की वा राज्यादि व्यवहारों की सिद्धि कभी नहीं होती ॥४१॥

येषामित्यस्य शंयुर्ऋषिः। वास्तुपतिरग्निर्देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर वह गृहस्थाश्रम कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है॥

येषा॒म॒ध्येति॑ प्र॒वस॒न् येषु॑ सौमन॒सो ब॒हुः। गृ॒हानुप॑ह्वयाम॒हे ते नो॑ जानन्तु जान॒तः ॥४२॥

पदार्थः—(प्रवसन्) प्रवास करता हुआ अतिथि (येषाम्) जिन गृहस्थों का (अध्येति) स्मरण करता वा (येषु) जिन गृहस्थों में (बहुः) अधिक (सौमनसः) प्रीतिभाव है उन (गृहान्) गृहस्थों की हम अतिथि लोग (उपह्वयामहे) नित्यप्रति प्रशंसा करते हैं। जो प्रीति रखने वाले गृहस्थ लोग हैं (ते) वे (जानतः) जानते हुए धार्मिक (नः) हम अतिथि लोगों को (जानन्तु) यथावत् जानें ॥४२॥

भावार्थः—गृहस्थों को सब धार्मिक अतिथि लोगों के वा अतिथि लोगों को गृहस्थों के साथ अत्यन्त प्रीति रखनी चाहिये और दुष्टों के साथ नहीं तथा उन विद्वानों के सङ्ग से परस्पर वार्त्तालाप कर विद्या की उन्नति करनी चाहिये और जो परोपकार करने वाले विद्वान् अतिथि लोग हैं उनकी सेवा गृहस्थों को निरन्तर करनी चाहिये औरों की नहीं ॥४२॥

उपहूता इत्यस्य शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः। वास्तुपतिर्देवता। भुरिग्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर उस गृहस्थाश्रम को कसे सिद्ध करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

उपहूताऽइह गावऽउपहूतोऽअजावयः । अथोऽअन्नस्य कीलालऽ उपहूतो गृहेषु नः । क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये शिवꣳ शग्मꣳ शंयोः शंयोः ॥४३॥

पदार्थः—(इह) इस गृहस्थाश्रम वा संसार में (वः) तुम लोगों के (शान्त्यै) सुख (नः) हम लोगों की (क्षेमाय) रक्षा के लिए (गृहेषु) निवास करने योग्य स्थानों में जो (गावः) दूध देने वाली गौ आदि पशु (उपहूताः) समीप प्राप्त किये वा (अजावयः) भेड़ बकरी आदि पशु (उपहूताः) समीप प्राप्त हुए (अथो) इसके अनन्तर (अन्नस्य) प्राण धारण करने वाले (कीलालः) अन्न आदि पदार्थों का समूह (उपहूताः) अच्छे प्रकार प्राप्त हुआ हो इन सब की रक्षा करता हुआ जो मैं गृहस्थ हूं सो (शंयोः) सब सुखों के साधनों से (शिवम्) कल्याण वा (शग्मम्) उत्तम सुखों को (प्रपद्ये) प्राप्त होऊं ॥४३॥

भावार्थः—गृहस्थों को योग्य है कि ईश्वर की उपासना वा उसकी आज्ञा के पालने से गौ हाथी घोड़े आदि पशु तथा खाने पीने योग्य स्वादु भक्ष्य पदार्थों का संग्रह कर अपनी वा औरों की रक्षा करके विज्ञान धर्म विद्या और पुरुषार्थ से इस लोक वा परलोक के सुखों को सिद्ध करें । किसी भी पुरुष को आलस्य में नहीं रहना चाहिये किन्तु सब मनुष्य पुरुषार्थ वाले होकर धर्म से चक्रवर्ति राज्य आदि धनों को संग्रह कर उनकी अच्छे प्रकार रक्षा करके उत्तम उत्तम सुखों को प्राप्त हों इससे अन्यथा मनुष्यों को न वर्त्तना चाहिये क्योंकि अन्यथा वर्त्तने वालों को सुख कभी नहीं होता ॥४३॥

प्रघासिन इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । मरुतो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

गृहस्थ मनुष्यों को क्या-क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

प्रघासिनो हवामहे मरुतश्च रिशादसः । करम्भेण सजोषसः ॥४४॥

पदार्थः—हम लोग (करम्भेण) अविद्यारूपी दुःख होने से अलग होके (सजोषसः) बराबर प्रीति के सेवन करने (रिशादसः) दोष वा शत्रुओं को नष्ट करने (प्रघासिनः) पके हुए पदार्थों के भोजन करने वाले अतिथि लोग और (मरुतः) अतिथि (च) और यज्ञ करने वाले विद्वान् लोगों को (हवामहे) सत्कारपूर्वक नित्य-प्रति बुलाते रहें ॥४४॥

भावार्थः—गहस्थों को उचित है कि वैद्य, शूरवीर और यज्ञ को सिद्ध

करने वाले मनुष्यों को बुलाकर उनकी यथावत् सत्कारपूर्वक सेवा करके उनसे उत्तम उत्तम विद्या वा शिक्षाओं को निरन्तर ग्रहण करें ॥४४॥

यद् ग्राम इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। मरुतो देवता। स्वराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर अगले मन्त्र में गृहस्थों के कर्मों का उपदेश किया है ॥

यद् ग्रामे यदरण्ये यत् सभायां यदिन्द्रिये। यदेनश्चकृमा वयमिदं तदवयजामहे स्वाहा ॥४५॥

पदार्थः—(वयम्) कर्म के अनुष्ठान करने वाले हम लोग (यद्-ग्रामे) जो गृहस्थों से सेवित ग्राम (यद् अरण्ये) वानप्रस्थों ने जिस वन की सेवा की हो (यत्स-भायाम्) विद्वान् लोग जिस सभा की सेवा करते हों और (यद् इन्द्रिये) योगी लोग जिस मन वा श्रोत्रादिकों की सेवा करते हों उसमें स्थित हो के जो (एनः) पाप वा अधर्म (चकृम) करा वा करेंगे सो सब (अवयजामहे) दूर करते रहें तथा जो जो उन-उन उक्त स्थानों में (स्वाहा) सत्यवाणी से पुण्य वा धर्माचरण (चकृम) करना योग्य है (तत्) उस-उस को (यजामहे) प्राप्त होते रहें ॥४५॥

भावार्थः—चारों आश्रमों में रहने वाले मनुष्यों को मन वाणी और कर्मों से सत्य कर्मों का आचरण कर पाप वा अधर्मों का त्याग करके विद्वानों की सभा, विद्या तथा उत्तम-उत्तम शिक्षा का प्रचार करके प्रजा के सुखों की उन्नति करनी चाहिये ॥४५॥

मो षू ण इत्यस्यागस्त्य ऋषिः। इन्द्रमारुतौ देवते। भुरिक्पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः ॥

ईश्वर और शूरवीर के सहाय से युद्ध में विजय होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मो षू णऽइन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः। महश्चिद्यस्य मीढुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥४६॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) शूरवीर ! आप (अत्र) इस लोक में (पृत्सु) युद्धों में (देवैः) विद्वानों के साथ (नः) हम लोगों की (सु) अच्छे प्रकार रक्षा कीजिये तथा (मो) मत हनन कीजिये। हे (शुष्मिन्) पूर्ण बलयुक्त शूरवीर ! (हि) निश्चय करके (चित्) जैसे (ते) आपकी (महः) बड़ी (गीः) वेदप्रमाणयुक्त वाणी (मीढुषः) विद्या आदि उत्तम गुणों के सींचने वा (हविष्मतः) उत्तम-उत्तम हवि अर्थात् पदार्थ-युक्त (मरुतः) ऋतु-ऋतु में यज्ञ करने वाले विद्वानों के (वन्दते) गुणों का प्रकाश

करती है जैसे विद्वान् लोग आप के गुणों का हम लोगों के अर्थ निरन्तर प्रकाश करके आनन्दित होते हैं वैसे जो (अवयाः) यज्ञ करने वाला यजमान है वह आपकी आज्ञा से जिन (यव्या) उत्तम-उत्तम यव आदि अन्नों को अग्नि में होम करता है वे पदार्थ सब प्राणियों को सुख देने वाले होते हैं ।।४६।।

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जब मनुष्य लोग परमेश्वर की आराधना कर अच्छे प्रकार सब सामग्री को संग्रह करके युद्ध में शत्रुओं को जीतकर चक्रवर्त्तिराज्य को प्राप्त कर प्रजा का अच्छे प्रकार पालन करके बड़े आनन्द को सेवन करते हैं तब उत्तम राज्य होता है ।।४६।।

अक्रन्नित्यस्यागस्त्य ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ।।

कौन-कौन मनुष्य यज्ञ युद्ध आदि कर्मों के करने को योग्य होते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

अक्र॒न् कर्म॑ कर्म॒कृतः॑ स॒ह वा॒चा म॑यो॒भुवा॑। दे॒वेभ्यः॒ कर्म॑ कृ॒त्वास्तं॒ प्रेतं॑ सचाभुवः ।।४७।।

पदार्थः—जो मनुष्य लोग (मयोभुवा) सत्यप्रिय मङ्गल के कराने वाली (वाचा) वेदवाणी वा अपनी वाणी के (सह) साथ (सचाभुवः) परस्पर सङ्गी होकर (कर्मकृतः) कर्मों को करते हुए (कर्म) अपने अभीष्ट कर्म को (अक्रन्) करते हैं वे (देवेभ्यः) विद्वान् वा उत्तम-उत्तम गुण वा सुखों के लिये (कर्म) करने योग्य कर्म का (कृत्वा) अनुष्ठान करके (अस्तम्) पूर्णसुखयुक्त घर को (प्रेत) प्राप्त होते हैं ।।४७।।

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि सर्वथा आलस्य को छोड़ कर पुरुषार्थ ही में निरन्तर रहके मूर्खपन को छोड़ कर वेदविद्या से शुद्ध की हुई वाणी के साथ सदा वर्तें और परस्पर प्रीति करके एक दूसरे का सहाय करें। जो इस प्रकार के मनुष्य हैं वे ही अच्छे-अच्छे सुखयुक्त मोक्ष वा इस लोक के सुखों को प्राप्त होकर आनन्दित होते हैं, अन्य अर्थात् आलसी पुरुष आनन्द को कभी नहीं प्राप्त होते ।।४७।।

अवभृथेत्यस्यौर्णवाभ ऋषिः। यज्ञो देवता। ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ।।

अब अगले मन्त्र में यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले यजमान के कर्मों का उपदेश किया है ।।

अव॑भृथ निचुम्पुण नि॒चेरु॑रसि निचुम्पु॒णः। अव॑ दे॒वैर्दे॒वकृ॑त॒मेनो॑ऽयासि॒षमव॒ मर्त्यै॒र्मर्त्य॑कृतं पु॒रुरा॒व्णो॑ देव रि॒षस्पा॑हि ।।४८।।

पदार्थः हे (अवभृथ) विद्या वा धर्म के अनुष्ठान से शुद्ध (निचुम्पुण) धैर्य से शब्दविद्या को पढ़ाने वाले विद्वान् मनुष्य ! जैसे मैं (निचुम्पुणः) ज्ञान को प्राप्त कराने वा (निचेरुः) निरन्तर विद्या का संग्रह करने वाला (देवैः) प्रकाशस्वरूप मन आदि इन्द्रियों से (देवकृतम्) किया वा (मर्त्यैः) मरणधर्मवाले (मर्त्यकृतम्) शरीरों से किये हुये (एनः) पापों को (अव अयासिषम्) दूर कर शुद्ध होता हूं वैसे तू भी (असि) हो। हे (देव) जगदीश्वर ! आप हम लोगों की (पुरुराव्णः) बहुत दुःख देने वा (रिषः) मारने योग्य शत्रु वा पाप से (पाहि) रक्षा कीजिये अर्थात् दूर कीजिये ॥४८॥

भावार्थः-–इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि पाप की निवृत्ति धर्म की वृद्धि के लिये परमेश्वर की प्रार्थना निरन्तर करके जो मन वाणी वा शरीर से पाप होते हैं उनसे दूर रह के जो कुछ अज्ञान से पाप हुआ हो उसके दुःखरूप फल को जानकर फिर दूसरी वार उसको कभी न करें किन्तु सब काल में शुद्ध कर्मों के अनुष्ठान ही की वृद्धि करें ॥४८॥

पूर्णा दर्वीत्यस्यौर्णवाभ ऋषिः। यज्ञो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

यज्ञ में हवन किया हुआ पदार्थ कैसा होता है, इस विषय का उपदेश
अगले मन्त्र में किया है ॥

पूर्णा द॑र्वि परा॑ पत सुपू॑र्णा पुन॒राप॑त। व॒स्नेव॑ विक्री॑णावहा॒ऽइष॒मूर्ज॑ꣳ शतक्रतो ॥४९॥

पदार्थः—जो (दर्वि) पके हुए होम करने योग्य पदार्थों को ग्रहण करने वाली (पूर्णा) द्रव्यों से पूर्ण हुई आहुति (परापत) होमे हुए पदार्थों के अंशों को ऊपर प्राप्त करती वा जो आहुति आकाश में वृष्टि से (सुपूर्णा) पूर्ण हुई (पुनरापत) फिर अच्छे प्रकार पृथिवी में उत्तम जलरस को प्राप्त कराती है उस से हे (शतक्रतो) असंख्यात कर्म वा प्रज्ञा वाले जगदीश्वर ! आप की कृपा से हम यज्ञ कराने और करने वाले विद्वान् होता और यजमान दोनों (इषम्) उत्तम-उत्तम अन्नादि पदार्थ (ऊर्जम्) पराक्रमयुक्त वस्तुओं को (वस्नेव) वैश्यों के व्यवहार के समान (विक्रीणावहै) दें वा ग्रहण करें ॥४९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जब मनुष्य लोग सुगन्ध्यादि पदार्थ अग्नि में हवन करते हैं तब वे ऊपर जाकर वायु वृष्टि-जल को शुद्ध करते हुए पृथिवी को आते हैं जिससे यव आदि ओषधि शुद्ध होकर सुख और पराक्रम के देने वाली होती हैं। जैसे कोई वैश्य लोग रुपया आदि को

दे-ले कर अनेक प्रकार के अन्नादि पदार्थों को खरीदते वा वेचते हैं वैसे सब हम लोग भी अग्नि में शुद्ध द्रव्यों को छोड़कर वर्षा वा अनेक सुखों को खरीदते हैं, खरीदकर फिर वृष्टि और सुखों के लिये अग्नि में हवन करते है ॥४९॥

देहि म इत्यस्यौर्णवाभ ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिगनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब अगले मन्त्र में सब आश्रमों में रहने वाले मनुष्यों के व्यवहारों का उपदेश किया है॥

देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे। निहारं च हरासि मे निहारं निर्हराणि ते स्वाहा ॥५०॥

पदार्थः—हे मित्र ! तुम (स्वाहा) जैसे सत्यवाणी हृदय में कहे वैसे (मे) मुझ को यह वस्तु (देहि) दे वा मैं (ते) तुझ को यह वस्तु (ददामि) देऊं वा देऊंगा तथा तू (मे) मेरी वह वस्तु (निधेहि) धारण कर मैं (ते) तुम्हारी यह वस्तु (निदधे) धारण करता हूं और तू (मे) मुझ को (निहारम्) मोल से खरीदने योग्य वस्तु को (हरासि) दे मैं (ते) तुझको (निहारम्) पदार्थों का मोल (निहराणि) निश्चय करके देऊं। (स्वाहा) ये सब व्यवहार सत्यवाणी से करें अन्यथा से व्यवहार सिद्ध नहीं होते हैं॥५०॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को देना लेना पदार्थों को रखना रखवाना वा धारण करना आदि व्यवहार सत्यप्रतिज्ञा से ही करने चाहियें। जैसे किसी मनुष्य ने कहा कि यह वस्तु तुम हमको देना, मैं यह नहीं देता तथा देऊंगा, ऐसा कहे तो वैसा ही करना तथा किसी ने कहा कि मेरी यह वस्तु तुम अपने पास रख लेओ, जब इच्छा करूं तब तुम दे देना। इसी प्रकार मैं तुम्हारी यह वस्तु रख लेता हूं, जब तुम इच्छा करोगे तब देऊंगा वा उसी समय मैं तुम्हारे पास आऊंगा वा तुम आकर ले लेना इत्यादि ये सब व्यवहार सत्यवाणी ही से करने चाहियें और ऐसे व्यवहारों के विना किसी मनुष्य की प्रतिष्ठा वा कार्य्यों की सिद्धि नहीं होती और इन दोनों के विना कोई मनुष्य सुखों को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता ॥५०॥

अक्षन्नित्यस्य गोतम ऋषिः। इन्द्रो देवता। विराट् पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः॥

उस यज्ञादि व्यवहार से क्या क्या होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रियाऽअधूषत । अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥५१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सभा के स्वामी ! जो (ते) आपके सम्बन्धी मनुष्य (स्वभानवः) अपनी ही दीप्ति से प्रकाशित होने वा (अव प्रियाः) औरों को प्रसन्न कराने वाले (विप्राः) विद्वान् लोग (नविष्ठया) अत्यन्त नवीन (मती) बुद्धि से (हि) निश्चय करके परमात्मा की (अस्तोषत) स्तुति और (अक्षन्) उत्तम-उत्तम अन्नादि पदार्थों को भक्षण करते हुए (अमीमदन्त) आनन्द को प्राप्त होते और उसी से वे शत्रु वा दुःखों को (न्वधूषत) शीघ्र कम्पित करते हैं वैसे ही इस यज्ञ में (इन्द्र) हे सभापते ! (ते) आपके सहाय से इस यज्ञ में निपुण हों और तू (हरी) अपने बल और पराक्रम को हम लोगों के साथ (योज) संयुक्त कर ॥५१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि प्रतिदिन नवीन-नवीन ज्ञान वा क्रिया की वृद्धि करते रहें। जैसे मनुष्य विद्वानों के सत्सङ्ग वा शास्त्रों के पढ़ने से नवीन-नवीन बुद्धि नवीन-नवीन क्रिया को उत्पन्न करते हैं, वैसे ही सब मनुष्यों को अनुष्ठान करना चाहिये ॥५१॥

सुसंदृशमित्यस्य गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराट् पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

वह इन्द्र कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सुसंदृशं त्वा वयं मघवन् वन्दिषीमहि । प्र नूनं पूर्णवन्धुर स्तुतो यासि वशाँ२ऽअनु योजा न्विन्द्र ते हरी ॥५२॥

पदार्थः—हे (मघवन्) उत्तम-उत्तम विद्यादिधनयुक्त (इन्द्र) परमात्मन् ! तू (वयम्) हम लोग (सुसंदृशम्) अच्छे प्रकार व्यवहारों के देखने वाले (त्वा) आपकी (नूनम्) निश्चय करके (वन्दिषीमहि) स्तुति करें तथा हम लोगों से (स्तुतः) स्तुति किये हुए आप (वशान्) इच्छा किये हुए पदार्थों को (यासि) प्राप्त कराते हो और (ते) अपने (हरी) बल पराक्रमों को आप (अनुप्रयोज) हम लोगों के सहाय के अर्थ युक्त कीजिये ॥१॥ (वयम्) हम लोग (सुसंदृशम्) अच्छे प्रकार पदार्थों को दिखाने वा (मघवन्) धन को प्राप्त कराने तथा (पूर्णबन्धुरः) सब जगत् के बन्धन के हेतु (त्वा) उस सूर्यलोक की (नूनम्) निश्चय करके (वन्दिषीमहि) स्तुति अर्थात् इसके गुण प्रकाश करके (स्तुतः) स्तुति किया हुआ यह हम लोगों को (वशान्) उत्तम-उत्तम व्यवहारों को सिद्धि कराने वाली कामनाओं को (यासि) प्राप्त कराता है (नु)

जैसे (ते) इस सूर्य के (हरी) धारण आकर्षण गुण जगत् में युक्त होते हैं वैसे आप हम लोगों को विद्या की सिद्धि करने वाले गुणों को (अनुप्रयोज) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिये ।।२।।५२।।

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को सब जगत् के हित करने वाले जगदीश्वर ही की स्तुति करनी और किसी की न करनी चाहिये क्योंकि जैसे सूर्यलोक सब मूर्तिमान् द्रव्यों का प्रकाश करता है वैसे उपासना किया हुआ ईश्वर भी भक्तजनों के आत्माओं में विज्ञान को उत्पन्न करने से सब सत्यव्यवहारों को प्रकाशित करता है। इससे ईश्वर को छोड़कर और किसी की उपासना कभी नहीं करनी चाहिये ।।५२।।

मनोन्वित्यस्य बन्धुर्ऋषिः। मनो देवता। अतिपादनिचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ।।

इसके आगे मन के लक्षण का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

मनो न्वाह्वामहे नाराशꣳसेन स्तोमेन। पितॄणां च मन्मभिः ।।५३।।

पदार्थः—हम लोग (नाराशंसेन) पुरुषों के अत्यन्त प्रशंसनीय (स्तोमेन) स्तुतियुक्त व्यवहार और (पितॄणाम्) पालना करने वाले ऋतु वा ज्ञानवान् मनुष्यों के (मन्मभिः) जिनसे सब गुण जाने जाते हैं उन गुणों के साथ (मनः) संकल्प-विकल्पात्मक चित्त को (न्वाह्वामहे) सब ओर से हटाके दृढ़ करते हैं ।।५३।।

भावार्थः—मनुष्यों को मनुष्यजन्म की सफलता के लिये विद्या आदि गुणों से युक्त मन को करना चाहिये। जैसे ऋतु अपने-अपने गुणों को क्रम-क्रम से प्रकाशित करते हैं तथा जैसे विद्वान् लोग क्रम-क्रम से अनेक प्रकार की अन्य-अन्य विद्याओं का साक्षात्कार करते हैं, वैसा ही पुरुषार्थ करके सब मनुष्यों को निरन्तर विद्या और प्रकाश की प्राप्ति करनी चाहिये ।।५३।।

आ न एत्वित्यस्य बन्धुर्ऋषिः। मनो देवता। विराड् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ।।

फिर वह मन कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

आ नऽएतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे। ज्योक् च सूर्यं दृशे ।।५४।।

पदार्थः—(मनः) जो स्मरण करने वाला चित्त (ज्योक्) निरन्तर (सूर्यम्) परमेश्वर, सूर्यलोक वा प्राण को (दृशे) देखने वा (क्रत्वे) उत्तम विद्या वा उत्तम

आपके (व्रते) सत्यभाषण आदि धर्मों के अनुष्ठान में वर्तमान होके (तनूषु) बड़े-बड़े सुखयुक्त शरीरों में (मनः) अन्तःकरण की अहङ्कारादि वृत्ति को (बिभ्रतः) धारण करते हुए और (प्रजावन्तः) बहुत पुत्र आदि वा राष्ट्र आदि धन वाले होके हम लोग (सचेमहि) सब सुखों को प्राप्त होवें ॥१॥ (तव) इस (सोम) सोमलता आदि ओषधियों के (व्रते) सत्य-सत्य गुण ज्ञान के सेवन में (तनूषु) सुखयुक्त शरीरों में (मनः) चित्त की वृत्ति को (बिभ्रतः) धारण करते हुए (प्रजावन्तः) पुत्र राज्य आदि धन-वाले होकर (वयम्) हम लोग (सचेमहि) सब सुखों को प्राप्त होवें ॥२॥ ॥५६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। ईश्वर की आज्ञा में वर्त्तमान हुए मनुष्य लोग शरीर आत्मा के सुखों को निरन्तर प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार युक्ति से सोम आदि ओषधियों के सेवन से उन सुखों को प्राप्त होते हैं परन्तु आलसी मनुष्य नहीं ॥५६॥

एष त इत्यस्य बन्धुर्ऋषिः। रुद्रो देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

मन के लक्षण कहने के अनन्तर प्राण के लक्षण का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा। एष ते रुद्र भागऽआखुस्ते पशुः ॥५७॥

पदार्थः—हे (रुद्र) अन्यायकारी मनुष्यों को रुलाने वाले विद्वन्! जो (ते) तेरा (एषः) यह (भागः) सेवन करने योग्य पदार्थसमूह है, उस को तू (अम्बिकया) वेदवाणी वा (स्वस्रा) उत्तम विद्या वा क्रिया के (सह) साथ (जुषस्व) सेवन कर तथा हे (रुद्र) विद्वन्! जो (ते) तेरा (एषः) यह (भागः) धर्म से सिद्ध अंश वा (स्वाहा) वेदवाणी है उस का सेवन कर और हे (रुद्र) विद्वन्! जो (ते) तेरा (एषः) यह (आखुः) खोदने योग्य शस्त्र वा (पशुः) भोग्य पदार्थ है (तम्) उसको (जुषस्व) सेवन कर ॥१॥ जो (एषः) यह (रुद्र) प्राण है (ते) जिसका (एषः) यह (भागः) भाग है जिसको (अम्बिकया) वाणी वा (स्वस्रा) विद्याक्रिया के (सह) साथ (जुषस्व) सेवन करता वा जो (ते) जिसका (स्वाहा) सत्य वाणीरूप (भागः) भाग है और जो इसके (आखुः) खोदने वाले पदार्थ वा (पशुः) दर्शनीय भोग्य पदार्थ हैं जिसका यह (जुषस्व) सेवन करता है उसका सेवन सब मनुष्य सदा करें ॥२॥५७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे भाई पूर्ण विद्यायुक्त अपनी बहिन के साथ वेदादि शब्दविद्या को पढ़कर आनन्द को भोगता है वैसे विद्वान् भी विद्या को प्राप्त होकर सुखी होता है। जैसे यह प्राण श्रेष्ठ

कर्मों की स्मृति वा (जीवसे) सौ वर्ष से अधिक जीने (च) और अन्य शुभ कर्मों के अनुष्ठान के लिए है वह (नः) हम लोगों को (पुनः) वार-वार जन्म-जन्म में (आ) सब प्रकार से (एतु) प्राप्त हो ॥५४॥

भावार्थः—मनुष्यों को [चाहिये कि] उत्तम कर्मों के अनुष्ठान के लिये चित्त की शुद्धि वा जन्म-जन्म में उत्तम चित्त की प्राप्ति ही की इच्छा करें जिससे मनुष्य जन्म को प्राप्त होकर ईश्वर की उपासना का साधन करके उत्तम-उत्तम धर्मों का सेवन कर सकें ॥५४॥

पुनर्न इत्यस्य बन्धुर्ऋषिः। मनो देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

फिर मन शब्द से बुद्धि का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः। जीवं व्रातꣳ सचेमहि ॥५५॥

पदार्थः—हे (पितरः) उत्पादक वा अन्न शिक्षा वा विद्या को देकर रक्षा करने वाले पिता आदि लोगो! आपकी शिक्षा से यह (दैव्यः) विद्वानों के बीच में उत्पन्न हुआ (जनः) विद्या वा धर्म से दूसरे के लिये उपकारों को प्रकट करने वाला विद्वान् पुरुष (नः) हम लोगों के लिये (पुनः) इस जन्म वा दूसरे जन्म में (मनः) धारणा करने वाली बुद्धि को (ददातु) देवे जिससे (जीवम्) ज्ञानसाधनयुक्त जीवन वा (व्रातम्) सत्य बोलने आदि गुणसमुदाय को (सचेमहि) अच्छे प्रकार प्राप्त करें ॥५५॥

भावार्थः—विद्वान् माता-पिता आचार्यों की शिक्षा के विना मनुष्यों का जन्म सफल नहीं होता और मनुष्य भी उस शिक्षा के विना पूर्ण जीवन वा कर्म के संयुक्त करने को समर्थ नहीं हो सकते। इस से सब काल में विद्वान् माता-पिता और आचार्यों को उचित है कि अपने पुत्र आदि को अच्छे प्रकार उपदेश से शरीर और आत्मा के बलवाले करें ॥५५॥

वयमित्यस्य बन्धुर्ऋषिः। सोमो देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

अब सोमशब्द से ईश्वर और ओषधियों के रसों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

वयꣳ सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः। प्रजावन्तः सचेमहि ॥५६॥

पदार्थः—हे (सोम) सब जगत् को उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर! (तव)

आपके (व्रते) सत्यभाषण आदि धर्मों के अनुष्ठान में वर्तमान होके (तनूषु) बड़े-बड़े सुखयुक्त शरीरों में (मनः) अन्तःकरण की अहङ्कारादि वृत्ति को (बिभ्रतः) धारण करते हुए और (प्रजावन्तः) बहुत पुत्र आदि वा राष्ट्र आदि धन वाले होके हम लोग (सचेमहि) सब सुखों को प्राप्त होवें ॥१॥ (तव) इस (सोम) सोमलता आदि ओष-धियों के (व्रते) सत्य-सत्य गुण ज्ञान के सेवन में (तनूषु) सुखयुक्त शरीरों में (मनः) चित्त की वृत्ति को (बिभ्रतः) धारण करते हुए (प्रजावन्तः) पुत्र राज्य आदि धन-वाले होकर (वयम्) हम लोग (सचेमहि) सब सुखों को प्राप्त होवें ॥२॥ ॥५६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। ईश्वर की आज्ञा में वर्त्तमान हुए मनुष्य लोग शरीर आत्मा के सुखों को निरन्तर प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार युक्ति से सोम आदि ओषधियों के सेवन से उन सुखों को प्राप्त होते हैं परन्तु आलसी मनुष्य नहीं ॥५६॥

एष त इत्यस्य बन्धुर्ऋषिः। रुद्रो देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

मन के लक्षण कहने के अनन्तर प्राण के लक्षण का उपदेश
अगले मन्त्र में किया है॥

एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा। एष ते रुद्र भागऽआखुस्ते पशुः ॥५७॥

पदार्थः—हे (रुद्र) अन्यायकारी मनुष्यों को रुलाने वाले विद्वन्! जो (ते) तेरा (एषः) यह (भागः) सेवन करने योग्य पदार्थसमूह है, उस को तू (अम्बिकया) वेदवाणी वा (स्वस्रा) उत्तम विद्या वा क्रिया के (सह) साथ (जुषस्व) सेवन कर तथा हे (रुद्र) विद्वन्! जो (ते) तेरा (एषः) यह (भागः) धर्म से सिद्ध अंश वा (स्वाहा) वेदवाणी है उस का सेवन कर और हे (रुद्र) विद्वन्! जो (ते) तेरा (एषः) यह (आखुः) खोदने योग्य शस्त्र वा (पशुः) भोग्य पदार्थ है (तम्) उसको (जुषस्व) सेवन कर ॥१॥ जो (एषः) यह (रुद्र) प्राण है (ते) जिसका (एषः) यह (भागः) भाग है जिसको (अम्बिकया) वाणी वा (स्वस्रा) विद्याक्रिया के (सह) साथ (जुषस्व) सेवन करता वा जो (ते) जिसका (स्वाहा) सत्य वाणीरूप (भागः) भाग है और जो इसके (आखुः) खोदने वाले पदार्थ वा (पशुः) दर्शनीय भोग्य पदार्थ हैं जिसका यह (जुषस्व) सेवन करता है उसका सेवन सब मनुष्य सदा करें ॥२॥५७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे भाई पूर्ण विद्यायुक्त अपनी बहिन के साथ वेदादि शब्दविद्या को पढ़कर आनन्द को भोगता है वैसे विद्वान् भी विद्या को प्राप्त होकर सुखी होता है। जैसे यह प्राण श्रेष्ठ

शब्दविद्या से प्रिय आनन्ददायक होता है, वैसे सुशिक्षित विद्वान् भी सबको सुख करने वाला होता है। इन दोनों के विना कोई भी मनुष्य सत्यज्ञान वा सुख भोगों को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता ॥५७॥

अव रुद्रमित्यस्य बन्धुर्ऋषिः। रुद्रो देवता। विराट् पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में रुद्र शब्द से ईश्वर का उपदेश किया है ॥

अव॑ रु॒द्रम॑दीमह्यव॑ दे॒वं त्र्य॑म्बकम्। यथा॑ नो॒ वस्य॑स॒स्कर॒द्यथा॑ नः॒ श्रेय॑स॒स्कर॒द्यथा॑ नो व्यवसा॒यया॑त् ॥५८॥

पदार्थः—हम लोग (त्र्यम्बकम्) तीनों काल में एकरस ज्ञानयुक्त (देवम्) देने वा (रुद्रम्) दुष्टों को रुलाने वाले जगदीश्वर की उपासना करके सब दुःखों को (अवादीमहि) अच्छे प्रकार नष्ट करें (यथा) जैसे परमेश्वर (नः) हम लोगों को (वस्यसः) उत्तम-उत्तम वास करने वाले (अवाकरत्) अच्छे प्रकार करे (यथा) जैसे (नः) हम लोगों को (श्रेयसः) अत्यन्त श्रेष्ठ (करत्) करे (यथा) जैसे (नः) हम लोगों को (व्यवसाययात्) निश्चय वाले करे वैसे सुखपूर्वक निवास कराने वा उत्तम गुणयुक्त तथा सत्यपन से निश्चय देने वाले परमेश्वर ही की प्रार्थना करें ॥५८॥

भावार्थः—कोई भी मनुष्य ईश्वर की उपासना वा प्रार्थना के विना सब दुःखों के अन्त को नहीं प्राप्त हो सकता। क्योंकि वही परमेश्वर सब सुखपूर्वक निवास वा उत्तम-उत्तम सत्य निश्चयों को कराता है इससे जैसी उसकी आज्ञा है उसका पालन वैसा ही सब मनुष्यों को करना योग्य है ॥५८॥

भेषजमसीत्यस्य बन्धुर्ऋषिः। रुद्रो देवता। स्वराड् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

फिर वह परमेश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

भे॒ष॒जम॑सि भेष॒जं गवेऽश्वा॑य॒ पुरु॑षाय भेष॒जम्। सु॒खम्मे॒षाय॑ मे॒ष्यै ॥५९॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! जो आप (भेषजम्) शरीर, अन्तःकरण, इन्द्रिय और गाय आदि पशुओं के रोग नाश करने वाले (असि) हैं (भेषजम्) अविद्यादि क्लेशों को दूर करने वाले (असि) हैं सो आप (नः) हम लोगों के (गवे) गौ आदि (अश्वाय) घोड़ा आदि (पुरुषाय) सब मनुष्य (मेषाय) मेढ़ा और (मेष्यै) भेड़ आदि के लिये (सुखम्) उत्तम-उत्तम सुखों को अच्छी प्रकार दीजिये ॥५९॥

भावार्थः—किसी मनुष्य का परमेश्वर की उपासना के विना शरीर आत्मा और प्रजा का दुःख दूर होकर सुख नहीं हो सकता इससे उसकी स्तुति प्रार्थना और उपासना आदि के करने और ओषधियों के सेवन से शरीर आत्मा पुत्र मित्र और पशु आदि के दुःखों को यत्न से निवृत्त करके सुखों को सिद्ध करना उचित है ॥५९॥

त्र्यम्बकमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। रुद्रो देवता। विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्। त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्। उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ॥६०॥

पदार्थः—हम लोग जो (सुगन्धिम्) शुद्ध गन्धयुक्त (पुष्टिवर्धनम्) शरीर, आत्मा और समाज के बल को बढ़ाने वाला (त्र्यम्बकम्) रुद्ररूप जगदीश्वर है, उसकी (यजामहे) निरन्तर स्तुति करें। इनकी कृपा से (उर्वारुकमिव) जैसे खर्बूजा फल पक कर (बन्धनात्) लता के सम्बन्ध से छूट कर अमृत के तुल्य होता है वैसे हम लोग भी (मृत्योः) प्राण वा शरीर के वियोग से (मुक्षीय) छूट जावें (अमृतात्) और मोक्षरूप सुख से (मा) श्रद्धारहित कभी न होवें। तथा हम लोग (सुगन्धिम्) उत्तम गन्धयुक्त (पतिवेदनम्) रक्षा करने हारे स्वामी को देने वाले (त्र्यम्बकम्) सब के अध्यक्ष जगदीश्वर का (यजामहे) निरन्तर सत्कारपूर्वक ध्यान करें और इसके अनुग्रह से (उर्वारुकमिव) जैसे खरबूजा पक कर (बन्धनात्) लता के सम्बन्ध से छूट कर अमृत के समान मिष्ट होता है, वैसे हम लोग भी (इतः) इस शरीर से (मुक्षीय) छूट जावें (अमुतः) मोक्ष और अन्य जन्म के सुख और सत्यधर्म के फल से (मा) पृथक् न होवें ॥६०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्य लोग ईश्वर को छोड़ कर किसी का पूजन न करें क्योंकि वेद से अविहित और दुःखरूप फल होने से परमात्मा से भिन्न दूसरे किसी की उपासना न करनी चाहिये। जैसे खर्बूजा फल लता में लगा हुआ अपने आप पक कर समय के अनुसार लता से छूट कर सुन्दर स्वादिष्ठ हो जाता है वैसे ही हम लोग पूर्ण आयु को भोग कर शरीर को छोड़ के मुक्ति को प्राप्त होवें, कभी मोक्ष की प्राप्ति के लिये अनुष्ठान वा परलोक की इच्छा से अलग न होवें और न कभी नास्तिक

पक्ष को लेकर ईश्वर का अनादर भी करें। जैसे व्यवहार के सुखों के लिये अन्न जल आदि की इच्छा करते हैं, वैसे ही हम लोग ईश्वर, वेद, वेदोक्त-धर्म और मुक्ति होने के लिये निरन्तर श्रद्धा करें ॥६०॥

एतत्त इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। रुद्रो देवता। भुरिगास्तारपंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः॥

अब अगले मन्त्र में रुद्र शब्द से शूरवीर के कर्मों का उपदेश किया है॥

एतत्ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि। अवततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासाऽअहिंꣳसन्नः शिवोऽतीहि ॥६१॥

पदार्थः—हे (रुद्र) शत्रुओं को रुलाने वाले युद्धविद्या में कुशल सेनाध्यक्ष विद्वन्! (अवततधन्वा) युद्ध के लिये विस्तारपूर्वक धनु को धारण करने (पिनाकावसः) पिनाक अर्थात् जिस शस्त्र से शत्रुओं के वल को पीस के अपनी रक्षा करने (कृत्तिवासः) चमड़े और कवचों के समान दृढ़ वस्त्रों के धारण करने (शिवः) सब सुखों के देने और (परः) उत्तम सामर्थ्य वाले शूरवीर पुरुष! आप (मूजवतः) मूंज घास आदि युक्त पर्वत से परे दूसरे देश में शत्रुओं को (अतीहि) प्राप्त कीजिये (एतत्) जो यह (ते) आपका (अवसम्) रक्षण करना है (तेन) उससे (नः) हम लोगों की (अहिंसन्) हिंसा को छोड़कर रक्षा करते हुए आप (अतीहि) सब प्रकार से हम लोगों का सत्कार कीजिये ॥६१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! तुम शत्रुओं से रहित होकर राज्य को निष्कं-टक करके सब अस्त्रशस्त्रों का सम्पादन करके दुष्टों का नाश और श्रेष्ठों की रक्षा करो कि जिससे दुष्ट शत्रु सुखी और सज्जन लोग दुःखी कदापि न होवें ॥६१॥

त्र्यायुषमित्यस्य नारायण ऋषिः। रुद्रो देवता। उष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

मनुष्य को कैसी आयु भोगने के लिये ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम् ॥६२॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर! आप (यत्) जो (देवेषु) विद्वानों के वर्त्तमान में (त्र्यायुषम्) ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों का परोपकार से युक्त आयु वर्त्तता जो (जमदग्नेः) चक्षु आदि इन्द्रियों वा (त्र्यायुषम्) शुद्धि, वल और

पराक्रमयुक्त तीन गुणा आयु और जो (कश्यपस्य) ईश्वरप्रेरित (त्र्यायुषम्) तिगुणी अर्थात् तीनसौ वर्ष से अधिक भी आयु विद्यमान है (तत्) उस शरीर, आत्मा और समाज को आनन्द देने वाले (त्र्यायुषम्) तीनसौ वर्ष से अधिक आयु को (नः) हम लोगों को प्राप्त कीजिये ॥६२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में चक्षुः सब इन्द्रियों में और परमेश्वर सब रचना करने हारों में उत्तम है, ऐसा सब मनुष्यों को समझना चाहिये और (त्र्यायुषम्) इस पदवी की चार वार आवृत्ति होने से तीनसौ वर्ष से अधिक चारसौ वर्ष पर्यन्त भी आयु का ग्रहण किया है। इसकी प्राप्ति के लिये परमेश्वर की प्रार्थना करके और अपना पुरुषार्थ करना उचित है सो प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिये—हे जगदीश्वर! आपकी कृपा से जैसे विद्वान् लोग विद्या धर्म और परोपकार के अनुष्ठान से आनन्दपूर्वक तीनसौ वर्ष पर्यन्त आयु को भोगते हैं, वैसे ही तीन प्रकार के ताप से शरीर, मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्काररूप अन्तःकरण इन्द्रिय और प्राण आदि को सुख करने वाले विद्या विज्ञान सहित आयु को हम लोग प्राप्त होकर तीनसौ वा चारसौ वर्ष पर्यन्त सुखपूर्वक भोगें ॥६२॥

शिवो नामासीत्यस्य नारायण ऋषिः। रुद्रो देवता। भुरिग्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अब अगले मन्त्र में रुद्र शब्द से उपदेश करने हारे के गुणों का उपदेश किया है॥

शिवो नामा॑सि स्वधि॑तिस्ते पि॒ता नम॑स्तेऽअस्तु॒ मा मा॑ हि॑ꣳसीः। निव॑र्त्तया॒म्यायु॑षेऽन्ना॒द्या॑य प्र॒जन॑नाय रा॒यस्पोषा॑य सुप्रजा॒स्त्वाय॑ सु॒वीर्य्या॑य ॥६३॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर और उपदेश करनेहारे विद्वन्! जो आप (स्वधिति) अविनाशी होने से वज्रमय (असि) हैं जिस (ते) आपका (शिवः) सुखस्वरूप विज्ञान का देनेवाला (नाम) नाम (असि) है सो आप मेरे (पिता) पालन करने वाले (असि) हैं (ते) आपके लिये मेरा (नमः) सत्कारपूर्वक नमस्कार (अस्तु) विदित हो तथा आप (मा) मुझे (मा) मत (हिंसीः) अल्पमृत्यु से युक्त कीजिये और मैं आप को (आयुषे) आयु के भोगने (अन्नाद्याय) अन्न आदि के भोगने (सुप्रजास्त्वाय) उत्तम-उत्तम पुत्र आदि वा चक्रवर्तिराज्य आदि की प्राप्ति होने (सुवीर्य्याय) उत्तम शरीर आत्मा का बल पराक्रम होने और (रायस्पोषाय) विद्या वा सुवर्ण आदि धन की पुष्टि के लिये (वर्त्तयामि) वर्त्ताता और वर्त्तता हूं। इस प्रकार वर्त्तने से सब दुःखों

को छुड़ा के अपने आत्मा में उपास्यरूप से निश्चय करके अन्तर्यामिरूप आप का आश्रय करके सभों में वर्त्तता हूं ॥६३॥

भावार्थः—कोई भी मनुष्य मङ्गलमय सब की पालना करने वाले परमेश्वर की आज्ञा पालन के विना संसार वा परलोक के सुखों को प्राप्त होने को समर्थ नहीं होता। न कदापि किसी मनुष्य को नास्तिक पक्ष को लेकर ईश्वर का अनादर करना चाहिये। जो नास्तिक होकर ईश्वर का अनादर करता है, उसका सर्वत्र अनादर होता है। इस से सब मनुष्यों को आस्तिक बुद्धि से ईश्वर की उपासना करनी योग्य है ॥६३॥

इस तीसरे अध्ययन में अग्निहोत्र आदि यज्ञों का वर्णन, अग्नि के स्वभाव वा अर्थ का प्रतिपादन, पृथिवी के भ्रमण का लक्षण, अग्नि शब्द से ईश्वर वा भौतिक अर्थ का प्रतिपादन, अग्निहोत्र के मन्त्रों का प्रकाश, ईश्वर का उपस्थान, अग्नि का स्वरूपकथन, ईश्वर की प्रार्थना, उपासना वा इन दोनों का फल, ईश्वर के स्वभाव का प्रतिपादन, सूर्य्य की किरणों के कार्य का वर्णन, निरन्तर उपासना, गायत्री मन्त्र के अर्थ का प्रतिपादन यज्ञ के फल का प्रकाश, भौतिक अग्नि के अर्थ का प्रतिपादन, गृहस्थाश्रम के आवश्यक कार्यों के अनुष्ठान और लक्षण, इन्द्र और पवनों के कार्य का वर्णन, पुरुषार्थ का आवश्यक करना, पापों से निवृत्त होना, यज्ञ की समाप्ति अवश्य करनी, सत्य से लेन देन आदि व्यवहार करना, विद्वान् वा ऋतुओं के स्वभाव का वर्णन, चार प्रकार के अन्तःकरण का लक्षण, रुद्र शब्द के अर्थ का प्रतिपादन, तीनसौ वर्ष अवश्य आयु का संपादन करना और धर्म से आयु आदि पदार्थों के ग्रहण का वर्णन किया है। इससे दूसरे अध्याय के अर्थ के साथ इस तीसरे अध्याय के अर्थ की संगति जाननी चाहिये ॥

॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥

---

* ओ३म् *

अथ चतुर्थोऽध्यायः

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ॥१॥

तत्रैदमगन्मेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अबोषध्यौ देवते । विराड् ब्राह्मीजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब चौथे अध्याय का प्रारम्भ किया जाता है । इस के प्रथम मन्त्र में जल के गुण स्वभाव और कृत्य का उपदेश किया है ॥

एदमगन्म देवयजनं पृथिव्या यत्र देवासोऽअजुषन्त विश्वे । ऋक्सामाभ्या॑ᳬ सन्तरन्तो यजुर्भी रायस्पोषेण समिषा मदेम । इमाऽआपः शमु मे सन्तु देवीः । ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनᳬ हिᳬसीः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (पृथिव्याः) भूमि पर मनुष्यजन्म को प्राप्त हो के जो (इदम्) यह (देवयजनम्) विद्वानों का यजन पूजन वा उन के लिये दान है उस को प्राप्त होके (यत्र) जिस देश में (ऋक्सामाभ्याम्) ऋग्वेद, सामवेद तथा (यजुर्भिः) यजुर्वेद के मन्त्रों में कहे कर्म (रायस्पोषेण) धन की पुष्टि (समिषा) उत्तम-उत्तम विद्या आदि की इच्छा वा अन्न आदि से दु खों के (सन्तरन्तः) अन्त को प्राप्त होते हुए (विश्वे) सब (देवासः) विद्वान् हम लोग सुखों को (आअगन्म) प्राप्त हों (अजुषन्त) सब प्रकार से सेवन करें (मदेम) सुखी रहें (उ) और भी (मे) मेरे सुनियम, विद्या उत्तम शिक्षा से सेवन किये हुए (इमाः) ये (देवीः) शुद्ध (आपः) जल सुख देने वाले होते हैं वैसे वहां तू भी उन को प्राप्त हो (जुषस्व) सेवन और आनन्द कर । वे जल आदि पदार्थ भी तुझ को (शम्) सुख कराने वाले (सन्तु) होवें । जैसे (ओषधे) सोमलता

आदि ओषधिगण सब रोगों से रक्षा करता है, वैसे तू भी हम लोगों की (त्रायस्व) रक्षा कर (स्वधिते) रोग नाश करने में वज्र के समान होकर (एनम्) इस यजमान वा प्राणीमात्र को (मा हिं सीः) कभी मत मार ।।१।।

भावार्थः—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। जैसे मनुष्य लोग ब्रह्मचर्य-पूर्वक अङ्ग और उपनिषद् सहित चारों वेदों को पढ़ कर औरों को पढ़ा कर विद्या को प्रकाशित कर और विद्वान् होके उत्तम कर्मों के अनुष्ठान से सब प्राणियों को सुखी करें, वैसे ही इन विद्वानों का सत्कार कर इन से वैदिक विद्या को प्राप्त होकर शरीर वा आत्मा की पुष्टि से धन का अत्यन्त सञ्चय करके सब मनुष्यों को आनन्दित होना चाहिये ।।१।।

आपो अस्मानित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । आपो देवता । स्वराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

फिर उन जलों से क्या-क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

आपोऽअस्मान् मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु । विश्व९ हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूतऽएमि । दीक्षातपसोस्तनूरसि तां त्वा शिवाᳬ शग्मां परिदधे भद्रं वर्णं पुष्यन् ।।२।।

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (भद्रम्) अति सुन्दर (वर्णम्) प्राप्त होने योग्य रूप को (पुष्यन्) पुष्ट करता हुआ मैं जो (घृतप्वः) घृत को पवित्र करने (देवीः) दिव्यगुणयुक्त (मातरः) माता के समान पालन करने वाले (आपः) जल (रिप्रम्) व्यक्त वाणी को प्राप्त करने वा जानने योग्य (विश्वम्) सब को (प्रवहन्ति) प्राप्त करते हैं, जिनसे विद्वान् लोग (अस्मान्) हम मनुष्य लोगों के (शुन्धयन्तु) बाह्य देश को पवित्र करें और जो (घृतेन) घृतवत् पुष्ट करने योग्य जल हैं जिनसे (नः) हम लोगों को सुखी कर सकें उनसे (पुनन्तु) पवित्र करें। जैसे मैं (इत्) भी (उत्) अच्छे प्रकार (आभ्यः) इन जलों से (शुचिः) पवित्र तथा (आपूतः) शुद्ध होकर (दीक्षातपसोः) ब्रह्मचर्य्य आदि उत्तम-उत्तम नियम सेवन से जो धर्मानुष्ठान के लिये (तनूः) शरीर (असि) है जिस (शिवाम्) कल्याणकारी (शग्माम्) सुखस्वरूप शरीर को (आएमि) प्राप्त होता और (परिदधे) सब प्रकार धारण करता हूं वैसे तुम लोग भी उन जल और (ताम्) उस (त्वा) अत्युत्तम शरीर को धारण करो ।।२।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को उचित

है कि जो सब सुखों को प्राप्त करने, प्राणों को धारण कराने तथा माता के समान पालन के हेतु जल हैं उनसे सब प्रकार पवित्र हो के इन को शोध कर मनुष्यों को नित्य सेवन करने चाहियें जिस से सुन्दर वर्ण रोग-रहित शरीर को सम्पादन कर निरन्तर प्रयत्न के साथ धर्म का अनुष्ठान कर पुरुषार्थ से आनन्द भोगना चाहिये ॥२॥

महीनामित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। मेघो देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर इस जलसमूह से उत्पन्न हुए मेघ का क्या निमित्त है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

महीनां पयोऽसि वर्चोदाऽअसि वर्चो मे देहि। वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दाऽअसि चक्षुर्मे देहि ॥३॥

पदार्थः—जो यह (महीनाम्) पृथिवी आदि के (पयः) जल रस का निमित्त (असि) है (वर्चोदाः) दीप्ति का देने वाला (असि) है जो (मे) मेरे लिये (वर्चः) प्रकाश को (देहि) देता है जो (वृत्रस्य) मेघ का (कनीनकः) प्रकाश करने वाला (असि) है वा (चक्षुर्दाः) नेत्र के व्यवहार को सिद्ध करने वाला (असि) है, वह सूर्य्य (मे) मेरे लिये (चक्षुः) नेत्रों के व्यवहार को (देहि) देता है ॥३॥

भावार्थः—मनुष्यों को जानना उचित है कि जिस सूर्य्य के प्रकाश के विना वर्षा की उत्पत्ति वा नेत्रों का व्यवहार सिद्ध कभी नहीं होता, उस सूर्य्यलोक को जिसने रचा है उस परमेश्वर को कोटि असंख्यात धन्यवाद देते रहें ॥३॥

चित्पतिर्मेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। परमात्मा देवता। निचृद्ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

जिस ने सूर्य्य आदि सब जगत् को बनाया है, वह परमात्मा हमारे लिये क्या क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

चित्पतिर्मा पुनातु वाक्पतिर्मा पुनातु देवो मा सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः। तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम् ॥४॥

पदार्थः—हे (पवित्रपते) पवित्रता के पालन करने हारे परमेश्वर ! (चित्पतिः) विज्ञान के स्वामी (वाक्पतिः) वाणी को निर्मल और (सविता) सब जगत् को

उत्पन्न करने वाले (देवः) दिव्य स्वरूप आप (पवित्रेण) शुद्ध करने वाले (अच्छिद्रेण) अविनाशी विज्ञान वा (सूर्यस्य) सूर्य और प्राण के (रश्मिभिः) प्रकाश और गमनागमनों से (मा) मुझे और मेरे चित्त को (पुनातु) पवित्र कीजिये (मा) मुझे और मेरी वाणी को (पुनातु) पवित्र कीजिये (मा) मुझे तथा मेरे चक्षु को (पुनातु) पवित्र कीजिये। जिस (पवित्रपूतस्य) शुद्ध स्वाभाविक विज्ञान आदि गुणों से पवित्र (ते) आप की कृपा से (यत्कामः) जिस उत्तम कामनायुक्त मैं (पुने) पवित्र होता हूँ, जिस (ते) आपकी उपासना से (तत्) उस अत्युत्तम कर्म्म के करने को (शकेयम्) समर्थ होऊं उस आपकी सेवा मुझ को क्यों न करनी चाहिये ॥४॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि जिस वेद के जानने वा पालन करने वाले परमेश्वर ने वेदविद्या, पृथिवी, जल, वायु और सूर्य्य आदि शुद्धि करने वाले पदार्थ प्रकाशित किये हैं उसकी उपासना तथा पवित्र कर्मों के अनुष्ठान से मनुष्यों को पूर्ण कामना और पवित्रता को संपादन अवश्य करना चाहिये ॥४॥

आ वो देवास इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। यज्ञो देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

मनुष्यों को किस-किस प्रकार का पुरुषार्थ करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है॥

आ वो॑ दे॒वास॑ऽईमहे वा॒मं प्र॑य॒त्य॑ध्व॒रे। आ वो॑ दे॒वास॑ऽआ॒शिषो॑ य॒ज्ञिया॑सो हवामहे ॥५॥

पदार्थः—हे (देवासः) विद्यादि गुणों से प्रकाशित होने वाले विद्वान् लोगो! जैसे हम लोग (वः) तुम को (प्रयति) सुखयुक्त (अध्वरे) हिंसा करने अयोग्य यज्ञ के अनुष्ठान में (वः) तुम्हारे (वामम्) प्रशंसनीय गुणसमूह की (आ ईमहे) अच्छे प्रकार याचना करते हैं। हे (देवासः) विद्वान् लोगो! जैसे हम लोग इस संसार में आप लोगों से (यज्ञियासः) यज्ञ को सिद्ध करने योग्य (आशिषः) इच्छाओं को (आ हवामहे) अच्छे प्रकार स्वीकार कर सकें वैसे ही हम लोगों के लिये आप लोग सदा प्रयत्न किया कीजिये ॥५॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि उत्तम विद्वानों के सङ्ग से उत्तम विद्याओं का संपादन कर अपनी इच्छाओं को पूर्ण करके इन विद्वानों का सङ्ग और सेवा सदा करनी चाहिये ॥५॥

स्वाहा यज्ञमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। यज्ञो देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

किस-किस प्रयोजन के लिये इस यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

स्वाहा यज्ञं मनसः स्वाहोरोरन्तरिक्षात् । स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याᳬं स्वाहा वातादारभे स्वाहा ।।६।।

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! जैसे मैं (स्वाहा) वेदोक्त (स्वाहा) उत्तम शिक्षा सहित (स्वाहा) विद्याओं का प्रकाश (स्वाहा) सत्य और सब जीवों के कल्याण करनेहारी वाणी और (स्वाहा) अच्छे प्रकार प्रयोग की हुई उत्तम क्रिया से (उरोः) बहुत (अन्तरिक्षात्) आकाश और (वातात्) वायु की शुद्धि कर के (द्यावापृथिवीभ्याम्) शुद्ध प्रकाश और भूमिस्थ पदार्थ (मनसः) विज्ञान और ठीक-ठीक क्रिया से (यज्ञम्) यज्ञ को पूर्ण करने के लिये पुरुषार्थ का (आरभे) नित्य आरम्भ करता हूं, वैसे तुम लोग भी करो ।।६।।

भावार्थः—मनुष्यों के द्वारा जो वेद की रीति और मन वचन कर्म्म से अनुष्ठान किया हुआ यज्ञ है वह आकाश में रहने वाले वायु आदि पदार्थों को शुद्ध करके सब को सुखी करता है ।।६।।

आकूत्यै प्रयुज इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यब्बृहस्पतयो देवताः । पूर्वार्धस्य पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । आपोदेवीरित्युत्तरस्यार्ची बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।।

किस लिये उस यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

आकूत्यै प्रयुजेऽग्नये स्वाहा मेधायै मनसेऽग्नये स्वाहा दीक्षायै तपसेऽग्नये स्वाहा सरस्वत्यै पूष्णेऽग्नये स्वाहा । आपो देवीर्बृहतीर्विश्वशम्भुवो द्यावापृथिवीऽउरोऽअन्तरिक्ष । बृहस्पतये हविषा विधेम स्वाहा ।।७।।

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (आकूत्यै) उत्साह (प्रयुजे) उत्तम-उत्तम धर्मयुक्त क्रियाओं (अग्नये) अग्नि के प्रदीपन (स्वाहा) वेदवाणी के प्रचार (सरस्वत्यै) विज्ञानयुक्त वाणी (पूष्णे) पुष्टि करने (बृहस्पतये) बड़े-बड़े अधिपतियों के होने (अग्नये) बिजुली की विद्या के ग्रहण (स्वाहा) पढ़ने-पढ़ाने से विद्या (मेधायै) बुद्धि की उन्नति (मनसे) विज्ञान की वृद्धि (अग्नये) कारणरूप (स्वाहा) सत्यवाणी की प्रवृत्ति (दीक्षायै) धर्म्मनियम और आचरण की रीति (तपसे) प्रताप

(अग्नये) जाठराग्नि के शोधन (स्वाहा) उत्तम स्तुतियुक्त वाणी से (बृहती:) महागुण-सहित (विश्वशम्भुवः) सब के लिये सुख उत्पन्न कराने वाले (देवी:) दिव्यगुण-सम्पन्न (आपः) प्राण वा जल से (स्वाहा) सत्य भाषण (द्यावापृथिवी) भूमि और प्रकाश की शुद्धि के अर्थ (उरो) बहुत सुख सम्पादक (अन्तरिक्ष) अन्तरिक्ष में रहने वाले पदार्थों को शुद्ध और जिस (स्वाहा) उत्तम क्रिया वा वेदवाणी से यज्ञ सिद्ध होता है, उन सबों को (हविषा) सत्य और प्रेमभाव से (विधेम) सिद्ध करें, वैसे तुम भी किया करो ॥७॥

भावार्थः—यज्ञ के अनुष्ठान के विना उत्साह, बुद्धि, सत्यवाणी, धर्म्माचरण की रीति, तप, धर्म्म का अनुष्ठान और विद्या की पुष्टि का सम्भव नहीं होता और इनके विना कोई भी मनुष्य परमेश्वर की आराधना करने को समर्थ नहीं हो सकता । इस से सब मनुष्यों को इस यज्ञ का अनुष्ठान कर के सब के लिये सब प्रकार आनन्द प्राप्त करना चाहिये ॥७॥

विश्वो देवस्येत्यस्यात्रेय ऋषिः । ईश्वरो देवता । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यों को परमेश्वर के आश्रय से क्या क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

विश्वो॑ दे॒वस्य॑ ने॒तुर्मर्त्तो॑ वुरीत स॒ख्यम् । विश्वो॑ रा॒यऽइ॑षुध्यति द्यु॒म्नं वृ॑णीत पु॒ष्यसे॒ स्वाहा॑ ॥८॥

पदार्थः—जैसे (विश्वः) सब (मर्त्तः) मनुष्य (नेतुः) सब को प्राप्त वा (देवस्य) सब का प्रकाश करने वाले परमेश्वर के साथ (सख्यम्) मित्रता और गुण कर्म्म समूह को (वुरीत) स्वीकार और (विश्वः) सब (राये) धन की प्राप्ति के लिये (इषुध्यति) बाणों को धारण करे वह (द्युम्नम्) धन को (वृणीत) स्वीकार करे, वैसे हे मनुष्य ! इस सब का अनुष्ठान करके (स्वाहा) सत्क्रिया से तू भी (पुष्यसे) पुष्ट हो ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब मनुष्यों को परमेश्वर की उपासना करके परस्पर मित्रपन का सम्पादन कर युद्ध में दुष्टों को जीत के राज्यलक्ष्मी को प्राप्त होकर सुखी रहना चाहिये ॥८॥

ऋक्सामयोरित्यस्यांगिरस ऋषयः । विद्वान् देवता । आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को शिल्पविद्या की सिद्धि कैसे करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

ऋक्सामयोः शिल्पे स्थस्ते वामारभे ते मा पातमास्य यज्ञस्योदृचः । शर्म्मासि शर्म्म मे यच्छ नमस्तेऽअस्तु मा मा हिꣳसीः ॥९॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! आप जो मैं (ऋक्सामयोः) ऋग्वेद और सामवेद के पढ़ने के पीछे (उदृचः) जिसमें अच्छे प्रकार ऋचा प्रत्यक्ष की जाती है (अस्य) इस (यज्ञस्य) शिल्पविद्या से सिद्ध हुए यज्ञ के सम्बन्धी (वाम्) ये (शिल्पे) मन वा प्रसिद्ध क्रिया से सिद्ध की हुई कारीगरी की जो विद्यायें (स्थः) हैं (ते) उन दोनों को (आरभे) आरम्भ करता हूँ तथा जो (मा) मेरी (आ) सब ओर से (पातम्) रक्षा करते हैं (ते) वे (स्थः) हैं, उनको विद्वानों के सकाश से ग्रहण करता हूं। हे विद्वन् मनुष्य ! (ते) उस तेरे लिये (मे) मेरा (नमः) अन्नादि-सत्कार-पूर्वक नमस्कार (अस्तु) विदित हो तथा तुम (मा) मुझको चलायमान मत करो और (यत्) जो (शर्म) सुख (असि) है उस (शर्म) सुख को (मे) मेरे लिये (यच्छ) देओ ॥९॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के सकाश से वेदों को पढ़कर शिल्पविद्या वा हस्तक्रिया को साक्षात्कार कर विमान आदि यानों की सिद्धिरूप कार्य्यों को सिद्ध करके सुखों की उन्नति करें ॥९॥

ऊर्गसीत्यस्यांगिरस ऋषयः । यज्ञो देवता । कृषीत्यन्तस्य निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः । उच्छ्रयस्वेत्यस्य साम्नी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।

वह शिल्पविद्यायज्ञ कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

ऊर्गस्याङ्गिरस्यूर्णम्म्रदाऽऊर्जं मयि धेहि । सोमस्य नीविरसि विष्णोः शर्मासि शर्म यजमानस्येन्द्रस्य योनिरसि सुऽसस्याः कृषीस्कृधि । उच्छ्रयस्व वनस्पतऽऊर्ध्वो मा पाह्यꣳहसऽआस्य यज्ञस्योदृचः ॥१०॥

पदार्थः—हे (वनस्पते) प्रकाशनीय विद्याओं का प्रचार करने वाले विद्वान् मनुष्य ! तू जो (आङ्गिरसि) अग्नि आदि पदार्थों से सिद्ध की हुई (ऊर्णम्म्रदाः) आच्छादन का प्रकाश वा (ऊर्क्) पराक्रम तथा अन्नादि को करने वाली शिल्पविद्या (असि) है अथवा जो (ऊर्जम्) पराक्रम वा अन्न आदि को धारण करती (असि) है, जो (सोमस्य) उत्पन्न पदार्थ समूह का (नीविः) संवरण करने वाली (असि) है, जो (विष्णोः) शिल्पविद्या में व्यापक बुद्धि (यजमानस्य) शिल्पक्रिया को जानने वाले

(इन्द्रस्य) परमैश्वर्य्ययुक्त मनुष्य के (शर्म) सुख का (योनिः) निमित्त (असि) है, जो (अस्य) इस (उद्दृचः) ऋचाओं के प्रत्यक्ष करने वाले (यज्ञस्य) शिल्पक्रिया-साध्य यज्ञ की (शर्म) सुख कराने वाली (असि) है, उसको (मयि) शिल्पविद्या को जानने की इच्छा करने वाले मुझ में (आ धेहि) अच्छे प्रकार धारण कर। (सुसस्याः) उत्तम उत्तम धान्य उत्पन्न करने वा (कृषीः) खेती वा खेंचने वाली क्रियाओं को (कृधि) सिद्ध कर (ऊर्ध्वः) ऊपर स्थित होने वाले (मा) मुझ को (उच्छ्रयस्व) उत्तम धान्य-वाली खेती का सेवन कराओ और (अंहसः) पाप वा दुःखों से (पाहि) रक्षा कर। जो विमान आदि यानों और यज्ञ में (वनस्पतिः) वृक्ष की शाखा ऊँची स्थापन की जाती है उस को भी (उच्छ्रयस्व) उपयोग में लाओ ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्यों को विद्वानों के सकाश से साक्षात्कार और प्रचार करके सब मनुष्यों को समृद्धियुक्त करना चाहिये ॥१०॥

व्रतं कृणुतेत्यस्याङ्गिरस ऋषयः। अग्निर्देवता। पूर्वस्य स्वराड् ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। ये देवा इत्युत्तरस्यार्च्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अब अनेक अर्थ वाले अग्नि को जानकर उससे क्या-क्या उपकार लेना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

व्रतं कृणुताग्निर्ब्रह्माग्निर्यज्ञो वनस्पतिर्यज्ञियः। दैवीं धियं मनामहे सुमृडीकामभिष्टये वर्चोधां यज्ञवाहसꣳ सुतीर्था नोऽअसद्वशे। ये देवा मनोजाता मनोयुजो दक्षक्रतवस्ते नोऽवन्तु ते नः पान्तु तेभ्यः स्वाहा ॥११॥

पदार्थः—हम लोग जो (ब्रह्म) ब्रह्मपदवाच्य (अग्निः) अग्नि नाम से प्रसिद्ध (असत्) है, जो (यज्ञः) अग्निसंज्ञक और जो (वनस्पतिः) वनों का पालन करने वाला यज्ञ (अग्निः) अग्नि नामक है उस की उपासना कर वा उस से उपकार लेकर (अभिष्टये) इष्टसिद्धि के लिये जो (सुतीर्था) जिससे अत्युत्तम दुःखों से तारने वाले वेदाध्ययनादि तीर्थ प्राप्त होते हैं, उस (सुमृडीकाम्) उत्तम सुखयुक्त (वर्चोधाम्) विद्या वा दीप्ति को धारण करने तथा (दैवीम्) दिव्यगुणसम्पन्न (धियम्) बुद्धि वा क्रिया को (मनामहे) जानें। (ये) जो (दक्षक्रतवः) शरीर, आत्मा के बल, प्रज्ञा वा कर्म्म से युक्त (मनोजाताः) विज्ञान से उत्पन्न हुए (मनोयुजः) सत्-असत् के ज्ञान से युक्त (देवाः) विद्वान् लोग (वशे) प्रकाशयुक्त कर्म्म में वर्त्तमान हैं वा जिन से (स्वाहा) विद्यायुक्त वाणी प्राप्त होती है (तेभ्यः) उनसे पूर्वोक्त प्रज्ञा की (मनामहे) याचना करते हैं (ते) वे (नः) हम लोगों को (अवन्तु) विद्या, उत्तम क्रिया तथा

शिक्षा आदिकों में प्रवेश करायें और (नः) हम लोगों की निरन्तर (पान्तु) रक्षा करें ॥११॥

भावार्थः—मनुष्यों को, जिसकी अग्नि संज्ञा है उस ब्रह्म को जान और उसकी उपासना करके उत्तम बुद्धि को प्राप्त करना चाहिये। विद्वान् लोग जिस बुद्धि से यज्ञ को सिद्ध करते हैं उससे शिल्पविद्याकारक यज्ञों को सिद्ध करके विद्वानों के सङ्ग से विद्या को प्राप्त होके स्वतन्त्र व्यवहार में सदा रहना चाहिये क्योंकि बुद्धि के विना कोई भी मनुष्य सुख को नहीं बढ़ा सकता। इससे विद्वान् मनुष्यों को उचित है कि सब मनुष्यों के लिये ब्रह्मविद्या और पदार्थविद्या और बुद्धि की शिक्षा करके निरन्तर रक्षा करें और वे रक्षा को प्राप्त हुए मनुष्य परमेश्वर वा विद्वानों के उत्तम-उत्तम प्रिय कर्म्मों का आचरण किया करें ॥११॥

श्वात्रा इत्यस्याङ्गिरस ऋषयः। आपो देवताः। ब्राह्मयनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

इसका अनुष्ठान करके आगे मनुष्यों को क्या-क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

श्वात्राः पीता भवत यूयमापोऽअस्माकमन्तरुदरे सुशेवाः। ताऽअस्मभ्यमयक्ष्माऽअनमीवाऽअनागसः स्वदन्तु देवीरमृताऽऋतावृधः ॥१२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जो हम ने (पीताः) पिये (अस्माकम्) मनुष्यों के (अन्तः) मध्य वा (उदरे) शरीर के भीतर स्थित हुए (अस्मभ्यम्) मनुष्यादिकों के लिये (सुशेवाः) उत्तम सुखयुक्त (अनमीवाः) ज्वरादि रोग-समूह से रहित (अयक्ष्माः) क्षयी आदि रोगकारक दोषों से रहित (अनागसः) पाप दोष निमित्तों से पृथक् (ऋतावृधः) सत्य को बढ़ाने वा (अमृताः) नाशरहित अमृतरसयुक्त (देवीः) दिव्य-गुणसम्पन्न (आपः) प्राण वा जल हैं (ताः) उनको आप लोग (स्वदन्तु) अच्छे प्रकार सेवन किया करो। इसका अनुष्ठान करके (यूयम्) तुम सब मनुष्य सुखों को भोगने वाले (भवत) नित्य होओ ॥१२॥

भावार्थः—मनुष्यों को विद्वानों के सङ्ग वा उत्तम शिक्षा से विद्या को प्राप्त होकर अच्छे प्रकार परीक्षित शुद्ध किये हुए, शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाने और रोगों को दूर करने वाले जल आदि पदार्थों का सेवन करना चाहिये क्योंकि विद्या वा आरोग्यता के विना कोई भी मनुष्य

निरन्तर कर्म्म करने को समर्थ नहीं हो सकता। इससे इस कार्य्य का सर्वदा अनुष्ठान करना चाहिये ॥१२॥

इयन्त इत्यस्याङ्गिरस ऋषयः। आपो देवताः। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर वे जल कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

इयं ते यज्ञिया तनूरपो मुञ्चामि न प्रजाम्। अꣳहोमुचः स्वाहाकृताः पृथिवीमाविशत पृथिव्या सम्भव ॥१३॥

पदार्थः – हे विद्वन् मनुष्य! जैसे (ते) तेरा जो (इयम्) यह (यज्ञिया) यज्ञ के योग्य (तनूः) शरीर (अपः) जल, प्राण वा (प्रजाम्) प्रजा की रक्षा करता है, जिस को तू नहीं छोड़ता। मैं भी अपने उस शरीर को विना पूर्ण आयु भोगे प्रमाद से बीच में (न मुञ्चामि) नहीं छोड़ता हूं। हे मनुष्यो! जैसे तुम (पृथिव्या) भूमि के साथ वैभवयुक्त होते (अंहोमुचः) दुःखों को छुड़ाने वा (स्वाहाकृताः) वाणी से सिद्ध किये हुए (अपः) जल और (पृथिवीम्) भूमि को (आविशत) अच्छे प्रकार विज्ञान से प्रवेश करते हो, मैं इन से ऐश्वर्य्यसहित और इनमें प्रविष्ट होता हूं वैसे तू भी (सम्भव) हो और प्रवेश कर ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। मनुष्यों को चाहिये कि विद्या से परस्पर पदार्थों का मेल और सेवन कर रोगरहित शरीर तथा आत्मा की रक्षा करके सुखी रहें ॥१३॥

अग्ने त्वमित्यस्याङ्गिरस ऋषयः। अग्निर्देवता। स्वराडार्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

फिर अग्नि के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अग्ने त्वꣳ सु जागृहि वयꣳ सु मन्दिषीमहि। रक्षा णोऽअप्रयुच्छन् प्रबुधे नः पुनस्कृधि ॥१४॥

पदार्थः—(अग्ने) जो अग्नि (प्रबुधे) जगने के समय (सुजागृहि) अच्छे प्रकार जगाता वा जिससे (वयम्) जगत् के कर्म्मानुष्ठान करने वाले हम लोग (सुमन्दिषीमहि) आनन्दपूर्वक सोते हैं। जो (अप्रयुच्छन्) प्रमादरहित होके (नः) प्रमादरहित हम लोगों की (रक्ष) रक्षा तथा प्रमादसहितों को नष्ट करता और जो (नः) हम लोगों के साथ (पुनः) वार-वार इसी प्रकार (कृधि) व्यवहार करता है, उसको युक्ति के साथ सब मनुष्यों को सेवन करना चाहिये ॥१४॥

भावार्थः—मनुष्यों को जो अग्नि सोने, जागने, जीने तथा मरने का हेतु है, उसका युक्ति से सेवन करना चाहिये ॥१४॥

पुनर्मन इत्यस्याङ्गिरस ऋषयः। अग्निर्देवता। भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

जीव अग्नि वायु आदि पदार्थों के निमित्त से जगने के समय वा दूसरे जन्म में प्रसिद्ध मन आदि इन्द्रियों को प्राप्त होते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

पुनर्मनः पुनरायुर्मऽआगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा मऽआगन् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं मऽआगन्। वैश्वानरोऽअदब्धस्तनूपाऽअग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात् ॥१५॥

पदार्थः—जिसके सम्बन्ध वा कृपा से (मे) मुझ को जो (मनः) विज्ञानसाधक मन (आयुः) उमर (पुनः) फिर-फिर (आगन्) प्राप्त होता (मे) मुझ को (प्राणः) शरीर का आधार प्राण (पुनः) फिर (आगन्) प्राप्त होता (आत्मा) सब में व्यापक सब के भीतर की सब बातों को जानने वाले परमात्मा का विज्ञान (आगन्) प्राप्त होता (मे) मुझको (चक्षुः) देखने के लिये नेत्र (पुनः) फिर (आगन्) प्राप्त होते और (श्रोत्रम्) शब्द को ग्रहण करने वाले कान (आगन्) प्राप्त होते हैं वह (अदब्धः) हिंसा करने अयोग्य (तनूपाः) शरीर वा आत्मा की रक्षा करने और (वैश्वानरः) शरीर को प्राप्त होने वाला (अग्निः) अग्नि वा विश्व को प्राप्त होने वाला परमेश्वर (नः) हम लोगों को (अवद्यात्) निन्दित (दुरितात्) पाप से उत्पन्न हुए दुःख वा दुष्ट कर्मों से (पातु) पालन करता है ॥१५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जब जीव सोने वा मरण आदि व्यवहार को प्राप्त होते हैं, तब जो-जो मन आदि इन्द्रिय नाश हुए के समान होकर फिर जगने वा जन्मान्तर में जिन कार्य्य करने के साधनों को प्राप्त होते हैं, वे इन्द्रिय जिस विद्युत् अग्नि आदि के सम्बन्ध परमेश्वर की सत्ता वा व्यवस्था से शरीर वाले होकर कार्य्य करने को समर्थ होते हैं। मनुष्यों को योग्य है कि जो वह अच्छे प्रकार सेवन किया हुआ जाठराग्नि सब की रक्षा करता और जो उपासना किया हुआ जगदीश्वर पाप-रूप कर्मों से अलग कर धर्म में प्रवृत्त कर बारम्बार मनुष्यजन्म को प्राप्त कराकर दुष्टाचार वा दुःखों से पृथक् करके इस लोक वा परलोक के सुखों को प्राप्त कराता है, वह क्यों न उपयुक्त और उपास्य होना चाहिये ॥१५॥

त्वमग्ने व्रतपा इत्यस्य वत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

त्वमग्ने व्रतपाऽअसि देवऽआ मर्त्येष्वा। त्वं यज्ञेष्वीड्यः। रास्वेयत्सोमा भूयो भर देवो नः सविता वसोर्दाता वस्वदात्॥१६॥

पदार्थः—हे (सोम) ऐश्वर्य्य के देने वाले (अग्ने) जगदीश्वर! जो (त्वम्) आप (मर्त्येषु) मनुष्यों में (व्रतपाः) सत्य धर्माचरण की रक्षा (सविता) सब जगत् को उत्पन्न करने (यज्ञेषु) सत्कार वा उपासना आदि में (ईड्यः) स्तुति के योग्य (नः) हम लोगों के लिये (वसोः) धन के (दाता) दान करने वाले (वसु) धन को (अदात्) देते हैं सो (इयत्) प्राप्त करते हुए आप (भूयः) वारंवार अत्यन्त धन (आरास्व) दीजिये (आभर) सब सुखों से पोषण कीजिये॥१॥ (त्वम्) जो (अग्ने) अग्नि (मर्त्येषु) मरण धर्म वाले मनुष्यों के कार्यों में (व्रतपाः) नियमाचरण का पालन (देवः) प्रकाश करने (यज्ञेषु) अग्निहोत्रादि यज्ञों में (ईड्यः) खोजने योग्य (सोमः) ऐश्वर्य को देने (सविता) जगत् को प्रेरणा करने वाला (देवः) प्रकाशमान अग्नि है वह (नः) हम लोगों के लिये (वसोः) धन को (दाता) प्राप्त (इयत्) कराता हुआ (भूयः) अत्यन्त (वसु) धन को (अदात्) देता और (आरास्व) धन को देने का निमित्त हो के (आभर) सब प्रकार के सुखों को धारण करता है॥२॥१६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। सब मनुष्यों को उचित है कि जैसे सत्यस्वरूप सब जगत् को उत्पन्न करने और सकल सुखों के देने वाले जगदीश्वर ही की उपासना को करके सुखी रहें इसी प्रकार कार्य-सिद्धि के लिये अग्नि को संप्रयुक्त करके सब सुखों को प्राप्त करें॥१६॥

एषा त इत्यस्य वत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्चीत्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

इनको सेवन करके मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

एषा ते शुक्र तनूरेतद्वर्चस्तया सम्भव भ्राजङ्गच्छ। जूरसि धृता मनसा जुष्टा विष्णवे॥१७॥

पदार्थः—हे (शुक्र) वीर्य्य पराक्रम वाले विद्वन् मनुष्य! (ते) तेरा जो (विष्णवे) परमेश्वर वा यज्ञ के लिए तैंने जिसको (धृता) धारण किया है (तया) उससे तू (जूः) ज्ञानी वा वेग वाला होके (एतत्) इस (वर्चः) विज्ञान और तेजयुक्त (सम्भव)

संपन्न हो अच्छे प्रकार विज्ञान करने के लिए (तनूः) शरीर (असि) है उससे तू (आजम्) प्रकाश को (गच्छ) प्राप्त हो और (धृता) धारण किये (मनसा) विज्ञान से पुरुषार्थ को प्राप्त हो ॥१७॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की आज्ञा का पालन करके विज्ञानयुक्त मन से शरीर वा आत्मा के आरोग्यपन को बढ़ा कर यज्ञ का अनुष्ठान करके सुखी रहें ॥१७॥

तस्यास्त इत्यस्य वत्स ऋषिः। वाग्विद्युतौ देवते। स्वराडार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

वह वाणी और विजुली कैसी हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

तस्यास्ते सत्यसवसः प्रसवे तन्वो यन्त्रमशीय स्वाहा। शुक्रमसि चन्द्रमस्यमृतमसि वैश्वदेवमसि ॥१८॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर! (सत्यसवसः) सत्य ऐश्वर्य्ययुक्त वा जगत् के निमित्त कारणरूप(ते) आपके (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में आपकी कृपा से जो(स्वाहा) वाणी वा विजुली है (तस्याः) उन दोनों के सकाश से विद्या करके युक्त मैं जो (शुक्रम्) शुद्ध (असि) है (चन्द्रम्) आह्लादकारक (असि) है (अमृतम्) अमृतात्मा के व्यवहार वा परमार्थ से सुख को सिद्ध करने वाला (असि) है और (वैश्वदेवम्) सब देव अर्थात् विद्वानों को सुख देने वाला (असि) है (तत्) उस (यन्त्रम्) सङ्कोचन, विकाशन, चालन, वन्धन करने वाले यंत्र को (अशीय) प्राप्त होऊं ॥१८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की उत्पन्न की हुई इस सृष्टि में विद्या से कलायन्त्रों को सिद्ध करके अग्नि आदि पदार्थों से अच्छे प्रकार पदार्थों का ग्रहण कर सब सुखों को प्राप्त करें ॥१८॥

चिदसीत्यस्य वत्स ऋषिः। वाग्विद्युतौ देवते। भूरिव ब्राह्मीपंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर वे वाणी और बिजुली किस प्रकार की हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

चिदसि मनासि धीरसि दक्षिणासि क्षत्रियासि यज्ञियास्यदितिरस्युभयतःशीर्ष्णी। सा नः सुप्राची सुप्रतीच्येधि मित्रस्त्वा पदि बध्नीतां पूषाऽध्वनस्पात्विन्द्रायाध्यक्षाय ॥१९॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! (सत्यसवसः) सत्य ऐश्वर्य्ययुक्त (ते) आपके (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में जो(चित्) विद्या व्यवहार को चिताने वाली (असि) है जो (मना) ज्ञान साधन कराने हारी (असि) है जो (धीः) प्रज्ञा और कर्म को प्राप्त करने वाली (असि) है जो (दक्षिणा) विज्ञान और विजय को प्राप्त करने (क्षत्रिया) राजा के पुत्र के समान वर्तने हारी (असि) है जो (यज्ञिया) यज्ञ को कराने योग्य (असि) है जो (उभयतःशीर्ष्णी) दोनों प्रकार से शिर के समान उत्तम गुण युक्त और (अदितिः) नाशरहित वाणी वा बिजुली (असि) है (सा) वह (नः) हम लोगों के लिये (सुप्राची) पूर्वकाल और (सुप्रतीची) पश्चिम काल में सुख देने हारी (एधि) हो जो (पूषा) पुष्टि करने हारा (मित्रः) सब का मित्र होकर मनुष्यपन के लिये (त्वा) उस वाणी और बिजुली को (पदि) प्राप्तियोग्य उत्तम व्यवहार में (अध्यक्षाय) अच्छे प्रकार व्यवहार को देखने (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य वाले परमात्मा, अध्यक्ष और श्रेष्ठ व्यवहार के लिये (बध्नीताम्) बन्धनयुक्त करे सो आप (अध्वनः) व्यवहार और परमार्थ की सिद्धि करने वाले मार्ग के मध्य में (नः) हम लोगों की निरन्तर (पातु) रक्षा कीजिये ॥१९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है और पूर्व मन्त्र से (ते) (सत्यसवसः) (प्रसवे) इन तीन पदों की अनुवृत्ति भी आती है। मनुष्यों को जो बाह्य आभ्यन्तर की रक्षा करके सब से उत्तम वाणी वा बिजुली वर्त्तती है वही भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल में सुखों की कराने वाली है ऐसा जानना चाहिये। जो कोई मनुष्य प्रीति से परमेश्वर, सभाध्यक्ष और उत्तम कामों में आज्ञा के पालन के लिये सत्य वाणी और उत्तम विद्या को ग्रहण करता है, वही सब की रक्षा कर सकता है ॥१९॥

अनु त्वेत्यस्य वत्स ऋषिः। वाग्विद्युतौ देवते। पूर्वार्द्धस्य साम्नी जगती छन्दः। निषादः स्वरः। उत्तरार्द्धस्य भुरिगाष्र्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

फिर वह वाणी और बिजुली कैसी हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अनु त्वा माता मन्यतामनु पिताऽनु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः। सा देवि देवमच्छेहीन्द्राय सोमꣳ रुद्रस्त्वावर्त्तयतु स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि ॥२०॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! जैसे (रुद्रः) परमेश्वर वा ४४ चवालीस वर्ष पर्यन्त अखण्ड ब्रह्मचर्य्याश्रम सेवन से पूर्ण विद्यायुक्त विद्वान् (त्वा) तुझको जिस वाणी वा

विजुली तथा (सोमम्) उत्तम पदार्थसमूह और (स्वस्ति) सुख को (इन्द्राय) परमैश्वर्य की प्राप्ति के लिये (आवर्त्तयतु) प्रवृत्त करे और जो (सा) वह (सोमसखा) विद्याप्रकाश-युक्त वाणी और (देवि) दिव्यगुणयुक्त बिजुली (देवम्) उत्तम धर्मात्मा विद्वान् को प्राप्त होती है वैसे उस को तू (पुनः) वार-वार (अच्छ) अच्छे प्रकार (इहि) प्राप्त हो और इसको ग्रहण करने के लिये (त्वा) तुझ को (माता) उत्पन्न करने वाली जननी (अनुमन्यताम्) अनुमति अर्थात् आज्ञा देवे इसी प्रकार (पिता) उत्पन्न करने वाला जनक (सगर्भ्यः) तुल्य गर्भ में होने वाला (भ्राता) भाई और (सयूथ्यः) समूह में रहने वाला (सखा) मित्र ये सब प्रसन्नता पूर्वक आज्ञा देवें। उसको तू (पुनरेहि) अत्यन्त पुरुषार्थ करके वारम्वार प्राप्त हो ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। प्रश्नः—मनुष्यों को परस्पर किस प्रकार वर्त्तना चाहिये ? उत्तरः—जैसे धर्मात्मा, विद्वान्, माता, पिता, भाई, मित्र आदि सत्यव्यवहार में प्रवृत्त हों। वैसे पुत्रादि और जैसे विद्वान् धार्मिक पुत्रादि धर्मयुक्त व्यवहार में वर्तें, वैसे माता पिता आदि को भी वर्त्तना चाहिये ॥२०॥

वस्वीत्यस्य वत्स ऋषिः। वाग्विद्युतौ देवते। विराडार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह वाणी वा बिजुली किस प्रकार की हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

वस्व्यस्यदि॑तिरस्यादि॒त्यासि॑ रु॒द्रासि॑ च॒न्द्रासि॑। बृह॒स्पति॑ष्ट्वा सु॒म्ने र॑म्णातु रु॒द्रो वसु॑भि॒राच॑के ॥२१॥

पदार्थः—हे विद्वन् मनुष्य ! जैसे जो (वस्वी) अग्नि आदि विद्या सम्बन्धी, जिसकी सेवा २४ चौवीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करने वालों ने की हुई (असि) है जो (अदितिः) प्रकाशकारक (असि) है जो (रुद्रा) प्राणवायु सम्बन्ध वाली और जिसको ४४ चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य करने हारे प्राप्त हुए हों वैसी (असि) है जो (आदित्या) सूर्य्यवत् सब विद्याओं का प्रकाश करने वाली, जिसका ग्रहण ४८ अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्यसेवी मनुष्यों ने किया हो वैसी (असि) है। जो (चन्द्रा) आह्लाद करने वाली (असि) है जिसको (बृहस्पतिः) सर्वोत्तम (रुद्रः) दुष्टों को रुलाने वाला परमेश्वर वा विद्वान् (सुम्ने) सुख में (रम्णातु) रमणयुक्त करता और जिस (वसुभिः) पूर्णविद्यायुक्त मनुष्यों के साथ वर्त्तमान हुई वाणी वा बिजुली का (आचके) निर्माण वा इच्छा करता अथवा जिसकी मैं इच्छा करता हूं वैसे तू भी (त्वा) उसको (रम्णातु) रमणयुक्त वा इसको सिद्ध करने की इच्छा कर ॥२१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे वाणी, बिजुली और प्राण पृथिवी आदि और विद्वानों के साथ वर्तमान हुए अनेक व्यवहारों की सिद्धि के हेतु हैं और जिनकी सेवा जितेन्द्रियादि धर्म-सेवनपूर्वक होके विद्वानों ने की हो वैसी वाणी और विजुली मनुष्यों को विज्ञानपूर्वक क्रियाओं से सम्प्रयोग की हुईं बहुत सुखों के करने वाली होती हैं ॥२१॥

अदित्यास्त्वेत्यस्य वत्स ऋषिः। वाग्विद्युतौ देवते। ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः ॥

फिर वे वाणी और विजुली कैसी हैं इस विषय का उपदेश
अगले मन्त्र में किया है ॥

अदि॑त्यास्त्वा मू॒र्द्धन्नाजि॑घर्मि देवयज॑ने पृथि॒व्याऽइडा॑यास्प॒दम॑सि घृ॒तव॒त् स्वाहा॑। अ॒स्मे र॑मस्वा॒स्मे ते॒ बन्धु॒स्त्वे रा॒यो मे रा॒यो मा व॒यꣳ रा॒यस्पोषे॑ण॒ वियौ॑ष्म॒ तोतो॒ राय॑ः ॥२२॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य! तू जैसे (देवयजने) विद्वानों के यजन वा दान में इस (अदित्याः) अन्तरिक्ष (पृथिव्याः) भूमि और (इडायाः) वाणी को (स्वाहा) अच्छे प्रकार यज्ञ करने वाली क्रिया के मध्य जो (मूर्द्धन्) सब के ऊपर वर्त्तमान (घृतवत्) पुष्टि करने वाले घृत के तुल्य (पदम्) जानने वा प्राप्त होने योग्य पदवी (असि) है वा जिसको मैं (आजिघर्मि) प्रदीप्त करता हूँ वैसे (त्वा) उसको प्रदीप्त कर और जो (अस्मे) हम लोगों में विभूति रमण करती है वह तुम लोगों में भी (रमस्व) रमण करे. जिसको मैं रमण कराता हूँ उस को तू भी (रमस्व) रमण करा जो (अस्मे) हम लोगों का (बन्धुः) भाई है वह (ते) तेरा भी हो जो (रायः) विद्यादिधनसमूह (त्वे) तुझ में है वह (मे) मुझ में भी हो, जो (तोतः) जानने प्राप्त करने योग्य (रायः) विद्याधन मुझ में है सो तुझ में भी हो (रायः) जो तुम्हारी और हमारी समृद्धि हैं वे सब के सुख के लिये हों। इस प्रकार जानते निश्चय करते वा अनुष्ठान करते हुए तुम (वयम्) हम और सब लोग (रायस्पोषेण) धन की पुष्टि से कभी (मा वियौष्म) अलग न होवें ॥२२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को सत्यविद्या, धर्म्म से संस्कार की हुई वाणी वा शिल्पविद्या से सम्प्रयोग की हुई विजुली आदि विद्या को सब मनुष्यों के लिये उपदेश वा ग्रहण और सुख दुःख की व्यवस्था को भी तुल्य ही जान के सब ऐश्वर्य्य को परोपकार

में संयुक्त करना चाहिये और किसी मनुष्य को इस प्रकार का व्यवहार कभी न करना चाहिये कि जिससे किसी की विद्या धन आदि ऐश्वर्य्य की हानि होवे ।.२२।।

समख्य इत्यस्य वत्स ऋषिः । वाग्विद्युतौ देवते । आस्तारपंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ।।

इन दोनों का किस प्रकार उपयोग करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

समख्ये देव्या धिया सं दक्षिणयोरुचक्षसा । मा मऽआयुः प्रमोषीर्मोऽअहं तव वीरं विदेय तव देवि संदृशि ।।२३।।

पदार्थः—हे विद्वन् मनुष्य ! जैसे (अहम्) मैं (दक्षिणया) ज्ञानसाधक अज्ञान-नाशक (उरुचक्षसा) बहुत प्रकट वचन वा दर्शनयुक्त (देव्या) देदीप्यमान (धिया) प्रज्ञा वा कर्म्म से (तव) उस (देवि) सर्वोत्कृष्ट गुणों से युक्त वाणी वा विजुली के (संदृशि) अच्छे प्रकार देखने योग्य व्यवहार में जीवन को (समख्ये) कथन से प्रकट करता हूँ वह (मे) मेरे (आयुः) जीवन को (मा प्रमोषीः) नाश न करे उस को मैं अविद्या से (मो) नष्ट न करूं (तव) हे सब के मित्र ! अन्याय से आप के (वीरम्) शूरवीर को (मा संविदेय) प्राप्त न होऊँ वैसे ही तुम भी पूर्वोक्त सब करके अन्याय से मेरे शूरवीरों को प्राप्त मत हो ।।२३।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को योग्य है कि शुद्ध कर्म्म वा प्रज्ञा से वाणी वा विजुली की विद्या को ग्रहण कर उमर को बढ़ा और विद्यादि उत्तम-उत्तम गुणों में अपने संतान और वीरों को संपादन करके सदा सुखी रहें ।।२३।।

एष त इत्यस्य वत्स ऋषिः । यज्ञो देवता । पूर्वस्य ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ।। अन्त्यस्य दशाक्षरस्य याजुषी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।।

किसके प्रतिपादन के लिये ज्ञान की इच्छा करने हारा विद्वानों को पूछे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

एष ते गायत्रो भागऽइति मे सोमाय ब्रूतादेष ते त्रैष्टुभो भागऽइति मे सोमाय ब्रूतादेष ते जागतो भागऽइति मे सोमाय ब्रूताच्छन्दोनामानाᳬं साम्राज्यङ्गच्छेति मे सोमाय ब्रूतात् । आस्माकोऽसि शुक्रस्ते ग्रह्यो विचितस्त्वा विचिन्वन्तु ।।२४।।

पदार्थः—हे विद्वन् मनुष्य ! तू कौन इस यज्ञ का (गायत्रः) वेदस्थ गायत्री छन्दयुक्त मन्त्रों के समूहों से प्रतिपादित (भागः) सेवने योग्य भाग है (इति) इस प्रकार विद्वान् से पूछ। जैसे वह विद्वान् (ते) तुझ को उस यज्ञ का यह प्रत्यक्ष भाग है (इति) इसी प्रकार से (सोमाय) पदार्थविद्या संपादन करने वाले (मे) मेरे लिये (ब्रूतात्) कहे। तू कौन इस यज्ञ का (त्रैष्टुभः) त्रिष्टुप् छन्द से प्रतिपादित (भागः) भाग है (इति) इसी प्रकार विद्वान् से पूछ। जैसे वह (ते) तुझ को उस यज्ञ का (एषः) यह भाग है (इति) इसी प्रकार प्रत्यक्षता से समाधान (सोमाय) उत्तम रस के संपादन करने वाले (मे) मेरे लिये (ब्रूतात्) कहे। तू कौन इस यज्ञ का (जागतः) जगती छन्द से कथित (भागः) अंश है (इति) इस प्रकार आप्त से पूछ। जैसे वह (ते) तुझ को उस यज्ञ का (एषः) यह प्रसिद्ध भाग है (इति) इसी प्रकार (सोमाय) पदार्थविद्या को संपादन करने वाले (मे) मेरे लिये उत्तर (ब्रूतात्) कहे। जैसे आप (छन्दोनामानाम्) उष्णिक् आदि छन्दों के मध्य में कहे हुए यज्ञ के उपदेश में (साम्राज्यम्) भले प्रकार राज्य को (गच्छ) प्राप्त हों (इति) इसी प्रकार (सोमाय) ऐश्वर्य्ययुक्त (मे) मेरे लिये सार्वभौम राज्य की प्राप्ति होने का उपाय (ब्रूतात्) कहिये और जिस कारण आप (आस्माकः) हम लोगों को (शुक्रः) पवित्र करने वाले उपदेशक (असि) हैं वैसे मैं (ते) आपके (प्रह्यः) ग्रहण करने योग्य (विचितः) उत्तम उत्तम धनादि द्रव्य और गुणों से संयुक्त शिष्य हूँ। आप मुझ को सब गुणों से बढ़ाइये, इस कारण मैं (त्वा) आप को वृद्धियुक्त करता हूँ और सब मनुष्य (त्वा) आप वा इस यज्ञ तथा मुझको (विचिन्वन्तु) वृद्धियुक्त करें ॥२४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य लोग विद्वानों से पूछकर सब विद्याओं का ग्रहण करें तथा विद्वान् लोग इन विद्याओं का यथावत् ग्रहण करावें। परस्पर अनुग्रह करने वा कराने से सब वृद्धियों को प्राप्त होकर विद्या और चक्रवर्त्ति आदि राज्य का सेवन करें ॥२४॥

अभि त्यमित्यस्य वत्स ऋषिः। सविता देवता। पूर्वस्य विराट् ब्राह्मी जगती छन्दः। निषादः स्वरः। सुक्रतुरित्युत्तरस्य निचृदार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

फिर अगले मन्त्र में ईश्वर, राजसभा और प्रजा के गुणों का उपदेश किया है ॥

अभि त्यं देवꣳ सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवꣳ रत्नधामभि प्रियं मतिं कविम्। ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भाऽअदिद्युतत्सवीं-

मनिं हिरंण्यपाणिरमिमीत । सुक्रतुः कृपा स्वः । प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वांऽनुप्राणंन्तु प्रजास्त्वमंनुप्राणिंहि ॥२५॥

पदार्थः—मैं (यस्य) जिस सच्चिदानन्दादिलक्षणयुक्त परमेश्वर, धार्मिक सभापति और प्रजाजन के (सवीमनि) उत्पन्न हुए संसार में (ऊर्ध्वा) उत्तम (अमतिः) स्वरूप (भाः)प्रकाशमान (अदिद्युतत्) प्रकाशित हुआ है, जिसकी (कृपा) करुणा (स्वः) सुख को करती है (हिरण्यपाणिः) जिसने सूर्य्यादि ज्योति उत्तम गुण कर्म्मों को व्यवहार में युक्त किया हो (सुक्रतुः) जिस उत्तम प्रज्ञा वा कर्म्मयुक्त ईश्वर, सभा-स्वामी और प्रजाजन ने (स्वः) सूर्य्य और सुख को (अमिमीत) स्थापित किया हो (त्वम्) उस (ओण्योः) द्यावापृथिवी वा (सवितारम्) अग्नि आदि को उत्पन्न और संप्रयोग करने तथा (कविक्रतुम्) सर्वज्ञ वा क्रान्तदर्शन (रत्नधाम्) रमणीय रत्नों को धारण करने (सत्यसवम्) सत्य ऐश्वर्य्ययुक्त (प्रियम्) प्रीतिकारक (मतिम्) वेदादि शास्त्र वा विद्वानों के मानने योग्य (कविम्) वेदविद्या का उपदेश करने तथा (देवम्) सुख देने वाले परमेश्वर, सभाध्यक्ष और प्रजाजन का (अर्चामि) पूजन करता हूं वा जिस (त्वा) आपको (प्रजाभ्यः) उत्पन्न हुई सृष्टि से पूजित करता हूँ उस आप की सृष्टि में (प्रजाः) मनुष्य आदि (अनुप्राणन्तु) आयु का भोग करें (त्वम्) और आप कृपा करके (प्रजाः) प्रजा के ऊपर जीवों के अनुकूल (अनुप्राणिहि) अनुग्रह कीजिये ॥२५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को सब जगत् के उत्पन्न करने वाले निराकार, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान्, सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त परमेश्वर, धार्मिक सभापति और प्रजाजन समूह ही का सत्कार करना चाहिये, उन से भिन्न और किसी का नहीं। विद्वान् मनुष्यों को योग्य है कि प्रजा-पुरुषों के सुख के लिये इस परमेश्वर की स्तुतिप्रार्थनो-पासना और श्रेष्ठ सभापति तथा धार्मिक प्रजाजन के सत्कार का उपदेश नित्य करें जिस से सब मनुष्य उन की आज्ञा के अनुकूल सदा वर्त्तते रहें और जैसे प्राण में सब जीवों की प्रीति होती है वैसे पूर्वोक्त परमेश्वर आदि में भी अत्यन्त प्रेम करें ॥२५॥

शुक्रं त्वेत्यस्य वत्स ऋषिः। यज्ञो देवता। भुरिग्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

मनुष्यों को क्या-क्या साधनों करके यज्ञ को सिद्ध करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

शुक्रं त्वा शुक्रेण क्रीणामि चन्द्रं चन्द्रेणामृतममृतेन। सग्मे ते गोरस्मे ते चन्द्राणि तपसस्तनूरसि। प्रजापतेर्वर्णः परमेण पशुना क्रीयसे सहस्रपोषं पुषेयम् ॥२६॥

पदार्थः—जैसे (सग्मे) पृथिवी के साथ वर्त्तमान यज्ञ में (तपसः) प्रतापयुक्त अग्नि वा तपस्वी अर्थात् धर्म्मात्मा विद्वान् का (तनूः) शरीर (असि) है। उस को शिल्पविद्या वा सत्योपदेश की सिद्धि के अर्थ (पशुना) विक्रय किये हुए गौ आदि पशुओं करके धन आदि सामग्री से ग्रहण करके (प्रजापतेः) प्रजा के पालन हेतु सूर्य्य का (वर्णः) स्वीकार करने योग्य तेज (क्रीयसे) क्रय होता है उस (सहस्रपोषम्) असंख्यात पुष्टि को प्राप्त होके मैं (पुषेयम्) पुष्ट होऊँ। हे विद्वान् मनुष्य! जो (ते) आप को (गोः) पृथिवी के राज्य के सकाश से (चन्द्राणि) सुवर्ण आदि धातु प्राप्त हैं वे (अस्मे) हम लोगों के लिये भी हों जैसे मैं (परमेण) उत्तम (शुक्रेण) शुद्ध भाव से (शुक्रम्) शुद्धिकारक यज्ञ (चन्द्रेण) सुवर्ण से (चन्द्रम्) सुवर्ण और (अमृतेन) नाशरहित विज्ञान से (अमृतम्) मोक्षसुख को (क्रीणामि) ग्रहण करता हूं वैसे तू भी (त्वा) उसको ग्रहण कर ॥२६॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि शरीर मन वाणी और धन से परमेश्वर की उपासना आदि लक्षणयुक्त यज्ञ का निरन्तर अनुष्ठान करके असंख्यात अतुल पुष्टि को प्राप्त करें ॥२६॥

मित्रो न इत्यस्य वत्स ऋषिः। विद्वान् देवता। भुरिग्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को विद्वान् मनुष्य के साथ और विद्वान् को सब मनुष्यों के संग कैसे वर्त्तना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मित्रो नऽएहि सुमित्रधऽइन्द्रस्योरुमाविश दक्षिणमुशन्नुशन्तꣳ स्योनः स्योनम्। स्वान भ्राजाङ्घारे बम्भारे हस्त सुहस्त कृशानवेते वः सोमक्रयणास्तान्रक्षध्वं मा वो दभन् ॥२७॥

पदार्थः—हे (स्वान) उपदेश करने (भ्राज) प्रकाश को प्राप्त होने (अंघारे) छल के शत्रु (बम्भारे) विचार-विरोधियों के शत्रु (हस्त) प्रसन्न (सुहस्त) अच्छे प्रकार हस्तक्रिया को जानने और (कृशानो) दुष्टों को कृश करने (सुमित्रधः) उत्तम मित्रों को धारण करने (मित्रः) सब के मित्र (स्योनः) सुख की (उशन्) कामना करने हारे सभाध्यक्ष! आप (नः) हम लोगों को (आ इहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये

तथा (दक्षिणम्) उत्तम अङ्गयुक्त (उरुम्) बहुत उत्तम पदार्थों से युक्त वा स्वीकार करने योग्य (उशन्तम्) कामना करने योग्य (स्योनम्) सुख को (आविश) प्रवेश कीजिये। हे सभाध्यक्षो ! (एते) जो (इन्द्रस्य) परमैश्वर्ययुक्त सभाध्यक्ष विद्वान् के (सोमक्रयणाः) सोम अर्थात् उत्तम पदार्थों का क्रय करने हारे प्रजा और भृत्य आदि मनुष्य (वः) तुम लोगों की रक्षा करें और आप लोग भी उनकी (रक्षध्वम्) रक्षा सदा किया करो। जैसे वे शत्रु लोग (तान्) उन (वः) तुम लोगों की हिंसा करने में समर्थ (मा दभन्) न हों वैसे ही सम्यक् प्रीति से परस्पर मिल के वर्तो ॥२७॥

भावार्थः—राज्य और प्रजापुरुषों को उचित है कि परस्पर प्रीति, उपकार और धर्मयुक्त व्यवहार में यथावत् वर्त्तें, शत्रुओं का निवारण, अविद्या वा अन्यायरूप अन्धकार का नाश और चक्रवर्तिराज्य आदि का पालन करके सदा आनन्द में रहें ॥२७॥

परि माग्न इत्यस्य वत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। पूर्वार्द्धस्य साम्नी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। उत्तरार्द्धस्य साम्न्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

सब मनुष्यों को उचित है कि सब करने योग्य उत्तम कर्मों के आरम्भ, मध्य और सिद्ध होने पर परमेश्वर की प्रार्थना सदा किया करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

परि माग्ने दुश्चरिताद्बाधस्वा मा सुचरिते भज। उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृताँ२ऽअनु ॥२८॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जगदीश्वर ! आप कृपा करके जिस कर्म से मैं (स्वायुषा) उत्तमतापूर्वक प्राण धारण करने वाले (आयुषा) जीवन से (अमृतान्) जीवनमुक्त और मोक्ष को प्राप्त हुए विद्वान् वा मोक्षरूपी आनन्दों को (उदस्थाम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होऊं उस से (मा) मुझको संयुक्त करके (दुश्चरितात्) दुष्टाचरण से (उद्बाधस्व) पृथक् करके (मा) मुझको (सुचरिते) उत्तम-उत्तम धर्माचरणयुक्त व्यवहार में (अन्वाभज) अच्छे प्रकार स्थापन कीजिये ॥२८॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि अधर्म के छोड़ने और धर्म के ग्रहण करने के लिये सत्य प्रेम से प्रार्थना करें क्योंकि प्रार्थना किया हुआ परमात्मा शीघ्र अधर्म से छुड़ा कर धर्म ही में प्रवृत्त कर देता है परन्तु सब मनुष्यों को यह करना अवश्य है कि जब तक जीवन है तब तक धर्माचरण ही में रहकर संसार वा मोक्षरूपी सुखों को सब प्रकार से सेवन करें ॥२८॥

प्रति पन्थामित्यस्य वत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर उस परमेश्वर की प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

प्रति पन्थामपद्महि स्वस्तिगामनेहसम् । येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥२९॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! आप के अनुग्रह से युक्त पुरुषार्थी होकर हम लोग (येन) जिस मार्ग से विद्वान् मनुष्य (विश्वाः) सब (द्विषः) शत्रु-सेना वा दुःख देने वाली भोगक्रियाओं को (परिवृणक्ति) सब प्रकार से दूर करता और (वसु) सुख करने वाले धन को (विन्दते) प्राप्त होता है उस (अनेहसम्) हिंसारहित (स्वस्तिगाम्) सुखपूर्वक जाने योग्य (पन्थाम्) मार्ग को (प्रत्यपद्महि) प्रत्यक्ष प्राप्त होवें ॥२९॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि द्वेषादि त्याग, विद्यादि धन की प्राप्ति और धर्ममार्ग के प्रकाश के लिये ईश्वर की प्रार्थना, धर्म और धार्मिक विद्वानों की सेवा निरन्तर करें ॥२९॥

अदित्यास्त्वगसीत्यस्य वत्स ऋषिः । वरुणो देवता । पूर्वस्य स्वराड्याजुषी त्रिष्टुप् छन्दः । अस्तभ्नादित्यन्तस्यार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अगले मन्त्र में ईश्वर, सूर्य्य और वायु के गुणों का उपदेश किया है ॥

अदित्यास्त्वगस्यदित्यै सदऽआसीद । अस्तभ्नाद् द्यां वृषभोऽअन्तरिक्षममिमीत वरिमाणम्पृथिव्याः । आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड् विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि ॥३०॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! जिससे (वृषभः) श्रेष्ठ गुणयुक्त आप (अदित्याः) पृथिवी के (त्वक्) आच्छादन करने वाले (असि) हैं (अदित्यै) पृथिवी आदि सृष्टि के लिये (सदः) स्थापन करने योग्य (आसीद) व्यवस्था को स्थापन करते वा (द्याम्) सूर्य्य आदि को (अस्तभ्नात्) धारण करते (वरिमाणम्) अत्यन्त उत्तम (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (अमिमीत) रचते और (सम्राट्) अच्छे प्रकार प्रकाश को प्राप्त हुए सब के अधिपति आप (पृथिव्याः) अन्तरिक्ष के बीच में (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (आसीदत्) स्थापन करते हो इससे (तानि) ये (विश्वा) सब (वरुणस्य) श्रेष्ठरूप (ते) आपके (इत्) ही (व्रतानि) सत्य स्वभाव और कर्म हैं ऐसा हम लोग (अपद्महि) जानते हैं ॥१॥ जो (वृषभः) अत्युत्तम (सम्राट्) अपने आप प्रकाशमान सूर्य्य और वायु (अदित्याः) पृथिवी आदि के (त्वक्) आच्छादन करने वाले (असि) हैं, वा (अदित्यै) पृथिवी आदि सृष्टि के लिये (सदः) लोकों को (आसीद) स्थापन

(द्याम्) प्रकाश को (अस्तभ्नात्) धारण (वरिमाणम्) श्रेष्ठ (अन्तरिक्षम्) आकाश को(अमिमीत) रचना और (पृथिव्याः) आकाश के मध्य में(विश्वा) सब(भुवनानि) लोकों को (आसीदत्) स्थापन करते हैं (तानि) वे (विश्वा) सब(ते) उस (वरुणस्य) सूर्य्य और वायु के (इत्) ही(व्रतानि)स्वभाव और कर्म हैं ऐसा हम लोग (अपद्यहि) जानते हैं ॥२॥३०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार और पूर्व मन्त्र से(अपद्यहि) इस पद की अनुवृत्ति जाननी चाहिये। जैसा परमेश्वर का स्वभाव है कि सूर्य्य और वायु आदि को सब प्रकार व्याप्त होकर रच कर धारण करता है इसी प्रकार सूर्य्य और वायु का भी प्रकाश और स्थूल लोकों के धारण का स्वभाव है ॥३०॥

वनेष्वित्यस्य वत्स ऋषिः। वरुणो देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर वे कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पयऽउस्रियासु। हृत्सु क्रतुं वरुणो विक्ष्वऽग्निं दिवि सूर्य्यमदधात् सोममद्रौ ॥३१॥

पदार्थः—जो (वरुणः) अत्युत्तम, परमेश्वर सूर्य्य वा प्राणवायु हैं वे (वनेषु) किरण वा वनों में (अन्तरिक्षम्) आकाश को (विततान) विस्तारयुक्त किया वा करता (अर्वत्सु) अत्युत्तम वेगादि गुणयुक्त विद्युत् आदि पदार्थ और घोड़े आदि पशुओं में (वाजम्) वेग (उस्रियासु) गौओं में (पयः) दूध (हृत्सु) हृदयों में (क्रतुम्) प्रज्ञा वा कर्म (विक्षु) प्रजा में (अग्निम्) अग्नि (दिवि) प्रकाश में (सूर्यम्) आदित्य (अद्रौ) पर्वत वा मेघ में (सोमम्) सोमवल्ली आदि ओषधि और श्रेष्ठ रस को (अदधात्) धारण किया करते हैं, उसी ईश्वर की उपासना और उन्हीं दोनों का उपयोग करें ॥३१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे परमेश्वर अपनी विद्या का प्रकाश और जगत् की रचना से सब पदार्थों में उनके स्वभावयुक्त गुणों को स्थापन और विज्ञान आदि गुणों को नियत करके पवन, सूर्य आदि को विस्तारयुक्त करता है वैसे सूर्य्य और वायु भी सब के लिये सुखों का विस्तार करते हैं ॥३१॥

सूर्य्यस्य चक्षुरित्यस्य वत्स ऋषिः। अग्निर्देवता निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सूर्यस्य चक्षुरारोहाग्नेरक्ष्णः कनीनकम् । यत्रैतशेभिरीयसे भ्राजमानो विपश्चिता ॥३२॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! (यत्र) जहाँ आप (एतशेभिः) विज्ञान आदि गुणों से (भ्राजमानः) प्रकाशमान (विपश्चिता) मेधावी विद्वान् से (ईयसे) विज्ञात होते हो वा जहाँ प्राणवायु वा विजुली (एतशेभिः) वेगादि गुण वा (विपश्चिता) विद्वान् से (भ्राजमानः) प्रकाशित होकर (ईयसे) विज्ञात होते हैं और जहां आप प्राण तथा विजुली (सूर्य्यस्य) सूर्य्य वा बिजुली और (अग्नेः) भौतिक अग्नि के (अक्ष्णः) देखने के साधन (कनीनकम्) प्रकाश करने वाले (चक्षुः) नेत्रों को (आरोह) देखने के लिये कराते वा कराती है, वहीं हम लोग आप की उपासना और उन दोनों का उपयोग करें ॥३२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि जैसे विद्वान् लोग ईश्वर, प्राण और विजुली के गुणों को जान, उपासना वा कार्य्यसिद्धि करते हैं वैसे ही उनको जानकर उपासना और अपने प्रयोजनों को सदा सिद्ध करते रहें ॥३२॥

उस्रावेतमित्यस्य वत्स ऋषिः। सूर्य्यविद्वांसौ देवते। पूर्वस्य निचृदार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। स्वस्तीत्यन्तस्य याजुषी जगती छन्दः। निषादः स्वरः।

अब सूर्य्य और विद्वान् कैसे हैं और उन से शिल्पविद्या के जानने वाले क्या करें सो अगले मन्त्र में कहा है ॥

उस्रावेतं धूर्षाहौ युज्येथामनश्रूऽअवीरहणौ ब्रह्मचोदनौ । स्वस्ति यजमानस्य गृहान् गच्छतम् ॥३३॥

पदार्थः – हे मनुष्यो ! जैसे विद्या और शिल्पक्रिया को प्राप्त होने की इच्छा करने वाले (ब्रह्मचोदनौ) अन्न और विज्ञान प्राप्ति के हेतु (अनश्रू) अव्यापी (अवीरहणौ) वीरों का रक्षण करने (उस्रौ) ज्योतियुक्त और निवास के हेतु (धूर्षाहौ) पृथिवी और धर्म के भार को धारण करने वाले विद्वान् (आ इतम्) सूर्य्य और वायु को प्राप्त होते वा (युज्येथाम्) युक्त करते और (यजमानस्य) धार्मिक यजमान के (गृहान्) घरों को (स्वस्ति) सुख से (गच्छतम्) गमन करते हैं वैसे तुम भी उनको युक्ति से संयुक्त करके कार्यों को सिद्ध किया करो ॥३३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे सूर्य्य और विद्वान् सब पदार्थों को धारण करने हारे सहनयुक्त और प्राप्त

होकर सुखों को प्राप्त कराते हैं वैसे ही शिल्पविद्या के जानने वाले विद्वान् से यानों में युक्ति से सेवन किये हुए अग्नि और जल सवारियों को चला के सर्वत्र सुखपूर्वक गमन कराते हैं ॥३३॥

भद्रो मेऽसीत्यस्य वत्स ऋषिः । यजमानो देवता । पूर्वस्य भुरिगार्ची गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । मा त्वेत्यस्य भुरिगार्ची बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । श्येनो भूत्वेत्यस्य विराडार्च्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

उस यान से विद्वान् को क्या-क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

भद्रो मेऽसि प्रच्यवस्व भुवस्पते विश्वान्यभि धामानि । मा त्वा परिपरिणो विदन् मा त्वा परिपन्थिनो विदन् मा त्वा वृकाऽअघायवो विदन् । श्येनो भूत्वा परापत यजमानस्य गृहान् गच्छ तन्नौ सँस्कृतम् ॥३४॥

पदार्थः—हे (भुवः) पृथिवी के (पते) पालन करने वाले विद्वान् मनुष्य ! तू (मे) मेरा (भद्रः) कल्याण करने वाला बन्धु (असि) है सो तू (नौ) मेरा और तेरा जो (संस्कृतम्) संस्कार किया हुआ यान है (तत्) उससे (विश्वानि) सब (धामानि) स्थानों को (अभि प्रच्यवस्व) अच्छे प्रकार जा जिससे सब जगह जाते हुए (त्वा) तुझ को जैसे (परिपरिणः) छल से रात्रि में दूसरे के पदार्थों को ग्रहण करने वाले (वृकाः) चोर (मा विदन्) प्राप्त न हों और परदेश को जाने वाले (त्वा) तुझ को जैसे (परिपन्थिनः) मार्ग में लूटने वाले डाकू (मा विदन्) प्राप्त न होवें जैसे परमैश्वर्य्ययुक्त (त्वा) तुझ को (अघायवः) पाप की इच्छा करने वाले दुष्ट मनुष्य (मा विदन्) प्राप्त न हों वैसा कर्म सदा किया कर । (श्येनः) श्येन पक्षी के समान वेगबलयुक्त (भूत्वा) होकर उन दुष्टों से (परापत) दूर रह और इन दुष्टों को भी दूर कर, ऐसी क्रिया कर के (यजमानस्य) धार्मिक यजमान के (गृहान्) घर वा देश-देशान्तरों को (गच्छ) जा कि जिस से मार्ग में कुछ भी दुःख न हो ॥३४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि उत्तम-उत्तम विमान आदि यानों को रच, उन में बैठ, उन को यथा-योग्य चला, श्येन पक्षी के समान द्वीप वा देश-देशान्तर को जा, धनों को प्राप्त करके वहाँ से आ और दुष्ट प्राणियों से अलग रह कर सब काल में स्वयं सुखों का भोग करें और दूसरों को करावें ॥३४॥

नमो मित्रस्येत्यस्य वत्स ऋषिः। सूर्यो देवता। निचृदार्षी गायत्री छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर ईश्वर और सूर्य्य कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

नमो॑ मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्य॒ चक्ष॑से म॒हो दे॒वाय॒ तदृ॒तꣳ स॑पर्य्यत। दू॒रे॒दृशे॑ दे॒वजा॑ताय के॒तवे॑ दि॒वस्पु॒त्राय॒ सूर्य्या॑य शꣳसत॥३५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे हम लोग जो (मित्रस्य) सब के सुहृत् (वरुणस्य) श्रेष्ठ (दिवः) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर का (ऋतम्) सत्य स्वरूप है (तत्) उस चेतन की सेवा करते हैं, वैसे तुम भी उस का सेवन सदा (सपर्य्यत) किया करो और जैसे उस (महः) बड़े (दूरेदृशे) दूरस्थित पदार्थों को दिखाने (चक्षसे) सब को देखने (देवजाताय) दिव्य गुणों से प्रसिद्ध (केतवे) विज्ञानस्वरूप (देवाय) दिव्यगुणयुक्त (पुत्राय) पवित्र करने वाले (सूर्य्याय) चराचरात्मा परमेश्वर को (नमः) नमस्कार करते हैं वैसे तुम भी (शंसत) उसकी स्तुति किया करो॥१॥ हे मनुष्यो! जो (मित्रस्य) प्रकाश (वरुणस्य) श्रेष्ठ (दिवः) प्रकाशस्वरूप सूर्य्यलोक का (ऋतम्) यथार्थ स्वरूप है (तत्) उस प्रकाशस्वरूप को तुम भी विद्या से (सपर्य्यत) सेवन किया करो। जैसे हम लोग जिस (चक्षसे) सब के दिखाने (देवजाताय) दिव्य गुणों से प्रसिद्ध (केतवे) ज्ञान कराने हारे अग्नि के (पुत्राय) पुत्र (दूरेदृशे) दूर स्थित हुए पदार्थों को दिखाने (महः) बड़े (देवाय) दिव्यगुण वाले (सूर्य्याय) सूर्य्य के लिये प्रवृत्त हों वैसे तुम भी प्रवृत्त होओ॥२॥३५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। सब मनुष्यों को जिसकी कृपा वा प्रकाश से चोर डाकू आदि अपने कार्य्यों से निवृत्त हो जाते हैं उसी की प्रशंसा और गुणों की प्रसिद्धि करनी और परमेश्वर के समान समर्थ वा सूर्य्य के समान कोई लोक नहीं है, ऐसा जानना चाहिये॥३५॥

वरुणस्येत्यस्य वत्स ऋषिः। सूर्यो देवता। विराड्ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वरु॑णस्यो॒त्तम्भ॑नमसि॒ वरु॑णस्य स्कम्भ॒सर्ज॑नी॒ स्थो॒ वरु॑णस्यऽऋत॒सद॑न्यसि॒ वरु॑णस्यऽऋ॒तसद॑नमसि॒ वरु॑णस्यऽऋ॒तसद॑न॒मासी॑द॥३६॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर! जिस से आप (वरुणस्य) उत्तम जगत् के (उत्तम्भनम्) अच्छे प्रकार प्रतिबन्ध करने वाले (असि) हैं। जो (वरुणस्य) वायु के

(स्कम्भसर्जनी) आधाररूपी पदार्थों के उत्पन्न करने (वरुणस्य) सूर्य्य के (ऋतसदनी) जलों का गमनागमन कराने वाली क्रिया (स्थः) हैं उनको धारण किये हुए हैं (वरुणस्य) उत्तम (ऋतसदनम्) पदार्थों का स्थान (असि) हैं। (वरुणस्य) उत्तम (ऋतसदनम्) सत्यरूपी बोधों के स्थान को (आसीद) अच्छे प्रकार प्राप्त कराते हैं इससे आपका आश्रय हम लोग करते हैं ॥१॥ जो (वरुणस्य) जगत् का (उत्तम्भनम्) धारण करने वाला (असि) है। जो (वरुणस्य) वायु के (स्कम्भसर्जनी) आधारों को उत्पन्न करने वा जो (वरुणस्य) सूर्य्य के (ऋतसदनी) जलों का गमनागमन कराने वाली क्रिया (स्थः) हैं उनका धारण करने तथा जो (वरुणस्य) उत्तम (ऋतसदनम्) सत्य पदार्थों का स्थानरूप (असि) है वह (वरुणस्य) उत्तम (ऋतसदनम्) पदार्थों के स्थान को (आसीद) अच्छे प्रकार प्राप्त और धारण करता है, उसका उपयोग क्यों न करना चाहिये ॥२॥३६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। कोई परमेश्वर के विना सब जगत् के रचने वा धारण, पालन और जानने को समर्थ नहीं हो सकता और कोई सूर्य्य के विना भूमि आदि जगत् के प्रकाश और धारण करने को भी समर्थ नहीं हो सकता। इस से सब मनुष्यों को ईश्वर की उपासना और सूर्य्य का उपयोग करना चाहिये ॥३६॥

या ते धामानीत्यस्य गोतम ऋषिः। यज्ञो देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर ये कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

या ते धामा॑नि ह॒विषा॒ यज॑न्ति॒ ता ते॒ विश्वा॑ परि॒भूर॑स्तु य॒ज्ञम्। गय॒स्फानः॑ प्र॒तर॑णः सु॒वीरोऽवी॑रहा॒ प्रच॑रा सोम॒ दुर्य्या॑न् ॥३७॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर! जैसे विद्वान् लोग (या) जिन (ते) आप के (धामानि) स्थानों को (हविषा) देने लेने योग्य द्रव्यों से (यजन्ति) सत्कारपूर्वक ग्रहण करते हैं वैसे हम लोग भी (ता) उन (विश्वा) सभों को ग्रहण करें। जैसे (ते) आप का वह यज्ञ विद्वानों को (गयस्फानः) अपत्य धन और घरों के बढ़ाने (प्रतरणः) दुःखों से पार करने (सुवीरः) उत्तम वीरों का योग कराने (अवीरहा) कायर दरिद्रतायुक्त अवीर अर्थात् पुरुषार्थरहित मनुष्य और शत्रुओं को मारने तथा (परिभूः) सब प्रकार से सुख कराने वाला है वैसे वह आप की कृपा से हम लोगों के लिये (अस्तु) हो वा जिसको विद्वान् लोग (यजन्ति) यजन करते हैं उस (यज्ञम्) यज्ञ को हम लोग भी करें। हे (सोम) सोमविद्या को संपादन करने वाले विद्वन्! जैसे हम लोग इस यज्ञ

को करके घरों में आनन्द करें, जानें, इस में कर्म करें, वैसे तू भी इस को करके (दुर्य्यान्) घरों में (प्रचर) सुख का प्रचार कर, जान और अनुष्ठान कर ॥३७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे विद्वान् लोग ईश्वर में प्रीति संसार में यज्ञ के अनुष्ठान को करते हैं वैसा ही सब मनुष्यों को करना उचित है ॥३७॥

इस अध्याय में शिल्पविद्या, वृष्टि की पवित्रता का सम्पादन, विद्वानों का सङ्ग, यज्ञ का अनुष्ठान, उत्साह आदि की प्राप्ति, युद्ध का करना, शिल्पविद्या की स्तुति, यज्ञ के गुणों का वर्णन, सत्यव्रत का धारण, अग्नि, जल के गुणों का वर्णन, पुनर्जन्म का कथन, ईश्वर की प्रार्थना, यज्ञानुष्ठान, माता पिता और पुत्रादिकों का आपस में अनुकरण, यज्ञ की व्याख्या, दिव्य वुद्धि की प्राप्ति, परमेश्वर का अर्चन, सूर्य्यगुण वर्णन, पदार्थों के क्रय विक्रय का उपदेश, मित्रता करना, धर्ममार्ग में प्रचार करना, परमेश्वर वा सूर्य्य के गुणों का प्रकाश, चोर आदि का निवारण, ईश्वर सूर्य्यादि गुण वर्णन और यज्ञ का फल कहा है। इस से इस अध्यायार्थ की तीसरे अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये। उवट और महीधर आदि ने इस अध्याय का भी शब्दार्थ विरुद्ध ही वर्णन किया है।

॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥

* ओ३म् *

अथ पञ्चमाऽध्यायारम्भः

—❀:०❀:०❀:०❀—

अब चौथे अध्याय की पूर्ति के पश्चात् पाँचवें अध्याय के भाष्य का आरम्भ किया जाता है ॥

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्नऽआसुव ॥ १ ॥

अग्नेस्तनूरित्यस्य गोतम ऋषिः । विष्णुर्देवता । स्वराड्ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

किस किस प्रयोजन के लिये यज्ञ का अनुष्ठान करना योग्य है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्नेस्तनूरसि विष्णवे त्वा सोमस्य तनूरसि विष्णवे त्वाऽतिथे-रातिथ्यमसि विष्णवे त्वा श्येनाय त्वा सोमभृते विष्णवे त्वाऽग्नये त्वा रायस्पोषदे विष्णवे त्वा ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे मैं जो हवि (अग्नेः) बिजुली प्रसिद्ध रूप अग्नि के (तनूः) शरीर के समान (असि) है (त्वा) उसको (विष्णवे) यज्ञ की सिद्धि के लिये स्वीकार करता हूं। जो(सोमस्य) जगत् में उत्पन्न हुए पदार्थ-समूह की(तनूः) विस्तारपूर्वक सामग्री (असि) है (त्वा) उसको (विष्णवे) वायु की शुद्धि के लिये उपयोग करता हूं। जो (अतिथेः) संन्यासी आदि का (आतिथ्यम्) अतिथिपन वा उनकी सेवारूप कर्म (असि) है (त्वा) उसको (विष्णवे) विज्ञान-यज्ञ की प्राप्ति के लिये ग्रहण करता हूँ। जो (श्येनाय) श्येनपक्षी के समान शीघ्र जाने के लिये (असि) है (त्वा) उस द्रव्य को अग्नि आदि में छोड़ता हूँ जो (विष्णवे) सब विद्या कर्मयुक्त (सोमभृते) सोमों को धारण करने वाले यजमान के लिये सुख (असि) है

(त्वा) उसको ग्रहण करता हूं। जो (अग्नये) अग्नि बढ़ाने के लिये काष्ठ आदि है (त्वा) उसको स्वीकार करता हूं। जो (रायस्पोषदे) धन की पुष्टि देने वा (विष्णवे) उत्तम गुण कर्म विद्या की व्याप्ति के लिये समर्थ पदार्थ है (त्वा) उसको ग्रहण करता हूं वैसे इन सब का सेवन तुम भी किया करो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि पूर्वोक्त फल की प्राप्ति के लिये तीन प्रकार के यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करें ॥१॥

अग्नेर्जनित्रमित्यस्य गोतमः ऋषिः। विष्णुर्यज्ञो देवता। पूर्वस्यार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। गायत्रेत्युत्तरस्यार्ची त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर वह यज्ञ कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अ॒ग्नेर्ज॒नित्र॑मसि॒ वृष॑णौ स्थऽउ॒र्वश्य॑स्या॒युर॑सि पु॒रूर॑वाऽअसि। गा॒य॒त्रेण॑ त्वा॒ छन्द॑सा मन्थामि॒ त्रैष्टु॑भेन त्वा॒ छन्द॑सा मन्थामि॒ जाग॑तेन त्वा॒ छन्द॑सा मन्थामि॒ ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो! जैसे मैं जो (अग्नेः) आग्नेय अस्त्रादि की सिद्धि करने हारे अग्नि के (जनित्रम्) उत्पन्न करने वाला हवि (असि) है जो (वृषणौ) वर्षा कराने वाले सूर्य्य और वायु (स्थः) हैं। जो (उर्वशी) बहुत सुखों के प्राप्त कराने वाली क्रिया (असि) है जो (आयुः) जीवन (असि) है जो (पुरूरवाः) बहुत शास्त्रों के उपदेश करने का निमित्त (असि) है (त्वा) उस अग्नि को (गायत्रेण) गायत्री (छन्दसा) आनन्दकारक स्वच्छन्द क्रिया से (मन्थामि) विलोडन करता हूं (त्वा) उस सोम आदि ओषधिसमूह को (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप् (छन्दसा) छन्द से (मन्थामि) विलोडन करता हूं और (त्वा) उस शत्रु दुःखसमूह को (जागतेन) जगती (छन्दसा) छन्द से (मन्थामि) ताड़न करके निवारण करता हूं वैसे ही तुम भी किया करो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्रमें वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब मनुष्यों को योग्य है कि इस प्रकार की रीति से प्रतिपादन वा सेवन किये हुए यज्ञ से दूसरे मनुष्यों के लिये परोपकार करें ॥२॥

भवतन्न इत्यस्य गोतम ऋषिः। यज्ञो देवता। आर्षी पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

यजमान और यज्ञ की सिद्धि करने वाले विद्वान् कैसे होने चाहियें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञꣳहिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ॥३॥

पदार्थः—जो (अरेपसौ) प्राकृत मनुष्यों के भाषारूपी वचन से रहित (समनसौ) तुल्य विज्ञानयुक्त (सचेतसौ) तुल्य ज्ञानज्ञापनयुक्त (जातवेदसौ) वेद और उपविद्याओं को सिद्ध किये हुए पढ़ने पढ़ाने वाले विद्वान् (नः) हम लोगों के लिये उपदेश करने वाले (भवतम्) होवें। जो (यज्ञम्) पढ़ने पढ़ाने रूप यज्ञ वा (यज्ञपतिम्) विद्याप्रद यज्ञ के पालन करने वाले यजमान को (मा हिंसिष्टम्) न पीड़ित करें। वे (अद्य) आज (नः) हम लोगों के लिये (शिवौ) मङ्गल करने वाले (भवतम्) होवें ॥३॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि विद्याप्रचार के लिये पढ़ना पढ़ाना वा मङ्गलाचरण को न छोड़ें क्योंकि यही सर्वोत्तम कर्म है ॥३॥

अग्नावग्निरित्यस्य गोतमः ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षीत्रिष्टुप् छन्दः । अत्र महीधरेण विराडित्यशुद्धं व्याख्यातम् ॥

विद्युत् और विद्वान् अग्नि कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्नावग्निश्चरति प्रविष्टऽऋषीणां पुत्रोऽअभिशस्ति पावा । स नः स्योनः सुयजा यजेह देवेभ्यो हव्यꣳ सदमप्रयुच्छन्त्स्वाहा ॥४॥

पदार्थः जो (अभिशस्तिपावा) सब प्रकार हिंसा करने वालों से रहित (अग्नौ) विद्युत् अग्नि की विद्या में (प्रविष्टः) प्रवेश करने कराने वाला (ऋषीणाम्) वेदादि शास्त्रों के शब्द अर्थ और सम्बन्धों को यथावत् जानने वालों का (पुत्रः) पढ़ाया हुआ (स्योनः) सर्वथा सुखकारी (सुयजा) विद्याओं को अच्छी प्रकार प्रत्यक्ष संग कराने हारा (अग्निः) प्रकाशात्मा (अप्रयुच्छन्) प्रमादरहित अध्यापक विद्वान् (चरति) आचरण करता है जो (नः) हम लोगों के लिये (इह) इस संसार में (देवेभ्यः) विद्वान् वा दिव्य गुणों से (हव्यम्) लेने देने योग्य पदार्थ वा (सदम्) ज्ञान और (स्वाहा) हवन करने योग्य उत्तम अन्नादि को प्राप्त करता है (सः) सो आप (यज) सब विद्याओं को प्राप्त कराइये ॥४॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि जो अग्नि काय्य कारण के भेद से दो प्रकार का निश्चित अर्थात् जो काय्यरूप से सूर्यादि और कारण रूप से विद्युत् अग्नि सब मूर्त्तिमान् द्रव्यों में प्रवेश कर रहा है उसका इस संसार में विद्या से संप्रयोग कर कार्यों में उपयोग करना चाहिये ॥४॥

आपतये त्वेत्यस्य गोतम ऋषिः । विद्युद्देवता । पूर्वस्याष्र्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वर । अनाधृष्टमित्यग्रस्य भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

मनुष्यों को किस-किस प्रयोजन के लिये परमात्मा की प्रार्थना, बिजुली का स्वीकार करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

आपतये त्वा परिपतये गृह्णामि तनूनप्त्रे शाक्वराय शक्वनऽओजिष्ठाय । अनाधृष्टमस्यनाधृष्यं देवानामोजोऽनभिशस्त्यभिशस्तिपाऽअनभिशस्तेन्यमंजसा सत्यमुपगेषᳪ स्विते मा धाः ॥५॥

पदार्थः— मैं, हे परमात्मन् ! जिस से आप हिंसारूप कर्मों से अलग रहने और रखने वाले हैं इस से (त्वा) आपको (आपतये) सब प्रकार से स्वामी होने (परिपतये) सब ओर से रक्षा (शाक्वराय) सब सामर्थ्य की प्राप्ति (शक्वने) शूरवीर-युक्त सेना (ओजिष्ठाय) जिसमें सर्वोत्कृष्ट पराक्रम होता है, उस विद्या के होने और (तनूनप्त्रे) जिस से उत्तम शरीर होता है उसके लिये (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं । आप अपनी कृपा से उस (देवानाम्) विद्वानों का (अनाधृष्टम्) जिस का अपमान कोई नहीं कर सकता जो (अनाधृष्यम्) किसी के अपमान करने योग्य नहीं है (अनभिशस्ति) किसी के हिंसा करने योग्य नहीं है (अभिशस्तेन्यम्) अहिंसारूप धर्म्म की प्राप्ति कराने हारा (सत्यम्) अविनाशी (ओजः) तेज है, उसका ग्रहण कराके (स्विते) अच्छे प्रकार जिस व्यवहार में सब सुख प्राप्त होते हैं, उस में (मा) मुझ को (धाः) धारण करें कि जिस से (सत्यम्) सत्य व्यवहार को (उपगेषम्) जान कर करूं ॥१॥

मैं जो (अनाधृष्टम्) न हटाने (अनाधृष्यम्) न किसी से नष्ट करने (अनभिशस्ति) न हिंसा करने (अनभिशस्तेन्यम्) और हिंसारहित धर्म्म प्राप्त कराने योग्य (देवानाम्) विद्वान् वा पृथिवी आदिकों के मध्य में (सत्यम्) कारणरूप नित्य (ओजः) पराक्रम स्वरूप वाली (अभिशस्तिपाः) हिंसा से रक्षा का निमित्त रूप बिजुली (असि) है, जो (मा) मुझे (स्विते) उत्तम प्राप्त होने योग्य व्यवहार में (धाः) धारण करती है (अञ्जसा) सहजता से (ओजिष्ठाय) अत्यन्त तेजस्वी (आपतये) अच्छे प्रकार पालन करने योग्य व्यवहार (परिपतये) जिस में सब प्रकार पालन करने वाले होते हैं (तनूनप्त्रे) जिस से उत्तम शरीरों को प्राप्त होते हैं (शाक्वराय) शक्ति के उत्पन्न करने और (शक्वने) शक्ति वाली वीरसेना की प्राप्ति के लिये है (त्वा) उस को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं कि जिस से उन सत्य कारणरूप पदार्थों को (उपगेषम्) जान सकूं ॥२॥५॥

भावार्थः— मनुष्यों को परमेश्वर के विज्ञान के विना सत्य सुख और

विजुली आदि विद्या और क्रियाकुशलता के विना संसार के सब सुख नहीं हो सकते, इसलिये यह कार्य्य पुरुषार्थ से सिद्ध करना चाहिये ॥५॥

अग्ने व्रतपा इत्यस्य गोतम ऋषिः। अग्निर्देवता। विराड् ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर वह परमात्मा और बिजुली कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अग्नें व्रतपास्त्वे व्रतपा या तव तनूरियꣳ सा मयि यो मम तनूरेषा सा त्वयिं। सह नौं व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षां दीक्षापतिर्मन्यतामनु तपस्तपस्पतिः॥६॥

पदार्थः—जिसलिये हे (अग्ने) (व्रतपते) जगदीश्वर! आप वा विजुली सत्यधर्मादि नियमों के (व्रतपाः) पालन करने वाले हैं इसलिये (त्वे) उस आप वा विजुली में मैं (व्रतपाः) पूर्वोक्त व्रतों के पालन करने वाली क्रिया वाला होता हूं (या) जो (इयम्) यह (तव) आप और उसकी (तनूः) विस्तृत व्याप्ति है (सा) वह (मयि) मुझ में (यो) जो (एषा) यह (मम) मेरा (तनूः) शरीर है (सा) सो (त्वयि) आप वा उसमें है (व्रतानि) जो ब्रह्मचर्य्यादि व्रत हैं वे मुझ में हों और जो (मे) मुझ में हैं वे (त्वयि) तुम्हारे में हैं जो आप वा वह (तपस्पतिः) जितेन्द्रियत्वादि पूर्वक धर्म्मानुष्ठान के पालननिमित्त हैं सो (मे) मेरे लिये (तपः) पूर्वोक्त तप को (अनुमन्यताम्) विज्ञापित कीजिये वा करती है और जो आप वा वह (दीक्षापतिः) व्रतोपदेशों के रक्षा करने वाले हैं सो (मे) मेरे लिये (दीक्षाम्) व्रतोपदेश को (अनुमन्यताम्) आज्ञा कीजिये वा करती है। इसलिये भी (नौ) मैं और आप पढ़ने पढ़ाने हारे दोनों प्रीति के साथ वर्त्त कर विद्वान् धार्मिक हों कि जिससे दोनों की विद्यावृद्धि सदा होवे॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को परस्पर प्रेम वा उपकारबुद्धि से परमात्मा वा विजुली आदि का विज्ञान कर वा कराके धर्मानुष्ठान से पुरुषार्थ में निरन्तर प्रवृत्त होना चाहिये॥६॥

अꣳशुरित्यस्य गोतम ऋषिः। सोमो देवता। आद्यस्यार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। आप्याययेत्यन्तस्यार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर वह ईश्वर विजुली और विद्वान् कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अꣳशुरꣳशुष्टे देव सोमाप्यायतामिन्द्रायैकधनविदे। आ

तुभ्यमिन्द्रः प्यायतामा त्वमिन्द्राय प्यायस्व। आप्याययास्मान्त्सखीन्त्सन्न्या मेधया स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामशीय। एष्टा रायः प्रेषे भगायऽऋतमृतवादिभ्यो नमो द्यावापृथिवीभ्याम् ॥७॥

पदार्थः—हे (सोम) पदार्थविद्या को जानने वा (देव) दिव्यगुणसंपन्न जगदीश्वर! विद्वन्! विद्युद्वा जिस से (ते) आप वा इस विद्युत् का सामर्थ्य (अंशुरंशुः) अवयव अवयव अङ्ग अङ्ग को (आप्यायताम्) रक्षा से वढ़ा अथवा वढ़ाता है (इन्द्रः) जो आप वा विजुली (एकधनविदे) अर्थात् धर्म्मविज्ञान से धन को प्राप्त होने वाले (इन्द्राय) परमैश्वर्य्ययुक्त मेरे लिये (आप्यायताम्) वढ़ावे वा वढ़ाती है [(त्वम्) आप उसको (इन्द्राय) दुःख नाश के लिये] (आप्यायस्व) वृद्धियुक्त कीजिये वा करती है। वह आप विजुली आदि पदार्थ के ठीक ठीक अर्थों की प्राप्ति को (सन्न्या) प्राप्ति कराने वाली (मेधया) प्रज्ञा से (अस्मान्) हम (सखीन्) सब के मित्रों को (आप्यायस्व) वढ़ाइये वा वढ़ावे जिस से (स्वस्ति) सुख सदा वढ़ता रहे। (सोम) हे पदार्थविद्या को जानने वाले ईश्वर वा विद्वान्! आप की शिक्षा वा विजुली की विद्या से युक्त होकर मैं (सुत्याम्) उत्तम उत्तम उत्पन्न करने वाली क्रिया में कुशल होके (इषे) सिद्धि की इच्छा वा अन्न आदि (भगाय) ऐश्वर्य्य के लिये (एष्टाः) अभीष्ट सुखों को प्राप्त कराने वाले (रायः) धनसमूहों को (अशीय) प्राप्त होऊं और (ऋतवादिभ्यः) सत्यवादी विद्वानों को यह धन देके सत्य विद्या और (द्यावापृथिवीभ्याम्) प्रकाश वा भूमि से (ऋतम्) अन्न को प्राप्त होऊं ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की उपासना, विद्वान् की सेवा और विद्युत् विद्या का प्रचार करके शरीर और आत्मा को पुष्ट करने वाली ओषधियों और अनेक प्रकार के धनों का ग्रहण करके चिकित्सा शास्त्र के अनुसार सब आनन्दों को भोगें ॥७॥

या त इत्यस्य गोतम ऋषिः। अग्निर्देवता। पूर्वस्य विराडार्षी बृहती छन्दः। या त इति द्वितीयस्य निचृदार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर वह विजुली कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

या तेऽअग्नेऽयःशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा। उग्रं वचोऽअपावधीत्त्वेषं वचोऽअपावधीत् स्वाहा। या तेऽअग्ने रजःशया तनूर्वर्षिष्ठा

गह्वरेष्ठा । उग्रं वचोऽअपावधीत्त्वेषं वचोऽअपावधीत् स्वाहा । या तेऽअग्ने हरिशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा । उग्रं वचोऽअपावधीत्त्वेषं वचोऽअपावधीत् स्वाहा ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! तुम को (या) जो (ते) इस (अग्ने) विजुलीरूप अग्नि का (अयःशया) सुवर्णादि में सोने (वर्षिष्ठा) अत्यन्त वड़ा (गह्वरेष्ठा) आभ्यन्तर में रहने वाला (तनूः) शरीर (उग्रम्) क्रूर भयङ्कर (वचः) वचन को (अपावधीत्) नष्ट करता और (त्वेषम्) प्रदीप्त (वचः) शब्द वा (स्वाहा) उत्तमता से हवन किये हुए अन्न को (अपावधीत्) दूर करता और जो (ते) इस (अग्ने) विजुलीरूप अग्नि का (वर्षिष्ठा) अत्यन्त विस्तीर्ण (गह्वरेष्ठा) आभ्यन्तर में स्थित होने (रजः शया) लोकों में सोने वाला (तनूः) शरीर (उग्रम्) क्रूर (वचः) कथन को (अपावधीत्) नष्ट करता है (त्वेषम्) प्रदीप्त (वचः) कथन वा (स्वाहा) उत्तम वाणी को (अपावधीत्) नष्ट करता है उसको जान के उस से कार्य्य लेना चाहिये ॥८॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि सब स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों में रहने वाली जो विजुली की व्याप्ति है उस को अच्छे प्रकार जानकर उपयुक्त करके सब दुःखों का नाश करें ॥८॥

तप्तायनीत्यस्य गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । प्रथमस्य भुरिगार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । विदेदग्निरित्यस्य भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । नाम्नेहीत्यस्य निचृद्ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः । अनुत्वेत्यस्य याजुष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

और किसलिये अग्नि आदि से यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

तप्तायनी मेऽसि वित्तायनी मेऽस्यवतान्मा नाथितादवतान्मा व्यथितात् । विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽअङ्गिरऽआयुना नाम्नेहि योऽस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽअङ्गिरऽआयुना नाम्नेहि यो द्वितीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽ-

अङ्गिर॒ऽआयु॑ना॒ नाम्नेहि॒ यस्तृ॒तीय॑स्यां पृथि॒व्यामसि॒ यत्तेऽना॑धृष्टं॒ नाम॑ य॒ज्ञियं॒ तेन॒ त्वा द॑धे। अनु॑ त्वा दे॒ववी॑तये ॥९॥

पदार्थः—हे विद्या के ग्रहण करने वाले विद्वान् ! जैसे मैं (यत्) जो (तप्तायनी) स्थापनीय वस्तुओं के स्थान वाली विद्युत् ज्वाला (असि) है वा जो (वित्तायनी) भोग्य वा प्रतीत पदार्थों को प्राप्त कराने वाली बिजुली (असि) है (त्वा) उसकी विद्या को जानता हूं वैसे तू भी इस को (मे) मुझ से (एहि) प्राप्त हो। जैसे यह (यत्) जो (अग्निः) प्रसिद्ध अग्नि (नभः) जल वा प्रकाश को प्राप्त कराता हुआ (मा) मुझ को (व्यथितात्) भय से (अवतात्) रक्षा करता वा (नाथितात्) ऐश्वर्य्य से (अवतात्) रक्षा करता है वैसे तुझ से सेवन किया हुआ यह तेरी भी रक्षा करेगा। जैसे मैं (तेन) उस साधन से जो (अग्ने) जाठर रूप (अङ्गिरः) अंगों में रहने वाला अग्नि (आयुना) जीवन वा (नाम्ना) प्रसिद्धि से (अस्याम्) इस (पृथिव्याम्) पृथिवी में (नाम) प्रसिद्ध है (त्वा) उसको जानता हूं वैसे तू भी इसको (मे) मुझ से (एहि) अच्छे प्रकार जान। जैसे मैं (तेन) उस ज्ञान से (यत्) जो (अनाधृष्टम्) नहीं नष्ट होने योग्य (यज्ञियम्) यज्ञाङ्गसमूह (नाम) प्रसिद्ध तेज है (त्वा) उस को (देववीतये) दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिये (त्वा) उस यज्ञ को (आदधे) धारण करता हूं वैसे तू उस से इस को उत्तम गुणों की प्राप्ति के लिये धारण कर और वैसे सब मनुष्य भी उस से इस को (विदेत्) प्राप्त होवें। जैसे मैं (तेन) जो (द्वितीयस्याम्) दूसरी (पृथिव्याम्) भूमि में (अग्ने) (अङ्गिरः) अङ्गारों में रहने वाला अग्नि (आयुना) जीवन वा (नाम्ना) प्रसिद्धि से (नाम) प्रसिद्ध है वा (यः) जो (नभः) सुख को देता है (तेन) (त्वा) उससे उस को प्राप्त हुआ हूँ वैसे तू उससे इसको (ऐहि) जान और सब मनुष्य भी उस से इस को (विदेत्) प्राप्त हों। जैसे मैं (तेन) पुरुषार्थ से जो (अनाधृष्टम्) प्रगल्भगुणसहित (यज्ञियम्) यज्ञसम्बन्धी (नाम) प्रसिद्ध तेज है (त्वा) उसे भोगों की प्राप्ति के लिये (आदधे) धारण करता हूं तथा तू उसके लिये धारण कर और सब मनुष्य भी (विदेत्) धारण करें। जैसे मैं (तेन) उस क्रियाकौशल से जो (अग्निः) अग्नि (आयुना) जीवन वा प्रसिद्धि से (अङ्गिरः) अङ्गों का सूर्यरूप से पोषण करता हुआ (नाम) प्रसिद्ध है वा जो (नभः) आकाश को प्रकाशित करता है (त्वा) उस को धारण करता हूँ वैसे तू उसको धारण कर वा सब लोग भी (अनुविदेत्) उस को ठीक-ठीक जान के कार्य सिद्ध करें। जैसे मैं (तेन) इन्धनादि सामग्री से जो (अनाधृष्टम्) प्रगल्भसहित (यज्ञियम्) शिल्पविद्यासम्बन्धी (नाम) प्रसिद्ध तेज है (त्वा) उस को विद्वानों की प्राप्ति के लिये (आदधे)

धारण करता हूं वैसे तू उस से उस की प्राप्ति के लिये (अन्वेहि) खोज कर और सब मनुष्य भी विद्या से सम्प्रयोग करें ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो प्रसिद्ध सूर्य्य, विजुली रूप से तीन प्रकार का अग्नि सब लोगों में बाहर भीतर रहने वाला है उस को जान और जनाकर सब मनुष्यों को कार्य्यसिद्धि का सम्पादन करना कराना चाहिये ॥९॥

सिँ॒ह्यसीत्यस्य गोतम ऋषिः। वाग्देवता। ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः।

अब अगले मन्त्र में सब विद्याओं की मुख्य सिद्धि करने वाली वाणी के गुणों का उपदेश किया है ॥

सि॒ꣳह्य॑सि सपत्नसा॒ही दे॒वेभ्यः॑ कल्पस्व सि॒ꣳह्य॑सि सपत्नसा॒ही दे॒वेभ्यः॑। शुन्धस्व सि॒ꣳह्य॑सि सपत्नसा॒ही दे॒वेभ्यः॑ शुम्भस्व ॥१०॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! तू जो (सपत्नसाही) जिस से शत्रुओं को सहन करते हैं वह (देवेभ्यः) उत्तम गुण शूरवीरों के लिये (कल्पस्व) पढ़ा और उपदेश करके प्राप्त कर। (सिंही) जो दोषों को नष्ट करने वा शब्दों का उच्चारण करने वाली वाणी (असि) है उसको (देवेभ्यः) विद्वान् दिव्यगुण वा विद्या की इच्छा वाले मनुष्यों के लिये (शुन्धस्व) शुद्धता से प्रकाशित कर। जो (सपत्नसाही) दोषों को हनन वा (सिंही) अविद्या के नाश करने वाली वाणी (असि) है उसको (देवेभ्यः) धार्मिकों के लिये (शुन्धस्व) शुद्ध कर और जो (सपत्नसाही) दुष्ट स्वभाव और (सिंही) दुष्ट दोषों को नाश करने वाली वाणी (असि) है उसको (शुन्धस्व) सुशील विद्वानों के लिये (शुम्भस्व) शोभायुक्त कर ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्यों को अति उचित है कि जो इस संसार में तीन प्रकार की वाणी होती है अर्थात् एक शिक्षा विद्या से संस्कार की हुई, दूसरी सत्यभाषणयुक्त और तीसरी मधुरगुणसहित, उनका स्वीकार करें ॥१०॥

इन्द्रघोषस्त्वेत्यस्य गोतम ऋषिः। वाग्देवता। निचृद्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर वह कैसा और कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इन्द्र॑घोषस्त्वा॒ वसु॑भिः पु॒रस्ता॑त्पातु॒ प्रचे॑तास्त्वा रु॒द्रैः प॒श्चात्पा॑तु॒

मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणतः पातु विश्वकर्मा त्वादित्यैरुत्तरतः पात्विदमहं तप्तं वार्बहिर्धा यज्ञान्निःसृजामि ॥११॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे (प्रचेताः) उत्तम ज्ञानयुक्त (इन्द्रघोषः) परमात्मा, वेदविद्या और बिजुली का घोष अर्थात् शब्द अर्थ और सम्बन्धों के बोधवाला (विश्वकर्मा) सब कर्मवाला मैं (यज्ञात्) पढ़ना पढ़ाना वा होमरूप यज्ञ से (इदम्) आभ्यन्तर में रहने वाले (तप्तम्) तप्त जल (बहिर्धा) बाहर धारण होने वाले शीतल (वाः) जल को (निःसृजामि) सम्पादन करता वा निःक्षेप करता हूँ वैसे आप भी कीजिये । जो (वसुभिः) अग्नि आदि पदार्थ वा चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य किये हुए मनुष्यों के साथ वर्त्तमान (इन्द्रघोषः) परमेश्वर जीव और बिजुली के अनेक शब्द सम्बन्धी वाणी है उसकी (पुरस्तात्) पूर्वदेश से जैसे मैं रक्षा करता हूँ वैसे आप भी (पातु) रक्षा करो जो (रुद्रैः) प्राण वा चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य किये हुए विद्वानों के साथ वर्त्तमान (प्रचेताः) उत्तम ज्ञान कराने वाली वाणी है उसकी (पश्चात्) पश्चिम देश से रक्षा करता हूँ वैसे आप भी (पातु) रक्षा करें जो (पितृभिः) ज्ञानी वा ऋतुओं के साथ वर्त्तमान (मनोजवाः) मन के समान वेगवाली वाणी है उसका (दक्षिणतः) दक्षिण देश से पालन करता हूं वैसे आप भी (पातु) रक्षा करें जो (आदित्यैः) बारह महीनों वा अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य किये हुए विद्वानों के साथ वर्त्तमान (विश्वकर्मा) सब कर्मयुक्त वाणी है उसकी (उत्तरतः) उत्तर देश से पालन करता हूं वैसे आप भी (पातु) रक्षा करें ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को योग्य है कि जो वसु रुद्र आदित्य और पितरों से सेवन की हुई वा यज्ञ को सिद्ध करने वाली वाणी वा जल को सेवन, विद्या वा उत्तम क्रिया के साथ बिजुली है उसके सेवन में निरन्तर वर्त्तें ॥११॥

सिँ्हसीत्यस्य गोतम ऋषिः । वाग्देवता । भुरिग्ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर वह कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सिँ्हसि स्वाहा सिँ्हस्यादित्यवनिः स्वाहा सिँ्हसि ब्रह्मवनिः क्षत्रवनिः स्वाहा सिँ्हसि सुप्रजावनी रायस्पोषवनिः स्वाहा सिँ्हस्यावह देवान्यजमानाय स्वाहा भूतेभ्यस्त्वा ॥१२॥

पदार्थः—मैं जो (आदित्यवनिः) मासों का सेवन और सिंही क्रूरत्व आदि

दोषों को नाश करने वाली (स्वाहा) ज्योतिःशास्त्र से संस्कारयुक्त वाणी (असि) है, जो (ब्रह्मवनिः) परमात्मा वेद और वेद के जानने वाले मनुष्यों के सेवन और (सिंही) बल से जाड्यपन को दूर करने वाली (स्वाहा) पढ़ने पढ़ाने व्यवहारयुक्त वाणी (असि) है जो (क्षत्रवनिः) राज्य धनुर्विद्या और शूरवीरों का सेवन और (सिंही) चोर डाकू अन्याय को नाश करने वाली (स्वाहा) राज्य-व्यवहार में कुशल वाणी (असि) है जो (रायस्पोषवनिः) विद्या धन की पुष्टि का सेवन और (सिंही) अविद्या को दूर करने वाली (स्वाहा) वाणी (असि) है, जो (सुप्रजावनिः) उत्तम प्रजा का सेवन और (सिंही) सब दुष्टों का नाश और (स्वाहा) व्यवहार से धन को प्राप्त कराने वाली वाणी (असि) है और जो (यजमानाय) विद्वानों के पूजन करने वाले यजमान के लिये (स्वाहा) दिव्यविद्यासंपन्न वाणी (देवान्) विद्वान् दिव्यगुण वा भोगों को (आवह) प्राप्त कराती है (त्वा) उसको (भूतेभ्यः) सब प्राणियों के लिये (यज्ञात्) यज्ञ से (निःसृजामि) संपादन करता हूं ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से (यज्ञात्) (निः) (सृजामि) इन तीन पदों की अनुवृत्ति है। मनुष्यों को उचित है कि पढ़ना पढ़ाना आदि से इस प्रकार लक्षणयुक्त वाणी प्राप्त कर इसे सब मनुष्यों को पढ़ा कर सदा आनन्द में रहें ॥१२॥

ध्रुवोऽसीत्यस्य गोतम ऋषिः। यज्ञो देवता। भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर यह यज्ञ कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

ध्रुवोऽसि पृथिवीं दृꣳह ध्रुवक्षिदस्यन्तरिक्षं दृꣳहाच्युतक्षिदसि दिवं दृꣳहाग्नेः पुरीषमसि ॥१३॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो! जो यज्ञ (ध्रुवः) निश्चल (पृथिवीम्) भूमि को बढ़ाता (असि) है उसको तुम (दृंह) बढ़ाओ जो (ध्रुवक्षित्) निश्चल सुख और शास्त्रों का निवास कराने वाला (असि) है वा (अन्तरिक्षम्) आकाश में रहने वाले पदार्थों को पुष्ट करता है उसको तुम (दृंह) बढ़ाओ जो (अच्युतक्षित्) नाशरहित पदार्थों को निवास कराने वाला (असि) है वा (दिवम्) विद्यादि प्रकाश को प्रकाशित करता है उसको तुम (दृंह) बढ़ाओ जो (अग्नेः) बिजुली आदि अग्नि वा (पुरीषम्) पशुओं की पूर्ति करने वाला यज्ञ (असि) है उसका अनुष्ठान तुम किया करो ॥१३॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि विद्या तथा क्रिया से सिद्ध वा

त्रिलोकी के पदार्थों को पुष्ट करने वाले विद्याक्रियामय यज्ञ का अनुष्ठान करके सुखी रहें और सब को रक्खें ॥१३॥

युञ्जते मन इत्यस्य गोतम ऋषिः। सविता देवता। स्वराडार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अब अगले मन्त्र में योगी और ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है ॥

युञ्जते मनऽउत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः। वि होत्रा दधे वयुनाविदेकऽइन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः स्वाहा ॥१४॥

पदार्थः—जैसे जो (विहोत्राः) देने लेने वाले (विप्राः) बुद्धिमान् मनुष्य हैं वे जिस (बृहतः) सब से बड़े (विप्रस्य) अनन्त ज्ञानकर्मयुक्त (विपश्चितः) सब विद्या सहित (सवितुः) सकल जगत् के उत्पादक (देवस्य) सब के प्रकाश करने वाले महेश्वर की (मही) बड़ी (परिष्टुतिः) सब प्रकार की स्तुतिरूप (स्वाहा) सत्यवाणी को जान उस में (मनः) मन को (युञ्जते) युक्त करते हैं (उत) और (धियः) बुद्धियों को भी (युञ्जते) स्थिर करते हैं वैसे (वयुनावित्) उत्तम कर्मों को जानने वाला (एकः) सहाय रहित मैं उस को जान उस में अपना मन और बुद्धि को (विदधे) सदा निश्चल विधान कर रखता हूं ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि परमेश्वर में ही मन बुद्धि को युक्त कर विद्वानों के सङ्ग से विद्या को पा सुखी हो अन्य मनुष्यों को भी इसी प्रकार आनन्दित करें ॥१४॥

इदं विष्णुरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। विष्णुर्देवता। भुरिगार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पाꣳसुरे स्वाहा ॥१५॥

पदार्थः—(विष्णुः) जो सब जगत् में व्यापक जगदीश्वर जो कुछ यह जगत् है उसको (विचक्रमे) रचता हुआ (इदम्) इस प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष जगत् को (त्रेधा) तीन प्रकार का धारण करता है (अस्य) इस प्रकाशवान् प्रकाशरहित और अदृश्य तीन प्रकार के परमाणु आदि रूप (स्वाहा) अच्छे प्रकार देखने और दिखलाने योग्य जगत् का ग्रहण करता हुआ (इदम्) इस (समूढम्) अच्छे प्रकार विचार करके कथन करने

योग्य अदृश्य जगत् को (पांसुरे) अन्तरिक्ष में स्थापित करता है वही सब मनुष्यों को उत्तम रीति से सेवने योग्य है ॥१५॥

भावार्थः—परमेश्वर ने जिस प्रथम प्रकाश वाले सूर्यादि, दूसरा प्रकाशरहित पृथिवी आदि और जो तीसरा परमाणु आदि अदृश्य जगत् है उस सब को कारण से रचकर अन्तरिक्ष में स्थापन किया है उनमें से ओषधि आदि पृथिवी में, प्रकाश आदि सूर्यलोक में और परमाणु आदि आकाश और इस सब जगत् को प्राणों के शिर में स्थापित किया है। इस लिखे हुए शतपथ के प्रमाण से गय शब्द से प्राणों का ग्रहण किया है इस में महीधर जो कहता है त्रिविक्रम अर्थात् वामनावतार को धारण करके जगत् को रचा है यह उसका कहना सर्वथा मिथ्या है ॥१५॥

इरावतीत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। विष्णुर्देवता। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अगले मन्त्र में ईश्वर और सूर्य के गुणों का उपदेश किया है ॥

इरावती धेनुमती हि भूतꣳ सूयवसिनी मनवे दशस्या। व्यस्कभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः स्वाहा ॥१६॥

पदार्थः—हे (विष्णो) सर्वव्यापी जगदीश्वर! जो आप जिस (इरावती) उत्तम अन्नयुक्त (धेनुमती) प्रशंसनीय बहुत वाणीयुक्त प्रजा वा पशुयुक्त (सूयवसिनी) बहुत मिश्रित अमिश्रित वस्तुओं से सहित भूमि वा वाणी (पृथिवीम्) भूमि (हि) निश्चय करके (स्वाहा) वेदवाणी वा (भूतम्) उत्पन्न हुए सब जगत् को (मयूखैः) ज्ञान-प्रकाशकादि गुणों से (अभितः) सब ओर से (दाधर्थ) धारण और (रोदसी) प्रकाश वा पृथिवीलोक का (व्यस्कभ्नाः) सम्यक् स्तम्भन करते हो उन (मनवे) विज्ञानयुक्त (दशस्या) दशन अर्थात् दांतों के बीच में स्थित जिह्वा के समान आचरण करने वाले आपके लिये (एते) ये हम लोग सब जगत् को निवेदन करते हैं ॥१॥ जो (विष्णो) व्यापनशील प्राण जो (इरावती) उत्तम अन्नयुक्त (धेनुमती) पशुसहित (सूयवसिनी) बहुत मिश्रित अमिश्रित पदार्थ वाली भूमि वा वाणी है उस (पृथिवीम्) भूमि (स्वाहा) वा इन्द्रिय को (मयूखैः) किरणों अपने बल आदि से (अभितः) सब प्रकार (दाधर्थ) धारण करता वा (रोदसी) प्रकाश भूमि को (व्यस्कभ्नाः) स्तंभन करता है उस (दशस्या) दशन और दांत के समान आचरण करने वा (मनवे) विज्ञापनयुक्त सूर्य के लिये (भूतं हि) निश्चय करके सब जगत् को करने के लिये ईश्वर ने दिया है ऐसा (एते) ये सब हम लोग जानते हैं ॥२॥१६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे सूर्य अपनी किरणों से सब भूमि आदि जगत् को प्रकाश आकर्षण और विभाग करके धारण करता है वैसे ही परमेश्वर और प्राण ने अपने सामर्थ्य से सब सूर्य आदि जगत् को धारण करके अच्छे प्रकार स्थापन किया है ॥१६॥

देवश्रुतावित्यस्य वशिष्ठ ऋषिः। विष्णुर्देवता। स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर वे प्राण और अपान कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

देवश्रुतौ देवेष्वाघोषतं प्राची प्रेतमध्वरं कल्पयन्तीऽऊर्ध्वं यज्ञं नयतं मा जिह्वरतम्। स्वं गोष्ठमावदतं देवी दुर्य्येऽआयुर्मा निर्वादिष्टं प्रजां मा निर्वादिष्टमत्र रमेथां वर्ष्मन् पृथिव्याः ॥१७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम जैसे जो (देवेषु) विद्वान् वा दिव्य गुणों में (देवश्रुतौ) विद्वानों से श्रवण किये हुए प्राण अपान वायु (घोषतम्) व्यक्त शब्द करें और जो (प्राची) प्राप्त करने वा (कल्पयन्ती) सामर्थ्य वाली प्रकाश भूमि (ऊर्ध्वम्) उत्तम गुणयुक्त (यज्ञम्) विज्ञान वा शिल्पमय यज्ञ को (प्रेतम्) जनाते रहें (नयतम्) प्राप्त करें (मा जिह्वरतम्) कुटिल गति वाले न हों जो (देवी) दिव्य गुणसम्पन्न (दुर्ये) गृहरूप (स्वयं) अपने (गोष्ठम्) किरण और अवयवों के स्थान के (आवदतम्) उपदेश निमित्तक हों (आयुः) आयु को (मा निर्वादिष्टम्) नष्ट न करें (प्रजाम्) उत्पन्न हुई सृष्टि को (मा निर्वादिष्टम्) न नष्ट करें और वे (पृथिव्याः) आकाश के मध्य (अत्र) इस (वर्ष्मन्) सुख से सेवनयुक्त जगत् में (रमेथाम्) रमण करें तथा किया करो ॥१७॥

भावार्थः—मनुष्यों को जितना जगत् अन्तरिक्ष में वर्त्तता है उतने से बहुत बहुत उत्तम सुखों का सम्पादन करना चाहिये ॥१७॥

विष्णोर्नुकमित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। विष्णुर्देवता। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में व्यापक ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है ॥

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांꣳसि। योऽअस्कभायदुत्तरꣳ सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायो विष्णवे त्वा ॥१८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम (यः) जो (विचक्रमाणः) जगत् रचने के लिये कारण के अंशों को युक्त करता हुआ (उरुगायः) बहुत अर्थों को वेद द्वारा उपदेश करने वाला जगदीश्वर (पार्थिवानि) पृथिवी के विकार अर्थात् पृथिवी के गुणों से उत्पन्न होने वाले वा अन्तरिक्ष में विदित (त्रेधा) तीन प्रकार के (रजांसि) लोकों को (विममे) अनेक प्रकार से रचता है जो (उत्तरम्) पिछले अवयवों के (सधस्थम्) साथ रहने वाले कारण को (अस्कभायत्) रोक रखता है (यः) जो (विष्णवे) उपासनादि यज्ञ के लिये आश्रय किया जाता है उस (विष्णोः) व्यापक परमेश्वर के (वीर्याणि) पराक्रमयुक्त कर्मों का (प्रवोचम्) कथन करूं और हे परमेश्वर ! (नु) शीघ्र ही (कम्) सुखस्वरूप (त्वा) आपका आश्रय करता हूं ।।१८।।

भावार्थः—सब मनुष्यों को जिस परमेश्वर ने पृथिवी सूर्य और त्रसरेणु आदि भेद से तीन प्रकार के जगत् को रचकर धारण किया है उसी की उपासना करनी चाहिये ।।१८।।

दिवो वेत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । विष्णुर्देवता । निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ।।

फिर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

दिवो वा विष्णऽउत वा पृथिव्या महो वा विष्णऽउरोरन्तरिक्षात् । उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्याद्विष्णवे त्वा ।।१९।।

पदार्थः—हे (विष्णो) सर्वव्यापी परमेश्वर ! आप कृपा करके हम लोगों को (दिवः) प्रसिद्ध वा बिजुलीरूप अग्नि से (वसुना) द्रव्य के साथ (आपृणस्व) सुखों से पूर्ण कीजिये और (पृथिव्याः) भूमि से उत्पन्न हुए पदार्थ (उत) भी (वा) अथवा (महः) महत्तत्व अव्यक्त और (उत) भी (उरोः) बहुत (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से द्रव्य के साथ सुखों को (हि) निश्चय करके पूर्ण कीजिये विष्णो) सब में प्रविष्ट ईश्वर ! आप (दक्षिणात्) दक्षिण (उत) और (सव्यात्) वाम पार्श्व से सुखों को दीजिये (त्वा) उस आप को (विष्णवे) योगविज्ञान यज्ञ के लिये पूजन करते हैं ।।१९।।

भावार्थः—सब मनुष्यों को योग्य है कि जिस व्यापक परमेश्वर ने महत्तत्व सूर्य भूमि अन्तरिक्ष वायु अग्नि जल आदि पदार्थ वा उन में रहने वाले ओषधि आदि वा मनुष्यादिकों को रच धारण कर सब प्राणियों के लिये सुखों को धारण करता है उसी की उपासना करें ।।१९।।

प्र तद्विष्णुरित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । विष्णुर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

प्र तद्विष्णु स्तवते वीर्य्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः । यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥२०॥

पदार्थः—(यस्य) जिसके (उरुषु) अत्यन्त (त्रिषु) (विक्रमणेषु) विविध प्रकार के कर्मों में (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक (अधिक्षियन्ति) निवास करते हैं और (वीर्येण) अपने पराक्रम से (भीमः) भय करने वाले (कुचरः) निन्दित प्राणि-वध को करने और (गिरिष्ठाः) पर्वत में रहने वाले (मृगः) सिंह के (न) समान पापियों को खोज दुःख देता हुआ (प्रस्तवते) उद्देश करता है (तत्) इस से उसको कभी न भूलना चाहिये ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सिंह अपने पराक्रम से अपनी इच्छा के समान अन्य पशुओं का नियम करता फिरता है वैसे जगदीश्वर अपने पराक्रम से सब लोगों का नियम करता है ॥२०॥

विष्णो रराटमित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । विष्णुर्देवता । भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

विष्णो रराटमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णो-र्ध्रुवोऽसि । वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥२१॥

पदार्थः—जो यह अनेक प्रकार का जगत् है वह (विष्णोः) व्यापक परमेश्वर के प्रकाश से (रराटम्) उत्पन्न होकर प्रकाशित है (विष्णोः) सर्व सुख प्राप्त करने वाले ईश्वर से (स्यूः) विस्तृत (असि) है । सब जगत् (वैष्णवम्) यज्ञ का साधन (असि) है और (विष्णोः) सब में प्रवेश करने वाले जिस ईश्वर के (श्नप्त्रे) जड़ चेतन के समान दो प्रकार का शुद्ध जगत् है उस सब जगत् के उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर ! हम लोग (त्वा) आप को (विष्णवे) यज्ञ का अनुष्ठान करने के लिये आश्रय करते हैं ॥२१॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि इस सब जगत् का परमेश्वर ही रचने और धारण करने वाला व्यापक इष्टदेव है ऐसा जानकर सब काम-नाओं की सिद्धि करें ॥२१॥

देवस्य त्वेत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता। पूर्वार्द्धस्य साम्नी पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः। आदद इत्युत्तरस्य भुरिगार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर यह यज्ञ किसलिये करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आददे नार्यसीदमहᳬ रक्षसां ग्रीवाऽअपि कृन्तामि। बृहन्नसि बृहद्रवा बृहतीमिन्द्राय वाचं वद ॥२२॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य! जैसे मैं (देवस्य) सब को प्रकाश करने आनन्द देने वा (सवितुः) सकल जगत् को उत्पन्न करने वाले ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में जिस यज्ञ को (आददे) ग्रहण करता हूँ वैसे तू भी (त्वा) उसको ग्रहण कर। जैसे मैं (नारी) यज्ञक्रिया वा (इदम्) यज्ञ के अनुष्ठान का ग्रहण करता हूं वैसे तू भी ग्रहण कर। जैसे (अहम्) मैं (रक्षसाम्) दुष्ट स्वभाव वाले शत्रुओं के (ग्रीवाः) शिरों को भी (अपिकृन्तामि) छेदन करता हूँ वैसे तुम भी छेदन करो। जैसे मैं इस अनुष्ठान से (बृहद्रवाः) बड़ाई पाया बड़ा होता हूं वैसे तू भी हो और जैसे मैं (इन्द्राय) परमैश्वर्य की प्राप्ति के लिये (बृहतीम्) बड़ी (वाचम्) वाणी का उपदेश करता हूँ वैसे तू भी (वद) कर ॥२२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग ईश्वर की सृष्टि में विद्या से पदार्थों की परीक्षा करके कार्य्यों में उपयोग कर सुखों को प्राप्त करते हैं वैसे ही सब मनुष्यों को इस यज्ञ का अनुष्ठान कर सब सुखों को पहुंचना चाहिये ॥२२॥

रक्षोहणमित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता। आद्यस्य याजुषी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। मध्यमस्य स्वराड् ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। यम्मे सबन्धुरित्युत्तरस्य स्वराड् ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

सृष्टि से मनुष्यों को किस प्रकार का उपकार ग्रहण करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

रक्षोहणं वलगहनं वैष्णवीमिदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे निष्ट्यो यममात्यो निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे समानो यमसमानो निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे सबन्धुर्यमसबन्धु-

निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे सजातो यमसंजातो निचखानोत्कृत्याङ्किरामि ॥२३॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे (अहम्) मैं (वलगहनम्) वलों को विलोड़ने और (रक्षोहणम्) राक्षसों के हनन करने वाले कर्म और (वैष्णवीम्) व्यापक ईश्वर की वेदवाणी का अनुष्ठान करके (यम्) जिस (वलगम्) वल प्राप्त कराने वाले यज्ञ को (उत्किरामि) उत्कृष्टपन से प्रेरित अर्थात् इस संसार में प्रकाशित करता हूँ (तम्) उस यज्ञ को वैसे ही तू भी (इदम्) इसको प्रकाशित कर और जैसे (मे) मेरा (निष्टयः) यज्ञ में कुशल (अमात्यः) मेधावी विद्वान् मनुष्य (यम्) जिस यज्ञ वा (इदम्) भूगर्भ विद्या की परीक्षा के लिये स्थान को (निचखान) निःसन्देह खनन करता है वैसे (तम्) उसको तेरा भी भृत्य खोदे। जैसे (अहम्) भूगर्भविद्या का जानने वाला मैं (यम्) जिस (वलगम्) वल प्राप्त करने वाले खेती आदि यज्ञ वा (इदम्) खनन-रूपी कर्म को (उत्किरामि) अच्छे प्रकार सम्पादन करता हूं वैसे (तम्) उस को तू भी कर, जैसे (मे) मेरा (समानः) सदृश वा असदृश मनुष्य (यम्) जिस कर्म को (निचखान) खनन करता है वैसे तेरा भी खोदे, जैसे (अहम्) पढ़ने पढ़ाने वाला मैं (यम्) जिस (वलगम्) आत्मवल प्राप्त करने वाले यज्ञ वा (इदम्) इस पढ़ने पढ़ाने रूपी कार्य को (उत्किरामि) संपन्न करता हूँ वैसे (तम्) उसको तू भी कर, जैसा (मे) मेरा (सबन्धुः) तुल्य बन्धु मित्र वा (असबन्धुः) तुल्य बन्धु रहित अमित्र (यम्) जिस पालनरूपी यज्ञ वा इस कर्म को (निचखान) निःसन्देह करता है वैसे उसको तेरा भी करे, जैसे (अहम्) सब का मित्र मैं (यम्) जिस (वलगम्) राज्यवल प्राप्त करने वाले यज्ञ वा (इदम्) इस कार्य को (उत्किरामि) संपन्न करता हूं वैसे (तम्) उसको तू भी कर, जैसे (सजातः) साथ उत्पन्न हुआ (असजातः) साथ से अलग उत्पन्न हुआ मनुष्य (यम्) जिस यज्ञ वा (कृत्याम्) उत्तम क्रिया को (निचखान) निःसन्देह करता है वैसे तेरा भी इस यज्ञ वा इस क्रिया को निःसन्देह करे। जैसे मैं इस सब कर्म को (उत्किरामि) सम्पादन करता हूं वैसे तुम भी करो ॥२३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। मनुष्यों को ईश्वर की इस सृष्टि में विद्वानों का अनुकरण सदा करना और मूर्खों का अनु-करण कभी न करना चाहिये ॥२३॥

स्वराडसीत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। सूर्यविद्वांसौ देवते। भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब अगले मन्त्र में सूर्य और सभाध्यक्ष के गुणों का उपदेश किया है॥

स्वराडसि सपत्नहा सत्रराडस्यभिमातिहा जनराडसि रक्षोहा सर्वराडस्यमित्रहा ॥२४॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! जिस कारण आप (स्वराट्) अपने आप प्रकाशमान (असि) हैं इससे (सपत्नहा) शत्रुओं के मारने वाले होते हो, जिस कारण तुम (सत्रराट्) यज्ञों में प्रकाशमान हो इस से (अभिमातिहा) अभिमानयुक्त मनुष्यों को मारने वाले होते हो, जिस से आप (जनराट्) धार्मिक विद्वानों में प्रकाशित हैं इस से (रक्षोहा) राक्षस दुष्टों को मारने वाले होते हैं, जिस से आप (सर्वराट्) सब में प्रकाशित हैं, इस से (अमित्रहा) अमित्र अर्थात् शत्रुओं के मारने वाले होते हैं ॥१॥ जिस कारण यह सूर्यलोक (स्वराट्) अपने आप (असि) प्रकाशित है इससे (सपत्नहा) मेघ के अवयवों को काटने वाला होता है, जिस कारण यह (सत्रराट्) यज्ञों में प्रकाशित (असि) है इससे (अभिमातिहा) अभिमानकारक चोर आदि का हनन करने वाला होता है, जिस कारण यह (जनराट्) धार्मिक विद्वानों के मन में प्रकाशित (असि) है, इस से (रक्षोहा) राक्षस वा दुष्टों का हनन करने वाला होता है। जिस से यह (सर्वराट्) सब में प्रकाशमान (असि) है इससे (अमित्रहा) दुष्टों को दण्ड देने का निमित्त होता है ॥२॥२४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे सूर्य अपने प्रकाश से चोर व्याघ्र आदि प्राणियों को भय दिखा कर अन्य प्राणियों को सुखी करता है वैसे ही तू भी सब शत्रुओं को निवारण कर प्रजा को सुखी कर ॥२४॥

रक्षोहण इत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता। आद्यस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। बलगहना उपेत्युत्तरस्यार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः ॥

यजमान सभा आदि के अध्यक्ष यज्ञानुष्ठान करने वाले मनुष्यों को यज्ञसामग्री का ग्रहण करावें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

रक्षोहणो वो वलगहनः प्रोक्षामि वैष्णवान्रक्षोहणो वो वलगहनोऽवनयामि वैष्णवान्रक्षोहणो वो वलगहनोऽवस्तृणामि वैष्णवान्रक्षोहणौ वां वलगहनाऽउपदधामि वैष्णवी रक्षोहणौ वां वलगहनौ पर्यूहामि वैष्णवी वैष्णवमसि वैष्णवा स्थ ॥२५॥

पदार्थः—हे सभाध्यक्ष आदि मनुष्यो ! जैसे तुम (रक्षोहणः) दुःखों का नाश

करने वाले हो वैसे शत्रुओं के वल को अस्तव्यस्त करने हारा मैं (वैष्णवान्) यज्ञ देवता वाले (वः) आप लोगों का सत्कार कर युद्ध में शस्त्रों से (प्रोक्षामि) इन घमण्डी मनुष्यों को शुद्ध करूं। जैसे आप (रक्षोहणः) अधर्मात्मा दुष्ट दस्युओं को मारने वाले हैं वैसे (वलगहनः) शत्रुसेना की थाह लेने वाला मैं (वैष्णवान्) यज्ञ-सम्बन्धी (वः) तुम को सुखों से मान्य कर दुष्टों को (अवनयामि) दूर करता हूं, जैसे (वलगहनः) अपनी सेना को व्यूहों की शिक्षा से विलोडन करने वाला मैं (रक्षोहणः) शत्रुओं को मारने वा (वैष्णवान्) यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले (वः) तुम को (अवस्तृणामि) सुख से आच्छादित करता हूं वैसे तुम भी किया करो, जैसे (रक्षोहणौ) राक्षसों के मारने वा (वलगहनौ) वलों को विलोडन करने वाले (वाम्) यज्ञपति वा यज्ञ कराने वाले विद्वान् का धारण करते हो वैसे मैं भी (उपदधामि) धारण करता हूं जैसे (रक्षोहणौ) राक्षसों के मारने (वलगहनौ) वलों को विलोडने वाले (वाम्) प्रजा सभाध्यक्ष आप (वैष्णवी) सब विद्याओं में व्यापक विद्वानों की क्रिया वा (वैष्णवम्) जो विष्णुसम्बन्धी ज्ञान है इन सब को तर्क से जानते हैं वैसे मैं भी (पर्यूहामि) तर्क से अच्छे प्रकार जानूं और जैसे आप सब लोग (वैष्णवाः) व्यापक परमेश्वर की उपासना करने वाले (स्थ) हैं वैसा मैं भी होऊं ॥२५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा और उपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को परमेश्वर की उपासनायुक्त व्यवहार से शरीर और आत्मा के वल को पूर्ण कर के यज्ञ से प्रजा की पालना और शत्रुओं को जीतकर सब भूमि के राज्य की पालना करनी चाहिये ॥२५॥

देवस्य त्वेत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता। आद्यस्य निचृदार्षी पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। यवोऽसीत्युत्तरस्य निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

किसलिये इस यज्ञ को करना चाहिये इस विषय का उपदेश
अगले मन्त्र में किया है॥

देवस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वेऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम्। आद॑दे॒ नार्य॑सी॒दम॒हꣳ रक्ष॑सां ग्री॒वाऽअपि॑ कृन्तामि। यवो॑ऽसि य॒वया॒स्मद्द्वेषो॑ य॒वयारा॑तीर्दि॒वे त्वा॒ऽन्तरि॑क्षाय त्वा पृथि॒व्यै त्वा॒ शुन्ध॑न्ताँ॒ल्लो॒काः पि॑तृ॒षद॑नाः पितृ॒षद॑नमसि ॥२६॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य! जैसे मैं (सवितुः) सब जगत् के उत्पन्न करने और (देवस्य) सब आनन्द के देने वाले परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार

में (अश्विनोः) प्राण और अपान के (बाहुभ्याम्) बल और वीर्य तथा (पूष्णः) अतिपुष्ट वीर के (हस्ताभ्याम्) प्रबल प्रतापयुक्त भुज और दण्ड से अनेक उपकारों को (आददे) लेता वा (इदम्) इस जगत् की रक्षा कर (रक्षसाम्) दुष्टकर्म करने वाले प्राणियों के (ग्रीवाः) शिरों का (अपि) (कृन्तामि) छेदन ही करता हूँ तथा जैसे पदार्थों का उत्तम गुणों से मेल करता हूँ वैसे तू भी उपकार ले और (यवय) उत्तम गुणों से पदार्थों का मेल कर जैसे मैं (द्वेषः) ईर्षा आदि दोष वा (अरातीः) शत्रुओं को (अस्मत्) अपने से दूर कराता हूँ वैसे तू भी (यवय) दूर करा। हे विद्वन् ! जैसे हम लोग (दिवे) ऐश्वर्य्यादि गुण के प्रकाश होने के लिये (त्वा) तुझ को (अन्तरिक्षाय) आकाश में रहने वाले पदार्थ को शोधने के लिये (त्वा) तुझ को (पृथिव्यै) पृथिवी के पदार्थों की पुष्टि होने के लिये (त्वा) तुझ को सेवन करते हैं वैसे तुम लोग भी करो। जैसे (पितृषदनम्) विद्या पढ़े हुए ज्ञानी लोगों का यह स्थान (असि) है और जिस से (पितृषदनाः) जैसे ज्ञानियों में ठहर पवित्र होते हैं वैसे मैं शुद्ध होऊं तथा सब मनुष्य (शुन्धन्ताम्) अपनी शुद्धि करें और हे स्त्री ! तू भी यह सब इसी प्रकार कर ॥२६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि ठीक-ठीक क्रियाक्रमपूर्वक विद्वानों का आश्रय और यज्ञ का अनुष्ठान करके सब प्रकार से अपनी शुद्धि करें ॥२६॥

उद्दिवमित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता। ब्राह्मी जगती छन्दः। निषादः स्वरः।

अच्छे प्रकार सेवन किया हुआ सभापति और अनुष्ठान किया हुआ यज्ञ क्या करता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उद्दिवꣳ स्तभानान्तरिक्षं पृण दृꣳहस्व पृथिव्यां द्युतानस्त्वा मारुतो मिनोतु मित्रावरुणौ ध्रुवेण धर्मणा। ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि। ब्रह्म दृꣳह क्षत्रं दृꣳहायुर्दृꣳह प्रजां दृꣳह ॥२७॥

पदार्थः—हे परम विद्वन् ! जैसे (त्वा) आप को (मारुतः) वायु (ध्रुवेण) निश्चल (धर्मणा) धर्म से (मिनोतु) प्रयुक्त करे (मित्रावरुणौ) प्राण और अपान भी धर्म से प्रयुक्त करते हैं वैसे आप कृपा करके हम लोगों के लिये (दिवम्) विद्या गुणों के प्रकाश को (उत्तभान) अज्ञान से उघाड़ देओ तथा (अन्तरिक्षम्) सब पदार्थों के अवकाश को (आपृण) परिपूर्ण कीजिये (पृथिव्याम्) भूमि पर (द्युतानः) सद्विद्या के

गुणों का विस्तार करते हुए आप सुखों को (दृंहस्व) बढ़ाइये (ब्रह्म) वेदविद्या को (दृंह) बढ़ाइये (क्षत्रम्) राज्य को बढ़ाइये (आयुः) अवस्था को (दृंह) बढ़ाइये और (प्रजाम्) उत्पन्न हुई प्रजा को (दृंह) वृद्धियुक्त कीजिये। इसीलिये मैं (ब्रह्मवनि) ब्रह्म विद्या को सेवन करने वा कराने (क्षत्रवनि) राज्य को सेवन करने कराने (रायस्पोषवनि) और धनसमूह की पुष्टि को सेवने वा सेवन कराने वाले आप को (पर्यूहामि) सब प्रकार के तर्कों से निश्चय करता हूं वैसे आप मुझ को सर्वथा सुखदायक हूजिये और आप को सब मनुष्य तर्कों से जानें ॥२७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! आप लोग जैसे जगदीश्वर सत्य भाव से प्रार्थित और सेवन किया हुआ अत्युत्तम विद्वान् सब को सुख देता है वैसे यह यज्ञ भी विद्यागुण को बढ़ाकर सब जीवों को सुख देता है, यह जानो ॥२७॥

ध्रुवासीत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता। आर्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर उस यज्ञ से क्या होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

ध्रुवासि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्भूयात्। घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथामिन्द्रस्य छदिरसि विश्वजनस्य छाया ॥२८॥

पदार्थः—हे यज्ञ करने वाले यजमान की स्त्री! जैसे तू (प्रजया) राज्य वा अपने संतानों और (पशुभिः) हाथी घोड़े गाय आदि पशुओं के सहित (अस्मिन्) इस (आयतने) जगत् वा अपने स्थान वा सब के सत्कार कराने के योग्य यज्ञ में (ध्रुवा) दृढ़ संकल्प (असि) है वैसे (अयम्) यह (यजमानः) यज्ञ करने वाला तेरा पति यजमान भी (ध्रुवः) दृढ़ संकल्प है। तुम दोनों (घृतेन) घृत आदि सुगन्धित पदार्थों से (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि को (पूर्येथाम्) परिपूर्ण करो। हे यज्ञ करने वाली स्त्री! तू (इन्द्रस्य) अत्यन्त ऐश्वर्य को भी अपने यज्ञ से (छदिः) प्राप्त करने वाली (असि) है। अब तू और तेरा पति यह यजमान (विश्वजनस्य) संसार का (छाया) सुख करने वाला (भूयात्) हो ॥२८॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जिन यज्ञ करने वाले यजमान की पत्नी और यजमान से तथा जिस यज्ञ से दृढ़ विद्या और सुखों को पाकर दुःखों को छोड़ें उन का सत्कार तथा उस यज्ञ का अनुष्ठान सदा ही करते रहें ॥२८॥

परि त्वेत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। ईश्वरसभाध्यक्षौ देवते। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

ईश्वर और सभाध्यक्ष से क्या-क्या होने को योग्य है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

परि त्वा गिर्वणो गिर॑ऽइमा भ॑वन्तु विश्वतः। वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः॥२९॥

पदार्थः—हे (गिर्वणः) स्तुतियों से स्तुति करने योग्य ईश्वर वा सभाध्यक्ष! (इमाः) ये मेरी की हुई (विश्वतः) समस्त (गिरः) स्तुतियें (परि) सब प्रकार से (भवन्तु) हों और उसी समय की ही न हों किन्तु (वृद्धायुम्) वृद्धों के समान आचरण करने वाले आपके (अनु) पश्चात् (वृद्धयः) अत्यन्त बढ़ती हुईं और (जुष्टयः) प्रीति करने योग्य (जुष्टाः) प्यारी हों॥२९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे संपूर्ण उत्तम गुण कर्म्मों के साथ वर्त्तमान जगदीश्वर और सभापति स्तुति करने योग्य हैं वैसे ही तुम लोगों को भी होना चाहिये॥२९॥

इन्द्रस्येत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। ईश्वरसभाध्यक्षौ देवते। आर्च्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

इन्द्र॑स्य स्यूरसीन्द्र॑स्य ध्रुवोऽसि ऐन्द्रम॑सि वैश्वदेवम॑सि॥३०॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष! जैसे (वैश्वदेवम्) समस्त पदार्थों का निवास स्थान अन्तरिक्ष है वैसे आप (ऐन्द्रम्) सब के आधार हैं इसी से हम लोगों को (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य का (स्यूः) संयोग करने वाले (असि) हैं और (इन्द्रस्य) सूर्य आदि लोक वा राज्य को (ध्रुवः) निश्चल करने वाले (असि) हैं॥३०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार हैं। जैसे सकल ऐश्वर्य्य का देने वाला जगदीश्वर है वैसे सभाध्यक्षादि मनुष्यों को होना चाहिये॥३०॥

विभूरसीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

विभूर॑सि प्रवाह॑णो वह्नि॑रसि हव्यवाह॑नः। श्वात्रोऽसि प्रचे॑तास्तुथोऽसि विश्ववे॑दाः॥३१॥

पदार्थः— हे जगदीश्वर वा विद्वन् ! जिससे आप जैसे व्यापक आकाश और (प्रवाहणः) जैसे वायु बड़ा नद होता है, ऐश्वर्य्ययुक्त राजा होता है वैसे (विभूः) व्यापक और ऐश्वर्य्ययुक्त (असि) हैं (वह्निः) जैसे होम किये पदार्थोंको योग्य स्थान में पहुंचाने वाला अग्नि है वैसे (हव्यवाहनः) हवन करने के योग्य पदार्थों को संपादन करने वाले (असि) हैं जैसे जीवों में प्राण हैं वैसे (प्रचेताः) चेत करने वाले (श्वात्रः) विद्वान् (असि) हैं जैसे सूत्रात्मा पवन सब में व्याप्त है वैसे (विश्ववेदाः) विश्व को जानने (तुथः) ज्ञान को बढ़ाने वाले (असि) हैं इस से आप सत्कार करने योग्य हैं ऐसा हम लोग जानते हैं ॥३१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है। सब मनुष्यों को उचित है कि ईश्वर और विद्वान् का सत्कार करना कभी न छोड़ें क्योंकि अन्य किसी से विद्या और सुख का लाभ नहीं हो सकता है इसलिये इन को जानें ॥३१॥

उशिगसीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

उशिगसि कविरङ्घारिरसि बम्भारिरवस्यूरसि दुवस्वाञ्छुन्ध्यूरसि मार्जालीयः। सम्राडसि कृशानुः परिषद्योऽसि पवमानो नभोऽसि प्रतक्वा मृष्टोऽसि हव्यसूदनऽऋतधामासि स्वर्ज्योतिः ॥३२॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! जिस कारण आप (उशिक्) कान्तिमान् (असि) हैं (अंघारिः) खोटे चलन वाले जीवों के शत्रु वा (कविः) क्रान्तप्रज्ञ (असि) हैं (बम्भारिः) बन्धन के शत्रु वा तारादि तन्तुओं के विस्तार करने वाले (असि) हैं (दुवस्वान्) प्रशंसनीय सेवायुक्त स्वयं (शुन्ध्यूः) शुद्ध (असि) हैं (मार्जालीयः) सब को शोधने वाले (सम्राट्) और अच्छे प्रकार प्रकाशमान (असि) हैं (कृशानुः) पदार्थों को अति सूक्ष्म (पवमानः) पवित्र और (परिषद्यः) सभा में कल्याण करने वाले (असि) हैं जैसे (प्रतक्वा) हर्षित और (नभः) दूसरे के पदार्थ हर लेने वालों को मारने वाले (असि) हैं (हव्यसूदनः) जैसे होम के द्रव्य को यथायोग्य व्यवहार में लाने वाले और (मृष्टः) सुख दुःख को सहन करने और कराने वाले (असि) हैं जैसे (स्वर्ज्योतिः) अन्तरिक्ष को प्रकाश करने वाले और (ऋतधामा) सत्यधाम युक्त (असि) हैं वैसे ही उक्त गुणों से प्रसिद्ध आप सब मनुष्यों को उपासना करने योग्य हैं, ऐसा हम लोग जानते हैं ॥३२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जिस परमेश्वर ने समस्त गुण वाले जगत् को रचा है उन्हीं गुणों से प्रसिद्ध उसकी उपासना सब मनुष्यों को करनी चाहिये ॥३२॥

समुद्रोऽसीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर जैसा ईश्वर है वैसा विद्वानों को भी होना अवश्य है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

समुद्रोऽसि विश्वव्यंचा अजोऽस्येकंपादहिंरसि बुध्न्यो वार्गस्यैन्द्रमंसि सदोस्यृतंस्य द्वारौ मा मा सन्तांप्तमध्वंनामध्वपते प्र मां तिर स्वस्ति मेऽस्मिन् पथि देवयाने भूयात् ॥३३॥

पदार्थः—जैसे परमेश्वर (समुद्रः) सब प्राणियों का गमनागमन कराने हारे (विश्वव्यचाः) जगत् में व्यापक और (अजः) अजन्मा (असि) है (एकपाद्) जिसके एक पाद में विश्व है (अहिः) वा व्यापनशील (बुध्न्यः) तथा अन्तरिक्ष में होनेवाला (असि) है और (वाक्) वाणीरूप (असि) है (ऐन्द्रम्) परमैश्वर्य का (सदः) स्थानरूप है और (ऋतस्य) सत्य के (द्वारौ) मुखों को (मा संताप्तम्) संताप कराने वाला नहीं है। (अध्वपते) हे धर्म-व्यवहार के मार्गों को पालन करने हारे विद्वानो! वैसे तुम भी संताप न करो। हे ईश्वर! (मा) मुझ को (अध्वनाम्) धर्मशिल्प के मार्ग से (प्रतिर) पार कीजिये और (मे) मेरे (अस्मिन्) इस (देवयाने) विद्वानों के जाने आने योग्य (पथि) मार्ग में जैसे (स्वस्ति) सुख (भूयात्) हो वैसा अनुग्रह कीजिये ॥३३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। ईश्वर वा जगत् के कारणरूप वा जीव को अनादित्व होने वा जन्म न होने से अविनाशीपन है। परमेश्वर की कृपा, उपासना, सृष्टि की विद्या वा अपने पुरुषार्थ के साथ वर्त्तमान हुए मनुष्यों को विद्वानों के मार्ग की प्राप्ति और उस में सुख होता है और आलसी मनुष्यों को नहीं होता ॥३३॥

मित्रस्येत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराड्ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर विद्वान् कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

मित्रस्यं मा चक्षुंषेक्षध्वमग्नंयः सगंराः सगरा स्थ सगंरेण नाम्ना

रौद्रेणानीकेन पात माग्नयः पिपृत माग्नयो गोपायत मा नमो वोऽस्तु मा मा हिंᳬसिष्ट ॥३४॥

पदार्थः—हे (सगराः) अन्तरिक्ष अवकाशयुक्त (अग्नयः) अच्छे-अच्छे पदार्थों को प्राप्त करने वाले विद्वान् लोगो ! तुम (मा) मुझ को (मित्रस्य) मित्र की दृष्टि से (ईक्षध्वम्) देखिये। आप (सगराः) विद्योपदेश अवकाशयुक्त (स्थ) हूजिये और जैसे आप (अग्नयः) संसाधित विद्युत् आदि अग्नियों की रक्षा करते हैं वैसे (सगरेण) अन्तरिक्ष के साथ वर्त्तमान (रौद्रेण) शत्रुओं को रोदन करने वाली (नाम्ना) प्रसिद्ध (अनीकेन) सेना से (मा) मुझे (पात) पालिये (अग्नयः) जैसे ज्ञानी लोग सब प्रकार सब को सुख देते हैं वैसे (पिपृत) सुखों से पूरण कीजिये (गोपायत) और सब ओर से पालन कीजिये और कभी (मा) मुझ को (मा हिंसिष्ट) नष्ट मत कीजिये (वः) इस से आप के लिये (मे) मेरा (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो ॥३४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्या देने से विद्वान् लोग सब मनुष्यों को सुखी करते हैं वैसे इन विद्वानों को कार्यों के करने में चतुर और विद्यायुक्त होकर विद्यार्थी लोग सेवा से सुखी करें ॥३४॥

ज्योतिरसीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद् ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

ईश्वर कैसा है यह अगले मन्त्र में कहा है॥

ज्योतिरसि विश्वरूपं विश्वेषां देवानाᳬं समित् त्वᳬ सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्यऽउरु यन्तासि वरूथᳬ स्वाहा। जुषाणो अप्तुराज्यस्य वेतु स्वाहा ॥३५॥

पदार्थः—हे (सोम) ऐश्वर्य्य देने वाले जगदीश्वर ! आप (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) विद्वानों के (विश्वरूपम्) सब रूपयुक्त (ज्योतिः) सब के प्रकाश करने वाले (समित्) अच्छे प्रकाशित (असि) हैं (तनूकृद्भ्यः) शरीरों को संपादन करने (द्वेषोभ्यः) और द्वेष करने वाले जीवों तथा (अन्यकृतेभ्यः) अन्य मनुष्यों के किये हुए दुष्ट कर्म्मों से (यन्ता) नियम करने वाले (असि) हैं उन से (उरु) बहुत (वरूथम्) उत्तम गृह (स्वाहा) वाणी (अप्तुः) व्यापक (आज्यस्य) विज्ञान को (जुषाणः) सेवन करता हुआ मनुष्य (स्वाहा) वेदवाणी को (वेतु) जाने ॥३५॥

भावार्थः—जिस से परमेश्वर सब लोकों का नियम करने वाला है इस से ये नियम में चलते हैं ॥३५॥

अग्ने नयेत्यस्यागस्त्य ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

फिर ईश्वरप्रार्थना किसलिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

अग्ने नय॑ सुपथा॑ रा॒येऽअ॒स्मान्विश्वा॑नि देव व॒युना॑नि वि॒द्वान् । यु॒यो॒ध्य॒स्मज्जु॑हुरा॒णमेनो॒ भूयि॑ष्ठां ते॒ नम॑ऽउक्तिं विधेम ।।३६।।

पदार्थः—हे (अग्ने) सब को अच्छे मार्ग में पहुँचाने (देव) और सब आनन्दों को देने वाले (विद्वान्) समस्त विद्यान्वित जगदीश्वर ! आप कृपा से (राये) मोक्षरूप उत्तम धन के लिये (सुपथा) जैसे धार्मिक जन उत्तम मार्ग से (विश्वानि) समस्त (वयुनानि) उत्तम कर्म, विज्ञान वा प्रजा को प्राप्त होते हैं वैसे (अस्मान्) हम लोगों को (नय) प्राप्त कीजिये और (जुहुराणम्) कुटिल (एनः) दुःखफलरूपी पाप को (अस्मत्) हम लोगों से (युयोधि)दूर कीजिये । हम लोग (ते) आप की (भूयिष्ठाम्) अत्यन्त (नम उक्तिम्) नमस्काररूप वाणी को (विधेम) कहते हैं ।।३६।।

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । जैसे सत्य प्रेम से उपासना किया हुआ परमेश्वर जीवों को दुष्ट मार्गों से अलग और धर्ममार्ग में स्थापन कर के इस लोक के सुखों को उन के कर्मानुसार देता है वैसे ही न्याय करने हारे भी किया करें ।।३६।।

अयं न इत्यस्यागस्त्य ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

फिर ईश्वर की उपासना करने हारे शूरवीर के गुणों का उपदेश किया है ।।

अ॒यं नो॑ऽअ॒ग्निर्वरि॑वस्कृणोत्व॒यं मृधः॑ पु॒रऽए॑तु प्रभि॒न्दन् । अ॒यं वाजा॑ञ्जयतु॒ वाज॑साताव॒यꣳ शत्रू॑ञ्जयतु॒ जर्हृ॑षाणः॒ स्वाहा॑ ।।३७।।

पदार्थः—यह (अग्निः) परमेश्वर का उपासक जन (नः) हम प्रजास्थ जीवों की (वरिवः) निरन्तर रक्षा (कृणोतु) करे । जैसे कोई वीर पुरुष अपनी सेना को लेकर संग्राम में निन्दित दुष्ट वैरियों को पहिले ही जा घेरता है वैसे (अयम्) यह युद्ध करने में कुशल सेनापति (वाजसातौ) संग्राम में दुष्ट शत्रुओं को (पुरः) पहिले ही (एतु) जा घेरे और जैसे (अयम्) यह वीरों को हर्ष देनेवाला सेनापति दुष्ट शत्रुओं को (प्रभिन्दन्) छिन्न भिन्न करता हुआ (वाजान्) संग्रामों को (जयतु) जीते (अयम्) यह विजय कराने वाला सेनापति (जर्हृषाणः) निरंतर प्रसन्न होकर

(स्वाहा) युद्ध के प्रवन्ध की श्रेष्ठ वोलियों को बोलता हुआ (जयतु) अच्छी तरह जीते ॥३७॥

भावार्थः—जो लोग परमेश्वर की उपासना नहीं करते हैं उनका विजय सर्वत्र नहीं होता। जो अच्छी शिक्षा देकर शूरवीर पुरुषों का सत्कार कर के सेना नहीं रखते हैं उनका सब जगह सहज में पराजय हो जाता है इस से मनुष्यों को चाहिये कि दो प्रवन्ध अर्थात् एक तो परमेश्वर की उपासना और दूसरा वीरों की रक्षा सदा करते रहें ॥३७॥

उरु विष्णवित्यस्यागस्त्य ऋषिः। विष्णुर्देवता। भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि। घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा ॥३८॥

पदार्थः—जैसे सर्वव्यापक परमेश्वर सब जगत् की रचना करता हुआ जगत् के कारण को प्राप्त हो सब को रचता है वैसे हे विद्यादि गुणों में व्याप्त होने वाले वीर पुरुष ! अपने विद्या के फल को (उरु) वहुत (वि) अच्छी तरह (क्रमस्व) पहुंच (क्षयाय) निवास करने योग्य गृह और विज्ञान की प्राप्ति के योग्य (नः) हम लोगों को (कृधि) कीजिये। हे (घृतयोने) विद्यादि सुशिक्षायुक्त पुरुष ! जैसे अग्नि घृत पी के प्रदीप्त होता है वैसे तू भी अपने गुणों में (घृतम्) घृत को (प्रप्र पिब) वारंवार पी के शरीर वलादि से प्रकाशित हो और ऋत्विज् आदि विद्वान् लोग (यज्ञपतिम्) यजमान की रक्षा करते हुए उसे यज्ञ से पार करते हैं वैसे तू भी (स्वाहा) यज्ञ की क्रिया से (यज्ञम्) यज्ञ के (तिर) पार हो ॥३८॥

भावार्थः—जैसे परमेश्वर अपनी व्यापकता से कारण को प्राप्त हो सब जगत् के रचने और पालने से सब जीवों को सुख देता है वैसे आनन्द में हम सभों को रहना उचित है। जैसे अग्नि काष्ठ आदि इन्धन वा घृत आदि पदार्थों को प्राप्त हो प्रकाशमान होता है वैसे हम लोगों को भी शत्रुओं को जीत प्रकाशित होना चाहिये और जैसे होता आदि विद्वान् लोग धार्मिक यज्ञ करने वाले यजमान को पाकर अपने कामों को सिद्ध करते हैं वैसे प्रजास्थ लोग धर्मात्मा सभापति को पाकर अपने अपने सुखों को सिद्ध किया करें ॥३८॥

देव सवितरित्यस्यागस्त्य ऋषिः। सोमसवितारौ देवते। आद्यस्य साम्नी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। एतत्त्वमित्युत्तरस्यार्षी पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

देव सवितरेष ते सोमस्तꣳ रक्षस्व मा त्वा दभन्। एतत्त्वं देव सोम देवो देवाँ२ऽउपागाऽइदमहं मनुष्यान्त्सह रायस्पोषेण स्वाहा निर्वरुणस्य पाशान्मुच्ये ॥३९॥

पदार्थः—हे (देव) सब विद्याओं के प्रकाश करने वाले ऐश्वर्य्यवान् विद्वान् सभाध्यक्ष ! जैसे मैं आप के सहाय से अपने ऐश्वर्य्य को रखता हूं वैसे तू जो (एषः) यह (ते) तेरा (सोमः) ऐश्वर्य्यसमूह है (तम्) उसको (रक्षस्व) रख। जैसे मुझ को शत्रुजन दुःख नहीं दे सकते हैं वैसे (त्वा) तुझे भी (मा दभन्) न दे सकें। हे (देव) सुख के देने और (सोम) सज्जनों के मार्ग में चलाने हारे राजा ! (त्वम्) तू (एतत्) इस कारण सभाध्यक्ष और (देवः) परिपूर्ण विद्या प्रकाश में स्थित हुआ (देवान्) श्रेष्ठ विद्वानों के (उप) समीप (अगाः) जा और मैं भी जाऊं। जैसे मैं (इदम्) इस आचरण को करके (रायः) अत्यन्त धन की (पोषेण) पुष्टताई के साथ (मनुष्यान्) विचारवान् पुरुष और (देवान्) विद्वानों को प्राप्त होकर (वरुणस्य) दुःख से तिरस्कार करने वाले दुष्टजन के (पाशात्) बन्धन से (मुच्ये) छूटूं वैसे तू भी (निः) निरन्तर छूट ॥३९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब मनुष्यों को योग्य है कि जिस अप्राप्त ऐश्वर्य्य की पुरुषार्थ से प्राप्ति हो उस की रक्षा और उन्नति, धार्मिक मनुष्यों का सङ्ग और इससे सज्जनों का सत्कार तथा धर्म का अनुष्ठान कर विज्ञान को बढ़ा के दुःखबन्धन से छूटें ॥३९॥

अग्ने व्रतपा इत्यस्यागस्त्य ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर वे कैसे वर्त्तें यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने व्रतपास्ते व्रतपा या तव तनूर्मय्यभूदेषा सा त्वयि यो मम तनूस्त्वय्यभूदियꣳ सा मयि। यथायथं नौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षां दीक्षापतिरमꣳस्तानु तपस्तपस्पतिः ॥४०॥

पदार्थः—(व्रतपाः) जैसे सत्य का पालने हारा विद्वान् हो वैसे (अग्ने) हे विशेष ज्ञानवान् पुरुष ! जो मेरा (व्रतपाः) सत्यविद्या गुणों का पालने हारा आचार्य्य (अभूत) हुआ था वैसे मैं (ते) तेरा होऊं (या) जो (तव) तेरी (तनूः) विद्या आदि गुणों में व्याप्त होने वाली देह है (सा) वह (मयि) तेरे मित्र मुझ में भी हो (एषा)

यह (त्वयि) मेरे मित्र तुझ में बुद्धि हो (या) जो (मम) मेरी (तनूः) विद्या की फैलावट है (सा) वह (त्वयि) मेरे पढ़ाने वाले तुझ में हो (इयम्) यह (मयि) तेरे शिष्य मुझ में बुद्धि हो (व्रतपते) हे सत्य आचरणों से पालने हारे ! जैसे सत्य गुण सत्य उपदेश का रक्षक विद्वान् होता है वैसे मैं और तू (यथायथम्) यथायुक्त मित्र होकर (व्रतानि) सत्य आचरणों का वर्त्ताव वर्त्तें । हे मित्र ! जैसे (तव) तेरा (दीक्षापतिः) यथोक्त उपदेश का पालने हारा तेरे लिये (दीक्षाम्) सत्य का उपदेश (अमंस्त) करना जान रहा है वैसे मेरा मेरे लिये (अनु) जाने । जैसे तेरा (तपस्पतिः) अखंड ब्रह्मचर्य्य का पालनेहारा आचार्य तेरे लिये (तपः) पहिले क्लेश और पीछे सुख देने हारे ब्रह्मचर्य्य को करना जान रहा है वैसे मेरा अखंड ब्रह्मचर्य्य का पालने हारा मेरे लिये जाने ॥४०॥

भावार्थः—जैसे पहिले विद्या पढ़ाने वाले अध्यापक लोग हुए वैसे हम लोगों को भी होना चाहिये । जब तक मनुष्य सुख दुःख हानि और लाभ की व्यवस्था में परस्पर अपने आत्मा के तुल्य दूसरे को नहीं जानते तब तक पूर्ण सुख को प्राप्त नहीं होते इस से मनुष्य लोग श्रेष्ठ व्यवहार ही किया करें ॥४०॥

उरु विष्णवित्यस्यागस्त्य ऋषिः । विष्णुर्देवता । भुरिगार्च्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वे कैसे वर्त्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उरु विष्णो वि क्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि । घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा ॥४१॥

पदार्थः—जैसे सब पदार्थों में व्याप्त होने वाला पवन चलता है वैसे हे विद्या गुणों में व्याप्त होने वाले विद्वान् ! (उरु) अत्यन्त विस्तारयुक्त (क्षयाय) विज्ञानोन्नति के लिये (विक्रमस्व) अपनी विद्या के अंगों से परिपूर्ण हो और (नः) हम लोगों को सुखी (कृधि) कर । जैसे जल का निमित्त बिजुली है वैसे हे पदार्थ ग्रहण करने वाले विद्वन् ! बिजुली के समान (घृतम्) जल (पिब) पी और जैसे मैं यज्ञपति को दुःख से पार करता हूं वैसे तू भी (स्वाहा) अच्छे प्रकार हवन आदि कर्म्मों को सेवन करके (प्रप्रतिर) दुःखों से अच्छे प्रकार पार हो ॥४१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे पवन सब को सुख देता हुआ सब के रहने का स्थान हो रहा है वैसे ही विद्वान् को होना चाहिये ॥४१॥

अत्यन्यानित्यस्यागस्त्य ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

मनुष्यों को उक्त व्यवहारों से विरुद्ध मनुष्य न सेवने चाहियें यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

अत्यन्याँ२ऽअगां नान्याँ२ऽउपागामर्वाक् त्वा परेभ्योऽविदं परोऽवरेभ्यः । तं त्वा जुषामहे देव वनस्पते देवयज्यायै देवास्त्वा देवयज्यायै जुषन्तां विष्णवे त्वा । ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीः ।।४२।।

पदार्थः—हे (वनस्पते) सब बूटियों की रक्षा करने वाले(देव)विद्वान् जन ! जैसे तू (अन्यान्) विद्वानों के विरोधी मूर्ख जनों को छोड़ के (अन्यान्) मूर्खों के विरोधी विद्वानों के समीप जाता है वैसे मैं भी विद्वानों के विरोधियों को छोड़ (उप) समीप (अगाम्) जाऊं । जो तुम (परेभ्यः) उत्तमों से (परः) उत्तम और (अवरेभ्यः) छोटों से (अर्वाक्) छोटे हों (तम्) (त्वाम्) उन्हें मैं (अविदम्) पाऊं । जैसे (देवाः) विद्वान् लोग (देवयज्यायै) उत्तम गुण देने के लिये (त्वा) तुझ को चाहते हैं वैसे हम लोग भी (त्वा) तुझे (जुषामहे) चाहें और जैसे हम लोग (देवयज्यायै) अच्छे अच्छे गुणों का संग होने के लिये (त्वा) तुझे चाहते हैं वैसे और भी ये लोग चाहें । जैसे ओषधियों का समूह (विष्णवे) यज्ञ के लिये सिद्ध होकर सब की रक्षा करता है वैसे हे रोगों को दूर करने और (स्वधिते) दुःखों का विनाश करने वाले विद्वान् जन ! हम लोग (त्वा) तुझे यज्ञ के लिये चाहते हैं । श्रेष्ठ विद्वान् जन ! जैसे मैं इस यज्ञ का विनाश करना नहीं चाहता वैसे तू भी (एनम्) इस यज्ञ को (मा) मत (हिंसीः) बिगाड़ ।।४२।।

भावार्थः—यहाँ वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि नीच व्यवहार और नीच पुरुषों को छोड़ के अच्छे-अच्छे व्यवहार तथा उत्तम विद्वानों को नित्य चाहें और उत्तमों से उत्तम तथा न्यूनों से न्यून शिक्षा का ग्रहण करें । यज्ञ और यज्ञ के पदार्थों का तिरस्कार कभी न करें तथा सब को चाहिये कि एक दूसरे के मेल से सुखी हों ।।४२।।

द्यां मा लेखीरित्यस्यागस्त्य ऋषिः । यज्ञो देवता । ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

मनुष्यों को योग्य है कि यज्ञ को सिद्ध कराने वाली जो विद्या है उस का नित्य सेवन करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

द्यां मा लेखीरन्तरिक्षं मा हिंसीः पृथिव्या संभव अयꣳहि त्वा स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगाय। अतस्त्वं देव वनस्पते शतवल्शो विरोह सहस्रवल्शा वि वयꣳ रुहेम ॥४३॥

पदार्थः—हे विद्वन्! जैसे मैं सूर्य्य के सामने होकर (द्याम्) उस के प्रकाश को दृष्टिगोचर नहीं करता हूं वैसे तू भी उसको (मा) (लेखीः) दृष्टिगोचर मत कर। जैसे मैं (अन्तरिक्षम्) यथार्थ पदार्थों के अवकाश को नहीं बिगाड़ता हूं वैसे तू भी उसको (मा) (हिंसीः) मत बिगाड़। जैसे मैं (पृथिव्या) पृथिवी के साथ होता हूं वैसे तू भी उस के साथ (सम्) (भव) हो (हि) जिस कारण जैसे (तेतिजानः) अत्यन्त पैना (स्वधितिः) वज्र शत्रुओं का विनाश करके ऐश्वर्य्य को देता है (अतः) इस कारण (अयम्) यह (त्वा) तुझे (महते) अत्यन्त श्रेष्ठ (सौभगाय) सौभाग्यपन के लिये सम्पन्न करे और भी पदार्थ जैसे ऐश्वर्य्य को (प्रणिनाय) प्राप्त करते हैं वैसे तुझे ऐश्वर्य्य पहुंचावे। हे (देव) आनन्दयुक्त (वनस्पते) वनों की रक्षा करने वाले विद्वान्! जैसे (शतवल्शः) सैकड़ों अंकुरों वाला पेड़ फलता है वैसे तू भी इस उक्त प्रशंसनीय सौभाग्यपन से (वि) (रोह) अच्छी तरह फल और जैसे (सहस्रवल्शाः) हजारों अंकुरों वाला पेड़ फले वैसे हम लोग भी उक्त सौभाग्यपन से फलें फूलें ॥४३॥

भावार्थः—यहां वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। इस संसार में किसी मनुष्य को विद्या के प्रकाश का अभ्यास अपनी स्वतन्त्रता और सब प्रकार से अपने कामों की उन्नति को न छोड़ना चाहिये ॥४३॥

इस अध्याय में यज्ञ का अनुष्ठान, यज्ञ के स्वरूप का सम्पादन, विद्वान् और परमात्मा की प्रार्थना, विद्या और विद्वान् की व्याप्ति का निरूपण, अग्नि आदि पदार्थों से यज्ञ की सिद्धि, सब विद्या निमित्त वाणी का व्याख्यान, पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ का विवरण, योगाभ्यास का लक्षण, सृष्टि की उत्पत्ति, ईश्वर और सूर्य के कर्म्म का कहना, प्राण और अपान की क्रिया का निरूपण, सब के नियम करने वाले परमेश्वर की व्याप्ति का कहना, यज्ञ का अनुष्ठान, सृष्टि से उपकार लेना, सूर्य और सभाध्यक्ष के गुणों का कहना, यज्ञ के अनुष्ठान की शिक्षा का देना, सविता और सभाध्यक्ष के कर्म का उपदेश, यज्ञ से सिद्धि, ईश्वर और सभाध्यक्ष से कार्य्यों की सिद्धि तथा उनके स्वरूप और कर्मों का वर्णन, ईश्वर और विद्वानों का वर्त्ताव और उनके लक्षण, शूरवीरों के गुणों का कहना, ईश्वर

और विद्वान् के गुणों का वर्णन, ईश्वर की उपासना करने वाले के गुणों का प्रकाश, सब बन्धन से छूटना, परस्पर की चर्चा, दुष्टों से छूटने का प्रकार, इन अर्थों के कहने से पञ्चमाध्याय में कहे हुए अर्थों की संगति चतुर्थाध्याय के अर्थों से जाननी चाहिये ।।

।। इति पञ्चमोऽध्यायः ।।

अथ षष्ठाध्यायस्यारम्भः

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ।।१।।

अथ देवस्य त्वेत्यस्यागस्त्य ऋषिः । सविता देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । धैवतः स्वरः । यवोऽसीत्यस्यासुरी विवेत्यस्य च भुरिगाष्र्युष्णिक् छन्दसी । ऋषभः स्वरः ।।

अब पांचवें अध्याय के पश्चात् षष्ठाऽध्याय (६) का आरम्भ है । इसके प्रथम मन्त्र में राज्याभिषेक के लिये अच्छी शिक्षायुक्त सभाध्यक्ष विद्वान् को आचार्य्यादि विद्वान् लोग क्या-क्या उपदेश करें यह उपदेश किया है ।।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददे नार्यसीदमहꣳ रक्षसां ग्रीवाऽअपिकृन्तामि । यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातीर्दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धन्ताँल्लोकाः पितृषदनाः पितृषदनमसि ।।१।।

पदार्थः—हे सभाध्यक्ष ! जैसे (पितृषदनाः) पितरों में रहने वाले विद्वान् लोग (देवस्य) प्रकाशमय और (सवितुः) सब विश्व के उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में (अश्विनोः) प्राण और अपान के (बाहुभ्याम्) बल और उत्तम वीर्य्य से तथा (पूष्णः) पुष्टि का निमित्त जो प्राण है उस के (हस्ताभ्याम्) धारण और आकर्षण से (त्वा) तुझे ग्रहण करते हैं वैसे ही मैं (आददे) ग्रहण करता हूं। जैसे मैं (रक्षसाम्) दुष्ट काम करने वाले जीवों के (ग्रीवाः) गले (कृन्तामि) काटता हूं वैसे (त्वम्) तू (अपि) भी काट। हे सभाध्यक्ष ! जिस कारण तू (यवः) संयोग विभाग करने वाला (असि) है इस कारण (अस्मद्) मुझ से (द्वेषः) द्वेष अर्थात् अप्रीति करने वाले वैरियों को (यवय) अलग कर और (अरातीः) जो मेरे निरन्तर शत्रु हैं उन को (यवय) पृथक् कर। जैसे मैं न्याय व्यवहार से रक्षा करने योग्य जन (दिवे) विद्या आदि गुणों के प्रकाश करने के लिये (त्वाम्) न्याय प्रकाश करने वाले तुझ को (अन्तरिक्षाय) आभ्यन्तर व्यवहार में रक्षा करने के लिये (त्वाम्) तुझ सत्य अनुष्ठान करने का अवकाश देने वाले को तथा (पृथिव्यै) भूमि के राज्य के लिये (त्वा) तुझ राज्य विस्तार करने वाले को पवित्र करता हूं वैसे ये लोग भी (त्वा) आप को (शुन्धन्ताम्) पवित्र करें जैसे तू (पितृषदनम्) विद्वानों के घर के समान (असि) है पिता के सदृश सब प्रजा को पाला कर। हे सभापति की नारि स्त्री ! तू भी ऐसा ही किया कर ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्या में अतिविचक्षण पुरुष ईश्वर की सृष्टि में अपनी और औरों की दुष्टता को छुड़ाकर राज्य सेवन करते हैं वे सुखसंयुक्त होते हैं ॥१॥

अग्रेणीरित्यस्य शाकल्य ऋषिः। सविता देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। देवस्त्वेत्यस्य स्वराट् पंक्तिश्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर वह तिलक किया हुआ सभाध्यक्ष कैसे वर्त्ते इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्रेणीरसि स्वावेशऽउन्नेतृणामेतस्य वित्तादधि त्वा स्थास्यति देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु सुपिप्पलाभ्यस्त्वौषधीभ्यः। द्यामग्रेणास्पृक्षऽआन्तरिक्षं मध्येनाप्राः पृथिवीमुपरेणादृꣳहीः ॥२॥

पदार्थः—हे सभाध्यक्ष ! जैसे (अग्रेणीः) पढ़ाने वाला अपने शिष्यों को वा पिता अपने पुत्रों को उन के पठनारंभ से पहिले ही अच्छी शिक्षा से उन्हें सुशील जितेन्द्रिय धार्मिकतायुक्त करता है वैसे हम सभों के लिये तू (असि) है। (उन्नेतृणाम्)

जैसे उत्कर्षता पहुंचाने वालों का राज्य हो वैसे (स्वावेशः) अच्छे गुणों में प्रवेश करने वाले के समान होकर तू (एतस्य) इस राज्य के पालने को (वित्तात्) जान। हे राजन् ! जैसे (त्वा) तुझे सभासद् जन (सुपिप्पलाभ्यः) अच्छे-अच्छे फलों वाली (ओषधीभ्यः) औषधियों से (मध्वा) निष्पन्न किये हुए मधुर गुणों से युक्त रसों से (अनक्तु) सींचें वैसे प्रजाजन भी तुझे सींचें। तू इस राज्य में अपने (अग्रेण) प्रथम यश से (द्याम्) विद्या और राजनीति के प्रकाश को (अस्पृक्षः) स्पर्श कर (मध्यमेन) मध्य अर्थात् तदन्तर बढ़ाए हुए यश से (अन्तरिक्षम्) धर्म के विचार करने के मार्ग को (आप्राः) पूरा कर और (उपरेण) अपने राज्य के नियम से (पृथिवीम्) इस भूमि के राज्य को प्राप्त होकर (अदृंहीः) दृढ़कर बढ़ाता जा और (देवः) समस्त राजाओं का राजा (सविता) सब जगत् को अन्तर्यामीपन से प्रेरणा देने वाला जगदीश्वर (त्वा) तुझ को राजा कर के तेरे पर (स्थास्यति) अधिष्ठाता होकर रहेगा ॥२॥

भावार्थः—प्रजापुरुषों के स्वीकार किये विना राजा राज्य करने को योग्य नहीं होता तथा राजा आदि सभा जिस को आदर से न चाहे वह मन्त्री होने को वा कोई पुरुष अपनी कीर्त्ति की उत्तरोत्तर दृढ़ता के विना सेना का ईश्वर यथायोग्य न्याय से दण्ड करने अर्थात् न्यायाधीश होने और राज्य के मण्डल की ईश्वरता के योग्य नहीं हो सकता ॥२॥

या ते धामानीत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। विष्णुर्देवता। आर्च्युष्णिक् छन्दः। अत्राहेत्यस्य साम्न्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। ब्रह्मवनित्वेत्यस्य निचृत्प्राजापत्या बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर वाणिज्य कर्म्म करने वाले मनुष्य उसको कैसा जानकर आश्रय करते हैं यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

या ते धामान्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गाऽअयासः। अत्राह तदुरुगायस्य विष्णोः परमं पदमवभारि भूरि। ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्य्यूहामि। ब्रह्म दृꣳह क्षत्रं दृꣳहायुर्दृꣳह प्रजां दृꣳह ॥३॥

पदार्थः—हे सभाध्यक्ष ! (या) जिन में (ते) तेरे (धामानि) धाम अर्थात् जिन में प्राणी सुख पाते हों उन स्थानों को हम (गमध्यै) (उश्मसि) प्राप्त होने की इच्छा करते हैं वे स्थान कैसे हैं कि जैसे सूर्य्य का प्रकाश है वैसे (यत्र) जिन में (उरुगायस्य) स्तुति करने के योग्य (विष्णोः) सर्वव्यापक परमेश्वर की (भूरिशृङ्गाः) अत्यन्त प्रकाशित (गावः) किरणें चैतन्यकला (अयासः) फैली हैं, (अत्र) (अह)

इन्हीं में (तत्) उस परमेश्वर का (परमम्) सब प्रकार उत्तम (पदम्) और प्राप्त होने योग्य परमपद विद्वानों ने (सूरि) (अव) (भारि) बहुधा अवधारण किया है इस कारण (त्वा) तुझे (ब्रह्मवनि) परमेश्वर वा वेद का विज्ञान (क्षत्रवनि) राज्य और वीरों की चाहना (रायस्पोषवनि) धन की पुष्टि के विभाग करने वाले आप को मैं (पर्यूहामि) विविध तर्कों से समझाता हूं कि तू (ब्रह्म) परमात्मा और वेद को (दृंह) दृढ़ कर अर्थात् अपने चित्त में स्थिर कर वढ़ (क्षत्रम्) राज्य और धनुर्वेदवेत्ता क्षत्रियों को (दृंह) उन्नति दे (आयुः) अपनी अवस्था को (दृंह) वढ़ा अर्थात् ब्रह्मचर्य्य और राजधर्म से दृढ़ कर तथा (प्रजाम्) अपने संतान वा रक्षा करने योग्य प्रजाजनों को (दृंह) उन्नति दे ॥३॥

भावार्थः—सभाध्यक्ष के रक्षा किये हुए स्थानों की कामना के विना कोई भी पुरुष सुख नहीं पा सकता न कोई जन परमेश्वर का अनादर कर के चक्रवर्त्ती राज्य भोगने के योग्य होता है नहीं कोई भी जन विज्ञान सेना और जीवन अर्थात् अवस्था सन्तान और प्रजा की रक्षा के विना अच्छी उन्नति कर सकता है ॥३॥

विष्णोः कर्म्माणीत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुर्देवता । निचृदार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब सभापति अपने सभासद् आदि को क्या-क्या उपदेश करे यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

विष्णोः कर्म्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥४॥

पदार्थः—हे सभासदो ! जैसे (इन्द्रस्य) परमेश्वर का (युज्यः) सदाचारयुक्त (सखा) मित्र (विष्णोः) उस व्यापक ईश्वर के (कर्माणि) जो संसार का बनाना पालन और संहार करना सत्यगुण हैं उनको देखता हुआ मैं (यतः) जिस ज्ञान से (व्रतानि) अपने मन में सत्यभाषणादि नियमों को (पस्पशे) बांध रहा अर्थात् नियम कर रहा हूँ वैसे उसी ज्ञान से तुम भी परमेश्वर के उत्तम गुणों को (पश्यत) दृढ़ता से देखो कि जिस से राज्यादि कामों में सत्य व्यवहार के करने वाले होओ ॥४॥

भावार्थः—परमेश्वर से प्रीति और सत्याचरण के विना कोई भी मनुष्य ईश्वर के गुण कर्म और स्वभाव को देखने योग्य नहीं हो सकता न वैसे हुए विना राज्यकर्मों को यथार्थ न्याय से सेवन कर सकता है न सत्य धर्माचार से रहित जन राज्य वढ़ाने को कभी समर्थ हो सकता है ॥४॥

तद्विष्णोरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुर्देवता । निचृदार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वर ।।

उक्त मन्त्र के विषय में जो अनुष्ठान कहा है उससे क्या सिद्ध होता है
यह अगले मन्त्र में कहा है ।।

तद्विष्णोः परमं पद५ सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ।।५।।

पदार्थः—हे सभ्यजनो ! जिस पूर्वोक्त कर्म से (सूरयः) स्तुति करने वाले वेदवेत्ता जन (विष्णोः) संसार की उत्पत्ति पालन और संहार करने वाले परमेश्वर के जिस (परमम्) अत्यन्त उत्तम (पदम्) प्राप्त होने योग्य पद को (दिवि) सूर्य के प्रकाश में (आततम्) व्याप्त (चक्षुः) नेत्र के (इव) समान (सदा) सब समय में (पश्यन्ति) देखते हैं (तत्) उस को तुम लोग भी निरन्तर देखो ।।५।।

भावार्थः—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से (पश्यत) इस पद का अनुवर्त्तन किया जाता है और पूर्णोपमालङ्कार है । निर्धूत अर्थात् छूट गये हैं पाप जिन के वे विद्वान् लोग अपनी विद्या के प्रकाश से जैसे ईश्वर के गुणों को देख के सत्य धर्माचारयुक्त होते हैं वैसे हम लोगों को भी होना चाहिये ।।५।।

परिवीरित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । विद्वांसो देवताः । आर्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । दिवः सूनुरसीत्यस्य भुरिक् साम्नी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।।

फिर यह उपासना करने वाला सभाध्यक्ष किस प्रकार का होता है
यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है ।।

परिवीरसि परि त्वा दैवीर्विशो व्ययन्तां परीमं यजमान५ रायो मनुष्याणाम् । दिवः सूनुरस्येष ते पृथिव्याँल्लोकऽआरण्यस्ते पशुः ।।६।।

पदार्थः—हे सभाध्यक्ष राजन् ! तू (परिवीः) सब विद्याओं में अच्छे आप्त होने वाले के समान (असि) है । (त्वाम्) तुझे (दैवीः) विद्वानों के (विशः) सन्तान के समान प्रजा (परि) (व्ययन्ताम्) सर्वव्याप्त अर्थात् सब ठिकाने व्याप्त हुए तेरे कार्यकारी हों । दिवः) प्रकाश के पुञ्ज सूर्य से (सूनुः) उत्पन्न हुए किरण समुदाय के तुल्य तू (असि) है । (ते) तेरा (पृथिव्याम्) पृथिवी में (लोकः) राजधानी का देश हो और (आरण्यः) वनैले सिंहादि दुष्ट पशु तेरे वश्य भी हों ।।६।।

भावार्थः—राज्य का आचरण करते हुए राजा को प्रजा लोग प्राप्त

होकर अपने पदार्थों का कर चुकावें और वह राजा उन प्रजाओं की रक्षा करने के लिये सिंह और शूकर वा अन्य और दुष्ट जीव तथा डाकू चोर उठाईगीरे और गांठ-कटे आदि दुष्ट जनों को दण्ड से वश में कर अपनी प्रजा को यथायोग्य धर्म में प्रवृत्त करें ॥६॥

उपावीरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। त्वष्टा देवता। आर्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर वह प्रजाजनों के प्रति क्या करे और वे प्रजाजन उस राजा के प्रति क्या करें यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

उपावीरस्युप देवान्दैवीर्विशः प्रागुरुशिजो वह्नितमान्। देव त्वष्टर्वसु रम हव्या ते स्वदन्ताम् ॥७॥

पदार्थः—हे देव दिव्यगुणसम्पन्न (त्वष्टः) सब दुःख के छेदन करने वाले सभाध्यक्ष! जिससे तू (उपावीः) शरणागत पालक सदृश (असि) है इसी से (दैवीः) विद्वानों से सम्बन्ध रखने वाली दिव्यगुण सम्पन्न (विशः) प्रजा जैसे (उशिजः) श्रेष्ठ गुण शोभित कामना के योग्य (वह्नितमान्) अतिशय धर्म मार्ग में चलने और चलाने वाले (देवान्) विद्वानों को (उपप्रागुः) प्राप्त हुए वैसे तुझे भी प्राप्त होते हैं जैसे तेरे आश्रय से प्रजा धनाढ्य होके सुखी हो वैसे तू भी प्राप्त हुए प्रजाजनों से सत्कृत होकर (रमस्व) हर्षित हो जैसे तू प्रजा के पदार्थों को भोगता है वैसे प्रजा भी तेरे (हव्या) भोगने योग्य अमूल्य (वसु) धनादि पदार्थों को(स्वदन्ताम्) भोगें ॥७॥

भावार्थः—जैसे गुण के ग्रहण करने वाले उत्तम गुणवान् विद्वान् का सेवन करते हैं वैसे न्याय करने में चतुर राजा का सेवन प्रजाजन करते हैं; इसी से परस्पर की प्रीति से सब की उन्नति होती है ॥७॥

रेवती रमध्वमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। प्राजापत्यानुष्टुप् छन्दः। ऋषभः स्वरः। ऋतस्य त्वेत्यस्य निचृत् प्राजापत्या बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अब पिता आदि रक्षकजन अपने सन्तानों को कैसे पढ़ाने वालों को कैसे दें? और वह उन को कैसे स्वीकार करें? यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

रेवती रमध्वं बृहस्पते धारया वसूनि। ऋतस्य त्वा देवहविः पाशेन प्रतिमुञ्चामि धर्षा मानुषः ॥८॥

पदार्थः—हे (रेवतीः) अच्छे धन वाले सन्तानो! प्रजाजनो! तुम विद्या और अच्छी शिक्षा में (रमध्वम्) रमो। हे (बृहस्पते) वेदवाणी पालने वाले विद्वन्! आप

(ऋतस्य) सत्य न्याय व्यवहार से प्राप्त (वस्तूनि) धन अर्थात् हम लोगों के दिये द्रव्य आदि पदार्थों को (धारय) स्वीकार कीजिये [अब अध्यापक का उपदेश शिष्य के लिये है] हे राजन् ! वा प्रजा पुरुष ! (मानुषः) सर्वशास्त्र का विचार करने वाला मैं (पाशेन) अविद्या वन्धन से तुझे (प्रति मुञ्चामि) छुटाता हूं तू विद्या और अच्छी शिक्षाओं में धृष्ट हो ॥८॥

भावार्थः—विद्वानों को अपनी शिक्षा से कुमार ब्रह्मचारी और कुमारी ब्रह्मचारिणियों को परमेश्वर से ले के पृथिवी पर्य्यन्त पदार्थों का वोध कराना चाहिये कि जिससे वे मूर्खपनरूपी वन्धन को छोड़ के सदा सुखी हों ॥८॥

देवस्य त्वेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । सविता अश्विनौ पूषा च देवताः । प्राजापत्या बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । अग्नीषोमाभ्यामित्यस्य पङ्क्तिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह गुरु शिष्य को क्या उपदेश करे यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं नियुनज्मि । अद्भ्यस्त्वौषधीभ्योऽनु त्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः । अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥९॥

पदार्थः—हे शिष्य ! मैं (सवितुः) समस्त ऐश्वर्ययुक्त (देवस्य) वेदविद्या प्रकाश करने वाले परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए इस जगत् में (अश्विनोः) सूर्य्य और चन्द्रमा के (बाहुभ्याम्) गुणों से वा (पूष्णः) पृथिवी के (हस्ताभ्याम्) हाथों के समान धारण और आकर्षण गुणों से (त्वाम्) तुझे (आददे) स्वीकार करता हूं तथा (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और सोम के तेज और शान्ति गुणों से (जुष्टम्) प्रीति करते हुए (त्वा) तुझ को जो ब्रह्मचर्य धर्म के अनुकूल जल और ओषधि हैं उन (अद्भ्यः) जल और (ओषधीभ्यः) गोधूम आदि अन्नादि पदार्थों से (नियुनज्मि) नियुक्त करता हूं । तुझे मेरे समीप रहने के लिये तेरी (माता) जननी (अनु) (मन्यताम्) अनुमोदित करे (पिता) पिता अनुमोदित करे (सगर्भ्यः) सहोदर (भ्राता) भाई (अनु) अनुमोदित करे (सखा) मित्र (अनु) अनुमोदित करे और (सयूथ्यः) तेरे सहवासी (अनु) अनुमोदित करें (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और सोम के तेज और शान्ति गुणों में (जुष्टम्) प्रीति करते हुए (त्वा) तुझ को (प्र उक्षामि) उन्हीं गुणों से ब्रह्मचर्य्य के नियम पालने के लिये अभिषिक्त करता हूं ॥९॥

भावार्थः—इस संसार में माता पिता वन्धुवर्ग और मित्रवर्गों को

चाहिये कि अपने सन्तान आदि को अच्छी शिक्षा देकर ब्रह्मचर्य करावें जिस से वे गुणवान् हों ॥९॥

अपां पेरुरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । आपो देवताः । प्राजापत्या बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । सन्त इत्यस्य निचृदार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब यज्ञोपवीत होने के पश्चात् शिष्य को अत्यावश्यक है कि विद्या, उत्तम शिक्षा ग्रहण और अग्निहोत्रादिक का अनुष्ठान करे ऐसा उपदेश गुरु किया करे यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

अपां पेरुरस्यापो देवीः स्वदन्तु स्वात्तं चित्सद्देवहविः । सं ते प्राणो वातेन गच्छताᳬ समङ्गानि यजत्रैः सं यज्ञपतिराशिषा ॥१०॥

पदार्थः—हे शिष्य ! तू (अपाम्) जल आदि पदार्थों का (पेरुः) रक्षा करने वाला (असि) है, संसारस्थ जीव तेरे यज्ञ से शुद्ध हुए (देवीः) दिव्य सुख देने वाले (आपः) जलों को (चित्) और (स्वात्तम्) धर्मयुक्त व्यवहार से प्राप्त हुए पदार्थों को (देवहविः) विद्वानों के भोगने के समान (संस्वदन्तु) अच्छी तरह से भोगें (आशिषा) मेरे आशीर्वाद से (ते) तेरे (अङ्गानि) शिर आदि अवयव (यजत्रैः) यज्ञ कराने वालों के साथ ((सम्) सम्यक् नियुक्त हों और (प्राण.) प्राण (वातेन) पवित्र वायु के संग (सङ्गच्छताम्) उत्तमता से रमण करे और तू (यज्ञपतिः:) विद्याप्रचाररूपी यज्ञ का पालन करने हारा हो ॥१०॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । जो यज्ञ में दी हुई आहुति हैं वे सूर्य के उपस्थित रहती हैं अर्थात् सूर्य की आकर्षण शक्ति से परमाणुरूप होकर सब पदार्थ पृथिवी के ऊपर आकाश में हैं उसी पृथिवी का जल ऊपर खिचकर वर्षा होती है उस वर्षा से अन्न और अन्न से सब जीवों को सुख होता है इस परम्परा सम्बन्ध से यज्ञशोधित जल और होम किये द्रव्य को सब जीव भोगते हैं ॥१०॥

घृतेनाक्तावित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । वातो देवता । भुरिगार्च्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब यज्ञ करने और कराने वालों के कर्त्तव्य काम का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

घृतेनाक्तौ पशूँस्त्रायेथाᳬ रेवति यजमाने प्रियं धाऽआविश । उरोरन्तरिक्षात्सजूर्देवेन वातेनास्य हविषस्त्मना यज समस्य तन्वा

भव। वर्षो वर्षीयसी यज्ञे यज्ञपतिं धाः स्वाहा देवेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥११॥

पदार्थः—हे (घृतेन, अक्तौ) घृतप्रसक्त अर्थात् घृत चाहने और यज्ञ के कराने हारो ! तुम (पशून्) गौ आदि पशुओं को (त्रायेथाम्) पालो, तुम एक-एक जल (देवेन) सर्वंगत (वातेन) पवन से (सजूः) समान प्रीति करते हुए समान (उरोः) विस्तृत (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से उत्पन्न हुए (प्रियम्) प्रिय सुख को (रेवति) अच्छे ऐश्वर्ययुक्त (यजमाने) यज्ञ करने वाले धनी पुरुष में (धाः) स्थापन करो तथा (आविश) उस के अभिप्राय को प्राप्त होओ और (अस्य) इस के (हविषः) होम के योग्य पदार्थ को (त्मना) आप ही निष्पादन किये हुए के समान (यज) अग्नि में होमो अर्थात् यज्ञ की किसी क्रिया का विपरीत भाव न करो और (अस्य) इसके (तन्वा) शरीर के साथ (सम्) (भव) एकीभाव रक्खो किन्तु विरोध से द्विधा आचरण मत करो। हे (वर्षो) यज्ञकर्म से सर्व सुख के पहुंचाने वालो ! (देवेभ्यः) (स्वाहा) (देवेभ्यः) (स्वाहा) सत्कर्म के अनुष्ठान से प्रकाशित धर्मिष्ठ ज्ञानी पुरुष जो कि यज्ञ देखने की इच्छा करते हुए वार वार यज्ञ में आते हैं उन विद्वानों के लिये अच्छे सत्कार कराने वाली वाणियों का उच्चारण करते हुए यज्ञपति को (वर्षीयसि) सर्व सुख वर्षाने वाले यज्ञ में (धाः) अभियुक्त करो ॥११॥

भावार्थः—यज्ञ के लिये घृत आदि पदार्थ चाहने वाले मनुष्यों को गाय आदि पशु रखने चाहियें और घृतादि अच्छे अच्छे पदार्थों से अग्निहोत्र से लेकर उत्तम उत्तम यज्ञों से जल और पवन की शुद्धि कर सब प्राणियों को सुख उत्पन्न करना चाहिये ॥११॥

माहिर्भूरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। विद्वांसो देवताः। भुरिक् प्राजापत्यानुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

वह विद्वान् कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

माहिर्भूर्मा पृदाकुर्नमस्तऽआतानानर्वा प्रेहि। घृतस्य कुल्याऽउपऽऋतस्य पथ्याऽअनु ॥१२॥

पदार्थः—हे (आतान) अच्छे प्रकार सुख के विस्तार करने वाले विद्वान् ! तू (मा) मत (अहिः) सर्प के समान कुटिलमार्गगामी और (मा) मत (पृदाकुः) मूर्खजन के समान अभिमानी वा व्याघ्र के समान हिंसा करने वाला (भूः) हो (ते) (नमः) सब जगह तेरे सुख के लिये अन्न आदि पदार्थ पहले ही प्रवृत्त हो रहे हैं और (अनर्वा) अश्व आदि सवारी के विना निराश्रय पुरुष जैसे (घृतस्य) जल की

(कुल्याः) बड़ी धाराओं को प्राप्त हो वैसे (ऋतस्य) सत्य के (पथ्याः) मार्गों को प्राप्त हो ॥१२॥

भावार्थः—किसी मनुष्य को कुटिलगामी सर्प आदि दुष्ट जीवों के समान धर्ममार्ग में कुटिल न होना चाहिये किन्तु सर्वदा सरल भाव से ही रहना चाहिये ॥१२॥

देवीराप इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । आपो देवताः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब ब्रह्मचारी बालक और ब्रह्मचारिणी कन्याओं को गुरुपत्नियों का कैसे मान करना चाहिये यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवीरापः शुद्धा वोड्ढ्वꣳ सुपरिविष्टा देवेषु सुपरिविष्टा वयं परिवेष्टारो भूयास्म ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे कुमारियो ! तुम जैसे (आपः) श्रेष्ठगुणों में रमण करने वाली (शुद्धाः) सत्कर्माऽनुष्ठान से पवित्र (देवीः) विद्या प्रकाशवती विदुषी स्त्रीजन (देवेषु) श्रेष्ठ विद्वान् पतियों के निमित्त (सुपरिविष्टाः) और उन की सेवा करने को सन्मुख प्रवृत्त होकर अपने समान पतियों को (वोढ्वम्) प्राप्त होती हैं और वे विद्वान् पतिजन उन स्त्रियों को प्राप्त होते हैं वैसे तुम हो और हम भी (परिवेष्टा) उस कर्म की योग्यता को (भूयास्म) पहुँचें ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे विदुषी अर्थात् विद्वानों की स्त्री पातिव्रत धर्म में तत्पर रहती हैं वैसे ब्रह्मचारिणी कन्या भी उन के गुण और स्वभाव वाली हों और ब्रह्मचारी भी गुरुजनों की शिक्षा से स्त्री और पुरुष आदि की रक्षा करने में तत्पर हों ॥१३॥

वाचं त इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विद्वांसो देवताः । भुरिगार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब वे गुरुपत्नी और गुरुजन यथायोग्य शिक्षा से अपने-अपने विद्यार्थियों को अच्छे-अच्छे गुणों में कैसे प्रकाशित करते हैं यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

वाचं ते शुन्धामि प्राणं ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रं ते शुन्धामि नाभिं ते शुन्धामि मेढ्रं ते शुन्धामि पायुं ते शुन्धामि चरित्राँस्ते शुन्धामि ॥१४॥

पदार्थः—हे शिष्य ! मैं विविध शिक्षाओं से (ते) तेरी (वाचम्) जिस से

बोलता है उस वाणी को (शुन्धामि) शुद्ध अर्थात् सद्धर्मानुकूल करता हूँ (ते) तेरे (चक्षुः) जिस से देखता है उस नेत्र को (शुन्धामि) शुद्ध करता हूँ (ते) तेरी (नाभिम्) जिस से नाड़ी आदि बांधे जाते हैं उस नाभि को (शुन्धामि) पवित्र करता हूं (ते) तेरे (मेढ्रम्) जिससे मूत्रोत्सर्गादि किये जाते हैं उस लिङ्ग को (शुन्धामि) पवित्र करता हूँ (ते) तेरे (पायुम्) जिस से रक्षा की जाती है उस गुदेन्द्रिय को (शुन्धामि) पवित्र करता हूं (चरित्रान्) समस्त व्यवहारों को (शुन्धामि) पवित्र शुद्ध अर्थात् धर्म के अनुकूल करता हूँ तथा गुरुपत्नी पक्ष में सर्वत्र "करती हूँ" यह योजना करनी चाहिये ॥१४॥

भावार्थः—गुरु और गुरुपत्नियों को चाहिये कि वेद और उपवेद तथा वेद के अङ्ग और उपाङ्गों की शिक्षा से देह इन्द्रिय अन्तःकरण और मन की शुद्धि शरीर की पुष्टि तथा प्राण की संतुष्टि देकर समस्त कुमार और कुमारियों को अच्छे-अच्छे गुणों में प्रवृत्त करावें ॥१४॥

मनस्त इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। विद्वांसो देवताः। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर भी प्रकारान्तर से अगले मन्त्र में उक्त अर्थ का प्रकाश किया है॥

मनस्तऽआप्यायतां वाक्तऽआप्यायतां प्राणस्तऽआप्यायतां चक्षुस्तऽआप्यायताᳬ श्रोत्रं तऽआप्यायताम्। यत्ते क्रूरं यदास्थितं तत्तऽआप्यायतां निष्ट्यायतां तत्ते शुध्यतु शमहोभ्यः। ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनᳬ हिᳬसीः॥१५॥

पदार्थः—हे शिष्य! मेरी शिक्षा से (ते) तेरा (मनः) मन (आप्यायताम्) पर्य्याप्त गुणयुक्त हो (ते) तेरा (प्राणः) प्राण (आप्यायताम्) बलादि गुणयुक्त हो (ते) तेरी (चक्षुः) दृष्टि (आप्यायताम्) निर्मल हो (ते) तेरे (श्रोत्रम्) कर्ण (आप्यायताम्) सद्गुणव्याप्त हों (ते) तेरा (यत्) जो (क्रूरम्) दुष्ट व्यवहार है वह (निः) (स्त्यायताम्) दूर हो और (यत्) जो (ते) तेरा (आस्थितम्) निश्चय है वह (आप्यायताम्) पूरा हो इस प्रकार से (ते) तेरा समस्त व्यवहार (शुध्यतु) शुद्ध हो और (अहोभ्यः) प्रतिदिन तेरे लिये (शम्) सुख हो। हे (ओषधे) प्रवर अध्यापक! आप (एनम्) इस शिष्य की (त्रायस्व) रक्षा कीजिये और (मा हिंसीः) व्यर्थ ताड़ना मत कीजिये। हे (स्वधिते) प्रशस्ताध्यापिके! तू इस कुमारिका शिष्या की (त्रायस्व) रक्षा कर और इस को अयोग्य ताड़ना मत दे॥१५॥

भावार्थः—सत्कर्म करने से सब की उन्नति होती है इस से सब

मनुष्यों को चाहिये कि सुशिक्षा पाकर समस्त सत्कर्मों का अनुष्ठान करें इसी से अध्यापक जन गुण ग्रहण कराने ही के लिये शिष्यों को ताड़ना देते हैं वह उनकी ताड़ना अत्यन्त सुख की करने वाली होती है। स्त्री और पुरुष इस प्रकार उपदेश करें कि हे सर्वोत्तम अध्यापक! यह आप का विद्यार्थी जैसे शीघ्र विद्वान् हो जाय वैसा प्रयत्न कीजिये। हे प्रिये! यह कन्या जिस प्रकार अतिशीघ्र विद्यायुक्त हो वैसा काम कर ॥१५॥

रक्षसां भाग इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। द्यावापृथिव्यौ देवते। ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अब शिष्यवर्गों में से प्रति शिष्य को यथायोग्य उपदेश करना अगले मन्त्र में कहा है॥

रक्षसां भागोऽसि निरस्तꣳ रक्षऽइदमहꣳ रक्षोऽभितिष्ठामीदमहꣳ रक्षोऽववाधऽइदमहꣳ रक्षोऽधमं तमो नयामि। घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णुवाथां वायो वेः स्तोकानामग्निराज्यस्य वेतु स्वाहा स्वाहाकृतेऽऊर्ध्वनभसं मारुतं गच्छतम् ॥१६॥

पदार्थः—हे दुष्टकर्म करनेवाले जन! तू (रक्षसाम्) दुष्टों अर्थात् परार्थ नाश कर अपना अभीष्ट करने वालों का (भागः) भाग (असि) है इस कारण (रक्षः) राक्षस स्वभावी तू (निरस्तम्) निकल जा (अहम्) मैं (इदम्) ऐसे (रक्षः) स्वार्थसाधक को (अभितिष्ठामि) तिरस्कार करने के लिये सन्मुख होता हूं और केवल सन्मुख ही नहीं किन्तु (अहम्) मैं (इदम्) ऐसे (रक्षः) दुष्ट जन को (अवबाधे) अत्यन्त तिरस्कार के साथ पीटता हूँ जिस से वह फिर सामने न हो और (अहम्) मैं (इदम्) ऐसे (रक्षः) दुष्ट जन को (अधमम्) दुःसह (तमः) दुःख को (नयामि) पहुँचाता हूँ। अब श्रेष्ठ गुणग्राही शिष्य के लिये उपदेश है। हे वायो! गुणग्राहक सत् असत् व्यवहार की विवेचना करने वाला तू (स्तोकानाम्) सूक्ष्म से सूक्ष्म व्यवहारों को (वेः) जान और तेरे यज्ञशोधित जल से (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि (प्रोर्णुवाथाम्) अच्छे प्रकार आच्छादित हों (अग्निः) समस्त विद्यायुक्त विद्वान् तेरे घृत आदि पदार्थ के (स्वाहा) अच्छे होम किये हुए को (वेतु) जाने तथा (स्वाहाकृते) हवन किये हुए स्नेहद्रव्य को प्राप्त पूर्वोक्त जो सूर्य और भूमि हैं वे (ऊर्ध्वनभसम्) तेरे यज्ञ से शुद्ध हुए जल को ऊपर पहुँचाने वाले (मारुतम्) पवन को (गच्छतम्) प्राप्त हों॥१६॥

भावार्थः—बुद्धिमान् श्रेष्ठ और अनिष्ट के विवेक करने वाले विद्वान् लोग अपने शिष्यों में यथायोग्य शिक्षा विधान करते हैं। यज्ञकर्म से जल और

पवन की शुद्धि उस की शुद्धि से वर्षा और उस से सब प्राणियों को सुख उत्पन्न होता है ॥१६॥

इदमाप इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आपो देवताः। निचृद् ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब निर्दोष जल से क्या संभावना करनी चाहिये यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

इदमापः प्रवहतावद्यं च मलं च यत्। यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपेऽअभीरुणम्। आपो मा तस्मादेनसः पवमानश्च मुञ्चतु ॥१७॥

पदार्थः—भो (आपः) सर्वविद्याव्यापक विद्वान् लोगो! आप जैसे (आपः) जल शुद्धि करते हैं वैसे मेरा (यत्) जो (अवद्यम्) अकथनीय निंद्यकर्म (च) और विकार तथा (यत्) जो (मलम्) अविद्यारूपी मल है (इदम्) इस को (प्रवहत) बहाइये अर्थात् दूर कीजिये (च) और (यत्) जो मैं (अनृतम्) झूंठमूंठ किसी से (दुद्रोह) द्रोह करता होऊं (च) और (यत्) जो (अभीरुणम्) निर्भय निरपराधी पुरुष को (शेपे) उलाहने देता हूं (तस्मात्) उस उक्त (एनसः) पाप से (मा) मुझे अलग रक्खो (च) और जैसे (पवमानः) पवित्र व्यवहार (मा) मुझ को पाप व्यवहार से अलग रखता है वैसे (च) अन्य मनुष्यों को भी रक्खे ॥१७॥

भावार्थः—जैसे जल सांसारिक पदार्थों का शुद्धि का निदान है वैसे विद्वान् लोग सुधार का निदान हैं इस से वे अच्छे कामों को करें। मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की उपासना और विद्वानों के संग से दुष्टाचरणों को छोड़ सदा धर्म में प्रवृत्त रहें ॥१७॥

सं त इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। अग्निर्देवता। प्राजापत्यानुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। रेडसीत्यस्य दैवीपङ्क्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः॥

अब रण में युद्ध करने वाला शिष्य कैसा हो यह अगले मन्त्र में कहा है॥

सं ते मनो मनसा सं प्राणः प्राणेन गच्छताम्। रेडस्यग्निष्ट्वा श्रीणात्वापस्त्वा समरिणन्वातस्य त्वा ध्राज्यै पूष्णो रꣳह्याऽऊष्मणो व्यथिषत्प्रयुतं द्वेषः ॥१८॥

पदार्थः—हे युद्धशील शूरवीर! संग्राम में (ते) तेरा (मनः) मन (मनसा) विद्याबल और (प्राणः) प्राण (प्राणेन) प्राण के साथ (सम्) (गच्छताम्) संगत हो।

हे वीर ! तू (रेट्) शत्रुओं को मारने वाला (असि) है (त्वा) तुझे (अग्निः) युद्ध से उत्पन्न हुए क्रोध का अग्नि (श्रीणातु) अच्छे पचावे तू (प्रयुतम्) करोड़ों प्रकार के शत्रुओं की सेना को प्राप्त होता है तुझ को तज्जन्य (ऊष्मणः) गरमी का (द्वेषः) द्वेष मत (व्यथिषत्) अत्यन्त पीड़ायुक्त करे जिस से (वातस्य) (ध्राज्यै) पवन की गति के तुल्य गति के लिये वा (पूष्णः) पुष्टिकारक सूर्य के (रंह्यै) वेग के तुल्य वेग के लिये अर्थात् यथार्थता से युद्ध करने में प्रवृत्ति होने के लिये (आपः) अच्छे-अच्छे जल (सम्) (अरिणन्) अच्छे प्रकार प्राप्त हों ॥१८॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अपने वल के वढ़ाने वाले अन्न जल और शस्त्र अस्त्र आदि पदार्थों को इकट्ठा करके शत्रुओं को मार कर संग्राम जीतें ॥१८॥

घृतं घृतपावान इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर युद्धकर्म में क्या होना चाहिये यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

घृतं घृतपावानः पिवत वसां वसापावानः पिवतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा । दिशः प्रदिशऽआदिशो विदिशऽ उद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा ॥१९॥

पदार्थः—हे (घृतपावानः) जल के पीने वाले वीर पुरुषो ! तुम (घृतम्) अमृतात्मक जल को (पिवत) पिओ । हे (वसापावानः) नीति के पालने वाले वीरो ! तुम (वसाम्) जो वीर रस की वाणी अर्थात् शत्रुओं को स्तंभन करने वाली है उस को (पिवत) पिओ । हे सेनाध्यक्ष चक्रव्यूहादि सेनारचक प्रत्येक वीर को तू जिस से (अन्तरिक्षस्य) आकाश की (हविः) रुकावट अर्थात् युद्ध में वहुतों के बीच शत्रुओं को घेरना (असि) है उस (स्वाहा) शोभन वाणी से जो (दिशः) पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण (प्रदिशः) आग्नेयी नैऋ ति वायवी और ऐशानी उपदिशा (आदिशः) आमने सामने मुहाने की दिशा (विदिशा) पीछे की दिशा और (उद्दिशः) जिस ओर शत्रु लक्षित हो वे दिशा हैं उन सब (दिग्भ्यः) दिशाओं से यथायोग्य वीरों को बांट के शत्रुओं को जीतो ॥१९॥

भावार्थः—सेनाध्यक्षों को उचित है कि अपनी-अपनी सेना के वीरों को अत्यन्त पुष्ट कर युद्ध के समय चक्रव्यूह, श्येनव्यूह तथा शकटव्यूह आदि रचनादि युद्ध कर्मों से सब दिशाओं में अपनी सेनाओं के भागों को स्थापन कर सब प्रकार से शत्रुओं को घेर घार जीतकर न्याय से प्रजापालन करें ॥१९॥

ऐन्द्रः प्राण इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। त्वष्टा देवता। ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर संग्राम में वीर पुरुष आपस में कैसे वर्तें यह उपदेश
अगले मन्त्र में किया है॥

ऐन्द्रः प्राणोऽअङ्गेऽअङ्गे निदीध्यदैन्द्रऽउदानोऽअङ्गेऽअङ्गे निधीतः। देव त्वष्टर्भूरि ते सᳬंसमेतु सलक्ष्मा यद्विषुरूपं भवाति। देवत्रा यन्तमवसे सखायोऽनु त्वा माता पितरो मदन्तु ॥२०॥

पदार्थः—हे (त्वष्टः) शत्रुबलविदारक (देव) दिव्यविद्यासम्पन्न सेनापति! आप (अवसे) रक्षा आदि के लिये (अङ्गे अङ्गे) जैसे अङ्ग अङ्ग में (ऐन्द्रः) इन्द्र अर्थात् जीव जिसका देवता है वह शरीर में ठहरने वाला प्राणवायु सब वायुओं को तिरस्कार करता हुआ आप ही प्रकाशित होता है वैसे आप संग्राम में सब शत्रुओं का तिरस्कार करते हुए (निदीध्यत्) प्रकाशित हूजिये अथवा (अङ्गे अङ्गे) जैसे अंग-अंग में (उदानः) अन्न आदि पदार्थों को ऊर्ध्व पहुंचाने वाला उदानवायु प्रवृत्त है वैसे अपने विभव से सब वीरों को उन्नति देते हुए संग्राम में (निधीतः) निरन्तर स्थापित किये हुए के समान प्रकाशित हूजिये (यत्) जो (ते) आप का (विषुरूपम्) विविध रूप (सलक्ष्म) परस्पर युद्ध का लक्षण (भवाति) हो वह (संग्रामे) संग्राम में (भूरि) विस्तार से (संसम्) (एतु) प्रवृत्त हो। हे सेनाध्यक्ष! तेरी रक्षा के लिये सब शूरवीर पुरुष (सखायः) मित्र हो के वर्तें (माता) माता (पितरः) पिता, चाचा, ताऊ, भृत्य और शुभचिन्तक (देवत्रा) देवों अर्थात् विद्वानों, धर्मयुक्त युद्ध और व्यवहार को (यंतम्) प्राप्त होते हुए (त्वा) तेरा (अनुमदन्तु) अनुमोदन करें ॥२०॥

भावार्थः—सेनापति सब प्राणियों का मित्र भाव वर्त्तने वाला जैसे प्रत्येक अङ्ग में प्राण और उदान प्रवर्त्तमान हैं, वैसे संग्राम में विचरता हुआ सेना और प्रजापुरुषों को हर्षित करके शत्रुओं को जीते ॥२०॥

समुद्रं गच्छेत्यादेर्दीर्घतमा ऋषिः। सेनापतिर्देवता। याजुष्य उष्णिषश्छन्दांसि। ऋषभः स्वरः॥

अब राज्यकर्म करने योग्य शिष्य को गुरु क्या-क्या उपदेश करे
यह अगले मन्त्र में कहा है॥

समुद्रं गच्छ स्वाहाऽन्तरिक्षं गच्छ स्वाहा देवᳬं सवितारं गच्छ स्वाहा। मित्रावरुणौ गच्छ स्वाहाऽहोरात्रे गच्छ स्वाहा छन्दांᳬसि

गच्छ स्वाहा द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा यज्ञं गच्छ स्वाहा सोमं गच्छ स्वाहा दिव्यं नभो गच्छ स्वाहाग्निं वैश्वानरं गच्छ स्वाहा मनो मे हार्दि यच्छ दिवं ते धूमो गच्छतु स्वर्ज्योतिः पृथिवीं भस्मना पृण स्वाहा ॥२१॥

पदार्थः—हे धर्मादि राज्यकर्म करने योग्य शिष्य ! तू (स्वाहा) बड़े-बड़े अश्वतरी नाव अर्थात् धूम्रांकप आदि बनाने की विद्या से नौकादि यान पर बैठ (समुद्रम्) समुद्र को (गच्छ) जा (स्वाहा) खगोलप्रकाश करने वाली विद्या से सिद्ध किये हुए विमानादि यानों से (अन्तरिक्षम्) आकाश को (गच्छ) जा (स्वाहा) वेद-वाणी से (देवम्) प्रकाशमान (सवितारम्) सब को उत्पन्न करने वाले परमेश्वर को (गच्छ) जान (स्वाहा) वेद और सज्जनों के सङ्ग से शुद्ध संस्कार को प्राप्त हुई वाणी से (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान को (गच्छ) जान (स्वाहा) ज्योतिषविद्या से (अहोरात्रे) दिन और रात्रि वा उन के गुणों को (गच्छ) जान (स्वाहा) वेदाङ्ग विज्ञानसहित वाणी से (छन्दांसि) ऋग्यजुः साम और अथर्व इन चारों वेदों को (गच्छ) अच्छे प्रकार से जान (स्वाहा) भूमियान आकाश मार्ग विमान और भूगोल वा भूगर्भ आदि यान बनाने की विद्या से (द्यावापृथिवी) भूमि और सूर्यप्रकाशस्थ अभीष्ट देश देशान्तरों को (गच्छ) जान और प्राप्त हो (स्वाहा) संस्कृत वाणी से (यज्ञम्) अग्निहोत्र कारीगरी और राजनीति आदि यज्ञ को (गच्छ) प्राप्त हो (स्वाहा) वैद्यक विद्या से (सोमम्) ओषधिसमूह अर्थात् सोमलतादि को (गच्छ) जान (स्वाहा) जल के गुण और अवगुणों को बोध कराने वाली विद्या से (दिव्यम्) व्यवहार में लाने योग्य पवित्र (नभः) जल को (गच्छ) जान और (स्वाहा) बिजुली आग्नेया-स्त्रादि तारबर्की तथा प्रसिद्ध सब कलायंत्रों को प्रकाशित करने वाली विद्या से (अग्निम्) विद्युत् रूप अग्नि को (गच्छ) अच्छी प्रकार जान और (मे) मेरे (मनः) मन को (हार्दि) प्रीतियुक्त (यच्छ) सत्यधर्म में स्थित कर अर्थात् मेरे उपदेश के अनुकूल वर्त्ताव वर्त्त और (ते) तेरे (धूमः) कलाओं और यज्ञ के अग्नि का धूंआं (दिवम्) सूर्य्यप्रकाश को तथा (ज्योतिः) उस की लपट (स्वः) अन्तरिक्ष को (गच्छतु) प्राप्त हो और तू यन्त्रकला अग्नि में (स्वाहा) काष्ठ आदि पदार्थों को भस्म कर उस (भस्मना) भस्म से (पृथिवीम्) पृथिवी को (आपृण) ढांप दे ॥२१॥

भावार्थः—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष राज्य और वनिज व्यापार चाहने वाले पुरुष भूमियान, अन्तरिक्षयान और आकाशमार्ग में जाने आने के

विमान आदि रथ वा नाना प्रकार के कलायन्त्रों को बनाकर तथा सब सामग्री को जोड़ कर धन और राज्य का उपार्जन करें ॥२१॥

माप इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । वरुणो देवता । ब्राह्मी स्वराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । सुमित्रिया न इत्यस्य विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब वनिजव्यापार करने के लिये राज्यप्रबन्ध अगले मन्त्र में कहा है ॥

मापो मौषधीर्हिꣳसीर्धाम्नोधाम्नो राजँस्ततो वरुण नो मुञ्च । यदाहुरघ्न्याऽइति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च । सुमित्रिया नऽआपऽओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥२२॥

पदार्थः — हे (राजन्) सभापति ! आप अपने प्रत्येक स्थानों में (आपः) जल और (ओषधीः) अन्न पान पदार्थ तथा किराने आदि बनज के पदार्थों को (मा) मत (हिंसीः) नष्ट करो अर्थात् प्रत्येक जगह हम लोगों को सब चहिते पदार्थ मिलते रहें न केवल यही करो किन्तु (ततः) उस (धाम्नः धाम्नः) स्थान स्थान से (नः) हम लोगों को (मा) मत (मुञ्च) त्यागो । हे (वरुण) न्याय करने वाले सभापति ! किये हुए न्याय में (अघ्न्याः) न मारने योग्य गौ आदि पशुओं की शपथ है (इति) इस प्रकार जो आप कहते हैं और हम लोग भी (शपामहे) शपथ करते हैं आप भी उस प्रतिज्ञा को मत छोड़िये और हम लोग भी न छोड़ेंगे । हे वरुण ! आपके राज्य में (नः) हम लोगों को (आपः) जल और ओषधियां (सुमित्रियाः) श्रेष्ठमित्र के तुल्य (सन्तु) हों तथा (यः) जो (अस्मान्) हम लोगों से (द्वेष्टि) वैर रखता है (च) और (वयम्) हम लोग (यम्) जिससे (द्विष्मः) वैर करते हैं (तस्मै) उस के लिये वे ओषधियां (दुर्मित्रियाः) दुःख देने वाले शत्रु के तुल्य (सन्तु) हों ॥२२॥

भावार्थः — राजा और राजाओं के कामदार लोग अनीति से प्रजाजनों का धन न लेवें किन्तु राज्य-पालन के लिये राजपुरुष प्रतिज्ञा करें कि हम लोग अन्याय न करेंगे अर्थात् हम सर्वदा तुम्हारी रक्षा और डाँकू चोर लम्पट लवाड़ कपटी कुमार्गी अन्यायी और कुकर्मियों को निरन्तर दण्ड देवेंगे ॥२२॥

हविष्मतीरित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अब्यज्ञसूर्या देवताः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर परस्पर मिल कर राजा और प्रजा किससे क्या २ करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

हविष्मतीरिमाऽआपो हविष्माँ२ऽआविवासति । हविष्मान्देवोऽअध्वरो हविष्माँ२ऽअस्तु सूर्यः ॥२३॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! तुम उन कामों को किया करो कि जिन से (इमाः) ये (आपः) जल (हविष्मतीः) अच्छे अच्छे दान और आदान क्रिया शुद्धि और सुख देने वाले हों अर्थात् जिन से नाना प्रकार का उपकार दिया लिया जाय (हविष्मान्) पवन उपकार अनुपकार को (आ) अच्छे प्रकार (विवासति) प्राप्त होता है (देवः) सुख का देने वाला (अध्वरः) यज्ञ भी (हविष्मान्) परमानन्दप्रद (सूर्यः) तथा सूर्यलोक भी (हविष्मान्) सुगन्धादियुक्त होके सुखदायक (अस्तु) हो ॥२३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जिस वायु जल के संयोग से अनेक सुख सिद्ध किये जाते हैं, जिन से देश देशान्तरों में जाने से उत्तम वस्तुओं का पहुँचाना होता है उन अग्नि जल आदि पदार्थों से उक्त काम को क्रियाओं में चतुर ही पुरुष कर सकता है और जो नाना प्रकार की कारीगरी आदि अनेक क्रियाओं का प्रकाश करने वाला है वही यज्ञ वर्षा आदि उत्तम उत्तम सुख का करने वाला होता है ॥२३॥

अग्नेर्वं इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । देवता आर्ची त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । अमूर्य्येत्यस्य त्रिपाद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब गुरुपत्नी ब्रह्मचर्य्य के अनुकूल जो कन्याजन हैं उन को क्या २ उपदेश करें यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्नेर्वोऽपन्नगृहस्य सदसि सादयामीन्द्राग्न्योर्भागधेयी स्थ मित्रावरुणयोर्भागधेयी स्थ विश्वेषां देवानां भागधेयी स्थ । अमूर्याऽउप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥२४॥

पदार्थः—हे ब्रह्मचारिणी कन्याओ ! (अमूः) वे (याः) जो स्वयंवर विवाह से पतियों को स्वीकार किये हुए हैं उन के समान जो (इन्द्राग्न्योः) सूर्य और बिजुली के गुणों को (भागधेयीः) अलग अलग जानने वाली (स्थ) हैं (मित्रावरुणयोः) प्राण और उदान के गुणों को (भागधेयीः) अलग अलग जानने वाली (स्थ) हैं (विश्वेषाम्) विद्वान् और पृथिवी आदि पदार्थों के (भागधेयीः) सेवने वाली (स्थ) हैं उन (वः) तुम सभों को (अपन्नगृहस्य) जिसको गृहकृत्य नहीं प्राप्त हुआ है उस ब्रह्मचर्य धर्मानुष्ठान करने वाले और (अग्नेः) सब विद्यादि गुणों से प्रकाशित उत्तम ब्रह्मचारी

की (सदसि) सभा में मैं (सादयामि) स्थापित करता हूँ और जो (याः) (उप) (सूर्ये) सूर्यलोक गुणों में (उप) उपस्थित होती हैं (वा) अथवा (याभिः) जिन के (सह) साथ (सूर्य) सूर्यलोक वर्त्तमान जो सूर्य के गुणों में अति चतुर हैं (ताः) वे सब (नः) हमारे (अध्वरम्) घर के काम काज को विवाह करके (हिन्वन्तु) बढ़ावें ।।२४।।

भावार्थः—ब्रह्मचर्य धर्म को पालन करने वाली कन्याओं को अविवाहित ब्रह्मचारी और अपने तुल्य गुण कर्म स्वभावयुक्त पुरुषों के साथ विवाह करने की योग्यता है इस हेतु से गुरुजनों की स्त्रियां ब्रह्मचारिणी कन्याओं को वैसा ही उपदेश करें कि जिस से वे अपने प्रसन्नता के तुल्य पुरुषों के साथ विवाह करके सदा सुखी रहें और जिस का पति वा जिस की स्त्री मर जाय और सन्तान की इच्छा हो वे दोनों नियोग करें अन्य व्यभिचारादि कर्म कभी न करें ।।२४।।

हृदे त्वेत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । सोमो देवता । आर्षी विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।।

फिर वे क्या-क्या उपदेश करें यह अगले मन्त्र में कहा है ।।

हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्य्याय त्वा । ऊर्ध्वमिममध्वरं दिवि देवेषु होत्रा यच्छ ।।२५।।

पदार्थः—हे ब्रह्मचारिणी कन्या ! तू जैसे हम सब (देवेषु) अपने सुख देने वाले पतियों के निकट रहने और (होत्राः) अग्निहोत्र आदि कर्म का अनुष्ठान करने वाली हैं वैसी हो और जैसे हम (हृदे) सौहार्द सुख के लिये (त्वा) तुझे वा (मनसे) भला बुरा विचारने के लिये (त्वा) तुझे वा (दिवे) सब सुखों के प्रकाश करने के लिये (त्वा) तुझे वा (सूर्य्याय) सूर्य्य के सदृश गुणों के लिये (त्वा) तुझे शिक्षा करती हैं वैसे तू भी (दिवि) समस्त सुखों के प्रकाश करने के निमित्त (इमम्) इस (अध्वरम्) निरन्तर सुख देने वाले गृहाश्रमरूपी यज्ञ को (उदृर्ध्वम्) उन्नति (यच्छ) दिया कर ।।२५।।

भावार्थः—जैसे अपने पतियों की सेवा करती हुई उनके समीप रहने वाली पतिव्रता गुरुपत्नी अग्निहोत्रादि कर्मों में स्थिर बुद्धि रखती है वैसे विवाह के अनन्तर ब्रह्मचारिणी कन्याओं और ब्रह्मचारियों को परस्पर वर्त्तना चाहिये ।।२५।।

सोम राजन्नित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । देवता गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । शृणोत्वित्यस्यार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

अब गुरुजन क्षत्रिय शिष्य और प्रजाजन को उपदेश करता है यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

सोम राजन्विश्वास्त्वं प्रजाऽउपावरोह विश्वास्त्वां प्रजाऽउपावरोहन्तु । शृणोत्वग्निः समिधा हवं मे शृण्वन्त्वापो धिषणाश्च देवीः । श्रोता ग्रावाणो विदुषो न यज्ञꣳ शृणोतु देवः सविता हवं मे स्वाहा ॥२६॥

पदार्थः—हे (सोम) श्रेष्ठ ऐश्वर्ययुक्त (राजन्) समस्त उत्कृष्ट गुणों से प्रकाशमान सभाध्यक्ष ! (त्वम्) तू पिता के तुल्य (विश्वाः) समस्त (प्रजाः) प्रजाजनों का (उपावरोह) समीपवर्त्ती होकर रक्षा कर और (त्वाम्) तुझे (विश्वाः) समस्त (प्रजाः) प्रजा जन पुत्र के समान (उपावरोहन्तु) आश्रित हों । हे सभाध्यक्ष ! आप जैसे (समिधा) प्रदीप्त करने वाले पदार्थ से (अग्निः) सर्व गुण वाला अग्नि प्रकाशित होता है वैसे (मे) मेरी (हवम्) प्रगल्भवाणी को (शृणोतु) सुन के न्याय से प्रकाशित हूजिये (च) और (आपः) सब गुणों में व्याप्त (धिषणाः) विद्या बुद्धियुक्त (देवीः) उत्तमोत्तम गुणों से प्रकाशमान तेरी पत्नी भी माताओं के समान स्त्रीजनों के न्याय को (शृण्वन्तु) सुनें । हे (ग्रावाणः) सत् असत् के विवेक करने वाले विद्वान् सभासदो ! तुम हम लोगों के अभिप्राय को हमारे कहने से (श्रोत) सुनो तथा (देवः) विद्या से प्रकाशित (सविता) ऐश्वर्य्यवान् सभापति (विदुषः) विद्वानों के (यज्ञम्) यज्ञ के (न) समान (मे) हमारे प्रजा लोगों के (हवम्) निवेदन को (स्वाहा) स्तुतिरूप वाणी जैसे हो वैसे (शृणोतु) सुने ॥२६॥

भावार्थः—राजा और प्रजा जन परस्पर सम्मति से समस्त राज्यव्यवहारों की पालना करें ॥२६॥

देवीराप इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । आपो देवताः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर राजा और प्रजा कैसे वर्त्ताव को वर्त्तें यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवीरापोऽअपां नपाद्यो वऽऊर्म्मिर्हविष्यऽइन्द्रियावान् मदिन्तमः । तं देवेभ्यो देवत्रा दत्त शुक्रपेभ्यो येषां भाग स्थ स्वाहा ॥२७॥

पदार्थः—हे (आपः) श्रेष्ठ गुणों में व्याप्त (देवीः) शुभकर्मों से प्रकाशमान प्रजालोगो ! तुम राजसेवी (स्थ) हो (शुक्रपेभ्यः) शरीर और आत्मा के पराक्रम के रक्षक (देवेभ्यः) दिव्यगुणयुक्त विद्वानों के लिये (येषाम्) जिन (वः) तुम्हारा बली

रूप विद्वानों का (यः) जो (अपां नपात्) जलों के नाशरहित स्वाभाविक (ऊर्मिः) जलतरंग के सदृश प्रजारक्षक (इन्द्रियावान्) जिस में प्रशंसनीय इन्द्रियां होती हैं और (मदिन्तमः) आनन्द देने वाला (हविष्यः) भोग के योग्य पदार्थों से निष्पन्न (भागः) भाग है वे तुम सब (तम्) उसको (स्वाहा) आदर के साथ ग्रहण करो जैसे राजादि सभ्यजन (देवत्रा) दिव्य भोग देते हैं वैसे तुम भी इन को आनन्द (वत्त) देओ ॥२७॥

भावार्थः—प्रजाजनों को यह उचित है कि आपस में संमति कर किसी उत्कृष्ट गुणयुक्त सभापति को राजा मान कर राज्य-पालन के लिये कर देकर न्याय को प्राप्त हों ॥२७॥

कार्षिरसीत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । प्रजा देवताः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब अध्यापक जन प्रत्येक जन को क्या क्या उपदेश करें यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

कार्षिरसि समुद्रस्य त्वा क्षित्याऽउन्नयामि । समापोऽअद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः ॥२८॥

पदार्थः—हे वैश्यजन ! तू (कार्षिः) हल जोतने योग्य (असि) है (त्वा) तुझे (समुद्रस्य) अन्तरिक्ष के (अक्षित्यै) परिपूर्ण होने के लिये (सम् उत् नयामि) अच्छे प्रकार उत्कर्ष देता हूं । तुम सब लोग(अद्भिः) यज्ञशोधित जलों से(आपः) जल और (ओषधीभिः) ओषधियों से (ओषधीः) ओषधियों को (सम् अग्मत) प्राप्त होओ ॥२८॥

भावार्थः—क्षेत्र आदि स्थानों में अनेक ओषधियां उत्पन्न होती हैं, ओषधियों से अग्निहोत्र आदि यज्ञ, यज्ञों से शुद्ध हुए जो जल के परमाणु ऊंचे होते हैं उनसे आकाश भरा रहता है इस कारण विद्वान् लोग निर्बुद्धि जनों को खेती वारी ही के कामों में रखते हैं क्योंकि वे विद्या का अभ्यास करने को समर्थ ही नहीं होते हैं ॥२८॥

यमग्न इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब वह अध्यापक को क्या कहता है यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिषः स्वाहा ॥२९॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जब कभी विवेक के करने वाले आप ! (पृत्सु) संग्रामों में (यम्) जिस मनुष्य की (अवाः) रक्षा करते और (वाजेषु) अन्न आदि पदार्थों की सिद्धि करने के निमित्त (यम्) जिसको (जुनाः) नियुक्त करते हो (सः) वह (शश्वतीः) निरंतर अनादिरूप (इषः) अपनी प्रजाओं का (यन्ता) निर्वाह करने हारा होता है अर्थात् उनके नियमों को पहुंचाता है ॥२९॥

भावार्थः—गुरुजनों की शिक्षा से सब का सुख बढ़ता ही है ॥२९॥

देवस्य त्वेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । सविता देवता । स्वराडार्षी पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

अब सभापति कर-धन देने वाले प्रजाजनों को कैसे स्वीकार करे यह गुरुजन का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवस्यं त्वा सवितुः प्रंसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददे रावासि गभीरमिममध्वरं कृधीन्द्राय सुषूतमम् । उत्तमेनं पविनोर्ज्जंस्वन्तं मधुंमन्तं पयंस्वन्तं निग्राभ्या स्थ देवश्रुतस्तर्प्पयंत मा ॥३०॥

पदार्थः—सब सुख देने (सवितुः) और समस्त ऐश्वर्य्य के उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में (अश्विनोः) सूर्य और चन्द्रमा के (बाहुभ्याम्) बल और पराक्रम गुणों से (पूष्णः) पुष्टि करने वाले सोम आदि-ओषधिगण के (हस्ताभ्याम्) रोगनाश करने और धातुओं की समता रखने वाले गुणों से (त्वा) तुझ कर-धन देने वाले को (आददे) स्वीकार करता हूं । तू (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य वाले मेरे लिये (उत्तमेन) उत्तम अर्थात् सभ्यता की (पविना) वाणी से (इमम्) इस (गभीरम्) अत्यन्त समझने योग्य (सुषूतमम्) सब पदार्थों से उत्पन्न हुए (ऊर्जस्वन्तम्) राज्य को बलिष्ठ करने वाले (मधुमन्तम्) समस्त मधु आदि श्रेष्ठ पदार्थयुक्त (पयस्वन्तम्) दुग्ध आदि सहित कर-धन को (अध्वरम्) निष्कपट (कृधि) कर दे (देवश्रुतः) श्रेष्ठ राज्य-गुणों को सुनने वाले तुम मेरे (निग्राभ्याः) निरन्तर स्वीकार करने के योग्य (स्थ) हो (मा) मुझे इस कर के देने से (तर्प्पयत) तृप्त करो ॥३०॥

भावार्थः—प्रजाजनों की योग्यता है कि सभाध्यक्ष को प्राप्त होकर उस के लिये अपने समस्त पदार्थों से यथायोग्य भाग दें जिस कारण राजा, प्रजापालन के लिये संसार में उत्पन्न हुआ है इसी से राज्य करने वाला यह राजा संसार के पदार्थों का अंश लेने वाला होता है ॥३०॥

मनो म इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। प्रजासभ्यराजानो देवताः। उष्णिषड्छन्दांसि। ऋषभः स्वरः॥

अब राजा अपने सभासदों और सभा राजा को क्या उपदेश करे यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

मनों मे तर्प्पयत वाचं मे तर्प्पयत प्राणं मे तर्प्पयत चक्षुर्मे तर्प्पयत श्रोत्रं मे तर्प्पयतात्मानं मे तर्प्पयत प्रजां मे तर्प्पयत पशून्मे तर्प्पयत गणान्मे तर्प्पयत गणा मे मा वितृषन्॥३१॥

पदार्थः—हे सभ्यजनो और प्रजाजनो! तुम अपने गुणों से (मे) मेरे (मनः) मन को (तर्प्पयत) तृप्त करो (मे) मेरी (वाचम्) वाणी को (तर्प्पयत) तृप्त करो (मे) मेरे (प्राणम्) प्राण को (तर्प्पयत) तृप्त करो (मे) मेरे (चक्षुः) नेत्रों को (तर्प्पयत) तृप्त करो (मे) मेरे (श्रोत्रम्) कानों को (तर्प्पयत) तृप्त करो (मे) मेरे (आत्मानम्) आत्मा को (तर्प्पयत) तृप्त करो (मे) मेरी (प्रजाम्) संतानादि प्रजा को (तर्प्पयत) तृप्त करो (मे) मेरे (पशून्) गौ, हाथी, घोड़े आदि पशुओं को (तर्प्पयत) तृप्त करो (मे) मेरे (गणान्) सेवकों को (तर्प्पयत) तृप्त करो जिस से (मे) मेरे (गणाः) राज्य वा प्रजा कर्माधिकारी वा सेवकजन कामों में (मा) मत (वितृषन्) उदास हों॥३१॥

भावार्थः—राज्य का प्रवन्ध सभाधीन ही होने के योग्य है जिस से प्रजाजन राजसेवक और राजपुरुष प्रजा की सेवा करने हारे अपने-अपने कामों में प्रवृत्त होके सब प्रकार एक दूसरे को आनन्दित करते रहें॥३१॥

इन्द्राय त्वेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। सभापतीराजा देवता। पञ्चपाज्ज्योतिष्मती जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

जो राज्य व्यवहार सभा के ही आधीन हो तो किसलिये प्रजाजनों को सभापति का स्वीकार करना चाहिये यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवतऽइन्द्राय त्वादित्यवतऽइन्द्राय त्वाभिमातिघ्ने श्येनाय त्वा सोमभृतेऽग्नये त्वा रायस्पोषदे॥३२॥

पदार्थः—हे सभापते! (वसुमते) जिस कर्म में चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य सेवन कर अच्छे अच्छे विद्वान् होते हैं (रुद्रवते) जिस में चवालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य सेवन करते हैं उस (इन्द्राय) परमैश्वर्य्ययुक्त कर्म के लिये (त्वा) आप को ग्रहण करते हैं (आदित्यवते) जिस में अड़तालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य सेवन कर सूर्य्यसदृश परम विद्वान्

होते हैं उस (इन्द्राय) उत्तम गुण पाने के लिये (त्वा) आपको, (अभिमातिघ्ने) जिस कर्म में बड़े-बड़े अभिमानी शत्रुजन मारे जायं उस (इन्द्राय) परमोत्कृष्ट शत्रुविदारक काम के लिये (त्वा) आप (सोमभृते) उत्तम ऐश्वर्य धारण करने हारे (श्येनाय) युद्धादि कामों में श्येनपक्षी के तुल्य लपट झपट मारने वाले(त्वा)आपको(रायस्पोषदे) धन की दृढ़ता देने के लिये और (अग्नये) विद्युत् आदि पदार्थों के गुण प्रकाश कराने के लिये (त्वा)आपको हम स्वीकार करते हैं ।।३२।।

भावार्थः—जो इन्द्र अग्नि यम सूर्य वरुण और धनाढ्य के गुणों से युक्त विद्वानों का प्रिय विद्या का प्रचार कराने वाला सब को सुख देवे उसी को राजा मानना चाहिये ।।३२।।

यत्त इत्यस्य मधुच्छन्दाः ऋषिः । सोमो देवताः । भुरगार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।।

ऐसा सभापति प्रजा को क्या लाभ पहुँचा सकता है यह अगले मन्त्र में कहा है ।।

यत्ते॑ सोम दि॒वि ज्योति॒र्यत्पृ॑थि॒व्यां यदु॒रावन्तरि॑क्षे । तेना॒स्मै यज॑मानायो॒रु रा॒ये कृ॒द्ध्यधि॑ दा॒त्रे वो॑चः ।। ३३ ।।

पदार्थः—हे (सोम) समस्त ऐश्वर्य के निमित्त प्रेरणा करने हारे सभापति ! (ते) तेरा (यत्) जो (दिवि) सूर्यलोक में (पृथिव्याम्) पृथिवी में और (यत्) जो (उरौ) विस्तृत (अंतरिक्षे) आकाश में (ज्योतिः) जैसे ज्योति हो वैसा राजकर्म है (तेन) उस से तू (अस्मै) इस परोपकार के अर्थ (यजमानाय) यज्ञ करते हुए यजमान के लिये (उरु) (कृधि) अत्यन्त उपकार कर तथा (राये) धन बढ़ने के लिये (अधि, वोचः) अधिक अधिक राज्य-प्रबन्ध कर ।।३३।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। सभापति राजा अपने राज्य के उत्कर्ष से सब जनों को निरालस्य करता रहे जिस से वे पुरुषार्थी होकर धनादि पदार्थों को निरन्तर बढ़ावें ।।३३।।

श्वात्रा स्थ इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराडार्षी पथ्या बृहतीच्छन्दः । मध्यमः स्वरः ।।

अब उक्त सभाध्यक्षादिकों की स्त्री कैसे कर्म करने वाली हों यह अगले मन्त्र में कहा है ।।

श्वा॒त्रा स्थ॑ वृत्र॒तुरो॒ राधो॑गूर्त्ताऽअ॒मृत॑स्य॒ पत्नीः॑ । ता दे॑वीर्दे॒वत्रे॒मं य॒ज्ञं न॑य॒तोप॑हूताः॒ सोम॑स्य पिबत ।।३४।।

पदार्थः—हे (देवीः) विद्यायुक्त स्त्रियो ! तुम (वृत्रतुरः) विजुली के सदृश मेघ की वर्षा के तुल्य सुखदायक की गति तुल्य चलने (राधोगूर्त्ताः) धन का उद्योग करने (पत्न्यः) और यज्ञ में सहाय देने वाली (स्थ) हों (देवत्रा) तथा अच्छे अच्छे गुणों से प्रकाशित विद्वान् पतियों में प्रीति से स्थित हो (इदम्) इस यज्ञ को (नयत) सिद्धि को प्राप्त किया कीजिये और (उपहूताः) बुलाई हुई अपने पतियों के साथ (अमृतस्य) अति स्वाद-युक्त सोम आदि ओषधियों के रस को (पिबत) पीओ ॥३४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे विद्वानों की पत्नी स्त्रीजन स्वधर्म व्यवहार से अपने पतियों को प्रसन्न करती हैं उसी प्रकार पुरुष उन अपनी स्त्रियों को निरंतर प्रसन्न करें ऐसे परस्पर अनुमोद से गृहाश्रमधर्म को पूर्ण करें ॥३४॥

मा भेर्मेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। द्यावापृथिव्यौ देवते। भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुष परस्पर कैसा वर्त्ताव वर्त्तें यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मा भेर्मा संविक्थाऽऊर्ज्जं धत्स्व धिषणे वीड्वी सती वीडयेथा-मूर्ज्जं दधाथाम्। पाप्मा हतो न सोमः ॥३५॥

पदार्थः—हे स्त्री ! तू (वीड्वीसती) शरीरात्मबलयुक्त होती हुई पति से (मा, भेः) मत डर (मा संविक्थाः) मत कंप और (ऊर्ज्जम्) देह और आत्मा के बल और पराक्रम को (धत्स्व) धारण कर। हे पुरुष ! तू भी वैसे ही अपनी स्त्री से वर्त। तुम दोनों स्त्री पुरुष (धिषणे) सूर्य्य और भूमि के समान परोपकार और पराक्रम को धारण करो। जिस से (वीडयेथाम्) दृढ़ बल वाले हों। ऐसा वर्त्ताव वर्तते हुए तुम दोनों का (पाप्मा) अपराध (हतः) नष्ट हो और (सोमः) चन्द्र के तुल्य आनन्द शान्त्यादि गुण बढ़ा कर एक दूसरे का आनन्द बढ़ाते रहो ॥३५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। स्त्री पुरुष ऐसे व्यवहार में वर्त्तें कि जिस से उन का परस्पर भय और उद्वेग नष्ट होकर आत्मा की दृढ़ता, उत्साह और गृहाश्रम व्यवहार की सिद्धि से ऐश्वर्य्य बढ़े और वे दोष तथा दु.ख को छोड़ चन्द्रमा के तुल्य आह्लादित हों ॥३५॥

प्रागपागित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। सोमो देवता। उष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

अब उनके पुत्र क्या क्या करें और वे पुत्रों को कैसे पालें यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रागपागुदगधराक्सर्वतस्त्वा दिशऽआधावन्तु । अम्ब निष्पर समरीर्विदाम् ॥३६॥

पदार्थः—हे (अम्ब) प्रेम से प्राप्त होने वाली माता ! जो तेरी (अरीः) संतानादि प्रजा (प्राक्)पूर्व (अपाक्) पश्चिम (उदक्) उत्तर (अधराक्) दक्षिण और भी (सर्वतः) सब (दिशः) दिशाओं से (त्वा) तुझे (आ) (धावन्तु) धाय धाय प्राप्त हों उन्हें (निः) (पर) निरन्तर प्यार कर और वे भी तुझे (सम्) अच्छे भाव से (विदाम्) जानें ॥३६॥

भावार्थः—माता और पिता को योग्य है कि अपने संतानों को विद्यादि अच्छे अच्छे गुणों में प्रवृत्त कराकर अच्छे प्रकार उन के शरीर की रक्षा करें अर्थात् जिस से वे नीरोग शरीर और उत्साह के साथ गुण सीखें और उन पुत्रों को योग्य है कि माता पिता की सब प्रकार से सेवा करें ॥३६॥

त्वमङ्ग इत्यस्य गौतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिगार्ष्यनुष्टुप्छन्दः । गांधारः स्वरः ॥

अब प्रजाजन किये हुए सभापति की प्रशंसा कैसे करें यह
अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

त्वमङ्ग प्रशꣳसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् । न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥३७॥

पदार्थः—हे (अंग) (शविष्ठ) अत्यन्त बलयुक्त (मघवन्) ईश्वर के समान समृद्ध (इन्द्र) ऋद्धि सिद्धि देनेहारे सभापते ! (त्वम्) आप (मर्त्यम्) प्रजास्थ मनुष्य को (प्रशंसिषः) प्रशंसायुक्त कीजिये । आप (देवः) देव अर्थात् शत्रुओं को अच्छे प्रकार जीतने वाले हैं (न) नहीं (त्वदन्यः) तुम से अन्य (मर्डिता) सुख देने वाला है ऐसा मैं (ते) आप को (वचः) पूर्वोक्त राज्यप्रबन्ध के अनुकूल वचन (ब्रवीमि) कहता हूं ॥३७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे ईश्वर सर्वसुहृत् पक्षपातरहित है वैसे सभापति राज्यधर्मानुवर्त्ती राजा होकर प्रशंसनीय की प्रशंसा निंदनीय की निंदा दुष्ट को दण्ड श्रेष्ठ की रक्षा कर के सब का अभीष्ट सिद्ध करे ॥३७॥

इस अध्याय में राज्य के अभिषेकपूर्वक शिक्षा, राज्य का कृत्य, प्रजा को राजा का आश्रय, सभाध्यक्षादिकों का काम, विष्णु का परम पद वर्णन,

सभाध्यक्ष को ईश्वरोपासना करनी, राजा प्रजा का आपस में कृत्य, गुरु को शिष्य का स्वीकार और उस शिष्य को शिक्षा करना, यज्ञ का अनुष्ठान, होम किये द्रव्य के फल का वर्णन, विद्वानों के लक्षण, मनुष्यकृत्य, मनुष्यों का परस्पर वर्त्तमान, दुष्ट दोष निवृत्ति फल, ईश्वर से क्या-क्या प्रार्थना करनी चाहिये, रण में योद्धा का वर्णन, युद्धकृत्य निरूपण, युद्ध में परस्पर वर्त्ताव का प्रकार, वीरों को उत्साह देना, राज्यप्रबन्ध का कारण और साध्य साधन, राजा के प्रति ईश्वरोपदेश, राज्यकर्म का अनुष्ठान, राजा और प्रजा का कृत्य, राजा और प्रजा की सभाओं का परस्पर वर्त्ताव, प्रजा से सभापति का उत्कर्ष करना, प्रजाजन के प्रति सभापति की प्रेरणा, प्रजा को स्वीकार करने के योग्य सभापति का लक्षण, प्रजा और राजसभा की परस्पर प्रतिज्ञा करनी, सभापति के स्वीकार करने का प्रयोजन, प्रजा-सुख के लिये सभापति के कर्त्तव्य कामों का अनुष्ठान, सभापत्यादिकों की पत्नियों को क्या करना चाहिये, स्त्री पुरुषों का परस्पर वर्त्ताव, माता पिता के प्रति संतानों का काम और सभापति के प्रति प्रजाजनों का उपदेश वर्णन है, इस से पंचम अध्याय में कहे हुए अर्थों के साथ इस छठे अध्याय के अर्थों की संगति है, ऐसा जानना चाहिये ॥

॥ इति षष्ठोऽध्यायः ॥

* ओ३म् *

अथ सप्तमाऽध्यायस्यारम्भः

—ः०ः०ः०—

अब सप्तम अध्याय का आरम्भ किया जाता है ॥

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्नऽआसुव ॥ १ ॥

वाचस्पतय इत्यस्य गोतम ऋषिः । प्राणो देवता । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

इस सप्तम अध्याय के प्रथम मन्त्र में सृष्टि के निमित्त बाहर और भीतर के व्यवहार का उपदेश है ॥

वाचस्पतये पवस्व वृष्णोऽअंशुभ्यां गभस्तिपूतः । देवो देवेभ्यः पवस्व येषां भागोऽसि ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्य तू (वाचः) वाणी के (पतये) पालन हारे ईश्वर के लिये (पवस्व) पवित्र हो (वृष्णः) बलवान् पुरुष के (अंशुभ्याम्) भुजाओं के समान बाहर भीतर का व्यवहार होने के लिये जैसे (गभस्तिपूतः) सूर्य्य की किरणों से पदार्थ पवित्र होते हैं वैसे शास्त्रों से (देवः) दिव्य-गुण युक्त विद्वान् होकर (येषाम्) जिन विद्वानों का (भागः) सेवन करने के योग्य है उन (देवेभ्यः) देवों के लिये (पवस्व) पवित्र हो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब जीवों को योग्य है कि वेदों की रक्षा करने वाले नित्य पवित्र परमात्मा को जान और विद्वानों के संग से विद्यादि उत्तम गुणों में निष्णात होकर सत्यवाणी को बोलने वाले हों ॥१॥

मधुमतीरित्यस्य गोतम ऋषिः। सोमो देवता। निचृदार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्य लोग परस्पर व्यवहार में कैसे वर्त्तें यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

मधुमतीर्नऽइषस्कृधि यत्ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा स्वाहोर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥२॥

पदार्थः—हे (सोम) ऐश्वर्य्ययुक्त विद्वन्! आप (नः) हम लोगों के लिये (मधुमतीः) मधुरादिगुणसहित (इषः) अन्न आदि पदार्थों को (कृधि) कीजिये तथा हे (सोम) शुभ कर्मों में प्रेरणा करने वाले विद्वन्! मैं (यत्) जिस से (ते) आप का (अदाभ्यम्) अहिंसनीय अर्थात् रक्षा करने के योग्य (जागृविः) प्रसिद्ध (नाम) नाम है (तस्मै) उस (सोमाय) ऐश्वर्य्य की प्राप्ति और (ते) आप के लिये अर्थात् आप की आज्ञा वर्त्तने के लिये (स्वाहा) सत्यधर्म-युक्त क्रिया (स्वाहा) सत्य वाणी और (उरु) (अन्तरिक्षम्) अवकाश को (एमि) प्राप्त होता हूं ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य जैसे अपने सुख के लिये अन्न जलादि पदार्थों को सम्पादन करें वैसे ही औरों के लिये भी दिया करें और जैसे कोई मनुष्य अपनी प्रशंसा करें वैसे ही औरों की आप भी किया करें जैसे विद्वान् लोग अच्छे गुण वाले होते हैं वैसे आप भी हों ॥२॥

स्वाङ्कृत इत्यस्य गोतम ऋषिः। विद्वांसो देवताः। विराड् ब्राह्मी जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

फिर अगले मन्त्र में आत्मक्रिया का निरूपण किया है ॥

स्वाङ्कृतोसि विश्वेभ्यऽइन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव सूर्य्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यो देवांशो यस्मै त्वेडे तत्सत्यमुपरिप्रुता भङ्गेन हतोऽसौ फट् प्राणाय त्वा व्यानाय त्वा ॥३॥

पदार्थः—हे (अंशो) सूर्य्य के तुल्य प्रकाशमान! जो तू (दिव्येभ्यः) दिव्य (विश्वेभ्यः) समस्त (पार्थिवेभ्यः) पृथिवी पर प्रसिद्ध (इन्द्रियेभ्यः) इन्द्रियों और (मरीचिपेभ्यः) किरणों के समान पवित्र करने वाले (देवेभ्यः) विद्वानों और आयु आदि पदार्थों के लिये (स्वाङ्कृतः) स्वयंसिद्ध (असि) है उस (त्वा) तुझ को (मनः) विज्ञान और (स्वाहा) वेद वाणी (अष्टु) प्राप्त हों। हे (सुभव) श्रेष्ठ गुणवान्

होने वाले मैं (सूर्य्याय) सर्वप्रेरक चराचरात्मा परमेश्वर के लिये (त्वाम्) तेरी (ईडे) प्रशंसा करता हूं तू भी (तत्) उस प्रशंसा के योग्य (सत्यम्) सत्य परमात्मा को प्रीति से ग्रहण कर (उपरिप्रुता) सब से उत्तम उत्कर्ष पाने हारे तूने (भंगेन) मर्दन से (असौ) यह अज्ञानरूप शत्रु (फट्) झट (हतः) मारा उस (त्वाम्) तुझे (प्राणाय) जीवन के लिये प्रशंसित करता और (व्यानाय) विविध प्रकार के सुख प्राप्त करने के लिये (त्वा) तुझे प्रशंसा देता हूं ॥३॥

भावार्थः—जीव आप ही स्वयंसिद्ध अनादिरूप हैं इस से इन को चाहिये कि देह प्राण इन्द्रियों और अंत करण को निर्मल कर धर्म्मयुक्त व्यवहारों में प्रवृत्त होकर परमेश्वर की उपासना में स्थिर हों तथा पुरुषार्थ से दुष्टों को झट पट मार और भलों की रक्षा करके आनन्दित रहें ॥३॥

उपयामगृहीत इत्यस्य गोतम ऋषिः। मघवा देवता। आर्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

फिर मन से आत्मा के बीच में कैसे प्रयत्न करे यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

उपयामगृहीतोऽस्यन्तर्य्यँच्छ मघवन् पाहि सोमम्। उरुष्य रायऽएषो यजस्व ॥४॥

पदार्थः—हे योग चाहने वाले! जिस से तू (उपयामगृहीतः) योग में प्रवेश करने वाले नियमों से ग्रहण किये हुए के समान (असि) है इस कारण (अंतः) भीतरले जो प्राणादि पवन मन और इन्द्रियां हैं इन को (यच्छ) नियम में रख। हे (मघवन्) परमपूजित धनी के समान! तू (सोमम्) योगविद्यासिद्ध ऐश्वर्य्य को (पाहि) रक्षा कर (उरुष्य) और जो अविद्या आदि क्लेश हैं उन को अत्यन्त योग-विद्या के बल से नष्ट कर जिस से (रायः) ऋद्धि और (इषः) इच्छासिद्धियों को (आयजस्व) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। योगजिज्ञासु पुरुष को चाहिये कि यम नियम आदि योग के अङ्गों से चित्त आदि अन्त-करण की वृत्तियों को रोक और अविद्यादि दोषों का निवारण करके संयम से ऋद्धि सिद्धियों को सिद्ध करें ॥४॥

अन्तस्त इत्यस्य गोतम ऋषिः। ईश्वरो देवता। आर्षी पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अब ईश्वर जो योग में प्रथम ही प्रवृत्त होता है उसके लिये विज्ञान का उपदेश अगले मन्त्र से करता है॥

अन्तस्ते द्यावापृथिवी दधाम्यन्तर्दधाम्युर्वन्तरिक्षम् । सजूर्देवेभिरवरैः परैश्चान्तर्य्यामे मघवन् मादयस्व ॥५॥

पदार्थः—हे (मघवन्) योगी ! मैं परमेश्वर (ते) तेरे (अन्तः) हृदयाकाश में (द्यावापृथिवी) सूर्य्य भूमि के समान विज्ञानादि पदार्थों को (दधामि) स्थापित करता हूँ तथा (उरु) विस्तृत (अन्तरिक्षम्) अवकाश को (अन्तः) शरीर के भीतर (दधामि) धारता हूं । (सजूः) मित्र के समान तू (देवेभ्यः) विद्वानों से विद्या को प्राप्त हो के (अवरैः) (परैः) (च) थोड़े वा बहुत योग व्यवहारों से (अन्तर्य्यामे) भीतरले नियमों में वर्त्तमान होकर अन्य सब को (मादयस्व) प्रसन्न किया कर ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । ईश्वर का यह उपदेश है कि ब्रह्माण्ड में जिस प्रकार के जितने पदार्थ हैं उसी प्रकार के उतने ही मेरे ज्ञान में वर्त्तमान हैं । योगविद्या को नहीं जानने वाला उन को नहीं देख सकता और मेरी उपासना के विना कोई योगी नहीं हो सकता है ॥५॥

स्वाङ्कृतोसीत्यस्य गोतम ऋषिः । योगी देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर ईश्वर योगविद्या चाहने वाले के प्रति उपदेश करता है ॥

स्वाङ्कृतोऽसि विश्वेभ्यऽइन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यऽउदानाय त्वा ॥६॥

पदार्थः—हे (सुभव) शोभन ऐश्वर्य्य युक्त योगी ! तू (स्वाङ्कृतः) अनादि काल से स्वयंसिद्ध (असि) है । मैं [(इन्द्रियेभ्यः) कामों की अत्यन्त साधक इन्द्रियों से तथा] (दिव्येभ्यः) शुद्ध (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) प्रशस्त गुण और प्रशंसनीय पदार्थों से युक्त विद्वानों और (मरीचिपेभ्यः) योग के प्रकाश से युक्त व्यवहारों से (त्वा) तुझ को स्वीकार करता हूं (पार्थिवेभ्यः) पृथिवी पर प्रसिद्ध पदार्थों के लिये भी (त्वा) तुझ को स्वीकार करता हूं (सूर्य्याय) सूर्य्य के समान योगप्रकाश करने के लिये वा (उदानाय) उत्कृष्ट जीवन और बल के अर्थ (त्वाम्) तुझे ग्रहण करता हूं जिस से (त्वा) तुझ योग चाहने वाले को (मनः) योग समाधियुक्त मन और (स्वाहा) सत्यानुष्ठान करने की क्रिया (अष्टु) प्राप्त हो ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य जब तक श्रेष्ठाचार करने वाला नहीं होता तब

तक ईश्वर भी उस को स्वीकार नहीं करता जब तक जिस को ईश्वर स्वीकार नहीं करता है तब तक उसका पूरा-पूरा आत्मबल नहीं हो सकता और जब तक आत्मबल नहीं बढ़ता तब तक उस को अत्यन्त सुख भी नहीं होता ॥६॥

आ वायो भूषेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । वायुर्देवता निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर योगी का कृत्य अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ वायो भूष शुचिपाऽउप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार । उपो तेऽअन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयं वायवे त्वा ॥७॥

पदार्थः—हे (शुचिपाः) अत्यन्त शुद्धता को पालने और (वायो) पवन के तुल्य योग क्रियाओं में प्रवृत्त होने वाले योगी ! तू (सहस्रम्) हजारों (नियुतः) निश्चित शमादिक गुणों को (आभूष) सब प्रकार सुभूषित कर । हे (विश्ववार) समस्त गुणों के स्वीकार करने वाले ! जो (ते) तेरा (मद्यम्) अच्छी तृप्ति देने वाला (अन्धः) अन्न है उस को (उपो) तेरे समीप (अयामि) पहुँचाता हूं । हे (देव) योगबल से आत्मा को प्रकाश करने वाले ! (यस्य) जिस तेरा (पूर्वपेयम्) श्रेष्ठ योगियों को रक्षा करने के योग्य योगबल है जिस को तू (दधिषे) धारण कर रहा है (वायवे) उस योग के जानने के लिये (त्वा) तुझे स्वीकार करता हूं ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो योगी प्राण के तुल्य सब को भूषित करता ईश्वर के तुल्य अच्छे-अच्छे गुणों में व्याप्त होता है और अन्न वा जल के सदृश सुख देता है वही योग के बीच में समर्थ होता है ॥७॥

इन्द्रवायू इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रवायू देवते । इन्द्रवायू इत्यस्यार्षी गायत्री छन्दः । उपयामगृहीत इत्यस्यार्षी स्वराड् गायत्रीच्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह योगी कैसा होता है यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रवायूऽइमे सुताऽउप प्रयोभिरागतम् । इन्दवो वामुशन्ति हि । उपयामगृहीतोऽसि वायवऽइन्द्रवायुभ्यां त्वैष ते योनिः सजोषोभ्यां त्वा ॥८॥

पदार्थः—हे (इन्द्रवायू) प्राण और सूर्य्य के समान योगशास्त्र के पढ़ने पढ़ाने वालो ! (हि) जिस से (इमे) ये (सुताः) उत्पन्न हुए (इन्दवः) सुखकारक जलादि

पदार्थ (वाम्) तुम दोनों को (उशन्ति) प्राप्त होते हैं इससे तुम (प्रयोभिः) इन मनोहर पदार्थों के साथ ही (आगतम्) अपना आगमन जानो। हे योग चाहने वाले ! तू इस योग पढ़ाने वाले अध्यापक से (वायवे) पवन के तुल्य योगसिद्धि को पाने के लिये अथवा योगबल से चराचर के ज्ञान की प्राप्ति के लिये (उपयामगृहीतः) योग के यम नियमों के साथ स्वीकार किया गया (असि) है। हे भगवन् योगाध्यापक ! (एषः) यह योग (ते) तुम्हारा (योनिः) सब दुखों के निवारण करने वाले घर के समान है और (इन्द्रवायुभ्याम्) बिजुली और प्राणवायु के समान योगवृद्धि और समाधि चढ़ाने और उतारने की शक्तियों से (जुष्टम्) प्रसन्न हुए (त्वा) आपको और हे योग चाहने वाले ! (सजोषोभ्याम्) सेवन किये हुए उक्त गुणों से प्रसन्न हुए (त्वा) तुझे मैं अपने सुख के लिये चाहता हूं ॥८॥

भावार्थः—वे ही लोग पूर्ण योगी और सिद्ध हो सकते हैं जो कि योग-विद्याभ्यास करके ईश्वर से लेके पृथिवी पर्य्यन्त पदार्थों को साक्षात् करने का यत्न किया करते और यम नियम आदि साधनों से युक्त योग में रम रहे हैं और जो इन सिद्धों का सेवन करते हैं वे भी इस योगसिद्धि को प्राप्त होते हैं अन्य नहीं ॥८॥

अयं वामित्यस्य गृत्समद ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते। आर्षी गायत्री छन्दः। उपयामगृहीतोसीत्यस्यासुरी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर अध्यापक और शिष्य का कर्म्म अगले मन्त्र में कहा है॥

अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोमऽऋतावृधा। ममेदिह श्रुतꣳ हवम्। उपयामगृहीतोऽसि मित्रावरुणाभ्यां त्वा ॥९॥

पदार्थः—हे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के समान वर्त्तमान (ऋतावृधा) सत्य विज्ञान वर्द्धक योगविद्या के पढ़ने पढ़ाने वालो ! (वाम्) तुम्हारा (अयम्) यह (सोमः) योग का ऐश्वर्य (सुतः) सिद्ध किया हुआ है उस से तुम (इह) यहां (मम) योगविद्या से प्रसन्न होने वाले मेरी (हवम्) स्तुति को (श्रुतम्) सुनो। हे यजमान जिस से तू (उपयामगृहीतः) अच्छे नियमों के साथ स्वीकार किया हुआ (इत्) ही (असि) है इस से मैं (मित्रावरुणाभ्याम्) प्राण और उदान के साथ वर्त्तमान (त्वा) तुझ को ग्रहण करता हूं ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि इस योगविद्या का ग्रहण श्रेष्ठ पुरुषों का उपदेश सुन और यमनियमों का धारण करके योगाभ्यास के साथ अपना वर्त्ताव रक्खें ॥९॥

राया वयमित्यस्य त्रिसदस्युर्ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी योग पढ़ने पढ़ाने वालों के कृत्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

राया वयꣳ संसवाꣳसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः । तां धेनुं मित्रावरुणा युवं नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीमेष ते योनिर्ऋतायुभ्यां त्वा ॥१०॥

पदार्थः— (हे ससवांसः) भले बुरे के अलग-अलग करने वाले (देवाः) विद्वानो ! आप और (वयम्) हम लोग (यवसेन) तृण घास भूसा से (गावः) गौ आदि पशुओं के समान (हव्येन) ग्रहण करने के योग्य (राया) धन से (मदेम) हर्षित हों और हे (मित्रावरुणा) प्राण के समान उत्तम जनो ! (युवम्) तुम दोनों (नः) हमारे लिये (विश्वाहा) सब दिनों में (अनपस्फुरन्तीम्) ठीक-ठीक ज्ञान देने वाली (धेनुम्) वाणी को (धत्तम्) धारण कीजिये । हे यजमान ! जिससे (ते) तेरा (एषः) यह विद्यावोध (योनिः) घर है इस से (ऋतायुभ्याम्) सत्य व्यवहार चाहने वालों के सहित (त्वा) तुझ को हम लोग स्वीकार करते हैं ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को चाहिये कि अपने पुरुषार्थ और विद्वानों के संग से परोपकार की सिद्धि और कामना को पूर्ण करने वाली वेदवाणी को प्राप्त होकर आनन्द में रहें ॥१०॥

या वां कशेत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । अश्विनौ देवते । ब्राह्मी उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी इन योगविद्या पढ़ने पढ़ाने वालों के करने योग्य काम का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती । तया यज्ञं मिमिक्षतम् । उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वैष ते योनिर्माध्वीभ्यां त्वा ॥११॥

पदार्थः— हे (अश्विनौ) सूर्य्य और चन्द्र के तुल्य प्रकाशित योग के पढ़ने-पढ़ाने वालो ! (या) जो (वाम्) तुम्हारी (मधुमती) प्रशंसनीय मधुरगुणयुक्त (सूनृतावती) प्रभात समय में क्रम-क्रम से प्रदीप्त होने वाली उषा के समान (कशा) वाणी है (तया) उस से (यज्ञम्) ईश्वर से संग कराने हारे योगरूपी यज्ञ को

(मिमिक्षतम्) सिद्ध करना चाहो। हे योग पढ़ने वाले ! तू (उपयामगृहीतः) यम-नियमादिकों से स्वीकार किया गया (असि) है (ते) तेरा (एषः) यह योग (योनिः) घर के समान सुखदायक है इस से (अश्विभ्याम्) प्राण और अपान के योगोचित नियमों के साथ वर्त्तमान (त्वा) तुझ और हे योगाध्यापक ! (माध्वीभ्याम्) माधुर्य्य लिये जो श्रेष्ठ नीति और योगरीति हैं उन के साथ वर्त्तमान (त्वा) आप का हम लोग आश्रय करते हैं अर्थात् समीपस्थ होते हैं ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। योगी लोग मधुर प्यारी वाणी से योग सीखने वालों को उपदेश करें और अपना सर्वस्व योग ही को जानें तथा अन्य मनुष्य वैसे योगी का सदा आश्रय किया करें ॥११॥

तं प्रत्नथेत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृदार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः। उपयामगृहीत इत्यस्य पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर भी अगले मन्त्र में योगी के गुणों का उपदेश किया है॥

तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदꣳ स्वर्विदम्। प्रतीचीनं वृजनं दोहसे धुनिमाशुं जयन्तमनु यासु वर्द्धसे। उपयामगृहीतोऽसि शण्डाय त्वैष ते योनिर्वीरतां पाह्यपमृष्टः शण्डो देवास्त्वा शुक्रपाः प्रणयन्त्वनाधृष्टासि ॥१२॥

पदार्थः—हे योगिन् ! (उपयामगृहीतः) योग के अंगों अर्थात् शौच आदि नियमों के ग्रहण करने वाले (असि) हैं (ते) आप का (एषः) यह योगयुक्त स्वभाव (योनिः) सुख का हेतु है। योग से आप (अपमृष्टः) अविद्यादि दोषों से अलग हुए (शण्डः) शमादि गुणयुक्त (असि) हैं (यासु) जिन योगक्रियाओं में आप (वर्द्धसे) वृद्धि को प्राप्त होते हैं और (विश्वथा) समस्त (प्रत्नथा) प्राचीन महर्षि (पूर्वथा) पूर्वकाल के योगी और (इमथा) वर्त्तमान योगियों के समान (ज्येष्ठतातिम्) अत्यन्त प्रशंसनीय (बर्हिषदम्) हृदयाकाश में स्थिर (स्वर्विदम्) सुख लाभ करने (प्रतीचीनम्) अविद्यादि दोषों से प्रतिकूल होने (आशुम्) शीघ्र सिद्धि देने (जयन्तम्) उत्कर्ष पहुंचाने और (धुनिम्) इन्द्रियों को कंपाने वाले (वृजनम्) योगबल को (दोहसे) परिपूर्ण करते हैं (तम्) उस योगबल को (शुक्रपाः) जो कि योगबल की रक्षा करने हारे (देवाः) योगबल के प्रकाश से प्रकाशित योगी लोग हैं, वे (त्वा) आप को (प्रणयन्तु) अच्छे प्रकार पहुंचावें। उस योगबल को प्राप्त हुए (शंडाय) शमदमादिगुणयुक्त आप के लिये उसी योग की (अनाधृष्टा) दृढ़ वीरता (असि) हो, आप उस (वीरताम्)

वीरता की (पाहि) रक्षा कीजिये (अनु) वह रक्षा को प्राप्त हुई वीरता (त्वा) आप को पाले ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे योगविद्या की इच्छा करने वाले! जैसे शमदमादि गुणयुक्त पुरुष योगवल से विद्यावल की उन्नति कर सकता है, वही अविद्यारूपी अंधकार का विध्वंस करने वाली योग-विद्या सज्जनों को प्राप्त होकर जैसे यथोचित सुख देती है वैसे आप को दे ॥१२॥

सुवीर इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृदार्षीत्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। शुक्रस्येत्यस्य प्राजापत्या गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

उक्त योग का अनुष्ठान करने वाला योगी कैसा होता है यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

सुवीरो॑ वी॒रान् प्र॑ज॒नय॒न् परी॑ह्य॒भि रा॒यस्पोषे॑ण॒ यज॑मानम्। सं॒ज॒ग्मा॒नो दि॒वा पृ॑थि॒व्या शु॒क्रः शु॒क्रशो॑चिषा॒ निर॑स्त॒ः शण्डः॑ शु॒क्रस्या॑-धि॒ष्ठान॑म॒सि ॥१३॥

पदार्थः—हे योगिन्! (सुवीरः) श्रेष्ठ वीर के समान योगबल को प्राप्त हुए आप (वीरान्) अच्छे-अच्छे गुणयुक्त पुरुषों को (प्रजनयन्) प्रसिद्ध करते हुए (परीहि) सब जगह भ्रमण कीजिये। इसी प्रकार (यजमानम्) धन आदि पदार्थों को देने वाले उत्तम पुरुषों के (अभि) सन्मुख (रायः) धन की (पोषेण) पुष्टि से (संजग्मानः) संगत हूजिये और आप (दिवा) सूर्य्य और (पृथिव्या) पृथिवी के गुणों के साथ (शुक्रः) अति बलवान् (शुक्रशोचिषा) सब को शोधने वाले सूर्य्य की दीप्ति से (निरस्तः) अन्धकार के समान पृथक् हुए ही योगबल के प्रकाश से विषयवासना से छूटे हुए (शण्डः) शमदमादि गुणयुक्त (शुक्रस्य) अत्यन्त योगबल के (अधिष्ठानम्) आधार (असि) हैं ॥१३॥

भावार्थः—शमदमादि गुणों का आधार योगाभ्यास में तत्पर योगी-जन अपनी योगविद्या के प्रचार से योगविद्या चाहने वालों का आत्मबल बढ़ाता हुआ सब जगह सूर्य्य के समान प्रकाशित होता है ॥१३॥

अच्छिन्नस्य त इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। स्वराड् जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अब शिष्य के पढ़ाने की युक्ति अगले मन्त्र में कही है॥

अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्य्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम। सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रोऽअग्निः ॥१४॥

पदार्थः—हे (देव) योगविद्या चाहने वाले (सोम) प्रशंसनीय गुणयुक्त शिष्य ! हम अध्यापक लोग (ते) तेरे लिये (सुवीर्य्यस्य) जिस पदार्थ से शुद्ध पराक्रम बढ़े उस के समान (अच्छिन्नस्य) अखण्ड (रायः) योगविद्या से उत्पन्न हुए धन की (पोषस्य) दृढ़पुष्टि के (ददितारः) देने वाले (स्याम) हों। जो यह (प्रथमा) पहिली (विश्ववारा) सब ही सुखों के स्वीकार कराने योग्य (संस्कृतिः) विद्यासुशिक्षाजनित नीति है (स) वह तेरे लिये इस जगत् में सुखदायक हो और हम लोगों में जो (वरुणः) श्रेष्ठ (अग्निः) अग्नि के समान सब विद्याओं से प्रकाशित अध्यापक है (सः) वह (प्रथमः) सब से प्रथम तेरा (मित्रः) मित्र हो ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। योगविद्या में सम्पन्न शुद्ध-चित्त युक्त योगियों को योग्य है कि जिज्ञासुओं के लिये नित्य योग और विद्यादान देकर उन्हें शारीरिक और आत्मबल से युक्त किया करें ॥१४॥

स प्रथम इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृद्-ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब स्वामी और सेवक के कर्म्म को अगले मन्त्र में कहा है॥

स प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्वाँस्तस्माऽइन्द्राय सुतमाजुहोत स्वाहा। तृम्पन्तु होत्रा मध्वो याः स्विष्टा याः सुप्रीताः सुहुता यत्स्वाहायाडग्नीत् ॥१५॥

पदार्थः—हे शिष्यो ! तुम लोग जैसे वह पूर्व मन्त्र से प्रतिपादित (प्रथमः) आदि मित्र (चिकित्वान्) विज्ञानवान् (बृहस्पतिः) सब विद्यायुक्त वाणी का पालने वाला जिस ऐश्वर्य के लिये प्रयत्न करता है वैसे (तस्मै) उस (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी और (सुतम्) निष्पादित श्रेष्ठ व्यवहार का (आजुहोत) अच्छे प्रकार ग्रहण करो और जैसे (यत्) जो (होत्राः) योग स्त्रीकार करने के योग्य वा (याः) जो (मध्वः) माधुर्य्यादिगुणयुक्त (स्विष्टाः) जिनसे कि अच्छे-अच्छे इष्ट काम बनते हैं (याः) वा जो ऐसी हैं कि (सुहुताः) जिन से अच्छे प्रकार हवन आदि कर्म्म सिद्ध होते हैं (सुप्रीताः) और अच्छे प्रकार प्रसन्न रहती हैं वे विद्वान् स्त्रीजन

(अग्नीत्) वा कोई अच्छी प्रेरणा को प्राप्त हुआ विद्वान् योगी (स्वाहा) सत्यवाणी से (अयाट्) सभों को सत्कृत करता और तृप्त रहता है। आप लोग उन स्त्रियों और उस योगी के समान (तृम्पन्तु) तृप्त हूजिये ॥१५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे योगी विद्वान् और योगिनी विद्वानों की स्त्रीजन परमैश्वर्य्य के लिये यत्न करें और जैसे सेवक अपने स्वामी का सेवन करता है वैसे अन्य पुरुषों को भी उचित है कि उन-उन कामों में प्रवृत्त होकर अपनी अभीष्ट सिद्धि को पहुँचें ॥१५॥

अयं वेन इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। आद्यस्य निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः। उपयाम इत्यस्य साम्नी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब सभाध्यक्ष राजा को क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अयं वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने। इममपाᳬ सङ्गमे सूर्य्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति। उपयामगृहीतोऽसि मर्काय त्वा ॥१६॥

पदार्थः—हे शिल्पविधि के जानने वाले सभाध्यक्ष विद्वन्! आप (उपयामगृहीतः) सेना आदि राज्य के अङ्गों से युक्त (असि) हैं। इस से मैं (रजसः) लोकों के मध्य ((पृश्निगर्भाः) जिन में अवकाश अधिक है उन लोकों के (ज्योतिर्जरायुः) तारागणों को ढांपने वाले के समान (अयम्) यह (वेनः) अति मनोहर चन्द्रमा (चोदयत्) यथायोग्य अपने-अपने मार्ग में अभियुक्त करता है (इमम्) इस चन्द्रमा को (अपाम्) जलों और (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के (संगमे) सम्बन्धी आकर्षणादि विषयों में (शिशुम्) शिक्षा के योग्य बालक को (मतिभिः) विद्वान् लोग अपनी बुद्धियों से (रिहन्ति) सत्कार कर के (न) समान आदर के साथ ग्रहण कर रहे हैं और मैं (मर्काय) दुष्टों को शान्त करने और श्रेष्ठ व्यवहारों के स्थापन करने के लिये (विमाने) अनन्त अन्तरिक्ष में (त्वा) तुझे विविध प्रकार के यान बनाने के लिये स्वीकार करता हूं ॥१६॥

भावार्थः—सभाध्यक्ष को चाहिये कि सूर्य्य और चन्द्रमा के समान श्रेष्ठ गुणों को प्रकाशित और दुष्ट व्यवहारों को शान्त कर के श्रेष्ठ व्यवहार से सज्जन पुरुषों को आह्लाद देवे ॥१६॥

मनो न येष्वित्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

मनो न येषु हवनेषु तिग्मं विपः शच्या वनुथो द्रवन्ता । आ यः शर्य्याभिस्तुविनृम्णोऽअस्याश्रीणीतादिशं गभस्तावेष ते योनिः प्रजाः पाह्यपमृष्टो मर्को देवास्त्वा मन्थिपाः प्रणयन्त्वनाधृष्टासि ।।१७।।

पदार्थः—हे शिल्पविद्या में चतुर सभापते ! (एषः) यह राजधर्म (ते) तेरा (योनिः) सुखपूर्वक स्थिरता का स्थान है । जैसे तू (यः) जो (तुविनृम्णः) अत्यन्त धनयुक्त प्रजा का पालने वाला वा (विपः) बुद्धिमान् प्रजाजन ये तुम दोनों (येषु) जिन हवनादि कर्म्मों में (शर्य्याभिः) वेगों से (तिग्मम्) वज्र के तुल्य अतिदृढ़ (मनः) मन के (न) समान वेग से (द्रवन्ता) चलते हुए (शच्या) बुद्धि के साथ (आवनुथः) परस्पर कामना करते हो वैसे प्रत्येक प्रजापुरुष (अस्य) इस प्रजापति का (गभस्तौ) अंगुली-निर्देश से (आदिशम्) सब दिशाओं में तेज जैसे हो वैसे शत्रुओं को (आ, अश्रीणीत) अच्छे प्रकार दुःख दिया करे । (मर्कः) मरण के तुल्य दुःख देने और कुढङ्ग चालचलन रखने वाला शत्रु (अपमृष्टः) दूर हो और तू (प्रजाः) प्रजा का (पाहि) पालन कर (मंथिपाः) शत्रुओं को मंथने वाले वीरों के रक्षक (देवाः) विद्वान् लोग (त्वा) तुझे (प्र, नयन्तु) प्रसन्न करें । हे प्रजाजनो ! तुम जिस से (अनाधृष्टा) प्रगल्भ निर्भय और स्वाधीन (असि) हो उस राजा की रक्षा किया करो ।।१७।।

भावार्थः—प्रजापुरुष राजकर्म्म में जिस राजा का आश्रय करें वह उन की रक्षा करे और वे प्रजाजन उस न्यायाधीश के प्रति अपने अभिप्राय को शंका-समाधान के साथ कहें । राजा के नौकर चाकर भी न्यायकर्म्म ही से प्रजाजनों की रक्षा करें ।।१७।।

सुप्रजा इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप्-छन्दः । धैवतः स्वरः । मन्थिनोधिष्ठानमित्यस्य प्राजापत्या गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।।

न्यायाधीश को प्रजाजनों के प्रति कैसे वर्त्तना चाहिये यह अगले मन्त्र में कहा है ।।

सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन् परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम् ।

सञ्जग्मानो दिवा पृथिव्या मन्थी मन्थिशोचिषा निरस्तो मर्को मन्थिनोऽधिष्ठानमसि ॥१८॥

पदार्थः—भो न्यायाधीश ! (सुप्रजाः) उत्तम प्रजायुक्त आप (प्रजाः) प्रजाजनों को (प्रजनयन्) प्रकट करते हुए (रायः) धन की (पोषेण) दृढ़ता के साथ (यजमानम्) यज्ञादि अच्छे कर्मों के करने वाले पुरुष को (अभि) (परि) (इहि) सर्वथा धन की वृद्धि से युक्त कीजिये। (मन्थी) वाद विवाद के मंथन करने और (दिवा) सूर्य्य वा (पृथिव्या) पृथिवी के (संजग्मानः) तुल्य धीरतादि गुणों में वर्त्तने वाले आप (मन्थिनः) सदसद्विवेचन करने योग्य गुणों के (अधिष्ठानम्) आधार के समान (असि) हो इस कारण तुम्हारी (मन्थिशोचिषा) सूर्य्य की दीप्ति के समान न्याय-दीप्ति से (मर्कः) मृत्यु देने वाला अन्यायी (निरस्तः) निवृत्त होवे ॥१८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। न्यायाधीश राजा को चाहिये कि धर्म्म से यज्ञ करने वाले सत्पुरुष पुरोहित के समान प्रजा का निरन्तर पालन करे ॥१८॥

ये देवास इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब राजा और सभासदों के काम अगले मन्त्र में कहे हैं ॥

ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ। अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥१९॥

पदार्थः—(ये) जो (महिना) अपनी महिमा से (दिवि) विद्युत् के स्वरूप में (एकादश) ग्यारह अर्थात् प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान, नाग, कूर्म्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय और जीवात्मा (देवासः) दिव्यगुणयुक्त देव (स्थ) हैं (पृथिव्याम्) भूमि के (अधि) ऊपर (एकादश) ग्यारह अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, आदित्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, अहंकार, महत्तत्व और प्रकृति (स्थ) हैं तथा (अप्सुक्षितः) प्राणों में ठहरने वाले (एकादश) ग्यारह श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, नासिका, वाणी हाथ, पांव गुदा, लिंग और मन (स्थ) हैं (ते) वे जैसे अपने-अपने कामों में वर्त्तमान हैं वैसे हे (देवासः) राजसभा के सभासदो ! आप लोग यथायोग्य अपने-अपने कामों में वर्त्तमान होकर (इमम्) इस (यज्ञम्) राज और प्रजा सम्बन्धी व्यवहार का (जुषध्वम्) सेवन किया करें ॥१९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे अपने-अपने

कामों में प्रवृत्त हुए अन्तरिक्षादिकों में सब पदार्थ हैं वैसे राजसभासदों को चाहिये कि अपने-अपने न्यायमार्ग में प्रवृत्त रहें ॥१९॥

उपयामगृहीतोसीत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। यज्ञो देवता। निचृदार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अब राजा और विद्वानों के उपदेश की रीति अगले मन्त्र में कही है॥

उपयामगृहीतोऽस्याग्रयणोऽसि स्वाग्रयणः। पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं विष्णुस्त्वामिन्द्रियेण पातु विष्णुं त्वं पाह्यभि सवनानि पाहि ॥२०॥

पदार्थः—हे सभापते राजन् वा उपदेश करने वाले! जिस कारण आप (उपयामगृहीतः) विनय आदि राजगुणों वा वेदादि शास्त्रबोध से युक्त (असि) हैं इस से (यज्ञम्) राजा और प्रजा की पालना कराने हारे यज्ञ को (पाहि) पालो और (स्वाग्रयणः) जैसे उत्तम विज्ञानयुक्त कर्म्मों को पहुँचाने वाले होते हैं वैसे (आग्रयणः) उत्तम विचारयुक्त कर्म्मों को प्राप्त होने वाले हूजिये इस से (यज्ञपतिम्) यथावत् न्याय की रक्षा करने वाले को (पाहि) पालो। यह (विष्णुः) जो समस्त अच्छे गुण और कर्म्मों को ठीक-ठीक जानने वाला विद्वान् है वह (इन्द्रियेण) मन और धन से (त्वाम्) तुझे (पातु) पाले और तुम उस (विष्णुम्) विद्वान् की (पाहि) रक्षा करो (सवनानि) ऐश्वर्य्य देने वाले कामों की (अभि) सब प्रकार से (पाहि) रक्षा करो ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। राजा और विद्वानों को योग्य है कि वे निरन्तर राज्य की उन्नति किया करें क्योंकि राज्य की उन्नति के विना विद्वान् लोग सावधानी से विद्या का प्रचार और उपदेश भी नहीं कर सकते और न विद्वानों के संग और उपदेश के विना कोई राज्य की रक्षा करने के योग्य होता है तथा राजा प्रजा और उत्तम विद्वानों की परस्पर प्रीति के विना ऐश्वर्य्य की उन्नति और ऐश्वर्य की उन्नति के विना आनन्द भी निरन्तर नहीं हो सकता ॥२०॥

सोमः पवत इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। सोमो देवता। स्वराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। एष त इत्यस्य याजुषी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अब राजा का कर्म्म अगले मन्त्र में कहा है॥

सोमः पवते सोमः पवतेऽस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्रायास्मै सुन्वते

यजमानाय पवतऽइषऽऊर्ज्जे पवतेऽद्भ्यऽओषधीभ्यः पवते द्यावापृथिवीभ्यां पवते सुभूताय पवते विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽएष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥२१॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! जैसे यह (सोमः) सौम्यगुण सम्पन्न राजा (अस्मै) इस (ब्रह्मणे) परमेश्वर वा वेद को जानने के लिये (पवते) पवित्र होता है (अस्मै) इस (क्षत्राय) क्षत्रिय धर्म के लिये (पवते) ज्ञानवान् होता है (अस्मै) इस (सुन्वते) समस्त विद्या के सिद्धान्त को निष्पादन (यजमानाय) और उत्तम संग करने हारे विद्वान् के लिये (पवते) निर्मल होता है (इषे) अन्न के गुण और (ऊर्ज्जे) पराक्रम के लिये (पवते) शुद्ध होता है (अद्भ्यः) जल और प्राण वा (ओषधीभ्यः) सोम आदि ओषधियों को (पवते) जानता है (द्यावापृथिवीभ्याम्) सूर्य्य और पृथिवी के लिये (पवते) शुद्ध होता है (सुभूताय) अच्छे व्यवहार के लिये (पवते) बुरे कामों से बचता है। वैसे (सोमः) सभाजन और प्रजाजन भी सब को यथोक्त जाने माने और आप भी वैसा पवित्र रहें। हे राजन् सभ्यजन वा प्रजाजन ! जिस (ते) आप का (एषः) यह राजधर्म्म (योनिः) घर है उस (त्वा) आप को (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये तथा (त्वा) आप को (विश्वेभ्यः) सम्पूर्ण दिव्यगुणों के लिये हम लोग स्वीकार करते हैं ॥२१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे चन्द्रलोक सब जगत् के लिये हितकारी होता है और जैसे राजा सभा के जन और प्रजाजनों के साथ उन के उपकार के लिये धर्म्म के अनुकूल व्यवहार का आचरण करता है वैसे ही सभ्य पुरुष और प्रजाजन राजा के साथ वर्त्तें। जो उत्तम व्यवहार गुण और कर्म का अनुष्ठान करने वाला होता है वही राजा और सभा-पुरुष न्यायकारी हो सकता है तथा जो धर्मात्मा जन है वही प्रजा में अग्रगण्य समझा जाता है। इस प्रकार ये तीनों परस्पर प्रीति के साथ पुरुषार्थ से विद्या आदि गुण और पृथिवी आदि पदार्थों से अखिल सुख को प्राप्त हो सकते हैं ॥२१॥

उपयामगृहीतोसीत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब कैसे मनुष्य को सेनापति करे यह अगले मन्त्र में कहा है॥

उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा बृहद्वते वयस्वतऽउक्थाव्यं गृह्णामि।

यत्तऽइन्द्र बृहद्वयस्तस्मै त्वा विष्णवे त्वैष ते योनिरुक्थेभ्यस्त्वा देवेभ्य-स्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामि ॥२२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सेनापते ! तू (उपयामगृहीतः) अच्छे नियमों से विद्या को पढ़ने वाला (असि) है, इस हेतु से (बृहद्वते) जिस के अच्छे बड़े बड़े कर्म्म हैं (वयस्वते) और जिसकी दीर्घ आयु है, उस (इन्द्राय) परमैश्वर्य्यवाले सभापति के लिये (उक्थाव्यम्) प्रशंसनीय स्तोत्र वा विशेष शस्त्रविद्या वाले (त्वा) तेरा (गृह्णामि) ग्रहण जैसे मैं करता हूं, वैसे (यत्) जो (ते) तेरा (बृहत्) अत्यन्त (वयः) जीवन है (तस्मै) उस के पालन करने के अर्थ और (विष्णवे) ईश्वरज्ञान वा वेदज्ञान के लिये (त्वा) तुझे (गृह्णामि) स्वीकार करता हूँ और (एषः) यह सेना का अधिकार (ते) तेरा (योनिः) स्थित होने के लिये स्थान है। हे सेनापते ! (उक्थेभ्यः) प्रशंसायोग्य वेदोक्त कर्मों के लिये (त्वा) तुझे (देवेभ्यः) और विद्वानों वा दिव्य गुणों के लिये (देवाव्यम्) उनके पालन करने वाले (त्वा) तुझ को (यज्ञस्य) राज्यपालनादि व्यवहार के (आयुषे) बढ़ाने के लिये (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं ॥२२॥

भावार्थः—सब विद्याओं के जानने वाले विद्वान् को योग्य है कि राज्य व्यवहार में सेना के वीर पुरुषों की रक्षा करने के लिये अच्छी शिक्षायुक्त, शस्त्र और अस्त्र विद्या में परम प्रवीण यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले वीर पुरुष को सेनापति के काम में युक्त करे और सभापति तथा सेनापति को चाहिये कि परस्पर सम्मति कर के राज्य और यज्ञ को बढ़ावें ॥२२॥

मित्रावरुणाभ्यान्त्वेत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। मित्रावरुणाभ्यामित्यस्यानुष्टुप्, इन्द्राग्निभ्यामित्यस्य प्राजापत्यानुष्टुप्, इन्द्रावरुणाभ्यामित्यस्य स्वराट् साम्न्यनुष्टुप् छन्दांसि। गान्धारः स्वरः। इन्द्राबृहस्पतिभ्यामित्यस्य भुरिगार्ची गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥ इन्द्राविष्णुभ्यामित्यस्य भुरिक् साम्न्यनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरश्च॥

सब विद्याओं में प्रवीण पुरुष को सभा का अधिकारी करे यह अगले मन्त्र में कहा है॥

मित्रावरुणाभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राय त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राग्निभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रावरुणाभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राबृहस्पतिभ्यां त्वा

देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राविष्णुभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामि ॥२३॥

पदार्थः—हे सभापते ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की इच्छा करने वाला मैं (यज्ञस्य) अग्निहोत्र से लेकर राज्य पालन पर्य्यन्त यज्ञ की (आयुषे) उन्नति होने के लिये (मित्रावरुणाभ्याम्) मित्र और उत्तम विद्यायुक्त पुरुषों के अर्थ (देवाव्यम्) विद्वानों की रक्षा करने वाले (त्वा) तुझ को (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं। हे सेनापते विद्वन् ! (यज्ञस्य) सत्संगति करने की (आयुषे) उन्नति के लिये (इन्द्राय) परमैश्वर्य्यवान् पुरुष के अर्थ (देवाव्यम्) विद्वानों की रक्षा करने वाले (त्वा) तुझ को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ। हे शस्त्रास्त्रविद्या के जानने वाले प्रवीण ! (यज्ञस्य) शिल्पविद्या के कामों की सिद्धि की (आयुषे) प्राप्ति के लिये (इन्द्राग्निभ्याम्) विजुली और प्रसिद्ध आग के गुण प्रकाश होने के अर्थ (देवाव्यम्) दिव्य विद्या बोध की रक्षा करने वाले (त्वा) तुझ को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ। हे शिल्पिन् ! (यज्ञस्य) क्रिया-चतुराई का (आयुषे) ज्ञान होने के लिए (इन्द्रावरुणाभ्याम्) विजुली और जल के गुण प्रकाश होने के अर्थ (देवाव्यम्) उन की विद्या जानने वाले (त्वा) तुझ को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं। हे अध्यापक ! (यज्ञस्य) पढ़ने-पढ़ाने की (आयुषे) उन्नति के लिये (इन्द्राबृहस्पतिभ्याम्) राजा और शास्त्रवेत्ताओं के अर्थ (देवाव्यम्) प्रशंसित योगविद्या के जानने और प्राप्त कराने वाले (त्वा) तुझ को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं। हे विद्वन् ! (यज्ञस्य) विज्ञान की (आयुषे) वढ़ती के लिये (इन्द्राविष्णुभ्याम्) ईश्वर और वेदशास्त्र के जानने के अर्थ (देवाव्यम्) ब्रह्मज्ञानी को तृप्त करने वाले (त्वा) तुझ को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं ॥२३॥

भावार्थः—प्रजाजनों को उचित है कि सकल शास्त्र का प्रचार होने के लिये सब विद्याओं में कुशल और अत्यन्त ब्रह्मचर्य्य के अनुष्ठान करने वाले पुरुष को सभापति करें और वह सभापति भी परम प्रीति के साथ सकल शास्त्र का प्रचार करता कराता रहे ॥२३॥

मूर्द्धानमित्यस्य भारद्वाज ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

इसके अनन्तर विद्वानों का कर्म्म अगले मन्त्र में कहा है॥

मूर्द्धानं दिवोऽअरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृतऽआ जातमग्निम्।
कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥२४॥

पदार्थः—जैसे (देवाः) धनुर्वेद के जानने वाले विद्वान् लोग उस धनुर्वेद की

शिक्षा से (दिवः) प्रकाशमान सूर्य के (मूर्द्धानम्) शिर के समान (पृथिव्याः) पृथिवी के गुणों को (अरतिम्) प्राप्त होने वाले (ऋते) सत्य मार्ग में (आजातम्) सत्य व्यवहार में अच्छे प्रकार प्रसिद्ध (वैश्वानरम्) समस्त मनुष्यों को आनन्द पहुंचाने और (जनानाम्) सत्पुरुषों के (अतिथिम्) अतिथि के समान सत्कार करने योग्य और (आसन्) अपने शुद्ध यज्ञरूप मुख में (पात्रम्) समस्त शिल्प-व्यवहार की रक्षा करने (कविम्) और अनेक प्रकार से प्रदीप्त होने वाले (अग्निम्) शुभगुण प्रकाशित अग्नि को (सम्राजम्) एक-चक्र राज्य करने वाले के समान (आ) अच्छे प्रकार से (जनयंत) प्रकाशित करते हैं वैसे सब मनुष्यों को करना योग्य है ॥२४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सत्पुरुष धनुर्वेद के जानने वाले परोपकारी विद्वान् लोग धनुर्वेद में कही हुई क्रियाओं से यानों और शस्त्रास्त्र विद्या में अनेक प्रकार से अग्नि को प्रदीप्त कर शत्रुओं को जीता करते हैं, वैसे ही अन्य सब मनुष्यों को भी अपना आचरण करना योग्य है ॥२४॥

उपयामगृहीत इत्यस्य भरद्वाज ऋषिः। वैश्वानरो देवता। याजुष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। ध्रुवोसीत्यस्य ध्रुवमित्यस्य च विराडार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है ॥

उपयामगृहीतोऽसि ध्रुवोऽअसि ध्रुवक्षितिर्ध्रुवाणां ध्रुवतमोऽच्युतानामच्युतक्षित्तमऽएष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा। ध्रुवं ध्रुवेण मनसा वाचा सोममवनयामि। अथा नऽइन्द्रऽइद्विशोऽसपत्नाः समनसस्करत् ॥२५॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! आप (उपयामगृहीतः) शास्त्रप्राप्त नियमों से स्वीकार किये जाते (असि) हैं, ऐसे ही (ध्रुवः) स्थिर (असि) हैं कि (ध्रुवक्षितिः) जिन आप में भूमि स्थिर हो रही है और (ध्रुवाणाम्) स्थिर आकाश आदि पदार्थों में (ध्रुवतमाः) अत्यन्त स्थिर (असि) हैं तथा (अच्युतानाम्) अविनाशी जगत् का कारण और अनादि सिद्ध जीवों में (अच्युतक्षित्तमः) अतिशय करके अविनाशीपन बसाने वाले हैं। (एषः) यह सत्य के मार्ग का प्रकाश (ते) आप के (योनिः) निवासस्थान के समान है (वैश्वानराय) समस्त मनुष्यों को सत्य मार्ग में प्राप्त कराने वाले वा इस राज्यप्रकाश के लिये (ध्रुवेण) दृढ़ (मनसा) मन और (वाचा) वाणी से (सोमम्) समस्त जगत् के उत्पन्न करने वाले (त्वा) आप को (ध्रुवम्) निश्चयपूर्वक

जैसे हो वैसे (अवनयामि) स्वीकार करता हूं (अथ) इस के अनन्तर (इन्द्रः) सब दुःख के विनाश करने वाले आप (नः) हमारे (विशः) प्रजाजनों को (असपत्नाः) शत्रुओं से रहित और (समनसः) एक मन अर्थात् एक दूसरे के चाहने वाले (इत्) ही (करत्) कीजिये ॥२५॥

भावार्थः—जो नित्य पदार्थों में नित्य और स्थिरों में भी स्थिर परमेश्वर है, उस समस्त जगत् के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर की प्राप्ति और योगाभ्यास के अनुष्ठान से ठीक-ठीक ज्ञान हो सकता है, अन्यथा नहीं ॥२५॥

यस्त इत्यस्य देवश्रवा ऋषिः। यज्ञो देवता। स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अब ईश्वर यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले को उपदेश करता है॥

यस्ते॑ द्र॒प्स स्कन्द॑ति॒ यस्ते॑ऽअ॒ꣳशुर्ग्राव॑च्युतो धि॒षण॑योरु॒पस्था॑त्। अ॒ध्व॒र्य्योर्वा॒ परि॑ वा॒ यः प॒वित्रा॒त्तं ते॑ जु॒होमि॒ मन॑सा॒ वष॑ट्कृत॒ꣳ स्वाहा॑ दे॒वाना॑मुत्क्रम॑णमसि ॥२६॥

पदार्थः—हे यज्ञपते! (यः) जो (ते) तेरा (द्रप्सः) यज्ञ के पदार्थों का समूह (स्कन्दति) पवन के साथ सब जगह में प्राप्त होता है और (यः) जो (ते) तेरे यज्ञ से युक्त (ग्रावच्युतः) मेघमण्डल से छूटा हुआ (अंशुः) यज्ञ के पदार्थों का विभाग (धिषणयोः) प्रकाश और भूमि के (पवित्रात्) पवित्र (उपस्थात्) गोद के समान स्थान से (वा) अथवा (यः) जो (अध्वर्य्योः) यज्ञ करने वालों से (वा) अथवा (परि) सब से प्रकाशित होता है इस से (तम्) उस यज्ञ को मैं (ते) तेरे लिये (स्वाहा) सत्यवाणी और (मनसा) मन से (वषट्कृतम्) किये हुए संकल्प के समान (जुहोमि) देता हूँ अर्थात् उसके फलदायक होने से तेरे लिये उस पदार्थ को पहुंचाता हूं जिस लिये यज्ञ का अनुष्ठान करने हारा तू (देवानाम्) विद्वानों के लिये (उत्क्रमणम्) ऊंची श्रेणी को प्राप्त करने वाले ऐश्वर्य्य के समान (असि) है इस से तुझ को सुख प्राप्त होता है ॥२६॥

भावार्थः इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। होता आदि विद्वान् लोग अत्यन्त दृढ़ सामग्री से यज्ञ करते हुए जिन सुगन्धि आदि पदार्थों को अग्नि में छोड़ते हैं वे पवन और जलादि पदार्थों को पवित्र कर उस के साथ पृथिवी पर आ और सब प्रकार के रोगों को निवृत्त कर के सब प्राणियों को आनन्द देते हैं इस कारण सब मनुष्यों को इस यज्ञ का सदा सेवन करना चाहिये ॥२६॥

प्राणायेत्यस्य देवश्रवा ऋषिः। यज्ञपतिर्देवता। प्राणायेत्यस्य व्यानायेत्यस्य चासुर्य्यनुष्टुप्, उदानायेत्यस्यासुर्य्युष्णिक्, वाचे म इत्यस्य साम्नी गायत्री, क्रतूदक्षाभ्यामित्यस्यासुरी गायत्री, श्रोत्राय म इत्यस्यासुर्य्यनुष्टुप्, चक्षुर्भ्यामित्यस्य चासुर्य्युष्णिक् छन्दांसि। अनुष्टुभो गान्धारो गायत्र्याः षड्ज उष्णिज ऋषभश्च स्वरः॥

फिर पठनपाठन यज्ञ के करने वाले का विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

प्राणाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व व्यानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वोदानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व वाचे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व क्रतूदक्षाभ्यां मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व श्रोत्राय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व चक्षुर्भ्यां मे वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम्॥२७॥

पदार्थः—हे (वर्चोदाः) यथायोग्य विद्या पढ़ने पढ़ाने रूप यज्ञकर्म करने वाले आप (मे) मेरे (प्राणाय) हृदयस्थ जीवन के हेतु प्राणवायु और (वर्चसे) वेदविद्या के प्रकाश के लिये (पवस्व) पवित्रता से वर्त्तें। हे (वर्चोदाः) ज्ञानदीप्ति के देने वाले जाठराग्नि के समान आप (मे) मेरे (व्यानाय) सब शरीर में रहने वाले पवन और (वर्चसे) अन्न आदि पदार्थों के लिये (पवस्व) पवित्रता से प्राप्त होवें। हे (वर्चोदाः) विद्याबल देने वाले आप (मे) (उदानाय) श्वास से ऊपर को आने वाले उदान-संज्ञक पवन और (वर्चसे) पराक्रम के लिये (पवस्व) ज्ञान दीजिये। हे (वर्चोदाः) सत्य बोलने का उपदेश करने वाले आप (मे) मेरी (वाचे) वाणी और (वर्चसे) प्रगल्भता के लिये (पवस्व) प्रवृत्त हूजिये। (वर्चोदाः) विज्ञान देने वाले आप (मे) मेरे (क्रतूदक्षाभ्याम्) बुद्धि और आत्मबल की उन्नति और (वर्चसे) अच्छे बोध के लिये (पवस्व) शिक्षा कीजिये। हे (वर्चोदा) शब्दज्ञान के देने वाले यज्ञपति! आप (मे) मेरे (श्रोत्राय) शब्द ग्रहण करने वाले कर्णेन्द्रिय के लिये (वर्चसे) शब्दों के अर्थ और सम्बन्ध का (पवस्व) उपदेश करें। हे (वर्चोदसौ) सूर्य्य और चन्द्रमा के समान अतिथि और पढ़ाने वाले आप दोनों (मे) मेरे (चक्षुर्भ्याम्) नेत्रों के लिये (वर्चसे) शुद्ध सिद्धांत के प्रकाश को (पवेथाम्) प्राप्त हूजिये॥२७॥

भावार्थः—जो विद्या की वृद्धि के लिये पठनपाठन रूप यज्ञकर्म्म करने वाला मनुष्य है वह अपने यज्ञ के अनुष्ठान से सब की पुष्टि तथा संतोष करने वाला होता है इस से ऐसा प्रयत्न सब मनुष्यों को करना उचित है॥२७॥

आत्मन इत्यस्य देवश्रवा ऋषिः। यज्ञपतिर्देवता। ब्राह्मी बृहतीच्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

आत्मनें मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वौजसे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वायुषे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व विश्वाभ्यो मे प्रजाभ्यो वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ।।२८।।

पदार्थः हे (वर्चोदाः) योग और ब्रह्मविद्या देने वाले विद्वन् ! आप (मे) मेरे (आत्मने) इच्छादि गुणयुक्त चेतन के लिये (वर्चसे) अपने आत्मा के प्रकाश को (पवस्व) प्राप्त कीजिये । हे (वर्चोदाः) उक्त विद्या देने वाले विद्वन् ! आप (मे) मेरे (ओजसे) आत्मबल होने के लिये (वर्चसे) योगबल को (पवस्व) जनाइये । हे (वर्चोदाः) बल देने वाले ! (मे) मेरे (आयुषे) जीवन के लिये (वर्चसे) रोग छुड़ाने वाले ओषध को (पवस्व) प्राप्त कीजिये । हे (वर्चोदसौ) योगविद्या के पढ़ने-पढ़ाने वालो ! तुम दोनों (मे) मेरी (विश्वाभ्यः) समस्त (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (वर्चसे) सद्‌गुण प्रकाश करने को (पवेथाम्) प्राप्त कराया करो ।।२८।।

भावार्थः—योगविद्या के विना कोई भी मनुष्य पूर्ण विद्यावान् नहीं हो सकता और न पूर्णविद्या के विना अपने स्वरूप और परमात्मा का ज्ञान कभी होता है और न इस के विना कोई न्यायाधीश सत्पुरुषों के समान प्रजा की रक्षा कर सकता है इसलिये सब मनुष्यों को उचित है कि इस योगविद्या का सेवन निरन्तर किया करें ।।२८।।

कोऽसीत्यस्य देवश्रवा ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । आर्चीपंक्तिश्छन्दः । भूर्भुवः स्वरित्यस्य भुरिक्साम्नी पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ।।

सभापति राजा प्रजा सेना और सभ्यजनों को क्या-क्या कहे यही अगले मन्त्र में कहा है ।।

कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि । यस्य ते नामामन्महि यं त्वा सोमेनातीतृपाम । भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳬं सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ।।२९।।

पदार्थः—सभा सेना और प्रजा में रहने वाले हम लोग पूछते हैं कि तू (कः) कौन (असि) है (कतमः) बहुतों के बीच कौन सा (असि) है (कस्य) किस का (असि) है (कः) क्या (नाम) तेरा नाम (असि) है (यस्य) जिस (ते) तेरी (नाम) संज्ञा को (अमन्महि) जानें और (यम्) जिस (त्वा) तुझ को (सोमेन) धन आदि पदार्थों से (अतीतृपाम) तृप्त करें । यह कह उन से सभापति कहता है कि (भूः)

भूमि (भुवः) अन्तरिक्ष और (स्वः) आदित्यलोक के सुख के सदृश आत्मसुख की कामना करने वाला मैं तुम (प्रजाभिः) प्रजा लोगों के साथ (सुप्रजाः) श्रेष्ठ प्रजा वाला (वीरैः) तुम वीरों से (सुवीरः) श्रेष्ठ वीरयुक्त (पोषैः) पुष्टिकारक पदार्थों से (सुपोषः) अच्छा पुष्ट (स्याम्) होऊं अर्थात् तुम सब लोगों से पृथक् न तो स्वतन्त्र मेरा कोई नाम और न कोई विशेष सम्बन्धी है ॥२९॥

भावार्थः—सभापति राजा को योग्य है कि सत्य न्याययुक्त प्रिय व्यवहार से सभा सेना और प्रजा के जनों की रक्षा करके उन सभों को उन्नति देवे और अति प्रबल वीरों को सेना में रक्खे जिस से कि बहुत सुख बढ़ाने वाले राज्य से भूमि आदि लोकों के सुख को प्राप्त होवे ॥२९॥

उपयामगृहीतोसीत्यस्य देवश्रवा ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। आद्यस्य साम्नी गायत्री द्वितीयस्यासुर्य्यनुष्टुप् तृतीयचतुर्थपंचमानां साम्नी गायत्री पष्ठस्यासुर्य्यनुष्टुप् सप्तमाष्टमयोर्याजुषी पंक्तिर्नवमस्य साम्नी गायत्री दशमस्यासुर्य्यनुष्टुप् एकादशस्य साम्नी गायत्री द्वादशस्यासुर्य्यनुष्टुप् त्रयोदशस्यासुर्य्युष्णिक् छन्दांसि। अत्र गायत्र्याः षड्जः, अनुष्टुभो गांधारः, पंक्तेः पञ्चमः, उष्णिज ऋषभश्च स्वराः ॥

फिर भी विषयान्तर से वही उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उपयामगृहीतोऽसि मधवे त्वोपयामगृहीतोऽसि माधवाय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुक्राय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुचये त्वोपयामगृहीतोऽसि नभसे त्वोपयामगृहीतोऽसि नभस्याय त्वोपयामगृहीतोऽसीषे त्वोपयामगृहीतोऽस्यूर्ज्जे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहसे त्वोपयामगृहीतोसि सहस्याय त्वोपयामगृहीतोऽसि तपसे त्वोपयामगृहीतोऽसि तपस्याय त्वोपयामगृहीतोऽस्यꣳहसस्पतये त्वा ॥३०॥

पदार्थः—हे राजन्! जिस से आप (उपयामगृहीतः) अच्छे-अच्छे राज्य प्रबन्ध के नियमों से स्वीकार किये हुए (असि) हैं, इस से (त्वा) आपको (मधवे) चैत्र मास की सभा के लिये अर्थात् चैत्र मास प्रसिद्ध सुख कराने वाले व्यवहार की रक्षा के लिये हम लोग स्वीकार करते हैं, सभापति कहता है कि हे सभासदो तथा प्रजा वा सेनाजनो! तुम में से एक-एक (उपयामगृहीतः) अच्छे-अच्छे नियमों से स्वीकार किया हुआ (असि) है इसलिये तुम को चैत्र मास के सुख के लिये स्वीकार करता हूं इसी प्रकार बारहों महीनों के यथोक्त सुख के लिये राजा, राजसभासद्, प्रजाजन और सेनाजन परस्पर एक दूसरे को स्वीकार करते रहें ॥३०॥

भावार्थः—सभाध्यक्ष राजा को चाहिये कि यथोचित समय को प्राप्त होकर श्रेष्ठ राज्य-व्यवहार से प्रजाजनों के लिये सब सुख देता रहे और प्रजाजन भी राजा की आज्ञा के अनुकूल व्यवहारों में वर्त्ता करें ॥३०॥

इन्द्राग्नीत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब राज्य के व्यवहार से नियत राजकर्म्म में प्रवृत्त हुए राजा और प्रजा के पुरुषों के प्रति कोई सत्कार से कहता है यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्राग्नीऽआगतꣳ सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राग्निभ्यां त्वैष ते योनिरिन्द्राग्निभ्यां त्वा ॥३१॥

पदार्थः—हे (इन्द्राग्नी) सूर्य्य और अग्नि के तुल्य प्रकाशमान सभापति और सभासद् ! तुम दोनों (आगतम्) आओ मिलकर (गीर्भिः) अच्छी शिक्षायुक्त वाणियों से हमारे लिये (वरेण्यम्) श्रेष्ठ(नभः) सुख को (सुतम्) उत्पन्न करो तथा(इषिता) पढ़ाये हुए वा हमारी प्रार्थना को प्राप्त हुए तुम (धिया) अपनी बुद्धि वा राजशासन कर्म से (अस्य) इस सुख की (पातम्) रक्षा करो। वे राजा और सभासद् कहते हैं कि हे प्रजाजन ! तू (उपयामगृहीतः) प्रजा के धर्म्म और नियमों से स्वीकार किया हुआ (असि) है (त्वा) तुझ को (इन्द्राग्निभ्याम्) उक्त महाशयों के लिये हम लोग वैसा ही मानते हैं (एषः) यह राजनीति (ते) तेरा (योनिः) घर है (इन्द्राग्निभ्याम्) उक्त महाशयों के लिये (त्वा) तुझ को हम चिताते हैं अर्थात् राजशासन को प्रकाशित करते हैं ॥३१॥

भावार्थः—अकेला पुरुष यथोक्त राजशासन कर्म नहीं कर सकता इस कारण और श्रेष्ठ पुरुषों का सत्कार करके राज कार्य्यों में युक्त करे। वे भी यथायोग्य व्यवहार में इस राजा का सत्कार करें ॥३१॥

आ घा ये अग्निमित्यस्य त्रिशोक ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । आद्यस्यार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । उपेत्यस्याच्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब उक्त विषय को प्रकारान्तर से अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ घाऽये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् । येषामिन्द्रो युवा सखा । उपयामगृहीतोऽस्यग्नीन्द्राभ्यां त्वैष ते योनिरग्नीन्द्राभ्यां त्वा ॥३२॥

पदार्थः— (ये) जो वेदविद्यासम्पन्न विद्वान् सभासद् (अग्निम्) विद्युत् आदि अग्नि (घ) ही को (इन्धते) प्रकाशित करते और (आनुषक्) अनुक्रम अर्थात् यज्ञ के यथोक्त क्रम से (बर्हिः) अन्तरिक्ष का (आ) (स्तृणन्ति) आच्छादन करते हैं तथा (येषाम्) जिनका (युवा) सर्वाङ्ग पुष्ट सर्वाङ्ग सुन्दर सर्वविद्या विचक्षण तरुण अवस्था और (इन्द्रः) सकलैश्वर्य्ययुक्त सभापति (सखा) मित्र है (अग्नीन्द्राभ्याम्) उन अग्नि और सूर्य्य के समान प्रकाशमान सभासदों से (उपयामगृहीतः) प्रजाधर्म्म से युक्त तू ग्रहण किया गया (असि) है। जिस (ते) तेरा (एषः) न्याययुक्त सिद्धान्त (योनिः) घर के सदृश है उस (त्वा) तुझ को प्राप्त हुए हम लोग (अग्नीन्द्राभ्याम्) उक्त महापदार्थों के लिये (त्वा) तुझ को उपदेश करते हैं ॥३२॥

भावार्थः—राजधर्म्म में सब काम सभा के आधीन होने से विचार-सभाओं में प्रवृत्त राजवर्गीय जनों में से दो तीन वा बहुत सभासद् मिलकर अपने विचार से जिस अर्थ को सिद्ध करें उसी के अनुकूल राजपुरुष और प्रजाजन अपना वर्त्ताव रक्खें ॥३२॥

ओमास इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। आद्यस्यार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। उपयाम इत्यस्यार्ची बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पढ़ने और पढ़ाने वालों का परस्पर व्यवहार अगले मन्त्र में कहा है॥

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवासऽआगत। दाश्वाꣳसो दाशुषः सुतम्। उपयामगृहीतोऽसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽएष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥३३॥

पदार्थः—हे (चर्षणीधृतः) मनुष्यों की पुष्टि संतुष्टि करने और (ओमासः) उत्तम उत्तम गुणों से रक्षा करने हारे (विश्वे) समस्त (देवासः) विद्वानो! तुम (दाश्वांसः) उत्कृष्ट ज्ञान को देते हुए (दाशुषः) दान करने वाले उत्तम जन का (सुतम्) जो अच्छे कामों के करने से ऐश्वर्य्य को प्राप्त होने वाला बालक है उसके (आ, गत) सन्मुख आओ। हे उक्त दानशील पुरुष के पढ़ने वाले बालक! तू (उपयामगृहीतः) पढ़ाने के नियमों से ग्रहण किया हुआ (असि) है, इसलिये (त्वा) तुझे (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये अर्थात् उन की सेवा करने को आज्ञा देता हूँ, जिसलिये (ते) तेरा (एषः) यह विद्या और अच्छी २ शिक्षा का संग्रह होना (योनिः) कारण है इसलिये (त्वा) तुझे (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) विद्वानों से विद्या और अच्छी २ शिक्षा दिलाता हूँ ॥३३॥

भावार्थः— सब विद्वान् और विदुषी स्त्रियों की योग्यता है कि समस्त

बालक और कन्याओं के लिये निरन्तर विद्यादान करें। राजा और धनी आदि लोगों के धन आदि पदार्थों से अपनी जीविका करें और वे राजा आदि धनी जन भी विद्या और अच्छी शिक्षा से प्रवीण होकर अपने पढ़ाने वाले विद्वान् वा विदुषी स्त्रियों को धन आदि अच्छे २ पदार्थों को देकर उनकी सेवा करें माता और पिता आठ २ वर्ष के पुत्र वा आठ २ वर्ष की कन्याओं को विद्याभ्यास ब्रह्मचर्य्य सेवन और अच्छी शिक्षा किये जाने के लिये विद्वान् और विदुषी स्त्रियों को सौंप दें वे भी विद्या ग्रहण करने में नित्य मन लगावें और पढ़ाने वाले भी विद्या और अच्छी शिक्षा देने में नित्य प्रयत्न करें ॥३३॥

विश्वेदेवास आगत इत्यस्य गृत्समद ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। आद्यस्यार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। उपयाम इत्यस्य निचृदार्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

अब प्रतिदिन पढ़ाने की योग्यता का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

विश्वे देवासऽआगत शृणुता मऽइमꣳ हवम्। एदं बर्हिर्निषीदत। उपयामगृहीतोऽसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽएष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥३४॥

पदार्थः—हे पूर्वमन्त्रप्रतिपादित गुणकर्म्मस्वभाववाले (विश्वेदेवासः) समस्त विद्वान् लोगो! आप हमारे समीप (आगत) आइये और हम लोगों के दिये हुए (इदम्) इस (बर्हिः) आसन पर (आ निषीदत) यथावकाश सुखपूर्वक बैठिये (मे) मेरी (हवम्) इस स्तुतियुक्त वाणी को (शृणुता) सुनिये। गृहस्थ अपने पुत्रादिकों के प्रति कहे कि हे पुत्र! जिस कारण तू (उपयामगृहीतः) विद्वानों का ग्रहण किया हुआ (असि) है, इस से हम (त्वा) तुझे (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) अच्छे २ विद्या पढ़ाने वाले विद्वानों को सौंपें, जिसलिये (एषः) यह समस्त विद्या का संग्रह (ते) तेरा (योनिः) घर के तुल्य है इसलिये (त्वा) तुझे (विश्वेभ्यः) (देवेभ्यः) समस्त उक्त महाशयों से विद्या दिलाना चाहते हैं ॥३४॥

भावार्थः—विद्वान् लोगों को उचित है कि प्रतिदिन विद्यार्थियों को पढ़ावें और परम विद्वान् पण्डित लोग उन की परीक्षा भी प्रत्येक महीने में किया करें उस परीक्षा से जो तीक्ष्णबुद्धियुक्त परिश्रम करने वाले प्रतीत हों उन को अत्यन्त परिश्रम से पढ़ाया करें ॥३४॥

इन्द्र इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। निचृदार्षीत्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः। उपयाम इत्यस्यार्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

अब राजा पढ़ाने आदि व्यवहार की रक्षा को किस प्रकार से करे यह
अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्र मरुत्वऽइह पाहि सोमं यथा शार्य्यातेऽअपिबः सुतस्य । तव प्रणीती तव शूर शर्म्मन्नाविवासन्ति कवयः सुयज्ञाः । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सब विघ्नों के दूर करने वाले सब सम्पत्ति से युक्त तेजस्वी (मरुत्वः) प्रशंसनीय धर्म्मयुक्त प्रजा पालने हारे सभापति राजन् ! आप (इह) इस संसार में (यथा) जैसे (शार्य्यति) अपने हाथ पैरों के परिश्रम से निष्पन्न किये हुए व्यवहार में (सुतस्य) अभ्यास किये हुए विद्या रस को (अपिबः) पी चुके हो वैसे (सोमम्) समस्त अच्छे गुण ऐश्वर्य्य और सुख करने वाले ! पठनपाठन-रूपी यज्ञ को (पाहि) पालो । हे (शूर) धर्म्म-विरोधियों को दण्ड देने वाले (तव) तुम्हारे (शर्म्मन्) राज्य घर में (सुयज्ञाः) अच्छे पढ़ने पढ़ाने वाले विद्वानों के समान (कवयः) बुद्धिमान् लोग (तव) तुम्हारी (प्रणीती) उत्तम नीति का (आविवासन्ति) सेवन करते हैं । हे शूर ! जिस कारण तुम (उपयामगृहीतः) प्रजापालनादि नियमों से स्वीकार किये हुए (असि) हो, इस से (त्वा) (इन्द्राय) परमैश्वर्य और (मरुत्वते) प्रजा-सम्बन्ध के लिये हम लोग चाहते हैं कि जो (ते) तेरा (एषः) यह विद्या का प्रचार (योनिः) घर के समान है । इससे (त्वा) तुम को (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य और (मरुत्वते) प्रजा-पालन सम्बन्ध के लिये मानते हैं ॥३५॥

भावार्थः—सब विद्वानों को उचित है कि जैसे न्यायाधीशों की न्याय-युक्त सभा से जो आज्ञा हो उसको कभी उल्लङ्घन न करें वैसे वे राजसभा के सभासद् भी वेदज्ञ विद्वानों की आज्ञा को उल्लङ्घन न करें जो सब गुणों से उत्तम हो उसी को सभापति करें और वह सभापति भी उत्तम नीति से समस्त राज्य के प्रबन्धों को चलावे ॥३५॥

मरुत्वन्तमित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । उपयामेत्यस्य द्वितीयभागस्यार्षी तृतीयस्य साम्न्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी राजा और प्रजा को क्या करना चाहिये यह उपदेश
अगले मन्त्र में किया है ॥

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यꣳ शासमिन्द्रम्। विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रꣳ सहोदामिह तꣳ हुवेम। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते। उपयामगृहीतोऽसि मरुतां त्वौजसे ॥३६॥

पदार्थः—(कवयः) पूर्वोक्त हम विद्वान् लोग (नूतनाय) नवीन २ (अवसे) रक्षा आदि गुणों के लिये (मरुत्वन्तम्) प्रशंसनीय प्रजायुक्त (वृषभम्) सब से उत्तम (वावृधानम्) अत्यन्त शुभ गुण और कर्मों में उन्नति को प्राप्त (अकवारिम्) समस्त धर्मविरोधी दुष्टों का निवारण करने वाले (दिव्यम्) शुद्ध (विश्वासाहम्) सर्व सहनशील (उग्रम्) प्रचण्ड पराक्रमयुक्त (सहोदाम्) सहायता (शासम्) और सब को शिक्षा देने वाले (तम्) उस पूर्वोक्त (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्ययुक्त सभापति को निम्नलिखित प्रकार से (हुवेम) स्वीकार करें। हे मुख्य सभासद् राजन्! तू जिस कारण (उपयामगृहीतः) समस्त बड़े-बड़े और छोटे-छोटे नियमों की सामग्री से सहित (असि) है, इस से (त्वा) तुझ को (मरुत्वते) प्रशंसनीय प्रजायुक्त (इन्द्राय) परमैश्वर्यवान् सभापति होने के लिये स्वीकार करते हैं (एषः) यह सभा में न्याय करने का काम (ते) तेरा (योनिः) घर के तुल्य है इस से (त्वा) तुझे (मरुत्वते) उत्तम प्रजा से युक्त (इन्द्राय) अत्यन्त ऐश्वर्य के पालन और वृद्धि होने के लिये स्वीकार करते हैं और जिस कारण तू (उपयामगृहीतः) उक्त सब नियम और उपनियमों से संयुक्त (असि) है, इस से (मरुताम्) प्रजाजनों का (ओजसे) बल बढ़ाने के लिये (त्वा) तुझे ग्रहण करते हैं ॥३६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पिछले मन्त्र से (कवयः) इस पद की अनुवृत्ति आती है। प्रजाजनों को योग्य है कि जो सर्वोत्तम समस्त विद्याओं में निपुण सकल शुभगुणयुक्त विद्वान् शूरवीर हो उस को सभा के मुख्य काम में स्थापन करें और वह सभा के सब कामों में स्थापित किया हुआ सभापति सत्य न्याययुक्त धर्म्म कार्य्य से प्रजा के उत्साह की उन्नति करे ॥३६॥

सजोषेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। आद्यस्य निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्द उपयामेत्यस्य प्राजापत्या त्रिष्टुप् छन्दसी। धैवतः स्वरः॥

अब सेनापति का काम अगले मन्त्र में कहा है॥

सजोषाऽइन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान्।

जहि शत्रूँ१ऽरप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥३७॥

पदार्थः—ईश्वर कहता है कि हे (इन्द्र) सब सुखों के धारण करने हारे (शूर) शत्रुओं के नाश करने में निर्भय! जिस से तू (उपयामगृहीतः) सेना के अच्छे-अच्छे नियमों से स्वीकार किया हुआ (असि) है इससे (मरुत्वते) जिस में प्रशंसनीय वायु की अस्त्रविद्या है उस (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य पहुंचाने वाले युद्ध के लिये (त्वा) तुझ को उपदेश करता हूं कि (ते) तेरा (एषः) यह सेनाधिकार (योनिः) इष्ट सुखदायक है इस से (मरुत्वते) (इन्द्राय) उक्त युद्ध के लिये यत्न करते हुए तुझ को मैं अंगीकार करता हूँ और (सजोषाः) सब से समान प्रीति करने वाला (सगणः) अपने मित्रजनों के सहित तू (मरुद्भिः) जैसे पवन के साथ (वृत्रहा) मेघ के जल को छिन्न भिन्न करने वाला सूर्य्य (सोमम्) समस्त पदार्थों के रस को खींचता है वैसे सब पदार्थों के रस को (पिब) सेवन कर और इस से (विद्वान्) ज्ञानयुक्त हुआ तू (शत्रून्) सत्यन्याय के विरोध में प्रवृत्त हुए दुष्ट जनों का (जहि) विनाश कर (अथ) इस के अनन्तर (मृधः) जहां दुष्ट जन दूसरे के सुःख से अपने मन को प्रसन्न करते हैं उन संग्रामों को (अपनुदस्व) दूर कर और (नः) हम लोगों को (विश्वतः) सब जगह से (अभयम्) भय रहित (कृणुहि) कर ॥३७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे जीव प्रेम के साथ अपने मित्र वा शरीर की रक्षा करता है वैसे ही राजा प्रजा की पालना करे और जैसे सूर्य्य वायु और विजुली के साथ मेघ का भेदन कर जल से सब को सुख देता है वैसे राजा को चाहिये कि युद्ध की सामग्री जोड़ और शत्रुओं को मार कर प्रजा को सुख धर्म्मात्माओं को निर्भयता और दुष्टों को भय देवे ॥३७॥

मरुत्वानित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। निचृदार्षीत्रिष्टुप् छन्दः। उपयामेत्यस्य प्राजापत्या त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब सभाध्यक्ष के लिये अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

मरुत्वाँ२ऽइन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय। आसिञ्चस्व जठरे मध्वऽऊर्म्मिं त्वꣳ राजासि प्रतिपत्सुतानाम्। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥३८॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) शत्रुओं के जीतने वाले सभापते! जिस कारण आप (उपयामगृहीतः) राजनियमों से स्वीकार किये हुए (असि) हो इसलिये हम लोग तुम को (मरुत्वते) जिस में अच्छे अच्छे अस्त्रों और शस्त्रों का काम है उस (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य को प्राप्त कराने वाले युद्ध के लिये युक्त करते हैं जिस से (ते) आपका (एषः) यह युद्ध परमैश्वर्य्य का (योनिः) कारण है इसलिये (त्वा) तुम को (मरुत्वते) (इन्द्राय) उस युद्ध के लिये कहते हैं कि आप (प्रतिपत्) प्रत्येक बड़े-बड़े विचार के कामों में (राजा) प्रकाशमान (मरुत्वान्) प्रशंसनीय प्रजायुक्त और (वृषभः) अत्यन्त श्रेष्ठ हो इससे (रणाय) युद्ध और (मदाय) आनन्द के लिये (अनुष्वधम्) प्रत्येक भोजन में (सोमम्) सोमलतादि पुष्टि करने वाली ओषधियों के रस को (पिब) पीओ (सुतानाम्) उत्तम संस्कारों से बनाये हुए अन्नों के (मध्वः) मधुर रस की (ऊर्मिम्) लहरी को अपने (जठरे) उदर में (आसिञ्चस्व) अच्छे प्रकार स्थापन करो ॥३८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। सभा और सेनापति आदि मनुष्यों को चाहिये कि उत्तम से उत्तम पदार्थों के भोजन से शरीर और आत्मा को पुष्ट और शत्रुओं को जीतकर न्याय की व्यवस्था से सब प्रजा का पालन किया करें ॥३८॥

महानित्यस्य भरद्वाज ऋषिः। प्रजासेनापतिर्देवता। आद्यस्य भुरिक् पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः। उपयामेत्यस्य साम्नी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब ईश्वर अपने गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में करता है॥

महाँ२ऽइन्द्रो नृवदा चर्षणिप्राऽउत द्विबर्हाऽअमिनः सहोभिः। अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्य्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्त्तृभिर्भूत्। उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥३९॥

पदार्थः—हे भगवन् जगदीश्वर! जिस कारण आप (उपयामगृहीतः) योगाभ्यास से ग्रहण करने के योग्य (असि) हैं इस से (महेन्द्राय) अत्यन्त उत्तम ऐश्वर्य के लिये हम लोग (त्वा) आप की उपासना करते हैं। (एषः) यह उपासना हमारे लिये (योनिः) कल्याण का कारण है इस से (त्वा) तुम को (महेन्द्राय) परमैश्वर्य्य पाने के लिये हम सेवन करते हैं जो (महान्) सर्वोत्तम अत्यन्त पूज्य (नृवत्) मनुष्यों के तुल्य (आ) अच्छे प्रकार (चर्षणिप्राः) सब मनुष्यों को सुखों से परिपूर्ण करने (द्विबर्हाः) व्यवहार और परमार्थ के ज्ञान को बढ़ाने वाले दो प्रकार के ज्ञान से संयुक्त (अस्मद्र्यक्) हम सब प्राणियों को अपनी सर्वज्ञता से जानने वाले (अमिनः) अतुल

पराक्रमयुक्त (उरुः) वहुत (पृथुः) विस्तारयुक्त (कर्त्तृभिः) अच्छे कर्म्म करने वाले जीवों ने (सुकृतः) अच्छे कर्म्म करने वाले के समान ग्रहण किये हुए और (इन्द्रः) अत्यन्त उत्कृष्ट ऐश्वर्य्य वाले आप हैं उन्हीं का आश्रय किये हुए समस्त हम लोग (सहोभिः) अच्छे-अच्छे वलों के साथ (वीर्य्याय) परम उत्तम वल की प्राप्ति के लिये (वावृधे) दृढ़ उत्साहयुक्त होते हैं ॥३९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। ईश्वर का आश्रय न करके कोई भी मनुष्य प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता। जैसे ईश्वर सनातन न्याय का आश्रय करके सब जीवों को सुख देता है वैसे ही राजा को भी चाहिये कि प्रजा को अपनी न्याय व्यवस्था से सुख देवे ॥३९॥

महानिन्द्र इत्यस्य वत्स ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। आर्षीगायत्री छन्दः। उपयामेत्यस्य विराडार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः।

फिर भी ईश्वर के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

महाँ२ऽइन्द्रो यऽओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ२ऽइव। स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे। उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥४०॥

पदार्थः—हे अनादिसिद्ध योगिन् सर्वव्यापी ईश्वर! जो आप योगियों के (उपयामगृहीतः) यमनियमादि योग के अंगों से स्वीकार किये हुए (असि) हैं इस कारण हम लोग (त्वा) आप को (महेन्द्राय) योग से प्रकट होने वाले अच्छे ऐश्वर्य के लिये आश्रय करते हैं (ते) आप का (एषः) यह योग हमारे कल्याण का (योनिः) निमित्त है इसलिये (त्वा) आप का (महेन्द्राय) मोक्ष कराने वाले ऐश्वर्य के लिये ध्यान करते हैं। (यः)जो (महान्) वड़े-वड़े गुण कर्म्म और स्वभाव वाला(वृष्टिमान्) वर्षने वाले (पर्जन्य इव) मेघ के तुल्य (वत्सस्य) स्तुतिकर्त्ता की (स्तोमैः) स्तुतियों से (ओजसा) अनन्त वल के साथ प्रकाशित होता है उस ईश्वर को जानकर योगी (वावृधे) अत्यन्त उन्नति को प्राप्त होता है ॥४०॥

भावार्थः—जैसे मेघ वर्षा समय में अपने जल के समूह से सव पदार्थों को तृप्त करता हुआ उन्नति देता है वैसे ईश्वर भी योगाभ्यास करने वाले योगी पुरुष के योग को अत्यन्त वढ़ाता है ॥४०॥

उदुत्यमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः। सूर्य्यो देवता। भुरिगार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः।

इस के पीछे सूर्य्य की उपमा से ईश्वर के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्य्यꣳ स्वाहा ॥४१॥

पदार्थः—जैसे किरण (विश्वाय) समस्त जगत् के प्रयोजन के (दृशे) देखने जानने के लिये (जातवेदसम्) जो उत्पन्न हुए सब पदार्थों को जानता वा मूर्तिमान् पदार्थों को प्राप्त होता है (त्यम्) उस (सूर्य्यम्) (देवम्) दिव्यगुणसम्पन्न सूर्य्य को (उ) तर्क के साथ (उत्) (वहन्ति) प्राप्त कराते हैं वैसे विद्वान् के (केतवः) प्रकृष्ट ज्ञान और (स्वाहा) सत्य वाणी का उपदेश मनुष्य को परब्रह्म की प्राप्ति करा देता है ॥४१॥

भावार्थः—जैसे प्राणियों के लिये सूर्य्य की किरण उस को प्रकाशित करती हैं वैसे मनुष्य की अनेक विद्यायुक्त बुद्धियां ईश्वर का प्रकाश करा देती हैं ॥४१॥

चित्रं देवानामित्यस्य कुत्स ऋषिः। सूर्य्यो देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर भी वैसे ही ईश्वर के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्षꣳ सूर्य्यऽआत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥४२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! तुम को अति उचित है कि जो (सूर्य्यः) सविता (स्वाहा) सत्य क्रिया से (देवानाम्) नेत्र आदि के समान विद्वानों (मित्रस्य) मित्र वा प्राण (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुष वा उदान और (अग्नेः) अग्नि के (चित्रम्) अद्भुत (अनीकम्) बलवत्तर सेना के तुल्य प्रसिद्ध (चक्षुः) प्रभाव के दिखलाने वाले गुणों को (उत्) (अगात्) अच्छे प्रकार प्राप्त होता और (जगतः) जङ्गम प्राणी और (तस्थुषः) स्थावर संसारी पदार्थों का (आत्मा) आत्मा के तुल्य होकर (द्यावापृथिवी) आकाश तथा भूमि और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (आ) सब प्रकार से (अप्राः) व्याप्त होने वाले के समान परमात्मा है उसी की उपासना निरन्तर किया करो ॥४२॥

भावार्थः—जिस कारण परमेश्वर आकाश के समान सब जगह व्याप्त सूर्य्य के तुल्य स्वयं प्रकाशमान और सूत्रात्मा वायु के सदृश सब का अन्तर्य्यामी है इस से सब जीवों के लिये सत्य और असत्य को बोध कराने वाला है जिस किसी पुरुष को परमेश्वर को जानने की इच्छा हो वह योगाभ्यास करके अपने आत्मा में उसे देख सकता है अन्यत्र नहीं ॥४२॥

अग्ने नयेत्यस्याङ्गिरस ऋषिः। अन्तर्यामी जगदीश्वरो देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब ईश्वर की प्रार्थना अगले मन्त्र में कही है॥

अग्ने नयं सुपथा रायेऽअस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम स्वाहा॥४३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) सब के अन्तःकरण में प्रकाश करने वाले परमेश्वर! आप (सुपथा) सत्यविद्या धर्म्मयोगयुक्त मार्ग से (राये) योग की सिद्धि के लिये (अस्मान्) हम लोगों को (विश्वानि) समस्त (वयुनानि) योग के विज्ञानों को (नय) पहुंचाइये जिस से हम लोग (स्वाहा) अपनी सत्यवाणी वा वेदवाणी से (ते) आप की (भूयिष्ठाम्) बहुत ((नमउक्तिम्) नमस्कारपूर्वक स्तुति को (विधेम) करें। हे (देव) योगविद्या को देने वाले ईश्वर! (विद्वान्) समस्त योग के गुण और क्रियाओं को जानने वाले आप कृपा कर के (जुहुराणम्) हम लोगों के अन्तःकरण के कुटिलता-रूप (एनः) दुष्ट कर्म्मों को (अस्मत्)योगानुष्ठान करने वाले हम लोगों से (युयोधि) दूर कर दीजिये॥४३॥

भावार्थः—कोई भी पुरुष परमात्मा की प्रेम भक्ति के विना योग-सिद्धि को प्राप्त नहीं होता और जो प्रेम-भक्ति युक्त होकर योगबल से परमेश्वर का स्मरण करता है उस को वह दयालु परमात्मा शीघ्र योगसिद्धि देता है॥४३॥

अयमित्यस्यांगिरस ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब संग्राम में परमेश्वर के उपासक शूरवीरों को किस प्रकार युद्ध करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अयं नोऽअग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मृधः पुरऽएतु प्रभिन्दन्। अयं वाजाञ्जयतु वाजसातावयꣳ शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा॥४४॥

पदार्थः—(अयम्) यह प्रथम (अग्निः) वैद्यक विद्या का प्रकाश करने वाला वैद्य (स्वाहा) वैद्यक और युद्ध की शिक्षायुक्त वाणी से (वाजसातौ) युद्ध में (नः) हम लोगों को (वरिवः) सुखकारक सेवन (कृणोतु) करे (अयम्) यह दूसरा युद्ध करने वाला मुख्य वीर (प्रभिन्दन्) शत्रुओं को विदीर्ण करता हुआ (मृधः) संग्राम के (पुरः) आगे (एतु) चले (अयम्) यह तीसरा वीररसकारक उपदेश करने वाला योद्धा (वाजान्) अत्यन्त वेगादिगुणयुक्त वीरों को (जयतु) उत्साहयुक्त करता रहे

(अयम्) यह चौथा वीर (जहृंपाणः) निरन्तर आनन्दयुक्त होकर (शत्रून्) धर्म्म-विरोधी शत्रुजनों को (जयतु) जीते ॥४४॥

भावार्थः—जब युद्धकर्म में चार वीर अवश्य हों उन में से एक तो वैद्यकशास्त्र की क्रियाओं में चतुर सब की रक्षा करने हारा वैद्य, दूसरा सब वीरों को हर्ष देने वाला उपदेशक, तीसरा शत्रुओं का अपमान करने हारा और चौथा शत्रुओं का विनाश करने वाला हो, तब समस्त युद्ध की क्रिया प्रशंसनीय होती है ॥४४॥

रूपेणेत्यस्याङ्गिरस ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। निचृज्जगतीछन्दः। निषादः स्वरः ॥

अब तीन सभाओं से राज्य की शिक्षा करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

रूपेण वो रूपमभ्यागां तुथो वो विश्ववेदा विभजतु। ऋतस्य पथा प्रेतं चन्द्रदक्षिणा वि स्वः पश्य व्यन्तरिक्षं यतस्व सदस्यैः ॥४५॥

पदार्थः—हे सेना और प्रजाजनो! जैसे मैं (रूपेण) अपने दृष्टिगोचर आकार से (वः) (तुम्हारे) (रूपम्) स्वरूप को (अभि) (आ) (अगाम्) प्राप्त होता हूं वैसे (विश्ववेदाः) सब को जानने वाले परमात्मा के समान सभापति (वः) तुम लोगों को (वि) (भजतु) पृथक्-पृथक् अपने-अपने अधिकार में नियत करे। हे सभा-पते! (तुथः) सब से अधिक ज्ञान वाले प्रतिष्ठित आप (स्वः) प्रताप को प्राप्त हुए सूर्य्य के समान (ऋतस्य) सत्य के (पथा) मार्ग से (अंतरिक्षम्) अविनाशी राजनीति वा ब्रह्मविज्ञान को (वि) अनेक प्रकार से (पश्य) देखो और सभा के बीच में (सदस्यैः) सभासदों के साथ सत्य-मार्ग से (प्र)(यतस्व) विशेष-विशेष यत्न करो तथा हे (चन्द्र-दक्षिणाः) सुवर्ण के दान करने वाले राजपुरुषो! तुम लोग धर्म्म को (वीत) विशे-षता से प्राप्त होओ ॥४५॥

भावार्थः—सभापति राजा को चाहिये कि अपने पुत्रों के तुल्य प्रजा व सेना के पुरुषों को प्रसन्न रक्खे और परमेश्वर के तुल्य पक्षपात छोड़ कर न्याय करे। धार्म्मिक सभ्यजनों की तीन सभा होनी चाहियें उन में से एक राजसभा जिस के आधीन राज्य के सब कार्य्य चलें और सब उपद्रव निवृत्त रहें, दूसरी विद्यासभा जिस से विद्या का प्रचार अनेक विधि किया जावे और अविद्या का नाश होता रहे और तीसरी धर्म्मसभा जिससे धर्म्म की उन्नति और अधर्म्म की हानि निरन्तर की जाय। सब लोगों को उचित है

कि अपने आत्मा और परमात्मा को देखकर अन्यायमार्ग से अलग हो, धर्म्म का सेवन और सभासदों के साथ समयानुकूल अनेक प्रकार के विचार कर के सत्य और असत्य के निर्णय करने में प्रयत्न किया करें ॥४५॥

ब्राह्मणमित्यस्याङ्गिरस ऋषिः। विद्वांसो देवताः। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब दक्षिणा किस को और किस प्रकार देनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

ब्राह्मणमद्य विदेयं पितृमन्तं पैतृमत्यमृषिमार्षेयꣳ सुधातुदक्षिणम्। अस्मद्राता देवत्रा गच्छत प्रदातारमाविशत ॥४६॥

पदार्थः—हे प्रजा सभा और सेना के मनुष्यो! जैसे मैं (अद्य) आज (ब्राह्मणम्) वेद और ईश्वर को जानने वाला (पितृमन्तम्) प्रशंसनीय पितृ अर्थात् सत्यासत्य के विवेक से जिस के सर्वथा रक्षक हैं (पैतृमत्यम्) पितृभाव को प्राप्त (ऋषिम्) वेदार्थ विज्ञान कराने वाला ऋषि (आर्षेयम्) जो ऋषिजनों के इस योग से उत्पन्न हुए विज्ञान को प्राप्त (सुधातुदक्षिणम्) जिस के अच्छी-अच्छी पुष्टिकारक दक्षिणारूप धातु हैं उस (प्रदातारम्) अच्छे दानशील पुरुष को (विदेयम्) प्राप्त होऊं वैसे तुम लोग (अस्मद्राताः) हमारे लिये अच्छे गुणों के देने वाले होकर (देवत्रा) शुद्ध गुण कर्म स्वभावयुक्त विद्वानों के (आगच्छत) समीप आओ और शुभ गुणों में (आविशत) प्रवेश करो ॥४६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। उत्साही पुरुष को क्या नहीं प्राप्त हो सकता! कौन ऐसा पुरुष है कि जो प्रयत्न के साथ विद्वानों का सेवन कर ऋषि लोगों के प्रकाशित किये हुए योगविज्ञान को न सिद्ध कर सके! कोई भी विद्वान् अच्छे गुण कर्म्म और स्वभाव से विपरीत नहीं हो सकता और दाताजनों को कृपणता कभी नहीं आती है इस से जो देने वाले दक्षिणा में प्रशंसनीय पदार्थ सुपात्र धार्मिक सर्वोपकारक विद्वानों को देते हैं उनकी अचल कीर्त्ति क्योंकर न हो ॥४६॥

अग्नये त्वेत्यस्यांगिरस ऋषिः। वरुणो देवता। आद्यस्य भुरिक् प्राजापत्या, रुद्राय त्वेत्यस्य स्वराट् प्राजापत्या, बृहस्पतदेवत्रेत्यस्य निचृदार्ची, यमाय त्वेत्यस्य विराडार्ची जगत्यश्छन्दांसि। निषादः स्वरः ॥

अब किस प्रयोजन के लिये दान और प्रतिग्रह का सेवन करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्नये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्त्वमशीयायुर्दात्रऽएधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे रुद्राय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्त्वमशीय प्राणो दात्रऽएधि वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे बृहस्पतये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्त्वमशीय त्वग्दात्रऽएधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे यमाय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्त्वमशीय हयो दात्रऽएधि वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे ॥४७॥

पदार्थः—हे वसुसंज्ञक पढ़ाने वाले ! जिस (अग्नये) चौवीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य का सेवन कर के अग्नि के समान तेजस्वी होने वाले (मह्यम्) मेरे लिये (त्वा) तुझ अध्यापक को (वरुणः) सर्वोत्तम विद्वान् (ददातु) देवे (सः) वह मैं (अमृतत्वम्) अपने शुद्ध कर्म्मों से सिद्ध किये सत्य आनन्द को (अशीय) प्राप्त होऊं उस (दात्रे) दानशील विद्वान् का (आयुः) वहुत कालपर्य्यन्त जीवन (एधि) बढ़ाइये और (प्रतिग्रहीत्रे) विद्याग्रहण करने वाले (मह्यम्) मुझ विद्यार्थी के लिये (मयः) सुख बढ़ाइये। हे दुष्टों को रुलाने वाले अध्यापक ! जिस (रुद्राय) चवालीस वर्षपर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्याश्रम का सेवन करके रुद्र के गुण धारण करने की इच्छा वाले (मह्यम्) मेरे लिये (त्वा) रुद्र नामक पढ़ाने वाले आप को (वरुणः) अत्युत्तम गुणयुक्त (ददातु) देवे (सः) वह मैं (अमृतत्वम्) मुक्ति के साधनों को (अशीय) प्राप्त होऊं उस (दात्रे) विद्या देने वाले विद्वान् के लिये (प्राणः) योगविद्या का वल (एधि) प्राप्त कराइये और (प्रतिग्रहीत्रे) विद्याग्रहण करने वाले (मह्यम्) मेरे लिये (वयः) तीनों अवस्था का सुख प्राप्त कीजिये। हे सूर्य्य के समान तेजस्वि अध्यापक ! जिस (बृहस्पतये) अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य्य सेवन की इच्छा करने वाले (मह्यम्) मेरे लिये (त्वा) पूर्णविद्या पढ़ाने वाले आप को (वरुणः) पूर्णविद्या से शरीर और आत्मा के बलयुक्त विद्वान् (ददातु) देवे (सः) वह मैं (अमृतत्वम्) विद्या के आनन्द का (अशीय) भोग करूं उस (दात्रे) पूर्ण विद्या देने वाले महाविद्वान् के अर्थ (त्वक्) सरदी गरमी के स्पर्श का सुख (एधि) बढ़ाइये और (प्रतिग्रहीत्रे) पूर्ण विद्या के ग्रहण करने वाले (मह्यम्) मुझ शिष्य के लिये (मयः) पूर्ण विद्या का सुख उन्नत कीजिये। हे गृहाश्रम से होने वाले विषय-सुख से विमुख विरक्त सत्योपदेश करने हारे आप्त विद्वन् ! जिस (यमाय) गृहाश्रम के सुख के अनुराग से विरत होने वाले (मह्यम्) मेरे लिये (त्वा) सर्वदोषरहित उपदेश करने वाले आप को (वरुणः) सकल शुभगुणयुक्त विद्वान् (ददातु) देवे (सः) वह मैं (अमृतत्वम्) मुक्ति के सुख को (अशीय) प्राप्त होऊं। उस (दात्रे) ब्रह्मविद्या

देने वाले महाविद्वान् के लिये (हयः) ब्रह्मज्ञान की वृद्धि (एधि) कीजिये और (प्रतिग्रहीत्रे) मोक्षविद्या के ग्रहण करने वाले (मह्यम्) मेरे लिये (वयः) तीनों अवस्था के सुख को प्राप्त कीजिये ॥४७॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को योग्य है कि जो सब से उत्तम गुण वाला सब विद्याओं में सब से बढ़कर विद्वान् हो उस के आश्रय से अन्य अध्यापक विद्वानों की परीक्षा करके अपनी-अपनी कन्या और पुत्रों को उन-उन के पढ़ाने योग्य विद्वानों से पढ़वावें और पढ़ने वालों को भी चाहिये कि अपनी अपनी अधिक न्यून बुद्धि को जान के अपने-अपने अनुकूल अध्यापकों की प्रीतिपूर्वक सेवा करते हुए उन से निरन्तर विद्या का ग्रहण करें ॥४७॥

कोऽदादित्यस्यांगिरस ऋषिः। आत्मा देवता। आर्च्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर जीवों को उपदेश करता है ॥

कोऽदा॒त्कस्मा॑ऽअदा॒त्कामो॑ऽदा॒त्कामा॑यादात् । कामो॑ दा॒ता कामः॑ प्रतिग्रही॒ता कामै॒तत्ते॑ ॥४८॥

पदार्थः—(कः) कौन कर्म्म-फल को (अदात्) देता और (कस्मै) किस के लिये (अदात्) देता है। इन दो प्रश्नों के उत्तर (कामः) जिसकी कामना सब करते हैं वह परमेश्वर (अदात्) देता और (कामाय) कामना करने वाले जीव को (अदात्) देता है। अब विवेक करते हैं कि (कामः) जिसकी योगी जन कामना करते हैं वह परमेश्वर (दाता) देने वाला है (कामः) कामना करने वाला जीव (प्रतिग्रहीता) लेनेवाला है। हे (काम) कामना करने वाले जीव ! (ते) तेरे लिये मैंने वेदों के द्वारा (एतत्) यह समस्त आज्ञा की है ऐसा तू निश्चय करके जान ॥४८॥

भावार्थः—इस संसार में कर्म्म करने वाले जीव और फल देने वाला ईश्वर है। यहाँ यह जानना चाहिये कि कामना के विना कोई आंख का पलक भी नहीं हिला सकता। इस कारण जीव कामना करे परन्तु धर्म्म-सम्बन्धी कामना करे अधर्म्म की नहीं। यह निश्चय कर जानना चाहिये कि जो इस विषय में मनुजी ने कहा है वह वेदानुकूल है। जैसे इस संसार में अति कामना प्रशंसनीय नहीं और कामना के विना कोई कार्य्य सिद्ध नहीं हो सकता इसलिये धर्म्म की कामना करनी और अधर्म्म की नहीं क्योंकि वेदों का पढ़ना पढ़ाना और वेदोक्त धर्म का आचरण करना आदि कामना इच्छा के विना कभी सिद्ध नहीं हो सकती ॥ इस संसार में तीनों काल में इच्छा के विना कोई क्रिया नहीं दीख पड़ती जो जो कुछ

किया जाता है सो सो सब इच्छा ही का व्यापार है। इसलिये श्रेष्ठ वेदोक्त कामों की इच्छा करनी इतर दुष्ट कामों की नहीं ॥४८॥

इस अध्याय में बाहर भीतर का व्यवहार, मनुष्यों का परस्पर वर्त्ताव, आत्मा का कर्म्म, आत्मा में मन की प्रवृत्ति, प्रथम सिद्ध योगी के लिये ईश्वर का उपदेश, ज्ञान चाहने वाले को योगाभ्यास करना, योग का लक्षण, पढ़ने पढ़ाने वालों की रीति, योगविद्या के अभ्यास करने वालों का वर्त्ताव, योगविद्या से अन्तःकरण की शुद्धि, योगाभ्यासी का लक्षण, गुरु शिष्य का परस्पर व्यवहार, स्वामी सेवक का वर्त्ताव, न्यायाधीश को प्रजा के रक्षा करने की रीति, राजपुरुष और सभासदों का कर्म्म, राजा का उपदेश, राजाओं का कर्त्तव्य, परीक्षा करके सेनापति का करना, पूर्ण विद्वान् को सभापति का अधिकार देना, विद्वानों का कर्त्तव्य कर्म्म, ईश्वर के उपासक को उपदेश, यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले का विषय, प्रजाजन आदि के साथ सभापति का वर्त्ताव, राजा और प्रजा के जनों का सत्कार, गुरु शिष्य की परस्पर प्रवृत्ति, नित्य पढ़ने का विषय, विद्या की वृद्धि करना, राजा का कर्त्तव्य, सेनापति का कर्म्म, सभाध्यक्ष की क्रिया, ईश्वर के गुणों का वर्णन, उसकी प्रार्थना, शूरवीरों को युद्ध का अनुष्ठान, सेना में रहने वाले पुरुषों का कर्त्तव्य, ब्रह्मचर्य्य सेवन की रीति और ईश्वर का जीवों के प्रति उपदेश, इस वर्णन के होने से सप्तम अध्याय के अर्थ की षष्ठाध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥

---

* ओ३म् *

अथाऽष्टमाध्यायस्यारम्भः

—:※:o※o:※o:※:—

अब आठवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है ॥

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥१॥

उपयाम इत्यस्यांगिरस ऋषिः । बृहस्पतिस्सोमो देवता । आर्वी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

उसके प्रथम मन्त्र से गृहस्थ धर्म के लिये ब्रह्मचारिणी कन्या को कुमार ब्रह्मचारी का ग्रहण करना चाहिये यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

उपयामगृहीतोऽस्यादित्येभ्यस्त्वा । विष्णऽउरुगायैष ते सोमस्तꣳ रक्षस्व मा त्वा दभन् ॥१॥

पदार्थः—हे कुमार ब्रह्मचारिन् ! चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य सेवने वाली मैं (आदित्येभ्यः) जिन्होंने अड़तालीस वर्षतक ब्रह्मचर्य सेवन किया है उन सज्जनों की सभा में (त्वा) अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य सेवन करने वाले आप को स्वीकार करती हूं आप (उपयामगृहीतः) शास्त्र के नियम और उपनियमों को ग्रहण करने वाले (असि) हो । हे (विष्णो) समस्त श्रेष्ठ विद्या गुण कर्म और स्वभाव वाले श्रेष्ठजन ! (ते) आपका (एषः) यह गृहस्थाश्रम (सोमः) सोमलता आदि के तुल्य ऐश्वर्य का बढ़ाने वाला है (तम्) उस की (रक्षस्व) रक्षा करें । हे (उरुगाय) बहुत शास्त्रों को पढ़ने वाले ! (त्वा) आप को काम के बाण जैसे (मा दभन्) दुःख देने वाले न होवें वैसा साधन कीजिये ॥१॥

भावार्थः—सब ब्रह्मचर्याश्रम सेवन की हुई युवती कन्याओं को ऐसी आकांक्षा अवश्य रखनी चाहिये कि अपने सदृश रूप गुण कर्म स्वभाव और

विद्या वाला अपने से अधिक बलयुक्त अपनी इच्छा के योग्य अन्तःकरण से जिस पर विशेष प्रीति हो ऐसे पति को स्वयंवर विधि से स्वीकार करके उसकी सेवा किया करें। ऐसे ही कुमार ब्रह्मचारी लोगों को भी चाहिये कि अपने अपने समान युवती स्त्रियों का पाणिग्रहण करें, इस प्रकार दोनों स्त्री पुरुषों को सनातन गृहस्थों के धर्म का पालन करना चाहिये और परस्पर अत्यन्त विषय की लोलुपता तथा वीर्य का विनाश कभी न करें किन्तु सदा ऋतुगामी हों। दश सन्तानों को उत्पन्न करें और उन्हें अच्छी शिक्षा देकर अपने ऐश्वर्य की वृद्धि कर प्रीतिपूर्वक रमण करें जैसे आपस में एक से दूसरे का वियोग अप्रीति और व्यभिचार आदि दोष न हों वैसा वर्त्ताव वर्त कर आपस में एक दूसरे की रक्षा सब प्रकार सब काल में किया करें ॥१॥

कदा चन इत्यस्याङ्गिरस ऋषिः। गृहपतिर्मघवा देवता। भुरिक् पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थों के धर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे। उपोपेन्नु मघवन्भूयऽइन्नु ते दानं देवस्य पृच्यतऽआदित्येभ्यस्त्वा ॥२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य्य से युक्त पति ! जिस कारण आप (कदा) कभी (चन) भी (स्तरीः) अपने स्वभाव को छिपाने वाले (न) नहीं (असि) हैं इस कारण (दाशुषे) दान देने वाले पुरुष के लिये (उपोप) समीप (सश्चसि) प्राप्त होते हैं। हे (मघवन्) प्रशंसित धनयुक्त भर्त्ता ! (देवस्य) विद्वान् (ते) आप का जो (दानम्) दान अर्थात् अच्छी शिक्षा वा धन आदि पदार्थों का देना है (इत्) वही (नु) शीघ्र (भूयः) अधिक करके मुझ को (पृच्यते) प्राप्त होवे। इसी से मैं स्त्रीभाव से (आदित्येभ्यः) प्रति महीने सुख देने वाले आपका आश्रय करती हूं ॥२॥

भावार्थः—विवाह की कामना करने वाली युवती स्त्री को चाहिये कि जो छल कपट आदि आचरणों से रहित प्रकाश करने और एक ही स्त्री को चाहने वाला जितेन्द्रिय सब प्रकार का उद्योगी धार्मिक और विद्वान् पुरुष हो उस के साथ विवाह करके आनन्द में रहे ॥२॥

कदा चन प्रयुच्छसीत्यस्याङ्गिरस ऋषिः। आदित्यो गृहपतिर्देवता। निचृदार्षी पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थ का धर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

कदा चन प्रयुच्छस्युभे निपासि जन्मनी । तुरीयादित्य सवनं तऽइन्द्रियमातस्थावमृतं दिव्यादित्येभ्यस्त्वा ॥३॥

पदार्थः—इस मन्त्र में नकार का अध्याहार आकांक्षा के होने से होता है । हे पते ! आप जो (कदा) कभी (चन) भी (प्र) (युच्छसि) प्रमाद नहीं करते हो तो अपने (उभे) दोनों (जन्मनी) वर्त्तमान और परजन्म को (पासि) निरन्तर पालते हो । हे (आदित्य) विद्या गुणों में सूर्य के तुल्य प्रकाशमान ! जो (ते) आपके (सवनम्) उत्पत्ति धर्मयुक्त कार्य्य सिद्ध करने हारे (इन्द्रियम्) मन आदि इन्द्रिय (आ) (तस्थौ) वश में रहें तो आप (दिवि) प्रकाशित व्यवहारों में (अमृतम्) अविनाशी सुख को प्राप्त हो जावें । हे (तुरीय) चतुर्थाश्रम के पूर्ण करने वाले ! (आदित्येभ्यः) प्रति मास के सुख के लिये (त्वा) दृढ़ेन्द्रिय आप को मैं स्त्री स्वीकार करती हूँ ॥३॥

भावार्थः—जो प्रमादी पुरुष विवाहित स्त्री को छोड़ कर परस्त्री का सेवन करता है वह इस लोक और परलोक में दुर्भागी होता है और जो संयमी अपनी ही स्त्री का चाहने वाला दूसरे की स्त्री को नहीं चाहता वह दोनों लोक में परम सुख को क्यों न भोगे ? इस से सब स्त्रियों को योग्य है कि जितेन्द्रिय पति का सेवन करें अन्य का नहीं ॥३॥

यज्ञो देवानामित्यस्य कुत्स ऋषिः । आदित्यो गृहपतिर्देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर भी गृहाश्रम का विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः । आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादꣳहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासदादित्येभ्यस्त्वा ॥४॥

पदार्थः—हे (आदित्यासः) सूर्य्यलोकों के समान विद्या आदि शुभ गुणों से प्रकाशमान ! आप जो (देवानाम्) विद्वान् (वः) आप लोगों का यह (यज्ञः) स्त्री-पुरुषों के वर्त्तने योग्य गृहाश्रम व्यवहार (सुम्नम्) सुख को (प्रति) (एति) निश्चय करके प्राप्त करता है और (या) जो (अंहोः) गृहाश्रम के सुख को सिद्ध करने वाली (अर्वाची) अच्छी शिक्षा और विद्याभ्यास के पीछे विज्ञानप्राप्ति का हेतु (वरिवोवित्तरा) सत्यव्यवहार का निरन्तर विज्ञान देने वाली आप लोगों की (सुमतिः) श्रेष्ठ बुद्धि श्रेष्ठ मार्ग में (आ) निरन्तर (ववृत्यात्) प्रवृत्त होवे । जो (आदित्येभ्यः)

आप्त विद्वानों से उत्तम विद्या और शिक्षा जो (त्वा) तुझ को (असत्) प्राप्त हो (चित्) उस बुद्धि से ही युक्त हम दोनों स्त्री पुरुष को (मृडयन्तः) सदा सुख देते (भवत) रहिये ॥४॥

भावार्थः—विवाह करके स्त्रीपुरुषों को चाहिये कि जिस जिस काम से विद्या अच्छी शिक्षा बुद्धि धन सुहृद्भाव और परोपकार बढ़े उस कर्म का सेवन अवश्य किया करें ॥४॥

विवस्वन्नित्यस्य कुत्स ऋषिः । गृहपतयो देवताः । आद्यस्य प्राजापत्याऽनुष्टुप् छन्दः । गांधारः स्वरः । अदित्युत्तरस्य निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थ का धर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथस्तस्मिन् मत्स्व । अदस्मै नरो वचसे दधातन यदाशीर्दा दम्पती वाममश्नुतः । पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वस्वधा विश्वाहारपऽएधते गृहे ॥५॥

पदार्थः—हे (विवस्वन्) विविध प्रकार के स्थानों में वसने वाले (आदित्य) अविनाशीस्वरूप विद्वान् गृहस्थ ! (एषः) यह जो (ते) आपका (सोमपीथः) जिस में सोमलता आदि ओषधियों के रस पीने में आवें ऐसा गृहाश्रम है (तस्मिन्) उस में आप (विश्वाहा) सब दिन (मत्स्व) आनन्दित रहो। हे (नरः) गृहाश्रम करने वाले गृहस्थो ! आप लोग (अस्मै) इस (वचसे) गृहाश्रम के वाग् व्यवहार के लिये (अत्) सत्य ही का (दधातन) धारण करो (यत्) जिस (गृहे) गृहाश्रम में (दम्पती) स्त्रीपुरुष (वामम्) प्रशंसनीय गृहाश्रम के धर्म को (अश्नुतः) प्राप्त होते हैं उस में (आशीर्दा) कामना देने वाला (अरपः) निष्पाप धर्मात्मा (पुमान्) पुरुषार्थी (पुत्रः) वृद्धावस्था के दुःखों से रक्षा करने वाला पुत्र (जायते) उत्पन्न होता है और वह उत्तम (वसु) धन को (विन्दते) प्राप्त होता है (अधा) इस के अनन्तर वह विद्या कुटुम्ब और धन के ऐश्वर्य से (एधते) बढ़ता है ॥५॥

भावार्थः—स्त्रीपुरुषों को चाहिये कि अच्छी प्रीति से परस्पर परीक्षापूर्वक स्वयंवर विवाह और सत्य आचरणों से संतानों को उत्पन्न कर बहुत ऐश्वर्य को प्राप्त होके नित्य उन्नति पावें ॥५॥

वाममद्येत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । गृहपतयो देवताः । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।

फिर भी गृहस्थों को किस प्रकार प्रयत्न करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवे दिवे वाममस्मभ्यं सावीः।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम ॥६॥

पदार्थः—हे (देव) सुख देने (सवितः) और समस्त ऐश्वर्य्य के उत्पन्न करने वाले मुख्यजन ! आप (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (अद्य) आज (वामम्) अति प्रशंसनीय सुख (उ) और आज ही क्या किन्तु (श्वः) अगले दिन (वामम्) उक्त सुख तथा (दिवे-दिवे) दिन-दिन (वामम्) उस सुख को (सावीः) उत्पन्न कीजिये जिससे हम लोग आप की कृपा से उत्पन्न हुई (अया) इस (धिया) श्रेष्ठ बुद्धि से (भूरेः) अनेक पदार्थों से युक्त (वामस्य) अत्यन्त सुन्दर (क्षयस्य) गृहाश्रम के बीच में (वामभाजः) प्रशंसनीय कर्म करने वाले (हि) ही (स्याम) होवें ॥६॥

भावार्थः—गृहस्थजनों को चाहिये कि ईश्वर के अनुग्रह से प्रशंसनीय बुद्धियुक्त मङ्गलकारी गृहाश्रमी होकर इस प्रकार का प्रयत्न करें कि जिस से तीनों अर्थात् भूत भविष्यत् और वर्त्तमान काल में अत्यन्त सुखी हों ॥६॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य भरद्वाज ऋषिः। सविता गृहपतिर्देवता। विराड् ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः।

फिर भी गृहाश्रम का धर्म अगले मन्त्र में कहा है॥

उपयामगृहीतोऽसि सावित्रोऽसि चनोधाश्चनोधाऽअसि चनो मयि धेहि। जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपतिं भगाय देवाय त्वा सवित्रे ॥७॥

पदार्थः—हे पुरुष ! तुझ से जैसे मैं नियम और उपनियमों से ग्रहण करी गई हूं वैसे मैंने आप को (उपयामगृहीतः) विवाह नियम से ग्रहण किया (असि) है जैसे आप (चनोधाः)(चनोधाः) अन्न २ के धारण करने वाले (असि) हैं और (सावित्रः) सविता समस्त संतानादि सुख उत्पन्न करने वाले परमेश्वर को अपना इष्टदेव मानने वाले (असि) हैं वैसे मैं भी हूं। जैसे आप (मयि) मेरे निमित्त (चनः) अन्न को (धेहि) धरिये, वैसे मैं भी आपके निमित्त धारण करूं जैसे आप (यज्ञम्) दृढ़ पुरुषों के सेवन योग्य धर्म व्यवहार को (जिन्व) प्राप्त हों वैसे मैं भी प्राप्त होऊं और जैसे (सवित्रे) सन्तानों की उत्पत्ति के हेतु (भगाय) धनादि सेवनीय (देवाय) दिव्य ऐश्वर्य्य के लिये (यज्ञपतिम्) गृहाश्रम को पालने हारे आप को मैं प्रसन्न रक्खूं वैसे आप भी (जिन्व) तृप्त कीजिये ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विवाहित स्त्री पुरुषों को योग्य है कि लाभ के अनुकूल व्यवहार से परस्पर ऐश्वर्य पावें और प्रीति के साथ सतानोत्पत्ति का आचरण करें ॥७॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य भरद्वाज ऋषिः। विश्वेदेवा गृहपतयो देवताः। आद्यस्य प्राजापत्या गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। सुशर्म्मेत्यस्य निचृदार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थ को सेवने योग्य धर्म्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उपयामगृहीतोऽसि सुशर्म्मासि सुप्रतिष्ठानो बृहदुक्षाय नमः। विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यंऽएष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥८॥

पदार्थः—हे पते! जैसे मैंने आप को (उपयामगृहीतः) नियम उपनियमों से ग्रहण किया (असि) है और (सुप्रतिष्ठानः) अच्छी प्रतिष्ठा और (सुशर्मा) अच्छे घर वाले (असि) हो उन (बृहदुक्षाय) अत्यन्त वीर्य देने वाले आप को (नमः) अच्छे प्रकार संस्कार किया हुआ चित्त को प्रसन्न करने वाला अन्न उचित समय पर देती हूं जिस आप का (एषः) यह (योनिः) सुखदायक महल है (त्वा) उस आप को (विश्वेभ्यः) सब (देवेभ्यः) दिव्य सुखों के लिये सेवन करती हूं और (त्वा) आप को (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये नियुक्त करती हूं वैसे आप मुझ को कीजिये ॥८॥

भावार्थः—जिस गृहाश्रम भोगने की इच्छा रखने वाले पुरुष का सब ऋतुओं में सुख देने वाला घर हो और आप वीर्यवान् हो उसी को स्त्री पतिभाव से स्वीकार करे और उस के लिये यथोचित समय पर सुख देवे तथा आप उस पति से उचित समय में दिव्य सुख भोगें और वे स्त्री पुरुष दोनों विद्वानों का सत्संग किया करें ॥८॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य भरद्वाज ऋषिः। गृहपतयो विश्वेदेवा देवताः। आद्यस्य प्राजापत्या गायत्री, बृहस्पतिसुतस्येति मध्यमस्यार्ष्युष्णिक्, अहमित्युत्तरस्य स्वराडार्षी पंक्तिश्च छन्दांसि। क्रमेण षड्जर्षभपञ्चमाः स्वराः ॥

फिर गृहस्थ का धर्म्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतिसुतस्य देव सोम तऽइन्दोरिन्द्रियावतः। पत्नीवतो ग्रहाँ२ऽऋद्ध्यासम्। अहं परस्तादहमवस्ताद्य-

दंतरिक्षं तदु मे पिताभूत् । अहथ्ंसूर्य्यमुभयतो ददर्शाहं देवानां परमं गुहा यत् ॥९॥

पदार्थः—हे (सोम) ऐश्वर्य्यसम्पन्न (देव) अति मनोहर पते! जिस आप को मैं कुमारी ने (उपयामगृहीतः) विवाह नियमों से स्वीकार किया (असि) है। उन (इन्दोः) सोमगुणसम्पन्न (इन्द्रियावतः) बहुत धन वाले और (पत्नीवतः) यज्ञ-समय में प्रशंसनीय स्त्री ग्रहण करने वाले (बृहस्पतिसुतस्य) और बड़ी वेदवाणी के पालने वाले के पुत्र (ते) आप के गृह और सम्बन्धियों को प्राप्त होके मैं (परस्तात्) आगे और (अवस्तात्) पीछे के समय में (ऋध्यासम्) सुखों से बढ़ती जाऊं (यत्) जिस (देवानाम्) विद्वानों की (गुहा) बुद्धि में स्थित (अन्तरिक्षम्) सत्य विज्ञान को मैं (एमि) प्राप्त होती हूं उसी को तू भी प्राप्त हो और जो (मे) मेरा (पिता) पालन करने हारा (अभूत्) हो (अहम्) मैं (उभयतः) उसके अगले पिछले उन शिक्षा-विषयों से जिस (सूर्य्यम्) चर अचर के आत्मा रूप परमेश्वर को (ददर्श) देखूं उसी को तू भी देख ॥९॥

भावार्थः—स्त्री और पुरुष विवाह से पहिले परस्पर एक दूसरे की परीक्षा कर के अपने समान गुण कर्म्म स्वभाव रूप बल आरोग्य पुरुषार्थ और विद्यायुक्त होकर स्वयंवर विधि से विवाह करके ऐसा यत्न करें कि जिससे धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि को प्राप्त हों जिसके माता और पिता विद्वान् न हों उनके संतान भी उत्तम नहीं हो सकते इससे अच्छी और पूर्ण विद्या को ग्रहण कर के ही गृहाश्रम के आचरण करें इस के पूर्व नहीं ॥९॥

अग्ना३इ पत्नीवन्नित्यस्य भरद्वाज ऋषिः। गृहपतयो देवताः। विराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

स्त्री अपने पुरुष की किस प्रकार से प्रशंसा और प्रार्थना करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अग्ना३इ पत्नीवन्त्सजूर्देवेन त्वष्ट्रा सोमं पिब स्वाहा। प्रजापतिर्वृषासि रेतोधा रेतो मयि धेहि प्रजापतेस्ते वृष्णो रेतोधसो रेतोधामशीय ॥१०॥

पदार्थः—हे (अग्ने) समस्त सुख पहुंचाने वाले स्वामिन्! (सजूः) समान प्रीति करने वाले आप मेरे (देवेन) दिव्य सुख देने वाले (त्वष्ट्रा) समस्त दुःख

विनाश करने वाले गुण के साथ (स्वाहा) सत्यवाणीयुक्त क्रिया से (सोमम्) सोमवल्ली आदि ओषधियों के विशेष आसव को (पिब) पीओ। हे (पत्नीवन्) प्रशंसनीय यज्ञसम्बन्धिनी स्त्री को ग्रहण करने (वृषा) वीर्य्य सींचने (रेतोधाः) वीर्य्य धारण करने (प्रजापतिः) और सन्तानादि के पालने वाले ! जो आप (असि) हैं वह (मयि) मुझ विवाहित स्त्री में (रेतः) वीर्य्य को (धेहि) धारण कीजिये। हे स्वामिन् ! मैं (वृष्णः) वीर्य्य सींचने (रेतोधसः) पराक्रम धारण करने (प्रजापतेः) सन्तान आदि की रक्षा करने वाले (ते) आपके संग से (रेतोधाम्) वीर्य्यवान् अति पराक्रमयुक्त पुत्र को (अशीय) प्राप्त होऊं ॥१०॥

भावार्थः—इस संसार में मनुष्यजन्म को पाकर स्त्री और पुरुष ब्रह्मचर्य्य उत्तम विद्या अच्छे गुण और पराक्रमयुक्त होकर विवाह करें। विवाह की मर्यादा ही से सन्तानों की उत्पत्ति और रतिक्रीड़ा से उत्पन्न हुए सुख को प्राप्त होकर नित्य आनन्द में रहें विना विवाह के स्त्री पुरुष वा पुरुष स्त्री के समागम की इच्छा मन से भी न करें जिससे मनुष्यशक्ति की वढ़ती होवे इस से गृहाश्रम का आरम्भ स्त्री पुरुष करें ॥१०॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य भरद्वाज ऋषिः। गृहपतयो देवताः। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर गृहस्थों का धर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

उपयामगृहीतोऽसि हरिरसि हारियोजनो हरिभ्यां त्वा। हर्य्योर्द्धाना स्थ सहसोमाऽइन्द्राय ॥११॥

पदार्थः—हे पते ! आप (उपयामगृहीतः) गृहाश्रम के लिये ग्रहण किये हुए (असि) हैं (हारियोजनः) घोड़ों को जोड़ने वाले सारथि के समान (हरिः) यथायोग्य गृहाश्रम के व्यवहार को चलाने वाले (असि) हैं इस कारण (हरिभ्याम्) अच्छी शिक्षा को पाए हुए घोड़े से युक्त रथ में विराजमान (त्वा) आप की मैं सेवा करूं। तुम लोग गृहाश्रम करने वाले (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये (सहसोमाः) उत्तम गुणयुक्त होकर (हर्य्योः) वेगादि गुण वाले घोड़ों को (धानाः) स्थानादिकों में स्थापन करने वाले (स्थ) होओ ॥११॥

भावार्थः—ब्रह्मचर्य्य से शुद्ध शरीर सद्गुण सद्विद्या युक्त होकर विवाह की इच्छा करने वाले कन्या और पुरुष युवावस्था को पहुंच और परस्पर एक दूसरे के धन की उन्नति को अच्छे प्रकार देख कर विवाह करें नहीं तो धन के अभाव में दुःख की उन्नति होती है। इसलिये उक्त गुणों से विवाह कर आनन्दित हुए प्रतिदिन ऐश्वर्य्य की उन्नति करें ॥११॥

यस्त इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। गृहपतयो देवताः। आर्षीपंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ।।

अब गृहस्थों की मित्रता अगले मन्त्र में कही है ।।

यस्तेऽअश्वसनिर्भक्षो यो गोसनिस्तस्य तऽइष्टयजुष स्तुतस्तोमस्य शस्तोक्थस्योपहूतस्योपहूतो भक्षयामि ।।१२।।

पदार्थः—हे प्रियवीर पुरुष मित्र ! जो आप (उपहूतः) मुझ से सत्कार को प्राप्त होकर (अश्वसनिः) अग्नि आदि पदार्थ वा घोड़ों और (गोसनिः) संस्कृत वाणी भूमि और विद्या प्रकाश आदि अच्छे पदार्थों के देने वाले (असि) हैं उन (शस्तोक्थस्य) प्रशंसित ऋग्वेद के सूक्तयुक्त (इष्टयजुषः) इष्ट सुखकर यजुर्वेद के भागयुक्त वा (स्तुतस्तोमस्य) सामवेद के गान के प्रशंसा करने हारे (ते) आप का (यः) जो (भक्षः) चाहना से भोजन करने योग्य पदार्थ है उस को आप से सत्कृत हुई मैं (भक्षयामि) भोजन करूं तथा हे प्रिय सखि ! जो तू अग्नि आदि पदार्थ वा घोड़ों के देने और संस्कृत वाणी भूमि विद्या प्रकाश आदि अच्छे २ पदार्थ देने वाली है उस प्रशंसनीय ऋक्सूक्त यजुर्वेद भाग से स्तुति किये हुए सामगान करने वाली तेरा जो यह भोजन करने योग्य पदार्थ है उस को अच्छे मान से बुलाया हुआ मैं भोजन करता हूं ।।१२।।

भावार्थः—अच्छे उत्साह बढ़ाने वाले कामों में गृहाश्रम का आचरण करने वाली स्त्री अपनी सहेलियों वा पुरुष गृहाश्रमी पुरुष अपने इष्टमित्र और बन्धुजन आदि को बुला कर भोजन आदि पदार्थों से यथायोग्य सत्कार करके प्रसन्न करें और परस्पर भी सदा प्रसन्न रहें और उपदेश शास्त्रार्थ विद्या वाग्विलास को करें ।।१२।।

देवकृतस्येत्यस्य भरद्वाज ऋषिः। गृहपतयो विश्वेदेवा देवताः। मनुष्यकृतस्येत्यस्य साम्न्युष्णिक्, पितृकृतस्येत्यस्यात्मकृतस्येत्यस्य च निचृत्साम्न्युष्णिक्, एनस इत्यस्य प्राजापत्योष्णिक्, यच्चाहमित्यस्य निचृदार्ष्युष्णिक् च छन्दांसि। ऋषभः स्वरः ।।

अगले मन्त्र में पूर्वोक्त विषय प्रकारान्तर से कहा है ।।

देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमस्यात्मकृतस्यैनसोऽवयजनमस्येनसऽएनसोऽवयजनमसि। यच्चाहमेनो विद्वाँश्चकार यच्चाविद्वाँस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि ।।१३।।

पदार्थः—हे सब के उपकार करने वाले मित्र ! आप (देवकृतस्य) दान देने वाले के (एनसः) अपराध के (अवयजनम्) विनाश करने वाले (असि) हो (मनुष्यकृतस्य) साधारण मनुष्यों के किये हुए (एनसः) अपराध के (अवयजनम्) विनाश करने वाले (असि) हो (पितृकृतस्य) पिता के किये हुए (एनसः) विरोध आचरण के (अवयजनम्) अच्छे प्रकार हरने वाले (असि) हो (आत्मकृतस्य) अपने किये हुए (एनसः) पाप के (अवयजनम्) दूर करने वाले (असि) हो (एनसः एनसः) अधर्म्म के अधर्म्म के (अवयजनम्) नाश करने हारे (असि) हो (विद्वान्) जानता हुआ मैं (यत्) जो (च) कुछ भी (एनः) अधर्म्माचरण (चकार) किया, करता हूं वा करूं (अविद्वान्) अनजान मैं (यत्) जो (च) कुछ भी किया करता हूं वा करूं (तस्य) उस (सर्वस्य) सब (एनसः) दुष्ट आचरण के (अवयजनम्) दूर करने वाले आप (असि) हैं ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् गृहस्थ पुरुष दान आदि अच्छे काम के करने वाले जनों के अपराध दूर करने में अच्छा प्रयत्न करें। जाने वा विना जाने अपने कर्त्तव्य अर्थात् जिस को किया चाहता हो उस अपराध को आप छोड़ें तथा औरों के किये हुए अपराध को औरों से छुड़ावें वैसे कर्म करके सब लोग यथोक्त समस्त सुखों को प्राप्त हों ॥१३॥

सं वर्चसेत्यस्य भरद्वाज ऋषिः। गृहपतयो देवताः। विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर भी मित्रकृत्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन। त्वष्टा सुदत्रो वि दधातु रायोऽनु मार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥१४॥

पदार्थः—हे सब विद्याओं के पढ़ाने (त्वष्टा) सब व्यवहारों के विस्तारकारक (सुदत्रः) अत्युत्तम दान के देने वाले विद्वन् ! आप (संशिवेन) ठीक २ कल्याणकारक (मनसा) विज्ञानयुक्त अन्तःकरण (संवर्चसा) अच्छे अध्ययन अध्यापन के प्रकाश (पयसा) जल और अन्न से (यत्) जिस (तन्वः) शरीर की (विलिष्टम्) विशेष न्यूनता को (अनुमार्ष्टु) अनुकूल शुद्धि से पूर्ण और (रायः) उत्तम धनों को (विदधातु) विधान करो उस देह और शरीरों को हम लोग (तनूभिः) ब्रह्मचर्य्य व्रतादि सुनियमों से बलयुक्त शरीरों से (समगन्महि) सम्यक् प्राप्त हों ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ से विद्या का संपादन, विधिपूर्वक अन्न और जल का सेवन, शरीरों को नीरोग और मन को धर्म में निवेश करके सदा सुख की उन्नति

करें और जो कुछ न्यूनता हो उस को परिपूर्ण करें, तथा जैसे कोई मित्र तुम्हारे सुख के लिये वर्त्ताव वर्त्तं वैसे उसके सुख के लिये आप भी वर्त्तो ॥१४॥

समिन्द्रेत्यस्यात्रिर्ऋषिः। गृहपतिर्देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर मित्र का कृत्य अगले मन्त्र में कहा है॥

समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सꣳ सूरिभिर्मघवन्त्सꣳ स्वस्त्या। सं ब्रह्मणा देवकृतं यदस्ति सन्देवानाꣳ सुमतौ यज्ञियानाꣳ स्वाहा ॥१५॥

पदार्थः—हे (मघवन्) पूज्य धनयुक्त (इन्द्र) सत्यविद्यादि ऐश्वर्य्य सहित (सम्) सम्यक् पढ़ाने और उपदेश करने हारे! आप जिस से (सम्) (मनसा) उत्तम अन्तः-करण से (सम्) अच्छे मार्ग (गोभिः) गौओं वा (सम्) (स्वस्त्या) अच्छे २ वचनयुक्त सुखरूप व्यवहारों से (सूरिभिः) विद्वानों के साथ (ब्रह्मणा) वेद के विज्ञान वा धन से विद्या और (यत्) जो (यज्ञियानाम्) यज्ञ के पालन करने वाले को करने योग्य (देवानाम्) विद्वानों की (स्वाहा) सत्य वाणीयुक्त (सुमतौ) श्रेष्ठ बुद्धि में (देव-कृतम्) विद्वानों के किये कर्म्म हैं उन को (स्वाहा) सत्य वाणी से (नः) हम लोगों को (सन्नेषि) सम्यक् प्रकार से प्राप्त करते हो, इसी से आप हमारे पूज्य हो ॥१५॥

भावार्थः—गृहस्थ जनों को विद्वान् लोग इसलिये सत्कार करने योग्य हैं कि वे बालकों को अपनी शिक्षा से गुणवान् और राजा तथा प्रजा के जनों को ऐश्वर्य्ययुक्त करते हैं ॥१५॥

संवर्चसा इत्यस्यात्रिर्ऋषिः। गृहपतिर्देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर भी उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सं वर्च्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन। त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥१६॥

पदार्थः—हे आप्त अत्युत्तम विद्वानो! आप लोगों की सुमति में प्रवृत्त हुए हम लोग जो आप लोगों के मध्य (सुदत्रः) विद्या के दान से विज्ञान को देने और (त्वष्टा) अविद्यादि दोषों का नष्ट करने वाला विद्वान् हम को (संवर्च्चसा) उत्तम दिन और (पयसा) रात्रि से (संशिवेन) अति कल्याणकारक (मनसा) विज्ञान से

(यत्) जिस (तन्वः) शरीर से हानिकारक कर्म्म को (अनुमाष्टुं) दूर करें और (रायः) पुष्टिकारक द्रव्यों को (विदधातु) प्राप्त करावे उस और उन पदार्थों को (समगन्महि) प्राप्त हों ॥१६॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि दिन रात उत्तम सज्जनों के सङ्ग से धर्म्मार्थ काम और मोक्ष की सिद्धि करते रहें ॥१६॥

धाता रातिरित्यस्यात्रिर्ऋषिः। विश्वेदेवा गृहपतयो देवताः। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर गृहस्थों के कर्म्म का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है॥

धाता रातिः स॑वितेदं जु॑षन्तां प्र॒जाप॑तिर्निधि॒पा दे॒वोऽअ॒ग्निः। त्वष्टा॒ विष्णु॑ः प्र॒जया॑ स॑ᳪ र॒राणा॒ यज॑मानाय॒ द्रवि॑णं दधात॒ स्वाहा॑ ॥१७॥

पदार्थः—हे गृहस्थो! तुम (धाता) गृहाश्रम धर्म्म धारण करने (रातिः) सब के लिये सुख देने (सविता) समस्त ऐश्वर्य्य के उत्पन्न करने (प्रजापतिः) संतानादि के पालने (निधिपाः) विद्या आदि (ऋद्धि) अर्थात् धन समृद्धि के रक्षा करने (देवः) दोषों के जीतने (अग्निः) अविद्या रूप अंधकार के दाह करने (त्वष्टा) सुख के बढ़ाने और (विष्णुः) समस्त उत्तम-उत्तम शुभ गुण कर्म्मों में व्याप्त होने वालों के सदृश होके (प्रजया) अपने संतानादि के साथ (संरराणाः) उत्तम दानशील होते हुए (स्वाहा) सत्य क्रिया से (इदम्) इस गृहकार्य्य को (जुषन्ताम्) प्रीति के साथ सेवन करो और बलवान् गृहाश्रमी होकर (यजमानाय) यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले के लिये जिस बल से उत्तम उत्तम बली पुरुष बढ़ते जायं उस (द्रविणम्) धन को (दधात) धारण करो ॥१७॥

भावार्थः—गृहस्थों को उचित है कि यथायोग्य रीति से निरन्तर गृहाश्रम में रह के अच्छे गुण कर्मों का धारण, ऐश्वर्य की उन्नति तथा रक्षा, प्रजापालन, योग्य पुरुषों को दान, दुःखियों का दुःख छुड़ाना, शत्रुओं को जीतने और शरीरात्मबल में प्रवृत्ति आदि गुण धारण करें ॥१७॥

सुगा व इत्यस्यात्रिर्ऋषिः। गृहपतयो देवताः। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

फिर गृहकर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

सु॒गा वो॑ दे॒वाः सद॑नाऽअकर्म्म॒ यऽआ॑ज॒ग्मेद॒ᳪ सव॑नं जुषा॒णाः। भर॑माणा॒ वह॑माना ह॒वीᳪष्य॒स्मे ध॑त्त वसवो॒ वसू॑नि॒ स्वाहा॑ ॥१८॥

पदार्थः—हे (वसवः) श्रेष्ठ गुणों में रमण करने वाले (देवाः) व्यवहारी जनो ! (ये) जो (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (इदम्) इस (सवनम्) ऐश्वर्य का (जुषाणाः) सेवन (भरमाणाः) धारण करने (वहमानाः) औरों से प्राप्त होते हुए हम लोग तुम्हारे लिये (सुगा) अच्छी प्रकार प्राप्त होने योग्य (सदना) जिन के निमित्त पुरुषार्थ किया जाता है उन (हवींषि) देने लेने योग्य (वसूनि) धनों को (अकर्म) प्रकट कर रहे और (आजग्म) प्राप्त हुए हैं (अस्मे) हमारे लिये उन (वसूनि) धनों को आप (धत्त) धरो ॥१८॥

भावार्थः—जैसे पिता पति श्वशुर सासू मित्र और स्वामी पुत्र कन्या स्त्री स्नुषा सखा और भृत्यों का पालन करते हुए सुख देते हैं वैसे पुत्रादि भी इन की सेवा करना उचित समझें ॥१८॥

याँ२ऽआवह इत्यस्यात्रिर्ऋषिः । विश्वेदेवा गृहपतयो देवताः । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी घर का काम अगले मन्त्र में कहा है ॥

याँ२ऽआवहऽउशतो देव देवाँस्तान् प्रेरय स्वेऽअग्ने सधस्थे । जक्षिवाᳪंसः पपिवाᳪंसश्च विश्वेऽसुं घर्म्मᳪं स्वरातिष्ठतानु स्वाहा ॥१९॥

पदार्थः—हे (देव) दिव्य स्वभाव वाले अध्यापक ! तू (स्वे) अपने (सधस्थे) साथ बैठने के स्थान में (यान्) जिन (उशतः) विद्या आदि अच्छे अच्छे गुणों की कामना करते हुए (देवान्) विद्वानों को (आ) (अवहः) प्राप्त हो (तान्) उन को धर्म्म में (प्र) (ईरय) नियुक्त कर। हे गृहस्थ ! (जक्षिवांसः) अन्न खाते और (पपिवांसः) पानी पीते हुए (विश्वे) सब तुम लोग (स्वाहा) सत्य वाणी से (घर्मम्) अन्न और यज्ञ तथा (असुम्) श्रेष्ठ बुद्धि वा (स्वः) अत्यन्त सुख को (अनु) (आ) (तिष्ठत) प्राप्त होकर सुखी रहो ॥१९॥

भावार्थः—इस संसार में उपदेश करने वाले अध्यापक से विद्या और श्रेष्ठगुण को प्राप्त जो बालक सत्य धर्म्म कर्म्म वर्त्तने वाले हों वे सुखभागी हों और नहीं ॥१९॥

वयमित्यस्यात्रिर्ऋषिः। गृहपतयो देवताः । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।

अब व्यवहार करने वाले गृहस्थ के लिये उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

वयꣳ हि त्वा प्रयति यज्ञेऽअस्मिन्नग्ने होतारमवृणीमहीह। ऋधगया ऽऋधगुताशमिष्ठाः प्रजानन् यज्ञमुपयाहि विद्वान्त्स्वाहा ॥२०॥

पदार्थः—हे (अग्ने) ज्ञान देने वाले (वयम्) हम लोग (इह) (प्रयति) इस प्रयत्नसाध्य (यज्ञे) गृहाश्रमरूप यज्ञ में (त्वा) तुझ को (होतारम्) सिद्ध करने वाला (अवृणीमहि) ग्रहण करें। (विद्वान्) सब विद्यायुक्त (प्रजानन्) क्रियाओं के जानने वाले आप (ऋधक्) समृद्धिकारक (यज्ञम्) गृहाश्रमरूप यज्ञ को (स्वाहा) शास्त्रोक्त क्रिया से (उप) (याहि) समीप प्राप्त हों। (उत) और केवल प्राप्त ही नहीं किन्तु (अयाः) उस से दान सत्संग श्रेष्ठ गुण वालों का सेवन कर (हि) निश्चय करके (अस्मिन्) इस (ऋधक्) अच्छी ऋद्धि सिद्धि के बढ़ाने वाले गृहाश्रम के निमित्त (अशमिष्ठाः) शान्त्यादि गुणों को ग्रहण करके सुखी हों ॥२०॥

भावार्थः—सब व्यवहार करने वालों को चाहिये कि जो मनुष्य जिस काम में चतुर हो उस को उसी काम में प्रवृत्त करें ॥२०॥

देवा गातुवित्यस्यात्रिर्ऋषिः। गृहपतयो देवताः। स्वराडार्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

फिर भी गृहस्थों का कर्म अगले मन्त्र में कहा है॥

देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित। मनसस्पतऽइमं देव यज्ञꣳ स्वाहा वाते धाः ॥२१॥

पदार्थः—हे (गातुविदः) अपने गुण कर्म और स्वभाव से पृथिवी के आने जाने को जानने (देवाः) तथा सत्य और असत्य के अत्यन्त प्रशंसा के साथ प्रचार करने वाले विद्वान् लोगो! तुम (गातुम्) भूगर्भविद्यायुक्त भूगोल को (वित्त्वा) जान कर (गातुम्) पृथिवी राज्य आदि उत्तम कामों के उपकार को (इत) प्राप्त हूजिये। हे (मनसस्पते) इन्द्रियों के रोकनेहारे (देव) श्रेष्ठ विद्याबोधसम्पन्न विद्वानो! तुम में से प्रत्येक विद्वान् गृहस्थ (स्वाहा) धर्म बढ़ाने वाली क्रिया से (इमम्) इस गृहाश्रम रूप (यज्ञम्) सब सुख पहुंचाने वाले यज्ञ को (वाते) विशेष जानने योग्य व्यवहारों में (धाः) धारण करो ॥२१॥

भावार्थः—गृहस्थों को चाहिये कि अत्यन्त प्रयत्न के साथ भूगर्भविद्याओं को जान इन्द्रियों को जीत परोपकारी होकर और उत्तम धर्म्म से गृहाश्रम के व्यवहारों को उन्नति देकर सब प्राणीमात्र को सुखी करें ॥२१॥

यज्ञ यज्ञमित्यस्यात्रिर्ऋषिः। गृहपतयो देवताः। भुरिक् साम्न्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। एष इत्यस्य विराडार्ची बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर गृहस्थों के लिये विशेष उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

यज्ञ॑ य॒ज्ञं ग॑च्छ य॒ज्ञप॑तिं गच्छ॒ स्वां योनिं॑ गच्छ॒ स्वाहा॑। ए॒ष ते॑ य॒ज्ञो य॑ज्ञपते स॒हसू॑क्तवाकः॒ सर्व॑वीर॒स्तं जु॑षस्व॒ स्वाहा॑॥२२॥

पदार्थः—हे (यज्ञ) सत्कर्म्मों से संगत होने वाले गृहाश्रमी! तू (स्वाहा) सत्य सत्य क्रिया से (यज्ञम्) विद्वानों के सत्कारपूर्वक गृहाश्रम को (गच्छ) प्राप्त हो (यज्ञपतिम्) संग करने योग्य गृहाश्रम के पालने वाले को (गच्छ) प्राप्त हो (स्वाम्) अपने (योनिम्) घर और स्वभाव को (गच्छ) प्राप्त हो। (यज्ञपते) गृहाश्रम धर्म्म-पालक तू (ते) तेरा जो (एषः) यह (सहसूक्तवाकः) ऋग् यजुः साम और अथर्व वेद के सूक्त और अनुवाकों से कथित (सर्व्ववीरः) जिस से आत्मा और शरीर के पूर्णबल-युक्त समस्त वीर प्राप्त होते हैं (यज्ञः) प्रशंसनीय प्रजा की रक्षा के निमित्त विद्या-प्रचाररूप यज्ञ है (तम्) उसका तू (स्वाहा) सत्यविद्या न्याय प्रकाश करने वाली वेद-वाणी से (जुषस्व) प्रीति से सेवन कर॥२२॥

भावार्थः—प्रजाजन गृहस्थ पुरुष बड़े-बड़े यत्नों से घर के कार्यों को उत्तम रीति से करें। राजभक्ति राजसहायता और उत्तम धर्म्म से गृहाश्रम को सब प्रकार से पालें और राजा भी श्रेष्ठ विद्या के प्रचार से सब को संतुष्ट करे॥२२॥

माहिर्भूरित्यस्यात्रिर्ऋषिः। गृहपतयो देवताः। आद्यस्य याजुष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। उरुमित्यस्य शुनःशेप ऋषिः। निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः। नम इत्यस्यासुरी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब अगले मन्त्र में राजा के लिये उपदेश किया है॥

माहि॑र्भू॒र्मा पृदा॑कुः। उ॒रुꣳ हि राजा॒ वरु॑णश्च॒कार॒ सूर्य्या॑य॒ पन्था॒मन्वे॑त॒वाऽउ॑। अप॑दे॒ पादा॒ प्रति॑धातवेऽकरु॒ताप॑व॒क्ता हृ॑दया॒विध॑श्चित्। नमो॒ वरु॑णाया॒भिष्ठि॑तो॒ वरु॑णस्य॒ पाशः॑॥२३॥

पदार्थः—हे राजन् सभापते! तू (वरुणस्य) उत्तम ऐश्वर्य्य के वास्ते (उरुम्) बहुत गुणों से युक्त न्याय को (अकः) कर। (सूर्य्याय) चराचर के आत्मा जगदीश्वर के विज्ञान होने (सूर्य्याय) और प्रजागणों को यथायोग्य धर्म्म प्रकाश में चलने के लिये (पंथाम्) न्यायमार्ग को (चकार) प्रकाशित कर (उत) और कभी (अपवक्ता) झूठ

बोलने वाला (हृदयाविधः) धर्मात्माओं के मन को संताप देने वाले के (चित्) सदृश (पृदाकुः) खोटे वचन कहने वाला (मा) मत हो और (अहिः) सर्प्प के समान क्रोधरूपी विष का धारण करने वाला (मा) मत (भूः) हो और जैसे (वरुणस्य) वीर गुण वाले तेरा (अभिष्ठितः) अति प्रकाशित (नमः) वज्ररूप दण्ड और (पाशः) बन्धन करने की सामग्री प्रकाशमान रहे वैसे प्रयत्न को सदा किया कर ॥२३॥

भावार्थः—प्रजाजनों को चाहिये कि जो विद्वान् इन्द्रियों का जीतने वाला धर्मात्मा और पिता जैसे अपने पुत्रों को वैसे प्रजा की पालना करने में अति चित्त लगावे और सब के लिये सुख करने वाला सत्पुरुष हो उसी को सभापति करें और राजा वा प्रजाजन कभी अधर्म के कामों को न करें, जो किसी प्रकार कोई करे तो अपराध के अनुकूल प्रजा राजा को और राजा प्रजा को दंड देवे किन्तु कभी अपराधी को दण्ड दिये विना न छोड़े और निरपराधी को निष्प्रयोजन पीड़ा न देवे। इस प्रकार सब कोई न्यायमार्ग से धर्माचरण करते हुए अपने अपने प्रत्येक कामों के चिंतवन में रहें जिस से अधिक मित्र, थोड़े प्रीति रखने वाले और शत्रु न हों और विद्या तथा धर्म के मार्गों का प्रचार करते हुए सब लोग ईश्वर की भक्ति में परायण हो के सदा सुखी रहें ॥२३॥

अग्नेरनीकमित्यस्यात्रिर्ऋषिः। गृहपतिर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब राजा और प्रजाजन गृहस्थों के लिये उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अग्नेरनीकमपऽआविवेशापान्नपात् प्रतिरक्षन्नसुर्य्यम्। दमेदमे समिधं यक्ष्यग्ने प्रति ते जिह्वा घृतमुच्चरण्यत् स्वाहा ॥२४॥

पदार्थः—हे गृहस्थ ! तू (अग्नेः) अग्नि की (अनीकम्) लपटरूपी सेना के प्रभाव और (अपः) जलों को (आ) (विवेश) अच्छी प्रकार समझ (अपाम्) उत्तम व्यवहार सिद्धि कराने वाले गुणों को जान कर (नपात्) अविनाशीस्वरूप ! तू (असुर्यम्) मेघ और प्राण आदि अचेतन पदार्थों से उत्पन्न हुए सुवर्ण आदि धन को (प्रतिरक्षन्) प्रत्यक्ष रक्षा करता हुआ (दमेदमे) घर घर में (समिधम्) जिस क्रिया से ठीक ठीक प्रयोजन निकले उस को (यक्षि) प्रचार कर और (ते) तेरी (जिह्वा) जीभ (घृतम्) घी का स्वाद लेवे (स्वाहा) सत्यव्यवहार से (उत्) (चरण्यत्) देह आदि साधनसमूह सब काम किया करे ॥२४॥

भावार्थः—अग्नि और जल संसार के सब व्यवहारों के कारण हैं, इस

से गृहस्थजन विशेष कर अग्नि और जल के गुणों को जानें और गृहस्थ के सब काम सत्य व्यवहार से करें ॥२४॥

समुद्रे त इत्यस्यात्रिर्ऋषिः । गृहपतिर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर गृहस्थों के लिये उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः । यज्ञस्य त्वा यज्ञपते सूक्तोक्तौ नमोवाके विधेम यत् स्वाहा ॥२५॥

पदार्थः—हे (यज्ञपते) जैसे गृहाश्रम धर्म्म के पालने हारे ! हम लोग (स्वाहा) प्रेमास्पदवाणी से (यज्ञस्य) गृहाश्रमानुकूल व्यवहार के (सूक्तोक्तौ) उस प्रबन्ध कि जिस में वेद के वचनों के प्रमाण से अच्छी-अच्छी बातें हैं और (नमोवाके) वेद प्रमाणसिद्ध अन्न और सत्कारादि पदार्थों के वादानुवाद रूप (समुद्रे) आर्द्र व्यवहार और (अप्सु) सबके प्रमाणों में (ते) तेरे (यत्) जिस (हृदयम्) हृदय को संतुष्टि में (विधेम) नियत करें वैसे उस से जानी हुई (ओषधीः) यव गेहूँ चना सोमलतादि सुख देने वाले पदार्थ (आ) (विशंतु) प्राप्त हों (उत) और न केवल ये ही किन्तु (आपः) अच्छे जल भी तुझ को सुख करने वाले हों ॥२५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। पढ़ाने और उपदेश करने वाले सज्जन पुरुष गृहस्थों को सत्यविद्या को ग्रहण कराकर अच्छे यत्नों से सिद्ध होने योग्य घर के कामों में सब को युक्त करें जिस से गृहाश्रम चाहने और करने वाले पुरुष शरीर और अपने आत्मा का बल बढ़ावें ॥२५॥

देवीराप इत्यस्यात्रिर्ऋषिः । गृहपतयो देवताः । स्वराडार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब विवाहित स्त्रियों को करने योग्य उपदेश अगले मन्त्र में किया जाता है ॥

देवीराप एष वो गर्भस्तꣳ सुप्रीतꣳ सुभृतं बिभृत । देव सोमैष ते लोकस्तस्मिञ्छञ्च वक्ष्व परि च वक्ष्व ॥२६॥

पदार्थः—हे (आपः) समस्त शुभ गुण कर्म्म और विद्याओं में व्याप्त होने वाली (देवीः) अति शोभायुक्त स्त्रीजनो ! तुम सब (यः) जो (एषः) यह (वः) तुम्हारा (गर्भः) गर्भ (लोकः) पुत्र पति आदि के साथ सुखदायक है (तम्) उस को (सुप्रीतम्) श्रेष्ठ प्रीति के साथ (सुभृतम्) जैसे उत्तम रक्षा से धारण किया जाय

वैसे (बिभृत) धारण और उस की रक्षा करो। हे (देव) दिव्य गुणों से मनोहर (सोम) ऐश्वर्य्ययुक्त ! तू जो (एषः) यह (ते) तुम्हारा (लोकः) देखने योग्य पुत्र स्त्री भृत्यादि सुखकारक गृहाश्रम है (तस्मिन्) इस के निमित्त (शम्) सुख (च) और शिक्षा (वक्ष्व) पहुंचा (च) तथा इसकी रक्षा (परिवक्ष्व) सब प्रकार कर ॥२६॥

भावार्थः—पढ़ी हुई स्त्री यथोक्त विवाह की विधि से विद्वान् पति को प्राप्त होकर उस को आनन्दित कर परस्पर प्रसन्नता के अनुकूल गर्भ को धारण करे। वह पति भी स्त्री की रक्षा और उसकी प्रसन्नता करने को नित्य उत्साही हो ॥२६॥

अवभृथेत्यस्यात्रिर्ऋषिः। दम्पती देवते। भुरिक् प्राजापत्यानुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। अवदेवैरित्यस्य स्वराडार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर गृहस्थ धर्म्म में स्त्री का विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः। अव देवैर्देवकृत-मेनोऽयासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि। देवानाᳬ समिदसि ॥२७॥

पदार्थः—हे (अवभृथ) गर्भ के धारण करने के पश्चात् उसकी रक्षा करने (निचुम्पुण) और मन्द-मन्द चलने वाले पति ! आप (निचुम्पुणः) नित्य मन हरने और (निचेरुः) धर्म्म के साथ नित्य द्रव्य का संचय करने वाले (असि) हैं तथा (देवानाम्) विद्वानों के बीच में (समित्) अच्छे प्रकार तेजस्वी (असि) हैं। हे (देव) सब से अपनी जय चाहने वाले ! (देवैः) विद्वान् और (मर्त्यैः) साधारण मनुष्यों के साथ वर्त्तमान आप, जो मैं (देवकृतम्) कामी पुरुषों वा (मर्त्यकृतम्) साधारण मनुष्यों के किये हुए (एनः) अपराध को (अयासिषम्) प्राप्त होना चाहूं उस (पुरुराव्णः) बहुत से अपराध करने वालों के (रिषः) धर्म्म छुड़ाने वाले काम से मुझे (पाहि) दूर रख ॥२७॥

भावार्थः—स्त्री अपने पति की नित्य प्रार्थना करे कि जैसे मैं सेवा के योग्य आनन्दित चित्त आप को प्रतिदिन चाहती हूं वैसे आप भी मुझे चाहो और अपने पुरुषार्थ भर मेरी रक्षा करो जिस से मैं दुष्टाचरण करने वाले मनुष्य के किये हुए अपराध की भागिनी किसी प्रकार न होऊं ॥२७॥

एजत्वित्यस्यात्रिर्ऋषिः। दम्पती देवते। एवायमित्यस्यापि साम्न्युसुर्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। यथायमित्यस्य प्राजापत्यानुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

अब गृहस्थ धर्म्म में गर्भ की व्यवस्था अगले मन्त्र में कही है ॥

एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह । यथायं वायुरेजति यथा समुद्रऽएजति । एवायं दशमास्योऽअस्रज्जरायुणा सह ॥२८॥

पदार्थः—हे स्त्री-पुरुष ! जैसे (वायुः) पवन (एजति) कम्पता है वा जैसे (समुद्रः) समुद्र (एजति) अपनी लहरों से उछलता है वैसे तुम्हारा (अयम्) यह (दशमास्यः) पूर्ण दश महीने का गर्भ (एजतु) क्रम-क्रम से बढ़े और ऐसे बढ़ता हुआ (अयम्) यह (दशमास्यः) दश महीने में परिपूर्ण होकर ही (अस्रत्) उत्पन्न होवे ॥२८॥

भावार्थः—ब्रह्मचर्य्यधर्म्म से शरीर की पुष्टि, मन की संतुष्टि और विद्या की वृद्धि को प्राप्त होकर और विवाह किये हुए जो स्त्री-पुरुष हों वे यत्न के साथ गर्भ को रक्खें कि जिस से वह दश महीने के पहिले गिर न जाय क्योंकि जो गर्भ दश महीने से अधिक दिनों का होता है वह प्रायः बल और बुद्धि वाला होता है और जो इस से पहिले होता है वह वैसा नहीं होता ॥२८॥

यस्या इत्यस्यात्रिर्ऋषिः । दम्पती देवते । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थ धर्म्म में गर्भ की व्यावस्था अगले मन्त्र में कही है ॥

यस्यै ते यज्ञियो गर्भो यस्यै योनिर्हिरण्ययी । अङ्गान्यह्रुता यस्य तं मात्रा समजीगमँ स्वाहा ॥२९॥

पदार्थः—हे विवाहित सौभाग्यवती स्त्री ! मैं तेरा स्वामी (यस्यै) जिस (ते) तेरा (हिरण्ययी) रोगरहित शुद्ध गर्भाशय है और (यस्यै) जिस तेरा (यज्ञियः) यज्ञ के योग्य (गर्भः) गर्भ है (यस्य) जिस गर्भ के (अह्रुता) सुन्दर सीधे (अङ्गानि) अंग हैं (तम्) उस को (मात्रा) गर्भ की कामना करने वाली तेरे साथ समागम करके (स्वाहा) धर्म्मयुक्त क्रिया से (सम्) (अजीगमम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होऊं ॥२९॥

भावार्थः—पुरुष को चाहिये कि गृहाश्रम के बीच इन्द्रियों का जीतना, वीर्य्य की बढ़ती, शुद्धि से उसकी उन्नति करें । स्त्री भी ऐसा ही करे और पुरुष से गर्भ को प्राप्त होके उस की स्थिति और योनि आदि की आरोग्यता तथा रक्षा करे और जो स्त्री पुरुष परस्पर आनन्द से सन्तान को

उत्पन्न करें तो प्रशंसनीय रूप, गुण, कर्म, स्वभाव और बल वाले सन्तान उत्पन्न हों ऐसा सब लोग निश्चित जानें ॥२९॥

पुरुदस्म इत्यस्यात्रिर्ऋषिः । दम्पती देवते । आर्षी जगती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी गर्भ की व्यवस्था अगले मन्त्र में कही है ॥

पुरुदस्मो विषुरूपऽइन्दुरन्तर्महिमानमानञ्ज धीरः । एकपदीं द्विपदीं त्रिपदीं चतुष्पदीमष्टापदीं भुवनानु प्रथन्तांᳬ स्वाहा ॥३०॥

पदार्थः—(पुरुदस्मः) जिस के गुणों से बहुत दुःखों का नाश होता है (विषुरूपः) जिस ने जन्मक्रम से अनेक रूपरूपान्तर विद्या-विषयों में प्रवेश किया है (इन्दुः) जो परमैश्वर्य्य को सिद्ध करने वाला (धीरः) समस्त व्यवहारों में ध्यान देने हारा पुरुष है वह गृहस्थ-धर्म्म से विवाही हुई अपनी स्त्री के (अन्तः) भीतर (महिमानम्) प्रशंसनीय ब्रह्मचर्य्य और जितेन्द्रियता आदि शुभ कर्मों से संस्कार प्राप्त होने योग्य गर्भ को (आनञ्ज) कामना करे, गृहस्थ लोग ऐसे सृष्टि की उत्पत्ति का विधान करके जिस (एकपदीम्) जिस में एक यह ओम् पद (द्विपदीम्) जिस में दो अर्थात् संसारसुख और मोक्षसुख (त्रिपदीम्) जिससे वाणी मन और शरीर तीनों के आनन्द (चतुष्पदीम्) जिस से चारों धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष (अष्टापदीम्) और जिस से आठों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण तथा ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये चारों आश्रम प्राप्त होते हैं उस (स्वाहा) समस्त विद्यायुक्त वाणी को जान कर सब गृहस्थ जन (भुवना) जिन में प्राणीमात्र निवास किया करते हैं उन घरों की (प्रथन्ताम्) प्रशंसा करें और उस से सब मनुष्यों को (अनु) अनुकूलता से बढ़ावें ॥३०॥

भावार्थः—विवाह किये हुए स्त्री पुरुषों को चाहिये कि गृहाश्रम की विद्या को सब प्रकार जानकर उसके अनुसार संतानों को उत्पन्न कर मनुष्यों को बढ़ा और उन को ब्रह्मचर्य्य नियम से समस्त अङ्ग उपांगसहित विद्या का ग्रहण करा के उत्तम-उत्तम सुखों को प्राप्त होके आनन्दित करें ॥३०॥

मरुतो यस्येत्यस्य गोतम ऋषिः । दम्पती देवते । आर्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अगले मन्त्र में भी गृहस्थधर्म्म का विषय कहा है ॥

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः । स सुगोपातमो जनः ॥३१॥

पदार्थः—हे (विमहसः) विविध प्रकार से प्रशंसा करने योग्य (मरुतः) विद्वान् गृहस्थ लोगो ! तुम (यस्य) जिस गृहस्थ के (क्षये) घर में सुवर्ण उत्तम रूप (दिवः) दिव्य गुण स्वभाव वा प्रत्येक कामों के करने की रीति को (पाथ) प्राप्त होओ (सः) (हि) वह (सुगोपातमः) अच्छे प्रकार वाणी और पृथिवी की पालना करने वाला (जनः) मनुष्य सेवा के योग्य है ।।३१।।

भावार्थः—इस बात का निश्चय है कि ब्रह्मचर्य्य उत्तम शिक्षा विद्या शरीर और आत्मा का बल आरोग्य पुरुषार्थ ऐश्वर्य्य सज्जनों का सङ्ग आलस्य का त्याग यम नियम और उत्तम सहाय के विना किसी मनुष्य से गृहाश्रम धारा जा नहीं सकता [इसके विना धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि नहीं हो सकती इसलिये इस का पालन सब को बड़े यत्न से करना चाहिये] ।।३१।।

मही द्यौरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । दम्पती देवते । आर्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।।

फिर गृहस्थों के कर्मों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

मही द्यौः पृ॑थि॒वी च॑ न॒ऽइ॒मं य॒ज्ञं मि॑मिक्षताम् । पि॒पृ॒तां नो॒ भरी॑मभिः ।।३२।।

पदार्थः—हे स्त्री पुरुष ! तुम दोनों (मही) अति प्रशंसनीय (द्यौः) दिव्य पुरुष की आकृतियुक्त पति और अति प्रशंसनीय (पृथिवी) बढ़े हुए शील और क्षमा धारण करने आदि की सामर्थ्य वाली तू (भरीमभिः) धीरता और सब को संतुष्ट करने वाले गुणों से युक्त व्यवहारों वा पदार्थों से (नः) हमारे (च) औरों के भी (इमम्) इस (यज्ञम्) विद्वानों के प्रशंसा करने योग्य गृहाश्रम को (मिमिक्षताम्) सुखों से अभिषिक्त और (पिपृताम्) परिपूर्ण करना चाहो ।।३२।।

भावार्थः—जैसे सूर्यलोक जलादि पदार्थों को खींच और वर्षा कर रक्षा और पृथिवी आदि पदार्थों का प्रकाश करता है वैसे यह पति श्रेष्ठ गुण और पदार्थों का संग्रह कर के देने से रक्षा और विद्या आदि गुणों को प्रकाशित करता है तथा जिस प्रकार यह पृथिवी सब प्राणियों को धारण कर उन की रक्षा करती है वैसे स्त्री गर्भ आदि व्यवहारों को धारण कर सब की पालना करती है। इस प्रकार स्त्री और पुरुष इकट्ठे होकर स्वार्थ को सिद्ध कर मन वचन और कर्म से सब प्राणियों को भी सुख देवें ।।३२।।

आतिष्ठेत्यस्य गोतम ऋषिः । गृहपतयो देवताः । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गांधारः स्वरः । उपयामेत्यस्य आर्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब प्रकारान्तर से गृहस्थ का धर्म्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

आतिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी । अर्वाचीनꣳ सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा षोडशिनऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥३३॥

पदार्थः—हे (वृत्रहन्) शत्रुओं को मारने वाले गृहाश्रमी ! तू (ग्रावा) मेघ के तुल्य सुख वरसाने वाला है (ते) तेरे जिस रमणीय विद्या प्रकाशमय गृहाश्रम वा रथ में (ब्रह्मणा) जल वा धन से (हरी) धारण और आकर्षण अर्थात् खींचने के समान घोड़े (युक्ता) युक्त किये जाते हैं उस गृहाश्रम करने की (आतिष्ठ) प्रतिज्ञा कर । इस गृहाश्रम में (ते) तेरा जो (मनः) मन (अर्वाचीनम्) मन्दपन को पहुंचता है उस को (वग्नुना) वेदवाणी से शान्त कर । जिस से तू (उपयामगृहीतः) गृहाश्रम करने की सामग्री ग्रहण किये हुए (असि) है इस कारण (षोडशिने) सोलह कलाओं से परिपूर्ण (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य देने वाले गृहाश्रम करने के लिये (त्वा) तुझ को उपदेश करता हूं । (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य के लिये (त्वा) तुझ को उपदेश करता हूं, कि जो (एषः) यह (ते) तेरा (योनिः) घर है इस (षोडशिने) सोलह कलाओं से परिपूर्ण (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य देने वाले गृहाश्रम करने के लिये (त्वा) तुझ को आज्ञा देता हूं ॥३३॥

भावार्थः—गृहाश्रम के आधीन सब आश्रम हैं और वेदोक्त श्रेष्ठ व्यवहार से जिस गृहाश्रम की सेवा की जाय उस से इस लोक और परलोक का सुख होने से परमैश्वर्य्य पाने के लिये गृहाश्रम ही सेवना उचित है ॥३३॥

युक्ष्वा हीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । गृहपतिर्देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । उपयामेत्यस्य पूर्ववच्छन्दः स्वरश्च ॥

अब राजविषय में उक्त प्रकार से गृहाश्रम का धर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा । अथा नऽइन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिनऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥३४॥

पदार्थः—हे (सोमपाः) ऐश्वर्य्य की रक्षा करने और (इन्द्र) शत्रुओं का विनाश करने वाले ! तुम (केशिना) जिन के अच्छे अच्छे बाल हैं उन (वृषणा) बैल

के समान बलवान् (कक्ष्यप्रा) अभीष्ट देश तक पहुंचाने वाले (हरी) यान के चलाने हारे घोड़ों को (रथे) रथ में (युक्ष्व) जोड़ो (अथ) इस के अनन्तर (नः) हम लोगों की (गिराम्) विनयपत्रों की (उपश्रुतिम्) प्रार्थना को (हि) चित्त देकर (चर) जानो। आप (उपयामगृहीतः) गृहाश्रम की सामग्री को ग्रहण किये हुए (असि) हैं इस कारण (षोडशिने) सोलह कलाओं से परिपूर्ण (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य के लिये (त्वा) तुझ को उपदेश करता हूं कि जो (एषः) यह (ते) तेरा (योनिः) घर है इस (षोडशिने) सोलह कलाओं से परिपूर्ण (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य देने वाले गृहाश्रम के लिये (त्वा) तुझे आज्ञा देता हूं ॥३४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पिछले मन्त्र से "रथं" यह पद अर्थ से आता है। प्रजा, सेना और सभा के मनुष्य सभाध्यक्ष से ऐसे कहें कि आप को शत्रुओं के विनाश और राज्य भर में न्याय रहने के लिये घोड़े आदि सेना के अङ्गों को अच्छी शिक्षा देकर आनन्दित और बल वाले रखने चाहिये फिर हम लोगों के विनयपत्रों को सुनकर राज्य और ऐश्वर्य की भी रक्षा करनी चाहिये ॥३४॥

इन्द्रमिदित्यस्य गोतम ऋषिः। गृहपतिर्देवता। विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। उपयामेत्यस्य सर्वं पूर्ववत् ॥

फिर भी उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम्। ऋषींणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुंषाणाम्। उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा षोडशिनंऽएष ते योनि-रिन्द्राय त्वा षोडशिनें ॥३५॥

पदार्थः—हे (सोमपाः) ऐश्वर्य्य की रक्षा और (इन्द्र) शत्रुओं का विनाश करने वाले सभाध्यक्ष! आप जो (हरी) हरणकारक बैल और आकर्षणरूप घोड़ों से (अप्रतिधृष्टशवसम्) जिस ने अपना अच्छा बल बढ़ा रक्खा है उस (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्य बढ़ाने और सेना रखने वाले सेना समूह को (वहतः) वहाते हैं उन से युक्त होकर (ऋषीणाम्) वेदमन्त्र जानने वाले विद्वानों और (च) वीरों के (स्तुतीः) गुणों के ज्ञान और (मानुषाणाम्) साधारण मनुष्यों के (यज्ञम्) संगम करने योग्य व्यवहार और (च) उन की पालना करो और (उप) समीप प्राप्त हो जिस (ते) तेरा (एषः) यह (योनिः) निमित्त राज्यधर्म्म है जो तू (उपयामगृहीतः) सब सामग्री से संयुक्त है उस (त्वा) तुझ को (षोडशिने) षोडश कलायुक्त (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य्य के लिये प्रजा सेनाजन आश्रय लेवें और हम भी लेवें ॥३५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पिछले मन्त्र से (इन्द्र) (सोमपाः) (चर) इन तीन पदों की योजना होती है। राजा राज्यकर्म्म में विचार करने वाले जन और प्रजाजनों को यह योग्य है कि प्रशंसा करने योग्य विद्वानों से विद्या और उपदेश पाकर औरों का उपकार सदा किया करें ॥३५॥

यस्मान्नेत्यस्य विवस्वान् ऋषिः। परमेश्वरो देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब गृहाश्रम की इच्छा करने वालों को ईश्वर ही की उपासना करनी चाहिये यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

यस्मान्न जातः परोऽअन्योऽअस्ति यऽआविवेश भुवनानि विश्वा। प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी ॥३६॥

पदार्थः—(यस्मात्) जिस परमेश्वर से (परः) उत्तम (अन्यः) और दूसरा (न) नहीं (जातः) हुआ और (यः) जो परमात्मा (विश्वा) समस्त (भुवनानि) लोकों को (आविवेश) व्याप्त हो रहा है (सः) वह (प्रजया) सब संसार से (संरराणः) उत्तम दाता होता हुआ (षोडशी) इच्छा प्राण श्रद्धा पृथिवी जल अग्नि वायु आकाश दशों इन्द्रिय मन अन्न वीर्य्य तप मन्त्र लोक और नाम इन सोलह कलाओं के स्वामी (प्रजापतिः) संसारमात्र का स्वामी परमेश्वर (त्रीणि) तीन (ज्योतींषि) ज्योति अर्थात् सूर्य्य विजुली और अग्नि को (सचते) सब पदार्थों में स्थापित करता है ॥३६॥

भावार्थः—गृहाश्रम की इच्छा करने वाले पुरुषों को चाहिये कि जो सर्वत्र व्याप्त सब लोकों का रचने और धारण करने वाला दाता न्यायकारी सनातन अर्थात् सदा ऐसा ही बना रहता है, सत् अविनाशी चैतन्य और आनन्दमय नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव और सब पदार्थों से अलग रहने वाला छोटे से छोटा बड़े से बड़ा सर्वशक्तिमान् परमात्मा जिस से कोई भी पदार्थ उत्तम वा जिस के समान नहीं है उस की उपासना करें ॥३६॥

इन्द्रश्चेत्यस्य विवस्वानृषिः। सम्राड्माण्डलिकौ राजानौ देवते। साम्नी त्रिष्टुप् छन्दः। तयोरहमित्यस्य विराडार्ची त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अथ गृहाश्रम के उपयोगी राजविषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रश्च सम्राड् वरुणश्च राजा तौ ते भक्षं चक्रतुरग्रऽएतम्। तयोरहमनु भक्षं भक्षयामि वाग्देवी जुषाणा सोमस्य तृप्यतु सह प्राणेन स्वाहा ॥३७॥

पदार्थः—हे प्रजाजन ! जो (इन्द्रः) परमैश्वर्य्ययुक्त (च) राज्य के अंग-उपांगसहित (सम्राट्) सब जगह एकचक्र राज करने वाला राजा (वरुणः) अति उत्तम (च) और (राजा) न्यायादि गुणों से प्रकाशमान माण्डलिक सेनापति है (तौ) वे दोनों (अग्रे) प्रथम (ते) तेरा (भक्षम्) सेवन अर्थात् नाना प्रकार से रक्षा करें और (अहम्) मैं (तयोः) उनका (एतम्) इस (भक्षम्) स्थित पदार्थ का (अनु) पीछे (भक्षयामि) सेवन कर के कराऊं। ऐसे करते हुए हम तुम सब को (सोमस्य) विद्यारूपी ऐश्वर्य्य के बीच (जुषाणा) प्रीति कराने वाली (देवी) सब विद्याओं की प्रकाशक (वाक्) जो वेदवाणी है उस से (स्वाहा) सब मनुष्य (तृप्यतु) संतुष्ट रहें ॥३७॥

भावार्थः—प्रजा के बीच अपनी-अपनी सभाओं सहित राजा होने के योग्य दो होते हैं। एक चक्रवर्त्ती अर्थात् एकचक्र राज करने वाला और दूसरा माण्डलिक कि जो मण्डल-मण्डल का ईश्वर हो। ये दोनों प्रकार के राजाजन उत्तम-उत्तम न्याय नम्रता सुशीलता और वीरतादि गुणों से प्रजा की रक्षा अच्छे प्रकार करें फिर उन प्रजाजनों से यथायोग्य राज्य-कर लेवें और सब व्यवहारों में विद्या की वृद्धि सत्य वचन का आचरण करें। इस प्रकार धर्म्म अर्थ और कामनाओं से प्रजाजनों को संतोष देकर आप संतोष पावें। आपत्काल में राजा प्रजा की तथा प्रजा राजा की रक्षा कर परस्पर आनन्दित हों ॥३७॥

अग्ने पवस्वेत्यस्य वैखानस ऋषिः। राजादयो गृहपतयो देवताः। भुरिक् त्रिपाद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। उपयामेत्यस्य स्वराडार्च्यनुष्टुप् छन्दः। अग्ने-वर्चस्विन्नित्यस्य भुरिगार्च्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी प्रकारान्तर से पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने पवस्व स्वपाऽअस्मे वर्चः सुवीर्य्यम्। दधद्रयिं मयि पोषम्। उपयामगृहीतोस्यग्नये त्वा वर्चसऽएष ते योनिरग्नये त्वा वर्चसे। अग्ने वर्चस्विन्वर्चस्वाँस्त्वं देवेष्वसि वर्चस्वानहं मनुष्येषु भूयासम् ॥३८॥

पदार्थः—हे (स्वपाः) उत्तम-उत्तम काम तथा (वर्चस्विन्) सुन्दर प्रकार से वेदाध्ययन करने वाले (अग्ने) सभापति ! आप (अस्मे) हम लोगों के लिये (सुवीर्य्यम्) उत्तम पराक्रम (वर्चः) वेद का पढ़ना तथा (मयि) निरन्तर रक्षा करने योग्य अस्मदादि जन में (रयिम्) धन और (पोषम्) पुष्टि को (दधत्) धारण करते हुए (पवस्व) पवित्र हूजिये (उपयामगृहीतः) राज्य-व्यवहार के लिये हमने स्वीकार किये हुए (असि) आप हैं (त्वा) तुझ को (वर्चसे) उत्तम तेज बल पराक्रम के लिये (अग्नये) वा विज्ञानयुक्त परमेश्वर की प्राप्ति के लिये हम स्वीकार करते हैं (ते) तुम्हारी (एषः) यह (योनिः) राजभूमि निवासस्थान है (त्वा) तुझ को (वर्चसे) हम लोग अपने विद्या प्रकाश सब प्रकार सुख के लिये वार वार प्रत्येक कामों में प्रार्थना करते हैं। हे तेजधारी सभापते राजन् ! जैसे (त्वम्) आप (देवेषु) उत्तम-उत्तम विद्वानों में (वर्चस्वान्) प्रशंसनीय विद्याध्ययन करने वाले (असि) हैं, वैसे (अहम्) मैं (मनुष्येषु) विचारशील पुरुषों में आप के सदृश (भूयासम्) होऊं ॥३८॥

भावार्थः—राजा आदि सभ्य जनों को उचित है कि सब मनुष्यों में उत्तम-उत्तम विद्या और अच्छे अच्छे गुणों को बढ़ाते रहें जिस से समस्त लोग श्रेष्ठ गुण और कर्म्म प्रचार करने में उत्तम होवें ॥३८॥

उत्तिष्ठन्नित्यस्य वैखानस ऋषिः। राजादयो गृहस्था देवताः। उत्तिष्ठन्नित्यस्योपेत्येतस्य चार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। इन्द्रेत्यस्याच्युंष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

फिर भी उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रेऽअवेपयः। सोममिन्द्र चमू सुतम्। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वौजसऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वौजसे। इन्द्रौजिष्ठौजिष्ठस्त्वं देवेष्वस्योजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम् ॥३९॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य रखने वाले वा ऐश्वर्य में रमने वाले सभापते ! आप (चमू) सेना के साथ (सुतम्) उत्पादन किये हुए (सोमम्) सोम को (पीत्वी) पीके (ओजसा) शरीर आत्मा राजसभा और सेना के बल के (सह) साथ (उत्तिष्ठन्) अच्छे गुण कर्म और स्वभावों में उन्नति को प्राप्त होते हुए (शिप्रे) युद्धादि कर्मों से डाढ़ी और नासिका आदि अङ्गों को (अवेपयः) कम्पाओ अर्थात् यथायोग्य कामों में अंगों की चेष्टा करो। हम लोगों ने आप (उपयामगृहीतः) राज्य के नियम उपनियमों से ग्रहण किये (असि) हैं इस से (त्वा) आप को सावधानता से (इन्द्राय)

परमैश्वर्य देने वाले जगदीश्वर की प्राप्ति के लिये सेवन करते हैं (ओजसे) अत्यन्त पराक्रम और (इन्द्राय) शत्रुओं के विदारण के लिये (त्वा) आप को प्रेरणा करते हैं, हे (ओजिष्ठ) अत्यन्त तेजधारी जैसे (त्वम्) आप (देवेषु) शत्रुओं को जीतने की इच्छा करने वालों में (ओजिष्ठः) अत्यन्त पराक्रम वाले (असि) हैं, वैसे ही मैं भी (मनुष्येषु) साधारण मनुष्यों में (भूयासम्) होऊं ॥३९॥

भावार्थः—राजपुरुषों को यह योग्य है कि भोजन वस्त्र और खाने पीने के पदार्थों से शरीर के वल को उन्नति देवें किन्तु व्यभिचारादि दोषों में कभी न प्रवृत्त होवें और परमेश्वर की उपासना भी यथोक्त व्यवहारों में करें ॥३९॥

अदृश्रमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः। गृहपतयो राजादयो देवताः। अदृश्रमित्यस्य सूर्य्येत्यस्य चार्षी गायत्री छन्दः। उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य स्वराडार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

फिर भी प्रकारान्तर से पूर्वोक्त विषय ही अगले मन्त्र में कहा है ॥

अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ२ऽअनु। भ्राजन्तो अग्नयो यथा। उपयामगृहीतोऽसि सूर्य्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय। सूर्य्य भ्राजिष्ठ भ्राजिष्ठस्त्वं देवेष्वसि भ्राजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम् ॥४०॥

पदार्थः—जैसे (अस्य) इस जगत् के पदार्थों में (भ्राजन्तः) प्रकाश को प्राप्त हुई (रश्मयः) कान्ति (केतवः) वा उन पदार्थों को जनाने वाले (अग्नयः) सूर्य्य विद्युत् और प्रसिद्ध अग्नि हैं वैसे ही (जनान्) मनुष्यों को (अनु) एक अनुकूलता के साथ (अदृश्रम्) मैं दिखलाऊं। हे सभापते ! आप (उपयामगृहीतः) राज्य के नियम और उपनियमों से स्वीकार किये हुए (असि) हैं, जिन (ते) आप का (एषः) यह राज्य-कर्म्म (योनिः) ऐश्वर्य्य का कारण है उन (त्वा) आप को (भ्राजाय) जिलाने वाले (सूर्य्याय) प्राण के लिये चिताता हूं तथा उन्हीं आप को (भ्राजाय) सर्वत्र प्रकाशित (सूर्य्याय) चराचरात्मा जगदीश्वर के लिये भी चिताता हूं। हे (भ्राजिष्ठ) अति पराक्रम से प्रकाशमान (सूर्य्य) सूर्य्य के समान सत्य विद्या और गुणों से प्रकाशमान ! जैसे (त्वम्) आप (देवेषु) समस्त विद्याओं से युक्त विद्वानों में प्रकाशमान (भ्राजिष्ठः) अत्यन्त प्रकाशित हैं वैसे मैं भी (मनुष्येषु) साधारण मनुष्यों में (भूयासम्) प्रकाशमान होऊं ॥४०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे इस संसार में सूर्य की

किरण सब जगह फैल के प्रकाश करती हैं वैसे राजा प्रजा और सभासद्-जन शुभ गुण कर्म्म और स्वभावों में प्रकाशमान हों, क्योंकि ऐसा है कि मनुष्यशरीर पाकर किसी उत्साह पुरुषार्थ सत्पुरुषों का सङ्ग और योगाभ्यास का आचरण करते हुए मनुष्य को धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि तथा शरीर आत्मा और समाज की उन्नति करना दुर्लभ नहीं है। इस से सब मनुष्यों को चाहिये कि आलस्य को छोड़ के नित्य प्रयत्न किया करें ।।४०।।

उदुत्यमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः। सूर्यो देवता। पूर्वस्य निचृदार्षी, उपयामेत्यस्य स्वराडार्षी गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः ।।

अब ईश्वर पक्ष में गृहस्थ के कर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्य्यम्। उपयामगृहीतोऽसि सूर्य्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्य्याय त्वा भ्राजाय ।।४१।।

पदार्थः—(जातवेदसम्) जो उत्पन्न हुए पदार्थों को जानता वा प्राप्त कराता वा वेद और संसार के पदार्थ जिससे उत्पन्न हुए हैं (देवम्) शुद्धस्वरूप जगदीश्वर जिसको (विश्वाय) संसार के उपकार के लिये (दृशे) ज्ञानचक्षु से देखने को (केतवः) किरणों के तुल्य सर्व अंशों में प्रकाशमान विद्वान् (उत्) (वहन्ति) अपने उत्कर्ष से वादानुवाद कर व्याख्यान करते हैं (उ) तर्क वितर्क के साथ (त्यम्) उस जगदीश्वर को हम लोग प्राप्त हों। हे जगदीश्वर ! जो आप हम लोगों ने (भ्राजाय) प्रकाशमान अर्थात् अत्यन्त उत्साह और पुरुषार्थयुक्त (सूर्य्याय) प्राण के लिये (उपयामगृहीतः) यम नियमादि योगाभ्यास उपासना आदि साधनों से स्वीकार किये हुए (असि) हैं उन (त्वा) आप को उक्त कामना के लिये समस्त जन स्वीकार करें और हे ईश्वर ! जिन (ते) आप का (एषः) यह कार्य्य और कारण की व्याप्ति से एक अनुमान होना (योनिः) अनुपम प्रमाण है उन(त्वा) आप को (भ्राजाय) प्रकाशमान (सूर्य्याय) ज्ञानरूपी सूर्य्य को पाने के लिये एक कारण जानते हैं ।।४१।।

भावार्थः—जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जान कर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं वैसे ही वह जगदीश्वर सब को उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उस की अवधि है ।।४१।।

आजिघ्रेत्यस्य कुसुरुविन्दु ऋषिः । पत्नी देवता । स्वराड्ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ।।

अब गृहस्थ के कर्म्म में स्त्री के उपदेश विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

आजिघ्र कलशं मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः । पुनरूर्जा निवर्त्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्माविशताद्रयिः ।।४२।।

पदार्थः—हे (महि) प्रशंसनीय गुणवाली स्त्री ! जो तू (उरुधारा) विद्या और अच्छी अच्छी शिक्षाओं को अत्यन्त धारण करने(पयस्वती)प्रशंसित अन्न और जल रखने वाली है वह गृहाश्रम के शुभ कामों में (कलशम्) नवीन घट का (आजिघ्र) आघ्राण कर अर्थात् उस को जल से पूर्ण कर उसकी उत्तम सुगन्धि को प्राप्त हो (पुनः) फिर (त्वा) तुझे (सहस्रम्) असंख्यात (इन्दवः) सोम आदि ओषधियों के रस (आविशन्तु) प्राप्त हों जिस से तू दुःख से (निवर्तस्व) दूर रहे अर्थात् कभी तुझ को दुःख न प्राप्त हो । तू (ऊर्जा) पराक्रम से (नः) हम को (धुक्ष्व) परिपूर्ण कर (पुनः) पीछे (मा) मुझे (रयिः) धन (आविशतात्) प्राप्त हो ।।४२।।

भावार्थः—विद्वान् स्त्रियों को योग्य है कि अच्छी परीक्षा किए हुए पदार्थ को जैसे आप खायें वैसे ही अपने पति को खिलावें कि जिस से बुद्धि वल और विद्या की वृद्धि हो और धनादि पदार्थों को भी बढ़ाती रहें ।।४२।।

इडे रन्त इत्यस्य कुसुरुविन्दुऋषिः । पत्नी देवता । आर्षीपंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।।

फिर भी प्रकारान्तर से उसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति । एता तेऽघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात् ।।४३।।

पदार्थः—हे (अघ्न्ये) ताड़ना न देने योग्य (अदिते) आत्मा से विनाश को प्राप्त न होने वाली (ज्योते) श्रेष्ठ शील से प्रकाशमान (इडे) प्रशंसनीय गुणयुक्त (हव्ये) स्वीकार करने योग्य (काम्ये) मनोहर स्वरूप (रन्ते) रमण करने योग्य (चन्द्रे) अत्यन्त आनन्द देने वाली (विश्रुति) अनेक अच्छी बातें और वेद जानने वाली (महि) अत्यन्त प्रशंसा करने योग्य (सरस्वति) प्रशंसित विज्ञान वाली पत्नी ! उक्त गुण प्रकाश करने वाले (ते) तेरे (एता) ये (नामानि) नाम हैं तू (देवेभ्यः) उत्तम गुणों के लिये (मा) मुझ को (सुकृतम्) उत्तम उपदेश (ब्रूतात्) किया कर ।।४३।।

भावार्थः—जो विद्वानों से शिक्षा पाई हुई स्त्री हो वह अपने २ पति

और अन्य सब स्त्रियों को यथायोग्य उत्तम कर्म्म सिखलावे जिससे किसी तरह वे अधर्म्म की ओर न डिगें। वे दोनों स्त्री पुरुष विद्या की वृद्धि और बालकों तथा कन्याओं को शिक्षा किया करें ॥४३॥

वि न इत्यस्य शास ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिगनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः। उपयामेत्यस्य विराडार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब सिंह जैसे पीछे लौट कर देखता है इस प्रकार गृहस्थ कर्म्म के निमित्त राजपक्ष में कुछ उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वि नऽइन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः। योऽअस्माँ२ऽअभिदासत्यधरं गमया तमः। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विमृधऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा विमृधे ॥४४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सेनापते! तू (नः) हमारे (पृतन्यतः) हम से युद्ध करने के लिये सेना की इच्छा करने हारे शत्रुओं को (जहि) मार और उन (नीचा) नीचों को (यच्छ) वश में ला और जो शत्रुजन (अस्मान्) हम लोगों को (अभिदासति) सब प्रकार दुःख देवे उस (विमृधः) दुष्ट को (तमः) जैसे अन्धकार को सूर्य्य नष्ट करता है वैसे (अधरम्) अधोगति को (गमय) प्राप्त करा जिस (ते) तेरा (एषः) उक्त कर्म्म करना (योनिः) राज्य का कारण है इससे तू हम लोगों से (उपयामगृहीतः) सेना आदि सामग्री से ग्रहण किया हुआ (असि) है इसी से (त्वा) तुझ को (विमृधः) जिस में बड़े २ युद्ध करने वाले शत्रुजन हैं (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य देने वाले उस युद्ध के लिये स्वीकार करते हैं (त्वा) तुझ को (विमृधे) जिस के शत्रु नष्ट हो गये हैं उस (इन्द्राय) राज्य के लिये प्रेरणा देते हैं अर्थात् अधर्म्म से अपना वर्त्ताव न वर्त्ते ॥४४॥

भावार्थः—जो खोटे काम करने वाला पुरुष अनेक प्रकार से अपने बल को उन्नति देकर सब दुःख देना चाहे, उस को राजा सब प्रकार से दण्ड दे तो भी वह अपनी अत्यन्त खोटाइयों को न छोड़े तो उस को मार डाले अथवा नगर से इस को दूर निकाल बन्ध रक्खे ॥४४॥

वाचस्पतिमित्यस्य शास ऋषिः। ईश्वरसभेशौ राजानौ देवते। भुरिगार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। उपयामेत्यस्य स्वराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। आद्यस्य धैवतः परस्य गान्धारः स्वरश्च॥

अब गृहस्थ कर्म में राज और ईश्वर का विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

वाचस्पतिं विश्वकर्म्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम। स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्म्मा। उपयाम-

गृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्म्मणऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्म्मणे ॥४५॥

पदार्थः—हम (अद्य) अत्र (वाजे) विज्ञान वा युद्ध के निमित्त जिन (वाचः) वेदवाणी के (पतिं) स्वामी वा रक्षा करने वाले (विश्वकर्म्माणम्) जिन के सब धर्म्म-युक्त कर्म्म हैं जो (मनोजुवम्) मन चाहती गति का जानने वाला है उस परमेश्वर वा सभापति को (हुवेम) चाहते हैं। सो आप (साधुकर्म्मा) अच्छे २ कर्म्म करने वाले (विश्वशम्भूः) समस्त सुख को उत्पन्न कराने वाले जगदीश्वर वा सभापति (नः) हमारे (अवसे) प्रेम बढ़ाने के लिये (विश्वानि) (हवनानि) दिये हुए सब प्रार्थनावचनों को (जोषत्) प्रेम से मानें। जिन (ते) आपका (एषः) यह उक्त कर्म्म (योनिः) एक प्रेमभाव का कारण है वे आप (उपयामगृहीतः) यमनियमों से ग्रहण किये हुए (असि) हैं इस से (विश्वकर्म्मणे) समस्त कामों के उत्पन्न करने तथा (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य के लिये (त्वा) आप की प्रार्थना तथा (विश्वकर्म्मणे) समस्त काम की सिद्धि के लिये शिल्पक्रियाकुशलता से उत्तम ऐश्वर्य्य वाले आप का सेवन करते हैं ॥४५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जो परमेश्वर वा न्यायाधीश सभापति हमारे किये हुए कामों को जांच कर उनके अनुसार हम को यथा-योग्य नियमों में रखता है, जो किसी को दुःख देने वाले छल कपट के काम को नहीं करता, जिस परमेश्वर वा सभापति के सहाय से मनुष्य मोक्ष और व्यवहारसिद्धि को पाकर धर्म्मशील होता है वही ईश्वर परमार्थसिद्धि वा सभापति व्यवहारसिद्धि के निमित्त हम लोगों को सेवने योग्य है ॥४५॥

विश्वकर्म्मन्नित्यस्य शास ऋषिः। विश्वकर्मेन्द्रो देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। उपयामेत्यस्य विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब अगले मन्त्र में राजधर्म का उपदेश किया है॥

विश्वकर्म्मन् हविषा वर्द्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम्। तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत्। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्म्मणऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्म्मणे ॥४६॥

पदार्थः—हे (विश्वकर्म्मन्) समस्त अच्छे काम करने वाले जन! आप (वर्द्धनेन) वृद्धि के निमित्त (हविषा) ग्रहण करने योग्य विज्ञान से (अवध्यम्) जिस बुरे व्यसन और अधर्म्म से रहित (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य्य देने तथा (त्रातारम्) समस्त

प्रजाजनों की रक्षा करने वाले सभापति को (अकृणोः) कीजिये कि (तस्मै) उसे (पूर्वीः) प्राचीन धार्मिक जनों ने जिन प्रजाओं को शिक्षा दी हुई है वे (विशः) प्रजाजन (समनमन्त) अच्छे प्रकार मानें जैसे (अयम्) यह सभापति (उग्रः) दुष्टों को दण्ड देने को अच्छे प्रकार चमत्कारी और (विहव्यः) अनेक प्रकार के राज्यसाधन पदार्थ अर्थात् शस्त्र आदि रखने वाला (असत्) हो वैसे प्रजा भी इस के साथ वर्तें ऐसी युक्ति कीजिये। (उपयामगृहीतः) यहां से ले कर मन्त्र का पूर्वोक्त ही अर्थ जानना चाहिये ॥४६॥

भावार्थः—इस संसार में मनुष्य सब जगत् की रक्षा करने वाले ईश्वर तथा सभाध्यक्ष को न भूलें किन्तु उनकी अनुमति में सब कोई अपना २ वर्त्ताव रक्खें, प्रजा के विरोध से कोई राजा भी अच्छी ऋद्धि को नहीं पहुंचता और ईश्वर वा राजा के विना प्रजाजन धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सिद्ध करने वाले काम भी नहीं कर सकते, इससे प्रजाजन और राजा ईश्वर का आश्रय कर एक दूसरे के उपकार में धर्म्म के साथ अपना वर्त्ताव रक्खें ॥४६॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य शास ऋषिः। विश्वकर्म्मेन्द्रो देवता। विराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर भी प्रकारान्तर से उसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा गायत्रच्छन्दसं गृह्णामीन्द्राय त्वा त्रिष्टुप्छन्दसं गृह्णामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जगच्छन्दसं गृह्णाम्यनुष्टुप्तेऽभिगरः ॥४७॥

पदार्थः—हे (विश्वकर्म्मन्) अच्छे २ कर्म्म करने वाले जन! मैं जो (ते) आप का (अनुष्टुप्) अज्ञान का छुड़ाने वाला (अभिगरः) सब प्रकार से विख्यात प्रशंसावाक्य है उन अग्नि आदि पदार्थों के गुण कहने और वेदमन्त्र गायत्रीछन्द के अर्थ को जनाने वाले (त्वा) आप को (अग्नये) अग्नि आदि पदार्थों के गुण जानने के लिये (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं वा (त्रिष्टुप्छन्दसम्) परम ऐश्वर्य्य देने वाले त्रिष्टुप् छन्दयुक्त वेदमन्त्रों का अर्थ कराने हारे (त्वा) आपको (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं (जगच्छन्दसम्) समस्त जगत् के दिव्य २ गुण कर्म्म और स्वभाव के बोधक वेदमन्त्रों का अर्थविज्ञान कराने वाले (त्वा) आप को (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) अच्छे २ गुण कर्म्म और स्वभावों के लिये (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं (उपयामगृहीतः) उक्त सब काम के लिये हम लोगों ने आप को सब प्रकार स्वीकार कर रक्खा (असि) है ॥४७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पिछले मन्त्र से (विश्वकर्म्मन्) इस पद की अनुवृत्ति आती है। मनुष्यों को चाहिये कि अग्नि आदि पदार्थविद्या साधन कराने वाली क्रियाओं का उत्तम बोध कराने वाले गायत्री आदि छन्दयुक्त ऋग्वेदादि वेदों के बोध होने के लिये उत्तम पढ़ाने वाले का सेवन करें क्योंकि उत्तम पढ़ाने वाले के विना किसी को विद्या नहीं प्राप्त हो सकती ॥४७॥

अ॒ेशीनां त्वेत्यस्य देवा ऋषयः। प्रजापतयो देवताः। याजुषी त्रिष्टुप्। कुकूननानामित्यस्य याजुषी जगती। भन्दनानामित्यस्य मदिन्तमानामित्यस्य मधुन्तमानामित्यस्य च याजुषी त्रिष्टुप्, शुक्रं त्वेत्यस्य साम्नी बृहती छन्दांसि। तेषु त्रिष्टुभो धैवतः। जगत्या निषादः। बृहत्या मध्यमश्च स्वराः॥

अब गार्हस्थ्य कर्म्म में पत्नी अपने पति को उपदेश देती है, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒ेशीनां त्वा पत्मन्नाधूनोमि। कुकूननानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि। भन्दनानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि। मदिन्तमानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि। मधुन्तमानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि। शुक्रं त्वा शुक्रऽआधूनोम्यह्नो रूपे सूर्य्यस्य रश्मिषु ॥४८॥

पदार्थः—हे (पत्मन्) धर्म्म में न चित्त देने वाले पते! (अ॒ेशीनाम्) जलों के समान निर्मल विद्या और सुशीलता में व्याप्त जो पराई पत्नियां हैं उन में व्यभिचार से वर्त्तमान (त्वा) तुम को मैं वहां से (आधूनोमि) अच्छे प्रकार डिगाती हूं। हे (पत्मन्) अधर्म्म में चित्त देने वाले पते! (कुकूननानाम्) निरन्तर शब्दविद्या से नम्रीभाव को प्राप्त हो रही हुई औरों की पत्नियों के समीप मूर्खपन से जाने वाले (त्वा) तुझ को मैं (आ) (धूनोमि) वहां से अच्छे प्रकार छुड़ाती हूं। हे (पत्मन्) कुचाल में चित्त देने वाले पते! (भन्दनानाम्) कल्याण का आचरण करती हुई परपत्नियों के समीप अधर्म से जाने वाले (त्वा) तुझ को वहां से मैं (आ) अच्छे प्रकार (धूनोमि) पृथक् करती हूं। हे (पत्मन्) चञ्चल चित्त वाले पते! (मदिन्तमानाम्) अत्यन्त आनन्दित परपत्नियों के समीप उन को दुःख देते हुए (त्वा) तुम को मैं वहां से (आ) वार २ (धूनोमि) कंपाती हूं। हे (पत्मन्) कठोरचित्त पते! (मधुन्तमानाम्) अतिशय करके मीठी २ बोलियां बोलने वाली परपत्नियों के निकट कुचाल से जाते हुए (त्वा) तुम को मैं (आ) अच्छे प्रकार (धूनोमि) हटाती हूं। हे (पत्मन्) अविद्या में रमण करने वाले! (अह्नः) दिन के (रूपे) रूप में अर्थात्

(सूर्यस्य) सूर्य की फैली हुई किरणों के समय में घर में संगति की चाह करते हुए (शुक्रम्) शुद्ध वीर्य वाले (त्वा) तुम को (शुक्रे) वीर्य के हेतु (आ) भले प्रकार (धूनोमि) छुड़ाती हूं ॥४८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे सूर्य्य की किरणों को प्राप्त होकर संसार के पदार्थ शुद्ध होते हैं वैसे ही दुराचारी पुरुष अच्छी शिक्षा और स्त्रियों के सत्य उपदेश से दण्ड को पाकर पवित्र होते हैं, गृहस्थों को चाहिये कि अत्यन्त दुःख देने और कुल को भ्रष्ट करने वाले व्यभिचार कर्म्म से सदा दूर रहें क्योंकि इस से शरीर और आत्मा के बल का नाश होने से धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि नहीं होती ॥४८॥

ककुभमित्यस्य देवा ऋषयः। विश्वेदेवा प्रजापतयो देवताः। विराट् प्राजापत्या जगती छन्दः। निषादः स्वरः। यत्ते सोमेत्यस्य भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब फिर गृहस्थों को राजपक्ष में उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

ककुभꣳ रूपं वृषभस्य रोचते बृहच्छुक्रः शुक्रस्य पुरोगाः सोमः सोमस्य पुरोगाः। यत्ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै त्वा गृह्णामि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा ॥४९॥

पदार्थः—हे (सोम) ऐश्वर्य्य को प्राप्त हुए विद्वन्! (यत्) जिस (वृषभस्य) सब सुखों के वर्षानेवाले आप का (ककुभम्) दिशाओं के समान शुद्ध (बृहत्) बड़ा (रूपम्) सुन्दर स्वरूप (रोचते) प्रकाशमान होता है सो आप (शुक्रस्य) शुद्ध धर्म्म के (पुरोगाः) अग्रगामी वा (सोमस्य) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के (पुरोगाः) अग्रगन्ता (शुक्रः) शुद्ध (सोमः) सोमगुणसम्पन्न ऐश्वर्य्ययुक्त हूजिये जिस से आपका (अदाभ्यम्) प्रशंसा करने योग्य (नाम) नाम (जागृवि) जाग रहा है (तस्मै) उसी के लिये (त्वा) आप को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ और हे (सोम) उत्तम कामों में प्रेरक! (तस्मै) उन (सोमाय) श्रेष्ठ कामों में प्रवृत्त हुए (ते) आप के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी प्राप्त हो ॥४९॥

भावार्थः—सभाजन और प्रजाजनों को चाहिये कि जिसकी पुण्य, प्रशंसा, सुन्दररूप, विद्या, न्याय, विनय, शूरता, तेज, अपक्षपात, मित्रता, सब कामों में उत्साह, आरोग्य, बल, पराक्रम, धीरज जितेन्द्रियता वेदादि शास्त्रों में श्रद्धा और प्रजापालन में प्रीति हो उसी को सभा का अधिपति राजा मानें ॥४९॥

उशिक् त्वमित्यस्य देवा ऋषयः। प्रजापतयो देवताः। स्वराडार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर प्रकारान्तर से राजविषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उशिक् त्वं देव सोमाग्नेः प्रियं पाथोऽपीहि वशी त्वं देव सोमेन्द्रस्य प्रियं पाथोऽपीह्यस्मत्सखा त्वं देव सोम विश्वेषां देवानां प्रियं पाथोऽपीहि ॥५०॥

पदार्थः—हे (देव) दिव्यगुणसम्पन्न (सोम) समस्त ऐश्वर्य्ययुक्त राजन्! आप (उशिक्) अति मनोहर होके (अग्नेः) उत्तम विद्वान् के (प्रियम्) प्रेम उत्पन्न कराने वाले (पाथ) रक्षायोग्य व्यवहार को (अपि) निश्चय से (इहि) प्राप्त करो और जानो। हे (देव) दानशील (सोम) हर एक प्रकार से ऐश्वर्य्य की उन्नति कराने वाले! आप (वशी) जितेन्द्रिय होकर (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य्य वाले धार्म्मिक जन के (प्रियम्) प्रेम उत्पन्न कराने वाले (पाथः) जानने योग्य कर्म को (अपि) निश्चय से (इहि) जानो। हे (देव) समस्त विद्याओं में प्रकाशमान (सोम) ऐश्वर्य्ययुक्त! आप (अस्मत्सखा) हम लोग जिन के मित्र हैं ऐसे आप होकर (विश्वेषाम्) समस्त (देवानाम्) विद्वानों के प्रेम उत्पन्न कराने हारे (पाथः) विज्ञान के आचरण को (अपि) निश्चय से (इहि) प्राप्त हो तथा जानो ॥५०॥

भावार्थः—राजा राजपुरुष सभासद् तथा अन्य सब सज्जनों को उचित है कि पुरुषार्थ, अच्छे-अच्छे नियम और मित्रभाव से धार्मिक वेद के पारगन्ता विद्वानों के मार्ग को चलें क्योंकि उन के तुल्य आचरण किये विना कोई विद्या धर्म्म सब से एक प्रीतिभाव और ऐश्वर्य्य को नहीं पा सकता है ॥५०॥

इह रतिरित्यस्य देवा ऋषयः। प्रजापतयो गृहस्था देवताः। आर्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अब गार्हस्थ्य धर्म्म में विशेष उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

इह रतिरिह रमध्वमिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा। उपसृजन्धरुणं मात्रे धरुणो मातरं धयन्। रायस्पोषमस्मासु दीधरत् स्वाहा ॥५१॥

पदार्थः—हे गृहस्थो! तुम लोगों की (इह) इस गृहाश्रम में (रतिः) प्रीति (इह) इस में (धृतिः) सब व्यवहारों की धारणा (इह) इसी में (स्वधृतिः) अपने

पदार्थों को धारणा (स्वाहा) तथा तुम्हारी सत्य वाणी और सत्य क्रिया हो। तुम (इह) इस गृहाश्रम में (रमध्वम्) रमण करो। हे गृहाश्रमस्थ पुरुष ! तू सन्तानों की माता जो कि तेरी विवाहित स्त्री है उस (मात्रे) पुत्र का मान करने वाली के लिये (धरुणम्) सब प्रकार से धारण पोषण कराने योग्य गर्भ को (उपसृजन्) उत्पन्न कर और वह (धरुणः) उक्त गुण वाला पुत्र (मातरम्) उस अपनी माता का (धयन्) दूध पीवे। वैसे (अस्मासु) हम लोगों के निमित्त (रायः) धन की (पोषम्) समृद्धि को (स्वाहा) सत्यभाव से (दीधरत्) उत्पन्न कीजिये ॥५१॥

भावार्थः—जब तक राजा आदि सभ्यजन वा प्रजाजन सत्य धैर्य्य वा सत्य से जोड़े हुए पदार्थ वा सत्य व्यवहार में अपना वर्त्ताव न रक्खें तब तक प्रजा और राज्य के सुख नहीं पा सकते और जब तक राजपुरुष तथा प्रजा-पुरुष पिता और पुत्र के तुल्य परस्पर प्रीति और उपकार नहीं करते तब तक निरन्तर सुख भी प्राप्त नहीं हो सकता ॥५१॥

सत्रस्येत्यस्य देवा ऋषयः। प्रजापतिर्देवता। भुरिगार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर भी गृहस्थों के विषय में विशेष उपदेश अगले मन्त्र में कहा है॥

सत्रस्यऽऋद्धिरस्यगन्म ज्योतिरमृताऽअभूम। दिवं पृथिव्याऽअध्यारुहामाविदाम देवान्त्स्वर्ज्योतिः ॥५२॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! आप (सत्रस्य) प्राप्त हुए राजप्रजाव्यवहाररूप यज्ञ के (ऋद्धिः) समृद्धिरूप (असि) हैं। आप के संग से हम लोग (ज्योतिः) विज्ञान के प्रकाश को (अगन्म) प्राप्त होवें और (अमृताः) मोक्ष पाने के योग्य (अभूम) हों। (दिवः) सूर्यादि (पृथिव्याः) पृथिवी आदि लोकों के (अधि)) बीच (अरुहाम) पूर्ण वृद्धि को पहुंचें (देवान्) विद्वानों और दिव्य दिव्य भोगों (ज्योतिः) विज्ञान विषय और (स्वः) अत्यन्त सुख को (अविदाम) प्राप्त होवें ॥५२॥

भावार्थः—जब तक सब की रक्षा करने वाला धार्मिक राजा वा आप्त विद्वान् न हो तब तक विद्या और मोक्ष के साधनों को निर्विघ्नता से पाने के योग्य कोई भी मनुष्य नहीं होता है और न मोक्षसुख से अधिक कोई सुख है ॥५२॥

युवमित्यस्य देवा ऋषयः। गृहपतयो देवताः। पूर्वस्यार्ष्यनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः। दूरे चेत्यस्यासुर्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। अस्माकमित्यस्य प्राजापत्या बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। भूर्भुवरित्यस्य विराट्प्राजापत्या पङ्क्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तन्तमिद्धतं वज्रेण तन्तमिद्धतम् । दूरे चत्ताय छन्त्सद् गहनं यदिनक्षत् । अस्माकꣳशत्रून् परि शूर विश्वतो दर्म्मा दर्षीष्ट विश्वतः । भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याम सुवीरा वीरैः सुपोषाः पोषैः ॥५३॥

पदार्थः—हे (पुरोयुधा) युद्धसमय में आगे लड़ने वाले (इन्द्रापर्वता) सूर्य्य और मेघ के समान सेनापति और सेनाजन ! (युवम्) तुम दोनों (यः) जो जो (नः) हमारी (पृतन्यात्) सेना से लड़ना चाहे (तन्तम्) (इत्) उसी उसी को (वज्रेण) शस्त्र और अस्त्रविद्या के बल से (हतम्) मारो और (यत्) जो (अस्माकम्) हमारे शत्रुओं की (गहनम्) दुर्ज्जय सेना हमारी सेना को (इनक्षत्) व्याप्त हो और (यत्) जो जो (छन्त्सत्) बल को बढ़ावें उस उस को (चत्ताय) आनन्द बढ़ाने के लिये (इद्धतम्) अवश्य मारो और (दूरे) दूर पहुंचा दो । हे (शूर) शत्रुओं को सुख से बचाने वाले सभापते ! आप हमारे (शत्रून्) शत्रुओं को (विश्वतः) सब प्रकार से (परिदर्षीष्ट) विदीर्ण कर दीजिये जिससे हम लोग (भूः) इस भूलोक (भुवः) अन्तरिक्ष और (स्वः) सुखकारक अर्थात् दर्शनीय अत्यन्त सुखरूप लोक में (प्रजाभिः) अपने सन्तानों से (सुप्रजाः) प्रशंसित सन्तानों वाले (वीरैः) वीरों से (सुवीराः) बहुत अच्छे-अच्छे वीरों वाले और (पोषैः) पुष्टियों से (सुपोषाः) अच्छी अच्छी पुष्टि वाले (विश्वतः) सब ओर से (स्याम) होवें ॥५३॥

भावार्थः—जब तक सभापति और सेनापति प्रगल्भ हुए सब कामों में अग्रगामी न हों तब तक सेनावीर आनन्द से युद्ध में प्रवृत्त नहीं हो सकते और इस काम के विना कभी विजय नहीं होता तथा जब तक शत्रुओं को निर्म्मूल करने हारे सभापति आदि नहीं होते तब तक प्रजा का पालन नहीं कर सकते और न प्रजाजन सुखी हो सकते हैं ॥५३॥

परमेष्ठीत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । परमेष्ठी प्रजापतिर्देवता । साम्न्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थ का कर्म्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

परमेष्ठ्यभिधीतः प्रजापतिर्वाचि व्याहृतायामन्धोऽअच्छेतः । सविता सन्यां विश्वकर्म्मा दीक्षायाम्पूषा सोमक्रयण्याम् ॥५४॥

पदार्थः—हे गृहस्थो ! तुम ने यदि (व्याहृतायाम्) उच्चारित उपदिष्ट की हुई (वाचि) वेदवाणी में (परमेष्ठी) परमानन्दस्वरूप में स्थित (प्रजापतिः) समस्त प्रजा के स्वामी को (अच्छेतः) अच्छे प्रकार प्राप्त (विश्वकर्म्मा) सब विद्या और कर्म्मों को जानने वाले सर्वथा श्रेष्ठ सभापति को (दाक्षायाम्) सभा के नियमों के धारण में (सोमक्रयण्याम्) ऐश्वर्य ग्रहण करने में (पूषा) सब को पुष्ट करने हारे उत्तम वैद्य को और (सन्याम्) जिस से सनातन सत्य प्राप्त हो उस में (सविता) सब जगत् का उत्पादक (अभिवीतः) सुविचार से धारण किया (अन्धः) उत्तम सुसंस्कृत अन्न का सेवन किया तो सदा सुखी हों ॥५४॥

भावार्थः—जो ईश्वर वेदविद्या से अपने, सांसारिक जीवों और जगत् के गुण कर्म्म स्वभावों को प्रकाशित न करता तो किसी मनुष्य को विद्या और इन का ज्ञान न होता और विद्या वा उक्त पदार्थों के ज्ञान के विना निरन्तर सुख क्यों कर हो सकता है ॥५४॥

इन्द्रश्चेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रादयो देवताः । आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्र॑श्च म॒रुत॑श्च क्र॒याायो॒पोत्थि॑तोऽसु॑रः पण्य॒मानो॑ मि॒त्रः क्री॒तो विष्णुः॑ शिपिवि॒ष्टऽऊ॒रावास॑न्नो॒ विष्णु॒र्नर॑न्धिषः ॥५५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो विद्वानों ने (क्रयाय) व्यवहारसिद्धि के लिये (इन्द्रः) बिजुली (मरुतः) पवन (असुरः) मेघ (पण्यमानः) स्तुति के योग्य (मित्रः) सखा (शिपिविष्टः) समस्त पदार्थों में प्रविष्ट (विष्णुः) सर्वशरीरव्याप्त धनंजय वायु और इन में से एक एक पदार्थ (नरंधिषः) मनुष्यादि के आत्माओं में साक्षी (विष्णुः) हिरण्यगर्भ ईश्वर (ऊरौ) ढांपने आदि क्रियाओं में (आसन्नः) संनिकट वा (उपोत्थितः) समीपस्थ प्रकाश के समान और जो (क्रीतः) व्यवहार में वर्त्ता हुआ पदार्थ है इन सब को जानो ॥५५॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर से प्रकाशित अग्नि आदि पदार्थों की क्रिया-कुशलता से उपयोग लेकर गार्हस्थ्य व्यवहारों को सिद्ध करें ॥५५॥

प्रोह्यमाण इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा गृहस्था देवताः । आर्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रोह्यमाणः सोमऽआगतो वरुणऽआसन्द्यामासन्नोऽग्निराग्नीध्रऽइन्द्रो हविर्द्धानेऽथर्वोपावह्रियमाणः ॥५६॥

पदार्थः--हे गृहस्थो ! तुम को इस ईश्वर की सृष्टि में (आसन्द्याम्) बैठने की एक अच्छी चौकी आदि स्थान पर (आगत) आया हुआ पुरुष जैसे विराजमान हो वैसे (प्रोह्यमाणः) तर्क वितर्क के साथ वादानुवाद से जाना हुआ (सोमः) ऐश्वर्य्य का समूह (वरुणः) सहायकारी पुरुष के समान जल का समूह (आग्नीध्रे) बहुत इन्धनों में (अग्निः) अग्नि (उपावह्रियमाणः) क्रिया की कुशलता से युक्त किये हुए (अथर्वा) प्रशंसा करने योग्य के समान पदार्थ और (हविर्धाने) ग्रहण करने योग्य पदार्थों में (इन्द्रः) बिजुली निरन्तर युक्त करनी चाहिये ॥५६॥

भावार्थः--तर्क के विना कोई भी विद्या किसी मनुष्य को नहीं होती और विद्या के विना पदार्थों से उपयोग भी कोई नहीं ले सकता ॥५६॥

विश्वे देवा इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । भुरिक् साम्नी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब गृहस्थ कर्म्म में कुछ विद्वानों का पक्ष अगले मन्त्र में कहा है ॥

विश्वे देवा अꣳशुषु न्युप्तो विष्णुराप्रीतपाऽआप्याय्यमानो यमः सूयमानो विष्णुः सम्भ्रियमाणो वायुः पूयमानः शुक्रः पूतः । शुक्रः क्षीरश्रीर्मन्थी सक्तुश्रीः ॥५७॥

पदार्थः—हे (विश्वेदेवाः) समस्त विद्वानो ! तुम्हारा जो (अंशुषु) अलग-अलग संसार के पदार्थों में (न्युप्तः) नित्य स्थापित किया हुआ व्यवहार (आप्रीतपाः) अच्छी प्रीति के साथ (विष्णुः) व्याप्त होने वाली बिजुली (आप्याय्यमानः) अति बढ़े हुए के समान (यमः) सूर्य्य (सूयमानः) उत्पन्न होने हारा (विष्णुः) व्यापक अव्यक्त (संभ्रियमाणः) अच्छे प्रकार पुष्टि किया हुआ (वायुः) प्राण (पूयमानः) पवित्र किया हुआ (शुक्रः) पराक्रम का समूह (पूतः) शुद्ध (शुक्रः) शीघ्र चेष्टा करने हारा और (मंथी) विलोडने वाला ये सब प्रत्येक सेवन किये हुए (क्षीरश्रीः) दुग्धादि पदार्थों को पकाने और (सक्तुश्रीः) प्राप्त हुए पदार्थों का आश्रय करने वाले होते हैं ॥५७॥

भावार्थः—मनुष्यों को युक्ति और विद्या से सेवन किये हुए सब सृष्टिस्थ पदार्थ शरीर आत्मा और सामाजिक सुख कराने वाले होते हैं ॥५७॥

विश्वे देवाश्चेत्यस्य वसिष्ठः ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। भुरिगार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

फिर प्रकारान्तर से विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

विश्वेदेवाश्चमसेषून्नीतोऽसुर्होमायोद्यतो रुद्रो हूयमानो वातोऽभ्यावृत्तो नृचक्षाः प्रतिख्यातो भक्षो भक्ष्यमाणः पितरो नाराशꣳसाः ॥५८॥

पदार्थः—जिन विद्वानों ने यज्ञ-विधान से (चमसेषु) मेघों में सुगन्धित आदि वस्तु (उन्नीतः) ऊंचे पहुँचाया (असुः) अपना जीवन (उद्यतः) अच्छे यत्न में लगा रक्खा (रुद्रः) जीव को पवित्र कर (हूयमानः) स्वीकार किया (नृचक्षः) मनुष्यों को प्रसन्न करने वाला (प्रतिख्यातः) जिन्होंने वादानुवाद से चाहा (वातः) वाहर के वायु अर्थात् मैदान के कठिन वायु के सह वायु शुद्ध किये फल (भक्ष्यमाणः) कुछ भोजन करने योग्य पदार्थ (भक्षः) खाइये (नाराशंसाः) प्रशंसाकर मनुष्यों के उपदेशक (विश्वेदेवाः) सब विद्वान् (पितरः) उन सब के उपकारकों को ज्ञानी समझने चाहियें ॥५८॥

भावार्थः—जो विद्वान् लोग परोपकार बुद्धि से विद्या का विस्तार करने, सुगन्धि पुष्टि मधुरता और रोगनाशक गुणयुक्त पदार्थों का यथायोग्य मेल अग्नि के बीच में उन का होम कर शुद्ध वायु वर्षा का जल वा ओषधियों का सेवन कर के शरीर को आरोग्य करते हैं वे इस संसार में अत्यन्त प्रशंसा के योग्य होते हैं ॥५८॥

सन्न इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। आर्षी बृहती छन्दः। निषादः स्वरः। या पत्येते इत्यस्य विराडार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

अब गृहस्थ के कर्म्म में यज्ञादि व्यवहार का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सन्नः सिन्धुरवभृथायोद्यतः समुद्रोऽभ्यवह्रियमाणः सलिलः प्रप्लुतो ययोरोजसा स्कभिता रजाꣳसि वीर्येभिर्वीरतमा शविष्ठा। या पत्येते अप्रतीता सहोभिर्विष्णूऽअगन्वरुणा पूर्वहूतौ ॥५९॥

पदार्थः—जिन्होंने (अवभृथाय) यज्ञान्त स्नान और अपने आत्मा के पवित्र करने के लिये (अभ्यवह्रियमाणः) भोगने योग्य (सलिलः) जिस में उत्तम जल है वह व्यवहार (उद्यतः) नियम से सम्पादन किया (सिन्धुः) नदियां (सन्नः) निर्माण

कों (समुद्रः) समुद्र (प्रप्लुतः) अपने उत्तम गुणों से पाया है वे विद्वान् लोग (ययोः) जिन के (ओजसा) वल से (रजांसि) लोक लोकान्तर (स्कभिता) स्थित हैं (या) जो (वीर्येभिः) और पराक्रमों से (वीरतमा) अत्यन्त वीर (शविष्ठा) नित्य वल संपादन करने वाले (सहोभिः) वलों से (अप्रतीता) मूर्खों को जानने अयोग्य (विष्णू) व्याप्त होने हारे (वरुणा) अतिश्रेष्ठ स्वीकार करने योग्य (पूर्वहूतौ) जिस का सत्कार पूर्व उत्तम विद्वानों ने किया हो जो (पत्येते) श्रेष्ठ सज्जनों को प्राप्त होते है उन यज्ञकर्म्म भक्ष्य पदार्थ और विद्वानों को (अगन्) प्राप्त होते हैं वे सदा सुखी रहते हैं ।।५९।।

भावार्थः—यज्ञ आदि व्यवहारों के विना गृहाश्रम में सुख नहीं होता ।।५९।।

देवानित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । स्वराट् साम्नी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।

फिर भी यज्ञ विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

देवान् दिवमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु मनुष्यानन्तरिक्षमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु पितॄन् पृथिवीमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु यं कं च लोकमगन्यज्ञस्ततो मे भद्रमभूत् ।।६०।।

पदार्थः—जो (यज्ञः) पूर्वोक्त सब के करने योग्य यज्ञ (दिवम्) विद्या के प्रकाश और (देवान्) दिव्य भोगों को प्राप्त कराता है जिस को विद्वान् लोग (अगन्) प्राप्त हों (ततः) उस से (मा) मुझ को (द्रविणम्) विद्यादि गुण (अष्टु) प्राप्त हों, जो (यज्ञः) यज्ञ (अन्तरिक्षम्) मेघमण्डल और (मनुष्यान्) मनुष्यों को प्राप्त होता है जिस को भद्र मनुष्य (अगन्) प्राप्त होते हैं (ततः) उस से (मा) मुझ को (द्रविणम्) धनादि पदार्थ (अष्टु) प्राप्त हों, जो (यज्ञः) यज्ञ (पृथिवीम्) पृथिवी और (पितॄन्) वसन्त आदि ऋतुओं को प्राप्त होता है, जिस को आप्त लोग (अगन्) प्राप्त होते हैं (ततः) उस से (मा) मुझ को (द्रविणम्) प्रत्येक ऋतु का सुख (अष्टु) प्राप्त हो, जो (यज्ञः) (कम्) किसी (च) (लोकम्) लोक को प्राप्त होता है (यम्) जिस को धर्मात्मा लोग (अगन्) प्राप्त होते हैं (ततः) उस से (मे) मेरा (भद्रम्) कल्याण (अभूत्) हो ।।६०।।

भावार्थः—जिस यज्ञ से सब सुख होते हैं उसका अनुष्ठान सब मनुष्यों को क्यों न करना चाहिये ।।६०।।

चतुस्त्रिंशदित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । साम्न्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ।।

इस जगत् की उत्पत्ति में कितने कारण हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

चतुस्त्रिꣳशत्तन्तवो ये वितत्निरे य इमं यज्ञꣳस्वधया ददन्ते ।
तेषां छिन्नꣳ सम्वेतद्दधामि स्वाहा घर्मो अप्येतु देवान् ।।६१।।

पदार्थः—(ये) जो (चतुस्त्रिंशत्) आठों वसु ग्यारह रुद्र बारह आदित्य इन्द्र प्रजापति और प्रकृति (तन्तवः) सूत के समान (यज्ञम्) सुख उत्पन्न करने हारे यज्ञ को (वितत्निरे) विस्तार करते हैं अथवा (ये) जो (स्वधया) अन्न आदि उत्तम पदार्थों से (इमम्) इस यज्ञ को (ददन्ते) देते हैं (तेषाम्) उन का जो (छिन्नम्) अलग किया हुआ यज्ञ (एतत्) उस को (स्वाहा) सत्य क्रिया वा सत्य वाणी से (सम्) (दधामि) इकट्ठा करता हूं (उ) और वही (घर्म्मः) यज्ञ (देवान्) विद्वानों को (अपि) निश्चय से (एतु) प्राप्त हो ।।६१।।

भावार्थः—इस प्रत्यक्ष चराचर जगत् के चौंतीस (३४) तत्त्व कारण हैं उन के गुण और दोषों को जो जानते हैं उन्हीं को सुख मिलता है ।।६१।।

यज्ञस्येत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

फिर यज्ञ का विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

यज्ञस्य दोहो विततः पुरुत्रा सो अष्टधा दिवमन्वाततान ।
स यज्ञ धुक्ष्व महि मे प्रजायाꣳ रायस्पोषं विश्वमायुरशीय स्वाहा ।।६२।।

पदार्थः—हे (यज्ञ) संगति करने योग्य विद्वन् ! आप जो (यज्ञस्य) यज्ञ का (पुरुत्रा) बहुत पदार्थों में (विततः) विस्तृत (अष्टधा) आठों दिशाओं से आठ प्रकार का (दोहः) परिपूर्ण सामग्रीसमूह है (सः) वह (दिवम्) सूर्य्य के प्रकाश को (अन्वाततान) ढांप कर फिर फैलने देता है (सः) वह आप सूर्य्य के प्रकाश में यज्ञ करने वाले गृहस्थ तू उस यज्ञ को (धुक्ष्व) परिपूर्ण कर जो (मे) मेरी (प्रजायाम्) प्रजा में (विश्वम्) सब (महि) महान् (रायः) धनादि पदार्थों की (पोषम्) समृद्धि को वा (आयुः) जीवन को बार-बार विस्तारता है उस को मैं (स्वाहा) सत्ययुक्त क्रिया से (अशीय) प्राप्त होऊं ।।६२।।

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सदा यज्ञ का आरम्भ और समाप्ति को करें और संसार के जीव को अत्यन्त सुख पहुंचावें ।।६२।।

आ पवस्वेत्यस्य कश्यप ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराडार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।।

मनुष्य किस के तुल्य यज्ञ का सेवन करें यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ पंवस्व हिरंण्यवदश्ववत्सोम वीरवंत् । वाजं गोमंन्तमाभंर स्वाहा ॥६३॥

पदार्थः—हे सोम ऐश्वर्य्य चाहने वाले गृहस्थ ! तू (स्वाहा) सत्य वाणी वा सत्य क्रिया से (हिरण्यवत्) सुवर्ण आदि पदार्थों के तुल्य (अश्ववत्) अश्व आदि उत्तम पशुओं के समान (वीरवत्) प्रशंसित वीरों के तुल्य (गोमन्तम्) उत्तम इन्द्रियों से सम्बन्ध रखने वाले (वाजम्) अन्नादिमय यज्ञ का (आभर) आश्रय रख और उस से संसार को (आ) अच्छे प्रकार (पवस्व) पवित्र कर ॥६३॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अपने पुरुषार्थ से सुवर्ण आदि धन को इकट्ठा कर घोड़े आदि उत्तम पशुओं को रक्खें तदनन्तर वीरों को रक्खें क्योंकि जब तक इस सामग्री को नहीं रखते तब तक गृहाश्रमरूपी यज्ञ परिपूर्ण नहीं कर सकते इसलिये सदा पुरुषार्थ से गृहाश्रम की उन्नति करते रहें ॥६३॥

इस अध्याय में गृहस्थधर्म सेवन के लिये ब्रह्मचारिणी कन्या को कुमार ब्रह्मचारी का स्वीकार, गृहस्थ धर्म का वर्णन, राजा प्रजा और सभापति आदि का कर्त्तव्य कहा है इसलिये इस अध्यायोक्त अर्थ के साथ पूर्व अध्याय में कहे अर्थ की संगति जाननी चाहिये ॥

॥ इति अष्टमोऽध्यायः ॥

* ओ३म् *

अथ नवमाऽध्यायारम्भः

—:o:o:o:—

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥१॥

देव सवितरित्यस्य इन्द्राबृहस्पती ऋषी। सविता देवता। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

विद्वान् लोग चक्रवर्ती राजा को कैसा-कैसा उपदेश करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देव॑ सवितः॒ प्रसु॑व य॒ज्ञं प्रसु॑व य॒ज्ञप॑तिं॒ भगा॑य। दि॒व्यो ग॑न्धर्वः॒ के॑त॒पूः केतं॑ नः पुनातु वा॒चस्पति॒र्वाजं॑ नः स्वदतु स्वाहा॑॥१॥

पदार्थः—(देव) दिव्यगुणयुक्त (सवितः) संपूर्ण ऐश्वर्य्यवाले राजन्! आप (भगाय) सब ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये (स्वाहा) वेदवाणी से (यज्ञम्) सब को सुख देने वाले राजधर्म का (प्र) (सुव) प्रचार और (यज्ञपतिम्) राजधर्म के रक्षक पुरुष को (प्र) (सुव) प्रेरणा कीजिये जिस से (दिव्यः) प्रकाशमान दिव्य गुणों में स्थित (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण और बुद्धि को शुद्ध करने वाला (वाचस्पतिः) पढ़ने पढ़ाने और उपदेश से विद्या का रक्षक सभापति राजपुरुष है वह (नः) हमारी (केतम्) बुद्धि को (पुनातु) शुद्ध करे और हमारे (वाजम्) अन्न को सत्य वाणी से (स्वदतु) अच्छे प्रकार भोगे॥१॥

भावार्थः—न्याय से प्रजा का पालन और विद्या का दान करना ही राजपुरुषों का यज्ञ करना है॥१॥

ध्रुवसदं त्वेत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। ध्रुवसदमिति पूर्वस्यार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः। अप्सुसदमित्यस्य विकृतिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर मनुष्य लोग किस प्रकार के पुरुष को राज्याधिकार में स्वीकार करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ध्रुवसदं त्वा नृषदं मनःसदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् । अप्सुषदं त्वा घृतसदं व्योमसदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् । पृथिविसदं त्वाऽन्तरिक्षसदं दिविसदं देवसदं नाकसदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥२॥

पदार्थः—हे चक्रवर्ति राजन् ! मैं (इन्द्राय) परमैश्वर्य्ययुक्त परमात्मा के लिये जो आप (उपयामगृहीतः) योगविद्या के प्रसिद्ध अंग यम के सेवने वाले पुरुषों ने स्वीकार किये (असि) हो उस (ध्रुवसदम्) निश्चल विद्या विनय और योगधर्मों में स्थित (नृषदम्) नायक पुरुषों में अवस्थित (मनःसदम्) विज्ञान में स्थिर (जुष्टम्) प्रीतियुक्त (त्वा) आप का (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं । जिस (ते) आप का (एषः) यह (योनिः) सुखनिमित्त है उस (जुष्टतमम्) अत्यन्त सेवनीय (त्वा) आप का (गृह्णामि) धारण करता हूं । हे राजन् ! मैं (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य धारण के लिये जो आप (उपयामगृहीतः) प्रजा और राजपुरुषों ने स्वीकार किये (असि) हो उस (अप्सुसदम्) जलों के बीच चलते हुए (घृतसदम्) घी आदि पदार्थों को प्राप्त हुए और (व्योमसदम्) विमानादि यानों से आकाश में चलते हुए (जुष्टम्) सब के प्रिय (त्वा) आप-का (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ । हे सब की रक्षा करने हारे सभाध्यक्ष राजन् ! जिस (ते) आप का (एषः) यह (योनिः) सुखदायक घर है उस (जुष्टतमम्) अति प्रसन्न (त्वा) आप को (इन्द्राय) दुष्ट शत्रुओं के मारने के लिये (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं । हे सब भूमि में प्रसिद्ध राजन् ! मैं (इन्द्राय) विद्या योग और मोक्षरूप ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये जो आप (उपयामगृहीतः) साधन उपसाधनों से युक्त (असि) हो उस (पृथिविसदम्) पृथिवी में भ्रमण करते हुए (अन्तरिक्षसदम्) आकाश में चलने वाले (दिविसदम्) न्याय के प्रकाश में नियुक्त (देवसदम्) धर्मात्मा और विद्वानों के मध्य में अवस्थित (नाकसदम्) सब दुःखों से रहित परमेश्वर और धर्म्म में स्थिर (जुष्टम्) सेवनीय (त्वा) आप का (गृह्णामि) स्वीकार करता हूँ । हे सब सुख देने और प्रजापालन करने हारे राजपुरुष ! जिस (ते) तेरा (एषः) यह (योनिः) रहने का स्थान है उस (जुष्टतमम्) अत्यन्त प्रिय (त्वा) आप को (इन्द्राय) समग्र सुख देने के लिये (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं ॥२॥

भावार्थः—हे राजप्रजाजनो ! जैसे सर्वव्यापक परमेश्वर सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य भोगने के लिये जगत् रच के सब के लिये सुख देता वैसा ही आचरण तुम लोग भी करो कि जिस से धर्म अर्थ काम और मोक्ष फलों की प्राप्ति सुगम होवे ॥२॥

अपामित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । अतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर प्रजाजनों को कैसा पुरुष राजा मानना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अपाᳪं रसमुद्वयसᳪं सूर्य्ये सन्तᳪं समाहितम् । अपाᳪं रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तममुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥३॥

पदार्थः—हे राजन् ! मैं (इन्द्राय) ऐश्वर्य्यप्राप्ति के लिये (वः) तुम्हारे लिये (सूर्य्ये) सूर्य के प्रकाश में (सन्तम्) वर्त्तमान (समाहितम्) सर्व प्रकार चारों ओर धारण किये (उद्वयसम्) उत्कृष्ट जीवन के हेतु (अपाम्) जलों के (रसम्) सार का ग्रहण करता हूँ (यः) जो (अपाम्) जलों के (रसस्य) सार का (रसः) सार वीर्य धातु है (तम्) उस (उत्तमम्) कल्याणकारक रस का तुम्हारे लिये (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं जो आप (उपयामगृहीतः) साधन तथा उपसाधनों से स्वीकार किये गये (असि) हो उस (इन्द्राय) परमेश्वर की प्राप्ति के लिये (जुष्टम्) प्रीतिपूर्वक वर्त्तनेवाले आप का (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं जिस (ते) आप का (एषः) यह (योनिः) घर है उस (जुष्टतमम्) अत्यन्त सेवनीय (त्वा) आप को (इन्द्राय) परम सुख होने के लिये (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ ॥३॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि अपने नौकर प्रजापुरुषों को शरीर और आत्मा के बल बढ़ाने के लिये ब्रह्मचर्य ओषधिविद्या और योगाभ्यास के सेवन में नियुक्त करे । जिस से सब मनुष्य रोगरहित होकर पुरुषार्थी होवें ॥३॥

ग्रहा इत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । राजधर्मराजादयो देवताः । भुरिक्कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

मनुष्यों को चाहिये कि आप्त विद्वान् की अच्छे प्रकार परीक्षा कर के उसका संग करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ग्रहा ऊर्जाहुतयो व्यन्तो विप्राय मतिम् । तेषां विशिप्रियाणां वोऽहमिषमूर्जं समग्रभमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् । सम्पृचौ स्थः सं मा भद्रेण पृङ्क्तं विपृचौ स्थो वि मा पाप्मना पृङ्क्तम् ॥४॥

पदार्थः हे राजप्रजा पुरुष ! जैसे (अहम्) मैं गृहस्थजन (विप्राय) बुद्धिमान् पुरुष के सुख के लिये (मतिम्) बुद्धि को देता हूँ वैसे तू भी किया कर (व्यन्तः) जो सब विद्याओं में व्याप्त (ऊर्जाहुतयः) बल और जीवन बढ़ने के लिये दान देने और (ग्रहाः) ग्रहण करने हारे गृहस्थ लोग हैं जैसे (तेषाम्) उन (विशिप्रियाणाम्) अनेक प्रकार के धर्मयुक्त कर्मों में मुख और नासिका वालों के (मतिम्) बुद्धि (इषम्) अन्न आदि और (ऊर्जम्) पराक्रम को (समग्रभम्) ग्रहण कर चुका हूं वैसे तुम भी ग्रहण करो। हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे तू (उपयामगृहीतः) राज्य और गृहाश्रम की सामग्री से सहित वर्त्तमान (असि) है वैसे मैं भी होऊं । जैसे मैं (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य्य के लिये (जुष्टम्) प्रसन्न (त्वा) आप को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ वैसे तू भी मुझे ग्रहण कर जिस (ते) तेरा (एषः) यह (योनिः) घर है उस (इन्द्राय) पशुओं को नष्ट करने के लिये (जुष्टतमम्) अत्यन्त प्रसन्न (त्वा) तुझे मैं जैसे वह और तुम दोनों युक्त कर्म्म में (संपृचौ) संयुक्त (स्थः) हो वैसे (भद्रेण) सेवने योग्य सुखदायक ऐश्वर्य्य से (मा) मुझ को (संपृङ्क्तम्) संयुक्त करो जैसे तुम (पाप्मना) अधर्मी पुरुष से (विपृचौ) पृथक् (स्थः) हो इस से (मा) मुझ को भी (विपृंक्तम्) पृथक् करो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजा और प्रजा में गृहस्थ लोग बुद्धिमान् सन्तान वा विद्यार्थी के लिये विद्या होने की बुद्धि देते दुष्ट आचरणों से पृथक् रखते कल्याणकारक कर्मों को सेवन कराते और दुष्टसङ्ग छुड़ाके सत्सङ्ग कराते हैं वे ही इस लोक और परलोक के सुख को प्राप्त होते हैं इन से विपरीत नहीं ॥४॥

इन्द्रस्येत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । सविता देवता । भुरिगष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब किसलिये सेनापति की प्रार्थना यहां करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इन्द्रस्य वज्रोऽसि वाजसास्त्वयाऽयं वाजꣳ सेत् । वाजस्य नु

प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे । यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवः सविता धर्मं साविषत् ॥५॥

पदार्थः—हे वीर पुरुष (यस्याम्) जिस में (त्वम्) आप (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य-युक्त राजा के (वाजसाः) संग्रामों का विभाग करनेवाले (वज्रः) वज्र के समान शत्रुओं को काटने वाले (असि) हो उस (त्वया) रक्षक आप के साथ (अयम्) यह पुरुष (वाजम्) संग्राम का (सेत्) प्रबन्ध करे । जहां (इदं) प्रत्यक्ष वर्त्तमान (विश्वम्) सब (भुवनम्) जगत् (आविवेश) प्रविष्ट है और जहां (देवः) सब का प्रकाशक (सविता) सब जगत् का उत्पादक परमात्मा (नः) हमारा (धर्म्मं) धारण (साविषत्) करे (तस्याम्) उस में (नाम) प्रसिद्ध (वाजस्य) संग्राम के (प्रसवे) ऐश्वर्य्य में (मातरम्) मान्य देनेहारी (अदितिम्) अखंडित (महीम्) पृथिवी को (वचसा) वेदोक्त न्याय के उपदेशरूप वचन से हम लोग (नु) शीघ्र (करामहे) ग्रहण करें ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो यह भूमि प्राणियों के लिये सौभाग्य के उत्पन्न माता के समान रक्षा और सब को धारण करने हारी प्रसिद्ध है उस का विद्या न्याय और धर्म्म के योग से राज्य के लिये तुम लोग सेवन करो ॥५॥

अप्स्वन्तरित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । अश्वो देवता । भुरिग्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुषों को कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तिष्वश्वा भवत वाजिनः । देवीरापो यो वऽऊर्मिः प्रतूर्त्तिः ककुन्मान् वाजसास्तेनायं वाजꣳ सेत् ॥६॥

पदार्थः—हे (देवीः) दिव्यगुण वाली (आपः) अन्तरिक्ष में व्यापक स्त्रीपुरुष लोगो ! तुम (यः) जो (वः) तुम्हारा (समुद्रस्य) सागर के (ककुन्मान्) प्रशस्त चञ्चल गुणों से युक्त (वाजसाः) संग्रामों के सेवने के हेतु (प्रतूर्त्तिः) अतिशीघ्र चलने वाला समुद्र के (ऊर्मिः) आच्छादन करने हारे तरंगों के समान पराक्रम और जो (अप्सु) प्राण के (अन्तः) मध्य में (अमृतम्) मरणधर्मरहित कारण और जो (अप्सु) जलों के मध्य अल्पमृत्यु से छुड़ाने वाला (भेषजम्) रोगनिवारक औषध के समान गुण है जिस से (अयम्) यह सेनापति (वाजम्) संग्राम और अन्न का प्रबन्ध करे

(तेन) उस से (अपाम्) उक्त प्राणों और जलों की (प्रशस्तिषु) गुण प्रशंसाओं में (वाजिनः) प्रशंसित बल और पराक्रम वाले (अश्वा) कुलीन घोड़ों के समान वेगवाले (भवत) हूजिये ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । स्त्रियों को चाहिये कि समुद्र के समान गम्भीर, जल के समान शान्तस्वभाव, वीरपुत्रों को उत्पन्न करने, नित्य ओषधियों को सेवने और जलादि पदार्थों को ठीक-ठीक जानने वाली होवें । इसी प्रकार जो पुरुष वायु और जल के गुणों के वेत्ता पुरुषों से संयुक्त होते हैं वे रोगरहित होकर विजयकारी होते हैं ॥६॥

वातो वेत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । सेनापतिर्देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

मनुष्य लोग किस प्रकार क्या करके वेग वाले हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

वातो॑ वा॒ मनो॑ वा ग॒न्ध॒र्वाः स॒प्तवि॑ꣳशतिः । तेऽअग्रे॒ऽश्वम॑युञ्जँ॒स्तेऽअ॑स्मिन् ज॒वमाद॑धुः ॥७॥

पदार्थः—जो विद्वान् लोग (वातः) वायु के (वा) समान (मनः) मन के (वा) समतुल्य और जैसे (सप्तविंशतिः) सत्ताईस (गन्धर्वाः) वायु इन्द्रिय और भूतों के धारण करने हारे (अस्मिन्) इस जगत् में (अग्रे) पहिले (अश्वम्) व्यापकता और वेगादि गुणों को (अयुंजन्) संयुक्त करते हैं (ते) वे ही (जवम्) उत्तम वेग को (आदधुः) धारण करते हैं ॥७॥

भावार्थः—जो एक समष्टि वायु, प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय (दश) बारहवां मन तथा इस के साथ श्रोत्र आदि दश इन्द्रिय और पांच सूक्ष्मभूत ये सब २७ (सत्ताईस) पदार्थ ईश्वर ने इस जगत् में पहिले रचे हैं । जो पुरुष इन के गुण कर्म और स्वभाव को ठीक-ठीक जान और यथायोग्य कार्य्यों में संयुक्त करके अपनी-अपनी ही स्त्री के साथ क्रीड़ा करते हैं वे संपूर्ण ऐश्वर्य्य को सञ्चित कर राज्य के योग्य होते हैं ॥७॥

वातरंहेत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

उस राजा को विद्वान् लोग क्या-क्या उपदेश करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

वातरꣳहा भव वाजिन् युज्यमानऽइन्द्रस्येव दक्षिणः श्रियैधि ।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदसऽआ ते त्वष्टा पत्सु जवं दधातु ॥८॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) शास्त्रोक्त क्रियाकुशलता के प्रशस्त बोध से युक्त राजन् ! जिस (त्वा) आप को (विश्ववेदसः) समस्त विद्याओं के जानने हारे (मरुतः) विद्वान् लोग राज्य और शिल्पविद्याओं के कार्य्यों में (युञ्जन्तु) युक्त और (त्वष्टा) वेगादि गुणविद्या का जानने हारा मनुष्य (ते) आप के (पत्सु) पगों में (जवम्) वेग को (आदधातु) अच्छे प्रकार धारण करे । वह आप (वातरंहाः) वायु के समान वेग वाले (भव) हूजिये और (युज्यमानः) सावधान होके (दक्षिणः) प्रशंसित धर्म से चलने के बल से युक्त होके (इन्द्रस्येव) परम ऐश्वर्य्य वाले राजा के समान (श्रिया) शोभायुक्त राज्य संपत्ति वा राणी के सहित (एधि) वृद्धि को प्राप्त हूजिये ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । राज सम्बन्धी स्त्री पुरुषो ! आप लोग अभिमानरहित और निर्मत्सर अर्थात् दूसरों की उन्नति देखकर प्रसन्न होने वाले होकर विद्वानों के साथ मिल के राजधर्म की रक्षा किया करो तथा विमानादि यानों में बैठ के अपने अभीष्ट देशों में जा जितेन्द्रिय हो और प्रजा को निरन्तर प्रसन्न कर के श्रीमान् हुआ कीजिये ॥८॥

जव इत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । वीरो देवता । धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह राजा कैसा होवे यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

जवो यस्ते वाजिन्निहितो गुहा यः श्येने परीत्तोऽअचरच्च वाते । तेन नो वाजिन् बलवान् बलेन वाजजिच्च भव समने च पारयिष्णुः । वाजिनो वाजजितो वाजꣳ सरिष्यन्तो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत ॥९॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) श्रेष्ठ शास्त्रबोध और योगाभ्यास से युक्त सेना वा सभा के स्वामी राजन् (ते) आप का (यः) जो (जवः) वेग (गुहा) बुद्धि में (निहितः) स्थित है (यः) जो (श्येने) पक्षी में जैसा (परीत्त) सब ओर दिया हुआ (च) और जैसे (वाते) वायु में (अचरत्) विचरता है (तेन) उस से (नः) हम लोगों के (बलेन) सेना वा पराक्रम से (बलवान्) बहुत बल से युक्त (भव) हूजिये । हे (वाजिन्) वेगयुक्त राजपुरुष ! उसी बल से (समने) संग्राम में (पारयिष्णुः) दुःख के पार करने और (वाजजित्) संग्राम के जीतने वाले हूजिये । हे (वाजिनः) प्रशंसित वेग से

युक्त योद्धा लोगो ! तुम (बृहस्पतेः) बड़ों की रक्षा करने हारे सभाध्यक्ष की (भागम्) सेवा को प्राप्त हो के (वाजम्) बोध वा अन्नादि पदार्थों को (सरिष्यन्तः) प्राप्त होते हुए (वाजजितः) संग्राम के जीतने हारे होओ और सुगन्धियुक्त पदार्थों का (अवजिघ्रत) सेवन करो ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। राजा को चाहिये कि शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को पा और शत्रुओं के जीतने में श्येन पक्षी और वायु के तुल्य शीघ्रकारी हो के अपने सब सभासद् सेना के पुरुष और सब नौकरों को अच्छे शिक्षित बल तथा सुख से युक्त कर धर्मात्माओं की निरन्तर रक्षा करे और सब राजा प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि इस प्रकार के हों और शत्रुओं को जीत के परस्पर प्रसन्न रहें ॥९॥

देवस्याहमित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । इन्द्राबृहस्पती देवते । विराडुत्कृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्य लोगों को उचित है कि विद्वानों का अनुकरण करें मूढ़ों का नहीं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यसवसो बृहस्पतेरुत्तमं नाकꣳ रुहेयम् । देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यसवसऽइन्द्रस्योत्तमं नाकꣳ रुहेयम् । देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यप्रसवसो बृहस्पतेरुत्तमं नाकमरुहम् । देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यप्रसवसऽइन्द्रस्योत्तमं नाकमरुहम् ॥१०॥

पदार्थः—हे राजा और प्रजा के पुरुषो ! जैसे (अहम्) मैं सभाध्यक्ष राजा (सत्यसवसः) जिसका ऐश्वर्य्य और जगत् का कारण सत्य है उस (देवस्य) सब ओर से प्रकाशमान (बृहस्पतेः) बड़े प्रकृत्यादि पदार्थों के रक्षक (सवितुः) सब जगत् को उत्पन्न करने हारे जगदीश्वर के (सवे) उत्पन्न किये जगत् में (उत्तमम्) सब से उत्तम (नाकम्) सब दुःखों से रहित सच्चिदानन्द स्वरूप को (रुहेयम्) आरूढ़ होऊं। हे राजा के सभासद् लोगो ! जैसे (अहम्) मैं परोपकारी पुरुष (सत्यसवसः) सत्य न्याय से युक्त (देवस्य) सब सुख देने (सवितुः) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य के उत्पन्न करने हारे (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य्य के सहित चक्रवर्ती राजा के (सवे) ऐश्वर्य्य में (उत्तमम्) प्रशंसा के योग्य (नाकम्) दुःखरहित भोग को प्राप्त हो के (रुहेयम्) आरूढ़ होऊं। हे पढ़ने पढ़ाने हारे विद्याप्रिय लोगो ! जैसे (अहम्) मैं विद्या चाहने हारा जन (सत्यप्रसवसः) जिससे अविनाशी बोध प्रकट हो उस (देवस्य) सम्पूर्ण विद्या और

शुभ गुण कर्म और स्वभाव के प्रकाश से युक्त (सवितुः) समग्र विद्याबोध के उत्पन्न-कर्त्ता (बृहस्पतेः) उत्तम वेदवाणी की रक्षा करने हारे वेद वेदांगोपांगों के पारदर्शी के (सवे) उत्पन्न किये विज्ञान में (उत्तमम्) सब से उत्तम (नाकम्) सब दुःखों से रहित आनन्द को (अरुहम्) आरूढ़ हुआ हूं। हे विजयप्रिय लोगो ! जैसे (अहम्) मैं योद्धा मनुष्य (सत्यप्रसवसः) जिस से सत्य न्याय विनय और विजयादि उत्पन्न हों उस (देवस्य) धनुर्वेद युद्धविद्या के प्रकाशक (सवितुः) शत्रुओं के विजय में प्रेरक (इन्द्रस्य) दुष्ट शत्रुओं को विदीर्ण करने हारे पुरुष की (सवे) प्रेरणा में (उत्तमम्) विजयनामक उत्तम (नाकम्) सब सुख देने हारे संग्राम को (अरुहम्) आरूढ़ हुआ हूँ वैसे आप भी सब लोग आरूढ़ हूजिये ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—सब राजा और प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि परस्पर विरोध को छोड़ ईश्वर चक्रवर्ती राज्य और समग्र विद्याओं का सेवन करके सब उत्तम सुखों को आप प्राप्त हों और दूसरों को प्राप्त करावें ॥१०॥

बृहस्पत इत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः। इन्द्राबृहस्पती देवते। जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

अब उपदेश करने और सुनने वालों का विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

बृहस्पते वाजं जय बृहस्पतये वाचं वदत बृहस्पतिं वाजं जापयत। इन्द्र वाजं जयेन्द्राय वाचं वदतेन्द्रं वाजं जापयत ॥११॥

पदार्थः—हे (बृहस्पते) सम्पूर्ण विद्याओं का प्रचार और उपदेश करने हारे राजपुरुष ! आप (वाजम्) विज्ञान वा संग्राम को (जय) जीतो। हे विद्वानो ! तुम लोग इस (बृहस्पतये) राजपुरुष के लिये (वाचम्) वेदोक्त सुशिक्षा से प्रसिद्ध वाणी को (वदत) पढ़ाओ और उपदेश करो। इस (बृहस्पतिम्) राजा वा सर्वोत्तम अध्यापक को (वाजम्) विद्याबोध वा युद्ध को। (जापयत) बढ़ाओ और जिताओ। हे (इन्द्र) विद्या के ऐश्वर्य्य का प्रकाश वा शत्रुओं को विदीर्ण करने हारे राजपुरुष ! आप (वाजम्) परम ऐश्वर्य्य वा शत्रुओं के विजयरूपी युद्ध को (जय) जीतो। हे युद्धविद्या में कुशल विद्वानो ! तुम लोग इस (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य्य को प्राप्त करने वाले राजपुरुष के लिये (वाजम्) राजधर्म का प्रचार करने हारी वाणी को (वदत) कहो। इस (इन्द्रम्) राजपुरुष को (वाजम्) संग्राम को (जापयत) जिताओ ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—राजा को ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि जिस से वेदविद्या का प्रचार और शत्रुओं का विजय सुगम हो और उपदेशक तथा योद्धा लोग ऐसा प्रयत्न करें कि जिस से राज्य में वेदादि

शास्त्र पढ़ने पढ़ाने की प्रवृत्ति और अपना राजा विजयरूपी आभूषणों से सुशोभित होवे कि जिस से अधर्म का नाश और धर्म की वृद्धि अच्छे प्रकार से स्थिर होवे ॥११॥

एषा व इत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । इन्द्राबृहस्पती देवते । स्वराडतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्यों को अति उचित है कि सब समय में सब प्रकार से सत्य ही बोलें यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

एषा वः सा सत्या संवागभूद्यया बृहस्पतिं वाजमजीजपताजीजपत बृहस्पतिं वाजं वनस्पतयो विमुच्यध्वम् । एषा वः सा सत्या संवागभूद्ययेन्द्रं वाजमजीजपताजीजपतेन्द्रं वाजं वनस्पतयो विमुच्यध्वम् ॥१२॥

पदार्थः—हे (वनस्पतयः) किरणों के समान न्याय के पालने हारे राजपुरुषो! तुम लोग (यया) जिस से (बृहस्पतिम्) वेद शास्त्र के पालने हारे विद्वान् को (वाजम्) वेदशास्त्र के बोध को (अजीजपत) बढ़ाओ (बृहस्पतिम्) बड़े राज्य के रक्षक राजपुरुष के संग्राम को (अजीजपत) जिताओ (सा) वह (एषा) पूर्व कही वा आगे जिस को कहेंगे (वः) तुम लोगों की (संवाक्) राजनीति में स्थित अच्छी वाणी (सत्या) सत्यस्वरूप(अभूत्) होवे । हे (वनस्पतयः) सूर्य की किरणों के समान न्याय के प्रकाश से प्रजा की रक्षा करने हारे राजपुरुषो ! तुम लोग (यया) जिस से (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य्य प्राप्त कराने हारे सेनापति को (वाजम्) युद्ध को(अजीजपत) जिताओ (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य्ययुक्त पुरुष को (वाजम्) अत्युत्तम लक्ष्मी को प्राप्त कराने हारे उद्योग को (अजीजपत) अच्छे प्रकार प्राप्त करावें (सा) वह (एषा) आगे पीछे जिस का प्रतिपादन किया है (वः) तुम लोगों की (संवाक्) विनय और पुरुषार्थ का अच्छे प्रकार प्रकाश करने वाली वाणी (सत्या) सदा सत्यभाषणादि लक्षणों से युक्त (अभूत्) होवे ॥१२॥

भावार्थः—राजा उस के नौकर और प्रजापुरुषों को उचित है कि अपनी प्रतिज्ञा और वाणी को असत्य होने कभी न दें जितना कहें उतना ठीक ठीक करें । जिस की वाणी सब काल में सत्य होती है वही पुरुष राज्याधिकार के योग्य होता है जब तक ऐसा नहीं होता तब तक उन राजा और प्रजा के पुरुषों का विश्वास और वे सुखों को नहीं बढ़ा सकते ॥१२॥

देवस्याहमित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । सविता देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

राजपुरुषों को चाहिये कि धर्म्मात्मा राजपुरुषों का अनुकरण करें अन्य तुच्छ बुद्धियों का नहीं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यप्रसवसो बृहस्पतेर्वाजजितो वाजं जेषम् । वाजिनो वाजजितोऽध्वन स्कभ्नुवन्तो योजना मिमानाः काष्ठां गच्छत ॥१३॥

पदार्थः—हे वीर पुरुषो ! जैसे (अहम्) मैं शरीर और आत्मा के बल से पूर्ण सेनापति (सत्यप्रसवसः) जिस के बनाये जगत् में कारणरूप से पदार्थ नित्य हैं उस (सवितुः) सब ऐश्वर्य्य के देने (देवस्य) सब के प्रकाशक (वाजजितः) विज्ञान आदि से उत्कृष्ट (बृहस्पतेः) उत्तम वेदवाणी के पालने हारे जगदीश्वर के (सवे) उत्पन्न किये इस ऐश्वर्य्य में (वाजम्) संग्राम को (जेषम्) जीतूं वैसे तुम लोग भी जीतो। हे (वाजिनः) विज्ञानरूपी वेग से युक्त (वाजजितः) संग्राम को जीतने हारे ! (योजना) बहुत कोसों से शत्रुओं को (मिमानाः) देख और (अध्वनः) शत्रुओं के मार्गों को रोकते हुए तुम लोग जैसे (काष्ठाम्) दिशाओं में (गच्छत) चलते हो वैसे हम लोग भी चलें ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। योद्धा लोग सेनाध्यक्ष के सहाय और रक्षा से ही शत्रुओं को जीत और उनके मार्गों को रोक सकते हैं और इन अध्यक्षादि राजपुरुषों को चाहिये कि जिस दिशा में शत्रु लोग उपाधि करते हों वहीं जाके उन को वश में करें ॥१३॥

एष स्येत्यस्य दधिक्रावा ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

जब सेना और सेनापति अच्छे शिक्षित होकर परस्पर प्रीति करने वाले होवें तभी विजय प्राप्त होवे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

एष स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धोऽअपिकक्षऽआसनि । क्रतुं दधिक्राऽअनु सꣳसनिष्यदत्पथामङ्काꣳस्यन्वापनीफणत् स्वाहा ॥१४॥

पदार्थः—जैसे (स्यः) वह (एषः) और यह (वाजी) वेगयुक्त (आसनि) मुख और (ग्रीवायाम्) कण्ठ में (बद्धः) बंधा (क्रतुम्) कर्म अर्थात् गति को (संसनिष्यदत्)

अतीव फैलाता हुआ (पथाम्) मार्गों के (अंकांसि) चिह्नों को (अनु) समीप (आपनीफणत्) अच्छे प्रकार चलता हुआ (दधिक्राः) धारण करने हारों को चलाने हारा घोड़ा (क्षिपणिम्) सेना को जाता है वैसे ही (अपिकक्षे) इधर उधर के ठीक ठीक अवयवों में सेनापति अपनी सेना को (स्वाहा) सत्य वाणी से (तुरण्यति) वेगयुक्त करता है ॥१४॥

भावार्थः— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सेनापति से रक्षा को प्राप्त हुए वीरपुरुष घोड़ों के समान दौड़ते हुए शीघ्र शत्रुओं को मार सकते हैं, जो सेनापति उत्तम कर्म्म करने हारे अच्छे शिक्षित वीर पुरुषों के साथ ही युद्ध करता है वह प्रशंसित हुआ विजय को प्राप्त होता है अन्यथा पराजय ही होता है ॥१४॥

उतेत्यस्य दधिक्रावा ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

सेनापति आदि राजपुरुष कैसा पराक्रम करें इस विषय का
उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनुवाति प्रगर्धिनः।
श्येनस्येव ध्रजतोऽअङ्कसं परि दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः स्वाहा ॥१५॥

पदार्थः—हे राजपुरुषो ! जो (ऊर्जा) पराक्रम और (स्वाहा) सत्यक्रिया के (सह) साथ (अस्य) इस (द्रवतः) रसप्रद वृक्ष का पत्ता और (तुरण्यतः) शीघ्र उड़ने वाले (वेः) पक्षी के (पर्णम्) पंखों के (न) समान (उत) और (प्रगर्धिनः) अत्यन्त इच्छा करने (ध्रजतः) चाहते हुए (श्येनस्येव) बाज पक्षी के समान तथा (तरित्रतः) अति शीघ्र चलते हुए (दधिक्राव्णः) घोड़े के सदृश (अङ्कसम्) अच्छे लक्षणयुक्त मार्ग में (परि) (अनु) (वाति) सब प्रकार अनुकूल चलता है (स्म) वही पुरुष शत्रुओं को जीत सकता है ॥१५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो वीर पुरुष नीलकण्ठ श्येनपक्षी और घोड़े के समान पराक्रमी होते हैं उन के शत्रु लोग सब ओर से विलाय जाते हैं ॥१५॥

शन्न इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। भुरिक् पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

कौन पुरुष प्रजा के पालने और शत्रुओं के विनाश करने में समर्थ होते
हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

शन्नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः। जम्भयन्तोऽहिं वृकꣳ रक्षाꣳसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥१६॥

पदार्थः—जो (मितद्रवः) नियम से चलने (स्वर्काः) जिस का अन्न वा सत्कार सुन्दर हो वे योद्धा लोग (अहिम्) मेघ के समान चेष्टा करते और बढ़े हुए (वृकम्) चोर और (रक्षांसि) दूसरों को क्लेश देने हारे डाकुओं के (जम्भयन्त) हाथ पांव तोड़ते हुए (वाजिनः) श्रेष्ठ युद्धविद्या के जानने वाले वीर पुरुष (न.) हम (देवताता) विद्वान् लोगों के कर्मों तथा (हवेषु) संग्रामों में (सनेमि) सनातन (शम्) सुख को (भवन्तु) प्राप्त होवें (अस्मत्) हमारे लिये (अमीवाः) रोगों के समान वर्त्तमान शत्रुओं को (युयवन्) पृथक् करें ॥१६॥

भावार्थः—श्रेष्ठ प्रजापुरुषों के पालने में तत्पर और रोगों के समान शत्रुओं के नाश करने हारे राजपुरुष ही सब को सुख दे सकते हैं अन्य नहीं ॥१६॥

ते न इत्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

प्रजाजन अपनी रक्षा के लिये कर देवें और इसीलिये राजपुरुष ग्रहण करें अन्यथा नहीं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

ते नोऽअर्वन्तो हवनश्रुतो हवं विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः। सहस्रसा मेधसाता सनिष्यवो महो ये धनꣳ समिथेषु जभ्रिरे ॥१७॥

पदार्थः—(ये) जो (अर्वन्तः) ज्ञानवान् (हवनश्रुतः) ग्रहण करने योग्य शास्त्रों को सुनने (वाजिनः) प्रशंसित बुद्धिमान् (मितद्रवः) शास्त्रयुक्त विषय को प्राप्त होने (सहस्रसाः) असंख्य विद्या के विषयों को सेवने और (सनिष्यवः) अपने आत्मा की सुन्दर भक्ति करने हारे राजपुरुष (मेधसाता) समागमों के दान से युक्त (समिथेषु) संग्रामों में (नः) हमारे बड़े (धनम्) ऐश्वर्य्य को (जभ्रिरे) धारण करें वे (विश्वे) सब विद्वान् लोग हमारे (हवम्) पढ़ने पढ़ाने से होने वाले बोध शब्दों और वादी प्रतिवादियों के विवाद को (शृण्वन्तु) सुनें ॥१७॥

भावार्थः—जो ये राजपुरुष हम लोगों से कर लेते हैं वे हमारी निरन्तर रक्षा करें नहीं तो न लें हम भी उनको कर न देवें। इस कारण

प्रजा की रक्षा और दुष्टों के साथ युद्ध करने के लिये ही कर देना चाहिये अन्य किसी प्रयोजन के लिये नहीं यह निश्चित है ॥१७॥

वाजेवाज इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। निषादः स्वरः॥

अब ये राजा और प्रजा के पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्राऽअमृताऽऋतज्ञाः।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥१८॥

पदार्थः—हे (ऋतज्ञाः) सत्यविद्या के जानने हारे (अमृताः) अपने अपने स्वरूप से नाशरहित जीते ही मुक्तिसुख को प्राप्त (वाजिनः) वेगयुक्त (विप्राः) विद्या और अच्छी शिक्षा से बुद्धि को प्राप्त हुए विद्वान् राजपुरुषो! तुम लोग (वाजे वाजे) संग्राम २ के बीच (नः) हमारी (अवत) रक्षा करो (अस्य) इस (मध्वः) मधुर रस को (पिबत) पीओ। हमारे धनों से (तृप्ताः) तृप्त होके (मादयध्वम्) आनन्दित होओ और (देवयानैः) जिन में विद्वान् लोग चलते हैं उन (पथिभिः) मार्गों से सदा (यात) चलो ॥१८॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि वेदादि शास्त्रों को पढ़ और सुन्दर शिक्षा से ठीक-ठीक बोध को प्राप्त होकर धर्मात्मा विद्वानों के मार्ग से सदा चलें, अन्य मार्ग से नहीं। तथा शरीर और आत्मा का बल बढ़ाने के लिये वैद्यक शास्त्र से परीक्षा किये और अच्छे प्रकार पकाये हुए अन्न आदि से युक्त रसों का सेवन कर प्रजा की रक्षा से ही आनन्द को प्राप्त होवें और प्रजापुरुषों को निरन्तर प्रसन्न रक्खें ॥१८॥

आ मा वाजस्येत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। प्रजापतिर्देवताः। निचृद्धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

मनुष्यों को धर्माचरण से किस-किस पदार्थ की इच्छा करनी चाहिये इस
विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्यादेमे द्यावापृथिवी विश्वरूपे।
आ मा गन्तां पितरा मातरा चा मा सोमोऽअमृतत्त्वेन गम्यात्।
वाजिनो वाजजितो वाजꣳ ससृवाꣳसो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत
निमृजानाः ॥१९॥

पदार्थः—हे पूर्वोक्त विद्वान् लोगो ! जिन आप लोगों के सहाय से (वाजस्य) वेदादि शास्त्रों के अर्थों के बोधों का (प्रसवः) सुन्दर ऐश्वर्य्य (मा) मुझ को (जगम्यात्) शीघ्र प्राप्त होवे (इमे) ये (विश्वरूपे) सब रूप विषयों के सम्बन्धी (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि का राज्य (च) और (अमृतत्वेन) सब रोगों की निवृत्तिकारक गुण के साथ (सोमः) सोमवल्ली आदि ओषधिविज्ञान मुझ को प्राप्त हो और (पितरा मातरा) विद्यायुक्त पिता माता (आगन्ताम्) प्राप्त होवें वे आप (वाजिनः) प्रशंसित बलवान् (वाजजितः) सङ्ग्राम के जीतने वाले (वाजम्) संग्राम को प्राप्त हुए (निमृजानाः) निरन्तर शुद्ध हुए तुम लोग (बृहस्पतेः) बड़ी सेना के स्वामी के (भागम्) सेवने योग्य भाग को (अवजिघ्रत) निरन्तर प्राप्त होओ ॥१९॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वान् के साथ विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त हो के धर्म का आचरण करते हैं उन को इस लोक और परलोक में परमैश्वर्य्य का साधक राज्य विद्वान् माता पिता और नीरोगता प्राप्त होती है। जो पुरुष विद्वानों का सेवन करते हैं वे शरीर और आत्मा की शुद्धि को प्राप्त हुए सब सुखों को भोगते हैं। इस से विरुद्ध चलने हारे नहीं ॥१९॥

आपय इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। भुरिक्कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः ॥

विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त वाणी से मनुष्यों को क्या-क्या प्राप्त होता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

आपये स्वाहा स्वापये स्वाहाऽपिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहाऽहर्पतये स्वाहाह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनꣳशिनाय स्वाहा विनꣳशिनऽआन्त्यायनाय स्वाहाऽऽन्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाऽधिपतये स्वाहा ॥२०॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! तुम लोग जैसे मुझ को (आपये) संपूर्ण विद्या की प्राप्ति के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (स्वापये) सुखों की अच्छी प्राप्ति के वास्ते (स्वाहा) धर्मयुक्त क्रिया (क्रतवे) बुद्धि बढ़ाने के लिये (स्वाहा) पढ़ने पढ़ाने की प्रवृत्ति करानेहारी क्रिया (अपिजाय) निश्चय करके प्रकट होने के लिये (स्वाहा) पुरुषार्थ क्रिया (वसवे) विद्यानिवास के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी (अहर्पतये) पुरुषार्थपूर्वक गणितविद्या से दिन पालने के लिये (स्वाहा) कालगति को जनाने हारी वाणी (मुग्धाय) मोहप्राप्ति के निमित्त (अह्ने) दिन होने के लिये (स्वाहा) विज्ञान-

युक्त वाणी (वैनंशिनाय) नष्टस्वभावयुक्त कर्मों में रहने हारे (मुग्धाय) मूर्ख के लिये (स्वाहा) चिताने वाली वाणी (आन्त्यायनाय) नीच प्राप्ति वाले (विनंशिने) नष्ट-स्वभावयुक्त पुरुष के लिये (स्वाहा) नष्ट भ्रष्ट कर्मों का निवारण करने वाली वाणी (आन्त्याय) अधोगति में होने वाले (भौवनाय) लोकों के बीच समर्थ पुरुष के लिये (स्वाहा) पदार्थों की जनाने हारी वाणी (भुवनस्य पतये) संसार के स्वामी ईश्वर के लिये (स्वाहा) योगविद्या को प्रकट करने हारी बुद्धि और (अधिपतये) सब अधिष्ठाताओं के ऊपर रहने वाले पुरुष के लिये (स्वाहा) सब व्यवहारों की जनाने हारी वाणी (गम्यात्) प्राप्त होवे; वैसा प्रयत्न आलस्य छोड़ के किया करो ॥२०॥

भावार्थः--मनुष्यों को चाहिये कि सब विद्याओं की प्राप्ति आदि प्रयोजनों के लिये विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त वाणी को प्राप्त होवें कि जिस से सब सुख सदा मिलते रहें ॥२०॥

आयुर्यज्ञेनेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । यज्ञो देवता । अत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनः मनुष्यों के प्रति ईश्वर उपदेश करता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताᳬं श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् । प्रजापतेः प्रजाऽअभूम स्वर्देवाऽअगन्मामृताऽअभूम ॥२१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम्हारी (आयुः) अवस्था (यज्ञेन) ईश्वर की आज्ञा पालन से निरन्तर (कल्पताम्) समर्थ होवे, (प्राणः) जीवन का हेतु बलकारी प्राण (यज्ञेन) धर्मयुक्त विद्याभ्यास से (कल्पताम्) समर्थ होवे (चक्षुः) नेत्र (यज्ञेन) प्रत्यक्ष के विषय शिष्टाचार से (कल्पताम्) समर्थ हो (श्रोत्रम्) कान (यज्ञेन) वेदाभ्यास से (कल्पताम्) समर्थ हो और (पृष्ठम्) पूछना (यज्ञेन) संवाद से (कल्पताम्) समर्थ हो (यज्ञः) यज धातु का अर्थ (यज्ञेन) ब्रह्मचर्यादि के आचरण से (कल्पताम्) समर्थ हो । जैसे हम लोग (प्रजापतेः) सब के पालने हारे ईश्वर के समान धर्मात्मा राजा के (प्रजाः) पालने योग्य सन्तानों के सदृश (अभूम) होवें तथा (देवाः) विद्वान् हुए (अमृताः) जीवन मरण से छूटे (स्वः) मोक्ष-सुख को (अगन्म) अच्छे प्रकार प्राप्त होवें ॥२१॥

भावार्थः—मैं ईश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा देता हूं कि तुम लोग मेरे तुल्य धर्मयुक्त गुण कर्म और स्वभाव वाले पुरुष ही की प्रजा होओ अन्य किसी क्षुद्राशय पुरुष की प्रजा होना स्वीकार कभी मत करो । जैसे मुझ को न्यायाधीश मान मेरी आज्ञा में वर्त्तें और अपना सब कुछ धर्म के साथ

संयुक्त करके इस लोक और परलोक के सुख को नित्य प्राप्त होते रहो, वैसे जो पुरुष धर्मयुक्त न्याय से तुम्हारा निरन्तर पालन करे उसी को सभापति राजा मानो ॥२१॥

अस्मे इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। दिशो देवताः। निचृदत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल मनुष्यों को संसार में कैसे वर्त्तना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अस्मे वोऽअस्त्विन्द्रियमस्मे नृम्णमुत क्रतुरस्मे वर्चांꣳसि सन्तु वः। नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्याऽइयं ते राड्यन्तासि यमनो ध्रुवोऽसि धरुणः। कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ॥२२॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! मैं ईश्वर (कृष्यै) खेती के लिये (त्वा) तुझे (क्षेमाय) रक्षा के लिये (त्वा) तुझे (रय्यै) संपत्ति के लिये (त्वा) तुझे और (पोषाय) पुष्टि के लिये (त्वा) तुझ को नियुक्त करता हूँ। जो तू (ध्रुवः) दृढ़ (यन्ता) नियमों से चलने हारा (असि) है (धरुणः) धारण करने वाला (यमनः) उद्योगी (असि) है जिस (ते) तेरी (इयम्) यह (राट्) शोभायुक्त नीति है इस (मात्रे) मान्य की हेतु (पृथिव्यै) विस्तारयुक्त भूमि से (नमः) अन्नादि पदार्थ प्राप्त हों इस (मात्रे) मान्य देने हारी (पृथिव्यै) पृथिवी को अर्थात् भूगर्भविद्या को जान के इस से (नमः) अन्न जलादि पदार्थ प्राप्त कर तुम सब लोग परस्पर ऐसे कहो और वर्तो कि जो (अस्मे) हमारे (इन्द्रियम्) मन आदि इन्द्रिय हैं वे (वः) तुम्हारे लिये हों जो (अस्मे) हमारा (नृम्णम्) धन है वह (वः) तुम्हारे लिये हो (उत) और जो (अस्मे) हमारे (क्रतुः) बुद्धि वा कर्म हैं वे (वः) तुम्हारे हित के लिये हों जो हमारे (वर्चांसि) पढ़ा पढ़ाया और अन्न हैं वे (वः) तुम्हारे लिये (सन्तु) हों, जो यह सब तुम्हारा है वह हमारा भी हो ऐसा आचरण आपस में करो ॥२२॥

भावार्थः—मनुष्यों के प्रति ईश्वर की यह आज्ञा है कि तुम लोग सदैव पुरुषार्थ में प्रवृत्त रहो और आलस्य मत करो और जो पृथिवी से अन्न आदि उत्पन्न हो उन की रक्षा करके यह सब जिस प्रकार परस्पर उपकार के लिये हो वैसा यत्न करो। कभी विरोध मत करो कोई अपना कार्य्य सिद्ध करे उस का तुम भी किया करो ॥२२॥

वाजस्येत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उन को इस विषय में कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

वाजस्येमं प्रसवः सुषुवेऽग्रे सोमꣳ राजानमोषधीष्वप्सु। ताऽअस्मभ्यं मधुमतीर्भवन्तु वयꣳ राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः स्वाहा॥२३॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो! जैसे मैं (अग्रे) प्रथम (प्रसवः) ऐश्वर्य्ययुक्त होकर (वाजस्य) वैद्यकशास्त्र बोधसम्बन्धी (इमम्) इस (सोमम्) चन्द्रमा के समान सब दुःखों के नाश करने हारे (राजानम्) विद्या न्याय और विनयों से प्रकाशमान राजा को (सुषुवे) ऐश्वर्य्ययुक्त करता हूँ। जैसे उसकी रक्षा में (ओषधीषु) पृथिवी पर उत्पन्न होने वाली यव आदि ओषधियों और (अप्सु) जलों के बीच में वर्त्तमान ओषधी हैं (ताः) वे (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (मधुमतीः) प्रशस्त मधुर गुण वाली (भवन्तु) हों। जैसे (स्वाहा) सत्य क्रिया के साथ (पुरोहिताः) सब के हितकारी हम लोग (राष्ट्रे) राज्य में निरन्तर (जागृयाम) आलस्य छोड़ के जागते रहें वैसे तुम भी वर्त्ता करो॥२३॥

भावार्थः—शिष्ट मनुष्यों को योग्य है कि सब विद्याओं में चतुर रोगरहित सुन्दर गुणों से शोभायमान पुरुष को राज्याधिकार देकर उस की रक्षा करने वाला वैद्य ऐसा प्रयत्न करे कि जिस से इसके शरीर बुद्धि और आत्मा में रोग का आवेश न हो। इसी प्रकार राजा और वैद्य दोनों सब मन्त्री आदि भृत्यों और प्रजाजनों को रोगरहित करें जिस से ये राज्य के सज्जनों के पालने और दुष्टों के ताड़ने में प्रयत्न करते रहें, राजा और प्रजा के पुरुष परस्पर पिता-पुत्र के समान सदा वर्त्तें॥२३॥

वाजस्येमामित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। भुरिग्जगतीछन्दः। निषादः स्वरः॥

राजा किसका आश्रय लेकर किस के साथ क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

वाजस्येमां प्रसवः शिश्रिये दिवमिमा च विश्वा भुवनानि सम्राट्। अदित्सन्तं दापयति प्रजानन्त्स नो रयिꣳ सर्ववीरं नियच्छ स्वाहा॥२४॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! जैसे (वाजस्य) राज्य के मध्य में (प्रसवः) उत्पन्न हुए (सम्राट्) अच्छे प्रकार राजधर्म्म में प्रवर्तमान मैं (इमाम्) इस भूमि को (दिवम्) प्रकाशित और (इमा) इन (विश्वा) सब और (भुवनानि) घरों को (शिश्रिये) अच्छे प्रकार आश्रय करता हूं वैसे तुम भी इस को अच्छे प्रकार शोभित करो और जो (स्वाहा) धर्म्मयुक्त सत्यवाणी से (प्रजानन्) जानता हुआ (अदित्सन्तम्) राज्य-कर देने की इच्छा न करने वाले से (वापयति) दिलाता है (सः) सो (नः) हमारे (सर्ववीरम्) सब वीरों को प्राप्त कराने हारे (रयिम्) धन को (नियच्छतु) ग्रहण करे ॥२४॥

भावार्थः—हे मनुष्य लोगो । मूल राज्य के बीच सनातन राजनीति को जान कर जो राज्य की रक्षा करने को समर्थ हो उसी को चक्रवर्त्ती राजा करो और जो कर न देने वालों से कर दिलावे वह मन्त्री होने को योग्य होवे, जो शत्रुओं को बांधने में समर्थ हो उसे सेनापति करो और जो विद्वान् धार्मिक हो उसे न्यायाधीश वा कोषाध्यक्ष करो ॥२४॥

वाजस्य न्वित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । स्वराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर राजा कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

वाजस्य नु प्रसव आबभूवेमा च विश्वा भुवनानि सर्वतः । सनेमि राजा परियाति विद्वान् प्रजां पुष्टिं वर्धयमानोऽअस्मे स्वाहा ॥२५॥

पदार्थः—जो (वाजस्य) वेदादि शास्त्रों से उत्पन्न बोध को (स्वाहा) सत्य-नीति से (प्रसवः) प्राप्त होकर (विद्वान्) सम्पूर्ण विद्या को जानने वाला पुरुष (आ) अच्छे प्रकार (बभूव) होवे (च) और (इमा) इन (विश्वा) सब (भुवनानि) मांड-लिक राजनिवास स्थानों और (सनेमि) सनातन नियम धर्मसहित वर्त्तमान (प्रजाम्) पालने योग्य प्रजाओं को (पुष्टिम्) पोषण (नु) शीघ्र (वर्धयमानः) बढ़ाता हुआ (परि) सब ओर से (याति) प्राप्त होता है वह (अस्मे) हम लोगों का राजा होवे ॥२५॥

भावार्थः—ईश्वर सब से उपदेश करता है कि हे मनुष्य लोगो ! तुम जो प्रशंसित गुण कर्म स्वभाव वाला राज्य की रक्षा में समर्थ हो उस को सभाध्यक्ष करके आप्तनीति से चक्रवर्ती राज्य करो ॥२५॥

सोममित्यस्य तापस ऋषिः । सोमाग्न्यादित्यविष्णुसूर्यबृहस्पतयो देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर कैसे राजा का स्वीकार करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सोमꣳ राजानमवसेऽग्निमन्वारभामहे । आदित्यान्विष्णुꣳ सूर्य्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिꣳ स्वाहा ॥२६॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! जैसे हम लोग (स्वाहा) सत्यवाणी से (अवसे) रक्षा आदि के अर्थ (विष्णुम्) व्यापक परमेश्वर (सूर्य्यम्) विद्वानों में सूर्य्यवद् विद्वान् (ब्रह्माणम्) साङ्गोपाङ्ग चार वेदों को पढ़ने वाले (बृहस्पतिम्) बड़ों के रक्षक (अग्निम्) अग्नि के समान शत्रुओं को जलाने वाले (सोमम्) शान्त-गुणसम्पन्न (राजानम्) धर्माचरण से प्रकाशमान राजा और (आदित्यान्) विद्या के लिये अड़तालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य रह कर पूर्ण विद्या पढ़ सूर्यवत् प्रकाशमान विद्वानों के सङ्ग से विद्या पढ़ के गृहाश्रम का (आरभामहे) आरम्भ करें वैसे तुम भी किया करो ॥२६॥

भावार्थः—ईश्वर की आज्ञा है कि सब मनुष्य रक्षा आदि के लिये ब्रह्मचर्य्य व्रतादि से विद्या के पारगन्ता विद्वानों के बीच जिस ने अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य व्रत किया हो ऐसे राजा को स्वीकार कर के सच्ची नीति को बढ़ावें ॥२६॥

अर्य्यमणमित्यस्य तापस ऋषिः । अर्य्यमादिमन्त्रोक्ता देवताः । स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर राजा किन को किस में प्रेरणा करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अर्य्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय । वाचं विष्णुꣳ सरस्वतीꣳ सवितारं च वाजिनꣳ स्वाहा ॥२७॥

पदार्थः—हे राजन् ! आप (स्वाहा) सत्य नीति से (दानाय) विद्यादि दान के लिये (अर्य्यमणम्) पक्षपातरहित न्याय करने (बृहस्पतिम्) सब विद्याओं को पढ़ाने (इन्द्रम्) बड़े ऐश्वर्य्ययुक्त (वाचम्) वेदवाणी (विष्णुम्) सब के अधिष्ठाता (सवितारम्) वेदविद्या तथा सब ऐश्वर्य उत्पन्न करने (वाजिनम्) अच्छे बल वेग से युक्त शूरवीर और (सरस्वतीम्) बहुत प्रकार वेदादि शास्त्र विज्ञानयुक्त पढ़ाने वाली विदुषी स्त्री को अच्छे कर्मों में (चोदय) सदा प्रेरणा किया कीजिये ॥२७॥

भावार्थः—ईश्वर सब से कहता है कि राजा आप धर्मात्मा विद्वान् होकर सब न्याय के करने वाले मनुष्यों को विद्या धर्म्म बढ़ाने के लिये

निरन्तर प्रेरणा करें जिस से विद्या धर्म की बढ़ती से अविद्या और अधर्म दूर हों ॥२७॥

अग्न इत्यस्य तापस ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह राजा क्या क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्नेऽअच्छा वदेह नः प्रति नः सुमना भव । प्र नो यच्छ सहस्रजित् त्वꣳ हि धनदाऽअसि स्वाहा ॥२८॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् आप (इह) इस समय में (स्वाहा) सत्य वाणी से (नः) हम को (अच्छ) अच्छे प्रकार (वद) सत्य उपदेश कीजिये (नः) हमारे ऊपर (सुमनाः) मित्रभावयुक्त (भव) हूजिये (हि) जिस से (सहस्रजित्) आप विना सहाय हजार को जीतने (धनदाः) ऐश्वर्य्य देने वाले (असि) हैं इस से (नः) हमारे लिये (प्रयच्छ) दीजिये ॥२८॥

भावार्थः—ईश्वर उपदेश करता है कि राजा, प्रजा और सेना जन मनुष्यों में सदा सत्य प्रिय वचन कहे उन को धन दे उन से धन ले, शरीर और आत्मा का बल बढ़ा और नित्य शत्रुओं को जीतकर धर्म से प्रजा को पाले ॥२८॥

प्र न इत्यस्य तापस ऋषिः । अर्य्यमादिमन्त्रोक्ता देवताः । भुरिगार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

प्रजा और सन्तानों से राजा और माता आदि कैसे वर्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

प्र नो यच्छत्वर्य्यमा प्र पूषा प्र बृहस्पतिः । प्र वाग्देवी ददातु नः स्वाहा ॥२९॥

पदार्थः—जैसे (अर्य्यमा) न्यायाधीश (नः) हमारे लिये उत्तम शिक्षा (प्रयच्छतु) देवे जैसे (पूषा) पोषण करने वाला शरीर और आत्मा की पुष्टि की शिक्षा (प्र) अच्छे प्रकार देवे जैसे (बृहस्पतिः) विद्वान् (प्र) (स्वाहा) अत्युत्तम विद्या देवे वैसे (वाक्) उत्तम विद्या सुशिक्षा सहित वाणीयुक्त (देवी) प्रकाशमान पढ़ाने वाली माता हमारे लिये सत्यविद्यायुक्त वाणी का (प्रददातु) उपदेश सदा किया करे ॥२९॥

भावार्थः—यहां जगदीश्वर उपदेश करता है कि राजा आदि सब पुरुष और माता आदि स्त्री सदा प्रजा और पुत्रादिकों को सत्य-सत्य उप-

देश कर विद्या और अच्छी शिक्षा को निरन्तर ग्रहण करावें जिससे प्रजा और पुत्र पुत्री आदि सदा आनन्द में रहें ॥२९॥

देवस्येत्यस्य तापस ऋषिः । सम्राड् देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर कहां कैसे को राजा करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रिये दधामि बृहस्पतेष्ट्वा साम्राज्येनाभिषिञ्चाम्यसौ ॥३०॥

पदार्थः—हे सब अच्छे गुण कर्म्म स्वभावयुक्त विद्वन् ! (असौ) यह मैं (सवितुः) सब जगत् के उत्पन्न करने वाले ईश्वर (देवस्य) प्रकाशमान जगदीश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये संसार में (सरस्वत्यै) अच्छे प्रकार शिल्पविद्यायुक्त (वाचः) वेदवाणी के मध्य (अश्विनोः) सूर्य्य चन्द्रमा के समान धारण पोषण गुणयुक्त (हस्ताभ्याम्) हाथों से (त्वा) तुम को (दधामि) धारण करता हूं और (बृहस्पतेः) बड़े विद्वान् के (यंत्रिये) कारीगरी विद्या से सिद्ध किये राज्य में (साम्राज्येन) चक्रवर्ती राजा के गुण से सहित (त्वा) तुझ को (अभि) सब ओर से (सिंचामि) सुगन्धित रसों से मार्जन करता हूं ॥३०॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि ईश्वर में प्रेमी, बल पराक्रम पुष्टियुक्त चतुर सत्यवादी जितेन्द्रिय धर्मात्मा प्रजापालन में समर्थ विद्वान् को अच्छे प्रकार परीक्षा कर सभा का स्वामी करने के लिये अभिषेक करके राजधर्म की उन्नति अच्छे प्रकार नित्य किया करें ॥३०॥

अग्निरेकेत्यस्य तापस ऋषिः । अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः । अत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

राजा प्रजाओं को और प्रजा राजा को निरन्तर बढ़ाया करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्निरेकाक्षरेण प्राणमुदजयत् तमुज्जेषमश्विनौ द्व्यक्षरेण द्विपदो मनुष्यानुदजयतां तानुज्जेषं विष्णुस्त्र्यक्षरेण त्रीँल्लोकानुदजयत्तानुज्जेषथं सोमश्चतुरक्षरेण चतुष्पदः पशूनुदजयत्तानुज्जेषम् ॥३१॥

पदार्थः—हे राजन् ! (अग्निः) अग्नि के समान वर्त्तमान आप जैसे (एकाक्षरेण) चितानेहारी एक अक्षर की दैवी गायत्री छन्द से (प्राणम्) शरीर में स्थित वायु के समान प्रजाजनों को (उत्) (जेषम्) उत्तम नीति से (अजयत्) उत्तम करे वैसे (तम्)

उस को मैं भी (उत्) (जेषम्) उत्तम करूं। हे राजप्रजाजनो! (अश्विनौ) सूर्य्य और चन्द्रमा के समान आप जैसे (द्व्यक्षरेण) दो अक्षर की दैवी उष्णिक् छन्द से जिन (द्विपद.) दो पैर वाले (मनुष्यान्) मननशील मनुष्यों को (उज्जयताम्) उत्तम करो वैसे (तान्) उन को मैं भी (उज्जेषम्) उत्तम करूं। हे सर्वप्रधान पुरुष! (विष्णुः) परमेश्वर के समान न्यायकारी आप जैसे (त्र्यक्षरेण) तीन अक्षर की दैवी अनुष्टुप् छन्द से जिन (त्रीन्) जन्म स्थान और नामवाची (लोकान्) देखने योग्य लोकों को (उदजयत्) उत्तम करते हो वैसे (तान्) उन को मैं भी (उज्जेषम्) उत्तम करूं। हे (सोम) ऐश्वर्य की इच्छा करने वाले न्यायाधीश! आप जैसे (चतुरक्षरेण) चार अक्षर के देवी बृहती छन्द से (चतुष्पदः) चौपाये (पशून्) हिरणादि पशुओं को (उदजयत्)उत्तम करते हो वैसे (तान्) उन को मैं भी(उज्जेषम्) उत्तम करूं ॥३१॥

भावार्थः— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजा सब प्रजाओं को अच्छे प्रकार बढ़ावे तो उस को भी प्रजाजन क्यों न बढ़ावें और जो ऐसा न करे तो उस को प्रजा भी कभी न बढ़ावे ॥३१॥

पूषेत्यस्य तापस ऋषिः। पूषादयो मन्त्रोक्ता देवताः। कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर राजा और प्रजाजन किन के दृष्टान्तों से क्या-क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पूषा पञ्चाक्षरेण पञ्च दिशऽउदजयत्ताऽउज्जेषꣳ सविता षडक्षरेण षड् ऋतूनुदजयत्तानुज्जेषं मरुतः सप्ताक्षरेण सप्त ग्राम्यान् पशूनुदजयँस्तानुज्जेषं बृहस्पतिरष्टाक्षरेण गायत्रीमुदजयत्ता-मुज्जेषम् ॥३२॥

पदार्थः—हे राजन्! (पूषा) चन्द्रमा के समान सब को पुष्ट करने वाले आप जैसे (पञ्चाक्षरेण) पांच अक्षर की दैवी पंक्ति से (पञ्च) पूर्वादि चार और एक ऊपर नीचे को (दिशः) दिशाओं को (उदजयत्) उत्तम कीर्त्ति से भरते हो वैसे (ताः) उन को मैं भी (उज्जेषम्) श्रेष्ठ कीर्त्ति से भर देऊं। हे राजन्! (सविता) सूर्य्य के समान आप जैसे (षडक्षरेण) छः अक्षरों की दैवी त्रिष्टुप् से जिन (षट्) छः (ऋतून्) वसन्तादि ऋतुओं को (उदजयत्) शुद्ध करते हो वैसे (तान्) उन को मैं भी (उज्जेषम्) शुद्ध करूं। हे सभाजनो! (मरुतः) वायु के समान आप जैसे (सप्ता-क्षरेण) सात अक्षरों की दैवी जगती से (सप्त) गाय, घोड़ा, भैंस, ऊंट, बकरी, भेड़ और गधा इन सात (ग्राम्यान्) गांव के (पशून्) पशुओं को (उदजयत्) बढ़ाते हो

वैसे (तान्) उन को मैं भी बढ़ाऊं। हे सभेश! (बृहस्पतिः) समस्त विद्याओं के जानने वाले विद्वान् के समान आप जैसे (अष्टाक्षरेण) आठ अक्षरों की याजुषी अनुष्टुप् से जिस (गायत्रीम्) गान करने वाले की रक्षा करने वाली विद्वान् स्त्री की (उदजयत्) प्रतिष्ठा करते हो वैसे (ताम्) उस की मैं भी (उज्जेषम्) प्रतिष्ठा करूं ॥३२॥

भावार्थः— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजा सब का पोषक, जिस की सब दिशाओं में कीर्त्ति, ऐश्वर्य्ययुक्त, सभा के कामों में चतुर, पशुओं का रक्षक और वेदों का ज्ञाता हो, उसी को राजा और सेना के सब मनुष्य अपना अधिष्ठाता बना कर उन्नति देवें ॥३२॥

मित्र इत्यस्य तापस ऋषिः। मित्रादयो मन्त्रोक्ता देवताः। कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

राजा के सत्याचार के अनुसार प्रजा और प्रजा के अनुसार राजा करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृत्तꣳ स्तोममुदजयत् तमुज्जेषं वरुणो दशाक्षरेण विराजमुदजयत्तामुज्जेषमिन्द्रऽएकादशाक्षरेण त्रिष्टुभमुदजयत्तामुज्जेषं विश्वे देवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुदजयँस्तामुज्जेषम् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे राजन्! (मित्रः) सब के हितकारी आप जैसे (नवाक्षरेण) नव अक्षर की याजुषी बृहती से जिस (त्रिवृत्तम्) कर्म्म उपासना और ज्ञान के (स्तोमम्) स्तुति के योग्य को (उदजयत्) उत्तमता से जानते हो वैसे (तम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्) अच्छे प्रकार जानूं। हे प्रशंसा के योग्य सभेश! (वरुणः) सब प्रकार से श्रेष्ठ आप जैसे (दशाक्षरेण) दश अक्षरों की याजुषी पंक्ति से जिस (विराजम्) विराट् छन्द से प्रतिपादित अर्थ को (उदजयत्) प्राप्त हुए हो वैसे (ताम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्) प्राप्त होऊं। (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य्य देने वाले आप जैसे (एकादशाक्षरेण) ग्यारह अक्षरों की आसुरी पंक्ति से जिस (त्रिष्टुभम्) त्रिष्टुप् छन्द वाची को (उदजयत्) अच्छे प्रकार जानते हो वैसे (ताम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्) अच्छे प्रकार जानूं। हे सभ्य जनो (विश्वे) सब (देवाः) विद्वानो! आप जैसे (द्वादशाक्षरेण) बारह अक्षरों की साम्नी गायत्री से जिस (जगतीम्) जगती से कही हुई नीति का (उदजयत्) प्रचार करते हो वैसे (ताम्) उस का मैं भी (उज्जेषम्) प्रचार करूं ॥३३॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि सब प्राणियों में मित्रता से अच्छे प्रकार शिक्षा कर इन प्रजाजनों को उत्तम गुणयुक्त विद्वान् करें जिस से ये ऐश्वर्य्य के भागी होकर राजभक्त हों ॥३३॥

वसव इत्यस्य तापस ऋषिः । वस्वादयो मंत्रोक्ता देवताः । वसव इत्यस्य निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । आदित्या इत्यस्य निचृद्धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी राजा और प्रजा के धर्म्मकार्य्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

वसवस्त्रयोदशाक्षरेण त्रयोदशꣳ स्तोममुदजयँस्तमुज्जेषꣳ रुद्राश्चतुर्दशाक्षरेण चतुर्दशꣳ स्तोममुदजयँस्तमुज्जेषम् । आदित्याः पञ्चदशाक्षरेण पञ्चदशꣳ स्तोममुदजयँस्तमुज्जेषमदितिः षोडशाक्षरेण षोडशꣳ स्तोममुदजयत्तमुज्जेषं प्रजापतिः सप्तदशाक्षरेण सप्तदशꣳ स्तोममुदजयत्तमुज्जेषम् ॥३४॥

पदार्थः—हे राजादि सभ्य जनो (वसवः) चौबीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य से विद्या पढ़ने वाले विद्वानो ! आप लोग जैसे (त्रयोदशाक्षरेण) तेरह अक्षरों की आसुरी अनुष्टुप् वेदस्थ छन्द से जिस (त्रयोदशम्) दश प्राण जीव महत्तत्व और अव्यक्त कारणरूप (स्तोमम्) प्रशंसा के योग्य पदार्थ समूह को (उदजयन्) श्रेष्ठता से जानें वैसे (तम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्) उत्तमता से जानूं । हे बल पराक्रम और पुरुषार्थयुक्त (रुद्राः) चवालीस वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य्य से विद्या पढ़ने हारे विद्वानो ! जैसे आप (चतुर्दशाक्षरेण) चौदह अक्षरों की साम्नी उष्णिक् छन्द से (चतुर्दशम्) दश इन्द्रिय मन बुद्धि चित्त और अहंकाररूप (स्तोमम्) प्रशंसा के योग्य पदार्थविद्या को (उदजयन्) प्रशंसित करें वैसे मैं भी (तम्) उस को (उज्जेषम्) प्रशंसित करूं । हे (आदित्याः) अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य से समस्त विद्याओं को ग्रहण करने हारे पूर्ण विद्या से शरीर और आत्मा के समस्त बल से युक्त सूर्य्य के समान प्रकाशमान विद्वानो ! आप लोग जैसे (पञ्चदशाक्षरेण) पंद्रह अक्षरों की आसुरी गायत्री से (पञ्चदशम्) चार वेद चार उपवेद अर्थात् आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्ववेद, गानविद्या तथा अर्थवेद शिल्पशास्त्र छः अंग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष) मिल के चौदह उन का संख्यापूरक पंद्रहवां क्रिया-कुशलतारूप (स्तोमम्) स्तुति के योग्य को (उदजयन्) अच्छे प्रकार से जानें वैसे मैं भी (तम्) उस को (उज्जेषम्) अच्छे प्रकार जानूं । हे (अदितिः) आत्मरूप से नाशरहित सभाध्यक्ष

राजा की विदुषी स्त्री अखण्डित ऐश्वर्य्ययुक्त ! आप जैसे (षोडशाक्षरेण) सोलह अक्षर की साम्नी अनुष्टुप् से (षोडशम्) प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान इन सोलह पदार्थों की व्याख्यायुक्त (स्तोमम्) प्रशंसा के योग्य को (उदजयत्) उत्तमता से जानें वैसे मैं भी (तम्) उस को (उज्जेषम्) उत्तमता से जानूं। हे नरेश ! (प्रजापतिः) प्रजा के रक्षक आप जैसे (सप्तदशाक्षरेण) सत्रह अक्षरों की निचृदार्ची गायत्री छन्द से (सप्तदशम्) चार वर्ण, चार आश्रम, सुनना, विचारना, ध्यान करना, अप्राप्त की इच्छा, प्राप्त का रक्षण, रक्षित का बढ़ाना, बढ़े हुए को अच्छे मार्ग से सब के उपकार में खर्च करना यह चार प्रकार का पुरुषार्थ और मोक्ष का अनुष्ठानरूप (स्तोमम्) अच्छे प्रकार प्रशंसनीय को उत्तमता से जानें वैसे मैं भी (उज्जेषम्) उत्तमता से जानूं ॥३४॥

भावार्थः—हे मनुष्य लोगो ! इन चार मन्त्रों से जितना राजा और प्रजा का धर्म कहा उस का अनुष्ठान कर तुम सुखी होओ ॥३४॥

एष त इत्यस्य वरुण ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृदुत्कृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

कैसा मनुष्य चक्रवर्ती राज्य सेवने के योग्य होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

एष ते निर्ऋते भागस्तं जुषस्व स्वाहाऽग्निनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पुरःसद्भ्यः स्वाहा यमनेत्रेभ्यो देवेभ्यो दक्षिणासद्भ्यः स्वाहा विश्वदेवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चात्सद्भ्यः स्वाहा मित्रावरुणनेत्रेभ्यो वा मरुन्नेत्रेभ्यो वा देवेभ्यऽउत्तरासद्भ्यः स्वाहा सोमनेत्रेभ्यो देवेभ्यऽउपरिसद्भ्यो दुवस्वद्भ्यः स्वाहा ॥३५॥

पदार्थः—हे (निर्ऋते) सदैव सत्याचरणयुक्त राजन् (ते) आप का जो (एषः) यह (भागः) सेवने योग्य है उस को (अग्निनेत्रेभ्यः) अग्नि के प्रकाश के समान नीतियुक्त (देवेभ्यः) विद्वानों से (स्वाहा) सत्य वाणी (पुरःसद्भ्यः) जो प्रथम सभा वा राज्य में स्थित हो उन (देवेभ्यः) न्यायाधीश विद्वानों से (स्वाहा) धर्मयुक्त क्रिया (यमनेत्रेभ्यः) जिन की वायु के समान सर्वत्र गति (दक्षिणासद्भ्यः) जो दक्षिण दिशा में राजप्रबन्ध के लिये स्थित हों उन (देवेभ्यः) विद्वानों से (स्वाहा) दानक्रिया (विश्वदेवनेत्रेभ्यः) सब विद्वानों के तुल्य नीति के ज्ञानी (पश्चात्सद्भ्यः) जो पश्चिम दिशा

में राजकर्मचारी हों उन (देवेभ्यः) दिव्य सुख देने हारे विद्वानों से (स्वाहा) उत्साहकारक वाणी (मित्रावरुणनेत्रेभ्यः) प्राण और अपान के समान वा (मरुन्नेत्रेभ्यः) ऋत्विक् यज्ञ के कर्त्ता (वा) सत्पुरुष के समान न्यायकारक वा (उत्तरासद्भ्यः) जो उत्तर दिशा में न्यायाधीश हों उन (देवेभ्यः) विद्वानों से दूतकर्म की कुशल क्रिया (सोमनेत्रेभ्यः) चन्द्रमा के समान ऐश्वर्य्ययुक्त होकर सब को आनन्ददायक (उपरिसद्भ्यः) विद्या विनय धर्म और ईश्वर की सेवा करने हारे (देवेभ्यः) विद्वानों से (स्वाहा) आप्त पुरुषों की वाणी को प्राप्त हो के तू सदा धर्म का (जुषस्व) सेवन किया कर ॥३५॥

भावार्थः—हे राजन् सभाध्यक्ष ! जब आप सब ओर से उत्तम विद्वानों से युक्त होकर, सब प्रकार की शिक्षा को प्राप्त, सभा का करने हारा, सेना का रक्षक, उत्तम सहाय से सहित होकर सनातन वेदोक्त राजधर्मनीति से प्रजा का पालन करें तो इस लोक और परलोक में सुख ही को प्राप्त होवें, जो कर्म से विरुद्ध रहेगा तो तुझ को सुख भी न होगा। कोई भी मनुष्य मूर्खों के सहाय से सुख की वृद्धि नहीं कर सकता और न कभी विद्वानों के अनुसार चलने वाला मनुष्य सुख को छोड़ देता है; इस से राजा सर्वदा विद्या धर्म और आप्त विद्वानों के सहाय से राज्य की रक्षा किया करे। जिस की सभा वा राज्य में पूर्णविद्यायुक्त धार्मिक मनुष्य सभासद् वा कर्मचारी होते हैं और जिस के सभा वा राज्य में मिथ्यावादी व्यभिचारी अजितेन्द्रिय कठोर वचनों के बोलने वाले अन्यायकारी चोर और डाकू आदि नहीं होते और आप भी इसी प्रकार का धार्मिक हो तो वही पुरुष चक्रवर्त्ती राज्य करने के योग्य होता है, इस से विरुद्ध नहीं ॥३५॥

ये देवा इत्यस्य वरुण ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। विकृतिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

मनुष्य लोग सर्वत्र घूमघाम कर विद्या ग्रहण करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

ये देवाऽअग्निनेत्राः पुरःसदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा यमनेत्रा दक्षिणासदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा विश्वदेवनेत्राः पश्चात्सदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा मित्रावरुणनेत्रा वा मरुन्नेत्रा वोत्तरासदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवाः सोमनेत्राऽउपरिसदो दुवस्वन्तस्तेभ्यः स्वाहा ॥३६॥

पदार्थः—हे सभाध्यक्ष राजन् ! आप (ये) जो (अग्निनेत्राः) बिजुली आदि

पदार्थों के समान जानने वाले (पुरःसदः) जो सभा वा देश वा पूर्व की दिशा में स्थित (देवाः) विद्वान् हैं (तेभ्यः) उन से (स्वाहा) सत्यवाणी (ये) जो (यमनेत्राः) अहिंसादि योगाङ्ग रीतियों में निपुण (दक्षिणासदः) दक्षिण दिशा में स्थित (देवाः) योगी और न्यायाधीश हैं (तेभ्यः) उन से (स्वाहा) सत्यक्रिया (ये) जो (पश्चात्सदः) पश्चिम दिशा में (विश्वदेवनेत्राः) सब पृथिवी आदि पदार्थों के ज्ञाता (देवाः) सब विद्या जानने वाले विद्वान् हैं (तेभ्यः) उनसे (स्वाहा) दण्डनीति (ये) जो (उत्तरासदः) प्रश्नोत्तरों का समाधान करने वाले उत्तर दिशा में (वा) नीचे ऊपर स्थित (मित्रावरुणनेत्राः) प्राण उदान के समान सब धर्मों के बताने वाले (वा) अथवा (मरुन्नेत्राः) ब्रह्माण्ड के वायु में नेत्र विज्ञान और (देवाः) सब को सुख देने वाले विद्वान् हैं (तेभ्यः) उन से (स्वाहा) सब के उपकारक विद्या को सेवन करो और(ये) जो (उपरिसदः) ऊंचे आसन वा व्यवहार में स्थित (दुवस्वन्तः) बहुत प्रकार के धर्म के सेवन से युक्त (सोमनेत्राः) सोम आदि ओषधियों के जानने तथा (देवाः) आयुर्वेद को जानने हारे हैं उन से (स्वाहा) अमृतरूपी ओषधीविद्या का सेवन कीजिये ।।३६।।

भावार्थः—हे राजा आदि मनुष्यो ! तुम लोग जब धार्मिक सुशील विद्वान् होकर सब दिशाओं में स्थित, सब विद्याओं के जानने वाले आप्त विद्वानों की परीक्षा और सत्कार के लिये सब विद्याओं को प्राप्त होगे तब यह तुम्हारे समीप आके तुम्हारे साथ सङ्ग करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्धि करावेंगे। जो देश देशान्तर तथा द्वीप द्वीपान्तर में विद्या नम्रता अच्छी शिक्षा काम की चतुराई को ग्रहण करते हैं वे ही सब को अच्छे सुख कराने वाले होते हैं ।।३६।।

अग्ने सहस्वेत्यस्य देववात ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ।।

फिर भी राजा आदि किस प्रकार वर्त्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

अग्ने सहस्व पृतनाऽअभिमातीरपास्य । दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चो धा यज्ञवाहसि ।।३७।।

पदार्थः—हे (अग्ने) सब विद्या जानने वाले विद्वान् राजन् ! (दुष्टरः) दुःख से तरने योग्य (तरन्) शत्रु सेना को अच्छे प्रकार तरते हुए आप (यज्ञवाहसि) राजधर्मयुक्त राज्य में (अभिमातीः) अभिमान आनन्दयुक्त (पृतनाः) बल और अच्छी शिक्षायुक्त वीर सेना को (सहस्व) सहो । (अरातीः) दुःख देने वाले शत्रुओं

को (अपास्य) दूर निकालिये और (वर्चः) विद्या बल और न्याय को (धाः) धारण कीजिये ॥३७॥

भावार्थः—राजादि सभा सेना के स्वामी लोग अपनी दृढ़ विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त सेना के सहित आप अजय और शत्रुओं को जीतते हुए भूमि पर उत्तम यश का विस्तार करें ॥३७॥

देवस्य त्वेत्यस्य देववात ऋषिः। रक्षोघ्नो देवता। स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

प्रजाजन राज्य में कैसे सभाधीश का स्वीकार करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। उपांशोर्वीर्येण जुहोमि हतꣳ रक्षः स्वाहा। रक्षसां त्वा वधायावधिष्म रक्षोऽवधिष्मामुमसौ हतः ॥३८॥

पदार्थः—हे राजन्! मैं (स्वाहा) सत्य क्रिया से (सवितुः) ऐश्वर्य्य के उत्पन्न करने वाले (देवस्य) प्रकाशित न्याययुक्त सेनापति के (प्रसवे) ऐश्वर्य्य में (उपांशोः) समीपस्थ सेना के (वीर्य्येण) सामर्थ्य से (अश्विनोः) सूर्य्य चन्द्रमा के समान सेनापति के (बाहुभ्याम्) भुजों से (पूष्णः) पुष्टिकारक वैद्य के (हस्ताभ्याम्) हाथों से (रक्षः) राक्षसों के (वधाय) नाश के अर्थ (त्वा) आप को (जुहोमि) ग्रहण करता हूँ। जैसे तूने (रक्षः) दुष्ट को (हतम्) नष्ट किया वैसे हम लोग भी (अवधिष्म) दुष्टों को मारें जैसे (असौ) वह दुष्ट (हतः) नष्ट हो जाय वैसे हम लोग इन सब को (अवधिष्म) नष्ट करें ॥३८॥

भावार्थः—प्रजाजनों को चाहिये कि अपने बचाव और दुष्टों के निवारणार्थ विद्या और धर्म की प्रवृत्ति के लिये अच्छे स्वभाव विद्या और धर्म के प्रचार करने हारे वीर जितेन्द्रिय सत्यवादी सभा के स्वामी राजा का स्वीकार करें ॥३८॥

सविता त्वेत्यस्य देववात ऋषिः। रक्षोघ्नो देवता। अतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

सभ्य मनुष्य राजा को किस किस विषय में प्रेरणा करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है॥

सविता त्वा सवानाᳮ सुवतामग्निर्गृहपतीनाᳮ सोमो वनस्पतीनाम्। बृहस्पतिर्वाचऽइन्द्रो ज्यैष्ठ्याय रुद्रः पशुभ्यो मित्रः सत्यो वरुणो धर्मपतीनाम् ॥३९॥

पदार्थः - हे सभापते राजन् ! जो तू (सवानाम्) ऐश्वर्य्यों के (सविता) सूर्य्य के समान प्रेरक (गृहपतीनाम्) गृहस्थों के उपकारक (अग्निः) पावक के सदृश (वनस्पतीनाम्) पीपल आदि वृक्षों में (सोमः) सोमवल्ली के सदृश (धर्म्मपतीनाम्) धर्म के पालने हारों के मध्य में (सत्यः) सज्जनों में सज्जन (वरुणः) शुभ गुण कर्मों से श्रेष्ठ (मित्रः) सखा के तुल्य (वाचे) वेदवाणी के लिये (बृहस्पतिः) महाविद्वान् के सदृश (ज्यैष्ठ्याय) श्रेष्ठता के लिये (इन्द्रः) परमैश्वर्य्य से युक्त के तुल्य (पशुभ्यः) गौ आदि पशुओं के लिये (रुद्रः) शुद्ध वायु के सदृश है उस (त्वा) तुझ को धर्मात्मा सत्यवादी विद्वान् धर्म से प्रजा की रक्षा में (सुवताम्) प्रेरणा करें ॥३९॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो आपको अधर्म से लौटाकर धर्म के अनुष्ठान में प्रेरणा करें उन्हीं का सङ्ग सदा करो औरों का नहीं ॥३९॥

इमं देवा इत्यस्य देववात ऋषिः । यजमानो देवता । भुरिग् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किस-किस प्रयोजन के लिये कैसे राजा का स्वीकार करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इमं देवाऽअसपत्नᳮ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इममुमुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विशऽएष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाᳮ राजा ॥४०॥

पदार्थः—हे प्रजास्थ (देवाः) विद्वान् लोगो ! तुम जो (एषः) यह (सोमः) चन्द्रमा के समान प्रजा में प्रियरूप (वः) तुम क्षत्रियादि और हम ब्राह्मणादि और जो (अमी) परोक्ष में वर्त्तमान हैं उन सब का राजा है उस (इमम्) इस (अमुष्य) उस उत्तम पुरुष के (पुत्रम्) पुत्र (अमुष्यै) उस विद्यादि गुणों से श्रेष्ठ धर्मात्मा विदुषी स्त्री के पुत्र को (अस्यै) इस (विशे) प्रजा के लिये इसी पुरुष को (महते) बड़े (ज्यैष्ठ्याय) प्रशंसा के योग्य (महते) बड़े (जानराज्याय) धार्मिक जनों के राज्य करने (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य्ययुक्त (इन्द्रियाय) धन के वास्ते (असपत्नम्) शत्रुरहित (सुवध्वम्) कीजिये ॥४०॥

भावार्थः—हे राजा और प्रजा के मनुष्यो ! तुम जो विद्वान् माता

और पिता से अच्छे प्रकार सुशिक्षित कुलीन बड़े उत्तम उत्तम गुण कर्म और स्वभावयुक्त जितेन्द्रियादि गुणयुक्त ४८ (अड़तालीस) वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य्य से पूर्ण विद्या से सुशील शरीर और आत्मा के पूर्ण वलयुक्त धर्म से प्रजा का पालक प्रेमी विद्वान् हो उस को सभापति राजा मान कर चक्रवर्त्तिराज्य का सेवन करो ॥४०॥

इस अध्याय में राजधर्म के वर्णन से इस अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

॥ इति नवमोऽध्यायः ॥

अथ दशमाध्यायारम्भः

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥१॥

अपो देवा इत्यस्य वरुण ऋषिः । आपो देवताः । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

इस के पश्चात् इस दशवें अध्याय के प्रथम मन्त्र में मनुष्य लोग विद्वानों के अनुकूल चलें इस विषय का उपदेश किया है ॥

अपो देवा मधुमतीरगृभ्णन्नूर्जस्वती राजस्वश्चितानाः । याभिर्मित्रावरुणावभ्यषिञ्चन् याभिरिन्द्रमनयन्नत्यरातीः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग (देवाः) चतुर विद्वान् लोग (याभिः) जिन क्रियाओं से (मित्रावरुणौ) प्राण तथा उदान को (अभ्यसिंचन्) सब प्रकार सींचते और जिन क्रियाओं से (इन्द्रम्) बिजुली को प्राप्त और (अरातीः) शत्रुओं को

(अनयन्) जीतते हैं उन क्रियाओं से (मधुमतीः) प्रशंसनीय मधुरादि गुणयुक्त (ऊर्जस्वतीः) बल पराक्रम बढ़ाने (चितानाः) चेतनता देने और (राजस्व.) ज्ञान-प्रकाश-युक्त राज्य को प्राप्त कराने हारे (अपः) जल वा प्राणों को (अगृभ्णन्) ग्रहण करो ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के सहाय से जल वा प्राणों की परीक्षा करके उन से उपयोग लेवें। शत्रुओं को निवृत्त करके प्रजा के साथ प्राणों के समान प्रीति से वर्त्तें और इन जल तथा प्राणों से उपकार लेवें ॥१॥

वृष्ण ऊर्मिरित्यस्य वरुण ऋषिः। वृषा देवता। स्वराड् ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः ॥

अथ विद्वान् लोग कैसे राजा से क्या-क्या मांगें यह उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ॥

वृष्णऽऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा वृष्णऽऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥२॥

पदार्थः—हे राजन्! जिस कारण आप (वृष्णः) सुख के वर्षाकारक ज्ञान के प्राप्त कराने (राष्ट्रदाः) राज्य के देने हारे (असि) हैं इस से (मे) मुझे (स्वाहा) सत्य नीति से (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये। (वृष्णः) सुख की वृष्टि करने वाले राज्य के (ऊर्मिः) जानने और (राष्ट्रदाः) राज्य प्रदान करने हारे (असि) हैं (अमुष्मै) उस राज्य की रक्षा करने वाले को (राष्ट्रम्) न्याय से प्रकाशित राज्य को (देहि) दीजिये। (राष्ट्रदाः) राजाओं के कर्मों के देने हारे (वृषसेनः) बलवान् सेना से युक्त (असि) हैं (मे) प्रत्यक्ष वर्त्तमान मेरे लिये (स्वाहा) सुन्दर वाणी से (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये तथा (राष्ट्रदाः) प्रत्यक्ष राज्य को देने वाले (वृषसेनः) आनन्दित पुष्टसेना से युक्त (असि) हैं इस से आप (अमुष्मै) उस परोक्ष पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये ॥२॥

भावार्थः—जो राजपुरुष दुष्ट प्राणियों को जीत प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष श्रेष्ठ पुरुषों का सत्कार कर के अधिकार और शोभा को देता है उस के लिये चक्रवर्त्ती राज्य का अधिकार होना योग्य है ॥२॥

अर्थेत इत्यस्य वरुणः ऋषिः। अपां पतिर्देवता। पूर्वस्याभिकृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः। देहीत्यस्य निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

राजा मन्त्री सेना और प्रजा के पुरुष आपस में किस प्रकार वर्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अर्थेतं स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहार्थेतं स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः परिवहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहाऽपां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देह्यपां गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहाऽपां गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो तुम लोग (अर्थेतः) श्रेष्ठ पदार्थों को प्राप्त होते हुए (स्वाहा) सत्य नीति से (राष्ट्रदा.) राज्य देने हारे सभासद् (स्थ) होवें आप लोग (मे) मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जो तुम लोग (अर्थेतः) पदार्थों को जानते हुए (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाले (स्थ) हो वे तुम लोग (अमुष्मै) राज्य के रक्षक उस पुरुष को (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जो तुम लोग (स्वाहा) सत्य नीति के साथ (ओजस्वतीः) विद्या बल और पराक्रम से युक्त हुई रानी लोग आप (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारी (स्थ) हैं वे (मे) मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जो आप लोग (ओजस्वतीः) जितेन्द्रिय (राष्ट्रदाः) राज्य की देने वाली (स्थ) हैं वे आप लोग (अमुष्मै) विद्या बल और पराक्रम से युक्त पुरुष को (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जो तुम लोग (स्वाहा) सत्य नीति से (परिवाहिणीः) अपने तुल्य पतियों के साथ विवाह करने वाली (आपः) जल तथा प्राण के समान प्यारी (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारी (स्थ) हैं वे आप लोग (मे) मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जो तुम लोग (परिवाहिणीः) अपने अनुकूल पतियों के साथ प्रसन्न होने वाली (आपः) आत्मा के समान प्रिय (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाली (स्थ) हैं वे आप (अमुष्मै) उस ब्रह्मचारी वीर पुरुष को (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । हे सभाध्यक्ष ! जो आप (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (अपाम्) जलाशयों के (पतिः) रक्षक (असि) हैं सो (मे) मुझे (स्वाहा) सत्य नीति के साथ (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये । हे सभापति ! जो आप (स्वाहा) सत्य वचनों से (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाले (अपाम्) प्राणों के (पतिः) रक्षक (असि) हैं वे (अमुष्मै) उन प्राणियों के पोषक पुरुष को (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये ।

हे वीर पुरुष राजन् ! जो आप (स्वाहा) सत्य नीति के साथ (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाले (अपाम्) सेनाओं के बीच (गर्भः) गर्भ के समान रक्षित (असि) हैं सो आप (मे) विचारशील मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये। हे राजन् ! जो आप (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (अपाम्) प्रजाओं के विषय (गर्भः) स्तुति के योग्य (असि) हैं सो आप (अमुष्मै) उस प्रशंसित पुरुष को (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये ॥३॥

भावार्थः—जो राज्य के अधिकारी पुरुष और उनकी स्त्रियां हों उन को चाहिये कि अपनी उन्नति के लिये दूसरों की उन्नति को सह के सब मनुष्यों को राज्य के योग्य करें और आप भी चक्रवर्ती राज्य का भोग किया करें ऐसा न हो कि ईर्ष्या से दूसरों की हानि कर के अपने राज्य का भङ्ग करें ॥३॥

सूर्य्यत्वचस इत्यस्य वरुण ऋषिः। सूर्य्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः। पूर्वस्य जगती छन्दः। निषादः स्वरः। सूर्य्यवर्चस इति द्वितीयस्य स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। व्रजक्षित इति तृतीयस्य शविष्ठा इति चतुर्थस्य च स्वराट् विकृतिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः। व्रजक्षितस्थेत्यस्य स्वराट् संकृतिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः। शक्वरीस्थेत्यस्य भुरिगाकृतिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। मधुमतीरित्यस्य भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्यों को कैसा हो के किस-किस के लिये क्या-क्या देना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सूर्य्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्य्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त सूर्य्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त

स्वाहा जनभृतस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः स्वराज स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त । मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्तां महि क्षत्रं क्षत्रियाय वन्वानाऽअनाधृष्टाः सीदत सहौजसो महि क्षत्रं क्षत्रियाय दधतीः ॥४॥

पदार्थः—हे राजपुरुषो ! तुम लोग (सूर्य्यत्वचसः) सूर्य के समान अपने न्याय-प्रकाश से सब तेज को ढांकने वाले होते हुए (स्वाहा) सत्य न्याय के साथ (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (स्थ) हो इसलिये (मे) मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। हे मनुष्यो ! जिस कारण (सूर्यत्वचसः) सूर्य्यप्रकाश के समान विद्याध्ययन वाले होते हुए तुम लोग (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (स्थ) हो इसलिये (अमुष्मै) उस विद्या में सूर्यवत् प्रकाशमान पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। हे विद्वान् मनुष्यो ! (सूर्यवर्चसः) सूर्य के समान तेजधारी होते हुए तुम लोग (स्वाहा) सत्य वाणी से (राष्ट्रदाः) राज्यदाता (स्थ) हो इस कारण (मे) तेजस्वी मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये जिस कारण (सूर्यवर्चसः) सूर्य के समान प्रकाशमान होते हुए आप लोग (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (स्थ) हो इसलिये (अमुष्मै) उस प्रकाश-मान पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। जिस कारण (मान्दाः) मनुष्यों को आनन्द देने हारे होते हुए आप लोग (स्वाहा) सत्य वचनों के साथ (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाले (स्थ) हो इसलिये (मे) आनन्द देने हारे मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये जिसलिये आप लोग (मान्दाः) प्राणियों को सुख देने वाले हो के (राष्ट्रदाः) राज्यदाता (स्थ) हो इसलिये (अमुष्मै) उस सुखदाता जन को (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। जिस कारण आप लोग (व्रजक्षित) गौ आदि पशुओं के स्थानों को बसाते हुए (स्वाहा) सत्य क्रियाओं के सहित (राष्ट्रदाः) राज्यदाता (स्थ) हैं इसलिये (मे) पशुरक्षक मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। जिस कारण आप लोग (व्रजक्षितः) स्थान आदि से पशुओं के रक्षक होते हुए (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (स्थ) हैं इस से (अमुष्मै) उस गौ आदि पशुओं के रक्षक पुरुष के लिये राज्य को (दत्त) दीजिये। जिसलिये आप लोग (वाशाः) कामना करते हुए (स्वाहा) सत्य नीति से (राष्ट्रदाः) राज्यदाता (स्थ) हैं इस लिये (मे) इच्छायुक्त मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। जिस कारण आप लोग (वाशाः) इच्छायुक्त होते हुए (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाले (स्थ) हैं इसलिये (अमुष्मै) उस इच्छायुक्त पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। जिस कारण आप

लोग (शविष्ठाः) अत्यन्त बल वाले होते हुए (स्वाहा) सत्य पुरुषार्थ से (राष्ट्रदाः) राज्यदाता (स्थ) हैं इस कारण (मे) बलवान् मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। जिस कारण आप लोग (शविष्ठाः) अति पराक्रमी (राष्ट्रदाः) राज्यदाता (स्थ) हैं इस कारण (अमुष्मै) उस अति पराक्रमी जन के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। हे राणी लोगो! जिसलिये आप (शक्वरीः) सामर्थ्य वाली होती हुई (स्वाहा) सत्य पुरुषार्थ से (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारी (स्थ) हैं इसलिये (मे) सामर्थ्यवान् मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। जिस कारण आप (शक्वरीः) सामर्थ्ययुक्त (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाली (स्थ) हैं इस कारण (अमुष्मै) उस सामर्थ्य-युक्त पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। जिसलिये आप लोग (जनभृतः) श्रेष्ठ मनुष्यों का पोषण करने हारी होती हुई (स्वाहा) सत्य कर्मों के साथ (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाली (स्थ) हैं इस लिये (मे) श्रेष्ठगुणयुक्त मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। जिसलिये आप (जनभृतः) सज्जनों को धारण करने हारे (राष्ट्रदाः) राज्यदाता (स्थ) हैं इसलिये (अमुष्मै) उस सत्यप्रिय पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। हे सभाध्यक्षादि राजपुरुषो! जिसलिये आप लोग (विश्वभृतः) सब संसार का पोषण करने वाले होते हुए (स्वाहा) सत्य वाणी के साथ (राष्ट्रदाः) राज्य देनेहारे (स्थ) हैं इसलिये (मे) सब के पोषक मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। जिसलिये आप लोग (विश्वभृतः) विश्व को धारण करने हारे (राष्ट्रदाः) राज्यदाता (स्थ) हैं इसलिये (अमुष्मै) उस धारण करने हारे मनुष्य के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। जिस कारण आप लोग (आपः) सब विद्या और धर्म विषय में व्याप्ति वाले होते हुए (स्वाहा) सत्य क्रिया से (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (स्थ) हैं इस कारण (मे) शुभ गुणों में व्याप्त मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। जिसलिये आप लोग (आपः) सब विद्या और धर्म मार्ग को जानने हारे (स्वराजः) आप से आप ही प्रकाशमान (राष्ट्रदाः) राज्यदाता (स्थ) हैं इसलिये (अमुष्मै) उस धर्मज्ञ पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। हे सज्जन स्त्री लोगो! आप को चाहिये कि (क्षत्रियाय) राजपूतों के लिये (महि) बड़े पूजा के योग्य (क्षत्रम्) क्षत्रियों के राज्य को (वन्वानाः) चाहती हुई (सहोजसः) बल पराक्रम के सहित वर्त्तमान (क्षत्रियाय) राजपूतों के लिये (महि) बड़े (क्षत्रम्) राज्य को (दधतीः) धारण करती हुई (अनाधृष्टाः) शत्रुओं के वश में न आने वाली (मधुमतीः) मधुर आदि रस वाली ओषधि (मधुमतीभिः) मधुरादि गुणयुक्त वसन्त आदि ऋतुओं से सुखों को (पृच्यन्ताम्) सिद्ध किया करें। हे सज्जन पुरुषो! तुम लोग इस प्रकार की स्त्रियों को (सीदत) प्राप्त होओ ॥४॥

भावार्थः—हे स्त्री पुरुषो! जो सूर्य्य के समान न्याय और विद्या का प्रकाश कर सब को आनन्द देने गौ आदि पशुओं की रक्षा करने शुभ गुणों

से शोभायमान बलवान् अपने तुल्य स्त्रियों से विवाह और संसार का पोषण करने वाले स्वाधीन हैं वे ही औरों के लिये राज्य देने और आप सेवन करने को समर्थ होते हैं अन्य नहीं ।।४।।

सोमस्येत्यस्य वरुण ऋषिः । अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः । भुरिग् धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ।।

राजा लोगों को चाहिये कि सत्यवादी धर्मात्मा राजाओं के समान अपने सब काम करें और क्षुद्राशय, लोभी, अन्यायी तथा लंपटी के तुल्य कदापि न हों, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

सोम॑स्य॒ त्विषि॑रसि॒ तवे॑व मे॒ त्विषि॑र्भूयात्। अ॒ग्नये॒ स्वाहा॒ सोमा॑य॒ स्वाहा॑ सवि॒त्रे स्वाहा॒ सर॑स्वत्यै॒ स्वाहा॑ पू॒ष्णे स्वाहा॒ बृह॒स्पत॑ये॒ स्वाहेन्द्रा॑य॒ स्वाहा॒ घोषा॑य॒ स्वाहा॒ श्लोका॑य॒ स्वाहाꣳशा॑य॒ स्वाहा॒ भगा॑य॒ स्वाहार्य॒म्णे स्वाहा॑ ।।५।।

पदार्थः – हे राजन् ! जैसे आप (सोमस्य) ऐश्वर्य्य के (त्विषिः) प्रकाश करने हारे (असि) हैं वैसा मैं भी होऊं जिस से (तवेव) आप के समान (मे) मेरा (त्विषिः) विद्याओं का प्रकाश होवे, जैसे आप ने (अग्नये) बिजुली आदि के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी और प्रियाचरणयुक्त विद्या (सोमाय) ओषधि जानने के लिये (स्वाहा) वैद्यक की पुरुषार्थयुक्त विद्या (सवित्रे) सूर्य्य को समझने के लिये (स्वाहा) भूगोल विद्या (सरस्वत्यै) वेदों का अर्थ और अच्छी शिक्षा जनानेवाली वाणी के लिये (स्वाहा) व्याकरणादि वेदों के अंगों का ज्ञान (पूष्णे) प्राण तथा पशुओं की रक्षा के लिये (स्वाहा) योग और व्याकरण की विद्या (बृहस्पतये) बड़े प्रकृति आदि के पति ईश्वर को जानने के लिये (स्वाहा) ब्रह्मविद्या (इन्द्राय) इन्द्रियों के स्वामी जीवात्मा के बोध के लिये (स्वाहा) विचारविद्या (घोषाय) सत्य और प्रियभाषण से युक्त वाणी के लिये (स्वाहा) सत्य उपदेश और व्याख्यान देने की विद्या (श्लोकाय) तत्त्वज्ञान का साधक शास्त्र श्रेष्ठ काव्य गद्य और पद्य आदि छन्द रचना के लिये (स्वाहा) छंद और शुभ मूल काव्यशास्त्र आदि की विद्या (अंशाय) परमाणुओं के समझने के लिये (स्वाहा) सूक्ष्म पदार्थों का ज्ञान (भगाय) ऐश्वर्य्य के लिये (स्वाहा) पुरुषार्थज्ञान (अर्य्यम्णे) न्यायाधीश होने के लिये (स्वाहा) राजनीति विद्या को ग्रहण करते हैं वैसे मुझे भी करना अवश्य है ।।५।।

भावार्थः – मनुष्यों को ऐसी आशंसा (इच्छा) करनी चाहिये कि

जैसे सत्यवादी धर्मात्मा राजा लोगों के गुण कर्म स्वभाव होते हैं वैसे ही हम लोगों के भी होवें ॥५॥

पवित्रे स्थ इत्यस्य वरुण ऋषिः । आपो देवताः । स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

जैसे कुमार पुरुष ब्रह्मचर्य्य से विद्या ग्रहण करें वैसे कन्या भी पढ़ें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः । अनिभृष्टमसि वाचो बन्धुस्तपोजाः सोमस्य दात्रमसि स्वाहा राजस्वः ॥६॥

पदार्थः—हे सभापति राजपुरुष ! जिस लिये आप (वाचः) वेदवाणी के (अनिभृष्टम्) भ्रष्टतारहित आचरण किये (बन्धुः) भाई (असि) हैं (सोमस्य) ओषधियों के काटने वाले (तपोजाः) ब्रह्मचर्य्यादि तप से प्रसिद्ध (असि) हैं । आप की आज्ञा से (सवितुः) सब जगत् को उत्पन्न करने हारे ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न हुए जगत् में (वैष्णव्यौ) सब विद्या अच्छी शिक्षा शुभ गुण कर्म और स्वभाव में व्यापनशील और (पवित्रे) शुद्ध आचरण वाली (स्थः) तुम दोनों हो । हे पढ़ाने परीक्षा करने और पढ़ने हारी स्त्री लोगो ! मैं (सवितु) ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये इस जगत् में (सूर्य्यस्य) सूर्य्य की (रश्मिभिः) किरणों के समान (अच्छिद्रेण) छेदरहित (पवित्रेण) विद्या अच्छी शिक्षा धर्मज्ञान जितेन्द्रियता और ब्रह्मचर्य्य आदि करके पवित्र किये हुए से (वः) तुम लोगों को (उत्पुनामि) अच्छे प्रकार पवित्र करता हूं तुम लोग (स्वाहा) सत्य क्रिया से (राजस्वः) राजाओं में वीरों को उत्पन्न करने वाली हो ॥६॥

भावार्थः – इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजा आदि पुरुषो ! तुम लोग इस जगत् में कन्याओं को पढ़ाने के लिये शुद्ध विद्या की परीक्षा करने वाली स्त्री लोगों को नियुक्त करो । जिस से ये कन्या लोग विद्या और शिक्षा को प्राप्त हो के जवान हुई प्रिय वर पुरुषों के साथ स्वयंवर विवाह कर के वीर पुरुषों को उत्पन्न करें ॥६॥

सधमाद इत्यस्य वरुण ऋषिः । वरुणो देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

राजाओं को यह अवश्य चाहिये कि सब प्रजा और अपने कुल के बालकों को ब्रह्मचर्य्य के साथ विद्या और सुशिक्षायुक्त करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सधमादो द्युम्नि॑नीराप॑ऽएताऽअनाधृष्टाऽअपस्यो वसानाः ।
पस्त्यासु चक्रे वरुणः सधस्थमपाᳬ शिशुर्मातृतमास्वन्तः ॥७॥

पदार्थः—जो (वरुणः) श्रेष्ठ राजा हो वह (एताः) विद्या और अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुईं (सधमादः) एक साथ प्रसन्न होने वाली (द्युम्निनीः) प्रशंसनीय धन कीर्त्ति से युक्त (अनाधृष्टाः) जो किसी से न दवें (आपः) जल के समान शान्तियुक्त (वसानाः) वस्त्र और आभूषणों से ढपी हुईं (पस्त्यासु) घरों के (अपस्यः) कामों में चतुर विदुषी स्त्री होवें उन (अपाम्) विद्याओं में व्याप्त स्त्रियों का जो (शिशुः) वालक हो उस को (मातृतमासु) अति मान्य करने हारी धायियों के (अन्तः) समीप (सधस्थम्) एक समीप के स्थान में शिक्षा के लिये रक्खे ॥७॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि अपने राज्य में प्रयत्न के साथ सव स्त्रियों को विदुषी और उन से उत्पन्न हुए वालकों को विद्यायुक्त धाइयों के आधीन करे कि जिस से किसी के वालक विद्या और अच्छी शिक्षा के विना न रहें और स्त्री भी निर्वल न हों ॥७॥

क्षत्रस्येत्यस्य वरुण ऋषिः । यजमानो देवता । स्वराट् कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

सव प्रजापुरुषों को योग्य है कि सव प्रकार से योग्य सभापति राजा की निरन्तर सव ओर से रक्षा करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

क्षत्रस्योल्वमसि क्षत्रस्य जराय्वसि क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसीन्द्रस्य वार्त्रघ्नमसि मित्रस्यासि वरुणस्यासि त्वयायं वृत्रं वधेत् । दृवासि रुजासि क्षुमासि । पातैनं प्राञ्चं पातैनं प्रत्यञ्चं पातैनं तिर्यञ्चं दिग्भ्यः पात ॥८॥

पदार्थः—हे राजन् ! जो आप (क्षत्रस्य) अपने राजकुल में (उल्वम्) वलवान् (असि) हैं (क्षत्रस्य) क्षत्रिय पुरुष को (जरायु) वृद्धावस्था देने हारे (असि) हैं (क्षत्रस्य) राज्य के (योनिः) निमित्त (असि) हैं (क्षत्रस्य) राज्य के (नाभिः) प्रवन्धकर्त्ता (असि) हैं (इन्द्रस्य) सूर्य्य के (वार्त्रघ्नम्) मेघ का नाश करने हारे के समान कर्मकर्त्ता (असि) हैं (मित्रस्य) मित्र के मित्र (असि) हैं (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुषों के साथ श्रेष्ठ (असि) हैं (दृवा) शत्रुओं के विदारण करने वाले (असि) हैं (रुजा) शत्रुओं को रोगातुर करने हारे (असि) हैं और (क्षुमा) सत्य का उपदेश करने हारे

(अस्ति) हैं जो (अयम्) यह वीर पुरुष (त्वया) आप राजा के साथ (वृत्रम्) मेघ के समान न्याय के छिपाने वाले शत्रु को (वधेत्) मारे (एनम्) इस (प्राञ्चम्) प्रथम प्रबंध करने वाले (एनम्) राजपुरुष की तुम लोग (दिग्भ्यः) सब दिशाओं से (पात) रक्षा करो इस (तिर्य्यञ्चम्) तिर्छे खड़े हुए (एनम्) राजपुरुष की (पात) रक्षा करो ॥८॥

भावार्थः— जो कन्या और पुत्रों में स्त्री और पुरुषों में विद्या बढ़ाने वाला कर्म है वही राज्य का बढ़ाने शत्रुओं का विनाश और धर्म आदि की प्रवृत्ति कराने वाला होता है। इसी कर्म से सब कालों और सब दिशाओं में रक्षा होती है ॥८॥

आविर्मर्य्या इत्यस्य वरुण ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। भुरिगष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

मनुष्यों को चाहिये कि अपना स्वभाव अच्छा करके आप्त विद्वान् आदि को अवश्य प्राप्त होवें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

आविर्मर्य्याऽआवित्तोऽअग्निर्गृहपतिरावित्तऽइन्द्रो वृद्धश्रवाऽआवित्तौ मित्रावरुणौ धृतव्रतावावित्तः पूषा विश्ववेदाऽआवित्ते द्यावापृथिवी विश्वशम्भुवावावित्तादितिरुरुशर्म्मा ॥९॥

पदार्थः— हे (मर्य्याः) मनुष्यो! तुम लोग जो (गृहपतिः) घरों के पालन करने हारे (अग्निः) प्रसिद्ध अग्नि के समान विद्वान् पुरुष को (आविः) प्रकटता से (आवित्तः) प्राप्त वा निश्चय करके जाना, (वृद्धश्रवाः) श्रेष्ठता से सब शास्त्रों को सुने हुए (इन्द्रः) शत्रुओं के मारने हारे सेनापति को (आविः) प्रकटता से (आवित्तः) प्राप्त वा जाना, (धृतव्रतौ) सत्य आदि व्रतों को धारण करने हारे (मित्रावरुणौ) मित्र और श्रेष्ठ जनों को (आविः) प्रकटता से (आवित्तौ) प्राप्त वा जाने, (विश्ववेदाः) सब ओषधियों को जानने हारे (पूषा) पोषणकर्त्ता वैद्य को (आविः) प्रसिद्धि से (आवित्तः) प्राप्त हुए, (विश्वशम्भुवौ) सब के लिये सुख देने हारे (द्यावापृथिवी) बिजुली और भूमि को (आविः) प्रकटता से (आवित्ते) जाने, (उरुशर्म्मा) बहुत सुख देने वाली (अदितिः) विदुषी माता को प्रसिद्ध (आवित्ता) प्राप्त हुए तो तुम को सब सुख प्राप्त हो जावें ॥९॥

भावार्थः—जब तक मनुष्य लोग श्रेष्ठ विद्वानों, उत्तम विदुषी माता और प्रसिद्ध पदार्थों के विज्ञान को प्राप्त नहीं होते तब तक सुख की प्राप्ति और दुःखों की निवृत्ति करने को समर्थ नहीं होते ॥९॥

अवेष्टा इत्यस्य वरुण ऋषिः। यजमानो देवता। विराडार्षी पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर मनुष्य क्या करके किस-किस को प्राप्त हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अवेष्टा दन्दशूकाः प्राचीमारोह गायत्री त्वावतु रथन्तरꣳ साम त्रिवृत् स्तोमो वसन्तऽऋतुर्ब्रह्म द्रविणम्॥१०॥

पदार्थः—हे राजन्! जो आप (अवेष्टाः) विरोधी का सङ्ग करने वाले (दंदशूकाः) दूसरों को दुःख देने के लिये काट खाने वाले हैं, उन को जीत के (प्राचीम्) पूर्व दिशा में (आरोह) प्रसिद्ध हों उस (त्वा) आप को (गायत्री) पढ़ा हुआ गायत्री छन्द, (रथन्तरम्) रथों से जिससे पार हों ऐसा (साम) सामवेद, (त्रिवृत्) तीन मन वाणी और शरीर के बलों का बोध कराने वाला (स्तोमः) स्तुति के योग्य (वसन्तः) वसन्त (ऋतुः) ऋतु (ब्रह्म) वेद ईश्वर और ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणकुलरूप (द्रविणम्) धन (अवतु) प्राप्त होवे॥१०॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्याओं में प्रसिद्ध होते हैं वे शत्रुओं को जीत के ऐश्वर्य्य को प्राप्त हो सकते हैं॥१०॥

दक्षिणामित्यस्य वरुण ऋषिः। यजमानो देवता। आर्ची पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः॥

फिर वह सभापति राजा क्या करके क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

दक्षिणामारोह त्रिष्टुप् त्वावतु बृहत्साम पञ्चदश स्तोमो ग्रीष्मऽऋतुः क्षत्रं द्रविणम्॥११॥

पदार्थः—हे विद्वान् राजन्! जिस (त्वा) आप को (त्रिष्टुप्) इस नाम के छन्द से सिद्ध विज्ञान (बृहत्) बड़ा (साम) सामवेद का भाग (पञ्चदशः) पांच प्राण अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, पांच इन्द्रिय अर्थात् श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण, पांच भूत अर्थात् जल, भूमि, अग्नि, वायु और आकाश, इन पन्द्रह की पूर्त्ति करने हारा (स्तोमः) स्तुति के योग्य (ग्रीष्मः) (ऋतुः) ग्रीष्म ऋतु (क्षत्रम्) क्षत्रियों के धर्म का रक्षक क्षत्रियकुलरूप और (द्रविणम्) राज्य से प्रकट हुआ धन (अवतु) प्राप्त हो। वह आप (दक्षिणाम्) दक्षिण दिशा में (आरोह) प्रसिद्ध हूजिये और शत्रुओं को जीतिये॥११॥

भावार्थः—जो राजा विद्या को प्राप्त हुआ क्षत्रियकुल को बढ़ावे उस का तिरस्कार शत्रुजन कभी न कर सकें॥११॥

प्रतीचीमित्यस्य वरुण ऋषिः। यजमानो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप्छन्दः गांधारः स्वरः ॥

राजपुरुषों को चाहिये कि वैश्य कुल को नित्य बढ़ावें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रतीचीमारोह जगती त्वावतु वैरूपᳪ साम सप्तदश स्तोमो वर्षाऽऋतुर्विड् द्रविणम् ॥१२॥

पदार्थः—हे राजपुरुष ! जिस (त्वा) आप को (जगती) जगती छन्द में कहा हुआ अर्थ (वैरूपम्) विविध प्रकार के रूपों वाला (साम) सामवेद का अंश (सप्तदश) पांच कर्म इन्द्रिय, पाँच शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध विषय पांच महाभूत अर्थात् सूक्ष्म भूत, कार्य्य और कारण इन सत्रह का पूरण करने वाला (स्तोमः) स्तुतियों का समूह (वर्षाः) वर्षा (ऋतुः) ऋतु (द्रविणम्) द्रव्य और (विट्) वैश्यजन (अवतु) प्राप्त हों । सो आप (प्रतीचीम्) पश्चिम दिशा को (आरोह) आरूढ़ और धन को प्राप्त हूजिये ॥१२॥

भावार्थः—जो राजपुरुष राजनीति के साथ वैश्यों की उन्नति करें वे ही लक्ष्मी को प्राप्त होवें ॥१२॥

उदीचीमित्यस्य वरुण ऋषिः। यजमानो देवता। आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

फिर राजा आदि पुरुषों को क्या प्राप्त करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

उदीचीमारोहानुष्टुप् त्वावतु वैराजᳪ सामैकविᳪश स्तोमः शरदृतुः फलं द्रविणम् ॥१३॥

पदार्थः—हे सभापति राजा ! आप (उदीचीम्) उत्तर की दिशा में (आरोह) प्रसिद्धि को प्राप्त हूजिये। जिस से (अनुष्टुप्) जिस को पढ़ के सब विद्याओं से दूसरों की स्तुति करें वह छन्द (वैराजम्) अनेक प्रकार के अर्थों से शोभायमान (साम) सामवेद का भाग (एकविंशः) सोलह कला, चार पुरुषार्थ के अवयव और एक कर्त्ता इन इक्कीस को पूरण करने हारा (स्तोमः) स्तुति का विषय (शरत्) शरद् (ऋतुः) ऋतु (द्रविणम्) ऐश्वर्य्य और (फलम्) फलरूप सेवाकारक शूद्रकुल (त्वा) आपको (अवतु) प्राप्त होवे ॥१३॥

भावार्थः—जो पुरुष आलस्य को छोड़ सब समय में पुरुषार्थ का अनुष्ठान करते हैं वे अच्छे फलों को भोगते हैं ॥१३॥

ऊर्ध्वामित्यस्य वरुण ऋषिः । यजमानो देवता । भुरिग्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ।।

मनुष्यों को चाहिये कि प्रबल विद्या से अनेक पदार्थों को जानें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

ऊर्ध्वामारोह पङ्क्तिस्त्वावतु शाक्वररैवते सामनी त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ स्तोमौ हेमन्तशिशिरावृतू वर्चो द्रविणं प्रत्यस्तं नमुचेः शिरः ।।१४।।

पदार्थः—हे राजन् ! आप जो (ऊर्ध्वाम्) ऊपर की दिशा में (आरोह) प्रसिद्ध होवें तो (त्वा) आपको (पंक्तिः) पंक्ति नाम का पढ़ा हुआ छन्द (शाक्वररैवते) शक्वरी और रेवती छन्द से युक्त (सामनी) सामवेद के पूर्व उत्तर दो अवयव (त्रिणवत्रयस्त्रिशौ) तीन काल नव अङ्कों की विद्या और तैंतीस वसु आदि पदार्थ जिन दोनों से व्याख्यान किये गये हैं उनके पूर्ण करने वाले (स्तोमौ) स्तोत्रों के दो भेद (हेमन्तशिशिरौ) (ऋतू) हेमन्त और शिशिर ऋतु (वर्चः) ब्रह्मचर्य्य के साथ विद्या का पढ़ना और (द्रविणम्) ऐश्वर्य्य (अवतु) तृप्त करे और (नमुचेः) दुष्ट चोर का (शिरः) मस्तक (प्रत्यस्तम्) नष्ट भ्रष्ट होवे ।।१४।।

भावार्थः—जो मनुष्य सब ऋतुओं में समय के अनुसार आहार विहार युक्त होके विद्या योगाभ्यास और सत्संगों का अच्छे प्रकार सेवन करते हैं, वे सब ऋतुओं में सुख भोगते हैं और इनको कोई चोर आदि भी पीड़ा नहीं दे सकता ।।१४।।

सोमेत्यस्य वरुणऋषिः । परमात्मा देवता । निचृदार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।।

राजा और प्रजापुरुषों को उचित है कि ईश्वर के समान न्यायाधीश होकर आपस में एक दूसरे की रक्षा करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

सोमस्य त्विषिरसि तवेव मे त्विषिर्भूयात् । मृत्योः पाह्योजोऽसि सहोऽस्यमृतमसि ।।१५।।

पदार्थः—हे परम आप्त विद्वन् ! जैसे आप (सोमस्य) ऐश्वर्य्य का (त्विषिः) प्रकाश करने हारे (असि) हैं (ओजः) पराक्रमयुक्त (असि) हैं वैसा मैं भी होऊं (तवेव) आपके समान (मे) मेरा (त्विषिः) विद्या प्रकाश से भाग्योदय (भूयात्) हो आप मुझ को (मृत्योः) मृत्यु से (पाहि) बचाइये ।।१५।।

भावार्थः - हे पुरुषो ! जैसे धार्मिक विद्वान् अपने को जो इष्ट है उसी को प्रजा के लिये भी इच्छा करें, जैसे प्रजा के जन राजपुरुषों की रक्षा करें वैसे राजपुरुष भी प्रजाजनों की निरन्तर रक्षा करें ॥१५॥

हिरण्यरूपावित्यस्य वरुण ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते। स्वराडार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

अब विद्वानों को चाहिये कि आप निष्कपट हो और अज्ञानी पुरुषों के लिये सत्य का उपदेश करके उनको बुद्धिमान् विद्वान् बनावें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

हिरण्यरूपाऽउषसो विरोकऽउभाविन्द्राऽउदिथः सूर्यश्च। आरोहतं वरुण मित्र गर्त्तं ततश्चाक्षाथामदितिं दितिं च मित्रोऽसि वरुणोऽसि ॥१६॥

पदार्थः— हे उपदेश करने हारे (मित्र) सब के सुहृद् ! जिसलिये आप (मित्रः) सुख देने वाले (असि) हैं तथा हे (वरुण) शत्रुओं को मारने हारे बलवान् सेनापति ! जिसलिये आप (वरुणः) सबसे उत्तम (असि) हैं इसलिये आप दोनों (गर्त्तम्) उपदेश करने वाले के घर पर (आरोहतम्) जाओ (अदितिम्) अविनाशी (च) और (दितिम्) नाशवान् पदार्थों का (चक्षाथाम्) उपदेश करो। हे (हिरण्यरूपौ) प्रकाशस्वरूप (उभौ) दोनों (इन्द्रौ) परमैश्वर्य्य करने हारे जैसे (विरोके) विविध प्रकार की रुचि कराने हारे व्यवहार में (सूर्य्यः) सूर्य्य (च) और चन्द्रमा (उषसः) प्रातः और निशा काल के अवयवों को प्रकाशित करते हैं वैसे तुम दोनों जन (उदिथः) विद्याओं का उपदेश करो ॥१६॥

भावार्थः—जिस देश में सूर्य्य चन्द्रमा के समान उपदेश करने हारे व्याख्यानों से सब विद्याओं का प्रकाश करते हैं, वहां सत्याऽसत्य पदार्थों के बोध से सहित होके कोई भी विद्याहीन होकर भ्रम में नहीं पड़ता। जहां यह बात नहीं होती वहां अन्धपरम्परा में फंसे हुए मनुष्य नित्य ही क्लेश पाते हैं ॥१६॥

सोमस्येत्यस्य वरुण ऋषिः। क्षत्रपतिर्देवता। आर्षीपंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

पूर्वोक्त कार्य्यों की प्रवृत्ति के लिये कैसे पुरुष को राज्याऽधिकार देना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सोमस्य त्वा द्युम्नेनाभिषिञ्चाम्यग्नेर्भ्राजसा सूर्यस्य वर्चसेन्द्रस्येन्द्रियेण । क्षत्राणां क्षत्रपतिरेध्यति दिद्यून् पाहि ॥१७॥

पदार्थः—हे प्रशंसित गुण कर्म और स्वभाव वाले राजा ! जैसे मैं जिस तुझ को (सोमस्य) चन्द्रमा के समान (द्युम्नेन) यशरूप प्रकाश से, (अग्नेः) अग्नि के समान (भ्राजसा) तेज से, (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के समान (वर्चसा) पढ़ने से और (इन्द्रस्य) बिजुली के समान (इन्द्रियेण) मन आदि इन्द्रियों के सहित (त्वा) आपको (अभिषिञ्चामि) राज्याधिकारी करता हूँ। वैसे वे आप (क्षत्राणाम्) क्षत्रिय कुल में जो उत्तम हों उनके बीच (क्षत्रपतिः) राज्य के पालने हारे (अत्येधि) अति तत्पर हूजिये और (दिद्यून्) विद्या तथा धर्म का प्रकाश करने हारे व्यवहारों को (पाहि) निरन्तर रक्षा कीजिये ॥१७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जो शान्ति आदि गुणयुक्त जितेन्द्रिय विद्वान् पुरुष हो उस को राज्य का अधिकार देवें और उस राजा को चाहिये कि राज्याऽधिकार को प्राप्त हो अतिश्रेष्ठ होता हुआ विद्या और धर्म आदि के प्रकाश करने हारे प्रजापुरुषों को निरन्तर बढ़ावे ॥१७॥

इमं देवा इत्यस्य देववात ऋषिः । यजमानो देवता । स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

सत्य के उपदेशक विद्वानों को चाहिये कि बाल्यावस्था से लेके अच्छी शिक्षा से राजाओं की कन्या और पुत्रों को श्रेष्ठ आचारयुक्त करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इमं देवाऽअसपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विशऽएष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजा ॥१८॥

पदार्थः—हे (देवाः) वेद शास्त्रों को जानने हारे सेनापति लोग आप ! जो (एषः) यह उपदेशक वा सेनापति (वः) तुम्हारा और (अस्माकम्) हमारा (ब्राह्मणानाम्) ईश्वर और वेद के सेवक ब्राह्मणों का (राजा) वेद और ईश्वर की उपासना से प्रकाशमान अधिष्ठाता है, जो (अमी) वे धर्मात्मा राजपुरुष हैं उन का (सोमः) शुभ गुणों से प्रसिद्ध (राजा) सर्वत्र विद्या धर्म और अच्छी शिक्षा का करने हारा है उस (इमम्) इस (अमुष्य) श्रेष्ठगुणों से युक्त राजपूत के (पुत्रम्) पुत्र को (अमुष्यै) प्रशंसा करने

योग्य राजकन्या के (पुत्रम्) पवित्र गुण कर्म और स्वभाव से माता पिता की रक्षा करने वाले पुत्र और (अस्यै) अच्छी शिक्षा करने योग्य इस वर्त्तमान (विशे) प्रजा के लिये तथा (महते) सत्कार करने योग्य (क्षत्राय) क्षत्रिय कुल के लिये (महते) बड़े (ज्यैष्ठ्याय) विद्या और धर्म विषय में श्रेष्ठ पुरुषों के होने के लिये (महते) श्रेष्ठ (जानराज्याय) माण्डलिक राजाओं के ऊपर बलवान् समर्थ होने के लिये (इन्द्रस्य) सब ऐश्वर्यों से युक्त धनाढ्य के (इन्द्रियाय) धन बढ़ाने के लिये (असपत्नम्) जिस का कोई शत्रु न हो ऐसे पुत्र को (सुवध्वम्) उत्पन्न करो ॥१८॥

भावार्थः—जो उपदेशक और राजपुरुष सब प्रजा की उन्नति किया चाहें तो प्रजा के मनुष्य राजा और राजपुरुषों की उन्नति करने की इच्छा क्यों न करें। जो राजपुरुष और प्रजापुरुष वेद और ईश्वर की आज्ञा को छोड़ के अपनी इच्छा के अनुकूल प्रवृत्त होवें तो इन की उन्नति का विनाश क्यों न हो ॥१८॥

प्रपर्वतस्येत्यस्य देववात ऋषिः। विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर इस जगत् में राज और प्रजाजनों को किस प्रकार के यान बनाने चाहियें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्र पर्वतस्य वृष॒भस्य॑ पृ॒ष्ठान्नाव॑श्चरन्ति स्व॒सिच॑ऽइया॒नाः ताऽआ-व॑वृत्रन्नध॒राग्रुद॑क्ताऽअहिं॒ बु॒ध्न्य॒मनु॒ रीय॑माणाः। विष्णो॒र्विक्र॑मणमसि विष्णो॒र्विक्रा॑न्तमसि विष्णोः॑ क्रा॒न्तम॑सि ॥१९॥

पदार्थः—हे राजा के कारीगर पुरुष! जो तू (स्वसिचः) जिन को अपने लोग जल से सींचते हैं (इयानाः) चलते हुए (उदक्ताः) फिर फिर ऊपर को जावें (अहिं बुध्न्यम्) अन्तरिक्ष में रहने वाले मेघ के (अनुरीयमाणाः) पीछे पीछे चलाने से चलते हुए (नावः) समुद्र के ऊपर नौकाओं के समान चलते हुए विमान (वृषभस्य) वर्षा करने हारे (पर्वतस्य) मेघ के (पृष्ठात्) ऊपर के भाग से (प्रचरन्ति) चलते हैं जिन से तू (विष्णोः) व्यापक ईश्वर के इस जगत् में (विक्रमणम्) पराक्रम सहित (असि) है (विष्णोः) व्यापक वायु के बीच (विक्रान्तम्) अनेक प्रकार चलने हारा (असि) है (विष्णोः) व्यापक बिजुली के बीच (क्रान्तम्) चलने का आधार (असि) है और जो (अधराक्) मेघ से नीचे (आववृत्रन्) मेघ के समान विचरते हैं उन विमानादि यानों को तू सिद्ध कर ॥१९॥

भावार्थः—जैसे मेघ वर्ष के भूमि के तले को प्राप्त हो के पुनः आकाश को प्राप्त होता है। वह जल नदियों में जाके पीछे समुद्र को प्राप्त होता

है। जो जल के भीतर अर्थात् जिन के ऊपर नीचे जल होता है। वैसे ही सब कारीगर लोगों को चाहिये कि विमानादि यानों और नौकाओं को बना के भूमि जल और आकाश मार्ग से अभीष्ट देशों में यथेष्ट जाना आना करें। जब तक ऐसे यान नहीं बनाते तब तक द्वीप द्वीपान्तरों में कोई भी नहीं जा सकता। जैसे पक्षी अपने शरीररूप संघात को आकाश में उड़ा ले चलते हैं वैसे चतुर कारीगर लोगों को चाहिये कि इस अपने शरीर आदि को यानों के द्वारा आकाश में फिरावें ॥१९॥

प्रजापत इत्यस्य देववात ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। स्वराडतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की उपासना और उसकी आज्ञा पालने से सब कामनाओं को प्राप्त हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्त्वयममुष्य पिताऽसावस्य पिता वयꣳ स्याम पतयो रयीणाꣳ स्वाहा। रुद्र यत्ते क्रिवि परं नाम तस्मिन् हुतमस्यमेष्टमसि स्वाहा ॥२०॥

पदार्थः—हे (प्रजापते) प्रजा के स्वामी ईश्वर! जो (एतानि) जीव प्रकृति आदि वस्तु (विश्वा) सब (रूपाणि) इच्छा रूप आदि गुणों से युक्त हैं (ता) उन के ऊपर आप से (अन्य) दूसरा कोई (न) नहीं (परिबभूव) जान सकता है (ते) आप के सेवन से (यत्कामाः) जिस जिस पदार्थ की कामना वाले होते हुए (वयम्) हम लोग (जुहुमः) आपका सेवन करते हैं वह वह पदार्थ आपकी कृपा से (नः) हम लोगों के लिये (अस्तु) प्राप्त होवे। जैसे आप (अमुष्य) उस परोक्ष जगत् के (पिता) रक्षा करने हारे हैं (असौ) सो आप इस प्रत्यक्ष जगत् के रक्षक हैं। वैसे हम लोग (स्वाहा) सत्य वाणी से (रयीणाम्) विद्या और चक्रवर्त्तिराज्य आदि से उत्पन्न हुई लक्ष्मी के (पतयः) रक्षा करने वाले (स्याम) हों। हे (रुद्र) दुष्टों को रुलाने हारे परमेश्वर! (ते) आप का जो (क्रिवि) दुःखों से छुड़ाने का हेतु (परम्) उत्तम (नाम) नाम है (तस्मिन्) उस में आप (हुतम्) स्वीकार किये (असि) हैं (अमेष्टम्) घर में इष्ट (असि) हैं उन आप को हम लोग (स्वाहा) सत्य वाणी से ग्रहण करते हैं ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जो सब जगत् में व्याप्त, सब के लिये माता पिता के समान वर्त्तमान, दुष्टों को

दण्ड देने हारा उपासना करने को इष्ट है उसी जगदीश्वर की उपासना करो। इस प्रकार के अनुष्ठान से तुम्हारी सब कामना अवश्य सिद्ध हो जावेंगी ॥२०॥

इन्द्रस्येत्यस्य देववात ऋषिः। क्षत्रपतिर्देवता। भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर विद्वान् पुरुषों को क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इन्द्रस्य वज्रोऽसि मित्रावरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रोः प्रशिषा युनज्मि। अव्यथायै त्वा स्वधायै त्वाऽरिष्टो अर्जुनो मरुतां प्रसवेन जयापाम मनसा समिन्द्रियेण ॥२१॥

पदार्थः—हे राजन्! जो आप (अरिष्टः) किसी के मारने में न आने वाले (अर्जुनः) प्रशंसा के योग्य रूप से युक्त (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य्य वाले का (वज्रः) शत्रुओं के लिये वज्र के समान (असि) हैं, जिस (त्वा) आप को (अव्यथायै) पीड़ा न होने के लिये (प्रशास्त्रोः) सब को शिक्षा देने वाले (मित्रावरुणयोः) सभा और सेना के स्वामी की (प्रशिषा) शिक्षा से मैं (युनज्मि) समाहित करता हूँ, (मरुताम्) ऋत्विज् लोगों के (प्रसवेन) कहने से (स्वधायै) अपनी चीज को धारण करना रूप राजनीति के लिये जिस (त्वा) आप का योगाभ्यास से चिन्तन करता हूँ (मनसा) विचारशील मन (इन्द्रियेण) जीवने सेवे हुए इन्द्रिय से जिस (त्वा) आप को हम लोग (समापाम) सम्यक् प्राप्त होते हैं सो आप (जय) दुष्टों को जीत के निश्चिन्त उत्कृष्ट हूजिये ॥२१॥

भावार्थः—विद्वानों को चाहिये कि राजा और प्रजापुरुषों को धर्म और अर्थ की सिद्धि के लिये सदा शिक्षा देवें जिससे ये किसी को पीड़ा देने रूप राजनीति से विरुद्ध कर्म न करें। सब प्रकार बलवान् हो के शत्रुओं को जीतें जिस से कभी धन सम्पत्ति की हानि न होवे ॥२१॥

मा त इत्यस्य देववात ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

प्रजापुरुषों को राजा के साथ कैसे वर्त्तना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

मा तऽइन्द्र ते वयं तुराषाडयुक्तासोऽअब्रह्मता विदसाम। तिष्ठा रथमधि यं वज्रहस्ता रश्मीन्देव यमसे स्वश्वान् ॥२२॥

पदार्थः—हे (देव) प्रकाशमान (इन्द्र) सभापति राजन् ! (वज्रहस्त) जिस के हाथों में वज्र के समान शस्त्र हों उस आप के साथ (वयम्) हम राजप्रजापुरुष (ते) आप के सम्बन्ध में (अयुक्तासः) अधर्मकारी (मा) न होवें (ते) आप की (अब्रह्मता) वेद तथा ईश्वर में रहित निष्ठा (मा) न हो और उसे (विदसाम) नष्ट करें। जो (तुराषाट्) शीघ्रकारी शत्रुओं को सहने हारे आप जिन (रश्मीन्) घोड़े के लगाम की रस्सी और (स्वश्वान्) सुन्दर घोड़ों को (यमसे) नियम से रखते हैं और जिस (रथम्) रथ के ऊपर (अधितिष्ठ) बैठें उन घोड़ों और उस रथ के हम लोग भी अधिष्ठाता होवें ॥२२॥

भावार्थः—राजा और प्रजा के पुरुषों को योग्य है कि राजा के साथ अयोग्य व्यवहार कभी न करें तथा राजा भी इन प्रजाजनों के साथ अन्याय न करे। वेद और ईश्वर की आज्ञा का सेवन करते हुए सब लोग एक सवारी एक बिछौने पर बैठें और एकसा व्यवहार करने वाले होवें और कभी आलस्य प्रमाद से ईश्वर और वेदों की निन्दा वा नास्तिकता में न फंसे ॥२२॥

अग्नय इत्यस्य देववात ऋषिः। अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अब माता और पुत्र आपस में कैसे सम्वाद करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्नये गृहपतये स्वाहा सोमाय वनस्पतये स्वाहा मरुतामोजसे स्वाहेन्द्रस्येन्द्रियाय स्वाहा। पृथिवि मातर्मा मा हिंसीर्मोऽअहं त्वाम् ॥२३॥

पदार्थः—हे प्रजा के मनुष्यो ! जैसे राजा और राजपुरुष हम लोग (गृहपतये) गृहाश्रम के स्वामी (अग्नये) धर्म और विज्ञान से युक्त पुरुष के लिये (स्वाहा) सत्यनीति (सोमाय) सोमलता आदि ओषधि और (वनस्पतये) वनों की रक्षा करने हारे पीपल आदि के लिये (स्वाहा) वैद्यक शास्त्र के बोध से उत्पन्न हुई क्रिया (मरुताम्) प्राणों वा ऋत्विज् लोगों के (ओजसे) बल के लिये (स्वाहा) योगाभ्यास और शान्ति की देने हारी वाणी और (इन्द्रस्य) जीव के (इन्द्रियाय) मन इन्द्रिय के लिये (स्वाहा) अच्छी शिक्षा से युक्त उपदेश का आचरण करते हैं वैसे ही तुम लोग भी करो। हे (पृथिवि) भूमि के समान बहुत से शुभ लक्षणों से युक्त (मातः) मान्य करने हारी जननी ! तू (मा) मुझ को (मा) मत (हिंसीः) बुरी शिक्षा से दुःख दे और (त्वाम्) तुझ को (अहम्) मैं भी (मो) न दुःख देऊं ॥२३॥

भावार्थः—राजा आदि राजपुरुषों को प्रजा के हित प्रजापुरुषों को
राजपुरुषों के सुख और सब की उन्नति के लिये परस्पर वर्त्तना चाहिये ।
माता को योग्य है कि बुरी शिक्षा और मूर्खता रूप अविद्या देकर सन्तानों
की बुद्धि नष्ट न करे और सन्तानों को उचित है कि अपनी माता के साथ
कभी द्वेष न करे ॥२३॥

हंस इत्यस्य वामदेव ऋषिः । सूर्य्यो देवता । भुरिगार्षी जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

मनुष्य लोग ईश्वर की उपासनापूर्वक सब के लिये न्याय और अच्छी शिक्षा
करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

हुंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजाऽऋतजाऽअद्रिजाऽऋतं बृहत् ॥२४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोगों को चाहिये कि जो परमेश्वर (हंसः) सब
पदार्थों को स्थूल करता (शुचिषत्) पवित्र पदार्थों में स्थित (वसुः) निवास करता
और कराता (अन्तरिक्षसत्) अवकाश में रहता (होता) सब पदार्थ देता ग्रहण करता
और प्रलय करता (वेदिषत्) पृथिवी में व्यापक (अतिथिः) अभ्यागत के समान
सत्कार करने योग्य (दुरोणसत्) घर में स्थित (नृषत्) मनुष्यों के भीतर रहता
(वरसत्) उत्तम पदार्थों में वसता (ऋतसत्) सत्य प्रकृति आदि नाम वाले कारण में
स्थित (व्योमसत्) पोल में रहता (अब्जाः) जलों को प्रसिद्ध करता (गोजाः) पृथिवी
आदि तत्वों को उत्पन्न करता (ऋतजाः) सत्यविद्याओं के पुस्तक वेदों को प्रसिद्ध
करता (अद्रिजाः) मेघ पर्वत और वृक्ष आदि को रचता (ऋतम्) सत्यस्वरूप और
(बृहत्) सब से बड़ा अनन्त है उसी की उपासना करो ॥२४॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि सर्वत्र व्यापक और पदार्थों की
शुद्धि करने हारे ब्रह्म परमात्मा ही की उपासना करें क्योंकि उस की उपा-
सना के विना किसी को धर्म्म अर्थ काम मोक्ष से होने वाला पूर्ण सुख कभी
नहीं हो सकता ॥२४॥

इयदित्यस्य वामदेव ऋषिः । सूर्यो देवता । आर्षी जगती छन्दः । निषादः
स्वरः ॥

मनुष्य ईश्वर की उपासना क्यों करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इयदस्यायुरस्यायुर्मयि धेहि युङ्ङसि वर्चोऽसि वर्चो मयि

धेह्यूर्गस्यूर्ज्जं मयि धेहि । इन्द्रस्य वां वीर्यकृतो बाहूऽअभ्युपावहरामि ॥२५॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! आप (इयत्) इतना (आयुः) जीवन (मयि) मुझमें (धेहि) धरिये जिस से आप (युङ्) सब को समाधि कराने वाले (असि) हैं (वर्चः) स्वयं प्रकाशस्वरूप (असि) हैं इस कारण (उर्क्) अत्यन्त बलवान् (असि) हैं इसलिये (ऊर्जम्) बल पराक्रम को (मयि) मेरे में (धेहि) धारण कीजिये । हे राज और प्रजा के पुरुषो ! (वीर्य्यकृतः) बल पराक्रम को बढ़ाने हारे (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य्य और परमात्मा के आश्रय से (वाम्) तुम राजप्रजापुरुषों के (बाहू) बल और पराक्रम को (अभ्युपावहरामि) सब प्रकार तुम्हारे समीप में स्थापन करता हूं ॥२५॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपने हृदय में ईश्वर की उपासना करते हैं वे सुन्दर जीवन आदि के सुखों को भोगते हैं और कोई भी पुरुष ईश्वर के आश्रय के विना पूर्ण बल और पराक्रम को प्राप्त नहीं हो सकता ॥२५॥

स्योनासीत्यस्य वामदेव ऋषिः । आसन्दी राजपत्नी देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

स्त्रियों का न्याय विद्या उन को शिक्षा स्त्री लोग ही करें और पुरुषों के लिये पुरुष इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ॥

स्योनासि सुषदासि क्षत्रस्य योनिरसि । स्योनामासीद सुषदामासीद क्षत्रस्य योनिमासीद ॥२६॥

पदार्थः—हे राणी ! जिसलिये आप (स्योना) सुखरूप (असि) हैं (सुषदा) सुन्दर व्यवहार करने वाली (असि) हैं (क्षत्रस्य) राज्य के न्याय के (योनिः) करने वाली (असि) हैं । इसलिये आप (स्योनाम्) सुखकारक अच्छी शिक्षा में (आसीद) तत्पर हूजिये (सुषदाम्) अच्छे सुख देनेहारी विद्या को (आसीद) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिये तथा कराइये और (क्षत्रस्य) क्षत्रिय कुल की (योनि) राजनीति को (आसीद) सब स्त्रियों को जनाइये ॥२६॥

भावार्थः – राजाओं की स्त्रियों को चाहिये कि सब स्त्रियों के लिये न्याय और अच्छी शिक्षा देवें और स्त्रियों का न्यायादि पुरुष न करें क्योंकि पुरुषों के सामने स्त्री लज्जित और भययुक्त होकर यथावत् बोल वा पढ़ ही नहीं सकती ॥२६॥

निषसादेत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । वरुणो देवता । पिपीलिका मध्या विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

राजा के समान राणी भी राजधर्म का आचरण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः ॥२७॥

पदार्थः—हे राणी ! जैसे आपका (धृतव्रतः) सत्य का आचरण और ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का धारण करने हारा (सुक्रतुः) सुन्दर बुद्धि वा क्रिया से युक्त (वरुणः) उत्तमपति (साम्राज्याय) चक्रवर्त्तिराज्य होने और उसके काम करने के लिये (पस्त्यासु) न्यायघरों में (आ) निरन्तर (नि) नित्य ही (ससाद) बैठ के न्याय करे वैसे तू भी न्यायकारिणी हो ॥२७॥

भावार्थः—जैसे चक्रवर्त्ती राजा चक्रवर्त्ती राज्य की रक्षा के लिये न्याय की गद्दी पर बैठ के पुरुषों का ठीक-ठीक न्याय करे वैसे ही नित्यप्रति राणी स्त्रियों का न्याय करे। इससे क्या आया कि जैसा नीति विद्या और धर्म से युक्त पति हो वैसी ही स्त्री को भी होना चाहिये ॥२७॥

अभिभूरित्यस्य शुनःशेप ऋषिः। यजमानो देवता। धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह राजा कैसा हो के किसके लिये क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ॥

अभिभूरस्येतास्ते पञ्च दिशः कल्पन्तां ब्रह्मँस्त्वं ब्रह्मासि सवितासि सत्यप्रसवो वरुणोऽसि सत्यौजाऽइन्द्रोसि विशौजा रुद्रोसि सुशेवः। बहुकार श्रेयस्कर भूयस्करेन्द्रस्य वज्रोऽसि तेन मे रध्य ॥२८॥

पदार्थः—हे (बहुकार) बहुत सुखों (श्रेयस्कर) कल्याण और (भूयस्कर) वार-वार अनुष्ठान करने वाले (ब्रह्मन्) आत्मविद्या को प्राप्त हुए जैसे जिस (ते) आप के (एताः) ये (पंच) पूर्व आदि चार और ऊपर नीचे एक (दिशः) पांच दिशा सामर्थ्ययुक्त हों वैसे मेरे लिये आपकी पत्नी की कीर्ति से भी (कल्पन्ताम्) सुखयुक्त होवें। जैसे आप (अभिभूः) दुष्टों का तिरस्कार करने वाले (असि) हैं (सविता) ऐश्वर्य्य के उत्पन्न करने हारे (असि) हैं (सत्यप्रसवः) सत्य की प्रेरणा से सुन्दर सुख-युक्त (रुद्रः) शत्रु और दुष्टों को रुलाने वाले (असि) हैं (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य्य के (वज्रः)

प्राप्त कराने हारे (असि) हैं वैसे मैं भी होऊं। जैसे मैं आप के वास्ते ऋद्धि सिद्धि करूं वैसे (तेन) उस से (मे) मेरे लिये (रध्य) कार्य्य करने का सामर्थ्य कीजिये ॥२८॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि जैसा पुरुष सब दिशाओं में कीर्त्तियुक्त वेदों को जानने धनुर्वेद और अर्थवेद की विद्या में प्रवीण सत्य करने और सब को सुख देने वाला धर्मात्मा पुरुष होवे उसकी स्त्री भी वैसे ही होवे। उन को राजधर्म में स्थापन कर के वहुत सुख और वहुत सी शोभा को प्राप्त हों ॥२८॥

अग्निरित्यस्य शुनःशेप ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराडार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

फिर राजा और प्रजा के जन किस के समान क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अ॒ग्निः पृ॒थुर्धर्म॑ण॒स्पति॑र्जुषा॒णो अ॒ग्निः पृ॒थुर्धर्म॑ण॒स्पति॒राज्य॑स्य वेतु॒ स्वाहा॑। स्वाहा॑कृताः॒ सूर्य॑स्य र॒श्मिभि॑र्यतध्व॒ꣳ स॒जा॒ता॒नां॑ मध्य॒मे॒ष्ठ्या॑य ॥२९॥

पदार्थः—हे राजन् वा राजपत्नि ! जैसे (पृथुः) महापुरुषार्थयुक्त धर्म का (पतिः) रक्षक (जुषाणः) सेवक (अग्निः) बिजुली के समान व्यापक (सजातानाम्) उत्पन्न हुए पदार्थों के रक्षक के साथ वर्त्तमान पदार्थों के (मध्यमेष्ठ्याय) मध्य में स्थित हो के (स्वाहा) सत्य क्रिया से (आज्यस्य) घृत आदि होम के पदार्थों को प्राप्त कराता हुआ (सूर्यस्य) सूर्य्य की (रश्मिभिः) किरणों के साथ होम किये पदार्थों को फैला के सुख देता है वैसे (धर्मणः) न्याय के (पतिः) रक्षक (पृथुः) बड़े (जुषाणः) सेवा करने वाले (अग्निः) तेजस्वी आप राज्य को (वेतु) प्राप्त हूजिये। वैसे ही हे (स्वाहाकृताः) सत्य काम करने वाले सभासद् पुरुषो वा स्त्री लोगो ! तुम (यतध्वम्) प्रयत्न किया करो ॥२९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राज और प्रजा के पुरुषो तथा राणी वा राणी के सभासदो ! तुम लोग सूर्य्य प्रसिद्ध और विद्युत् अग्नि के समान वर्त्त, पक्षपात छोड़, एक जन्म वालों में मध्यस्थ हो के न्याय करो। जैसे यह अग्नि सूर्य्य के प्रकाश में और वायु में सुगन्धियुक्त द्रव्यों को प्राप्त करा वायु जल और ओषधियों की शुद्धि द्वारा सब प्राणियों को सुख देता है वैसे ही न्याययुक्त कर्मों के साथ आचरण करने वाले हो के सब प्रजाओं को सुखयुक्त करो ॥२९॥

सवित्रेत्यस्य शुनःशेप ऋषिः। सवित्रादिमन्त्रोक्ता देवताः। स्वराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

राजा वा राणी को कैसे गुणों से युक्त होना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

सवित्रा प्रसवित्रा सरस्वत्या वाचा त्वष्ट्रा रूपैः पूष्णा पशुभिरिन्द्रेणास्मे बृहस्पतिना ब्रह्मणा वरुणेनौजसाऽग्निना तेजसा सोमेन राज्ञा विष्णुना दशम्या देवतया प्रसूतः प्रसर्पामि॥३०॥

पदार्थः—हे प्रजा और राजपुरुषो! जैसे मैं (प्रसवित्रा) प्रेरणा करने वाले वायु (सवित्रा) संपूर्ण चेष्टा उत्पन्न कराने हारे के समान शुभ कर्म (सरस्वत्या) प्रशंसित विज्ञान और क्रिया से युक्त (वाचा) वेदवाणी के समान सत्यभाषण (त्वष्ट्रा) छेदक और प्रतापयुक्त सूर्य के समान न्याय (रूपैः) सुखरूप (पूष्णा) पृथिवी (पशुभिः) गौ आदि पशुओं के समान प्रजा के पालन (इन्द्रेण) बिजुली के समान ऐश्वर्य (अस्मे) हम (बृहस्पतिना) बड़ों के रक्षक चार वेदों के जानने हारे विद्वान् के समान विद्या और सुन्दर शिक्षा के प्रचार (ओजसा) बल (वरुणेन) श्रेष्ठ जल के समुदाय के समान शांति (तेजसा) तीक्ष्ण ज्योति के समान शत्रुओं के जलाने (अग्निना) अग्नि (राज्ञा) प्रकाशमान आनन्द के होने (सोमेन) चन्द्रमा के समान आह्लादक (दशम्या) दशसंख्या को पूर्ण करने वाली (देवतया) प्रकाशमान और (विष्णुना) व्यापक ईश्वर के समान शुभ गुण कर्म और स्वभाव से (प्रसूतः) प्रेरणा किया हुआ मैं (प्रसर्पामि) अच्छे प्रकार चलता हूं, वैसे तुम लोग भी चलो॥३०॥

भावार्थः—जो मनुष्य सूर्य्यादि गुणों से युक्त पिता के समान रक्षा करने हारा हो वह राजा होने के योग्य है और जो पुत्र के समान वर्त्तमान करे वह प्रजा होने योग्य है॥३०॥

अश्विभ्यामित्यस्य शुनःशेप ऋषिः। क्षत्रपतिर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर मनुष्य कैसे हो के क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व। वायुः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्क्सोमो अतिस्रुतः। इन्द्रस्य युज्यः सखा॥३१॥

पदार्थः—हे राजा तथा प्रजापुरुषो! तुम (अश्विभ्याम्) सूर्य चन्द्रमा के

समान अध्यापक और उपदेशक द्वारा (पच्यस्व) शुद्ध बुद्धि वाले हो (सरस्वत्यै) अच्छी शिक्षायुक्त वाणी के लिये (पच्यस्व) उद्यत हो (सुत्राम्णे) अच्छी रक्षा करने हारे (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य के लिये (पच्यस्व) दृढ़ पुरुषार्थ करो (पवित्रेण) शुद्ध धर्म के आचरण से (वायुः) वायु के समान (पूतः) निर्दोष (प्रत्यङ्) पूजा को प्राप्त हो, (सोमः) अच्छे गुणों से युक्त ऐश्वर्य्यवाले (अतिस्रुतः) अत्यन्त ज्ञानवान् (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (युज्यः) योगाभ्याससहित (सखा) मित्र हो ॥३१॥

भावार्थः— मनुष्यों को चाहिये कि सत्यवादी धर्मात्मा आप्त अध्यापक और उपदेशक से अच्छी शिक्षा को प्राप्त हो शुद्ध धर्म के आचरण से अपने आत्मा को पवित्र योग के अङ्गों से ईश्वर की उपासना और संपत्ति होने के लिये प्रयत्न कर के आपस में मित्रभाव से वर्त्तें ॥३१॥

कुविदङ्गेत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । क्षत्रपतिर्देवता । निचृद्ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

राजा आदि सभा के पुरुष किस के तुल्य क्या-क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूयं । इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमऽउक्तिं यजन्ति । उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥३२॥

पदार्थः—हे (अङ्ग) ज्ञानवान् राजन् ! जो (कुवित्) बहुत ऐश्वर्य्य वाले आप (अश्विभ्याम्) विद्या को प्राप्त हुए शिक्षक लोगों के लिये (उपयामगृहीतः) ब्रह्मचर्य के नियमों से स्वीकार किये (असि) हैं उन (सरस्वत्यै) विद्यायुक्त वाणी के लिये (त्वा) आप को और (सुत्राम्णे) अच्छी रक्षा के लिये (त्वा) आप को हम लोग स्वीकार करते हैं । उन के लिये सत्कार के साथ भोजन आदि दीजिये । जैसे (यवमन्तः) बहुत जौ आदि धान्य से युक्त खेती करने हारे लोग (इहेह) इस-इस व्यवहार में (यवम्) यवादि अन्न को (अनुपूर्वम्) क्रम से (दान्ति) लुनते [काटते] हैं । भुस से (चित्) भी (यवम्) जवों को (वियूय) पृथक् कर के रक्षा करते हैं वैसे सत्य असत्य को ठीक-ठीक विचार के इन की रक्षा कीजिये ॥३२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे खेती करने वाले लोग परिश्रम के साथ पृथिवी से अनेक फलों को उत्पन्न और रक्षा कर के भोगते और असार को फेंकते हैं और जैसे ठीक-ठीक राज्य का भाग राजा को देते हैं वैसे ही राजा आदि पुरुषों को चाहिये कि अत्यन्त परिश्रम से इनकी

रक्षा न्याय के आचरण से ऐश्वर्य्य को उत्पन्न कर और सुपात्रों के लिये देते हुए आनन्द को भोगें ॥३२॥

युवमित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

सभा और सेनापति प्रयत्न से वैश्यों की रक्षा करें यह विषय
अगले मन्त्र में कहा है ॥

युवꣳसुराममश्विना नमुचावासुरे सचा । विपिपाना शुभस्पतीऽइन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥३३॥

पदार्थः—हे (सचा) मिले हुए (विपिपाना) विविध राज्य के रक्षक (शुभः) कल्याणकारक व्यवहार के (पती) पालन करने हारे (अश्विना) सूर्य्य चन्द्रमा के समान सभापति और सेनापति (युवम्) तुम दोनों (नमुची) जो अपने दुष्ट कर्म को न छोड़े (आसुरे) मेघ के व्यवहार में (कर्मसु) खेती आदि कर्मों में वर्त्तमान (सुरामम्) अच्छी तरह जिस में रमण करें ऐसे (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्य वाले धनी की निरन्तर (आवतम्) रक्षा करो ॥३३॥

भावार्थः—दुष्टों से श्रेष्ठों की रक्षा के लिये ही राजा होता है। राज्य की रक्षा के विना किसी चेष्टावान् नर की कार्य में निर्विघ्न प्रवृत्ति कभी नहीं हो सकती और न प्रजाजनों के अनुकूल हुए विना राजपुरुषों की स्थिरता होती है। इसलिये वन के सिंहों के समान परस्पर सहायी हो के सब राज और प्रजा के मनुष्य सदा आनन्द में रहें ॥३३॥

पुत्रमिवेत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । अश्विनौ देवते । भुरिक् पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

राजा और प्रजा को पिता पुत्र के समान वर्त्तना चाहिये यह विषय
अगले मन्त्र में कहा है ॥

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दꣳसनाभिः । यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥३४॥

पदार्थः – हे (मघवन्) विशेष धन के होने से सत्कार के योग्य (इन्द्राय) सब सभाओं के मालिक राजन् ! (यत्) जो आप (शचीभिः) अपनी बुद्धियों के बल से (सुरामम्) अच्छा आराम देने हारे रस को (व्यपिबः) विविध प्रकार से पीवें उस आप का (सरस्वती) विद्या से अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुई वाणी के समान स्त्री (अभिष्णक्) सेवन करे (अश्विना) राजा से आज्ञा को प्राप्त हुए (उभा) तुम दोनों

सेनापति और न्यायाधीश (काव्यैः) परम विद्वान् धर्मात्मा लोगों ने किये (दंसनाभिः) कर्मों से (पितरौ) जैसे माता पिता (पुत्रम्) अपने सन्तान की रक्षा करते हैं वैसे सब राज्य की (आवथुः) रक्षा करो ॥३४॥

भावार्थः—सब अच्छे-अच्छे गुणों से युक्त राजधर्म का सेवने हारा धर्मात्मा अध्यापक और पूर्ण युवावस्था को प्राप्त हुआ पुरुष अपने हृदय को प्यारी अपने योग्य अच्छे लक्षणों से युक्त रूप और लावण्य आदि गुणों से शोभायमान विदुषी स्त्री के साथ विवाह करे। जो कि निरन्तर पति के अनुकूल हो और पति भी उस के संमति का हो। राजा अपने मन्त्री नौकर और स्त्री के सहित प्रजाओं में सत्पुरुषों की रीति पर पिता के समान और प्रजापुरुष पुत्र के समान राजा के साथ वर्त्तें। इस प्रकार आपस में प्रीति के साथ मिल के आनन्दित होवें ॥३४॥

इस अध्याय में राजा प्रजा के धर्म का वर्णन होने से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्याणां श्रीमत्परमविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिते संस्कृतभाषाऽऽर्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये दशमोऽध्यायः सम्पूर्णः ॥१०॥

* ओ३म् *

अथैकादशाऽध्यायारम्भः

—ॐ:०ॐ:०ॐ:०ॐ—

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥१॥

युञ्जान इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब ग्यारहवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है । इसके प्रथम मन्त्र में योगाभ्यास और भूगर्भविद्या का उपदेश किया है ॥

यु॒ञ्जा॒नः प्र॑थ॒मं मन॑स्त॒त्त्वाय॑ सवि॒ता धिय॑ः । अ॒ग्नेर्ज्योति॑र्नि॒चाय्य॑ पृथि॒व्याऽअध्याभ॑रत् ॥१॥

पदार्थः—जो (सविता) ऐश्वर्य को चाहने वाला मनुष्य (तत्त्वाय) उन परमेश्वर आदि पदार्थों के ज्ञान होने के लिये (प्रथमम्) पहिले (मनोधियश्च) विचार स्वरूप अन्तःकरण की वृत्तियों को (युञ्जानः) योगाभ्यास और भूगर्भविद्या में युक्त करता हुआ (अग्नेः) पृथिवी आदि में रहने वाली बिजुली के (ज्योतिः) प्रकाश को (निचाय्य) निश्चय करके (पृथिव्याः) भूमि के (अधि) ऊपर (आभरत्) अच्छे प्रकार धारण करे वह योगी और भूगर्भ-विद्या का जानने वाला होवे ॥१॥

भावार्थः—जो पुरुष योगाभ्यास और भूगर्भविद्या किया चाहे वह यम आदि योग के अङ्ग और क्रिया-कौशलों से अपने हृदय के शुद्ध तत्त्वों को जान बुद्धि को प्राप्त और इन को गुण कर्म तथा स्वभाव से जान के उपयोग लेवे । फिर जो प्रकाशमान सूर्य्यादि पदार्थ हैं उन का भी प्रकाशक ईश्वर है उस को जान और अपने आत्मा में निश्चय करके अपने और दूसरों के सब प्रयोजनों को सिद्ध करें ॥१॥

युक्तेनेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सविता देवता। शंकुमती गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर भी उक्त विषय ही अगले मन्त्र में कहा है॥

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे। स्वर्ग्याय शक्त्या ॥२॥

पदार्थः—हे योग और तत्त्वविद्या को जानने की इच्छा करनेहारे मनुष्यो! जैसे (वयम्) हम योगी लोग (युक्तेन) योगाभ्यास किये (मनसा) विज्ञान और (शक्त्या) सामर्थ्य से (देवस्य) सब को चिताने तथा (सवितुः) समग्र संसार को उत्पन्न करने हारे ईश्वर के (सवे) जगत् रूप इस ऐश्वर्य्य में (स्वर्ग्याय) सुख प्राप्ति के लिये प्रकाश को अधिकाई से धारण करें वैसे तुम लोग भी प्रकाश को धारण करो॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य परमेश्वर की इस सृष्टि में समाहित हुए योगाभ्यास और तत्त्वविद्या को यथाशक्ति सेवन करें, उनमें सुन्दर आत्मज्ञान के प्रकाश से युक्त हुए योग और पदार्थविद्या का अभ्यास करें तो अवश्य सिद्धियों को प्राप्त हो जावें॥२॥

युक्त्वायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सविता देवता। निचृदनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर भी उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

युक्त्वाय सविता देवान्त्स्वर्य्यतो धिया दिवम्। बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान् ॥३॥

पदार्थः—जिन को (सविता) योग के पदार्थों के ज्ञान के करने हारा जन परमात्मा में मन को (युक्त्वाय) युक्त करके (धिया) बुद्धि से (दिवम्) विद्या के प्रकाश को (स्वः) सुख को (यतः) प्राप्त कराने वाले (बृहत्) बड़े (ज्योतिः) विज्ञान को (करिष्यतः) जो करेंगे उन (देवान्) दिव्य गुणों को (प्रसुवाति) उत्पन्न करे (तान्) उनको अन्य भी उत्पादक जन उत्पन्न करें॥३॥

भावार्थः—जो पुरुष योगाभ्यास करते हैं वे अविद्या आदि क्लेशों को हटाने वाले शुद्ध गुणों को प्रकट कर सकते हैं। जो उपदेशक पुरुष से योग और तत्त्वज्ञान को प्राप्त होके ऐसा अभ्यास करे वह भी इन गुणों को प्राप्त होवे॥३॥

युञ्जत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सविता देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

योगाभ्यास करके मनुष्य क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

युञ्जते मनऽउत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेकऽइन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥४॥

पदार्थः—जो (होत्राः) दान देने लेने के स्वभाव वाले (विप्राः) बुद्धिमान् पुरुष (यस्य) जिस (बृहतः) बड़े (विपश्चितः) सम्पूर्ण विद्याओं से युक्त आप्त पुरुष के समान वर्त्तमान (विप्रस्य) सब शास्त्रों के जाननेहारे बुद्धिमान् पुरुष से विद्याओं को प्राप्त हुए विद्वानों से विज्ञानयुक्त जन (सवितुः) सब जगत् को उत्पन्न और (देवस्य) सब के प्रकाशक जगदीश्वर की (मही) बड़ी (परिष्टुतिः) सब प्रकार की स्तुति है उस तत्त्वज्ञान के विषय में जैसे (मन) अपने चित्त को (युंजते) समाधान करते और (धियः) अपनी बुद्धियों को युक्त करते हैं वैसे ही (वयुनावित्) प्रकृष्टज्ञान वाला (एकः) अन्य के सहाय की अपेक्षा से रहित (इत्) ही मैं (विदधे) विधान करता हूं ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो नियम से आहार विहार करने हारे जितेन्द्रिय पुरुष एकांत देश में परमात्मा के साथ अपने आत्मा को युक्त करते हैं वे तत्त्वज्ञान को प्राप्त होकर नित्य ही सुख भोगते हैं ॥४॥

युजेवामित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य लोग ईश्वर की प्राप्ति कैसे करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोकऽएतु पथ्येव सूरेः ।
शृण्वन्तु विश्वेऽअमृतस्य पुत्राऽआ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥५॥

पदार्थः—हे योगशास्त्र के ज्ञान की इच्छा करने वाले मनुष्यो ! आप लोग जैसे (श्लोकः) सत्य वाणी से संयुक्त मैं (नमोभिः) सत्कारों से जिस (पूर्व्यम्) पूर्व के योगियों ने प्रत्यक्ष किये (ब्रह्म) सब से बड़े व्यापक ईश्वर को (युजे) अपने आत्मा से युक्त करता हूं वह ईश्वर (वाम्) तुम योग के अनुष्ठान और उपदेश करने हारे दोनों को (सूरेः) विद्वान् को जैसे (पथ्येव) उत्तम गति के अर्थ मार्ग प्राप्त होता है वैसे (व्येतु) विविध प्रकार से प्राप्त होवे। जैसे (विश्वे) सब (पुत्राः) अच्छे सन्तानों के तुल्य आज्ञाकारी मोक्ष को प्राप्त हुए विद्वान् लोग (अमृतस्य) अविनाशी ईश्वर के योग से (दिव्यानि) सुख के प्रकाश में होने वाले (धामानि) स्थानों को (आतस्थुः) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं वैसे मैं भी उनको प्राप्त होऊं ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। योगाभ्यास के ज्ञान को चाहने वाले मनुष्यों को चाहिये कि योग में कुशल विद्वानों का सङ्ग करें। उन के सङ्ग से योग की विधि को जान के ब्रह्मज्ञान का अभ्यास करें। जैसे विद्वान् का प्रकाशित किया हुआ मार्ग सब को सुख से प्राप्त होता है वैसे ही योगाभ्यासियों के सङ्ग से योगविधि सहज में प्राप्त होती है। कोई भी जीवात्मा इस सङ्ग और ब्रह्मज्ञान के विना पवित्र होकर सब सुखों को प्राप्त नहीं हो सकता इसलिये उस योगविधि के साथ ही सब मनुष्य परब्रह्म की उपासना करें ॥५॥

यस्य प्रयाणमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सविता देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य किस की उपासना करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

यस्य॑ प्रयाणमन्वन्यऽइद्ययुर्देवा देवस्य॑ महिमानमोज॑सा। यः पार्थिवानि विममे सऽएतशो रजा॑ꣳसि देवः स॑विता म॑हित्वना ॥६॥

पदार्थः—हे योगी पुरुषो! तुम को चाहिये कि (यस्य) जिस (देवस्य) सब सुख देने हारे ईश्वर के (महिमानम्) स्तुति विषय को (प्रयाणम्) कि जिस से सब सुख प्राप्त होवे उस प्राण के (अनु) पीछे (अन्ये) जीवादि और (देवाः) विद्वान् लोग (ययुः) प्राप्त होवें, (यः) जो (एतशः) सब जगत् में अपनी व्याप्ति से प्राप्त हुआ (सविता) सब जगत् का रचने हारा (देवः) शुद्धस्वरूप भगवान् (महित्वना) अपनी महिमा और (ओजसा) पराक्रम से (पार्थिवानि) पृथिवी पर प्रसिद्ध (रजांसि) सब लोकों को (विममे) विमान आदि यानों के समान रचता है वह (इत्) ही निरन्तर उपासनीय मानो ॥६॥

भावार्थः—जो विद्वान् लोग सब जगत् के बीच २ पोल में अपने अनन्त बल से धारण करने, रचने और सुख देने हारे शुद्ध सर्वशक्तिमान् सब के हृदयों में व्यापक ईश्वर की उपासना करते हैं वे ही सुख पाते हैं अन्य नहीं ॥६॥

देव सवितरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सविता देवता। आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब किसलिये परमेश्वर की उपासना और प्रार्थना करनी चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

देव॑ सवितः॒ प्रसु॑व यज्ञं प्रसु॑व यज्ञप॑तिं॒ भगा॑य। दि॒व्यो ग॑न्धर्वः॒ के॑त॒पूः केतं॑ नः पुनातु वा॒चस्पति॒र्वाचं॑ नः स्वदतु ॥७॥

पदार्थः—हे (देव) सत्य योगविद्या से उपासना के योग्य शुद्ध ज्ञान देने (सवितः) और सब सिद्धियों को उत्पन्न करने हारे परमेश्वर! आप (नः) हमारे (भगाय) समग्र ऐश्वर्य्य के लिये (यज्ञम्) सुखों को प्राप्त कराने हारे व्यवहार को (प्रसुव) उत्पन्न कीजिये तथा (यज्ञपतिम्) इस सुखदायक व्यवहार के रक्षक जन को (प्रसुव) उत्पन्न कीजिये। (गन्धर्वः) पृथिवी को धरने वाले (दिव्यः) शुद्ध गुण कर्म और स्वभावों में उत्तम और (केतपूः) विज्ञान से पवित्र करने हारे आप (नः) हमारे (केतम्) विज्ञान को (पुनातु) पवित्र कीजिये और (वाचस्पतिः) सत्य विद्याओं से युक्त वेदवाणी के प्रचार से रक्षा करने वाले आप (नः) हमारी (वाचम्) वाणी को (स्वदतु) स्वादिष्ठ अर्थात् कोमल मधुर कीजिये ॥७॥

भावार्थः—जो पुरुष सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त शुद्ध निर्मल ब्रह्म की उपासना और योगविद्या की प्राप्ति के लिये प्रार्थना करते हैं वे सब ऐश्वर्य्य को प्राप्त अपने आत्मा को शुद्ध और योगविद्या को सिद्ध कर सकते हैं जो परमेश्वर की वाणी के समान अपनी वाणी को शुद्ध करते हैं वे सत्यवादी हो के सब क्रियाओं के फलों को प्राप्त होते हैं ॥७॥

इमं न इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सविता देवता। शक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इ॒मं नो॑ देव सवितर्य॒ज्ञं प्रण॑य देवा॒व्यꣳ॑ सखि॒विद॑ꣳ सत्रा॒जितं॑ धन॒जित॑ꣳ स्व॒र्जित॑म्। ऋ॒चा स्तोम॒ꣳ सम॑र्धय गाय॒त्रेण॑ रथन्त॒रं बृ॒हद्गा॑यत्र॒वर्त्त॑नि॒ स्वाहा॑ ॥८॥

पदार्थः—हे (देव) सत्य कामनाओं को पूर्ण करने और (सवितः) अन्तर्यामिरूप से प्रेरणा करने हारे जगदीश्वर आप (नः) हमारे (इमम्) पीछे कहे और आगे जिसको कहेंगे उस (देवाव्यम्) दिव्य विद्वानों वा गुणों की जिस से रक्षा हो (सखिविदम्) मित्रों को जिस से प्राप्त हों (सत्राजितम्) सत्य को जिस से जीतें (धनजितम्) धन की जिस में उन्नति होवे (स्वर्जितम्) सुख को जिस से बढ़ावें और (ऋचा) ऋग्वेद से जिस की (स्तोमम्) स्तुति हो उस (यज्ञम्) विद्या और धर्म का संयोग कराने हारे यज्ञ को (स्वाहा) सत्य क्रिया के साथ (प्रणय) प्राप्त कराइये। (गायत्रेण) गायत्री आदि छन्द से ही (गायत्रवर्त्तनि) गायत्री आदि छन्दों की गानविद्या

को (बृहत्) बड़े (रथन्तरम्) अच्छे-अच्छे यानों से जिस के पार हों उस मार्ग को (समर्धय) अच्छे प्रकार बढ़ाइये ।।८।।

भावार्थः—जो मनुष्य ईर्ष्या द्वेष आदि दोषों को छोड़ ईश्वर के समान सब जीवों के साथ मित्रभाव रखते हैं वे संपत् को प्राप्त होते हैं ।।८।।

देवस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । भुरिगतिशक्वरी छन्दः । पंचमः स्वरः ।।

मनुष्य भूमि आदि तत्त्वों से बिजुली का ग्रहण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददे गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वत्पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभर त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ।।९।।

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष ! मैं जिस (त्वा) आप को (देवस्य) सूर्य्य आदि सब जगत् के प्रकाश करने और (सवितुः) सब ऐश्वर्य में (अश्विनोः) प्राण और उदान के (बाहुभ्याम्) बल और आकर्षण से तथा (पूष्णः) पुष्टिकारक बिजुली के (हस्ताभ्याम्) धारण और आकर्षण (अङ्गिरस्वत्) अंगारों के समान को (आददे) ग्रहण करता हूं । सो आप (गायत्रेण) गायत्री मन्त्र से निकले (छन्दसा) आनन्ददायक अर्थ के साथ (पृथिव्याः) पृथिवी के (सधस्थात्) एक स्थान से (अंगिरस्वत्) प्राणों के तुल्य और (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप् मन्त्र से निकले (छन्दसा) स्वतन्त्र अर्थ के साथ (अंगिरस्वत्) चिह्नों के सदृश (पुरीष्यम्) जल को उत्पन्न करने हारे (अग्निम्) बिजुली आदि तीन प्रकार के अग्नि को (आभर) धारण कीजिये ।।९।।

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की सृष्टि के गुणों को जानने हारे विद्वान् की अच्छे प्रकार सेवा करने और पृथिवी आदि पदार्थों में रहने वाले अग्नि को स्वीकार करें ।।९।।

अभ्रिरसीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

मनुष्य लोग भूमि आदि से सुवर्ण आदि पदार्थों को कैसे प्राप्त होवें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

अभ्रिरसि नार्यसि त्वया वयमग्निꣳ शकेम खनितुꣳ सधस्थ आ । जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ।।१०।।

पदार्थः—हे कारीगर पुरुष ! जो (त्वया) तेरे साथ (सधस्थे) एक स्थान में वर्त्तमान (वयम्) हम लोग जो (अभ्रिः) भूमि खोदने और (नारी) विवाहित उत्तम स्त्री के समान कार्य्यों को सिद्ध करने हारी लोहे आदि की कसी (असि) है जिस से कारीगर लोग भूगर्भविद्या को जान सकें उस को ग्रहण करके (जागतेन) जगती मन्त्र से विधान किये (छन्दसा) सुखदायक स्वतन्त्र साधन से (अंगिरस्वत्) प्राणों के तुल्य (अग्निम्) विद्युत् आदि अग्नि को (खनितुम्) खोदने के लिये (आ शकेम) सब प्रकार समर्थ हों उस को तू बना ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि अच्छे खोदने के साधनों से पृथिवी को खोद और अग्नि के साथ संयुक्त कर के सुवर्ण आदि पदार्थों को बनावें परन्तु पहिले भूगर्भ की तत्त्वविद्या को प्राप्त होके ऐसा कर सकते हैं, ऐसा निश्चित जानना चाहिये ॥१०॥

हस्त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । आर्षी छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर भी उसी उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

हस्तंऽआधाय॑ सवि॒ता बिभ्र॒दभ्रि॑ꣳ हिर॒ण्ययी॑म् । अ॒ग्नेर्ज्योति॒र्निचाय्य॑ पृथि॒व्याऽअध्याभ॑र॒दानु॑ष्टुभे॒न छन्द॑साङ्गिर॒स्वत् ॥११॥

पदार्थः—(सविता) ऐश्वर्य को उत्पन्न करने हारा कारीगर मनुष्य (आनुष्टुभेन) अनुष्टुप् छन्द में कहे हुए (छन्दसा) स्वतन्त्र अर्थ के योग से (हिरण्ययीम्) तेजोमय शुद्ध धातु से बने (अभ्रिम्) खोदने के शस्त्र को (हस्ते) हाथ में (आधाय) लिये हुए (अंगिरस्वत्) प्राण के तुल्य (अग्नेः) विद्युत् आदि अग्नि के (ज्योतिः) तेज को (निचाय्य) निश्चय कर के (पृथिव्याः) पृथिवी के (अधि) ऊपर (आभरत्) अच्छे प्रकार धारण करे ॥११॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जैसे लोहा और पत्थरों में बिजुली रहती है वैसे ही सब पदार्थों में प्रवेश कर रही है । उस की विद्या को ठीक-ठीक जान और कार्यों में उपयुक्त कर के इस पृथिवी पर आग्नेय आदि अस्त्र और विमान आदि यानों को सिद्ध करें ॥११॥

प्रतूर्त्तमित्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः । वाजी देवता । आस्तारपङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्र॒तूर्त्तं॑ वाजि॒न्नाद्र॑व॒ वरि॑ष्ठा॒मनु॑ सं॒वत॑म् । दि॒वि ते॒ जन्म॑ पर॒मम॒न्तरि॑क्षे॒ तव॒ नाभि॑ः पृथि॒व्यामधि॒ योनि॒रित् ॥१२॥

को (वृहत्) बड़े (रथन्तरम्) अच्छे-अच्छे यानों से जिस के पार हों उस मार्ग को (समर्धय) अच्छे प्रकार वढ़ाइये ।।८।।

भावार्थः—जो मनुष्य ईर्ष्या द्वेष आदि दोषों को छोड़ ईश्वर के समान सब जीवों के साथ मित्रभाव रखते हैं वे संपत् को प्राप्त होते हैं ।।८।।

देवस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । भुरिगतिशक्वरी छन्दः । पंचमः स्वरः ।।

मनुष्य भूमि आदि तत्त्वों से बिजुली का ग्रहण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददे गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वत्पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभर त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ।।९।।

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष ! मैं जिस (त्वा) आप को (देवस्य) सूर्य्य आदि सब जगत् के प्रकाश करने और (सवितुः) सब ऐश्वर्य में (अश्विनोः) प्राण और उदान के (बाहुभ्याम्) बल और आकर्षण से तथा (पूष्णः) पुष्टिकारक विजुली के (हस्ताभ्याम्) धारण और आकर्षण (अङ्गिरस्वत्) अंगारों के समान को (आददे) ग्रहण करता हूं । सो आप (गायत्रेण) गायत्री मन्त्र से निकले (छन्दसा) आनन्ददायक अर्थ के साथ (पृथिव्याः) पृथिवी के (सधस्थात्) एक स्थान से (अंगिरस्वत्) प्राणों के तुल्य और (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप् मन्त्र से निकले (छन्दसा) स्वतन्त्र अर्थ के साथ (अंगिरस्वत्) चिह्नों के सदृश (पुरीष्यम्) जल को उत्पन्न करने हारे (अग्निम्) विजुली आदि तीन प्रकार के अग्नि को (आभर) धारण कीजिये ।।९।।

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की सृष्टि के गुणों को जानने हारे विद्वान् की अच्छे प्रकार सेवा करने और पृथिवी आदि पदार्थों में रहने वाले अग्नि को स्वीकार करें ।।९।।

अभ्रिरसीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

मनुष्य लोग भूमि आदि से सुवर्ण आदि पदार्थों को कैसे प्राप्त होवें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

अभ्रिरसि नार्यसि त्वया वयमग्निꣳ शकेम खनितुꣳ सधस्थ आ । जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ।।१०।।

पदार्थः—हे कारीगर पुरुष ! जो (त्वया) तेरे साथ (सधस्थे) एक स्थान में वर्त्तमान (वयम्) हम लोग जो (अभ्रिः) भूमि खोदने और (नारी) विवाहित उत्तम स्त्री के समान कार्य्यों को सिद्ध करने हारी लोहे आदि की कसी (असि) है जिस से कारीगर लोग भूगर्भविद्या को जान सकें उस को ग्रहण करके (जागतेन) जगती मन्त्र से विधान किये (छन्दसा) सुखदायक स्वतन्त्र साधन से (अंगिरस्वत्) प्राणों के तुल्य (अग्निम्) विद्युत् आदि अग्नि को (खनितुम्) खोदने के लिये (आ शकेम) सब प्रकार समर्थ हों उस को तू बना ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि अच्छे खोदने के साधनों से पृथिवी को खोद और अग्नि के साथ संयुक्त कर के सुवर्ण आदि पदार्थों को बनावें परन्तु पहिले भूगर्भ की तत्त्वविद्या को प्राप्त होके ऐसा कर सकते हैं ऐसा निश्चित जानना चाहिये ॥१०॥

हस्त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । आर्षी छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर भी उसी उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

हस्तऽआधाय सविता बिभ्रदभ्रिꣳ हिरण्ययीम् । अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्याऽअध्याभरदानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥११॥

पदार्थः—(सविता) ऐश्वर्य को उत्पन्न करने हारा कारीगर मनुष्य (आनुष्टुभेन) अनुष्टुप् छन्द में कहे हुए (छन्दसा) स्वतन्त्र अर्थ के योग से (हिरण्ययीम्) तेजोमय शुद्ध धातु से बने (अभ्रिम्) खोदने के शस्त्र को (हस्ते) हाथ में (आधाय) लिये हुए (अंगिरस्वत्) प्राण के तुल्य (अग्नेः) विद्युत् आदि अग्नि के (ज्योतिः) तेज को (निचाय्य) निश्चय कर के (पृथिव्याः) पृथिवी के (अधि) ऊपर (आभरत्) अच्छे प्रकार धारण करे ॥११॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जैसे लोहा और पत्थरों में बिजुली रहती है वैसे ही सब पदार्थों में प्रवेश कर रही है । उस की विद्या को ठीक-ठीक जान और कार्यों में उपयुक्त कर के इस पृथिवी पर आग्नेय आदि अस्त्र और विमान आदि यानों को सिद्ध करें ॥११॥

प्रतूर्त्तमित्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः । वाजी देवता । आस्तारपङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रतूर्त्तं वाजिन्नाद्रव वरिष्ठामनु संवतम् । दिवि ते जन्म परममन्तरिक्षे तव नाभिः पृथिव्यामधि योनिरित् ॥१२॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) प्रशंसित ज्ञान से युक्त विद्वान्! जिस (ते) आप का शिल्पविद्या से (दिवि) सूर्य के प्रकाश में (परमम्) उत्तम (जन्म) प्रसिद्धि, (तव) आप का (अन्तरिक्षे) आकाश में (नाभिः) बन्धन और (पृथिव्याम्) इस पृथिवी में (योनिः) निमित्त प्रयोजन है सो आप विमानादि यानों के अधिष्ठाता होकर (वरिष्ठाम्) अत्यंत उत्तम (सम्वतम्) अच्छे प्रकार विभाग की हुई गति को (प्रतूर्त्तम्) अतिशीघ्र (इत्) ही (अनु) पश्चात् (आ) (द्रव) अच्छे प्रकार चलिये ॥१२॥

भावार्थः—जब मनुष्य लोग विद्या और क्रिया के बीच में परम प्रयत्न के साथ प्रसिद्ध हो और विमान आदि यानों को रच के शीघ्र जाना आना करते हैं तब उन को धन की प्राप्ति सुगम होती है ॥१२॥

युञ्जाथामित्यस्य कुश्रिर्ऋषिः। वाजी देवता। गायत्री छन्दः।
षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या कहां जोड़ना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

युञ्जाथाᳪं रासभं युवमस्मिन् यामे वृषण्वसू। अग्निं भरन्तमस्मयुम् ॥१३॥

पदार्थः—हे (वृषण्वसू) सूर्य्य और वायु के समान सुख वर्षाने वा सुख में वसने हारे कारीगर तथा उस के स्वामी लोगो! (युवम्) तुम दोनों (अस्मिन्) इस (यामे) यान में (रासभम्) जल और अग्नि के वेगगुणरूप अश्व तथा (अस्मयुम्) हम को ले चलने तथा (भरन्तम्) धारण करने हारे (अग्निम्) प्रसिद्ध वा बिजुली रूप अग्नि को (युञ्जाथाम्) युक्त करो ॥१३॥

भावार्थः—जो मनुष्य इस विमान आदि यान में यन्त्र कला जल और अग्नि के प्रयोग करते हैं वे सुख से दूसरे देशों में जाने को समर्थ होते हैं ॥१३॥

योगेयोग इत्यस्य शुनःशेप ऋषिः। क्षत्रपतिर्देवता। गायत्री छन्दः।
षड्जः स्वरः ॥

प्रजाजन कैसे पुरुष को राजा मानें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे। सखाय इन्द्रमूतये ॥१४॥

पदार्थः—हे (सखायः) परस्पर मित्रता रखने हारे लोगो! जैसे हम लोग (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (योगेयोगे) जिस-जिस में नियुक्त हों उस उस में तथा (वाजेवाजे) संग्राम-संग्राम के बीच (तवस्तरम्) अत्यन्त बलवान् (इन्द्रम्) परमैश्वर्ययुक्त पुरुष को राजा (हवामहे) मानते हैं वैसे ही तुम लोग भी मानो ॥१४॥

भावार्थः—जो मनुष्य परस्पर मित्र हो के एक दूसरे की रक्षा के लिये अत्यन्त बलवान् धर्मात्मा पुरुष को राजा मानते हैं वे सब विघ्नों से अलग हो के सुख की उन्नति कर सकते हैं ॥१४॥

प्रतूर्वन्नित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । गणपतिर्देवता । आर्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर राजा क्या करके किस को प्राप्त हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रतूर्वन्नेह्यवक्रामन्नशस्ती रुद्रस्य गाणपत्यं मयोभूरेहि । उर्वन्तरिक्षं वीहि स्वस्तिगव्यूतिरभयानि कृण्वन् पूष्णा सयुजा सह ॥१५॥

पदार्थः—हे राजन् (स्वस्तिगव्यूतिः) सुख के साथ जिसका मार्ग है ऐसे आप (सयुजा) एक साथ युक्त करने वाली (पूष्णा) बल पुष्टि से युक्त अपनी सेना के (सह) साथ (अशस्तीः) निन्दित शत्रुओं की सेनाओं को (प्रतूर्वन्) मारते हुए (एहि) प्राप्त हूजिये । शत्रुओं के देशों का (अवक्रामन्) उल्लङ्घन करते हुए (एहि) आइये (मयोभूः) सुख को उत्पन्न करते आप (रुद्रस्य) शत्रुओं को रुलाने हारे अपने सेनापति के (गाणपत्यम्) सेना समूह के स्वामीपन को (एहि) प्राप्त हूजिये और (अभयानि) अपने राज्य में सब प्राणियों को भयरहित (कृण्वन्) करते हुए (अन्तरिक्षम्) (उरु) परिपूर्ण आकाश को (वीहि) विविध प्रकार से प्राप्त हूजिये ॥१५॥

भावार्थः—राजा को अति उचित है कि अपनी सेना को सदैव अच्छी शिक्षा हर्ष उत्साह और पोषण से युक्त रक्खे । जब शत्रुओं के साथ युद्ध किया चाहे तब अपने राज्य को उपद्रवरहित कर युक्ति तथा बल से शत्रुओं को मारे और सज्जनों की रक्षा करके सर्वत्र सुन्दर कीर्ति फैलावे ॥१५॥

पृथिव्या इत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य किस पदार्थ से बिजुली का ग्रहण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभराग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदच्छेमोऽग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरिष्यामः ॥१६॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे हम लोग (पृथिव्याः) भूमि वा अन्तरिक्ष के (सधस्थात्) एक स्थान से (अङ्गिरस्वत्) प्राणों के समान (पुरीष्यम्) अच्छा सुख देने हारे (अग्निम्) भूमिमण्डल की बिजुली को (अच्छ) उत्तम रीति से (इमः) प्राप्त होते और जैसे (अङ्गिरस्वत्) प्राणों के समान (पुरीष्यम्) उत्तम सुखदायक (अग्निम्) अन्तरिक्षस्थ बिजुली को (भरिष्यामः) धारण करें वैसे आप भी (अङ्गिरस्वत्) सूर्य्य

के समान (पुरीष्यम्) उत्तम सुख देनेवाले (अग्निम्) पृथिवी पर वर्त्तमान अग्नि को (आभर) अच्छे प्रकार धारण कीजिये ॥१६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के समान काम करें मूर्खवत् नहीं और सब काल में उत्साह के साथ अग्नि आदि की पदार्थविद्या का ग्रहण कर के सुख बढ़ाते रहें॥१६॥

अन्वग्निरित्यस्य पुरोधा ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

विद्वान् लोग किस के समान क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः। अनु सूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननु द्यावापृथिवीऽआततन्थ ॥१७॥

पदार्थः—हे विद्वन्! आप जैसे (प्रथमः) (जातवेदाः) उत्पन्न हुए पदार्थों में पहिले ही विद्यमान सूर्य्यलोक और (अग्निः) (उषसाम्) उषःकाल से (अग्रम्) पहिले ही (अहानि) दिनों को (अन्वख्यत्) प्रसिद्ध करता है (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के (अग्रम्) पहिले (पुरुत्रा) बहुत (रश्मीन्) किरणों को (अन्वाततन्थ) फैलाता तथा (द्यावापृथिवी) सूर्य्य और पृथिवी लोक को प्रसिद्ध करता है वैसे विद्या के व्यवहारों की प्रवृत्ति कीजिये॥१७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे कारण रूप विद्युत् और कार्य्य रूप प्रसिद्ध अग्नि क्रम से सूर्य्य, उषःकाल और दिनों को उत्पन्न करके पृथिवी आदि पदार्थों को प्रकाशित करते हैं वैसे ही विद्वानों को चाहिये कि सुन्दर शिक्षा दें ब्रह्मचर्य्य विद्या धर्म के अनुष्ठान और अच्छे स्वभाव आदि का सर्वत्र प्रचार करके सब मनुष्यों को ज्ञान और आनन्द से प्रकाशयुक्त करें॥१७॥

आगत्येत्यस्य मयोभूर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब सभापति राजा किस के समान क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

आगत्य वाज्यध्वानꣳ सर्वा मृधो विधूनुते। अग्निꣳ सधस्थे महति चक्षुषा निचिकीषते ॥१८॥

पदार्थः—हे राजन् आप जैसे (वाजी) वेगवान् घोड़ा (अध्वानम्) अपने मार्ग को (आगत्य) प्राप्त हो के (सर्वाः) सब (मृधः) संग्रामों को (विधूनुते) कंपाता है और जैसे गृहस्थ पुरुष (चक्षुषा) नेत्रों से (महति) सुन्दर (सधस्थे) एक स्थान में (अग्निम्) अग्नि का (निचिकीषते) चयन किया चाहता है वैसे सब संग्रामों को कंपाइये और घर घर में विद्या का प्रचार कीजिये ॥१८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। गृहस्थों को चाहिये कि घोड़ों के समान जाना आना कर, शत्रुओं को जीत, आग्नेयादि अस्त्र-विद्या को सिद्ध कर, अपने बलाबल को विचार कर और राग द्वेष आदि दोषों की शान्ति कर के अधर्मी शत्रुओं को जीतें ॥१८॥

आक्रम्येत्यस्य मयोभूर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप्छन्दः।
गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य जन्म पा और विद्या पढ़ के पश्चात् क्या करे यह विषय
अगले मन्त्र में कहा है ॥

आक्रम्य वाजिन् पृथिवीमग्निमिच्छ रुचा त्वम्। भूम्या वृत्वाय नो ब्रूहि यतः खनेम तं वयम् ॥१९॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) प्रशंसित ज्ञान वाले सभापति विद्वान् राजा ! (त्वम्) आप (रुचा) प्रीति से शत्रुओं को (आक्रम्य) पादाक्रान्त कर (पृथिवीम्) भूमि के राज्य और (अग्निम्) विद्या की (इच्छ) इच्छा कीजिये और (भूम्याः) पृथिवी के बीच (नः) हम लोगों को (वृत्वाय) स्वीकार करके हमारे लिये (ब्रूहि) भूगर्भ और अग्निविद्या का उपदेश कीजिये (यतः) जिस से (वयम्) हम लोग (तम्) उस विद्या में (खनेम) प्रविष्ट होवें ॥१९॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि भूगर्भ और अग्नि विद्या से पृथिवी के पदार्थों की अच्छे प्रकार परीक्षा करके सुवर्ण आदि रत्नों को उत्साह के साथ प्राप्त होवें और जो पृथिवी को खोदने वाले नौकर चाकर हैं उन को इस विद्या का उपदेश करें ॥१९॥

द्यौस्त इत्यस्य मयोभूर्ऋषिः। क्षत्रपतिर्देवता। निचृदार्षी बृहती छन्दः।
मध्यमः स्वरः ॥

मनुष्य क्या करके क्या सिद्ध करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी सधस्थमात्मान्तरिक्षꣳ समुद्रो योनिः। विख्याय चक्षुषा त्वमभि तिष्ठ पृतन्यतः ॥२०॥

पदार्थः—हे विद्वान् राजन् ! जिस (ते) आप का (द्यौः) प्रकाश के तुल्य विनय (पृष्ठम्) इधर का व्यवहार (पृथिवी) भूमि के समान (सधस्थम्) साथ स्थित (अन्तरिक्षम्) आकाश के समान अविनाशी धैर्ययुक्त (आत्मा) अपना स्वरूप और (समुद्रः) समुद्र के तुल्य (योनिः) निमित्त है सो (त्वम्) आप (चक्षुषा) विचार के साथ (विख्याय) अपना ऐश्वर्य प्रसिद्ध करके (पृतन्यतः) अपनी सेना को लड़ाने की इच्छा करते हुए मनुष्य के (अभि) सन्मुख (तिष्ठ) स्थित हूजिये ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो न्यायमार्ग के अनुसार उत्साह स्थान और आत्मा जिस पुरुष के दृढ़ हों, विचार से सिद्ध करने योग्य जिसके प्रयोजन हों उसकी सेना वीर होती है, वह निश्चय विजय करने को समर्थ होवे ॥२०॥

उत्क्रामेत्यस्य मयोभूर्ऋषिः। द्रविणोदा देवता। आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः ॥

मनुष्यों को योग्य है कि इस संसार में परम पुरुषार्थ से ऐश्वर्य उत्पन्न करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

उत्क्राम महते सौभगायास्मादास्थानाद् द्रविणोदा वाजिन्।
वयꣳ स्याम सुमतौ पृथिव्याऽअग्निं खनन्तऽउपस्थेऽअस्याः ॥२१॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) ऐश्वर्य को प्राप्त हुए विद्वान् ! जैसे (द्रविणोदाः) धनदाता (अस्याः) इस (पृथिव्याः) भूमि के (अस्मात्) इस (आस्थानात्) निवास के स्थान से (उपस्थे) समीप में (अग्निम्) अग्नि विद्या का (खनन्तः) खोज करते हुए (वयम्) हम लोग (महते) बड़े (सौभगाय) सुन्दर ऐश्वर्य्य के लिये (सुमतौ) अच्छी बुद्धि में प्रवृत्त (स्याम) होवें वैसे आप (उत्क्राम) उन्नति को प्राप्त हूजिये ॥२१॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि इस संसार में ऐश्वर्य्य पाने के लिये निरन्तर उद्यत रहें और आपस में हिल मिल के पृथिवी आदि पदार्थों से रत्नों को प्राप्त होवें ॥२१॥

उदक्रमीदित्यस्य मयोभूर्ऋषिः। द्रविणोदा देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य इस संसार में किस के समान हो के किस को प्राप्त हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

उदक्रमीद् द्रविणोदा वाज्यर्वाकः सुलोकꣳ सुकृतं पृथिव्याम्।
ततः खनेम सुप्रतीकमग्निꣳ स्वो रुहाणाऽअधिनाकमुत्तमम् ॥२२॥

पदार्थः—हे भूगर्भ विद्या के जानने हारे विद्वन् ! (द्रविणोदाः) धनदाता आप जैसे (वाजी) वल वाला (अर्वा) घोड़ा ऊपर को उछलता है वैसे (पृथिव्याम्) पृथिवी के बीच (अधि) (उदक्रमीत्) सब से अधिक उन्नति को प्राप्त हूजिये। (सुकृतम्) धर्माचरण से प्राप्त होने योग्य (सुलोकम्) अच्छा देखने योग्य (उत्तमम्) अति श्रेष्ठ (नाकम्) सब दुःखों से रहित सुख को (अकः) सिद्ध कीजिये। (ततः) इसके पश्चात् (स्वः) सुखपूर्वक (रुहाणाः) प्रकट होते हुए हम लोग भी इस पृथिवी पर (सुप्रतीकम्) सुन्दर प्रीति का विषय (अग्निम्) व्यापक विजुली रूप अग्नि का (खनेम) खोज करें ॥२२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे पृथिवी पर घोड़े अच्छी अच्छी चाल चलते हैं वैसे हम तुम सब मिल कर पुरुषार्थी हों पृथिवी आदि की पदार्थ विद्या को प्राप्त हों और दुःखों को दूर करके सब से उत्तम सुख को प्राप्त हों ॥२२॥

आत्वेत्यस्य गृत्समद ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य व्यापक वायु को किस साधन से जानें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ त्वा॑ जिघर्मि॒ मन॑सा घृ॒तेन॑ प्रतिक्षि॒यन्तं॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑।
पृ॒थुं ति॑र॒श्चा वय॑सा बृ॒हन्तं॒ व्यचि॑ष्ठ॒मन्नै॑ रभ॒सं दृशा॑नम् ॥२३॥

पदार्थः—हे ज्ञान चाहने वाले पुरुष ! जैसे मैं (मनसा) मन तथा (घृतेन) घी के साथ (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकस्थ वस्तुओं में (प्रतिक्षियन्तम्) प्रत्यक्ष निवास और निश्चयकारक (तिरश्चा) तिरछे चलने रूप (वयसा) जीवन से (पृथुम्) विस्तारयुक्त (बृहन्तम्) बड़े (अन्नैः) जौ आदि अन्नों के साथ (रभसम्) वल वाले (व्यचिष्ठम्) अतिशय करके फैलने वाले (दृशानम्) देखने योग्य वायु के गुणों को (आजिघर्मि) अच्छे प्रकार प्रकाशित करता हूँ वैसे (त्वाम्) आप को भी इस वायु के गुणों को धारण कराता हूं ॥२३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य अग्नि के द्वारा सुगन्धि आदि द्रव्यों को वायु में पहुँचा उस सुगन्ध से रोगों को दूर कर अधिक अवस्था को प्राप्त होवें ॥२३॥

आ विश्वत इत्यस्य गृत्समद ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षीपङ्क्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः ॥

फिर वायु और अग्नि कैसे गुण वाले हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत । मर्य्यश्रीः स्पृहयद्वर्णोऽअग्निर्नाभिमृशे तन्वा जर्भुराणः ॥२४॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! (न) जैसे (विश्वतः) सब ओर से (अग्निः) बिजुली और प्राण वायु शरीर में व्यापक होके (अभिमृशे) सहने वाले के लिये हितकारी हैं, जैसे (तन्वा) शरीर से (जर्भुराणः) शीघ्र हाथ पांव आदि अङ्गों को चलाता हुआ (स्पृहयद्वर्णः) इच्छा वालों ने स्वीकार किये हुए के समान (मर्य्यश्रीः) मनुष्यों की शोभा के तुल्य वायु के समान वेग वाला होके मैं जिस (प्रत्यञ्चम्) शरीर के वायु को निरन्तर चलाने वाली विद्युत् को (अरक्षसा) राक्षसों की दुष्टता से रहित (मनसा) चित्त से (आजिघर्मि) प्रकाशित करता हूं वैसे (तत्) उस तेज को (जुषेत) सेवन कर ॥२४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । हे मनुष्यो ! तुम लोग लक्ष्मी प्राप्त कराने हारे अग्नि आदि पदार्थों को जान और उनको कार्यों में संयुक्त करके धनवान् होओ ॥२४॥

परिवाजपतिरित्यस्य सोमक ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर गृहस्थ कैसे होवें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥२५॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जो (वाजपतिः) अन्न आदि की रक्षा करने हारे गृहस्थों के समान (कविः) बहुदर्शी दाता गृहस्थ पुरुष (दाशुषे) दान देने योग्य विद्वान् के लिये (रत्नानि) सुवर्ण आदि उत्तम पदार्थ (दधत्) धारण करते हुए के समान (अग्निः) प्रकाशमान पुरुष (हव्यानि) देने योग्य वस्तुओं को (परि) सब ओर से (अक्रमीत्) प्राप्त होता है उस को तू जान ॥२५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्वान् पुरुष को चाहिये कि अग्निविद्या के सहाय से पृथिवी के पदार्थों से धन को प्राप्त हो अच्छे मार्ग में खर्च कर और धर्मात्माओं को दान दे के विद्या के प्रचार से सब को सुख पहुँचावे ॥२५॥

परित्वेत्यस्य पायुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कैसा सेनापति करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

परि॑ त्वाग्ने पुरं॑ वयं विप्र॑ᳩ सहस्य धीमहि । धृषद्व॑र्णं दि॒वेदि॑वे

हन्तारं॑ भङ्गुराव॑ताम् ॥२६॥

पदार्थः—हे (सहस्य) अपने को बल चाहने वाले (अग्ने) अग्निवत् विद्या से प्रकाशमान विद्वान् पुरुष ! जैसे (वयम्) हम लोग (दिवेदिवे) प्रतिदिन (भंगुरावताम्) खोटे स्वभाव वालों के (पुरम्) नगर को अग्नि के समान (हन्तारम्) मारने हारे (धृषद्वर्णम्) दृढ़ सुन्दर वर्णों से युक्त (विप्रम्) विद्वान् (त्वा) आप को (परि) सब प्रकार से (धीमहि) धारण करें वैसे तू हम को धारण कर ॥२६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । राजा और प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि न्याय से प्रजा की रक्षा करने, अग्नि के समान शत्रुओं को मारने और सब काल में सुख देने हारे पुरुष को सेनापति करें ॥२६॥

त्वमग्न इत्यस्य गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । पङ्क्तिश्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

फिर सभाध्यक्ष कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वम॑ग्ने द्यु॒भिस्त्वमा॑शुशु॒क्षणि॒स्त्वमद्भ्यस्त्वमश्म॑न॒स्परि॑ । त्वं वने॑-

भ्य॒स्त्वमोष॑धीभ्य॒स्त्वं नृ॒णां नृ॑पते जायसे॒ शुचि॑ः ॥२७॥

पदार्थः—हे (नृपते) मनुष्यों के पालने हारे (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमान न्यायाधीश राजन् ! (त्वम्) आप (द्युभिः) दिनों के समान प्रकाशमान न्याय आदि गुणों से सूर्य्य के समान (त्वम्) आप (आशुशुक्षणिः) शीघ्र शीघ्र दुष्टों को मारने हारे (त्वम्) आप (अद्भ्यः) वायु वा जलों से (त्वम्) आप (अश्मनः) मेघ वा पाषाणादि से (त्वम्) आप (वनेभ्यः) जङ्गल वा किरणों से (त्वम्) आप (ओषधीभ्यः) सोमलता आदि ओषधियों से (त्वम्) आप (नृणाम्) मनुष्यों के बीच (शुचिः) पवित्र (परि) सब प्रकार (जायसे) प्रसिद्ध होते हो इस कारण आप का आश्रय लेके हम लोग भी ऐसे ही होवें ॥२७॥

भावार्थः—जो राजा सभासद् वा प्रजा का पुरुष सब पदार्थों से गुण ग्रहण और विद्या तथा क्रिया की कुशलता से उपकार ले सकता है और धर्म के आचरण से पवित्र तथा शीघ्रकारी होता है वही सब सुखों को प्राप्त हो सकता है, अन्य आलसी पुरुष नहीं ॥२७॥

देवस्य त्वेत्यस्य गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक् प्रकृतिश्छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य क्या करके किस पदार्थ से बिजुली का ग्रहण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् । पृ॒थि॒व्याः स॒धस्था॑द॒ग्निं पु॑री॒ष्य॒मङ्गि॒र॒स्वत् ख॑नामि । ज्योति॑ष्मन्तं त्वाग्ने सु॒प्रती॑कमज॑स्रेण भा॒नुना॒ दीद्य॑तम् । शि॒वं प्र॒जाभ्यो॒ऽहिं॑ꣳसन्तं पृ॒थि॒व्याः स॒धस्था॑द॒ग्निं पु॑री॒ष्य॒मङ्गि॒र॒स्वत् ख॑नामः ॥२८॥

पदार्थः—हे (अग्ने) भूगर्भ तथा शिल्पविद्या के जानने हारे विद्वान् ! जैसे मैं (सवितुः) सब जगत् के उत्पन्न करने हारे (देवस्य) प्रकाशमान ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये संसार में (अश्विनो) आकाश और पृथिवी के (बाहुभ्याम्) आकर्षण तथा धारण रूप बाहुओं के समान और (पूष्णः) प्राण के (हस्ताभ्याम्) बल और पराक्रम रूप हाथों के तुल्य (त्वा) आप को आगे करके (पृथिव्याः) भूमि के (सधस्थात्) एक स्थान से (पुरीष्यम्) पूर्ण सुख देनेहारे (ज्योतिष्मन्तम्) बहुत ज्योति वाले (अजस्रेण) निरन्तर (भानुना) दीप्ति से (दीद्यतम्) अत्यन्त प्रकाशमान (पुरीष्यम्) सुन्दर रक्षा करने (अग्निम्) वायु में रहने वाली बिजुली को (अङ्गिरस्वत्) वायु के समान (खनामि) सिद्ध करता हूं और जैसे (त्वा) आपका आश्रय लेके हम लोग (पृथिव्याः) अन्तरिक्ष के (सधस्थात्) एक प्रदेश से (अंगिरस्वत्) सूत्रात्मा वायु के समान वर्त्तमान (अहिंसन्तम्) जो कि ताड़ना न करे ऐसे (पुरीष्यम्) पालने-हारे पदार्थों में उत्तम (प्रजाभ्यः) प्रजा के लिये (शिवम्) मङ्गलकारक (अग्निम्) अग्नि को (खनामः) प्रकट करते हैं वैसे सब लोग किया करें ॥२८॥

भावार्थः—जो राज्य और प्रजा के पुरुष सर्वत्र रहने वाले बिजुली रूपी अग्नि को सब पदार्थों से साधन तथा उपसाधनों के द्वारा प्रसिद्ध करके कार्य्यों में प्रयुक्त करते हैं वे कल्याणकारक ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं। कोई भी उत्पन्न हुआ पदार्थ बिजुली की व्याप्ति के बिना खाली नहीं रहता ऐसा तुम सब लोग जानो ॥२८॥

अपां पृष्ठमित्यस्य गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर मनुष्य कैसी बिजुली का ग्रहण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अ॒पां पृ॒ष्ठम॑सि॒ योनि॑र॒ग्नेः स॑मु॒द्रम॒भितः॒ पिन्व॑मानम् । वर्ध॑मानो म॒हाँ२ऽआ च॒ पुष्क॑रे दि॒वो मात्र॑या वरि॒म्णा प्र॑थस्व ॥२९॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जिस कारण (अग्नेः) सर्वत्र अभिव्याप्त बिजुली रूप अग्नि के (योनिः) संयोग वियोगों के जानने वाले (महान्) पूजनीय (वर्धमानः) विद्या तथा क्रिया की कुशलता से नित्य बढ़ने वाले आप (असि) हैं इसलिये (अभितः) सब ओर से (पिन्वमानन्) जल वर्षाते हुए (अपाम्) जलों के (पृष्ठम्) आधारभूत (पुष्करे)अन्तरिक्ष में वर्त्तमान (दिवः) दीप्ति के(मात्रया) विभाग से बढ़े हुए(समुद्रम्) अच्छे प्रकार जिस में ऊपर को जल उठते हैं उस समुद्र को (च) और वहां के सब पदार्थों को जान के (वरिम्णा) बहुत्व के साथ (आप्रथस्व) अच्छे प्रकार सुखों को विस्तार करने वाले हूजिये ॥२९॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग पृथिवी आदि स्थूल पदार्थों में बिजुली जिस प्रकार वर्त्तमान है वैसे ही जलों में भी है ऐसा समझ और उससे उपकार ले के बड़े-बड़े विस्तारयुक्त सुखों को सिद्ध करो ॥२९॥

शर्म चेत्यस्य गृत्समद ऋषिः । दम्पती देवते । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब स्त्री और पुरुष घर में रह के क्या-क्या सिद्ध करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

शर्म॑ च स्थो॒ वर्म॑ च॒ स्थोऽछि॑द्रे बहु॒लेऽउ॒भे । व्यच॑स्वती॒ संव॑साथां भृ॒तम॒ग्निं पु॑री॒ष्यम् ॥३०॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों (शर्म) गृहाश्रम (च) और उस की सामग्री को प्राप्त हुए (स्थः) हो, (वर्म) सब ओर से रक्षण (च) और उस के सहायकारी पदार्थों को (उभे) दो (बहुले) बहुत अर्थों को ग्रहण कराने हारे (व्यचस्वती) सुख की प्राप्ति से युक्त (अच्छिद्रे) निर्दोष बिजुली और अन्तरिक्ष के समान जिस घर में धर्म अर्थ के कार्य्य (स्थः) हैं उस घर में (भृतम्) पोषण करने हारे (पुरीष्यम्) रक्षा करने में उत्तम (अग्निम्) अग्नि को ग्रहण करके (संवसाथाम्) अच्छे प्रकार आच्छादन करके वसो ॥३०॥

भावार्थः—गृहस्थ लोगों को चाहिये कि ब्रह्मचर्य्य के साथ सत्कार और उपकारपूर्वक क्रिया की कुशलता और विद्या का ग्रहण कर बहुत द्वारों से युक्त सब ऋतुओं में सुखदायक सब ओर की रक्षा और अग्नि आदि साधनों से युक्त घरों को बना के उन में सुखपूर्वक निवास करें ॥३०॥

संवसाथामित्यस्य गृत्समद ऋषिः । जायापती देवते । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी वही उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

संवसाथाᳬ स्वर्विदा समीचीऽउरसा त्मना । अग्निमन्तर्भरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तमजस्रमित् ॥३१॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों जो (समीची) अच्छे प्रकार पदार्थों को जानने (भरिष्यन्ती) और सबका पालन करने हारे (स्वर्विदा) सुख को प्राप्त होते हुए (ज्योतिष्मन्तम्) अच्छे प्रकाश से युक्त (अन्तः)सब पदार्थों के बीच वर्त्तमान (अग्निम्) विजुली को (इत्) ही (त्मना) (उरसा) अपने अन्तःकरण से (अजस्रम्) निरन्तर (संवसाथाम्) अच्छी तरह आच्छादन करो तो लक्ष्मी को भोग सको ॥३१॥

भावार्थः—जो गृहस्थ मनुष्य विजुली को उत्पन्न करके ग्रहण कर सकते हैं वे व्यवहार में दरिद्र कभी नहीं होते ॥३१॥

पुरीष्य इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विद्वान् पुरुष विजुली को कैसे उत्पन्न करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

पुरीष्योऽसि विश्वभराऽअथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने । त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥३२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) क्रिया की कुशलता को सिद्ध करने हारे विद्वन् ! जो (वाघतः) शास्त्रवित् आप (पुरीष्यः) पशुओं को सुख देने हारे (असि) हैं उस (त्वा) आपका (अथर्वा) रक्षक (प्रथमः) उत्तम (विश्वभराः) सब का पोषक विद्वान् (विश्वस्य) सब संसार के (मूर्ध्नः) ऊपर वर्त्तमान (पुष्करात्) अन्तरिक्ष से (अधि) समीप अग्नि को (निरमन्थत्) नित्य मन्थन कर के ग्रहण करता है वह ऐश्वर्य्य को प्राप्त होता है ॥३२॥

भावार्थः—जो इस जगत् में विद्वान् पुरुष होवें वे अपने अच्छे विचार और पुरुषार्थ से अग्नि आदि की पदार्थविद्या को प्रसिद्ध करके सब मनुष्यों को शिक्षा करें ॥३२॥

तमु त्वेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्रऽईधेऽअथर्वणः । वृत्रहणं पुरन्दरम् ॥३३॥

पदार्थः—हे राजन् ! जैसे (अथर्वणः) रक्षक विद्वान् का (पुत्रः) पवित्र शिष्य (दध्यङ्) सुखदायक अग्नि आदि पदार्थों को प्राप्त हुआ, (ऋषिः) वेदार्थ जानने हारा (उ) तर्क वितर्क के साथ संपूर्ण विद्याओं का वेत्ता जिस (वृत्रहणम्) सूर्य्य के समान शत्रुओं को मारने और (पुरन्दरम्) शत्रुओं के नगरों को नष्ट करने वाले आप को (ईधे) तेजस्वी करता है वैसे उन आपको सब विद्वान् लोग विद्या और विनय से उन्नतियुक्त करें ॥३३॥

भावार्थः—जो पुरुष वा स्त्री साङ्गोपाङ्ग सार्थक वेदों को पढ़ के विद्वान् वा विदुषी होवें वे राजपुत्र और राजकन्याओं को विद्वान् और विदुषी करके उन से धर्मानुकूल राज्य तथा प्रजा का व्यवहार करवावें ॥३३॥

तमु त्वेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

तमु॑ त्वा पा॒थ्यो वृषा॒ समी॑धे दस्यु॒हन्त॑मम् । ध॒न॒ञ्ज॒यꣳ रणे॑रणे ॥३४॥

पदार्थः—हे वीर पुरुष ! जो आप (पाथ्यः) अन्न जल आदि पदार्थों की सिद्धि में कुशल (वृषा) पराक्रमी शूरता आदि युक्त विद्वान् हैं (तम्) पूर्वोक्त पदार्थ-विद्या जानने (धनञ्जयम्) शत्रुओं से धन जीतने (उ) और (दस्युहन्तमम्) अतिशय करके डाकुओं को मारने वाले (त्वा) आप को वीरों की सेना राजधर्म्म की शिक्षा से (समीधे) उदीप्त करें ॥३४॥

भावार्थः—राजा तथा राजपुरुषों को चाहिये कि आप्त धर्मात्मा विद्वानों से विनय और युद्धविद्या को प्राप्त हो प्रजा की रक्षा के लिये चोरों को मार शत्रुओं को जीत कर परम ऐश्वर्य्य की उन्नति करें ॥३४॥

सीदेत्यस्य देवश्रवो देववातावृषी। होता देवता। निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर विद्वान् का क्या काम है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सीद॑ होतः॒ स्व उ॑ लो॒के चि॑कि॒त्वान्त्सा॒दया॑ य॒ज्ञꣳ सु॑कृ॒तस्य॒ योनौ॑ । दे॒वा॒वीर्दे॒वान् ह॒विषा॑ यजा॒स्यग्ने॑ बृ॒हद्यज॑माने॒ वयो॑ धाः ॥३५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) तेजस्वी विद्वन् ! (होतः) दान देने वाले (चिकित्वान्) विज्ञान से युक्त आप (लोके) देखने योग्य (स्वे) सुख में (सीद) स्थित हूजिये, (सुकृतस्य) अच्छे करने योग्य कर्म करने हारे धर्मात्मा के (योनौ) कारण में (यज्ञम्) धर्मयुक्त राज्य और प्रजा के व्यवहार को (सादय) प्राप्त कराइये, (हविषा) देने लेने योग्य न्याय से (देवान्) विद्वानों वा दिव्य गुणों का (यजासि) सत्कार सेवा संयोग कीजिये तथा (यजमाने) राजा आदि मनुष्यों में (वयः) बड़ी उमर को (धाः) धारण कीजिये ॥३५॥

भावार्थः—विद्वान् लोगों को चाहिये कि इस जगत् में दो कर्म निरन्तर करें। प्रथम ब्रह्मचर्य्य और जितेन्द्रियता आदि की शिक्षा से शरीर को रोगरहित बल से युक्त और पूर्ण अवस्थावाला करें। दूसरे विद्या और क्रिया की कुशलता के ग्रहण से आत्मा का बल अच्छे प्रकार साधें कि जिस से सब मनुष्य शरीर और आत्मा के बल से युक्त हुए सब काल में आनन्द भोगें ॥३५॥

नि होतेत्यस्य गृत्समद ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर मनुष्यों का कर्त्तव्य अगले मन्त्र में कहा है॥

नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाँ२ऽअसदत्सुदक्षः।
अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रम्भरः शुचिजिह्वोऽअग्निः ॥३६॥

पदार्थः—जो जन मनुष्यजन्म को पाके (होतृषदने) दानशील विद्वानों के स्थान में (दीदिवान्) धर्मयुक्त व्यवहार का चाहने वाला (त्वेषः) शुभगुणों से प्रकाशमान (विदानः) ज्ञान बढ़ाने की इच्छा रखने वाला (शुचिजिह्वः) सत्यभाषण से पवित्र वाणीयुक्त (सुदक्षः) अच्छे बल वाला (अदब्धव्रतप्रमतिः) रक्षा करने योग्य धर्माचरणरूपी व्रतों से उत्तम बुद्धियुक्त (वसिष्ठः) अत्यन्त बसाने वाला (सहस्रम्भरः) असंख्य शुभगुणों को धारण करने वाला (होता) शुभगुणों का ग्राहक पुरुष निरन्तर (न्यसदत्) स्थित होवे तो वह सम्पूर्ण सुख को प्राप्त हो जावे ॥३६॥

भावार्थः—जब माता पिता अपने पुत्र तथा कन्याओं को अच्छी शिक्षा देके पीछे विद्वान् और विदुषी के समीप बहुत काल तक स्थितिपूर्वक पढ़वावें तब वे कन्या और पुत्र सूर्य्य के समान अपने कुल और देश के प्रकाशक हों ॥३६॥

संसीदस्वेत्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

इस पठनपाठन के विषय में अध्यापक कैसा होवे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सꣳसीदस्व महाँ२ऽअसि शोचस्व देववीतमः । विधूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥३७॥

पदार्थः—हे (प्रशस्त) प्रशंसा के योग्य (मियेध्य) दुष्टों को पृथक् करने वाले (अग्ने) तेजस्वी विद्वान् ! (देववीतमः) विद्वानों को अत्यन्त इष्ट आप (विधूमम्) निर्मल (दर्शतम्) देखने योग्य (अरुषम्) सुन्दर रूप को (सृज) सिद्ध कीजिये (शोचस्व) तथा पवित्र हूजिये । जिस कारण आप (महान्) बड़े-बड़े गुणों में युक्त विद्वान् (असि) हैं इसलिये पढ़ाने की गद्दी पर (संसीदस्व) अच्छे प्रकार स्थित हूजिये ॥३७॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों का अत्यन्त प्रिय, अच्छे रूप गुण और लावण्य से युक्त, पवित्र, बड़ा धर्मात्मा, आप्त विद्वान् होवे वही शास्त्रों के पढ़ाने को समर्थ होता है ॥३७॥

अपो देवीरित्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवताः । न्यङ्कुसारिणी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

आगे जल आदि पदार्थों के शोधने से प्रजा में क्या होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अपो देवीरुपसृज मधुमतीरयक्ष्माय प्रजाभ्यः । तासामास्थाना-दुज्जिहतामोषधयः सुपिप्पलाः ॥३८॥

पदार्थः—हे श्रेष्ठ वैद्य पुरुष ! आप (मधुमतीः) प्रशंसित मधुर आदि गुणयुक्त (देवीः) पवित्र (अपः) जलों को (उपसृज) उत्पन्न कीजिये जिस से (तासाम्) उन जलों के (अस्थानात्) आश्रय से (सुपिप्पलाः) सुन्दर फलों वाली (ओषधयः) सोमलता आदि ओषधियों को (प्रजाभ्यः) रक्षा करने योग्य प्राणियों के (अयक्ष्माय) यक्ष्मा आदि रोगों की निवृत्ति के लिये (उज्जिहताम्) प्राप्त हूजिये ॥३८॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि दो प्रकार के वैद्य रक्खे । एक तो सुगन्ध आदि पदार्थों के होम से वायु वर्षा जल और ओषधियों को शुद्ध करें । दूसरे श्रेष्ठ विद्वान् वैद्य होकर निदान आदि के द्वारा सब प्राणियों को रोगरहित रक्खें । इस कर्म के विना संसार में सार्वजनिक सुख नहीं हो सकता ॥३८॥

सं त इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । वायुर्देवता । विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब स्त्री पुरुष का कर्त्तव्यकर्म अगले मन्त्र में कहा है ।।

सं ते वायुर्मातरिश्वा दधातूत्तानाया हृदयं यद्विकस्तम् । यो देवानां चरसि प्राणथेन कस्मै देव वषडस्तु तुभ्यम् ।।३९।।

पदार्थः—हे पत्नि राणी ! (उत्तानायाः) बड़े शुभलक्षणों के विस्तार से युक्त (ते) आप का (यत्) जो (विकस्तम्) अनेक प्रकार से शिक्षा को प्राप्त हुआ (हृदयम्) अन्तःकरण हो उस को यज्ञ से शुद्ध हुआ (मातरिश्वा) आकाश में चलने वाला (वायुः) पवन (संदधातु) अच्छे प्रकार पुष्ट करे । हे (देव) अच्छे सुख देने हारे पति स्वामी ! (यः) जो विद्वान् आप (प्राणथेन) सुख के हेतु प्राणवायु से (देवानाम्) धर्मात्मा विद्वानों के जिस अनेक प्रकार से शिक्षित हृदय को (चरसि) प्राप्त होते हो उस (कस्मै) सुखस्वरूप (तुभ्यम्) आपके लिये मुझ से (वषट्) क्रिया की कुशलता (अस्तु) प्राप्त होवे ।।३९।।

भावार्थः—पूर्ण जवान पुरुष जिस ब्रह्मचारिणी कुमारी कन्या के साथ विवाह करे उस के साथ विरुद्ध कभी न करे । जो कन्या पूर्ण युवती स्त्री जिस कुमार ब्रह्मचारी के साथ विवाह करे उसका अनिष्ट कभी मन से भी न विचारे । इस प्रकार दोनों परस्पर प्रसन्न हुए प्रीति के साथ घर के कार्य्य सम्भालें ।।३९।।

सुजात इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ।।

फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ।

सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरूथमासदत्स्वः । वासोऽअग्ने विश्वरूपꣳ संव्ययस्व विभावसो ।।४०।।

पदार्थः—हे (विभावसो) विविध प्रकाशसहित धन से युक्त (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी ! (ज्योतिषा) विद्याप्रकाश के साथ (सुजातः) अच्छे प्रसिद्ध आप (स्वः) सुखदायक (वरूथम्) श्रेष्ठ (शर्म्म) घर को (आसदत्) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये (विश्वरूपम्) अनेक चित्र विचित्ररूपी (वासः) वस्त्र को (संव्ययस्व) धारण कीजिये ।।४०।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विवाहित स्त्री-पुरुषों को चाहिये कि जैसे सूर्य्य अपने प्रकाश से सब जगत् को प्रकाशित करता है वैसे ही अपने सुन्दर वस्त्र और आभूषणों से शोभायमान होके घर आदि को सदा पवित्र रक्खें ।।४०।।

उदु तिष्ठेत्यस्य विश्वमना ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गांधारः स्वरः ।।

फिर भी विद्वानों का कृत्य अगले मन्त्र में कहा है ।।

उदु तिष्ठ स्वध्वरावा नो देव्या धिया। दृशे च भासा बृहता सुशुक्वनिराग्ने याहि सुशस्तिभिः ।।४१।।

पदार्थः—हे (स्वध्वर) अच्छे माननीय व्यवहार करने वाले सज्जन विद्वन् गृहस्थ ! आप निरन्तर (उत्तिष्ठ) पुरुषार्थ से उन्नति को प्राप्त हो के अन्य मनुष्यों को प्राप्त सदा किया कीजिये । (देव्या) शुद्ध विद्या और शिक्षा से युक्त (धिया) बुद्धि वा क्रिया से (नः) हम लोगों की (अव) रक्षा कीजिये । हे (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमान ! (सुशुक्वनिः) अच्छे पवित्र पदार्थों के विभाग करनेहारे आप (उ) तर्क के साथ (दृशे) देखने को (बृहता) बड़े (भासा) प्रकाशरूप सूर्य्य के तुल्य (सुशस्तिभिः) सुन्दर प्रशंसित गुणों के साथ सब विद्याओं को (याहि) प्राप्त हूजिये और हमारे लिये भी सब विद्याओं को प्राप्त कीजिये ।।४१।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् लोगों को चाहिये कि शुद्ध विद्या और बुद्धि के दान से सब मनुष्यों की निरन्तर रक्षा करें क्योंकि अच्छी शिक्षा के विना मनुष्यों के सुख के लिये और कोई भी आश्रय नहीं है। इसलिये सब को उचित है कि आलस्य और कपट आदि कुकर्मों को छोड़ के विद्या के प्रचार के लिये सदा प्रयत्न किया करें ।।४१।।

ऊर्ध्व इत्यस्य कण्व ऋषिः । अग्निर्देवता । उपरिष्टाद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।।

फिर भी उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

ऊर्ध्वऽऊ षु णऽऊतये तिष्ठा देवो न सविता। ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ।।४२।।

पदार्थः—हे अध्यापक विद्वान् ! आप (ऊर्ध्वः) ऊपर आकाश में रहने वाले (देवः) प्रकाशक (सविता) सूर्य्य के (न) समान (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (सुतिष्ठ) अच्छे प्रकार स्थित हूजिये ।(यत्) जो आप (अञ्जिभिः) प्रकट करनेहारे किरणों के सदृश (वाघद्भिः) युद्धविद्या में कुशल बुद्धिमानों के साथ (वाजस्य) विज्ञान के (सनिता) सेवनेहारे हूजिये (उ) उसी को हम लोग (विह्वयामहे) विशेष करके बुलाते हैं ।।४२।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। अध्यापक और उपदेशक विद्वान् को चाहिये कि जैसे सूर्य्य भूमि और चन्द्रमा आदि लोकों से

ऊपर स्थित होके अपनी किरणों से सब जगत् की रक्षा के लिये प्रकाश करता है वैसे उत्तम गुणों से विद्या और न्याय का प्रकाश कर के सब प्रजाओं को सदा सुशोभित करें ॥४२॥

स जात इत्यस्य त्रित ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पिता पुत्र का व्यवहार अगले मन्त्र में कहा है ॥

स जातो गर्भोऽअसि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृतऽओषधीषु । चित्रः शिशुः परि तमांᳬस्यक्तून् प्र मातृभ्योऽअधि कनिक्रदद गाः ॥४३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् ! जो आप जैसे (रोदस्योः) आकाश और पृथिवी में (जातः) प्रसिद्ध (चारुः) सुन्दर (ओषधीषु) सोमलतादि ओषधियों में (विभृतः) विशेष करके धारण वा पोषण किया हुआ (चित्रः) आश्चर्यरूप (गर्भः) स्वीकार करने योग्य सूर्य्य (मातृभ्यः) मान्य करने हारी माता अर्थात् किरणों से (तमांसि) रात्रियों तथा (अक्तून्) अन्धेरों को (पर्य्यधिकनिक्रदत्) सब ओर से अधिक करके चलता हुआ (गाः) चलाता है वैसे ही (शिशुः) बालक (गाः) विद्या को प्राप्त होवे ॥४३॥

भावार्थः—जैसे ब्रह्मचर्य्य आदि अच्छे नियमों से उत्पन्न किया पुत्र विद्या पढ़ के माता पिता को सुख देता है वैसे ही माता पिता को चाहिये कि प्रजा को सुख देवें ॥४३॥

स्थिरो भवेत्यस्य त्रित ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब माता पिता अपने सन्तानों को किस प्रकार शिक्षा करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

स्थिरो भव वीड्वङ्गऽआशुर्भव वाज्यर्वन् । पृथुर्भव सुषदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहणः ॥४४॥

पदार्थः—हे (अर्वन्) विज्ञानयुक्त पुत्र ! तू विद्याग्रहण के लिये (स्थिरः) दृढ़ (भव) हो, (वाजी) नीति को प्राप्त होके (वीड्वङ्गः) दृढ़ अति बलवान् अवयवों से युक्त (आशुः) शीघ्र कर्म करने वाला (भव) हो । तू (अग्नेः) अग्निसम्बन्धी (सुषदः) सुन्दर व्यवहारों में स्थित और (पुरीषवाहणः) पालन आदि शुभ कर्मों को प्राप्त कराने वाला (पृथुः) सुख का विस्तार करने हारा (भव) हो ॥४४॥

भावार्थः—हे अच्छे सन्तानो ! तुम को चाहिये कि ब्रह्मचर्य्य सेवन से शरीर का बल और विद्या तथा अच्छी शिक्षा से आत्मा का बल

पूर्ण दृढ़ कर स्थिरता से रक्षा करो और आग्नेय आदि अस्त्र विद्या से शत्रुओं का विनाश करो—इस प्रकार माता पिता अपने सन्तानों को शिक्षा करें ॥४४॥

शिव इत्यस्य चित्र ऋषिः। अग्निर्देवता। विराट् पथ्या बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर उन को प्रजा में कैसे वर्त्तना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमङ्गिरः। मा द्यावापृथिवीऽअभि शोचीर्मान्तरिक्षं मा वनस्पतीन् ॥४५॥

पदार्थः—हे (अङ्गिरः) प्राणों के समान प्रिय सुसन्तान! तू (मानुषीभ्यः) मनुष्य आदि (प्रजाभ्यः) प्रसिद्ध प्रजाओं के लिये (शिवः) कल्याणकारी मङ्गलमय (भव) हो। (द्यावापृथिवी) बिजुली और भूमि के विषय में (मा) मत (अभिशोचीः) अति शोच मत कर (अन्तरिक्षम्) अवकाश के विषय में (मा) मत शोच कर और (वनस्पतीन्) वट आदि वनस्पतियों का शोच मत कर॥४५॥

भावार्थः—सुसन्तानों को चाहिये कि प्रजा के प्रति मङ्गलाचारी हो के पृथिवी आदि पदार्थों के विषय में शोकरहित होवें किन्तु इन सब पदार्थों की रक्षा विधान कर उपकार के लिये उत्साह के साथ प्रयत्न करें॥४५॥

प्रैतु वाजीत्यस्य त्रित ऋषिः। अग्निर्देवता। ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

प्रैतु वाजी कनिक्रदन्नानदद्रासभः पत्वा। भरन्नग्निं पुरीष्यं मा पाद्यायुषः पुरा। वृषाग्निं वृषणं भरन्नपां गर्भꣳ समुद्रियम्। अग्नऽआयाहि वीतये ॥४६॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् उत्तम सन्तान! तू (कनिक्रदत्) चलते और (नानदत्) शीघ्र शब्द करते हुए (रासभः) देने योग्य (पत्वा) चलने वाले वा (वाजी) घोड़ा के समान (आयुषः) नियत वर्षों की अवस्था से (पुरा) पहिले (मा) न (प्रैतु) मरे। (पुरीष्यम्) रक्षा के हेतु पदार्थों में उत्तम (अग्निम्) बिजुली को (भरन्) धारण करता हुआ (मा पादि) इधर उधर मत भाग। जैसे (वृषा) अति बलवान् (अपाम्) जलों के (समुद्रियम्) समुद्र में हुए (गर्भम्) स्वीकार करने योग्य (वृषणम्) वर्षा करने

हारे (अग्निम्) सूर्य्य को (भरन्) धारण करता हुआ (वीतये) सुखों की व्याप्ति के लिये (आयाहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥४६॥

भावार्थः—राजा आदि मनुष्यों को योग्य है कि अपने सन्तानों को विषयों की लोलुपता से छुड़ा के ब्रह्मचर्य्य के साथ पूर्ण अवस्था को धारण कर, अग्नि आदि पदार्थों के विज्ञान से धर्म्मयुक्त व्यवहार की उन्नति करावें ॥४६॥

ऋतमित्यस्य त्रित ऋषिः। अग्निर्देवता। विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को क्या-क्या आचरण करना और क्या-क्या छोड़ना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऋतꣳ सत्यमृतꣳ सत्यमग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरामः। ओषधयः प्रतिमोदध्वमग्निमेतꣳ शिवमायन्तमभ्यत्र युष्माः। व्यस्यन् विश्वाऽअनिराऽअमीवा निषीदन्नोऽअप दुर्मतिं जहि ॥४७॥

पदार्थः—हे सुसन्तानो ! जैसे हम लोग (ऋतम्) यथार्थ (सत्यम्) नाशरहित (ऋतम्) अव्यभिचारी (सत्यम्) सत्पुरुषों में श्रेष्ठ तथा सत्य मानना बोलना और करना (पुरीष्यम्) रक्षा के साधनों में उत्तम (अग्निम्) विजुली को (अङ्गिरस्वत्) वायु के तुल्य (भरामः) धारण करते हैं। (एतम्) इस पूर्वोक्त (आयन्तम्) प्राप्त हुए (शिवम्) मङ्गलकारी (अग्निम्) विजुली को प्राप्त हो के तुम लोग भी (अभिमोदध्वम्) आनन्दित रहो। जो (ओषधयः) जौ आदि ओषधि (युष्माः) तुम्हारे (प्रति) लिये प्राप्त होवें उन को हम लोग धारण करते हैं वैसे तुम भी करो। हे वैद्य ! आप (विश्वाः) सब (अनिराः) जो निरन्तर देने योग्य न हों (अमीवाः) ऐसी रोगों की पीड़ाओं को (व्यस्यन्) अनेक प्रकार से अलग करते हुए (अत्र) इस आयुर्वेदविद्या में (निषीदन्) स्थित हो के (नः) हम लोगों की (दुर्मतिम्) दुष्ट बुद्धि को (अपजहि) सब प्रकार दूर कीजिये इस प्रकार इस वैद्य की प्रार्थना करो ॥४७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को उचित है कि यथार्थ अविनाशी परकारण ब्रह्म, दूसरा कारण यथार्थ अविनाशी अव्यक्त जीव, सत्यभाषणादि तथा प्रकृति से उत्पन्न हुए अग्नि और औषधि आदि पदार्थों के धारण से शरीर के ज्वर आदि रोगों और आत्मा के अविद्या आदि दोषों को छुड़ा के मद्य आदि द्रव्यों के त्याग से अच्छी बुद्धि कर और सुख को प्राप्त हो के नित्य आनन्द में रहो और कभी इससे विपरीत आचरण कर सुख को छोड़ के दुःख सागर में मत गिरो ॥४७॥

ओषधय इत्यस्य त्रित ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

स्त्रियों को क्या क्या आचरण करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

ओष॑धयः॒ प्रति॑गृभ्णीत॒ पुष्प॑वतीः सुपिप्प॒लाः। अ॒यं वो॒ गर्भ॑ऽ

ऋ॒त्वियः॑ प्र॒त्नꣳ स॒धस्थ॒मास॑दत्॥४८॥

पदार्थः—हे स्त्रियो! तुम लोग जो (ओषधयः) सोमलता आदि ओषधि हैं जिन से (अयम्) यह (ऋत्वियः) ठीक ऋतुकाल को प्राप्त हुआ (गर्भः) गर्भ (वः) तुम्हारे (प्रत्नम्) प्राचीन (सधस्थम्) नियत स्थान गर्भाशय को प्राप्त होवे उन (पुष्पवतीः) श्रेष्ठ पुष्पों वाली (सुपिप्पलाः) सुन्दर फलों से युक्त ओषधियों को (प्रतिगृभ्णीत) निश्चय करके ग्रहण करो॥४८॥

भावार्थः—माता पिता को चाहिये कि अपनी कन्याओं को व्याकरण आदि शास्त्र पढ़ा के वैद्यक शास्त्र पढ़ावें। जिससे ये कन्या लोग रोगों का नाश और गर्भ का स्थापन करने वाली ओषधियों को जान और अच्छे सन्तानों को उत्पन्न करके निरन्तर आनन्द भोगें॥४८॥

वि पाजसेत्यस्योत्कील ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

विवाह के समय स्त्री और पुरुष क्या क्या प्रतिज्ञा करें यह अगले मन्त्र में कहा है॥

वि पाज॑सा पृ॒थुना॒ शोशु॑चानो॒ बाध॑स्व द्वि॒षो र॒क्षसो॒ऽअमी॑वाः।

सु॒शर्म॑णो बृह॒तः शर्म॑णि स्याम॒ग्नेर॒हꣳ सु॒हव॑स्य॒ प्रणी॑तौ॥४९॥

पदार्थः—हे पते! जो आप (पृथुना) विस्तृत (वि) विविध प्रकार के (पाजसा) बल के साथ (शोशुचानः) शीघ्र शुद्ध सदा वर्तें और (अमीवाः) रोगों के समान प्राणियों को पीड़ा देने हारी (रक्षसः) दुष्ट (द्विषः) शत्रुरूप व्यभिचारिणी स्त्रियों को (बाधस्व) ताड़ना देवें तो मैं (बृहतः) बड़े (सुशर्मणः) अच्छे शोभायमान (सुहवस्य) सुन्दर लेना देना व्यवहार जिस में हो ऐसे (अग्नेः) अग्नि के तुल्य प्रकाशमान आपके (शर्मणि) सुखकारक घर में और (प्रणीतौ) उत्तम धर्मयुक्त नीति में आप की स्त्री (स्याम) होऊं॥४९॥

भावार्थः—विवाह के समय में स्त्री पुरुष को चाहिये कि व्यभिचार को छोड़ने की प्रतिज्ञा कर व्यभिचारिणी स्त्री और लम्पट पुरुषों का सङ्ग सर्वथा छोड़ आपस में भी अति विषयासक्ति को छोड़ और ऋतुगामी होके परस्पर प्रीति के साथ पराक्रम वाले संतानों को उत्पन्न करें क्योंकि स्त्री वा पुरुष के लिये अप्रिय, आयु का नाशक, निन्दा के योग्य कर्म व्यभिचार के समान दूसरा कोई भी नहीं है। इसलिये इस व्यभिचार कर्म को सब

प्रकार छोड़ और धर्माचरण करने वाला हो के पूर्ण अवस्था के सुख को भोगें ॥४९॥

आपो हिष्ठेत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवताः । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब विवाह किये स्त्री और पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता नऽऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥५०॥

पदार्थः—हे (आपः) जलों के समान शुभ गुणों में व्याप्त होने वाली श्रेष्ठ स्त्रियो ! जो तुम लोग (मयोभुवः) सुख भोगने वाली (स्थ) हो (ताः) वे तुम (ऊर्जे) बलयुक्त पराक्रम और (महे) बड़े बड़े (चक्षसे) कहने योग्य (रणाय) संग्राम के लिये (नः) हम लोगों को (हि) निश्चय करके (दधातन) धारण करो ॥५०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे स्त्री अपने पतियों को रक्खें वैसे पति भी अपनी अपनी स्त्रियों को सदा सुख देवें । ये दोनों युद्धकर्म में भी पृथक् २ न वसें अर्थात् इकट्ठे ही सदा वर्त्ताव रक्खें ॥५०॥

यो व इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवताः । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी वही उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥५१॥

पदार्थः—हे स्त्रियो ! (वः) तुम्हारा और (नः) हमारा (इह) गृहाश्रम में जो (शिवतमः) अत्यन्त सुखकारी (रसः) कर्त्तव्य आनन्द है (तस्य) उस का (मातरः) (उशतीरिव) जैसे कामयमान माता अपने पुत्रों को सेवन करती है वैसे (भाजयत) सेवन करो ॥५१॥

भावार्थः—स्त्रियों को चाहिये कि जैसे माता पिता अपने पुत्रों का सेवन करते हैं वैसे अपने-अपने पतियों की प्रीति पूर्वक सेवा करें । ऐसे ही अपनी अपनी स्त्रियों की पति भी सेवा करें । जैसे प्यासे प्राणियों को जल तृप्त करता है वैसे अच्छे स्वभाव के आनन्द से स्त्री पुरुष भी परस्पर प्रसन्न रहें ॥५१॥

तस्मा इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। आपो देवताः। गायत्री छन्दः।
षड्जः स्वरः।

फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

तस्माऽअरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः ॥५२॥

पदार्थः—हे (आपः) जलों के समान शान्त स्वभाव से वर्त्तमान स्त्रियो! जो तुम लोग (नः) हम लोगों के (क्षयाय) निवासस्थान के लिये (जिन्वथ) तृप्त और (जनयथ) अच्छे सन्तान उत्पन्न करो उन (वः) तुम लोगों को हम लोग (अरम्) सामर्थ्य के साथ (गमाम) प्राप्त होवें। जिस धर्मयुक्त व्यवहार की प्रतिज्ञा करो उसका पालन करने वाली होओ और उसी का पालन करने वाले हम लोग भी होवें॥५२॥

भावार्थः—जिस पुरुष की जो स्त्री वा जिस स्त्री का जो पुरुष हो वे आपस में किसी का अनिष्टचिन्तन कदापि न करें। ऐसे ही सुख और सन्तानों से शोभायमान हो के धर्म्म से घर के कार्य्य करें॥५२॥

मित्र इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। मित्रो देवताः। उपरिष्टाद् बृहती
छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

मित्रः सꣳसृज्य पृथिवीं भूमिं च ज्योतिषा सह। सुजातं जातवेदसमयक्ष्माय त्वा सꣳसृजामि प्रजाभ्यः ॥५३॥

पदार्थः—हे पते! जो आप (मित्रः) सब के मित्र होके (प्रजाभ्यः) पालने योग्य प्रजाओं को (अयक्ष्माय) आरोग्य के लिये (ज्योतिषा) विद्या और न्याय की अच्छी शिक्षा के प्रकाश के (सह) साथ (पृथिवीम्) अन्तरिक्ष (च) और (भूमिम्) पृथिवी के साथ (संसृज्य) सम्बन्ध करके मुझ को सुख देते हो उस (सुजातम्) अच्छे प्रकार प्रसिद्ध (जातवेदसम्) वेदों के जानने हारे (त्वा) आपको मैं (संसृजामि) प्रसिद्ध करती हूँ॥५३॥

भावार्थः—स्त्रीपुरुषों को चाहिये कि श्रेष्ठ गुणवान् विद्वानों के संग से शुद्ध आचार का ग्रहण कर शरीर और आत्मा के आरोग्य को प्राप्त हो के अच्छे-अच्छे सन्तानों को उत्पन्न करें॥५३॥

रुद्रा इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। रुद्रा देवताः। अनुष्टुप्छन्दः।
गान्धारः स्वरः॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

रुद्राः सꣳसृज्य पृथिवीं बृहज्ज्योतिः समीधिरे। तेषां भानुरजस्रऽइच्छुक्रो देवेषु रोचते ॥५४॥

पदार्थः—हे स्त्रीपुरुषो! (इत्) जैसे (रुद्राः) प्राणवायु के अवयवरूप समानादि वायु (संसृज्य) सूर्य्य को उत्पन्न करके (पृथिवीम्) भूमि को (बृहत्) बड़े (ज्योतिः) प्रकाश के साथ (समीधिरे) प्रकाशित करते हैं (तेषाम्) उन से उत्पन्न हुआ (शुक्रः) कान्तिमान् (भानुः) सूर्य्य (देवेषु) दिव्य पृथिवी आदि में (अजस्रः) निरन्तर (रोचते) प्रकाश करता है वैसे ही विद्यारूपी न्याय सूर्य्य को उत्पन्न कर के प्रजापुरुषों को प्रकाशित और उन से प्रजाओं में दिव्य सुखों का प्रचार करो ॥५४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जैसे वायु सूर्य्य का, सूर्य्य प्रकाश का, प्रकाश नेत्रों से देखने के व्यवहार का कारण है वैसे ही स्त्री पुरुष आपस के सुख के साधन उपसाधन करने वाले होके सुखों को सिद्ध करें ॥५४॥

संसृष्टामित्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। सिनीवाली देवता। विराडनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

स्त्रियों को कैसी दासी रखनी चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सꣳसृष्टां वसुभी रुद्रैर्धीरैः कर्मण्यां मृदम्। हस्ताभ्यां मृद्वीं कृत्वा सिनीवाली कृणोतु ताम् ॥५५॥

पदार्थः—हे पते! आप जैसे कारीगर मनुष्य (हस्ताभ्याम्) हाथों से (कर्मण्याम्) क्रिया से सिद्ध की हुई (मृदम्) मट्टी को योग्य करता है वैसे (धीरैः) अच्छा संयम रखने (वसुभिः) जो चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य के सेवन से विद्या को प्राप्त हुए (रुद्रैः) और जिन्होंने चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य के सेवन से विद्या बल को पूर्ण किया हो उन्हीं से (संसृष्टाम्) अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुई हो उस ब्रह्मचारिणी युवती को (मृद्वीम्) कोमल गुण स्वभाव वाली (कृणोतु) कीजिये और जो स्त्री (सिनीवाली) प्रेमवद्ध कन्याओं को बलवान् करने वाली है (ताम्) उसको अपनी स्त्री करके सुखी कीजिये ॥५५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे कुम्हार आदि कारीगर लोग जल मट्टी को कोमल कर उससे घड़े आदि पदार्थ बना के सुख के काम सिद्ध करते हैं वैसे ही विद्वान् माता पिता से शिक्षा को प्राप्त हुई हृदय को प्रिय ब्रह्मचारिणी कन्याओं को पुरुष लोग विवाह के लिये ग्रहण कर के गृहाश्रम के सब काम सिद्ध करें ॥५५॥

सिनीवालीत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । अदितिर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सिनीवाली सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा । सा तुभ्यमदिते मह्योखां दधातु हस्तयोः ॥५६॥

पदार्थः—हे (महि) सत्कार के योग्य (अदिते) अखंडित आनन्द भोगने वाली स्त्री ! जो (सिनीवाली) प्रेम से युक्त (सुकपर्दा) अच्छे केशों वाली (सुकुरीरा) सुन्दर श्रेष्ठ कर्मों को सेवने हारी और (स्वौपशा) अच्छे स्वादिष्ट भोजन के पदार्थ बनाने वाली जिस (तुभ्यम्) तेरे लिये (हस्तयोः) हाथों में (उखाम्) दाल आदि रांधने की बटलोई को (दधातु) धारण करे (सा) उस का तू सेवन कर ॥५६॥

भावार्थः—श्रेष्ठ स्त्रियों को उचित है कि अच्छी शिक्षित चतुर दासियों को रक्खें कि जिससे सब पाक आदि की सेवा ठीक ठीक समय पर होती रहे ॥५६॥

उखामित्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । अदितिर्देवता । भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

उखां कृणोतु शक्त्या बाहुभ्यामदितिर्धिया । माता पुत्रं यथोपस्थे साग्निं बिभर्त्तु गर्भऽआ । मखस्य शिरोऽसि ॥५७॥

पदार्थः—हे गृहस्थ पुरुष ! जिस कारण तू (मखस्य) यज्ञ के (शिरः) उत्तमांग के समान (असि) है इस कारण आप (धिया) बुद्धि वा कर्म से तथा (शक्त्या) पाकविद्या के सामर्थ्य और (बाहुभ्याम्) दोनों बाहुओं से (उखाम्) पकाने की बटलोई को (कृणोतु) सिद्ध करें जो (अदितिः) जननी आपकी स्त्री है (सा) वह (गर्भे) अपनी कोख में, (यथा) जैसे माता (उपस्थे) अपनी गोद में (पुत्रम्) पुत्र को सुखपूर्वक बैठावे वैसे, (अग्निम्) अग्निके समान तेजस्वी वीर्य्य को धारण करे ॥५७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है । कुमार स्त्रीपुरुषों को योग्य है कि ब्रह्मचर्य के साथ विद्या और अच्छी शिक्षा को पूर्ण कर बल बुद्धि और पराक्रमयुक्त संतान उत्पन्न होने के लिये वैद्यकशास्त्र की रीति से बड़ी बड़ी ओषधियों से पाक बना के और विधिपूर्वक गर्भाधान करके पीछे पथ्य से रहें और आपस में मित्रता के साथ वर्त्त के पुत्रों के गर्भाधानादि कर्म्म किया करें ॥५७॥

वसवस्त्वेत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । वसुरुद्रादित्यविश्वेदेवा देवताः । पूर्वार्द्ध-स्योत्तरार्द्धस्य चोत्कृती छन्दसी । षड्जः स्वरः ।।

फिर स्त्री पुरुष क्या करके क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

वसवस्त्वा कृण्वन्तु गायत्रेण छन्दसाऽङ्गिरस्वद्ध्रुवासि पृथिव्यसि धारया मयि प्रजाꣳ रायस्पोषं गौपत्यꣳ सुवीर्य्यꣳ सजातान्यजमानाय रुद्रास्त्वा कृण्वन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद्ध्रुवास्यन्तरिक्षमसि धारया मयि प्रजाꣳ रायस्पोषं गौपत्यꣳ सुवीर्य्यꣳ सजातान्यजमाना-याऽऽदित्यास्त्वा कृण्वन्तु जागतेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद्ध्रुवासि द्यौरसि धारया मयि प्रजाꣳ रायस्पोषं गौपत्यꣳ सुवीर्य्यꣳ सजातान्यजमानाय विश्वे त्वा देवा वैश्वानराः कृण्वन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वद्ध्रुवासि दिशोऽसि धारया मयि प्रजाꣳ रायस्पोषं गौपत्यꣳ सुवीर्य्यꣳ सजाता-न्यजमानाय ।।५८।।

पदार्थः—हे ब्रह्मचारिणी कुमारी स्त्री ! जो तू (अङ्गिरस्वत्) धनंजय प्राण-वायु के समतुल्य (ध्रुवा) निश्चल (असि) है और (पृथिव्यसि) विस्तृत सुख करने हारी है उस (त्वा) तुझ को गायत्रेण वेद में विधान किये (छन्दसा) गायत्री आदि छन्दों से (वसवः) चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य रहने वाले विद्वान् लोग मेरी स्त्री (कृण्वन्तु) करें । हे कुमार ब्रह्मचारी पुरुष ! जो तू (अङ्गिरस्वत्) प्राणवायु के समान निश्चल है और (पृथिवी) पृथिवी के समान क्षमायुक्त (असि) है, जिस (त्वा) तुझ को (वसवः) उक्त वसुसंज्ञक विद्वान् लोग (गायत्रेण) वेद में प्रतिपादन किये (छन्दसा) गायत्री आदि छन्दों से मेरा पति (कृण्वन्तु) करें सो तू (मयि) अपनी प्रिय पत्नी मुझ में (प्रजाम्) सुन्दर सन्तानों (रायः) धन की (पोषम्) पुष्टि (गौपत्यम्) गौ पृथिवी वा वाणी के स्वामीपन और (सुवीर्य्यम्) सुन्दर पराक्रम को (धारय) स्थापन कर । मैं तू दोनों (सजातान्) एक गर्भाशय से उत्पन्न हुए सब सन्तानों को (यजमानाय) विद्या देने हारे आचार्य्य को विद्या ग्रहण के लिये समर्पण करें । हे स्त्रि ! जो तू (अंगिरस्वत्) आकाश के समान (ध्रुवा) निश्चय (असि) है और (अन्तरिक्षम्) अविनाशी प्रेमयुक्त (असि) है उस (त्वा) तुझको (रुद्राः) रुद्रसंज्ञक चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य सेवने हारे विद्वान् लोग (त्रैष्टुभेन) वेद में कहे हुए (छन्दसा) त्रिष्टुप्छन्द से मेरी स्त्री (कृण्वन्तु)

करें। हे वीर पुरुष ! जो तू आकाश के समान निश्चल है और दृढ़ प्रेम से युक्त है जिस तुझ को चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य करने हारे विद्वान् लोग वेद में प्रतिपादन किये त्रिष्टुप्छन्द से मेरा स्वामी करें वह तू (मयि) अपनी प्रिय पत्नी मुझ में (प्रजाम्)बल तथा सत्य धर्म से युक्त सन्तानों, (रायः) राज्यलक्ष्मी की (पोषम्) पुष्टि, (गौपत्यम्) पढ़ाने के अधिष्ठातृत्व और (सुवीर्य्यम्) अच्छे पराक्रम को (धारय) धारण कर, मैं तू दोनों (सजातान्) एक उदर से उत्पन्न हुए सब सन्तानों को अच्छी शिक्षा देकर वेद-विद्या की शिक्षा होने के लिये (यजमानाय) अंग उपांगों के सहित वेद पढ़ाने हारे अध्यापक को देवें। हे विदुषी स्त्री ! जो तू (अंगिरस्वत्) आकाश के समान (ध्रुवा) अचल (असि) है, (द्यौः)सूर्य के सदृश प्रकाशमान(असि) है उस (त्वा) तुझ को (आदित्याः) अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य करके पूर्ण विद्या और बल की प्राप्ति से आप्त सत्यवादी धर्मात्मा विद्वान् लोग (जागतेन) वेद में कहे (छन्दसा) जगती छन्द से मेरी पत्नी (कृण्वन्तु) करें। हे विद्वान् पुरुष ! जो तू आकाश के तुल्य दृढ़ और सूर्य के तुल्य तेजस्वी है उस तुझ को अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य सेवने वाले पूर्ण विद्या से युक्त धर्मात्मा विद्वान् लोग वेदोक्त जगती छन्द से मेरा पति करें। वह तू (मयि) अपनी प्रिय भार्य्या मुझ में (प्रजाम्) शुभगुणों से युक्त सन्तानों को (रायः) चक्रवर्तिराज्य-लक्ष्मी को (पोषम्) पुष्टि (गौपत्यम्) सम्पूर्ण विद्या के स्वामीपन और (सुवीर्यम्) सुन्दर पराक्रम को (धारय) धारण कर। मैं तू दोनों (सजातान्) अपने सन्तानों को जन्म से उपदेश करके सब विद्या ग्रहण करने के लिये (यजमानाय) क्रिया-कौशल के सहित सब विद्याओं के पढ़ाने हारे आचार्य को समर्पण करें। हे सुन्दर ऐश्वर्ययुक्त पत्नि ! जो तू (अंगिरस्वत्) सूत्रात्मा प्राणवायु के समान (ध्रुवा) निश्चल (असि) है और (दिशः) सब दिशाओं में कीर्तिवाली (असि) है उस तुझ को (वैश्वानराः) सब मनुष्यों में शोभायमान (विश्वे) सब (देवाः) उपदेशक विद्वान् लोग (आनुष्टुभेन) वेद में कहे गये (छन्दसा) अनुष्टुप्छन्द से मेरे आधीन (कृण्वन्तु) करें। हे पुरुष ! जो तू सूत्रात्मा वायु के सदृश स्थित है (दिशः) सब दिशाओं में कीर्तिवाला (असि) है जिस (त्वा) तुझ को सब प्रजा में शोभायमान सब विद्वान् लोग मेरे आधीन करें सो आप (मयि) मुझ में (प्रजाम्) शुभ लक्षणयुक्त सन्तानों (रायः) सब ऐश्वर्य्य की (पोषम्) पुष्टि (गौपत्यम्) वाणी की चतुराई और (सुवीर्य्यम्) सुन्दर पराक्रम को (धारय) धारण कर। मैं तू दोनों जने अच्छा उपदेश होने के लिये (सजातान्) अपने सन्तानों को (यजमानाय) सत्य के उपदेशक अध्यापक के समीप समर्पण करें ॥५८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जब स्त्री पुरुष एक दूसरे की परीक्षा करके आपस में दृढ़ प्रीति वाले होवें तब वेदोक्त रीति से यज्ञ का विस्तार और वेदोक्त नियमानुसार विवाह करके धर्म से सन्तानों को

उत्पन्न करें। जब कन्या पुत्र आठ वर्ष के हों तब माता पिता उनको अच्छी शिक्षा देवें। इस के पीछे ब्रह्मचर्य्य धारण करा के विद्या पढ़ाने के लिये अपने घर से बहुत दूर आप्त विद्वान् पुरुषों और आप्त विदुषी स्त्रियों की पाठशालाओं में भेज देवें। वहां पाठशाला में जितने धन का खर्च करना उचित हो उतना करें क्योंकि सन्तानों को विद्यादान के विना कोई उपकार वा धर्म नहीं बन सकता। इसलिये इस का निरन्तर अनुष्ठान किया करें ॥५८॥

अदित्या इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। अदितिर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अदि॑त्यै रास्नास्यदि॑तिष्टे॒ बिलं॑ गृभ्णातु। कृ॒त्वाय॒ सा म॒हीमु॒खां मृ॒न्मयीं॒ योनि॑म॒ग्नये॑। पु॒त्रेभ्यः॒ प्राय॑च्छ॒ददि॑तिः श्र॒पया॒निति॑ ॥५९॥

पदार्थः—हे पढ़ानेहारी विदुषी स्त्री! जिस कारण तू (अदित्यै) विद्याप्रकाश के लिये (रास्ना) दानशील (असि) है इस लिये (ते) तुझ से (बिलम्) ब्रह्मचर्य्य को धारण (कृत्वाय) कर के (अदितिः) पुत्र और कन्याविद्या को (गृभ्णातु) ग्रहण करें। सो (सा) तू (अदितिः) माता (मृन्मयीम्) मट्टी की (योनिम्) मिली और पृथक् (महीम्) बड़ी (उखाम्) पकाने की बटलोई को (अग्नये) अग्नि के निकट रखने के लिये (पुत्रेभ्यः) पुत्रों को (प्रायच्छत्) देवे। विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त होकर बटलोई में (इति) इस प्रकार (श्रपयान्) अन्नादि पदार्थों को पकाओ ॥५९॥

भावार्थः—लड़के पुरुषों और लड़कियां स्त्रियों की पाठशाला में जा ब्रह्मचर्य्य की विधिपूर्वक सुशीलता से विद्या और भोजन बनाने की क्रिया सीखें और आहार विहार भी अच्छे नियम से सेवें। कभी विषय की कथा न सुनें। मद्य-मांस आलस्य और अत्यन्त निद्रा को त्याग के पढ़ाने वाले की सेवा और उस के अनुकूल वर्त्त के अच्छे नियमों को धारण करें ॥५९॥

वसवस्त्वेत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। वस्वादयो मन्त्रोक्ता देवताः। स्वराट् संकृतिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर विद्वान् लोग पढ़ने हारे और उपदेश के योग्य मनुष्यों को कैसे शुद्ध करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

वस॑वस्त्वा धूपयन्तु गाय॒त्रेण॒ छन्द॑साङ्गिर॒स्वद्॒ रु॒द्रास्त्वा॑ धूपयन्तु त्रैष्टु॑भेन॒ छन्द॑साङ्गिर॒स्वदा॑दि॒त्यास्त्वा॑ धूपयन्तु॒ जाग॑तेन॒ छन्द॑साङ्गि-

रस्वद् विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा धूपयन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्व-
दिन्द्रस्त्वा धूपयतु वरुणस्त्वा धूपयतु विष्णुस्त्वा धूपयतु ॥६०॥

पदार्थः—हे ब्रह्मचारिन् वा ब्रह्मचारिणि ! जो (वसवः) प्रथम विद्वान् लोग (गायत्रेण) (छन्दसा) वेद के गायत्री छन्द से (त्वा) तुझ को (अंगिरस्वत्) प्राणों के तुल्य सुगन्धित अन्नादि पदार्थों के समान (धूपयन्तु) संस्कारयुक्त करें, (रुद्राः) मध्यम विद्वान् लोग (त्रैष्टुभेन) (छन्दसा) वेदोक्त त्रिष्टुप्छन्द से (अंगिरस्वत्) विज्ञान के समान (त्वा) तेरा (धूपयन्तु) विद्या और अच्छी शिक्षा से संस्कार करें, (आदित्याः) सर्वोत्तम अध्यापक विद्वान् लोग (जागतेन) (छन्दसा) वेदोक्त जगती छन्द से (अंगिरस्वत्) ब्रह्माण्ड के शुद्ध वायु के सदृश (त्वा) तेरा (धूपयन्तु) धर्मयुक्त व्यवहार के ग्रहण से संस्कार करें, (वैश्वानराः) सब मनुष्यों में सत्य धर्म और विद्या के प्रकाश करने वाले (विश्वे) सर्व (देवाः) सत्योपदेष्टा विद्वान् लोग (आनुष्टुभेन) वेदोक्त अनुष्टुप् (छन्दसा) छन्द से (अंगिरस्वत्) विजुली के समान (त्वा) तेरा (धूपयन्तु) सत्योपदेश से संस्कार करें, (इन्द्रः) परम ऐश्वर्ययुक्त राजा (त्वा) तेरा (धूपयन्तु) राजनीति विद्या से संस्कार करे, (वरुणः) श्रेष्ठ न्यायाधीश (त्वा) तुझको (धूपयतु) न्यायक्रिया से संयुक्त करे और (विष्णुः) सब विद्या और योगाङ्गों का वेत्ता योगीजन (त्वा) तुझ को (धूपयतु) योगविद्या से संस्कारयुक्त करे, तू इन सब की सेवा किया कर ॥६०॥

भावार्थः—सब अध्यापक स्त्री और पुरुषों को चाहिये कि सब श्रेष्ठ क्रियाओं से कन्या पुत्रों को विद्या और शिक्षा से युक्त शीघ्र करें। जिस से ये पूर्ण ब्रह्मचर्य्य ही कर के गृहाश्रम आदि का यथोक्त काल में आचरण करें ॥६०॥

अदितिष्ट्वेत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । अदित्यादयो लिंगोक्ता देवताः । भुरिक्कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः । उखेवरुत्रीत्युत्तरस्य प्रकृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विदुषी स्त्रियां कन्याओं को उत्तम शिक्षा से धर्मात्मा विद्यायुक्त करके इस लोक और परलोक के सुखों को प्राप्त करावें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अदितिष्ट्वा देवी विश्वदेव्यावती पृथिव्याः सधस्थेऽअङ्गिरस्वत् खनत्ववट देवानां त्वा पत्नीर्देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थेऽ अङ्गिरस्वद्दधतूखे । धिषणास्त्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थेऽ अङ्गिरस्वदभीन्धताम् उखे वरूत्रीष्ट्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः

पृथिव्याः स॒धस्थे॑ऽअङ्गि॒र॒स्वच्छ्रपयन्तूखे ग्नास्त्वा दे॒वीर्वि॒श्वदे॑व्यावतीः पृथि॒व्याः स॒धस्थे॑ऽअङ्गि॒र॒स्वत्प॑चन्तूखे जन॑यस्त्वाऽछिन्नपत्रा दे॒वी-र्वि॒श्वदे॑व्यावतीः पृथि॒व्याः स॒धस्थे॑ऽअङ्गि॒र॒स्वत्प॑चन्तूखे ॥६१॥

पदार्थः—हे(अवट)बुराई और निन्दारहित बालक ! (विश्वदेव्यावती) सम्पूर्ण विद्वानों में प्रशस्त ज्ञानवाली (अदितिः) अखंड विद्या पढ़ानेहारी (देवी) विदुषी स्त्री (पृथिव्याः) भूमि के (सधस्थे) एक शुभस्थान में (त्वा) तुझ को (अंगिरस्वत्) अग्नि के समान (खनतु) जैसे भूमि को खोद के कूप जल निष्पन्न करते हैं वैसे विद्यायुक्त करे। हे (उखे) ज्ञानयुक्त कुमारी ! (देवानाम्) विद्वानों की (पत्नीः) स्त्री जो (विश्वदेव्यावतीः) सम्पूर्ण विद्वानों में अधिक विद्यायुक्त(देवीः) विदुषी है (पृथिव्याः) पृथिवी के (सधस्थे) एक स्थान में (अंगिरस्वत्) प्राण के सदृश (त्वा) तुझ को (दधतु) धारण करे। हे (उखे) विज्ञान की इच्छा करने वाली (विश्वदेव्यावतीः) सब विद्वानों में उत्तम (धिषणाः) प्रशंसित वाणीयुक्त बुद्धिमती (देवीः) विद्यायुक्त स्त्री लोग (पृथिव्याः) पृथिवी के (सधस्थे) एक स्थान में(त्वा) तुझ को (अंगिरस्वत्) प्राण के तुल्य (अभीन्धताम्) प्रदीप्त करें। हे (उखे) अन्न आदि पकाने की बटलोई के समान विद्या को धारण करने हारी कन्ये ! (विश्वदेव्यावतीः) उत्तम विदुषी (वरूत्रीः) विद्या-ग्रहण के लिये स्वीकार करने योग्य (देवीः) रूपवती स्त्री लोग (पृथिव्याः) भूमि के (सधस्थे) एक शुद्ध स्थान में (त्वा) तुझ को (अंगिरस्वत्) सूर्य के तुल्य (श्रपयन्तु) शुद्ध तेजस्विनी करें। हे (उखे) ज्ञान चाहनेहारी कुमारी ! (विश्वदेव्यावतीः) बहुत विद्यावानों में उत्तम (देवीः) शुद्ध विद्या से युक्त (ग्नाः) वेदवाणी को जानने वाली स्त्री लोग (पृथिव्याः) भूमि के एक (सधस्थे) उत्तम स्थान में (त्वा) तुझ को (अंगिरस्वत्) बिजुली के तुल्य (पचन्तु) दृढ़ बलधारिणी करें। हे (उखे) ज्ञान की इच्छा करने वाली कुमारी ! (विश्वदेव्यावतीः) उत्तम विद्या पढ़ी (अच्छिन्नपत्राः) अखण्डित नवीन शुद्ध वस्त्रों को धारने वा यानों में चलने वाली (जनयः) शुभगुणों से प्रसिद्ध (देवीः) दिव्य गुणों की देने हारी स्त्री लोग (पृथिव्याः) पृथिवी के (सधस्थे) उत्तम प्रदेश में (त्वा) तुझ को (अंगिरस्वत्) ओषधियों के रस के समान (पचन्तु) संस्कारयुक्त करें। हे कुमारी कन्ये ! तू इन पूर्वोक्त सब स्त्रियों से ब्रह्मचर्य्य के साथ विद्या ग्रहण कर ॥६१॥

भावार्थः—माता पिता आचार्य्य और अतिथि अर्थात् भ्रमणशील विरक्त पुरुषों को चाहिये कि जैसे रसोइये बटलोई आदि पात्रों में अन्न का संस्कार करके उत्तम सिद्ध करते हैं वैसे ही बाल्यावस्था से ले के विवाह

से पहिले पहिले लड़कों और लड़कियों को उत्तम विद्या और शिक्षा से सम्पन्न करें ॥६१॥

मित्रस्येत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। मित्रो देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

जो जिस पुरुष की स्त्री होवे वह उसके ऐश्वर्य की निरन्तर रक्षा करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

मित्रस्य॑ चर्षणीधृतोऽवो॑ दे॒वस्य॑ सान॒सि। द्युम्नं चि॒त्रश्र॑वस्तमम् ॥६२॥

पदार्थः—हे स्त्री तू! (चर्षणीधृतः) अच्छी शिक्षा से मनुष्यों का धारण करने हारे (मित्रस्य) मित्र (देवस्य) कमनीय अपने पति के (चित्रश्रवस्तमम्) आश्चर्य्यरूप अन्नादि पदार्थ जिस से हों ऐसे (सानसि) सेवन योग्य प्राचीन (द्युम्नम्) धन की (अवः) रक्षा कर ॥६२॥

भावार्थः—घर पर काम करने में कुशल स्त्री को चाहिये कि घर के भीतर के सब काम अपने आधीन रख के ठीक ठीक बढ़ाया करे ॥६२॥

देवस्त्वेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। सविता देवता। भुरिग् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

दे॒वस्त्वा॑ सवि॒तोद्व॑पतु सु॒पा॒णिः स्व॑ङ्गु॒रिः सु॒बा॒हुरु॒त शक्त्या॑। अव्य॑थमाना पृथि॒व्यामाशा॒ दिश॒ऽआपृ॑ण ॥६३॥

पदार्थः—हे स्त्रि! (सुबाहुः) अच्छे जिस के भुजा (सुपाणिः) सुन्दर हाथ और (स्वङ्गुरिः) शोभायुक्त जिसकी अंगुली हों ऐसा (सविता) सूर्य के समान ऐश्वर्य्यदाता (देवः) अच्छे गुण कर्म और स्वभावों से युक्त पति (शक्त्या) अपने सामर्थ्य से (पृथिव्याम्) पृथिवी पर स्थित (त्वा) तुझ को (उद्वपतु) वृद्धि के साथ गर्भवती करे। और तू भी अपने सामर्थ्य से (अव्यथमाना) निर्भय हुई पति के सेवन से अपनी (आशाः) इच्छा और कीर्त्ति से सब (दिशः) दिशाओं को (आपृण) पूरण कर ॥६३॥

भावार्थः—स्त्री-पुरुषों को चाहिये कि आपस में प्रसन्न, एक दूसरे को हृदय से चाहनेवाले, परस्पर परीक्षा कर अपनी-अपनी इच्छा से स्वयंवर विवाह कर अत्यन्त विषयासक्ति को त्याग ऋतुकाल में गमन करने वाले होकर अपने सामर्थ्य की हानि कभी न करें। क्योंकि इसी से जितेन्द्रिय

स्त्री पुरुषों के शरीर में कोई रोग प्रगट और बल की हानि भी नहीं होती। इसलिये इस का अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये ॥६३॥

उत्थायेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। मित्रो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर वह कैसी होवे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

उत्थाय बृहती भवोदु तिष्ठ ध्रुवा त्वम्। मित्रैतां तऽउखां परिददाम्यभित्याऽएषा मा भेदि ॥६४॥

पदार्थः—हे विदुषि कन्ये! तू (ध्रुवा) मंगल कार्य्यों में निश्चित बुद्धि वाली और (बृहती) बड़े पुरुषार्थ से युक्त (भव) हो। विवाह करने के लिये (उत्तिष्ठ) उद्यत हो (उत्थाय) आलस्य छोड़ के उठकर इस पति का स्वीकार कर। हे (मित्र) मित्र (ते) तेरे लिये (एताम्) इस (उखाम्) प्राप्त होने योग्य कन्या को (अभित्यै) भय रहित होने के लिये (परिददामि) सब प्रकार देता हूं (उ) इसलिये तू (एषा) इस प्रत्यक्ष प्राप्त हुई स्त्री को (मा भेदि) भिन्न मत कर ॥६४॥

भावार्थः—कन्या और वर को चाहिये कि अपनी-अपनी प्रसन्नता से कन्या पुरुष की और पुरुष कन्या की आप ही परीक्षा कर के ग्रहण करने की इच्छा करें। जब दोनों का विवाह करने में निश्चय होवे तभी माता पिता और आचार्य आदि इन दोनों का विवाह करें और ये दोनों आपस में भेद वा व्यभिचार कभी न करें। किन्तु अपनी स्त्री के नियम में पुरुष और पतिव्रता स्त्री होकर मिल के चलें ॥६४॥

वसवस्त्वेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। वस्वादयो लिंगोक्ता देवताः। धृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उन स्त्री पुरुषों के प्रति विद्वान् लोग क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है॥

वसवस्त्वाछृन्दन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वद्रुद्रास्त्वाछृन्दन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वदादित्यास्त्वाछृन्दन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वद्विश्वे त्वा देवा वैश्वानराऽआछृन्दन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥६५॥

पदार्थः—हे स्त्रि वा पुरुष! (वसवः) प्रथम विद्वान् लोग (गायत्रेण) श्रेष्ठ विद्याओं का जिस से गान किया जावे उस वेद के विभाग रूप स्तोत्र (छन्दसा)

गायत्री छन्द से जिस (त्वा) तुझ को (अङ्गिरस्वत्) अग्नि के तुल्य (आछृन्दन्तु) प्रकाशमान करें। (रुद्राः) मध्यम विद्वान् लोग (त्रैष्टुभेन) कर्म उपासना और ज्ञान जिस से स्थित हों उस (छन्दसा) वेद के स्तोत्र भाग से (अंगिरस्वत्) प्राण के समान (त्वा) तुझ को (आछृन्दन्तु) प्रज्ज्वलित करें। (आदित्याः) उत्तम विद्वान् लोग (जागतेन) जगत् की विद्या प्रकाश करने हारे (छन्दसा) वेद के स्तोत्रभाग से (त्वा) तुझ को (अङ्गिरस्वत्) सूर्य्य के सदृश तेजधारी (आछृन्दन्तु) शुद्ध करें। (वैश्वानराः) सम्पूर्ण मनुष्यों में शोभायमान (देवाः) सत्य उपदेश देने हारे (विश्वे) सब विद्वान् लोग (आनुष्टुभेन) विद्या ग्रहण के पश्चात् जिस से दुःखों को छुड़ावे उस (छन्दसा) वेदभाग से (त्वा) तुझ को (अंगिरस्वत्) समस्त ओषधियों के रस के समान (आछृन्दन्तु) शुद्ध सम्पादित करें ॥६५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है। हे स्त्रीपुरुषो! तुम दोनों को चाहिये कि जो विद्वान् पुरुष और विदुषी स्त्री लोग तुम को शरीर और आत्मा का वल कराने हारे उपदेश से सुशोभित करें उनकी सेवा और सत्सङ्ग निरन्तर करो और अन्य तुच्छ वुद्धि वाले पुरुषों वा स्त्रियों का सङ्ग कभी मत करो ॥६५॥

आकूतिमित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः।
विराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर वे स्त्री पुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आकूतिमग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा मनो मेधामग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा चित्तं विज्ञातमग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा वाचो विधृतिमग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा प्रजापतये मनवे स्वाहाऽग्नये वैश्वानराय स्वाहा ॥६६॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो! तुम लोग वेद के गायत्री आदि मन्त्रों से (स्वाहा) सत्यक्रिया से (आकूतिम्) उत्साह देने वाली क्रिया के (प्रयुजम्) प्रेरणा करने हारे (अग्निम्) प्रसिद्ध अग्नि को (स्वाहा) सत्यवाणी से (मनः) इच्छा के साधन को (मेधाम्) वुद्धि और (प्रयुजम्) सम्वन्ध करने हारी (अग्निम्) विजुली को (स्वाहा) सत्य व्यवहारों से (विज्ञातम्) जाने हुए विषय के (प्रयुजम्) व्यवहारों में प्रयोग किये (अग्निम्) अग्नि के समान प्रकाशित (चित्तम्) चित्त को (स्वाहा) योगक्रिया की रीति से (वाचः) वाणियों की (विधृतिम्) विविध प्रकार की धारणा को (प्रयुजम्) संप्रयोग की हुई (अग्निम्) योगाभ्यास से उत्पन्न की हुई विजुली को (प्रजापतये) प्रजा के स्वामी (मनवे) मननशील पुरुष के लिये (स्वाहा) सत्यवाणी को और (अग्नये)

विज्ञानस्वरूप (वैश्वानराय) सब मनुष्यों के बीच प्रकाशमान जगदीश्वर के लिये (स्वाहा) धर्मयुक्त क्रिया को युक्त करा के निरन्तर (आच्छन्दन्तु) अच्छे प्रकार शुद्ध करो ॥६६॥

भावार्थः—यहाँ पूर्व मन्त्र से (आच्छन्दन्तु) इस पद की अनुवृत्ति आती है। मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ से वेदादि शास्त्रों को पढ़ और उत्साह आदि को बढ़ाकर व्यवहार परमार्थ की क्रियाओं के सम्बन्ध से इस लोक और परलोक के सुखों को प्राप्त हों ६६॥

विश्वो देवस्येत्यस्यात्रेय ऋषिः। सविता देवता। अनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर गृहस्थों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सुख्यम्। विश्वो रायऽइषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥६७॥

पदार्थः—जैसे विद्वान् लोग ग्रहण करते हैं वैसे (विश्वः) सब (मर्त्तः) मनुष्य (नेतुः) सब के नायक (देवस्य) सब जगत् के प्रकाशक परमेश्वर की (सख्यम्) मित्रता को (वुरीत) स्वीकार करें। (विश्वः) सब मनुष्य (राये) शोभा वा लक्ष्मी के लिये (इषुध्यति) बाणादि आयुधों को धारण करें। (स्वाहा) सत्यवाणी और (द्युम्नम्) प्रकाशयुक्त यज्ञ वा अन्न को (वृणीत) ग्रहण करें और जैसे इस से तू (पुष्यसे) पुष्ट होता है वैसे हम लोग भी होवें ॥६७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। गृहस्थ मनुष्य को चाहिये कि परमेश्वर के साथ मित्रता कर सत्य व्यवहार से धन को प्राप्त हो के कीर्त्ति कराने हारे कर्मों को नित्य किया करें ॥६७॥

मा स्वित्यस्य आत्रेय ऋषिः। अम्बा देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर माता पिता के प्रति पुत्रादि क्या २ कहें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

मा सु भित्था मा सु रिषोऽम्ब धृष्णु वीरयस्व सु। अग्निश्चेदं करिष्यथः ॥६८॥

पदार्थः—हे (अम्ब) माता! तू हम को विद्या से (मा) मत (सुभित्थाः) छुड़ावे और (मा) मत (सु रिषः) दुःख दे, (धृष्णु) दृढ़ता से (सुवीरयस्व) सुन्दर आरम्भ किये कर्म्म की समाप्ति कर। ऐसे करते हुए तुम माता और पुत्र दोनों (अग्निः) अग्नि के समान (च) (इदम्) करने योग्य इस सब कर्म्म को (करिष्यथः) आचरण करो ॥६८॥

भावार्थः—माता को चाहिये कि अपने सन्तानों को अच्छी शिक्षा देवे जिससे ये परस्पर प्रीतियुक्त और वीर होवें और जो करने योग्य हो वही करें न करने योग्य कभी न करें ॥६८॥

दृंहस्वेत्यस्यात्रेय ऋषिः । अम्बा देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर पति अपनी स्त्री से क्या २ कहे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

दृᳬंहस्व देवि पृथिवि स्वस्तयऽआसुरी माया स्वधया कृतासि । जुष्टं देवेभ्यऽइदमस्तु हव्यमरिष्टा त्वमुदिहि यज्ञेऽअस्मिन् ॥६९॥

पदार्थः—हे (पृथिवि) भूमि के समान विद्या के विस्तार को प्राप्त हुई (देवि) विद्या से युक्त पत्नि ! तू ने (स्वस्तये) सुख के लिये (स्वधया) अन्न वा जल से जो (आसुरी) प्राणपोषक पुरुषों की (माया) बुद्धि है उस को (कृता) सिद्ध की (असि) है, उस से तू मुझ पति को (दृंहस्व) उन्नति दे (अरिष्टा) हिंसा रहित हुई (अस्मिन्) इस (यज्ञे) संग करने योग्य गृहाश्रम में (उदिहि) प्रकाश को प्राप्त हो जो तू ने (जुष्टम्) सेवन किया (इदम्) यह (हव्यम्) देने लेने योग्य पदार्थ है वह (देवेभ्यः) विद्वानों वा उत्तम गुण होने के लिये (अस्तु) होवे ॥६९॥

भावार्थः—जो स्त्री पति को प्राप्त हो के घर में वर्त्तती है वह अच्छी बुद्धि से सुख के लिये प्रयत्न करे । सब अन्न आदि खाने पीने के पदार्थ रुचिकारक वनवावे वा बनावे और किसी को दुःख वा किसी के साथ वैर-वृद्धि कभी न करे ॥६९॥

द्रृवन्न इत्यस्य सोमाहुतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह स्त्री अपने पति से कैसे-कैसे कहे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

द्रृवन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः । सहसस्पुत्रोऽअद्भुतः ॥७०॥

पदार्थः—हे पते ! (द्रृवन्नः) वृक्षादि ओषधि ही जिन के अन्न हैं ऐसे (सर्पिरासुतिः) घृत आदि पदार्थों को शोधने वाले (प्रत्नः) सनातन (होता) देने लेने हारे (वरेण्यः) स्वीकार करने योग्य (सहसः) बलवान् के (पुत्रः) पुत्र (अद्भुतः) आश्चर्य्य गुण कर्म और स्वभाव से युक्त आप सुख होने के लिये इस गृहाश्रम के बीच शोभायमान हूजिये ॥७०॥

भावार्थः—यहाँ पूर्व मन्त्र से (स्वस्तये) (अस्मिन्) (यज्ञे) (उदिहि) इन चार पदों की अनुवृत्ति आती है । कन्या को उचित है कि जिस का पिता

ब्रह्मचर्य्य से बलवान् हो और जो पुरुषार्थ से बहुत अन्नादि पदार्थों को इकट्ठा कर सके उस शुद्ध स्वभाव से युक्त पुरुष के साथ विवाह करके निरन्तर सुख भोगे ॥७०॥

परस्या इत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। विराड् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर पति अपनी स्त्री को क्या-क्या उपदेश करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

परस्याऽअधि संवतोऽवराँ२ऽअभ्यातर। यत्राहमस्मि ताँ२ऽअव ॥७१॥

पदार्थः—हे कन्ये! जिस (परस्याः) उत्तम कन्या तेरा मैं (अधि) स्वामी हुआ चाहता हूं सो तू (संवतः) संविभाग को प्राप्त हुए (अवरान्) नीच स्वभावों को (अभ्यातर) उल्लंघन और (यत्र) जिस कुल में (अहम्) मैं (अस्मि) हूं (तान्) उन उत्तम मनुष्यों की (अव) रक्षा कर ॥७१॥

भावार्थः—कन्या को चाहिये कि अपने से अधिक बल और विद्या वाले वा बराबर के पति को स्वीकार करे किन्तु छोटे वा न्यून विद्या वाले को नहीं। जिस के साथ विवाह करे उसके सम्बन्धी और मित्रों को सब काल में प्रसन्न रक्खे ॥७१॥

परमस्या इत्यस्य वारुणिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

फिर वह स्त्री अपने स्वामी से क्या-क्या कहे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है॥

परमस्याः परावतो रोहिदश्वऽइहागहि। पुरीष्यः पुरुप्रियोऽग्ने त्वं तरा मृधः ॥७२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) पावक के समान तेजस्विन् विज्ञानयुक्त पते! (रोहिदश्वः) अग्नि आदि पदार्थों से युक्त वाहनों से युक्त (पुरीष्यः) पालने में श्रेष्ठ (पुरुप्रियः) बहुत मनुष्यों की प्रीति रखने वाले (त्वम्) आप (इह) इस गृहाश्रम में (परावत) दूर देश से (परमस्याः) अति उत्तम गुण रूप और स्वभाव वाली कन्या की कीर्त्ति सुन के (आगहि) आइये और उस के साथ (मृधः) दूसरों के पदार्थों की आकांक्षा करने हारे शत्रुओं का (तर) तिरस्कार कीजिये ॥७२॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अपनी कन्या वा पुत्र का समीप

देश में विवाह कभी न करें। जितना ही दूर विवाह किया जावे उतना ही अधिक सुख होवे निकट करने में कलह ही होता है ॥७२॥

यदग्ने इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर स्त्री पुरुषों के प्रति सम्बन्धी लोग क्या-क्या प्रतिज्ञा करें और करावें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

यदग्ने कानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि। सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥७३॥

पदार्थः—हे (यविष्ठ्य) अत्यन्त युवावस्था को प्राप्त हुए (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष वा स्त्री ! आप जैसे (कानि कानि चित्) कोई-कोई भी वस्तु (ते) तेरी हैं वे हम लोग (दारूणि) काष्ठ के पात्र में (दध्मसि) धारण करें (यत्) जो कुछ हमारी चीज है (तत्) सो (सर्वम्) सब (ते) तेरी (अस्तु) होवे जो हमारा (घृतम्) घृतादि उत्तम पदार्थ है (तत्) उस को तू (जुषस्व) सेवन कर। जो कुछ तेरा पदार्थ है सो सब हमारा हो, जो तेरा घृतादि पदार्थ है उसको हम ग्रहण करें ॥७३॥

भावार्थः—ब्रह्मचारी आदि मनुष्य अपने सब पदार्थ सब के उपकार के लिये रक्खें किन्तु ईर्ष्या से आपस में कभी भेद न करें जिस से सब के लिये सब सुखों की वृद्धि होवे और विघ्न न उठें इसी प्रकार स्त्री पुरुष भी परस्पर वर्त्तें ॥७३॥

यदत्तीत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

यदत्त्युपजिह्विका यद्वम्रोऽअतिसर्पति। सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥७४॥

पदार्थः—हे (यविष्ठ्य) अत्यन्त युवावस्था को प्राप्त हुए पते ! आप और (उपजिह्विका) जिस की जिह्वा इन्द्रिय अनुकूल अर्थात् वश में हो ऐसी स्त्री (यत्) जो (अत्ति) भोजन करे (यत्) जो (वम्रः) मुख से बाहर निकाला प्राणवायु (अतिसर्पति) अत्यन्त चलता है (तत्) वह (सर्वम्) सब (ते) तेरा (अस्तु) होवे। जो तेरा (घृतम्) घी आदि उत्तम पदार्थ है (तत्) उस को (जुषस्व) सेवन किया कर ७४॥

भावार्थः—जिस पुरुष से पुरुष वा स्त्री का व्यवहार सिद्ध होता हो

उस के अनुकूल स्त्री पुरुष दोनों वर्त्तें। जो स्त्री का पदार्थ है वह पुरुष का और जो पुरुष का है वह स्त्री का भी होवे। इस विषय में कभी द्वेष नहीं करना चाहिये किन्तु आपस में मिलकर आनन्द भोगें ॥७४॥

अहरहरित्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः। अग्निर्देवता। विराट् त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर गृहस्थ लोग आपस में कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अहरहरप्रयावं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै। रायस्पोषेण समिषा मदन्तोऽग्ने मा ते प्रतिवेशा रिषाम ॥७५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् पुरुष! (अहरहः) नित्यप्रति (तिष्ठते) वर्त्तमान (अश्वायेव) जैसे घोड़े के लिये घास आदि खाने का पदार्थ आगे धरते हैं वैसे (अस्मै) इस गृहस्थ पुरुष के लिये (अप्रयावम्) अन्याय से पृथक् गृहाश्रम के योग्य (घासम्) भोगने योग्य पदार्थों को (भरन्तः) धारण करते हुए (रायः) धन की (पोषेण) पुष्टि तथा (इषा) अन्नादि से (संमदन्तः) सम्यक् आनन्द को प्राप्त हुए (प्रतिवेशाः) धर्म्मविषयक प्रवेश के निश्चित हम लोग (ते) तेरे ऐश्वर्य को (मा रिषाम) कभी नष्ट न करें ॥७५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है। गृहस्थ मनुष्यों को चाहिये कि जैसे घोड़े आदि पशुओं के खाने के लिये जो दूध आदि पदार्थों को पशुओं के पालक नित्य इकट्ठे करते हैं वैसे अपने ऐश्वर्य को बढ़ाके सुख देवें और धन के अहंकार से किसी के साथ ईर्ष्या कभी न करें किन्तु दूसरों की वृद्धि वा धन देख के सदा आनन्द मानें ॥७५॥

नाभेत्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर ये मनुष्य लोग आपस में कैसे संवाद करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नाभा पृथिव्याः समिधानेऽअग्नौ रायस्पोषाय बृहते हवामहे। इरम्मदं बृहदुक्थं यजत्रं जेतारमग्निं पृतनासु सासहिम् ॥७६॥

पदार्थः—हे गृही लोगो! जैसे हम लोग (बृहते) बड़े (रायः) लक्ष्मी के (पोषाय) पुष्ट करने हारे पुरुष के लिये (पृथिव्याः) पृथिवी के (नाभा) बीच (समिधाने) अच्छे प्रकार प्रज्वलित हुए (अग्नौ) अग्नि में और (पृतनासु) सेनाओं में (सासहिम्) अत्यन्त सहनशील (इरम्मदम्) अन्न से आनन्दित होने वाले (बृहदुक्थम्)

बड़ी प्रशंसा से युक्त (यजत्रम्) संग्राम करने योग्य (अग्निम्) विजुली के समान शीघ्रता करने हारे (जेतारम्) विजयशील सेनापति पुरुष को (हवामहे) बुलाते हैं वैसे तुम लोग भी इसको बुलाओ ॥७६॥

भावार्थः—पृथिवी का राज्य करते हुए मनुष्यों को चाहिये कि आग्नेय आदि अस्त्रों और तलवार आदि शस्त्रों का संचय कर और पूर्ण बुद्धि तथा शरीरवल से युक्त पुरुष को सेनापति करके निर्भयता के साथ वर्त्तें ॥७६॥

याः सेना इत्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

राजपुरुषों को योग्य है कि अपने प्रयत्न से चोर आदि दुष्टों का वार-वार निवारण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

याः सेनाऽअभीत्वरीराव्याधिनीरुगणाऽउत । ये स्तेना ये च तस्करास्ताँस्तेऽअग्नेऽपिदधाम्यास्ये ॥७७॥

पदार्थः—हे सेना और सभा के स्वामी ! जैसे मैं (याः) जो (अभीत्वरीः) सम्मुख होके युद्ध करने हारी (आव्याधिनीः) वहुत रोगों से युक्त वा ताड़ना देने हारी (उगणाः) शस्त्रों को लेके विरोध में उद्यत हुई (सेनाः) सेना हैं उन (उत) और (ये) जो (स्तेनाः) सुरंग लगा के दूसरों के पदार्थों को हरने वाले हैं (च) और (ये) जो (तस्कराः) द्यूत आदि कपट से दूसरों के पदार्थ लेने हारे हैं (तान्) उनको (ते) इस (अग्ने) अग्नि के (आस्ये) जलती हुई लपट में (अपिदधामि) गेरता हूं वैसे तू भी इन को इस में धरा कर ॥७७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। धर्मात्मा राजपुरुषों को चाहिये कि जो अपने अनुकूल सेना और प्रजा हों उनका निरन्तर सत्कार करें और जो सेना तथा प्रजा विरोधी हों तथा डाकू चोर खोटे वचन वोलने हारे मिथ्यावादी व्यभिचारी मनुष्य होवें उन को अग्नि से जलाने आदि भयंकर दण्डों से शीघ्र ताड़ना देकर वश में करें ॥७७॥

दंष्ट्राभ्यामित्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उन दुष्टों को किस-किस प्रकार ताड़ना करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

दꣳष्ट्राभ्यां मलिम्लून् जम्भ्यैस्तस्कराँ२ऽउत । हनुभ्याꣳ स्तेनान् भगवस्ताँस्त्वं खाद सुखादितान् ॥७८॥

पदार्थः—हे (भगवः) ऐश्वर्य वाले सभा सेना के स्वामी ! जैसे (त्वम्) आप (जम्भ्यैः) मुख के जीभ आदि अवयवों और (दंष्ट्राभ्याम्) तीक्ष्ण दांतों से जिन (मलिम्लून्) मलीन आचरण वाले सिंह आदि को और (हनुभ्याम्) मसूड़ों से (तस्करान्) चोरों के समान वर्त्तमान (सुखादितान्) अन्याय से दूसरों के पदार्थों को भोगने और (स्तेनान्) रात में भीति आदि फोड़ तोड़ के पराया माल मारने हारे मनुष्यों को (खाद) जड़ से नष्ट करें वैसे (तान्) उन को हम लोग (उत) भी नष्ट करें ॥७८॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि जो गौ आदि बड़े उपकार के पशुओं को मारने वाले सिंह आदि वा मनुष्य हों उन तथा जो चोर आदि मनुष्य हैं उन को अनेक प्रकार के बन्धनों से बांध ताड़ना दे नष्ट कर वश में लावें ॥७८॥

ये जनेष्वित्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः । सेनापतिर्देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर ये राजपुरुष किस-किस का निवारण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ये जनेषु मलिम्लव स्तेनासस्तस्करा वने । ये कक्षेष्वघायवस्ताँस्ते दधामि जम्भयोः ॥७९॥

पदार्थः—हे सभापते ! मैं सेनाध्यक्ष (ये) जो (जनेषु) मनुष्यों में (मलिम्लवः) मलीन स्वभाव से आते जाते (स्तेनासः) गुप्त चोर जो (वने) वन में (तस्कराः) प्रसिद्ध चोर लुटेरे और (ये) जो (कक्षेषु) कोठरी आदि में (अघायवः) पाप करते हुए जीवन की इच्छा करने वाले हैं (तान्) उनको (ते) आप के (जम्भयोः) फैलाये मुख में ग्रास के समान (दधामि) धरता हूं ॥७९॥

भावार्थः—सेनापति आदि राजपुरुषों का यही मुख्य कर्त्तव्य है कि जो ग्राम और वनों में प्रसिद्ध चोर तथा लुटेरे आदि पापी पुरुष हैं उन को राजा के आधीन करें ॥७९॥

यो अस्मभ्यमित्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः । अध्यापकोपदेशकौ देवते । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

योऽअस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः। निन्दाद्योऽअस्मान् धिप्साच्च सर्वं तं भस्मसा कुरु ॥८०॥

पदार्थः—हे सभा और सेना के स्वामिन्! आप (यः) जो (जनः) मनुष्य (अस्मभ्यम्) हम धर्मात्माओं के लिये (अरातीयात्) शत्रुता करे (यः) जो (नः) हमारे साथ (द्वेषते) दुष्टता करे (च) और हमारी (निन्दात्) निन्दा करे (यः) जो (अस्मान्) हम को (धिप्सात्) दम्भ दिखावे और हमारे साथ छल करे (तम्) उस (सर्वम्) सब को (भस्मसा) जला के सम्पूर्ण भस्म (कुरु) कीजिये ॥८०॥

भावार्थः—अध्यापक उपदेशक और राजपुरुषों को चाहिये कि पढ़ाने शिक्षा उपदेश और दण्ड से निरन्तर विरोध का विनाश करें ॥८०॥

संशितमित्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः। पुरोहितयजमानौ देवते। निचृदार्षी पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः॥

अब पुरोहित यजमान आदि से किस-किस पदार्थ की इच्छा करें॥

सꣳशितं मे ब्रह्म सꣳशितं वीर्यं बलम्। सꣳशितं क्षत्रं जिष्णु यस्याहमस्मि पुरोहितः ॥८१॥

पदार्थः—(अहम्) मैं (यस्य) जिस यजमान पुरुष का (पुरोहितः) प्रथम धारण करने हारा (अस्मि) हूँ उसका और (मे) मेरा (संशितम्) प्रशंसा के योग्य (ब्रह्म) वेद का विज्ञान और उस यजमान का (संशितम्) प्रशंसा के योग्य (वीर्य्यम्) पराक्रम प्रशंसित (बलम्) बल (संशितम्) और प्रशंसा के योग्य (जिष्णु) जय के स्वभाव वाला (क्षत्रम्) क्षत्रियकुल होवे ॥८१॥

भावार्थः—जो जिसका पुरोहित और जिसका यजमान हो वे दोनों आपस में जिस विद्या के योग बल और धर्माचरण से आत्मा की उन्नति और ब्रह्मचर्य जितेन्द्रियता तथा आरोग्यता से शरीर का बल बढ़े वही कर्म निरन्तर किया करें ॥८१॥

उदेषामित्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः। सभापतिर्यजमानो देवता। विराडनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर यजमान पुरोहित के साथ कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

उदेषां बाहूऽअतिरमुद्वर्चोऽअथो बलम्। क्षिणोमि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वाँ२ऽअहम् ॥८२॥

पदार्थः—(अहम्) मैं यजमान वा पुरोहित (ब्रह्मणा) वेद और ईश्वर के ज्ञान देने से (एषाम्) इन पूर्वोक्त चोर आदि दुष्टों के (बाहु) बल और पराक्रम को (उदतिरम्) अच्छे प्रकार उल्लंघन करूं (वर्चः) तेज तथा (बलम्) सामर्थ्य को और (अमित्रान्) शत्रुओं को (उत्क्षिणोमि) मारता हूँ, (अथो) इस के पश्चात् (स्वान्) अपने मित्रों के तेज और सामर्थ्य को (उन्नयामि) वृद्धि के साथ प्राप्त करूं ॥८२॥

भावार्थः—राजा आदि यजमान तथा पुरोहितों को चाहिये कि पापियों के सब पदार्थों का नाश और धर्मात्माओं के सब पदार्थों की वृद्धि सदैव सब प्रकार से किया करें ॥८२॥

अन्नपत इत्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः । यजमानपुरोहितौ देवते । उपरिष्टाद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को इस संसार में कैसे-कैसे वर्त्तना इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः । प्रप्र दातारं तारिषऽ ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥८३॥

पदार्थः—हे (अन्नपते) ओषधि अन्नों के पालन करनेहारे यजमान वा पुरोहित ! आप (नः) हमारे लिये (अनमीवस्य) रोगों के नाश से सुख को बढ़ाने (शुष्मिणः) बहुत बलकारी (अन्नस्य) अन्न को (प्रप्रदेहि) अतिप्रकर्ष के साथ दीजिये और इस अन्न के (दातारम्) देने हारे को (तारिषः) तृप्त कर तथा (नः) हमारे (द्विपदे) दो पग वाले मनुष्यादि तथा (चतुष्पदे) चार पगवाले गौ आदि पशुओं के लिये (ऊर्जम्) पराक्रम को (धेहि) धारण कर ॥८३॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सदैव बलकारी आरोग्य अन्न आप सेवें और दूसरों को देवें । मनुष्य तथा पशुओं के सुख और बल बढ़ावें । जिससे ईश्वर की सृष्टिक्रमानुकूल आचरण से सब के सुखों की सदा उन्नति होवे ॥८३॥

इस अध्याय में गृहस्थ राजा के पुरोहित सभा और सेना के अध्यक्ष और प्रजा के मनुष्यों को करने योग्य कर्म आदि के वर्णन से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह यजुर्वेदभाष्य का ग्यारहवां (११) अध्याय पूरा हुआ ॥११॥

॥ ओ३म् ॥

अथ द्वादशाऽध्यायारम्भः

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥१॥

दृशान इत्यस्य वत्सप्री ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अब बारहवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के गुणों का उपदेश किया है॥

दृशानो रुक्मऽउर्व्या व्यद्यौद् दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः। अग्निरमृतोऽअभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौरजनयत्सुरेताः ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे (दृशानः) दिखलाने हारा (द्यौः) स्वयं प्रकाशस्वरूप (अग्निः) सूर्यरूप अग्नि (उर्व्या) अति स्थूल भूमि के साथ सब मूर्तिमान् पदार्थों को (व्यद्यौत्) विविध प्रकार से प्रकाशित करता है वैसे जो (श्रिये) (रुचानः) सौभाग्य लक्ष्मी के अर्थ रुचिकर्त्ता (रुक्मः) सुशोभित जन (अभवत्) होता है और जो (सुरेताः) उत्तम वीर्ययुक्त (अमृतः) नाशरहित (दुर्मर्षम्) शत्रुओं के दुःख से निवारण के योग्य (आयुः) जीवन को (अजनयत्) प्रकट करता है (वयोभिः) अवस्थाओं के साथ (एनम्) इस विद्वान् पुरुष को प्रकट करता हो उस को तुम सदा निरन्तर सेवन करो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे इस जगत् में सूर्य आदि सब पदार्थ अपने २ दृष्टान्त से परमेश्वर को निश्चय कराते हैं वैसे ही मनुष्यों को होना चाहिये ॥१॥

नक्तोषासेत्यस्य कुत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षीत्रिष्टुप्छन्दः ।। धैवतः स्वरः ।।

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकꣳ समीची । द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति देवाऽअग्निं धारयन् द्रविणोदाः ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जिस (अग्निम्) विजुली को (द्रविणोदाः) वलदाता (देवाः) दिव्य प्राण (धारयन्) धारण करें जो (रुक्मः) रुचिकारक हो के (अन्तः) अन्तःकरण में (विभाति) प्रकाशित होती है जो (समनसा) एक विचार से विदित (विरूपे) अन्धकार और प्रकाश से विरुद्ध युक्त (समीची) सव प्रकार सव को प्राप्त होने वाली (द्यावाक्षामा) प्रकाश और भूमि तथा (नक्तोषासा) रात्रि और दिन जैसे (एकम्) एक (शिशुम्) वालक को दो माता (धापयेते) दूध पिलाती हैं वैसे उस को तुम लोग जानो ।।२।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे जननी माता और धायी वालक को दूध पिलाती हैं वैसे ही दिन और रात्रि सव की रक्षा करती हैं और जो विजुली के स्वरूप से सर्वत्र व्यापक है वह अग्नि सूर्य आदि का कारण है इस वात का तुम सव निश्चय करो ।।२।।

विश्वारूपाणीत्यस्य श्यावाश्व ऋषिः । सविता देवता । विराड्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ।।

अव अगले मन्त्र में परमेश्वर के कृत्य का उपदेश किया है ।।

विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चते कविः प्रासावीद् भद्रं द्विपदे चतुष्पदे । विनाकमख्यत्सविता वरेण्योऽनु प्रयाणमुषसो विराजति ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (वरेण्यः) ग्रहण करने योग्य (कविः) जिस की दृष्टि और बुद्धि सर्वत्र है वा सर्वज्ञ (सविता) सव संसार का उत्पादक जगदीश्वर वा सूर्य्य (उषसः) प्रातःकाल समय के (प्रयाणम्) प्राप्त करने को (अनुविराजति) प्रकाशित होता है (विश्वा) सव (रूपाणि) पदार्थों के स्वरूप (प्रतिमुञ्चते) प्रसिद्ध करता है और (द्विपदे) मनुष्यादि दो पग वाले (चतुष्पदे) तथा गौ आदि चार पग वाले प्राणियों के लिये (नाकम्) सव दुःखों से पृथक् (भद्रम्) सेवने योग्य सुखको (व्यख्यत्) प्रकाशित करता और (प्रासावीत्) उत्पन्न करता है ऐसे उस सूर्य्यलोक को उत्पन्न करने वाले ईश्वर को तुम लोग जानो ।।३।।

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जिस परमेश्वर ने सम्पूर्ण रूपवान् द्रव्यों का प्रकाशक प्राणियों के सुख का हेतु प्रकाशमान सूर्यलोक रचा है उसी की भक्ति सब मनुष्य करें ॥३॥

सुपर्णोऽसीत्यस्य श्यावाश्व ऋषिः। गरुत्मान् देवता। धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

फिर विद्वानों के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सुपर्णोऽसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ। स्तोमऽआत्मा छन्दाᳬंस्यङ्गानि यजूᳬंषि नाम। साम ते तनूर्वामदेव्यं यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः। सुपर्णोऽसि गरुत्मान्दिवं गच्छ स्वः पत ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वन्! जिस कारण (ते) आपका (त्रिवृत्) तीन कर्म्म, उपासना और ज्ञानों से युक्त (शिरः) दुःखों का जिस से नाश हो (गायत्रम्) गायत्री छन्द से कहे विज्ञानरूप अर्थ (चक्षुः) नेत्र (बृहद्रथन्तरे) बड़े २ रथों के सहाय से दुःखों को छुड़ाने वाले (पक्षौ) इधर उधर के अवयव (स्तोमः) स्तुति के योग्य ऋग्वेद (आत्मा) अपना स्वरूप (छन्दांसि) उष्णिक् आदि छन्द (अंगानि) कान आदि अंग, (यजूंषि) यजुर्वेद के मन्त्र (नाम) नाम (यज्ञायज्ञियम्) ग्रहण करने और छोड़ने योग्य व्यवहारों के योग्य (वामदेव्यम्) वामदेव ऋषि ने जाने वा पढ़ाये (साम) तीसरे सामवेद (ते) आपका (तनूः) शरीर है इससे आप (गरुत्मान्) महात्मा (सुपर्णः) सुन्दर सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त (असि) हैं। जिस से (धिष्ण्याः) शब्द करने के हेतुओं में साधु (शफा) खुर तथा (पुच्छम्) बड़ी पूंछ के समान अन्त्य का अवयव है उस के समान जो (गरुत्मान्) प्रशंसित शब्दोच्चारण से युक्त (सुपर्णः) सुन्दर उड़ने वाले (असि) है उस पक्षी के समान आप (दिवम्) सुन्दर विज्ञान को (गच्छ) प्राप्त हूजिये और (स्वः) सुख को (पत) ग्रहण कीजिये ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सुन्दर शाखा पत्र पुष्प फल और मूलों से युक्त वृक्ष शोभित होते हैं वैसे ही वेदादि शास्त्रों के पढ़ने और पढ़ानेहारे सुशोभित होते हैं। जैसे पशु पूंछ आदि अवयवों से अपने काम करते और जैसे पक्षी पंखों से आकाश मार्ग से जाते आते आनन्दित होते हैं वैसे मनुष्य विद्या और अच्छी शिक्षा को प्राप्त हो पुरुषार्थ के साथ सुखों को प्राप्त हों ॥४॥

विष्णोः क्रम इत्यस्य श्यावाश्व ऋषिः। विष्णुर्देवता। भुरिगुत्कृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

फिर भी अगले मन्त्र में राजधर्म का उपदेश किया है ।।

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा गायत्रं छन्दऽआरोह पृथिवीमनु विक्रमस्व विष्णोः क्रमोस्यभिमातिहा त्रैष्टुभं छन्दऽआरोहान्तरिक्षमनु विक्रमस्व । विष्णोः क्रमोऽस्यरातीयतो हन्ता जागतं छन्दऽआरोह दिवमनु विक्रमस्व विष्णोः क्रमोऽसि शत्रूयतो हन्ताऽऽनुष्टुभं छन्दऽआरोह दिशोऽनु विक्रमस्व ।।५।।

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष ! जिससे आप (विष्णोः) व्यापक जगदीश्वर के (क्रमः) व्यवहार से शोधक (सपत्नहा) और शत्रुओं के मारने हारे (असि) हो इस से (गायत्रम्) गायत्री मन्त्र से निकले (छन्दः) शुद्ध अर्थ पर (आरोह) आरूढ़ हूजिये (पृथिवीम्) पृथिव्यादि पदार्थों से (अनुविक्रमस्व) अपने अनुकूल व्यवहार साधिये तथा जिस कारण आप (विष्णोः) व्यापक कारण के (क्रमः) कार्य्यरूप (अभिमातिहा) अभिमानियों को मारने हारे (असि) हैं इस से आप (त्रैष्टुभम्) तीन प्रकार के सुखों से संयुक्त (छन्दः) बलदायक वेदार्थ को (आरोह) ग्रहण और (अन्तरिक्षम्) आकाश को (अनुविक्रमस्व) अनुकूलव्यवहार में युक्त कीजिये । जिस से आप (विष्णोः) व्यापनशील विजुली रूप अग्नि के (क्रमः) जानने हारे (अरातीयतः) विद्या आदि दान के विरोधी पुरुष के (हन्ता) नाश करने हारे (असि) हैं इस से आप (जागतम्) जगत् को जानने का हेतु (छन्दः) सृष्टिविद्या को बलयुक्त करने हारे विज्ञान को (आरोह) प्राप्त हूजिये और (दिवम्) सूर्य आदि अग्नि को (अनुविक्रमस्व) अनुक्रम से उपयुक्त कीजिये जो आप (विष्णोः) हिरण्यगर्भ वायु के (क्रमः) ज्ञापक तथा (शत्रूयतः) अपने को शत्रु का आचरण करने वाले पुरुषों के (हन्ता) मारने वाले (असि) हैं सो आप (आनुष्टुभम्) अनुकूलता के साथ सुख सम्बन्ध के हेतु (छन्दः) आनन्दकारक वेद भाग को (आरोह) उपयुक्त कीजिये और (दिशः) पूर्व आदि दिशाओं के (अनुविक्रमस्व) अनुकूल प्रयत्न कीजिये ।।५।।

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि वेदविद्या से भूगर्भविद्याओं का निश्चय तथा पराक्रम से उनकी उन्नति करके रोग और शत्रुओं का नाश करें ।।५।।

अक्रन्ददित्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

अक्रन्ददग्निं स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धोऽअख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो सभापति (सद्यः) एक दिन में (जज्ञानः) प्रसिद्ध हुआ (द्यौः) सूर्य्य प्रकाश रूप (अग्निः) विद्युत् अग्नि के समान (स्तनयन्निव) शब्द करता हुआ शत्रुओं को (अक्रन्दत्) प्राप्त होता है, जैसे (क्षामा) पृथिवी (वीरुधः) वृक्षों को फल फूलों से युक्त करती है वैसे प्रजाओं के लिये सुखों को (रेरिहत्) अच्छे बुरे कर्मों का शीघ्र फल देता है। जैसे सूर्य (इद्धः) प्रदीप्त और (समञ्जन्) सम्यक् पदार्थों को प्रकाशित करता हुआ (रोदसी) आकाश और पृथिवी को (व्यख्यत्) प्रसिद्ध करता और (भानुना) अपनी दीप्ति के साथ (अन्तः) सब लोकों के बीच (आभाति) प्रकाशित होता है वैसे जो सभापति शुभ गुण कर्मों से प्रकाशित हो उसको तुम लोग राज कार्य्यों में संयुक्त करो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य सब लोकों के बीच में स्थित हुआ सब को प्रकाशित और आकर्षण करता है और जैसे पृथिवी बहुत फलों को देती है, वैसे ही मनुष्य को राज्य के कार्य्यों में अच्छे प्रकार से उपयुक्त करो ॥६॥

अग्ने इत्यस्य वत्सप्री ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्ष्यनुष्टुप्छन्दः।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर विद्वानों के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्नेऽभ्यावर्त्तिन्नभि मा निवर्त्तस्वायुषा वर्चसा प्रजया धनेन ।
सन्या मेधया रय्या पोषेण ॥७॥

पदार्थः—हे (अभ्यावर्त्तिन्) सन्मुख हो के वर्त्तने वाले (अग्ने) तेजस्वी पुरुषार्थी विद्वान् पुरुष ! आप (आयुषा) बड़े जीवन (वर्चसा) अन्न तथा पढ़ने आदि (प्रजया) सन्तानों (धनेन) धन (सन्या) सब विद्याओं का विभाग करने हारी (मेधया) बुद्धि (रय्या) विद्या की शोभा और (पोषेण) पुष्टि के साथ (अभिनिवर्त्तस्व) निरन्तर वर्त्तमान हूजिये और (मा) मुझ को भी इन उक्त पदार्थों से संयुक्त कीजिये ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य लोग भूगर्भादि विद्या के विना ऐश्वर्य्य को प्राप्त नहीं कर सकते और बुद्धि के विना विद्या भी नहीं हो सकती ॥७॥

अग्ने अङ्गिर इत्यस्य वत्सप्री ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षीत्रिष्टुप् छन्दः।
निषादः स्वरः ॥

फिर विद्याभ्यास करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्नेऽअङ्गिरः शतं ते सन्त्वावृतः सहस्रं तऽउपावृतः ।
अधा पोषस्य पोषेण पुनर्नो नष्टमाकृधि पुनर्नो रयिमाकृधि ॥८॥

पदार्थः—हे (अग्ने) पदार्थविद्या के जानने हारे (अंगिरः) विद्या के रसिक विद्वान् पुरुष ! जिस पुरुषार्थी (ते) आप की अग्नि के समान (शतम्) सैकड़ों (आवृतः) आवृत्तिरूप क्रिया और (सहस्रम्) हजारह (ते) आप के (उपावृतः) आवृत्तिरूप सुखों के भोग (सन्तु) होवें (अध) इस के पश्चात् आप इन से (पोषस्य) पोषक मनुष्य की (पोषेण) रक्षा से (नष्टम्) परोक्ष हुए भी विज्ञान को (नः) हमारे लिये (पुनः) फिर भी (आकृधि) अच्छे प्रकार कीजिये तथा बिगड़ी हुई (रयिम्) प्रशंसित शोभा को (पुनः) फिर भी (नः) हमारे अर्थ (आकृधि) अच्छे प्रकार कीजिये ॥८॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि विद्याओं में सैकड़ों आवृत्ति और शिल्प विद्याओं में हजारह प्रकार की प्रवृत्ति से विद्याओं का प्रकाश कर के सब प्राणियों के लिये लक्ष्मी और सुख उत्पन्न करें ॥८॥

पुनरूर्जेत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर पढ़ाने हारे का कर्त्तव्य अगले मन्त्र में कहा है ॥

पुनरूर्जा निवर्त्तस्व पुनरग्नऽइषायुषा । पुनर्नः पाह्यꣳहसः ॥९॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी अध्यापक विद्वान् जन ! आप (नः) हम लोगों को (अंहसः) पापों से (पुनः) वार-वार (निवर्तस्व) बचाइये, (पुनः) फिर हम लोगों की (पाहि) रक्षा कीजिये और (पुनः) फिर (इषा) इच्छा तथा (आयुषा) अन्न से (ऊर्जा) पराक्रमयुक्त कर्मों को प्राप्त कराइये ॥९॥

भावार्थः—विद्वान् लोगों को चाहिये कि सब उपदेश के योग्य मनुष्यों को पापों से निरन्तर हटा के शरीर और आत्मा के बल से युक्त करें और आप भी पापों से बच के परम पुरुषार्थी होवें ॥९॥

सह रय्येत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सह रय्या निवर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया ।
विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥१०॥

पदार्थः—हे (अग्ने) तेजस्वी विद्वान् पुरुष ! आप दुष्ट व्यवहारों से (निवर्त्तस्व) पृथक् हूजिये, (विश्वप्स्न्या) सब भोगने योग्य पदार्थों की भुगवाने हारी (धारया) सम्पूर्ण विद्याओं के धारण करने की हेतु वाणी तथा (रय्या) धन के (सह) साथ (विश्वतः) सब ओर से (परि) सब प्रकार (पिन्वस्व) सुखों का सेवन कीजिये ॥१०॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुषों को चाहिये कि कभी अधर्म्म का आचरण न करें और दूसरों को वैसा उपदेश भी न करें। इस प्रकार सब शास्त्र और विद्याओं से विराजमान हुए प्रशंसा के योग्य होवें ॥१०॥

आ त्वेत्यस्य ध्रुव ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गांधारः स्वरः॥

फिर राजा और प्रजा के कर्मों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

आ त्वाहार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत् ॥११॥

पदार्थः—हे शुभ गुण और लक्षणों से युक्त सभापति राजन् ! (त्वा) आप को राज्य की रक्षा के लिये मैं (अन्तः) सभा के बीच (आहार्षम्) अच्छे प्रकार ग्रहण करूं। आप सभा में (अभूः) विराजमान हूजिये (अविचाचलिः) सर्वथा निश्चल (ध्रुवः) न्याय से राज्यपालन में निश्चित बुद्धि होकर (तिष्ठ) स्थिर हूजिये (सर्वाः) सम्पूर्ण (विशः) प्रजा (त्वा) आप को (वाञ्छन्तु) चाहना करें (त्वत्) आप के पालने से (राष्ट्रम्) राज्य (माधिभ्रशत्) नष्टभ्रष्ट न होवे ॥११॥

भावार्थः—उत्तम प्रजाजनों को चाहिये कि सब से उत्तम पुरुष को सभाध्यक्ष राजा मान के उस को उपदेश करें कि आप जितेन्द्रिय हुए सब काल में धार्मिक पुरुषार्थी हूजिये। आप के बुरे आचरणों से राज्य कभी नष्ट न होवे। जिस से सब प्रजापुरुष आप के अनुकूल वर्त्तें ॥११॥

उदुत्तममित्यस्य शुनःशेप ऋषिः। वरुणो देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमꣳ श्रथाय।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसोऽअदितये स्याम ॥१२॥

पदार्थः—हे (वरुण) शत्रुओं को बांधनेहारे (आदित्य) स्वरूप से अविनाशी सूर्य्य के समान सत्य न्याय के प्रकाशक सभापति विद्वान् ! आप (अस्मत्) हम से (अधमम्) निकृष्ट (मध्यमम्) मध्यस्थ और (उत्तमम्) उत्तम (पाशम्) बन्धन को (उदव-

विश्रथाय) विविध प्रकार से छुड़ाइये (अथ) इस के पश्चात् (वयम्) हम प्रजा के पुरुष (अदितये) पृथिवी के अखण्डित राज्य के लिये (तव) आप के (व्रते) सत्य न्याय के पालनरूप नियम में (अनागसः) अपराध रहित (स्याम) होवें ॥१२॥

भावार्थः—जैसे ईश्वर के गुण कर्म और स्वभाव के अनुकूल सत्य आचरणों में वर्त्तमान हुए धर्मात्मा मनुष्य पाप के वन्धनों से छूट के सुखी होते हैं वैसे ही उत्तम राजा को प्राप्त हो के प्रजा के पुरुष आनन्दित होते हैं ॥१२॥

अग्ने बृहन्नित्यस्य त्रित ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षीपङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्ने॑ बृहन्नु॒षसा॑मू॒र्ध्वोऽअ॑स्थान्निर्ज॑ग॒न्वान् तम॑सो॒ ज्योति॒षागा॑त्। अ॒ग्निर्भा॒नुना॒ रुश॑ता स्वङ्गऽआ जा॒तो विश्वा॒ सद्मा॑न्यप्राः॥१३॥

पदार्थः—हे राजन्! जो आप (अग्ने) पहिले से जैसे सूर्य्य (स्वङ्गः) सुन्दर अवयवों से युक्त (आजातः) प्रकट हुआ (बृहन्) बड़ा (उषसाम्) प्रभातों के (ऊर्ध्वः) ऊपर आकाश में (अस्थात्) स्थिर होता और (रुशता) सुन्दर (भानुना) दीप्ति तथा (ज्योतिषा) प्रकाश से (तमसः) अन्धकार को (निर्जगन्वान्) निरन्तर पृथक् करता हुआ (आगात्) सब लोक लोकान्तरों को प्राप्त होता है (विश्वा) सब (सद्मानि) स्थूल स्थानों को (अप्राः) प्राप्त होता है उस के समान प्रजा के बीच आप हूजिये ॥१३॥

भावार्थः—जो सूर्य्य के समान श्रेष्ठ गुणों से प्रकाशित सत्पुरुषों की शिक्षा से उत्कृष्ट बुरे व्यसनों से अलग सत्य न्याय से प्रकाशित सुन्दर अवयव वाला सर्वत्र प्रसिद्ध सब के सत्कार और जानने योग्य व्यवहारों का ज्ञाता और दूतों के द्वारा सब मनुष्यों के आशय को जानने वाला शुद्ध न्याय से प्रजाओं में प्रवेश करता है वही पुरुष राजा होने के योग्य होता है ॥१३॥

हंस इत्यस्य त्रित ऋषिः। जीवेश्वरौ देवते। स्वराड् जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अब अगले मन्त्र में परमात्मा और जीव के लक्षण कहे हैं॥

ह॒ꣳसः शु॑चि॒षद्वसु॑रन्तरिक्ष॒सद्धोता॑ वेदि॒षदति॑थिर्दुरोण॒सत्। नृ॒षद्व॑र॒सदृ॑त॒सद्व्यो॑म॒सद॒ब्जा गो॒जाऽऋ॑त॒जाऽअ॑द्रि॒जाऽऋ॒तं बृ॒हत्॥१४॥

पदार्थः—हे प्रजा के पुरुषो ! तुम लोग जो (हंसः) दुष्ट कर्मों का नाशक (शुचिषत्) पवित्र व्यवहारों में वर्त्तमान, (वसुः) सज्जनों में वसने वा उन को बसाने वाला, (अन्तरिक्षसत्) धर्म के अवकाश में स्थित, (होता) सत्य का ग्रहण करने और कराने वाला, (वेदिषत्) सब पृथिवी वा यज्ञ के स्थान में स्थित, (अतिथिः) पूजनीय वा राज्य की रक्षा के लिये यथोचित समय में भ्रमण करने वाला, (दुरोणसत्) ऋतुओं में सुखदायक आकाश में व्याप्त वा घर में रहने वाला, (नृषत्) सेना आदि के नायकों का अधिष्ठाता, (वरसत्) उत्तम विद्वानों की आज्ञा में स्थित, (ऋतसत्) सत्याचरणों में आरूढ़ (व्योमसत्) आकाश के समान सर्वव्यापक ईश्वर वा जीव स्थित है, (अब्जाः) प्राणों के प्रकट करने हारा (गोजाः) इन्द्रिय वा पशुओं को प्रसिद्ध करने हारा, (ऋतजाः) सत्य विज्ञान को उत्पन्न करने हारा (अद्रिजाः) मेघों का वर्षाने वाला विद्वान् (ऋतम्) सत्यस्वरूप (बृहत्) अनन्त ब्रह्म और जीव को जाने उस पुरुष को सभा का स्वामी राजा बना के निरन्तर आनन्द में रहो ॥१४॥

भावार्थः—जो पुरुष ईश्वर के समान प्रजाओं को पालने और सुख देने को समर्थ हो वही राजा होने के योग्य होता है। और ऐसे राजा के विना प्रजाओं को सुख भी नहीं हो सकता ॥१४॥

सीद त्वमित्यस्य त्रित ऋषिः। अग्निर्देवता । विराट् त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

माता का कर्म्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

सीद॒ त्वं मा॒तुर॒स्या॒ऽउ॒पस्थे॒ विश्वा॑न्यग्ने व॒युना॑नि वि॒द्वान्।
मैनां॒ तप॑सा॒ मार्चिषा॒ऽभि शो॑ची॒र॒न्तर॑स्याᳪ शु॒क्रज्यो॑ति॒र्वि भा॑हि ॥१५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्या को चाहने वाले पुरुष ! (त्वम्) आप (अस्याम्) इस माता के विद्यमानता में (विभाहि) प्रकाशित हो (शुक्रज्योतिः) शुद्ध आचरणों के प्रकाश से युक्त (विद्वान्) विद्यावान् आप (अस्याः भूमेरिव) पृथिवी के समान आधार (मातुः) इस माता की (उपस्थे) गोद में (सीद) स्थित हूजिये। इस माता से (विश्वानि) सब प्रकार की (वयुनानि) बुद्धियों को प्राप्त हूजिये। इस माता को (अन्तः) अन्तःकरण में (मा) मत (तपसा) सन्ताप से तथा (अर्चिषा) तेज से (मा) मत (अभिशोचीः) शोकयुक्त कीजिये। किन्तु इस माता से शिक्षा को प्राप्त हो के प्रकाशित हूजिये ॥१५॥

भावार्थः—जो विदुषी माता ने विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त किया, जो माता का सेवक अर्थात् जैसे माता पुत्रों को पालती है वैसे प्रजाओं का पालन करे वह पुरुष राजा के ऐश्वर्य्य से प्रकाशित होवे ॥१५॥

अन्तरग्न इत्यस्य त्रित ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः।

फिर राजा क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है॥

अन्तरग्ने रुचा त्वमुखायाः सदने स्वे।
तस्यास्त्वꣳ हरसा तपञ्जातवेदः शिवो भव॥१६॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) वेदों के ज्ञाता (अग्ने) तेजस्वी विद्वान्! आप जिस (उखायाः) प्राप्त हुई प्रजा के नीचे से अग्नि के समान (स्वे) अपने (सदने) पढ़ने के स्थान में (तपन्) शत्रुओं को संताप कराते हुए (अन्तः) मध्य में (रुचा) प्रीति से वर्त्तो (तस्याः) उस प्रजा के (हरसा) प्रज्वलित तेज से आप शत्रुओं का निवारण करते हुए (शिवः) मङ्गलकारी (भव) हूजिये॥१६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सभाध्यक्ष राजा को चाहिये कि न्याय करने की गद्दी पर बैठ के अत्यन्त प्रीति के साथ राज्य के पालनरूप कार्यों को करे वैसे प्रजाओं को चाहिये कि राजा को सुख देती हुई दुष्टों को ताड़ना करें॥१६॥

शिवो भूत्वेत्यस्य त्रित ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

शिवो भूत्वा मह्यमग्नेऽअथो सीद शिवस्त्वम्।
शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमिहासदः॥१७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान शत्रुओं को जलाने वाले विद्वान् पुरुष! (त्वम्) आप (मह्यम्) हम प्रजाजनों के लिये (शिवः) मङ्गलाचरण करने हारे (भूत्वा) होकर (इह) इस संसार में (शिवः) मङ्गलकारी हुए (सर्वाः) सब (दिशः) दिशाओं में रहने हारी प्रजाओं को (शिवाः) मङ्गलाचरण से युक्त (कृत्वा) करके (स्वम्) अपने (योनिम्) राजधर्म के आसन पर (आसदः) बैठिये और (अथो) इसके पश्चात् राजधर्म में (सीद) स्थिर हूजिये॥१७॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि आप धर्मात्मा होके प्रजा के मनुष्यों को धार्मिक कर और न्याय की गद्दी पर बैठ के निरन्तर न्याय किया करे॥१७॥

दिवस्परीत्यस्य वत्सप्री ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर राजधर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

दिवस्परि॑ प्रथ॒मं ज॑ज्ञेऽअ॒ग्निर॒स्मद्द्वि॒तीय॒ परि॑ जा॒तवे॑दाः ।
तृ॒तीय॑म॒प्सु नृ॒मणा॒ऽअज॑स्र॒मिन्धा॑नऽए॒नं ज॑रते स्वा॒धीः ।।१८।।

पदार्थः—हे सभापति राजन् ! जो (अग्निः) अग्नि के समान आप (अस्मत्) हम लोगों से (दिवः) बिजुली के (परि) ऊपर (जज्ञे) प्रकट होते हैं उन(एनम्) आप को (प्रथमम्) पहिले (यः) जो (जातवेदाः) बुद्धिमानों में प्रसिद्ध उत्पन्न हुए उन आप को (द्वितीयम्) दूसरे जो (नृमणाः) मनुष्यों में विचारशील आप को (तृतीयम्) तीसरे (अप्सु) प्राण वा जल क्रियाओं में विदित हुए उन आप को (अजस्रम्) निरन्तर (इन्धानः) प्रकाशित करता हुआ विद्वान् (जरते) सब प्रकार स्तुति करता है सो आप (स्वाधीः) सुन्दर ध्यान से युक्त प्रजाओं को प्रकाशित कीजिये ।।१८।।

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये प्रथम ब्रह्मचर्य्याश्रम के सहित विद्या तथा शिक्षा का ग्रहण दूसरे गृहाश्रम से धन का सञ्चय तीसरे वानप्रस्थ आश्रम से तप का आचरण और चौथे संन्यास लेकर वेदविद्या और धर्म का नित्य प्रकाश करें ।।१८।।

विद्मा त इत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

वि॒द्मा ते॑ऽअग्ने त्रे॒धा त्र॒याणि॑ वि॒द्मा ते॒ धाम॒ विभृ॑ता पुरु॒त्रा ।
वि॒द्मा ते॒ नाम॑ पर॒मं गुहा॒ यद्वि॒द्मा तमुत्सं॒ यत॑ऽआज॒गन्थ॑ ।।१९।।

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! (ते) आप के जो (त्रेधा) तीन प्रकार से (त्रयाणि) तीन कर्म हैं उन को हम लोग (विद्म) जानें । हे स्थानों के स्वामी ! (ते) आप के जो (विभृता) विशेष करके धारण करने योग्य (पुरुत्रा) बहुत से (धाम) नाम जन्म और स्थानरूप हैं उन को हम लोग (विद्म) जानें । हे विद्वान् पुरुष ! (ते) आपका (यत्) जो (गुहा) बुद्धि में स्थित गुप्त (परमम्) श्रेष्ठ (नाम) नाम है उस को हम लोग (विद्म) जानें । (यतः) जिस कारण आप (आजगन्थ) अच्छे प्रकार प्राप्त होवें (तम्) उस (उत्सम्) कूप के तुल्य तर करने हारे आप को (विद्म) हम लोग जानें ।।१९।।

भावार्थः—प्रजा के पुरुषों और राजा को योग्य है कि राजनीति के कामों, सब स्थानों और सब पदार्थों के नामों को जानें । जैसे कुंए से जल

निकाल खेत आदि को तृप्त करते हैं वैसे ही धनादि पदार्थों से प्रजा राजा को और राजा प्रजाओं को तृप्त करे ॥१९॥

समुद्र इत्यस्य वत्सप्री ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर भी राजा और प्रजा के सम्बन्ध का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

समुद्रे त्वा नृमणाऽअप्स्वन्तर्नृचक्षाऽईधे दिवो अग्नऽऊधन्।
तृतीये त्वा रजसि तस्थिवांसमपामुपस्थे महिषाऽअवर्धन् ॥२०॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष! (नृमणाः) नायक पुरुषों को विचारने वाला मैं जिस (त्वा) आप को (समुद्रे) आकाश में अग्नि के समान (ईधे) प्रदीप्त करता हूं, (नृचक्षा) बहुत मनुष्यों का देखने वाला मैं (अप्सु) अन्न वा जलों के (अन्तः) बीच प्रकाशित करता हूं, (दिवः) सूर्य के प्रकाश के (ऊधन्) प्रातःकाल में प्रकाशित करता हूं, (तृतीये) तीसरे (रजसी) लोक में (तस्थिवांसम्) स्थित हुए सूर्य के तुल्य जिस आप को (अपाम्) जलों के (उपस्थे) समीप (महिषाः) महात्मा विद्वान् लोग (अवर्धन्) उन्नति को प्राप्त करें, सो आप हम लोगों की निरन्तर उन्नति कीजिये ॥२०॥

भावार्थः—प्रजा के बीच वर्त्तमान सब श्रेष्ठ पुरुष राजवर्ग को और राजपुरुष प्रजापुरुषों को नित्य बढ़ाते रहें ॥२०॥

अक्रन्ददित्यस्य वत्सप्री ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब मनुष्यों को कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अक्रन्ददग्नि स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद् वीरुधः समञ्जन्।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धोऽअख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥२१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे (द्यौः) सूर्यलोक (अग्निः) विद्युत् अग्नि (स्तनयन्निव) शब्द करते हुए के समान (वीरुधः) ओषधियों को (समञ्जन्) प्रकट करता हुआ (सद्यः) शीघ्र (हि) ही (अक्रन्दत्) पदार्थों को इधर उधर चलाता (क्षामा) पृथिवी को (रेरिहत्) कंपाता और यह (जज्ञानः) प्रसिद्ध हुआ (इद्धः) प्रकाशमान होकर (भानुना) किरणों के साथ (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी को (ईम्) सब ओर से (व्यख्यत्) विख्यात करता है और ब्रह्माण्ड के (अन्तः) बीच (आभाति) अच्छे प्रकार शोभायमान होता है वैसे तुम लोग भी होओ ॥२१॥

भावार्थः—ईश्वर ने जिस लिये सूर्य्यलोक को उत्पन्न किया है इसी-लिये वह विजुली के समान सब लोकों का आकर्षण कर और ओषधि आदि पदार्थों को वढ़ाने का हेतु और सब भूगोलों के बीच जैसे शोभायमान होता है वैसे राजा आदि पुरुषों को भी होना चाहिये ॥२१॥

श्रीणामित्यस्य वत्सप्री ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

इन राजकार्यों में कैसे पुरुष को राजा बनावें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः।
वसुः सूनुः सहसोऽअप्सु राजा विभात्यग्रंऽउषसामिधानः॥२२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! तुम लोगों को चाहिए कि जो पुरुष (उषसाम्) प्रभात समय के (अग्रे) आरम्भ में (इधानः) प्रदीप्यमान सूर्य के समान, (श्रीणाम्) सब उत्तम लक्ष्मियों के मध्य (उदारः) परीक्षित, उत्कृष्ट पदार्थों को देने (रयीणाम्) धनों का (धरुणः) धारण करने (मनीषाणाम्) बुद्धियों का (प्रार्पणः) प्राप्त कराने और (सोमगोपाः) ओषधियों वा ऐश्वर्यों की रक्षा करने (सहसः) ब्रह्मचर्य किये जितेन्द्रिय बलवान् पिता का (सूनुः) पुत्र, (वसुः) ब्रह्मचर्याश्रम करता हुआ (अप्सु) प्राणों में (राजा) प्रकाशयुक्त होकर (विभाति) शुभ गुणों का प्रकाश करता हो, उस को सब का अध्यक्ष करो॥२२॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को उचित है कि सुपात्रों को दान देने धन का व्यर्थ खर्च न करने सब को विद्या बुद्धि देने जिसने ब्रह्मचर्याश्रम सेवन किया हो अपने इन्द्रिय जिसके वश में हों योग के यम आदि आठ अङ्गों के सेवन से प्रकाशमान सूर्य के समान अच्छे गुण कर्म और स्वभावों से सुशोभित और पिता के समान अच्छे प्रजाओं का पालन करने हारा पुरुष हो उसको राज्य करने के लिये स्थापित करें॥२२॥

विश्वस्येत्यस्य वत्सप्री ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्चीत्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भऽआ रोदसीऽअपृणाज्जायमानः।
वीडुं चिदद्रिमभिनत् परायन् जना यदग्निमयजन्त पञ्च॥२३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! तुम लोग (यत्) जो विद्वान् (विश्वस्य) सब (भुवनस्य) लोकों का (केतुः) पिता के समान रक्षक प्रकाशने हारा (गर्भः) उन के मध्य में रहने

और (जायमानः) उत्पन्न होने वाला (परायन्) शत्रुओं को प्राप्त होता हुआ (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी को (अपृणात्) पूरण कर्त्ता हो (वीडुम्) अत्यन्त बलवान् (अद्रिम्) मेघ को (अभिनत्) छिन्न भिन्न करे (पञ्च) पांच (जनाः) प्राण (अग्निम्) बिजुली को (अयजन्त) संयुक्त करते हैं (चित्) इसी प्रकार जो विद्या आदि शुभ गुणों का प्रकाश करे उस को न्यायाधीश राजा मानो ॥२३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे ब्रह्माण्ड के बीच सूर्यलोक अपनी आकर्षण शक्ति से सब को धारण करता और मेघ को काटने वाला तथा प्राणों से प्रसिद्ध हुए के समान सब विद्याओं को जनावे और जैसे माता गर्भ की रक्षा करे वैसे प्रजा का पालने हारा विद्वान् पुरुष हो उस को राज्याधिकार देना चाहिये ॥२३॥

उशिगित्यस्य वत्सप्री ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

उशिक् पा॑व॒को अ॑र॒तिः सु॑मे॒धा मर्त्ये॑ष्व॒ग्निर॒मृतो॒ नि धा॑यि।
इय॑र्त्ति धू॒मम॑रु॒षम्भरि॑भ्र॒दुच्छु॒क्रेण॑ शो॒चिषा॒ द्यामिन॑क्षन् ॥२४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! तुम लोग ईश्वर ने (मर्त्येषु) मनुष्यों में जो (उशिक्) मानने योग्य (पावकः) पवित्र करने हारा (अरतिः) ज्ञान वाला (सुमेधाः) अच्छी बुद्धि से युक्त (अमृतः) मरणधर्मरहित (अग्निः) आकाररूप ज्ञान का प्रकाश (निधायि) स्थापित किया है जो (शुक्रेण) शीघ्रकारी (शोचिषा) प्रकाश से (द्याम्) सूर्यलोक को (इनक्षन्) व्याप्त होता हुआ (धूमम्) धुएं को (अरुषम्) रूप को (भरिभ्रत्) अत्यन्त धारण वा पुष्ट करता हुआ (उदियर्त्ति) प्राप्त होता है उसी ईश्वर की उपासना करो वा उस अग्नि से उपकार लेओ ॥२४॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि कार्य्य कारण के अनुसार ईश्वर के रचे हुए सब पदार्थों को ठीक २ जान के अपनी बुद्धि बढ़ावें ॥२४॥

दृशान इत्यस्य वत्सप्री ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर मनुष्यों को क्या-क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।

दृ॒शा॒नो रु॒क्मऽउ॒र्व्या व्य॑द्यौद्दु॒र्मर्ष॒मायुः॑ श्रि॒ये रु॑चा॒नः।
अ॒ग्निर॒मृतो॑ऽअभव॒द्वयो॑भि॒र्यदे॑नं॒ द्यौरज॑नयत्सु॒रेताः॑ ॥२५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग (यत्) जिस कारण (दृशानः) दिखाने हारा (रुक्मः) रुचि का हेतु (श्रिये) शोभा का (रुचानः) प्रकाशक (दुर्मर्षम्) सब दुःखों से रहित (आयुः) जीवन करता हुआ (अमृतः) नाशरहित (अग्निः) तेजस्वरुप (उर्व्या) पृथिवी के साथ (व्यद्यौत्) प्रकाशित होता है (वयोभिः) व्यापक गुणों के साथ (अभवत्) उत्पन्न होता और जो (द्यौः) प्रकाशक (सुरेताः) सुन्दर पराक्रम वाला जगदीश्वर (यत्) जिस के लिये (एनम्) इस अग्नि को (अजनयत्) उत्पन्न करता है उस ईश्वर वायु और विद्युत् रूप अग्नि को जानो ॥२५॥

भावार्थः—जो मनुष्य गुण कर्म और स्वभावों के सहित जगत् रचने वाले अनादि ईश्वर और जगत् के कारण को ठीक ठीक जान के उपासना करते और उपयोग लेते हैं वे चिरंजीव होकर लक्ष्मी को प्राप्त होते हैं ॥२५॥

यस्त इत्यस्य वत्सप्री ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः।
धैवतः स्वरः॥

फिर विद्वान् लोग कैसे रसोइया का स्वीकार करें यह विषय
अगले मन्त्र में कहा है॥

यस्तेऽअद्य कृणवद्भद्रशोचेऽपूपं देव घृतवन्तमग्ने।
प्र तं नय प्रतरं वस्योऽअच्छाभि सुम्नं देवभक्तं यविष्ठ ॥२६॥

पदार्थः—हे (भद्रशोचे) सेवने योग्य दीप्ति से युक्त (यविष्ठ) तरुण अवस्था वाले (देव) दिव्य भोगों के दाता (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! (यः) जो (ते) आप का (घृतवन्तम्) बहुत घृत आदि पदार्थों से संयुक्त (अभि) सब प्रकार से (सुम्नम्) सुख-रूप (देवभक्तम्) विद्वानों के सेवने योग्य (अपूपम्) भोजन के योग्य पदार्थों वाला (वस्यः) अत्यन्त भोग्य (अच्छ) अच्छे अच्छे पदार्थों को (कृणवत्) बनावे (तम्) उस (प्रतरम्) पाक बनाने हारे पुरुष को आप (अद्य) आज (प्रणय) प्राप्त हूजिये ॥२६॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों से अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुए अति उत्तम व्यञ्जन और शष्कुली आदि तथा शाक आदि स्वाद से युक्त रुचि कारक पदार्थों को बनाने वाले पाचक पुरुष का ग्रहण करें ॥२६॥

आ तमित्यस्य वत्सप्री ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः।
धैवतः स्वरः॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

आ तं भंज सौश्रवसेष्वंग्नऽउक्थऽउक्थऽआभंज शस्यमाने ।
प्रियः सूर्य्यें प्रियोऽअग्ना भंवात्युज्जातेंन भिनदद्दुज्जनित्वैः ॥२७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! आप जो (सौश्रवसेषु) सुन्दर धन वालों में वर्त्तमान हो (तम्) उस को (आभज) सेवन कीजिये जो (शस्यमाने) स्तुति के योग्य (उक्थे उक्थे) अत्यन्त कहने योग्य व्यवहार में (प्रियः) प्रीति रक्खे, (सूर्य्ये) स्तुतिकारक पुरुषों में हुए व्यवहार और (अग्ना) अग्निविद्या में (प्रियः) सेवने योग्य, (जातेन) उत्पन्न हुए और (जनित्वैः) उत्पन्न होने वालों के साथ (उद्भवाति) उत्पन्न होवे और शत्रुओं को (उद्भिनदत्) उच्छिन्न भिन्न करे (तम्) उस को आप (आभज) सेवन कीजिये ॥२७॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जो पाक करने में साधु सब का हितकारी अन्न और व्यंजनों को अच्छे प्रकार बनावे उसको अवश्य ग्रहण करें ॥२७॥

त्वामग्न इत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्य लोग विद्या को किस प्रकार बढ़ावें इस विषय का उपदेश
अगले मन्त्र में किया है

त्वामंग्ने यजंमानाऽअनु द्यून् विश्वा वसुं दधिरे वार्य्याणि ।
त्वया सह द्रविंणमिच्छमाना व्रजं गोमंन्तमुशिजो विवंव्रुः ॥२८॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! जिस (त्वम्) आप का आश्रय लेकर (उशिजः) बुद्धिमान् (यजमानाः) संगति कारक लोग (त्वया) आप के (सह) साथ (अनुद्यून्) सब दिनों में (विश्वा) सब (वार्याणि) ग्रहण करने योग्य (वसु) द्रव्यों को (दधिरे) धारण करें और (द्रविणम्) धन की (इच्छमानाः) इच्छा करते हुए (गोमन्तम्) सुन्दर किरणों के रूप से युक्त (व्रजम्) मेघ वा गोस्थान को (विवव्रुः) विविध प्रकार से ग्रहण करें वैसे हम लोग भी होवें ॥२८॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि प्रयत्नशील विद्वानों के संग से पुरुषार्थ के साथ विद्या और सुख को नित्यप्रति बढ़ाते जावें ॥२८॥

अस्तावीत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर उन विद्वानों के संग से क्या होता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अस्ताव्यग्निर्नरां᳘ सुशेवो वैश्वानरऽऋषिभिः सोमगोपाः ।
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥२९॥

पदार्थः—हे (देवाः) शत्रुओं को जीतने की इच्छा वाले विद्वानो ! जिन (ऋषिभिः) ऋषि तुम लोगों ने (नराम्) नायक विद्वानों में (सुशेवः) सुन्दर सुखयुक्त (वैश्वानरः) सब मनुष्यों के आधार (अग्निः) परमेश्वर की (अस्तावि) स्तुति की है जो तुम लोग (अस्मे) हमारे लिये (सुवीरम्) जिस से सुन्दर वीर पुरुष हों उस (रयिम्) राज्य लक्ष्मी को (धत्त) धारण करो उस के आश्रित (सोमगोपाः) ऐश्वर्य के रक्षक हम लोग (अद्वेषे) द्वेष करने के अयोग्य प्रीति के विषय में (द्यावापृथिवी) प्रकाशरूप राजनीति और पृथिवी के राज्य का (हुवेम) ग्रहण करें ॥२९॥

भावार्थः—जो सच्चिदानन्दस्वरूप ईश्वर के सेवक धर्मात्मा विद्वान् लोग हैं वे परोपकारी होने से आप्त यथार्थवक्ता होते हैं ऐसे पुरुषों के सत्संग के विना स्थिर विद्या और राज्य को कोई भी नहीं कर सकता ॥२९॥

समिधाग्निमित्यस्य विरूपाक्ष ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्य किन का सेवन करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् ।
आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥३०॥

पदार्थः—हे गृहस्थो ! तुम लोग जैसे (समिधा) अच्छे प्रकार इन्धनों से (अग्निम्) अग्नि को प्रकाशित करते हैं वैसे उपदेश करने वाले विद्वान् पुरुष की (दुवस्यत) सेवा करो और जैसे सुसंस्कृत अन्न तथा (घृतैः) घी आदि पदार्थों से अग्नि में होम कर के जगदुपकार करते हैं वैसे (अतिथिम्) जिस के आने जाने के समय का नियम न हो उस उपदेशक पुरुष को (बोधयत) स्वागत उत्साहादि से चैतन्य करो और (अस्मिन्) इस जगत् में (हव्या) देने योग्य पदार्थों को (आजुहोतन) अच्छे प्रकार दिया करो ॥३०॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सत्पुरुषों ही की सेवा और सुपात्रों को दान दिया करें जैसे अग्नि में घी आदि पदार्थों का हवन कर के संसार का उपकार करते हैं वैसे ही विद्वानों में उत्तम पदार्थों का दान करके जगत् में विद्या और अच्छी शिक्षा को बढ़ा के विश्व को सुखी करें ॥३०॥

उदुत्वेत्यस्य तापस ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गांधारः स्वरः ॥

विद्वानों को चाहिये कि अपने तुल्य अन्य मनुष्यों को विद्वान् करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

उद्दु त्वा विश्वे॑ दे॒वाऽअ॑ग्ने॒ भर॑न्तु॒ चित्ति॑भिः ।
स नो॑ भव शि॒वस्त्व॑ꣳ सु॒प्रती॑को वि॒भाव॑सुः ।।३१।।

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् ! जिस (त्वा) आप को (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (चित्तिभिः) अच्छे विज्ञानों के साथ अग्नि के समान (उदुभरन्तु) पुष्ट करें (सः) सो (विभावसुः) जिस से विविध प्रकार की शोभा वा विद्या प्रकाशित हो (सुप्रतीकः) सुन्दर लक्षण से युक्त (त्वम्) आप (नः) हम लोगों के लिये (शिवः) मंगलमय वचनों के उपदेशक (भव) हूजिये ।।३१।।

भावार्थः—जो मनुष्य जैसे विद्वानों से विद्या का सञ्चय करता है वह वैसे ही दूसरों के लिये विद्या का प्रचार करे ।।३१।।

प्रेदग्न इत्यस्य तापस ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ।।

फिर राजा क्या करके किस को प्राप्त होवे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

प्रेद॑ग्ने॒ ज्योति॑ष्मान् याहि शि॒वेभि॑र॒र्चिभि॒ष्ट्वम् ।
बृ॒हद्भि॑र्भा॒नुभि॒र्भास॒न् मा हि॑ꣳसीस्त॒न्वा॒ प्र॒जाः ।।३२।।

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्या प्रकाश करने हारे विद्वन् ! (त्वम्) तू जैसे (ज्योतिष्मान्) सूर्य ज्योतियों से युक्त (शिवेभिः) मंगलकारी (अर्चिभिः) सत्कार के साधन (बृहद्भिः) बड़े-बड़े (भानुभिः) प्रकाशगुणों से (इत्) ही (भासन्) प्रकाशमान है वैसे (प्रयाहि) सुखों को प्राप्त हूजिये और (तन्वा) शरीर से (प्रजाः) पालने योग्य प्राणियों को (मा) मत (हिंसीः) मारिये ।।३२।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे सेनापति आदि राजपुरुषों के सहित राजन् ! आप अपने शरीर से किसी अनपराधी प्राणी को न मार के विद्या और न्याय के प्रकाश से प्रजाओं का पालन कर के जीते हुए संसार के सुख को और शरीर छूटने के पश्चात् मुक्ति के सुख को प्राप्त हूजिये ।।३२।।

अक्रन्ददित्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

राज्य का प्रबन्ध कैसे करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

अक्र॑न्दद॒ग्निस्त॒नय॑न्निव॒ द्यौः क्षामा॒ रेरि॑हद् वी॒रुधः॑ सम॒ञ्जन् ।
स॒द्यो ज॑ज्ञा॒नो वि हीमि॒द्धोऽअख्य॒दा रोद॑सी भा॒नुना॑ भात्य॒न्तः ।।३३।।

पदार्थः—हे प्रजा के लोगो ! तुम लोगों को चाहिये कि जैसे (द्यौः) सूर्य प्रकाशकर्त्ता है वैसे विद्या और न्याय का प्रकाश करने और (अग्निः) पावक के तुल्य शत्रुओं का नष्ट करने हारा विद्वान् (स्तनयन्निव) विजुली के समान (अक्रन्दत्) गर्जता और (वीरुधः) वन के वृक्षों की (समञ्जन्) अच्छे प्रकार रक्षा करता हुआ (क्षामा) पृथिवी पर (रेरिहत्) युद्ध करे, (जज्ञानः) राजनीति से प्रसिद्ध हुआ (इद्धः) शुभ लक्षणों से प्रकाशित (सद्यः) शीघ्र (व्यख्यत्) धर्म युक्त उपदेश करे तथा (भानुना) पुरुषार्थ के प्रकाश से (हि) ही (रोदसी) अग्नि और भूमि को (अन्तः) राजधर्म में स्थिर करता हुआ (आभाति) अच्छे प्रकार प्रकाश करता है वह पुरुष राजा होने के योग्य है ऐसा निश्चित जानो ।।३३।।

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । वन के वृक्षों की रक्षा के विना वहुत वर्षा और रोगों की न्यूनता नहीं होती और विजुली के तुल्य दूर के समाचारों के ग्रहण से शत्रुओं को मारने और विद्या तथा न्याय के प्रकाश के विना अच्छा स्थिर राज्य ही नहीं हो सकता ।।३३।।

प्रप्रायमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षीत्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

फिर कैसे पुरुष को राजव्यवहार में नियुक्त करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत्सूर्यो न रोचते बृहद्भाः । अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ दीदाय दैव्योऽअतिथिः शिवो नः ।।३४।।

पदार्थः—हे राजा और प्रजा के पुरुषो ! तुम लोगों को चाहिये कि (यत्) जो (अयम्) यह (अग्नि) सेनापति (सूर्य्यः) सूर्य्य के (न) समान (बृहद्भाः) अत्यन्त प्रकाश से युक्त (प्रप्र) अति प्रकर्ष के साथ (रोचते) प्रकाशित होता है (यः) जो (नः) हमारी (पृतनासु) सेनाओं में (पूरुम्) पूर्ण बलयुक्त सेनाध्यक्ष के निकट (अभितस्थौ) सब प्रकार स्थित होवे (दैव्यः) विद्वानों का प्रिय (अतिथि) नित्य भ्रमण करने हारा अतिथि (शिवः) मङ्गलदाता विद्वान् पुरुष (विद्याः)(दीदाय) विद्या और धर्म को प्रकाशित करे जिस को मैं (भरतस्य) सेवने योग्य राज्य का रक्षक (शृण्वे) सुनता हूं उस को सेना का अधिपति करो ।।३४।।

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि जिस पुण्यकीर्ति पुरुष का शत्रुओं में विजय और विद्याप्रचार सुना जावे उस कुलीन पुरुष को सेना को युद्ध कराने हारा अधिकारी करें ।।३४।।

आप इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । आपो देवताः । आर्षीत्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

अब सब मनुष्यों को स्वयम्वर विवाह करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

आपो॑ दे॒वीः प्रति॑गृभ्णीत॒ भस्मै॒तत्स्यो॒ने कृ॑णुध्व॒ꣳ सु॒र॒भाऽउ॑ लो॒के ।
तस्मै॑ नमन्तां॒ जन॑यः सु॒पत्नी॑र्मा॒तेव॑ पु॒त्रं बि॑भृता॒प्स्वे॑नत् ।।३५।।

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो ! जो (आपः) पवित्र जलों के तुल्य सम्पूर्ण शुभगुण और विद्याओं में व्याप्त बुद्धि (देवीः) सुन्दर रूप और स्वभाव वाली कन्या (सुरभौ) ऐश्वर्य के प्रकाश से युक्त (लोके) देखने योग्य लोकों में अपने पतियों को प्रसन्न करें उन को (प्रतिगृभ्णीत) स्वीकार करो तथा उन को सुखयुक्त (कृणुध्वम्) करो । जो (एतत्) यह (भस्म) प्रकाशक तेज है (तस्मै) उस के लिये जो (सुपत्नीः) सुन्दर (जनयः) विद्या और अच्छी शिक्षा से प्रसिद्ध हुई स्त्री नमती हैं उन के प्रति आप लोग भी (नमन्ताम्) नम्र हूजिये (उ) और तुम स्त्री पुरुष दोनों मिल के (पुत्रम्) पुत्र को (मातेव) माता के तुल्य (अप्सु) प्राणों में (एनत्) इस पुत्र को (बिभृत) धारण करो ।।३५।।

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि परस्पर प्रसन्नता के साथ स्वयंवर विवाह करके धर्म के अनुसार पुत्रों को उत्पन्न करें और उन को विद्वान् करके गृहाश्रम के ऐश्वर्य की उन्नति करें ।।३५।।

अप्स्वग्न इत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।।

अब जीव किस-किस प्रकार पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

अ॒प्स्व॑ग्ने॒ सधि॒ष्टव॒ सौष॑धी॒रनु॑ रुध्यसे । गर्भे॒ सन् जा॑यसे॒ पुनः॑ ।।३६।।

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य विद्वान् जीव ! जो (सधिः) सहनशील तू (अप्सु) जलों में (ओषधिः) सोमलता आदि ओषधियों को (अनुरुध्यसे) प्राप्त होता है (सः) वह गर्भ में (सन्) स्थित होकर (पुनः) फिर-फिर जन्म मरण (तव) तेरे हैं ऐसा जान ।।३६।।

भावार्थः—जो जीव शरीर को छोड़ते हैं वे वायु और ओषधि आदि पदार्थों में भ्रमण करते-करते गर्भाशय को प्राप्त होके नियत समय पर शरीर धारण कर के प्रकट होते हैं ।।३६।।

गर्भो असीत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्ष्युष्णिक्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

फिर जीव कहां-कहां जाता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

गर्भोऽअस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम्।
गर्भो विश्वस्य भूतस्याग्ने गर्भोऽअपामसि॥३७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) दूसरे शरीर को प्राप्त होने वाले जीव! जिस से तू अग्नि के समान जो (ओषधीनाम्) सोमलता आदि वा यवादि ओषधियों के (गर्भः) दोषों के मध्य (गर्भः) गर्भ (वनस्पतीनाम्) पीपल आदि वनस्पतियों के बीच (गर्भः) शोधक (विश्वस्य) सब (भूतस्य) उत्पन्न हुए संसार के मध्य (गर्भः) ग्रहण करने हारा और जो (अपाम्) प्राण वा जलों का (गर्भः) गर्भरूप भीतर रहने हारा (असि) है इसलिये तू अज अर्थात् स्वयं जन्मरहित (असि) है॥३७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! तुम लोगों को चाहिये कि जो विजुली के समान सब के अन्तर्गत जीव जन्म लेने वाले हैं उन को जानो॥३७॥

प्रसद्येत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मरण समय में शरीर का क्या होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने।
सꣳसृज्य मातृभिष्ट्वं ज्योतिष्मान् पुनरासदः॥३८॥

पदार्थः—हे (अग्ने) प्रकाशमान पुरुष सूर्य्य के समान (ज्योतिष्मान्) प्रशंसित प्रकाश से युक्त जीव! तू (भस्मना) शरीरदाह के पीछे (पृथिवीम्) पृथिवी (च) अग्नि आदि और (अपः) जलों के बीच (योनिम्) देह धारण के कारण को (प्रसद्य) प्राप्त हो और (मातृभिः) माताओं के उदर में वास करके (पुनः) फिर (आसदः) शरीर को प्राप्त होता है॥३८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे जीवो! तुम लोग जब शरीर को छोड़ो तब यह शरीर राख रूप करके पृथिवी आदि के पांच भूतों के साथ युक्त करो। तुम और तुम्हारे आत्मा माता के शरीर में गर्भाशय में पहुंच फिर शरीर धारण किये हुए विद्यमान होते हो॥३८॥

पुनरासद्येत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब माता पिता और पुत्र आपस में कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

पुन॑रा॒सद्य॒ सद॑नम॒पश्च॑ पृ॒थि॒वीम॑ग्ने ।

शेषे॑ मा॒तुर्यथो॒पस्थे॒ऽन्तर॑स्या॒ᳬ शि॒वत॑मः ॥३९॥

पदार्थः—हे (अग्ने) इच्छा आदि गुणों से प्रकाशित जन ! जिस कारण तू (पुनः) फिर-फिर (आसद्य) प्राप्त हो के (अस्याम्) इस माता के (अन्तः) गर्भाशय में (शिवतमः) मङ्गलकारी हो के (यथा) जैसे बालक (मातुः) माता की (उपस्थे) गोद में (शेषे) सोता है वैसे ही माता की सेवा में मंगलकारी हो ॥३९॥

भावार्थः—पुत्रों को चाहिये कि जैसे माता अपने पुत्रों को सुख देती है वैसे ही अनुकूल सेवा से अपनी माताओं को निरन्तर आनन्दित करें और माता पिता के साथ विरोध कभी न करें और माता पिता को भी चाहिये कि अपने पुत्रों को अधर्म और कुशिक्षा से युक्त कभी न करें ॥३९॥

पुनरूर्जेत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षीगायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर पुत्रों को माता पिता के विषय में परस्पर योग्य वर्तमान करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

पुन॑रू॒र्जा निव॑र्त्तस्व॒ पुन॑रग्नऽइ॒षायु॑षा । पुन॑र्नः पा॒ह्यᳬहसः ॥४०॥

पदार्थः—हे (अग्ने) तेजस्विन् मातापिता ! आप (इषायुषा) अन्न और जीवन के साथ (नः) हम लोगों को बढ़ाइये (पुनः) वारंवार (अंहसः) दुष्ट आचरणों से (पाहि) रक्षा कीजिये । हे पुत्र ! तू (ऊर्जा) पराक्रम के साथ पापों से (निवर्त्तस्व) अलग हूजिये और (पुनः) फिर हम लोगों को भी पापों से पृथक् रखिये ॥४०॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् मातापिता अपने सन्तानों को विद्या और अच्छी शिक्षा से दुष्टाचारों से पृथक् रक्खें वैसे ही सन्तानों को भी चाहिये कि इन माता पिताओं को बुरे व्यवहारों से निरन्तर बचावें । क्योंकि इस प्रकार किये विना सब मनुष्य धर्मात्मा नहीं हो सकते ॥४०॥

सह रय्येत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

विद्वानों को कैसे वर्त्तना चाहिये यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

स॒ह र॒य्या निव॑र्त्त॒स्वाग्ने॒ पिन्व॑स्व॒ धार॑या ।

वि॒श्वप्स्न्या॒ वि॒श्वत॒स्परि॑ ॥४१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! आप (विश्वप्स्न्या) सब पदार्थों के भोगने का साधन (धारया) अच्छी संस्कृत वाणी (रय्या) और धन के (सह) साथ

(विश्वतस्परि) सब संसार के बीच (नि) निरन्तर (वर्त्तस्व) वर्तमान हूजिये और हम लोगों का (पिन्वस्व) सेवन कीजिये ।।४१।।

भावार्थः—विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि इस जगत् में अच्छी बुद्धि और पुरुषार्थ के साथ श्रीमान् होकर अन्य मनुष्यों को भी धनवान् करें ।।४१।।

बोधा म इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

मनुष्य लोग आपस में कैसे पढ़ें और पढ़ावें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ।।

बोधा मेऽअस्य वचसो यविष्ठ मꣳहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।
पीयति त्वोऽअनु त्वो गृणाति वन्दारुष्टे तन्वं वन्देऽअग्ने ।।४२।।

पदार्थः—हे (यविष्ठ) अत्यन्त जवान (स्वधावः) प्रशंसित बहुत अन्नों वाले (अग्ने) उपदेश के योग्य श्रोता जन ! तू (मे) मेरे (प्रभृतस्य) अच्छे प्रकार से धारण वा पोषण करने वाले (मंहिष्ठस्य) अत्यन्त कहने योग्य बड़े तेरी जो (त्वः) यह निन्दक पुरुष (पीयति) निन्दा करे (त्वः) कोई (अनु) परोक्ष में (गृणाति) स्तुति करे उस (ते) आप के (तन्वम्) शरीर को (वन्दारुः) अभिवादनशील मैं स्तुति करता हूं ।।४२।।

भावार्थः—जब कोई किसी को पढ़ावे वा उपदेश करे तब पढ़ने वाला ध्यान देकर पढ़े वा सुने । जब सत्य वा मिथ्या का निश्चय हो जावे तब सत्य ग्रहण और असत्य का त्याग कर देवे । ऐसे करने में कोई निन्दा और कोई स्तुति करे तो कभी न छोड़े और मिथ्या का ग्रहण कभी न करे । यही मनुष्यों के लिये विशेष गुण है ।।४२।।

स बोधीत्यस्य सोमाहुतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्चीपंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।।

मनुष्य लोग क्या करके किस को प्राप्त हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन् ।
युयोध्यस्मद् द्वेषाꣳसि विश्वकर्मणे स्वाहा ।।४३।।

पदार्थः—हे (वसुपते) धनों के पालक (वसुदावन्) सुपात्रों के लिये धन देने वाले ! जो (मघवा) प्रशंसित विद्या से युक्त (सूरिः) बुद्धिमान् आप सत्य को (बोधि) जानें (सः) सो आप (विश्वकर्म्मणे) सम्पूर्ण शुभ कर्मों के अनुष्ठान के लिये (स्वाहा)

सत्य वाणी का उपदेश करते हुए आप (अस्मत्) हम से (द्वेषांसि) द्वेषयुक्त कर्मों को (वियुयोधि) पृथक् कीजिये ॥४३॥

भावार्थः—जो मनुष्य ब्रह्मचर्य्य के साथ जितेन्द्रिय हो द्वेष को छोड़ धर्मानुसार उपदेश कर और सुन के प्रयत्न करते हैं वे ही धर्मात्मा विद्वान् लोग सम्पूर्ण सत्य असत्य के जानने और उपदेश करने के योग्य होते हैं और अन्य हठ अभिमानयुक्त क्षुद्र पुरुष नहीं ॥४३॥

पुनस्त्वेत्यस्य सोमाहुतिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

कैसे मनुष्यों के संकल्प सिद्ध होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

पुन॑स्त्वाऽऽदि॒त्या रु॒द्रा वस॑वः॒ समि॑न्धतां॒ पुन॑र्ब्र॒ह्माणो॑ वसुनीथ य॒ज्ञैः।
घृ॒तेन॒ त्वं त॒न्वं वर्धयस्व स॒त्याः स॑न्तु॒ यज॑मानस्य॒ कामाः॑ ॥४४॥

पदार्थः—हे (वसुनीथ) वेदादि शास्त्रों के बोधरूप और सुवर्णादि धन प्राप्त कराने वाले! आप (यज्ञैः) पढ़ने पढ़ाने आदि क्रियारूप यज्ञों और (घृतेन) अच्छे संस्कार किये हुए घी आदि वा जल से (तन्वम्) शरीर को नित्य (वर्धयस्व) बढ़ाइये (पुनः) पढ़ने पढ़ाने के पीछे (त्वा) आप को (आदित्याः) पूर्ण विद्या के बल से युक्त (रुद्राः) मध्यस्थ विद्वान् और (वसवः) प्रथम विद्वान् लोग (ब्रह्माणः) चार वेदों को पढ़ के ब्रह्मा की पदवी को प्राप्त हुए विद्वान् (समिन्धताम्) सम्यक् प्रकाशित करें। इस प्रकार के अनुष्ठान से (यजमानस्य) यज्ञ सत्संग और विद्वानों का सत्कार करने वाले पुरुष की (कामाः) कामना (सत्याः) सत्य (सन्तु) होवें ॥४४॥

भावार्थः—जो मनुष्य प्रयत्न के साथ सब विद्याओं को पढ़ और पढ़ा के वारम्वार सत्संग करते हैं कुपथ्य और विषय के त्याग से शरीर तथा आत्मा के रोग को हटा के नित्य पुरुषार्थ का अनुष्ठान करते हैं उन्हीं के संकल्प सत्य होते हैं दूसरों के नहीं ॥४४॥

अपेतेत्यस्य सोमाहुतिर्ऋषिः। पितरो देवताः। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

सन्तान और पिता माता परस्पर किन २ कर्मों का आचरण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अपे॑त॒ वी॑त॒ वि च॑ सर्प॒तातो॒ येऽत्र॒ स्थ पु॑रा॒णा ये च॒ नूत॑नाः।
अदा॑द्य॒मोऽव॒सानं॑ पृथि॒व्याऽअक्र॑न्नि॒मं पि॒तरो॑ लो॒कम॑स्मै ॥४५॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो! (ये) जो (अत्र) इस समय (पृथिव्याः) भूमि के बीच वर्त्तमान (पुराणाः) प्रथम विद्या पढ़ चुके (च) और (ये) जो (नूतनाः)

वर्त्तमान समय में विद्याभ्यास करने हारे (पितरः) पिता पढ़ाने उपदेश करने और परीक्षा करने वाले (स्थ) होवें (ते) वे (अस्मै) इस सत्यसंकल्पी मनुष्य के लिये (इमम्) इस (लोकम्) वैदिक ज्ञान सिद्ध लोक को (अक्रन्) सिद्ध करें जिन तुम लोगों को (यमः) प्राप्त हुआ परीक्षक पुरुष (अवसानम्) अवकाश वा अधिकार को (अदात्) देवे वे तुम लोग (अतः) इस अधर्म से (अपेत) पृथक् रहो और धर्म्म को (वीत) विशेष कर प्राप्त होओ (अत्र) और इसी में (विसर्पत) विशेषता से गमन करो ॥४५॥

भावार्थः—माता पिता और आचार्य्य का यही परम धर्म है जो सन्तानों के लिये विद्या और अच्छी शिक्षा का प्राप्त कराना। जो अधर्म से पृथक् और धर्म्म से युक्त परोपकार में प्रीति रखने वाले वृद्ध और जवान विद्वान् लोग हैं वे निरन्तर सत्य उपदेश से अविद्या का निवारण और विद्या की प्रवृत्ति कर के कृतकृत्य होवें ॥४५॥

संज्ञानमित्यस्य सोमाहुतिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः।
धैवतः स्वरः ॥

पढ़ने पढ़ाने वाले क्या करके सुखी हों इस विषय का
उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

संज्ञानमसि कामधरणं मयि ते कामधरणं भूयात्। अग्नेर्भस्मास्यग्नेः पुरीषमसि चित स्थ परिचितऽऊर्ध्वचितः श्रयध्वम् ॥४६॥

पदार्थः—हे विद्वन्! आप जिस (संज्ञानम्) पूरे विज्ञान को प्राप्त (असि) हुए हो जो आप (अग्नेः) अग्नि से हुई (भस्म) राख के समान दोषों को भस्म करता (असि) हो (अग्नेः) बिजुली के जिस (पुरीषम्) पूर्ण बल को प्राप्त हुए (असि) हो उस विज्ञान भस्म और बल को मेरे लिये भी दीजिये जिस (ते) आप का जो (कामधरणम्) सङ्कल्पों का आधार अन्तःकरण है वह (कामधरणम्) कामना का आधार (मयि) मुझ में (भूयात्) होवे। जैसे तुम लोग विद्या आदि शुभगुणों से (चितः) इकट्ठे हुए (परिचितः) सब पदार्थों को सब ओर से इकट्ठे करने हारे (ऊर्ध्वचितः) उत्कृष्ट गुणों के संचयकर्त्ता पुरुषार्थ को (श्रयध्वम्) सेवन करो वैसे हम लोग भी करें ॥४६॥

भावार्थः—जिज्ञासु मनुष्यों को चाहिये कि सदैव विद्वानों से विद्या की इच्छा कर प्रश्न किया करें कि जितना तुम लोगों में पदार्थों का विज्ञान है उतना सब तुम लोग हम लोगों में धारण करो और जितनी हस्तक्रिया आप जानते हैं उतनी सब हम लोगों को सिखाइये ॥४६॥

अयं स इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को उत्तम आचरणों के अनुसार वर्त्तना चाहिये यह
विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अयꣳ सोऽअग्निर्यस्मिन्त्सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः ।
सहस्रियं वाजमत्यं न सप्तिꣳ ससवान्त्सन्त्स्तूयसे जातवेदः ॥४७॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) विज्ञान को प्राप्त हुए विद्वान् ! जैसे (ससवान्) दान देते (सन्) हुए आप (स्तूयसे) प्रशंसा के योग्य हो (अयम्) यह (अग्निः) अग्नि और (इन्द्रः) सूर्य्य (यस्मिन्) जिसमें (सोमम्) सब ओषधियों के रस को धारण करता है जिस (सुतम्) सिद्ध हुए पदार्थ को (जठरे) पेट में मैं (दधे) धारण करता हूं (सः) वह मैं (वावशानः) शीघ्र कामना करता हुआ (सहस्रियम्) साथ वर्त्तमान अपनी स्त्री को धारण करता हूं आप के साथ (वाजम्) अन्न आदि पदार्थों को (अत्यम्) व्याप्त होने योग्य के (न) समान (सप्तिम्) घोड़े को (दधे) धारण करता हूं वैसा ही तू भी हो ॥४७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार और उपमालङ्कार हैं। जैसे बिजुली और सूर्य, सब रसों का ग्रहण कर जगत् को रसयुक्त करते हैं वा जैसे पति के साथ स्त्री और स्त्री के साथ पति आनन्द भोगते हैं वैसे मैं इस सब का धारण करता हूं जैसे श्रेष्ठ गुणों से युक्त आप प्रशंसा के योग्य हो वैसे मैं भी प्रशंसा के योग्य होऊं ॥४७॥

अग्ने यत्त इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

अध्यापक लोगों को निष्कपटता से सब विद्यार्थीजन पढ़ाने चाहियें
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र ।
येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥४८॥

पदार्थः—हे (यजत्र) संगम करने योग्य (अग्ने) विद्वन् ! (यत्) जिस (ते) आप का अग्नि के समान (दिवि) द्योतनशील आत्मा में (वर्चः) विज्ञान का प्रकाश (यत्) जो (पृथिव्याम्) पृथिवी (ओषधीषु) यवादि ओषधियों और (अप्सु) प्राणों वा जलों में (वर्चः) तेज है (येन) जिससे (नृचक्षाः) मनुष्यों को दिखाने वाला

(भानुः) सूर्य (अर्णवः) बहुत जलों को वर्षाने हारा (त्वेषः) प्रकाश है (येन) जिससे (अन्तरिक्षम्) आकाश को (उरु) बहुत (आ,ततन्थ) विस्तारयुक्त करते हो (सः) सो आप वह सब हम लोगों में धारण कीजिये ॥४८॥

भावार्थः—यहाँ वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। इस जगत् में जिस को सृष्टि के पदार्थों का विज्ञान जैसा होवे। वैसा ही शीघ्र दूसरों को बतावे जो कदाचित्, दूसरों को न बतावे तो वह नष्ट हुआ किसी को प्राप्त नहीं हो सके ॥४८॥

अग्ने दिव इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्ने॑ दि॒वोऽअर्ण॒मच्छा॑ जिगा॒स्यच्छा॑ दे॒वाँ२ऽऊ॑चिषे॒ धिष्ण्या॒ ये।
या रो॑च॒ने प॒रस्ता॒त् सूर्य॑स्य॒ याश्चा॒वस्ता॑दु॒पति॒ष्ठन्त॒ऽआपः॑ ॥४९॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान्! जो आप (दिवः) प्रकाश से (अर्णम्) विज्ञान को (याः) जो (आपः) प्राण वा जल (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के (रोचने) प्रकाश में (परस्तात्) पर हैं (च) और (याः) जो (अवस्तात्) नीचे (उपतिष्ठन्ते) समीप में स्थित हैं उन को (अच्छ) सम्यक् (जिगासि) स्तुति करते हो (ये) जो (धिष्णचाः) बोलने वाले हैं उन (देवान्) दिव्यगुण विद्यार्थियों वा विद्वानों के प्रति विज्ञान को (अच्छ) अच्छे प्रकार (ऊचिषे) कहते हो सो आप हमारे लिये उपदेश कीजिये ॥४९॥

भावार्थः—जो अच्छे विचार से विजुली और सूर्य के किरणों में ऊपर नीचे रहने वाले जलों और वायुओं के बोध को प्राप्त होते हैं वे दूसरों को निरन्तर उपदेश करें ॥४९॥

पुरीष्यास इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

मनुष्यों को द्वेषादिक छोड़ के आनन्द में रहना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

पु॒री॒ष्या॒सो॒ऽअ॒ग्नयः॑ प्राव॒णेभिः॑ स॒जोष॑सः।
जु॒षन्तां॑ य॒ज्ञम॒द्रुहो॑ऽनमीवाऽइषो॑ म॒हीः ॥५०॥

पदार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि (प्रावणेभिः) विज्ञानों के साथ वर्त्तमान हुए (अनमीवाः) रोगरहित (अद्रुहः) द्रोह से पृथक् (सजोषसः) एक प्रकार की सेवा

और प्रीति वाले (पुरीष्यासः) पूर्ण गुणक्रियाओं में निपुण (अग्नयः) अग्नि के समान वर्त्तमान तेजस्वी विद्वान् लोग (यज्ञम्) विद्याविज्ञान दान और ग्रहणरूप यज्ञ और (महीः) वड़ी २ (इषः) इच्छाओं को (जुषन्ताम्) सेवन करें ॥५०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विजुली अनुकूल हुई समान भाव से सब पदार्थों का सेवन करती है वैसे ही रोग द्रोहादि दोषों से रहित आपस में प्रीति वाले हो के विद्वान् लोग विज्ञान बढ़ाने वाले यज्ञ को विस्तृत करके बड़े बड़े सुखों को निरन्तर भोगें ॥५०॥

इडामग्न इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः।
पञ्चमः स्वरः॥

मनुष्य गर्भाधानादि संस्कारों से बालकों का संस्कार करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

इडा॑मग्ने पुरु॒दꣳस॑ꣳस॒निं गोः श॑श्व॒त्तम॒ꣳ हव॑मानाय साध।
स्यान्नः॑ सू॒नुस्तन॑यो वि॒जावाऽग्ने॒ सा ते॑ सुम॒तिर्भू॑त्व॒स्मे ॥५१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान्! (ते) आप की (सा) वह (सुमतिः) सुन्दर बुद्धि (अस्मे) हम लोगों के लिये (भूतु) होवे जिस से आप का (नः) और हमारा जो (विजावा) विविध प्रकार के ऐश्वर्यों का उत्पादक (सूनुः) उत्पन्न होने वाला (तनयः) पुत्र (स्यात्) होवे। उस बुद्धि से उस (हवमानाय) विद्या ग्रहण करते हुए के लिये (इडाम्) स्तुति के योग्य वाणी को (गोः) वाणी के सम्बन्धी (शश्वत्तमम्) अनादि रूप अत्यन्त वेदज्ञान को और (पुरुदंसम्) बहुत कर्म जिस से सिद्ध हों ऐसे (सनिम्) ऋग्वेदादि वेदविभाग को (साध) सिद्ध कीजिये और हे अध्यापक हम लोग भी सिद्ध करें ॥५१॥

भावार्थः—माता पिता और आचार्य्य को चाहिये कि सावधानी से गर्भाधान आदि संस्कारों की रीति के अनुकूल अच्छे सन्तान उत्पन्न कर के उन में वेद ईश्वर और विद्यायुक्त बुद्धि उत्पन्न करें क्योंकि ऐसा अन्यधर्म अपत्य सुख का हितकारी कोई नहीं है ऐसा निश्चय रखना चाहिये ॥५१॥

अयं त इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः॥

अब माता पिता और पुत्रादिकों को परस्पर क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातोऽअरोचथाः ।
तं जानन्नग्नऽआ रोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥५२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान शुद्ध अन्तःकरण वाले विद्वान् पुरुष ! जो (ते) आप का (ऋत्वियः) ऋतुकाल में प्राप्त हुआ (अयम्) यह प्रत्यक्ष (योनिः) दुःखों का नाशक और सुखदायक व्यवहार है (यतः) जिस से (जातः) उत्पन्न हुए आप (अरोचथाः) प्रकाशित होवें (तम्) उस को (जानन्) जानते हुए आप (आरोह) शुभ गुणों पर आरूढ़ हूजिये (अथ) इस के पश्चात् (नः) हम लोगों के लिये (रयिम्) प्रशंसित लक्ष्मी को (वर्धय) बढ़ाइये ॥५२॥

भावार्थः—हे माता पिता और आचार्य्य ! तुम लोग पुत्र और कन्याओं को धर्मानुकूल सेवन किये ब्रह्मचर्य से श्रेष्ठविद्या को प्रसिद्ध कर उपदेश करो । हे सन्तानो ! तुम लोग सत्यविद्या और सदाचार के साथ हम को अच्छी सेवा और धन से निरन्तर सुखयुक्त करो ॥५२॥

चिदसीत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

कन्याओं को क्या करके क्या करना चाहिये यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

चिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ।
परिचिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥५३॥

पदार्थः—हे कन्ये ! जो तू (चित्) चिताई हुई (असि) है (तया) उस (देवतया) दिव्यगुण प्राप्त कराने हारी विद्वान् स्त्री के साथ (अङ्गिरस्वत्) प्राणों के तुल्य (ध्रुवा) निश्चल (सीद) स्थिर हो । हे ब्रह्मचारिणी ! जो तू (परिचित्) विविध विद्या को प्राप्त हुई (असि) है सो तू (तया) उस (देवतया) धर्मानुष्ठान से युक्त दिव्यसुखदायक क्रिया के साथ (अंगिरस्वत्) ईश्वर के समान (ध्रुवा) अचल (सीद) अवस्थित हो ॥५३॥

भावार्थः—सब माता पिता और पढ़ानेहारी विदुषी स्त्रियों को चाहिये कि कन्याओं को सम्यक् बुद्धिमती करें । हे कन्या लोगो ! तुम जो पूर्ण अखंडित ब्रह्मचर्य से सम्पूर्ण विद्या और अच्छी शिक्षा को प्राप्त युवती होकर अपने तुल्य वरों के साथ स्वयंवर विवाह करके गृहाश्रम का सेवन करो तो सब सुखों को प्राप्त हो और सन्तान भी अच्छे होवें ॥५३॥

लोकं पृणेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

लोकं पृंण छिद्रं पृणाथौं सीद ध्रुवा त्वम् ।
इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन् योनावसीषदन् ।।५४।।

पदार्थः—हे कन्ये ! जिस (त्वा) तुझ को (योनौ) बन्ध के छेदक, मोक्षप्राप्ति के हेतु (अस्मिन्) इस विद्या के बोध में (इन्द्राग्नी) माता पिता तथा (बृहस्पतिः) बड़ी-बड़ी वेदवाणियों की रक्षा करने वाली अध्यापिका स्त्री (असीषदन्) प्राप्त करावें उस में (त्वम्) तू (ध्रुवा) दृढ़ निश्चय के साथ (सीद) स्थित हो (अथो) इस के अनन्तर (छिद्रम्) छिद्र को (पृण) पूर्ण कर और (लोकम्) देखने योग्य प्राणियों को (पृण) तृप्त कर ।।५४।।

भावार्थः—माता पिता और आचार्यों को चाहिये कि इस प्रकार की धर्म्मयुक्त विद्या और शिक्षा करें कि जिस को ग्रहण कर कन्या लोग चिन्तारहित हो सब बुरे व्यसनों को त्याग और समावर्त्तन संस्कार के पश्चात् विवाह करके पुरुषार्थ के साथ आनन्द में रहें ।।५४।।

ता अस्येत्यस्य प्रियमेधा ऋषिः । आपो देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ।।

फिर भी उसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

ताऽअंस्य सूदंदोहसः सोमंꣳ श्रीणन्ति पृश्नंयः ।
जन्मंन्देवानां विशंस्त्रिष्वा रोचने दिवः ।।५५।।

पदार्थः—जो (देवानाम्) दिव्य विद्वान् पतियों की (सूददोहसः) सुन्दर रसोइया और गौ आदि के दुहने वाले सेवकों वाली (पृश्नयः) कोमल शरीर सूक्ष्म अङ्गयुक्त स्त्री दूसरे (जन्मन्) विद्यारूप जन्म में विदुषी हो के (दिवः) दिव्य (अस्य) इस गृहाश्रम के (सोमम्) उत्तम ओषधियों के रस से युक्त भोजन (श्रीणन्ति) पकाती हैं (ताः) वे ब्रह्मचारिणी (आरोचने) अच्छी रुचिकारक व्यवहार में (त्रिषु) तीनों अर्थात् गत आगामी और वर्त्तमान कालविभागों में सुख देने वाली होती तथा (विशः) उत्तम सन्तानों को भी प्राप्त होती हैं ।।५५।।

भावार्थः—जब अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुए युवा विद्वानों की अपने सदृश रूप और गुण से युक्त स्त्री होवें तो गृहाश्रम में सर्वदा सुख और अच्छे सन्तान उत्पन्न होवें । इस प्रकार किये विना संसार का सुख और शरीर छूटने के पश्चात् मोक्ष कभी प्राप्त नहीं हो सकता ।।५५।।

इन्द्रं विश्वेत्यस्य सुतजेतृमधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कुमार और कुमारियों को इस प्रकार करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।
रथीतमथं रथीनां वाजानाथं सत्पतिं पतिम् ॥५६॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो ! जैसे (विश्वाः) सब (गिरः) वेदविद्या से संस्कार की हुई वाणी (समुद्रव्यचसम्) समुद्र की व्याप्ति के समान व्याप्ति जिस में हो उन (वाजानाम्) संग्रामों और (रथीनाम्) प्रशंसित रथों वाले वीर पुरुषों में (रथीतमम्) अत्यन्त प्रशंसित रथवाले (सत्पतिम्) सत्य ईश्वर वेद धर्म वा श्रेष्ठ पुरुषों के रक्षक (पतिम्) सब ऐश्वर्य के स्वामी को (अवीवृधन्) बढ़ावें और (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को बढ़ावें वैसे सब प्राणियों को बढ़ाओ ॥५६॥

भावार्थः—जो कुमार और कुमारी दीर्घ ब्रह्मचर्य सेवन से साङ्गोपाङ्ग वेदों को पढ़ और अपनी-अपनी प्रसन्नता से स्वयंवर विवाह कर के ऐश्वर्य के लिये प्रयत्न करें, धर्मयुक्त व्यवहार से व्यभिचार को छोड़ के सुन्दर सन्तानों को उत्पन्न कर के परोपकार करने में प्रयत्न करें वे इस संसार और परलोक में सुख भोगें । और इन से विरुद्ध जनों को नहीं हो सकता ॥५६॥

समितमित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

पश्चात् विवाह करके कैसे वर्त्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

समितथंसं कल्पेथाथं संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ ।
इषमूर्जमभि संवसानौ ॥५७॥

पदार्थः—हे विवाहित स्त्रीपुरुषो तुम! (संप्रियौ) आपस में सम्यक् प्रीति वाले (रोचिष्णू) विषयासक्ति से पृथक् प्रकाशमान (सुमनस्यमानौ) मित्र विद्वान् पुरुषों के समान वर्त्तमान (संवसानौ) सुन्दर वस्त्र और आभूषणों से युक्त हुए (इषम्) इच्छा को (समितम्) इकट्ठे प्राप्त होओ और (ऊर्जम्) पराक्रम को (अभि) सन्मुख (संकल्पेथाम्) एक अभिप्राय में समर्पित करो ॥५७॥

भावार्थः—जो स्त्रीपुरुष सर्वथा विरोध को छोड़ के एक दूसरे की प्रीति में तत्पर विद्या के विचार से युक्त तथा अच्छे-अच्छे वस्त्र और आभू-

षण धारण करने वाले हो के प्रयत्न करें तो घर में कल्याण और आरोग्य बढ़े। और जो परस्पर विरोधी हों तो दुःखसागर में अवश्य डूबें ॥५७॥

सं वामित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगुपरिष्टाद् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अध्यापक और उपदेशक लोगों को चाहिये कि जितना सामर्थ्य हो उतना ही वेदों को पढ़ावें और उपदेश करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सं वां मनांसि सं व्रता समु चित्तान्याकरम्।
अग्ने पुरीष्याधिपा भव त्वं नऽइषमूर्जं यजमानाय धेहि ॥५८॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो! जैसे मैं आचार्य (वाम्) तुम दोनों के (संमनांसि) एक धर्म्म में तथा संकल्प विकल्प आदि अन्तःकरण की वृत्तियों को (संव्रता) सत्यभाषणादि (उ) और (सम्, चित्तानि) सम्यक् जाने हुए कर्म्मों को (आ) अच्छे प्रकार (अकरम्) करूं वैसे तुम दोनों मेरी प्रीति के अनुकूल आचरण करो। हे (पुरीष्य) रक्षा के योग्य व्यवहारों में हुए (अग्ने) उपदेशक आचार्य वा राजन्! (त्वम्) आप (नः)हमारे (अधिपाः) अधिक रक्षा करने हारे (भव) हूजिये (यजमानाय) धर्मानुकूल सत्संग के स्वभाव वाले पुरुष वा ऐसी स्त्री के लिये (इषम्) अन्न आदि उत्तम पदार्थ और (ऊर्जम्) शरीर तथा आत्मा के बल को (धेहि) धारण कीजिये ॥५८॥

भावार्थः—उपदेशक मनुष्यों को चाहिये कि जितना सामर्थ्य हो उतना सब मनुष्यों का एक धर्म्म एक कर्म्म एक प्रकार की चित्तवृत्ति और बराबर सुख दुःख जैसे हों वैसे ही शिक्षा करें। सब स्त्री पुरुषों को योग्य है कि आप्त विद्वान् ही को उपदेशक और अध्यापक मान के सेवन करें और उपदेशक वा अध्यापक इन के ऐश्वर्य्य और पराक्रम को बढ़ावें। और सब मनुष्यों के एक धर्म आदि के विना आत्माओं में मित्रता नहीं होती और मित्रता के विना निरन्तर सुख भी नहीं हो सकता ॥५८॥

अग्ने त्वमित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

किन को पढ़ाने और उपदेश के लिये नियुक्त करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अग्ने त्वं पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिमाँ२ऽअसि।
शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमिहासदः ॥५९॥

पदार्थः—हे (अग्ने) उपदेशक विद्वन्! जिस से (त्वम्) आप (इह) इस

संसार में (पुरीष्यः) एक मत के पालने में तत्पर (रयिमान्) विद्या विज्ञान और धन से युक्त और (पुष्टिमान्) प्रशंसित शरीर और आत्मा के बल से सहित (असि) हैं इसलिये (सर्वाः) सब (दिशः) उपदेश के योग्य प्रजा (शिवाः) कल्याणरूपी उपदेश से युक्त (कृत्वा) कर के (स्वम्) अपने (योनिम्) सुखदायक दुःखनाशक उपदेश के घर को (आसदः) प्राप्त हूजिये ॥५९॥

भावार्थः–राजा और प्रजाजनों को चाहिये कि जो जितेन्द्रिय धर्मात्मा परोपकार में प्रीति रखने वाले विद्वान् होवें उनको प्रजा में धर्मोपदेश के लिये नियुक्त करें और उपदेशकों को चाहिये कि प्रयत्न के साथ सब को अच्छी शिक्षा से एकधर्म में निरन्तर विरोध को छोड़ के सुखी करें ॥५९॥

भवतन्न इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । दम्पती देवता । आर्षी पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर सब को चाहिये कि विद्या देने के लिये आप्त विद्वानों की प्रार्थना करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ ।
मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ॥६०॥

पदार्थः—हे विवाह किये हुए स्त्रीपुरुषो ! तुम दोनों (नः) हम लोगों के लिये (समनसौ) एक से विचार और (सचेतसौ) एक से बोध वाले (अरेपसौ) अपराधरहित (भवतम्) हूजिये (यज्ञम्) प्राप्त होने योग्य धर्म को (मा) मत (हिंसिष्टम्) बिगाड़ो और (यज्ञपतिम्) उपदेश से धर्म के रक्षक पुरुष को (मा) मत मारो (अद्य) आज (नः) हमारे लिये (जातवेदसौ) सम्पूर्ण विज्ञान को प्राप्त हुए (शिवौ) मङ्गलकारी (भवतम्) हूजिये ॥६०॥

भावार्थः—स्त्री पुरुष जनों को चाहिये कि सत्य उपदेश और पढ़ाने के लिये सब विद्याओं से युक्त प्रगल्भ निष्कपट धर्मात्मा सत्यप्रिय पुरुषों की नित्य प्रार्थना और उनकी सेवा करें । और विद्वान् लोग सब के लिये ऐसा उपदेश करें कि जिस से सब धर्माचरण करने वाले हो जावें ॥६०॥

मातेवेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । पत्नी देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

माता किस के तुल्य सन्तानों को पालती है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

मातेव पुत्रं पृथिवी पुरीष्यमग्निꣳ स्वे योनावभारुखा ।
तां विश्वैर्देवैर्ऋतुभिः संविदानः प्रजापतिर्विश्वकर्म्मा वि मुञ्चतु ॥६१॥

पदार्थः—जो (उखा) जानने योग्य (पृथिवी) भूमि के समान वर्त्तमान विदुषी स्त्री (स्वे) अपने (योनौ) गर्भाशय में (पुरीष्यम्) पुष्टिकारक गुणों में हुए (अग्निम्) विजुली के तुल्य अच्छे प्रकाश से युक्त गर्भरूप (पुत्रम्) पुत्र को (मातेव) माता के समान (अभाः) पुष्ट वा धारण करती है (ताम्) उस को (संविदानः) सम्यक् बोध करता हुआ (विश्वकर्मा) सब उत्तम कर्म करने वाला (प्रजापतिः) परमेश्वर (विश्वैः) सब (देवैः) दिव्य गुणों और (ऋतुभिः) वसन्त आदि ऋतुओं के साथ निरन्तर दुःख से (विमुञ्चतु) छुड़ावे ॥६१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे माता सन्तानों को उत्पन्न कर पालती है वैसे ही पृथिवी कारणरूप विजुली को प्रसिद्ध कर के रक्षा करती है। जैसे परमेश्वर ठीक-ठीक पृथिवी आदि के गुणों को जानता और नियत समय पर ऋतु आदि को और पृथिवी आदि को धारण कर अपनी-अपनी परिधि से चला के प्रलय समय में सब को भिन्न करता है वैसे ही विद्वानों को चाहिये कि अपनी बुद्धि के अनुसार इन सब पदार्थों को जान के कार्य्यसिद्धि के लिये प्रयत्न करें ॥६१॥

असुन्वन्तमित्यस्य मधुच्छन्दाः ऋषिः। निर्ऋतिर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः।
धैवतः स्वरः ॥

स्त्री लोग कैसे पतियों की इच्छा न करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

असुन्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करस्य।
अन्यमस्मदिच्छ सा तऽइत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥६२॥

पदार्थः—हे (निर्ऋते) पृथिवी के तुल्य वर्त्तमान (देवी) विदुषी स्त्री! तू (अस्मत्) हम से भिन्न (स्तेनस्य) अप्रसिद्ध चोर और (तस्करस्य) प्रसिद्ध चोर के सम्बन्धी को छोड़ के (अन्यम्) भिन्न की (इच्छ) इच्छा कर और (असुन्वन्तम्) अभिषव आदि क्रियाओं के अनुष्ठान से रहित (अयजमानम्) दानधर्म से रहित पुरुष की (इच्छ) इच्छा मत कर और तू जिस (इत्याम्) प्राप्त होने योग्य क्रिया को (अन्विहि) ढूंढे (सा) वह तेरी हो तथा उस (तुभ्यम्) तेरे लिये (नमः) अन्न वा सत्कार (अस्तु) होवे ॥६२॥

भावार्थः—हे स्त्रियो! तुम लोगों को चाहिये कि पुरुषार्थरहित चोरों के सम्बन्धी पुरुषों को अपने पति करने की इच्छा न करो। आप्त पुरुषों की नीति के तुल्य नीति वाले पुरुषों को ग्रहण करो। जैसे पृथिवी अनेक उत्तम फलों के दान से मनुष्यों को संयुक्त करती है वैसी होओ। ऐसे गुणों

वाली तुम को हम लोग नमस्कार करते हैं। जैसे हम लोग आलसी चोरों के साथ न वर्त्तें वैसे तुम लोग भी मत वर्त्तो ॥६२॥

नमः सु त इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। निर्ऋतिर्देवता। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर ये स्त्री कैसी हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

नमः सु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयं विचृता बन्धमेतम्।
यमेन त्वं यम्या संविदानोत्तमे नाकेऽअधि रोहयैनम् ॥६३॥

पदार्थः—हे (निर्ऋते) निरन्तर सत्य आचरणों से युक्त स्त्री! जिस (ते) तेरे (तिग्मतेजः) तीव्र तेजों वाले (अयस्मयम्) सुवर्णादि और (नमः) अन्नादि पदार्थ हैं सो (त्वम्) तू (एतम्) इस (बन्धम्) बांधने के हेतु अज्ञान का (सुविचृत) अच्छे प्रकार (यमेन) न्यायाधीश तथा (यम्या) न्याय करने हारी स्त्री के साथ (संविदाना) सम्यक् बुद्धियुक्त होकर (एनम्) इस अपने पति को (उत्तमे) उत्तम (नाके) आनन्द भोगने में (अधिरोहय) आरूढ़ कर ॥६३॥

भावार्थः—हे स्त्रियो! तुम को चाहिये कि जैसे यह पृथिवी अग्नि तथा सुवर्ण अन्नादि पदार्थों से सम्बन्ध रखती है वैसे तुम भी होओ। जैसे तुम्हारे पति न्यायाधीश होकर अपराधी और अपराधरहित मनुष्यों का सत्य न्याय से विचार कर के अपराधियों को दण्ड देते और अपराधरहितों का सत्कार करते हैं तुम लोगों के लिये अत्यन्त आनन्द देते हैं वैसे तुम लोग भी होओ ॥६५॥

यस्यास्त इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। निर्ऋतिर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

किस प्रयोजन के लिये स्त्री पुरुष संयुक्त होवें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

यस्यास्ते घोरऽआसन् जुहोम्येषां बन्धानामवसर्जनाय। यां त्वा जनो भूमिरिति प्रमन्दते निर्ऋतिं त्वाहं परि वेद विश्वतः ॥६४॥

पदार्थः—हे (घोरे) दुष्टों को भय करने हारी स्त्री! (यस्याः) जिस सुन्दर नियम युक्त (ते) तेरे (आसन्) मुख में (एषाम्) इन (बन्धानाम्) दुःख देते हुए रोकने वालों के (अव, सर्जनाय) त्याग के लिये अमृतरूप अन्नादि पदार्थों को (जुहोमि) देता हूं जो (जनः) मनुष्य (भूमिरिति) पृथिवी के समान (याम्) जिस (त्वा) तुझ

को (प्रमन्दते) आनन्दित करता है उस तुझ को (अहम्) मैं (विश्वतः) सब ओर से (निर्ऋतिम्) पृथिवी के समान (त्वा) (परि) सब प्रकार से (वेद) जानूं। सो तू भी इस प्रकार मुझ को जान ॥६४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे पति अपने आनन्द के लिये स्त्रियों का ग्रहण करते हैं वैसे ही स्त्री भी पतियों का ग्रहण करें। इस गृहाश्रम में पतिव्रता स्त्री और स्त्रीव्रत पति सुख का कोश होता है। खेतरूप स्त्री और वीजरूप पुरुष जो इन शुद्ध बलवान् दोनों के समागम से उत्तम विविध प्रकार के सन्तान हों तो सर्वदा कल्याण ही बढ़ता रहता है ऐसा जानना चाहिये ॥६४॥

यं ते देवीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। यजमानो देवता। आर्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

विवाह समय में कैसी २ प्रतिज्ञा करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यं ते॑ दे॒वी निर्ऋ॑तिराब॒बन्ध॒ पाशं॑ ग्री॒वास्व॑विचृ॒त्यम्। तं ते॒ विष्या॒म्यायु॑षो॒ न मध्या॒दथै॒तं पि॒तुम॑द्धि॒ प्रसू॑तः। नमो॒ भूत्यै॒ येदं च॒कार॑ ॥६५॥

पदार्थः—स्त्री कहे कि हे पते! (निर्ऋतिः) पृथिवी के समान मैं (ते) तेरे (ग्रीवासु) कण्ठों में (अविचृत्यम्) न छोड़ने योग्य (यम्) जिस (पाशम्) धर्मयुक्त बन्धन को (आबबन्ध) अच्छे प्रकार बांधती हूं (तम्) उस को (ते) तेरे लिये भी (आयुषः) जीवन के साधन अन्न के (न) समान (वि, स्यामि) प्रविष्ट होती हूं (अथ) इस के पश्चात् (मध्यात्) मैं तू दोनों में से कोई भी नियम से विरुद्ध न चले जैसे मैं (एतम्) इस (पितुम्) अन्नादि पदार्थ को भोगती हूं वैसे (प्रसूतः) उत्पन्न हुआ तू इस अन्नादि को (अद्धि) भोग। हे स्त्री! (या) जो (देवी) दिव्य गुण वाली तू (इदम्) इस पतिव्रतरूप धर्म से संस्कार किये हुए प्रत्यक्ष नियम को (चकार) करे उस (भूत्यै) ऐश्वर्य्य करने हारी तेरे लिये (नमः) अन्नादि पदार्थ को देता हूं ॥६५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। विवाह समय में जिन व्यभिचार के त्याग आदि नियमों को करें उन से विरुद्ध कभी न चलें क्योंकि पुरुष जब विवाहसमय में स्त्री का हाथ ग्रहण करता है तभी पुरुष का जितना पदार्थ है वह सब स्त्री का और जितना स्त्री का है वह सब पुरुष का समझा जाता है। जो पुरुष अपनी विवाहित स्त्री को छोड़ अन्य

स्त्री के निकट जावे वा स्त्री दूसरे पुरुष की इच्छा करे तो वे दोनों चोर के समान पापी होते हैं। इसलिये स्त्री की सम्मति के विना पुरुष और पुरुष की आज्ञा के विना स्त्री कुछ भी काम न करे, यही स्त्रीपुरुष में परस्पर प्रीति बढ़ाने वाला काम है कि जो व्यभिचार को सब समय में त्याग दें ॥६५॥

निवेशन इत्यस्य विश्वावसुर्ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

कैसे स्त्री पुरुष गृहाश्रम करने के योग्य होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

निवेऽशनः सङ्गमनो वसूनां विश्वा रूपाऽभिचष्टे शचीभिः।
देवऽइव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे पथीनाम् ॥६६॥

पदार्थः—जो (सत्यधर्मा) सत्य धर्म से युक्त (सविता) सब जगत् के रचने वाले (देव इव) ईश्वर के समान (निवेशनः) स्त्री का साथी (सङ्गमनः) शीघ्रगति से युक्त (शचीभिः) बुद्धि वा कर्मों से (वसूनाम्) पृथिवी आदि पदार्थों के (विश्वा) सब (रूपा) रूपों को (अभिचष्टे) देखता है (इन्द्रः) सूर्य्य के (न) समान (समरे) युद्ध में (पथीनाम्) चलते हुए मनुष्यों के सम्मुख (तस्थौ) स्थित होवे वही गृहाश्रम के योग्य होता है॥६६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जैसे ईश्वर ने सब के उपकार के लिये कारण से कार्यरूप अनेक पदार्थ रच उपयुक्त करे हैं। जैसे सूर्य मेघ के साथ युद्ध करके जगत् का उपकार करता है वैसे रचनाक्रम के विज्ञान और सुन्दर क्रिया से पृथिवी आदि पदार्थों से अनेक व्यवहार सिद्ध कर प्रजा को सुख देवें॥६६॥

सीरा इत्यस्य विश्वावसुर्ऋषिः। कृषीवलाः कवयो देवताः। गायत्रीच्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब खेती करने की विद्या अगले मन्त्र में कही है॥

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक्।
धीरा देवेषु सुम्नया ॥६७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे (धीराः) ध्यानशील (कवयः) बुद्धिमान् लोग (सीराः) हलों और (युगा) जुआ आदि को (युञ्जन्ति) युक्त करते और (सुम्नया) सुख के साथ (देवेषु) विद्वानों में (पृथक्) अलग (वितन्वते) विस्तारयुक्त करते हैं वैसे सब लोग इस खेती कर्म का सेवन करें॥६७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों की शिक्षा से कृषिकर्म की उन्नति करें। जैसे योगी नाड़ियों में परमेश्वर को समाधियोग से प्राप्त होते हैं वैसे ही कृषिकर्म द्वारा सुखों को प्राप्त होवें ॥६७॥

युनक्तेत्यस्य विश्वावसुर्ऋषिः। कृषीवलाः कवयो वा देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः।

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम्।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीयऽइत्सृण्यः पक्वमेयात् ॥६८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! तुम लोग (इह) इस पृथिवी वा बुद्धि में साधनों को (वितनुध्वम्) विविध प्रकार से विस्तारयुक्त करो (सीरा) खेती के साधन हल आदि वा नाड़ियां और (युगा) जुआओं को (युनक्त) युक्त करो (कृते) हल आदि से जोते वा योग के अङ्गों से शुद्ध किये (योनौ) अन्तःकरण में वा खेत में (बीजम्) यव आदि वा सिद्धि के मूल को (वपत) बोया करो (गिरा) खेती विषयक कर्मों की उपयोगी सुशिक्षित वाणी (च) और अच्छे विचार से (सभराः) समान प्रकार के धारण और पोषण में युक्त (श्रुष्टिः) शीघ्र हूजिये। जो (सृण्यः) खेतों में उत्पन्न हुए यव आदि अन्न जाति के पदार्थ हैं उन में जो (नेदीयः) अत्यन्त समीप (पक्वम्) पका हुआ (असत्) होवे वह (इत्) ही (नः) हम लोगों को (आ) (इयात्) प्राप्त होवे ॥६८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! तुम लोगों को उचित है कि विद्वानों से योगाभ्यास और खेती करने हारों से कृषि कर्म की शिक्षा को प्राप्त हो और अनेक साधनों को बना के खेती और योगाभ्यास करो। इस से जो-जो अन्नादि पका हो उस-उस का ग्रहण कर भोजन करो और दूसरों को कराओ ॥६८॥

शुनमित्यस्य कुमारहारित ऋषिः। कृषीवला देवताः। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

शुनꣳसु फाला वि कृषन्तु भूमिꣳ शुनं कीनाशाऽअभि यन्तु वाहैः। शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पलाऽओषधीः कर्त्तनास्मे ॥६९॥

पदार्थः—जो (कीनाशाः) परिश्रम से क्लेशभोक्ता खेती करनेहारे हैं वे (फाला.) जिन से पृथिवी को जोतें उन फालों से (वाहैः) बैल आदि के साथ वर्त्तमान हल आदि से (भूमिम्) पृथिवी को (विकृषन्तु) जोतें और (शुनम्) सुख को (अभियन्तु) प्राप्त होवें (हविषा) शुद्ध किये घी आदि से शुद्ध (तोशमाना) सन्तोषकारक (शुनासीरा) वायु और सूर्य्य के समान खेती के साधन (अस्मे) हमारे लिये (सुपिप्पलाः) सुन्दर फलों से युक्त (ओषधीः) जौ आदि (कर्त्तन) करें और उन ओषधियों से (सु) सुन्दर (शुनम्) सुख भोगें ॥६९॥

भावार्थः—जो चतुर खेती करने हारे गौ और बैल आदि की रक्षा करके विचार के साथ खेती करते हैं वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं। इन खेतों में विष्ठा आदि मलीन पदार्थ नहीं डालने चाहियें किन्तु वीज सुगन्धि आदि से युक्त करके ही बोवें कि जिस से अन्न भी रोगरहित उत्पन्न होकर मनुष्यादि की वृद्धि को बढ़ावे ॥६९॥

घृतेनेत्यस्य कुमारहारित ऋषिः। कृषीवला देवताः। आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

घृतेन सीता मधुना समज्यतां विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः।
ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमानास्मान्त्सीते पयसाभ्या ववृत्स्व ॥७०॥

पदार्थः - (विश्वैः) सब (देवैः) अन्नादि पदार्थों की इच्छा करने वाले विद्वान् (मरुद्भिः) मनुष्यों की (अनुमता) आज्ञा से प्राप्त हुआ (पयसा) जल वा दुग्ध से (ऊर्जस्वतीः) पराक्रम सम्बन्धी (पिन्वमाना) सींचा वा सेवन किया हुआ (सीता) पटेला (घृतेन) घी तथा (मधुना) सहत वा शक्कर आदि से (समज्यताम्) संयुक्त करें वह (सीते) पटेला (अस्मान्) हम लोगों को घी आदि पदार्थों से संयुक्त करेगा इस हेतु से (पयसा) जल से (अभ्याववृत्स्व) वार २ वर्त्ताओ ॥७०॥

भावार्थः—सब विद्वानों को चाहिये कि किसान लोग विद्या के अनुकूल घी मीठा और जल आदि से संस्कार कर स्वीकार की हुई खेत की पृथिवी को अन्न को सिद्ध करने वाली करें। जैसे वीज सुगन्धि आदि युक्त करके वोते हैं वैसे इस पृथिवी को भी संस्कारयुक्त करें ॥७०॥

लाङ्गलमित्यस्य कुमारहारित ऋषिः। कृषीवला देवताः। विराट् पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

लाङ्गलं पवीरवत्सुशेवंꣳ सोमपित्सरु ।
तदुद्वपति गामविं प्रफर्व्यं च पीवरीं प्रस्थावद्रथवाहनम् ॥७१॥

पदार्थ—हे किसानो ! तुम लोग जो (सोमपित्सरु) जौ आदि ओषधियों के रक्षकों को टेढ़ा चलावे, (पवीरवत्) प्रशंसित फाल से युक्त (सुशेवम्)सुन्दर सुखदायक (लाङ्गलम्) फाले के पीछे जो दृढ़ता के लिये काष्ठ लगाया जाता है वह (च) और (प्रफर्व्यम्) चलाने योग्य (प्रस्थावत्) प्रशंसित प्रस्थान वाला (रथवाहनम्) रथ के चलने का साधन है जिस से (अविम्) रक्षा आदि के हेतु (पीवरीम्) सब पदार्थों को भुगाने का हेतु स्थूल (गाम्) पृथिवी को (उद्वपति) उखाड़ते हैं (तत्) उस को तुम भी सिद्ध करो ॥७१॥

भावार्थः—किसान लोगों को उचित है कि मोटी मट्टी अन्न आदि की उत्पत्ति से रक्षा करने हारी पृथिवी की अच्छे प्रकार परीक्षा करके हल आदि साधनों से जोत एकसार कर सुन्दर संस्कार किये बीजों को बोकर उत्तम धान्य उत्पन्न करके भोगें ॥७१॥

कामित्यस्य कुमारहारित ऋषिः । मित्रादयो लिङ्गोक्ता देवताः । आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

पकानेहारी स्त्री अच्छे यत्न से सुन्दर अन्न और व्यंजनों को बनावे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

कामं कामदुघे धुक्ष्व मित्राय वरुणाय च ।
इन्द्रायाश्विभ्यां पूष्णे प्रजाभ्यऽओषधीभ्यः ॥७२॥

पदार्थः—हे (कामदुघे) इच्छा को पूर्ण करने हारी रसोइया स्त्री ! तू पृथिवी के समान सुन्दर संस्कार किये अन्नों से (मित्राय) मित्र (वरुणाय) उत्तम विद्वान् (च) अतिथि अभ्यागत (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य्य से युक्त (अश्विभ्याम्) प्राण अपान (पूष्णे) पुष्टिकारक जन (प्रजाभ्यः) सन्तानों और (ओषधीभ्यः) सोमलता आदि ओषधियों से (कामम्) इच्छा को (धुक्ष्व) पूर्ण कर ॥७२॥

भावार्थः—जो स्त्री वा पुरुष भोजन बनावे उस को चाहिये कि पकाने की विद्या सीख प्रिय पदार्थ पका और उनका भोजन करा के सब को रोगरहित रक्खें ॥७२॥

विमुच्यध्वमित्यस्य कुमारहारित ऋषिः । अघ्न्या देवताः । भुरिगार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्यों को गौ आदि पशुओं को बढ़ा उन से दूध घी आदि की वृद्धि कर आनन्द में रहना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

विमुच्यध्वमघ्न्या देवयाना अगन्म तमसस्पारमस्य ।

ज्योतिरापाम ॥७३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे तुम लोग (अघ्न्याः) रक्षा के योग्य (देवयानाः) दिव्य भोगों की प्राप्ति के हेतु गौओं को प्राप्त हो सुन्दर संस्कार किये अन्नों का भोजन करके रोगों से (विमुच्यध्वम्) पृथक् रहते हो वैसे हम लोग भी बचें। जैसे तुम लोग (तमसः) रात्रि के (पारम्) पार को प्राप्त होते हो वैसे हम भी (अगन्म) प्राप्त होवें। जैसे तुम लोग (अस्य) इस सूर्य्य के (ज्योतिः) प्रकाश को व्याप्त होते हो वैसे हम भी (आपाम) व्याप्त होवें ॥७३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि गौ आदि पशुओं को कभी न मारें न मरवावें तथा न किसी को मारने दें। जैसे सूर्य के उदय से रात्रि निवृत्त होती है वैसे वैद्यकशास्त्र की रीति से पथ्य अन्नादि पदार्थों का सेवन कर रोगों से बचो ॥७३॥

सजूरब्द इत्यस्य कुमारहारित ऋषिः। अश्विनौ देवते। आर्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

मनुष्यों को किस प्रकार परस्पर सुखी होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सजूरब्दोऽअयवोभिः सजूरुषाऽअरुणीभिः। सजोषसावश्विना दंसोभिः सजूः सूरऽएतशेन सजूर्वैश्वानरऽइडया घृतेन स्वाहा ॥७४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! हम सब स्त्री पुरुष जैसे (अयवोभिः) एकरस क्षणादि काल के अवयवों से (सजूः) संयुक्त (अब्दः) वर्ष (अरुणीभिः) लाल कान्तियों के (सजूः) साथ वर्त्तमान (उषाः) प्रभात समय (दंसोभिः) कर्मों से (सजोषसौ) एकसे वर्त्ताव वाले (अश्विना) प्राण और अपान के समान स्त्री पुरुष वा (एतशेन) चलते घोड़े के समान व्याप्तिशील वेगवाले किरणनिमित्त पवन के (सजूः) साथ वर्त्तमान (सूरः) सूर्य (इडया) अन्न आदि की निमित्तरूप पृथिवी वा (घृतेन) जल से (स्वाहा) सत्य वाणी के (सजूः) साथ (वैश्वानरः) विजुलीरूप अग्नि वर्त्तमान है वैसे ही प्रीति से वर्त्तें ॥७४॥

भावार्थः—मनुष्यों में जितनी परस्पर मित्रता हो उतना ही सुख और जितना विरोध उतना ही दुःख होता है। उस से सब लोग स्त्री पुरुष परस्पर उपकार करने के साथ ही सदा वर्त्तें ॥७४॥

या ओषधीरित्यस्य भिषगृषिः । वैद्यो देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यों को अवश्य ओषधि सेवन कर रोगों से बचना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा ।
मनै नु बभ्रूणामहꣳ शतं धामानि सप्त च ॥७५॥

पदार्थः—(अहम्) मैं (याः) जो (ओषधीः) सोमलता आदि ओषधी (देवेभ्यः) पृथिवी आदि से (त्रियुगम्) तीन वर्ष (पुरा) पहिले (पूर्वाः) पूर्ण सुख दान में उत्तम (जाताः) प्रसिद्ध हुईं, जो (बभ्रूणाम्) धारण करने हारे रोगियों के (शतम्) सौ (च) और (सप्त) सात (धामानि) जन्म वा नाड़ियों के मर्मों में व्याप्त होती हैं उनको (नु) शीघ्र (मनै) जानूं ॥७५॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि जो पृथिवी और जल में ओषधि उत्पन्न होती हैं उन तीन वर्ष के पीछे ठीक-ठीक पकी हुई को ग्रहण कर वैद्यकशास्त्र के अनुकूल विधान से सेवन करें। सेवन की हुई वे ओषधि शरीर के सब अंशों में व्याप्त हो के शरीर के रोगों को छुड़ा सुखों को शीघ्र करती हैं ॥७५॥

शतं व इत्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य क्या करके किस को सिद्ध करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

शतं वोऽअम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः ।
अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मेऽअगदं कृत ॥७६॥

पदार्थः—हे (शतक्रत्वः) सैकड़ों प्रकार की बुद्धि वा क्रियाओं से युक्त मनुष्यो! (यूयम्) तुम लोग जिन से (शतम्) सैकड़ों (उत) वा (सहस्रम्) हजारहों (रुहः) नाड़ियों के अङ्कुर हैं उन ओषधियों से (मे) मेरे (इमम्) इस शरीर को (अगदम्) नीरोग (कृत) करो (अध) इसके पश्चात् (वः) आप अपने शरीरों को भी रोगरहित करो। जो (वः) तुम्हारे असंख्य (धामानि) मर्म्म स्थान हैं उनको प्राप्त होओ। हे (अम्ब) माता! तू भी ऐसा आचरण कर ॥७६॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सब से पहिले ओषधियों का सेवन, पथ्य का आचरण और नियमपूर्वक व्यवहार करके शरीर को रोगरहित

करें क्योंकि इसके विना धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्षों का अनुष्ठान करने को कोई भी समर्थ नहीं हो सकता ॥७६॥

ओषधीरित्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कैसी ओषधियों का सेवन करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ओषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः ।
अश्वाऽइव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्ण्वः ॥७७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग (अश्वा इव) घोड़ों के समान (सजित्वरीः) शरीरों के साथ संयुक्त रोगों को जीतने वाले (वीरुधः) सोमलता आदि (पारयिष्णवः) दुःखों से पार करने के योग्य (पुष्पवतीः) प्रशंसित पुष्पों से युक्त (प्रसूवरीः) सुख देने हारी (ओषधीः) ओषधियों को प्राप्त होकर (प्रतिमोदध्वम्) नित्य आनन्द भोगो ॥७७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे घोड़ों पर चढ़े वीर पुरुष शत्रुओं को जीत विजय को प्राप्त हो के आनन्द करते हैं वैसे श्रेष्ठ ओषधियों के सेवन और पथ्याहार करने हारे जितेन्द्रिय मनुष्य रोगों से छूट आरोग्य को प्राप्त हो के नित्य आनन्द भोगते हैं ॥७७॥

ओषधीरितीत्यस्य भिषगृषिः । चिकित्सुर्देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर पिता और पुत्र आपस में कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुप ब्रुवे सनेयमश्वं गां वासऽआत्मानं तव पूरुष ॥७८॥

पदार्थः—हे (ओषधीः) ओषधियों के (इति) समान सुखदायक (देवीः) सुन्दर विदुषी (मातरः) माताओ ! मैं पुत्र (वः) तुम को (तत्) श्रेष्ठ पथ्यरूप कर्म्म (उपब्रुवे) समीपस्थित होकर उपदेश करूं । हे (पूरुष) पुरुषार्थी श्रेष्ठ सन्तानो ! मैं माता (तव) तेरे (अश्वम्) घोड़े आदि (गाम्) गौ आदि वा पृथिवी आदि (वासः) वस्त्र आदि वा घर और (आत्मानम्) जीव को निरन्तर (सनेयम्) सेवन करूं ॥७८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे जौ आदि ओषधि सेवन की हुई शरीरों को पुष्ट करती हैं वैसे ही माता विद्या, अच्छी शिक्षा और उपदेश से सन्तानों को पुष्ट करें। जो माता का धन है वह दाय भाग सन्तान का और जो सन्तान का है वह माता का। ऐसे सब परस्पर प्रीति से वर्त्त कर निरन्तर सुख को बढ़ावें ॥७८॥

अश्वत्थ इत्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य लोग नित्य कैसा विचार करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अ॒श्व॒त्थे वो॑ नि॒षद॑नं प॒र्णे वो॑ व॒स॒तिष्कृ॒ता ।
गो॒भाज॒ऽइत् किला॑सथ॒ यत् स॒नव॑थ॒ पूरु॑षम् ॥७९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! ओषधियों के समान (यत्) जिस कारण (वः) तुम्हारा (अश्वत्थे) कल रहे वा न रहे ऐसे शरीर में (निषदनम्) निवास है। और (वः) तुम्हारा (पर्णे) कमल के पत्ते पर जल के समान चलायमान संसार में ईश्वर ने (वसतिः) निवास (कृता) किया है इस से (गोभाजः) पृथिवी को सेवन करते हुए (किल) ही (पूरुषम्) अन्न आदि से पूर्ण देह वाले पुरुष को (सनवथ) ओषधि देकर सेवन करो और सुख को प्राप्त होते हुए (इत्) इस संसार में (असथ) रहो ॥७९॥

भावार्थः—मनुष्यों को ऐसा विचारना चाहिये कि हमारे शरीर अनित्य और स्थिति चलायमान है, इस कारण शरीर को रोगों से बचा कर धर्म्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का अनुष्ठान शीघ्र करके अनित्य साधनों से नित्य मोक्ष के सुख को प्राप्त होवें। जैसे ओषधि और तृण आदि फल, फूल, पत्ते, स्कन्ध और शाखा आदि से शोभित होते हैं वैसे ही रोगरहित शरीरों से शोभायमान हों ॥७९॥

यत्रौषधीरित्यस्य भिषगृषिः । ओषधयो देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

धार २ श्रेष्ठ वैद्यों का सेवन करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

यत्रौष॑धीः स॒मग्म॑त॒ राजा॑नः॒ समि॑ताविव ।
विप्रः॒ सऽउ॑च्यते भि॒षग्र॑क्षो॒हामी॑व॒चात॑नः ॥८०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग (यत्र) जिन स्थलों में (ओषधीः) सोमलता आदि ओषधी होती हों उन को जैसे (राजानः) राजधर्म से युक्त वीरपुरुष (समिताविव) युद्ध में शत्रुओं को प्राप्त होते हैं वैसे (समग्मत) प्राप्त होओ, जो (रक्षोहा) दुष्ट रोगों का नाशक (अमीवचातनः) रोगों को निवृत्ति करने वाला (विप्रः) बुद्धिमान् (भिषक्) वैद्य हो (सः) वह तुम्हारे प्रति (उच्यते) ओषधियों के गुणों का उपदेश करे और ओषधियों का तथा उस वैद्य का सेवन करो ॥८०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सेनापति से शिक्षा को प्राप्त हुए राजा के वीर पुरुष अत्यन्त पुरुषार्थ से देशान्तर में जा शत्रुओं को जीत के राज्य को प्राप्त होते हैं वैसे श्रेष्ठ वैद्य से शिक्षा को

प्राप्त हुए तुम लोग ओषधियों की विद्या को प्राप्त हो जिस शुद्ध देश में ओषधि हों वहां उन को जान के उपयोग में लाओ और दूसरों के लिये भी बताओ ॥८०॥

अश्वावतीमित्यस्य भिषगृषिः । वैद्यो देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यों को नित्य पुरुषार्थ बढ़ाना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अ॒श्वा॒व॒तीᳪं सो॑माव॒तीमू॒र्जय॑न्ती॒मुदो॑जसम् ।
आवि॑त्सि॒ सर्वा॒ऽओष॑धीर॒स्माऽअ॑रि॒ष्टता॑तये ॥८१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (अरिष्टतातये) दुःखदायक रोगों के छुड़ाने के लिये (अश्वावतीम्) प्रशंसित शुभगुणों से युक्त (सोमावतीम्) बहुत रस से सहित (उदोजसम्) अति पराक्रम बढ़ानेहारी (ऊर्जयन्तीम्) बल देती हुई श्रेष्ठ ओषधियों को (आ) सब प्रकार (अवित्सि) जानूं कि जिस से (सर्वाः) सब (ओषधीः) ओषधि (अस्मै) इस मेरे लिये सुख देवें। इसलिये तुम लोग भी प्रयत्न करो ॥८१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि रोगों का निदान चिकित्सा ओषधि और पथ्य के सेवन से निवारण करें तथा ओषधियों के गुणों का यथावत् उपयोग लेवें कि जिससे रोगों की निवृत्ति होकर पुरुषार्थ की वृद्धि होवे ॥८१॥

उच्छुष्मा इत्यस्य भिषगृषिः । ओषधयो देवताः । विराडनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

ओषधियों का क्या निमित्त है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उच्छुष्मा॒ ओष॑धीना॒ङ्गावो॒ गो॒ष्ठादि॑वेरते ।
धन॑ᳪं सनि॒ष्यन्ती॑नामा॒त्मान॒न्तव॑ पूरुष ॥८२॥

पदार्थः—हे (पूरुष) पुरुष शरीर में सोने वाले वा देहधारी ! (धनम्) ऐश्वर्य बढ़ाने वाले को (सनिष्यन्तीनाम्) सेवन करती हुई (ओषधीनाम्) सोमलता वा जौ आदि ओषधियों के सम्बन्ध से जैसे (शुष्माः) प्रशंसित बल करने हारी (गावः) गौ वा किरण (गोष्ठादिव) अपने स्थान से बछड़ों वा पृथिवी को और ओषधियों का तत्त्व (तव) तेरी (आत्मानम्) आत्मा को (उदीरते) प्राप्त होता है उन सब की तू सेवा कर ॥८२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे रक्षा की हुई गौ अपने दूध आदि से अपने बच्चों और मनुष्य आदि को पुष्ट कर के बलवान् करती है वैसे ही ओषधियां तुम्हारे आत्मा और शरीर को पुष्ट

कर पराक्रमी करती हैं। जो कोई न खावे तो क्रम से वल और बुद्धि की हानि हो जावे। इसलिये ओषधि ही वल बुद्धि का निमित्त हैं ॥८२॥

इष्कृतिरित्यस्य भिषगृषिः। वैद्या देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

अच्छे प्रकार सेवन की हुई ओषधि क्या करती हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इष्कृतिर्नाम वो माताथो यूयꣳ स्थ निष्कृतीः।
सीराः पतत्रिणी स्थन यदामयति निष्कृथ ॥८३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! (यूयम्) तुम लोग जो (वः) तुम्हारी (इष्कृतिः) कार्य्य-सिद्धि करने हारी (माता) माता के समान ओषधि (नाम) प्रसिद्ध है उस की सेवा के तुल्य सेवन की हुई ओषधियों को जानने वाले (स्थ) होओ। (पतत्रिणीः) चलने वाली (सीराः) नदियों के समान (निष्कृतीः) प्रत्युपकारों को सिद्ध करने वाले (स्थन) होओ (अथो) इस के अनन्तर (यत्) जो क्रिया वा ओषधी अथवा वैद्य (आमयति) रोग बढ़ावे उस को (निष्कृथ) छोड़ो ॥८३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जसे माता पिता तुम्हारी सेवा करते हैं वैसे तुम भी उनकी सेवा करो। जो-जो काम रोगकारी हो उस उस को छोड़ो। इस प्रकार सेवन की हुई ओषधि माता के समान प्राणियों को पुष्ट करती हैं ॥८३॥

अति विश्वा इत्यस्य भिषगृषिः। वैद्या देवताः। विराडनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

कैसे रोग निवृत्त होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अति विश्वाः परिष्ठा स्तेनऽइव व्रजमक्रमुः।
ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत्किं च तन्वो रपः ॥८४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! तुम लोग जो (परिष्ठाः) सब ओर से स्थित (विश्वाः) सब (ओषधीः) सोमलता और जौ आदि ओषधी (व्रजम्) जैसे गोशाला को (स्तेन इव) भित्ति फोड़ के चोर जावे वैसे पृथिवी फोड़ के (अत्यक्रमुः) निकलती हैं (यत्) जो (किञ्च) कुछ (तन्वः) शरीर का (रपः) पापों के फल के समान रोगरूप दुःख है उस सब को (प्राचुच्यवुः) नष्ट करती हैं उन ओषधियों को युक्ति से सेवन करो ॥८४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे गौओं के स्वामी से धमकाया हुआ चोर भित्ति को फांद के भागता है वैसे ही श्रेष्ठ ओषधियों से ताड़ना किये रोग नष्ट हो के भाग जाते हैं ॥८४॥

यदिमा इत्यस्य भिषगृषिः । वैद्यो देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्तऽआदधे ।

आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ॥८५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यथा) जिस प्रकार (पुरा) पूर्व (वाजयन्) प्राप्त करता हुआ (अहम्) मैं (यत्) जो (इमाः) इन (ओषधीः) ओषधियों को (हस्ते) हाथ में (आदधे) धारण करता हूं जिन से (जीवगृभः) जीव के ग्राहक व्याधि और (यक्ष्मस्य) क्षयी राजरोग का (आत्मा) मूल तत्त्व (नश्यति) नष्ट हो जाता है । उन ओषधियों को श्रेष्ठ युक्तियों से उपयोग में लाओ ॥८५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि सुन्दर हस्तक्रिया से ओषधियों को साधन कर ठीक-ठीक क्रम से उपयोग में ला और क्षयी आदि बड़े रोगों को निवृत्त कर के नित्य आनन्द के लिये प्रयत्न करें ॥८५॥

यस्यौषधीरित्यस्य भिषगृषिः । वैद्यो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

ठीक-ठीक सेवन की हुई ओषधि रोगों को कैसे न नष्ट करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्गं परुष्परुः ।

ततो यक्ष्मं वि बाधध्वऽउग्रो मध्यमशीरिव ॥८६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग (यस्य) जिस के (अंगमंगम्) सब अवयवों और (परुष्परुः) मर्म मर्म के प्रति वर्त्तमान है उसके उस (उग्रः) तीव्र (यक्ष्मम्) क्षयी रोग को (मध्यमशीरिव) बीच के मर्मस्थानों को काटते हुए के समान (विबाधध्वे) विशेष कर निवृत्त कर (ततः) उस के पश्चात् (ओषधीः) ओषधियों को (प्रसर्पथ) प्राप्त होओ ॥८६॥

भावार्थः—जो मनुष्य लोग शास्त्र के अनुसार ओषधियों का सेवन करें तो सब अवयवों से रोगों को निकाल के सुखी रहते हैं ॥८६॥

साकमित्यस्य भिषगृषिः । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कैसे-कैसे रोगों को नष्ट करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ॥

साकं यक्ष्म प्र पत चाषेण किकिदीविना ।

साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया ॥८७॥

पदार्थः—हे वैद्य विद्वान् पुरुष ! (किकिदीविना) ज्ञान वढ़ाने हारे (चाषेण) आहार से (साकम्) ओषधियुक्त पदार्थों के साथ (यक्ष्म) राजरोग (प्रपत) छूट जाता है जैसे उस (वातस्य) वायु की (ध्राज्या) गति के (साकम्) साथ (नश्य) नष्ट हो और (निहाकया) निरन्तर छोड़ने योग्य पीड़ा के (साकम्) साथ दूर हो वैसा प्रयत्न कर ॥८७॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि ओषधियों का सेवन प्राणायाम और व्यायाम के सेवन से रोगों को नष्ट कर सुख से वर्त्तें ॥८७॥

अन्या व इत्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

युक्ति से मिलाई हुईं ओषधियां रोगों को नष्ट करती हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अन्या वोऽअन्यामवत्वन्यान्यस्याऽउपावत ।
ताः सर्वाः संविदानाऽइदं मे प्रावता वचः ॥८८॥

पदार्थः—हे स्त्रियो ! (संविदानाः) आपस में संवाद करती हुईं तुम लोग (मे) मेरे (इदम्) इस (वचः) वचन को (प्रावत) पालन करो (ताः) उन (सर्वाः) ओषधियों की (अन्याः) दूसरी (अन्यस्याः) दूसरी की रक्षा के समान (उपावत) समीप से रक्षा करो जैसे (अन्या) एक (अन्याम्) दूसरी की रक्षा करती है वैसे (वः) तुम लोगों को पढ़ाने हारी स्त्री (अवतु) तुम्हारी रक्षा करे ॥८८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे श्रेष्ठ नियम वाली स्त्री एक दूसरे की रक्षा करती है वैसे ही अनुकूलता से मिलाई हुई ओषधी सब रोगों से रक्षा करती हैं । हे स्त्रियो ! तुम लोग ओषधिविद्या के लिये परस्पर संवाद करो ॥८८॥

या इत्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

रोगों के निवृत्त होने के लिये ही ओषधि ईश्वर ने रची है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

याः फलिनीर्याऽअफलाऽअपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वꣳहसः ॥८९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (याः) जो (फलिनीः) बहुत फलों से युक्त (याः) जो (अफलाः) फलों से रहित (याः) जो (अपुष्पाः) फूलों से रहित (च) और जो (पुष्पिणीः) बहुत फूलों वाली (बृहस्पतिप्रसूताः) वेदवाणी के स्वामी ईश्वर ने उत्पन्न

की हुई ओषधि (नः) हमको (अंहसः) दुःखदायी रोग से जैसे (मुञ्चन्तु) छुड़ावें (ताः) वे तुम लोगों को भी वैसे रोगों से छुड़ावें ॥८९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि जो ईश्वर ने सब प्राणियों की अधिक अवस्था और रोगों की निवृत्ति के लिये ओषधी रची हैं उन से वैद्यकशास्त्र में कही हुई रीतियों से सब रोगों को निवृत्त कर और पापों से अलग रह कर धर्म में नित्य प्रवृत्त रहें ॥८९॥

मुंचन्तु मेत्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

कौन-कौन ओषधि किस-किस से छुड़ाती है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्यादुत ।
अथो यमस्य पड्वीशात्सर्वस्माद् देवकिल्विषात् ॥९०॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! आप जैसे वे महौषधि रोगों से पृथक् करती हैं वैसे (शपथ्यात्) शपथ सम्बन्धी कर्म (अथो) और (वरुण्यात्) श्रेष्ठों में हुए अपराध से (अथो) इस के पश्चात् (यमस्य) न्यायाधीश के (पड्वीशात्) न्याय के विरुद्ध आचरण से (उत) और (सर्वस्मात्) सब (देवकिल्विषात्) विद्वानों के विषयक अपराध से (मा) मुझ को (मुंचन्तु) पृथक् रक्खें वैसे तुम लोगों को भी पृथक् रक्खें ॥९०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि प्रमादकारक पदार्थों को छोड़ के अन्य पदार्थों का भोजन करें और कभी सौगन्द, श्रेष्ठों का अपराध, न्याय से विरोध और मूर्खों के समान ईर्ष्या न करें ॥९०॥

अवपतन्तीरित्यस्य वरुण ऋषिः । वैद्या देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अध्यापक लोग सब को उत्तम ओषधि जनावें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अवपतन्तीरवदन्दिवऽओषधयस्परि ।
यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥९१॥

पदार्थः—हम लोग जो (दिवः) प्रकाश से (अवपतन्तीः) नीचे को आती हुई (ओषधयः) सोमलता आदि ओषधि हैं जिन का विद्वान् लोग (पर्य्यवदन्) सब ओर से उपदेश करते हैं । जिन से (यम्) जिस (जीवम्) प्राणधारण को (अश्नवामहै) प्राप्त होवें, (सः) वह (पूरुषः) पुरुष (न) कभी न (रिष्याति) रोगों से नष्ट होवे ॥९१॥

भावार्थः—विद्वान् लोग सब मनुष्यों के लिये दिव्य ओषधिविद्या को देवें जिस से सब लोग पूरी अवस्था को प्राप्त होवें। इन ओषधियों को कोई भी कभी नष्ट न करे ॥९१॥

या ओषधीरित्यस्य वरुण ऋषिः। वैद्या देवताः निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

स्त्री लोग अवश्य ओषधिविद्या ग्रहण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

याऽओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः।
तासामसि त्वमुत्तमारं कामाय शꣳ हृदे ॥९२॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! जिस से (त्वम्) तू (याः) जो (शतविचक्षणाः) असंख्यात शुभगुणों से युक्त (बह्वीः) बहुत (सोमराज्ञीः) सोम जिन में राजा अर्थात् सर्वोत्तम (ओषधीः) ओषधी हैं (तासाम्) उन के विषय में (उत्तमा) उत्तम विद्वान् (असि) है इस से (शम्) कल्याणकारिणी (हृदे) हृदय के लिये (अरम्) समर्थ (कामाय) इच्छासिद्धि के लिये योग्य होती है हमारे लिये उन का उपदेश कर ॥९२॥

भावार्थः—स्त्रियों को चाहिये कि ओषधिविद्या का ग्रहण अवश्य करें क्योंकि इसके विना पूर्णकामना सुखप्राप्ति और रोगों की निवृत्ति कभी नहीं हो सकती ॥९२॥

या इत्यस्य वरुण ऋषिः। वैद्या देवताः विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

कैसे सन्तानों को उत्पन्न करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

याऽओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु।
बृहस्पतिप्रसूताऽअस्यै संदत्त वीर्य्यम् ॥९३॥

पदार्थः—हे विवाहित पुरुष ! (याः) जो (सोमराज्ञीः) सोम जिनमें उत्तम है वे (बृहस्पतिप्रसूताः) बड़े कारण के रक्षक ईश्वर की रचना से उत्पन्न हुई (ओषधीः) ओषधियां (पृथिवीम्) (अनु) भूमि के ऊपर (विष्ठिताः) विशेषकर स्थित हैं उन से (अस्यै) इस पत्नी के लिये (वीर्य्यम्) वीज का दान दे। हे विद्वानो ! आप इन ओषधियों का विज्ञान सब मनुष्यों के लिये (संदत्त) अच्छे प्रकार दिया कीजिये ॥९३॥

भावार्थः—स्त्री पुरुषों को उचित है कि बड़ी-बड़ी ओषधियों का सेवन करके सुन्दर नियमों के साथ गर्भाधान करें और ओषधियों का विज्ञान विद्वानों से सीखें ॥९३॥

याश्चेदमित्यस्य वरुण ऋषिः। भिषजो देवताः। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

शुद्ध देशों से ओषधियों का ग्रहण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः ।

सर्वाः संगत्य वीरुधोऽस्यै संदत्त वीर्य्यम् ॥९४॥

पदार्थः — हे विद्वानो ! आप लोग (याः) जो (च) विदित हुई और जिनको (उपशृण्वन्ति) सुनते हैं (याः) जो (च) समीप हों और जो (दूरम्) दूर देश में (परागताः) प्राप्त हो सकती हैं उन (सर्वाः) सब (वीरुधः) वृक्ष आदि ओषधियों को (संगत्य) निकट प्राप्त कर (इदम्) इस (वीर्य्यम्) शरीर के पराक्रम को वैद्य मनुष्य लोग जैसे सिद्ध करते हैं वैसे उन ओषधियों का विज्ञान (अस्यै) इस कन्या को (संदत्त) सम्यक् प्रकार से दीजिये ॥९४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग, जो ओषधियाँ दूर वा समीप में रोगों को हरने और बल करने हारी सुनी जाती हैं उनको उपकार में लाके रोगरहित होओ ॥९४॥

मा व इत्यस्य वरुण ऋषिः । वैद्या देवताः । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कोई भी मनुष्य ओषधियों की हानि न करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

मा वो रिषत् खनिता यस्मै चाहं खनामि वः ।

द्विपाच्चतुष्पादस्माकꣳ सर्वमस्त्वनातुरम् ॥९५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (अहम्) मैं (यस्मै) जिस प्रयोजन के लिये ओषधि को (खनामि) उपाड़ता वा खोदता हूं वह (खनिता) खोदी हुई (वः) तुम को (मा) न (रिषत्) दुःख देवे जिस से (वः) तुम्हारे और (अस्माकम्) हमारे (द्विपात्) दो पग वाले मनुष्य आदि तथा (चतुष्पात्) गौ आदि (सर्वम्) सब प्रजा उस ओषधि से (अनातुरम्) रोगों के दुःखों से रहित (अस्तु) होवे ॥९५॥

भावार्थः— जो पुरुष जिन ओषधियों को खोदे वह उनकी जड़ न मेटे जितना प्रयोजन हो उतनी लेकर नित्य रोगों को हटाता रहे, ओषधियों की परम्परा को बढ़ाता रहे कि जिस से सब प्राणी रोगों के दुःखों से बच के सुखी होवें ॥९५॥

ओषधय इत्यस्य वरुण ऋषिः । वैद्या देवताः । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

क्या करने से ओषधियों का विज्ञान बढ़े यह विषय अगले मन्त्र में कहा है

ओषधयः समवदन्त सोमेन सह राज्ञा ।

यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तꣳ राजन् पारयामसि ॥९६॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! जो (सोमेन) (राज्ञा) सर्वोत्तम सोमलता के (सह) साथ वर्त्तमान (ओषधयः) ओषधी हैं उन के विज्ञान के लिये आप लोग (समवदन्त) आपस में संवाद करो। हे वैद्य (राजन्) राजपुरुष ! हम लोग (ब्राह्मणः) वेदों और उपवेदों का वेत्ता पुरुष (यस्मै) जिस रोगी के लिये इन ओषधियों का ग्रहण (कृणोति) करता है (तम्) उस रोगी को रोगसागर से उन ओषधियों से (पारयामसि) पार पहुंचाते हैं ॥९६॥

भावार्थः—वैद्य लोगों को योग्य है कि आपस में प्रश्नोत्तरपूर्वक निरन्तर ओषधियों के ठीक-ठीक ज्ञान से रोगों से रोगी पुरुषों को पार कर निरन्तर सुखी करें। और जो इन में उत्तम विद्वान् हो वह मनुष्यों को वैद्यकशास्त्र पढ़ावे ॥९६॥

नाशयित्रीत्यस्य वरुण ऋषिः। भिषग्वरा देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

जितने रोग हैं उतनी ओषधी हैं उन का सेवन करे यह
विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नाशयित्री बलासस्यार्शसऽउपचितामसि।
अथो शतस्य यक्ष्माणां पाकारोरसि नाशनी ॥९७॥

पदार्थः—हे वैद्य लोगो ! जो (बलासस्य) प्रवृद्ध हुए कफ की (अर्शसः) गुदेन्द्रिय की व्याधि वा (उपचिताम्) अन्य बढ़े हुए रोगों की (नाशयित्री) नाश करने हारी ओषधि (असि) है (अथो) और जो (शतस्य) असंख्यात (यक्ष्माणाम्) राजरोगों अर्थात् भगन्दरादि और (पाकारोः) मुखरोगों और मर्मों का छेदन करने हारे शूल की (नाशनी) निवारण करने हारी (असि) है उस ओषधी को तुम लोग जानो ॥९७॥

भावार्थः—मनुष्यों को ऐसा जानना चाहिये कि जितने रोग हैं उतनी ही उनकी नाश करने हारी ओषधी भी हैं, इन ओषधियों को नहीं जानने हारे पुरुष रोगों से पीड़ित होते हैं। जो रोगों की ओषधी जानें तो उन रोगों की निवृत्ति करके निरन्तर सुखी होवें ॥९७॥

त्वां गन्धर्वा इत्यस्य वरुण ऋषिः। वैद्या देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः॥

कौन-कौन ओषधी का खनन करता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वां गन्धर्वाऽअखनँस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः।
त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान् यक्ष्मादमुच्यत ॥९८॥

इन्द्रश्च सम्राड् वरुणश्च राजा तौ ते भक्षं चक्रतुरग्रऽएतम् । तयोरहमनु भक्षं भक्षयामि वाग्देवी जुषाणा सोमस्य तृप्यतु सह प्राणेन स्वाहा ॥३७॥

पदार्थः—हे प्रजाजन ! जो (इन्द्रः) परमैश्वर्य्ययुक्त (च) राज्य के अंग-उपांगसहित (सम्राट्) सब जगह एकचक्र राज करने वाला राजा (वरुणः) अति उत्तम (च) और (राजा) न्यायादि गुणों से प्रकाशमान माण्डलिक सेनापति है (तौ) वे दोनों (अग्रे) प्रथम (ते) तेरा (भक्षम्) सेवन अर्थात् नाना प्रकार से रक्षा करें और (अहम्) मैं (तयोः) उनका (एतम्) इस (भक्षम्) स्थित पदार्थ का (अनु) पीछे (भक्षयामि) सेवन कर के कराऊं। ऐसे करते हुए हम तुम सब को (सोमस्य) विद्यारूपी ऐश्वर्य्य के बीच (जुषाणा) प्रीति कराने वाली (देवी) सब विद्याओं की प्रकाशक (वाक्) जो वेदवाणी है उस से (स्वाहा) सब मनुष्य (तृप्यतु) संतुष्ट रहें ॥३७॥

भावार्थः—प्रजा के बीच अपनी-अपनी सभाओं सहित राजा होने के योग्य दो होते हैं। एक चक्रवर्त्ती अर्थात् एकचक्र राज करने वाला और दूसरा माण्डलिक कि जो मण्डल-मण्डल का ईश्वर हो। ये दोनों प्रकार के राजाजन उत्तम-उत्तम न्याय नम्रता सुशीलता और वीरतादि गुणों से प्रजा की रक्षा अच्छे प्रकार करें फिर उन प्रजाजनों से यथायोग्य राज्य-कर लेवें और सब व्यवहारों में विद्या की वृद्धि सत्य वचन का आचरण करें। इस प्रकार धर्म्म अर्थ और कामनाओं से प्रजाजनों को संतोष देकर आप संतोष पावें। आपत्काल में राजा प्रजा की तथा प्रजा राजा की रक्षा कर परस्पर आनन्दित हों ॥३७॥

अग्ने पवस्वेत्यस्य वैखानस ऋषिः। राजादयो गृहपतयो देवताः। भुरिक् त्रिपाद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। उपयामेत्यस्य स्वराडार्च्यनुष्टुप् छन्दः। अग्ने वर्चस्विन्नित्यस्य भुरिगार्च्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी प्रकारान्तर से पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने पवस्व स्वपाऽअस्मे वर्चः सुवीर्य्यम्। दधद्रयिं मयि पोषम्। उपयामगृहीतोस्यग्नये त्वा वर्चसऽएष ते योनिरग्नये त्वा वर्चसे। अग्ने वर्चस्विन्वर्चस्वाँस्त्वं देवेष्वसि वर्चस्वानहं मनुष्येषु भूयासम् ॥३८॥

Page १५७ -१७2 Repeat

पदार्थः—हे (स्वपाः) उत्तम-उत्तम काम तथा (वर्चस्विन्) सुन्दर प्रकार से वेदाध्ययन करने वाले (अग्ने) सभापति ! आप (अस्मे) हम लोगों के लिये (सुवीर्य्यम्) उत्तम पराक्रम (वर्चः) वेद का पढ़ना तथा (मयि) निरन्तर रक्षा करने योग्य अस्मदादि जन में (रयिम्) धन और (पोषम्) पुष्टि को (दधत्) धारण करते हुए (पवस्व) पवित्र हूजिये (उपयामगृहीतः) राज्य-व्यवहार के लिये हमने स्वीकार किये हुए (असि) आप हैं (त्वा) तुझ को (वर्चसे) उत्तम तेज बल पराक्रम के लिये (अग्नये) वा विज्ञानयुक्त परमेश्वर की प्राप्ति के लिये हम स्वीकार करते हैं (ते) तुम्हारी (एषः) यह (योनिः) राजभूमि निवासस्थान है (त्वा) तुझ को (वर्चसे) हम लोग अपने विद्या प्रकाश सब प्रकार सुख के लिये वार वार प्रत्येक कामों में प्रार्थना करते हैं। हे तेजधारी सभापते राजन् ! जैसे (त्वम्) आप (देवेषु) उत्तम-उत्तम विद्वानों में (वर्चस्वान्) प्रशंसनीय विद्याध्ययन करने वाले (असि) हैं, वैसे (अहम्) मैं (मनुष्येषु) विचारशील पुरुषों में आप के सदृश (भूयासम्) होऊं ॥३८॥

भावार्थः—राजा आदि सभ्य जनों को उचित है कि सब मनुष्यों में उत्तम-उत्तम विद्या और अच्छे अच्छे गुणों को बढ़ाते रहें जिस से समस्त लोग श्रेष्ठ गुण और कर्म्म प्रचार करने में उत्तम होवें ॥३८॥

उत्तिष्ठन्नित्यस्य वैखानस ऋषिः। राजादयो गृहस्था देवताः। उत्तिष्ठन्नित्यस्योपेत्येतस्य चार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। इन्द्रेत्यस्याच्युर्ष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

फिर भी उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रेऽअवेपयः। सोममिन्द्र चमू सुतम्। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वौजसऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वौजसे। इन्द्रौजिष्ठौजिष्ठस्त्वं देवेष्वस्योजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम् ॥३९॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य रखने वाले वा ऐश्वर्य में रमने वाले सभापते ! आप (चमू) सेना के साथ (सुतम्) उत्पादन किये हुए (सोमम्) सोम को (पीत्वी) पीके (ओजसा) शरीर आत्मा राजसभा और सेना के बल के (सह) साथ (उत्तिष्ठन्) अच्छे गुण कर्म और स्वभावों में उन्नति को प्राप्त होते हुए (शिप्रे) युद्धादि कर्मों से डाढ़ी और नासिका आदि अङ्गों को (अवेपयः) कम्पाओ अर्थात् यथायोग्य कामों में अंगों की चेष्टा करो। हम लोगों ने आप (उपयामगृहीतः) राज्य के नियम उपनियमों से ग्रहण किये (असि) हैं इस से (त्वा) आप को सावधानता से (इन्द्राय)

परमैश्वर्य देने वाले जगदीश्वर की प्राप्ति के लिये सेवन करते हैं (ओजसे) अत्यन्त पराक्रम और (इन्द्राय) शत्रुओं के विदारण के लिये (त्वा) आप को प्रेरणा करते हैं, हे (ओजिष्ठ) अत्यन्त तेजधारी जैसे (त्वम्) आप (देवेषु) शत्रुओं को जीतने की इच्छा करने वालों में (ओजिष्ठः) अत्यन्त पराक्रम वाले (असि) हैं, वैसे ही मैं भी (मनुष्येषु) साधारण मनुष्यों में (भूयासम्) होऊं ॥३९॥

भावार्थः—राजपुरुषों को यह योग्य है कि भोजन वस्त्र और खाने पीने के पदार्थों से शरीर के बल को उन्नति देवें किन्तु व्यभिचारादि दोषों में कभी न प्रवृत्त होवें और परमेश्वर की उपासना भी यथोक्त व्यवहारों में करें ॥३९॥

अदृश्रमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । गृहपतयो राजादयो देवताः । अदृश्रमित्यस्य सूर्य्येत्यस्य चार्षी गायत्री छन्दः । उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य स्वराडार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी प्रकारान्तर से पूर्वोक्त विषय ही अगले मन्त्र में कहा है ॥

अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ२ऽअनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा । उपयामगृहीतोऽसि सूर्य्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्य्याय त्वा भ्राजाय । सूर्य्य भ्राजिष्ठ भ्राजिष्ठस्त्वं देवेष्वसि भ्राजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम् ॥४०॥

पदार्थः—जैसे (अस्य) इस जगत् के पदार्थों में (भ्राजन्तः) प्रकाश को प्राप्त हुई (रश्मयः) कान्ति (केतवः) वा उन पदार्थों को जनाने वाले (अग्नयः) सूर्य्य विद्युत् और प्रसिद्ध अग्नि हैं वैसे ही (जनान्) मनुष्यों को (अनु) एक अनुकूलता के साथ (अदृश्रम्) मैं दिखलाऊं । हे सभापते ! आप (उपयामगृहीतः) राज्य के नियम और उपनियमों से स्वीकार किये हुए (असि) हैं, जिन (ते) आप का (एषः) यह राज्य-कर्म्म (योनिः) ऐश्वर्य्य का कारण है उन (त्वा) आप को (भ्राजाय) जिलाने वाले (सूर्य्याय) प्राण के लिये चिताता हूं तथा उन्हीं आप को (भ्राजाय) सर्वत्र प्रकाशित (सूर्य्याय) चराचरात्मा जगदीश्वर के लिये भी चिताता हूं । हे (भ्राजिष्ठ) अति पराक्रम से प्रकाशमान (सूर्य्य) सूर्य्य के समान सत्य विद्या और गुणों से प्रकाशमान ! जैसे (त्वम्) आप (देवेषु) समस्त विद्याओं से युक्त विद्वानों में प्रकाशमान (भ्राजिष्ठः) अत्यन्त प्रकाशित हैं वैसे मैं भी (मनुष्येषु) साधारण मनुष्यों में (भूयासम्) प्रकाशमान होऊं ॥४०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे इस संसार में सूर्य की

किरण सब जगह फैल के प्रकाश करती हैं वैसे राजा प्रजा और सभासद्-जन शुभ गुण कर्म्म और स्वभावों में प्रकाशमान हों, क्योंकि ऐसा है कि मनुष्यशरीर पाकर किसी उत्साह पुरुषार्थ सत्पुरुषों का सङ्ग और योगाभ्यास का आचरण करते हुए मनुष्य को धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि तथा शरीर आत्मा और समाज की उन्नति करना दुर्लभ नहीं है । इस से सब मनुष्यों को चाहिये कि आलस्य को छोड़ के नित्य प्रयत्न किया करें ॥४०॥

उदुत्यमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्यो देवता । पूर्वस्य निचृदार्षी, उपयामेत्यस्य स्वराडार्षी गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब ईश्वर पक्ष में गृहस्थ के कर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्य्यम् । उपयामगृहीतोऽसि सूर्य्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्य्याय त्वा भ्राजाय ॥४१॥

पदार्थः—(जातवेदसम्) जो उत्पन्न हुए पदार्थों को जानता वा प्राप्त कराता वा वेद और संसार के पदार्थ जिससे उत्पन्न हुए हैं (देवम्) शुद्धस्वरूप जगदीश्वर जिसको (विश्वाय) संसार के उपकार के लिये (दृशे) ज्ञानचक्षु से देखने को (केतवः) किरणों के तुल्य सर्व अंशों में प्रकाशमान विद्वान् (उत्) (वहन्ति) अपने उत्कर्ष से वादानुवाद कर व्याख्यान करते हैं (उ) तर्क वितर्क के साथ (त्यम्) उस जगदीश्वर को हम लोग प्राप्त हों । हे जगदीश्वर ! जो आप हम लोगों ने (भ्राजाय) प्रकाशमान अर्थात् अत्यन्त उत्साह और पुरुषार्थयुक्त (सूर्य्याय) प्राण के लिये (उपयामगृहीतः) यम नियमादि योगाभ्यास उपासना आदि साधनों से स्वीकार किये हुए (असि) हैं उन (त्वा) आप को उक्त कामना के लिये समस्त जन स्वीकार करें और हे ईश्वर ! जिन (ते) आप का (एषः) यह कार्य्य और कारण की व्याप्ति से एक अनुमान होना (योनिः) अनुपम प्रमाण है उन (त्वा) आप को (भ्राजाय) प्रकाशमान (सूर्य्याय) ज्ञानरूपी सूर्य्य को पाने के लिये एक कारण जानते हैं ॥४१॥

भावार्थः—जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जान कर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं वैसे ही वह जगदीश्वर सब को उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उस की अवधि है ॥४१॥

आजिघ्रेत्यस्य कुसुरुबिन्दु ऋषिः । पत्नी देवता । स्वराड्ब्राह्मयुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब गृहस्थ के कर्म्म में स्त्री के उपदेश विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आजिघ्र कलशं मह्या त्वां विशन्त्विन्दवः । पुनरूर्जा निवर्त्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्माविशताद्रयिः ॥४२॥

पदार्थः—हे (महि) प्रशंसनीय गुणवाली स्त्री ! जो तू (उरुधारा) विद्या और अच्छी अच्छी शिक्षाओं को अत्यन्त धारण करने (पयस्वती) प्रशंसित अन्न और जल रखने वाली है वह गृहाश्रम के शुभ कामों में (कलशम्) नवीन घट का (आजिघ्र) आघ्राण कर अर्थात् उस को जल से पूर्ण कर उसकी उत्तम सुगन्धि को प्राप्त हो (पुनः) फिर (त्वा) तुझे (सहस्रम्) असंख्यात (इन्दवः) सोम आदि ओषधियों के रस (आविशन्तु) प्राप्त हों जिस से तू दुःख से (निवर्तस्व) दूर रहे अर्थात् कभी तुझ को दुःख न प्राप्त हो । तू (ऊर्जा) पराक्रम से (नः) हम को (धुक्ष्व) परिपूर्ण कर (पुनः) पीछे (मा) मुझे (रयिः) धन (आविशतात्) प्राप्त हो ॥४२॥

भावार्थः—विद्वान् स्त्रियों को योग्य है कि अच्छी परीक्षा किए हुए पदार्थ को जैसे आप खायें वैसे ही अपने पति को खिलावें कि जिस से बुद्धि बल और विद्या की वृद्धि हो और धनादि पदार्थों को भी बढ़ाती रहें ॥४२॥

इडे रन्त इत्यस्य कुसुरुबिन्दुऋषिः । पत्नी देवता । आर्षीपंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी प्रकारान्तर से उसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति । एता तेऽअघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात् ॥४३॥

पदार्थः—हे (अघ्न्ये) ताड़ना न देने योग्य (अदिते) आत्मा से विनाश को प्राप्त न होने वाली (ज्योते) श्रेष्ठ शील से प्रकाशमान (इडे) प्रशंसनीय गुणयुक्त (हव्ये) स्वीकार करने योग्य (काम्ये) मनोहर स्वरूप (रन्ते) रमण करने योग्य (चन्द्रे) अत्यन्त आनन्द देने वाली (विश्रुति) अनेक अच्छी बातें और वेद जानने वाली (महि) अत्यन्त प्रशंसा करने योग्य (सरस्वति) प्रशंसित विज्ञान वाली पत्नी ! उक्त गुण प्रकाश करने वाले (ते) तेरे (एता) ये (नामानि) नाम हैं तू (देवेभ्यः) उत्तम गुणों के लिये (मा) मुझ को (सुकृतम्) उत्तम उपदेश (ब्रूतात्) किया कर ॥४३॥

भावार्थः—जो विद्वानों से शिक्षा पाई हुई स्त्री हो वह अपने २ पति

और अन्य सब स्त्रियों को यथायोग्य उत्तम कर्म्म सिखलावे जिससे किसी तरह वे अधर्म्म की ओर न डिगें। वे दोनों स्त्री पुरुष विद्या की वृद्धि और बालकों तथा कन्याओं को शिक्षा किया करें ॥४३॥

वि न इत्यस्य शास ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिगनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः। उपयामेत्यस्य विराडार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब सिंह जैसे पीछे लौट कर देखता है इस प्रकार गृहस्थ कर्म्म के निमित्त राजपक्ष में कुछ उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वि नऽइन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः। योऽअस्माँ२ऽ-अभिदासत्यधरं गमया तमः। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विमृधऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विमृधे ॥४४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सेनापते! तू (नः) हमारे (पृतन्यतः) हम से युद्ध करने के लिये सेना की इच्छा करने हारे शत्रुओं को (जहि) मार और उन (नीचा) नीचों को (यच्छ) वश में ला और जो शत्रुजन (अस्मान्) हम लोगों को (अभिदासति) सब प्रकार दुःख देवे उस (विमृधः) दुष्ट को (तमः) जैसे अन्धकार को सूर्य्य नष्ट करता है वैसे (अधरम्) अधोगति को (गमय) प्राप्त करा जिस (ते) तेरा (एषः) उक्त कर्म्म करना (योनिः) राज्य का कारण है इससे तू हम लोगों से (उपयामगृहीतः) सेना आदि सामग्री से ग्रहण किया हुआ (असि) है इसी से (त्वा) तुझ को (विमृधः) जिस में बड़े २ युद्ध करने वाले शत्रुजन हैं (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य देने वाले उस युद्ध के लिये स्वीकार करते हैं (त्वा) तुझ को (विमृधे) जिस के शत्रु नष्ट हो गये हैं उस (इन्द्राय) राज्य के लिये प्रेरणा देते हैं अर्थात् अधर्म्म से अपना वर्त्ताव न वर्त्ते ॥४४॥

भावार्थः—जो खोटे काम करने वाला पुरुष अनेक प्रकार से अपने बल को उन्नति देकर सब दुःख देना चाहे, उस को राजा सब प्रकार से दण्ड दे तो भी वह अपनी अत्यन्त खोटाइयों को न छोड़े तो उस को मार डाले अथवा नगर से इस को दूर निकाल बन्ध रक्खे ॥४४॥

वाचस्पतिमित्यस्य शास ऋषिः। ईश्वरसभेशौ राजानौ देवते। भुरिगार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। उपयामेत्यस्य स्वराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। आद्यस्य धैवतः परस्य गान्धारः स्वरश्च॥

अब गृहस्थ कर्म में राज और ईश्वर का विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

वाचस्पतिं विश्वकर्म्माणमूतये मनोजुवं वाजेऽअद्या हुवेम। स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्म्मा। उपयाम-

गृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्म्मणऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्म्मणे ॥४५॥

पदार्थः—हम (अद्य) अब (वाजे) विज्ञान वा युद्ध के निमित्त जिन (वाचः) वेदवाणी के (पतिं) स्वामी वा रक्षा करने वाले (विश्वकर्म्माणम्) जिन के सब धर्म्म-युक्त कर्म्म हैं जो (मनोजुवम्) मन चाहती गति का जानने वाला है उस परमेश्वर वा सभापति को (हुवेम) चाहते हैं। सो आप (साधुकर्म्मा) अच्छे २ कर्म्म करने वाले (विश्वशम्भूः) समस्त सुख को उत्पन्न कराने वाले जगदीश्वर वा सभापति (नः) हमारे (अवसे) प्रेम बढ़ाने के लिये (विश्वानि) (हवनानि) दिये हुए सब प्रार्थनावचनों को (जोषत्) प्रेम से मानें। जिन (ते) आपका (एषः) यह उक्त कर्म्म (योनिः) एक प्रेमभाव का कारण है वे आप (उपयामगृहीतः) यमनियमों से ग्रहण किये हुए (असि) हैं इस से (विश्वकर्म्मणे) समस्त कामों के उत्पन्न करने तथा (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य के लिये (त्वा) आप की प्रार्थना तथा (विश्वकर्म्मणे) समस्त काम की सिद्धि के लिये शिल्पक्रियाकुशलता से उत्तम ऐश्वर्य्य वाले आप का सेवन करते हैं ॥४५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जो परमेश्वर वा न्यायाधीश सभापति हमारे किये हुए कामों को जांच कर उनके अनुसार हम को यथा-योग्य नियमों में रखता है, जो किसी को दुःख देने वाले छल कपट के काम को नहीं करता, जिस परमेश्वर वा सभापति के सहाय से मनुष्य मोक्ष और व्यवहारसिद्धि को पाकर धर्म्मशील होता है वही ईश्वर परमार्थसिद्धि वा सभापति व्यवहारसिद्धि के निमित्त हम लोगों को सेवने योग्य है ॥४५॥

विश्वकर्म्मन्नित्यस्य शास ऋषिः। विश्वकर्मेन्द्रो देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। उपयामेत्यस्य विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में राजधर्म का उपदेश किया है ॥

विश्वकर्म्मन् हविषा वर्द्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम्। तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत्। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्म्मणऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्म्मणे ॥४६॥

पदार्थः—हे (विश्वकर्म्मन्) समस्त अच्छे काम करने वाले जन! आप (वर्द्धनेन) वृद्धि के निमित्त (हविषा) ग्रहण करने योग्य विज्ञान से (अवध्यम्) जिस बुरे व्यसन और अधर्म्म से रहित (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य्य देने तथा (त्रातारम्) समस्त

प्रजाजनों की रक्षा करने वाले सभापति को (अकृणोः) कीजिये कि (तस्मै) उसे (पूर्वीः) प्राचीन धार्मिक जनों ने जिन प्रजाओं को शिक्षा दी हुई है वे (विशः) प्रजा-जन (समनमन्त) अच्छे प्रकार मानें जैसे (अयम्) यह सभापति (उग्रः) दुष्टों को दण्ड देने को अच्छे प्रकार चमत्कारी और (विहव्यः) अनेक प्रकार के राज्यसाधन पदार्थ अर्थात् शस्त्र आदि रखने वाला (असत्) हो वैसे प्रजा भी इस के साथ वर्त्ते ऐसी युक्ति कीजिये। (उपयामगृहीतः) यहां से ले कर मन्त्र का पूर्वोक्त ही अर्थ जानना चाहिये ।।४६।।

भावार्थः—इस संसार में मनुष्य सब जगत् की रक्षा करने वाले ईश्वर तथा सभाध्यक्ष को न भूलें किन्तु उनकी अनुमति में सब कोई अपना २ वर्त्ताव रक्खें, प्रजा के विरोध से कोई राजा भी अच्छी ऋद्धि को नहीं पहुंचता और ईश्वर वा राजा के विना प्रजाजन धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सिद्ध करने वाले काम भी नहीं कर सकते, इससे प्रजाजन और राजा ईश्वर का आश्रय कर एक दूसरे के उपकार में धर्म्म के साथ अपना वर्त्ताव रक्खें ।।४६।।

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य शास ऋषिः। विश्वकर्म्मेन्द्रो देवता। विराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ।।

फिर भी प्रकारान्तर से उसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा गायत्रच्छन्दसं गृह्णामीन्द्राय त्वा त्रिष्टुप्छन्दसं गृह्णामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जगच्छन्दसं गृह्णाम्यनुष्टुप्तेऽभिगरः ।।४७।।

पदार्थः—हे (विश्वकर्म्मन्) अच्छे २ कर्म्म करने वाले जन ! मैं जो (ते) आप का (अनुष्टुप्) अज्ञान का छुड़ाने वाला (अभिगरः) सब प्रकार से विख्यात प्रशंसावाक्य है उन अग्नि आदि पदार्थों के गुण कहने और वेदमन्त्र गायत्रीछन्द के अर्थ को जनाने वाले (त्वा) आप को (अग्नये) अग्नि आदि पदार्थों के गुण जानने के लिये (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं वा (त्रिष्टुप्छन्दसम्) परम ऐश्वर्य्य देने वाले त्रिष्टुप् छन्दयुक्त वेदमन्त्रों का अर्थ कराने हारे (त्वा) आपको (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं (जगच्छन्दसम्) समस्त जगत् के दिव्य २ गुण कर्म्म और स्वभाव के बोधक वेदमन्त्रों का अर्थविज्ञान कराने वाले (त्वा) आप को (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) अच्छे २ गुण कर्म्म और स्वभावों के लिये (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं (उपयामगृहीतः) उक्त सब काम के लिये हम लोगों ने आप को सब प्रकार स्वीकार कर रक्खा (असि) है ।।४७।।

भावार्थः—इस मन्त्र में पिछले मन्त्र से (विश्वकर्म्मन्) इस पद की अनुवृत्ति आती है। मनुष्यों को चाहिये कि अग्नि आदि पदार्थविद्या साधन कराने वाली क्रियाओं का उत्तम वोध कराने वाले गायत्री आदि छन्दयुक्त ऋग्वेदादि वेदों के वोध होने के लिये उत्तम पढ़ाने वाले का सेवन करें क्योंकि उत्तम पढ़ाने वाले के विना किसी को विद्या नहीं प्राप्त हो सकती ॥४७॥

ग्रेशीनां त्वेत्यस्य देवा ऋषयः। प्रजापतयो देवताः। याजुषी त्रिष्टुप्। कुकूननानामित्यस्य याजुषी जगती। भन्दनानामित्यस्य मदिन्तमानामित्यस्य मधुन्तमानामित्यस्य च याजुषी त्रिष्टुप्, शुक्रं त्वेत्यस्य साम्नी बृहती छन्दांसि। तेषु त्रिष्टुभो धैवतः। जगत्या निषादः। बृहत्या मध्यमश्च स्वराः॥

अब गार्हस्थ्य कर्म्म में पत्नी अपने पति को उपदेश देती है,
यह अगले मन्त्र में कहा है॥

ग्रेशीनां त्वा पत्मन्नाधूनोमि। कुकूननानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि। भन्दनानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि। मदिन्तमानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि। मधुन्तमानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि। शुक्रं त्वा शुक्रऽआधूनोम्यह्नो रूपे सूर्य्यस्य रश्मिषु ॥४८॥

पदार्थः—हे (पत्मन्) धर्म्म में न चित्त देने वाले पते! (ग्रेशीनाम्) जलों के समान निर्मल विद्या और सुशीलता में व्याप्त जो पराई पत्नियां हैं उन में व्यभिचार से वर्त्तमान (त्वा) तुम को मैं वहां से (आधूनोमि) अच्छे प्रकार डिगाती हूं। हे (पत्मन्) अधर्म्म में चित्त देने वाले पते! (कुकूननानाम्) निरन्तर शब्दविद्या से नम्रीभाव को प्राप्त हो रही हुई औरों की पत्नियों के समीप मूर्खपन से जाने वाले (त्वा) तुझ को मैं (आ) (धूनोमि) वहां से अच्छे प्रकार छुड़ाती हूं। हे (पत्मन्) कुचाल में चित्त देने वाले पते! (भन्दनानाम्) कल्याण का आचरण करती हुई परपत्नियों के समीप अधर्म से जाने वाले (त्वा) तुझ को वहां से मैं (आ) अच्छे प्रकार (धूनोमि) पृथक् करती हूं। हे (पत्मन्) चञ्चल चित्त वाले पते! (मदिन्तमानाम्) अत्यन्त आनन्दित परपत्नियों के समीप उन को दुःख देते हुए (त्वा) तुम को मैं वहां से (आ) वार २ (धूनोमि) कंपाती हूं। हे (पत्मन्) कठोरचित्त पते! (मधुन्तमानाम्) अतिशय करके मीठी २ वोलियां बोलने वाली परपत्नियों के निकट कुचाल से जाते हुए (त्वा) तुम को मैं (आ) अच्छे प्रकार (धूनोमि) हटाती हूं। हे (पत्मन्) अविद्या में रमण करने वाले! (अह्नः) दिन के (रूपे) रूप में अर्थात्

(सूर्यस्य) सूर्य की फैली हुई किरणों के समय में घर में संगति की चाह करते हुए (शुक्रम्) शुद्ध वीर्य वाले (त्वा) तुम को (शुक्रे) वीर्य के हेतु (आ) भले प्रकार (धूनोमि) छुड़ाती हूं ॥४८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे सूर्य्य की किरणों को प्राप्त होकर संसार के पदार्थ शुद्ध होते हैं वैसे ही दुराचारी पुरुष अच्छी शिक्षा और स्त्रियों के सत्य उपदेश से दण्ड को पाकर पवित्र होते हैं, गृहस्थों को चाहिये कि अत्यन्त दुःख देने और कुल को भ्रष्ट करने वाले व्यभिचार कर्म्म से सदा दूर रहें क्योंकि इस से शरीर और आत्मा के बल का नाश होने से धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि नहीं होती ॥४८॥

ककुभमित्यस्य देवा ऋषयः। विश्वेदेवा प्रजापतयो देवताः। विराट् प्राजापत्या जगती छन्दः। निषादः स्वरः। यत्ते सोमेत्यस्य भुरिगाष्युंष्णिक् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब फिर गृहस्थों को राजपक्ष में उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

ककुभꣳ रूपं वृषभस्य रोचते बृहच्छुक्रः शुक्रस्य पुरोगाः सोमः सोमस्य पुरोगाः। यत्ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै त्वा गृह्णामि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा ॥४९॥

पदार्थः—हे (सोम) ऐश्वर्य्य को प्राप्त हुए विद्वन्! (यत्) जिस (वृषभस्य) सब सुखों के वर्षानेवाले आप का (ककुभम्) दिशाओं के समान शुद्ध (बृहत्) बड़ा (रूपम्) सुन्दर स्वरूप (रोचते) प्रकाशमान होता है सो आप (शुक्रस्य) शुद्ध धर्म्म के (पुरोगाः) अग्रगामी वा (सोमस्य) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के (पुरोगाः) अग्रगन्ता (शुक्रः) शुद्ध (सोमः) सोमगुणसम्पन्न ऐश्वर्य्ययुक्त हूजिये जिस से आपका (अदाभ्यम्) प्रशंसा करने योग्य (नाम) नाम (जागृवि) जाग रहा है (तस्मै) उसी के लिये (त्वा) आप को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ और हे (सोम) उत्तम कामों में प्रेरक! (तस्मै) उन (सोमाय) श्रेष्ठ कामों में प्रवृत्त हुए (ते) आप के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी प्राप्त हो ॥४९॥

भावार्थः—सभाजन और प्रजाजनों को चाहिये कि जिसकी पुण्य, प्रशंसा, सुन्दररूप, विद्या, न्याय, विनय, शूरता, तेज, अपक्षपात, मित्रता, सब कामों में उत्साह, आरोग्य, बल, पराक्रम, धीरज जितेन्द्रियता वेदादि शास्त्रों में श्रद्धा और प्रजापालन में प्रीति हो उसी को सभा का अधिपति राजा मानें ॥४९॥

उशिक् त्वमित्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतयो देवताः । स्वराडार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ।।

फिर प्रकारान्तर से राजविषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

उशिक् त्वं देव सोमाग्नेः प्रियं पाथोऽपीहि वशी त्वं देव सोमेन्द्रस्य प्रियं पाथोऽपीह्यस्मत्सखा त्वं देव सोम विश्वेषां देवानां प्रियं पाथोऽपीहि ।।५०।।

पदार्थः—हे (देव) दिव्यगुणसम्पन्न (सोम) समस्त ऐश्वर्य्ययुक्त राजन् ! आप (उशिक्) अति मनोहर होके (अग्नेः) उत्तम विद्वान् के (प्रियम्) प्रेम उत्पन्न कराने वाले (पाथः) रक्षायोग्य व्यवहार को (अपि) निश्चय से (इहि) प्राप्त करो और जानो । हे (देव) दानशील (सोम) हर एक प्रकार से ऐश्वर्य्य की उन्नति कराने वाले ! आप (वशी) जितेन्द्रिय होकर (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य्य वाले धार्मिक जन के (प्रियम्) प्रेम उत्पन्न कराने वाले (पाथः) जानने योग्य कर्म को (अपि) निश्चय से (इहि) जानो । हे (देव) समस्त विद्याओं में प्रकाशमान (सोम) ऐश्वर्य्ययुक्त ! आप (अस्मत्सखा) हम लोग जिन के मित्र हैं ऐसे आप होकर (विश्वेषाम्) समस्त (देवानाम्) विद्वानों के प्रेम उत्पन्न कराने हारे (पाथः) विज्ञान के आचरण को (अपि) निश्चय से (इहि) प्राप्त हो तथा जानो ।।५०।।

भावार्थः—राजा राजपुरुष सभासद् तथा अन्य सब सज्जनों को उचित है कि पुरुषार्थ, अच्छे-अच्छे नियम और मित्रभाव से धार्मिक वेद के पारगन्ता विद्वानों के मार्ग को चलें क्योंकि उन के तुल्य आचरण किये विना कोई विद्या धर्म्म सब से एक प्रीतिभाव और ऐश्वर्य्य को नहीं पा सकता है ।।५०।।

इह रतिरित्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतयो गृहस्था देवताः । आर्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ।।

अब गार्हस्थ्य धर्म्म में विशेष उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

इह रतिरिह रमध्वमिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा । उपसृजन्धरुणं मात्रे धरुणो मातरं धयन् । रायस्पोषमस्मासु दीधरत् स्वाहा ।।५१।।

पदार्थः—हे गृहस्थो ! तुम लोगों की (इह) इस गृहाश्रम में (रतिः) प्रीति (इह) इस में (धृतिः) सब व्यवहारों की धारणा (इह) इसी में (स्वधृतिः) अपने

पदार्थों को धारण (स्वाहा) तथा तुम्हारी सत्य वाणी और सत्य क्रिया हो। तुम (इह) इस गृहाश्रम में (रमध्वम्) रमण करो। हे गृहाश्रमस्थ पुरुष! तू सन्तानों की माता जो कि तेरी विवाहित स्त्री है उस (मात्रे) पुत्र का मान करने वाली के लिये (धरुणम्) सब प्रकार से धारण पोषण कराने योग्य गर्भ को (उपसृजन्) उत्पन्न कर और वह (धरुणः) उक्त गुण वाला पुत्र (मातरम्) उस अपनी माता का (धयन्) दूध पीवे। वैसे (अस्मासु) हम लोगों के निमित्त (रायः) धन की (पोषम्) समृद्धि को (स्वाहा) सत्यभाव से (दाधरत्) उत्पन्न कीजिये ॥५१॥

भावार्थः—जब तक राजा आदि सभ्यजन वा प्रजाजन सत्य धैर्य्य वा सत्य से जोड़े हुए पदार्थ वा सत्य व्यवहार में अपना वर्त्ताव न रक्खें तब तक प्रजा और राज्य के सुख नहीं पा सकते और जब तक राजपुरुष तथा प्रजापुरुष पिता और पुत्र के तुल्य परस्पर प्रीति और उपकार नहीं करते तब तक निरन्तर सुख भी प्राप्त नहीं हो सकता ॥५१॥

सत्रस्येत्यस्य देवा ऋषयः। प्रजापतिर्देवता। भुरिगार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर भी गृहस्थों के विषय में विशेष उपदेश अगले मन्त्र में कहा है॥

सत्रस्यऽऋद्धिरस्यगन्म ज्योतिरमृताऽअभूम। दिवं पृथिव्याऽअध्यारुहामाविदाम देवान्त्स्वर्ज्योतिः ॥५२॥

पदार्थः—हे विद्वन्! आप (सत्रस्य) प्राप्त हुए राजप्रजाव्यवहाररूप यज्ञ के (ऋद्धिः) समृद्धि रूप (असि) हैं। आप के संग से हम लोग (ज्योतिः) विज्ञान के प्रकाश को (अगन्म) प्राप्त होवें और (अमृताः) मोक्ष पाने के योग्य (अभूम) हों। (दिवः) सूर्यादि (पृथिव्याः) पृथिवी आदि लोकों के (अधि) बीच (अरुहाम) पूर्ण वृद्धि को पहुंचें (देवान्) विद्वानों और दिव्य भोगों (ज्योतिः) विज्ञान विषय और (स्वः) अत्यन्त सुख को (अविदाम) प्राप्त होवें ॥५२॥

भावार्थः—जब तक सब की रक्षा करने वाला धार्मिक राजा वा आप्त विद्वान् न हो तब तक विद्या और मोक्ष के साधनों को निर्विघ्नता से पाने के योग्य कोई भी मनुष्य नहीं होता है और न मोक्षसुख से अधिक कोई सुख है ॥५२॥

युवमित्यस्य देवा ऋषयः। गृहपतयो देवताः। पूर्वस्यार्ष्यनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः। दूरे चेत्यस्यासुर्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। अस्माकमित्यस्य प्राजापत्या बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। भूर्भुवरित्यस्य विराट्प्राजापत्या पङ्क्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तन्तमिद्धतं वज्रेण तन्तमिद्धतम् । दूरे चत्ताय छन्त्सद् गहनं यदिनक्षत् । अस्माकꣳशत्रून् परि शूर विश्वतो दर्म्मा दर्षीष्ट विश्वतः । भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याम सुवीरा वीरैः सुपोषाः पोषैः ॥५३॥

पदार्थः—हे (पुरोयुधा) युद्धसमय में आगे लड़ने वाले (इन्द्रापर्वता) सूर्य्य और मेघ के समान सेनापति और सेनाजन ! (युवम्) तुम दोनों (यः) जो जो (नः) हमारी (पृतन्यात्)सेना से लड़ना चाहे (तन्तम्) (इत्) उसी उसी को (वज्रेण) शस्त्र और अस्त्रविद्या के बल से (हतम्) मारो और (यत्) जो (अस्माकम्) हमारे शत्रुओं की (गहनम्) दुर्ज्जय सेना हमारी सेना को (इनक्षत्) व्याप्त हो और (यत्) जो जो (छन्त्सत्) बल को बढ़ावें उस उस को (चत्ताय) आनन्द बढ़ाने के लिये (इद्धतम्) अवश्य मारो और (दूरे) दूर पहुंचा दो । हे (शूर) शत्रुओं को सुख से बचाने वाले सभापते ! आप हमारे (शत्रून्) शत्रुओं को (विश्वतः) सब प्रकार से (परिदर्षीष्ट) विदीर्ण कर दीजिये जिससे हम लोग (भूः) इस भूलोक (भुवः) अन्तरिक्ष और (स्वः) सुखकारक अर्थात् दर्शनीय अत्यन्त सुखरूप लोक में (प्रजाभिः) अपने सन्तानों से (सुप्रजाः) प्रशंसित सन्तानों वाले (वीरैः) वीरों से (सुवीराः) बहुत अच्छे-अच्छे वीरों वाले और (पोषैः) पुष्टियों से (सुपोषाः) अच्छी अच्छी पुष्टि वाले (विश्वतः) सब ओर से (स्याम) होवें ॥५३॥

भावार्थः—जब तक सभापति और सेनापति प्रगल्भ हुए सब कामों में अग्रगामी न हों तब तक सेनावीर आनन्द से युद्ध में प्रवृत्त नहीं हो सकते और इस काम के विना कभी विजय नहीं होता तथा जब तक शत्रुओं को निर्म्मूल करने हारे सभापति आदि नहीं होते तब तक प्रजा का पालन नहीं कर सकते और न प्रजाजन सुखी हो सकते हैं ॥५३॥

परमेष्ठीत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । परमेष्ठी प्रजापतिर्देवता । साम्न्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थ का कर्म्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

परमेष्ठ्यभिधीतः प्रजापतिर्वाचि व्याहृतायामन्धोऽअच्छेतः । सविता सन्यां विश्वकर्म्मा दीक्षायाम्पूषा सोमक्रयण्याम् ॥५४॥

पदार्थः—हे गृहस्थो ! तुम ने यदि (व्याहृतायाम्) उच्चारित उपदिष्ट की हुई (वाचि) वेदवाणी में (परमेष्ठी) परमानन्दस्वरूप में स्थित (प्रजापतिः) समस्त प्रजा के स्वामी को (अच्छेतः) अच्छे प्रकार प्राप्त (विश्वकर्म्मा) सब विद्या और कर्म्मों को जानने वाले सर्वथा श्रेष्ठ सभापति को (दीक्षायाम्) सभा के नियमों के धारण में (सोमक्रयण्याम्) ऐश्वर्य ग्रहण करने में (पूषा) सब को पुष्ट करने हारे उत्तम वैद्य को और (सन्याम्) जिस से सनातन सत्य प्राप्त हो उस में (सविता) सब जगत् का उत्पादक (अभिधीतः) सुविचार से धारण किया (अन्धः) उत्तम सुसंस्कृत अन्न का सेवन किया तो सदा सुखी हों ॥५४॥

भावार्थः—जो ईश्वर वेदविद्या से अपने, सांसारिक जीवों और जगत् के गुण कर्म्म स्वभावों को प्रकाशित न करता तो किसी मनुष्य को विद्या और इन का ज्ञान न होता और विद्या वा उक्त पदार्थों के ज्ञान के विना निरन्तर सुख क्यों कर हो सकता है ॥५४॥

इन्द्रश्चेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रादयो देवताः । आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रश्च मरुतश्च क्रयायोपोत्थितोऽसुरः पण्यमानो मित्रः क्रीतो विष्णुः शिपिविष्टऽऊरावासन्नो विष्णुर्नरन्धिषः ॥५५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो विद्वानों ने (क्रयाय) व्यवहारसिद्धि के लिये (इन्द्रः) बिजुली (मरुतः) पवन (असुरः) मेघ (पण्यमानः) स्तुति के योग्य (मित्रः) सखा (शिपिविष्टः) समस्त पदार्थों में प्रविष्ट (विष्णुः) सर्वशरीरव्याप्त धनंजय वायु और इन में से एक एक पदार्थ (नरंधिषः) मनुष्यादि के आत्माओं में साक्षी (विष्णुः) हिरण्यगर्भ ईश्वर (ऊरौ) ढांपने आदि क्रियाओं में (आसन्नः) संनिकट वा (उपोत्थितः) समीपस्थ प्रकाश के समान और जो (क्रीतः) व्यवहार में वर्त्ता हुआ पदार्थ है इन सब को जानो ॥५५॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर से प्रकाशित अग्नि आदि पदार्थों की क्रिया-कुशलता से उपयोग लेकर गार्हस्थ्य व्यवहारों को सिद्ध करें ॥५५॥

प्रोह्यमाण इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा गृहस्था देवताः । आर्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रोह्यमाणः सोमऽआगतो वरुणऽआसंद्यामासन्नोऽग्निराग्नीध्रऽइन्द्रो हविर्द्धानेऽथर्वोपावह्रियमाणः ॥५६॥

पदार्थः—हे गृहस्थो ! तुम को इस ईश्वर की सृष्टि में (आसन्द्याम्) बैठने की एक अच्छी चौकी आदि स्थान पर (आगत) आया हुआ पुरुष जैसे विराजमान हो वैसे (प्रोह्यमाणः) तर्क वितर्क के साथ वादानुवाद से जाना हुआ (सोमः) ऐश्वर्य्य का समूह (वरुणः) सहायकारी पुरुष के समान जल का समूह (आग्नीध्रे) बहुत इन्धनों में (अग्निः) अग्नि (उपावह्रियमाणः) क्रिया की कुशलता से युक्त किये हुए (अथर्वा) प्रशंसा करने योग्य के समान पदार्थ और (हविर्धाने) ग्रहण करने योग्य पदार्थों में (इन्द्रः) विजुली निरन्तर युक्त करनी चाहिये ॥५६॥

भावार्थः—तर्क के विना कोई भी विद्या किसी मनुष्य को नहीं होती और विद्या के विना पदार्थों से उपयोग भी कोई नहीं ले सकता ॥५६॥

विश्वे देवा इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। भुरिक् साम्नी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अब गृहस्थ कर्म्म में कुछ विद्वानों का पक्ष अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्वे देवा अꣳशुषु न्युप्तो विष्णुराप्रीतपाऽआप्याय्यमानो यमः सूयमानो विष्णुः सम्भ्रियमाणो वायुः पूयमानः शुक्रः पूतः। शुक्रः क्षीरश्रीर्मन्थी सक्तुश्रीः ॥५७॥

पदार्थः—हे (विश्वेदेवाः) समस्त विद्वानो ! तुम्हारा जो (अंशुषु) अलग-अलग संसार के पदार्थों में (न्युप्तः) नित्य स्थापित किया हुआ व्यवहार (आप्रीतपाः) अच्छी प्रीति के साथ (विष्णुः) व्याप्त होने वाली विजुली (आप्याय्यमानः) अति बढ़े हुए के समान (यमः) सूर्य्य (सूयमानः) उत्पन्न होने हारा (विष्णुः) व्यापक अव्यक्त (संभ्रियमाणः) अच्छे प्रकार पुष्टि किया हुआ (वायुः) प्राण (पूयमानः) पवित्र किया हुआ (शुक्रः) पराक्रम का समूह (पूतः) शुद्ध (शुक्रः) शीघ्र चेष्टा करने हारा और (मंथी) विलोडने वाला ये सब प्रत्येक सेवन किये हुए (क्षीरश्रीः) दुग्धादि पदार्थों को पकाने और (सक्तुश्रीः) प्राप्त हुए पदार्थों का आश्रय करने वाले होते हैं॥५७॥

भावार्थः—मनुष्यों को युक्ति और विद्या से सेवन किये हुए सब सृष्टिस्थ पदार्थ शरीर आत्मा और सामाजिक सुख कराने वाले होते हैं॥५७॥

विश्वे देवाश्चेत्यस्य वसिष्ठः ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। भुरिगार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

फिर प्रकारान्तर से विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

विश्वेदेवाश्चमसेषून्नीतोऽसुर्होमायोद्यतो रुद्रो हूयमानो वातोऽभ्यावृत्तो नृचक्षाः प्रतिख्यातो भक्षो भक्ष्यमाणः पितरो नाराशꣳसाः ॥५८॥

पदार्थः—जिन विद्वानों ने यज्ञ-विधान से (चमसेषु) मेघों में सुगन्धित आदि वस्तु (उन्नीतः) ऊंचे पहुँचाया (असुः) अपना जीवन (उद्यतः) अच्छे यत्न में लगा रक्खा (रुद्रः) जीव को पवित्र कर (हूयमानः) स्वीकार किया (नृचक्षः) मनुष्यों को प्रसन्न करने वाला (प्रतिख्यातः) जिन्होंने वादानुवाद से चाहा (वातः) बाहर के वायु अर्थात् मैदान के कठिन वायु के सह वायु शुद्ध किये फल (भक्ष्यमाणः) कुछ भोजन करने योग्य पदार्थ (भक्षः) खाइये (नाराशंसाः) प्रशंसाकर मनुष्यों के उपदेशक (विश्वेदेवाः) सब विद्वान् (पितरः) उन सब के उपकारकों को ज्ञानी समझने चाहियें ॥५८॥

भावार्थः—जो विद्वान् लोग परोपकार बुद्धि से विद्या का विस्तार करने, सुगन्धि पुष्टि मधुरता और रोगनाशक गुणयुक्त पदार्थों का यथायोग्य मेल अग्नि के बीच में उन का होम कर शुद्ध वायु वर्षा का जल वा ओषधियों का सेवन कर के शरीर को आरोग्य करते हैं वे इस संसार में अत्यन्त प्रशंसा के योग्य होते हैं ॥५८॥

सन्न इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। आर्षी बृहती छन्दः। निषादः स्वरः। या पत्येते इत्यस्य विराडार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

अब गृहस्थ के कर्म्म में यज्ञादि व्यवहार का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सन्नः सिन्धुरवभृथायोद्यतः समुद्रोऽभ्यवह्रियमाणः सलिलः प्रप्लुतो ययोरोजसा स्कभिता रजांꣳसि वीर्येभिर्वीरतमा शविष्ठा। या पत्येते अप्रतीता सहोभिर्विष्णूऽअगन्वरुणा पूर्वहूतौ ॥५९॥

पदार्थः—जिन्होंने (अवभृथाय) यज्ञान्त स्नान और अपने आत्मा के पवित्र करने के लिये (अभ्यवह्रियमाणः) भोगने योग्य (सलिलः) जिस में उत्तम जल है वह व्यवहार (उद्यतः) नियम से सम्पादन किया (सिन्धुः) नदियां (सन्नः) निर्माण

ऊर्ध्वो भवेत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्ष्यतिजगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ।।

फिर वह राजा किस प्रकार का हो इस का विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने । अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्रमृणीहि शत्रून् । अग्नेष्ट्वा तेजसा सादयामि ।।१३।।

पदार्थः—हे (अग्ने) तेजस्विन् विद्वान् पुरुष ! जिसलिये आप (ऊर्ध्वः) उत्तम (भव) हूजिये धर्म के (प्रति) अनुकूल होके (विध्य) दुष्ट शत्रुओं को ताड़ना दीजिये (अस्मत्) हमारे (स्थिरा) निश्चल (दैव्यानि) विद्वानों के रचे पदार्थों को (आविः) प्रकट (कृणुष्व) कीजिये सुखों को (तनुहि) विस्तारिये (यातुजूनाम्) परपदार्थों को प्राप्त होने और वेग वाले शत्रुजनों के (जामिम्) भोजन के और (अजामिम्) अन्य व्यवहार के स्थान को (अव) अच्छे प्रकार विस्तारपूर्वक नष्ट कीजिये और (शत्रून्) शत्रुओं को (प्रमृणीहि) बल के साथ मारिये इसलिये मैं (त्वा) आपको (अग्नेः) अग्नि के (तेजसा) प्रकाश के (अधि) सम्मुख (सादयामि) स्थापन करता हूं ।।१३।।

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि राज्य के ऐश्वर्य्य को पाके उत्तम गुण, कर्म और स्वभावों से युक्त होवें, प्रजाओं और दरिद्रों को निरन्तर सुख देवें । दुष्ट अधर्माचारी मनुष्यों को निरन्तर शिक्षा करें और सबसे उत्तम पुरुष को सभापति मानें ।।१३।।

अग्निर्मूर्द्धेत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ।।

फिर वह राजपुरुष कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याऽअयम् ।
अपाꣳरेताꣳसि जिन्वति । इन्द्रस्य त्वौजसा सादयामि ।।१४।।

पदार्थः—हे राजन् ! जैसे (अयम्) यह (अग्निः) सूर्य्य (दिवः) प्रकाशयुक्त आकाश के बीच और (पृथिव्याः) भूमि का (मूर्द्धा) सब प्राणियों के शिर के समान उत्तम (ककुत्) सब से बड़ा (पतिः) सब पदार्थों का रक्षक (अपाम्) जलों के (वीर्याणि) सारों से प्राणियों को (जिन्वति) तृप्त करता है वैसे आप भी हूजिये । मैं (त्वा) आप को (इन्द्रस्य) सूर्य्य के (ओजसा) पराक्रम के साथ राज्य के लिये (सादयामि) स्थापना करता हूं ।।१४।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो मनुष्य सूर्य्य के समान गुण कर्म्म और स्वभाव वाला न्याय से प्रजा के पालन में तत्पर धर्मात्मा विद्वान् हो उस को राज्याधिकारी सब लोग मानें ॥१४॥

भुवो यज्ञस्येत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षीत्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर वह कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः।
दिवि मूर्द्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥१५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष! (यत्र) जिस राज्य में आप जैसे (नियुद्भिः) वेग आदि गुणों के साथ वायु (रजसः) लोकों वा ऐश्वर्य्य का (नेता) चलाने हारा (दिवि) न्याय के प्रकाश में (मूर्द्धानम्) शिर को धारण करता है वैसे (यत्र) जहां (शिवाभिः) कल्याणकारक नीतियों के साथ (भुवः) अपनी पृथिवी के (यज्ञस्य) राजधर्म्म के पालन करने हारे हो के (सचसे) संयुक्त होता अच्छे पुरुषों से राज्य को (दधिषे) धारण और (हव्यवाहम्) देने योग्य विद्वानों की प्राप्ति का हेतु (स्वर्षाम्) सुखों का सेवन कराने हारी (जिह्वाम्) अच्छे विषयों की ग्राहक वाणी को (चकृषे) करते हो वहाँ सब सुख बढ़ते हैं यह निश्चित जानिये ॥१५॥

भावार्थः—जिस राज्य में राजा आदि सब राजपुरुष मंगलाचरण करने हारे धर्मात्मा हो के धर्मानुकूल प्रजाओं का पालन करें वहां विद्या और अच्छी शिक्षा से होने वाले सुख क्यों न बढ़ें ॥१५॥

ध्रुवासीत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराडार्ष्यनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर वह राजपत्नी कैसी होवे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

ध्रुवासि धरुणास्तृता विश्वकर्मणा। मा त्वा समुद्रऽउद्वधीन्मा सुपर्णोऽअव्यथमाना पृथिवीं दृंह ॥१६॥

पदार्थः—हे राजा की स्त्री! जिस कारण (विश्वकर्मणा) सब धर्मयुक्त काम करने वाले अपने पति के साथ वर्त्तती हुई (आस्तृता) वस्त्र आभूषण और श्रेष्ठ गुणों से ढपी हुई (धरुणा) विद्या और धर्म की धारण करने हारी (ध्रुवा) निश्चल (असि) है सो तू (अव्यथमाना) पीड़ा से रहित हुई (पृथिवीम्) अपनी राज्यभूमि को (दृंह) अच्छे प्रकार बढ़ा (त्वा) तुझ को (समुद्रः) जार लोगों का

व्यवहार (मा) मत (वधीत्) सतावे और (सुपर्णः) सुन्दर रक्षा किये अवयवों से युक्त तेरा पति (मा) नहीं मारे ॥१६॥

भावार्थः—जैसी राजनीति विद्या को राजा पढ़ा हो वैसी ही उसकी राणी भी पढ़ी होनी चाहिये सदैव दोनों परस्पर पतिव्रता स्त्रीव्रत हो के न्याय से पालन करें। व्यभिचार और काम की व्यथा से रहित होकर धर्मानुकूल पुत्रों को उत्पन्न करके स्त्रियों का स्त्री राणी और पुरुषों का पुरुष राजा न्याय करे ॥१६॥

प्रजापतिष्ट्वेत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। अनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर राजा अपनी राणी को कैसे वर्त्तावे यह अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रजापतिष्ट्वा सादयत्वपां पृष्ठे समुद्रस्येमन्।
व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं प्रथस्व पृथिव्यसि ॥१७॥

पदार्थः—हे विदुषि स्त्री ! जैसे (प्रजापतिः) प्रजा का स्वामी (समुद्रस्य) समुद्र के (अपाम्) जलों के (एमन्) प्राप्त होने योग्य स्थान के (पृष्ठे) ऊपर नौका के समान (व्यचस्वतीम्) बहुत विद्या की प्राप्ति और सत्कार से युक्त (प्रथस्वतीम्) प्रशंसित कीर्त्ति वाली (त्वा) तुझ को (सादयतु) स्थापन करे। जिस कारण तू (पृथिवी) भूमि के समान सुख देने वाली (असि) है इसलिये स्त्रियों के न्याय करने में (प्रथस्व) प्रसिद्ध हो वैसे तेरा पति पुरुषों का न्याय करे ॥१७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। राजपुरुष आदि को चाहिये कि आप जिस-जिस राजकार्य में प्रवृत्त हों उस-उस कार्य में अपनी-अपनी स्त्रियों को भा स्थापन करें जो जो राजपुरुष जिन-जिन पुरुषों का न्याय करे उस-उस की स्त्री स्त्रियों का न्याय किया करें ॥१७॥

भूरसीत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः। अग्निर्देवता। प्रस्तारपङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर वह राणी कैसी हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री।
पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृꣳह पृथिवीं मा हिꣳसीः ॥१८॥

पदार्थः—हे राणी ! जिससे तू (भूः) भूमि के समान (असि) है इस कारण (पृथिवीम्) पृथिवी को (यच्छ) निरन्तर ग्रहण कर जिसलिये तू (विश्वधायाः) सब गृहाश्रम के और राजसम्बन्धी व्यवहारों और (विश्वस्य) सब (भुवनस्य) राज्य को (धर्त्री) धारण करने हारी (भूमिः) पृथिवी के समान (असि) है इसलिये (पृथिवीम्)

पृथिवी को (दृंह) बढ़ा और जिस कारण तू (अदितिः) अखण्ड ऐश्वर्य्य वाले आकाश के समान क्षोभरहित (असि) है इसलिये (पृथिवीम्) भूमि को (मा) मत (हिंसीः) बिगाड़ ॥१८॥

भावार्थः—जो राजकुल की स्त्री पृथिवी आदि के समान धीरज आदि गुणों से युक्त हो तो वे ही राज्य करने के योग्य होती हैं ॥१८॥

विश्वस्मा इत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर वे स्त्री पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय। अग्निष्ट्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥१९॥

पदार्थः—हे स्त्रि! जो (अग्निः) विज्ञानयुक्त तेरा पति (मह्या) बड़ी (स्वस्त्या) सुख प्राप्त कराने हारी क्रिया और (छर्दिषा) प्रकाशयुक्त (शन्तमेन) अत्यन्तसुखदायक कर्म के साथ (विश्वस्मै) सम्पूर्ण (प्राणाय) जीवन के हेतु प्राण (अपानाय) दुःखों की निवृत्ति (व्यानाय) अनेक प्रकार के उत्तम व्यवहारों की सिद्धि (उदानाय) उत्तम बल (प्रतिष्ठायै) सत्कार और (चरित्राय) धर्म का आचरण करने के लिये जिस (त्वा) तेरी (अभिपातु) सन्मुख होकर रक्षा करे सो तू (तया) उस (देवतया) दिव्यस्वरूप पति के साथ (अङ्गिरस्वत्) जैसे कार्य्य कारण का सम्बन्ध है वैसे (ध्रुवा) निश्चल हो के (सीद) प्रतिष्ठायुक्त हो ॥१९॥

भावार्थः—पुरुषों को योग्य है कि अपनी अपनी स्त्रियों के सत्कार से सुख और व्यभिचार से रहित होके प्रीतिपूर्वक आचरण और उनकी रक्षा आदि निरन्तर करें और इसी प्रकार स्त्री लोग भी रहें। अपनी स्त्री को छोड़ अन्य स्त्री की इच्छा न पुरुष और न अपने पति को छोड़ दूसरे पुरुष का संग स्त्री करे। ऐसे ही आपस में प्रीतिपूर्वक ही दोनों सदा वर्त्तें ॥१९॥

काण्डात्काण्डादित्यस्याऽग्निर्ऋषिः। पत्नी देवता। अनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर वह स्त्री कैसी हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि।
एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ॥२०॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! तू जैसे (सहस्रेण) असंख्यात (च) और (शतेन) बहुत प्रकार के साथ (काण्डात्काण्डात्) सब अवयवों और (परुषः परुषः) गांठ गांठ से (परि) सब ओर से (प्ररोहन्ती) अत्यन्त बढ़ती हुई (दूर्वे) दूर्वा घास होती है वैसे (एव) ही (नः) हम को पुत्र पौत्र और ऐश्वर्य से (प्रतनु) विस्तृत कर ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे दूर्वा ओषधि रोगों का नाश और सुखों को बढ़ाने हारी सुन्दर विस्तारयुक्त होती हुई बढ़ती है। वैसे ही विद्वान् स्त्री को चाहिये कि बहुत प्रकार से अपने कुल को बढ़ावे ॥२०॥

या शतेनेत्यस्याग्निर्ऋषिः। पत्नी देवता। निचृदनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह कैसी हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

या श॒तेन॑ प्रत॒नोषि॑ स॒हस्रे॑ण वि॒रोह॑सि ।

तस्या॑स्ते देवीष्टके वि॒धेम॑ ह॒विषा॑ व॒यम् ॥२१॥

पदार्थः—हे (इष्टके) ईंट के समान दृढ़ अवयवों से युक्त शुभ गुणों से शोभायमान (देवि) प्रकाशयुक्त स्त्री जैसे ईंट सैकड़ों संख्या में मकान आदि का विस्तार और हजारह से बहुत बढ़ा देती है वैसे (या) जो तू हम लोगों को (शतेन) सैकड़ों पुत्र पौत्रादि सम्पत्ति से (प्रतनोषि) विस्तारयुक्त करती और (सहस्रेण) हजारह प्रकार के पदार्थों से (विरोहसि) विविध प्रकार बढ़ाती है (तस्याः) उस (ते) तेरी (हविषा) देने योग्य पदार्थों से (वयम्) हम लोग (विधेम) सेवा करें ॥२१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सैकड़ों प्रकार से हजारह ईंट घर रूप बन के सब प्राणियों को सुख देती हैं वैसे जो श्रेष्ठ स्त्री लोग पुत्र पौत्र ऐश्वर्य्य और भृत्य आदि से सब को आनन्द देवें उनका पुरुष लोग निरन्तर सत्कार करें क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष और स्त्रियों के संग के विना शुभ गुणों से युक्त सन्तान कभी नहीं हो सकते और ऐसे सन्तानों के विना माता पिता को सुख कब मिल सकता है ॥२१॥

यास्त इत्यस्येन्द्राग्नी ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर वह स्त्री कैसी होवे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

यास्ते॑ऽअग्ने॒ सूर्ये॒ रुचो॒ दिव॑मात॒न्वन्ति॑ र॒श्मिभिः॑ ।

ताभि॑र्नोऽअ॒द्य सर्वा॑भी रु॒चे जना॑य नस्कृधि ॥२२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजधारिणी पढ़ाने हारी विदुषी स्त्री ! (याः) जो (ते) तेरी रुचि है (ताभिः) उन (सर्वाभिः) सब रुचियों से युक्त (नः)

हम को जैसे (रुच) दीप्तियां (सूर्य्ये) सूर्य्य में (रश्मिभिः) किरणों से (विवम्)प्रकाश को (आतन्वन्ति) अच्छे प्रकार विस्तारयुक्त करती हैं वैसे तू भी अच्छे प्रकार विस्तृत सुखयुक्त कर और (अद्य) आज (रुचे) रुचि कराने हारे (जनाय) प्रसिद्ध मनुष्य के लिये (नः) हम लोगों को प्रीतियुक्त (कृधि) कर ॥२२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ब्रह्माण्ड में सूर्य्य की दीप्ति सब वस्तुओं को प्रकाशित कर रुचियुक्त करती हैं वैसे ही विदुषी श्रेष्ठ पतिव्रता स्त्रियां घर के सब कार्य्यों का प्रकाश करती हैं। जिस कुल में स्त्री और पुरुष आपस में प्रीतियुक्त हों वहाँ सब विषयों में कल्याण ही होता है ॥२२॥

या वो देवा इत्यस्येन्द्राग्नी ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। अनुष्टुप्छन्दः।
गान्धारः स्वरः॥

अब स्त्री पुरुषों को विज्ञान की सिद्धि कैसे करनी चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

या वो॑ दे॒वाः सूर्य्ये॒ रुचो॒ गोष्वश्वे॑षु॒ या रुच॑ः।
इन्द्रा॒ग्नी ताभि॒ः सर्वा॑भी॒ रुचं॑ नो धत्त बृहस्पते ॥२३॥

पदार्थः—(देवाः) विद्वानो ! तुम सब लोग(याः) जो (वः) तुम्हारी (सूर्य्ये) सूर्य्य में (रुचः) रुचि और (याः) जो (गोषु) गौओं और (अश्वेषु) घोड़ों आदि में (रुचः) प्रीतियों के समान प्रीति है (ताभिः) उन (सर्वाभिः) सब रुचियों से (नः) हमारे बीच (रुचम्) कामना (इन्द्राग्नी) बिजुली और सूर्य्यवत् अध्यापक और उपदेशक जैसे धारण करे वैसे (धत्त) धारण करो। हे (बृहस्पते) पक्षपात छोड़ के परीक्षा कराने हारे पूर्णविद्या युक्त आप (नः) हमारी परीक्षा कीजिये ॥२३॥

भावार्थः—जब तक मनुष्य लोगों की विद्वानों के संग ईश्वर उस की रचना में रुचि और परीक्षा नहीं होती तब तक विज्ञान कभी नहीं बढ़ सकता ॥२३॥

विराड्ज्योतिरित्यस्येन्द्राग्नी ऋषी। प्रजापतिर्देवता। निचृद्बृहतीछन्दः।
ऋषभः स्वरः॥

स्त्री पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

वि॒राड् ज्योति॑रधारयत् स्व॒राड् ज्योति॑रधारयत्। प्र॒जाप॑तिष्ट्वा सादयतु पृ॒ष्ठे पृ॑थि॒व्या ज्योति॑ष्मतीम्। विश्व॑स्मै प्रा॒णाया॑पा॒नाय॑

व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ। अग्निष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥२४॥

पदार्थः—जो (विराट्) अनेक प्रकार की विद्याओं में प्रकाशमान स्त्री (ज्योतिः) विद्या की उन्नति को (अधारयत्) धारण करे करावे जो (स्वराट्) सब धर्म्मयुक्त व्यवहारों में शुद्धचारी पुरुष (ज्योतिः) बिजुली आदि के प्रकाश को (अधारयत्) धारण करे करावे वे दोनों स्त्री पुरुष, सम्पूर्ण सुखों को प्राप्त होवें। हे स्त्रि! जो (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी विज्ञानयुक्त (ते) तेरा (अधिपतिः) स्वामी है (तया) उस (देवतया) सुन्दर देवस्वरूप पति के साथ तू (अङ्गिरस्वत्) सूत्रात्मा वायु के समान (ध्रुवा) दृढ़ता से (सीद) हो। हे पुरुष! जो अग्नि के समान तेजधारिणी तेरी रक्षा को करने हारी स्त्री है उस देवी के साथ तू प्राणों के समान प्रीतिपूर्वक निश्चय करके स्थित हो। हे स्त्रि! (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक तेरा पति (पृथिव्याः) भूमि के (पृष्ठे) ऊपर (विश्वस्मै) सब (प्राणाय) सुख की चेष्टा के हेतु (अपानाय) दुःख हटाने के साधन (व्यानाय) सब सुन्दर गुण कर्म्म और स्वभावों के प्रचार के हेतु प्राणविद्या के लिये जिस (ज्योतिष्मतीम्) प्रशंसित विद्या के ज्ञान से युक्त (त्वा) तुझ को (सादयतु) उत्तम अधिकार पर स्थापित करे सो तू (विश्वम्) समग्र (ज्योतिः) विज्ञान को (यच्छ) ग्रहण कर और इस विज्ञान की प्राप्ति के लिये अपने पति को स्थिर कर ॥२४॥

भावार्थः—जो स्त्री पुरुष सत्सङ्ग और विद्या के अभ्यास से विद्युत आदि पदार्थविद्या और प्रीति को नित्य बढ़ाते हैं वे इस संसार में सुख भोगते हैं। पति स्त्री का और स्त्री पति का सदा सत्कार करे इस प्रकार आपस में प्रीतिपूर्वक मिल के ही सुख भोगें ॥२४॥

मधुश्चेत्यस्येन्द्राग्नी ऋषी। ऋतवो देवताः। पूर्वस्य भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

ये अग्नय इत्युत्तरस्य भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अब अगले मन्त्र में वसन्त ऋतु का वर्णन किया है॥

मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतूऽअग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापऽओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। येऽअग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवीऽइमे वासन्ति-

काव॒तू॒ऽअ॒भि॒ क॒ल्पमा॑ना॒ऽइन्द्र॑मिव दे॒वाऽअ॑भि॒संवि॑शन्तु तया॑ दे॒वत॑याङ्गि॒रस्व॒द् ध्रु॒वे सी॑दतम् ॥२५॥

पदार्थः—जैसे (मम) मेरे (ज्यैष्ठ्याय) ज्येष्ठ महीने में हुए व्यवहार वा मेरी श्रेष्ठता के लिये जो (अग्नेः) गरमी के निमित्त अग्नि से उत्पन्न होने वाले जिन के (अन्तःश्लेषः) भीतर बहुत प्रकार के वायु का सम्बन्ध (असि) होता है वे (मधुः) मधुरसुगन्धयुक्त चैत्र (च) और (माधवः) मधुर आदि गुण का निमित्त वैशाख (च) इन के सम्बन्धी पदार्थयुक्त (वासंतिकौ) वसन्त महीनों में हुए (ऋतू) सब को सुखप्राप्ति के साधन ऋतु सुख के लिये (कल्पेताम्) समर्थ होवे जिन चैत्र और वैशाख महीनों के आश्रय से (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि (आपः) जल भी भोग में (कल्पन्ताम्) आनन्ददायक हों (पृथक्) भिन्न भिन्न (ओषधयः) जौ आदि वा सोमलता आदि ओषधि और (अग्नयः) बिजुली आदि अग्नि भी (कल्पन्ताम्) कार्य्यसाधक हों। हे (सव्रताः) निरन्तर वर्त्तमान सत्यभाषणादि व्रतों से युक्त (समनसः) विज्ञान वाले (देवाः) विद्वान् (ये) जो लोग (वासन्तिकौ) (ऋतू) वसन्त ऋतु में हुए चैत्र वैशाख और पूर्वक से (अन्तरा) बीच में हुए (अग्नयः) अग्नि हैं उन को (अभिकल्पमानाः) सन्मुख होकर कार्य में युक्त करते हुए आप लोग (इन्द्रमिव) जैसे उत्तम ऐश्वर्य्य प्राप्त हों वैसे (अभिसंविशन्तु) सब ओर से प्रवेश करो जैसे (इमे) ये (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि (तया) उस (देवतया) परमपूज्य परमेश्वर रूप देवता के सामर्थ्य के साथ (अङ्गिरस्वत्) प्राण के समान (ध्रुवे) दृढ़ता से वर्त्तते हैं वैसे तुम दोनों स्त्री पुरुष सदा संयुक्त (सीदतम्) स्थिर रहो ॥२५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को चाहिये कि जिस वसन्त ऋतु में फल फूल उत्पन्न होता है और जिस में तीव्र प्रकाश रूखी पृथिवी जल मध्यम ओषधियां फल और फूलों से युक्त और अग्नि की ज्वाला भिन्न-भिन्न होती हैं उसको युक्तिपूर्वक सेवन कर पुरुषार्थ से सब सुखों को प्राप्त होओ जैसे विद्वान् लोग अत्यन्त प्रयत्न के साथ सब ऋतुओं में सुख के लिये सम्पत्ति को बढ़ाते हैं वैसा तुम भी प्रयत्न करो ॥२५॥

अषाढासीत्यस्य सविता ऋषिः। क्षत्रपतिर्देवता। निचृदनुष्टुप्छन्दः।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह कैसी हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अषा॑ढासि॒ सह॑माना॒ सह॒स्वारा॑ती॒ः सह॑स्व पृतनाय॒तः।
सह॒स्रवी॑र्य्यासि॒ सा मा॑ जिन्व ॥२६॥

पदार्थः--हे पत्नी ! जो तू (अषाढा) शत्रु के असहने योग्य (असि) है तू (सहमाना) पति आदि का सहन करती हुई अपने के उपदेश का (सहस्व) सहन कर जो तू (सहस्रवीर्य्या) असंख्यात प्रकार के पराक्रमों से युक्त (असि) है (सा) सो तू (पृतनायतः) अपने आप सेना से युद्ध की इच्छा करते हुए (अरातीः) शत्रुओं को (सहस्व) सहन कर और जैसे मैं तुझ को प्रसन्न रखता हूं वैसे (मा) मुझ पति को (जिन्व) तृप्त किया कर ।।२६।।

भावार्थः—जो बहुत काल तक ब्रह्मचर्य्याश्रम से सेवन की हुई अत्यन्त बलवान् जितेन्द्रिय वसन्त आदि ऋतुओं के पृथक्-पृथक् काम जानने, पति के अपराध क्षमा और शत्रुओं का निवारण करने वाली उत्तम पराक्रम से युक्त स्त्री अपने स्वामी पति को तृप्त करती है उसी को पति भी नित्य आनन्दित करता ही है ।।२६।।

मधुवाता इत्यस्य गोतम ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।।

आगे के मन्त्र में वसन्त ऋतु के अन्य गुणों का वर्णन किया है ।।

मधुवाताऽऋतायते मधुं क्षरन्ति सिन्धंवः ।

माध्वीर्नः सन्त्वोषंधीः ।।२७।।

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे वसन्त ऋतु में (नः) हम लोगों के लिये (वातः) वायु (मधु) मधुरता के साथ (ऋतायते) जल के समान चलते हैं (सिन्धवः) नदियां वा समुद्र (मधु) कोमलतापूर्वक (क्षरन्ति) वर्षते हैं और (ओषधीः) ओषधियां (माध्वीः) मधुर रस के गुणों से युक्त (सन्तु) होवें वैसा प्रयत्न हम किया करें ।।२७।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जब वसन्त ऋतु आता है तब पुष्प आदि के सुगन्धों से युक्त वायु आदि पदार्थ होते हैं उस ऋतु में घूमना डोलना पथ्य होता है ऐसा निश्चित जानना चाहिये ।।२७।।

मधुनक्तमित्यस्य गोतम ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।।

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

मधुनक्तमुतोषसो मधुंमत्पार्थिवꣳ रजः ।

मधु द्यौरस्तु नः पिता ।।२८।।

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे वसन्त ऋतु में (नक्तम्) रात्रि (मधु) कोमलता से युक्त (उत) और (उषसः) प्रातःकाल से लेकर दिन मधुर (पार्थिवम्) पृथिवी का (रजः) द्व्यणुक वा त्रसरेणु आदि (मधुमत्) मधुर गुणों से युक्त और (द्यौः) प्रकाश

भी (मधु) मधुरतायुक्त (पिता) रक्षा करने हारे के समान समय (नः) हमारे लिये (अस्तु) होवे वैसे युक्ति से उस वसन्त ऋतु का सेवन तुम भी किया करो ॥२८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जब वसन्त ऋतु आता है तब पक्षी भी कोमल मधुर मधुर शब्द बोलते और अन्य सब प्राणी आनन्दित होते हैं ॥२८॥

मधुमानित्यस्य गोतम ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब वसन्त ऋतु में मनुष्यों को कैसा आचरण करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ२ऽअस्तु सूर्य्यः।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥२९॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो! जैसे वसन्त ऋतु में (नः) हमारे लिये (वनस्पतिः) पीपल आदि वनस्पति (मधुमान्) प्रशंसित कोमल गुणों वाले और (सूर्य्यः) सूर्य्य भी (मधुमान्) प्रशंसित कोमलतायुक्त (अस्तु) होवे और (नः) हमारे लिये (गावः) गौओं के समान (माध्वीः) कोमल गुणों वाली किरणें (भवन्तु) हों वैसा ही उपदेश करो ॥२९॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! तुम लोग वसन्त ऋतु को प्राप्त होकर जिस प्रकार के पदार्थों के होम से वनस्पति आदि कोमल गुणयुक्त हों ऐसे यज्ञ का अनुष्ठान करो और इस प्रकार वसन्त ऋतु के सुख को सब जने तुम लोग प्राप्त होओ ॥२९॥

अपामित्यस्य गोतम ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। आर्षीपङ्क्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अपां गम्भन्त्सीद मा त्वा सूर्य्योऽभिताप्सीन्माग्निर्वैश्वानरः।
अच्छिन्नपत्राः प्रजाऽअनुवीक्षस्वानु त्वा दिव्या वृष्टिः सचताम् ॥३०॥

पदार्थः—हे मनुष्य! तू वसन्त ऋतु में (अपाम्) जलों के (गम्भन्) आधारकर्त्ता मेघ में (सीद) स्थिर हो जिस से (सूर्य्यः) सूर्य्य (त्वा) तुझ को (मा) न (अभिताप्सीत्) तपावे (वैश्वानरः) सब मनुष्यों में प्रकाशमान (अग्निः) अग्नि बिजुली (त्वा) तुझ को (मा) न (अभिताप्सीत्) तप्त करे (अच्छिन्नपत्राः) सुन्दर पूर्ण अवयवों वाली (प्रजा.) प्रजा (अनु त्वा) तेरे अनुकूल और (दिव्या) शुद्ध गुणों

से युक्त (वृष्टि) वर्षा (सचताम्) प्राप्त होवे वैसे (अनुवीक्षस्व) अनुकूलता से विशेष करके विचार कर ॥३०॥

भावार्थः—मनुष्य वसन्त और ग्रीष्म ऋतु के जलाशयस्थ शीतल स्थान का सेवन करें जिस से गर्मी से दुःखित न हों और जिस यज्ञ से वर्षा भी ठीक-ठीक हो और प्रजा आनन्दित हो उसका सेवन करो ॥३०॥

त्रीन्त्समुद्रानित्यस्य गोतम ऋषिः। वरुणो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब मनुष्यों को उस वसन्त में सुखप्राप्ति के लिये क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

त्रीन्त्स॑मु॒द्रान्त्सम॑सृपत् स्व॒र्गान॒पां पति॑र्वृष॒भऽइष्ट॑कानाम्।
पुरी॑षं॒ वसा॑नः सुकृ॒तस्य॑ लो॒के तत्र॑ गच्छ॒ यत्र॒ पूर्वे॒ परे॑ताः ॥३१॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष! जैसे (अपाम्) प्राणों का (पतिः) रक्षक (वृषभः) वर्षा का हेतु (पुरीषम्) पूर्ण सुखकारक जल को (वसानः) धारण करता हुआ सूर्य्य (इष्टकानाम्) कामनाओं की प्राप्ति के हेतु पदार्थों के आधाररूप (त्रीन्) ऊपर नीचे और मध्य में रहने वाले तीन प्रकार के (समुद्रान्) सब पदार्थों के स्थान भूत भविष्यत् और वर्त्तमान (स्वर्गान्) सुख प्राप्त कराने हारे लोकों को (समसृपत्) प्राप्त होता है वैसे आप भी प्राप्त हूजिये (यत्र) जिस धर्मयुक्त वसन्त के मार्ग में (सुकृतस्य) सुन्दर धर्म करने हारे पुरुष के (लोके) देखने योग्य स्थान वा मार्ग में (पूर्वे) प्राचीन लोग (परेताः) सुख को प्राप्त हुए (तत्र) उसी वसन्त के सेवनरूप मार्ग में आप भी (गच्छ) चलिये ॥३१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि धर्मात्माओं के मार्ग से चलते हुए शारीरिक, वाचिक और मानसिक तीनों प्रकार के सुखों को प्राप्त होवें और जिस में कामना पूरी हो वैसा प्रयत्न करें। जैसे वसन्त आदि ऋतु अपने क्रम से वर्त्तते हुए अपने-अपने चिह्न प्राप्त करते हैं वैसे ऋतुओं के अनुकूल व्यवहार के आनन्द को प्राप्त होवें ॥३१॥

मही द्यौरित्यस्य गोतम ऋषिः। द्यावापृथिव्यौ देवते। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

माता पिता अपने सन्तानों को कैसी शिक्षा करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

मही द्यौः पृथिवी च नऽइमं यज्ञं मिमिक्षताम् ।
पिपृतां नो भरीमभिः ॥३२॥

पदार्थः—हे माता पिता ! जैसे (मही) बड़ा (द्यौः) सूर्य्यलोक (च) और (पृथिवी) भूमि सब संसार को सींचते और पालन करते हैं वैसे तुम दोनों (नः) हमारे (इमम्) इस (यज्ञम्) सेवने योग्य विद्याग्रहणरूप व्यवहार को (मिमिक्षताम्) सेचन अर्थात् पूर्ण होने की इच्छा करो और (भरीमभिः) धारण पोषण आदि कर्मों से (नः) हमारा (पिपृताम्) पालन करो ॥३२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वसन्त ऋतु में पृथिवी और सूर्य्य सब संसार का धारण प्रकाश और पालन करते हैं वैसे माता पिता को चाहिये कि अपने सन्तानों के लिये वसन्तादि ऋतुओं में अन्न विद्यादान और अच्छी शिक्षा कर के पूर्ण विद्वान् पुरुषार्थी करें ॥३२॥

विष्णोः कर्माणीत्यस्य गोतम ऋषिः । विष्णुर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

विद्वानों के तुल्य अन्य मनुष्यों को आचरण करना चाहिये इसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥३३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य्य की इच्छा करने हारे जीव का (युज्यः) उपासना करने योग्य (सखा) मित्र के समान वर्त्तमान है (यतः) जिस के प्रताप से यह जीव (विष्णोः) व्यापक ईश्वर के (कर्माणि) जगत् की रचना पालन प्रलय करने और न्याय आदि कर्मों और (व्रतानि) सत्यभाषणादि नियमों को (पस्पशे) स्पर्श करता है इसलिये इस परमात्मा के इन कर्मों और व्रतों को तुम लोग भी (पश्यत) देखो धारण करो ॥३३॥

भावार्थः—जैसे परमेश्वर का मित्र उपासक धर्मात्मा विद्वान् पुरुष परमात्मा के गुण कर्म और स्वभावों के अनुसार सृष्टि के क्रमों के अनुकूल आचरण करे और जाने वैसे ही अन्य मनुष्य करें और जानें ॥३३॥

ध्रुवासीत्यस्य गोतम ऋषिः । जातवेदा देवताः । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विद्वान् पुरुषों के समान विदुषी स्त्रियां भी उपदेश करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ध्रुवासि धरुणेतो जज्ञे प्रथममेभ्यो योनिभ्योऽअधि जातवेदाः ।
सगायत्र्या त्रिष्टुभाऽनुष्टुभा च देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥३४॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! जैसे तू (धरुणा) शुभगुणों का धारण करने हारी (ध्रुवा) स्थिर (असि) है जैसे (एभ्यः) इन (योनिभ्यः) कारणों से (सः) वह (जातवेदाः) प्रसिद्ध पदार्थों में विद्यमान वायु (प्रथमम्) पहिले (अधिजज्ञे) अधिकता से प्रकट होता है वैसे (इतः) इस कर्म के अनुष्ठान से सर्वोपरि प्रसिद्ध हूजिये जैसे तेरा पति (गायत्र्या) गायत्री (त्रिष्टुभा) त्रिष्टुप् (च) और (अनुष्टुभा) अनुष्टुप् मन्त्र से सिद्ध हुई विद्या से (प्रजानन्) बुद्धिमान् होकर (देवेभ्यः) अच्छे गुणों वा विद्वानों से (हव्यम्) देने लेने योग्य विज्ञान (वहतु) प्राप्त होवे वैसे इस विद्या से बुद्धिमती हो के आप स्त्री लोगों से ब्रह्मचारिणी कन्या विज्ञान को प्राप्त होवें ॥३४॥

भावार्थः—मनुष्य जगत् में ईश्वर की सृष्टि के कामों के निमित्तों को जान विद्वान् होकर जैसे पुरुषों को शास्त्रों का उपदेश करते हैं वैसे ही स्त्रियों को भी चाहिये कि इन सृष्टिक्रम के निमित्तों को जान के स्त्रियों को वेदार्थसारोपदेशों को करें ॥३४॥

इषे राय इत्यस्य गोतम ऋषिः । जातवेदा देवताः । निचृद्बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

अत्र स्त्री पुरुष विवाह करके कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इषे राये रमस्व सहसे द्युम्नऽऊर्जेऽअपत्याय ।
सम्राडसि स्वराडसि सारस्वतौ त्वोत्सौ प्रावताम् ॥३५॥

पदार्थः—हे पुरुष ! जो तू (सम्राट्) विद्यादि शुभगुणों से स्वयं प्रकाशमान (असि) है । हे स्त्रि ! जो तू (स्वराट्) अपने आप विज्ञान सत्याचार से शोभायमान (असि) है सो तुम दोनों (इषे) विज्ञान (राये) धन (सहसे) बल (द्युम्ने) यश और अन्न (ऊर्जे) पराक्रम और (अपत्याय) सन्तानों की प्राप्ति के लिये (रमस्व) यत्न करो तथा (उत्सौ) कूपोदक के समान कोमलता को प्राप्त होकर (सारस्वतौ) वेदवाणी के उपदेश में कुशल होके तुम दोनों स्त्री पुरुष इन स्वशरीर और अन्नादि पदार्थों की (प्रावताम्) रक्षा आदि करो यह (त्वा) तुम को उपदेश देता हूं ॥३५॥

भावार्थः—विवाह कर के स्त्री पुरुष दोनों आपस में प्रीति के साथ विद्वान् होकर पुरुषार्थ से धनवान् श्रेष्ठ गुणों से युक्त होके एक दूसरे की रक्षा करते हुए धर्म्मानुकूलता से वर्त्त के सन्तानों को उत्पन्न कर इस संसार में नित्य क्रीड़ा करें ॥३५॥

अग्ने युक्ष्वेत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब शत्रुओं को कैसे जीतना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्ति मन्यवे ॥३६॥

पदार्थः—हे (देव) श्रेष्ठविद्या वाले (अग्ने) तेजस्वी विद्वन् ! (ये) जो (तव) आप के (साधवः) अभीष्ट साधने वाले (अश्वासः) शिक्षित घोड़े (मन्यवे) शत्रुओं के ऊपर क्रोध के लिये (अरम्) सामर्थ्य के साथ (वहन्ति) रथ आदि यानों को पहुंचाते हैं उन को (हि) निश्चय कर के (युक्ष्व) संयुक्त कीजिये ॥३६॥

भावार्थः—राजादि मनुष्यों को चाहिये कि वसन्त ऋतु में पहिले घोड़ों को शिक्षा दे और रथियों को रथों पर नियुक्त कर के शत्रुओं के जीतने के लिये यात्रा करें ॥३६॥

युक्ष्वा हीत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब राजपुरुषों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

युक्ष्वा हि देवहूतमाँ२ऽअश्वाँ२ऽअग्ने रथीरिव ।

नि होता पूर्व्यः सदः ॥३७॥

पदार्थः--हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! (पूर्व्यः) पूर्व विद्वानों से शिक्षा को प्राप्त (होता) दानशील आप (देवहूतमान्) विद्वानों से स्पर्द्धा वा शिक्षा किये (अश्वान्) घोड़ों को (रथीरिव) शत्रुओं के साथ बहुत रथादि सेना अंगयुक्त योद्धा के समान (युक्ष्व) युक्त कीजिये (हि) निश्चय कर के न्यायासन पर (निषदः) निरन्तर स्थित हूजिये ॥३७॥

भावार्थः—सेनापति आदि राजपुरुषों को चाहिये कि बड़े सेना के अङ्गयुक्त रथ वाले के समान घोड़े आदि सेना के अवयवों को कार्यों में संयुक्त करें और सभापति आदि को चाहिये कि न्यायासन पर बैठ कर धर्मयुक्त न्याय किया करें ॥३७॥

सम्यक् स्रवन्तीत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को कैसे होके वाणी धारण करनी चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेनाऽअन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।

घृतस्य धाराऽअभिचाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्येऽअग्नेः ॥३८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (अग्नेः) बिजुली के (मध्ये) बीच में वर्त्तमान (हिरण्ययः) तेजो भाग के समान तेजस्वी कीर्त्ति चाहने और विद्या की इच्छा रखने वाला मैं जो (घृतस्य) जल की (वेतसः) वेग वाली (धाराः) प्रवाहरूप (सरितः) नदियों के (न) समान (अन्तः) भीतर (हृदा) अन्तःकरण के (मनसा) विज्ञानरूप वाले चित्त से (पूयमानाः) पवित्र हुई (धेनाः) वाणी (सम्यक्) अच्छे प्रकार (स्रवन्ति) चलती हैं उन को (अभिचाकशीमि) सन्मुख होकर सब के लिये शीघ्र प्रकाशित करता हूं वैसे तुम लोग भी इन वाणियों को प्राप्त होओ ।।३८।।

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जैसे अधिक वा कम चलती शुद्ध हुई नदियां समुद्र को प्राप्त होकर स्थिर होती हैं वैसे ही विद्या शिक्षा और धर्म से पवित्र हुई निश्चल वाणी को प्राप्त होकर अन्यों को प्राप्त करावें ।।३८।।

ऋचे त्वेत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ।।

विद्वानों से अन्य मनुष्यों को भी ज्ञान लेना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

ऋचे त्वा रुचे त्वा भासे त्वा ज्योतिषे त्वा ।
अभूदिदं विश्वस्य भुवनस्य वाजिनमग्नेर्वैश्वानरस्य च ।।३९।।

पदार्थः - हे विद्वान् पुरुष ! जिस तुझ को (विश्वस्य) समस्त (भुवनस्य) संसार के सब पदार्थों (च) और (वैश्वानरस्य) सम्पूर्ण मनुष्यों में शोभायमान (अग्ने) बिजुलीरूप (वाजिनम्) ज्ञानी लोगों का अवयवरूप (इदम्) यह विज्ञान (अभूत्) प्रसिद्ध हुआ है उस (ऋचे) स्तुति के लिये (त्वा) तुझ को (रुचे) प्रीति के वास्ते (त्वा) तुझ को (भासे) विज्ञान की प्राप्ति के अर्थ (त्वा) तुझको और (ज्योतिषे) न्याय के प्रकाश के लिये भी (त्वा) तुझ को हम लोग आश्रय करते हैं ।।३९।।

भावार्थः जिस मनुष्य को जगत् के पदार्थों का यथार्थ बोध होवे उसी के सेवन से सब मनुष्य पदार्थविद्या को प्राप्त होवें ।।३९।।

अग्निर्ज्योतिषेत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ।।

फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

अग्निर्ज्योतिषा ज्योतिष्मान् रुक्मो वर्चसा वर्चस्वान् ।
सहस्रदाऽअसि सहस्राय त्वा ।।४०।।

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष ! जो आप (ज्योतिषा) विद्या के प्रकाश से (अग्निः) अग्नि के तुल्य (ज्योतिष्मान्) प्रशंसित प्रकाशयुक्त (वर्चसा) अपने तेज से (वर्चस्वान्) ज्ञान देने वाले और (रुक्मः) जैसे सुवर्ण सुख देवे वैसे असंख्य सुख के देने वाले (असि) हैं उन (त्वा) आप का (सहस्राय) अतुल विज्ञान की प्राप्ति के लिये हम लोग सत्कार करें ॥४०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जो अग्नि और सूर्य्य के समान विद्या से प्रकाशमान विद्वान् पुरुष हों उन से विद्या पढ़ के पूर्ण विद्या के ग्राहक होवें ॥४०॥

आदित्यं गर्भमित्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर वे विद्वान् स्त्री पुरुष क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

आदित्यं गर्भं पयसा समङ्ग्धि सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम्।
परिवृङ्ग्धि हरसा माभि मंस्थाः शतायुषं कृणुहि चीयमानः ॥४१॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष ! आप जैसे विजुली (पयसा) जल से (सहस्रस्य) असंख्य पदार्थों की (प्रतिमाम्) परिमाण करने हारे सूर्य के समान निश्चय करने हारी बुद्धि और (विश्वरूपम्) सब रूप विषय को दिखाने हारे (गर्भम्) स्तुति के योग्य (आदित्यम्) सूर्य्य को धारण करती है वैसे अन्तःकरण को (समङ्ग्धि) अच्छे प्रकार शोधिये (हरसा) प्रज्वलित तेज से रोगों को (परि) सब ओर से (वृङ्ग्धि) हटाइये और (चीयमानः) वृद्धि को प्राप्त हो के (शतायुषम्) सौ वर्ष की अवस्था वाले सन्तान को (कृणुहि) कीजिये और कभी (मा) मत (अभिमंस्थाः) अभिमान कीजिये ॥४१॥

भावार्थः—हे स्त्री पुरुषो ! तुम लोग सुगन्धित पदार्थों के होम से सूर्य्य के प्रकाश जल और वायु को शुद्ध कर और रोग रहित होकर सौ वर्ष जीने वाले संतानों को उत्पन्न करो, जैसे विद्युत् अग्नि से बनाये हुए सूर्य्य से रूप वाले पदार्थों का दर्शन और परिमाण होता है वैसे विद्या वाले सन्तान सुख दिखाने हारे होते हैं इस से कभी अभिमानी होके विषयासक्ति से विद्या और आयु का विनाश मत किया करो ॥४१॥

वातस्य जूतिमित्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर विद्वान् पुरुष को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

वातस्य जूतिं वरुणस्य नाभिमश्वं जज्ञानᳬं सरिरस्य मध्ये ।
शिशुं नदीनाᳬं हरिमद्रिबुध्नमग्ने मा हिᳬंसीः परमे व्योमन् ॥४२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) तेजस्विन् विद्वान् ! आप (परमे व्योमन्) सर्वव्याप्त उत्तम आकाश में (वातस्य) वायु के (मध्ये) मध्य में (जूतिम्) वेगरूप (अश्वम्) अश्व को (सरिरस्य) जलमय (वरुणस्य) उत्तम समुद्र के (नाभिम्) बन्धन को और (नदीनाम्) नदियों के प्रभाव से (जज्ञानम्) प्रकट हुए (शिशुम्) बालक के तुल्य वर्त्तमान (हरिम्) नील वर्णयुक्त (अद्रिबुध्नम्) सूक्ष्म मेघ को (मा) मत (हिंसीः) नष्ट कीजिये ॥४२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि प्रमाद को छोड़ के आकाश में वर्त्तमान वायु के वेग और वर्षा के प्रबन्धरूप मेघ का विनाश न करके अपनी अपनी अवस्था को बढ़ावें ॥४२॥

अजस्रमित्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह विद्वान् क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अजस्रमिन्दुमरुषं भुरण्युमग्निमीडे पूर्वचित्तिं नमोभिः ।
स पर्वभिर्ऋतुशः कल्पमानो गां मा हिᳬंसीरदितिं विराजम् ॥४३॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष ! जैसे मैं (पर्वभिः) पूर्ण साधन युक्त (नमोभिः) अन्नों के साथ वर्त्तमान (इन्दुम्) जलरूप (अरुषम्) घोड़े के सदृश (भुरण्युम्) पोषण करने वाली (पूर्वचितिम्) प्रथम निर्मित (अग्निम्) बिजुली को (अजस्रम्) निरन्तर (ईडे) अधिकता से खोजता हूं उस को (ऋतुशः) प्रति ऋतु में (कल्पमानः) समर्थ होके करता हुआ (अदितिम्) अखण्डित (विराजम्) विविध प्रकार के पदार्थों से शोभायमान (गाम्) पृथिवी को नष्ट नहीं करता हूं वैसे ही (सः) सो आप इस अग्नि और इस पृथिवी को (मा) मत (हिंसीः) नष्ट कीजिये ॥४३॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि ऋतुओं के अनुकूल क्रिया से अग्नि जल और अन्न का सेवन करके राज्य और पृथिवी की सदैव रक्षा करें जिस से सब सुख प्राप्त होवें ॥४३॥

वरूत्रीमित्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उस विद्वान् को क्या नहीं करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

वरूत्रीं त्वष्टुर्वरुणस्य नाभिमविं जज्ञानाᳬंरजसः परस्मात् ।
महीᳬंसाहस्रीमसुरस्य मायामग्ने मा हिᳬंसीः परमे व्योमन् ॥४४॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! आप (त्वष्टुः) छेदनकर्त्ता सूर्य्य के (वरूत्रीम्) ग्रहण करने योग्य (वरुणस्य) जल की (नाभिम्) रोकने हारी (परस्मात्) श्रेष्ठ (रजसः) लोक से (जज्ञानाम्) उत्पन्न हुई (असुरस्य) मेघ की (मायाम्) जताने वाली बिजुली को और (साहस्रीम्) असंख्य भूगोलयुक्त बहुत फल देने हारी (अविम्) रक्षा आदि का निमित्त (परमे) सब से उत्तम (व्योमन्) आकाश के समान व्याप्त जगदीश्वर में वर्त्तमान (महीम्) विस्तारयुक्त पृथिवी को (मा) मत (हिंसीः) नष्ट कीजिये ॥४४॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि जो यह पृथिवी उत्तम कारण से उत्पन्न हुई सूर्य्य जिसका आकर्षणकर्त्ता जल का आधार मेघ का निमित्त असंख्य सुख देनेहारी परमेश्वर ने रची है उसको गुण कर्म और स्वभाव से जान के सुख के लिये उपयुक्त करें ॥४४॥

यो अग्निरित्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर इस विद्वान् को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

योऽअग्निरग्नेरध्यजायत शोकात्पृथिव्याऽउत वा दिवस्परि ।
येन प्रजा विश्वकर्मा जजान तमग्ने हेडः परि ते वृणक्तु ॥४५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् जन ! (यः) जो (पृथिव्याः) पृथिवी के (शोकात्) सुखाने हारे अग्नि (उत वा) अथवा (दिवः) सूर्य्य से (अग्नेः) बिजुलीरूप अग्नि से (अग्निः) प्रत्यक्ष अग्नि (अध्यजायत) उत्पन्न होता है (येन) जिस से (विश्वकर्म्मा) सब कर्मों का आधार ईश्वर (प्रजाः) प्रजाओं को (परि) सब ओर से (जजान) रचता है (तम्) उस अग्नि को (ते) तेरा (हेडः) क्रोध (परिवृणक्तु) सब प्रकार से छेदन करे ॥४५॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! तुम लोग जो अग्नि पृथिवी को फोड़ के और जो सूर्य्य के प्रकाश से बिजुली निकलती है उस विघ्नकारी अग्नि से सब प्राणियों को रक्षित रक्खो और जिस अग्नि से ईश्वर सब की रक्षा करता है उस अग्नि की विद्या जानो ॥४५॥

चित्रं देवानामित्यस्य विरूप ऋषिः । सूर्यो देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ईश्वर कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

चित्रं देवानामुदंगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आ प्रा द्यावा पृथिवीऽअन्तरिक्षꣳ सूर्य्यऽआत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥४६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग जो जगदीश्वर (देवानाम्) पृथिवी आदि दिव्य पदार्थों के बीच (चित्रम्) आश्चर्य्यरूप (अनीकम्) सेना के समान किरणों से युक्त (मित्रस्य) प्राण (वरुणस्य) उदान और (अग्नेः) प्रसिद्ध अग्नि के (चक्षुः) दिखाने वाले (सूर्य्यः) सूर्य्य के समान (उदगात्) उदय को प्राप्त हो रहा है उस के समान (जगतः) चेतन (च) और (तस्थुषः) जड़ जगत् का (आत्मा) अन्तर्य्यामी हो के (द्यावापृथिवी) प्रकाश अप्रकाशरूप जगत् और (अन्तरिक्षम्) आकाश को (आ) अच्छे प्रकार (अप्राः) व्याप्त हो रहा है उसी जगत् के रचने पालन करने और संहार प्रलय करने हारे व्यापक ब्रह्म की निरन्तर उपासना किया करो ॥४६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यह जगत् ऐसा नहीं कि जिस का कर्त्ता अधिष्ठाता वा ईश्वर कोई न होवे, जो ईश्वर सब का अन्तर्य्यामी सब जीवों के पाप पुण्यों के फलों की व्यवस्था करने हारा और अनन्त ज्ञान का प्रकाश करने हारा है उसी की उपासना से धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष के फलों को सब मनुष्य प्राप्त होवें ॥४६॥

इमं मेत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। विराड् ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इमं मा हिꣳसीर्द्विपादं पशुꣳ सहस्राक्षो मेधाय चीयमानः। मयुं पशुं मेधमग्ने जुषस्व तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद। मयुं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥४७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान मनुष्य के जन्म को प्राप्त हुए (मेधाय) सुख की प्राप्ति के लिये (चीयमानः) बढ़े हुए (सहस्राक्षः) हजारह प्रकार की दृष्टि वाले राजन् ! तू (इमम्) इस (द्विपादम्) दो पग वाले मनुष्यादि और (मेधम्) पवित्रकारक फलप्रद (मयुम्) जंगली (पशुम्) गवादि पशु जीव को (मा) मत (हिंसीः) मारा कर उस (पशुम्) पशु की (जुषस्व) सेवा कर (तेन) उस पशु से (चिन्वानः) बढ़ता हुआ तू (तन्वः) शरीर में (निषीद) निरन्तर स्थिर हो यह (ते) तेरे से (शुक्) शोक (मयुम्) शस्यादिनाशक जंगली पशु को (ऋच्छतु) प्राप्त होवे

(ते) तेरे (यम्) जिस शत्रु से हम लोग (द्विष्मः) द्वेष करें (तम्) उस को (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे ॥४७॥

भावार्थः—कोई भी मनुष्य सब के उपकार करने हारे पशुओं को कभी न मारे किन्तु इन की अच्छे प्रकार रक्षा कर और इन से उपकार ले के सब मनुष्यों को आनन्द देवे। जिन जंगली पशुओं से ग्राम के पशु खेती और मनुष्यों की हानि हो उन को राजपुरुष मारें और बन्धन करें ॥४७॥

इमं मेत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर यह मनुष्य क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इमं मा हिꣳसीरेकशफं पशुं कनिक्रदं वाजिनं वाजिनेषु। गौरमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद। गौरं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥४८॥

पदार्थः—हे राजन्! तू (वाजिनेषु) संग्राम के कामों में (इमम्) इस (एकशफम्) एक खुरयुक्त (कनिक्रदम्) शीघ्र विकल व्यथा को प्राप्त हुए (वाजिनम्) वेगवाले (पशुम्) देखने योग्य घोड़े आदि पशु को (मा) (हिंसीः) मत मार। मैं ईश्वर (ते) तेरे लिये (यम्) जिस (आरण्यम्) जङ्गली (गौरम्) गौर पशु की (दिशामि) शिक्षा करता हूँ (तेन) उस के रक्षण से (चिन्वानः) वृद्धि को प्राप्त हुआ (तन्वः) शरीर में (निषीद) निरन्तर स्थिर हो (ते) तेरे से (गौरम्) श्वेत वर्ण वाले पशु के प्रति (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे और (यम्) जिस शत्रु को हम लोग (द्विष्मः) द्वेष करें (तम्) उस को (ते) तुझ से (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे ॥४८॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि एक खुर वाले घोड़े आदि पशुओं और उपकारक वन के पशुओं को भी कभी न मारें जिन के मारने से जगत् की हानि और न मारने से सब का उपकार होता है उन का सदैव पालन पोषण करें और जो हानिकारक पशु हों उन को मारें ॥४८॥

इमꣳ साहस्रमित्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कौन पशु न मारने और कौन मारने चाहियें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इमथ्ँ साहस्रथ्ँ शतधारमुत्सं व्यच्यमानथ्ँ सरिरस्य मध्ये। घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन्। गवयमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद। गवयं ते शुगृच्छतु। यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥४९॥

पदार्थः—हे (अग्ने) दया को प्राप्त हुए परोपकारक राजन्! तू (जनाय) मनुष्यादि प्राणी के लिये (इमम्) इस (साहस्रम्) असंख्य सुखों का साधन (शतधारम्) असंख्य दूध की धाराओं के निमित्त (व्यच्यमानम्) अनेक प्रकार से पालन के योग्य (उत्सम्) कुए के समान रक्षा करने हारे वीर्य्यसेचक बैल और (घृतम्) घी को (दुहानाम्) पूर्ण करती हुई (अदितिम्) नहीं मारने योग्य गौ को (मा हिंसीः) मत मार और (ते) तेरे राज्य में जिस (आरण्यम्) वन में रहने वाले (गवयम्) गौ के समान नीलगाय से खेती की हानि होती हो तो उस को (अनुदिशामि) उपदेश करता हूं (तेन) उस के मारने से सुरक्षित अन्न से (परमे) उत्कृष्ट (व्योमन्) सर्वत्र व्यापक परमात्मा और (सरिरस्य) विस्तृत व्यापक आकाश के (मध्ये) मध्य में (चिन्वानः) वृद्धि को प्राप्त हुआ तू (तन्वः) शरीर मध्य में (निषीद) निवास कर (ते) तेरा (शुक्) शोक (तम्) उस (गवयम्) रोझ को (ऋच्छतु) प्राप्त होवे और (यम्) जिस (ते) तेरे शत्रु का (द्विष्मः) हम लोग द्वेष करें उस को भी (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे ॥४९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राजपुरुषो! तुम लोगों को चाहिये कि जिन बैल आदि पशुओं के प्रभाव से खेती आदि काम, जिन गौ आदि से दूध घी आदि उत्तम पदार्थ होते हैं कि जिन के दूध आदि से प्रजा की रक्षा होती है उन को कभी मत मारो और जो जन इन उपकारक पशुओं को मारें उन को राजादि न्यायाधीश अत्यन्त दण्ड देवें और जो जङ्गल में रहने वाले नीलगाय आदि प्रजा की हानि करें वे मारने योग्य हैं ॥४९॥

इममूर्णायुमित्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर किन पशुओं को न मारना और किन को मारना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

इममूर्णायुं वरुणस्य नाभिं त्वचं पशूनां द्विपदां चतुष्पदाम्। त्वष्टुः प्रजानां प्रथमं जनित्रमग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन्। उष्ट्र-

मारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद । उष्ट्रं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥५०॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्या को प्राप्त हुए राजन् ! तू (वरुणस्य) प्राप्त होने योग्य श्रेष्ठ सुख के (नाभिम्) संयोग करने हारे (इमम्) इस (द्विपदाम्) दो पगवाले मनुष्य पक्षी आदि (चतुष्पदाम्) चार पगवाले (पशूनाम्) गाय आदि पशुओं की (त्वचम्) चमड़े से ढांकने वाले और (त्वष्टुः) सुखप्रकाशक ईश्वर की (प्रजानाम्) प्रजाओं के (प्रथमम्) आदि (जनित्रम्) उत्पत्ति के निमित्त (परमे) उत्तम (व्योमन्) आकाश में वर्त्तमान (ऊर्णायुम्) भेड़ आदि को (मा हिंसीः) मत मार (ते) तेरे लिये मैं ईश्वर (यम्) जिस (आरण्यम्) वनैले (उष्ट्रम्) हिंसक ऊंट को (अनुदिशामि) बतलाता हूं (तेन) उस से सुरक्षित अन्नादि से (चिन्वानः) बढ़ता हुआ (तन्वः) शरीर में (निषीद) निवास कर (ते) तेरा (शुक्) शोक उस जंगली ऊंट को (ऋच्छतु) प्राप्त हो और जिस द्वेषीजन से हम लोग (द्विष्मः) अप्रीति करें (तम्) उस को (ते) तेरा (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे ॥५०॥

भावार्थः—हे राजन् ! जिन भेड़ आदि के रोम और त्वचा मनुष्यों के सुख के लिये होती हैं और जो ऊंट भार उठाते हुए मनुष्यों को सुख देते हैं उन को जो दुष्टजन मारा चाहें उन को संसार के दुःखदायी समझो और उनको अच्छे प्रकार दण्ड देना चाहिये ॥५०॥

अज इत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक्कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कौन से पशु न मारने और कौन से मारने चाहियें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात्सोऽअपश्यज्जनितारमग्रे । तेन देवा देवतामग्रमायँस्तेन रोहमायन्नुपमेध्यासः । शरभमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद । शरभं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥५१॥

पदार्थः—हे राजन् ! तू जो (हि) निश्चित (अजः) बकरा (अजनिष्ट) उत्पन्न होता है (सः) वह (अग्रे) प्रथम (जनितारम्) उत्पादक को (अपश्यत्) देखता है जिस से (मेध्यासः) पवित्र हुए (देवाः) विद्वान् (अग्रम्) उत्तम सुख और (देवताम्) दिव्यगुणों के (उपायन्) उपाय को प्राप्त होते हैं और जिस से (रोहम्) वृद्धियुक्त प्रसिद्धि को (आयन्) प्राप्त होवें (तेन) उस से उत्तम गुणों उत्तम सुख

तथा (तेन) उस से वृद्धि को प्राप्त हो जो (आरण्यम्) वनैली (शरभम्) शेही (ते) तेरी प्रजा को हानि देने वाली है उस को (अनुदिशामि) बतलाता हूं (तेन) उस से बचाए हुए पदार्थ से (चिन्वानः) बढ़ता हुआ (तन्वः) शरीर में (निषीद) निवास कर और (तम्) उस (शरभम्) शल्यकी को (ते) तेरा (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त हो और (ते) तेरे (यम्) जिस शत्रु से हम लोग (द्विष्मः) द्वेष करें उस को (शोकात्) शोकरूप (अग्नेः) अग्नि से (शुक्) शोक अर्थात् शोक से बढ़कर शोक अत्यन्तशोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे ॥५१॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि बकरे और मोर आदि श्रेष्ठ पशु पक्षियों को न मारें और इनकी रक्षा कर के उपकार के लिये संयुक्त करें और जो अच्छे पशुओं और पक्षियों के मारने वाले हों उन को शीघ्र ताड़ना देवें। हां जो खेती को उजाड़ने हारे श्याही आदि पशु हैं उन को प्रजा की रक्षा के लिये मारें ॥५१॥

त्वं यविष्ठेत्यस्योशना ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर कैसे पशुओं की रक्षा करना और हनना चाहिये यह विषय
अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुधी गिरः ।
रक्षा तोकमुत त्मना ॥५२॥

पदार्थः हे (यविष्ठ) अत्यन्त युवा ! (त्वम्) तू रक्षा किये हुए इन पशुओं से (दाशुषः) सुखदाता (नॄन्) धर्मरक्षक मनुष्यों की (पाहि) रक्षा कर इन (गिरः) सत्य वाणियों को (शृणुधि) सुन और (त्मना) अपने आत्मा से मनुष्य (उत) और पशुओं के (तोकम्) बच्चों की (रक्ष) रक्षा कर ॥५२॥

भावार्थः—जो मनुष्य मनुष्यादि प्राणियों के रक्षक पशुओं को बढ़ाते हैं और कृपामय उपदेशों को सुनते सुनाते हैं वे आन्तर्य सुख को प्राप्त होते हैं ॥५२॥

अपां त्वेमन्नित्यस्योशना ऋषिः । आपो देवताः । पूर्वस्य ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । सरिरेत्वेति मध्यस्य ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः । गायत्रेणेत्युत्तरस्य निचृद्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पढ़ने वालों को पढ़ाने वाले क्या उपदेश करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अपां त्वेमन्त्सादयाम्यपां त्वोद्मन्त्सादयाम्यपां त्वा भस्मन्त्साद-याम्यपां त्वा ज्योतिषि सादयाम्यपां त्वायने सादयाम्यर्णवे त्वा

सदने सादयामि समुद्रे त्वा सदने सादयामि । सरिरे त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा क्षयें सादयाम्यपां त्वा सधिपि सादयाम्यपां त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा सधस्थें सदयाम्यपां त्वा योनौं सादयाम्यपां त्वा पुरीषे सादयाम्यपां त्वा पाथसि सादयामि गायत्रेण त्वा छन्दसा सादयामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि जागतेन त्वा छन्दसा सादयाम्यानुष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि पाङ्क्तेन त्वा छन्दसा सादयामि ।।५३।।

पदार्थः—हे मनुष्य ! जैसे शिक्षा करने वाला मैं (अपाम्) प्राणों की रक्षा के निमित्त (एमन्) गमनशील वायु में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थापित करता हूं (अपाम्) जलों की (ओमन्) आर्द्रतायुक्त ओषधियों में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थापन करता हूं (अपाम्) प्राप्त हुए काष्ठों की (भस्मन्) राख में (त्वा) तुझ को (सादयामि) संयुक्त करता हूं (अपाम्)व्याप्त हुए बिजुली आदि अग्नि के (ज्योतिषि) प्रकाश में (त्वा) तुझ को (सादयामि) नियुक्त करता हूं (अपाम्) अवकाश वाले (अयने) स्थान में (त्वा) तुझ को (सादयामि) बैठाता हूं (सदने) स्थिति के योग्य (अर्णवे) प्राणविद्या में (त्वा) तुझ को (सादयामि) संयुक्त करता हूं (सदने) गमनशील (समुद्रे) मन के विषय में (त्वा) तुझ को (सादयामि) सम्बद्ध करता हूं (सदने) प्राप्त होने योग्य (सरिरे) वाणी के विषय में (त्वा) तुझ को (सादयामि) संयुक्त करता हूं (अपाम्) प्राप्त होने योग्य पदार्थों के सम्बन्धी (क्षये) घर में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थापित करता हूं (अपाम्) अनेक प्रकार के व्याप्त शब्दों के सम्बन्धी (सधिषि) उस पदार्थ में कि जिससे अनेक शब्दों को समान यह जीव सुनता है अर्थात् कान के विषय में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थित करत हूं (अपाम्) जलों के (सदने) अन्तरिक्षरूप स्थान में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थापित करना हूं (अपाम्) जलों के (सधस्थे) तुल्यस्थान में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थापित करता हूं (अपाम्) जलों के (योनौ) समुद्र में (त्वा) तुझ को (सादयामि) नियुक्त करता हूं (अपाम्)जलों की(पुरीषे)रेती में (त्वा)तुझ को (सादयामि)नियुक्त करता हूं(अपाम्) जलों के (पाथसि) अन्न में (त्वा) तुझ को (सादयामि) प्रेरणा करता हूं (गायत्रेण) गायत्री छन्द से निकले(छन्दसा)स्वतन्त्र अर्थ के साथ(त्वा) तुझको(सादयामि)नियुक्त करता हूं (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप् मन्त्र से विहित (छन्दसा) शुद्ध अर्थ के साथ (त्वा) तुझ को (सादयामि) नियुक्त करता हूं (जागतेन) जगती छन्द में कहे (छन्दसा) आनन्द-

दायक अर्थ के साथ (त्वा) तुझ को (सादयामि) नियुक्त करता हूं (आनुष्टुभेन) अनुष्टुप् मन्त्र में कहे (छन्दसा) शुद्ध अर्थ के साथ (त्वा) तुझ को (सादयामि) प्रेरणा करता हूं और (पाङ्क्तेन) पंक्ति मन्त्र से प्रकाशित हुए (छन्दसा) निर्मल अर्थ के साथ (त्वा) तुझ को (सादयामि) प्रेरित करता हूं वैसे ही तू वर्त्तमान रह ॥५३॥

भावार्थः—विद्वानों को चाहिये कि सब पुरुषों को और सब स्त्रियों को वेद पढ़ा और जगत् के वायु आदि पदार्थों की विद्या में निपुण करके उन को उन पदार्थों से प्रयोजन साधने में प्रवृत्त करें ॥५३॥

अयं पुर इत्यस्योशना ऋषिः। प्राणा देवताः। स्वराड् ब्राह्मी जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

अथ मनुष्यों को सृष्टि से कौन कौन उपकार लेने चाहियें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अयं पुरो भुवस्तस्य प्राणो भौवायनो वसन्तः प्राणायनो गायत्री वासन्ती गायत्र्यै गायत्रं गायत्रादुपांशुरुपांशोस्त्रिवृत् त्रिवृतो रथन्तरं वसिष्ठऽऋषिः। प्रजापतिगृहीतया त्वया प्राणं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥५४॥

पदार्थः—हे स्त्रि! जैसे (अयम्) यह (पुरो भुवः) प्रथम होने वाला अग्नि है (तस्य) उसका (भौवायनः) सिद्ध कारण से रचा हुआ (प्राणः) जीवन का हेतु प्राण (प्राणायनः) प्राणों की रचना का हेतु (वसन्तः) सुगन्धि आदि में वसाने हारा वसन्त ऋतु (वासन्ती) वसन्त ऋतु का जिस में व्याख्यान हो वह (गायत्री) गाते हुए का रक्षक गायत्रीमंत्रार्थ ईश्वर (गायत्र्यै) गायत्री मन्त्र का (गायत्रम्) गायत्री छन्द (गायत्रात्) गायत्री से (उपांशुः) समीप से ग्रहण किया जाय (उपांशोः) उस जप से (त्रिवृत्) कर्म उपासना और ज्ञान के सहित वर्त्तमान फल (त्रिवृतः) उस तीन प्रकार के फल से (रथन्तरम्) रमणीय पदार्थों से तारने हारा सुख और (वसिष्ठः) अतिशय करके निवास का हेतु (ऋषिः) सुख प्राप्त कराने हारा विद्वान् (प्रजापतिगृहीतया) अपने सन्तानों के रक्षक पति को ग्रहण करने वाली (त्वया) तेरे साथ (प्रजाभ्यः) सन्तानोत्पत्ति के लिये (प्राणम्) बलयुक्त जीवन का ग्रहण करते हैं वैसे तेरे साथ मैं सन्तान होने के लिये बल का (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं ॥५४॥

भावार्थः हे स्त्री पुरुषो ! तुम को योग्य है कि अग्नि आदि पदार्थों

को उपयोग में ला के परस्पर प्रीति के साथ अति विषयसेवा को छोड़ और सब संसार से वल का ग्रहण करके सन्तानों को उत्पन्न करो ।।५४।।

दक्षिणेत्यस्योशना ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृद्भुरिगतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ।।

अब मनुष्यों को ग्रीष्म ऋतु में कैसे वर्त्तना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य मनो वैश्वकर्मणं ग्रीष्मो मानसस्त्रिष्टुब् ग्रैष्मी त्रिष्टुभः स्वारम् । स्वारादन्तर्य्यामोऽन्तर्यामात्पञ्चदशः पञ्चदशाद् बृहद् भरद्वाजऽऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः ।।५५।।

पदार्थः—हे स्त्रि ! जैसे (दक्षिणा) दक्षिण दिशा से (अयम्) यह (विश्वकर्मा) सब कर्मों का निमित्त वायु के समान विद्वान् चलता है (तस्य) उस वायु के योग से (वैश्वकर्मणम्) जिस से सब कर्म सिद्ध होते हैं वह (मनः) विचारस्वरूप प्रेरक मन (मानसः) मन की गर्मी से उत्पन्न के तुल्य (ग्रीष्मः) रसों का नाशक ग्रीष्म ऋतु (ग्रैष्मी) ग्रीष्म ऋतु के व्याख्यान वाला (त्रिष्टुप्) त्रिष्टुप् छन्द (त्रिष्टुभः) त्रिष्टुप् छन्द के (स्वारम्) ताप से हुआ तेज (स्वारात्) और तेज से (अन्तर्यामः) मध्याह्न के प्रहर में विशेष दिन और (अन्तर्यामात्) मध्याह्न के विशेष दिन से (पञ्चदशः) पन्द्रह तिथियों की पूरक स्तुति के योग्य पूर्णमासी (पंचदशात्) उस पूर्णमासी से (बृहत्) बड़ा (भरद्वाजः) अन्न वा विज्ञान की पुष्टि और धारण का निमित्त (ऋषिः) शब्दज्ञान प्राप्त कराने हारा कान (प्रजापतिगृहीतया) प्रजापालक पति राजा ने ग्रहण की विद्या से न्याय का ग्रहण करता है वैसे मैं (त्वया) तेरे साथ (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (मनः) विचारस्वरूप विज्ञानयुक्त चित्त का ग्रहण विज्ञान का (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं ।।५५।।

भावार्थः—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि प्राण का मन और मन का प्राण नियम करने वाला है ऐसा जान के प्राणायाम से आत्मा को शुद्ध करते हुए पुरुषों से सम्पूर्ण सृष्टि के पदार्थों का विज्ञान स्वीकार करें ।।५५।।

अयं पश्चादित्यस्योशना ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृद् धृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ।।

अब स्त्री पुरुष आपस में कैसा आचरण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

अयं पश्चाद् विश्वव्यचास्तस्य चक्षुर्वैश्वव्यचसं वर्षाश्चाक्षुष्यो जगती वार्षी जगत्याऽऋक्समम्। ऋक्समाच्छुक्रः शुक्रात्सप्तदशः सप्तदशाद्वैरूपं जमदग्निर्ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया चक्षुर्गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥५६॥

पदार्थः—हे उत्तम मुखवाली स्त्री ! जैसे (अयम्) यह सूर्य्य के समान विद्वान् (विश्वव्यचाः) सब संसार को चारों ओर के प्रकाश से व्यापक होकर प्रकट करता (पश्चात्) पश्चिम दिशा में वर्त्तमान (तस्य) उस सूर्य्य का (वैश्वव्यचसम्) प्रकाशक किरणरूप (चक्षुः) नेत्र (चाक्षुष्यः) नेत्र से देखने योग्य (वर्षाः) जिस समय मेघ वर्षते हैं वह वर्षाऋतु (वार्षी) वर्षा ऋतु के व्याख्यान वाला (जगती) संसार में प्रसिद्ध जगती छन्द (जगत्याः) जगती छन्द से (ऋक्समम्) ऋचाओं के सेवन का हेतु विज्ञान (ऋक्समात्) उस विज्ञान से (शुक्रः) पराक्रम (शुक्रात्) पराक्रम से (सप्तदशः) सत्रह तत्वों का पूरक विज्ञान (सप्तदशात्) उस विज्ञान से (वैरूपम्) अनेक रूपों का हेतु जगत् का ज्ञान और जैसे (जमदग्निः) प्रकाशस्वरूप (ऋषिः) रूप का प्राप्त कराने हारा नेत्र (प्रजापतिगृहीतया) सन्तानरक्षक पति ने ग्रहण की हुई विद्यायुक्त स्त्री के साथ (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (चक्षुः) विद्यारूपी नेत्रों का ग्रहण करता है वैसे मैं तेरे साथ संसार से बल का (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं ॥५६॥

भावार्थः—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि सामवेद के पढ़ने से सूर्य आदि प्रसिद्ध जगत् को स्वभाव से जान के सब सृष्टि के गुणों के दृष्टान्त से अच्छा देखें और चरित्र ग्रहण करें ॥५६॥

इदमुत्तरादित्यस्योशना ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। स्वराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः।
धैवतः स्वरः ॥

अब शरद् ऋतु में कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इदमुत्तरात् स्वस्तस्य श्रोत्रꣳ सौवꣳ शरच्छ्रौत्र्यनुष्टुप् शारद्यनुष्टुभऽऐडमैडान् मन्थी मन्थिनऽएकविꣳशऽएकविꣳशाद् वैराजं विश्वामित्रऽऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया श्रोत्रं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥५७॥

पदार्थः—हे सौभाग्यवती ! जैसे (इदम्) यह (उत्तरात्) सब से उत्तर भाग में (स्वः) सुखों का साधन दिशारूप है (तस्य) उस के (सौवम्) सुख का साधन (श्रोत्रम्) कान (श्रौत्री) कान की सम्बन्धी (शरत्) शरदृतु (शारदी) शरद् ऋतु के

व्याख्यान वाला (अनुष्टुप्) प्रवद्ध अर्थ वाला अनुष्टुप् छन्द (अनुष्टुभः) उस से(ऐडम्) वाणी के व्याख्यान से युक्त मन्त्र (ऐडात्) उस मन्त्र से (मन्थी) पदार्थों के मथने का साधन (मन्थिनः) उस साधन से (एकविंशः) इक्कीस विद्याओं का पूर्ण करने हारा सिद्धान्त (एकविंशात्) उस सिद्धान्त से (वैराजम्) विविध पदार्थों के प्रकाशक(साम) सामवेद के ज्ञान को प्राप्त हुआ (विश्वामित्रः) सब से मित्रता का हेतु (ऋषिः) शब्द ज्ञान कराने हारा कान और (प्रजाभ्यः) उत्पन्न हुई बिजुली आदि के लिये (श्रोत्रम्) सुनने के साधन को ग्रहण करते हैं वैसे (प्रजापतिगृहीतया) प्रजापालक पति ने ग्रहण की (त्वया) तेरे साथ में प्रसिद्ध हुई विजुली आदि से (श्रोत्रम्) सुनने के साधन कान को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं ॥५७॥

भावार्थः—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि ब्रह्मचर्य्य के साथ विद्या पढ़ और विवाह करके बहुश्रुत होवें और सत्यवक्ता आप्त जनों से सुने विना पढ़ी हुई भी विद्या फलदायक नहीं होती इसलिये सदैव सज्जनों का उपदेश सुन के सत्य का धारण और मिथ्या को छोड़ देवें ॥५७॥

इयमुपरीत्यस्योशना ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । विराडाकृतिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

अब हेमन्त ऋतु में किस प्रकार वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इयमुपरि मतिस्तस्यै वाङ्मात्या हेमन्तो वाच्यः पङ्क्तिर्हैमन्ती पङ्क्त्यै निधनवन्निधनवतऽआग्रयणः । आग्रयणात् त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशाभ्याꣳ शाक्वररैवते विश्वकर्मऽऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया वाचं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥५८॥

पदार्थः—हे विद्वान् स्त्री ! जो (इयम्) यह (उपरि) सब से ऊपर विराजमान (मतिः) बुद्धि है (तस्यै) उस (मात्या) बुद्धि का होना वा कर्म (वाक्) वाणी और (वाच्यः) उस का होना वा कर्म (हेमन्तः) गर्मी का नाशक हेमन्त ऋतु (हैमन्ती) हेमन्त ऋतु के व्याख्यान वाला (पङ्क्तिः) पंक्ति छन्द (पंङ्क्त्यै) उस पंक्ति छन्द का (निधनवत्) मृत्यु का प्रशंसित व्याख्यान वाला सामवेद का भाग (निधनवतः) उससे (आग्रयणः) प्राप्ति का साधन ज्ञान का फल (आग्रयणात्) उससे (त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ) बारह और तेंतीस सामवेद के स्तोत्र (त्रिणवत्रयस्त्रिंशाभ्याम्) उन स्तोत्रों से (शाक्वररैवते) शक्ति और धन के साधक पदार्थों को जान के (विश्वकर्मा) सब सुकर्मों के सेवने वाला (ऋषिः) वेदार्थ का वक्ता पुरुष वर्त्तता है वैसे मैं (प्रजापति-गृहीतया) प्रजापालक पति ने ग्रहण की (त्वया) तेरे साथ (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के

लिये (वाचम्) विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त वाणी को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं ।।५८।।

भावार्थः—स्त्रीपुरुषों को चाहिये कि विद्वानों की शिक्षारूप वाणी को सुन के अपनी बुद्धि बढ़ावें उस बुद्धि से हेमन्त ऋतु में कर्त्तव्य कर्म और सामवेद के स्तोत्रों को जान महात्मा ऋषि लोगों के समान वर्त्ताव कर विद्या और अच्छी शिक्षा से शुद्ध की वाणी का स्वीकार करके अपने सन्तानों के लिये भी इन वाणियों का उपदेश सदैव किया करें ।।५८।।

इस अध्याय में ईश्वर, स्त्रीपुरुष और व्यवहार का वर्णन करने से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जानो ।।

।। यह तेरहवां (१३) अध्याय समाप्त हुआ ।।

---

* ओ३म् *

अथ चतुर्दशाऽध्यायारम्भः

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दु॒रि॒ता॑नि॒ परा॑सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ।।

ध्रु॒वक्षितिरित्यस्योशना ऋषिः । अश्विनौ देवते । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

अब चौदहवें अध्याय का आरम्भ है इस के पहिले मन्त्र में स्त्रियों के लिये उपदेश किया है ।।

ध्रु॒वक्षि॑तिर्ध्रु॒वयो॑निर्ध्रु॒वासि॑ ध्रु॒वं योनि॒मासी॑द सा॒धुया॑ ।
उख्य॑स्य के॒तुं प्र॑थ॒मं जु॒षा॒णा अ॒श्विना॑ध्व॒र्यू सा॑दयता॒मि॒ह त्वा॑ ।।१।।

पदार्थः—हे स्त्रि ! जो तू (साधुया) श्रेष्ठ धर्म के साथ (उख्यस्य) बटलोई में पकाये अन्न की सम्बन्धी और (प्रथमम्) विस्तारयुक्त (केतुम्) बुद्धि को (जुषाणा) प्रीति से सेवन करती हुई (ध्रुवक्षितिः) निश्चल वास करने और (ध्रुवयोनिः) निश्चल घर में रहने वाली (ध्रुवा) दृढ़धर्म्म से युक्त (असि) है सो तू (ध्रुवम्) निश्चल (योनिम्) घर में (आसीद) स्थिर हो (त्वा) तुझको (इह) इस गृहाश्रम में (अध्वर्यू) अपने लिये रक्षणीय गृहाश्रम आदि यज्ञ के चाहने हारे (अश्विना) सब विद्याओं में व्यापक अध्यापक और उपदेशक (सादयताम्) अच्छे प्रकार स्थापित करें ॥१॥

भावार्थः—विदुषी पढ़ाने और उपदेश करने हारी स्त्रियों को योग्य है कि कुमारी कन्याओं को ब्रह्मचर्य अवस्था में गृहाश्रम और धर्म्मशिक्षा दे के इनको श्रेष्ठ करें ॥१॥

कुलायिनीत्यस्यौशना ऋषिः । अश्विनौ देवते । ब्राह्मी बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर पूर्वोक्त विषय का अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्योने सीद सदने पृथिव्याः । अभि त्वा रुद्रा वसवो गृणन्त्विमा ब्रह्म पीपिहि सौभगायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥२॥

पदार्थः—हे (स्योने) सुख करने हारी ! जिस (त्वा) तुझ को (वसवः) प्रथम कोटि के विद्वान् और (रुद्राः) मध्य कक्षा के विद्वान् (इमा) इन (ब्रह्म) विद्याधनों के देने वाले गृहस्थों की (अभि) अभिमुख होकर (गृणन्तु) प्रशंसा करें सो तू (सौभगाय) सुन्दर संपत्ति होने के लिये इन विद्याधन को (पीपिहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हो (घृतवती) बहुत जल और (पुरन्धिः) बहुत सुख धारण करनेवाली (कुलायिनी) प्रशंसित कुल की प्राप्ति से युक्त हुई (पृथिव्याः) अपनी भूमि के (सदने) घर में (सीद) स्थित हो (अध्वर्यू) अपने लिये रक्षणीय गृहाश्रम आदि यज्ञ चाहने वाले (अश्विना) सब विद्याओं में व्यापक और उपदेशक पुरुष (त्वा) तुझको (इह) इस गृहाश्रम में (सादयताम्) स्थापित करें ॥२॥

भावार्थः—स्त्रियों को योग्य है कि साङ्गोपाङ्ग पूर्ण विद्या और धन ऐश्वर्य का सुख भोगने के लिये अपने सदृश पतियों से विवाह करके विद्या और सुवर्ण आदि धन को पाके सब ऋतुओं में सुख देने हारे घरों में निवास करें तथा विद्वानों का संग और शास्त्रों का अभ्यास निरन्तर किया करें ॥२॥

स्वैर्दक्षैरित्यस्योशना ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृद् ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।।

फिर भी पूर्वोक्त विषय को ही अगले मन्त्र में कहा है ।।

स्वैर्दक्षैर्दक्षपितेह सीद देवानांᳪसुम्ने बृहते रणाय । पितेवैधि सूनवऽआसुशेवा स्वावेशा तन्वा संविशस्वाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ।। ३ ।।

पदार्थः—हे स्त्रि ! तू जैसे (स्वैः) अपने (दक्षैः) बलों और चतुर भृत्यों के साथ वर्त्तता हुआ (देवानाम्) धर्म्मात्मा विद्वानों के मध्य में वर्त्तमान (बृहते) बड़े (रणाय) संग्राम के लिये (सुम्ने) सुख के विषय (दक्षपिता) बलों वा चतुर भृत्यों का पालन करने हारा होके विजय से बढ़ता है वैसे (इह) इस लोक के मध्य में (एधि) बढ़ती रह (सुम्ने) सुख में (आसीद) स्थिर हो और (पितेव) जैसे पिता (सूनवे) अपने पुत्र के लिये सुन्दर सुख देता है वैसे (सुशेवा) सुन्दर सुख से युक्त (स्वावेशा) अच्छी प्रीति से सुन्दर शुद्ध शरीर वस्त्र अलंकार को धारण करती हुई अपने पति के साथ प्रवेश करने हारी होके (तन्वा) शरीर के साथ प्रवेश कर और (अध्वर्यू) गृहाश्रमादि यज्ञ की अपने लिये इच्छा करने वाले (अश्विना) पढ़ाने और उपदेश करने हारे जन (त्वा) तुझ को (इह) इस गृहाश्रम में (सादयताम्) स्थित करें ।।३।।

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। स्त्रियों को चाहिये कि युद्ध में भी अपने पतियों के साथ स्थित रहें। अपने नौकर पुत्र और पशु आदि की पिता के समान रक्षा करें और नित्य ही वस्त्र और आभूषणों से अपने शरीरों को संयुक्त करके वर्त्तें। विद्वान् लोग भी इन को सदा उपदेश करें और स्त्री भी इन विद्वानों के लिये सदा उपदेश करें ।।३।।

पृथिव्याः पुरीषमित्यस्योशना ऋषिः । अश्विनौ देवते । स्वराड्ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।।

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वेऽअभिगृणन्तु देवाः । स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणा यजस्वाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ।।४।।

पदार्थः—हे स्त्रि ! जो (स्तोमपृष्ठा) स्तुतियों को जानने की इच्छायुक्त तू (इह) इस गृहाश्रम में (पृथिव्याः) पृथिवी की (पुरीषम्) रक्षा (अप्सः) सुन्दररूप

और (नाम) नाम और (घृतवती) बहुत घी आदि प्रशंसित पदार्थों से युक्त (असि) है (ताम्) उस (त्वा) तुझको (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (अभिगृणन्तु) सत्कार करें (इह) इसी गृहाश्रम में (सीद) वर्त्तमान रह और जिस (त्वा) तुझ को (अध्वर्यू) अपने लिये रक्षणीय गृहाश्रमादि यज्ञ चाहने वाले (अश्विना) व्यापक बुद्धि बढ़ाने और उपदेश करने हारे (इह) इस गृहाश्रम में (सादयताम्) स्थित करें सो तू (अस्मे) हमारे लिये (प्रजावत्) प्रशंसित सन्तान होने का साधन (द्रविणा) धन (यजस्व) दे ।।४।।

भावार्थः—जो स्त्री गृहाश्रम की विद्या और क्रिया-कौशल में विदुषी हों वे ही सब प्राणियों को सुख दे सकती हैं ।।४।।

आदित्यास्त्वेत्यस्योशना ऋषिः । अश्विनौ देवते । स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।।

फिर भी पूर्वोक्त विषय ही अगले मन्त्र में कहा है ।।

अदि॑त्यास्त्वा पृ॒ष्ठे सा॑दयाम्य॒न्तरि॑क्षस्य ध॒र्त्रीं वि॒ष्टम्भ॑नीं दि॒शा-मधि॑पत्नीं॒ भुव॑नानाम् । ऊ॒र्मिर्द्र॒प्सो॑ऽअ॒पाम॑सि वि॒श्वक॑र्मा त॒ऽऋषि॑रश्वि-ना॑ध्व॒र्यू सा॑दयतामि॒ह त्वा॑ ।।५।।

पदार्थः—हे स्त्रि ! जो (ते) तेरा (विश्वकर्मा) सब शुभ कर्मों से युक्त (ऋषिः) विज्ञानदाता पति मैं (अन्तरिक्षस्य) अन्तःकरण के नाशरहित विज्ञान को (धर्त्रीम्) धारण करने (दिशाम्) पूर्वादि दिशाओं की (विष्टम्भनीम्) आधार और (भुवनानाम्) सन्तानोत्पत्ति के निमित्त घरों की (अधिपत्नीम्) अधिष्ठाता होने से पालन करने वाली (त्वा) तुझ को सूर्य्य की किरण के समान (अदित्याः) पृथिवी के (पृष्ठे) पीठ पर (सादयामि) घर की अधिकारिणी स्थापित करता हूँ जो तू (अपाम्) जलों की (ऊर्मिः) तरंग के सदृश (द्रप्सः) आनन्दयुक्त (असि) है उस (त्वा) तुझ को (इह) इस गृहाश्रम में (अध्वर्यू) रक्षा के निमित्त यज्ञ को करने वाले (अश्विना) विद्या में व्याप्तबुद्धि अध्यापक और उपदेशक पुरुष (सादयताम्) स्थापित करें ।।५।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो स्त्रियाँ अविनाशी सुख देनेहारी सब दिशाओं में कीर्त्ति वाली विद्वान् पतियों से युक्त सदा आनन्दित हैं वे ही गृहाश्रम का धर्म पालने और उस की उन्नति के लिये समर्थ होती हैं, तेरहवें अध्याय में जो (मधुश्च०) कहा है वहां से यहां तक वसन्त ऋतु के गुणों की प्रधानता से व्याख्यान किया है ऐसा जानना चाहिये ।।५।।

शुक्रश्चेत्यस्योशना ऋषिः । ग्रीष्मर्तुर्देवताः । निचृदुत्कृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी ग्रीष्म ऋतु का व्याख्यान अगले मन्त्र में कहा है ॥

शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतूऽअग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापऽओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः । येऽअग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवीऽइमे ग्रैष्मावृतूऽअभिकल्पमानाऽइन्द्रमिव देवाऽअभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥६॥

पदार्थः—हे स्त्रीपुरुषो ! जैसे (मम) मेरे (ज्यैष्ठ्याय) प्रशंसा के योग्य होने के लिये जो (शुक्रः) शीघ्र धूली की वर्षा और तीव्र ताप से आकाश को मलीन करने हारा ज्येष्ठ (च) और (शुचिः) पवित्रता का हेतु आषाढ़ (च) ये दोनों मिल के प्रत्येक (ग्रैष्मौ) ग्रीष्म (ऋतू) ऋतु कहाते हैं । जिस (अग्नेः) अग्नि के (अन्तःश्लेषः) मध्य में कफ के रोग का निवारण (असि) होता है जिस से ग्रीष्म ऋतु के महीनों से (द्यावापृथिवी) प्रकाश और अन्तरिक्ष (कल्पेताम्) समर्थ होवें (आपः) जल (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (ओषधयः) यव वा सोमलता आदि ओषधियां और (अग्नयः) विजुली आदि अग्नि (पृथक्) अलग अलग (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें । जैसे (समनसः) विचारशील (सव्रताः) सत्याचरणरूप नियमों से युक्त (अग्नयः) अग्नि के तुल्य तेजस्वी को (अन्तरा) (ग्रैष्मौ) (ऋतू) (अभिकल्पमानाः) सन्मुख होकर समर्थ करते हुए (देवाः) विद्वान् लोग (इन्द्रमिव) विजुली के समान उन अग्नियों की विद्या में (अभिसंविशन्तु) सब ओर से अच्छे प्रकार प्रवेश करें वैसे (तया) उस (देवतया) परमेश्वर देवता के साथ तुम दोनों (इमे) इन (द्यावापृथिवी) प्रकाश और पृथिवी को (ध्रुवे) निश्चलस्वरूप से इन का भी (अङ्गिरस्वत्) अवयवों के कारणरूप रस के समान (सीदतम्) विशेष कर के ज्ञान कर प्रवर्त्तमान रहो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । वसन्त ऋतु के व्याख्यान के पीछे ग्रीष्म ऋतु की व्याख्या करते हैं । हे मनुष्यो ! तुम लोग जो पृथिवी आदि पञ्चभूतों के शरीरसम्बन्धी वा मानस अग्नि हैं कि जिन के विना ग्रीष्म ऋतु नहीं हो सकता उन को जान और उपयोग मे ला के सब प्राणियों को सुख दिया करो ॥६॥

सजूर्ऋतुभिरित्यस्य विश्वेदेवा ऋषयः । वस्वादयो मन्त्रोक्ता देवताः । सजूर्ऋतुभिरित्यस्य भुरिक्कृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥ सजूर्ऋतुभिरिति द्वितीयस्य स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । सजूर्ऋतुभिरिति तृतीयस्य निचृदाकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरश्च ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्वसुभिः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाऽध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजू रुद्रैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूरादित्यैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्विश्वैर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥७॥

पदार्थः—हे स्त्रि वा पुरुष ! जिस (त्वा) तुझ को (इह) इस जगत् में (अध्वर्यू) रक्षा करनेहारे (अश्विना) सब विद्याओं में व्यापक पढ़ाने और उपदेश करनेवाले पुरुष और स्त्री (वैश्वानराय) सम्पूर्ण पदार्थों की प्राप्ति के निमित्त (अग्नये) अग्निविद्या के लिये (सादयताम्) नियुक्त करें और हम लोग भी जिस (त्वा) तुझ को स्थापित करें सो तू (ऋतुभिः) वसन्त और वर्षा आदि ऋतुओं के साथ (सजूः) एक सी तृप्ति वा सेवा से युक्त (विधाभिः) जलों के साथ (सजूः) प्रीतियुक्त (देवैः) अच्छे गुणों के साथ (सजूः) प्रीतिवाली वा प्रीति वाला और (वयोनाधैः) जीवन आदि वा गायत्री आदि छन्दों के साथ सम्बन्ध के हेतु (देवैः) दिव्य सुख देने हारे प्राणों के साथ (सजूः) समान सेवन से युक्त हो। हे पुरुषार्थयुक्त स्त्रि वा पुरुष ! जिस (त्वा) तुझ को (इह) इस गृहाश्रम में (वैश्वानराय) सब जगत् के नायक (अग्नये) विज्ञानदाता ईश्वर की प्राप्ति के लिये (अध्वर्यू) रक्षक (अश्विना) सब विद्याओं में व्याप्त अध्यापक और उपदेशक (सादयताम्) स्थापित करें और जिस (त्वा) तुझको हम लोग नियत करें सो तू (ऋतुभिः) ऋतुओं के साथ (सजूः) पुरुषार्थी (विधाभिः) विविध प्रकार के पदार्थों के धारण के हेतु प्राणों की चेष्टाओं के साथ (सजूः) समान सेवन वाले (वसुभिः) अग्नि आदि आठ पदार्थों के साथ (सजूः) प्रीतियुक्त और (वयोनाधैः) विज्ञान का सम्बन्ध कराने हारे (देवैः) सुन्दर विद्वानों के साथ (सजूः) समान प्रीति वाले हों। हे विद्या पढ़ने के लिये प्रवृत्त हुए ब्रह्मचारिणी वा ब्रह्मचारी ! जिस (त्वा) तुझ को (इह) इस ब्रह्मचर्य्याश्रम में (वैश्वानराय)

सब मनुष्यों के सुख के साधन (अग्नये) शास्त्रों के विज्ञान के लिये (अध्वर्यू) पालने हारे (अश्विना) पूर्ण विद्यायुक्त अध्यापक और उपदेशक लोग (सादयताम्) नियुक्त करें और जिस (त्वा) तुझ को हम लोग स्थापित करें सो तू (ऋतुभिः) ऋतुओं के साथ (सजूः) अनुकूल सेवन वाले (विधाभिः) विविध प्रकार के पदार्थों के धारण के निमित्त प्राण की चेष्टाओं से (सजूः) समान प्रीति वाले (रुद्रैः) प्राण, अपान, व्यान उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीवात्मा इन ग्यारहों के (सजूः) अनुसार सेवा करनेहारे और (वयोनाधैः) वेदादि शास्त्रों के जनाने का प्रबन्ध करनेहारे (देवैः) विद्वानों के साथ (सजूः) बराबर प्रीति वाले हों। हे पूर्ण-विद्या वाले स्त्री वा पुरुष ! जिस (त्वा) तुझ को (इह) इस संसार में (वैश्वानराय) सब मनुष्यों के लिये पूर्ण सुख के साथ (अग्नये) पूर्ण विज्ञान के लिये (अध्वर्यू) रक्षक (अश्विना) शीघ्र ज्ञानदाता लोग (सादयताम्) नियत करें और जिस (त्वा) तुझ को हम नियुक्त करें सो तू (ऋतुभिः) ऋतुओं के साथ (सजूः) अनुकूल आचरण वाले (विधाभिः) विविध प्रकार की सत्यक्रियाओं के साथ (सजूः) समान प्रीति वाले (आदित्यैः) वर्ष के बारह महीनों के साथ (सजूः) अनुकूल आहारविहारयुक्त और (वयोनाधैः) पूर्ण विद्या के विज्ञान और प्रचार के प्रबन्ध करने हारे (देवैः) पूर्ण विद्यायुक्त विद्वानों के (सजूः) अनुकूल प्रीति वाले हों। हे सत्य अर्थों का उपदेश करने हारी स्त्री वा पुरुष ! जिस (त्वा) तुझ को (इह) इस जगत् में (वैश्वानराय) सब मनुष्यों के हितकारी (अग्नये) अच्छी शिक्षा के प्रकाश के लिये (अध्वर्यू) ब्रह्म-विद्या के रक्षक (अश्विना) शीघ्र पढ़ाने और उपदेश करनेहारे लोग (सादयताम्) स्थित करें और जिस (त्वा) तुझ को हम लोग नियत करें सो तू (ऋतुभिः) काल क्षण आदि सब अवयवों के साथ (सजूः) अनुकूल सेवी (विधाभिः) सुखों में व्यापक सब क्रियाओं के (सजूः) अनुसार होकर (विश्वैः) सब (देवैः) सत्योपदेशक विद्वानों के साथ (सजूः) समान प्रीति वाले और (वयोनाधैः) कामयमान जीवन का सम्बन्ध कराने हारे (देवैः) परोपकार के लिये सत्य असत्य के जनाने वाले जनों के साथ (सजूः) समान प्रीति वाले हों ॥७॥

भावार्थः—इस संसार में मनुष्य का जन्म पाके स्त्री तथा पुरुष विद्वान् होकर जिन ब्रह्मचर्य्य-सेवन, विद्या और अच्छी शिक्षा के ग्रहण आदि शुभ गुण कर्मों में आप प्रवृत्त होकर जिन अन्य लोगों को प्रवृत्त करें वे उन में प्रवृत्त होकर परमेश्वर से लेके पृथिवीपर्यन्त पदार्थों के यथार्थ विज्ञान से उपयोग ग्रहण करके सब ऋतुओं में आप सुखी रहें और अन्यों को सुखी करें ॥७॥

प्राणम्म इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। दम्पती देवते। निचृदतिजगती छन्दः।
निषादः स्वरः॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

प्राणम्मे पाह्यपानम्मे पाहि व्यानम्मे पाहि चक्षुर्मऽउर्व्या विभाहि श्रोत्रम्मे श्लोकय। अपः पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादव चतुष्पात् पाहि दिवो वृष्टिमेरय॥८॥

पदार्थः—हे पते वा स्त्रि! तू (उर्व्या) बहुत प्रकार की उत्तम क्रिया से (मे) मेरे (प्राणम्) नाभि से ऊपर को चलने वाले प्राणवायु की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (अपानम्) नाभि के नीचे गुह्येन्द्रिय मार्ग से निकलने वाले अपान वायु की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (व्यानम्) विविध प्रकार की शरीर की सन्धियों में रहने वाले व्यान वायु की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (चक्षुः) नेत्रों को (विभाहि) प्रकाशित कर (मे) मेरे (श्रोत्रम्) कानों को (श्लोकय) शास्त्रों के श्रवण से संयुक्त कर (अपः) प्राणों को (पिन्व) पुष्ट कर (ओषधीः) सोमलता वा यव आदि ओषधियों को (जिन्व) प्राप्त हो (द्विपात्) मनुष्यादि दो पगवाले प्राणियों की (अव) रक्षा कर (चतुष्पात्) चार पग वाले गौ आदि की (पाहि) रक्षा कर और जैसे सूर्य्य (दिवः) अपने प्रकाश से (वृष्टिम्) वर्षा करता है वैसे घर के कार्यों को (एरय) अच्छे प्रकार प्राप्त कर॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। स्त्री पुरुषों को चाहिये कि स्वयंवर विवाह करके अति प्रेम के साथ आपस में प्राण के समान प्रियाचरण, शास्त्रों का सुनना, ओषधि आदि का सेवन और यज्ञ के अनुष्ठान से वर्षा करावें॥८॥

मूर्धा वय इत्यस्य विश्वेदेवा ऋषयः। प्राजापत्यादयो देवताः। पूर्वस्य निचृद्ब्राह्मी पङ्क्तिः। पुरुष इत्युत्तरस्य ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

मूर्धा वयः प्रजापतिश्छन्दः क्षत्रं वयो मयन्दं छन्दो विष्टम्भो वयोऽधिपतिश्छन्दो विश्वकर्मा वयः परमेष्ठी छन्दो वस्तो वयो विवलं छन्दो वृष्णिर्वयो विशालं छन्दः पुरुषो वयस्तन्द्रं छन्दो व्याघ्रो वयोऽ

नाधृष्टं छन्दः सिꣳहो वयश्छदिश्छन्दः पष्ठवाड् वयो बृहती छन्दऽउक्षा वयः ककुप् छन्दऽऋषभो वयः सतोबृहती छन्दः ॥९॥

पदार्थः—हे स्त्रि वा पुरुष ! (मूर्धा) शिर के तुल्य उत्तम ब्राह्मण का कुल (प्रजापतिः) प्रजा के रक्षक राजा के समान तू (वयः) कामना के योग्य (मयन्दम्) सुखदायक (छन्दः) बलयुक्त (क्षत्रम्) क्षत्रिय कुल को प्रेरणा कर (विष्टम्भः) वैश्यों की रक्षा का हेतु (अधिपतिः) अधिष्ठाता पुरुष नृप के समान तू (वयः) न्याय विनय को प्राप्त हुए (छन्दः) स्वाधीन पुरुष को प्रेरणा कर (विश्वकर्म्मा) सब उत्तम कर्म करने हारे (परमेष्ठी) सब के स्वामी राजा के समान तू (वयः) चाहने योग्य (छन्दः) स्वतन्त्रता को (एरय) बढ़ाइये (वस्तः) व्यवहारों से युक्त पुरुष के समान तू (वयः) अनेक प्रकार के व्यवहारों में व्यापी (विबलम्) विविध बल के हेतु (छन्दः) आनन्द को बढ़ा (वृष्णिः) सुख के सेचने वाले के सदृश तू (विशालम्) विस्तारयुक्त (वयः) सुखदायक (छन्दः) स्वतन्त्रता को बढ़ा (पुरुषः) पुरुषार्थयुक्त जन के तुल्य तू (वयः) चाहने योग्य (तन्द्रम्) कुटुम्ब के धारणरूप कर्म्म और (छन्दः) बल को बढ़ा (व्याघ्रः) जो विविध प्रकार के पदार्थों को अच्छे प्रकार सूंघता है उस जन्तु के तुल्य राजा तू (वयः) चाहने योग्य (अनाधृष्टम्) दृढ़ (छन्दः) बल को बढ़ा (सिंहः) पशु आदि को मारने हारे सिंह के समान पराक्रमी राजा तू (वयः) पराक्रम के साथ (छदिः) निरोध और (छन्दः) प्रकाश को बढ़ा (पष्ठवाट्) पीठ से बोझ उठाने वाले ऊंट आदि के सदृश वैश्य तू (बृहती) बड़े (वयः) बलयुक्त (छन्दः) पराक्रम को प्रेरणा कर (उक्षा) सींचने हारे बैल के तुल्य शूद्र तू (वयः) अति बल का हेतु (ककुप्) दिशाओं और (छन्दः) आनन्द को बढ़ा (ऋषभः) शीघ्रगन्ता पशु के तुल्य भृत्य तू (वयः) बल के साथ (सतोबृहती) उत्तम बड़ी (छन्दः) स्वतन्त्रता की प्रेरणा कर ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं और पूर्व मन्त्र से एरय पद की अनुवृत्ति आती है। स्त्री पुरुषों को चाहिये कि ब्राह्मण आदि वर्णों को स्वतन्त्र कर वेदादि शास्त्रों का प्रचार आलस्यादि त्याग और शत्रुओं का निवारण करके बड़े बल को सदा बढ़ाया करें ॥९॥

अनड्वानित्यस्य विश्वदेव ऋषिः। विद्वांसो देवताः। स्वराड्ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अनड्वान् वयः पङ्क्तिश्छन्दो धेनुर्वयो जगती छन्दस्त्र्यविर्वयस्त्रिष्टुप्

छन्दो॑ दित्यवाड् वयो॑ विराट् छन्द॒: पंचा॑विर्वयो॑ गायत्री छन्द॑स्त्रिवत्सो वयं॑ऽउष्णिक् छन्द॑स्तुर्य्यवाड् वयो॑ऽनुष्टुप् छन्द॑: ॥१०॥

पदार्थः—हे स्त्रि वा पुरुष ! (अनड्वान्) गौ और वैल के समान बलवान् हो के तू (पंक्तिः) प्रकट (छन्दः) स्वतन्त्र (वयः) बल की प्रेरणा कर (धेनुः) दूध देने हारी गौ के समान तू (जगती) जगत् के उपकारक (छन्दः) आनन्द की (वयः) कामना को वढ़ा (त्र्यविः) तीन भेड़ वकरी और गौ के अध्यक्ष के तुल्य वृद्धियुक्त होके तू (त्रिष्टुप्) कर्म्म उपासना और ज्ञान की स्तुति के हेतु (छन्दः) स्वतन्त्र (वयः) उत्पत्ति को वढ़ा (दित्यवाड्) पृथिवी ,खोदने से उत्पन्न हुए जौ आदि को प्राप्त कराने हारी क्रिया के तुल्य तू (विराट्) विविध प्रकाशयुक्त (छन्दः) आनन्दकारक (वयः) प्राप्ति को बढ़ा (पंचाविः) पंच इन्द्रियों की रक्षा के हेतु ओषधि के समान तू (गायत्री) गायत्री (छन्दः) मन्त्र के (वयः) विज्ञान को वढ़ा (त्रिवत्सः) कर्म उपासना और ज्ञान को चाहने हारे के तुल्य तू (उष्णिक्) दुःखों के नाशक (छन्दः) स्वतन्त्र (वयः) पराक्रम को वढ़ा और (तुर्य्यवाट्) चारों वेदों की प्राप्ति कराने हारे पुरुष के समान तू (अनुष्टुप्) अनुकूल स्तुति का निमित्त (छन्दः) सुखसाधक (वयः) इच्छा को प्रतिदिन वढ़ाया कर ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे खेती करने हारे लोग वैल आदि साधनों की रक्षा से अन्नादि पदार्थों को उत्पन्न करके सब को सुख देते हैं, वैसे ही विद्वान् लोग विद्या का प्रचार करके सव प्राणियों को आनन्द देते हैं ॥१०॥

इन्द्राग्नी इत्यस्य विश्वेदेवा ऋषयः। इन्द्राग्नी देवते। भुरिगनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रा॑ग्नीऽअव्य॑थमानामिष्ट॑कां दृꣳहतं युवम्।
पृष्ठेन द्यावा॑पृथिवीऽअन्तरि॑क्षं च विबा॑धसे ॥११॥

पदार्थः—हे (इन्द्राग्नी) विजुली और सूर्य्य के समान वर्त्तमान स्त्री पुरुषो ! (युवम्) तुम दोनों (अव्यथमानाम्) जमी हुई बुद्धि को प्राप्त होके (इष्टकाम्) ईंट के समान गृहाश्रम को (दृंहतम्) दृढ़ करो। जैसे (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि (पृष्ठेन) पीठ से आकाश को बांधते हैं वैसे तुम दुःख और शत्रुओं को बांधा करो। हे पुरुष ! जैसे तू इस अपनी स्त्री की पीड़ा को (विबाधसे) विशेष करके हटाता है वैसे यह स्त्री भी तेरी सकल पीड़ा को हरा करे ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे विजुली और सूर्य जल वर्षा के ओषधि आदि पदार्थों को बढ़ाते हैं वैसे ही स्त्री पुरुष कुटुम्ब को बढ़ावें जैसे प्रकाश और पृथिवी आकाश का आवरण करते हैं वैसे गृहाश्रम के व्यवहारों को पूर्ण करें ॥११॥

विश्वकर्मेत्यस्य विश्वकर्मर्षिः। वायुर्देवता। विकृतिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीमन्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षं दृꣳहान्तरिक्षं मा हिꣳसीः। विश्वस्मै प्राणायाऽपानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय। वायुष्ट्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥१२॥

पदार्थः—हे स्त्रि! (विश्वकर्मा) सम्पूर्ण शुभ कर्म करने में कुशल पति जिस (व्यचस्वतीम्) प्रशंसित विज्ञान वा सत्कार से युक्त (प्रथस्वतीम्) उत्तम विस्तृत विद्या वाली (अन्तरिक्षस्य) प्रकाश के (पृष्ठे) एक भाग में (त्वा) तुझ को (सादयतु) स्थापित करे सो तू (विश्वस्मै) सब (प्राणाय) प्राण (अपानाय) अपान (व्यानाय) व्यान और (उदानाय) उदानरूप शरीर के वायु तथा (प्रतिष्ठायै) प्रतिष्ठा (चरित्राय) और शुभ कर्मों के आचरण के लिये (अन्तरिक्षम्) जलादि को (यच्छ) दिया कर (अन्तरिक्षम्) प्रशंसित शुद्ध किये जल से युक्त अन्न और धनादि को (दृꣳह) बढ़ा और (अन्तरिक्षम्) मधुरता आदि गुणयुक्त रोगनाशक आकाशस्थ सब पदार्थों को (मा हिंसीः) नष्ट मत कर जिस (त्वा) तुझ को (वायुः) प्राण के तुल्य प्रिय पति (मह्या) बड़ी (स्वस्त्या) सुख रूप क्रिया (छर्दिषा) प्रकाश और (शन्तमेन) अति सुखदायक विज्ञान से तुझ को (अभिपातु) सब ओर से रक्षा करे सो तू (तया) उस (देवतया) दिव्य सुख देने वाली क्रिया के साथ वर्त्तमान पतिरूप देवता के साथ (अङ्गिरस्वत्) व्यापक वायु के समान (ध्रुवा) निश्चल ज्ञान से युक्त (सीद) स्थिर हो ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे पुरुष स्त्री को अच्छे कर्मों में नियुक्त करे वैसे स्त्री भी अपने पति को अच्छे कर्मों में प्रेरणा करे जिस से निरन्तर आनन्द बढ़े ॥१२॥

राज्ञ्यसीत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। दिशो देवताः। विराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

राज्ञ्य॑सि प्राची दिग्विराड॑सि दक्षि॑णा दिक् सम्राड॑सि प्रतीची दिक् स्वराड॒स्युदी॑ची दि॒गधि॑पत्न्यसि बृह॒ती दिक् ॥१३॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! जो तू (प्राची) पूर्व (दिक्) दिशा के तुल्य (राज्ञी) प्रकाशमान (असि) है (दक्षिणा) दक्षिण (दिक्) दिशा के समान (विराट्) अनेक प्रकार का विनय और विद्या के प्रकाश से युक्त (असि) है (प्रतीची) पश्चिम (दिक्) दिशा के सदृश (सम्राट्) चक्रवर्ती राजा के सदृश अच्छे सुखयुक्त पृथिवी पर प्रकाशमान (असि) है (उदीची) उत्तर (दिक्) दिशा के तुल्य (स्वराट्) स्वयं प्रकाशमान (असि) है (बृहती) बड़ी (दिक्) ऊपर नीचे की दिशा के तुल्य (अधिपत्नी) घर में अधिकार को प्राप्त हुई (असि) है सो तू सब पति आदि को तृप्त कर ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे दिशा सब ओर से अभिव्याप्त बोध करने हारी चञ्चलतारहित हैं वैसे ही स्त्री शुभ गुण कर्म और स्वभावों से युक्त होवे ॥१३॥

विश्वकर्मेत्यस्य विश्वेदेवा ऋषयः। वायुर्देवता। स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर भी उक्त विषय ही अगले मन्त्र में कहा है॥

वि॒श्वक॑र्मा त्वा सादयत्व॒न्तरि॑क्षस्य पृ॒ष्ठे ज्योति॑ष्मतीम्। विश्व॑स्मै प्रा॒णाया॑ऽपा॒नाय॑ व्या॒नाय॒ विश्वं॒ ज्योति॑र्यच्छ। वा॒युष्टेऽधि॑पति॒स्तया॑ दे॒वत॑याङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वा सी॑द ॥१४॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! जिस (ज्योतिष्मतीम्) बहुत विज्ञान वाली (त्वा) तुझ को (विश्वस्मै) सब (प्राणाय) प्राण (अपानाय) अपान और (व्यानाय) व्यान की पुष्टि के लिये (अन्तरिक्षस्य) जल के (पृष्ठे) ऊपरले भाग में (विश्वकर्मा) सब शुभ कर्मों का चाहने हारा पति (सादयतु) स्थापित करे सो तू (विश्वम्) सम्पूर्ण (ज्योतिः) विज्ञान को (यच्छ) ग्रहण कर जो (वायुः) प्राण के समान प्रिय (ते) तेरा (अधिपतिः) स्वामी है (तया) उस (देवतया) देवस्वरूप पति के साथ (ध्रुवा) दृढ़ (अङ्गिरस्वत्) सूर्य्य के समान (सीद) स्थिर हो ॥१४॥

भावार्थः—स्त्री को उचित है कि ब्रह्मचर्य्याश्रम के साथ आप विद्वान् हो के शरीर आत्मा का बल बढ़ाने के लिये अपने सन्तानों को निरन्तर विज्ञान देवे। यहां तक ग्रीष्म ऋतु का व्याख्यान पूरा हुआ ॥१४॥

नभश्चेत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । ऋतवो देवताः । स्वराडुत्कृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब वर्षा ऋतु का व्याख्यान अगले मन्त्र में कहा है ॥

नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतूऽअग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापऽओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः । यऽअग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवीऽइमे वार्षिकावृतूऽअभिकल्पमानाऽइन्द्रमिव देवाऽअभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥१५॥

पदार्थः—हे स्त्रीपुरुषो ! तुम दोनों जो (नभः) प्रवर्तित मेघों वाला श्रावण (च) और (नभस्यः) वर्षा का मध्यभागी भाद्रपद (च) ये दोनों (वार्षिकौ) वर्षा (ऋतू) ऋतु के महीने (मम) मेरे (ज्यैष्ठ्याय) प्रशंसित होने के लिये हैं जिन में (अग्नेः) उष्ण तथा (अन्तःश्लेषः) जिन के मध्य में शीत का स्पर्श (असि) होता है उन के साथ (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि समर्थ होते हैं उन के भोग में तुम दोनों (कल्पेताम्) समर्थ हो जैसे ऋतु योग से (आपः) जल और (ओषधयः) ओषधि वा (अग्नयः) अग्नि (पृथक्) जल से अलग समर्थ होते हैं वैसे (सव्रताः) एक प्रकार के श्रेष्ठ नियम (समनसः) एक प्रकार का ज्ञान देने हारे (अग्नयः) तेजस्वी लोग (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें (ये) जो (इमे) (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि वर्षा ऋतु के गुणों में समर्थ होते हैं उन को (वार्षिकौ) (ऋतू) वर्षाऋतुरूप (अभिकल्पमानाः) सब ओर से सुख के लिये समर्थ करते हुए विद्वान् लोग (इन्द्रमिव) बिजुली के समान प्रकाश और बल को (तया) उस (देवतया) दिव्य वर्षा ऋतु के साथ (अभिसंविशन्तु) सन्मुख होकर अच्छे प्रकार स्थित होवें (अन्तरा) उन दोनों महीनों में प्रवेश करके (अंगिरस्वत्) प्राण के समान परस्पर प्रेमयुक्त (ध्रुवे) निश्चल (सीदतम्) रहो ॥१५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। सब मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के समान वर्षा ऋतु में वह सामग्री ग्रहण करें जिस से सब सुख होवें ॥१५॥

इषश्चेत्यस्य विश्वेदेवा ऋषयः । ऋतवो देवताः । भुरिगुत्कृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब शरद् ऋतु का व्याख्यान अगले मन्त्र में किया है ॥

इषश्चोर्जश्च शारदावृतूऽअग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी

कल्पन्तामापऽओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। यऽअग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवीऽइमे शारदावृतूऽअभिकल्पमानाऽ इन्द्रमिव देवाऽअभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥१६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (इषः) चाहने योग्य क्वार महीना (च) और (ऊर्जः) सब पदार्थों के वलवान् होने का हेतु कार्त्तिक (च) ये दोनों (शारदौ) शरद् (ऋतू) ऋतु के महीने (मम) मेरे (ज्यैष्ठ्याय) प्रशंसित सुख होने के लिये होते हैं। जिन के (अन्तःश्लेषः) मध्य में (किंचित्) शीतस्पर्श (असि) होता है वे (द्यावापृथिवी) अकाश और पृथिवी को (कल्पेताम्) समर्थ करें (आपः) जल और (ओषधयः) ओषधियां (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें (सव्रताः) सब कार्यों के नियम करने हारे (अग्नयः) शरीर के अग्नि (पृथक्) अलग (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (ये) जो (अन्तरा) वीच में (समनसः) मन के सम्बन्धी (अग्नयः) वाहर के भी अग्नि (इमे) इन (द्यावापृथिवी) आकाश भूमि को (कल्पेताम्) समर्थ करें (शारदौ) शरद् (ऋतू) ऋतु के दोनों महीनों में (इन्द्रमिव) परमैश्वर्य के तुल्य (अभिकल्पमानाः) सब ओर से आनन्द की इच्छा करते हुए (देवाः) विद्वान् लोग (अभिसंविशन्तु) प्रवेश करें (तया) उस (देवतया) दिव्य शरद् ऋतु रूप देवता के नियम के साथ (ध्रुवे) निश्चल सुख वाले (सीदतम्) प्राप्त होते हैं वैसे तुम लोगों को (ज्यैष्ठ्याय) प्रशंसित सुख होने के लिये भी होने योग्य हैं ॥१६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो शरद् ऋतु में उपयोगी पदार्थ हैं उन को यथायोग्य शुद्ध करके सेवन करो ॥१६॥

आयुर्मे इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। छन्दांसि देवताः। भुरिगतिजगती छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर भी पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचम्मे पिन्व मनो मे जिन्वात्मानम्मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ ॥१७॥

पदार्थः—हे स्त्री वा पुरुष ! तू शरद् ऋतु में (मे) मेरी (आयुः) अवस्था की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (प्राणम्) प्राण की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (अपानम्) अपान वायु की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (व्यानम्) व्यान की (पाहि) रक्षा कर

(मे) मेरे (चक्षुः) नेत्रों की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (श्रोत्रम्) कानों की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरी (वाचम्) वाणी को (पिन्व) अच्छी शिक्षा से युक्त कर (मे) मेरे (मनः) मन को (जिन्व) तृप्त कर (मे) मेरे (आत्मानम्) चेतन आत्मा की (पाहि) रक्षा कर और (मे) मेरे लिये (ज्योतिः) विज्ञान का (यच्छ) दान कर ॥१७॥

भावार्थः—स्त्री पुरुष की और पुरुष स्त्री की जैसे अवस्था आदि की वृद्धि होवे वैसे परस्पर नित्य आचरण करें ॥१७॥

मा च्छन्द इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । छन्दांसि देवताः । भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

स्त्री पुरुषों को कैसे विज्ञान बढ़ाना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मा च्छन्दः प्रमा च्छन्दः प्रतिमा छन्दोऽअस्त्रीवयश्छन्दः पंक्तिश्छन्दऽ-उष्णिक् छन्दो बृहती छन्दोऽनुष्टुप् छन्दो विराट् छन्दो गायत्री छन्द-स्त्रिष्टुप् छन्दो जगती छन्दः ॥१८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग (मा) परिमाण का हेतु (छन्दः) आनन्द-कारक (प्रमा) प्रमाण का हेतु बुद्धि (छन्दः) बल (प्रतिमा) प्रतीति निश्चय की हेतु क्रिया (छन्दः) स्वतन्त्रता (अस्त्रीवयः) बल और कान्तिकारक अन्नादि पदार्थ (छन्दः) बलकारी विज्ञान (पङ्क्तिः) पांच अवयवों से युक्त योग (छन्दः) प्रकाश (उष्णिक्) स्नेह (छन्दः) प्रकाश (बृहती) बड़ी प्रकृति (छन्दः) आश्रय (अनुष्टुप्) सुखों का आलम्बन (छन्दः) भोग (विराट्) विविध प्रकार की विद्याओं का प्रकाश (छन्दः) विज्ञान (गायत्री) गाने वाले का रक्षक ईश्वर (छन्दः) उस का बोध (त्रिष्टुप्) तीन सुखों का आश्रय (छन्दः) आनन्द और (जगती) जिस में सब जगत् चलता है उस (छन्दः) पराक्रम को ग्रहण कर और जान के सब को सुखयुक्त करो ॥१८॥

भावार्थः—जो मनुष्य निश्चय के हेतु आनन्द आदि से साध्य, धर्मयुक्त कर्मों को सिद्ध करते हैं वे सुखों से शोभायमान होते हैं ॥१८॥

पृथिवी छन्द इत्यस्य विश्वदेवर्षिः । पृथिव्यादयो देवताः । आर्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर वही उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

पृथिवी छन्दोऽन्तरिक्षं छन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छन्दो नक्षत्राणि छन्दो

वाक् छन्दो मनश्छन्दः कृषिश्छन्दो हिरण्यं छन्दो गौश्छन्दोऽजाच्छन्दोऽश्वश्छन्दः ॥१९॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो ! तुम लोग जैसे (पृथिवी) भूमि (छन्दः) स्वतन्त्र (अन्तरिक्षम्) आकाश (छन्दः) आनन्द (द्यौः) प्रकाश (छन्दः) विज्ञान (समाः) वर्ष (छन्दः) बुद्धि (नक्षत्राणि) तारे लोक (छन्दः) स्वतन्त्र (वाक्) वाणी (छन्दः) सत्य (मनः) मन (छन्दः) निष्कपट (कृषिः) जोतना (छन्दः) उत्पत्ति (हिरण्यम्) सुवर्ण (छन्दः) सुखदायी (गौः) गौ (छन्दः) आनन्द-हेतु (अजा) बकरी (छन्दः) सुख का हेतु और (अश्वः) घोड़े आदि (छन्दः) स्वाधीन हैं वैसे विद्या विनय और धर्म के आचरण विषय में स्वाधीनता से वर्त्तो ॥१९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। स्त्री पुरुषों को चाहिये कि शुद्ध विद्या क्रिया स्वतन्त्रता से पृथिवी आदि पदार्थों के गुण कर्म और स्वभावों को जान खेती आदि कर्मों से सुवर्ण आदि रत्नों को प्राप्त हों और गौ आदि पशुओं की रक्षा करके ऐश्वर्य्य बढ़ावें ॥१९॥

अग्निर्देवतेत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। अग्न्यादयो देवताः। भुरिग् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवताऽऽदित्या देवता मरुतो देवता विश्वे देवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता ॥२०॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो ! तुम लोगों को योग्य है कि (अग्निः) प्रसिद्ध अग्नि (देवताः) दिव्य गुण वाला (वातः) पवन (देवता) शुद्धगुणयुक्त (सूर्य्यः) सूर्य्य (देवता) अच्छे गुणों वाला (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (देवता) शुद्ध गुणयुक्त (वसवः) प्रसिद्ध आठ अग्नि आदि वा प्रथम कक्षा के विद्वान् (देवता) दिव्यगुण वाले (रुद्राः) प्राण आदि ११ ग्यारह वा मध्यम कक्षा के विद्वान् (देवता) शुद्ध गुणों वाले (आदित्याः) बारह महीने वा उत्तम कक्षा के विद्वान् लोग (देवता) शुद्ध (मरुतः) मननकर्त्ता विद्वान् ऋत्विग् लोग (देवता) दिव्य गुण वाले (विश्वे) सब (देवता) अच्छे गुणों वाले विद्वान् मनुष्य वा दिव्य पदार्थ (देवता) देवसंज्ञा वाले हैं (बृहस्पतिः) बड़े वचन वा ब्रह्माण्ड का रक्षक परमात्मा (देवता) (इन्द्रः) बिजुली वा उत्तम धन

(देवता) दिव्य गुणयुक्त और (वरुणः) जल वा श्रेष्ठ गुणों वाला पदार्थ (देवता) अच्छे गुणों वाला है इन को तुम निश्चय जानो ।।२०।।

भावार्थः—इस संसार में जो अच्छे गुणों वाले पदार्थ हैं वे दिव्य गुण कर्म और स्वभाव वाले होने से देवता कहाते हैं और जो देवतों का देवता होने से महादेव सब का धारक रचक रक्षक सब की व्यवस्था और प्रलय करने हारा सर्वशक्तिमान् दयालु न्यायकारी उत्पत्ति धर्म से रहित है उस सब के अधिष्ठाता परमात्मा को सब मनुष्य जानें ।।२०।।

मूर्द्धासीत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । विदुषी देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ।।

विदुषी स्त्री कैसी हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

मूर्द्धासि राड् ध्रुवासि धरुणा धर्त्र्यसि धरणी ।
आयुषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा ।।२१।।

पदार्थः–हे स्त्रि ! जो तू सूर्य्य के तुल्य (मूर्द्धा) उत्तम (असि) है (राट्) प्रकाशमान निश्चल के समान (ध्रुवा) निश्चल शुद्ध (असि) है (धरुणा) पुष्टि करने हारी (धरणी) आधार रूप पृथिवी के तुल्य (धर्त्री) धारण करने हारी (असि) है उस (त्वा) तुझे (आयुषे) जीवन के लिये उस (त्वा) तुझे (वर्चसे) अन्न के लिये उस (त्वा) तुझे (कृष्यै) खेती होने के लिये और उस (त्वा) तुझ को (क्षेमाय) रक्षा होने के लिये मैं सब ओर से ग्रहण करता हूं ।।२१।।

भावार्थः—जैसे स्थित उत्तमांग शिर से सबका जीवन राज्य से लक्ष्मी खेती से अन्न आदि पदार्थ और निवास से रक्षा होती है सो यह सब का आधारभूत माता के तुल्य मान्य करने हारी पृथिवी है वैसे ही विद्वान् स्त्री को होना चाहिये ।।२१।।

यन्त्रीत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । विदुषी देवता । निचृदुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः ।।

फिर स्त्री कैसी होवे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

यन्त्री राड् यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवासि धरित्री ।
इषे त्वोर्जे त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ।।२२।।

पदार्थः—हे स्त्रि ! जो तू (यन्त्री) यन्त्र के तुल्य स्थित (राट्) प्रकाशयुक्त (यन्त्री) यन्त्र का निमित्त पृथिवी के समान (असि) है (यमनी) आकर्षण शक्ति से नियम करने हारी (ध्रुवा) आकाश-सदृश दृढ़ निश्चल (धर्त्री) सब शुभगुणों का धारण करने वाली (असि) है (त्वा) तुझ को (इषे) इच्छा सिद्धि के लिये (त्वा)

तुझ को (ऊर्जे) पराक्रम की प्राप्ति के लिये (त्वा) तुझ को (रय्यै) लक्ष्मी के लिये और (त्वा) तुझ को (पोषाय) पुष्टि होने के लिये मैं ग्रहण करता हूं ।।२२।।

भावार्थः—जो स्त्री पृथिवी के समान क्षमायुक्त आकाश के समान निश्चल और यन्त्रकला के तुल्य जितेन्द्रिय होती है वह कुल का प्रकाश करने वाली है ।।२२।।

आशुस्त्रिवृदित्यस्य विश्वदेव ऋषिः । यज्ञो देवता । पूर्वस्य भुरिग्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः । गर्भा इत्युत्तरस्य भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ।।

अब संवत्सर कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

आशुस्त्रिवृद्भान्तः पंञ्चदशो व्योमा सप्तदशो धरुणंऽएकविꣳशः प्रतूर्त्तिरष्टादशस्तपो नवदशोऽभीवर्त्तः सविꣳशो वर्चो द्वाविꣳशः सम्भरणस्त्रयोविꣳशो योनिश्चतुर्विꣳशः । गर्भाः पञ्चविꣳशऽओजस्त्रिणवः क्रतुरेकत्रिꣳशः प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिꣳशो ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिꣳशो नाकः षट्त्रिꣳशो विवर्त्तोऽष्टाचत्वारिꣳशो धर्त्रं चतुष्टोमः ।।२३।।

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग इस वर्त्तमान संवत् में (आशुः) शीघ्र (त्रिवृत्) शीत और उष्ण के बीच वर्त्तमान (भान्तः) प्रकाश (पंचदशः) पन्द्रह प्रकार का (व्योमा) आकाश के समान विस्तारयुक्त (सप्तदशः) सत्रह प्रकार का (धरुणः) धारण गुण (एकविंशः) इक्कीस प्रकार का (प्रतूर्त्तिः) शीघ्र गति वाला (अष्टादशः) अठारह प्रकार का (तपः) सन्तापी गुण (नवदशः) उन्नीस प्रकार का (अभीवर्त्तः) सम्मुख वर्त्तने वाला गुण (सविंशः) इक्कीस प्रकार की (वर्चः) दीप्ति (द्वाविंशः) बाईस प्रकार का (सम्भरणः) अच्छे प्रकार धारणकारक गुण (त्रयोविंशः) तेईस प्रकार का (योनिः) संयोग वियोगकारी गुण (चतुर्विंशः) चौबीस प्रकार की (गर्भाः) गर्भ धारण की शक्ति (पंचविंशः) पच्चीस प्रकार का (ओजः) पराक्रम (त्रिणवः) सत्ताईस प्रकार का (क्रतुः) कर्म्म वा बुद्धि (एकत्रिंशः) एकतीस प्रकार की (प्रतिष्ठा) सब की स्थिति का निमित्त क्रिया (त्रयस्त्रिंशः) तेंतीस प्रकार की (ब्रध्नस्य) बड़े ईश्वर की (विष्टपम्) व्याप्ति (चतुस्त्रिंशः) चौंतीस प्रकार का (नाकः) आनन्द (षट्त्रिंशः) छत्तीस प्रकार का (विवर्त्तः) विविध प्रकार से वर्त्तने का आधार (अष्टाचत्वारिंशः) अड़तालीस प्रकार का (धर्त्रम्) धारण और (चतुष्टोमः) चार स्तुतियों का आधार है उस को संवत्सर जानो ।।२३।।

भावार्थः—जिस संवत्सर के सम्बन्धी भूत भविष्यत् और वर्तमान

काल आदि अवयव हैं उस के सम्बन्ध से ही से सब संसार के व्यवहार होते हैं ऐसा तुम लोग जानो ॥२३॥

अग्नेर्भाग इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। मेधाविनो देवताः। भुरिग्विकृतिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अब मनुष्य किस प्रकार विद्या पढ़ के कैसा आचरण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्नेर्भागोसि दीक्षायाऽआधिपत्यं ब्रह्म स्पृतं त्रिवृत्स्तोमः। इन्द्रस्य भागोऽसि विष्णोराधिपत्यं क्षत्रꣳ स्पृतं पञ्चदश स्तोमः। नृचक्षसां भागोऽसि धातुराधिपत्यं जनित्रꣳ स्पृतꣳ सप्तदश स्तोमः। मित्रस्य भागोऽसि वरुणस्याधिपत्यं दिवो वृष्टिर्वात स्पृतऽएकविꣳश स्तोमः॥२४॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष! जो तू (अग्नेः) सूर्य्य का (भागः) विभाग के योग्य संवत्सर के तुल्य (असि) है सो तू (दीक्षायाः) ब्रह्मचर्य्य आदि की दीक्षा का (स्पृतम्) प्रीति से सेवन किये हुए (आधिपत्यम्) (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञ कुल के अधिकार को प्राप्त हो जो (त्रिवृत्) शरीर वाणी और मानस साधनों से शुद्ध वर्त्तमान (स्तोमः) स्तुति के योग्य (इन्द्रस्य) बिजुली वा उत्तम ऐश्वर्य के (भागः) विभाग के तुल्य (असि) है सो तू (विष्णोः) व्यापक ईश्वर के (स्पृतम्) प्रीति से सेवने योग्य (क्षत्रम्) क्षत्रियों के धर्म के अनुकूल राजकुल के (आधिपत्यम्) अधिकार को प्राप्त हो जो तू (पंचदशः) पन्द्रह का पूरक (स्तोमः) स्तुतिकर्त्ता (नृचक्षसाम्) मनुष्यों से कहने योग्य पदार्थों के (भागः) विभाग के तुल्य (असि) है सो तू (धातुः) धारणकर्त्ता के (स्पृतम्) ईप्सित (जनित्रम्) जन्म और (आधिपत्यम्) अधिकार को प्राप्त हो जो तू (सप्तदशः) सत्रह संख्या का पूरक (स्तोमः) स्तुति के योग्य (मित्रस्य) प्राण का (भागः) विभाग के समान (असि) है सो तू (वरुणस्य) श्रेष्ठ जलों के (आधिपत्यम्) स्वामीपन को प्राप्त हो जो तू (वातः स्पृतः) सेवित पवन और (एकविंशः) इक्कीस संख्या का पूरक (स्तोमः) स्तुति के साधन के समान (असि) है सो तू (दिवः) प्रकाशरूप सूर्य्य से (वृष्टिः) वर्षा होने का हवन आदि उपाय कर ॥२४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो पुरुष बाल्यावस्था से लेकर सज्जनों ने उपदेश की हुई विद्याओं के ग्रहण के लिये प्रयत्न कर के अधिकारी होते हैं वे स्तुति के योग्य कर्मों को कर और उत्तम हो के विधान के सहित काल को जान के दूसरों को जनावें ॥२४॥

वसूनां भाग इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। वस्वादयो लिङ्गोक्ता देवताः। स्वराट् संकृतिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर भी पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

वसूनां भागोसि रुद्राणामाधिपत्यं चतुष्पात् स्पृतं चतुर्विꣳश स्तोमः। आदित्यानां भागोऽसि मरुतामाधिपत्यं गर्भाः स्पृता पंचविꣳश स्तोमः। अदित्यै भागोऽसि पूष्णऽआधिपत्यमोज स्पृतं त्रिणव स्तोमः। देवस्य सवितुर्भागोऽसि बृहस्पतेराधिपत्यꣳ समीचीर्दिश स्पृताश्चतुष्टोम स्तोमः॥२५॥

पदार्थः—हे विद्वन्! जो तू (वसूनाम्) अग्नि आदि आठ वा प्रथम कक्षा के विद्वानों का (भागः) सेवने योग्य (असि) है सो (रुद्राणाम्) दश प्राण आदि ग्यारहवां जीव वा मध्यकक्षा के विद्वानों के (आधिपत्यम्) अधिकार को प्राप्त हो जो (चतुर्विंशः) चौबीस प्रकार का (स्तोमः) स्तुतिकर्त्ता (आदित्यानाम्) बारह महीनों वा उत्तम कक्षा के विद्वानों के (भागः) सेवने योग्य (असि) है सो तू (चतुष्पात्) गौ आदि पशुओं का (स्पृतम्) सेवन कर (मरुताम्) मनुष्य वा पशुओं के (आधिपत्यम्) अधिष्ठाता हो जो तू (पंचविंशः) पच्चीस प्रकार का (स्तोमः) स्तुति के योग्य (अदित्यै) अखण्डित आकाश का (भागः) विभाग के तुल्य (असि) है सो तू (पूष्णः) पुष्टिकारक पृथिवी से (स्पृतम्) सेवने योग्य (ओजः) बल को प्राप्त हो के (आधिपत्यम्) अधिकार को (प्राप्नुहि) प्राप्त हो जो तू (त्रिणवः) सत्ताईस प्रकार का (स्तोमः) स्तुति के योग्य (देवस्य) सुखदाता (सवितुः) पिता का (भागः) विभाग (असि) है सो तू (बृहस्पतेः) बड़ी वेदरूपी वाणी के पालक ईश्वर के दिये हुए (आधिपत्यम्) अधिकार को प्राप्त हो जो तू (चतुष्टोमः) चार वेदों से कहने योग्य स्तुतिकर्त्ता है सो तू (गर्भाः) गर्भ के तुल्य विद्या और शुभ गुणों से आच्छादित (स्पृताः) प्रीतिमान् सज्जन लोग जिन को जानते हैं उन (समीचीः) सम्यक् प्राप्ति के साधन (स्पृताः) प्रीति का विषय (दिशः) पूर्व दिशाओं को जान॥२५॥

भावार्थः—जो सुन्दर स्वभाव आदि गुणों का ग्रहण करते हैं वे विद्वानों के प्यारे होके सब के अधिष्ठाता होते हैं और जो सब के ऊपर अधिकारी हों वे मनुष्यों में पिता के समान वर्त्तें॥२५॥

यवानां भाग इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। ऋभवो देवताः। निचृदतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

(अङ्गिरस्वत्) उस ऋतु के प्राण के समान (सीदतम्) स्थिर हैं जिस ऋतु के (अन्तःश्लेषः) मध्य में स्पर्श होता है उस के समान तू (असि) है सो तू उस ऋतु से (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि (कल्पेताम्) समर्थ हों (आपः) जल और (ओषधयः) ओषधियां और (अग्नयः) सफेदाई से युक्त अग्नि (पृथक्) पृथक्-पृथक् (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ऐसा जान (ये) जो (अग्नयः) अग्नियों के तुल्य (अन्तरा) भीतर प्रविष्ट होने वाले (सव्रताः) नियमधारी (समनसः) अविरुद्ध विचार करने वाले लोग (इमे) इन (ध्रुवे) दृढ़ (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि को (कल्पन्ताम्) समर्थित करें (इन्द्रमिव) ऐश्वर्य्य के तुल्य (हैमन्तिकौ) (ऋतू) हेमन्त ऋतु के दोनों महीनों को (अभिकल्पमानाः) सन्मुख होकर समर्थ करने वाले (देवाः) दिव्य गुण बिजुली के समान (अभिसंविशन्तु) आवेश करें। वे सज्जन लोग (तया) उस (देवतया) प्रकाशस्वरूप परमात्मा देव के साथ प्रेमबद्ध हो के नियम से आहार और विहार कर के सुखी हों ॥२७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वानों को योग्य है कि यथायोग्य सुख के लिये हेमन्त ऋतु में पदार्थों का सेवन करें और वैसे ही दूसरों को भी सेवन करावें ॥२७॥

एकयेत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। ईश्वरो देवता। निचृद्विकृतिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अब यह ऋतुओं का चक्र किसने रचा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है॥

एकयास्तुवत प्रजाऽअधीयन्त प्रजापतिरधिपतिरासीत्। तिसृभिरस्तुवत ब्रह्मासृज्यत ब्रह्मणस्पतिरधिपतिरासीत्। पञ्चभिरस्तुवत भूतान्यसृज्यन्त भूतानां पतिरधिपतिरासीत्। सप्तभिरस्तुवत सप्त ऋषयोऽसृज्यन्त धाताधिपतिरासीत् ॥२८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जो (प्रजापतिः) प्रजा का पालक (अधिपतिः) सब का अध्यक्ष परमेश्वर (आसीत्) है उस की (एकया) एक वाणी से (अस्तुवत) स्तुति करो और जिस ने सब (प्रजाः) प्रजा के लोगों को वेद द्वारा (अधीयन्त) विद्यायुक्त किये हैं जो (ब्रह्मणस्पतिः) वेद का रक्षक (अधिपतिः) सब का स्वामी परमात्मा (आसीत्) है जिस ने यह (ब्रह्म) सकल विद्यायुक्त वेद को (असृज्यत) रचा है उस की (तिसृभिः) प्राण उदान और व्यान वायु की गति से (अस्तुवत) स्तुति करो जिसने (भूतानि) पृथिवी आदि भूतों को (असृज्यन्त) रचा है जो (भूतानाम्) सब भूतों का (पतिः) रक्षक (अधिपतिः) रक्षकों का भी रक्षक (आसीत्) है उस की सब

मनुष्य (पञ्चभिः) समान वायु चित्त बुद्धि अहंकार और मन से (अस्तुवत) स्तुति करें जिस ने (सप्तऋषयः) पांच मुख्य प्राण, महत्तत्त्व समष्टि और अहंकार सात पदार्थ (असृज्यन्त) रचे हैं जो (धाता) धारण वा पोषणकर्त्ता (अधिपतिः) सब का स्वामी (आसीत्) है उस की (सप्तभिः) नाग, कूर्म्म, कृकल, देवदत्त धनञ्जय, और इच्छा तथा प्रयत्नों से (अस्तुवत) स्तुति करो ॥२८॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को योग्य है कि सब जगत् के उत्पादक न्यायकर्त्ता परमात्मा की स्तुति करें, सुनें विचारें और अनुभव करें। जैसे हेमन्त ऋतु में सब पदार्थ शीतल होते हैं वैसे ही परमेश्वर की उपासना करके शान्तिशील होवें ॥२८॥

नवभिरस्तुवतेत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। ईश्वरो देवता। पूर्वस्यार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। त्रयोदशभिरित्युत्तरस्य ब्राह्मी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर वह जगत् का रचने वाला कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

नवभिरस्तुवत पितरोऽसृज्यन्तादितिरधिपत्न्यासीत्। एकादशभिरस्तुवतऽऋतवोऽसृज्यन्तार्त्तवाऽअधिपतयऽआसन्। त्रयोदशभिरस्तुवत मासाऽअसृज्यन्त संवत्सरोऽधिपतिरासीत्। पञ्चदशभिरस्तुवत क्षत्रमसृज्यतेन्द्रोऽधिपतिरासीत्। सप्तदशभिरस्तुवत ग्राम्याः पशवोऽसृज्यन्त बृहस्पतिरधिपतिरासीत् ॥२९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! तुम लोग जिस ने (पितरः) रक्षक मनुष्य (असृज्यन्त) उत्पन्न किये हैं जहां (अदितिः) रक्षा के योग्य (अधिपत्नी) अत्यन्त रक्षक माता (आसीत्) होवे उस परमात्मा की (नवभिः) नव प्राणों से (अस्तुवत) गुण प्रशंसा करो जिस ने (ऋतवः) वसन्त आदि ऋतु (असृज्यन्त) रचे हैं जहां (आर्त्तवाः) उन उन ऋतुओं के गुण (अधिपतयः) अपने अपने विषय में अधिकारी (आसन्) होते हैं उस की (एकादशभिः) दश प्राणों और ग्यारहवें आत्मा से (अस्तुवत) स्तुति करो जिस ने (मासाः) चैत्रादि बारह महीने (असृज्यन्त) रचे हैं (पंचदशभिः) पन्द्रह तिथियों के सहित (संवत्सरः) संवत्सर (अधिपतिः) सब काल का अधिकारी रचा (आसीत्) है उस की (त्रयोदशभिः) दश प्राण ग्यारहवां जीवात्मा और दो प्रतिष्ठाओं से (अस्तुवत) स्तुति करो जिन से (इन्द्रः) परम सम्पत्ति का हेतु सूर्य्य (अधि-

पतिः) अधिष्ठाता उत्पन्न किया (आसीत्) है जिस ने (क्षत्रम्) राज्य वा क्षत्रियकुल को (असृज्यत) रचा है उस को (सप्तदशभिः) दश पांव की अंगुली, दो जंघा, दो जानु, दो प्रतिष्ठा और एक नाभि से ऊपर का अंग, इन सत्रहों से (अस्तुवत) स्तुति करो जिस ने (बृहस्पतिः) बड़े बड़े पदार्थों का रक्षक वैश्य (अधिपतिः) अधिकारी रचा (आसीत्) है और (ग्राम्याः) ग्राम के (पशवः) गौ आदि पशु (असृज्यन्त) रचे हैं उस परमेश्वर की पूर्वोक्त सब पदार्थों से युक्त होके (अस्तुवत) स्तुति करो ॥२९॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग जिस ने काल के विभाग करने वाले सूर्य्य आदि पदार्थ रचे हैं उस परमेश्वर की उपासना करो ॥२९॥

नवदशभिरित्यस्य विश्वदेव ऋषिः । जगदीश्वरो देवता । पूर्वस्य ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः । पञ्चविंशत्येत्यस्य ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नवदशभिरस्तुवत शूद्रार्य्यावसृज्येतामहोरात्रेऽअधिपत्नीऽ आस्ताम् । एकविꣳशत्यास्तुवतैकशफाः पशवोऽसृज्यन्त वरुणोऽधिपतिरासीत् । त्रयोविꣳशत्यास्तुवत क्षुद्राः पशवोऽसृज्यन्त पूषाधिपतिरासीत् । पञ्चविꣳशत्यास्तुवताऽऽरण्याः पशवोऽसृज्यन्त वायुरधिपतिरासीत् । सप्तविꣳशत्यास्तुवत द्यावापृथिवी व्यैतां वसवो रुद्राऽआदित्याऽअनुव्यायँस्तऽएवाधिपतयऽआसन् ॥३०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम जिसने उत्पन्न किये (अहोरात्रे) दिन और रात्रि (अधिपत्नी) सब काम कराने के अधिकारी (आस्ताम्) हैं जिस ने (शूद्रार्य्यौ) शूद्र और आर्य्य द्विज ये दोनों (असृज्येताम्) रचे हैं उस की (नवदशभिः) दश प्राण पांच महाभूत मन, बुद्धि, चित्त और अहंकारों से (अस्तुवत) स्तुति करो । जिसने उत्पन्न किया (वरुणः) जल (अधिपतिः) प्राण के समान प्रिय अधिष्ठाता (आसीत्) है जिस ने (एकशफाः) जुड़े एक खुरों वाले घोड़े आदि (पशवः) पशु (असृज्यन्त) रचे हैं उस की (एकविंशत्या) मनुष्यों के इक्कीस अवयवों से (अस्तुवत) स्तुति करो जिसने बनाया (पूषा) पुष्टिकारक भूगोल (अधिपतिः) रक्षा करने वाला (आसीत्) है जिस ने (क्षुद्राः) अतिसूक्ष्म जीवों से लेकर नकुल पर्य्यन्त (पशवः) पशु (असृज्यन्त) रचे हैं उस की (त्रयोविंशत्या) पशुओं के तेईस अवयवों से (अस्तुवत) स्तुति करो । जिसने बनाया हुआ (वायुः) वायु (अधिपतिः) पालने हारा (आसीत्) है जिस ने (आरण्याः) वन के (पशवः) सिंह आदि पशु (असृज्यन्त) रचे हैं. (पञ्चविंशत्या)

अनेकों प्रकार के छोटे छोटे वन्य पशुओं के अवयवों के साथ अर्थात् उन अवयवों की कारीगरी के साथ (अस्तुवत) प्रशंसा करो जिस ने बनाये (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि (ऐताम्) प्राप्त हैं जिस के बनाने से (वसवः) अग्नि आदि आठ पदार्थ वा प्रथम कक्षा के विद्वान् (रुद्राः) प्राण आदि वा मध्यम विद्वान् (आदित्याः) बारह महीने वा उत्तम विद्वान् (अनुव्यायन्) अनुकूलता से उत्पन्न हैं (ते) (एव) वे अग्नि आदि ही वा विद्वान् लोग (अधिपतयः) अधिष्ठाता (आसन्) होते हैं उस की (सप्तविंशत्या) सत्ताईस वन के पशुओं के गुणों से (अस्तुवत) स्तुति करो ॥३०॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिसने ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र डाकू मनुष्य भी रचे हैं जिसने स्थूल तथा सूक्ष्म प्राणियों के शरीर अत्यन्त छोटे पशु और इन की रक्षा के साधन पदार्थ रचे और जिस की सृष्टि में न्यून विद्या और पूर्ण विद्या वाले विद्वान् होते हैं उसी परमात्मा की तुम लोग उपासना करो ॥३०॥

नवविꣳशत्येत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । स्वराड् ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर भी वही उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नवविꣳशत्याऽस्तुवत वनस्पतयोऽसृज्यन्त सोमोऽधिपतिरासीत् । एकत्रिꣳशताऽस्तुवत प्रजाऽअसृज्यन्त यवाश्चायवाश्चाधिपतयऽआसन् । त्रयस्त्रिꣳशताऽस्तुवत भूतान्यशाम्यन् प्रजापतिः परमेष्ठ्यधिपतिरासीत् ॥३१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जिस के बनाने से (सोमः) ओषधियों में उत्तम ओषधि (अधिपतिः) स्वामी (आसीत्) है जिस ने उन (वनस्पतयः) पीपल आदि वनस्पतियों को (असृज्यन्त) रचा है उस परमात्मा की (नवविंशत्या) उनतीस प्रकार के वनस्पतियों के गुणों से (अस्तुवत) स्तुति करो और जिस ने उत्पन्न किये (यवाः) समष्टिरूप बने पर्वत आदि (च) और त्रसरेणु आदि (अयवाः) भिन्न भिन्न प्रकृति के अवयव सत्व रजस् और तमोगुण (च) तथा परमाणु आदि (अधिपतयः) मुख्य कारण रूप अध्यक्ष (आसन्) हैं उन (प्रजाः) प्रसिद्ध ओषधियों को जिस ने (असृज्यन्त) रचा है उस ईश्वर की (एकत्रिंशता) इकत्तीस प्रजा के अवयवों से (अस्तुवत) प्रशंसा करो । जिस के प्रभाव से (भूतानि) प्रकृति के परिणाम महत्तत्व के उपद्रव (अशाम्यन्) शान्त हों जो (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक (परमेष्ठी) परमेश्वर के समान आकाश में व्यापक हो के स्थित परमेश्वर (अधिपतिः) अधिष्ठाता

(आसीत्) है उस की (अर्यास्त्रिशता) महाभूतों के तेतीस गुणों से (अस्तुवत) प्रशंसा करो ॥३१॥

भावार्थः—जिस परमेश्वर ने लोकों की रक्षा के लिये वनस्पति आदि ओषधियों को रच के धारण और व्यवस्थित किया है उसी की उपासना सब मनुष्यों को करनी चाहिये ॥३१॥

इस अध्याय में वसन्तादि ऋतुओं के गुण-वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की संगति पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ जाननी चाहिये ॥

यह चौदहवां (१४) अध्याय समाप्त हुआ ॥

---

* ओ३म् *

अथ पञ्चदशाऽध्यायारम्भः

—:*:०*०:*०:*:—

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥१॥

अग्ने जातानित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पन्द्रहवें अध्याय का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र में राजा और राजपुरुषों को क्या २ करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्ने जातान् प्रणुदा नः सपत्नान् प्रत्यजातान्नुद जातवेदः ।
अधि नो ब्रूहि सुमनाऽअहेडँस्तवं स्याम शर्मँस्त्रिवरूथऽउद्भौ ॥१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) राजन् वा सेनापते ! आप (नः) हमारे (जातान्) प्रसिद्ध (सपत्नान्) शत्रुओं को (प्र, नुद) दूर कीजिये । हे (जातवेदः) प्रसिद्ध बलवान् !

आप (अजातान्) अप्रसिद्ध शत्रुओं को (नुद) प्रेरणा कीजिये और हमारा (अहेडन्) अनादर न करते हुए (सुमनाः) प्रसन्नचित्त आप (नः) (प्रति) हमारे प्रति (अधिब्रूहि) अधिक उपदेश कीजिये जिससे हम लोग (तव) आप के (उद्धौ) उत्तम पदार्थों से युक्त (त्रिवरूथे) आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीनों सुखों के हेतु (शर्मन्) घर में (स्याम) सुखी होवें ॥१॥

भावार्थः—राजा आदि न्यायाधीश सभासदों को चाहिये कि गुप्त दूतों से प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध शत्रुओं को निश्चय करके वश में करें और किसी धर्मात्मा का तिरस्कार और अधर्मी का सत्कार भी कभी न करें जिस से सब सज्जन लोग विश्वासपूर्वक राज्य में वसें ॥१॥

सहसा जातानित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः।
धैवतः स्वरः॥

फिर भी वही पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सहसा जातान् प्रणुदा नः सपत्नान् प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व।
अधि नो ब्रूहि सुमनस्यमानो वयꣳ स्याम प्रणुदा नः सपत्नान्॥२॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) प्रकृष्ट ज्ञान को प्राप्त हुए राजन् आप (नः) हमारे (सहसा) बल के सहित (जातान्) प्रसिद्ध हुए (सपत्नान्) शत्रुओं को (प्रणुद) जीतिये और उन (प्रति) (अजातान्) युद्ध में छिपे हुए शत्रुओं के सेवक मित्रभाव से प्रसिद्धों को (नुदस्व) पृथक् कीजिये तथा (सुमनस्यमानः) अच्छे प्रकार विचारते हुए आप (नः) हमारे लिये (अधिब्रूहि) अधिकता से विजय के विधान का उपदेश कीजिये (वयम्) हम लोग आप के सहायक (स्याम) होवें जिन (नः) हमारे (सपत्नान्) विरोध में प्रवृत्त सम्बन्धियों को आप (प्रणुद) मारें उन को हम लोग भी मारें ॥२॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि जो राज्य के सेवक शत्रुओं के निवारण करने में यथाशक्ति प्रयत्न न करें उन को अच्छे प्रकार दण्ड देवे और जो अपने सहायक हों उन का सत्कार करे ॥२॥

षोडशीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। दम्पती देवते। ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब स्त्री पुरुष का धर्म अगले मन्त्र में कहा है॥

षोडशी स्तोम ओजो द्रविणं चतुश्चत्वारिꣳश स्तोमो वर्चो द्रविणम्।
अग्नेः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वेऽअभि गृणन्तु देवाः।
स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणा यजस्व॥३॥

पदार्थः- जो (षोडशी) प्रशंसित सोलह कलाओं से युक्त (स्तोमः) स्तुति के योग्य (ओजः) पराक्रम (द्रविणम्) धन को जो (चतुश्चत्वारिंशः) चवालीस संख्या को पूर्ण करने वाला ब्रह्मचर्य का आचरण (स्तोमः) स्तुति का साधन (नाम) प्रसिद्ध (वर्चः) पढ़ना और (द्रविणम्) वल को देती है। जो (अग्नेः) अग्नि की (पुरीषम्) पूर्त्ति को प्राप्त (अप्सः) दूसरे के पदार्थों के भोग की इच्छा से रहित (असि) हो उस (त्वा) पुरुष तथा (ताम्) स्त्री की (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (अभिगृणन्तु) प्रशंसा करें सो तू (स्तोमपृष्ठा) इष्ट स्तुतियों को जनाने वाली (घृतवती) प्रशंसित घी आदि पदार्थों से युक्त (इह) इस गृहाश्रम में (सीद) स्थित हो और (अस्मे) हमारे लिये (प्रजावत्) बहुत सन्तानों के हेतु (द्रविणा) धन को (यजस्व) दिया कर ॥३॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सोलह कला रूप जगत् में विद्यारूप वल को फैला और गृहाश्रम कर के विद्यादानादि कर्मों को निरन्तर किया कर ॥३॥

एवश्छन्द इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। विद्वांसो देवताः। निचृदाकृतिश्छन्दः। पंचमः स्वरः ॥

मनुष्यों को चाहिये कि प्रयत्नपूर्वक साधनों से सुख बढ़ावें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

एवश्छन्दो॒ वरि॑वश्छन्दः॑ श॒म्भूश्छन्दः॑ परि॒भूश्छन्द॑ऽआ॒च्छच्छन्दो॒ मन॒श्छन्दो॒ व्यच॒श्छन्दः॒ सिन्धु॒श्छन्दः॑ समु॒द्रश्छन्दः॑ स॒रि॒रं छन्दः॑ क॒कुप् छन्द॑स्त्रिक॒कुप् छन्दः॑ का॒व्यं छन्दो॑ऽअङ्कु॒पं छन्दो॒ऽक्षर॑पङ्क्तिश्छन्दः॑ प॒दप॑ङ्क्तिश्छन्दो॑ विष्टा॒रप॑ङ्क्तिश्छन्दः॑ क्षु॒रश्छन्दो॒ भ्रज॒श्छन्दः॑ ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग उत्तम प्रयत्न से (एवः)(छन्दः) आनन्ददायक ज्ञान (वरिवः) सत्यसेवनरूप (छन्दः) सुखदायक (शम्भूः) सुख का अनुभव (छन्दः) आनन्दकारी (परिभूः) सब ओर से पुरुषार्थी (छन्दः) सत्य का प्रकाशक (आच्छत्) दोषों का हटाना (छन्दः) जीवन (मनः) संकल्प विकल्पात्मक (छन्दः) प्रकाशकारी (व्यचः) शुभ गुणों की व्याप्ति (छन्दः) आनन्दकारक (सिन्धुः) नदी के तुल्य चलना (छन्दः) स्वतन्त्रता (समुद्रः) समुद्र के समान गम्भीरता (छन्दः) प्रयोजनसिद्धिकारी (सरिरम्) जल के तुल्य कोमलता (छन्दः) जल के समान शान्ति (ककुप्) दिशाओं के तुल्य उज्ज्वल कीर्ति (छन्दः) प्रतिष्ठा देने वाला (त्रिककुप्) अध्यात्मादि तीन सुखों का प्राप्त करने वाला कर्म (छन्दः) आनन्दकारक (काव्यम्) दीर्घदर्शी कवि

लोगों ने बनाया (छन्दः) प्रकाशक विज्ञानदायक (अङ्कुपम्) टेढ़ी गति वाला जल (छन्दः) उपकारी (अक्षरपङ्क्तिः) परलोक (छन्दः) आनन्दकारी (पदपङ्क्तिः) यह लोक (छन्दः) सुखसाधक (विष्टारपङ्क्तिः) सब दिशा (छन्दः) सुख का साधक (क्षुरः) छुरा के समान पदार्थों का छेदक सूर्य्य (छन्दः) विज्ञानस्वरूप (भ्रजः) प्रकाशमय (छन्दः) स्वच्छ आनन्दकारी पदार्थ सुख के लिये सिद्ध करो ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य धर्मयुक्त कर्म में पुरुषार्थ करने से सब के प्रिय होना अच्छा समझते हैं वे सब सृष्टि के पदार्थों से सुख लेने को समर्थ होते हैं ॥४॥

आच्छच्छन्द इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। विद्वांसो देवताः। भुरिगभिकृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

मनुष्यों को चाहिये कि प्रयत्न के साथ स्वतन्त्रता बढ़ावें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

आच्छच्छन्दः॑ प्रच्छच्छन्दः॑ संयच्छन्दो॑ वियच्छन्दो॑ बृहच्छन्दो॑ रथन्तरञ्छन्दो॑ निकायश्छन्दो॑ विवधश्छन्दो॒ गिरश्छन्दो॒ भ्रजश्छन्दः॑ सथंस्तुप् छन्दो॒ऽनुष्टुप् छन्द॒ऽएवश्छन्दो॒ वरिवश्छन्दो॒ वयश्छन्दो॑ वयस्कृच्छन्दो॒ विष्पर्द्धाश्छन्दो॑ विशालं छन्द॑श्छदिश्छन्दो॑ दूरोहणं छन्द॑स्तन्द्रं छन्दो॒ऽअङ्काङ्कं छन्दः॑ ॥५॥

पदार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि (आच्छत्) अच्छे प्रकार पापों की निवृत्ति करने हारा कर्म (छन्दः) प्रकाश (प्रच्छत्) प्रयत्न से दुष्ट स्वभाव को दूर करने वाला कर्म (छन्दः) उत्साह (संयत्) संयम (छन्दः) बल (वियत्) विविध यत्न का साधक (छन्दः) धैर्य्य (बृहत्) बहुत वृद्धि (छन्दः) स्वतन्त्रता (रथन्तरम्) समुद्ररूप संसार से पार करने वाला पदार्थ (छन्दः) स्वीकार (निकायः) संयोग का हेतु वायु (छन्दः) स्वीकार (विविधः) विशेष करके पदार्थों के रहने का स्थान अन्तरिक्ष (छन्दः) प्रकाशरूप (गिरः) भोगने योग्य अन्न (छन्दः) ग्रहण (भ्रजः) प्रकाशरूप अग्नि (छन्दः) ले लेना (संस्तुप्) अच्छे प्रकार शब्दार्थ सम्बन्धों को जनाने हारी वाणी (छन्दः) आनन्दकारक (अनुष्टुप्) सुनने के पीछे शास्त्रों को जानने हारी मन की क्रिया (छन्दः) उपदेश (एवः) प्राप्ति (छन्दः) प्रयत्न (वरिवः) विद्वानों की सेवा (छन्दः) स्वीकार (वयः) जीवन (छन्दः) स्वाधीनता (वयस्कृत्) अवस्थावर्द्धक जीवन के साधन (छन्दः) ग्रहण (विष्पर्द्धाः) विशेष करके जिससे ईर्ष्या करे वह (छन्दः)

प्रकाश (विशालम्) विस्तीर्ण कर्म (छन्दः) ग्रहण करना (छदिः) विघ्नों का हटाना (छन्दः) सुखों को पहुंचाने वाला (दूरोहणम्) दुःख से चढ़ने योग्य (छन्दः) बल (तन्द्रम्) स्वतन्त्रता करना (छन्दः) प्रकाश और (अङ्काङ्कम्) गणितविद्या का (छन्दः) सम्यक् स्थापन करना स्वीकार और प्रचार के लिये प्रयत्न करें ॥५॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ करने से पराधीनता छुड़ा के स्वाधीनता का निरन्तर स्वीकार करें ॥५॥

रश्मिनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । विद्वांसो देवताः । विराडभिकृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

विद्वानों को पदार्थविद्या के जानने का उपाय करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

रश्मिना सत्याय सत्यं जिन्व प्रेतिना धर्म्मणा धर्मं जिन्वान्वित्या दिवा दिवं जिन्व सन्धिनान्तरिक्षेणान्तरिक्षं जिन्व प्रतिधिना पृथिव्या पृथिवीं जिन्व विष्टम्भेन वृष्ट्या वृष्टिं जिन्व प्रवयाऽह्नाहर्जिन्वानुया रात्र्या रात्रीं जिन्वोशिजा वसुभ्यो वसून् जिन्व प्रकेतेनादित्येभ्यऽआदित्याञ्जिन्व ॥६॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष ! तू (रश्मिना) किरणों से (सत्याय) वर्त्तमान में हुए सूर्य्य के तुल्य नित्य सुख और स्थूल पदार्थों के लिये (सत्यम्) अव्यभिचारी कर्म को (जिन्व) प्राप्त हो (प्रेतिना) उत्तम ज्ञानयुक्त (धर्मणा) न्याय के आचरण से (धर्मम्) धर्म को (जिन्व) जान (अन्वित्या) खोज के हेतु (दिवा) धर्म के प्रकाश से (दिवम्) सत्य के प्रकाश को (जिन्व) प्राप्त हो (सन्धिना) सन्धिरूप (अन्तरिक्षेण) आकाश से (अन्तरिक्षम्) अवकाश को (जिन्व) जान (पृथिव्या) भूगर्भविद्या के (प्रतिधिना) सम्बन्ध से (पृथिवीम्) भूमि को (जिन्व) जान (विष्टम्भेन) शरीर धारण के हेतु आहार के रस से तथा (वृष्ट्या) वर्षा की विद्या से (वृष्टिम्) वर्षा को (जिन्व) जान (प्रवया) कान्तियुक्त (अह्ना) प्रकाश की विद्या से (अहः) दिन को (जिन्व) जान (अनुया) प्रकाश के पीछे चलने वाली (रात्र्या) रात्रि की विद्या से (रात्रीम्) रात्रि को (जिन्व) जान (उशिजा) कामनाओं से (वसुभ्यः) अग्नि आदि आठ वसुओं की विद्या से (वसून्) उन अग्नि आदि वसुओं को (जिन्व) जान और (प्रकेतेन) उत्तम विज्ञान से (आदित्येभ्यः) बारह महीनों की विद्या से (आदित्यान्) बारह महीनों को (जिन्व) तत्त्वस्वरूप से जान ॥६॥

भावार्थः—विद्वानों को चाहिये कि जैसे पदार्थों की परीक्षा से अपने आप पदार्थविद्या को जानें वैसे ही दूसरों के लिये भी उपदेश करें ॥६॥

तन्तुनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । विद्वांसो देवताः । ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

गृहाश्रमी पुरुष को किस साधन से क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

तन्तुना रायस्पोषेण रायस्पोषं जिन्व सꣳसर्पेण श्रुताय श्रुतं जिन्वैडेनौषधीभिरोषधीर्जिन्वोत्तमेन तनूभिस्तनूर्जिन्व वयोधसाधीतेनाधीतं जिन्वाभिजिता तेजसा तेजो जिन्व ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! तू (तन्तुना) विस्तारयुक्त (रायः) धन की (पोषेण) पुष्टि से (रायः) धन की (पोषम्) पुष्टि को (जिन्व) प्राप्त हो (संसर्पेण) सम्यक् प्राप्ति से (श्रुताय) श्रवण के लिये (श्रुतम्) शास्त्र के सुनने को (जिन्व) प्राप्त हो (ऐडेन) अन्न के संस्कार और (ओषधीभिः) यव तथा सोमलता आदि ओषधियों की विद्या से (ओषधीः) ओषधियों को (जिन्व) प्राप्त हो (उत्तमेन) उत्तम धर्म के आचरणयुक्त (तनूभिः) शुद्ध शरीरों से (तनूः) शरीरों को (जिन्व) प्राप्त हो (वयोधसा) जीवन के धारण करने हारे (आधीतेन) अच्छे प्रकार पढ़ने से (आधीतम्) सब ओर से धारण की हुई विद्या को (जिन्व) प्राप्त हो (अभिजिता) सन्मुख शत्रुओं को जीतने के हेतु (तेजसा) तीक्ष्ण कर्म से (तेजः) दृढ़ता को (जिन्व) प्राप्त हो ॥७॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विस्तारयुक्त पुरुषार्थ से ऐश्वर्य को प्राप्त हो के सब प्राणियों का हित सिद्ध करें ॥७॥

प्रतिपदसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । स्वराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रतिपदसि प्रतिपदे त्वानुपदस्यनुपदे त्वा संपदसि सम्पदे त्वा तेजोऽसि तेजसे त्वा ॥८॥

पदार्थः हे पुरुषार्थिनि विदुषी स्त्री ! जिस कारण तू (प्रतिपत्) प्राप्त होने के योग्य लक्ष्मी के तुल्य (असि) है इसलिये (प्रतिपदे) ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (त्वा) तुझ को जो (अनुपत्) पीछे प्राप्त होने वाली शोभा के तुल्य (असि) है उस (अनुपदे) विद्याऽध्ययन के पश्चात् प्राप्त होने योग्य (त्वा) तुझ को जो तू (संपत्) सम्पत्ति के तुल्य (असि) है उस (सम्पदे) ऐश्वर्य के लिये (त्वा) तुझ को जो तू

(तेजः) तेज के समान (असि) है इसलिये (तेजसे) तेज होने के लिये (त्वा) तुझ को ग्रहण करता हूँ ॥८॥

भावार्थः—सब सुख सिद्ध होने के लिये तुल्य गुण कर्म्म और स्वभाव वाले स्त्री पुरुष स्वयंवर विवाह से परस्पर एक दूसरे का स्वीकार कर के आनन्द में रहें ॥८॥

त्रिवृदसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । विराड् ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्रिवृदसि त्रिवृते त्वा प्रवृदसि प्रवृते त्वा विवृदसि विवृते त्वा सवृदसि सवृते त्वाऽऽक्रमोऽस्याक्रमाय त्वा संक्रमोसि संक्रमाय त्वोत्क्रमोऽस्युत्क्रमाय त्वोत्क्रान्तिरस्युत्क्रान्त्यै त्वाऽधिपतिनोर्जोर्जं जिन्व ॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! जो तू (त्रिवृत्) सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण के सह वर्त्तमान अव्यक्त कारण का जानने हारा (असि) है उस (त्रिवृते) तीन गुणों से युक्त कारण के ज्ञान के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (प्रवृत्) जिस कार्यरूप से प्रवृत्त संसार का ज्ञाता (असि) है उस (प्रवृते) कार्यरूप संसार को जानने के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (विवृत्) जिस विविध प्रकार से प्रवृत्त जगत् का उपकारकर्त्ता (असि) है उस (विवृते) जगदुपकार के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (सवृत्) जिस समान धर्म के साथ वर्त्तमान पदार्थों का जानने हारा (असि) है उस (सवृते) साधर्म्य पदार्थों के ज्ञान के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (आक्रमः) अच्छे प्रकार पदार्थों के रहने के स्थान अन्तरिक्ष का जानने वाला (असि) है उस (आक्रमाय) अन्तरिक्ष को जानने के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (संक्रमः) सम्यक् पदार्थों को जानता (असि) है उस (संक्रमाय) पदार्थ-ज्ञान के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (उत्क्रमः) ऊपर मेघमण्डल की गति का ज्ञाता (असि) है उस (उत्क्रमाय) मेघमण्डल की गति जानने के लिये (त्वा) तुझ को तथा हे स्त्री ! जो तू (उत्क्रान्तिः) सम विषम पदार्थों के उल्लंघन के हेतु विद्या को जानने हारी (असि) है उस (उत्क्रान्त्यै) गमनविद्या के जानने के लिये (त्वा) तुझ को सब प्रकार ग्रहण करते हैं (अधिपतिना) अपने स्वामी के सह वर्त्तमान तू (ऊर्जा) पराक्रम से (ऊर्जम्) बल को (जिन्व) प्राप्त हो ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । पृथिवी आदि पदार्थों के गुण कर्म और स्वभावों के जाने विना कोई भी विद्वान् नहीं हो सकता इसलिये कार्य कारण दोनों को यथावत् जान के अन्य मनुष्यों के लिये उपदेश करना चाहिये ॥९॥

राज्ञ्यसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । वसवो देवताः । पूर्वस्य विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अग्नि आदि पदार्थ कैसे गुणों वाले हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

राज्ञ्य॑सि॒ प्राची॒ दिग्व॒संव॑स्ते दे॒वाऽअधि॑पतयो॒ऽग्निर्हे॑ती॒नां प्र॑तिध॒र्त्ता त्रि॒वृत् त्वा॒ स्तोमः॑ पृथि॒व्याᳬश्र॑यत्वाज्य॑मु॒क्थमव्य॑थायै स्तभ्नातु रथन्त॒रᳬ साम॒ प्रति॑ष्ठित्याऽअ॒न्तरि॑क्ष॒ऽऋष॑यस्त्वा । प्रथम॒जा दे॒वेषु॑ दि॒वो मात्र॑या वरि॒म्णा प्र॑थन्तु वि॒ध॒र्त्ता चा॒यमधि॑पतिश्च॒ ते त्वा॒ सर्वे॑ संविदा॒ना नाक॑स्य पृ॒ष्ठे स्व॒र्गे लो॒के यज॑मानं च सादयन्तु ॥१०॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! (ते) तेरा (अधिपतिः) स्वामी जैसे जिस के (वसवः) अग्न्यादिक (देवाः) प्रकाशमान (अधिपतयः) अधिष्ठाता हैं वैसे तू (प्राची) पूर्व (दिक्) दिशा के समान (राज्ञी) राणी (असि) है जैसे (हेतीनाम्) वज्रादि शस्त्रास्त्रों का (प्रतिधर्त्ता) प्रत्यक्ष धारण करता (त्रिवृत्) विद्युत् भूमिस्थ और सूर्यरूप से तीन प्रकार वर्त्तमान (स्तोमः) स्तुतियुक्त गुणों से सहित (अग्निः) महाविद्युत् धारण करने वाली है वैसे (त्वा) तुझ को तेरा पति मैं धारण करता हूं तू (पृथिव्याम्) भूमि पर (अव्यथायै) पीड़ा न होने के लिये (उक्थम्) प्रशंसनीय (आज्यम्) घृत आदि पदार्थों को (श्रयतु) धारण कर (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा के लिये (रथन्तरम्) रथादि से तारने वाले (साम) सिद्धान्त कर्म को (स्तभ्नातु) धारण कर जैसे (अन्तरिक्षे) आकाश में (दिवः) बिजुली का (मात्रया) लेश सम्बन्ध और (वरिम्णा) महापुरुषार्थ से (देवेषु) विद्वानों में (प्रथमजाः) पूर्व हुए (ऋषयः) वेदार्थवित् विद्वान् (त्वा) तुझ को शुभ गुणों से विशालबुद्धि करें (च) और जैसे (अयम्) यह (विधर्त्ता) विविध रीति से धारणकर्त्ता तेरा पति तुझ से वर्त्ते वैसे उस के साथ तू वर्त्ता कर (च) और जैसे (सर्वे) सब (संविदानाः) अच्छे विद्वान् लोग (नाकस्य) अविद्यमान दुःख के (पृष्ठे) मध्य में (स्वर्गे) जो स्वर्ग अर्थात् अति सुख प्राप्ति (लोके) दर्शनीय है उस में (त्वा) तुझ को (च) और (यजमानम्) तेरे पति को (सादयन्तु) स्थापन करें वैसे तुम दोनों स्त्री पुरुष वर्त्ता करो ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । पूर्व दिशा इसलिए उत्तम कहाती है कि जिस से सूर्य प्रथम वहां उदय को प्राप्त होता है । जो पूर्व दिशा से वायु चलता है वह किसी देश में मेघ को उत्पन्न करता है किसी में नहीं और यह अग्नि सब पदार्थों को धारण करता तथा

वायु के संयोग से बढ़ता है जो पुरुष इन वायु और अग्नि को यथार्थ जानते हैं वे संसार में प्राणियों को सुख पहुँचाते हैं ॥१०॥

विराडसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । रुद्रा देवताः । पूर्वस्य भुरिग्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुषों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

विराडसि दक्षिणा दिग्रुद्रास्ते देवाऽअधिपतयऽइन्द्रो हेतीनां प्रतिधर्त्ता पञ्चदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याᳬं श्रयतु प्रऽउगमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु बृहत्साम प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा । प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥११॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! जो तू (विराट्) विविध पदार्थों से प्रकाशमान (दक्षिणा) (दिक्) दक्षिण दिशा के तुल्य (असि) है जिस (ते) तेरा पति (रुद्राः) वायु (देवाः) दिव्य गुण युक्त वायु (अधिपतयः) अधिष्ठाताओं के समान (हेतीनाम्) वज्रों का (प्रतिधर्त्ता) निश्चय के साथ धारण करने वाला (पञ्चदशः) पन्द्रह संख्या का पूरक (स्तोमः) स्तुति का साधक ऋचाओं के अर्थों का भागी और (इन्द्रः) सूर्य्य (त्वा) तुम को (पृथिव्याम्) पृथिवी में (श्रयतु) सेवन करे (अव्यथायै) मानस भय से रहित तेरे लिये (प्रउगम्) कथनीय (उक्थम्) उपदेश के योग्य वचन को (स्तभ्नातु) स्थिर करे तथा (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा के लिये (बृहत्) बहुत अर्थ से युक्त (साम) सामवेद को स्थिर करे और जैसे (अन्तरिक्षे) आकाशस्थ (देवेषु) कमनीय पदार्थों में (प्रथमजाः) पहिले हुए (ऋषयः) ज्ञान के हेतु प्राण (दिवः) प्रकाशकारक अग्नि के (मात्रया) लेश और (वरिम्णा) बहुत्व के साथ वर्त्तमान हैं वैसे विद्वान् लोग (त्वा) तुझ को (प्रथन्तु) प्रसिद्ध करें जैसे (विधर्त्ता) विविध प्रकार के आकर्षण से पृथिवी आदि लोकों का धारण (च) तथा पोषण करने वाला (अधिपतिः) सब प्रकाशक पदार्थों में उत्तम सूर्य (त्वा) तुझ को पुष्ट करे वैसे (संविदानाः) सम्यक् विचारशील विद्वान् लोग हैं (ते) वे (सर्वे) सब (नाकस्य) दुःखरहित आकाश के (पृष्ठे) सेचक भाग में (स्वर्गे) सुखकारक (लोके) जानने योग्य देश में (त्वा) तुझ को (च) और (यजमानम्) यज्ञविद्या के जानने हारे पुरुष को (सादयन्तु) स्थापित करें ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् लोग वायु के साथ वर्त्तमान सूर्य को और सूर्य वायु की विद्या को जानने वाले

विद्वान् का आश्रय कर के इस विद्या को जनावें वैसे स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य के साथ विद्वान् हो के दूसरों को पढ़ावें ॥११॥

सम्राडसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । आदित्या देवताः । पूर्वस्य निचृद् ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः । प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वे स्त्री पुरुष कैसे हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सम्राडसि प्रतीचीदिगादित्यास्ते देवाऽअधिपतयो वरुणो हेतीनां प्रतिधर्त्ता सप्तदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याᳫँश्रयतु मरुत्वतीयमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु वैरूपᳫँ साम प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥१२॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! जो तू (प्रतीची) पश्चिम (दिक्) दिशा के समान (सम्राट्) सम्यक् प्रकाशित (असि) है उस (ते) तेरा पति (आदित्याः) बिजुली से युक्त प्राण वायु (देवाः) दिव्य सुखदाता (अधिपतयः) स्वामियों के तुल्य (अयम्) यह (सप्तदशः) सत्रह संख्या का पूरक (च) और (स्तोमः) स्तुति के योग्य (वरुणः) जलसमुदाय के समान (हेतीनाम्) बिजुलियों का (प्रतिधर्त्ता) धारण करने वाला (अधिपति) स्वामी (त्वा) तुझ को (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (श्रयतु) सेवन करे (अव्यथायै) स्वरूप से अचल तेरे लिये (मरुत्वतीयम्) बहुत मनुष्यों के व्याख्यान से युक्त (उक्थम्) कथनयोग्य वेदवचन तथा (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा के लिये (वैरूपम्) विविध रूपों के व्याख्यान से युक्त (साम) सामवेद को (स्तभ्नातु) ग्रहण करे और जो (दिवः) प्रकाश के (मात्रया) भाग से (वरिम्णा) बहुत्व के साथ (अन्तरिक्षे) आकाश में (प्रथमजाः) विस्तारयुक्त कारण से उत्पन्न हुए (ऋषयः) गतियुक्त वायु (देवेषु) दान के हेतु अवयवों में वर्त्तमान हैं वैसे (त्वा) तुझ को विद्वान् लोग (प्रथन्तु) प्रसिद्ध उपदेश करें । जैसे (विधर्त्ता) जो विविध रत्नों का धारने हारा है (च) यह भी (अधिपतिः) अध्यक्ष स्वामी राजा प्रजाओं को सुख में रखता है वैसे (ते) तेरे मध्य में (सर्वे) सब (संविदानाः) अच्छे प्रकार ज्ञान को प्राप्त हुए (त्वा) तुझ को (च) और (यजमानम्) विद्वानों के सेवक पुरुष को (नाकस्य) दुःखरहित देश के (पृष्ठे) एक भाग में (स्वर्गे) सुखप्रापक (लोके) दर्शनीय स्थान में (सादयन्तु) स्थापित करें ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग पश्चिम दिशा और वहां के पदार्थों को दूसरों के लिये जानते हैं वैसे स्त्री पुरुष अपने सन्तानों आदि को विद्यादि गुणों से सुशोभित करें ॥१२॥

स्वराडसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। मरुतो देवताः। पूर्वस्य भुरिग्ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः। प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर वे दोनों कैसे हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

स्वराडस्युदीची दिङ् मरुतस्ते देवाऽअधिपतयः सोमो हेतीनां प्रतिधर्त्तैकविंशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याᳬ श्रयतु निष्केवल्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु। वैराजꣳ साम प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥१३॥

पदार्थः—हे स्त्रि! जैसे (स्वराट्) स्वयं प्रकाशमान (उदीची) उत्तर (दिक्) दिशा (असि) है वैसा (ते) तेरा पति हो जिस दिशा के (मरुतः) वायु (देवाः) दिव्यरूप (अधिपतयः) अधिष्ठाता हैं उन के सदृश जो (एकविंशः) इक्कीस संख्या का पूरक (स्तोमः) स्तुति का साधक (सोमः) चन्द्रमा (हेतीनाम्) वज्र के समान वर्त्तमान किरणों का (प्रतिधर्त्ता) धारने हारा पुरुष (त्वा) तुझ को (पृथिव्याम्) भूमि में (श्रयतु) सेवन करे (अव्यथायै) इन्द्रियों के भय से रहित तेरे लिए (निष्केवल्यम्) जिस में केवल एक स्वरूप का वर्णन हो वह (उक्थम्) कहने योग्य वेदभाग तथा (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा के लिये (वैराजम्) विराट् रूप का प्रतिपादक (साम) सामवेद का भाग (स्तभ्नातु) ग्रहण करे (च) और जैसे तेरे मध्य में (अन्तरिक्षे) अवकाश में स्थित (देवेषु) इन्द्रियों में (प्रथमजाः) मुख्य प्रसिद्ध (दिवः) ज्ञान के (मात्रया) भागों से (वरिम्णा) अधिकता के साथ वर्त्तमान (ऋषयः) बलवान् प्राण हैं वैसे (अयम्) यही इन प्राणों का (विधर्त्ता) विविध शीत को धारणकर्ता (च) और (अधिपतिः) अधिष्ठाता है (ते) वे (सर्वे) सब इस विषय में (संविदानाः) सम्यक् बुद्धिमान् विद्वान् लोग प्रतिज्ञा से (त्वा) तुझ को (प्रथन्तु) प्रसिद्ध करें और (नाकस्य) उत्तम सुखरूप लोक के (पृष्ठे) ऊपर (स्वर्गे) सुखदायक (लोके) लोक में (त्वा) तुझ को (च) और (यजमानम्) यजमान पुरुष को (सादयन्तु) स्थित करें ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग

आधार के सहित चन्द्रमा आदि पदार्थों और आधार के सहित प्राणों को यथावत् जान के संसारी कार्यों में उपयुक्त करके सुख को प्राप्त होते हैं। वैसे अध्यापक स्त्री पुरुष कन्या पुत्रों को विद्या ग्रहण के लिये उपयुक्त करके आनन्दित करें ॥१३॥

अधिपत्न्यसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। पूर्वस्य ब्राह्मी जगती छन्दः। निषादः स्वरः। प्रतिष्ठित्या इत्युत्तरस्य ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अधिपत्न्यसि बृहती दिग्विश्वे ते देवाऽअधिपतयो बृहस्पतिर्हेतीनां प्रतिधर्त्ता त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ त्वा स्तोमौ पृथिव्याꣳ श्रयतां वैश्वदेवाग्निमारुतेऽउक्थेऽअव्यथायै स्तभ्नीताꣳ शाक्वररैवते सामनी प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानञ्च सादयन्तु ॥१४॥

पदार्थः—हे स्त्रि! जो तू (बृहती) बड़ी (अधिपत्नी) सब दिशाओं के ऊपर वर्त्तमान (दिक्) दिशा के समान (असि) है उस (ते) तेरा पति (विश्वे) सब (देवाः) प्रकाशक सूर्य्यादि पदार्थ (अधिपतयः) अधिष्ठाता हैं। वैसे ही जो (बृहस्पतिः) विश्व का रक्षक (हेतीनाम्) बड़े लोकों का (प्रतिधर्त्ता) प्रतीति के साथ धारण करने वाले सूर्य्य के तुल्य वह तेरा पति (त्वा) तुझ को (च) और (त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ) त्रिणव और तेंतीस (स्तोमौ) स्तुति के साधन (पृथिव्याम्) पृथिवी में (अव्यथायै) पीड़ा रहितता के लिये (वैश्वदेवाग्निमारुते) सब विद्वान् और अग्नि वायुओं के व्याख्यान करने वाले (उक्थे) कहने योग्य वेद के दो भागों का (श्रयताम्) आश्रय करे और जैसे (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा होने के लिये (शाक्वररैवते) शक्वरी और रेवती छन्द से कहे अर्थों से (सामनी) सामवेद के दो भागों को (स्तभ्नीताम्) संगत करो। जैसे वे (अन्तरिक्षे) अवकाश में (प्रथमजाः) आदि में हुए (ऋषयः) धनञ्जय आदि सूक्ष्म स्थूल वायुरूप प्राण (देवेषु) दिव्य गुण वाले पदार्थों में (दिवः) प्रकाश की (मात्रया) मात्रा और (वरिम्णा) अधिकता से (त्वा) तुझ को प्रसिद्ध करते हैं उन को मनुष्य लोग (प्रथन्तु) प्रख्यात करें जैसे (अयम्) यह (अधिपतिः) स्वामी (विधर्त्ता) विविध प्रकार से सब को धारण करनेहारा सूर्य है जैसे (संविदानाः) सम्यक् सत्यप्रतिज्ञायुक्त ज्ञानवान् विद्वान् लोग (त्वा) तुझ को (नाकस्य) (पृष्ठे) सुखदायक देश के उपरि

(स्वर्गे) सुखरूप (लोके) स्थान में स्थापित करते हैं (ते) वे (सर्वे) सब (यजमानम्) तेरे पुरुष और तुझ को (सादयन्तु) स्थित करें वैसे तुम स्त्री पुरुष दोनों वर्त्ता करो ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सब के बीच की दिशा सब से अधिक है वैसे सब गुणों से शरीर और आत्मा का बल अधिक है ऐसा निश्चित जानना चाहिये ॥१४॥

अयं पुर इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। वसन्त ऋतुर्देवता। विकृतिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अब किरण आदि के दृष्टान्त से श्रेष्ठ विद्या का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अयं पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिस्तस्य रथगृत्सश्च रथौजाश्च सेनानीग्रामण्यौ। पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला चाप्सरसौ। दङ्क्ष्णवः पशवो हेतिः पौरुषेयो वधः प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥१५॥

पदार्थः—जो (अयम्) यह (पुरः) पूर्वकाल में वर्त्तमान (हरिकेशः) हरितवर्ण केश के समान हरणशील और क्लेशकारी ताप से युक्त (सूर्यरश्मिः) सूर्य की किरणें हैं (तस्य) उन का (रथगृत्सः) बुद्धिमान् सारथि (च) और (रथौजाः) रथ के ले चलने के वाहन (च) इन दोनों के तथा (सेनानीग्रामण्यौ) सेनापति और ग्राम के अध्यक्ष के समान अन्य प्रकार के भी किरण होते हैं उन किरणों की (पुञ्जिकस्थला) सामान्य प्रधान दिशा (च) और (क्रतुस्थला) प्रज्ञाकर्म को जतानेवाली उपदिशा (च) ये दोनों (अप्सरसौ) प्राणों में चलने वाली अप्सरा कहाती हैं जो (दङ्क्ष्णवः) मांस और घास आदि पदार्थों को खाने वाले व्याघ्र आदि (पशवः) हानिकारक पशु हैं उन के ऊपर (हेतिः) बिजुली गिरे। जो (पौरुषेयः) पुरुषों के समूह (वधः) मारने वाले और (प्रहेतिः) उत्तम वज्र के तुल्य नाश करने वाले हैं (तेभ्यः) उन के लिये (नमः) वज्र का प्रहार (अस्तु) हो और जो धार्मिक राजा आदि सभ्य राजपुरुष हैं (ते) वे उन पशुओं से (नः) हम लोगों की (अवन्तु) रक्षा करें (ते) वे (नः) हम को (मृडयन्तु) सुखी करें (ते) वे रक्षक हम लोग (यम्) जिस हिंसक से (द्विष्मः) विरोध करें (च) और (यः) जो हिंसक (नः) हम से (द्वेष्टि) विरोध करे (तम्) उस को हम लोग (एषाम्) इन व्याघ्रादि पशुओं के (जम्भे) मुख में (दध्मः) स्थापन करें ॥१५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य के

किरण हरे वर्ण वाले हैं उन के साथ लाल पीले आदि वर्ण वाले भी किरण रहते हैं वैसे ही सेनापति और ग्रामाध्यक्ष वर्त्त के रक्षक होवें। जैसे राजा आदि पुरुष मृत्यु के हेतु सिंह आदि पशुओं को रोक के गौ आदि पशुओं की रक्षा करते हैं वैसे ही विद्वान् लोग अच्छी शिक्षा अधर्माचरण से पृथक् रख धर्म में चला के हम सब मनुष्यों की रक्षा कर के द्वेषियों का निवारण करें। यह भी सब वसन्त ऋतु का व्याख्यान है ॥१५॥

अयं दक्षिणेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। ग्रीष्मर्तुर्देवता। प्रकृतिश्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर भी वैसा ही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य रथस्वनश्च रथेचित्रश्च सेनानीग्रामण्यौ। मेनका च सहजन्या चाप्सरसौ यातुधाना हेती रक्षांसि प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥१६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (अयम्) यह (विश्वकर्मा) सब चेष्टारूप कर्मों का हेतु वायु (दक्षिणा) दक्षिण दिशा से चलता है (तस्य) उस वायु के (रथस्वनः) रथ के शब्द के समान शब्द वाला (च) और (रथेचित्रः) रमणीय रथ में चिह्नयुक्त आश्चर्य कार्यों का करने वाला (च) ये दोनों (सेनानीग्रामण्यौ) सेनापति और ग्रामाध्यक्ष के समान वर्त्तमान (मेनका) जिस से मनन किया जाय वह (च) और (सहजन्या) एक साथ उत्पन्न हुई (च) ये दोनों (अप्सरसौ) अन्तरिक्ष में रहने वाली किरणादि अप्सरा हैं जो (यातुधाना) प्रजा को पीड़ा देने वाले हैं उन के ऊपर (हेतिः) वज्र जो (रक्षांसि) दुष्ट कर्म करने वाले हैं उन के ऊपर (प्रहेतिः) प्रकृष्ट वज्र के तुल्य (तेभ्यः) उन प्रजापीड़क आदि के लिये (नमः) वज्र का प्रहार (अस्तु) हो ऐसा करके जो न्यायाधीश शिक्षक हैं (ते) वे (नः) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें (ते) वे (नः) हमको (मृडयन्तु) सुखी करें (ते) वे हम लोग (यम्) जिस दुष्ट से (द्विष्मः) द्वेष करें (च) और (यः) जो दुष्ट (नः) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करे (तम्) उस को (एषाम्) इन वायुओं के (जम्भे) व्याघ्र के समान मुख में (दध्मः) धारण करते हैं वैसा प्रयत्न करो ॥१६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो स्थूल सूक्ष्म और मध्यस्थ वायु से उपयोग लेने को जानते हैं वे शत्रुओं का निवारण कर के सब को आनन्दित करते हैं। यह भी ग्रीष्म ऋतु का शेष व्याख्यान है ऐसा जानो ॥१६॥

अयं पश्चादित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । वर्षर्त्तुर्देवता । विराट् कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ।।

फिर वैसा ही विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

अयं पश्चाद् विश्वव्यंचास्तस्य रथंप्रोतश्चासमरथश्च सेनानीग्रामण्यौ । प्रम्लोचंन्ती चानुम्लोचंन्ती चाप्सरसौ । व्याघ्रा हेतिः सर्पाः प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्चं नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ।।१७।।

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (अयम्) यह (पश्चात्) पीछे से (विश्वव्यचाः) विश्व में व्याप्त बिजुलीरूप अग्नि है उस के (सेनानीग्रामण्यौ) सेनापति और ग्रामपति के समान (रथप्रोतः) रमणीय तेजःस्वरूप में व्याप्त (च) और (असमरथः) जिस के समान दूसरा रथ न हो वह (च) ये दोनों (प्रम्लोचन्ती) अच्छे प्रकार सब ओषधि आदि पदार्थों को शुष्क कराने वाली (च) तथा (अनुम्लोचन्ती) पश्चात् ज्ञान का हेतु प्रकाश (च) ये दोनों (अप्सरसौ) क्रियाकारक आकाशस्थ किरण हैं जैसे (हेतिः) साधारण वज्र के तुल्य तथा (प्रहेतिः) उत्तम वज्र के समान (व्याघ्राः) सिंहों के तथा (सर्पाः) सर्पों के समान प्राणियों को दुःखदायी जीव हैं (तेभ्यः) उन के लिये (नमः) वज्र प्रहार (अस्तु) हो और जो इन पूर्वोक्तों से रक्षा करें (ते) वे (नः) हमारे (अवन्तु) रक्षक हों (ते) वे (नः) हम को (मृडयन्तु) सुखी करें तथा (ते) वे हम लोग (यम्) जिस से (द्विष्मः) द्वेष करें (च) और (यः) जो दुष्ट (नः) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करे जिस को हम (एषाम्) इन सिंहादि के (जम्भे) मुख में (दध्मः) धरें (तम्) उस को वे रक्षक लोग भी सिंहादि के मुख में धरें ।।१७।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यह वर्षा ऋतु का शेष व्याख्यान है। इस में मनुष्यों को नियमपूर्वक आहार विहार करना चाहिये ।।१७।।

अयमुत्तरादित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । शरदृतुर्देवता । भुरिगतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ।।

फिर भी वैसा ही विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

अयमुत्तरात् संयद्वसुस्तस्य तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीग्रामण्यौ । विश्वाची च घृताची चाप्सरसावापो हेतिर्वातः प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽ-

अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥१८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (अयम्) यह (उत्तरात्) उत्तर दिशा से (संयद्वसुः) यज्ञ को सङ्गत करने हारे के तुल्य शरद् ऋतु है (तस्य) उस के (सेनानीग्रामण्यौ) सेनापति और ग्रामाध्यक्ष के समान (तार्क्ष्यः) तीक्ष्ण तेज को प्राप्त कराने वाला आश्विन (च) और (अरिष्टनेमिः) दुःखों को दूर करने वाला कार्त्तिक (च) ये दोनों (विश्वाची) सब जगत् में व्यापक (च) और (घृताची) घी वा जल को प्राप्त कराने वाली दीप्ति (च) ये दोनों (अप्सरसौ) प्राणों की गति हैं जहां (आपः) जल (हेतिः) वृद्धि के तुल्य वर्त्तनि और (वातः) प्रिय पवन (प्रहेतिः) अच्छे प्रकार बढ़ाने हारे के समान आनन्ददायक होता है उस वायु को जो लोग युक्ति के साथ सेवन करते हैं (तेभ्यः) उन के लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो (ते) वे (नः) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें (ते) वे (नः) हम को (मृडयन्तु) सुखी करें (ते) वे हम (यम्) जिस से (द्विष्मः) द्वेष करें (च) और (यः) जो (नः) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करे (तम्) उस को (एषाम्) इन जल वायुओं के (जम्भे) दुःखदायी गुणरूप मुख में (दध्मः) धरें वैसे तुम लोग भी वर्तो ॥१८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यह शरद् ऋतु का शेष व्याख्यान है। इस में भी मनुष्यों को चाहिये कि युक्ति के साथ कार्यों में प्रवृत्त हों ॥१८॥

अयमुपरीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। हेमन्तर्त्तुर्देवता। निचृत्कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर भी वैसा ही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अयमुपर्यर्वाग्वसुस्तस्य सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीग्रामण्यौ। उर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्सरसाववस्फूर्जन् हेतिर्विद्युत्प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥१९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (अयम्) यह (उपरि) ऊपर वर्त्तमान (अर्वाग्वसुः) वृष्टि के पश्चात् धन का हेतु है (तस्य) उस के (सेनजित्) सेना से जीतने वाला (च) और (सुषेणः) सुन्दर सेनापति (च) ये दोनों (सेनानीग्रामण्यौ) सेनापति और ग्रामाध्यक्ष के तुल्य वर्त्तमान अगहन और पौष महीने (उर्वशी) बहुत खाने का हेतु आन्तर्य दीप्ति (च) और (पूर्वचित्तिः) आदि ज्ञान का हेतु (च) ये दोनों (अप्सरसौ)

प्राणों में रहने वाली (अवस्फूर्जन्) भयंकर घोष करते हुए (हेतिः) वज्र के तुल्य (विद्युत्) बिजुली के चलाने हारे और (प्रहेतिः) उत्तम वज्र के समान रक्षक प्राणी हैं (तेभ्यः) उन के लिये (नमः) अन्नादि पदार्थ (अस्तु) मिलें (ते) वे (नः) हम लोगों की (अवन्तु) रक्षा करें (ते) वे (नः) हम को (मृडयन्तु) सुखी करें (ते) वे हम लोग (यम्) जिस दुष्ट से (द्विष्मः) द्वेष करें (च) और (यः) जो (नः) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करे (तम्) उस को हम लोग (एषाम्) इन हिंसक प्राणियों के (जम्भे) मुख में (दध्मः) धरें। वैसे तुम लोग भी उस को धरो ॥१९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यह भी हेमन्त ऋतु की शेष व्याख्या है। मनुष्यों को चाहिये कि इस ऋतु का युक्ति से सेवन करके बलवान् हों ॥१९॥

अग्निर्मूर्द्धेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्रीछन्दः। षड्जःस्वरः॥

मनुष्यों को किस प्रकार बल बढ़ाना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याऽअयम्।
अपाᳬंरेताᳬंसि जिन्वति ॥२०॥

पदार्थः—जैसे हेमन्त ऋतु में (अयम्) यह प्रसिद्ध (अग्निः) अग्नि (दिवः) प्रकाश और (पृथिव्याः) भूमि के बीच (मूर्द्धा) शिर के तुल्य सूर्य्यरूप से वर्त्तमान (ककुत्पतिः) दिशाओं का रक्षक हो के (अपाम्) प्राणों के (रेतांसि) पराक्रमों को (जिन्वति) पूर्णता से तृप्त करता है वैसे ही मनुष्यों को बलवान् होना चाहिये ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि युक्ति से जाठराग्नि को बढ़ा संयम से आहार विहार करके नित्य बल बढ़ाते रहें ॥२०॥

अयमग्निरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर मनुष्य क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः।
मूर्धा कवी रयीणाम् ॥२१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! (अयम्) यह (अग्निः) हेमन्त ऋतु में वर्त्तमान (सहस्रिणः) प्रशस्त असंख्य पदार्थों से युक्त (शतिनः) प्रशंसित गुणों के सहित अनेक प्रकार वर्त्तमान (वाजस्य) अन्न तथा (रयीणाम्) धनों का (पतिः) रक्षक (मूर्द्धा) उत्तम अङ्ग के तुल्य (कविः) समर्थ है वैसे ही तुम लोग भी हो ॥२१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्या और युक्ति से सेवन किया अग्नि बहुत अन्न धन प्राप्त कराता है वैसे ही सेवन किया पुरुषार्थ मनुष्यों को ऐश्वर्यवान् कर देता है ॥२१॥

त्वामग्न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वामग्ने पुष्क॑राद॒ध्यथ॑र्वा॒ निर॑मन्थत।
मू॒र्ध्नो विश्व॑स्य वा॒घतः॑ ॥२२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन्! जैसे (अथर्वा) रक्षक (वाघत) अच्छी शिक्षित वाणी से अविद्या का नाश करने हारा बुद्धिमान् विद्वान् पुरुष (पुष्करात्) अन्तरिक्ष के (अधि) बीच तथा (मूर्ध्नः) शिर के तुल्य वर्त्तमान (विश्वस्य) सम्पूर्ण जगत् के बीच अग्नि को (निरमन्थत) निरन्तर मन्थन करके ग्रहण करे वैसे ही (त्वाम्) तुझ को मैं बोध कराता हूं ॥२२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के समान आकाश तथा पृथिवी के सकाश से बिजुली का ग्रहण कर आश्चर्य रूप कर्मों को सिद्ध करें ॥२२॥

भुव इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

भुवो॑ य॒ज्ञस्य॒ रज॑सश्च ने॒ता यत्रा॑ नि॒युद्भिः॒ सच॑से शि॒वाभिः॑।
दि॒वि मू॒र्धानं॑ दधिषे स्व॒र्षां जि॒ह्वाम॑ग्ने चकृषे हव्य॒वाह॑म् ॥२३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन्! जैसे यह प्रत्यक्ष अग्नि (नियुद्भिः) संयोग विभाग कराने हारी क्रिया तथा (शिवाभिः) मङ्गलकारिणी दीप्तियों के साथ वर्त्तमान (भुवः) प्रगट हुए (यज्ञस्य) कार्यों के साधक सङ्गत व्यवहार (च) और (रजसः) लोकसमूह को (नेता) आकर्षण करता हुआ सम्बन्ध कराता है और (यत्र) जिस (दिवि) प्रकाशमान अपने स्वरूप में (मूर्द्धानम्) उत्तमाङ्ग के तुल्य वर्त्तमान सूर्य को धारण करता तथा (हव्यवाहम्) ग्रहण करने तथा देने योग्य रसों को प्राप्त कराने वाली (स्वर्षाम्) सुखदायक (जिह्वाम्) वाणी को (चकृषे) प्रवृत्त करता है वैसे तू शुभगुणों के साथ (सचसे) युक्त होता और सब विद्याओं को (दधिषे) धारण कराता है ॥२३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ईश्वर ने नियुक्त किया हुआ अग्नि सब जगत् को सुखकारी होता है वैसे ही विद्या के ग्राहक अध्यापक लोग सब मनुष्यों को सुखकारी होते हैं ऐसा सब को जानना चाहिये ॥२३॥

अबोधीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम्।
यह्वाऽइव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥२४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे (समिधा) प्रज्वलित करने के साधनों से यह (अग्निः) अग्नि (अबोधि) प्रकाशित होता है (आयतीम्) प्राप्त होते हुए (उषासम्) प्रभात समय के (प्रति) समीप (जनानाम्) मनुष्यों की (धेनुमिव) दूध देने वाली गौ के समान है। जिस अग्नि के (यह्वा इव) महान् धार्मिक जनों के समान (प्र) उत्कृष्ट (वयाम्) व्यापक सुख की नीति को (उज्जिहानाः) अच्छे प्रकार प्राप्त करते हुए (प्र) उत्तम (भानवः) किरण (नाकम्) सुख को (अच्छ) अच्छे प्रकार (सिस्रते) प्राप्त करते हैं उस को तुम लोग सुखार्थसंयुक्त करो ॥२४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे दुग्ध देने वाली सेवन की हुई गौ दुग्धादि पदार्थों से प्राणियों को सुखी करती है और जैसे आप्त विद्वान् विद्यादान से अविद्या का निवारण कर मनुष्यों की उन्नति करते हैं वैसे ही यह अग्नि है ऐसा जानना चाहिये ॥२४॥

अवोचामेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर वह कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे।
गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत् ॥२५॥

पदार्थः—हम लोग जैसे (गविष्ठिरः) किरणों में रहने वाली विद्युत् (दिवीव) सूर्यप्रकाश के समान (उरुव्यंचम्) विशेष करके बहुतों में गमनशील (रुक्मम्) सूर्य का (अश्रेत्) आश्रय करती है वैसे (मेध्याय) सब शुभ लक्षणों से युक्त पवित्र (वृषभाय) बली (वृष्णे) वर्षा के हेतु (कवये) बुद्धिमान् के लिये (वन्दारु) प्रशंसा के योग्य (वचः) वचन को और (अग्नौ) जाठराग्नि में (नमसा) अन्न आदि से (स्तोमम्) प्रशस्त कार्यों को (अवोचाम) कहें ॥२५॥

भावार्थः— इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। विद्वानों को चाहिये कि सुशील शुद्धबुद्धि विद्यार्थी के लिये परम प्रयत्न से विद्या देवें जिस से वह विद्या पढ़ के सूर्य के प्रकाश में घटपटादि को देखते हुए के समान सब को यथावत् जान सके ॥२५॥

अयमिहेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः।
धैवतः स्वरः॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठोऽध्वरेष्वीड्यः।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥२६॥

पदार्थः—जो (इह) इस जगत् में (अध्वरेषु) रक्षा के योग्य व्यवहारों में (ईड्यः) खोजने योग्य (यजिष्ठः) अतिशय करके यज्ञ का साधक (होता) घृतादि का ग्रहणकर्त्ता (प्रथमः) सर्वत्र विस्तृत (अयम्) यह प्रत्यक्ष अग्नि (धातृभिः) धारणशील पुरुषों ने (धायि) धारण किया है (यम्) जिस को (वनेषु) किरणों में (चित्रम्) आश्चर्यरूप से (विभ्वम्) व्यापक अग्नि को (विशेविशे) समस्त प्रजा के लिये (अप्नवानः) रूपवान् (भृगवः) पूर्णज्ञानी (विरुरुचुः) विशेष करके प्रकाशित करते हैं उस अग्नि को सब मनुष्य स्वीकार करें॥२६॥

भावार्थः—विद्वान् लोग अग्निविद्या को आप धार के दूसरों को सिखावें॥२६॥

जनस्येत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी जगती
छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

जनस्य गोपाऽअजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे।
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्विभाति भरतेभ्यः शुचिः ॥२७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जो (जनस्य) उत्पन्न हुए संसार का (गोपाः) रक्षक (जागृविः) जागने रूप स्वभाव वाला (सुदक्षः) सुन्दर बल का हेतु (घृतप्रतीकः) घृत से बढ़ने हारा (शुचि) पवित्र (अग्निः) बिजुली (नव्यसे) अत्यन्त नवीन (सुविताय) उत्पन्न करने योग्य ऐश्वर्य्य के लिये (अजनिष्ट) प्रकट हुआ है और (बृहता) बड़े (दिविस्पृशा) प्रकाश में स्पर्श से (भरतेभ्यः) सूर्यों से (द्युमत्) प्रकाशयुक्त हुआ (विभाति) शोभित होता है उस को तुम लोग जानो॥२७॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जो ऐश्वर्य्य प्राप्ति का विशेष कारण सृष्टि के सूर्यों का निमित्त बिजुली रूप तेज है उस को जान के उपकार लिया करें ॥२७॥

त्वामग्न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वामग्नेऽअङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वनेवने ।
स जायसे मथ्यमानः सहो महत् त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥२८॥

पदार्थः—हे (अङ्गिरः) प्राणवत्प्रिय (अग्ने) विद्वन् ! जैसे (सः) वह (मथ्यमानः) मथन किया हुआ अग्नि प्रसिद्ध होता है वैसे तू विद्या से (जायसे) प्रकट होता है जिस को (महत्) बड़े (सहः) बलयुक्त (सहसः) बलवान् वायु से (पुत्रम्) उत्पन्न हुए पुत्र के तुल्य (वनेवने) किरण किरण वा पदार्थ पदार्थ में (शिश्रियाणम्) आश्रित (गुहा) बुद्धि में (हितम्) स्थित हितकारी (त्वाम्) उस अग्नि को (आहुः) कहते हैं (अङ्गिरसः) विद्वान् लोग (अन्वविन्दन्) प्राप्त होते हैं उस का बोध (त्वाम्) तुझे कराता हूं ॥२८॥

भावार्थः—अग्नि दो प्रकार का होता है । एक मानस और दूसरा बाह्य । इनमें से आभ्यन्तर को युक्त आहार विहारों से और बाह्य को मन्थनादि से सब विद्वान् सेवन करें वैसे इतर जन भी सेवन किया करें ॥२८॥

सखा इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य लोग कैसे होके अग्नि को जानें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सखायः सं वः सम्यञ्चमिषꣳ स्तोमं चाग्नये ।
वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते ॥२९॥

पदार्थः—हे (सखायः) मित्रो ! (क्षितीनाम्) मननशील मनुष्य (वः) तुम्हारे (ऊर्जः) बल के (नप्त्रे) पौत्र के तुल्य वर्त्तमान (सहस्वते) बहुत बल वाले (वर्षिष्ठाय) अत्यन्त बड़े (अग्नये) अग्नि के लिये जिस (सम्यञ्चम्) सुन्दर सत्कार के हेतु (इषम्) अन्न को (च) और (स्तोमम्) स्तुतियों को (समाहुः) अच्छे प्रकार कहते हैं वैसे तुम लोग भी उस का अनुष्ठान करो ॥२९॥

भावार्थः—यहां पूर्व मन्त्र से (आहुः) इस पद की अनुवृत्ति आती है । कारीगरों को चाहिये कि सब के मित्र होकर विद्वानों के कथनानुसार पदार्थविद्या का अनुष्ठान करें । जो बिजुली कारणरूप बल से उत्पन्न होती

है वह पुत्र के तुल्य है और जो सूर्यादि के सकाश से उत्पन्न होती है सो पौत्र के समान है ऐसा जानना चाहिये ॥२९॥

संसमिदित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

वैश्य को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सꣳसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य्य आ ।

इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्याभर ॥३०॥

पदार्थः—हे (वृषन्) बलवान् (अग्ने) प्रकाशमान (अर्यः) वैश्य ! जो तू (संसमायुवसे) सम्यक् अच्छे प्रकार सम्बन्ध करते हो (इडः) प्रशंसा के योग्य (पदे) प्राप्ति के योग्य अधिकार में (समिध्यसे) सुशोभित होते हो (सः) सो तू (इद्) ही अग्नि के योग से (नः) हमारे लिये (विश्वानि) सब (वसूनि) धनों को (आभर) अच्छे प्रकार धारण कर ॥३०॥

भावार्थः—राजाओं से रक्षा प्राप्त हुए वैश्य लोग अग्न्यादि विद्याओं के लिये और अपने राजपुरुषों के लिये सम्पूर्ण धन धारण करें ॥३०॥

त्वामित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य लोग अग्नि से क्या सिद्ध करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः ।

शोचिष्केशं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोढवे ॥३१॥

पदार्थः—हे (पुरुप्रिय) बहुतों के प्रसन्न करने हारे वा बहुतों के प्रिय (चित्रश्रवस्तम) आश्चर्य्यरूप अन्नादि पदार्थों से युक्त (अग्ने) तेजस्वी विद्वन् ! (विक्षु) प्रजाओं में (हव्याय) स्वीकार के योग्य अन्नादि उत्तम पदार्थों को (वोढवे) प्राप्ति के लिये जिस (शोचिष्केशम्) सुखाने वाली सूर्य की किरणों के तुल्य तेजस्वी (त्वाम्) आपको (जन्तवः) मनुष्य लोग (हवन्ते) स्वीकार करते हैं उसी को हम लोग भी स्वीकार करते हैं ॥३१॥

भावार्थः - मनुष्य को योग्य है कि जिस अग्नि को जीव सेवन करते हैं उस से भार पहुंचाना आदि कार्य भी सिद्ध किया करें ॥३१॥

एना व इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

एना वोऽअग्निं नमसोर्जो नपातमाहुवे ।
प्रियं चेतिष्ठमरतिꣳ स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ।।३२।।

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (वः) तुम्हारे लिये (एना) उस पूर्वोक्त (नमसा) ग्रहण के योग्य अन्न से (नपातम्) दृढ़ स्वभाव (प्रियम्) प्रीतिकारक (चेतिष्ठम्) अत्यन्त चेतनता कराने हारे (अरतिम्) चेतनता रहित (स्वध्वरम्) अच्छे रक्षणीय व्यवहारों से युक्त (अमृतम्) कारणरूप से नित्य (विश्वस्य) सम्पूर्ण जगत् के (दूतम्) सब ओर चलने हारे (अग्निम्) बिजुली को और (ऊर्जः) पराक्रमों को (आहुवे) स्वीकार करूं वैसे तुम लोग भी मेरे लिये ग्रहण करो ।।३२।।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! हम लोग तुम्हारे लिये जो अग्नि आदि की विद्या प्रसिद्ध करें उन को तुम लोग भी स्वीकार करो ।।३२।।

विश्वस्य दूतमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।।

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

विश्वस्य दूतममृतं विश्वस्य दूतममृतम् ।
स योजतेऽअरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत् स्वाहुतः ।।३३।।

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (विश्वस्य) सब भूगोलों के (दूतम्) तपाने वाले सूर्यरूप (अमृतम्) कारणरूप से अविनाशिस्वरूप (विश्वस्य) सम्पूर्ण पदार्थों को (दूतम्) ताप से जलाने वाले (अमृतम्) जल में भी व्यापक कारणरूप अग्नि को स्वीकार करूं वैसे (विश्वभोजसा) जगत् के रक्षक (अरुषा) रूपवान् सब पदार्थों के साथ वर्त्तमान है (सः) वह (योजते) युक्त करता है जो (स्वाहुतः) अच्छे प्रकार ग्रहण किया हुआ (दुद्रवत्) शरीरादि में चलता है (सः) वह तुम लोगों को जानना चाहिये ।।३३।।

भावार्थः—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से (आहुवे) इस पद की अनुवृत्ति आती है तथा (विश्वस्य दूतममृतम्) इन तीन पदों की दो वार आवृत्ति से स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकार के अग्नि का ग्रहण होता है । वह सब अग्नि कारणरूप से नित्य है ऐसा जानना चाहिये ।।३३।।

स दुद्रवदित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्य्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ।।

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

स दुद्रवत् स्वाहुतः स दुद्रवत् स्वाहुतः ।
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवꣳ राधो जनानाम् ॥३४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (सः) वह अग्नि (स्वाहुतः) अच्छे प्रकार बुलाये हुए मित्र के समान (दुद्रवत्) चलता है तथा (सः) वह (स्वाहुतः) अच्छे प्रकार निमन्त्रण किये विद्वान् के तुल्य (दुद्रवत्) जाता है तथा (सुब्रह्मा) अच्छे प्रकार चारों वेदों के ज्ञाता (यज्ञः) समागम के योग्य (सुशमी) अच्छे शान्तिशील पुरुष के समान जो (वसूनाम्) पृथिवी आदि वसुओं और (जनानाम्) मनुष्यों का (देवम्) अभीप्सित (राधः) धनरूप है उस अग्नि को तुम लोग उपयोग में लाओ ॥३४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो वेगवान् अन्य पदार्थों को वेग देने वाला शान्तिकारक पृथिव्यादि पदार्थों का प्रकाशक अग्नि है उसका विचार क्यों न करना चाहिये ॥३४॥

अग्ने वाजस्येत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह अग्नि कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने वाजस्य गोमतऽईशानः सहसो यहो ।
अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥३५॥

पदार्थः—हे (सहसः) बलवान् पुरुष के (यहो) सन्तान ! (जातवेदः) विज्ञान को प्राप्त हुए (अग्ने) तेजस्वी विद्वान् आप अग्नि के तुल्य (गोमतः) प्रशस्त गौ और पृथिवी से युक्त (वाजस्य) अन्न के (ईशानः) स्वामी समर्थ हुए (अस्मे) हमारे लिये (महि) बड़े (श्रवः) धन को (धेहि) धारण कीजिये ॥३५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। अच्छी रीति से उपयुक्त किया अग्नि बहुत धन देता है ऐसा जानना चाहिये ॥३५॥

स इधान इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सऽइधानो वसुष्कविरग्निरीडेन्यो गिरा ।
रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥३६॥

पदार्थः—हे (पुर्वणीक) बहुत सेना वाले राजपुरुष विद्वान् ! (गिरा) वाणी से (ईडेन्यः) खोजने योग्य (वसुः) निवास का हेतु (कविः) समर्थ (इधानः) प्रदीप्त

(सः) उन पूर्वोक्त (अग्निः) अग्नि के समान (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (रेवत्) प्रशंसित धनयुक्त पदार्थों को (वीविहि) प्रकाशित कीजिये ॥३६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् को चाहिये कि अग्नि के गुण कर्म और स्वभाव के प्रकाश के तुल्य मनुष्यों के लिये ऐश्वर्य की उन्नति करे॥३६॥

क्षपो राजन्नित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः।
स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति॥३७॥

पदार्थः—हे (तिग्मजम्भः) तीक्ष्ण अवयवों के चलाने वाले (राजन्) प्रकाशमान (अग्ने) विद्वान् जन! (सः) सो पूर्वोक्त गुणयुक्त आप जैसे तीक्ष्ण तेजयुक्त अग्नि (क्षपः) रात्रियों (उत) और (वस्तोः) दिन के (उत) ही (उषसः) प्रभात और सायंकाल के प्रकाश को उत्पन्न करता है वैसे (त्मना) तीक्ष्ण स्वभाव युक्त अपने आत्मा से (रक्षसः) दुष्ट जनों को रात्रि के समान (प्रतिदह) निश्चय करके भस्म कीजिये॥३७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जैसे प्रभात दिन और रात्रि का निमित्त अग्नि को जानते हैं वैसे राजा न्याय के प्रकाश और अन्याय की निवृत्ति का हेतु है ऐसा जानें॥३७॥

भद्रो न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

भद्रो नोऽअग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रोऽअध्वरः।
भद्राऽउत प्रशस्तयः॥३८॥

पदार्थः—हे (सुभग) सुन्दर ऐश्वर्य वाले विद्वान् पुरुष! जैसे (आहुतः) धर्म के तुल्य सेवन किया मित्ररूप (अग्निः) अग्नि (भद्रः) सेवने योग्य (भद्रा) कल्याणकारी (रातिः) दान (भद्रः) कल्याणकारी (अध्वरः) रक्षणीय व्यवहार (उत) और (भद्राः) कल्याण करने वाली (प्रशस्तयः) प्रशंसा होवें वैसे आप (नः) हमारे लिये हूजिये॥३८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जैसे विद्या से अच्छे प्रकार सेवन किये जगत् के पदार्थ सुखकारी होते हैं वैसे आप्त विद्वान् लोगों को भी जानें ॥३८॥

भद्रा उतेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

भद्राऽउत प्रशस्तयो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्य्ये।

येना समत्सु सासहः ॥३९॥

पदार्थः—हे (सुभग) शोभन सम्पत्ति वाले पुरुष! आप (येन) जिस से हमारे (वृत्रतूर्य्ये) युद्ध में (भद्रम्) कल्याणकारी (मनः) विचारशक्तियुक्त चित्त (उत) और (भद्राः) कल्याण करने हारी (प्रशस्तयः) प्रशंसा के योग्य प्रजा और जिस से (समत्सु) संग्रामों में (सासहः) अत्यन्त सहनशील वीर पुरुष हों वैसा कर्म (कृणुष्व) कीजिये ॥३९॥

भावार्थः—यहां (सुभग, नः) इन दो पदों की अनुवृत्ति पूर्व मन्त्र से आती है। विद्वान् राजा को चाहिये कि ऐसे कर्म का अनुष्ठान करे जिस से प्रजा और सेना उत्तम हों ॥३९॥

येनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

येना समत्सु सासहोऽव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धताम्।

वनेमा तेऽअभिष्टिभिः ॥४०॥

पदार्थः—हे (सुभग) सुन्दर लक्ष्मीयुक्त पुरुष! आप (येन) जिस के प्रताप से हमारे (समत्सु) युद्ध में (सासहः) शीघ्र सहना हो उस को तथा (भूरि) बहुत प्रकार (शर्धताम्) बल करते हुए हमारे (स्थिरा) स्थिर सेना के साधनों को (अवतनुहि) अच्छे प्रकार बढ़ाइये (ते) आप की (अभिष्टिभिः) इच्छाओं के अनुसार वर्त्तमान हम लोग उस सेना के साधनों का (वनेम) सेवन करें ॥४०॥

भावार्थः—यहां भी (सुभग, नः) इन दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। विद्वानों को उचित है कि बहुत बलयुक्त वीर पुरुषों का उत्साह नित्य बढ़ावें जिससे ये लोग उत्साही हुए राज और प्रजा के हितकारी काम किया करें ॥४०॥

अग्निं तमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः । अस्तमर्वन्तऽ आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिनऽइषंस्तोतृभ्यऽआ भर ॥४१॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष ! (यः) जो (वसुः) सर्वत्र रहने वाला अग्नि है (यम्) जिस (अग्निम्) वाणी के समान अग्नि को (धेनवः) गौ (अस्तम्) घर को (यन्ति) जाती हैं तथा जैसे (नित्यासः) कारणरूप से विनाश रहित (वाजिनः) वेग वाले (आशवः) शीघ्रगामी (अर्वन्तः) घोड़े (अस्तम्) घर को प्राप्त होते हैं वैसे मैं (तम्) उस पूर्वोक्त अग्नि को (मन्ये) मानता हूँ और (स्तोतृभ्यः) स्तुतिकारक विद्वानों के लिये (इषम्) अच्छे अन्नादि पदार्थों को धारण करता हूँ वैसे ही तू उस अग्नि को (आभर) धारण कर ॥४१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । अध्यापक लोग विद्यार्थियों के प्रति ऐसा कहें कि जैसे हम लोग आचरण करें वैसा तुम भी करो । जैसे गौ आदि पशु दिन में इधर उधर भ्रमण कर सायङ्काल अपने घर आके प्रसन्न होते हैं वैसे विद्या के स्थान को प्राप्त होके तुम भी प्रसन्न हुआ करो ॥४१॥

सोऽअग्निरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सोऽअग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः । समर्वन्तो रघुद्रुवः सꣳसुजातासः सूरयऽइषंस्तोतृभ्यऽआ भर ॥४२॥

पदार्थः—हे विद्यार्थी विद्वान् पुरुष ! जैसे मैं (यः) जो (वसुः) निवास का हेतु (अग्निः) अग्नि है उस की (गृणे) अच्छे प्रकार स्तुति करता हूं (यम्) जिस को (धेनवः) वाणी (समायन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त होती हैं और (रघुद्रुवः) धीरज से चलने वाले (अर्वन्तः) प्रशंसित ज्ञानी (सुजातासः) अच्छे प्रकार विद्याओं में प्रसिद्ध (सूरयः) विद्वान् लोग (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने हारे विद्यार्थियों के लिये (इषम्) ज्ञान को (सम्) अच्छे प्रकार धारण करते हैं और जैसे (सः) वह पढ़ानेहारा ईश्वरादि पदार्थों के गुण वर्णन करता है वैसे तू भी इन पूर्वोक्तों को (समाभर) ज्ञान से धारण कर ॥४२॥

भावार्थः—अध्यापकों को चाहिये कि जैसे गौ अपने बछड़ों को तृप्त

करती हैं वैसे विद्यार्थियों को प्रसन्न करें और जैसे घोड़े शीघ्र चल के पहुंचाते हैं वैसे विद्यार्थियों को सब विद्याओं के पार शीघ्र पहुँचावें ॥४२॥

उभे इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीषऽआसनि ।

उतो नऽउत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पतऽइषꣳ स्तोतृभ्यऽआ भर ॥४३॥

पदार्थः—हे (सुश्चन्द्र) सुन्दर आनन्ददाता अध्यापक पुरुष ! आप (सर्पिषः) घी के (दर्वी) चलाने पकड़ने की दो कर्छी से (श्रीणीषे) पकाने के समान (आसनि) मुख में (उभे) पढ़ने पढ़ाने की दो क्रियाओं को (आभर) धारण कीजिये । हे (शवसः) बल के (पते) रक्षकजन तू (उक्थेषु) कहने सुनने योग्य वेदविभागों में (नः) हमारे (उतो) और (स्तोतृभ्यः) विद्वानों के लिये (इषम्) अन्नादि पदार्थों को (उत्पुपूर्याः) उत्कृष्टता से पूरण कर ॥४३॥

भावार्थः—जैसे ऋत्विज् लोग घृत को शोध कर्छी से अग्नि में होम कर और वायु तथा वर्षाजल को रोगनाशक करके सब को सुखी करते हैं वैसे ही अध्यापक लोगों को चाहिये कि विद्यार्थियों के मन अच्छी शिक्षा से शोध कर उन को विद्यादान देके आत्माओं को पवित्र कर सब को सुखी करें ॥४३॥

अग्ने तमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रꣳ हृदिस्पृशम् ।

ऋध्यामा तऽओहैः ॥४४॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अध्यापक जन ! हम लोग (ते) आप से (ओहैः) विद्या का सुख देने वाले (स्तोमैः) विद्या की स्तुतिरूप वेद के भागों से (अद्य) आज (अश्वम्) घोड़े के (न) समान (भद्रम्) कल्याणकारक (क्रतुम्) बुद्धि के (न) समान (तम्) उस (हृदिस्पृशम्) आत्मा के साथ सम्बन्ध करने वाले विद्याबोध को प्राप्त हो के निरन्तर (ऋध्याम) वृद्धि को प्राप्त हों ॥४४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं । अध्येता लोगों को चाहिये कि जैसे अच्छे शिक्षित घोड़े से अभीष्ट स्थान में शीघ्र पहुँच जाते हैं जैसे विद्वान् लोग सब शास्त्रों के बोध से युक्त कल्याण करने हारी बुद्धि से

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष फलों को प्राप्त होते हैं वैसे उन अध्यापकों से पूर्ण विद्या पढ़ प्रशंसित बुद्धि को पा के आप उन्नति को प्राप्त हों तथा वेद के पढ़ाने और उपदेश से अन्य सब मनुष्यों की भी उन्नति करें ॥४४॥

अधा हीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः।
रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥४५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् जन! जैसे तू (भद्रस्य) आनन्दकारक (दक्षस्य) शरीर और आत्मा के बल से युक्त (साधोः) अच्छे मार्ग में प्रवर्त्तमान (ऋतस्य) सत्य को प्राप्त हुए पुरुष की (बृहतः) बड़े विषय वा ज्ञानरूप (क्रतोः) बुद्धि से (रथीः) प्रशंसित रमणसाधन यानों से युक्त (बभूथ) हूजिये वैसे (अध) मङ्गलाचरण-पूर्वक (हि) निश्चय करके हम भी होवें ॥४५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे शास्त्र और योग से उत्पन्न हुई बुद्धि को प्राप्त हो के विद्वान् लोग बढ़ते हैं वैसे ही अध्येता लोगों को भी बढ़ना चाहिये ॥४५॥

एभिर्न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

एभिर्नोऽअर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्वर्ण ज्योतिः।
अग्ने विश्वेभिः सुमनाऽअनीकैः ॥४६॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्याप्रकाश से युक्त पुरुष! आप (नः) हमारे लिये (विश्वेभिः) सब (अनीकैः) सेनाओं के सहित राजा के तुल्य (सुमनाः) मन से सुख-दाता (भव) हूजिये (एभिः) इन पूर्वोक्त (अर्कैः) पूजा के योग्य विद्वानों के सहित (नः) हमारे लिये (ज्योतिः) ज्ञान के प्रकाशक (अर्वाङ्) नीचों को उत्तम करने को जानने वाले (स्वः) सुख के (न) समान हूजिये ॥४६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे राजा अच्छी शिक्षा बलयुक्त सेनाओं से शत्रुओं को जीत के सुखी होता है वैसे ही बुद्धि आदि गुणों से अविद्या से हुए क्लेशों को जीत के मनुष्य लोग सुखी होवें ॥४६॥

अग्निथ्ँ होतारमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्निꣳ होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुꣳ सूनुꣳ सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् । यऽऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा । घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाऽऽजुह्वानस्य सर्पिषः ॥४७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (ऊर्ध्वया) ऊर्ध्वगति के साथ (स्वध्वरः) शुभ कर्म करने से अहिंसनीय (देवाच्या) विद्वानों के सत्कार के हेतु (कृपा) समर्थ क्रिया से (देवः) दिव्य गुणों वाला पुरुष (शोचिषा) दीप्ति के साथ (आजुह्वानस्य) अच्छे प्रकार हवन किये (सर्पिषः) घी और (घृतस्य) जल के सकाश से (विभ्राष्टिम्) विविध प्रकार की ज्योतियों को (अनुवष्टि) प्रकाशित करता है उस (होतारम्) सुख के दाता (जातवेदसम्) उत्पन्न हुए सब पदार्थों में विद्यमान (सहसः) बलवान् पुरुष के (सूनुम्) पुत्र के समान (वसुम्) धनदाता (दास्वन्तम्) दानशील (जातवेदसम्) बुद्धिमानों में प्रसिद्ध (अग्निम्) तेजस्वी अग्नि के (न) समान (विप्रम्) आप्त ज्ञानी का मैं (मन्ये) सत्कार करता हूँ वैसे तुम लोग भी उस को मानो ॥४७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे अच्छे प्रकार सेवन किये विद्वान् लोग विद्या धर्म और अच्छी शिक्षा से सब को आर्य करते हैं वैसे युक्ति से सेवन किया अग्नि अपने गुण कर्म और स्वभावों से सब के सुख की उन्नति करता है ॥४७॥

अग्ने त्वन्न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने त्वं नो अन्तमऽउत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः । वसुरग्निर्वसुश्रवाऽअच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳ रयिन्दाः । तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥४८॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् ! (त्वम्) आप जैसे यह (वसुः) धनदाता (वसुश्रवाः) अन्न और धन का हेतु (अग्निः) अग्नि (रयिम्) धन को (दाः) देता है वैसे (नः) हमारे (अन्तमः) अत्यन्त समीप (त्राता) रक्षक (वरूथ्यः) श्रेष्ठ (उत) और

(शिवः) मङ्गलकारी (भव) हूजिये । हे (शोचिष्ठ) अतितेजस्वी (वीदिवः) बहुत प्रकाशों से युक्त वा कामना वाले विद्वान् ! जैसे हम लोग (त्वा) तुझ को (सखिभ्यः) मित्रों से (सुम्नाय) सुख के लिये (नूनम्) निश्चय (ईमहे) मांगते हैं वैसे (तम्) उस तुझ को सब मनुष्य चाहें .जैसे मैं (द्यु॒मत्तमम्) प्रशंसित प्रकाशों से युक्त तुझ को (अच्छ) अच्छे प्रकार (नक्षि) प्राप्त होता हूं वैसे तू हम को प्राप्त हो ॥४८॥

भावार्थः—इस मन्त्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे मित्र अपने मित्रों को चाहते और उन की उन्नति करते हैं वैसे विद्वान् सब का मित्र सब को सुख देवे ॥४८॥

येन ऋषय इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

येनऽऋषयस्तपसा सत्रमायन्निन्धानाऽअग्निꣳ स्वराभरन्तः ।
तस्मिन्नहं निदधे नाकेऽअग्निं यमाहुर्मनव स्तीर्णबर्हिषम् ॥४९॥

पदार्थः—(येन) जिस (तपसा) धर्मानुष्ठानरूप कर्म से (इन्धानाः) प्रकाशमान (स्वः) सुख को (आभरन्तः) अच्छे प्रकार धारण करते हुए (ऋषयः) वेद का अर्थ जानने वाले ऋषि लोग (सत्रम्) सत्य विज्ञान से युक्त (अग्निम्) विद्यु॒त् आदि अग्नि को (आयन्) प्राप्त हों (तस्मिन्) उस कर्म के होते (नाके) दुःखरहित प्राप्त होने योग्य सुख के निमित्त (मनवः) विचारशील विद्वान् लोग (यम्) जिस (स्तीर्णबर्हिषम्) आकाश को आच्छादन करने वाले (अग्निम्) अग्नि को (आहुः) कहते हैं उस को (अहम्) मैं (नि, दधे) धारण करता हूँ ॥४९॥

भावार्थः—जिस प्रकार से वेदपारग विद्वान् लोग सत्य का अनुष्ठान कर बिजुली आदि पदार्थों को उपयोग में लाके समर्थ होते हैं उसी प्रकार मनुष्यों को समृद्धियुक्त होना चाहिये ॥४९॥

तं पत्नीभिरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विद्वानों को कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

तं पत्नीभिरनु गच्छेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः ।
नाकं गृभ्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठेऽअधि रोचने दिवः ॥५०॥

पदार्थः—हे (देवाः) विद्वान् लोगो ! जैसे तुम लोग (तम्) उस पूर्वोक्त अग्नि

को (गृभ्णानाः) ग्रहण करते हुए (दिवः) प्रकाशयुक्त (सुकृतस्य) सुन्दर वेदोक्त कर्म (अधि) में वा (रोचने) रुचिकारक (तृतीये) विज्ञान से हुए (पृष्ठे) जानने को इष्ट (लोके) विचारने वा देखने योग्य स्थान में वर्त्तमान (पत्नीभिः) अपनी-अपनी स्त्रियों (पुत्रैः) वृद्धावस्था में हुए दुःख से रक्षक पुत्रों (भ्रातृभिः) बन्धुओं (उत, वा) और अन्य सम्बन्धियों तथा (हिरण्यैः) सुवर्णादि के साथ (नाकम्) आनन्द को प्राप्त होते हो वैसे इन सब के सहित हम लोग भी (अनु, गच्छेम) अनुगत हों ॥५०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् लोग अपनी स्त्री, पुत्र, भाई, कन्या, माता, पिता, सेवक और पड़ोसियों को विद्या और अच्छी शिक्षा से धर्मात्मा पुरुषार्थी करके सन्तोषी होते हैं वैसे ही सब मनुष्यों को होना चाहिये ॥५०॥

आ वाच इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

ईश्वर के तुल्य राजा को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ वाचो मध्यमरुहद्भुरण्युरयमग्निः सत्पतिश्चेकितानः ।
पृष्ठे पृथिव्या निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः ॥५१॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष ! (चेकितानः) विज्ञानयुक्त (सत्पतिः) श्रेष्ठों के रक्षक आप (वाचः) वाणी के (मध्यम्) बीच हुए उपदेश को प्राप्त हो के जैसे (अयम्) यह (भुरण्युः) पुष्टिकर्त्ता (अग्निः) विद्वान् (पृथिव्याः) भूमि के (पृष्ठे) ऊपर (निहितः) निरन्तर स्थिर किया (दविद्युतत्) उपदेश से सब को प्रकाशित करता और धर्म पर (आ, रुहत्) आरूढ़ होता है उस के साथ (ये) जो लोग (पृतन्यवः) युद्ध के लिये सेना की इच्छा करते हैं उन को (अधस्पदम्) अपने अधिकार से च्युत जैसे हों वैसा (कृणुताम्) कीजिये ॥५१॥

भावार्थः—विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि जैसे ईश्वर ब्रह्माण्ड में सूर्यलोक को स्थापन करके सब को सुख पहुंचाता है वैसे ही राज्य में विद्या और बल को धारण कर शत्रुओं को जीत के प्रजा के मनुष्यों का सुख से उपकार करें ॥५१॥

अयमग्निरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

धर्मात्माओं के तुल्य अन्य लोगों को वर्तना चाहिये यह विषय
अगले मन्त्र में कहा है ॥

अयमग्निर्वीरतमो वयोधाः सहस्रियो द्योततामप्रयुच्छन् ।
विभ्राजमानः सरिरस्य मध्यऽउप प्र याहि दिव्यानि धाम ॥५२॥

पदार्थः— जो (अयम्) यह (वीरतम) अपने बल से शत्रुओं को अत्यन्त व्याप्त होने तथा (वयोधाः) सब के जीवन को धारण करने वाला (सहस्रियः) असंख्य योद्धजनों के समान योद्धा (सरिरस्य) आकाश के (मध्ये) बीच (विभ्राजमानः) विशेष करके विद्या और न्याय से प्रकाशित सो (अप्रयुच्छन्) प्रमादरहित होते हुए (अग्निः) अग्नि के तुल्य सेनापति आप (द्योतताम्) प्रकाशित हूजिये और (दिव्यानि) अच्छे (धाम) जन्म कर्म और स्थानों को (उप, प्र, याहि) प्राप्त हूजिये ॥५२॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि धर्मात्मा जनों के साथ निवास कर प्रमाद को छोड़ और जितेन्द्रियता से अवस्था बढ़ा के विद्या और धर्म के अनुष्ठान से पवित्र होके परोपकारी होवें ॥५२॥

संप्रच्यवध्वमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

स्त्री पुरुष कैसे विवाह करके क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सम्प्रच्यवध्वमुप संप्रयाताग्ने पथो देवयानान् कृणुध्वम् ।
पुनः कृण्वाना पितरा युवानान्वाताꣳसीत् त्वयि तन्तुमेतम् ॥५३॥

पदार्थः— हे मनुष्यो ! तुम लोग विद्याओं को (उपसंप्रयात) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ (देवयानान्) धार्मिकों के (पथः) मार्गों से (संप्रच्यवध्वम्) सम्यक् चलो, धर्म को (कृणुध्वम्) करो । हे (अग्ने) विद्वान् पितामह ! (त्वयि) तुम्हारे बने रहते ही (पितरा) रक्षा करने वाले माता पिता तुम्हारे पुत्र आदि ब्रह्मचर्य्य को (कृण्वाना) करते हुए (युवाना) पूर्ण युवावस्था को प्राप्त हो और स्वयंवर विवाह कर (पुनः) पश्चात् (एतम्) गर्भाधानादि रीति से यथोक्त (तन्तुम्) सन्तान को (अन्वातांसीत्) अनुकूल उत्पन्न करें ॥५३॥

भावार्थः—कुमार स्त्री पुरुष धर्मयुक्त सेवन किये ब्रह्मचर्य्य से पूर्ण विद्या पढ़ आप धार्मिक हो पूर्ण युवावस्था की प्राप्ति में कन्याओं की पुरुष और पुरुषों की कन्या परीक्षा कर अत्यन्त प्रीति के साथ चित्त से परस्पर आकर्षित होके अपनी इच्छा से विवाह कर धर्मानुकूल सन्तानों को उत्पन्न और सेवा से अपने माता पिता का सन्तोष कर के आप्त विद्वानों के मार्ग से निरन्तर चलें और जैसे धर्म के मार्गों को सरल करें वैसे ही भूमि जल और अन्तरिक्ष के मार्गों को भी बनावें ॥५३॥

उद्बुध्यस्वेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः।
धैवतः स्वरः॥

फिर वही पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

उद् बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सᳬ सृजेथामयं च।
अस्मिन् त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत॥५४॥

पदार्थः— हे (अग्ने) अच्छी विद्या से प्रकाशित स्त्री वा पुरुष! तू (उद्बुध्यस्व) अच्छे प्रकार ज्ञान को प्राप्त हो सब के प्रति (प्रति, जागृहि) अविद्यारूप निद्रा को छोड़ के विद्या से चेतन हो (त्वम्) तू स्त्री (च) और (अयम्) यह पुरुष दोनों (अस्मिन्) इस वर्त्तमान (सधस्थे) एक स्थान में और (उत्तरस्मिन्) आगामी समय में सदा (इष्टापूर्ते) इष्ट सुख विद्वानों का सत्कार, ईश्वर का आराधन, अच्छा संग करना और सत्यविद्या आदि का दान देना यह इष्ट और पूर्णबल, ब्रह्मचर्य्य, विद्या की शोभा, पूर्ण युवा अवस्था, साधन और उपसाधन यह सब पूर्त्त इन दोनों को (सं, सृजेथाम्) सिद्ध किया करो (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (च) और (यजमानः) यज्ञ करने वाले पुरुष, तू इस एक स्थान में (अधि, सीदत) उन्नति पूर्वक स्थिर होओ॥५४॥

भावार्थः—जैसे अग्नि सुगंधादि के होम से इष्ट सुख देता और यज्ञकर्त्ता जन यज्ञ की सामग्री पूरी करता है वैसे उत्तम विवाह किये स्त्री पुरुष इस जगत् में आचरण किया करें। जब विवाह के लिये दृढ़ प्रीति वाले स्त्री पुरुष हों तब विद्वानों को बुला के उन के समीप वेदोक्त प्रतिज्ञा करके पति और पत्नी बनें॥५४॥

येन वहसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम्।
तेनेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे॥५५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष वा विदुषी स्त्री! तू (देवेषु) विद्वानों में (स्वः) सुख को (गन्तवे) प्राप्त होने के लिये (येन) जिस प्रतिज्ञा किये कर्म से (सहस्रम्) गृहाश्रम के असंख्य व्यवहारों को (वहसि) प्राप्त होते हो तथा (येन) जिस विज्ञान से (सर्ववेदसम्) सब वेदों में कहे कर्म को यथावत् करते हो (तेन) उससे

(इमम्) इस गृहाश्रमरूप (यज्ञम्) संगति के योग्य यज्ञ को (नः) हम को (नय) प्राप्त कीजिये ।।५५।।

भावार्थः—विवाह की प्रतिज्ञाओं में यह भी प्रतिज्ञा करानी चाहिये कि हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों जैसे अपने हित के लिये आचरण करो वैसे हम माता पिता आचार्य्य और अतिथियों के सुख के लिये भी निरन्तर वर्त्ताव करो ।।५५।।

अयं त इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ।।

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातोऽअरोचथाः ।
तं जानन्नग्नऽआ रोहाथा नो वर्धया रयिम् ।।५६।।

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् वा विदुषि ! (अयम्) यह (ते) तेरा (ऋत्वियः) ऋतु अर्थात् समय को प्राप्त हुआ (योनिः) घर है (यतः) जिस विद्या के पठन पाठन से (जातः) प्रसिद्ध हुआ वा हुई तू (अरोचथाः) प्रकाशित हो (तम्) उस को (जनान्) जानता वा जानती हुई (आ, रोह) धर्म पर आरूढ़ हो (अथ) इसके पश्चात् (नः) हमारी (रयिम्) सम्पत्ति को (वर्धय) बढ़ाया कर ।।५६।।

भावार्थः—स्त्री पुरुषों से विवाह में यह भी दूसरी प्रतिज्ञा करानी चाहिये कि जिस ब्रह्मचर्य और जिस विद्या के साथ तुम दोनों स्त्री पुरुष कृतकृत्य होते हो उस उस को सदैव प्रचारित किया करो और पुरुषार्थ से धनादि पदार्थ को बढ़ा के उस को अच्छे मार्ग में खर्च किया करो । यह सब हेमन्त ऋतु का व्याख्यान पूरा हुआ ।।५६।।

तपश्चेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । शिशिरर्त्तुर्देवता । स्वराडुत्कृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ।।

अब अगले मन्त्र में शिशिर ऋतु का वर्णन किया है ।।

तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतूऽअग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापऽओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः । येऽअग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवीऽइमे शैशिरावृतूऽअभिकल्पमानाऽइन्द्रमिव देवाऽअभिसंविशन्तु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ।।५७।।

पदार्थः—हे ईश्वर ! (मम) मेरी (ज्यैष्ठ्याय) ज्येष्ठता के लिये (तपः) ताप बढ़ाने का हेतु माघ महीना (च) और (तपस्यः) तापवाला फाल्गुन मास (च) ये दोनों (शैशिरौ) शिशिर ऋतु में प्रख्यात (ऋतू) अपने चिह्नों को प्राप्त कराने वाले सुखदायी होते हैं । आप जिन के (अग्नेः) अग्नि के भी (अन्तःश्लेषः) मध्य में प्रविष्ट (असि) हैं उन दोनों से (द्यावापृथिवी) आकाश भूमि (कल्पेताम्) समर्थ हों (आपः) जल (ओषधयः) ओषधियां (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (सव्रताः) एक प्रकार के नियमों में वर्त्तमान (अग्नयः) विद्युत् आदि अग्नि (पृथक्) अलग-अलग (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें (ये) जो (समनसः) एक प्रकार के मन के निमित्तवाले हैं वे (अग्नयः) विद्युत् आदि अग्नि (इमे) इन (द्यावापृथिवी) आकाश भूमि के (अन्तरा) बीच में होने वाले (शैशिरौ) शिशिर ऋतु के साधक (ऋतू) माघ फाल्गुन महीनों को (अभिकल्पमानाः) समर्थ करते हैं । उन अग्नियों को (इन्द्रमिव) ऐश्वर्य्य के तुल्य (देवाः) विद्वान् लोग (अभिसंविशन्तु) ज्ञानपूर्वक प्रवेश करें । हे स्त्री पुरुषो! तुम दोनों (तया) उस (देवतया) पूजा के योग्य सर्वत्र व्याप्त जगदीश्वर देवता के साथ (अङ्गिरस्वत्) प्राण के समान वर्त्तमान इन आकाश भूमि के तुल्य (ध्रुवे) दृढ़ (सीदतम्) स्थिर होओ ॥५७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि सब ऋतुओं में ईश्वर से ही सुख चाहें ईश्वर विद्युत् अग्नि के बीच व्याप्त है इस कारण सब पदार्थ अपने अपने नियम से कार्य में समर्थ होते हैं विद्वान् लोग सब वस्तुओं में व्याप्त विजुलीरूप अग्नियों के गुण दोष जानें स्त्री पुरुष गृहाश्रम में स्थिरबुद्धि हो शिशिर ऋतु के सुख को भोगें ॥५७॥

परमेष्ठीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । विदुषी देवता । भुरिग् ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

स्त्री को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे ज्योतिष्मतीम् । विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ । सूर्यस्तेऽधिपतिस्तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥५८॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! (परमेष्ठी) महान् आकाश में व्याप्त होकर स्थित परमेश्वर (ज्योतिष्मतीम्) प्रशस्त ज्ञानयुक्त (त्वा) तुझ को (दिवः) प्रकाश के (पृष्ठे) उत्तम भाग में (विश्वस्मै) सब (प्राणाय) प्राण (अपानाय) अपान और (व्यानाय) व्यान आदि की यथार्थ क्रिया होने के लिये (सादयतु) स्थित करे । तू सब स्त्रियों के

लिये (विश्वम्) समस्त (ज्योतिः) ज्ञान के प्रकाश को (यच्छ) दिया कर जिस (ते) तेरा (सूर्यः) सूर्य के समान तेजस्वी (अधिपतिः) स्वामी है (तया) उस (देवतया) अच्छे गुणोंवाले पति के साथ वर्त्तमान (अङ्गिरस्वत्) सूर्य के समान (ध्रुवा) दृढ़ता से (सीद) स्थिर हो ॥५८॥

भावार्थः— इस मन्त्र में उपमा तथा वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जिस परमेश्वर ने जो शरद् ऋतु बनाया है उस की उपासनापूर्वक इस ऋतु को युक्ति से सेवन करके स्त्री पुरुष सदा सुख बढ़ाया करें ॥५८॥

लोकं पृणेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। इन्द्राग्नी देवते। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

लोकं पृण छिद्रं पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम्।
इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन् योनावसीषदन् ॥५९॥

पदार्थः—हे स्त्रि! (त्वम्) तू इस (लोकम्) लोक तथा परलोक को (पृण) सुखयुक्त कर (छिद्रम्) अपनी न्यूनता को (पृण) पूरी कर और (ध्रुवा) निश्चलता से (सीद) घर में बैठ (अथो) इसके अनन्तर (इन्द्राग्नी) उत्तम धनी ज्ञानी तथा (बृहस्पतिः) अध्यापक (अस्मिन्) इस (योनौ) गृहाश्रम में (त्वा) तुझ को (असीषदन्) स्थापित करें ॥५९॥

भावार्थः—अच्छी चतुर स्त्री को चाहिये कि घर के कार्यों के साधनों को पूरे करके सब कार्यों को सिद्ध करें। जैसे विदुषी स्त्री और विद्वान् पुरुषों की गृहाश्रम के कर्त्तव्य कर्मों में प्रीति हो वैसा उपदेश किया करे ॥५९॥

ताऽअस्येत्यस्य प्रियमेधा ऋषिः। आपो देवताः। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

अब राजा प्रजा का धर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

ताऽअस्य सूददोहसः सोमꣳ श्रीणन्ति पृश्नयः।
जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वारोचने दिवः ॥६०॥

पदार्थः—जो विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त (देवानाम्) विद्वानों के (जन्मन्) जन्म विषय में (पृश्नयः) पूछने हारी (सूददोहसः) रसोइया और कार्य्यों के पूर्ण करने वाले पुरुषों से युक्त (त्रिषु) वेदरीति से कर्म उपासना और ज्ञानों तथा

(दिवः) सब के अन्तःप्रकाशक परमात्मा के (रोचने) प्रकाश में वर्त्तमान (विशः) प्रजा हैं (ताः) वे (अस्य) इस सभाध्यक्ष राजा के (सोमम्) सोमवल्ली आदि ओषधियों के रसों से युक्त भोजनीय पदार्थों को (आ) सब ओर से (श्रीणन्ति) पकाती हैं ॥६०॥

भावार्थः—प्रजापालक पुरुषों को चाहिये कि सब प्रजाओं को विद्या और अच्छी शिक्षा के ग्रहण में नियुक्त करें और प्रजा भी स्वयं नियुक्त हों इस के विना कर्म उपासना ज्ञान और ईश्वर का यथार्थ बोध कभी नहीं हो सकता ॥६०॥

इन्द्रं विश्वा इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।
रथीतमꣳ रथीनां वाजानाꣳ सत्पतिं पतिम् ॥६१॥

पदार्थः—(विश्वाः) सब (गिरः) विद्या और शिक्षा से युक्त वाणी (समुद्रव्यचसम्) आकाश के तुल्य व्याप्तिवाले (रथीनाम्) शूरवीरों में (रथीतमम्) उत्तम शूरवीर (वाजानाम्) विज्ञानी पुरुषों के (सत्पतिम्) सत्य व्यवहारों और विद्वानों के रक्षक तथा प्रजाओं के (पतिम्) स्वामी (इन्द्रम्) परम संपत्तियुक्त सभापति राजा को (अवीवृधन्) बढ़ावें ॥६१॥

भावार्थः—राजा और प्रजा के जन राजधर्म से युक्त ईश्वर के समान वर्त्तमान न्यायाधीश सभापति को निरन्तर उत्साह देवें, ऐसे ही सभापति इन प्रजा और राज के पुरुषों को भी उत्साही करे ॥६१॥

प्रोथदश्व इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात् ।
आदस्य वातोऽअनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥६२॥

पदार्थः—हे राजन् ! आप (यवसे) भूसा आदि के लिये (अश्वः) घोड़े के (न) समान प्रजाओं को (प्रोथत्) समर्थ कीजिये (यदा) जब (महः) बड़े (संवरणात्) आच्छादन से (अविष्यन्) रक्षा आदि करते हुए (व्यस्थात्) स्थित होवें (आत्) पुनः (अस्य) इस (ते) आप का (व्रजनम्) चलने तथा (कृष्णम्) आकर्षण करने वाला

(शोचिः) प्रकाश (अस्ति) है (अध) इस के पश्चात् (स्म) ही आप का (वातः) चलने वाला भृत्य (अनु, वाति) पीछे चलता है ॥६२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे रक्षा करने से घोड़े पुष्ट होकर कार्य्य सिद्ध करने में समर्थ होते हैं वैसे ही न्याय से रक्षा की हुई प्रजा सन्तुष्ट होकर राज्य को बढ़ाती हैं ॥६२॥

आयोष्ट्वेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। विदुषी देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

विदुषी स्त्री को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

आयोष्ट्वा सदने सादयाम्यवतश्छायायाᳬं समुद्रस्य हृदये।
रश्मीवतीं भास्वतीमा या द्यां भास्या पृथिवीमोर्वन्तरिक्षम् ॥६३॥

पदार्थः—हे स्त्रि! (या) जो तू (द्याम्) प्रकाश (पृथिवीम्) भूमि और (अन्तरिक्षम्) आकाश को (उरु) बहुत (आ, भासि) प्रकाशित करती है उस (रश्मीवतीम्) शुद्ध विद्या के प्रकाश से युक्त (भास्वतीम्) शोभा को प्राप्त हुई (त्वा) तुझ को (आयोः) न्यायानुकूल चलने वाले चिरंजीवी पुरुष के (सदने) स्थान में और (अवतः) रक्षा आदि करते हुए के (छायायाम्) आश्रय में (आ, सादयामि) अच्छे प्रकार स्थापित तथा (समुद्रस्य) अन्तरिक्ष के (हृदये) बीच (आ) शुद्ध प्रकार से मैं स्थित कराता हूं ॥६३॥

भावार्थः—हे स्त्रि! अच्छे प्रकार पालने हारे पति के आश्रयरूप स्थान में समुद्र के तुल्य चञ्चलतारहित गम्भीरतायुक्त प्यारी तुझ को स्थित करता हूं। तू गृहाश्रम के धर्म का प्रकाश कर पति आदि को सुखी रख और तुझ को भी पति आदि सुखी रक्खें ॥६३॥

परमेष्ठीत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। परमात्मा देवता। आकृतिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

स्त्री पुरुष परस्पर कैसे हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं दिवं यच्छ दिवं दृᳬंह दिवं मा हिᳬंसीः। विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय। सूर्यस्त्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥६४॥

पदार्थः—हे स्त्रि! (परमेष्ठी) परमात्मा (विश्वस्मै) समग्र (प्राणाय)

जीवन के सुख (अपानाय) दुःखनिवृत्ति (व्यानाय) नाना विद्याओं की व्याप्ति (उदानाय) उत्तम बल (प्रतिष्ठायै) सर्वत्र सत्कार और (चरित्राय) श्रेष्ठ कर्मों के अनुष्ठान के लिये (दिवः) कमनीय गृहस्थ व्यवहार के (पृष्ठे) आधार में (प्रथस्वतीम्) बहुत प्रसिद्ध प्रशंसा वाली (व्यचस्वतीम्) प्रशंसित विद्या में व्याप्त जिस (त्वा) तुझ को (सादयतु) स्थापित करे सो तू (दिवम्) न्याय के प्रकाश को (यच्छ) दिया कर (दिवम्) विद्यारूप सूर्य को (दृंह) दृढ़ कर (दिवम्) धर्म के प्रकाश को (मा, हिंसीः) मत नष्ट कर (सूर्यः) चराचर जगत् का स्वामी ईश्वर (मह्या) बड़े अच्छे (स्वस्त्या) सत्कार (शन्तमेन) अतिशय सुख और (छर्दिषा) सत्यासत्य के प्रकाश से (त्वा) तुझ को (अभिपातु) सब ओर से रक्षा करे वह तेरा पति और तू दोनों (तया) उस (देवतया) परमेश्वर देवता के साथ (अङ्गिरस्वत्) प्राण के तुल्य (ध्रुवे) निश्चल (सीदतम्) स्थिर रहो ॥६४॥

भावार्थः—परमेश्वर आज्ञा करता है कि जैसे शिशिर ऋतु सुखदायी होता है वैसे स्त्री-पुरुष परस्पर सन्तोषी हों सब उत्तम कर्मों का अनुष्ठान कर और दुष्ट कर्मों को छोड़ के परमेश्वर की उपासना से निरन्तर आनन्द किया करें ॥६४॥

सहस्रस्येत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। विद्वान् देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि सहस्रस्योन्मासि साहस्रोऽसि सहस्राय त्वा ॥६५॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष वा विदुषी स्त्रि! जिस कारण तू (सहस्रस्य) असंख्यात पदार्थों से युक्त जगत् के (प्रमा) प्रमाण यथार्थ ज्ञान के तुल्य (असि) है (सहस्रस्य) असंख्य विशेष पदार्थों के (प्रतिमा) तोलनसाधन के तुल्य (असि) है (सहस्रस्य) असंख्य स्थूल वस्तुओं के (उन्मा) तोलने की तुला के समान (असि) है (साहस्रः) असंख्य पदार्थ और विद्याओं से युक्त (असि) है इस कारण (सहस्राय) असंख्यात प्रयोजनों के लिये (त्वा) तुझ को परमात्मा व्यवहार में स्थित करे ॥६५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यहां पूर्वमन्त्र से परमेष्ठी, सादयतु इन दो पदों की अनुवृत्ति आती है। तीन साधनों से मनुष्यों के व्यवहार सिद्ध होते हैं। एक तो यथार्थविज्ञान, दूसरा पदार्थ तोलने के लिये तोल के साधन बाट और तीसरा तराजू आदि। यह शिशिर ऋतु का वर्णन पूरा हुआ ॥६५॥

इस अध्याय में ऋतुविद्या का प्रतिपादन होने से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ।

।। यह पन्द्रहवां (१५) अध्याय पूर्ण हुआ ।।

---

* ओ३म् *

अथ षोडशोऽध्याय आरभ्यते

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ।।

नमस्त इत्यस्य परमेष्ठी कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता । आर्षी गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ।।

अब सोलहवें अध्याय का आरम्भ करते हैं ।।
इस के प्रथम मन्त्र में राजधर्म का उपदेश किया है ।।

नमस्ते रुद्र मन्यवऽउतो तऽइषवे नमः । बाहुभ्यामुत ते नमः ।।१।।

पदार्थः—हे (रुद्र) दुष्ट शत्रुओं को रुलानेहारे राजन् ! (ते) तेरे (मन्यवे) क्रोध युक्त वीर पुरुष के लिये (नमः) वज्र प्राप्त हो (उतो) और (इषवे) शत्रुओं को मारनेहारे (ते) तेरे लिये (नमः) अन्न प्राप्त हो (उत) और (ते) तेरे (बाहुभ्याम्) भुजाओं से (नमः) वज्र शत्रुओं को प्राप्त हो ।।१।।

भावार्थः—जो राज्य किया चाहें वे हाथ पांव का बल, युद्ध की शिक्षा तथा शस्त्र और अस्त्रों का संग्रह करें ।।१।।

या त इत्यस्य परमेष्ठी वा कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता । आर्षी स्वराडनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ।।

अब शिक्षक और शिष्य का व्यवहार अगले मन्त्र में कहा है ॥

या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी ।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि ॥२॥

पदार्थः—हे (गिरिशन्त) मेघ वा सत्य उपदेश से सुख पहुंचाने वाले (रुद्र) दुष्टों को भय और श्रेष्ठों के लिये सुखकारी शिक्षक विद्वन् ! (या) जो (ते) आप की (अघोरा) घोर उपद्रव से रहित (अपापकाशिनी) सत्य धर्मों को प्रकाशित करने हारी (शिवा) कल्याणकारिणी (तनूः) देह वा विस्तृत उपदेश रूप नीति है (तया) उस (शन्तमया) अत्यन्त सुख प्राप्ति कराने वाली (तन्वा) देह वा विस्तृत उपदेश की नीति से (नः) हम लोगों को आप (अभि, चाकशीहि) सब ओर से शीघ्र शिक्षा कीजिये ॥२॥

भावार्थः—शिक्षक लोग शिष्यों के लिये धर्मयुक्त नीति की शिक्षा दें और पापों से पृथक् करके कल्याणरूपी कर्मों के आचरण में नियुक्त करें ॥२॥

यामिषुमित्यस्य परमेष्ठी वा कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब राजपुरुषों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे ।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिᳬसीः पुरुषं जगत् ॥३॥

पदार्थः- हे (गिरिशन्त) मेघद्वारा सुख पहुंचानेवाले सेनापति ! जिस कारण तू (अस्तवे) फेंकने के लिये (याम्) जिस (इषुम्) बाण को (हस्ते) हाथ में (बिभर्षि) धारण करता है इसलिये (ताम्) उसको (शिवाम्) मङ्गलकारी (कुरु) कर । हे (गिरित्र) विद्या के उपदेशकों वा मेघों की रक्षा करनेहारे राजपुरुष ! तू (पुरुषम्) पुरुषार्थयुक्त मनुष्यादि (जगत्) संसार को (मा) मत (हिंसीः) मार ॥३॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि युद्धविद्या को जान और शस्त्र अस्त्रों को धारण करके मनुष्यादि श्रेष्ठ प्राणियों को क्लेश न देवें वा न मारें किन्तु मंगलरूप आचरण से सब की रक्षा करें ॥३॥

शिवेनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब वैद्य का कृत्य यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि ।
यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मꣳ सुमनाऽअसत् ॥४॥

पदार्थः—हे (गिरिश) पर्वत वा मेघों में सोनेवाले रोगनाशक वैद्यराज ! तू (सुमनाः) प्रसन्नचित्त होकर आप (यथा) जैसे (नः) हमारा (सर्वम्) सब (जगत्) मनुष्यादि जङ्गम और स्थावर राज्य (अयक्ष्मम्) क्षयी आदि राजरोगों से रहित (असत्) हो वैसे (इत्) ही (शिवेन) कल्याणकारी (वचसा) वचन से (त्वा) तुझ को हम लोग (अच्छा वदामसि) अच्छा कहते हैं ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो पुरुष वैद्यकशास्त्र को पढ़ पर्वतादि स्थानों की ओषधियों वा जलों की परीक्षा कर और सब के कल्याण के लिये निष्कपटता से रोगों को निवृत्त करके प्रिय वाणी से वर्त्ते उस वैद्य का सब लोग सत्कार करें ॥४॥

अध्यवोचदित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । एकरुद्रो देवता । भुरिगार्षी बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक् ।
अहींश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽधराचीः परा सुव ॥५॥

पदार्थः—हे रुद्र रोगनाशक वैद्य ! जो (प्रथमः) मुख्य (दैव्यः) विद्वानों में प्रसिद्ध (अधिवक्ता) सब से उत्तम कक्षा के वैद्यकशास्त्र को पढ़ाने तथा (भिषक्) निदान आदि को जान के रोगों को निवृत्त करनेवाले आप (सर्वान्) सब (अहीन्) सर्प के तुल्य प्राणान्त करनेहारे रोगों को (च) निश्चय से (जम्भयन्) ओषधियों से हटाते हुए (अध्यवोचत्) अधिक उपदेश करें सो आप जो (सर्वाः) सब (अधराचीः) नीच गति को पहुंचाने वाली (यातुधान्यः) रोगकारिणी ओषधि वा व्यभिचारिणी स्त्रियां हैं उनको (परा) दूर (सुव) कीजिये ॥५॥

भावार्थः—राजादि सभासद् लोग सब के अधिष्ठाता मुख्य धर्मात्मा जिसने सब रोगों वा ओषधियों की परीक्षा ली हो उस वैद्य को राज्य और सेना में रख के बल और सुख के नाशक रोगों तथा व्यभिचारिणी स्त्री और पुरुषों को निवृत्त करावें ॥५॥

असावित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदार्षी पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी वही राजधर्म का विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

असौ यस्ताम्रोऽअरुणऽउत बभ्रुः सुमङ्गलः । ये चैनꣳ रुद्राऽअभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषाꣳ हेडऽईमहे ॥६॥

पदार्थः—हे प्रजास्थ मनुष्यो ! (यः) जो (असौ) वह (ताम्रः) ताम्रवत् दृढ़ाङ्गयुक्त (हेडः) शत्रुओं का अनादर करने हारा (अरुणः) सुन्दर गौराङ्ग (बभ्रुः) किञ्चित् पीला वा घुमेला वर्णयुक्त (उत) और (सुमङ्गलः) सुन्दर कल्याणकारी राजा हो (च) और (ये) जो (सहस्रशः) हजारहों (रुद्राः) दुष्ट कर्म करने वालों को रुलानेहारे (अभितः) चारों ओर (दिक्षु) पूर्वादि दिशाओं में (एनम्) इस राजा के (श्रिताः) आश्रय से वसते हों (एषाम्) इन वीरों का आश्रय लेके हम लोग (अवेमहे) विरुद्धाचरण की इच्छा नहीं करते हैं ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो राजा अग्नि के समान दुष्टों को भस्म करता, चन्द्र के तुल्य श्रेष्ठों को सुख देता, न्यायकारी, शुभलक्षणयुक्त और जो इस के तुल्य भृत्य राज्य में सर्वत्र वसें विचरें वा समीप में रहें उन का सत्कार करके उन से दुष्टों का अपमान तुम लोग कराया करो ॥६॥

असौ य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । विराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः । उतैनं गोपाऽअदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्य्यः स दृष्टो मृडयाति नः ॥७॥

पदार्थः—(यः) जो (असौ) वह (नीलग्रीव) नीलमणियों की माला पहिने (विलोहितः) विविध प्रकार के शुभ गुण, कर्म और स्वभाव से युक्त श्रेष्ठ (रुद्रः) शत्रुओं का हिंसक सेनापति (अवसर्पति) दुष्टों से विरुद्ध चलता है । जिस (एनम्) इसको (गोपाः) रक्षक भृत्य (अदृश्रन्) देखें (उत) और (उदहार्य्यः) जल लाने वाली कहारी स्त्रियां (अदृश्रन्) देखें (सः) वह सेनापति (दृष्टः) देखा हुआ (नः) हम सब धार्मिकों को (मृडयाति) सुखी करे ॥७॥

भावार्थः—जो दुष्टों का विरोधी श्रेष्ठों का प्रिय दर्शनीय सेनापति सब सेनाओं को प्रसन्न करे वह शत्रुओं को जीत सके ॥७॥

नमोऽस्त्वित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नमोऽस्तु नीलंग्रीवाय सहस्राक्षायं मीढुषें ।
अथो येऽअंस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः ॥८॥

पदार्थः—(नीलग्रीवाय) जिसका कण्ठ और स्वर शुद्ध हो उस (सहस्राक्षाय) हजारहों भृत्यों के कार्य देखने वाले (मीढुषे) पराक्रमयुक्त सेनापति के लिये मेरा दिया (नमः) अन्न (अस्तु) प्राप्त हो (अथो) इसके अनन्तर (ये) जो (अस्य) इस सेनापति के अधिकार में (सत्वानः) सत्व गुण तथा बल से युक्त पुरुष हैं (तेभ्यः) उनके लिये भी (अहम्) मैं (नमः) अन्नादि पदार्थों को (अकरम्) सिद्ध करूं ॥८॥

भावार्थः—सभापति आदि राजपुरुषों को चाहिये कि अन्नादि पदार्थों से जैसा सत्कार सेनापति का करें वैसा ही सेना के भृत्यों का भी करें ॥८॥

प्रमुञ्चेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रमुंञ्च धन्वंनस्त्वमुभयोरार्त्न्योर्ज्याम् ।
याश्चं ते हस्तऽइषंवः परा ता भंगवो वप ॥९॥

पदार्थः—हे (भगवः) ऐश्वर्ययुक्त सेनापते ! (ते) तेरे (हस्ते) हाथ में (याः) जो (इषवः) वाण हैं (ताः) उन को (धन्वनः) धनुष् के (उभयोः) दोनों (आर्त्न्योः) पूर्व पर किनारों की (ज्याम्) प्रत्यञ्चा में जोड़ के शत्रुओं पर (त्वम्) तू (प्र, मुञ्च) बल के साथ छोड़ (च) और जो तेरे पर शत्रुओं ने वाण छोड़े हुए हों उन को (परा, वप) दूर कर ॥९॥

भावार्थः—सेनापति आदि राजपुरुषों को चाहिये कि धनुष् से वाण चलाकर शत्रुओं को जीतें और शत्रुओं के फेंके हुए वाणों का निवारण करें ॥९॥

विज्यं धनुरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

विज्यं धनुः कपर्दिनो विशंल्यो वाणंवाँ२ऽउत ।
अनेंशन्नस्य याऽइषंवऽआभुरंस्य निषङ्गधिः ॥१०॥

पदार्थः—हे धनुर्वेद को जानने हारे पुरुषो ! (अस्य) इस (कपर्दिनः) प्रशंसित जटाजूट को धारण करने हारे सेनापति का (धनुः) धनुष् (विज्यम्) प्रत्यञ्चा से रहित न होवे तथा यह (विशल्यः) बाण के अग्रभाग से रहित और (आभुः) आयुधों से खाली मत हो (उत) और (अस्य) इस अस्त्र शस्त्रों को धारण करने वाले सेनापति का (निषङ्गधिः) बाणादि शस्त्रास्त्र कोष खाली मत हो तथा यह (बाणवान्) बहुत बाणों से युक्त होवे (याः) जो (यस्य) इस सेनापति के (इषवः) बाण (अनेशन्) नष्ट हो जावें वे इस को तुम लोग नवीन देओ ॥१०॥

भावार्थः—युद्ध की इच्छा करने वाले पुरुषों को चाहिये कि धनुष् की प्रत्यञ्चा आदि को दृढ़ और बहुत से बाणों को धारण करें सेनापति आदि को चाहिये कि लड़ते हुए अपने भृत्यों को देख के यदि उनके पास बाणादि युद्ध के साधन न रहें तो फिर फिर भी दिया करें ॥१०॥

यात इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

सेनापति आदि किन से कैसे उपदेश करने योग्य हैं यह विषय
अगले मन्त्र में कहा है ॥

या ते॑ हे॒तिर्मी॑ढुष्टम॒ हस्ते॑ ब॒भूव॑ ते॒ धनुः॑ ।
तया॒स्मान्वि॒श्वत॒स्त्वम॑य॒क्ष्मया॒ परि॑ भुज ॥११॥

पदार्थः—हे (मीढुष्टम) अत्यन्त वीर्य के सेचक सेनापते ! (या) जो (ते) तेरी सेना है और जो (ते) तेरे (हस्ते) हाथ में (धनुः) धनुष् तथा (हेतिः) वज्र (बभूव) हो (तया) उस (अयक्ष्मया) पराजय आदि की पीड़ा निवृत्त करने हारी सेना से और उस धनुष् आदि से (अस्मान्) हम प्रजा और सेना के पुरुषों की (त्वम्) तू (विश्वतः) सब ओर से (परि) अच्छे प्रकार (भुज) पालना कर ॥११॥

भावार्थः—विद्या और अवस्था में वृद्ध उपदेशक विद्वानों को चाहिये कि सेनापति को ऐसा उपदेश करें कि आप लोगों के अधिकार में जितना सेना आदि बल है उस से सब श्रेष्ठों की सब प्रकार रक्षा किया करें और दुष्टों को ताड़ना दिया करें ॥११॥

परीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

राजा और प्रजा के पुरुषों को परस्पर क्या करना चाहिये इस विषय का
उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

परि॑ ते॒ धन्व॑नो हे॒तिर॒स्मान्वृ॑णक्तु वि॒श्वतः॑ ।
अथो॒ यऽइ॑षु॒धिस्तवा॒रेऽअ॒स्मन्नि धे॑हि॒ तम् ॥१२॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे ।
अथो येऽअस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः ॥८॥

पदार्थः—(नीलग्रीवाय) जिसका कण्ठ और स्वर शुद्ध हो उस (सहस्राक्षाय) हजारहों भृत्यों के कार्य देखने वाले (मीढुषे) पराक्रमयुक्त सेनापति के लिये मेरा दिया (नमः) अन्न (अस्तु) प्राप्त हो (अथो) इसके अनन्तर (ये) जो (अस्य) इस सेनापति के अधिकार में (सत्वानः) सत्व गुण तथा बल से युक्त पुरुष हैं (तेभ्यः) उनके लिये भी (अहम्) मैं (नमः) अन्नादि पदार्थों को (अकरम्) सिद्ध करूं ॥८॥

भावार्थः—सभापति आदि राजपुरुषों को चाहिये कि अन्नादि पदार्थों से जैसा सत्कार सेनापति का करें वैसा ही सेना के भृत्यों का भी करें ॥८॥

प्रमुञ्चेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्त्न्योर्ज्याम् ।
याश्च ते हस्तऽइषवः परा ता भगवो वप ॥९॥

पदार्थः—हे (भगवः) ऐश्वर्ययुक्त सेनापते ! (ते) तेरे (हस्ते) हाथ में (याः) जो (इषवः) बाण हैं (ताः) उन को (धन्वनः) धनुष् के (उभयोः) दोनों (आर्त्न्योः) पूर्व पर किनारों की (ज्याम्) प्रत्यञ्चा में जोड़ के शत्रुओं पर (त्वम्) तू (प्र, मुञ्च) बल के साथ छोड़ (च) और जो तेरे पर शत्रुओं ने बाण छोड़े हुए हों उन को (परा, वप) दूर कर ॥९॥

भावार्थः—सेनापति आदि राजपुरुषों को चाहिये कि धनुष् से बाण चलाकर शत्रुओं को जीतें और शत्रुओं के फेंके हुए बाणों का निवारण करें ॥९॥

विज्यं धनुरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवाँ२ऽउत ।
अनेशन्नस्य याऽइषवऽआभुरस्य निषङ्गधिः ॥१०॥

पदार्थः—हे धनुर्वेद को जानने हारे पुरुषो ! (अस्य) इस (कपर्दिनः) प्रशंसित जटाजूट को धारण करने हारे सेनापति का (धनुः) धनुष् (विज्यम्) प्रत्यञ्चा से रहित न होवे तथा यह (विशल्यः) बाण के अग्रभाग से रहित और (आभुः) आयुधों से खाली मत हो (उत) और (अस्य) इस अस्त्र शस्त्रों को धारण करने वाले सेनापति का (निषङ्गधिः) बाणादि शस्त्रास्त्र कोष खाली मत हो तथा यह (बाणवान्) बहुत बाणों से युक्त होवे (याः) जो (यस्य) इस सेनापति के (इषवः) बाण (अनेशन्) नष्ट हो जावें वे इस को तुम लोग नवीन देओ ॥१०॥

भावार्थः—युद्ध की इच्छा करने वाले पुरुषों को चाहिये कि धनुष् की प्रत्यञ्चा आदि को दृढ़ और बहुत से बाणों को धारण करें सेनापति आदि को चाहिये कि लड़ते हुए अपने भृत्यों को देख के यदि उनके पास बाणादि युद्ध के साधन न रहें तो फिर फिर भी दिया करें ॥१०॥

यात इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

सेनापति आदि किन से कैसे उपदेश करने योग्य हैं यह विषय
अगले मन्त्र में कहा है ॥

या ते॑ हे॒तिर्मी॑ढुष्टम॒ हस्ते॑ ब॒भूव॑ ते॒ धनुः॑ ।
तया॒स्मान्वि॒श्वत॒स्त्वम॑य॒क्ष्मया॒ परि॑ भुज ॥११॥

पदार्थः—हे (मीढुष्टम) अत्यन्त वीर्य के सेचक सेनापते ! (या) जो (ते) तेरी सेना है और जो (ते) तेरे (हस्ते) हाथ में (धनुः) धनुष् तथा (हेतिः) वज्र (बभूव) हो (तया) उस (अयक्ष्मया) पराजय आदि की पीड़ा निवृत्त करने हारी सेना से और उस धनुष् आदि से (अस्मान्) हम प्रजा और सेना के पुरुषों की (त्वम्) तू (विश्वतः) सब ओर से (परि) अच्छे प्रकार (भुज) पालना कर ॥११॥

भावार्थः—विद्या और अवस्था में वृद्ध उपदेशक विद्वानों को चाहिये कि सेनापति को ऐसा उपदेश करें कि आप लोगों के अधिकार में जितना सेना आदि बल है उस से सब श्रेष्ठों की सब प्रकार रक्षा किया करें और दुष्टों को ताड़ना दिया करें ॥११॥

परीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

राजा और प्रजा के पुरुषों को परस्पर क्या करना चाहिये इस विषय का
उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

परि॑ ते॒ धन्व॑नो हे॒तिर॒स्मान्वृ॑णक्तु वि॒श्वतः॑ ।
अथो॒ यऽइ॑षु॒धिस्तवा॒रेऽ अ॒स्मन्नि धे॑हि॒ तम् ॥१२॥

पदार्थः—हे सेनापति ! जो (ते) आप के (धन्वनः) धनुष् को (हेतिः) गति है उस से (अस्मान्) हम लोगों को (विश्वतः) सब ओर से (आरे) दूर में आप (परिवृणक्तु) त्यागिये (अथो) इस के पश्चात् (यः) जो (तव) आप का (इषुधिः) वाण रखने का घर अर्थात् तर्कस है (तम्) उस को (अस्मत्) हमारे समीप से (नि, धेहि) निरन्तर धारण कीजिये ॥१२॥

भावार्थः—राज और प्रजाजनों को चाहिये कि युद्ध और शस्त्रों का अभ्यास कर के शस्त्रादि सामग्री सदा अपने समीप रक्खें उन सामग्रियों से एक दूसरे की रक्षा और सुख की उन्नति करें ॥१२॥

अवतत्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

राजपुरुषों को कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अवतत्य धनुष्ट्वꣳ सहस्राक्ष शतेषुधे ।
निशीर्य्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव ॥१३॥

पदार्थः— हे (सहस्राक्ष) असंख्य युद्ध के कार्यों को देखने हारे (शतेषुधे) शस्त्र अस्त्रों के असंख्य प्रकाश से युक्त सेना के अध्यक्ष पुरुष ! (त्वम्) तू (धनुः) धनुष् और (शल्यानाम्) शस्त्रों के (मुखा) अग्रभागों का (अवतत्य) विस्तार कर तथा उन से शत्रुओं को (निशीर्य) अच्छे प्रकार मार के (नः) हमारे लिये (सुमनाः) प्रसन्न-चित्त (शिवः) मङ्गलकारी (भव) हूजिये ॥१३॥

भावार्थः—राजपुरुष साम, दाम, दण्ड और भेदादि राजनीति के अवयवों के कृत्यों को सब ओर से जान पूर्ण शस्त्र अस्त्रों का सञ्चय कर और उनको तीक्ष्ण कर के शत्रुओं में कठोरचित्त दुःखदायी और अपनी प्रजाओं में कोमलचित्त सुख देनेवाले निरन्तर हों ॥१३॥

नमस्त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नमस्तऽआयुधायानातताय धृष्णवे ।
उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने ॥१४॥

पदार्थः—हे सभापति ! (आयुधाय) युद्ध करने (अनातताय) अपने आशय को गुप्त संकोच में रखने और (धृष्णवे) प्रगल्भता को प्राप्त होने वाले (ते) आपके लिये (नमः) अन्न प्राप्त हो (उत) और (ते) भोजन करने हारे आप के लिये

अन्न देता हूं (तव) आप के (उभाभ्याम्) दोनों (बाहुभ्याम्) बल और पराक्रम से (धन्वने) योद्धा पुरुष के लिये (नमः) अन्न को नियत करूं ॥१४॥

भावार्थः—सेनापति आदि राज्याधिकारियों को चाहिये कि अध्यक्ष और योद्धा दोनों को शस्त्र देके शत्रुओं से निःशङ्क अच्छे प्रकार युद्ध करावें ॥१४॥

मा नो महान्तमित्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रो देवता। निचृदार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

राजपुरुषों को क्या नहीं करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

मा नो॑ म॒हान्त॑मु॒त मा नो॑ऽअर्भ॒कं मा न॒ऽउक्ष॑न्तमु॒त मा न॑ऽउक्षि॒तम्। मा नो॑ वधीः पि॒तरं॒ मोत मा॒तरं॑ मा नः॑ प्रि॒यास्त॒न्वो॑ रुद्र रीरिषः॥१५॥

पदार्थः—हे (रुद्र) युद्ध की सेना के अधिकारी विद्वन् पुरुष! आप (नः) हमारे (महान्तम्) उत्तम गुणों से युक्त पूज्य पुरुष को (मा) मत (उत) और (अर्भकम्) छोटे क्षुद्र पुरुष को (मा) मत (नः) हमारे (उक्षन्तम्) गर्भाधान करने हारे को (मा) मत (उत) और (नः) हमारे (उक्षितम्) गर्भ को (मा) मत (नः) हमारे (पितरम्) पालन करने हारे पिता को (मा) मत (उत) और (नः) हमारी (मातरम्) मान्य करने हारी माता को भी (मा) मत (वधीः) मारिये और (नः) हमारे (प्रियाः) स्त्री आदि के पियारे (तन्वः) शरीरों को (मा) मत (रीरिषः) मारिये ॥१५॥

भावार्थः—योद्धा लोगों को चाहिये कि युद्ध के समय वृद्धों, बालकों, युद्ध से हटने वालों, ज्वानों, गर्भों, योद्धाओं के माता पितरों, सबकी स्त्रियों, युद्ध के देखने वा प्रबन्ध करने वालों और दूतों को न मारें किन्तु शत्रुओं के सम्बन्धी मनुष्यों को सदा वश में रक्खें ॥१५॥

मानस्तोक इत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रो देवता। निचृदार्षी जगतीच्छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

मा न॑स्तो॒के तन॑ये॒ मा न॒ऽआयु॑षि॒ मा नो॒ गोषु॒ मा नो॒ऽअश्वे॑षु रीरिषः। मा नो॑ वी॒रान् रु॑द्र भा॒मिनो॑ वधीर्ह॒विष्म॑न्तः॒ सद॒मित् त्वा॑ हवामहे॥१६॥

पदार्थः—हे (रुद्र) सेनापति! तू (नः) हमारे (तोके) तत्काल उत्पन्न हुए

सन्तान को (मा) मत (नः) हमारे (तनये) पांच वर्ष से ऊपर अवस्था के बालक को (मा) मत (नः) हमारी (आयुषि) अवस्था को (मा) मत (नः) हमारे (गोषु) गौ, भेड़, बकरी आदि को (मा) मत (नः) हमारे और (अश्वेषु) घोड़े, हाथी और ऊंट आदि को (मा) मत (रीरिषः) मार और (नः) हमारे (भामिनः) क्रोध को प्राप्त हुए (वीरान्) शूरवीरों को (मा) मत (वधीः) मार। इस से (हविष्मन्तः) बहुत से देने लेने योग्य वस्तुओं से युक्त हम लोग (सदम्) न्याय में स्थिर (त्वा) तुझ को (इत्) ही (हवामहे) स्वीकार करते हैं ॥१६॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि अपने वा प्रजा के बालकों, कुमार और गौ, घोड़े आदि वीर, उपकारी जीवों की कभी हत्या न करें और बाल्यावस्था में विवाह कर व्यभिचार से अवस्था की हानि भी न करें। गौ आदि पशु दूध आदि पदार्थों को देने से जो सब का उपकार करते हैं उस से उन की सदैव वृद्धि करें ॥१६॥

नमो हिरण्यबाहव इत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रो देवता। निचृदतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

राज प्रजा के पुरुषों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमो हिर॑ण्यबाहवे सेना॒न्ये॒ दि॒शां च॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ वृ॒क्षेभ्यो॒ हरि॑केशेभ्यः पशू॒नां पत॑ये॒ नमो॒ नम॑ः। श॒ष्पिञ्ज॑राय॒ त्विषी॑मते प॒थी॒नां पत॑ये॒ नमो॒ नमो॒ हरि॑केशायोपवी॒तिने॑ पु॒ष्टा॒नां पत॑ये॒ नम॑ः ॥१७॥

पदार्थः—हे शत्रुताड़क सेनाधीश! (हिरण्यबाहवे) ज्योति के समान तीव्र तेजयुक्त भुजा वाले (सेनान्ये) सेना के शिक्षक तेरे लिये (नमः) वज्र प्राप्त हो (च) और (दिशाम्) सर्व दिशाओं के राज्य भागों के (पतये) रक्षक तेरे लिये (नमः) अन्नादि पदार्थ मिले (हरिकेशेभ्यः) जिन में हरणशील सूर्य की किरण प्राप्त हों ऐसे (वृक्षेभ्यः) आम्रादि वृक्षों को काटने के लिये (नमः) वज्रादि शस्त्रों को ग्रहण कर (पशूनाम्) गौ आदि पशुओं के (पतये) रक्षक तेरे लिये (नमः) सत्कार प्राप्त हो (शष्पिञ्जराय) विषयादि बन्धनों से पृथक् (त्विषीमते) बहुत न्याय के प्रकाशों से युक्त तेरे लिये (नमः) नमस्कार और अन्न हो (पथीनाम्) मार्ग में चलने हारों के (पतये) रक्षक तेरे लिये (नमः) आदर प्राप्त हो (हरिकेशाय) हरे केशों वाले (उपवीतिने) सुन्दर यज्ञोपवीत से युक्त तेरे लिये (नमः) अन्नादि पदार्थ प्राप्त हों और

(पुष्टानाम्) नीरोगी पुरुषों की (पतये) रक्षा करने हारे के लिये (नमः) नमस्कार प्राप्त हो ॥१७॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि श्रेष्ठों के सत्कार भूख से पीड़ितों को अन्न देने चक्रवर्त्तिराज्य की शिक्षा पशुओं की रक्षा जाने आने वालों को डाकू और चोर आदि से बचाने यज्ञोपवीत के धारण करने और शरीरादि की पुष्टि के साथ प्रसन्न रहें ॥१७॥

नमो बभ्लुशायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । निचृदष्टिश्छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नमो॑ बभ्लु॒शाय॑ व्याधि॒नेऽन्ना॑नां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ भ॒वस्य॑ हे॒त्यै जग॑तां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ रु॒द्राया॑तता॒यिने॒ क्षेत्रा॑णां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमः॑ सू॒ताया॑हन्त्यै॒ वना॑नां॒ पत॑ये॒ नमः॑ ॥१८॥

पदार्थः—राजपुरुष आदि मनुष्यों को चाहिये कि (बभ्लुशाय) राज्यधारक पुरुषों में सोते हुए (व्याधिने) रोगी के लिये (नमः) अन्न देवें (अन्नानाम्) गेहूं आदि अन्न के (पतये) रक्षक का (नमः) सत्कार करें (भवस्य) संसार की (हेत्यै) वृद्धि के लिये (नमः) अन्न देवें (जगताम्) मनुष्यादि प्राणियों के (पतये) स्वामी का (नमः) सत्कार करें (रुद्राय) शत्रुओं को रुलाने और (आततायिने) अच्छे प्रकार विस्तृत शत्रुसेना को प्राप्त होने वाले को (नमः) अन्न देवें (क्षेत्राणाम्) धान्यादियुक्त खेतों के (पतये) रक्षक को (नमः) अन्न देवें (सूताय) क्षत्रिय से ब्राह्मण की कन्या में उत्पन्न हुए प्रेरक वा वीर पुरुष और (अहन्त्यै) किसी को न मारने हारी राजपत्नी के लिये (नमः) अन्न देवें और (वनानाम्) जंगलों की (पतये) रक्षा करने हारे पुरुष को (नमः) अन्नादि पदार्थ देवें ॥१८॥

भावार्थः—जो अन्नादि से सब प्राणियों का सत्कार करते हैं वे जगत् में प्रशंसित होते हैं ॥१८॥

नमो रोहितायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता विराडतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नमो॒ रोहि॑ताय स्थ॒पत॑ये वृ॒क्षाणां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ भुव॒न्तये॑ वारिवस्कृ॒तायौष॑धीनां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ म॒न्त्रिणे॑ वाणि॒जाय॒ कक्षा॑णां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमः॑ऽउ॒च्चैर्घो॑षायाक्र॒न्दय॑ते पत्ती॒नां पत॑ये॒ नमः॑ ॥१९॥

पदार्थः—राज और प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि (रोहिताय) सुखों की वृद्धि के कर्त्ता और (स्थपतये) स्थानों के स्वामी रक्षक सेनापति के लिये (नमः) अन्न (वृक्षाणाम्) आम्रादि वृक्षों के (पतये) अधिष्ठाता को (नमः) अन्न (भुवन्तये) आचारवान् (वारिवस्कृताय) सेवन करने हारे भृत्य को (नमः) अन्न और (ओषधीनाम्) सोमलतादि ओषधियों के (पतये) रक्षक वैद्य को (नमः) अन्न देवें (मन्त्रिणे) विचार करने हारे राजमन्त्री और (वाणिजाय) वैश्यों के व्यवहार में कुशल पुरुष का (नमः) सत्कार करें (कक्षाणाम्) घरों में रहने वालों के (पतये) रक्षक को (नमः) अन्न और (उच्चैर्घोषाय) ऊंचे स्वर से बोलने तथा (आक्रन्दयते) दुष्टों को रुलाने वाले न्यायाधीश का (नमः) सत्कार और (पत्तीनाम्) सेना के अवयवों की (पतये) रक्षा करने हारे पुरुष का (नमः) सत्कार करें ।।१९।।

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि वन आदि के रक्षक मनुष्यों को अन्नादि पदार्थ देके वृक्षों और ओषधि आदि पदार्थों की उन्नति करें ।।१९।।

नमः कृत्स्नायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । अतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

नमः॑ कृत्स्नाय॒तया॒ धाव॑ते॒ सत्त्व॑नां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमः॒ सह॑मानाय निव्याधिन॑ऽआव्याधिनी॑नां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ निष॒ङ्गिणे॑ ककु॒भाय॑ स्तेनानां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ निचे॒रवे॑ परिच॒रायार॑ण्याना॒ं पत॑ये॒ नमः॑ ।।२०।।

पदार्थः—मनुष्य लोग (कृत्स्नायतया) सम्पूर्ण प्राप्ति के अर्थ (धावते) इधर उधर जाने आने वाले को (नमः) अन्न देवें (सत्वनाम्) प्राप्त पदार्थों की (पतये) रक्षा करने हारे का (नमः) सत्कार करें (सहमानाय) बलयुक्त और (निव्याधिने) शत्रुओं को निरन्तर ताड़ना देने हारे पुरुष को (नमः) अन्न देवें (आव्याधिनीनाम्) अच्छे प्रकार शत्रुओं की सेनाओं को मारने हारी अपनी सेनाओं के (पतये) रक्षक सेनापति का (नमः) आदर करें (निषंगिणे) बहुतसे अच्छे बाण, तलवार, भुशुण्डी, शतघ्नी अर्थात् बन्दूक तोप और तोमर आदि शस्त्र जिस के हों उस को (नमः) अन्न देवें (निचेरवे) निरन्तर पुरुषार्थ के साथ विचरने तथा (परिचराय) धर्म, विद्या, माता, स्वामी और मित्रादि की सब प्रकार सेवा करने वाले (ककुभाय) प्रसन्नमूर्त्ति पुरुष का (नमः) सत्कार करें (स्तेनानाम्) अन्याय से परधन लेने हारे प्राणियों को (पतये) जो दण्ड आदि से शुष्क करता हो उस को (नमः) वज्र से मारें (अरण्यानाम्) वन जंगलों के (पतये) रक्षक पुरुष को (नमः) अन्नादि पदार्थ देवें ।।२०।।

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि पुरुषार्थियों का उत्साह के लिये सत्कार, प्राणियों के ऊपर दया, अच्छी शिक्षित सेना को रखना, चोर आदि को दण्ड, सेवकों की रक्षा और वनों को नहीं काटना, इस सब को कर राज्य की वृद्धि करें ॥२०॥

नमो वञ्चत इत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रा देवताः। निचृदतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमो वञ्चते परिवञ्चते स्तायूनां पतये नमो नमो निषङ्गिणऽ इषुधिमते तस्कराणां पतये नमो नमः सृकायिभ्यो जिघांसद्भ्यो मुष्णतां पतये नमो नमोऽसिमद्भ्यो नक्तं चरद्भ्यो विकृन्तानां पतये नमः ॥२१॥

पदार्थः—राजपुरुष (वञ्चते) छल से दूसरों के पदार्थों को हरने वाले (परिवञ्चते) सब प्रकार कपट के साथ वर्त्तमान पुरुष को (नमः) वज्र का प्रहार और (स्तायूनाम्) चोरी से जीने वालों के (पतये) स्वामी को (नमः) वज्र से मारें (निषंगिणे) राज्यरक्षा के लिये निरन्तर उद्यत (इषुधीमते) प्रशंसित बाणों को धारण करने हारे को (नमः) अन्न देवें (तस्कराणाम्) चोरी करने हारों को (पतये) उस कर्म में चलाने हारे को (नमः) वज्र और (सृकायिभ्यः) वज्र से सज्जनों को पीड़ित करने को प्राप्त होने और (जिघांसद्भ्यः) मारने की इच्छा वालों को (नमः) वज्र से मारें (मुष्णताम्) चोरी करते हुओं को (पतये) दण्डप्रहार से पृथिवी में गिराने हारे का (नमः) सत्कार करें (असिमद्भ्यः) प्रशंसित खड्गों के सहित (नक्तम्) रात्रि में (चरद्भ्यः) घूमने वाले लुटेरों को (नमः) शस्त्रों से मारें और (विकृन्तानाम्) विविध उपायों से गांठ काट के पर-पदार्थों को लेने हारे गठिकटों को (पतये) मार के गिराने हारे का (नमः) सत्कार करें ॥२१॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि कपटव्यवहार से छलने और दिन वा रात में अनर्थ करनेहारों को रोक के धर्मात्माओं का निरन्तर पालन किया करें ॥२१॥

नमऽउष्णीषिण इत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रा देवताः। निचृदष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमः उष्णीषिणे गिरिचराय कुलुञ्चानां पतये नमो नमः इषुमद्भ्यो धन्वायिभ्यश्च वो नमो नमः आतन्वानेभ्यः प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमो नमः आयच्छद्भ्योऽस्यद्भ्यश्च वो नमः ॥२२॥

पदार्थः—हम राज और प्रजा के पुरुष (उष्णीषिणे) प्रशंसित पगड़ी को धारण करने वाले ग्रामपति और (गिरिचराय) पर्वतों में विचरने वाले जंगली पुरुष का (नमः) सत्कार और (कुलुञ्चानाम्) बुरे स्वभाव से दूसरों के पदार्थ खोंसने वालों को (पतये) गिराने हारे का (नमः) सत्कार करते (इषुमद्भ्यः) बहुत बाणों वाले को (नमः) अन्न (च) तथा (धन्वायिभ्यः) धनुषों को प्राप्त होने वाले (वः) तुम लोगों के लिये (नमः) अन्न (आतन्वानेभ्यः) अच्छे प्रकार सुख के फैलाने हारों का (नमः) सत्कार (च) और (प्रतिदधानेभ्यः) शत्रुओं के प्रति शस्त्र धारण करने हारे (वः) तुम को (नमः) सत्कार प्राप्त (आयच्छद्भ्यः) दुष्टों को बुरे कर्मों से रोकने वालों को (नमः) अन्न देते (च) और (अस्यद्भ्यः) दुष्टों पर शस्त्रादि को छोड़ने वाले (वः) तुम्हारे लिये (नमः) सत्कार करते हैं ॥२२॥

भावार्थः—राज और प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि प्रधान पुरुष आदि का वस्त्र और अन्नादि के दान से सत्कार करें ॥२२॥

नमो विसृजद्भ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रा देवताः। निचृदतिजगतीच्छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमो विसृजद्भ्यो विध्यद्भ्यश्च वो नमो नमः स्वपद्भ्यो जाग्रद्भ्यश्च वो नमो नमः शयानेभ्यऽआसीनेभ्यश्च वो नमो नमस्तिष्ठद्भ्यो धावद्भ्यश्च वो नमः ॥२३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! तुम ऐसा सब को जनाओ कि हम लोग (विसृजद्भ्यः) शत्रुओं पर शस्त्रादि छोड़ने वालों को (नमः) अन्नादि पदार्थ (च) और (विध्यद्भ्यः) शस्त्रों से शत्रुओं को मारते हुए (वः) तुमको (नमः) अन्न (स्वपद्भ्यः) सोते हुओं के लिये (नमः) वज्र (च) और (जाग्रद्भ्यः) जागते हुए (वः) तुम को (नमः) अन्न (शयानेभ्यः) निद्रालुओं को (नमः) अन्न (च) और (आसीनेभ्यः) आसन पर बैठे हुए (वः) तुम को (नमः) अन्न (तिष्ठद्भ्यः) खड़े हुओं को (नमः) अन्न (च) और (धावद्भ्यः) शीघ्र चलते हुए (वः) तुम लोगों को (नमः) अन्न देवेंगे ॥२३॥

भावार्थः—गृहस्थों को चाहिये कि करुणामय वचन बोल और अन्नादि पदार्थ देके सब प्राणियों को सुखी करें ॥२३॥

नमः सभाभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नमः॑ स॒भाभ्यः॑ स॒भाप॑तिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमोऽश्वे॒भ्योऽश्व॑पतिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॑ऽआव्या॒धिनी॑भ्यो वि॒विध्य॑न्तीभ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॒ऽउग॑णाभ्यस्तृꣳह॒तीभ्य॑श्च वो॒ नमः॑ ॥२४॥

पदार्थः—मनुष्यों को सब के प्रति ऐसे कहना चाहिये कि हम लोग (सभाभ्यः) न्याय आदि के प्रकाश से युक्त स्त्रियों का (नमः) सत्कार (च) और (सभापतिभ्यः) सभाओं के रक्षक (वः) तुम राजाओं का (नमः) सत्कार करें (अश्वेभ्यः) घोड़ों को (नमः) अन्न (च) और (अश्वपतिभ्यः) घोड़ों के रक्षक (वः) तुम को (नमः) अन्न तथा (आव्याधिनीभ्यः) शत्रुओं की सेनाओं को मारने हारी अपनी सेनाओं के लिये (नमः) अन्न देवें (च) और (विविध्यन्तीभ्यः) शत्रुओं के वीरों को मारती हुई (वः) तुम स्त्रियों का (नमः) सत्कार करें (उगणाभ्यः) विविध तर्कों वाली स्त्रियों को (नमः) अन्न (च) और (तृंहतीभ्यः) युद्ध में मारती हुई (वः) तुम स्त्रियों के लिये (नमः) अन्न देवें तथा यथायोग्य सत्कार किया करें ॥२४॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सभा और सभापतियों से ही राज्य की व्यवस्था करें। कभी एक राजा की आधीनता से स्थिर न हों, क्योंकि एक पुरुष से बहुतों के हिताहित का विचार कभी नहीं हो सकता इससे ॥२४॥

नमो गणेभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । भुरिक् शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नमो॑ ग॒णेभ्यो॑ ग॒णप॑तिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॒ व्राते॑भ्यो॒ व्रात॑पतिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॒ गृत्से॑भ्यो॒ गृत्स॑पतिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॒ विरू॑पेभ्यो वि॒श्वरू॑पेभ्यश्च वो॒ नमः॑ ॥२५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (गणेभ्यः) सेवकों को (नमः) अन्न (च) और (गणपतिभ्यः) सेवकों के रक्षक (वः) तुम लोगों को (नमः) अन्न देवें

(व्रातेभ्यः) मनुष्यों का (नमः) सत्कार (च) और (व्रातपतिभ्यः) मनुष्यों के रक्षक (व.) तुम्हारा (नम.) सत्कार (गृत्सेभ्यः) पदार्थों के गुणों को प्रकट करने वाले विद्वानों का (नमः) सत्कार (च) तथा (गृत्सपतिभ्यः) बुद्धिमानों के रक्षक (व) तुम लोगों का (नमः) सत्कार (विरूपेभ्यः)विविधरूप वालों का (नमः) सत्कार (च) और (विश्वरूपेभ्यः) सब रूपों से युक्त (वः) तुम लोगों का (नमः) सत्कार करें वैसे तुम लोग भी देओ, सत्कार करो ॥२५॥

भावार्थः—सब मनुष्य सम्पूर्ण प्राणियों का उपकार विद्वानों का सङ्ग समग्र शोभा और विद्याओं को धारण करके सन्तुष्ट हों ॥२५॥

नमः सेनाभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रा देवताः। भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो नमो रथिभ्योऽअरथेभ्यश्च वो नमो नमः क्षत्तृभ्यः संग्रहीतृभ्यश्च वो नमो नमो महद्भ्योऽअर्भकेभ्यश्च वो नमः ॥२६॥

पदार्थः—हे राज और प्रजा के पुरुषो! जैसे हम लोग (सेनाभ्यः) शत्रुओं को बांधने हारे सेनास्थ पुरुषों का (नमः) सत्कार करते (च) और (वः) तुम (सेनानिभ्यः) सेना के नायक प्रधान पुरुषों को (नमः) अन्न देते हैं (रथिभ्यः) प्रशंसित रथों वाले पुरुषों का (नमः) सत्कार (च) और (वः) तुम (अरथेभ्यः) रथों से पृथक् पैदल चलने वालों का (नमः) सत्कार करते हैं (क्षत्तृभ्यः) क्षत्रिय की स्त्री में शूद्र से उत्पन्न हुए वर्णसंकर के लिये (नमः) अन्नादि पदार्थ देते (च) और (वः) तुम (संग्रहीतृभ्यः) अच्छे प्रकार युद्ध की सामग्री को ग्रहण करने हारों का (नमः) सत्कार करते हैं (महद्भ्यः) विद्या और अवस्था से वृद्ध पूजनीय महाशयों को (नमः) अच्छा पकाया हुआ अन्नादि पदार्थ देते (च) और (वः) तुम (अर्भकेभ्यः) क्षुद्राशय शिक्षा के योग्य विद्यार्थियों का (नमः) निरन्तर सत्कार करते हैं वैसे तुम लोग भी दिया, किया करो ॥२६॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि सब भृत्यों को सत्कार और शिक्षापूर्वक अन्नादि पदार्थों से उन्नति देके धर्म से राज्य का पालन करें ॥२६॥

नमस्तक्षभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रा देवताः। निचृच्छक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

विद्वान् लोगों को किन का सत्कार करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमो नमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमो नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः ॥२७॥

पदार्थः -- हे मनुष्यो ! जैसे राजा आदि हम लोग (तक्षभ्यः) पदार्थों को सूक्ष्मक्रिया से बनाने हारे तुम को (नमः) अन्न देते (च) और (रथकारेभ्यः) बहुतसे विमानादि यानों को बनाने हारे (वः) तुम लोगों का (नमः) परिश्रमादि का धन देके सत्कार करते हैं (कुलालेभ्यः) प्रशंसित मट्टी के पात्र बनाने वालों को (नमः) अन्नादि पदार्थ देते (च) और (कर्मारेभ्यः) खड्ग, बन्दूक और तोप आदि शस्त्र बनाने वाले (व) तुम लोगों का (नमः) सत्कार करते हैं (निषादेभ्यः) वन और पर्वतादि में रह कर दुष्ट जीवों को ताड़ना देने वाले तुम को (नमः) अन्नादि देते (च) और (पुञ्जिष्ठेभ्यः) श्वेतादि वर्णों वा भाषाओं में प्रवीण (वः) तुम्हारा (नमः) सत्कार करते हैं (श्वनिभ्यः) कुत्तों को शिक्षा करने हारे तुम को (नमः) अन्नादि देते (च) और (मृगयुभ्यः) अपने आत्मा से वन के हरिण आदि पशुओं को चाहने वाले तुम लोगों का (नमः) सत्कार करते हैं वैसे तुम लोग भी करो ॥२७॥

भावार्थः—विद्वान् लोग जो पदार्थविद्या को जान के अपूर्व कारीगरी-युक्त पदार्थों को बनावें उनको पारितोषिक आदि देके प्रसन्न करें और जो कुत्ते आदि पशुओं को अन्नादि से रक्षा कर तथा अच्छी शिक्षा देके उपयोग में लावें उनको सुख प्राप्त करावें ॥२७॥

नमः श्वभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । आर्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

मनुष्य लोग किन से कैसा उपकार लेवें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमो नमो भवाय च रुद्राय च नमः शर्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च ॥२८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम परीक्षक लोग (श्वभ्यः) कुत्तों को (नमः) अन्न देवें (च) और (वः) तुम (श्वपतिभ्यः) कुत्तों को पालने वालों को (नमः) अन्न

देवें तथा सत्कार करें (च) तथा (भवाय) जो शुभगुणों में प्रसिद्ध हो उस जन का (नमः) सत्कार (च) और (रुद्राय) दुष्टों को रुलाने हारे वीर का सत्कार (च) तथा (शर्वाय) दुष्टों को मारने वालों को (नमः) अन्नादि देते (च) और (पशुपतये) गौ आदि पशुओं के पालक को अन्न (च) और (नीलग्रीवाय) सुन्दर वर्ण वाले कण्ठ से युक्त (च) और (शितिकण्ठाय) तीक्ष्ण वा काले कण्ठ वाले को (नमः) अन्न देते और सत्कार करते हैं वैसे तुम भी दिया, किया करो ॥२८॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि कुत्ते आदि पशुओं को अन्नादि से बढ़ा के उनसे उपकार लेवें और पशुओं के रक्षकों का सत्कार भी करें ॥२८॥

नमः कपर्दिने इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता । भुरिगतिजगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

गृहस्थ लोगों को किनका सत्कार करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नमः॑ कप॒र्दिने॑ च॒ व्यु॑प्तकेशाय च॒ नमः॑ सहस्रा॒क्षाय॑ च श॒तध॑न्वने च॒ नमो॑ गिरि॒श॒याय॑ च शिपिवि॒ष्टाय॑ च॒ नमो॑ मी॒ढुष्ट॑माय॒ चेषु॑मते च ॥२९॥

पदार्थः—गृहस्थ लोगों को चाहिये कि (कपर्दिने) जटाधारी ब्रह्मचारी (च) और (व्युप्तकेशाय) समस्त केश मुंडाने हारे संन्यासी (च) और संन्यास चाहते हुए को (नमः) अन्न देवें (च) तथा (सहस्राक्षाय) असंख्य शास्त्र के विषयादि को देखने वाले विद्वान् ब्राह्मण का (च) और (शतधन्वने) धनुष् आदि असंख्य शस्त्रविद्याओं के शिक्षक क्षत्रिय का (नमः) सत्कार करें (गिरिशयाय) पर्वतों के आश्रय से सोने हारे वानप्रस्थ का (च) और (शिपिविष्टाय) पशुओं के पालक वैश्य आदि (च) और शूद्र का (नमः) सत्कार करें (मीढुष्टमाय) वृक्ष वगीचा और खेत आदि को अच्छे प्रकार सींचने वाले किसान लोगों (च) और माली आदि को (इषुमते) प्रशंसित बाणों वाले वीर पुरुष को (च) भी (नमः) अन्नादि देवें और सत्कार करें ॥२९॥

भावार्थः—गृहस्थों को योग्य है कि ब्रह्मचारी आदि को सत्कारपूर्वक विद्यादान करें और करावें तथा संन्यासी आदि की सेवा करके विशेष विज्ञान का ग्रहण किया करें ॥२९॥

नमो ह्रस्वायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । विराडार्षी त्रिष्टुप्
छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नमो॑ ह्र॒स्वाय॑ च वा॒म॒नाय॑ च॒ नमो॑ बृह॒ते च॒ वर्षी॑यसे च॒ नमो॑ वृ॒द्धाय॑ च स॒वृधे॑ च॒ नमोऽग्र्या॑य च प्रथ॒माय॑ च ॥३०॥

पदार्थः—जो गृहस्थ लोग (ह्रस्वाय) वालक (च) और (वामनाय) प्रशंसित ज्ञानी (च) तथा मध्यम विद्वान् को (नमः) अन्न देते हैं (बृहते) बड़े (च) और (वर्षीयसे) विद्या में अतिवृद्ध (च) तथा विद्यार्थी का (नमः) सत्कार (वृद्धाय) अवस्था में अधिक (च) और (सवृधे) अपने समानों के साथ बढ़ने वाले (च)) तथा सव के मित्र का (नमः) सत्कार (च) और (अग्र्याय) सत्कर्म करने में सब से पहिले उद्यत होने वाले (च) तथा (प्रथमाय) प्रसिद्ध पुरुष का (नमः) सत्कार करते हैं ॥३०॥

भावार्थः—गृहस्थ मनुष्यों को उचित है कि अन्नादि पदार्थों से वालक आदि का सत्कार करके अच्छे व्यवहार की उन्नति करें ॥३०॥

नमऽआशव इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । स्वराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब उद्योग कैसे करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नम॑ऽआशवे॑ चाजि॒राय॑ च॒ नमः॒ शीघ्र्या॑य च॒ शीभ्या॑य च॒ नम॒ऽऊर्म्या॑य चावस्व॒न्या॒य च॒ नमो॑ नादे॒याय॑ च॒ द्वीप्या॑य च ॥३१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो तुम लोग (आशवे) वायु के तुल्य मार्ग में शीघ्रगामी (च) और (अजिराय) असवारों को फेंकने वाले घोड़े (च) तथा हाथी आदि को (नमः) अन्न (शीघ्र्याय) शीघ्र चलने में उत्तम (च) और (शीभ्याय) शीघ्रता करने हारों में प्रसिद्ध (च) तथा मध्यस्थ जन को (नमः) अन्न (ऊर्म्याय) जलतरङ्गों में वायु के समान वर्त्तमान (च) और (अवस्वन्याय) अनुत्तम शब्दों में प्रसिद्ध होने वाले के लिये (च) तथा दूर से सुनने हारे को (नमः) अन्न (नादेयाय) नदी में रहने (च) और (द्वीप्याय) जल के बीच टापू में रहने (च) तथा उन के सम्बन्धियों को (नमः) अन्न देते रहो तो आप लोगों को सम्पूर्ण आनन्द प्राप्त हों ॥३१॥

भावार्थः—जो क्रियाकौशल से बनाये विमानादि यानों और घोड़ों से शीघ्र चलते हैं वे किस किस द्वीप वा देश को न जाके राज्य के लिये धन को नहीं प्राप्त होते किन्तु सर्वत्र जा आ के सब को प्राप्त होते हैं ॥३१॥

नमो ज्येष्ठायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य लोग परस्पर कैसे सत्कार करने वाले हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नमो॑ ज्येष्ठाय॑ च कनि॒ष्ठाय॑ च॒ नमः॑ पूर्व॒जाय॑ चापर॒जाय॑ च॒ नमो॑ मध्य॒माय॑ चापगल्भाय॑ च॒ नमो॑ जघ॒न्या॒य च बु॒ध्न्या॒य च ॥३२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग (ज्येष्ठाय) अत्यन्त वृद्धों (च) और (कनिष्ठाय) अति बालकों को (नमः) सत्कार और अन्न (च) तथा (पूर्वजाय) ज्येष्ठभ्राता वा ब्राह्मण (च) और (अपरजाय) छोटे भाई वा नीच का (च) भी (नमः) सत्कार वा अन्न (मध्यमाय) बन्धु, क्षत्रिय वा वैश्य (च) और (अपगल्भाय) ढीठपन छोड़े हुए सरल स्वभाव वाले (च) इन सब का (नमः) सत्कार आदि (च) और (जघन्याय) नीचकर्मकर्त्ता शूद्र वा म्लेच्छ (च) तथा (बुध्न्याय) अन्तरिक्ष में हुए मेघ के तुल्य वर्त्तमान दाता पुरुष का (नमः) अन्नादि से सत्कार करो ॥३२॥

भावार्थः—परस्पर मिलते समय सत्कार करना हो तब (नमस्ते) इस वाक्य का उच्चारण करके छोटे बड़ों, बड़े छोटों, नीच उत्तमों, उत्तम नीचों और क्षत्रियादि ब्राह्मणों वा ब्राह्मणादि क्षत्रियादिकों का निरन्तर सत्कार करें। सब लोग इसी वेदोक्त प्रमाण से सर्वत्र शिष्टाचार में इसी वाक्य का प्रयोग करके परस्पर एक दूसरे का सत्कार करने से प्रसन्न होवें ॥३२॥

नमः सोभ्यायेत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रा देवताः। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नमः॒ सोभ्या॑य च प्रतिस॒र्या॒य च॒ नमो॒ याम्या॑य च॒ क्षेम्या॑य च॒ नमः॒ श्लोक्या॑य चावसा॒न्या॒य च॒ नमऽउर्व॒र्या॒य च॒ खल्या॑य च ॥३३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (सोभ्याय) ऐश्वर्ययुक्तों में प्रसिद्ध (च) और (प्रतिसर्याय) धर्मात्माओं में उत्पन्न हुए (च) तथा धनी धर्मात्माओं को (नमः) अन्न दे (याम्याय) न्यायकारियों में उत्तम (च) और (क्षेम्याय) रक्षा करने वालों में चतुर (च) और न्यायाधीशादि को (नमः) अन्न दे और (श्लोक्याय) वेदवाणी में प्रवीण (च) और (अवसान्याय) कार्यसमाप्तिव्यवहार में कुशल (च) तथा आरम्भ करने में उत्तम पुरुष का (नमः) सत्कार (उर्वर्याय) महान् पुरुषों के स्वामी (च) और (खल्याय) अच्छे अन्नादि पदार्थों के सञ्चय करने में प्रवीण (च) और व्यय करने

में विचक्षण पुरुष का (नमः) सत्कार करके इन सब को आप लोग आनन्दित करो ॥३३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में अनेक चकारों से और भी उपयोगी अर्थ लेना और उनका सत्कार करना चाहिये। प्रजास्थ पुरुष न्यायाधीशों, न्यायाधीश प्रजास्थों का सत्कार, पति आदि स्त्री आदि की और स्त्री आदि पति आदि पुरुषों की प्रसन्नता करें ॥३३॥

नमो वन्यायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। रुद्रा देवताः। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

राजपुरुषों को कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमो वन्याय च कक्ष्याय च नमः श्रवाय च प्रतिश्रवाय च नमऽ आशुषेणाय चाशुरथाय च नमः शूराय चावभेदिने च ॥३४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जो लोग (वन्याय) जंगल में रहने (च) और (कक्ष्याय) वन के समीप कक्षाओं में (च) तथा गुफा आदि में रहने वालों को (नमः) अन्न देवें (श्रवाय) सुनने वा सुनाने के हेतु (च) और (प्रतिश्रवाय) प्रतिज्ञा करने (च) तथा प्रतिज्ञा को पूरी करने हारे का (नमः) सत्कार करें (आशुषेणाय) शीघ्रगामिनी सेना वाले (च) और (आशुरथाय) शीघ्र चलने हारे रथों के स्वामी (च) तथा सारथि आदि को (नमः) अन्न देवें (शूराय) शत्रुओं को मारने (च) और (अवभेदिने) शत्रुओं को छिन्न भिन्न करने वाले (च) तथा दूतादि का (नमः) सत्कार करें उन का सर्वत्र विजय होवे ॥३४॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि वन तथा कक्षाओं में रहने वाले अध्येता और अध्यापकों, बलिष्ठ सेनाओं, शीघ्र चलने हारे यानों में बैठने वाले वीरों और दूतों को अन्न धनादि से सत्कारपूर्वक उत्साह देके सदा विजय को प्राप्त हों ॥३४॥

नमो बिल्मिन इत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रा देवताः। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

योद्धाओं की रक्षा कैसे करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नमो बिल्मिने च कवचिने च नमो वर्मिणे च वरूथिने च नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च ॥३५॥

पदार्थः—हे राजन् और प्रजा के अध्यक्ष पुरुषो! आप लोग (बिल्मिने) प्रशंसित धारण वा पोषण करने (च) और (कवचिने) शरीर के रक्षक कवच को

धारण करने (च) तथा उन के सहायकारियों का (नमः) सत्कार करें (वर्मिणे) शरीररक्षा के बहुत साधनों से युक्त (च) और (वरूथिने) प्रशंसित घरों वाले (च) तथा घर आदि के रक्षकों को (नमः) अन्नादि देवें (श्रुताय) शुभ गुणों में प्रख्यात (च) और (श्रुतसेनाय) प्रख्यात सेना वाले (च) तथा सेनाओं का (नमः) सत्कार (च) और (दुन्दुभ्याय) बाजे बजाने में चतुर बजन्तरी (च) तथा (आहनन्याय) वीरों को युद्ध में उत्साह बढ़ने के बाजे बजाने में कुशल पुरुष का (नमः) सत्कार कीजिये जिस से तुम्हारा पराजय कभी न हो ॥३५॥

भावार्थः—राजा और प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि योद्धा लोगों की सब प्रकार रक्षा, सब के सुखदायी घर, खाने पीने के योग्य पदार्थ, प्रशंसित पुरुषों का संग और अत्युत्तम बाजे आदि दे के अपने अभीष्ट कार्यों को सिद्ध करें ॥३५॥

नमो धृष्णव इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नमो॑ धृ॒ष्णवे॑ च प्रमृ॒शाय॑ च॒ नमो॑ निष॒ङ्गिणे॑ चेषुधि॒मते॑ च॒ नम॑स्तीक्ष्णेष॑वे चायु॒धिने॑ च॒ नमः॑ स्वायु॒धाय॑ च सु॒धन्व॑ने च ॥३६॥

पदार्थः—जो राज और प्रजा के अधिकारी लोग (धृष्णवे) दृढ़ (च) और (प्रमृशाय) उत्तम विचारशील (च) तथा कोमल स्वभाव वाले पुरुष को (नमः) अन्न देवें (निषंगिणे) बहुत शस्त्रों वाले (च) और (इषुधिमते) प्रशंसित शस्त्र अस्त्र और कोश वाले का (च) भी (नमः) सत्कार और (तीक्ष्णेषवे) तीक्ष्ण शस्त्र अस्त्रों से युक्त (च) और (आयुधिने) अच्छे प्रकार तोप आदि से लड़ने वाले वीरों से युक्त अध्यक्ष पुरुष का (च) भी (नमः) सत्कार करें (स्वायुधाय) सुन्दर आयुधों वाले (च) और (सुधन्वने) अच्छे धनुषों से युक्त (च) तथा उनके रक्षकों को (नमः) अन्न देवें वे सदा विजय को प्राप्त होवें ॥३६॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जो कुछ कर्म करें सो अच्छे प्रकार विचार और दृढ़ उत्साह से करें क्योंकि शरीर और आत्मा के बल के विना शस्त्रों का चलाना और शत्रुओं का जीतना कभी नहीं कर सकते इसलिये निरन्तर सेना की उन्नति करें ॥३६॥

नमः श्रुतायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य लोग जल से कैसे उपकार लेवें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नमः स्रुत्याय च पथ्याय च नमः काट्याय च नीप्याय च नमः कुल्याय च सरस्याय च नमो नादेयाय च वैशन्ताय च ॥३७॥

पदार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि (स्रुत्याय) स्रोत नाले आदि में रहने (च) और (पथ्याय) मार्ग में चलने (च) तथा मार्गादि को शोधने वाले को (नमः) अन्न दें (काट्याय) कूप आदि में प्रसिद्ध (च) और (नीप्याय) बड़े जलाशय में होने (च) तथा उसके सहायी का (नमः) सत्कार (कुल्याय) नहरों का प्रबन्ध करने (च) और (सरस्याय) तालाव के काम में प्रसिद्ध होने वाले का (नमः) सत्कार (च) और (नादेयाय) नदियों के तट पर रहने (च) और (वेशन्ताय) छोटे छोटे जलाशयों के जीवों को (च) और वापी आदि के प्राणियों को (नमः) अन्नादि देके दया प्रकाशित करें ॥३७॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि नदियों के मार्गों, वम्बों, कूपों, जलप्रायदेशों, बड़े और छोटे तालावों के जल को चला जहां कहीं बांध और खेत आदि में छोड़ के पुष्कल अन्न, फल, वृक्ष, लता, गुल्म आदि को अच्छे प्रकार बढ़ावें ॥३७॥

नमः कूप्यायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नमः कूप्याय चावट्याय च नमो वीध्र्याय चातप्याय च नमो मेघ्याय च विद्युत्याय च नमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च ॥३८॥

पदार्थः—मनुष्य लोग (कूप्याय) कूप के (च) और (अवट्याय) गड्ढों (च) तथा जंगलों के जीवों को (नमः) अन्नादि दे (च) और (वीध्र्याय) विविध प्रकाशों में रहने (च) और (आतप्याय) घाम में रहने वाले वा (च) खेती आदि के प्रबन्ध करने वाले को (नमः) अन्न दे (मेघ्याय) मेघ में रहने (च) और (विद्युत्याय) बिजुली से काम लेने वाले को (च) तथा अग्निविद्या के जानने वाले को (नमः) अन्नादि दे (च) और (वर्ष्याय) वर्षा में रहने (च) तथा (अवर्ष्याय) वर्षारहित देश में वसने वाले का (नमः) सत्कार करके आनन्दित होवें ॥३८॥

भावार्थः—जो मनुष्य कूपादि से कार्यसिद्धि होने के लिये भृत्यों का सत्कार करें तो अनेक उत्तम २ कार्यों को सिद्ध कर सकें ॥३८॥

नमो वात्यायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । स्वराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब मनुष्य जगत् के अन्य पदार्थों से कैसे उपकार लेवें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

नमो वात्याय च रेष्म्याय च नमो वास्तव्याय च वास्तुपाय च नमः सोमाय च रुद्राय च नमस्ताम्राय चारुणाय च ।।३९।।

पदार्थः—जो मनुष्य (वात्याय) वायुविद्या में कुशल (च) और (रेष्म्याय) मारने वालों में प्रसिद्ध को (च) भी (नमः) अन्नादि देवें (च) तथा (वास्तव्याय) निवास के स्थानों में हुए (च) और (वास्तुपाय) निवासस्थान के रक्षक का (नमः) सत्कार करें (च) तथा (सोमाय) धनाढ्य (च) और (रुद्राय) दुष्टों को रोदन कराने हारे को (नमः) अन्नादि देवें (च) तथा (ताम्राय) बुरे कामों से ग्लानि करने (च) और (अरुणाय) अच्छे पदार्थों को प्राप्त कराने हारे का (नमः) सत्कार करें वे लक्ष्मी से सम्पन्न होवें ।।३९।।

भावार्थः—जब मनुष्य वायु आदि के गुणों को जान के व्यवहारों में लगावें तब अनेक सुखों को प्राप्त हों ।।३९।।

नमः शंगव इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । भुरिगतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।।

मनुष्यों को कैसे संतोषी होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

नमः शङ्गवे च पशुपतये च नम उग्राय च भीमाय च नमोऽग्रेवधाय च दूरेवधाय च नमो हन्त्रे च हनीयसे च नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय ।।४०।।

पदार्थः—जो मनुष्य (शंगवे) सुख को प्राप्त होने (च) और (पशुपतये) गौ आदि पशुओं की रक्षा करने वाले को (च) और गौ आदि को भी (नमः) अन्नादि पदार्थ देवें (उग्राय) तेजस्वी (च) और (भीमाय) डर दिखाने वाले का (च) भी (नमः) सत्कार करें (अग्रेवधाय) पहिले शत्रुओं को बांधने हारे (च) और (दूरेवधाय) दूर पर शत्रुओं को बांधने वा मारने वाले को (च) भी (नमः) अन्नादि देवें (हन्त्रे) दुष्टों को मारने (च) और (हनीयसे) दुष्टों का अत्यन्त निर्मूल विनाश करने हारे को (च) भी (नमः) अन्नादि देवें (वृक्षेभ्यः) शत्रु को काटने वालों को वा वृक्षों का और (हरिकेशेभ्यः) हरे केशों वाले ज्वानों वा हरे पत्तों वाले वृक्षों का (नमः) सत्कार करें वा जलादि देवें और (ताराय) दुःख से पार करने वाले पुरुष को (नमः) अन्नादि देवें वे सुखी हों ।।४०।।

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि गौ आदि पशुओं के पालन और भयङ्कर जीवों की शान्ति करने से संतोष करें ॥४०॥

नमः शम्भवायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः ।
स्वराडार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

मनुष्यों को कैसे अपना अभीष्ट सिद्ध करना चाहिये यह विषय
अगले मन्त्र में कहा है ॥

नमः॑ शम्भ॒वाय॑ च मयो॒भ॒वाय॑ च॒ नमः॑ शङ्क॒राय॑ च मयस्क॒राय॑ च॒ नमः॑ शि॒वाय॑ च शि॒वत॑राय च ॥४१॥

पदार्थः—जो मनुष्य (शम्भवाय) सुख को प्राप्त करने हारे परमेश्वर (च) और (मयोभवाय) सुख प्राप्ति के हेतु विद्वान् (च) का भी (नमः) सत्कार (शङ्कराय) कल्याण करने (च) और (मयस्कराय) सब प्राणियों को सुख पहुंचाने वाले का (च) भी (नमः) सत्कार (शिवाय) मंगलकारी (च) और (शिवतराय) अत्यन्त मंगलस्वरूप पुरुष का (च) भी (नमः) सत्कार करते हैं वे कल्याण को प्राप्त होते हैं ॥४१॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि प्रेमभक्ति के साथ सब मङ्गलों के दाता परमेश्वर की ही उपासना और सेनाध्यक्ष का सत्कार करें जिस से अपने अभीष्ट कार्य्य सिद्ध हों ॥४१॥

नमः पार्यायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः ।
निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नमः॒ पार्या॑य चावा॒र्या॑य च॒ नमः॑ प्र॒तर॑णाय॒ चोत्त॑रणाय च॒ नम॑स्तीर्थ्या॑य च॒ कूल्या॑य च॒ नमः॒ शष्प्या॑य च॒ फेन्या॑य च ॥४२॥

पदार्थः—जो मनुष्य (पार्याय) दुःखों से पार हुए (च) और (अवार्याय) इधर के भाग में हुए का (च) भी (नमः) सत्कार (च) तथा (प्रतरणाय) उस तट से नौकादि द्वारा इस पार पहुंचे वा पहुंचाने (च) और (उत्तरणाय) इस पार से उस पार पहुंचने वा पहुंचाने वाले का (नमः) सत्कार करें (तीर्थ्याय) वेदविद्या के पढ़ाने वालों और सत्यभाषणादि कामों में प्रवीण (च) और (कूल्याय) समुद्र तथा नदी आदि के तटों पर रहने वाले को (च) भी (नमः) अन्न देवें (शष्प्याय) तृण आदि कार्यों में साधु (च) और (फेन्याय) फेन बुद्बुदादि के कार्यों में प्रवीण पुरुष को (च) भी (नमः) अन्नादि देवें वे कल्याण को प्राप्त होवें ॥४२॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि नौकादि यानों में शिक्षित मल्लाह आदि को रख समुद्रादि के इस पार उस पार जा आके देश देशान्तर और द्वीपद्वीपान्तरों में व्यवहार से धन की उन्नति करके अपना अभीष्ट सिद्ध कर ॥४२॥

नमः सिकत्यायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नमः सिकत्याय च प्रवाह्याय च नमः किꣳशिलाय च क्षयणाय च नमः कपर्दिने च पुलस्तये च नमः इरिण्याय च प्रपथ्याय च ॥४३॥

पदार्थः—जो मनुष्य (सिकत्याय) वालू से पदार्थ निकालने में चतुर (च) और (प्रवाह्याय) बैल आदि के चलाने वालों में प्रवीण को (च) भी (नमः) अन्न (किंशिलाय) शिलावृत्ति करने (च) और (क्षयणाय) निवासस्थान में रहने वाले को (च) भी (नमः) अन्न (कपर्दिने) जटाधारी (च) और (पुलस्तये) बड़े बड़े शरीरों को फेंकने वाले को (च) भी (नमः) अन्न देवें (इरिण्याय) ऊसर भूमि से अति उपकार लेने वाले (च) और (प्रपथ्याय) उत्तम धर्म के मार्गों में प्रवीण पुरुष का (च) भी (नमः) सत्कार करें वे सब के प्रिय होवें ॥४३॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि भूगर्भविद्यानुसार बालू मट्टी आदि से सुवर्णादि धातुओं को निकाल वहुत ऐश्वर्य को वढ़ा के अनाथों का पालन करें ॥४३॥

नमो व्रज्यायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कैसे मनुष्य सुखी होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नमो व्रज्याय च गोष्ठ्याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च नमो हृदय्याय च निवेष्प्याय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च ॥४४॥

पदार्थः—जो मनुष्य (व्रज्याय) क्रियाओं में प्रसिद्ध (च) और (गोष्ठ्याय) गौ आदि के स्थानों के उत्तम प्रवन्धकर्त्ता को (च) भी (नमः) अन्नादि देवें (तल्प्याय) खट्वादि के निर्माण में प्रवीण (च) और (गेह्याय) घर में रहने वाले को (च) भी (नमः) अन्न देवें (हृदय्याय) हृदय के विचार में कुशल (च) और (निवेष्प्याय) विषयों

में निरन्तर व्याप्त होने में प्रवीण पुरुष का (च) भी (नमः) सत्कार करें (काट्याय) आच्छादित गुप्त पदार्थों को प्रकट करने (च) और (गह्वरेष्ठाय) गहन अति कठिन गिरिकन्दराओं में उत्तम रहने वाले पुरुष को (च) भी (नमः) अन्नादि देवें वे सुख को प्राप्त होवें ॥४४॥

भावार्थः—जो मनुष्य मेघ से उत्पन्न वर्षा और वर्षा से उत्पन्न हुए तृण आदि की रक्षा से गौ आदि पशुओं को बढ़ावें वे पुष्कल भोग को प्राप्त होवें ॥४४॥

नमः शुष्क्यायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उन मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नमः शुष्क्याय च हरित्याय च नमः पाꣳसव्याय च रजस्याय च नमो लोप्याय चोलप्याय च नमऽऊर्व्याय च सूर्व्याय च ॥४५॥

पदार्थः—जो मनुष्य (शुष्क्याय) नीरस पदार्थों में रहने (च) और (हरित्याय) सरस पदार्थों में प्रसिद्ध को (च) भी (नमः) जलादि देवें (पांसव्याय) धूलि में रहने (च) और (रजस्याय) लोकलोकान्तरों में रहने वाले का (च) भी (नमः) मान करें (लोप्याय) छेदन करने में प्रवीण (च) और (उलप्याय) फेंकने में कुशल पुरुष का (च) भी (नमः) मान करें (ऊर्व्याय) मारने में प्रसिद्ध (च) और (सूर्व्याय) सुन्दरता से ताड़ना करने वाले का (च) भी (नमः) सत्कार करें उन के सब कार्य सिद्ध होवें ॥४५॥

भावार्थः—मनुष्य सुखाने और हरापन आदि करने वाले वायुओं को जान के अपने कार्य सिद्ध करें ॥४५॥

नमः पर्णायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । स्वराट् प्रकृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नमः पर्णाय च पर्णशदाय च नमऽउद्गुरमाणाय चाभिघ्नते च नमऽआखिदते च प्रखिदते च नमऽइषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमो नमो वः किरिकेभ्यो देवानाꣳ हृदयेभ्यो नमो विचिन्वत्केभ्यो नमो विक्षिणत्केभ्यो नमऽआनिर्हतेभ्यः ॥४६॥

पदार्थः—जो मनुष्य (पर्णाय) प्रत्युपकार से रक्षक को (च) और (पर्णशदाय)

पत्तों को काटने वाले को (च) भी (नमः) अन्न (उद्गुरमाणाय) उत्तम प्रकार से उद्यम करने (च) और (अभिघ्नते) सन्मुख होके दुष्टों को मारने वाले को (च) भी (नमः) अन्न देवें (आखिदते) दीन निर्धनी (च) और (प्रखिदते) अतिदरिद्री जन का (च) भी (नमः) सत्कार करें (इषुकृद्भ्यः) बाणों को बनाने वाले को (नमः) अन्नादि देवें (च) और (धनुष्कृद्भ्यः) धनुष बनाने वाले (वः) तुम लोगों का (नमः)सत्कार करें (देवानाम्) विद्वानों को (हृदयेभ्यः) अपने आत्मा के समान प्रिय (किरिकेभ्यः) बाण आदि शस्त्र फेंकने वाले (वः) तुम लोगों को (नमः) अन्नादि देवें (विचिन्वत्केभ्यः) शुभ गुणों वा पदार्थों का सञ्चय करने वालों का (नमः) सत्कार (विक्षिणत्केभ्यः) शत्रुओं के नाशक जनों का (नमः) सत्कार और (आनिर्हतेभ्यः) अच्छे प्रकार पराजय को प्राप्त हुए लोगों का (नमः) सत्कार करें वे सब ओर से धनी होते हैं ॥४६॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सब ओषधियों से अन्नादि उत्तम पदार्थों का ग्रहण कर अनाथ मनुष्यादि प्राणियों को देके सब को आनन्दित करें ॥४६॥

द्रापे इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । भुरिगार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

द्रापेऽअन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित । आसां प्रजानामेषां पशूनां मा भेर्मा रोङ् मो च नः किं चनाममत् ॥४७॥

पदार्थः—हे (द्रापे) निन्दित गति से रक्षक (अन्धसः) अन्न आदि के (पते) स्वामी (दरिद्र) दरिद्रता को प्राप्त हुए (नीललोहित) नीलवर्णयुक्त पदार्थों का सेवन करने हारे राजा वा प्रजा के पुरुष ! तू (आसाम्) इन प्रत्यक्ष (प्रजानाम्) मनुष्यादि (च) और (एषाम्) इन (पशूनाम्) गौ आदि पशुओं के रक्षक होके इन से (मा) (भेः) मत भय को प्राप्त कर (मा) (रोक्) मत रोग को प्राप्त कर (नः) हम को और अन्य (किम्) किसी को (चन) भी (मो) (आममत्) रोगी मत कर ॥४७॥

भावार्थः—जो धनाढ्य हैं वे दरिद्रों का पालन करें तथा जो राजा और प्रजा के पुरुष हैं वे प्रजा के पशुओं को कभी न मारें जिस से प्रजा में सब प्रकार सब का सुख बढ़े ॥४७॥

इमा रुद्रायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । आर्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः । यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामेऽअस्मिन्ननातुरम् ॥४८॥

पदार्थः—हे शत्रुरोदक वीरपुरुष ! (यथा) जैसे (अस्मिन्) इस (ग्रामे) ब्रह्माण्डसमूह में (अनातुरम्) दुःखरहित (पुष्टम्) रोगरहित होने से बलवान् (विश्वम्) सब जगत् (शम्) सुखी (असत्) हो वैसे हम लोग (द्विपदे) मनुष्यादि (चतुष्पदे) गौ आदि (तवसे) बली (कपर्दिने) ब्रह्मचर्य को सेवन किये (क्षयद्वीराय) दुष्टों के नाशक वीरों से युक्त (रुद्राय) पापी को रुलाने हारे सेनापति के लिये (इमाः) इन (मतीः) बुद्धिमानों का (प्रभरामहे) अच्छे प्रकार धारण पोषण करते हैं वैसे तू भी उस को धारण कर ॥४८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्वानों को चाहिये कि जैसे प्रजाओं में स्त्रीपुरुष बुद्धिमान् हों वैसा अनुष्ठान कर मनुष्य पश्वादियुक्त राज्य को रोगरहित पुष्टियुक्त और निरन्तर सुखी करें ॥४८॥

या ते रुद्र इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी ।
शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे ॥४९॥

पदार्थः—हे (रुद्र) राजा के वैद्य तू (या) जो (ते) तेरी (शिवा) कल्याण करने वाली (तनूः) देह वा विस्तारयुक्त नीति (शिवा) देखने में प्रिय (भेषजी) ओषधियों के तुल्य रोगनाशक और (रुतस्य) रोगी को (शिवा) सुखदायी (भेषजी) पीड़ा हरने वाली है (तया) उस से (जीवसे) जीने के लिये (विश्वाहा) सब दिन (नः) हम को (मृड) सुखी कर ॥४९॥

भावार्थः—राजा के वैद्य आदि विद्वानों को चाहिये कि धर्म की नीति, ओषधि के दान, हस्तक्रिया की कुशलता और शस्त्रों से छेदन, भेदन करके रोगों से बचा के सब सेना और प्रजाओं को प्रसन्न करें ॥४९॥

परि न इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

परि॑ नो रु॒द्रस्य॑ हे॒तिर्वृ॑णक्तु॒ परि॑ त्वे॒षस्य॑ दुर्म॒तिर॑घा॒योः ।
अव॑ स्थि॒रा म॒घव॑द्भ्यस्तनुष्व॒ मीढ्व॑स्तो॒काय॒ तन॑याय मृड ॥५०॥

पदार्थः—हे (मीढ्वः) सुख वर्षाने हारे राजपुरुष ! आप जो (रुद्रस्य) सभापति राजा का (हेतिः) वज्र है उस से (त्वेषस्य) क्रोधादिप्रज्वलित (अघायोः) अपने आत्मा से दुष्टाचार करने हारे पुरुष के सम्बन्ध से (नः) हम लोगों को (परि, वृणक्तु) सब प्रकार पृथक् कीजिये । जो (दुर्मतिः) दुष्टबुद्धि है उस से भी हम को बचाइये और जो (मघवद्भ्यः) प्रशंसित धनवालों से प्राप्त हुई (स्थिरा) स्थिर बुद्धि है उस को (तोकाय) शीघ्र उत्पन्न हुए बालक (तनयाय) कुमार पुरुष के लिये (परि, तनुष्व) सब ओर से विस्तृत करिये और इस बुद्धि से सब को निरन्तर (अव, मृड) सुखी कीजिये ॥५०॥

भावार्थः—राजपुरुषों का धर्मयुक्त पुरुषार्थ वही है कि जिससे प्रजा की रक्षा और दुष्टों को मारना हो, इससे श्रेष्ठ वैद्य लोग सब को आरोग्य और स्वतन्त्रता के सुख की उन्नति करें जिससे सब सुखी हों ॥५०॥

मीढुष्टम इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । निचृदार्षी यवमध्या त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

सभाध्यक्षादिकों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

मीढु॑ष्टम॒ शिव॑तम शि॒वो नः॑ सु॒मना॑ भव । प॒र॒मे वृ॒क्षऽआयु॑धं नि॒धाय॒
कृत्ति॒ वसा॑न॒ऽआ च॑र॒ पिना॑क॒म्बिभ्र॒दा ग॑हि ॥५१॥

पदार्थः—हे (मीढुष्टम) अत्यन्त पराक्रमयुक्त (शिवतम) अति कल्याणकारी सभा वा सेना के पति ! आप (नः) हमारे लिये (सुमनाः) प्रसन्नचित्त से (शिवः) सुखकारी (भव) हूजिये (आयुधम्) खड्ग, भुशुण्डी और शतघ्नी आदि शस्त्रों का (निधाय) ग्रहण कर (कृत्तिम्) मृगचर्मादि की अंगरखी को (वसानः) शरीर में पहिने (पिनाकम्) आत्मा के रक्षक धनुष् वा बख्तर आदि को (बिभ्रत्) धारण किये हुए हम लोगों की रक्षा के लिये (आगहि) आइये (परमे) प्रबल (वृक्षे) काटने योग्य शत्रु की सेना में (आचर) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥५१॥

भावार्थः—सभा और सेना के अध्यक्ष आदि लोग अपनी प्रजाओं में मङ्गलाचारी और दुष्टों में अग्नि के तुल्य तेजस्वी दाहक हों जिससे सब लोग धर्ममार्ग को छोड़ के अधर्म का आचरण कभी न करें ॥५१॥

विकिरिद्रेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

प्रजा के पुरुष राजपुरुषों के साथ कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

विकिरिद्र विलोहित नमस्तेऽअस्तु भगवः ।
यास्ते सहस्रꣳ हेतयोऽन्यमस्मन्नि वपन्तु ताः ॥५२॥

पदार्थः—हे (विकिरिद्र) विशेषकर सूअर के समान सोने वा उत्तम सूअर की निन्दा करने वाले (विलोहित) विविध पदार्थों को आरूढ़ (भगवः) ऐश्वर्य्ययुक्त सभापते राजन् ! (ते) आप को (नमः) सत्कार प्राप्त (अस्तु) हो जिस से (ते) आप के (याः) जो (सहस्रम्) असंख्यात प्रकार की (हेतयः) उन्नति वा वज्रादि शस्त्र हैं (ताः) वे (अस्मत्) हम से (अन्यम्) भिन्न दूसरे शत्रु को (निवपन्तु) निरन्तर छेदन करें ॥५२॥

भावार्थः—प्रजा के लोग राजपुरुषों से ऐसे कहें कि जो आप लोगों की उन्नति और शस्त्र अस्त्र हैं वे हम लोगों को सुख में स्थिर करें और इतर हमारे शत्रुओं का निवारण करें ॥५२॥

सहस्राणीत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सहस्राणि सहस्रशो बाह्वोस्तव हेतयः ।
तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि ॥५३॥

पदार्थः—हे (भगवः) भाग्यशील सेनापते ! जो (तव) आप के (बाह्वोः) भुजाओं की सम्बन्धिनी (सहस्राणि) असंख्य (हेतयः) वज्रों की प्रबल गति हैं (तासाम्) उन के (ईशानः) स्वामीपन को प्राप्त आप (सहस्रशः) हजारों शत्रुओं के (मुखा) मुख (पराचीना) पीछे फेर के दूर (कृधि) कीजिये ॥५३॥

भावार्थः—राजपुरुषों को उचित है कि बाहुबल से राज्य को प्राप्त हो और असंख्य शूरवीर पुरुषों की सेनाओं को रख के सब शत्रुओं के मुख फेरें ॥५३॥

असंख्यातेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । विराडार्ष्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य लोग कैसे उपकार ग्रहण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

असंख्याता सहस्राणि ये रुद्राऽअधि भूम्याम् ।
तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥५४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (ये) जो (असंख्याता) संख्यारहित (सहस्राणि) हजारों (रुद्राः) जीवों के सम्बन्धी वा पृथक् प्राणादि वायु (भूम्याम्) पृथिवी (अधि) पर हैं (तेषाम्) उन के सम्बन्ध से (सहस्रयोजने) असंख्य चार कोश के योजनों वाले देश में (धन्वानि) धनुषों का (अव, तन्मसि) विस्तार करें वैसे तुम लोग भी विस्तार करो ॥५४॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि प्रतिशरीर में विभाग को प्राप्त हुए पृथिवी के सम्बन्धी असंख्य जीवों और वायुओं को जानें, उनसे उपकार लें और उन के कर्त्तव्य को भी ग्रहण करें ॥५४॥

अस्मिन्नित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अस्मिन् महत्यर्णवेऽन्तरिक्षे भवाऽअधि ।
तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥५५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग जो (अस्मिन्) इस (महति) व्यापकता आदि बड़े २ गुणों से युक्त (अर्णवे) बहुत जलों वाले समुद्र के समान अगाध (अन्तरिक्षे) सब के बीच अविनाशी आकाश में (भवाः) वर्त्तमान जीव और वायु हैं (तेषाम्) उनको उपयोग में लाके (सहस्रयोजने) असंख्यात चार कोश के योजनों वाले देश में (धन्वानि) धनुषों वा अन्नादि धान्यों को (अव, तन्मसि) अधिकता के साथ विस्तार करें वैसे तुम लोग भी करो ॥५५॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि जैसे पृथिवी के जीव और वायुओं से कार्य सिद्ध करते हैं वैसे आकाशस्थों से भी किया करें ॥५५॥

नीलग्रीवा इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । बहुरुद्रा देवताः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवꣳ रुद्राऽउपश्रिताः ।
तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥५६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग जो (नीलग्रीवाः) कण्ठ में नील वर्ण से युक्त (शितिकण्ठाः) तीक्ष्ण वा श्वेत कण्ठ वाले (दिवम्) सूर्य्य को बिजुली जैसे वैसे (उपश्रिताः) आश्रित (रुद्राः) जीव वा वायु हैं (तेषाम्) उन के उपयोग से (सहस्रयोजने)

असंख्य योजन वाले देश में (धन्वानि) शस्त्रादि को (अव, तन्मसि) विस्तार करें, वैसे तुम लोग भी करो ॥५६॥

भावार्थः—विद्वानों को चाहिये कि अग्निस्थ वायुओं और जीवों को जान और उपयोग में लाके आग्नेय आदि अस्त्रों को सिद्ध करें ॥५६॥

नीलग्रीवा इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः। रुद्रा देवताः। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वाऽअधः क्षमाचराः।
तेषांᳩ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥५७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (नीलग्रीवाः) नीली ग्रीवा वाले तथा (शितिकण्ठाः) काले कण्ठ वाले (शर्वाः) हिंसक जीव और (अधः) नीचे को वा (क्षमाचराः) पृथिवी में चलने वाले जीव हैं (तेषाम्) उन के (सहस्रयोजने) हजार योजन के देश में दूर करने के लिये (धन्वानि) धनुषों को हम लोग (अव, तन्मसि) विस्तृत करते हैं ॥५७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जो वायु भूमि से आकाश और आकाश से भूमि को जाते आते हैं उनमें जो अग्नि और पृथिवी आदि के अवयव रहते हैं उन को जान और उपयोग में लाके कार्य सिद्ध करें ॥५७॥

ये वृक्षेष्वित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः। रुद्रा देवताः। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

मनुष्य लोग सर्पादि दुष्टों का निवारण करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

ये वृक्षेषु शष्पिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः।
तेषांᳩ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥५८॥

पदार्थः-- हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (ये) जो (वृक्षेषु) आम्रादि वृक्षों में (शष्पिञ्जराः) रूप दिखाने से भय के हेतु (नीलग्रीवाः) नीली ग्रीवा युक्त काट खाने वाले (विलोहिताः) अनेक प्रकार के काले आदि वर्णों से युक्त सर्प आदि हिंसक जीव हैं (तेषाम्) उन के (सहस्रयोजने) असंख्य योजन देश में निकाल देने के लिये (धन्वानि) धनुषों को (अवतन्मसि) विस्तृत करें वैसा आचरण तुम लोग भी करो ॥५८॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि जो वृक्षादि में वृद्धि से जीने वाले सर्प हैं उन का भी यथाशक्ति निवारण करें ॥५८॥

ये भूतानामित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य लोग पढ़ाना और उपदेश किससे ग्रहण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः ।
तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥५९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (ये) जो (भूतानाम्) प्राणी तथा अप्राणियों के (अधिपतयः) रक्षक स्वामी (विशिखासः) शिखारहित संन्यासी और (कपर्दिनः) जटाधारी ब्रह्मचारी लोग हैं (तेषाम्) उनके हितार्थ (सहस्रयोजने) हजार योजन के देश में हम लोग सर्वथा सर्वदा भ्रमण करते हैं और (धन्वानि) अविद्यादि दोषों के निवारणार्थ विद्यादि शस्त्रों का (अव, तन्मसि) विस्तार करते हैं वैसे हे राजपुरुषो ! तुम लोग भी सर्वत्र भ्रमण किया करो ॥५९॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि जो सूत्रात्मा और धनंजय वायु के समान संन्यासी और ब्रह्मचारी लोग सब के शरीर तथा आत्मा की पुष्टि करते हैं उनसे पढ़ और उपदेश सुन कर सब लोग अपनी बुद्धि तथा शरीर की पुष्टि करें ॥५९॥

ये पथामित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ये पथां पथिरक्षय ऐलबृदाऽआयुर्युधः ।
तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥६०॥

पदार्थः—हम लोग (ये) जो (पथाम्) मार्गों के सम्बन्धी तथा (पथिरक्षयः) मार्गों में विचरने वाले जनों के रक्षकों के तुल्य (ऐलबृदाः) पृथिवीसम्बन्धी पदार्थों के वर्धक (आयुर्युधः) पूर्णायु वा अवस्था के साथ युद्ध करनेहारे भृत्य हैं (तेषाम्) उनके (सहस्रयोजने) असंख्य योजन देश में (धन्वानि) धनुषों को (अव, तन्मसि) विस्तृत करते हैं ॥६०॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जैसे राजपुरुष दिन रात प्रजाजनों की यथावत् रक्षा करते हैं वैसे पृथिवी और जीवनादि की रक्षा वायु करते हैं ऐसा जानें ॥६०॥

ये तीर्थानीत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः ।
तेषाᳬसहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥६१॥

पदार्थः—हम लोग (ये) जो (सृकाहस्ताः) हाथों में वज्र धारण किये हुए (निषंगिणः) प्रशंसित बाण और कोश से युक्त जनों के समान (तीर्थानि) दुःखों से पार करने हारे वेद आचार्य सत्य भाषण और ब्रह्मचर्यादि अच्छे नियम अथवा जिनसे समुद्रादिकों को पार करते हैं उन नौका आदि तीर्थों का (प्रचरन्ति) प्रचार करते हैं (तेषाम्) उन के (सहस्रयोजने) हजार योजन के देश में (धन्वानि) शस्त्रों को ((अव, तन्मसि) विस्तृत करते हैं ॥६१॥

भावार्थः—मनुष्यों के दो प्रकार के तीर्थ हैं उन में पहिले तो वे जो ब्रह्मचर्य, गुरु की सेवा, वेदादि शास्त्रों का पढ़ना, पढ़ाना, सत्संग ईश्वर की उपासना और सत्यभाषण आदि दुःखसागर से मनुष्यों को पार करते हैं और दूसरे वे जिनसे समुद्रादि जलाशयों के इस पार उस पार जाने आने को समर्थ हों ॥६१॥

येऽन्नेष्विस्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवता. । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान् ।
तेषाᳬसहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥६२॥

पदार्थः—हम लोग (ये) जो (अन्नेषु) खाने योग्य पदार्थों में वर्त्तमान (पात्रेषु) पात्रों में (पिबतः) पीते हुए (जनान्) मनुष्यादि प्राणियों को (विविध्यन्ति) बाण के तुल्य घायल करते हैं (तेषाम्) उन को हटाने के लिये (सहस्रयोजने) असंख्य योजन देश में (धन्वानि) धनुषों को (अव, तन्मसि) विस्तृत करते हैं ॥६२॥

भावार्थः—जो पुरुष अन्न को खाते और जलादि को पीते हुए जीवों को विष आदि से मार डालते हैं उनसे सब लोग दूर बसें ॥६२॥

य एतावन्त इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यऽएतावन्तश्च भूयाᳬसश्च दिशो रुद्रा वितस्थिरे ।
तेषाᳬ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥६३॥

पदार्थः—हम लोग (ये) जो (एतावन्तः) इतने व्याख्यात किये (च) और (रुद्राः) प्राण वा जीव (भूयांसः) इन से भी अधिक (च) सब प्राण तथा जीव (दिशः) पूर्वादि दिशाओं में (वितस्थिरे) विविध प्रकार से स्थित हैं (तेषाम्) उन के (सहस्रयोजने) हजार योजन के देश में (धन्वानि) आकाश के अवयवों को (अव, तन्मसि) विरुद्ध विस्तृत करते हैं ॥६३॥

भावार्थः—जो मनुष्य सब दिशाओं में स्थित जीवों वा वायुओं को यथावत् उपयोग में लाते हैं उन के सब कार्य सिद्ध होते हैं ॥६३॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्य इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । निचृद्धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥६४॥

पदार्थः—(ये) जो सर्वहितकारी (दिवि) सूर्यप्रकाशादि के तुल्य विद्या और विनय में वर्त्तमान हैं (येषाम्) जिनके (वर्षम्) वृष्टि के समान (इषवः) बाण हैं (तेभ्यः) उन (रुद्रेभ्यः) प्राणादि के तुल्य वर्त्तमान पुरुषों के लिये हम लोगों का किया (नमः) सत्कार (अस्तु) प्राप्त हो जो (दश) दश प्रकार (प्राचीः) पूर्व (दश) दश प्रकार (दक्षिणाः) दक्षिण (दश) दश प्रकार (प्रतीचीः) पश्चिम (दश) दश प्रकार (उदीचीः) उत्तर और (दश) दश प्रकार (ऊर्ध्वाः) ऊपर की दिशाओं को प्राप्त होते हैं (तेभ्यः) उन सर्वहितैषी राजपुरुषों के लिये हमारा (नमः) अन्नादि पदार्थ (अस्तु) प्राप्त हो जो ऐसे पुरुष हैं (ते) वे हम लोग (यम्) जिससे (द्विष्मः) अप्रीति करें (च) और (यः) जो (नः) हम को (द्वेष्टि) दुःख दे (तम्) उसको (एषाम्) इन वायुओं की (जम्भे) बिलाव के मुख में मूषे के समान पीड़ा में (दध्मः) डालें ॥६४॥

भावार्थः—जैसे वायुओं के सम्बन्ध से वर्षा होती है वैसे जो सर्वत्र अधिष्ठित हों वे वीर पुरुष पूर्वादि दिशाओं में हमारे रक्षक हों हम लोग

जिस को विरोधी जानें उनको सब ओर से घेर के वायु के समान बांध ॥६४॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्य इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः। रुद्रा देवताः। धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वातऽइषवः। तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः। तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥६५॥

पदार्थः—(ये) जो विमानादि यानों में बैठ के (अन्तरिक्षे) आकाश में विचरते हैं (येषाम्) जिन के (वातः) वायु के तुल्य (इषवः) बाण हैं (तेभ्यः) उन (रुद्रेभ्यः) प्राणादि के तुल्य वर्त्तमान पुरुषों के लिये हमारा किया (नमः) सत्कार (अस्तु) प्राप्त हो जो (दश) दश प्रकार (प्राचीः) पूर्व (दश) दश प्रकार (दक्षिणाः) दक्षिण (दश) दश प्रकार (प्रतीचीः) पश्चिम (दश) दश प्रकार (उदीचीः) उत्तर और (दश) दश प्रकार (ऊर्ध्वाः) ऊपर की दिशाओं में व्याप्त हुए हैं (तेभ्यः) उन सर्वहितैषियों को (नमः) अन्नादि पदार्थ (अस्तु) प्राप्त हों जो ऐसे पुरुष हैं (ते) वे (नः) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें (ते) वे (नः) हम को (मृडयन्तु) सुखी करें (ते) वे और हम लोग (यम्) जिस से (द्विष्मः) अप्रीति करें (च) और (यः) जो (नः) हम को (द्वेष्टि) दुःख दे (तम्) उसको (एषाम्) इन वायुओं की (जम्भे) बिडाल के मुख में मूषे के समान पीड़ा में (दध्मः) डालें ॥६५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य आकाश में रहने वाले शुद्ध कारीगरों का सेवन करते हैं उनको ये सब ओर से बलवान् करके शिल्पविद्या की शिक्षा करें ॥६५॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यः इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः। रुद्रा देवताः। धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः। तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः। तेभ्यो नमोऽअस्तु ते

नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥६६॥

पदार्थः—(ये) जो भूविमान आदि में बैठ के (पृथिव्याम्) विस्तृत भूमि में विचरते हैं (येषाम्) जिन के (अन्नम्) खाने योग्य तण्डुलादि (इषवः) बाणरूप हैं (तेभ्यः) उन (रुद्रेभ्यः) प्राणादि के तुल्य वर्त्तमान पुरुषों के लिये हम लोगों का किया (नमः) सत्कार (अस्तु) प्राप्त हो जो (दश) दश प्रकार (प्राचीः) पूर्व (दश) दश प्रकार (दक्षिणाः) दक्षिण (दश) दश प्रकार (प्रतीचीः) पश्चिम (दश) दश प्रकार (उदीचीः) उत्तर और (दश) दश प्रकार (ऊर्ध्वाः) ऊपर की दिशाओं को व्याप्त होते हैं (तेभ्यः) उन सर्वहितैषी राजपुरुषों के लिये हमारा (नमः) अन्नादि पदार्थ (अस्तु) प्राप्त हो जो ऐसे पुरुष हैं (ते) वे (नः) हमारी सब ओर से (अवन्तु) रक्षा करें (ते) वे (नः) हम को (मृडयन्तु) सुखी करें (ते) वे और हम लोग (यम्) जिस को (द्विष्मः) अप्रसन्न करें (च) और (यः) जो (नः) हम को (द्वेष्टि) दुःख दे (तम्) उस को (एषाम्) इन वायुओं की (जम्भे) बिडाली के मुख में मूषे के तुल्य पीड़ा में (दध्मः) डालें ॥६६॥

भावार्थः—जो पृथिवी पर अन्नार्थी पुरुष हैं उन का अच्छे प्रकार पोषण कर उन्नति करनी चाहिये ॥६६॥

इस अध्याय में वायु, जीव, ईश्वर और वीर पुरुष के गुण यथाकृत्य का वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

॥ यह (१६) सोलहवां अध्याय पूरा हुआ ॥

* ओ३म् *

अथ सप्तदशोऽध्याय आरभ्यते

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥

अश्मन्नूर्जमित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । मरुतो देवता । अतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सत्रहवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है । इसके पहिले मन्त्र में वर्षा की विद्या का उपदेश किया है ॥

अश्मन्नूर्जं पर्वते शिश्रियाणामद्भ्यऽओषधीभ्यो वनस्पतिभ्योऽ अधि सम्भृतं पयः । तां नऽइषमूर्जं धत्त मरुतः सꣳरराणाऽअश्मँस्ते क्षुन्मयि तऽऊर्ग्यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥१॥

पदार्थः—हे (संरराणाः) सम्यक् दानशील (मरुतः) वायुओं के तुल्य क्रिया करने में कुशल मनुष्यो ! तुम लोग (पर्वते) पहाड़ के समान आकार वाले (अश्मन्) मेघ के (शिश्रियाणाम्) अवयवों में स्थिर बिजुली तथा (ऊर्जम्) पराक्रम और अन्न को (नः) हमारे लिये (अधि, धत्त) अधिकता से धारण करो और (अद्भ्यः) जलाशयों (ओषधिभ्यः) जौ आदि ओषधियों और (वनस्पतिभ्यः) पीपल आदि वनस्पतियों से (सम्भृतम्) सम्यक् धारण किये (पयः) रसयुक्त जल (इषम्) अन्न (ऊर्जम्) पराक्रम और (ताम्) उस पूर्वोक्त विद्युत् को धारण करो । हे मनुष्य ! जो (ते) तेरा (अश्मन्) मेघविषय में (ऊर्क्) रस वा पराक्रम है सो (मयि) मुझ में तथा जो (ते) तेरी (क्षुत्) भूख है वह मुझ में भी हो अर्थात् समान सुख दुःख मान के हम लोग एक दूसरे के सहायक हों और (यम्) जिस दुष्ट को हम लोग (द्विष्मः) द्वेष करें (तम्) उस को (ते) तेरा (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त हो ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जैसे सूर्य्य जलाशय और ओषध्यादि से रस का हरण कर मेघमण्डल में स्थापित कर के पुनः वर्षाता है उस से अन्नादि पदार्थ होते हैं उस के भोजन से क्षुधा की निवृत्ति, क्षुधा की निवृत्ति से बल की बढ़ती, उस से दुष्टों की निवृत्ति और दुष्टों की निवृत्ति से सज्जनों के शोक का नाश होता है वैसे अपने समान दूसरों का सुख दुःख मान सब के मित्र होके एक दूसरे के दुःख का विनाश कर के सुख की निरन्तर उन्नति करें ॥१॥

इमा म इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्विकृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब इष्टका आदि के दृष्टान्त से गणितविद्या का उपदेश किया है ॥

इमा मेऽअग्नऽइष्टका धेनवः सन्त्वेका च दश च दश च शतं च शतं च सहस्रं च सहस्रं चायुतं चायुतं च नियुतं च नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्द्धश्चैता मेऽअग्नऽइष्टका धेनवः सन्त्वमुत्रामुष्मिँल्लोके ॥२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् पुरुष ! जैसे (मे) मेरी (इमाः) ये (इष्टकाः) इष्ट सुख को सिद्ध करने हारी यज्ञ की सामग्री (धेनवः) दुग्ध देने वाली गौओं के समान (सन्तु) होवें आप के लिये भी वैसी हों जो (एका) एक (च) दशगुणा (दश) दश (च) और (दश) दश (च) दश गुणा (शतम्) सौ (च) और (शतम्) सौ (च) दश गुणा (सहस्रम्) हजार (च) और (सहस्रम्) हजार (च) दश गुणा (अयुतम्) दश हजार (च) और (अयुतम्) दश हजार (च) दश गुणा (नियुतम्) लाख (च) और (नियुतम्) लाख (च) दश गुणा (प्रयुतम्)दश लाख (च) इसका दश गुणा क्रोड़ इस का दश गुणा (अर्बुदम्) दशक्रोड़ इस का दश गुणा (न्यर्बुदम्) अर्ब (च) इस का दश गुणा खर्व इस का दश गुणा निखर्व इस का दश गुणा महापद्म इस का दश गुणा शङ्कु इस का दश गुणा (समुद्रः) समुद्र (च) इस का दश गुणा (मध्यम्) मध्य (च) इस का दश गुणा (अन्तः) अन्त और (च) इस का दश गुणा (परार्द्धश्च) परार्द्ध (एताः) ये (मे) मेरी (अग्ने) हे विद्वन् ! (इष्टकाः) वेदी की ईंटें (धेनवः) गौओं के तुल्य (अमुष्मिन्) परोक्ष (लोके) देखने योग्य (अमुत्र) अगले जन्म में (सन्तु) हों वैसा प्रयत्न कीजिये ॥२॥

भावार्थः—जैसे अच्छे प्रकार सेवन की हुई गौ दुग्ध आदि के दान से सब को प्रसन्न करती है वैसे ही वेदी में चयन की हुई ईंटें वर्षा की हेतु हो

के वर्षादि के द्वारा सब को सुखी करती हैं। मनुष्यों को चाहिये कि एक (१) संख्या को दश वार गुणने से दश (१०) दश को दश वार गुणने से सौ (१००) उस को दश वार गुणने से हजार (१०००) उस को दश वार गुणने से दश हजार(१००००)उस को दश वार गुणने से लाख(१०००००) उसको दश वार गुणने से दश लाख (१००००००) इस को दश वार गुणने से क्रोड़ (१०००००००) इस को दश वार गुणने से दश क्रोड़ (१००००००००) इस को दश वार गुणने से अर्बं (१०००००००००) इस को दश वार गुणने से दश अर्बं (१००००००००००) इस को दश वार गुणने से खर्बं (१०००००००००००) इस को दश वार गुणने से दश खर्बं (१००००००००००००) इस को दश वार गुणने से नील (१०००००००००००००) इस को दश वार गुणने से दश नील (१००००००००००००००) इस को दश वार गुणने से एक पद्म (१०००००००००००००००) इस को दश वार गुणने से दश पद्म (१००००००००००००००००) इस को दश वार गुणने से एक शङ्ख (१०००००००००००००००००) इस को दश वार गुणने से दश शङ्ख (१००००००००००००००००००) इन संख्याओं की संज्ञा पड़ती हैं। ये इतनी संख्या तो कहीं परन्तु अनेक चकारों के होने से और भी अङ्क-गणित, वीजगणित और रेखा गणित आदि की संख्याओं को यथावत् समझें। जैसे भूलोक में ये संख्या हैं वैसे अन्य लोकों में भी हैं। जैसे यहां इन संख्याओं से गणना की और अच्छे कारीगरों ने चिनी हुई ईंटें घर के आकार को शीत, उष्ण, वर्षा और वायु आदि से मनुष्यादि की रक्षा कर आनन्दित करती हैं वैसे ही अग्नि में छोड़ी हुई आहुतियां जल, वायु और ओषधियों के साथ मिल के सब को आनन्दित करती हैं ॥२॥

ऋतव इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः।
पञ्चमः स्वरः॥

स्त्री लोग पति आदि के साथ कैसे वर्त्तें इस विषय का उपदेश
अगले मन्त्र में किया है॥

ऋतवः स्थऽऋतावृधंऽऋतुष्ठाः स्थऽऋतावृधः। घृतश्च्युतो मधुश्च्युतो
विराजो नाम कामदुघाऽअक्षीयमाणाः ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे स्त्रियो! जो तुम लोग (ऋतवः) वसन्तादि ऋतुओं के समान (स्थ) हो तथा जो (ऋतावृधः) उदक से नदियों के तुल्य सत्य के साथ उन्नति को प्राप्त होने वा (ऋतुष्ठाः) वसन्तादि ऋतुओं में स्थित होने और (ऋतावृधः) सत्य

को बढ़ाने वाली (स्थ) हो और जो तुम (घृतश्चुतः) जिन के घी निकले उन (मधुश्च्युतः) मधुर रस से प्राप्त हुई (अक्षीयमाणाः) रक्षा करने योग्य (विराजः) विविध प्रकार के गुणों से प्रकाशमान तथा (कामदुघाः) कामनाओं को पूरण करने हारी (नाम) प्रसिद्ध गौओं के सदृश होवे तुम लोग हम लोगों को सुखी करो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ऋतु और गौ अपने अपने समय पर अनुकूलता से सब प्राणियों को सुखी करती हैं वैसे ही अच्छी स्त्रियां सब समय में अपने पति आदि सब पुरुषों को तृप्त कर आनन्दित करें ॥३॥

समुद्रस्येत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

सभापति को क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

समुद्रस्य त्वावकयाग्ने परि व्ययामसि।
पावकोऽअस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥४॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी सभापते! जैसे हम लोग (समुद्रस्य) आकाश के बीच (अवकया) जिससे रक्षा करते हैं उस क्रिया के साथ वर्त्तमान (त्वा) आप को (परि, व्ययामसि) सब ओर से प्राप्त होते हैं वैसे (पावकः) पवित्रकर्त्ता आप (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (शिवः) मंगलकारी (भव) हूजिये ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे मनुष्य लोग समुद्र के जीवों की रक्षा कर सुखी करते हैं वैसे धर्मात्मा रक्षक सभापति अपनी प्रजाओं की रक्षा कर निरन्तर सुखी करे ॥४॥

हिमस्येत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

हिमस्य त्वा जरायुणाग्ने परि व्ययामसि।
पावकोऽअस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन् सभापते! हम लोग (हिमस्य) शीतल को (जरायुणा) जीर्ण करने वाले वस्त्र वा अग्नि से (त्वा) आप को (परि, व्ययामसि) सब प्रकार आच्छादित करते हैं वैसे (पावकः) पवित्रस्वरूप आप (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (शिवः) मंगलमय (भव) हूजिये ॥५॥

भावार्थः—हे सभापते ! जैसे अग्नि वा वस्त्र शीत से पीड़ित प्राणियों को जाड़े से छुड़ा के प्रसन्न करता है वैसे ही आप का आश्रय किये हुए हम लोग दुःख से छूटे हुए सुख सेवने वाले होवें ॥५॥

उप ज्मन्नित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब स्त्री पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उप ज्मन्नुप वेतसेऽवतर नदीष्वा । अग्ने पित्तमपामसि मण्डूकि ताभिरागहि सेमं नो यज्ञं पावकवर्णं शिवं कृधि ॥६॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विनी विदुषी (मण्डूकि) अच्छे प्रकार अलंकारों से शोभित विदुषी स्त्रि ! तू (ज्मन्) पृथिवी पर (नदीषु) नदियों तथा (वेतसे) पदार्थों के विस्तार में (अव, तर) पार हो । जैसे अग्नि (अपाम्) प्राण वा जलों के (पित्तम्) तेज का रूप (असि) है वैसे तू (ताभिः) उन जल वा प्राणों के साथ (उप, आ, गहि) हम को समीप प्राप्त हो (सा) सो तू (नः) हमारे (इमम्) इस (पावकवर्णम्) अग्नि के तुल्य प्रकाशमान (यज्ञम्) गृहाश्रमरूप यज्ञ को (शिवम्) कल्याणकारी (उप, आ, कृधि) अच्छे प्रकार कर ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । स्त्री और पुरुष गृहाश्रम में प्रयत्न के साथ सब कार्यों को सिद्ध कर शुद्ध आचरण के सहित कल्याण को प्राप्त हों ॥६॥

अपामिदमित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

गृहस्थ को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अपामिदं न्ययनꣳ समुद्रस्य निवेशनम् ।
अन्याँस्तेऽअस्मत्तपन्तु हेतयः पावकोऽअस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥७॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष ! जो (इदम्) यह आकाश (अपाम्)जलों वा प्राणों का (न्ययनम्) निश्चित स्थान है उस आकाशस्थ (समुद्रस्य) समुद्र की (निवेशनम्) स्थिति के तुल्य गृहाश्रम को प्राप्त हो के (पावकः) पवित्र कर्म करने हारे होते हुए आप (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (शिवः) मंगलकारी (भव) हूजिये (ते) आप के (हेतयः) वज्र वा उन्नति (अस्मत्) हम लोगों से (अन्यान्) अन्य दुष्टों को (तपन्तु) दुःखी करें ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य लोग जैसे जलों का आधार समुद्र सागर का आधार भूमि उसका आधार आकाश है वैसे गृहस्थी के पदार्थों के आधार घर को बना और मङ्गलरूप आचरण कर के श्रेष्ठों की रक्षा किया तथा डाकुओं को पीड़ा दिया करें ॥७॥

अग्ने पावकेत्यस्य वसूयुर्ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

आप्त विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अग्ने॑ पावक रो॒चिषा॑ म॒न्द्रया॑ देव जि॒ह्वया॑।

आ दे॒वान्व॑क्षि॒ यक्षि॑ च ॥८॥

पदार्थः—हे (पावक) मनुष्यों के हृदयों को शुद्ध करने वाले (देव) सुन्दर (अग्ने) विद्या का प्रकाश वा उपदेश करने हारे पुरुष! आप (मन्द्रया) आनन्द को सिद्ध करने हारी (जिह्वया) सत्य प्रिय वाणी वा (रोचिषा) प्रकाश से (देवान्) विद्वान् वा दिव्य गुणों को (आ, वक्षि) उपदेश करते (च) और (यक्षि) समागम करते हो ॥८॥

भावार्थः—जैसे सूर्य अपने प्रकाश से सब जगत् को प्रसन्न करता है वैसे आप्त उपदेशक विद्वान् सब प्राणियों को प्रसन्न करें ॥८॥

स न इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स नः॑ पावक दीदि॒वोऽग्ने॑ दे॒वाँ२ऽइ॒हाव॑ह।

उप॑ य॒ज्ञꣳ ह॒विश्च॑ नः ॥९॥

पदार्थः—हे (पावक) पवित्र (दीदिवः) तेजस्विन् वा शत्रुदाहक (अग्ने) सत्यासत्य का विभाग करने हारे विद्वान्! (सः) पूर्वोक्त गुण वाले आप जैसे यह अग्नि (नः) हमारे लिये अच्छे गुणों वाले (हविः) हवन किये सुगन्धित द्रव्य को प्राप्त करता है वैसे (इह) इस संसार में (यज्ञम्) गृहाश्रम (च) और (देवान्) विद्वानों को (नः) हम लोगों के लिये (उप, आ, वह) अच्छे प्रकार समीप प्राप्त करें ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे यह अग्नि अपने सूर्य्यादि रूप से सब पदार्थों से रस को ऊपर लेजा और वर्षा के उत्तम सुखों को प्रकट करता है वैसे ही विद्वान् लोग विद्यारूप रस को उन्नति दे के सब सुखों को उत्पन्न करें ॥९॥

पावकयेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

सेनापति को कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुचऽउषसो न भानुना ।
तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नु रणऽआ यो घृणे न ततृषाणोऽअजरः ॥१०॥

पदार्थः—(यः) जो (पावकया) पवित्र करने और (चितयन्त्या) चेतनता कराने हारी (कृपा) शक्ति के साथ वर्त्तमान सेनापति जैसे (भानुना) दीप्ति से (उषसः) प्रभात समय शोभित होते हैं (न) वैसे (क्षामन्) राज्यभूमि में (रुरुचे) शोभित होता वा (यः) जो (यामन्) मार्ग वा प्रहर में जैसे (एतशस्य) घोड़े के बलों को (नु) शीघ्र (तूर्वन्) मारता है (न) वैसे (घृणे) प्रदीप्त (रणे) युद्ध में (ततृषाणः) प्यासे के (न) समान (अजरः) अजर अजेय ज्वान निर्भय (आ) अच्छे प्रकार होता वह राज्य करने को योग्य होता है ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सूर्य और चन्द्रमा अपनी दीप्ति से शोभित होते हैं वैसे ही सती स्त्री के साथ उत्तम पति और उत्तम सेना से सेनापति अच्छे प्रकार प्रकाशित होता है ॥१०॥

नमस्ते हरस इत्यस्य लोपामुद्रा ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

न्यायाधीश को कैसा होना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्तेऽअस्त्वर्चिषे ।
अन्यांस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावकोऽअस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥११॥

पदार्थः—हे सभापते ! (हरसे) दुःख हरने वाले (ते) तेरे लिये हमारा किया (नमः) सत्कार हो तथा (शोचिषे) पवित्र (अर्चिषे) सत्कार के योग्य (ते) तेरे लिये हमारा कहा (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो जो (ते) तेरी (हेतयः) वज्रादि शस्त्रों से युक्त सेना हैं वे (अस्मत्) हम लोगों से भिन्न (अन्यान्) अन्य शत्रुओं को (तपन्तु) दुःखी करें (पावकः) शुद्धि करने हारे आप (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (शिवः) न्यायकारी (भव) हूजिये ॥११॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अन्तःकरण के शुद्ध मनुष्यों को न्यायाधीश बनाकर और दुष्टों की निवृत्ति करके सत्य न्याय का प्रकाश करें ॥११॥

नृषद इत्यस्य लोपामुद्रा ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

नृषदे॒ वेड॑प्सु॒षदे॒ वेड्ब॑र्हि॒षदे॒ वेड्व॑न॒सदे॒ वेट् स्व॒र्विदे॒ वेट्॥१२॥

पदार्थः—हे सभापते! आप (नृषदे) नायकों में स्थिर पुरुष होने के लिये (वेट्) न्यायासन पर बैठने (अप्सुषदे) जलों के बीच नौकादि में स्थिर होने वाले के लिये (वेट्) न्याय गद्दी पर बैठने (बर्हिषदे) प्रजा को बढ़ाने हारे व्यवहार में स्थिर होने के लिये (वेट्) अधिष्ठाता होने (वनसदे) वनों में रहने वालों के लिये (वेट्) न्याय में प्रवेश करने और (स्वर्विदे) सुख को जानने हारे के लिये (वेट्) उत्साह में प्रवेश करने वाले हूजिये॥१२॥

भावार्थः—जिस देश में न्यायाधीश, नौकाओं के चलाने, प्रजा को बढ़ाने, वन में रहने, सेनादि के नायक और सुख पहुँचाने हारे विद्वान् होते हैं वहीं सब सुखों की वृद्धि होती है॥१२॥

ये देवा इत्यस्य लोपामुद्रा ऋषिः। प्राणो देवता। निचृदार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अब संन्यासियों को क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है॥

ये दे॒वा दे॒वानां॑ य॒ज्ञिया॑ य॒ज्ञिया॑ना॒ꣳ संव॒त्स॒रीण॒मुप॑ भा॒गमास॑ते।
अ॒हु॒ताद॑ो ह॒विषो॑ य॒ज्ञेऽअ॒स्मिन्त्स्व॒यं पि॑बन्तु॒ मधु॑नो घृ॒तस्य॑॥१३॥

पदार्थः—(ये) जो (देवानाम्) विद्वानों में (अहुतादः) विना हवन किये हुए पदार्थ का भोजन करने हारे (देवाः) विद्वान् (यज्ञियानाम्) वा यज्ञ करने में कुशल पुरुषों में (यज्ञियाः) योगाभ्यासादि यज्ञ के योग्य विद्वान् लोग (संवत्सरीणम्) वर्ष भर पुष्ट किये (भागम्) सेवने योग्य उत्तम परमात्मा की (उपासते) उपासना करते हैं वे (अस्मिन्) इस (यज्ञे) समागमरूप यज्ञ में (मधुनः) शहत (घृतस्य) जल और (हविषः) हवन के योग्य पदार्थों के भाग को (स्वयम्) अपने आप (पिबन्तु) सेवन करें॥१३॥

भावार्थः—जो विद्वान् लोग इस संसार में अग्निक्रिया से रहित अर्थात् आहवनीय गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि सम्बन्धी बाह्य कर्मों को छोड़ के आभ्यन्तर अग्नि को धारण करने वाले संन्यासी हैं वे होम को नहीं किये भोजन करते हुए सर्वत्र विचर के सब मनुष्यों को वेदार्थ का उपदेश किया करें॥१३॥

ये इत्यस्य लोपामुद्रा ऋषिः । प्राणो देवता । आर्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब उत्तम विद्वान् लोग कैसे होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ये देवा देवेष्वधि देवत्वमायन्ये ब्रह्मणः पुरऽएतारोऽअस्य । येभ्यो नऽऋते पवते धाम किं चन न ते दिवो न पृथिव्याऽअधि स्नुषु ॥१४॥

पदार्थः—(ये) जो (देवाः) पूर्ण विद्वान् (देवेषु, अधि) विद्वानों में सबसे उत्तम कक्षा में विराजमान (देवत्वम्) अपने गुण कर्म और स्वभाव को (आयन्) प्राप्त होते हैं और (ये) जो (अस्य) इस (ब्रह्मणः) परमेश्वर को (पुरऽएतारः) पहिले प्राप्त होने वाले हैं (येभ्यः) जिन के (ऋते) विना (किम्) (चन) कोई भी (धाम) सुख का स्थान (न) नहीं (पवते) पवित्र होता (ते) वे विद्वान् लोग (न) न (दिवः) सूर्यलोक के प्रदेशों और (न) न (पृथिव्याः) पृथिवी के (अधि, स्नुषु) किसी भाग में अधिक वसते हैं ॥१४॥

भावार्थः—जो इस जगत् में उत्तम विद्वान् योगीराज यथार्थता से परमेश्वर को जानते हैं वे सम्पूर्ण प्राणियों को शुद्ध करने और जीवन्मुक्ति-दशा में परोपकार करते हुए विदेहमुक्ति अवस्था में न सूर्य्यलोक और न पृथिवी पर नियम से वसते हैं किन्तु ईश्वर में स्थिर हो के अव्याहतगति से सर्वत्र विचरा करते हैं ॥१४॥

प्राणदा इत्यस्य लोपामुद्रा ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

विद्वान् और राजा कैसे हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्राणदाऽअपानदा व्यानदा वर्चोदा वरिवोदाः ।
अन्याँस्तेऽ अस्मत्तपन्तु हेतयः पावकोऽअस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥१५॥

पदार्थः—हे विद्वान् राजन् ! (ते) आप की जो उन्नति वा शस्त्रादि (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (प्राणदाः) जीवन तथा बल को देने वा (अपानदाः) दुःख दूर करने के साधन को देने वा (व्यानदाः) व्याप्ति और विज्ञान को देने (वर्चोदाः) सब विद्याओं के पढ़ने का हेतु को देने और (वरिवोदाः) सत्य धर्म्म और विद्वानों की सेवा को व्याप्त कराने वाली (हेतयः) वज्रादि शस्त्रों की उन्नतियां (अस्मत्) हम से (अन्यान्) अन्य दुष्ट शत्रुओं को (तपन्तु) दुःखी करें उनके सहित

(पावकः) शुद्धि का प्रचार करते हुए आप हम लोगों के लिये (शिवः) मंगलकारी (भव) हूजिये ॥१५॥

भावार्थः—वही राजा है जो न्याय को बढ़ाने वाला हो और वही विद्वान् है जो विद्या से न्याय को जनाने वाला हो और वह राजा नहीं जो कि प्रजा को पीड़ा दे और वह विद्वान् भी नहीं जो दूसरों को विद्वान् न करे और वे प्रजाजन भी नहीं जो नीतियुक्त राजा की सेवा न करें ॥१५॥

अग्निरित्यस्य भारद्वाज ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

विद्वान् कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वं न्यत्रिणम्।

अग्निर्नो वनते रयिम् ॥ १६॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष ! जैसे (अग्निः) अग्नि (तिग्मेन) तीव्र (शोचिषा) प्रकाश से (अत्रिणम्) भोगने योग्य (विश्वम्) सब को (यासत्) प्राप्त होता है कि जैसे (अग्निः) विद्युत् अग्नि (नः) हमारे लिये (रयिम्) धन को (नि, वनते) निरन्तर विभागकर्त्ता है वैसे हमारे लिये आप भी हूजिये ॥१६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वानों को चाहिये कि जैसे अग्नि अपने तेज से सूखे गीले सब तृणादि को जला देता है वैसे हमारे सब दोषों को भस्म कर गुणों को प्राप्त करें। जैसे विजुली सब पदार्थों का सेवन करती है वैसे हम को सब विद्या का सेवन करा के अविद्या से पृथक् किया करें ॥१६॥

य इमा इत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः। विश्वकर्मा देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब ईश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

यऽइमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत्पिता नः।

सऽआशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ२ऽआविवेश ॥१७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (ऋषिः) ज्ञानस्वरूप (होता) सब पदार्थों को देने वा ग्रहण करने हारा (नः) हम लोगों का (पिता) रक्षक परमेश्वर (इमा) इन (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को व्याप्त होके (न्यसीदत्) निरन्तर स्थिर है और जो सब लोकों का (जुह्वत्) धारणकर्त्ता है (सः) वह (आशिषा) आशीर्वाद से हमारे लिये (द्रविणम्) धन को (इच्छमानः) चाहता और (प्रथमच्छत्) विस्तृत पदार्थों को

आच्छादित करता हुआ (अवरान्) पूर्ण आकाशादि को (आविवेश) अच्छे प्रकार व्याप्त हो रहा है यह तुम जानो ॥१७॥

भावार्थः—सब मनुष्य लोग जो सब जगत् को रचने, धारण करने, पालने तथा विनाश करने और सब जीवों के लिये सब पदार्थों को देने वाला परमेश्वर अपनी व्याप्ति से आकाशादि में व्याप्त हो रहा है उसी की उपासना करें ॥१७॥

किᳫं स्विदित्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः। विश्वकर्मा देवता। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

किᳫं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत् स्वित्कथासीत्।
यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा विद्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥१८॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष! इस जगत् का (अधिष्ठानम्) आधार (किं, स्वित्) क्या आश्चर्यरूप (आसीत्) है तथा (आरम्भणम्) इस कार्य-जगत् की रचना का आरम्भ कारण (कतमत्) बहुत उपादानों में क्या और वह (कथा) किस प्रकार से (स्वित्) तर्क के साथ (आसीत्) है कि (यतः) जिससे (विश्वकर्मा) सब सत्कर्मों वाला (विश्वचक्षाः) सब जगत् का द्रष्टा जगदीश्वर (भूमिम्) पृथिवी और (द्याम्) सूर्यादि लोक को (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (महिना) अपनी महिमा से (व्यौर्णोत्) विविध प्रकार से आच्छादित करता है ॥१८॥

भावार्थः हे मनुष्यो! तुम को यह जगत् कहां वसता क्या इसका कारण और किसलिये उत्पन्न होता है, इन प्रश्नों का उत्तर यह है कि जो जगदीश्वर कार्य-जगत् को उत्पन्न तथा अपनी व्याप्ति से सब का आच्छादन करके सर्वज्ञता से सब को देखता है वह इस जगत् का आधार और निमित्त-कारण है वह सर्वशक्तिमान् रचना आदि के सामर्थ्य से युक्त है जीवों को पाप पुण्य का फल देने भोगवाने के लिये इस सब संसार को रचा है ऐसा जानना चाहिये ॥१८॥

विश्वत इत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः। विश्वकर्मा देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देवऽएकः ॥१९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो (विश्वतश्चक्षुः) सब संसार को देखने (उत) और (विश्वतोमुखः) सब ओर से सब को उपदेश करने हारा (विश्वतोबाहुः) सब प्रकार से अनन्त बल तथा पराक्रम से युक्त (उत) और (विश्वतस्पात्) सर्वत्र व्याप्ति वाला (एकः) अद्वितीय सहायरहित (देव) अपने आप प्रकाशस्वरूप (पतत्रैः) क्रियाशील परमाणु आदि से (द्यावाभूमी) सूर्य्य और पृथिवी लोक को (सं, जनयन्) कार्य्यरूप प्रकट करता हुआ (बाहुभ्याम्) अनन्त बल पराक्रम से सब जगत् को (सं, धमति) सम्यक् प्राप्त हो रहा है उसी परमेश्वर को अपना सब ओर से रक्षक उपास्यदेव जानो ॥१९॥

भावार्थः—जो सूक्ष्म से सूक्ष्म, बड़े से बड़ा, निराकार, अनन्त सामर्थ्य वाला, सर्वत्र अभिव्याप्त, प्रकाशस्वरूप अद्वितीय परमात्मा है वही अति सूक्ष्म कारण से स्थूल कार्यरूप जगत् के रचने और विनाश करने को समर्थ है। जो पुरुष इसको छोड़ अन्य की उपासना करता है उससे अन्य जगत् में भाग्यहीन कौन पुरुष है ? ॥१९॥

किꣳ स्विदित्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः। विश्वकर्मा देवता। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

किꣳ स्विद्वनं कऽउ स वृक्षऽआस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन् ॥२०॥

पदार्थः—(प्रश्न):—हे (मनीषिणः) मन का निग्रह करने वाले योगीजनो ! तुम लोग (मनसा) विज्ञान के साथ विद्वानों के प्रति (किं, स्वित्) क्या (वनम्) सेवने योग्य कारणरूप वन तथा (कः) कौन (उ) वितर्क के साथ (सः) वह (वृक्षः) छिद्यमान अनित्य कार्यरूप संसार (आस) है ऐसा (पृच्छत) पूछो कि (यतः) जिससे (द्यावापृथिवी) विस्तारयुक्त सूर्य्य और भूमि आदि लोकों को किसने (निष्टतक्षुः) भिन्न २ बनाया है। (उत्तर) (यत्) जो (भुवनानि) प्राणियों के रहने के स्थान लोक लोकान्तरों को (धारयन्) वायु, विद्युत् और सूर्य्यादि से धारण करता हुआ (अध्यतिष्ठत्) अधिष्ठाता है (तत्) (इत्) उसी (उ) प्रसिद्ध ब्रह्म को इस सब का कर्त्ता जानो ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र के तीन पादों से प्रश्न और अन्त्य के एक पाद से उत्तर दिया है। वृक्ष शब्द से कार्य और वन शब्द से कारण का ग्रहण है जैसे सब पदार्थों को पृथिवी, पृथिवी को सूर्य, सूर्य को विद्युत् और बिजुली को वायु धारण करता है वैसे ही इन सब को ईश्वर धारण करता है ॥२०॥

या त इत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः। विश्वकर्मा देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

या ते धामा॑नि पर॒माणि॒ याऽव॒मा या म॑ध्य॒मा वि॑श्वकर्मन्नु॒तेमा।
शिक्षा॒ सखि॑भ्यो ह॒विषि॑ स्वधावः स्व॒यं य॑जस्व त॒न्वं᳖ वृधा॒नः॥२१॥

पदार्थः—हे (स्वधावः) बहुत अन्न से युक्त (विश्वकर्मन्) सब उत्तम कर्म करने वाले जगदीश्वर! (ते) आप की सृष्टि में (या) जो (परमाणि) उत्तम (या) जो (अवमा) निकृष्ट (या) जो (मध्यमा) मध्यकक्षा के (धामानि) सब पदार्थों के आधारभूत जन्मस्थान तथा नाम हैं (इमा) इन सब को (हविषि) देने लेने योग्य व्यवहार में (स्वयम्) आप (यजस्व) संगत कीजिये (उत) और हमारे (तन्वम्) शरीर की (वृधानः) उन्नति करते हुए (सखिभ्यः) आपकी आज्ञापालक हम मित्रों के लिये (शिक्ष) शुभगुणों का उपदेश कीजिये॥२१॥

भावार्थः—जैसे इस संसार में ईश्वर ने निकृष्ट मध्यम और उत्तम वस्तु तथा स्थान रचे हैं वैसे ही सभापति आदि को चाहिये कि तीन प्रकार के स्थान रच वस्तुओं को प्राप्त हो ब्रह्मचर्य से शरीर का बल बढ़ा और मित्रों को अच्छी शिक्षा देके ऐश्वर्ययुक्त होवें॥२१॥

विश्वकर्मन्नित्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः। विश्वकर्मा देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्व॑कर्मन् ह॒विषा॑ वावृधा॒नः स्व॒यं य॑जस्व पृथि॒वीमु॒त द्याम्।
मुह्य॑न्त्व॒न्येऽअ॒भितः॑ स॒पत्ना॑ऽइ॒हास्माकं॑ म॒घवा॑ सू॒रिर॑स्तु॥२२॥

पदार्थः—हे (विश्वकर्मन्) सम्पूर्ण उत्तम कर्म करने हारे सभापति! (हविषा) उत्तम गुणों के ग्रहण से (वावृधानः) उन्नति को प्राप्त हुआ जैसे ईश्वर (पृथिवीम्) भूमि (उत) और (द्याम्) सूर्य्यादि लोक को संगत करता है वैसे आप (स्वयम्) आप ही (यजस्व) सब से समागम कीजिये (इह) इस जगत् में (मघवा) प्रशंसित धनवान् पुरुष (सूरिः) विद्वान् (अस्तु) हो जिससे (अस्माकम्) हमारे (अन्ये) और (सपत्नाः) शत्रुजन (अभितः) सब ओर से (मुह्यन्तु) मोह को प्राप्त हों॥२२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य ईश्वर ने जिस प्रयोजन के लिये जो पदार्थ रचा है उसको वैसा जान के उपकार

लेते हैं उनकी दरिद्रता और आलस्यादि दोषों का नाश होने से शत्रुओं का प्रलय होता और वे आप भी विद्वान् हो जाते हैं ॥२२॥

वाचस्पतिमित्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः। विश्वकर्मा देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

कैसा पुरुष राज्य के अधिकार पर नियुक्त करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजेऽअद्या हुवेम।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥२३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! हम लोग (ऊतये) रक्षा आदि के लिये जिस (वाचस्पतिम्) वेदवाणी के रक्षक (मनोजुवम्) मन के समान वेगवान् (विश्वकर्माणम्) सब कर्मों में कुशल महात्मा पुरुष को (वाजे) संग्राम आदि कर्म में (हुवेम) बुलावें (सः) वह (विश्वशम्भूः) सब के लिये सुखप्रापक (साधुकर्मा) धर्मयुक्त कर्मों का सेवन करने हारा विद्वान् (नः) हमारी (अवसे) रक्षा आदि के लिये (अद्य) आज (विश्वानि) सब (हवनानि) ग्रहण करने योग्य कर्मों को (जोषत्) सेवन करे ॥२३॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जिसने ब्रह्मचर्य नियम के साथ सब विद्या पढ़ी हों जो धर्मात्मा आलस्य और पक्षपात को छोड़ के उत्तम कर्मों का सेवन करता तथा शरीर और आत्मा के बल से पूरा हो उसको सब प्रजा की रक्षा करने में अधिपति राजा बनावें ॥२३॥

विश्वकर्मन्नित्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः। विश्वकर्मा देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्यों को कैसा पुरुष राजा मानना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

विश्वकर्मन् हविषा वर्द्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम्।
तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत् ॥२४॥

पदार्थः—हे (विश्वकर्मन्) सम्पूर्ण शुभकर्मों के सेवन करनेहारे सब सभाओं के पति राजा! आप (हविषा) ग्रहण करने योग्य (वर्द्धनेन) वृद्धि से जिस (अवध्यम्) मारने के अयोग्य (त्रातारम्) रक्षक (इन्द्रम्) उत्तम सम्पत्ति वाले पुरुष को राजकार्य में सम्मतिदाता मन्त्री (अकृणोः) करो (तस्मै) उस के लिये (पूर्वीः) पहिले न्यायाधीशों ने प्राप्त कराई (विशः) प्रजाओं को (समनमन्त) अच्छे प्रकार नम्र करो

(यथा) जैसे (अयम्) यह मन्त्री (उग्रः) मारने में तीक्ष्ण (विहव्यः) विविध प्रकार के साधनों से स्वीकार करने योग्य (असत्) होवे वैसा कीजिये ॥२४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। सब सभाओं के अधिष्ठाता के सहित सब सभासद् उस पुरुष को राज्य का अधिकार देवें कि जो पक्षपाती न हो जो पिता के समान प्रजाओं की रक्षा न करें उनको प्रजा लोग भी कभी न मानें और जो पुत्र के तुल्य प्रजा की न्याय से रक्षा करें उनके अनुकूल प्रजा निरन्तर हों ॥२४॥

चक्षुष इत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः। विश्वकर्मा देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेनेऽअजनन्नम्नमाने।
यदेदन्ताऽ अदद्दहन्त पूर्वऽआदिद् द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥२५॥

पदार्थः—हे प्रजा के पुरुषो! आप लोग जो (चक्षुषः) न्याय दिखाने वाले उपदेशक का (पिता) रक्षक (मनसा) योगाभ्यास से शान्त अन्तःकरण (हि) ही से (धीरः) धीरजवान् (घृतम्) घी को (अजनत्) प्रकट करता है उस को अधिकार देके (एने) राज और प्रजा के दल (नम्नमाने) नम्र के तुल्य आचरण करते हुए (पूर्वे) पहिले से वर्त्तमान (द्यावापृथिवी) प्रकाश और पृथिवी के समान मिले हुए जैसे (अप्रथेताम्) प्रख्यात होवें वैसे (इत्) ही (यदा) जब (अन्ताः) अन्त्य के अवयवों के तुल्य (अददृहन्त) वृद्धि को प्राप्त हों तब (आत्) उस के पश्चात् (इत्) ही स्थिरराज्य वाले होओ ॥२५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जब मनुष्य राज और प्रजा के व्यवहार में एकसम्मति होकर सदा प्रयत्न करें तभी सूर्य और पृथिवी के तुल्य स्थिर सुख वाले होवें ॥२५॥

विश्वकर्मेत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः। विश्वकर्मा देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब परमेश्वर कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्वकर्म्मा विमनाऽआद्विहाया धाता विधाता परमोत सन्दृक्।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन् परऽएकमाहुः ॥२६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! (विश्वकर्मा) जिस का समस्त जगत् का बनाना क्रियमाण काम और जो (विमनाः) अनेक प्रकार के विज्ञान से युक्त (विहायाः)

विविध प्रकार के पदार्थों में व्याप्त (धाता) सब का धारण पोषण करने (विधाता) और रचने वाला (संदृक्) अच्छे प्रकार सब को देखता (परः) और सब से उत्तम है तथा जिसको (एकम्) अद्वितीय (आहुः) कहते अर्थात् जिस में दूसरा कहने में नहीं आता (आत्) और (यत्र) जिसमें (सप्तऋषीन्) पांच प्राण सूत्रात्मा और धनञ्जय इन सात को प्राप्त होकर (इषा) इच्छा से जीव (सं, मदन्ति) अच्छे प्रकार आनन्द को प्राप्त होते (उत्) और जो (तेषाम्) उन जीवों के (परमा) उत्तम (इष्टानि) सुख सिद्ध करने वाले कामों को सिद्ध करता है उस परमेश्वर की तुम लोग उपासना करो ॥२६॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सब जगत् का बनाने धारण, पालन और नाश करने हारा एक अर्थात् जिसका दूसरा कोई सहायक नहीं हो सकता उसी परमेश्वर की उपासना अपने चाहे हुए काम के सिद्ध करने के लिये करना चाहिये ॥२६॥

यो न इत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मर्षिः । विश्वकर्मा देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यो नः॑ पि॒ता ज॑नि॒ता यो वि॑धा॒ता धामा॑नि॒ वेद॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ।
यो दे॒वानां॑ नाम॒धाऽएक॑ऽए॒व तꣳ स॑म्प्र॒श्नं भुव॑ना यन्त्य॒न्या ॥२७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (नः) हमारा (पिता) पालन और (जनिता) सब पदार्थों का उत्पादन करने हारा तथा (यः) जो (विधाता) कर्मों के अनुसार फल देने तथा जगत् का निर्माण करने वाला (विश्वा) समस्त (भुवनानि) लोकों और (धामानि) जन्मस्थान वा नाम को (वेद) जानता (यः) जो (देवानाम्) विद्वानों वा पृथिवी आदि पदार्थों का (नामधाः) अपनी विद्या से नाम धरने वाला (एकः) एक अर्थात् असहाय (एव) ही है जिसको (अन्या) और (भुवना) लोकस्थ पदार्थ (यन्ति) प्राप्त होते वा जाते हैं (संप्रश्नम्) जिसके निमित्त अच्छे प्रकार पूछना हो (तम्) उस को तुम लोग जानो ॥२७॥

भावार्थः—जो पिता के तुल्य समस्त विश्व का पालने और सब को जानने हारा एक परमेश्वर है उसके और उस की सृष्टि के विज्ञान से ही सब मनुष्य परस्पर मिल के प्रश्न और उत्तर करें ॥२७॥

तऽआयजन्त इत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः । विश्वकर्मा देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तऽआयंजन्त द्रविण्ꣳ समस्माऽऋषंयः पूर्वे जरितारो न भूना ।
असूर्त्ते सूर्त्ते रजंसि निषत्ते ये भूतानि समकृंण्वन्निमानि ॥२८॥

पदार्थ —(ये) जो (पूर्वे) पूर्ण विद्या से सब की पुष्टि (जरितारः) और स्तुति करने वाले के (न) समान (ऋषयः) वेदार्थ के जानने वाले (भूना) बहुतसे (असूर्त्ते) परोक्ष अर्थात् अप्राप्त हुए वा(सूर्त्ते)प्रत्यक्ष अर्थात् पाये हुए(निषत्ते)स्थित वा स्थापित किये हुए (रजसि) लोक में (इमानि) इन प्रत्यक्ष (भूतानि) प्राणियों को (समकृण्वन्) अच्छे प्रकार शिक्षित करते हैं (ते) वे (अस्मै) इस ईश्वर की आज्ञा पालने के लिये (द्रविणम्) धन को (सम्, आ, यजन्त) अच्छे प्रकार संगत करें ॥२८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग इस जगत् में परमात्मा की आज्ञा पालने के लिये सृष्टिक्रम से तत्त्वों को जानते हैं वैसे ही अन्य लोग आचरण करें। जैसे धार्मिक जन धर्म्म के आचरण से धन को इकट्ठा करते हैं वैसे ही सब लोग उपार्जन करें ॥२८॥

परो दिवेत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः। विश्वकर्मा देवता। आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

परो दिवा परऽएना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति ।
कꣳ स्विद्गर्भं प्रथमं दध्रऽआपो यत्र देवाः समपंश्यन्त पूर्वे ॥२९॥

पदार्थः —हे मनुष्यो ! जो (एना) इन (दिवा) सूर्य्य आदि लोकों से (परः) परे अर्थात् अत्युत्तम (पृथिव्या) पृथिवी आदि लोकों से (परः) परे (देवेभिः) विद्वान् वा दिव्य प्रकाशित प्रजाओं और (असुरैः) अविद्वान् तथा कालरूप प्रजाओं से (परः) परे (अस्ति) है (यत्र) जिस में (आपः) प्राण (कं, स्वित्) किसी (प्रथमम्) विस्तृत (गर्भम्) ग्रहण करने योग्य पदार्थ को (दध्रे) धारण करते हुए वा (यत्) जिस को (पूर्वे) पूर्ण विद्या के अध्ययन करने वाले (देवाः) विद्वान् लोग (समपश्यन्त) अच्छे प्रकार ज्ञानचक्षु से देखते हैं वह ब्रह्म है यह तुम लोग जानो ॥२९॥

भावार्थः— मनुष्यों को चाहिये कि जो सब से सूक्ष्म बड़ा अतिश्रेष्ठ सब का धारणकर्त्ता, विद्वानों का विषय अर्थात् समस्त विद्याओं का समाधानरूप अनादि और चेतनमात्र है वही ब्रह्म उपासना करने के योग्य है अन्य नहीं ॥२९॥

तमिदित्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मर्षिः। विश्वकर्मा देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तमिद् गर्भं प्रथमं दध्रऽआपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥३०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्र) जिस ब्रह्म में (आपः) कारणमात्र प्राण वा जीव (प्रथमम्) विस्तारयुक्त अनादि (गर्भम्) सब लोकों की उत्पत्ति का स्थान प्रकृति को (दध्रे) धारण करते हुए वा जिस में (विश्वे) सब (देवाः) दिव्य आत्मा और अन्तःकरणयुक्त योगीजन (समगच्छन्त) प्राप्त होते हैं वा जो (अजस्य) अनुत्पन्न अनादि जीव वा अव्यक्त कारण समूह के (नाभौ) मध्य में (अधि) अधिष्ठातृपन से सब के ऊपर विराजमान (एकम्) आप ही सिद्ध (अर्पितम्) स्थित (यस्मिन्) जिस में (विश्वानि) समस्त (भुवनानि) लोकोत्पन्न द्रव्य (तस्थुः) स्थिर होते हैं तुम लोग (तमित्) उसी को परमात्मा जानो ॥३०॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जो जगत् का आधार योगियों को प्राप्त होने योग्य अन्तर्यामी आप अपना आधार सब में व्याप्त है उसी का सेवन सब लोग करें ॥३०॥

न तं विदाथेत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मर्षिः । विश्वकर्मा देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

न तं विदाथ यऽइमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृपऽउक्थशासश्चरन्ति ॥३१॥

पदार्थः—(हे) मनुष्यो ! जैसे ब्रह्म के न जानने वाले पुरुष (नीहारेण) धूम के आकार कुहर के समान अज्ञानरूप अन्धकार से (प्रावृताः) अच्छे प्रकार ढके हुए (जल्प्या) थोड़े सत्य असत्य वादानुवाद में स्थिर रहने वाले (असुतृपः) प्राणपोषक (च) और (उक्थशासः) योगाभ्यास को छोड़ शब्द अर्थ सम्बन्ध के खण्डन मण्डन में रमण करते हुए (चरन्ति) विचरते हैं वैसे हुए तुम लोग (तम्) उस परमात्मा को (न) नहीं (विदाथ) जानते हो (यः) जो (इमा) इन प्रजाओं को (जजान) उत्पन्न करता और जो ब्रह्म (युष्माकम्) तुम अधर्मी अज्ञानियों के सकाश से (अन्यत्) अर्थात् कार्य्यकारणरूप जगत् और जीवों से भिन्न (अन्तरम्) तथा सबों में स्थित भी दूरस्थ (बभूव) होता है उस अतिसूक्ष्म आत्मा के आत्मा अर्थात् परमात्मा को नहीं जानते हो ॥३१॥

भावार्थः—जो पुरुष ब्रह्मचर्य्य आदि व्रत, आचार, विद्या, योगाभ्यास, धर्म के अनुष्ठान, सत्संग और पुरुषार्थ से रहित हैं वे अज्ञानरूप अन्धकार में दबे हुए ब्रह्म को नहीं जान सकते जो ब्रह्म जीवों से पृथक् अन्तर्यामी सब का नियन्ता और सर्वत्र व्याप्त है उसके जानने को जिनका आत्मा पवित्र है वे ही योग्य होते हैं अन्य नहीं ॥३१॥

विश्वकर्मेत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मर्षिः । विश्वकर्मा देवता । स्वराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

विश्वकर्मा ह्यजनिष्ट देवऽआदिद् गन्धर्वोऽअभवद् द्वितीयः ।
तृतीयः पिता जनितौषधीनामपां गर्भं व्यदधात्पुरुत्रा ॥३२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! इस जगत् में (विश्वकर्मा) जिस के समस्त शुभ काम हैं वह (देवः) दिव्यस्वरूप वायु प्रथम (इत्) ही (अभवत्) होता है (आत्) इस के अनन्तर (गन्धर्वः) जो पृथिवी को धारण करता है वह सूर्य वा सूत्रात्मा वायु (अजनिष्ट) उत्पन्न और (ओषधीनाम्) यव आदि ओषधियों (अपाम्) जलों और प्राणों का (पिता) पालन करने हारा (हि) ही (द्वितीयः) दूसरा अर्थात् धनञ्जय तथा जो प्राणों के (गर्भम्) गर्भ अर्थात् धारण को (व्यदधात्) विधान करता है वह (पुरुत्रा) बहुतों का रक्षक (जनिता) जलों का धारण करने हारा मेघ (तृतीयः) तीसरा उत्पन्न होता है इस विषय को आप लोग जानो ॥३२॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को योग्य है कि इस संसार में सब कामों के सेवन करने हारे जीव पहिले बिजुली अग्नि वायु और सूर्य पृथिवी आदि लोकों के धारण करने हारे हैं वे दूसरे और मेघ आदि तीसरे हैं उन में पहिले जीव अज अर्थात् उत्पन्न नहीं होते और दूसरे तीसरे उत्पन्न हुए हैं परन्तु वे भी कारणरूप से नित्य हैं ऐसा जानें ॥३२॥

आशुः शिशान इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब सेनापति के कृत्य का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ॥

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
संक्रन्दनोऽनिमिषऽएकवीरः शतꣳ सेनाऽअजयत्साकमिन्द्रः ॥३३॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम लोग जो (चर्षणीनाम्) सब मनुष्यों वा उन की सम्बन्धिनी सेनाओं में (आशुः) शीघ्रकारी (शिशानः) पदार्थों को सूक्ष्म

करने वाला (वृषभः) बलवान् बैल के (न) समान (भीमः) भयंकर (घनाघनः) अत्यन्त आवश्यकता के साथ शत्रुओं का नाश करने (क्षोभणः) उन को कंपाने (संक्रन्दनः) अच्छे प्रकार शत्रुओं को रुलाने और (अनिमिषः) रात्रिदिन प्रयत्न करने हारा (एकवीरः) अकेला वीर (इन्द्रः) शत्रुओं को विदीर्ण करने वाला सेना का अधिपति पुरुष हम लोगों के (साकम्) साथ (शतम्) अनेकों (सेनाः) उन सेनाओं को जिन से शत्रुओं को बांधते हैं (अजयत्) जीतता है उसी को सेनाधीश करो ॥३३॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जो धनुर्वेद और ऋग्वेदादि शास्त्रों का जानने वाला निर्भय सब विद्याओं में कुशल अति बलवान् धार्म्मिक अपने स्वामी के राज्य में प्रीति करने वाला जितेन्द्रिय शत्रुओं का जीतने हारा तथा अपनी सेना को सिखाने और युद्ध कराने में कुशल वीर पुरुष हो उस को सेनापति के अधिकार पर नियुक्त करें ॥३३॥

संक्रन्दनेनेत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नरऽइषुहस्तेन वृष्णा ॥३४॥

पदार्थः—हे (युधः) युद्ध करने हारे (नरः) मनुष्यो ! तुम (अनिमिषेण) निरन्तर प्रयत्न करते हुए (दुश्च्यवनेन) शत्रुओं को कष्ट प्राप्त कराने वाले (धृष्णुना) दृढ़ उत्साही (युत्कारेण) विविध प्रकार की रचनाओं से योद्धाओं को मिलाने और न मिलाने हारे (वृष्णा) बलवान् (इषुहस्तेन) बाण आदि शस्त्रों को हाथ में रखने (संक्रन्दनेन) और दुष्टों को अत्यन्त रुलाने हारे (जिष्णुना) जयशील शत्रुओं को जीतने और वा (इन्द्रेण) परम ऐश्वर्य करने हारे (तत्) उस पूर्वोक्त सेनापति आदि के साथ वर्त्तमान हुए शत्रुओं को (जयत) जीतो और (तत्) उस शत्रु की सेना के वेग वा युद्ध से हुए दुःख को (सहध्वम्) सहो ॥३४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग युद्धविद्या में कुशल सर्व शुभ लक्षण और बलपराक्रमयुक्त मनुष्य को सेनापति करके उस के साथ अधार्मिक शत्रुओं को जीत के निष्कंटक चक्रवर्त्ती राज्य भोगो ॥३४॥

सऽइषुहस्तैरित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सऽइषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी सꣳस्रष्टा स युधऽइन्द्रो गणेन ।
सꣳसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥३५॥

पदार्थः—(सः) वह सेनापति (इषुहस्तैः) शस्त्रों को हाथों में रखने हारे और अच्छे सिखाये हुए बलवान् (निषङ्गिभिः) जिन के भुशुण्डी "बन्दूक" शतघ्नी "तोप" और आग्नेय आदि बहुत अस्त्र विद्यमान हैं उन भृत्यों के साथ वर्त्तमान (सः) वह (संस्रष्टा) श्रेष्ठ मनुष्यों तथा शस्त्र और अस्त्रों का सम्बन्ध करने वाला (वशी) अपने इन्द्रिय और अन्तःकरण को जीते हुए जो (संसृष्टजित्) प्राप्त शत्रुओं को जीतता (सोमपाः) बलिष्ठ ओषधियों के रस को पीता (बाहुशर्द्धी) भुजाओं में जिसके बल विद्यमान हो और (उग्रधन्वा) जिसका तीक्ष्ण धनुष् है (सः) वह (युधः) युद्धशील (अस्ता) शस्त्र और अस्त्रों को अच्छे प्रकार फेंकने तथा (इन्द्रः) शत्रुओं को मारने वाला और (गणेन) अच्छे सीखे हुए भृत्यों वा सेना वीरों ने (प्रतिहिताभिः) प्रत्यक्षता से स्वीकार की हुई सेना के साथ वर्त्तमान होता हुआ जनों को जीते ॥३५॥

भावार्थः—सब का ईश राजा वा सब सेनाओं का अधिपति अच्छे सीखे हुए वीर भृत्यों की सेना के साथ वर्त्तमान दुःख से जीतने योग्य शत्रुओं को भी जीत सके वैसे सब को करना चाहिये ॥३५॥

बृहस्पत इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ२ऽअपबाधमानः ।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥३६॥

पदार्थः—हे (बृहस्पते) धार्मिकों वृद्धों वा सेनाओं के रक्षक जन ! (रक्षोहा) जो दुष्टों को मारने (अमित्रान्) शत्रुओं को (अपबाधमानः) दूर करने (प्रमृणः) अच्छे प्रकार मारने और (सेनाः) उन की सेनाओं को (प्रभञ्जन्) भग्न करने वाला तू (रथेन) रथसमूह से (युधा) युद्ध में शत्रुओं को (परि, दीया) सब ओर से काटता है सो (जयन्) उत्कर्ष अर्थात् जय को प्राप्त होता हुआ (अस्माकम्) हम लोगों के (रथानाम्) रथों की (अविता) रक्षा करने वाला (एधि) हो ॥३६॥

भावार्थः—राजा सेनापति और अपनी सेना को उत्साह कराता तथा शत्रुसेना को मारता हुआ धर्मात्मा प्रजाजनों की निरन्तर उन्नति करे ॥३६॥

बलविज्ञाय इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमानऽउग्रः ।
अभिवीरोऽअभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमातिष्ठ गोवित् ॥३७॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) युद्ध की उत्तम सामग्री युक्त सेनापति ! (बलविज्ञायः) जो अपनी सेना को बली करना जानता (स्थविरः) वृद्ध (प्रवीरः) उत्तम वीर (सहस्वान्) अत्यन्त बलवान् (वाजी) जिस को प्रशंसित शास्त्रबोध है (सहमानः) जो सुख और दुःख को सहने तथा (उग्रः) दुष्टों को मारने में तीव्र तेज वाला (अभिवीरः) जिस के अभीष्ट अर्थात् तत्काल चाहे हुए काम के करने वाले वा (अभिसत्वा) सब ओर से युद्ध विद्या में कुशल रक्षा करनेहारे वीर हैं (सहोजाः) बल से प्रसिद्ध (गोवित्) वाणी, गौओं वा पृथिवी को प्राप्त होता हुआ ऐसा तू युद्ध के लिये (जैत्रम्) जीतने वाले वीरों से घेरे हुए (रथम्) पृथिवी समुद्र और आकाश में चलने वाले रथ को (आ, तिष्ठ) आकर स्थित हो अर्थात् उस में बैठ ॥३७॥

भावार्थः—सेनापति वा सेना के वीर जब शत्रुओं से युद्ध की इच्छा करें तब परस्पर सब ओर से रक्षा और रक्षा के साधनों को संग्रह कर विचार और उत्साह के साथ वर्त्तमान आलस्य रहित होते हुए शत्रुओं को जीतने में तत्पर हों ॥३७॥

गोत्रभिदमित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
इमꣳ सजाताऽअनु वीरयध्वमिन्द्रꣳ सखायोऽअनु सꣳरभध्वम् ॥३८॥

पदार्थः—हे (सजाताः) एकदेश में उत्पन्न (सखायः) परस्पर सहाय करने वाले मित्रो ! तुम लोग (ओजसा) अपने शरीर और बुद्धिबल वा सेनाजनों से (गोत्रभिदम्) जो कि शत्रुओं के गोत्रों अर्थात् समुदायों को छिन्न भिन्न करता उनकी जड़ काटता (गोविदम्) शत्रुओं की भूमि को लेलेता (वज्रबाहुम्) अपनी भुजाओं में शस्त्रों को रखता (प्रमृणन्तम्) अच्छे प्रकार शत्रुओं को मारता (अज्म) जिस से वा जिस में शत्रुजनों को पटकते हैं उस संग्राम में (जयन्तम्) वैरियों को जीत लेता और (इमम्, इन्द्रम्) उन को विदीर्ण करता है इस सेनापति को (अनु, वीरयध्वम्) प्रोत्साहित करो और (अनु, संरभध्वम्) अच्छे प्रकार युद्ध का आरम्भ करो ॥३८॥

भावार्थः—सेनापति आदि तथा सेना के भृत्य परस्पर मित्र होकर

एक दूसरे को अनुमोदन करा युद्ध का आरम्भ और विजय कर शत्रुओं के राज्य को पा और न्याय से प्रजा को पालन करके निरन्तर सुखी हों ॥३८॥

अभि गोत्राणीत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्योऽअस्माकꣳ सेना अवतु प्र युत्सु ॥३९॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! जो (युत्सु) जिन से अनेक पदार्थों का मेल अमेल करें उन युद्धों में (सहसा) बल से (गोत्राणि) शत्रुओं के कुलों को (प्र, गाहमानः) अच्छे यत्न से गाहता हुआ (अदयः) निर्दय (शतमन्युः) जिस को सैकड़ों प्रकार का क्रोध विद्यमान है (दुश्च्यवनः) जो दुःख से शत्रुओं के गिराने योग्य (पृतनाषाट्) शत्रु की सेना को सहता है (अयुध्यः) और जो शत्रुओं के युद्ध करने योग्य नहीं है (वीरः) तथा शत्रुओं को विदीर्ण करता है वह (अस्माकम्) हमारी (सेनाः) सेनाओं को (अभि, अवतु) सब ओर से पाले और (इन्द्रः) सेनाधिपति हो ऐसी आज्ञा तुम देओ ॥३९॥

भावार्थः—जो धार्मिक जनों में करुणा करने वाला और दुष्टों में दयारहित सब ओर से सब की रक्षा करने वाला मनुष्य हो वही सेना के पालने में अधिकारी करने योग्य है ॥३९॥

इन्द्रऽआसामित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रऽआसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुरऽएतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥४०॥

पदार्थः—युद्ध में (अभिभञ्जतीनाम्) शत्रुओं की सेनाओं को सब ओर से मारती (जयन्तीनाम्) और शत्रुओं को जीतने से उत्साह को प्राप्त होती हुई (आसाम्) इन (देवसेनानाम्) विद्वानों की सेनाओं का (नेता) नायक (इन्द्रः) उत्तम ऐश्वर्य्य वाला शिक्षक सेनापति पीछे (यज्ञः) सब को मिलने वाला (पुरः) प्रथम (बृहस्पतिः) सब अधिकारियों का अधिपति (दक्षिणा) दाहिनी ओर और (सोमः) सेना को

प्रेरणा अर्थात् उत्साह देने वाला बाईं ओर (एतु) चले तथा (मरुतः) पवनों के समान वेग वाले बली शूरवीर (अग्रम्) आगे को (यन्तु) जावें ॥४०॥

भावार्थः—जब राजपुरुष शत्रुओं के साथ युद्ध किया चाहें तब सब दिशाओं में अध्यक्ष तथा शूरवीरों को आगे और डरपने वालों को बीच में ठीक स्थापन कर भोजन आच्छादन वाहन अस्त्र और शस्त्रों के योग से युद्ध करें और वहां विद्वानों की सेना के आधीन मूर्खों की सेना करनी चाहिये उन सेनाओं को विद्वान् लोग अच्छे उपदेश से उत्साह देवें और सेनाध्यक्षादि पद्मव्यूह आदि बांध के युद्ध करावें ॥४०॥

इन्द्रस्येत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्र॑स्य॒ वृष्णो॒ वरु॑णस्य॒ राज्ञ॑ऽआदि॒त्याना॑ᳪ म॒रुता॒ᳪ शर्द्ध॑ऽउ॒ग्रम् ।
म॒हाम॑नसां भुवनच्य॒वानां॒ घोषो॑ दे॒वानां॒ जय॑ता॒मुद॑स्थात् ॥४१॥

पदार्थः—(वृष्णः) वीर्य्यवान् (इन्द्रस्य) सेनापति (वरुणस्य) सब से उत्तम (राज्ञः) न्याय और विनय आदि गुणों से प्रकाशमान सब के अधिपति राजा के (भुवनच्यवानाम्) जो उत्तम घरों को प्राप्त होते (महामनसाम्) बड़े बड़े विचार वाले वा (जयताम्) शत्रुओं के जीतने को समर्थ (आदित्यानाम्) जिन्होंने ४८ वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य किया हो (मरुताम्) और जो पूर्ण विद्याबलयुक्त हैं उन (देवानाम्) विद्वान् पुरुषों का (उग्रम्) जो शत्रुओं को असह्य (शर्द्धः) बल (घोषः) शूरता और उत्साह उत्पन्न करने वाला विचित्र बाजों का स्वरालाप शब्द है वह युद्ध के आरम्भ से पहिले (उदस्थात्) उठे ॥४१॥

भावार्थः—सेनाध्यक्षों को चाहिये कि शिक्षा और युद्ध के समय मनोहर वीरभाव को उत्पन्न करने वाले अच्छे बाजों के बजाए हुए शब्दों से वीरों को हर्षित करावें तथा जो बहुत काल पर्यन्त ब्रह्मचर्य और अधिक विद्या से शरीर और आत्मबलयुक्त हैं वे ही योद्धाओं की सेनाओं के अधिकारी करने योग्य हैं ॥४१॥

उद्धर्षयेत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उद्ध॑र्षय मघव॒न्नायु॑धा॒न्युत्सत्व॑नां माम॒काना॒ं मनाᳪसि ।
उद्वृ॑त्रहन् वा॒जिनां॒ वाजि॑ना॒न्युद्रथा॑नां॒ जय॑तां यन्तु॒ घोषाः॑ ॥४२॥

पदार्थः—सेना के पुरुष अपने स्वामी से ऐसे कहें कि हे (वृत्रहन्) मेघ को सूर्य के समान शत्रुओं को छिन्न भिन्न करने वाले (मघवन्) प्रशंसित धनयुक्त सेनापति ! आप (मामकानाम्) हम लोगों के (सत्वनाम्) सेनास्थ वीर पुरुषों के (आयुधानि) जिनसे अच्छे प्रकार युद्ध करते हैं उन शस्त्रों का (उद्धर्षय) उत्कर्ष कीजिये । हमारे सेनास्थ जनों के (मनांसि) मनों को (उत्) उत्तम हर्षयुक्त कीजिये हमारे (वाजिनाम्) घोड़ों की (वाजिनानि) शीघ्र चालों को (उत्) बढ़ाइये तथा आप की कृपा से हमारे (जयताम्) विजय कराने वाले (रथानाम्) रथों के (घोषाः) शब्द (उद्यन्तु) उठें ॥४२॥

भावार्थः—सेनापति और शिक्षक जनों को चाहिये कि योद्धाओं के चित्तों को नित्य हर्षित करें और सेना के अङ्गों को अच्छे प्रकार उन्नति देकर शत्रुओं को जीतें ॥४२॥

अस्माकमित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीराऽउत्तरे भवन्त्वस्माँ२ऽउं देवा अवता हवेषु ॥४३॥

पदार्थः—हे (देवाः) विजय चाहने वाले विद्वानो ! तुम (अस्माकम्) हम लोगों के (समृतेषु) अच्छे प्रकार सत्य न्याय प्रकाश करने हारे चिह्न जिन में हों उन (ध्वजेषु) अपने वीर जनों के निश्चय के लिये रथ आदि यानों के ऊपर एक दूसरे से भिन्न स्थापित किये हुए ध्वजा आदि चिह्नों में नीचे अर्थात् उन की छाया में वर्त्तमान जो (इन्द्रः) ऐश्वर्य्य करने वाला सेना का ईश और (अस्माकम्) हम लोगों की (याः) जो (इषवः) प्राप्त सेना हैं वह इन्द्र और (ताः) वे सेना (हवेषु) जिन में ईर्ष्या से शत्रुओं को बुलावें उन संग्रामों में (जयन्तु) जीतें (अस्माकम्) हमारे (वीराः) वीर जन (उत्तरे) विजय के पीछे जीवनयुक्त (भवन्तु) हों (अस्मान्) हम लोगों की (उ) सब जगह युद्धसमय में (अवत) रक्षा करो ॥४३॥

भावार्थः—सेनाजन और सेनापति आदि को चाहिये कि अपने अपने रथ आदि में भिन्न २ चिह्न को स्थापन करें जिस से यह इस का रथ आदि है ऐसा सब जानें और जैसे अश्व तथा वीरों का अधिक विनाश न हो वैसा ढंग करें क्योंकि परस्पर के पराक्रम के क्षय होने से निश्चल विजय नहीं होता यह जानें ॥४३॥

अमीषामित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥४४॥

पदार्थः - हे (अप्वे) शत्रुओं के प्राणों को दूर करने हारी राणी क्षत्रिया वीर स्त्री ! (अमीषाम्) उन सेनाओं के (चित्तम्) चित्त को (प्रतिलोभयन्ती) प्रत्यक्ष में लुभाने वाली जो अपनी सेना है उसके (अङ्गानि) अङ्गों को तू (गृहाण) ग्रहण कर अधर्म्म से (परेहि) दूर हो अपनी सेना को (अभि, प्रेहि) अपना अभिप्राय दिखा और शत्रुओं को (निर्दह) निरन्तर जला जिस से ये (अमित्राः) शत्रु जन (हृत्सु) अपने हृदयों में (शोकैः) शोकों से (अन्धेन) आच्छादित हुए (तमसा) रात्रि के अन्धकार के साथ (सचन्ताम्) संयुक्त रहें ॥४४॥

भावार्थः—सभापति आदि को योग्य है कि जैसे अति प्रशंसित हृष्ट पुष्ट अङ्ग उपाङ्गादियुक्त शूरवीर पुरुषों की सेना का स्वीकार करें वैसे शूरवीर स्त्रियों की भी सेना स्वीकार करें और जिस स्त्रीसेना में अव्यभिचारिणी स्त्री रहें और उस सेना से शत्रुओं को वश में स्थापन करें ॥४४॥

अवसृष्टेत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इषुर्देवता । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
गच्छामित्रान् प्र पद्यस्व मामीषां कञ्चनोच्छिषः ॥४५॥

पदार्थः—हे (शरव्ये) बाणविद्या में कुशल (ब्रह्मसंशिते) वेदवेत्ता विद्वान् से प्रशंसा और शिक्षा पाए हुए सेनाधिपति की स्त्री ! तू (अवसृष्टा) प्रेरणा को प्राप्त हुई (परा, पत) दूर जा (अमित्रान्) शत्रुओं को (गच्छ) प्राप्त हो और उन के मारने से विजय को (प्र, पद्यस्व) प्राप्त हो (अमीषाम्) उन दूर देश में ठहरे हुए शत्रुओं में से मारने के विना (कं, चन) किसी को (मा) (उच्छिषः) मत छोड़ ॥४५॥

भावार्थः—सभापति आदि को चाहिये कि जैसे युद्धविद्या से पुरुषों को शिक्षा करें वैसे स्त्रियों को भी शिक्षा करें जैसे वीरपुरुष युद्ध करें वैसे स्त्री भी करें जो युद्ध में मारे जावें उन से शेष अर्थात् बचे हुए कातरों को निरन्तर कारागार में स्थापन करें ॥४५॥

प्रेता जयतेत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । योद्धा देवता । विराडार्घ्यनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रेता जयता नरऽइन्द्रो वः शर्म्म यच्छतु ।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथाऽसथ ॥४६॥

पदार्थः—हे (नरः) अनेक प्रकार के व्यवहारों को प्राप्त करने वाले मनुष्यो ! तुम (यथा) जैसे शत्रुजनों को (इत) प्राप्त होओ और उन्हें (जयत) जीतो तथा (इन्द्रः) शत्रुओं को विदीर्ण करने वाला सेनापति (वः) तुम लोगों के लिये (शर्म्म) घर (प्र, यच्छतु) देवे (वः) तुम्हारी (बाहवः) भुजा (उग्राः) दृढ़ (सन्तु) हों और तुम (अनाधृष्याः) शत्रुओं से न धमकाने योग्य (असथ) होओ वैसा प्रयत्न करो ॥४६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो शत्रुओं को जीतने वाले वीर हों उन का सेनापति धन अन्न गृह और वस्त्रादिकों से निरन्तर सत्कार करे तथा सेनास्थ जन जैसे बली हों वैसा व्यवहार अर्थात् व्यायाम और शस्त्र अस्त्रों का चलाना सीखें ॥४६॥

असौ येत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । मरुतो देवताः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

असौ या सेना मरुतः परेषामभ्येति नऽओजसा स्पर्द्धमाना ।
तां गूहत तमसापव्रतेन यथामीऽअन्योऽअन्यन्न जानन् ॥४७॥

पदार्थः—हे (मरुतः) ऋतु ऋतु में यज्ञ करने वाले विद्वानो ! तुम (या) जो (स्पर्द्धमाना) ईर्षा करती हुई (सेना) सेना (असौ) वह (परेषाम्) शत्रुओं की (अभि, आ, एति) सम्मुख सब ओर से प्राप्त होती है (ताम्) उसको (ओजसा) बल से (नः) हम लोगों के (अपव्रतेन) छेदनरूप कठोर कर्म्म से और (तमसा) तोप आदि शस्त्रों के उठे हुए धूम वा मेघ पहाड़ के आकार जो अस्त्र का धूम होता है उस से (गूहत) ढांपो (अमी) ये शत्रुसेनास्थ जन (यथा) जैसे (अन्यः, अन्यम्) परस्पर एक दूसरे को (न) न (जानन्) जानें वैसा पराक्रम करो ॥४७॥

भावार्थः—जब युद्ध के लिये प्राप्त हुई शत्रुओं की सेनाओं में होते युद्ध करे तब सब ओर से शस्त्र और अस्त्रों के प्रहार से उठा धूमधूली आदि से उस को ढांपकर जैसे ये शत्रुजन परस्पर अपने दूसरे को न जानें वैसा ढङ्ग सेनापति आदि को करना चाहिये ॥४७॥

यत्र वाणा इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रबृहस्पत्यादयो देवताः । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।।

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

यत्र॒ वाणाः॑ स॒म्पत॑न्ति कुमा॒रा वि॑शि॒खाऽइ॑व । तन्न॒ऽइन्द्रो॒ बृह॒स्पति॒रदि॑तिः॒ शर्म॑ यच्छतु वि॒श्वाहा॒ शर्म॑ यच्छतु ।।४८।।

पदार्थः—(यत्र) जिस संग्राम में (विशिखा इव) विना चोटी के वा बहुत चोटियों वाले (कुमाराः) वालकों के समान (बाणाः) वाण आदि शस्त्र अस्त्रों के समूह (संपतन्ति) अच्छे प्रकार गिरते हैं (तत्) वहां (बृहस्पतिः) बड़ी सभा वा सेना का पालने वाला (इन्द्रः) सेनापति (शर्म) आश्रय वा सुख को (यच्छतु) देवे और (अदितिः) नित्य सभासदों से शोभायमान सभा (विश्वाहा) सब दिन (नः) हम लोगों के लिये (शर्म) सुख सिद्ध करने वाले घर को (यच्छतु) देवे ।।४८।।

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे वालक इधर उधर दौड़ते हैं वैसे युद्ध के समय में योद्धा लोग भी चेष्टा करें जो युद्ध में घायल, क्षीण, थके, पसीजे, छिदे, भिदे, कटे, फटे अङ्ग वाले और मूर्छित हों उन को युद्ध भूमि से शीघ्र उठा सुखालय (शफ़ाखाने) में पहुंचा औषध पट्टी कर स्वस्थ करें और जो मरजावें उन को विधि से दाह दें राजजन उन के माता पिता स्त्री और वालकों की सदा रक्षा करें ।।४८।।

मर्माणीत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । सोमवरुणदेवा देवताः । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

मर्मा॑णि ते॒ वर्म॑णा छादयामि॒ सोम॑स्त्वा॒ राजा॒मृते॒नानु॑ वस्ताम् । उ॒रोर्वरी॑यो॒ वरु॑णस्ते कृणोतु॒ जय॑न्तं॒ त्वानु॑ दे॒वा म॑दन्तु ।।४९।।

पदार्थः—हे युद्ध करने वाले शूरवीर ! मैं (ते) तेरे (मर्माणि) मर्मस्थलों अर्थात् जो ताड़ना किये हुए शीघ्र मरण उत्पन्न करनेवाले शरीर के अङ्ग हैं उन को (वर्मणा) देह की रक्षा करने हारे कवच से (छादयामि) ढांपता हूं। यह (सोमः) शान्ति आदि गुणों से युक्त (राजा) और विद्या न्याय तथा विनय आदि गुणों से प्रकाशमान राजा (अमृतेन) समस्त रोगों के दूर करने वाली अमृतरूप ओषधि से (त्वा) तुझ को (अनु, वस्ताम्) पीछे ढांपे (वरुणः) सब से उत्तम गुणों वाला राजा (ते) तेरे (उरोः) बहुत गुण और ऐश्वर्य से भी (वरीयः) अत्यन्त ऐश्वर्य को (कृणोतु)

करे तथा (जयन्तम्) दुष्टों को पराजित करते हुए (त्वा) तुझे (देवाः) विद्वान् लोग
(अनु, भवन्तु) अनुमोदित करें अर्थात् उत्साह देवें ॥४९॥

भावार्थः—सेनापति आदि को चाहिये कि सब युद्धकर्त्ताओं के शरीर
आदि की रक्षा सब ओर से करके इन को निरन्तर उत्साहित और अनु-
मोदित करें जिस से निश्चय करके सब से विजय को पावें ॥४९॥

उदेनमित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उदे॒नमु॑त्त॒रां न॑याग्ने घृ॒तेना॑हुत ।
रा॒यस्पोषे॑ण॒ सꣳसृ॑ज प्र॒जया॑ च ब॒हुं कृ॑धि ॥५०॥

पदार्थः—हे (घृतेन, आहुत) घृत से तृप्ति को प्राप्त हुए (अग्ने) प्रकाशयुक्त
सेनापति तू (एनम्) इस जीतने वाले वीर को (उत्तराम्) जिस से उत्तमता से संग्राम
को तरें विजय को प्राप्त हुई उस सेना को (उत्, नय) उत्तम अधिकार में पहुंचा
(रायः, पोषेण) राजलक्ष्मी की पुष्टि से (सम्, सृज) अच्छे प्रकार युक्त कर (च)
और (प्रजया) वहुत संतानों से (बहुम्) अधिकता को प्राप्त (कृधि) कर ॥५०॥

भावार्थः—जो सेना का अधिकारी वा भृत्य धर्मयुक्त युद्ध से दुष्टों को
जीते उस का सभा सेना के पति धनादिकों से वहुत प्रकार सत्कार
करें ॥५०॥

इन्द्रेममित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रे॒मं प्र॑त॒रां न॑य सजा॒ताना॑मसद्व॒शी ।
समे॑नं॒ वर्च॑सा सृज दे॒वानां॑ भाग॒दाऽअ॑सत् ॥५१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सुखों के धारण करने हारे सेनापति ! तू (सजातानाम्)
समान अवस्था वाले (देवानाम्) विद्वान् योद्धाओं के बीच (इमम्) विजय को प्राप्त
होते हुए इस वीरजन को (प्रतराम्) जिस से शत्रुओं के बलों को हटावें उस नीति
को (नय) प्राप्त कर जिस से यह (वशी) इन्द्रियों का जीतने वाला (असत्) हो
और (एनम्) इस को (वर्चसा) विद्या के प्रकाश से (सं, सृज) संसर्ग करा जिस से
यह (भागदाः) अलग २ यथायोग्य भागों का देने वाला (असत्) हो ॥५१॥

भावार्थः—युद्ध में भृत्यजन शत्रुओं के जिन पदार्थों को पावें उन सबों
को सभापति राजा स्वीकार न करें किन्तु उनमें से यथायोग्य सत्कार के लिये

योद्धाओं को सोलहवां भाग देवे। वे भृत्यजन जितना कुछ भाग पावें उस का सोलहवां भाग राजा के लिये देवें जो सब सभापति आदि जितेन्द्रिय हों तो उन का कभी पराजय न हो जो सभापति अपने हित को किया चाहे तो लड़नेहारे भृत्यों का भाग आप न लेवे ॥५१॥

यस्य कुर्म इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब पुरोहित ऋत्विज् और यजमान के कृत्य को अगले मन्त्र में कहा है॥

यस्य॑ कुर्मो गृहे ह॒विस्तम॑ग्ने वर्द्धया॒ त्वम्।
तस्मै॑ दे॒वाऽअधि॑ब्रुवन्न॒यं च॒ ब्रह्म॑ण॒स्पति॑ः॥५२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरोहित! हम लोग (यस्य) जिस राजा के (गृहे) घर में (हविः) होम (कुर्मः) करें (तम्) उस को (त्वम्) तू (वर्द्धय) बढ़ा अर्थात् उत्साह दे तथा (देवाः) दिव्य दिव्य गुण वाले ऋत्विज् लोग (तस्मै) उस को (अधि, ब्रुवन्) अधिक उपदेश करें (च) और (अयम्) यह (ब्रह्मणः) वेदों का (पतिः) पालन करने हारा यजमान भी उन को शिक्षा देवे ॥५२॥

भावार्थः—पुरोहित का वह काम है कि जिस से यजमान की उन्नति हो और जो जिस का जितना जैसा काम करे उस को उसी ढङ्ग से उतना ही नियम किया हुआ मासिक धन देना चाहिये सब विद्वान् जन सब के प्रति सत्य का उपदेश करें और राजा भी सत्योपदेश करे ॥५२॥

उदु त्वेत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब सभापति के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उदु॑ त्वा॒ विश्वे॑ दे॒वाऽअग्ने॒ भर॑न्तु॒ चित्ति॑भिः।
स नो॑ भव शि॒वस्त्वꣳ सु॒प्रती॑को वि॒भाव॑सुः॥५३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् सभापति! जिस (त्वा) तुझे (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् जन (चित्तिभिः) अच्छे अच्छे ज्ञानों से (उद्भरन्तु) उत्कृष्टतापूर्वक धारण और उद्धार करें अर्थात् अपनी शिक्षा से तेरे अज्ञान को दूर करें (सः, उ) सोई (त्वम्) तू (नः) हम लोगों के लिये (शिवः) मंगल करने हारा (सुप्रतीकः) अच्छी प्रतीति करने वाले ज्ञान से युक्त (विभावसुः) तथा विविध प्रकार के विद्या-सिद्धान्तों में स्थिर (भव) हो ॥५३॥

भावार्थः—जो जिन को विद्या देवें वे विद्या लेने वाले उन के सेवक हों ॥५३॥

पञ्च दिश इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । दिग् देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब स्त्री पुरुष के कृत्य को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पञ्च दिशो दैवीर्यज्ञमवन्तु देवीरपामतिं दुर्मतिं बाधमानाः ।
रायस्पोषे यज्ञपतिमाभजन्ती रायस्पोषेऽअधि यज्ञोऽअस्थात् ॥५४॥

पदार्थः—(अप, अमतिम्) अत्यन्त अज्ञान और (दुर्मतिम्) दुष्ट बुद्धि को (बाधमानाः) अलग करती हुई (दैवीः) विद्वानों की ये (देवीः) दिव्य गुण वाली पण्डिता ब्रह्मचारिणी स्त्री (पंच, दिशः) पूर्व आदि चार और एक मध्यस्थ पांच दिशाओं के तुल्य अलग अलग कामों में बढ़ी हुई (रायः, पोषे) धन की पुष्टि करने के निमित्त (यज्ञपतिम्) गृहकृत्य वा राज्यपालन करने वाले अपने स्वामी को (आभजन्तीः) सब प्रकार सेवन करती हुई (यज्ञम्) संगति करने योग्य गृहाश्रम को (अवन्तु) चाहें । जिस से यह (यज्ञः) गृहाश्रम (रायः, पोषे) धन की पुष्टाई में (अधि, अस्थात्) अधिकता से स्थिर हो ॥५४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । जिस गृहाश्रम में धार्मिक विद्वान् और प्रशंसायुक्त पण्डिता स्त्री होती हैं वहां दुष्ट काम नहीं होते जो सब दिशाओं में प्रशंसित प्रजा होवें तो राजा के समीप औरों से अधिक ऐश्वर्य्य होवे ॥५४॥

समिद्धऽइत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

यज्ञ कैसे करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

समिद्धेऽअग्नावधि मामहानऽउक्थपत्रऽईड्यो गृभीतः ।
तप्तं घर्म्मं परिगृह्यायजन्तोर्जा यद्यज्ञमयजन्त देवाः ॥५५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे (देवाः) विद्वान् जन (समिद्धे) अच्छे जलते हुए (अग्नौ) अग्नि में (यत्) जिस (यज्ञम्) अग्निहोत्र आदि यज्ञ को (अयजन्त) करते हैं वैसे जो (अधि, मामहानः) अधिक और अत्यन्त सत्कार करने योग्य (उक्थपत्रः) जिस के कहने योग्य विद्यायुक्त वेद के स्तोत्र हैं (ईड्यः) जो स्तुति करने तथा चाहने योग्य (गृभीतः) वा जिसको सज्जनों ने ग्रहण किया है उस (तप्तम्)

तापयुक्त (घर्मम्) अग्निहोत्र आदि यज्ञ को (ऊर्जा) बल से (परिगृह्य) ग्रहण करके (अयजन्त) किया करो ॥५५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि संसार के उपकार के लिये जैसे विद्वान् लोग अग्निहोत्र आदि यज्ञ का आचरण करते हैं वैसे अनुष्ठान किया करें ॥५५॥

दैव्यायेत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः।
पञ्चमः स्वरः॥

अथ यज्ञ कैसे करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

दैव्याय धर्त्रे जोष्ट्रे देवश्रीः श्रीमनाः शतपयाः।
परिगृह्य देवा यज्ञमायन् देवा देवेभ्योऽअध्वर्यन्तोऽअस्थुः ॥५६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे (अध्वर्यन्तः) अपने को यज्ञ की इच्छा करने वाले (देवाः) विद्या के दाता विद्वान् लोग (देवेभ्यः) विद्वानों की प्रसन्नता के लिये गृहाश्रम वा अग्निहोत्रादि यज्ञ में (अस्थुः) स्थिर हों वा जैसे (दैव्याय) अच्छे २ गुणों में प्रसिद्ध हुए (धर्त्रे) धारणशील (जोष्ट्रे) तथा प्रीति करने वाले होता के लिये (देवश्रीः) जो सेवन की जाती वह विद्यारूप लक्ष्मी विद्वानों में जिस की विद्यमान हो (श्रीमनाः) जिसका कि लक्ष्मी में मन (शतपयाः) और जिसके सैकड़ों दूध आदि वस्तु हैं वह यजमान वर्त्तमान है वैसे (देवाः) विद्या के दाता तुम लोग विद्या को (परिगृह्य) ग्रहण करके (यज्ञम्) प्राप्त करने योग्य गृहाश्रम वा अग्निहोत्र आदि को (आयन्) प्राप्त होओ ॥५६॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि धनप्राप्ति के लिये सदैव उद्योग करें जैसे विद्वान् लोग धनप्राप्ति के लिये प्रयत्न करें वैसे उनके अनुकूल अन्य मनुष्यों को भी यत्न करना चाहिये ॥५६॥

वीतमित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। यज्ञो देवता। निचृदार्षी बृहती छन्दः।
मध्यमः स्वरः॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वीतꣳ हविः शमितꣳ शमिता यजध्यै तुरीयो यज्ञो यत्र हव्यमेति।
ततो वाकाऽआशिषो नो जुषन्ताम् ॥५७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जो (शमिता) शान्ति आदि गुणों से युक्त गृहाश्रमी (यजध्यै) यज्ञ करने के लिये (वीतम्) गमनशील (शमितम्) दुर्गुणों की शान्ति कराने वाले (हविः) होम करने योग्य पदार्थ को अग्नि में छोड़ता है जो (तुरीयः) चौथा

(यज्ञः) प्राप्त करने योग्य यज्ञ है तथा (यत्र) जहां (हव्यम्) होम करने योग्य पदार्थ (एति) प्राप्त होता है (ततः) उन सबों से (याकाः) जो कही जाती हैं वे (आशिषः) इच्छासिद्धि (नः) हम लोगों को (जुषन्ताम्) सेवन करें ऐसी इच्छा करो ॥५७॥

भावार्थः—अग्निहोत्र आदि यज्ञ में चार पदार्थ होते हैं अर्थात् वहुतसा पुष्टि सुगन्धि मिष्ट और रोग विनाश करने वाला होम का पदार्थ, उसका शोधन, यज्ञ का करने वाला तथा वेदी आग लकड़ी आदि। यथाविधि से हवन किया हुआ पदार्थ आकाश को जाकर फिर वहां से पवन वा जलके द्वारा आकर इच्छा की सिद्धि करने वाला होता है ऐसा मनुष्यों को जानना चाहिये ॥५७॥

सूर्यरश्मिरित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ अगले मन्त्र में सूर्य्यलोक के स्वरूप का कथन किया है॥

सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुदयाँ२ऽअजस्रम्।
तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान्त्सम्पश्यन्विश्वा भुवनानि गोपाः ॥५८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जो (पुरस्तात्) पहिले से (सविता) सूर्यलोक (ज्योतिः) प्रकाश को देता है जिससे (हरिकेशः) हरे रंग वाली (सूर्य्यरश्मिः) सूर्य्य की किरण वर्त्तमान हैं जो (प्रसवे) उत्पन्न हुए जगत् में (अजस्रम्) निरन्तर (पूषा) पुष्टि करने वाला है जिस को (विद्वान्) विद्यायुक्त पुरुष (संपश्यन्) अच्छे प्रकार देखता हुआ उस की विद्या को (याति) प्राप्त होता है (तस्य) उस के सकाश से (गोपाः) संसार की रक्षा करने वाले पृथिवी आदि लोक और तारागण भी (विश्वा) समस्त (भुवनानि) लोक लोकान्तरों को (उदयान्) प्रकाशित करते हैं वह सूर्य्यमण्डल अतिप्रकाशमय है यह तुम जानो ॥५८॥

भावार्थः—जो यह सूर्य्यलोक है उस के प्रकाश में श्वेत और हरी रङ्ग विरङ्ग अनेक किरणें हैं जो सब लोकों की रक्षा करते हैं इसी से सब की सब प्रकार से सदा रक्षा होती है यह जानने योग्य है ॥५८॥

विमान इत्यस्य विश्वावसुर्ऋषिः। आदित्यो देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब ईश्वर ने किसलिये सूर्य का निर्माण किया है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

विमानऽएष दिवो मध्यऽआस्तऽआपप्रिवान्रोदसीऽअन्तरिक्षम्।
स विश्वाचीरभिचष्टे घृताचीरन्तरा पूर्वमपरं च केतुम् ॥५९॥

पदार्थः—विद्यावान् पुरुष जो (एषः) यह सूर्य्यमण्डल (दिवः) प्रकाश के (मध्ये)
बीच में (विमानः) विमान अर्थात् जो आकाशादि मार्गों में आश्चर्य्यरूप चलनेहारा
है उस के समान और (रोदसी) प्रकाश भूमि और (अन्तरिक्षम्) अवकाश को (आप-
प्रिवान्) अपने तेज से व्याप्त हुआ (आस्ते) स्थिर हो रहा है (सः) वह (विश्वाचीः)
जो संसार को प्राप्त होती अर्थात् अपने उदय से प्रकाशित करतीं वा
(घृताचीः) जल को प्राप्त कराती हैं उन अपनी द्युतियां अर्थात् प्रकाशों को विस्तृत
करता है (पूर्वम्) आगे दिन (अपरम्) पीछे रात्रि (च) और (अन्तरा) दोनों के
बीच में (केतुम्) सब लोकों के प्रकाशक तेज को (अभिचष्टे) देखता है उसे जाने ॥५९॥

भावार्थः—जो सूर्य्यलोक ब्रह्माण्ड के बीच स्थित हुआ अपने प्रकाश से सब को व्याप्त हो रहा है वह सब का अच्छा आकर्षण करने वाला है ऐसा मनुष्यों को जानना चाहिये ॥५९॥

उक्षा इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । आदित्यो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उक्षा समुद्रोऽअरुणः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुराविवेश ।
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा वि चक्रमे रजसस्पात्यन्तौ ॥६०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो परमेश्वर ने (दिवः) प्रकाश के (मध्ये) बीच में (निहितः) स्थापित किया हुआ (उक्षा) वृष्टि-जल से सींचने वाला (समुद्रः) जिस से कि अच्छे प्रकार जल गिरते हैं (अरुणः) जो लाल रंग वाला (सुपर्णः) तथा जिस से कि अच्छी पालना होती है (पृश्निः) वह विचित्र रंग वाला सूर्य्यरूप तेज और (अश्मा) मेघ (रजसः) लोकों को (अन्तौ) बन्धन के निमित्त (वि, चक्रमे) अनेक प्रकार घूमता तथा (पाति) रक्षा करता है (पूर्वस्य) तथा जो पूर्ण (पितुः) इस सूर्य्यमण्डल के तेज उत्पन्न करने वाला विजुलीरूप अग्नि है उस के (योनिम्) कारण में (आ, विवेश) प्रवेश करता है वह सूर्य और मेघ अच्छे प्रकार उपयोग करने योग्य है ॥६०॥

भावार्थः—मनुष्यों को ईश्वर के अनेक धन्यवाद कहने चाहियें क्योंकि जिस ईश्वर ने अपने जनाने के लिये जगत् की रक्षा का कारणरूप सूर्य्य आदि दृष्टान्त दिखाया है वह कैसे न सर्वशक्तिमान् हो ॥६०॥

इन्द्रं विश्वेत्यस्य मधुच्छन्दाः सुतजेता ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर जगत् बनाने वाले ईश्वर के गुणों को अगले मन्त्र में कहा है ।।

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।
रथीतमꣳ रथीनां वाजानाꣳ सत्पतिं पतिम् ।।६१।।

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम जिस (समुद्रव्यचसम्) अन्तरिक्ष की व्याप्ति के समान व्याप्ति वाले (रथीनाम्) प्रशंसायुक्त सुख के हेतु पदार्थ वालों में (रथीतमम्) अत्यन्त प्रशंसित सुख के हेतु पदार्थों से युक्त (वाजानाम्) ज्ञानी आदि गुणी जनों के (पतिम्) स्वामी (सत्पतिम्) विनाशरहित वा विनाशरहित कारण और जीवों के पालने हारे (इन्द्रम्) परमात्मा को (विश्वाः) समस्त (गिरः) वाणी (अवीवृधन्) बढ़ाती अर्थात् विस्तार से कहती हैं उस परमात्मा की निरन्तर उपासना करो ।।६१।।

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि सब वेद जिस की प्रशंसा करते योगीजन जिस की उपासना करते और मुक्त पुरुष जिस को प्राप्त होकर आनन्द भोगते हैं उसी को उपासना के योग्य इष्टदेव मानें ।।६१।।

देवहूरित्यस्य विधृतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ।।

फिर ईश्वर कैसा है यह अगले मन्त्र में कहा है ।।

देवहूर्यज्ञऽआ च वक्षत्सुम्नहूर्यज्ञऽआ च वक्षत् ।
यक्षदग्निर्देवो देवाँ२ऽआ च वक्षत् ।।६२।।

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (देवहूः) विद्वानों को बुलाने वाला (यज्ञः) पूजा करने योग्य ईश्वर हम लोगों को सत्य (आ, वक्षत्) उपदेश करे (च) और असत्य से हमारा उद्धार करे वा जो (सुम्नहूः) सुखों को बुलाने वाला (यज्ञः) पूजन करने योग्य ईश्वर हम लोगों के लिये सुखों को (आ, वक्षत्) प्राप्त करे (च) और दुःखों का विनाश करे वा जो (अग्निः) आप प्रकाशमान (देवः) समस्त सुख का देने वाला ईश्वर हम लोगों को (देवान्) उत्तम गुणों वा भोगों को (यक्षत्) देवे (च) और (आ, वक्षत्) पहुँचावे अर्थात् कार्य्यान्तर से प्राप्त करे, उसको आप लोग निरन्तर सेवो ।।६२।।

भावार्थः—जो उत्तम शास्त्र जानने वाले विद्वानों से उपासना किया जाता तथा जो सुखस्वरूप और मङ्गल कार्य्यों का देने वाला परमेश्वर हैं उस की समाधियोग से मनुष्य उपासना करें ।।६२।।

वाजस्येत्यस्य विधृतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।।

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वाजस्य मा प्रसवऽउद्ग्राभेणोदग्रभीत् ।
अधा सपत्नानिन्द्रो मे निग्राभेणाधराँ२ऽअकः ॥६३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (इन्द्रः) पालन करने वाला (वाजस्य) विशेष ज्ञान का (प्रसवः) उत्पन्न करने वाला ईश्वर (मा) मुझे (उद्ग्राभेण) अच्छे ग्रहण करने के साधन से (उद्, अग्रभीत्) ग्रहण करे वैसे जो (अध) इस के पीछे उसके अनुसार पालना करने और विशेष ज्ञान सिखाने वाला पुरुष (मे) मेरे (सपत्नान्) शत्रुओं को (निग्राभेण) पराजय से (अधरान्) नीचे गिराया (अकः) करे, उसको तुम लोग भी सेनापति करो ॥६३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे ईश्वर पालना करे वैसे जो मनुष्य पालना के लिये धार्मिक मनुष्यों को अच्छे प्रकार ग्रहण करते और दण्ड देने के लिये दुष्टों को निग्रह अर्थात् नीचा दिखाते हैं वे ही राज्य कर सकते हैं ॥६३॥

उद्ग्राभमित्यस्य विधृतिर्ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर अगले मन्त्र में राजधर्म का उपदेश किया है ॥

उद्ग्राभं च निग्राभं च ब्रह्म देवाऽअवीवृधन् ।
अधा सपत्नानिन्द्राग्नी मे विषूचीनान्व्यस्यताम् ॥६४॥

पदार्थः—(देवाः) विद्वान् जन (उद्ग्राभम्) अत्यन्त उत्साह से ग्रहण (च) और (निग्राभं, च) त्याग भी करके (ब्रह्म) धन को (अवीवृधन्) बढ़ावें (अध) इसके अनन्तर (इन्द्राग्नी) बिजुली और आग के समान दो सेनापति (मे) मेरे (विषूचीनान्) विरोधभाव को वर्त्तने वाले (सपत्नान्) वैरियों को (व्यस्यताम्) अच्छे प्रकार उठा उठा के पटकें ॥६४॥

भावार्थः—जो मनुष्य सज्जनों का सत्कार और दुष्टों को पीट मार धन को बढ़ा निष्कण्टक राज्य का सम्पादन करते हैं वे ही प्रशंसित होते हैं । जो राजा राज्य में बसने हारे सज्जनों का सत्कार और दुष्टों का निरादर करके अपने तथा प्रजा के ऐश्वर्य को बढ़ाता है, उसी के सभा और सेना की रक्षा करने वाले जन शत्रुओं का नाश कर सकें ॥६४॥

क्रमध्वमित्यस्य विधृतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

क्रम॑ध्वम॒ग्निना॒ नाक॒मुख्य॒ꣳ हस्ते॑षु॒ बिभ्र॑तः ।
दि॒वस्पृ॒ष्ठꣳ स्व॒र्ग॒त्वा मि॒श्रा दे॒वेभि॑राध्वम् ॥६५॥

पदार्थः—हे वीरो ! (अग्निना) बिजुली से (नाकम्) अत्यन्त सुख और (उख्यम्) पात्र में पकाये हुए चावल दाल तर्कारी कढ़ी आदि भोजन को (हस्तेषु) हाथों में (बिभ्रतः) धारण किये हुए (क्रमध्वम्) पराक्रम करो (देवेभिः) विद्वानों से (मिश्राः) मिले हुए (दिवः) न्याय और विनय आदि गुणों के प्रकाश से उत्पन्न हुए दिव्य (पृष्ठम्) चाहे हुए (स्वः) सुख को (गत्वा) प्राप्त होकर (आध्वम्) स्थित होओ ॥६५॥

भावार्थः—राजपुरुष विद्वानों के साथ सम्बन्ध कर आग्नेय आदि अस्त्रों से शत्रुओं में पराक्रम करें तथा स्थिर सुख को पाकर वारम्वार अच्छा यत्न करें ॥६५॥

प्राचीमित्यस्य विधृतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्राची॒मनु॑ प्र॒दिशं॒ प्रेहि॑ वि॒द्वान॒ग्नेर॑ग्ने पु॒रोऽअ॑ग्निर्भवे॒ह ।
विश्वा॒ऽ आशा॒ दीद्या॑नो॒ वि भा॒ह्यूर्जं॑ नो धेहि द्वि॒पदे॒ चतु॑ष्पदे ॥६६॥

पदार्थः—हे (अग्ने) शत्रुओं के जलाने हारे सभापति ! तू (प्राचीम्) पूर्व (प्रदिशम्) दिशा की ओर को (अनु, प्र, इहि) अनुकूलता से प्राप्त हो (इह) इस राज्यकर्म में (अग्नेः) आग्नेय अस्त्र आदि के योग से (पुरो अग्निः) अग्नि के तुल्य अग्रगामी (विद्वान्) कार्य्य के जनाने वाले विद्वान् (भव) होओ (विश्वाः) समस्त (आशाः) दिशाओं को (दीद्यानः) निरन्तर प्रकाशित करते हुए सूर्य्य के समान हम लोगों के (द्विपदे) मनुष्यादि और (चतुष्पदे) गौ आदि पशुओं के लिये (ऊर्जम्) अन्नादि पदार्थ को (धेहि) धारण कर तथा विद्या विनय और पराक्रम से अभय का (वि, भाहि) प्रकाश कर ॥६६॥

भावार्थः—जो पूर्ण ब्रह्मचर्य्य से समस्त विद्याओं का अभ्यास कर युद्ध-विद्याओं को जान सब दिशाओं में स्तुति को प्राप्त होते हैं, वे मनुष्यों और पशुओं के खाने योग्य पदार्थों की उन्नति और रक्षा का विधान कर आनन्द-युक्त होते हैं ॥६६॥

पृथिव्या इत्यस्य विधृतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । पिपीलिकामध्या बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर योगियों के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

पृथिव्याऽअहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम् ।
दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम् ॥६७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे किये हुए योग के अङ्गों के अनुष्ठान संयमसिद्ध अर्थात् धारणा, ध्यान और समाधि में परिपूर्ण (अहम्) मैं (पृथिव्या) पृथिवी के बीच (अन्तरिक्षम्) आकाश को (उद्, आ, अरुहम्) उठ जाऊँ वा (अन्तरिक्षात्) आकाश से (दिवम्) प्रकाशमान सूर्यलोक को (आ, अरुहम्) चढ़ जाऊं वा (नाकस्य) सुख कराने हारे (दिवः) प्रकाशमान उस सूर्यलोक के (पृष्ठात्) समीप से (स्वः) अत्यन्त सुख और (ज्योतिः) ज्ञान के प्रकाश को (अहम्) मैं (अगाम्) प्राप्त होऊं वैसा तुम भी आचरण करो ॥६७॥

भावार्थः—जब मनुष्य अपने आत्मा के साथ परमात्मा के योग को प्राप्त होता है तब अणिमादि सिद्धि उत्पन्न होती हैं, उसके पीछे कहीं से न रुकने वाली गति से अभीष्ट स्थानों को जा सकता है, अन्यथा नहीं ॥६७॥

स्वर्यन्त इत्यस्य विधृतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स्वर्यन्तो नापेक्षन्तऽआ द्याँ रोहन्ति रोदसी ।
यज्ञं ये विश्वतोधारँ सुविद्वाँसो वितेनिरे ॥६८॥

पदार्थः—(ये) जो (सुविद्वांसः) अच्छे पण्डित योगी जन (यन्तः) योगाभ्यास के पूर्ण नियम करते हुओं के (न) समान (स्वः) अत्यन्त सुख की (अप, ईक्षते) अपेक्षा करते हैं वा (रोदसी) आकाश और पृथिवी को (आ, रोहन्ति) चढ़ जाते अर्थात् लोकान्तरों में इच्छापूर्वक चले जाते वा (द्याम्) प्रकाशमय योगविद्या और (विश्वतोधारम्) सब ओर से सुशिक्षायुक्त वाणी है जिस में (यज्ञम्) प्राप्त करने योग्य उस यज्ञादि कर्म का (वितेनिरे) विस्तार करते हैं, वे अविनाशी सुख को प्राप्त होते हैं ॥६८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सारथि घोड़ों को अच्छे प्रकार सिखा और अभीष्ट मार्ग में चला कर सुख से अभीष्ट स्थान को शीघ्र जाता है, वैसे ही अच्छे विद्वान् योगी जन जितेन्द्रिय होकर नियम से अपने को अभीष्ट परमात्मा को पाकर आनन्द का विस्तार करते हैं ॥६८॥

अग्न इत्यस्य विधृतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर विद्वान् के व्यवहार का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्ने प्रेहि प्रथमो देवयतां चक्षुर्देवानामुत मर्त्यानाम् ।
इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ॥६९॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् ! (देवयताम्) कामना करते हुए जनों के बीच तू (प्रथमः) पहिले (प्रेहि) प्राप्त हो जिससे (देवानाम्) विद्वान् (उत) और (मर्त्यानाम्) अविद्वानों का तू (चक्षुः) व्यवहार देखने वाला है जिस से (इयक्षमाणाः) यज्ञ की इच्छा करने वाले (सजोषाः) एक सी प्रीतियुक्त (यजमानाः) सब को सुख देने हारे जन (भृगुभिः) परिपूर्ण विज्ञान वाले विद्वानों के साथ (स्वस्ति) सामान्य सुख और (स्वः) अत्यन्त सुख को (यन्तु) प्राप्त हों वैसा तू भी हो ॥६९॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! विद्वान् और अविद्वानों के साथ प्रीति से वातचीत करके सुख को तुम लोग प्राप्त होओ ॥६९॥

नक्तोषासेत्यस्य कुत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकꣳ समीची ।
द्यावाक्षामा रुक्मोऽअन्तर्विभाति देवाऽअग्निं धारयन् द्रविणोदाः ॥७०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम जैसे (समनसा) एक से विज्ञान युक्त (समीची) एकता चाहती हुई (विरूपे) अलग २ रूप वाली धाय और माता दोनों (एकम्) एक (शिशुम्) बालक को दुग्ध पिलाती हैं वैसे (नक्तोषासा) रात्रि और प्रातःकाल की वेला जगत् को (धापयेते) दुग्ध सा पिलाती हैं अर्थात् अति आनन्द देती हैं वा जैसे (रुक्मः) प्रकाशमान अग्नि (द्यावाक्षामा, अन्तः) ब्रह्माण्ड के बीच में (वि, भाति) विशेष कर के प्रकाश करता है उस (अग्निम्) अग्नि को (द्रविणोदाः) द्रव्य के देने वाले (देवाः) शास्त्र पढ़े हुए जन (धारयन्) धारण करते हैं वैसे वर्त्ताव वर्त्तो ॥७०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जैसे संसार में रात्रि और प्रातःसमय की वेला अलग रूपों से वर्त्तमान और जैसे बिजुली अग्नि सर्व पदार्थों में व्याप्त वा जैसे प्रकाश और भूमि अतिसहनशील हैं, वैसे अत्यन्त विवेचना करने और शुभगुणों में व्यापक होने वाले होकर पुत्र के तुल्य संसार को पालें ॥ ७० ॥

अग्न इत्यस्य कुत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर योगी के कर्मों के फलों का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्द्धञ्छतं ते प्राणाः सहस्रं व्यानाः ।
त्वꣳ साहस्रस्य रायऽईशिषे तस्मै ते विधेम वाजाय स्वाहा ॥७१॥

पदार्थः—हे (सहस्राक्ष) हजारों व्यवहारों में अपना विशेष ज्ञान वा (शतमूर्द्धन्) सैकड़ों प्राणियों में मस्तक वाले (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमान योगिराज ! जिस (ते) आप के (शतम्) सैकड़ों (प्राणाः) जीवन के साधन (सहस्रम्) (व्यानाः) सब क्रियाओं के निमित्त शरीरस्थ वायु तथा जो (त्वम्) आप (साहस्रस्य) हजारों जीव और पदार्थों का आधार जो जगत् उस के (रायः) धन के (ईशिषे) स्वामी हैं (तस्मै) उस (वाजाय) विशेष ज्ञान वाले (ते) आप के लिये हम लोग (स्वाहा) सत्यवाणी से (विधेम) सत्कारपूर्वक व्यवहार करें ॥७१॥

भावार्थः—जो योगी पुरुष तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान आदि योग के साधनों से योग (धारणा, ध्यान, समाधिरूप संयम) के बल को प्राप्त हो और अनेक प्राणियों के शरीरों में प्रवेश करके अनेक शिर नेत्र आदि अङ्गों से देखने आदि कार्यों को कर सकता है, अनेक पदार्थों वा धनों का स्वामी भी हो सकता है, उसका हम लोगों को अवश्य सेवन करना चहिये ॥७१॥

सुपर्ण इत्यस्य कुत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर विद्वान् कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्याः सीद । भासान्तरिक्षमापृण ज्योतिषा दिवमुत्तभान तेजसा दिशऽउद्दृꣳह ॥७२॥

पदार्थः—हे विद्वान् योगीजन ! आप (भासा) प्रकाश से (सुपर्णः) अच्छे अच्छे पूर्ण शुभ लक्षणों से युक्त और (गरुत्मान्) बड़े मन तथा आत्मा के बल से युक्त (असि) हैं, अतिप्रकाशमान आकाश में वर्त्तमान सूर्यमण्डल के तुल्य (पृथिव्याः) पृथिवी के (पृष्ठे) ऊपर (सीद) स्थिर हो, वा वायु के तुल्य प्रजा को (आ, पृण) सुख दे, वा जैसे सूर्य (ज्योतिषा) अपने प्रकाश से (दिवम्) प्रकाशमय (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को वैसे तू राजनीति के प्रकाश से राज्य को (उत्, स्तभान) उन्नति पहुंचा, वा जैसे आग अपने (तेजसा) अतितीक्ष्ण तेज से (दिशः) दिशाओं को वैसे अपने तीक्ष्ण तेज से प्रजाजनों को (उद्, दृꣳह) उन्नति दे ॥७२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जब मनुष्य राग

अर्थात् प्रीति और द्वेष वैर से रहित परोपकारी होकर ईश्वर के समान सब प्राणियों के साथ वर्ते तब सब सिद्धि को प्राप्त होवे ॥७२॥

आजुह्वान इत्यस्य कुत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर विद्वान् गुणी जन कैसे हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

आजुह्वानः सुप्रतीकः पुरस्तादग्ने स्वं योनिमासीद साधुया ।
अस्मिन्त्सधस्थेऽअध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥७३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) योगाभ्यास से प्रकाशित आत्मा युक्त (पुरस्तात्) प्रथम से (आजुह्वानः) सत्कार के साथ बुलाये (सुप्रतीकः) शुभगुणों को प्राप्त हुए (यजमानः) योगविद्या के देने वाले आचार्य्य ! आप (साधुया) श्रेष्ठ कर्मों से (अस्मिन्) इस (सधस्थे) एक साथ के स्थान में (स्वम्) अपने (योनिम्) परमात्मा रूप घर में (आ, सीद) स्थिर हो (च) और हे (विश्वे) सब (देवाः) दिव्य आत्मा वाले योगी-जनो ! आप लोग (साधुया) श्रेष्ठ कामों से (उत्तरस्मिन्) उत्तर समय एक साथ सत्य सिद्धान्त पर (अधि, सीदत) अधिक स्थित होओ ॥७३॥

भावार्थः—जो अच्छे कामों को करके योगाभ्यास करने वाले विद्वान् के संग और प्रीति से परस्पर संवाद करते हैं, वे सब के अधिष्ठान परमात्मा को प्राप्त होकर सिद्ध होते हैं ॥७३॥

ताᳬं सवितुरित्यस्य कण्व ऋषिः । सविता देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब कौन ईश्वर को पा सकता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ताᳬं सवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्वजन्याम् ।
यामस्य कण्वो अदुहत्प्रपीनाᳬं सहस्रधारां पयसा महीं गाम् ॥७४॥

पदार्थः—जैसे (कण्वः) बुद्धिमान् पुरुष (अस्य) इस (वरेण्यस्य) स्वीकार करने योग्य (सवितुः) योग के ऐश्वर्य के देने हारे ईश्वर की (याम्) जिस (चित्राम्) अद्भुत आश्चर्यरूप वा (विश्वजन्याम्) समस्त जगत् को उत्पन्न करती (प्रपीनाम्) अति उन्नति के साथ बढ़ती (सहस्रधाराम्) हजारों पदार्थों को धारण करने हारी (सुमतिम्) और तथातथ्य विषय को प्रकाशित करती हुई उत्तम बुद्धि तथा (पयसा) अन्न आदि पदार्थों के साथ (महीम्) बड़ी (गाम्) वाणी को (अदुहत्) परिपूर्ण करता अर्थात् क्रम से जान अपने ज्ञानविषयक करता है, वैसे (ताम्) उस को (अहम्) मैं (आ, वृणे) अच्छे प्रकार स्वीकार करता हूं ॥७४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे मेधावीजन जगदीश्वर की विद्या को पाकर वृद्धि को प्राप्त होता है, वैसे ही इसको प्राप्त होकर और सामान्य जन को भी विद्या और योगवृद्धि के लिये उद्युक्त होना चाहिये ॥७४॥

विधेमेत्यस्य गृत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे।
यस्माद्योनेरुदारिथा यजे तं प्र त्वे हवींषि जुहुरे समिद्धे ॥७५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) योगीजन! (ते) तेरे (परमे) सब से अति उत्तम योग के संस्कार से उत्पन्न हुए पूर्व (जन्मन्) जन्म में वा (त्वे) तेरे वर्त्तमान जन्म में (अवरे) न्यून (सधस्थे) एक साथ स्थान में वर्त्तमान हम लोग (स्तोमैः) स्तुतियों से (विधेम) सत्कारपूर्वक तेरी सेवा करें तू हम लोगों को (यस्मात्) जिस (योनेः) स्थान से (उदारिथ) अच्छे २ साधनों के सहित प्राप्त हो (तम्) उस स्थान को मैं (प्र, यजे) अच्छे प्रकार प्राप्त होऊं और जैसे होम करने वाले लोग (समिद्धे) अच्छे प्रकार जलते हुए अग्नि में (हवींषि) होम करने योग्य वस्तुओं को (जुहुरे) होमते हैं, वैसे योगाग्नि में हम लोग दुःखों के होम का (विधेम) विधान करें ॥७५॥

भावार्थः—इस संसार में योग के संस्कार से युक्त जिस जीव का पवित्र भाव से जन्म होता है वह संस्कार की प्रबलता से योग ही के जानने की चाहना करने वाला होता है और उसका जो सेवन करते हैं वे भी योग की चाहना करने वाले होते हैं, उक्त सब योगीजन जैसे अग्नि इन्धन को जलाता है वैसे समस्त दुःख अशुद्धि भाव को योग से जलाते हैं ॥७५॥

प्रेद्ध इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्च्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रेद्धोऽअग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ।
त्वाᳬ शश्वन्तऽउपयन्ति वाजाः ॥७६॥

पदार्थः—हे (यविष्ठ) अत्यन्त तरुण (अग्ने) आग के समान दुःखों के विनाश करने हारे योगीजन! आप (पुरः) पहिले (प्रेद्धः) अच्छे तेज से प्रकाशमान हुए (अजस्रया) नाशरहित निरन्तर (सूर्म्या) ऐश्वर्य्य के प्रवाह से (नः) हम लोगों को (दीदिहि) चाहें (शश्वन्तः) निरन्तर वर्त्तमान (वाजाः) विशेष ज्ञान वाले जन (त्वाम्) आप को (उप, यन्ति) प्राप्त होवें ॥७६॥

भावार्थः—जब मनुष्य शुद्धात्मा होकर औरों का उपकार करते हैं, तब वे भी सर्वत्र उपकारयुक्त होते हैं ॥७६॥

अग्ने तमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रꣳ हृदिस्पृशम् ।
ऋध्यामा तऽओहैः ॥७७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) बिजुली के समान पराक्रम वाले विद्वान् जो ! (अश्वम्) घोड़े के (न) समान वा (क्रतुम्) बुद्धि के (न) समान (भद्रम्) कल्याण और (हृदिस्पृशम्) हृदय में स्पर्श करने वाला है (तम्) उस पूर्व मन्त्र में कहे तुझ को (स्तोमैः) स्तुतियों से (अद्य) आज प्राप्त होकर (ते) आप के (ओहैः) पालन आदि गुणों से (ऋध्याम) वृद्धि को पावें ॥७७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे शरीर आदि में स्थिर हुए बिजुली आदि से वृद्धि वेग और बुद्धि के सुख बढ़ें वैसे विद्वानों की सिखावट और पालन आदि से मनुष्य आदि सब वृद्धि को पाते हैं ॥७७॥

चित्तिमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। विश्वकर्मा देवता। विराडतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

चित्तिं जुहोमि मनसा घृतेन यथा देवाऽइहागमन्वीतिहोत्राऽऋतावृधः । पत्ये विश्वस्य भूमनो जुहोमि विश्वकर्मणे विश्वाहादाभ्यꣳ हविः ॥७८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यथा) जैसे मैं (मनसा) विज्ञान वा (घृतेन) घी से (चित्तिम्) जिस क्रिया से सञ्चय करते हैं उसको (जुहोमि) ग्रहण करता हूं वा जैसे (इह) इस जगत् में (वीतिहोत्राः) सब ओर से प्रकाशमान जिन का यज्ञ है वे (ऋतावृधः) सत्य से बढ़ते और (देवाः) कामना करते हुए विद्वान् लोग (आगमन्) आते हैं और मैं (भूमनः) अनेक रूप वाले (विश्वस्य) समस्त संसार के (विश्वकर्म्मणे) सब के करने योग्य काम को जिसने किया है उस (पत्ये) पालनेहारे जगदीश्वर के लिये (अदाभ्यम्) नष्ट न करने योग्य सुख करने वाले पदार्थ का (विश्वाहा) सब दिनों होम और (हविः) होमने योग्य पदार्थों को (जुहोमि) होमता हूं, वैसे तुम लोग भी आचरण करो ॥७८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे काष्ठों में चिना हुआ अग्नि घी से बढ़ता है वैसे विज्ञान से बढ़ूं वा जैसे ईश्वर की उपासना करने हारे विद्वान् संसार के कल्याण करने का प्रयत्न करते हैं वैसे मैं भी यत्न करूं ॥७८॥

सप्त त इत्यस्य सप्तऋषय ऋषयः। अग्निर्देवता। आर्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सप्त तेऽअग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्तऽऋषयः सप्त धाम प्रियाणि। सप्त होत्राः सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरापृणस्व घृतेन स्वाहा ॥७९॥

पदार्थः—हे (अग्ने) तेजस्वी विद्वन्! जैसे आग के (सप्त, समिधः) सात जलाने वाले (सप्तः जिह्वाः) वा सात काली कराली आदि लपटरूप जीभ वा (सप्त, ऋषयः) सात प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, देवदत्त, धनञ्जय वा (सप्त, धाम प्रियाणि) सात पियारे धाम अर्थात् जन्म, स्थान, नाम, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष वा (सप्त, होत्राः) सात प्रकार के ऋतु ऋतु में यज्ञ करने वाले हैं वैसे (ते) तेरे हों, जैसे विद्वान् उस अग्नि को (सप्तधा) सात प्रकार से (यजन्ति) प्राप्त होते हैं वैसे (त्वा) तुझको प्राप्त होवें जैसे यह अग्नि (घृतेन) घी से और (स्वाहा) उत्तम वाणी से (सप्त, योनीः) सात संचयों को सुख से प्राप्त होता है वैसे तू (आ, पृणस्व) सुख से प्राप्त हो ॥७९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे इंधन से अग्नि बढ़ता है वैसे विद्या आदि शुभगुणों से समस्त मनुष्य वृद्धि को प्राप्त होवें, जैसे विद्वान् जन अग्नि में घी आदि को होम के जगत् का उपकार करते हैं वैसे हम लोग भी करें ॥७९॥

शुक्रज्योतिरित्यस्य सप्तऋषय ऋषयः। मरुतो देवताः। आर्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अब ईश्वर कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्माँश्च। शुक्रश्चऽऋतपाश्चात्यंᳬहाः ॥८०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (शुक्रज्योतिः) शुद्ध जिस का प्रकाश (च) और (चित्रज्योतिः) अद्भुत जिस का प्रकाश (च) (सत्यज्योतिः) विनाशरहित जिस का प्रकाश (च) और (ज्योतिष्मान्) जिस के बहुत प्रकाश हैं (च) और (शुक्रः) शीघ्र करने वाला वा शुद्धस्वरूप (च) और (अत्यंहाः) जिस ने दुष्ट काम को दूर किया (च) और (ऋतपाः) सत्य की रक्षा करने वाला ईश्वर है, वैसे तुम लोग भी होओ ॥८०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे इस जगत् में बिजुली वा सूर्य आदि प्रभा और शुद्धि के करने वाले पदार्थों को बना कर ईश्वर ने जगत् शुद्ध किया है वैसे ही शुद्धि सत्य और विद्या के उपदेश की क्रियाओं से विद्वान् जनों को मनुष्यादि शुद्ध करने चाहिये, इस मन्त्र में अनेक चकारों के होने से यह भी ज्ञात होता है कि सब के ऊपर प्रीति आदि गुण भी विधान करने चाहिये ॥८०॥

ईदृङ् चेत्यस्य सप्तऋषय ऋषयः। मरुतो देवताः। आर्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

फिर विद्वान् कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ईदृङ् चान्यादृङ् च सदृङ् च प्रतिसदृङ् च।
मितश्च संमितश्च सभराः ॥८१॥

पदार्थः—जो पुरुष (ईदृङ्) इस के तुल्य (च) भी (अन्यादृङ्) और के समान (च) भी (सदृङ्) समान देखने वाला (च) भी (प्रतिसदृङ्) उस उस के प्रति सदृश देखने वाला (च) भी (मितः) मान को प्राप्त (च) भी (संमितः) अच्छे प्रकार परिमाण किया गया (च) और जो (सभराः) समान धारणा को करने वाले वर्त्तमान हैं, वे व्यवहारसम्बन्धी कार्य्यसिद्धि कर सकते हैं ॥८१॥

भावार्थः—जो मनुष्य ईश्वर के तुल्य उत्तम और ईश्वर के समान काम को करके सत्य का धारण करता और असत्य का त्याग करता है वही योग्य है ॥८१॥

ऋतश्चेत्यस्य सप्तऋषय ऋषयः। मरुतो देवताः। आर्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

फिर ईश्वर कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऋतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च धरुणश्च।
धर्त्ता च विधर्त्ता च विधारयः ॥८२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (ऋतः) सत्य का जानने वाला (च) भी (सत्यः) श्रेष्ठों में श्रेष्ठ (च) भी (ध्रुवः) दृढ़ निश्चययुक्त (च) भी (धरुणः) सब का आधार (च) भी (धर्त्ता) धारण करने वाला (च) भी (विधर्त्ता) विशेष कर के धारण करने वाला अर्थात् धारकों का धारक (च) भी और (विधारयः) विशेष करके सब व्यवहार का धारण कराने वाला परमात्मा है सब लोग उसी की उपासना करें ॥८२॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्या उत्साह सज्जनों का सङ्ग और पुरुषार्थ से सत्य और विशेष ज्ञान को धारण कर अच्छे स्वभाव को धारण करते हैं वे ही आप सुखी हो सकते और दूसरों को कर सकते हैं ॥८२॥

ऋतजिदित्यस्य सप्तऋषय ऋषयः। मरुतो देवताः। भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

अथ विद्वान् लोग कैसे हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुषेणश्च।
अन्तिमित्रश्च दूरेऽअमित्रश्च गणः ॥८३॥

पदार्थः—जो (ऋतजित्) विशेष ज्ञान को बढ़ाने हारा (च) और (सत्यजित्) कारण तथा धर्म को उन्नति देने वाला (च) और (सेनजित्) सेना को जीतने हारा (च) और (सुषेणः) सुन्दर सेना वाला (च) और (अन्तिमित्रः) समीप में सहाय करने हारे मित्र वाला (च) और (दूरे अमित्रः) शत्रु जिससे दूर भाग गये हों (च) और अन्य भी जो इस प्रकार का हो वह (गणः) गिनने योग्य होता है ॥८३॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्या और सत्य आदि कामों की उन्नति करें तथा मित्रों की सेवा और शत्रुओं से वैर करें, वे ही लोक में प्रशंसा योग्य होते हैं ॥८३॥

ईदृक्षास इत्यस्य सप्तऋषय ऋषयः। मरुतो देवताः। निचृदार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ईदृक्षासऽएतादृक्षासऽऊ षु णः सदृक्षासः प्रतिसदृक्षासऽएतन।
मितासश्च सम्मितासो नोऽअद्य सभरसो मरुतो यज्ञेऽअस्मिन् ॥८४॥

पदार्थः—हे (मरुतः) ऋतु ऋतु में यज्ञ करने वाले विद्वानो ! जो (ईदृक्षासः) इस लक्षण से युक्त (एतादृक्षासः) इन पहिले कहे हुओं के सदृश (सदृक्षासः) पक्षपात को छोड़ समान दृष्टि वाले (प्रतिसदृक्षासः) शास्त्रों को पढ़े हुए सत्य बोलने वाले

धर्मात्माओं के सदृश हैं वे आप (नः) हम लोगों को (सु, आ, इतन) अच्छे प्रकार प्राप्त हों (उ) वा (मितासः) परिमाणयुक्त जानने योग्य (संमितासः) तुला के समान सत्य झूठ को पृथक् पृथक् करने (च) और (अस्मिन्) इस (यज्ञे) यज्ञ में (सभरसः) अपने समान प्राणियों की पुष्टि पालना करने वाले हों वे (अद्य) आज (नः) हम लोगों की रक्षा करें और उनका हम लोग भी निरन्तर सत्कार करें ॥८४॥

भावार्थः—जब धार्मिक विद्वान् जन कहीं मिलें जिनके समीप जावें, पढ़ावें और शिक्षा देवें तब वे उन सब लोगों को सत्कार करने योग्य करें ॥८४॥

स्वतवानित्यस्य सप्तऋषय ऋषयः। चातुर्मास्या मरुतो देवताः। स्वराडार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

स्वतँवाँश्च प्रघासी च सान्तपनश्च गृहमेधी च।
क्रीडी च शाकी चोज्जेषी ॥८५॥

पदार्थः—जो (स्वतवान्) अपनों की वृद्धि कराने वाला (च) और (प्रघासी) जिसके बहुत भोजन करने योग्य पदार्थ विद्यमान हैं ऐसा (च) और (सान्तपनः) अच्छे प्रकार शत्रुजनों को तपाने (च) और (गृहमेधी) जिसका प्रशंसायुक्त घर में संग ऐसा (च) और (क्रीडी) अवश्य खेलने के स्वभाव वाला (च) और (शाकी) अवश्य शक्ति रखने का स्वभाव वाला (च) भी हो वह (उज्जेषी) मन से अत्यन्त जीतने वाला हो॥८५॥

भावार्थः—जो बहुत बल और अन्न के सामर्थ्य से युक्त गृहस्थ होता है वह सब जगह विजय को प्राप्त होता है॥८५॥

इन्द्रमित्यस्य सप्तऋषय ऋषयः। मरुतो देवताः। निचृच्छक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर राजा और प्रजा कैसे परस्पर वर्त्तें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन्यथेन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन्। एवमिमं यजमानं दैवीश्च विशो मानुषीश्चानुवर्त्मानो भवन्तु ॥८६॥

पदार्थः—हे राजन्! आप वैसे अपना वर्त्ताव कीजिये (यथा) जैसे (दैवीः) विद्वान् जनों के ये (विशः) प्रजाजन (मरुतः) ऋतु २ में यज्ञ कराने वाले विद्वान्

(इन्द्रम्) परमैश्वर्य्ययुक्त राजा के (अनुवर्त्मानः) अनुकूल मार्ग से चलने वाले (अभवन्) होवें वा जैसे (मरुतः) प्राण के समान प्यारे (दैवीः) शास्त्र जानने वाले दिव्य (विशः) प्रजाजन (इन्द्रम्) समस्त ऐश्वर्य्ययुक्त परमेश्वर के (अनुवर्त्मानः) अनुकूल आचरण करने हारे (अभवन्) हों (एवम्) ऐसे (दैवीः) शास्त्र पढ़े हुए (च) और (मानुषीः) मूर्ख (च) ये दोनों (विशः) प्रजाजन (इमम्) इस (यजमानम्) विद्या और अच्छी शिक्षा से सुख देने हारे सज्जन के (अनुवर्त्मानः) अनुकूल आचरण करने वाले (भवन्तु) हों ॥८६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे प्रजाजन राजा आदि राजपुरुषों के अनुकूल वर्त्तें वैसे ये लोग भी प्रजाजनों के अनुकूल वर्त्तें। जैसे अध्यापन और उपदेश करने वाले सब के सुख के लिये प्रयत्न करें वैसे सब लोग इन के सुख के लिये प्रयत्न करें ॥८६॥

इममित्यस्य सप्तऋषय ऋषयः। अग्निर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इमᳬ स्तनमूर्जस्वन्तं धयापां प्रपीनमग्ने सरिरस्य मध्ये।
उत्सं जुषस्व मधुमन्तमर्वन्त्समुद्रियᳬ सदनमाविशस्व ॥८७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान पुरुष ! तू (प्रपीनम्) अच्छे दूध से भरे हुए (स्तनम्) स्तन के समान (इमम्) इस (ऊर्जस्वन्तम्) प्रशंसित बल करते हुए (अपाम्) जलों के रस को (धय) पी (सरिरस्य) बहुतों के (मध्ये) बीच में (मधुमन्तम्) प्रशंसित मधुरतादि गुणयुक्त (उत्सम्) जिस से पदार्थ गीले होते हैं उस कूप को (जुषस्व) सेवन कर वा हे (अर्वन्) घोड़ों के समान वर्त्ताव रखने हारे जन ! तू (समुद्रियम्) समुद्र में हुए स्थान कि (सदनम्) जिस में जाते हैं उस में (आ, विशस्व) अच्छे प्रकार प्रवेश कर ॥८७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे बालक और बछड़े स्तन के दूध को पीके बढ़ते हैं वा जैसे घोड़ा शीघ्र दौड़ता है वैसे मनुष्य यथायोग्य भोजन और शयनादि आराम से बढ़े हुए वेग से चलें, जैसे जलों से भरे हुए समुद्र के बीच नौका में स्थित हो कर जाते हुए सुखपूर्वक पारावार अर्थात् इस पार से उस पार पहुँचते हैं वैसे ही अच्छे साधनों से व्यवहार के पार और अवार को प्राप्त होवें ॥८७॥

घृतमित्यस्य गृत्समद ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को अग्नि कहां कहां खोजना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम ।
अनुष्वधमावह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥८८॥

पदार्थः—हे समुद्र में जाने वाले मनुष्य ! आप (घृतम्) जल को (मिमिक्षे) सींचना चाहो (उ) वा (अस्य) इस आग का (घृतम्) घी (योनिः) घर है जो (घृते) घी में (श्रितः) आश्रय को प्राप्त हो रहा है वा (घृतम्) जल (अस्य) इस आग का (धाम) धाम अर्थात् ठहरने का स्थान है उस अग्नि को तू (अनुष्वधम्) अन्न की अनुकूलता को (आ, वह) पहुंचा । हे (वृषभ) वर्षाने वाले जन ! तू जिस कारण (स्वाहाकृतम्) वेदवाणी से सिद्ध किये (हव्यम्) लेने योग्य पदार्थ को (वक्षि) चाहता वा प्राप्त होता है इसलिये हम लोगों को (मादयस्व) आनन्दित कर ॥८८॥

भावार्थः—जितना अग्नि जल में है उतना जलाधिकरण अर्थात् जल में रहने वाला कहाता है, जैसे घी से अग्नि बढ़ता है वैसे जल से सब पदार्थ बढ़ते हैं और अन्न के अनुकूल घी आनन्द कराने वाला होता है, इससे उक्त व्यवहार की चाहना सब लोगों को करनी चाहिये । ८८॥

समुद्रादित्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ॥
धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्ताव रखना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ २ऽउदारदुपांशुना सममृतत्वमानट् ।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥८९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग जो (समुद्रात्) अन्तरिक्ष से (अंशुना) किरणसमूह के साथ (मधुमान्) मिठास लिये हुए (ऊर्मिः) जलतरङ्ग (उदारत्) ऊपर को पहुंचे वह (सममृतत्वम्) अच्छे प्रकार अमृतरूप स्वाद के (उपानट्) समीप में व्याप्त हो अर्थात् अतिस्वाद को प्राप्त होवे (यत्) जो (घृतस्य) जल का (गुह्यम्) गुप्त (नाम) नाम (अस्ति) है और जो (देवानाम्) विद्वानों की (जिह्वा) वाणी (अमृतस्य) मोक्ष का (नाभिः) प्रबन्ध करने वाली है उस सब का सेवन करो ॥८९॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे अग्नि, मिले हुए जल और भूमि के विभाग से अर्थात् उनमें से जल पृथक् कर मेघमण्डल को प्राप्त करा उसको भी मीठा कर देता है (तथा) जो जलों का कारणरूप नाम है वह गुप्त

अर्थात् कारणरूप जल अत्यन्त छिपे हुए और जो मोक्ष है यह सब विद्वानों के उपदेश से ही मिलता है, ऐसा जानना चाहिये ॥८९॥

वयमित्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्यास्मिन् यज्ञे धारयामा नमोभिः ।
उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुःशृङ्गोऽवमीद् गौरऽएतत् ॥९०॥

पदार्थः—जिस को (चतुःशृङ्गः) जिस के चारों वेद सींगों के समान उत्तम हैं वह (गौरः) वेदवाणी में रमण करने वा वेदवाणी को देने और (ब्रह्मा) चारों वेदों को जानने वाला विद्वान् (अवमीत्) उपदेश करे वा (उप, शृणवत्) समीप में सुने वह (घृतस्य) घी वा जल का (शस्यमानम्) प्रशंसित हुआ गुप्त (नाम) नाम है (एतत्) इस को (वयम्) हम लोग औरों के प्रति (प्र, ब्रवाम) उपदेश करें और (अस्मिन्) इस (यज्ञे) गृहाश्रम व्यवहार में (नमोभिः) अन्न आदि पदार्थों के साथ (धारयाम) धारण करें ॥९०॥

भावार्थः—मनुष्य लोग मनुष्य-देह को पाकर सब पदार्थों के नाम और अर्थों को पढ़ाने वालों से सुन कर औरों के लिये कहें और इस सृष्टि में स्थित पदार्थों से समस्त कामों की सिद्धि करावें ॥९०॥

चत्वारीत्यस्य वामदेव ऋषिः । यज्ञपुरुषो देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब यज्ञ के गुणों वा शब्दशास्त्र के गुणों को अगले मन्त्र में कहा है ॥

चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽअस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासोऽअस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ२ऽआविवेश ॥९१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम जिस (अस्य) इस के (त्रय) प्रातःसवन, मध्यन्दिनसवन और सायंसवन ये तीन (पादाः) प्राप्ति के साधन (चत्वारि) चार वेद (शृङ्गा) सींग (द्वे) दो (शीर्षे) अस्तकाल और उदयकाल शिर वा जिस (अस्य) इस के (सप्त, हस्तासः) गायत्री आदि छन्द सात हाथ हैं वा जो (त्रिधा) मन्त्र ब्राह्मण और कल्प इन तीन प्रकारों से (बद्धः) बंधा हुआ (महः) बड़ा (देवः) प्राप्त करने योग्य (वृषभः) सुखों को सब ओर से वर्षाने वाला यज्ञ (रोरवीति) प्रातः, मध्य और सायं सवन क्रम से शब्द करता हुआ (मर्त्यान्) मनुष्यों को (आ, विवेश) अच्छे प्रकार प्रवेश करता है, उस का अनुष्ठान कर के सुखी होओ ॥९१॥

द्वितीयपक्ष—हे मनुष्यो ! तुम जिस (अस्य) इस के (त्रयः) भूत भविष्यत् और वर्त्तमान तीन काल (पादाः) पग (चत्वारि) नाम आख्यात उपसर्ग और निपात चार (शृङ्गा) सींग (द्वे) दो (शीर्षे) नित्य और कार्य शिर वा जिस (अस्य) इस के (सप्त, हस्तासः) प्रथमा आदि सात विभक्ति सात हाथ वा जो (त्रिधा, बद्धः) हृदय कण्ठ और शिर इन तीन स्थानों में बंधा हुआ (महः) बड़ा (देवः) शुद्ध अशुद्ध का प्रकाशक (वृषभः) सुखों का वर्षाने वाला शब्दशास्त्र (रोरवीति) ऋक् यजुः साम और अथर्ववेद से शब्द करता हुआ (मर्त्यान्) मनुष्यों को (आ, विवेश) प्रवेश करता है, उस का अभ्यास करके विद्वान् होओ ॥९१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उभयोक्ति अर्थात् उपमान के न्यूनाधिक धर्मों के कथन से रूपक और श्लेषालङ्कार है। जो मनुष्य यज्ञविद्या और शब्दविद्या को जानते हैं वे महाशय विद्वान् होते हैं ॥९१॥

त्रिधेत्यस्य वामदेव ऋषिः। यज्ञपुरुषो देवता। आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन्।
इन्द्रऽएकꣳ सूर्य एकञ्जजान वेनादेकꣳ स्वधया निष्टतक्षुः ॥९२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (देवासः) विद्वान् जन (पणिभिः) व्यवहार के ज्ञाता स्तुति करने वालों ने (त्रिधा) तीन प्रकार से (हितम्) स्थित किये और (गवि) वाणी में (गुह्यमानम्) छिपे हुए (घृतम्) प्रकाशित ज्ञान को (अनु, अविन्दन्) खोजने के पीछे पाते हैं (इन्द्रः) बिजुली जिस (एकम्) एक विज्ञान और (सूर्यः) सूर्य (एकम्) एक विज्ञान को (जजान) उत्पन्न करते तथा (वेनात्) अति सुन्दर मनोहर बुद्धिमान् से तथा (स्वधया) आप धारण की हुई क्रिया से (एकम्) अद्वितीय विज्ञान को (निः) निरन्तर (ततक्षुः) अतितीक्ष्ण सूक्ष्म करते हैं, वैसे तुम लोग भी आचरण करो ॥९२॥

भावार्थः—तीन प्रकार के स्थूल सूक्ष्म और कारण के ज्ञान कराने हारे बिजुली तथा सूर्य्य के प्रकाश के तुल्य प्रकाशित बोध को प्राप्त अर्थात् उत्तम शास्त्रज्ञ विद्वानों से जो मनुष्य प्राप्त हों, वे अपने ज्ञान को व्याप्त करें ॥९२॥

एता इत्यस्य वामदेव ऋषिः। यज्ञपुरुषो देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः।
धैवतः स्वरः।

फिर मनुष्यों को कैसी वाणी का प्रयोग करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

एताऽअर्षन्ति हृद्यात्समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे ।
घृतस्य धाराऽअभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्यऽआसाम् ॥९३॥

पदार्थः—जो (रिपुणा) शत्रु चोर से (न, अवचक्षे) न काटने योग्य (शतव्रजाः) सैकड़ों जिन के मार्ग हैं (एताः) वे वाणी (हृद्यात्, समुद्रात्) हृदयाकाश से (अर्षन्ति) निकलती हैं (आसाम्) इन वैदिक धर्मयुक्त वाणियों के (मध्ये) बीच जो अग्नि में (घृतस्य) घी की (धाराः) धाराओं के समान मनुष्यों में गिरी हुई प्रकाशित होती हैं उन की (हिरण्ययः) तेजस्वी (वेतसः) अतिसुन्दर मैं (अभि, चाकशीमि) सब ओर से शिक्षा करता हूं ॥९३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे उपदेशक विद्वान् लोग जो वाणी पवित्र विज्ञानयुक्त अनेक मार्गों वाली शत्रुओं से अखण्डच और घी का प्रवाह अग्नि को जैसे उत्तेजित करता है वैसे श्रोताओं को प्रसन्न करने वाली हैं उन वाणियों को प्राप्त होते हैं, वैसे सब मनुष्य अच्छे यत्न से इन को प्राप्त होवें ॥९३॥

सम्यगित्यस्य वामदेव ऋषिः । यज्ञपुरुषो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेनाऽअन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।
एतेऽअर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगाऽइव क्षिपणोरीषमाणाः ॥९४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अन्तः, हृदा) शरीर के बीच में (मनसा) शुद्ध अन्तःकरण से (पूयमानाः) पवित्र हुई (धेनाः) वाणी (सरितः) नदियों के (न) समान (सम्यक्) अच्छे प्रकार (स्रवन्ति) प्रवृत्त होती हैं उन को जो (एते) ये वाणी के द्वारा (घृतस्य) प्रकाशित आन्तरिक ज्ञान की (ऊर्मयः) लहरें (क्षिपणोः) हिंसक जन के भय से (ईषमाणाः) भागते हुए (मृगा इव) हरिणों के तुल्य (अर्षन्ति) उठती तथा सब को प्राप्त होती हैं उन को भी तुम लोग जानो ॥९४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में दो उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे नदी समुद्रों को जाती है वैसे ही आकाशस्थ शब्दसमुद्र से (आकाश का शब्द गुण है इससे) वाणी विचरती हैं, तथा जैसे समुद्र की तरङ्गें चलती हैं वा जैसे बहेलियों से डरपे हुए मृग इधर उधर भागते हैं वैसे ही सब प्राणियों की शरीरस्थ विज्ञान से पवित्र हुई वाणी प्रचार को प्राप्त

होती हैं। जो लोग शास्त्र के अभ्यास और सत्य वचन आदि से वाणियों को पवित्र करते हैं वे ही शुद्ध होते हैं ॥९४॥

सिन्धोरित्यस्य वामदेव ऋषिः। यज्ञपुरुषो देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः।
घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः॥९५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! (प्राध्वने) जल चलने के उत्तम मार्ग में (सिन्धोरिव) नदी की जैसे (शूघनासः) शीघ्र चलने हारी (वातप्रमियः) वायु से जानने योग्य लहरें गिरें और (न) जैसे (काष्ठाः) संग्राम के प्रदेशों को (भिन्दन्) विदीर्ण करता तथा (ऊर्मिभिः) शत्रुओं को मारने के श्रम से उठे पसीने रूप जल से पृथिवी को (पिन्वमानः) सींचता हुआ (अरुषः) चालाक (वाजी) वेगवान् घोड़ा गिरे वैसे जो (यह्वाः) बड़ी गम्भीर (घृतस्य) विज्ञान की (धाराः) वाणी (पतयन्ति) उपदेशक के मुख से निकल के श्रोताओं पर गिरती हैं उनको तुम जानो॥९५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में भी दो उपमालङ्कार हैं। जो नदी के समान कार्यसिद्धि के लिये शीघ्र धावनेवाले वा घोड़े के समान वेग वाले जन जिनकी सब दिशाओं में कीर्त्ति प्रवर्त्तमान हो रही है और परोपकार के लिये उपदेश से बड़े बड़े दुःख सहते हैं वे तथा उनके श्रोताजन संसार के स्वामी होते हैं और नहीं॥९५॥

अभिप्रवन्तेत्यस्य वामदेव ऋषिः। यज्ञपुरुषो देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अभिप्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासोऽअग्निम्।
घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः॥९६॥

पदार्थः—(स्मयमानासः) किञ्चित् हंसने से प्रसन्नता करने (कल्याण्यः) कल्याण के लिये आचरण करने तथा (समनेव, योषाः) एक से चित्त वाली स्त्रियां जैसे पतियों को प्राप्त हों वैसे जो (समिधः) शब्द अर्थ और सम्बन्धों से सम्यक् प्रकाशित (घृतस्य) शुद्ध ज्ञान की (धाराः) वाणी (अग्निम्) तेजस्वी विद्वान् को (अभि, प्रवन्त) सब ओर से पहुंचती और (नसन्त) प्राप्त होती हैं (ताः) उन

वाणियों का (जुषाणः) सेवन करता हुआ (जातवेदाः) ज्ञानी विद्वान् (हर्यति) कान्ति को प्राप्त होता है ।।९६।।

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे प्रसन्नचित्त आनन्द को प्राप्त सौभाग्यवती स्त्रियां अपने अपने पतियों को प्राप्त होती हैं वैसे ही विद्या तथा विज्ञानरूप आभूषण से शोभित वाणी विद्वान् पुरुष को प्राप्त होती हैं ।।९६।।

कन्याऽइवेत्यस्य वामदेव ऋषिः । यज्ञपुरुषो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

कन्याऽइव वहतुमेतवा उऽअञ्ज्यञ्जानाऽअभि चाकशीमि ।
यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धाराऽअभि तत्पवन्ते ।।९७।।

पदार्थः—(अञ्जि) चाहने योग्य रूप को (अञ्जानाः) प्रकट करती हुई (वहतुम्) प्राप्त होने वाले पति को (एतवै) प्राप्त होने के लिये (कन्या इव) जैसे कन्या शोभित होती हैं वैसे (यत्र) जहां (सोमः) बहुत ऐश्वर्य्य (सूयते) उत्पन्न होता (उ) और (यत्र) जहां (यज्ञः) यज्ञ होता है (तत्) वहां जो (घृतस्य) ज्ञान की (धाराः) वाणी (अभि, पवन्ते) सब ओर से पवित्र होती हैं उन को मैं (अभि चाकशीमि) अच्छे प्रकार बारबार प्राप्त होता हूं ।।९७।।

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे कन्या स्वयंवर के विधान से अपनी इच्छा के अनुकूल पतियों का स्वीकार करके शोभित होती हैं वैसे ऐश्वर्य्य उत्पन्न होने के अवसर और यज्ञसिद्धि में विद्वानों की वाणी पवित्र हुई शोभायमान होती हैं ।।९७।।

अभ्यर्षतेत्यस्य वामदेव ऋषिः । यज्ञपुरुषो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

विवाहित स्त्री पुरुषों को क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते ।।९८।।

पदार्थः—हे विवाहित स्त्रीपुरुषो ! तुम उत्तम वर्त्ताव से (सुष्टुतिम्) अच्छी प्रशंसा तथा (आजिम्) जिस से उत्तम कामों को जानते हैं उस संग्राम और (गव्यम्) वाणी में होने वाले बोध वा गौ में होने वाले दूध दही घी आदि को (अभ्यर्षत) सब ओर से प्राप्त होओ (देवता) विद्वान् जन (अस्मासु) हम लोगों में (भद्रा) अति

आनन्द कराने वाले (द्रविणानि) धनों को (धत्त) स्थापित करो (नः) हम लोगों को (इमम्) इस (यज्ञम्) प्राप्त होने योग्य गृहाश्रम-व्यवहार को (नयत) प्राप्त करावो जो (घृतस्य) प्रकाशित विज्ञान से युक्त (धाराः) अच्छी शिक्षायुक्त वाणी विद्वानों को (मधुमत्) मधुर आलाप जैसे हो वैसे (पवन्ते) प्राप्त होती हैं उन वाणियों को हम को प्राप्त कराओ ॥९८॥

भावार्थः—स्त्रीपुरुषों को चाहिये कि परस्पर मित्र होकर संसार में विख्यात होवें, जैसे अपने लिये वैसे औरों के लिये भी अत्यन्त सुख करने वाले धनों को उन्नतियुक्त करें, परम पुरुषार्थ से गृहाश्रम की शोभा करें और वेदविद्या का निरन्तर प्रचार करें ॥९८॥

धामन्नित्यस्य वामदेव ऋषिः । यज्ञपुरुषो देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ईश्वर और राजा का विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

धामं॑न्ते॒ विश्वं॒ भुव॑नमधि॑ श्रि॒तम॒न्तः स॑मु॒द्रे हृ॒द्य॒न्तरायु॑षि ।
अ॒पामनी॑के समि॒थे यऽआभृ॑त॒स्तम॑श्याम॒ मधु॑मन्तं तऽऊ॒र्मिम् ॥९९॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! जिस (ते) आपके (धामन्) जिसमें कि समस्त पदार्थों को आप धरते हैं (अन्तः, समुद्रे) उस आकाश के तुल्य सब के बीच व्याप्त-स्वरूप में (विश्वम्) सब (भुवनम्) प्राणियों की उत्पत्ति का स्थान संसार (अधि, श्रितम्) आश्रित होके स्थित है उस को हम लोग (अश्याम) प्राप्त होवें । हे सभापते! (ते) तेरे (अपाम्) प्राणों के (अन्तः) बीच (हृदि) हृदय में तथा (आयुषि) जीवन के हेतु प्राणधारियों के (अनीके) सेना और (समिथे) संग्राम में (यः) जो भार (आभृतः) भलीभांति धरा है (तम्) उसको तथा (मधुमन्तम्) प्रशंसायुक्त मधुर गुणों से भरे हुए (ऊर्मिम्) बोध को हम लोग प्राप्त होवें ॥९९॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जगदीश्वर की सृष्टि में परम प्रयत्न से मित्रों की उन्नति करें और समस्त सामग्री को धारण करके यथायोग्य आहार और विहार अर्थात् परिश्रम से शरीर की आरोग्य का विस्तार कर अपना और पराया उपकार करें ॥९९॥

इस अध्याय में सूर्य, मेघ, गृहाश्रम और गणित की विद्या तथा ईश्वर आदि की पदार्थविद्या के वर्णन से इस अध्याय के अर्थ की पिछले अध्याय के अर्थ के साथ एकता है, यह समझना चाहिये ॥

॥ यह सत्रहवां (१७) अध्याय पूरा हुआ ॥

---

* ओ३म् *

अथाष्टादशोऽध्यायारम्भः

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥१॥

वाजश्च म इत्यस्य देवा ऋषयः । अग्निर्देवता । शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब अठारहवें अध्याय का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को ईश्वर वा धर्मानुष्ठानादि से क्या क्या सिद्ध करना चाहिये इस विषय का उपदेश किया है ॥

वाज॑श्च मे प्रस॒वश्च॑ मे॒ प्रय॑तिश्च मे॒ प्रसि॑तिश्च मे धी॒तिश्च॑ मे॒ क्रतु॑श्च मे॒ स्वर॑श्च मे॒ श्लोक॑श्च मे॒ श्र॒वश्च॑ मे॒ श्रुति॑श्च मे॒ ज्योति॑श्च मे॒ स्व॒श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥१॥

पदार्थः—(मे) मेरा (वाजः) अन्न (च) विशेषज्ञान से (मे) मेरा (प्रसवः) ऐश्वर्य्य (च) और उसके ढंग (मे) मेरा (प्रयतिः) जिस व्यवहार से अच्छा यत्न बनना है सो (च) और उसके साधन (मे) मेरा (प्रसितिः) प्रबन्ध (च) और रक्षा (मे) मेरी (धीतिः) धारणा (च) और ध्यान (मे) मेरी (क्रतुः) श्रेष्ठबुद्धि (च) उत्साह (मे) मेरी (स्वरः) स्वतन्त्रता (च) उत्तम तेज (मे) मेरी (श्लोकः) पद-रचना करने हारी वाणी कहना (च) और (मे) मेरा (श्रवः) सुनना (च) और सुनाना (मे) मेरी (श्रुतिः) जिससे समस्त विद्या सुनी जाती हैं वह वेदविद्या (च) और उस के अनुकूल स्मृति अर्थात् धर्मशास्त्र (मे) मेरी (ज्योतिः) विद्या का प्रकाश होना (च) और दूसरे को विद्या का प्रकाश करना (मे) मेरा (स्वः) सुख (च) और अन्य का सुख (यज्ञेन) सेवन करने योग्य परमेश्वर वा जगत् के उपकारी व्यवहार से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुमको अन्न आदि पदार्थों से सब के सुख के लिये ईश्वर की उपासना और जगत् के उपकारक व्यवहार की सिद्धि करनी चाहिये जिससे सब मनुष्यादिकों की उन्नति हो ॥१॥

प्राणश्चेत्यस्य देवा ऋषयः। प्रजापतिर्देवता। अतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्राणश्चं मेऽपानश्चं मे व्यानश्च मेऽसुश्च मे चित्तं चं मऽआधीतं च मे वाक् चं मे मनंश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्रं च मे दक्षंश्च मे बलं च मे यज्ञेनं कल्पन्ताम् ॥२॥

पदार्थः—(मे) मेरा (प्राणः) हृदयस्थ जीवनमूल (च) और कण्ठ देश में रहने वाला पवन (मे) मेरा (अपानः) नाभि से नीचे को जाने (च) और नाभि में ठहरने वाला पवन (मे) मेरे (व्यानः) शरीर की सन्धियों में व्याप्त (च) और धनञ्जय जो कि शरीर के रुधिर आदि को बढ़ाता है वह पवन (मे) मेरा (असुः) नाग आदि प्राण का भेद (च) तथा अन्य पवन (मे) मेरी (चित्तम्) स्मृति अर्थात् सुधि रहनी (च) और बुद्धि (मे) मेरा (आधीतम्) अच्छे प्रकार किया हुआ निश्चित ज्ञान (च) और रक्षा किया हुआ विषय (मे) मेरी (वाक्) वाणी (च) और सुनना (मे) मेरी (मनः) संकल्प विकल्प रूप अन्तःकरण की वृत्ति (च) अहङ्कार वृत्ति (मे) मेरा (चक्षुः) जिससे कि मैं देखता हूं वह नेत्र (च) और प्रत्यक्ष प्रमाण (मे) मेरा (श्रोत्रम्) जिससे कि मैं सुनता हूं वह कान (च) और प्रत्येक विषय पर वेद का प्रमाण (मे) मेरी (दक्षः) चतुराई (च) और तत्काल भान होना तथा (मे) मेरा (बलम्) बल (च) और पराक्रम ये सब (यज्ञेन) धर्म के अनुष्ठान से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य लोग साधनों के सहित अपने प्राण आदि पदार्थों को धर्म के आचरण करने में संयुक्त करें ॥२॥

ओजश्चेत्यस्य देवा ऋषयः। प्रजापतिर्देवता। स्वराडतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ओजंश्च मे सहंश्च मऽआत्मा चं मे तनूश्चं मे शर्मं च मे वर्मं च मेऽङ्गानि च मेऽस्थीनि च मे परूᳬंषि च मे शरींराणि च मऽआयुंश्च मे जरा चं मे यज्ञेनं कल्पन्ताम् ॥३॥

पदार्थः—(मे) मेरे (ओजः) शरीर का तेज (च) और मेरी सेना (मे) मेरे (सहः) शरीर का बल (च) तथा मन (मे) मेरा (आत्मा) स्वरूप और (च) मेरा सामर्थ्य (मे) मेरा (तनूः) शरीर (च) और सम्बन्धीजन (मे) मेरा (शर्म) घर (च) और घर के पदार्थ (मे) मेरी (वर्म) रक्षा जिससे हो वह बखतर (च) और शस्त्र अस्त्र (मे) मेरे (अङ्गानि) शिर आदि अंग (च) और अंगुली आदि प्रत्यंग (मे) मेरे (अस्थीनि) हाड़ (च) और भीतर के अंग प्रत्यंग अर्थात् हृदय मांस नसें आदि (मे) मेरे (परूंषि) मर्मस्थल (च) और जीवन के कारण (मे) मेरे (शरीराणि) सम्बन्धियों के शरीर (च) और अत्यन्त छोटे छोटे देह के अंग (मे) मेरी (आयुः) उमर (च) तथा जीवन के साधन अर्थात् जिनसे जीते हैं (मे) मेरा (जरा) बुढ़ापा (च) और जवानी ये सब पदार्थ (यज्ञेन) सत्कार के योग्य परमेश्वर से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥३॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि धार्मिक सज्जनों की रक्षा और दुष्टों को दण्ड देने के लिये बली सेना आदि जनों को प्रवृत्त करें ॥३॥

ज्यैष्ठ्यं चेत्यस्य देवा ऋषयः। प्रजापतिर्देवता। निचृदत्यष्टिः छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ज्यैष्ठ्यं च मऽआधिपत्यं च मे मन्युश्च मे भामश्च मेऽमश्च मेऽम्भश्च मे जेमा च मे महिमा च मे वरिमा च मे प्रथिमा च मे वर्षिमा च मे द्राघिमा च मे वृद्धं च मे वृद्धिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥४॥

पदार्थः—(मे) मेरी (ज्यैष्ठ्यम्) प्रशंसा (च) और उत्तम पदार्थ (मे) मेरा (आधिपत्यम्) स्वामीपन (च) और स्वकीय द्रव्य (मे) मेरा (मन्युः) अभिमान (च) और शान्ति (मे) मेरा (भामः) क्रोध (च) और उत्तम शील (मे) मेरा (अमः) न्याय से पाये हुए गृहादि (च) और पाने योग्य पदार्थ (मे) मेरा (अम्भः) जल (च) और दूध दही घी आदि पदार्थ (मे) मेरा (जेमा) जीत का होना (च) और विजय (मे) मेरा (महिमा) बड़प्पन (मे) प्रतिष्ठा (मे) मेरी (वरिमा) बड़ाई (च) और उत्तम वर्त्ताव (मे) मेरा (प्रथिमा) फैलाव (च) और फैले हुए पदार्थ (मे) मेरा (वर्षिमा) बुढ़ापा (च) और लड़काई (मे) मेरी (द्राघिमा) बढ़वार (च) और छुटाई (मे) मेरा (वृद्धम्) प्रभुता को पाए हुए बहुत प्रकार का धन आदि पदार्थ (च) और थोड़ा पदार्थ तथा (मे) मेरी (वृद्धिः) जिस अच्छी क्रिया से वृद्धि को प्राप्त होते हैं वह (च) और

उससे उत्पन्न हुआ सुख उक्त समस्त पदार्थ (यज्ञेन) धर्म की रक्षा करने से (कल्पन्ताम्) समर्थित होवें ॥४॥

भावार्थः—हे मित्रजनो ! तुम यज्ञ की सिद्धि और समस्त जगत् के हित के लिये प्रशंसित पदार्थों को संयुक्त करो ॥४॥

सत्यं चेत्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतिर्देवता । अत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सत्यं च मे श्रद्धा च मे जगच्च मे धनं च मे विश्वं च मे महश्च मे क्रीडा च मे मोदश्च मे जातं च मे जनिष्यमाणं च मे सूक्तं च मे सुकृतं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥५॥

पदार्थः—(मे) मेरा (सत्यम्) यथार्थ विषय (च) और सब का हित करना (मे) मेरी (श्रद्धा) अर्थात् जिससे सत्य को धारण करते हैं (च) और उक्त श्रद्धा की सिद्धि देने वाले पदार्थ (मे) मेरा (जगत्) चेतन सन्तान आदि वर्ग (च) और उस में स्थिर हुए पदार्थ (मे) मेरा (धनम्) सुवर्ण आदि धन (च) और धान्य अर्थात् अनाज आदि (मे) मेरा (विश्वम्) सर्वस्व (च) और सबों पर उपकार (मे) मेरी (महः) बड़ाई से भरी हुई प्रशंसा करने योग्य वस्तु (च) और सत्कार (मे) मेरा (क्रीडा) खेलना विहार (च) और उसके पदार्थ (मे) मेरा (मोदः) हर्ष (च) और अति हर्ष (मे) मेरा (जातम्) उत्पन्न हुआ पदार्थ (च) तथा जो होता है (च) मेरा (जनिष्यमाणम्) जो उत्पन्न होने वाला (च) और जितना उससे सम्बन्ध रहने वाला (मे) मेरा (सूक्तम्) अच्छे प्रकार कहा हुआ (च) और अच्छे प्रकार विचारा हुआ (मे) मेरा (सुकृतम्) उत्तमता से किया हुआ काम (च) और उसके साधन ये उक्त सब पदार्थ (यज्ञेन) सत्य और धर्म की उन्नति करने रूप उपदेश से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्या का पठन पाठन श्रवण और उपदेश करते वा कराते हैं वे नित्य उन्नति को प्राप्त होते हैं ॥५॥

ऋतं चेत्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतिर्देवता । भुरिगति शक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऋतं च मेऽमृतं च मेऽयक्ष्मं च मेऽनामयच्च मे जीवातुश्च मे दीर्घायुत्वं च मेऽनमित्रं च मेऽभयं च मे सुखं च मे शयनं च मे सूषाश्च मे सुदिनं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥६॥

पदार्थः—(मे)मेरा(ऋतम्)यथार्थ विज्ञान (च)और उसकी सिद्धि करने वाला पदार्थ (मे) मेरा (अमृतम्) आत्मस्वरूप वा यज्ञ से बचा हुआ अन्न (च) तथा पीने योग्य रस (मे) मेरा (अयक्ष्मम्) यक्ष्मा आदि रोगों से रहित शरीर आदि (च) और रोगविनाशक कर्म (मे) मेरा (अनामयत्)रोग आदिरहित आयु (च) और इसकी सिद्धि करने वाली ओषधियां (मे) मेरा (जीवातुः) जिससे जीते हैं वा जो जिलाता है वह व्यवहार (च) और पथ्य भोजन (मे) मेरा (दीर्घायुत्वम्) अधिक आयु का होना (च) ब्रह्मचर्य और इन्द्रियों को अपने वश में रखना आदि कर्म (मे) मेरा(अनमित्रम्) मित्र (च) और पक्षपात को छोड़ के काम (मे) मेरा (अभयम्) न डरपना (च) और शूरपन (मे) मेरा (सुखम्) अति उत्तम आनन्द (च) और इसको सिद्ध करने वाला (मे)मेरा (शयनम्) सो जाना (च) और उस काम की सिद्धि कराने वाला पदार्थ (मे) मेरा (सूषाः) वह समय कि जिसमें अच्छी प्रातःकाल की वेला हो(च) और उक्त काम का सम्बन्ध करने वाली क्रिया तथा (मे) मेरा (सुदिनम्) सुदिन (च) और उपयोगी कर्म ये सब (यज्ञेन) सत्य वचन बोलने आदि व्यवहारों से (कल्पन्ताम्) समर्थित होवें ॥६॥

भावार्थः—जो मनुष्य सत्यभाषण आदि कामों को करते हैं वे सदा सुखी होते हैं ॥६॥

यन्ता चेत्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतिर्देवता । निचृद् भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यन्ता च मे धर्ता च मे क्षेमश्च मे धृतिश्च मे विश्वं च मे महश्च मे संविच्च मे ज्ञात्रं च मे सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरं च मे लयश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥७॥

पदार्थः—(मे) मेरा (यन्ता) नियम करने वाला (च) और नियमित पदार्थ (मे) मेरा (धर्त्ता) धारण करने वाला (च) और धारण किया हुआ पदार्थ (मे) मेरी (क्षेमः) रक्षा (च) और रक्षा करने वाला (मे) मेरी (धृतिः) धारणा (च) और सहनशीलता (मे) मेरे सम्बन्ध का (विश्वम्) जगत् (च) और उस के अनुकूल मर्यादा (मे) मेरा (महः) बड़ा कर्म (च) और बड़ा व्यवहार (मे) मेरी (संवित्) प्रतिज्ञा (च) और जाना हुआ विषय (मे) मेरा (ज्ञात्रम्) जिससे जानता हूं वह ज्ञान (च) और जानने योग्य पदार्थ (मे) मेरी (सूः) प्रेरणा करने वाली चित्त की वृद्धि (च) और उत्पन्न हुआ पदार्थ (मे) मेरी (प्रसूः) जो उत्पत्ति कराने वाली वृत्ति (च)

और उत्पत्ति का विषय (मे) मेरे (सीरम्) खेती की सिद्धि कराने वाले हल आदि (च) और खेती करने वाले तथा (मे) मेरा (लयः) लय अर्थात् जिस में एकता को प्राप्त होना हो वह विषय (च) और जो मुझ में एकता को प्राप्त हुआ वह विद्यादि गुण ये उक्त सब (यज्ञेन) अच्छे नियमों के आचरण से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ।।७।।

भावार्थः—जो शम दम आदि गुणों से युक्त अच्छे अच्छे नियमों को भलीभांति पालन करें वे अपने चाहे हुए कामों को सिद्ध करावें ।।७।।

शं चेत्यस्य देवा ऋषयः । आत्मा देवता । भुरिक् शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

शं चं मे मर्यश्च मे प्रियं चं मेऽनुकामश्चं मे कामंश्च मे सौमनसश्चं मे भगंश्च मे द्रविणं च मे भद्रं चं मे श्रेयश्च मे वसीयश्च मे यशश्च मे यज्ञेनं कल्पन्ताम् ।।८।।

पदार्थः—(मे) मेरा (शम्) सब सुख (च) और सुख की सब सामग्री (मे) मेरा (मयः) प्रत्यक्ष आनन्द (च) और इसके साधन (मे) मेरा (प्रियम्) पियारा (च) और इसके साधन (मे) मेरी (अनुकामः) धर्म के अनुकूल कामना (च) और इसके साधन (मे) मेरा (कामः) काम अर्थात् जिससे वा जिसमें कामना करें (च) तथा (मे) मेरा (सौमनसः) चित्त का अच्छा होना (च) और इसके साधन (मे) मेरा (भगः) ऐश्वर्य्य का समूह (च) और इसके साधन (मे) मेरा (द्रविणम्) बल (च) और इसके साधन (मे) मेरा (भद्रम्) अति आनन्द देने योग्य सुख (च) और सुख के साधन (मे) मेरा (श्रेयः) मुक्ति सुख (च) और इसके साधन (मे) मेरा (वसीयः) अतिशय करके बसने वाला (च) और इसकी सामग्री (मे) मेरी (यशः) कीर्त्ति (च) और इसके साधन (यज्ञेन) सुख की सिद्धि करने वाले ईश्वर से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ।।८।।

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जिस काम से सुख आदि की वृद्धि हो उस काम का निरन्तर सेवन करें ।।८।।

ऊर्क् चेत्यस्य देवा ऋषयः । आत्मा देवता । शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

ऊर्क् चं मे सूनृतां च मे पयश्च मे रसंश्च मे घृतं चं मे मधुं च मे सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रं च मऽऔद्भिद्यं च मे यज्ञेनं कल्पन्ताम् ।।९।।

पदार्थः—(मे) मेरा (ऊर्क्) अच्छा संस्कार किया अर्थात् बनाया हुआ अन्न (च) और सुगन्धि आदि पदार्थों से युक्त व्यञ्जन (मे) मेरी (सूनृता) प्रियवाणी (च) और सत्य वचन (मे) मेरा (पयः) दूध (च) और उत्तम पकाये ओषधि आदि पदार्थ (मे) मेरा (रसः) सब पदार्थों का सार (च) और बड़ी बड़ी ओष-धियों से निकाला हुआ रस (मे) मेरा (घृत) घी (च) और उसका संस्कार करने तपाने आदि से सिद्ध हुआ पक्वान्न (मे) मेरा (मधु) सहत (च) और खांड गुड़ आदि (मे) मेरा (सग्धिः) एकसा भोजन (च) और उत्तम भोग साधन (मे) मेरी (सपीतिः) एकसा जिस में जल का पान (च) और जो चूसने योग्य पदार्थ (मे) मेरा (कृषिः) भूमि की जुताई (च) और गेहूँ आदि अन्न (मे) मेरी (वृष्टिः) वर्षा (च) और होम की आहुतियों से पवन आदि की शुद्धि करना (मे) मेरा (जैत्रम्) जीतने का स्वभाव (च) और अच्छे शिक्षित सेना आदि जन तथा (मे) मेरे (औद्भि-द्यम्) भूमि को तोड़ फोड़ के निकालने वाले वृक्षों वा वनस्पतियों का होना (च) और फूल फल ये सब पदार्थ (यज्ञेन) समस्त रस और पदार्थों की बढ़ती करने वाले कर्म से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥९॥

भावार्थः—मनुष्य समस्त उत्तम रसयुक्त पदार्थों को इकट्ठा करके उनको समय समय के अनुकूल होमादि उत्तम व्यवहारों में लगावें ॥९॥

रयिश्चेत्यस्य देवा ऋषयः । आत्मा देवता । निचृच्छक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

रयिश्चं मे रायश्च मे पुष्टं चं मे पुष्टिश्च मे विभु चं मे प्रभु चं मे पूर्णं चं मे पूर्णतरं च मे कुयवं च मेऽक्षितं च मेऽन्नं च मेऽक्षुच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१०॥

पदार्थः—(मे) मेरी (रयिः) विद्या की कान्ति (च) और पुरुषार्थ (मे) मेरे (रायः) प्रशंसित धन (च) और पक्वान्न आदि (मे) मेरे (पुष्टम्) पुष्ट पदार्थ (च) और आरोग्य (मे) मेरी (पुष्टिः) पुष्टि (च) और पथ्य भोजन (मे) मेरा (विभु) सब विषयों में व्याप्त मन आदि (च) [और] परमात्मा का ध्यान (मे) मेरा (प्रभु) समर्थ व्यवहार (च) और सब सामर्थ्य (मे) मेरा (पूर्णम्) पूर्ण काम का करना (च) और उस का साधन (मे) मेरे (पूर्णतरम्) आभूषण गौ भैंस घोड़ा छेरी तथा अन्न आदि पदार्थ (च) और सब का उपकार करना (मे) मेरा (कुयवम्) निन्दित यवों से न मिला हुआ अन्न (च) और धान चावल आदि अन्न (मे) मेरा (अक्षितम्) अक्षय पदार्थ (च) और तृप्ति (मे) मेरा (अन्नम्) खाने योग्य अन्न (च) और

मसाला आदि तथा (मे) मेरी (अक्षुत्) क्षुधा की तृप्ति (च) और प्यास आदि की तृप्ति ये सब पदार्थ (यज्ञेन) प्रशंसित धनादि देने वाले परमात्मा से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्यों को परमपुरुषार्थ और ईश्वर की भक्ति प्रार्थना से विद्या आदि धन पाकर सब का उपकार सिद्ध करना चाहिये ॥१०॥

वित्तं चेत्यस्य देवा ऋषयः । श्रीमदात्मा देवता । भुरिक् शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वित्तं च मे वेद्यं च मे भूतं च मे भविष्यच्च मे सुगं च मे सुपथ्यं च मऽऋद्धं च मऽऋद्धिश्च मे क्लृप्तं च मे क्लृप्तिश्च मे मतिश्च मे सुमतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥११॥

पदार्थः—(मे) मेरा (वित्तम्) विचारा हुआ विषय (च) और विचार (मे) मेरा (वेद्यम्) विचारने योग्य विषय (च) और विचारने वाला (मे) मेरा (भूतम्) व्यतीत हुआ विषय (च) और वर्त्तमान (मे) मेरा (भविष्यत्) होने वाला (च) और सब समय का उत्तम व्यवहार (मे) मेरा (सुगम्) सुगम मार्ग (च) और उचित कर्म (मे) मेरा (सुपथ्यम्) सुगम युक्ताहार विहार का होना (च) और सब कामों में प्रथम कारण (मे) मेरा (ऋद्धम्) अच्छी वृद्धि को प्राप्त पदार्थ (च) और सिद्धि (मे) मेरी (ऋद्धिः) योग से पाई हुई अच्छी वृद्धि (च) और तुष्टि अर्थात् सन्तोष (मे) मेरा (क्लृप्तम्) सामर्थ्य को प्राप्त हुआ काम (च) और कल्पना (मे) मेरी (क्लृप्तिः) सामर्थ्य की कल्पना (च) और तर्क (मे) मेरा (मतिः) विचार (च) और पदार्थ पदार्थ का विचार करना (मे) मेरी (सुमतिः) उत्तम बुद्धि तथा (च) अच्छी निष्ठा ये सब (यज्ञेन) शम दम आदि नियमों से युक्त योगाभ्यास से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥११॥

भावार्थः—जो शम आदि नियमों से युक्त संयम को प्राप्त योग का अभ्यास करते और ऋद्धिसिद्धि को प्राप्त हुए हैं वे औरों को भी अच्छे प्रकार ऋद्धि सिद्धि दे सकते हैं ॥११॥

व्रीहयश्चेत्यस्य देवा ऋषयः । धान्यदा आत्मा देवता । भुरिगतिशक्वरी छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च

मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१२॥

पदार्थः— (मे) मेरे (व्रीहयः) चावल (च) और साठी के धान ((मे) मेरे (यवाः) जौ (च) और अरहर (मे) मेरे (माषाः) उरद (च) और मटर (मे) मेरे (तिलाः) तिल (च) और नारियल (मे) मेरे (मुद्गाः) मूंग (च) और उस का बनाना (मे) मेरे (खल्वा) चणे (च) और उनका सिद्ध करना (मे) मेरी (प्रियङ्गवः) कंगुनी (च) और उसका बनाना (मे) मेरे (अणवः) सूक्ष्म चावल (च) और उन का पाक (मे) मेरा (श्यामाकाः) समा (च) और मडुआ पटेरा चेना आदि छोटे अन्न (मे) मेरा (नीवाराः) पसाई के चावल जो कि विना बोए उत्पन्न होते हैं (च) और इन का पाक (मे) मेरे (गोधूमाः) गेहूं (च) और उन को पकाना तथा (मे) मेरी (मसूराः) मसूर (च) और इन का सम्बन्धी अन्य अन्न ये सब (यज्ञेन) सब अन्नों के दाता परमेश्वर से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥१२॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि चावल आदि से अच्छे प्रकार संस्कार किये हुए भात आदि को बना अग्नि में होम करें तथा आप खावें, औरों को खवावें ॥१२॥

अश्मा चेत्यस्य देवा ऋषयः । रत्नवान्धनवानात्मा देवता । भुरिगतिशक्वरी छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यं च मेऽयश्च मे श्यामं च मे लोहं च मे सीसं च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१३॥

पदार्थः—(मे) मेरा (अश्मा) पत्थर (च) और हीरा आदि रत्न मेरी (मृत्तिका) अच्छी माटी (च) और साधारण माटी (मे) मेरे (गिरयः) मेघ और (च) बद्दल (मे) मेरे (पर्वताः) बड़े छोटे पर्वत (च) और पर्वतों में होने वाले पदार्थ (मे) मेरी (सिकता) बड़ी वालू (च) और छोटी छोटी वालू (मे) मेरे (वनस्पतयः) बड़ आदि वृक्ष (च) और आम आदि वृक्ष (मे) मेरा (हिरण्यम्) सब प्रकार का धन (च) तथा चांदी आदि (मे) मेरा (अयः) लोहा (च) और शस्त्र (मे) मेरा (श्यामम्) नीलमणि वा लहसुनिया आदि (च) और चन्द्रकान्तमणि (मे) मेरा (लोहम्) सुवर्ण (च) तथा कान्तिसार आदि (मे) मेरा (सीसम्) सीसा (च) और लाख (मे)

मेरा (त्रपु) जस्ता (च) और पीतल आदि ये सब (यज्ञेन) सङ्ग करने योग्य व्यवहार से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥१३॥

भावार्थः—मनुष्य लोग पृथिवीस्थ पदार्थों को अच्छी परीक्षा से जान के इनसे रत्न और अच्छे अच्छे धातुओं को पाकर सब के हित के लिये उपयोग में लावें ॥१३॥

अग्निश्चेत्यस्य देवा ऋषयः। अग्न्यादियुक्त आत्मा देवता। भुरिगष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒ग्निश्च॑ म॒ऽआप॑श्च मे वी॒रुध॑श्च म॒ऽओष॑धयश्च मे कृष्टप॒च्याश्च मेऽकृष्टप॒च्याश्च मे ग्रा॒म्याश्च मे प॒शव॑ऽआर॒ण्याश्च मे वि॒त्तं च॑ मे॒ वित्ति॑श्च मे भू॒तं च॑ मे॒ भूति॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥१४॥

पदार्थः—(मे) मेरा (अग्निः) अग्नि (च) और बिजुली आदि (मे) मेरे (आपः) जल (च) और जल में होने वाले रत्न मोती आदि (मे) मेरे (वीरुधः) लता गुच्छा (च) और शाक आदि (मे) मेरी (ओषधयः) सोमलता आदि ओषधि (च) और फल पुष्पादि (मे) मेरे (कृष्टपच्याः) खेतों में पकते हुए अन्न आदि (च) और उत्तम अन्न (मे) मेरे (अकृष्टपच्याः) जो जङ्गल में पकते हैं वे अन्न (च) और जो पर्वत आदि स्थानों में पकने योग्य हैं वे अन्न (मे) मेरे (ग्राम्याः) गांव में हुए गौ आदि (च) और नगर में ठहरे हुए तथा (मे) मेरे (आरण्याः) वन में होने हारे मृग आदि (च) और सिंह आदि (पशवः) पशु (मे) मेरा (वित्तम्) पाया हुआ पदार्थ (च) और सब धन (मे) मेरी (वित्तिः) प्राप्ति (च) और पाने योग्य (मे) मेरा (भूतम्) रूप (च) और नाना प्रकार का पदार्थ तथा (मे) मेरा (भूतिः) ऐश्वर्य (च) और उस का साधन ये सब पदार्थ (यज्ञेन) मेल करने योग्य शिल्प विद्या से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥१४॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्नि आदि की विद्या से सङ्गति करने योग्य शिल्पविद्या रूप यज्ञ को सिद्ध करते हैं वे ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥१४॥

वसु चेत्यस्य देवा ऋषयः। धनादियुक्त आत्मा देवता। निचृदार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वसु॑ च मे वस॒तिश्च॑ मे॒ कर्म॑ च मे॒ शक्ति॑श्च मेऽर्थ॑श्च म॒ऽएम॑श्च मऽइ॒त्या च॑ मे॒ गति॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥१५॥

पदार्थः—(मे) मेरा (वसु) वस्तु (च) और प्रिय पदार्थ वा पियारा काम (मे) मेरी (वसतिः) जिस में वसते हैं वह वस्ती (च) और भृत्य (मे) मेरा (कर्म) काम (च) और करने वाला (मे) मेरा (शक्तिः) सामर्थ्य (च) और प्रेम (मे) मेरा (अर्थः) सब पदार्थों को इकट्ठा करना (च) और इकट्ठा करने वाला (मे) मेरा (एमः) अच्छा यत्न (च) और बुद्धि (मे) मेरी (इत्या) वह रीति जिस से व्यवहारों को जानता हूं (च) और युक्ति तथा (मे) मेरी (गतिः) चाल (च) और उछलना आदि क्रिया ये सब पदार्थ (यज्ञेन) पुरुषार्थ के अनुष्ठान से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥१५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो मनुष्य समस्त अपना सामर्थ्य आदि सब के हित के लिये ही करते हैं वे ही प्रशंसा युक्त होते हैं ॥१५॥

अग्निश्चेत्यस्य देवा ऋषयः । अग्न्यादिविद्याविदात्मा देवता । निचृदनिशक्वरी छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्निश्च मऽइन्द्रश्च मे सोमश्च मऽइन्द्रश्च मे सविता च मऽइन्द्रश्च मे सरस्वती च मऽइन्द्रश्च मे पूषा च मऽइन्द्रश्च मे बृहस्पतिश्च मऽइन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१६॥

पदार्थः—(मे) मेरा (अग्निः) प्रसिद्ध सूर्यरूप अग्नि (च) और पृथिवी पर मिलने वाला भौतिक (मे) मेरा (इन्द्रः) बिजुलीरूप अग्नि (च) तथा पवन (मे) मेरा (सोमः) शान्तिगुण वाला पदार्थ वा मनुष्य (च) और वर्षा मेघ जल (मे) मेरा (इन्द्रः) अन्याय को दूर करने वाला सभापति (च) और सभासद् (मे)मेरा (सविता) ऐश्वर्य्ययुक्त काम (च) और इस के साधन (मे) मेरा (इन्द्रः) समस्त अविद्या का नाश करने वाला अध्यापक (च) और विद्यार्थी (मे) मेरा (सरस्वती) प्रशंसित बोध वा शिक्षा से भरी हुई वाणी (च) और सत्य बोलने वाला (मे) मेरा (इन्द्रः) विद्यार्थी की जड़ता का विनाश करने वाला उपदेशक (च) और सुनने वाले (मे) मेरा (पूषा) पुष्टि करने वाला (च) और योग्य आहार-भोजन, विहार-सोना आदि (मे) मेरा जो (इन्द्रः) पुष्टि करने की विद्या में रम रहा है वह (च) और वैद्य (मे) मेरा (बृहस्पतिः) बड़े बड़े व्यवहारों की रक्षा करने वाला (च) और राजा तथा (मे) मेरा (इन्द्रः) समस्त ऐश्वर्य का बढ़ाने वाला उद्योगी (च) और सेनापति ये सब (यज्ञेन) विद्या और ऐश्वर्य की उन्नति करने से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥१६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को अच्छे विचार से अपने सब

पदार्थ उत्तमों का पालन करने और दुष्टों को शिक्षा देने के लिये निरन्तर युक्त करने चाहियें ॥१६॥

मित्रश्चेत्यस्य देवा ऋषयः । मित्रैश्वर्य्यसहित आत्मा देवता । स्वराट् शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

मित्रश्च म॒ऽइन्द्रश्च मे॒ वरुणश्च म॒ऽइन्द्रश्च मे धाता च॑ म॒ऽइन्द्रश्च मे॒ त्वष्टा च म॒ऽइन्द्रश्च मे॒ म॒रुतश्च म॒ऽइन्द्रश्च मे॒ विश्वे च मे दे॒वाऽइन्द्रश्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥१७॥

पदार्थः—(मे) मेरा (मित्रः) प्राण अर्थात् हृदय में रहने वाला पवन (च) और समान नाभिस्थ पवन (मे) मेरा (इन्द्रः) बिजुलीरूप अग्नि (च) और तेज (मे) मेरा (वरुणः) उदान अर्थात् कण्ठ में रहने वाला पवन (च) और समस्त शरीर में विचरने हारा पवन (मे) मेरा (इन्द्रः) सूर्य (च) और धारणाकर्षण (मे) मेरा (धाता) धारण करने हारा (च) और धीरज (मे) मेरा (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य का प्राप्त कराने वाला (च) और न्याययुक्त पुरुषार्थ (मे) मेरा (त्वष्टा) पदार्थों को छिन्न भिन्न करने वाला अग्नि (च) और शिल्प अर्थात् कारीगरी (मे) मेरा (इन्द्रः) शत्रुओं को विदीर्ण करने हारा राजा (च) तथा कारीगरी (मे) मेरे (मरुतः) इस ब्रह्माण्ड में रहने वाले और पवन (च) और शरीर के धातु (मे) मेरी (इन्द्रः) सर्वत्र व्यापक बिजुली (च) और उस का काम (मे) मेरे (विश्वे) समस्त पदार्थ (च) और सर्वस्व (देवाः) उत्तम गुणयुक्त पृथिवी आदि (मे) मेरे लिये (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य का दाता (च) और उस का उपयोग ये सब (यज्ञेन) पवन की विद्या के विधान करने से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥१७॥

भावार्थः—मनुष्य प्राण और विजुली की विद्या को जान और इनकी सब जगह सब ओर से व्याप्ति को जानकर अपने बहुत [दीर्घ] जीवन को सिद्ध करें ॥१७॥

पृथिवी चेत्यस्य देवा ऋषयः । राज्यैश्वर्यादियुक्तात्मा देवता । भुरिक् शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पृ॒थि॒वी च॑ म॒ऽइन्द्रश्च मे॒ऽन्तरिक्षं च म॒ऽइन्द्रश्च मे॒ द्यौश्च म॒ऽइन्द्रश्च मे॒

समाश्च मऽइन्द्रश्च मे नक्षत्राणि च मऽइन्द्रश्च मे दिशश्च मऽइन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१८॥

पदार्थः—(मे) मेरी (पृथिवी) विस्तारयुक्त भूमि (च) और उसमें स्थित जो पदार्थ (मे) मेरी (इन्द्रः) बिजुलीरूप क्रिया (च) और बल देने वाली व्यायाम आदि क्रिया (मे) मेरा (अन्तरिक्षम्) विनाशरहित आकाश (च) और आकाश में ठहरे हुए सब पदार्थ (मे) मेरा (इन्द्रः) समस्त ऐश्वर्य का आधार (च) और उसका करना (मे) मेरी (द्यौः) प्रकाश के काम कराने वाली विद्या (च) और उस के सिद्ध करने वाले पदार्थ (मे) मेरा (इन्द्रः) सब पदार्थों को छिन्न भिन्न करने वाला सूर्य आदि (च) और छिन्न भिन्न करने योग्य पदार्थ (मे) मेरे (समाः) वर्ष (च) और क्षण, पल, विपल, घटी, मुहूर्त्त, दिन आदि (मे) मेरा (इन्द्रः) समय के ज्ञान का निमित्त (च) और गणित विद्या (मे) मेरे (नक्षत्राणि) नक्षत्र अर्थात् जो कारण रूप से स्थिर रहते किन्तु नष्ट नहीं होते वे लोक (च) और उन के साथ सम्बन्ध रखने वाले प्राणी आदि (मे) मेरी (इन्द्रः) लोक लोकान्तरों में स्थित होने वाली बिजुली (च) और बिजुली से संयोग करते हुए उन लोकों में रहने वाले पदार्थ (मे) मेरी (दिशः) पूर्व आदि दिशा (च) और उन में ठहरी हुई वस्तु तथा (मे) मेरा (इन्द्रः) दिशाओं के ज्ञान का देने वाला (च) और ध्रुव का तारा ये सब पदार्थ (यज्ञेन) पृथिवी और समय के विशेष ज्ञान देने वाले काम से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥१८॥

भावार्थः—मनुष्य लोग पृथिवी आदि पदार्थों और उन में ठहरी हुई बिजुली आदि को जबतक नहीं जानते तबतक ऐश्वर्य को नहीं प्राप्त होते ॥१८॥

अꣳशुश्चेत्यस्य देवा ऋषयः । पदार्थविदात्मा देवता । निचृदत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अꣳशुश्च मे रश्मिश्च मेऽदाभ्यश्च मेऽधिपतिश्च मऽउपाꣳशुश्च मेऽन्तर्यामश्च मऽऐन्द्रवायवश्च मे मैत्रावरुणश्च मऽआश्विनश्च मे प्रतिप्रस्थानश्च मे शुक्रश्च मे मन्थी च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१९॥

पदार्थः— (मे) मेरा (अंशुः) व्याप्ति वाला सूर्य (च) और उस का प्रताप (मे) मेरा (रश्मिः) भोजन करने का व्यवहार (च) और अनेक प्रकार का भोजन

(मे) मेरा (अदाभ्यः) विनाश रहित (च) और रक्षा करने वाला (मे) मेरा (अधिपतिः) स्वामी (च) और जिस में स्थिर हो वह स्थान (मे) मेरा (उपांशुः) मन में जप का करना (च) और एकान्त का विचार (मे) मेरा (अन्तर्यामः) मध्य में जाने वाला पवन (च) और बल (मे) मेरा (ऐन्द्रवायवः) बिजुली और पवन के साथ सम्बन्ध करने वाला काम (च) और जल (मे) मेरा (मैत्रावरुणः) प्राण और उदान के साथ चलने हारा वायु (च) और व्यान पवन (मे) मेरा (आश्विनः) सूर्य चन्द्रमा के बीच में रहने वाला तेज (च) और प्रभाव (मे) मेरा (प्रतिप्रस्थानः) चलने चलने के प्रति वर्त्ताव रखने वाला (च) भ्रमण (मे) मेरा (शुक्रः) शुद्धस्वरूप (च) और वीर्य करने वाला तथा (मे) मेरा (मन्थी) विलोने के स्वभाव वाला (च) और दूध वा काष्ठ आदि ये सब पदार्थ (यज्ञेन) अग्नि के उपयोग से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥१९॥

भावार्थः—जो मनुष्य सूर्यप्रकाशादिकों से भी उपकारों को लेवें तो विद्वान् होकर क्रिया की चतुराई को क्यों न पावें ॥१९॥

आग्रयणश्चेत्यस्य देवा ऋषयः। यज्ञानुष्ठानात्मा देवता। स्वराडतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आग्रयणश्चं मे वैश्वदेवश्चं मे ध्रुवश्चं मे वैश्वानरश्चं मऽऐन्द्राग्नश्चं मे महावैश्वदेवश्च मे मरुत्वतीयाश्च मे निष्कैवल्यश्च मे सावित्रश्चं मे सारस्वतश्चं मे पात्नीवतश्चं मे हारियोजनश्चं मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२०॥

पदार्थः—(मे) मेरा (आग्रयण) अगहन आदि महीनों में सिद्ध हुआ यज्ञ (च) और इस की सामग्री (मे) मेरा (वैश्वदेवः) समस्त विद्वानों से सम्बन्ध करने वाला विचार (च) और इसका फल (मे) मेरा (ध्रुवः) निश्चल व्यवहार (च) और इसके साधन (मे) मेरा (वैश्वानरः) सब मनुष्यों का सत्कार (च) तथा सत्कार करने वाला (मे)मेरा (ऐन्द्राग्नः) पवन और बिजुली से सिद्ध काम (च) और इस के साधन (मे) मेरा (महावैश्वदेवः) समस्त बड़े लोगों का यह व्यवहार (च) इन के साधन (मे) मेरे (मरुत्वतीयाः) पवनों का सम्बन्ध करने हारे व्यवहार (च) तथा इन का फल (मे) मेरा (निष्कैवल्यः) निरन्तर केवल सुख हो जिसमें वह काम (च) और इस के साधन (मे) मेरा (सावित्रः)सूर्य का यह प्रभाव (च) और इससे उपकार (मे) मेरा (सारस्वतः) वाणी-सम्बन्धी व्यवहार (च) और इनका फल (मे) मेरा

(पात्नीवत.) प्रशंसित यज्ञसम्बन्धिनी स्त्री वाले का काम (च) इस के साधन (मे) मेरा (हारियोजनः) घोड़ों को रथ में जोड़ने वाले का यह आरम्भ (च) इस की सामग्री (यज्ञेन) पदार्थों के मेल करने से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥२०॥

भावार्थः—जो मनुष्य कार्यकाल की क्रिया और विद्वानों के संग का आश्रय लेकर विवाहित स्त्री का नियम किये हों वे पदार्थविद्या को क्यों न जानें ॥२०॥

स्रुचश्चेत्यस्य देवा ऋषयः। यज्ञाङ्गवानात्मा देवता। विराड्धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स्रुचश्च मे चमसाश्च मे वायव्यानि च मे द्रोणकलशश्च मे ग्रावाणश्च मेऽधिषवणे च मे पूतभृच्च मऽआधवनीयश्च मे वेदिश्च मे बर्हिश्च मेऽवभृथश्च मे स्वगाकारश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२१॥

पदार्थः—(मे) मेरे (स्रुचः) स्रुवा आदि (च) और उनकी शुद्धि (मे) मेरे (चमसाः) यज्ञ वा पाक बनाने के पात्र (च) और उनके पदार्थ (मे)मेरे (वायव्यानि) पवनों में अच्छे पदार्थ (च) और पवनों की शुद्धि करने वाले काम (मे) मेरा (द्रोणकलशः) यज्ञ की क्रिया का कलश (च) और विशेष परिमाण (मे) मेरे (ग्रावाणः) शिलवट्टा आदि पत्थर (च) और उखली मूशल (मे) मेरे (अधिषवणे) सोमवल्ली आदि ओषधि जिनसे कूटी पीसी जावे वे साधन (च) और कूटना पीसना (मे) मेरा (पूतभृत्) पवित्रता जिससे मिलती हो वह सूप आदि (च) और बुहारी आदि (मे) मेरा (आधवनीयः) अच्छे प्रकार धोने आदि का पात्र (च) और नलिका आदि यन्त्र अर्थात् जिस नली नरकुल की चोगी आदि से तारागणों को देखते हैं वह (मे) मेरी (वेदिः) होम करने की वेदि (च) और चौकोना आदि (मे) मेरा (बर्हि) समीप में वृद्धि देने वाला वा कुशसमूह (च) और जो यज्ञ-समय के योग्य पदार्थ (मे) मेरा (अवभृथः) यज्ञसमाप्ति समय का स्नान (च) और चन्दन आदि का अनुलेपन करना तथा (मे) मेरा (स्वगाकारः) जिससे अपने पदार्थों को प्राप्त होते हैं उस कर्म को जो करे वह (च) और पदार्थ को पवित्र करना ये सब (यज्ञेन) होम करने की क्रिया से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥२१॥

भावार्थः—वे ही मनुष्य यज्ञ करने को समर्थ होते हैं जो साधन उप-साधनरूप यज्ञ के सिद्ध करने की सामग्री को पूरी करते हैं ॥२१॥

अग्निश्चेत्यस्य देवा ऋषयः । यज्ञवानात्मा देवता । भुरिक् शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्निश्च मे घर्मश्च मेऽर्कश्च मे सूर्यश्च मे प्राणश्च मेऽश्वमेधश्च मे पृथिवी च मेऽदितिश्च मे दितिश्च मे द्यौश्च मेऽङ्गुलयः शक्वरयो दिशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२२॥

पदार्थः—(मे) मेरे (अग्निः) आग (च) और उसका काम में लाना (मे) मेरा (घर्मः) घाम (च) और शान्ति (मे) मेरी (अर्कः) सत्कार करने योग्य विशेष सामग्री (च) और उसकी शुद्धि करने का व्यवहार (मे) मेरा (सूर्यः) सूर्य (च) और जीविका का हेतु (मे) मेरा (प्राणः) जीवन का हेतु वायु (च) और बाहर का पवन (मे) मेरे (अश्वमेधः) राज्यदेश (च) और राजनीति (मे) मेरी (पृथिवी) भूमि (च) और इस में स्थिर सब पदार्थ (मे) मेरी (अदितिः) अखण्ड नीति (च) और इन्द्रियों को वश में रखना (मे) मेरी (दितिः) खण्डित सामग्री (च) और अनित्य जीवन वा शरीर आदि (मे) मेरे (द्यौः) धर्म का प्रकाश (च) और दिन रात (मे) मेरा (अंगुलयः) अंगुली (शक्वरयः) शक्ति (दिशः) पूर्व उत्तर पश्चिम दक्षिण दिशा (च) और ईशान वायव्य नैर्ऋत्य आग्नेय उपदिशा ये सब (यज्ञेन) मेल करने योग्य परमात्मा से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥२२॥

भावार्थः—जो प्राणियों के सुख के लिये यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं, वे महाशय होते हैं ऐसा जानना चाहिये ॥२२॥

व्रतं चेत्यस्य देवा ऋषयः । कालविद्याविदात्मा देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

व्रतं च मऽऋतवश्च मे तपश्च मे संवत्सरश्च मेऽहोरात्रेऽऊर्वष्ठीवे बृहद्रथन्तरे च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२३॥

पदार्थः—(मे) मेरे (व्रतम्) सत्य आचरण के नियम की पालना (च) और सत्य कहना और सत्य उपदेश (मे) मेरे (ऋतवः) वसन्त आदि ऋतु (च) और उत्तरायण दक्षिणायन (मे) मेरा (तपः) प्राणायाम तथा धर्म का आचरण (च) शीत उष्ण आदि का सहना (मे) मेरा (संवत्सरः) साल (च) तथा कल्प महाकल्प आदि (मे) मेरे (अहोरात्रे) दिन रात (ऊर्वष्ठीवे) जङ्घा और घोंटू (बृहद्रथन्तरे) बड़ा

पदार्थ अत्यन्त सुन्दर रथ तथा (च) घोड़े वा बैल (यज्ञेन) धर्मज्ञान आदि के आचरण और कालचक्र के भ्रमण के अनुष्ठान से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥२३॥

भावार्थः—जो पुरुष नियम किये हुए समय में काम और निरन्तर धर्म का आचरण करते हैं वे चाही हुई सिद्धि को पाते हैं ॥२३॥

एका चेत्यस्य देवा ऋषयः। विषमाङ्कगणितविद्याविदात्मा देवता। पूर्वार्द्धस्य संकृतिश्छन्दः। एकविꣳशतिश्चेत्युत्तरस्य विराट् संकृतिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब गणितविद्या के मूल का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च मऽएकादश च मऽएकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च मे नवदश च मऽएकविꣳशतिश्च मऽएकविꣳशतिश्च मे त्रयोविꣳशतिश्च मे त्रयोविꣳशतिश्च मे पञ्चविꣳशतिश्च मे पञ्चविꣳशतिश्च मे सप्तविꣳशतिश्च मे सप्तविꣳशतिश्च मे नवविꣳशतिश्च मे नवविꣳशतिश्च मऽएकत्रिꣳशच्च मऽएकत्रिꣳशच्च मे त्रयस्त्रिꣳशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२४॥

पदार्थः—(यज्ञेन) मेल करने अर्थात् योग करने से (मे) मेरी (एका) एक संख्या (च) और दो (मे) मेरी (तिस्रः) तीन संख्या (च) फिर (मे) मेरी (तिस्रः) तीन (च) और दो (मे) मेरी (पंच) पांच (च) फिर (मे) मेरी (पंच) पांच (च) और दो (मे) मेरी (सप्त) सात (च) फिर (मे) मेरी (सप्त) सात (च) और दो (मे) मेरी (नव) नौ (च) फिर (मे) मेरी (नव) नौ (च) और दो (मे) मेरी (एकादश) ग्यारह (च) फिर (मे) मेरी (एकादश) ग्यारह (च) और दो (मे) मेरी (त्रयोदश) तेरह (च) फिर (मे) मेरी (त्रयोदश) तेरह (च) और दो (मे) मेरी (पंचदश) पन्द्रह (च) फिर (मे) मेरी (पंचदश) पन्द्रह (च) और दो (मे) मेरी (सप्तदश) सत्रह (च) फिर (मे) मेरी (सप्तदश) सत्रह (च) और दो (मे) मेरी (नवदश) उन्नीस (च) फिर (मे) मेरी (नवदश) उन्नीस (च) और दो (मे) मेरी (एकविंशतिः) इक्कीस (च) फिर (मे) मेरी (एकविंशतिः) इक्कीस (च) और दो

(मे) मेरी (त्रयोविंशतिः) तेईस (च) फिर (मे) मेरी (त्रयोविंशति) तेईस (च) और दो (मे) मेरी (पंचविंशतिः) पच्चीस (च) फिर (मे) मेरी (पंचविंशतिः) पच्चीस (च) और दो (मे) मेरी (सप्तविंशतिः) सत्ताईस (च) फिर (मे) मेरी (सप्तविंशति) सत्ताईस (च) और दो (मे) मेरी (नवविंशतिः) उनतीस (च) फिर (मे) मेरी (नवविंशतिः) उनतीस (च) और दो (मे) मेरी (एकत्रिंशत्) इकतीस (च) फिर (मे) मेरी (एकत्रिंशत्) इकतीस (च) और दो (मे) मेरी (त्रयस्त्रिंशत्) तेंतीस (च) और आगे भी इसी प्रकार संख्या (कल्पन्ताम्) समर्थ हों। यह एक योगपक्ष है ॥२४॥

अब दूसरा पक्ष—

(यज्ञेन) योग से विपरीत दानरूप वियोगमार्ग से विपरीत संगृहीत (च) और संख्या दो के वियोग अर्थात् अन्तर से (मे) मेरी (कल्पन्ताम्) समर्थ हों वैसे (मे) मेरी (त्रयस्त्रिंशत्) तेंतीस संख्या (च) दो के देने अर्थात् वियोग से (मे) मेरी (एकत्रिंशम्) इकतीस (च) फिर (मे) मेरी (एकत्रिंशत्) इकतीस (च) दो के वियोग से (मे) मेरी (नवविंशतिः) उनतीस (च) फिर (मे) मेरी (नवविंशतिः) उनतीस (च) दो के वियोग से (मे) मेरी (सप्तविंशतिः) सत्ताईस समर्थ हों, ऐसे सब संख्याओं में जानना चाहिये ॥ यह वियोग से दूसरा पक्ष है ॥२४॥

अब तीसरा पक्ष —

(मे) मेरी (एका) एक संख्या (च) और (मे) मेरी (तिस्रः) तीन संख्या (च) परस्पर गुणी, (मे) मेरी (तिस्रः) तीन संख्या (च) और (मे) मेरी (पंच) पांच संख्या (च) परस्पर गुणित, (मे) मेरी (पंच) पांच संख्या (च) और (मे) मेरी (सप्त) सात संख्या (च) परस्पर गुणित, (मे) मेरी (सप्त) सात संख्या (च) और (मे) मेरी (नव) नव संख्या (च) परस्पर गुणित, (मे) मेरी (नव) नव संख्या (च) और (मे) मेरी (एकादश) ग्यारह संख्या (च) परस्पर गुणित, इस प्रकार अन्य संख्या (यज्ञेन) उक्त वार वार योग अर्थात् गुणन से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥ यह गुणन विषय से तीसरा पक्ष है ॥२४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में (यज्ञेन) इस पद से जोड़ना घटाना लिये जाते हैं, क्योंकि जो यज धातु का सङ्गतिकरण अर्थ है उससे सङ्ग कर देना अर्थात् किसी संख्या को किसी संख्या से योग कर देना वा यज धातु का जो दान अर्थ है उससे ऐसी सम्भावना करनी चाहिये कि किसी संख्या का दान अर्थात् व्यय करना निकाल डालना यही अन्तर है। इस प्रकार गुणन, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल, भागजाति, प्रभागजाति, आदि जो गणित के भेद हैं वे योग और अन्तर से ही उत्पन्न होते हैं, क्योंकि किसी संख्या को

किसी संख्या से एक वार मिला दे तो योग कहाता है, जैसे २+४=६ अर्थात् २ में ४ जोड़े तो ६ होते हैं। ऐसे यदि अनेक वार संख्या में संख्या जोड़े तो उसको गुणन कहते हैं, जैसे २×४=८ अर्थात् को ४ वार अलग अलग जोड़े वा २ को ४ चार से गुणे तो ८ होते हैं। ऐसे ही ४ को ४ चौगुना कर दिया तो ४ का वर्ग १६ हुए, ऐसे ही अन्तर से भाग, वर्गमूल, घनमूल आदि निष्पन्न होते हैं। अर्थात् किसी संख्या में किसी संख्या को जोड़ देवे वा किसी प्रकारान्तर से घटा देवे, इसी योग वा वियोग से बुद्धिमानों को यथामति कल्पना से व्यक्त अव्यक्त अङ्कगणित और बीजगणित आदि समस्त गणितक्रिया उत्पन्न होती हैं, इस कारण इस मन्त्र में दो के योग से उत्तरोत्तर संख्या वा दो के वियोग से पूर्व पूर्व संख्या अच्छे प्रकार दिखलाई है वैसे गुणन का भी कुछ प्रकार दिखलाया है, यह जानना चाहिये ॥२४॥

चतस्रश्चेत्यस्य पूर्वदेवा ऋषयः। समाङ्कगणितविद्याविदात्मा देवता। पङ्क्तिश्छन्दः। चतुर्विंशतिश्चेत्युत्तरस्याकृतिश्छन्दः। पंचमः स्वरः॥

अब सब अङ्कों के गणित विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

चत॑स्रश्च मे॒ऽष्टौ च॑ मे॒ऽष्टौ च॑ मे॒ द्वाद॑श च मे॒ द्वाद॑श च मे॒ षोड॑श च मे॒ षोड॑श च मे विꣳश॒तिश्च॑ मे विꣳश॒तिश्च॑ मे॒ चतु॑र्विꣳशतिश्च मे॒ चतु॑र्विꣳशतिश्च मे॒ऽष्टावि॑ꣳशतिश्च मे॒ऽष्टावि॑ꣳशतिश्च मे॒ द्वात्रि॑ꣳशच्च मे॒ द्वात्रि॑ꣳशच्च मे॒ षट्त्रि॑ꣳशच्च मे॒ षट्त्रि॑ꣳशच्च मे॒ चत्वारि॒ꣳशच्च मे चत्वारि॒ꣳशच्च मे॒ चतु॑श्चत्वारिꣳशच्च मे॒ चतु॑श्चत्वारिꣳशच्च मे॒ऽष्टाच॑त्वारिꣳशच्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥२५॥

पदार्थः—(यज्ञेन) मेल करने अर्थात् योग करने में (मे) मेरी (चतस्रः) चार संख्या (च) और चारि संख्या (मे) मेरी (अष्टौ) आठ संख्या (च) फिर (मे) मेरी (अष्टौ) आठ संख्या (च) और चारि (मे) मेरी (द्वादश) वारह (च) फिर (मे) मेरी (द्वादश) वारह (च) और चारि (मे) मेरी (षोडश) सोलह (च) फिर (मे) मेरी (षोडश) सोलह (च) और चारि (मे) मेरी (विंशतिः) बीस (च) फिर (मे) मेरी (विंशतिः) बीस (च) और चारि (मे) मेरी (चतुर्विंशतिः) चौबीस (च) फिर (मे) मेरी (चतुर्विंशतिः) चौबीस (च) और चारि (मे) मेरी (अष्टाविंशतिः) अट्ठा-

ईस (च) फिर (मे) मेरी (अष्टाविंशतिः) अट्ठाईस (च) और चारि (मे) मेरी (द्वात्रिंशत्) बत्तीस (च) फिर (मे) मेरी (द्वात्रिंशत्) बत्तीस(च) और चारि(मे) मेरी (षट्त्रिंशत्) छत्तीस (च) फिर (मे) मेरी (षट्त्रिंशत्) छत्तीस (च) और चारि (मे) मेरी (चत्वारिंशत्) चालीस (च) फिर (मे) मेरी (चत्वारिंशत्) चालीस (च) और चारि (मे) मेरी (चतुश्चत्वारिंशत्) चवालीस (च) फिर (मे) मेरी (चतुश्चत्वारिंशत्) चवालीस (च) और चारि (मे) मेरी (अष्टाचत्वारिंशत्) अड़तालीस (च) और आगे भी उक्तविधि से संख्या (कल्पन्ताम्) समर्थ हों, यह प्रथम योगपक्ष है ॥२५॥

अब दूसरा पक्ष—

(यज्ञेन) योग से विपरीत दानरूप वियोगमार्ग से विपरीत संगृहीत (च) और संख्या चारि के वियोग से जैसे (मे) मेरी (कल्पन्ताम्) समर्थ हों वैसे (मे) मेरी (अष्टाचत्वारिंशत्) अड़तालीस (च) चारि के वियोग से (मे) मेरी (चतुश्चत्वारिंशत्) चवालीस (च) फिर (मे) मेरी (चतुश्चत्वारिंशत्) चवालीस (च) चारि के वियोग से (मे) मेरी (चत्वारिंशत्) चालीस (च) फिर (मे) मेरी (चत्वारिंशत्) चालीस (च) चारि के वियोग से (मे) मेरी (षट्त्रिंशत्) छत्तीस (च) फिर (मे) मेरी (षट्त्रिंशत्) छत्तीस (च) चारि के वियोग से (मे) मेरी (द्वात्रिंशत्) बत्तीस इस प्रकार सब संख्याओं में जानना चाहिये। यह वियोग से दूसरा पक्ष है ॥२५॥

अब तीसरा पक्ष—

(मे) मेरी (चतस्रः) चारि संख्या (च) और (मे) मेरी (अष्टौ) आठ (च) परस्पर गुणी, (मे) मेरी (अष्टौ) आठ (च) और (मे) मेरी (द्वादश) बारह (च) परस्पर गुणी, (मे) मेरी (द्वादश) बारह (च) और (मे) मेरी (षोडश) सोलह (च) परस्पर गुणी, (मे) मेरी (षोडश) सोलह (च) और (मे) मेरी (विंशतिः) बीस (च) परस्पर गुणी, इस प्रकार संख्या आगे भी (यज्ञेन) उक्त बार बार गुणन से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों। यह गुणन विषय से तीसरा पक्ष है ॥२५॥

भावार्थः—पिछले मन्त्र में एक संख्या को लेकर दो के योग वियोग से विषम संख्या कहीं। इससे पूर्व मन्त्र में क्रम से आई हुई एक दो और तीन संख्या को छोड़ इस मन्त्र में चारि के योग वा वियोग से चौथी संख्या को लेकर सम संख्या प्रतिपादन की। इन दोनों मन्त्रों से विषम संख्या और सम संख्याओं का भेद जान के बुद्धि के अनुकूल कल्पना से सब गणित विद्या जाननी चाहिये ॥२५॥

ऋयविदचेत्यस्य देवा ऋषयः। पशुविद्याविदात्मा देवता। ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अब पशुपालन विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्र्यविश्च मे त्र्यवी च मे दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे पञ्चाविश्च मे पञ्चावी च मे त्रिवत्सश्च मे त्रिवत्सा च मे तुर्यवाट् च मे तुर्यौही च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२६॥

पदार्थः—(मे) मेरा (त्र्यविः) तीन प्रकार का भेड़ों वाला (च) और इस से भिन्न सामग्री (मे) मेरी (त्र्यवी) तीन प्रकार की भेड़ों वाली स्त्री (च) और इन से उत्पन्न हुए घृतादि (मे) मेरे (दित्यवाट्) खण्डित क्रियाओं में हुए विघ्नों को पृथक् करने वाला (च) और इस के सम्बन्धी (मे) मेरी (दित्यौही) उन्हीं क्रियाओं को प्राप्त कराने हारी गाय आदि (च) और उसकी रक्षा (मे) मेरी (पंचाविः) पांच प्रकार की भेड़ों वाला (च) और उस के घृतादि (मे) मेरी (पंचावी) पांच प्रकार की भेड़ों वाली स्त्री (च) और इस के उद्योग आदि (मे) मेरा (त्रिवत्सः) तीन बछड़े वाला (च) और उस के बछड़े आदि (मे) मेरी (त्रिवत्सा) तीन बछड़े वाली गौ (च) और उस के घृतादि (मे) मेरा (तुर्य्यवाट्) चौथे वर्ष को प्राप्त हुआ बैल आदि (च) और इस को काम में लाना (मे) मेरी (तुर्यौही) चौथे वर्ष को प्राप्त गौ (च) और इसकी शिक्षा ये सब पदार्थ (यज्ञेन) पशुओं के पालन के विधान से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥२६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में गौ छाग और भेड़ के उपलक्षण से अन्य पशुओं का भी ग्रहण होता है। जो मनुष्य पशुओं को वढ़ाते हैं वे इनके रसों से आढ्य होते हैं ॥२६॥

पष्ठवाट् चेत्यस्य देवा ऋषयः। पशुपालनविद्याविदात्मा देवता। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पष्ठवाट् च मे पष्ठौही च म उक्षा च मे वशा च म ऋषभश्च मे वेहच्च मेऽनड्वाँश्च मे धेनुश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२७॥

पदार्थः—(मे) मेरे (पष्ठवाट्) पीठ से भार उठाने हारे हाथी ऊंट आदि (च) और उन के सम्बन्धी (मे) मेरी (पष्ठौही) पीठ से भार उठाने हारी घोड़ी ऊंटनी आदि (च) और उन से उठाये गये पदार्थ (मे) मेरा (उक्षा) वीर्य सेचन में समर्थ वृषभ (च) और वीर्य धारण करने वाली गौ आदि (मे) मेरी (वशा) वन्ध्या गौ (च) और वीर्यहीन बैल (मे) मेरा (ऋषभः) समर्थ बैल (च) और बलवती गौ

(मे) मेरी (वेहत्) गर्भ गिराने वाली गाय (च) और सामर्थ्यहीन गौ (मे) मेरा (अनड्वान्) हल और गाड़ी आदि को चलाने में समर्थ बैल (च) और गाड़ीवान आदि (मे) मेरी (धेनुः) नवीन व्यानी दूध देने हारी गाय (च) और उस को दोहने वाला जन ये सब (यज्ञेन) पशुशिक्षारूप यज्ञकर्म से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥२७॥

भावार्थः—जो पशुओं को अच्छी शिक्षा देके कार्यों में संयुक्त करते हैं वे अपने प्रयोजन सिद्ध करके सुखी होते हैं ॥२७॥

वाजायेत्यस्य देवा ऋषयः । संग्रामादिविद्वात्मा देवता । पूर्वस्य निचृदतिशक्वरी छन्दः । पंचमः स्वरः । इयमित्युत्तरस्यार्ची बृहती छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब कैसी वाणी का स्वीकार करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहापिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहाऽहर्पतये स्वाहाह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनꣳशिनाय स्वाहा विनꣳशिनऽआन्त्यायनाय स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा । इयं ते राण्मित्राय यन्तासि यमनऽऊर्जे त्वा वृष्ट्यै त्वा प्रजानां त्वाधिपत्याय ॥२८॥

पदार्थः—जिस विद्वान् में (वाजाय) संग्राम के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (प्रसवाय) ऐश्वर्य वा सन्तानोत्पत्ति के अर्थ (स्वाहा) पुरुषार्थ बलयुक्त सत्य वाणी (अपिजाय) ग्रहण करने के अर्थ (स्वाहा) उत्तम क्रिया (क्रतवे) विज्ञान के लिये (स्वाहा) योगाभ्यासादि क्रिया (वसवे) निवास के लिये (स्वाहा) धनप्राप्ति कराने हारी क्रिया (अहर्पतये) दिनों के पालन करने हारे के लिये (स्वाहा) कालविज्ञान की देने हारी क्रिया (अह्ने) दिन के लिये वा (मुग्धाय) मूढ़जन के लिये (स्वाहा) वैराग्ययुक्त क्रिया (मुग्धाय) मोह को प्राप्त हुए के लिये (वैनंशिनाय) विनाशी अर्थात् विनष्ट होनेहारे को जो बोध उस के लिये (स्वाहा) सत्य हितोपदेश करने वाली वाणी (विनंशिने) विनाश होने वाले स्वभाव के अर्थ वा (आन्त्यायनाय) अन्त में घर जिस का हो उस के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी (आन्त्याय) नीच वर्ण में उत्पन्न हुए (भौवनाय) भुवन सम्बन्धी के लिये (स्वाहा) उत्तम उपदेश (भुवनस्य) जिस संसार में सब प्राणीमात्र होते हैं उस के (पतये) स्वामी के अर्थ (स्वाहा) उत्तम वाणी (अधिपतये) पालने वालों को अधिष्ठाता के अर्थ (स्वाहा) राजव्यवहार को जनाने हारी क्रिया तथा (प्रजापतये) प्रजा के पालन करने वाले के अर्थ (स्वाहा) राजधर्म प्रकाश करने हारी नीति स्वीकार की जाती है तथा जिस (ते) आप की (इयम्) यह

(राट्) विशेष प्रकाशमान नीति है और जो (यमन:) अच्छे गुणों के ग्रहणकर्त्ता आप (मित्राय) मित्र के लिये (यन्ता) उचित सत्कार करने हारे (असि) हैं उन (त्वा) आप को (ऊर्ज्जे) पराक्रम के लिये (त्वा) आप को (वृष्ट्यै) वर्षा के लिये और (त्वा) आप को (प्रजानाम्) पालन के योग्य प्रजाओं के (आधिपत्याय) अधिपति होने के लिये हम स्वीकार करते हैं ॥२८॥

भावार्थः—जो मनुष्य धर्मयुक्त वाणी और क्रिया से सहित वर्त्तमान रहते हैं वे सुखों को प्राप्त होते हैं और जो जितेन्द्रिय होते हैं वे राज्य के पालन में समर्थ होते हैं ॥२८॥

आयुर्यज्ञेनेत्यस्य देवा ऋषयः। यज्ञानुष्ठातात्मा देवता। पूर्वस्य स्वराड्विकृतिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। स्तोमश्चेत्यस्य ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अब क्या क्या यज्ञ की सिद्धि के लिये युक्त करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

आयुर्यज्ञेन॑ कल्पतां प्राणो य॒ज्ञेन॑ कल्पतां चक्षु॒र्यज्ञेन॑ कल्पता॒ᳫं श्रोत्रं॑ य॒ज्ञेन॑ कल्पतां वाग्य॒ज्ञेन॑ कल्पतां मनो॑ य॒ज्ञेन॑ कल्पतामा॒त्मा य॒ज्ञेन॑ कल्पतां ब्र॒ह्मा य॒ज्ञेन॑ कल्पतां ज्योति॒र्यज्ञेन॑ कल्पता॒ᳫं स्व॒र्यज्ञेन॑ कल्पतां पृ॒ष्ठं य॒ज्ञेन॑ कल्पतां य॒ज्ञो य॒ज्ञेन॑ कल्पताम्। स्तोम॑श्च यजु॑श्च॒ऽऋक् च॒ साम॑ च बृ॒हच्च॑ रथन्त॒रं च। स्व॑र्देवाऽअगन्मा॒मृता॑ऽअभूम प्र॒जाप॑तेः प्र॒जाऽअ॑भूम॒ वेट् स्वाहा॑ ॥२९॥

पदार्थः—हे मनुष्य! तेरे प्रजाजनों के स्वामी होने के लिये (आयुः) जिस से जीवन होता है वह आयुर्दा (यज्ञेन) परमेश्वर और अच्छे महात्माओं के सत्कार से (कल्पताम्) समर्थ हो (प्राणः) जीवन का हेतु प्राण वायु (यज्ञेन) सङ्ग करने से (कल्पताम्) समर्थ होवे (चक्षुः) नेत्र (यज्ञेन) परमेश्वर वा विद्वान् के सत्कार से (कल्पताम्) समर्थ हों (श्रोत्रम्) कान (यज्ञेन) ईश्वर वा विद्वान् के सत्कार से (कल्पताम्) समर्थ हों (वाक्) वाणी (यज्ञेन) ईश्वर० से (कल्पताम्) समर्थ हों (मनः) संकल्पविकल्प करने वाला मन (यज्ञेन) ईश्वर० से (कल्पताम्) समर्थ हो (आत्मा) जो कि शरीर इन्द्रिय तथा प्राण आदि पवनों को व्याप्त होता है वह आत्मा (यज्ञेन) ईश्वर० से (कल्पताम्) समर्थ हो (ब्रह्मा) चारों वेदों का जानने वाला विद्वान् (यज्ञेन) ईश्वर वा वि० से (कल्पताम्) समर्थ हो (ज्योतिः) न्याय का प्रकाश (यज्ञेन) ईश्वर वा वि० से (कल्पताम्) समर्थ हो (स्वः) सुख (यज्ञेन) ईश्वर वा वि० से (कल्पताम्) समर्थ

हो (पृष्ठम्) जानने की इच्छा (यज्ञेन) पठनरूप यज्ञ से (कल्पताम्) समर्थ हो (यज्ञः) पाने योग्य धर्म (यज्ञेन) सत्यव्यवहार से (कल्पताम्) समर्थ हो (स्तोमः) जिस में स्तुति होती है वह अथर्ववेद (च) और (यजुः) जिससे जीव सत्कार आदि करता है वह यजुर्वेद (च) और (ऋक्) स्तुति का साधक ऋग्वेद (च) और (साम) सामवेद (च) और (बृहत्) अत्यन्त बड़ा वस्तु (च) और सामवेद का (रथन्तरम्) रथन्तर नाम वाला स्तोत्र (च) भी ईश्वर वा विद्वान् के सत्कार से समर्थ हो। हे (देवाः) विद्वानो! जैसे हम लोग (अमृताः) जन्म मरण के दुःख से रहित हुए (स्वः) मोक्ष सुख को (अगन्म) प्राप्त हों वा (प्रजापतेः) समस्त संसार के स्वामी जगदीश्वर की (प्रजाः) पालने योग्य प्रजा (अभूम) हों तथा (वेट्) उत्तम क्रिया और (स्वाहा) सत्यवाणी से युक्त (अभूम) हों वैसे तुम भी होओ ॥२९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यहां पूर्व मन्त्र से (ते, आधिपत्याय) इन दो पदों की अनुवृत्ति आती है। मनुष्य धार्मिक विद्वान् जनों के अनुकरण से यज्ञ के लिये सब समर्पण कर परमेश्वर और राजा को न्यायाधीश मान के न्यायपरायण होकर निरन्तर सुखी हों ॥२९॥

वाजस्येत्यस्य देवा ऋषयः। राज्यवानात्मा देवता। स्वराड् जगती छन्दः।
निषादः स्वरः॥

फिर मनुष्यों को कैसे किस की उपासना करनी चाहिये, यह विषय
अगले मन्त्र में कहा है॥

वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिन्नाम वचसा करामहे। यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यान्नो देवः सविता धर्म्मं साविषत् ॥३०॥

पदार्थः—(वाजस्य) विविध प्रकार के उत्तम अन्न के (प्रसवे) उत्पन्न करने में (नु) ही वर्त्तमान हम लोग (मातरम्) मान्य की हेतु (अदितिम्) कारणरूप से नित्य (महीम्) भूमि को (नाम) प्रसिद्धि में (वचसा) वाणी से (करामहे) युक्त कर (यस्याम्) जिस पृथिवी में (इदम्) यह प्रत्यक्ष (विश्वम्) समस्त (भुवनम्) स्थूल जगत् (आविवेश) व्याप्त है (तस्याम्) उस पृथिवी में (सविता) समस्त ऐश्वर्य युक्त (देवः) शुद्धस्वरूप ईश्वर (नः) हमारी (धर्म) उत्तम कर्मों की धारणा को (साविषत्) उत्पन्न करे ॥३०॥

भावार्थः—जिस जगदीश्वर ने सब का आधार जो भूमि बनाई और वह सब को धारण करती है वही ईश्वर सब मनुष्यों को उपासना करने योग्य है ॥३०॥

विश्वेऽअद्येत्यस्य देवा ऋषयः । विश्वेदेवा देवताः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में प्राणियों के कर्त्तव्य विषय को कहा है ॥

विश्वेऽअद्य मरुतो विश्वंऽऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः ।
विश्वे नो देवाऽअवसागमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजोऽअस्मे ॥३१॥

पदार्थः—इस पृथिवी में (अद्य) आज (विश्वे) सब (मरुतः) पवन (विश्वे) सब प्राणी और पदार्थ (विश्वे) सब (समिद्धाः) अच्छे प्रकार लपट दे रहे हुए (अग्नयः) अग्नियों के समान मनुष्य लोग (नः) हमारी (ऊती) रक्षा आदि के साथ (भवन्तु) प्रसिद्ध हों (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (अवसा) पालन आदि से सहित (आ, गमन्तु) आवें अर्थात् आकर हम लोगों की रक्षा करें जिस से (अस्मे) हम लोगों के लिये (विश्वम्) समस्त (द्रविणम्) धन और (वाजः) अन्न (अस्तु) प्राप्त हो ॥३१॥

भावार्थः—जो मनुष्य आलस्य को छोड़ विद्वानों का सङ्ग कर इस पृथिवी में प्रयत्न करते हैं वे समस्त अति उत्तम पदार्थों को पाते हैं ॥३१॥

वाजो न इत्यस्य देवा ऋषयः । अन्नवान् विद्वान् देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब विद्वान् और प्रजाजन कैसे वर्त्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

वाजो नः सप्त प्रदिशश्चतस्रो वा परावतः ।
वाजो नो विश्वैर्देवैर्धनसाताविहावतु ॥३२॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! जैसे (विश्वैः) सब (देवैः) विद्वानों के साथ (वाजः) अन्नादि (इह) इस लोक में (धनसातौ) धन के विभाग करने में (नः) हम लोगों को (अवतु) प्राप्त होवे (वा) अथवा (नः) हम लोगों का (वाजः) शास्त्रज्ञान और वेग (सप्त) सात (प्रदिशः) जिन का अच्छे प्रकार उपदेश किया जाय उन लोक लोकान्तरों वा (परावतः) दूर दूर जो (चतस्रः) पूर्व आदि चार दिशा उन को पाले अर्थात् उक्त सब पदार्थों की रक्षा करे वैसे इन की रक्षा तुम भी निरन्तर किया करो ॥३२॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि बहुत अन्न से अपनी रक्षा तथा इस पृथिवी पर सब दिशाओं में अच्छी कीर्त्ति हो इस प्रकार सत्पुरुषों का सन्मान किया करें ॥३२॥

वाजो न इत्यस्य देवा ऋषयः । अन्नपतिर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या क्या चाहने योग्य है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

वाजो नोऽअद्य प्र सुवाति दानं वाजो देवाँ२ऽऋतुभिः कल्पयाति ।
वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वाऽआशा वाजपतिर्जयेयम् ॥३३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (अद्य) आज जो (वाजः) अन्न (नः) हमारे लिये (दानम्) दान दूसरे को देना (प्रसुवाति) चितावे और (वाजः) वेगरूप गुण (ऋतुभिः) वसन्त आदि ऋतुओं से (देवान्) विद्वानों वा अच्छे अच्छे गुणों को (कल्पयाति) प्राप्त होने में समर्थ करे वा जो (हि) ही (वाजः) अन्न (सर्ववीरम्) सब वीर जिस से हों ऐसे अति बलवान् (मा) मुझ को (जजान) प्रसिद्ध करे उस सब से ही मैं (वाजपतिः) अन्नादि का अधिष्ठाता होकर (विश्वाः) समस्त (आशाः) दिशाओं को (जयेयम्) जीतूं वैसे तुम भी जीता करो ॥३३॥

भावार्थः—जितने इस पृथिवी पर पदार्थ हैं उन सभों में अन्न ही अत्यन्त प्रशंसा के योग्य है जिससे अन्नवान् पुरुष सब जगह विजय को प्राप्त होता है ॥३३॥

वाजः पुरस्तादित्यस्य देवा ऋषयः । अन्नपतिर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अन्न ही सब की रक्षा करता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

वाजः पुरस्तादुत मध्यतो नो वाजो देवान् हविषा वर्द्धयाति ।
वाजो हि मा सर्ववीरं चकार सर्वा आशा वाजपतिर्भवेयम् ॥३४॥

पदार्थः—जो (वाजः) अन्न (हविषा) देने लेने और खाने से (पुरस्तात्) पहिले (उत) और (मध्यतः) बीच में (नः) हम लोगों को (वर्द्धयाति) बढ़ावे तथा जो (वाजः) अन्न (देवान्) दिव्यगुणों को बढ़ावे जो (हि) ही (वाजः) अन्न (मा) मुझ को (सर्ववीरम्) जिससे समस्त वीर पुरुष होते हैं ऐसा (चकार) करता है उससे मैं (वाजपतिः) अन्न आदि पदार्थों की रक्षा करने वाला (भवेयम्) होऊं और (सर्वाः) सब (आशाः) दिशाओं को जीतूं ॥३४॥

भावार्थः—अन्न ही सब प्राणियों को बढ़ाता है अन्न से ही प्राणी सब दिशाओं में भ्रमते हैं अन्न के विना कुछ भी नहीं कर सकते ॥३४॥

सं मा सृजामीत्यस्य देवा ऋषयः । रसविद्याविद्विद्वान् देवता । स्वराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सं मा सृजामि पयसा पृथिव्याः सं मा सृजाम्यद्भिरोषधीभिः ।
सोऽहं वाजंᳫं सनेयमग्ने ॥३५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) रस विद्या के जानने हारे विद्वान् ! जो मैं (पृथिव्याः) पृथिवी के (पयसा) रस के साथ (मा) अपने को (सं, सृजामि) मिलाता हूं वा (अद्भिः) अच्छे शुद्ध जल और (ओषधीभिः) सोमलता आदि ओषधियों के साथ (मा) अपने को (संसृजामि) मिलाता हूं (सः) सो (अहम्) मैं (वाजम्) अन्न का (सनेयम्) सेवन करूं इसी प्रकार तू भी आचरण कर ॥३५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे मैं वैद्यक शास्त्र की रीति से अन्न और पान आदि को करके सुखी होता हूं वैसे तुम लोग भी प्रयत्न किया करो ॥३५॥

पयः पृथिव्यामित्यस्य देवा ऋषयः। रसविद्विद्वान् देवता। आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य जल के रस को जानने वाले हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

पयः पृथिव्यां पयऽओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः ।
पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥३६॥

पदार्थः—हे विद्वान् ! तू (पृथिव्याम्) पृथिवी पर जिस (पयः) जल वा दुग्ध आदि के रस (ओषधीषु) ओषधियों में जिस (पयः) रस (दिवि) शुद्ध निर्मल प्रकाश वा (अन्तरिक्षे) सूर्य और पृथिवी के बीच में जिस (पयः) रस को (धाः) धारण करता है उस सब (पयः) जल वा दुग्ध के रस को मैं भी धारण करूं जो (प्रदिशः) दिशा विदिशा (पयस्वतीः) बहुत रस वाली तेरे लिये (सन्तु) हों वे (मह्यम्) मेरे लिये भी हों ॥३६॥

भावार्थः—जो मनुष्य जल आदि पदार्थों से युक्त पृथिवी आदि से उत्तम अन्न और रसों का संग्रह करके खाते और पीते हैं वे नीरोग होकर सब दिशाओं में कार्य को सिद्धि कर तथा जा आ सकते और बहुत आयु वाले होते हैं ॥३६॥

देवस्य त्वेत्यस्य देवा ऋषयः। सम्राड् राजा देवता। आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः ॥

फिर मनुष्य कैसे को राजा मानें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवस्यं त्वा सवितुः प्रंसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रेणाग्नेः साम्राज्येनाभिषिञ्चामि ॥३७॥

पदार्थः—हे विद्वान् राजन् ! जैसे मैं (त्वा) आप को (सवितुः) सकल ऐश्वर्य की प्राप्ति कराने हारा जो (देवस्य) आप ही प्रकाश को प्राप्त परमेश्वर उसके (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए जगत् में (अश्विनोः) सूर्य और चन्द्रमा के प्रताप और शीतलपन के समान (बाहुभ्याम्) भुजाओं से (पूष्णः) पुष्टि करने वाले प्राण के धारण और खींचने के समान (हस्ताभ्याम्) हाथों से (सरस्वत्यै) विज्ञान वाली (वाचः) वाणी के (यन्तुः) नियम करने वाले (अग्नेः) बिजुली आदि अग्नि की (यन्त्रेण) कारीगरी से उत्पन्न किये हुए (साम्राज्येन) सब भूमि के राजपन से (अभिषिंचामि) अभिषेक करता हूँ अर्थात् अधिकार देता हूं वैसे आप सुख से मेरा अभिषेक करें ॥३७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि समस्त विद्या के जानने हारे होके सूर्य आदि के गुण कर्म सदृश स्वभाव वाले पुरुष को राजा मानें ॥३७॥

ऋताषाडित्यस्य देवा ऋषयः । ऋतुविद्याविद्विद्वान् देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर राजा क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम ।
स नऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥३८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (ऋताषाट्) सत्य व्यवहार को सहने वाला (ऋतधामा) जिसके ठहरने के लिये ठीक ठीक स्थान है वह (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण करने हारा (अग्निः) आग के समान है वह (तस्य) उस की (ओषधयः) ओषधि (अप्सरसः) जो कि जलों में दौड़ती हैं वे (मुदः) जिन में आनन्द होता है ऐसे (नाम) नाम वाली हैं (सः) वह (नः) हम लोगों के (इदम्) इस (ब्रह्म) ब्रह्म को जानने वालों के कुल और (क्षत्रम्) राज्य वा क्षत्रियों के कुल की (पातु) रक्षा करे (तस्मै) उस के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी (वाट्) जिससे कि व्यवहारों को यथायोग्य वर्त्ताव में लाता है और (ताभ्यः) उक्त उन ओषधियों के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया हो ॥३८॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्नि के समान दुष्ट शत्रुओं के कुल को दुःखरूपी अग्नि में जलाने वाला और ओषधियों के समान आनन्द का करने वाला हो वही समस्त राज्य की रक्षा कर सकता है ॥३८॥

संꣳहित इत्यस्य देवा ऋषयः। सूर्यो देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः।
धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सꣳहितो विश्वसामा सूर्यौ गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरसं आयुवो नाम। स नं इदं ब्रह्म क्षत्रम्पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा॥३९॥

पदार्थः—हे विद्वन्! आप जो (संहितः) सब मूर्तिमान् वस्तु वा सत्पुरुष के साथ मिला हुआ (सूर्यः) सूर्य (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण करने वाला है (तस्य) उस की (मरीचयः) किरणें (अप्सरसः) जो अन्तरिक्ष में जाती हैं वे (आयुवः) सब ओर से संयोग और वियोग करने वाली (नाम) प्रसिद्ध हैं अर्थात् जल आदि पदार्थों का संयोग करती और छोड़ती हैं (ताभ्यः) उन अन्तरिक्ष में जाने आने वाली किरणों के लिये (विश्वसामा) जिसके समीप सामवेद विद्यमान वह आप (स्वाहा) उत्तम क्रिया से कार्यसिद्धि करो जिससे वे यथायोग्य काम में आवें जो आप (तस्मै) उस सूर्य के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया को अच्छे प्रकार युक्त करते हो (सः) वह आप (नः) हमारे (इदम्) इस (ब्रह्म) विद्वानों और (क्षत्रम्) शूरवीरों के कुल तथा (वाट्) कामों के निर्वाह करने की (पातु) रक्षा करो॥३९॥

भावार्थः—मनुष्य सूर्य की किरणों का युक्ति के साथ सेवन कर विद्या और शूरवीरता को बढ़ाके अपने प्रयोजन को सिद्ध करें॥३९॥

सुषुम्ण इत्यस्य देवा ऋषयः। चन्द्रमा देवता। निचृदार्षी जगती छन्दः।
निषादः स्वरः॥

फिर मनुष्यों को चन्द्र आदि लोकों से उपकार लेना चाहिये
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सुषुम्णः सूर्य्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम। स नंऽइदं ब्रह्म क्षत्रम्पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा॥४०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जो (सूर्य्यरश्मिः) सूर्य की किरणों वाला (सुषुम्णः) जिससे उत्तम सुख होता (गन्धर्वः) और जो सूर्य की किरणों को धारण किये है वह (चन्द्रमाः) सब को आनन्दयुक्त करने वाला चन्द्रलोक है (तस्य) उस के जो (नक्षत्राणि) अश्विनी आदि नक्षत्र और (अप्सरसः) आकाश में विद्यमान किरणें (भेकुरयः)

प्रकाश को करने वाली (नाम) प्रसिद्ध हैं वे चन्द्र की अप्सरा हैं (सः) वह जैसे (नः) हम लोगों के (इदम्) इस (ब्रह्म) पढ़ाने वाले ब्राह्मण और (क्षत्रम्) दुष्टों के नाश करने हारे क्षत्रियकुल की (पातु) रक्षा करे (तस्मै) उक्त उस प्रकार के चन्द्रलोक के लिये (वाट्) कार्यनिर्वाहपूर्वक (स्वाहा) उत्तम क्रिया और (ताभ्यः) उन किरणों के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया तुम लोगों को प्रयुक्त करनी चाहिये ॥४०॥

भावार्थः—मनुष्यों को चन्द्र आदि लोकों से भी उनकी विद्या से सुख सिद्ध करना चाहिये ॥४०॥

इषिर इत्यस्य देवा ऋषयः । वातो देवता । ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को पवन आदि से उपकार लेने चाहियें यह
विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापोऽअप्सरसऽऊर्जो नाम ।
स नऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥४१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (इषिरः) जिससे इच्छा करते (विश्वव्यचाः) वा जिसकी सब संसार में व्याप्ति है वह (गन्धर्वः) पृथिवी और किरणों को धारण करता (वातः) सब जगह भ्रमण करने वाला पवन है (तस्य) उस के जो (आपः) जल और प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान आदि भाग हैं वे (अप्सरसः) अन्तरिक्ष जल में जाने आने वाले और (ऊर्जः) बल पराक्रम के देने वाले (नाम) प्रसिद्ध हैं जैसे (सः) वह (नः) हम लोगों के लिये (इदम्) इस (ब्रह्म) सत्य के उपदेश से सब की वृद्धि करने वाले ब्राह्मणकुल तथा (क्षत्रम्) विद्या के बढ़ाने वाले राजकुल की (पातु) रक्षा करें वैसे तुम लोग भी आचरण करो (तस्मै) और उक्त पवन के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया की (वाट्) प्राप्ति तथा (ताभ्यः) उन जल आदि के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया वा उत्तम वाणी को युक्त करो ॥४१॥

भावार्थः—शरीर में जितनी चेष्टा और बल पराक्रम उत्पन्न होते हैं वे सब पवन से होते हैं और पवन ही प्राणरूप और जल गन्धर्व अर्थात् सब को धारण करने वाले हैं यह मनुष्यों को जानना चाहिये ॥४१॥

भुज्युरित्यस्य देवा ऋषयः । यज्ञो देवता । आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

मनुष्य लोग यज्ञ का अनुष्ठान करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणाऽप्सरसं स्तावा नाम स नऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥४२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (भुज्युः) सुखों के भोगने और (सुपर्णः) उत्तम उत्तम पालना का हेतु (गन्धर्वः) वाणी को धारण करने वाला (यज्ञः) सङ्गति करने योग्य यज्ञकर्म हैं (तस्य) उस की (दक्षिणाः) जो सुपात्र अच्छे अच्छे धर्मात्मा विद्वानों को दक्षिणा दी जाती हैं वे (अप्सरसः) प्राणों में पहुंचने वाली (स्तावाः) जिन की प्रशंसा की जाती है ऐसी (नाम) प्रसिद्ध हैं (सः) वह जैसे (नः) हमारे लिये (इदम्) इस (ब्रह्म) विद्वान् ब्राह्मण और (क्षत्रम्) चक्रवर्ती राजा की (पातु) रक्षा करे वैसा तुम लोग भी अनुष्ठान करो (तस्मै) उस के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया की (वाट्) प्राप्ति तथा (ताभ्यः) उक्त दक्षिणाओं के लिये (स्वाहा) उत्तम रीति से उत्तम क्रिया को संयुक्त करो ॥४२॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्निहोत्र आदि यज्ञों को प्रतिदिन करते हैं वे समस्त संसार के सुखों को बढ़ाते हैं, यह जानना चाहिये ॥४२॥

प्रजापतिरित्यस्य देवा ऋषयः । विश्वकर्मा देवता । विराडार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्य कैसे हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्यऽऋक्सामान्यप्सरसऽएष्टयो नाम । स नऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥४३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम जो (विश्वकर्मा) समस्त कामों का हेतु (प्रजापतिः) और जो प्रजा का पालने वाला स्वामी मनुष्य है (तस्य) उस के (गन्धर्वः) जिस से वाणी आदि को धारण करता है (मनः) ज्ञान की सिद्धि करने हारा मन (ऋक्सामानि) ऋग्वेद और सामवेद के मन्त्र (अप्सरसः) हृदयाकाश में व्याप्त प्राण आदि पदार्थों में जाती हुई क्रिया (एष्टयः) जिन से विद्वानों का सत्कार सत्य का सङ्ग और विद्या का दान होता है ये सब (नाम) प्रसिद्ध हैं जैसे (सः) वह (नः) हम लोगों के लिये (इदम्) इस (ब्रह्म) वेद और (क्षत्रम्) धनुर्वेद की (पातु) रक्षा करे वैसे (तस्मै) उस के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी (वाट्) धर्म की प्राप्ति और (ताभ्यः) उन उक्त पदार्थों के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया से उपकार को करो ॥४३॥

भावार्थः—जो मनुष्य पुरुषार्थी विचारशील वेदविद्या के जाननेवाले होते हैं वे ही संसार के भूषण होते हैं ॥४३॥

स न इत्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतिर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स नौ भुवनस्य पते प्रजापते यस्यं तऽउपरिं गृहा यस्यं वेह ।
अस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय महिं शर्मं यच्छ स्वाहा ॥४४॥

पदार्थः—हे (भुवनस्य) घर के (पते) स्वामी (प्रजापते) प्रजा की रक्षा करने वाले पुरुष ! (इह) इस संसार में (यस्य) जिस (ते) तेरे (उपरि) अति उच्चता को देने हारे उत्तम व्यवहार में (गृहाः) पदार्थों के ग्रहण करने हारे गृहस्थ मनुष्य आदि (वा) वा (यस्य) जिस की सब उत्तम क्रिया हैं (सः) सो तू (नः) हमारे (अस्मै) इस (ब्रह्मणे) वेद और ईश्वर के जानने हारे मनुष्य तथा (अस्मै) इस (क्षत्राय) राजधर्म में निरन्तर स्थित क्षत्रिय के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया से (महि) बहुत (शर्म) घर और सुख को (यच्छ) दे ॥४४॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों और क्षत्रियों के कुल को नित्य बढ़ाते हैं वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं ॥४४॥

समुद्रोऽसीत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृदष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

समुद्रोऽसि नभस्वानार्द्रदानुः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा । मारुतोऽसि मरुतां गणः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा । अवस्यूरसि दुवस्वाञ्छम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ॥४५॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जो तू (नभस्वान्) जिस के समीप बहुत जल (आर्द्रदानुः) और शीतल गुणों का देने वाला (समुद्रः) और जिस में उलट पलट जल गिरते उस समुद्र के समान (असि) है वह (स्वाहा) सत्य क्रिया से (शम्भूः) उत्तम सुख और (मयोभूः) सामान्य सुख उत्पन्न कराने वाला होता हुआ (मा) मुझ को (अभि, वाहि) सब ओर से प्राप्त हो; जो तू (मारुतः) पवनों का सम्बन्धी जानने हारा (मरुताम्) विद्वानों के (गणः) समूह के समान (असि) है वह (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (शम्भूः) विशेष परजन्म के सुख और (मयोभूः) इस जन्म में सामान्य सुख का उत्पन्न करने वाला होता हुआ (मा) मुझ को (अभि, वाहि) सब ओर से प्राप्त हो, जो तू (दुवस्वान्) प्रशंसित सत्कार से युक्त (अवस्यूः) अपनी रक्षा चाहने वाले के समान (असि) है वह (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (शम्भूः) विशेष सुख और (मयोभूः) सामान्य अपने सुख का उत्पन्न करने हारा होता हुआ (मा) मुझ को (अभि, वाहि) सब ओर से प्राप्त हो ॥४५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य समुद्र के समान गम्भीर और रत्नों से युक्त कोमल, पवन के तुल्य बलवान् विद्वानों के तुल्य परोपकारी और अपने आत्मा के तुल्य सब की रक्षा करते हैं वे ही सब के कल्याण और सुखों को कर सकते हैं ॥४५॥

यास्त इत्यस्य शुनःशेप ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर विद्वान् को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

यास्तेऽअग्ने सूर्ये रुचो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः।

ताभिर्नोऽअद्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि ॥४६॥

पदार्थः—हे (अग्ने) परमेश्वर वा विद्वान्! (याः) जो (सूर्ये) सूर्य वा प्राण में (रुचः) दीप्ति वा प्रीति हैं और जो (रश्मिभिः) अपनी किरणों से (दिवम्) प्रकाश को (आतन्वन्ति) सब ओर से फैलाती हैं (ताभिः) उन (सर्वाभिः) सब (ते) अपनी दीप्ति वा प्रीतियों से (अद्य) आज (नः) हम लोगों को संयुक्त करो और (रुचे) प्रीति करने हारे (जनाय) मनुष्य के अर्थ (नः) हम लोगों को (कृधि) नियत करो ॥४६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे परमेश्वर सूर्य आदि प्रकाश करने हारे लोकों का भी प्रकाश करने हारा है वैसे सब शास्त्र को यथावत् कहने वाला विद्वान् विद्वानों को भी विद्या देने हारा होता है जैसे ईश्वर इस संसार में सब प्राणियों की सत्य में रुचि और असत्य में अरुचि को उत्पन्न करता है वैसा विद्वान् भी आचरण करे॥४६॥

या व इत्यस्य शुनःशेप ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

या वो देवाः सूर्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः।

इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचं नो धत्त बृहस्पते ॥४७॥

पदार्थः—हे (बृहस्पते) बड़े बड़े पदार्थों की पालना करने हारे ईश्वर और (देवाः) विद्वान् मनुष्यो! (याः) जो (वः) तुम सबों की (सूर्ये) चराचर में व्याप्त परमेश्वर में अर्थात् ईश्वर की अपने में और तुम विद्वानों की ईश्वर में (रुचः) प्रीति हैं वा (याः) जो इन (गोषु) किरण इन्द्रिय और दुग्ध देने वाली गौ और (अश्वेषु) अग्नि तथा घोड़ा आदि में (रुचः) प्रीति हैं वा जो इन में (इन्द्राग्नी) प्रसिद्ध बिजुली

और आग वर्त्तमान हैं वे भी (ताभिः) उन (सर्वाभिः) सब प्रीतियों से (नः) हम लोगों में (रुचम्) प्रीति को (धत्त) स्थापन करो ॥४७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे परमेश्वर गौ आदि की रक्षा और पदार्थविद्या में सब मनुष्यों को प्रेरणा देता है वैसे ही विद्वान् लोग भी आचरण किया करें ॥४७॥

रुचं न इत्यस्य शुनःशेप ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः॥ गान्धारः। स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचꣳ राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥४८॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा विद्वन्! आप (नः) हम लोगों के (ब्राह्मणेषु) ब्रह्मवेत्ता विद्वानों में (रुचा) प्रीति से (रुचम्) प्रीति को (धेहि) धरो स्थापन करो (नः) हम लोगों के (राजसु) राजपूत क्षत्रियों में प्रीति से (रुचम्) प्रीति को (कृधि) करो (विश्येषु) प्रजाजनों में हुए वैश्यों में तथा (शूद्रेषु) शूद्रों में प्रीति से (रुचम्) प्रीति को और (मयि) मुझ में भी प्रीति से (रुचम्) प्रीति को (धेहि) स्थापना करो ॥४८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे परमेश्वर पक्षपात को छोड़ ब्राह्मणादि वर्णों में समान प्रीति करता है वैसे ही विद्वान लोग भी समान प्रीति करें जो ईश्वर के गुण कर्म और स्वभाव से विरुद्ध वर्त्तमान हैं वे सब नीच और तिरस्कार करने योग्य होते हैं ॥४८॥

तत्त्वेत्यस्य शुनःशेप ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्यों को विद्वानों के तुल्य आचरण करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशꣳस मा न आयुः प्रमोषीः ॥४९॥

पदार्थः—हे (उरुशंस) बहुतों की प्रशंसा करने हारे (वरुण) श्रेष्ठ विद्वान्! (ब्रह्मणा) वेद से (वन्दमानः) स्तुति करता हुआ (यजमानः) यज्ञ करने वाला (अहेडमानः) सत्कार को प्राप्त हुआ पुरुष (हविर्भिः) होम करने के योग्य अच्छे बनाये हुए

पदार्थों से जो (आ, शास्ते) आशा करता है (तत्) उस को मैं (यामि) प्राप्त होऊं तथा जिस उत्तम (आयुः) सौ वर्ष की आयुर्दा को (त्वा) तेरा आश्रय कर के मैं प्राप्त होऊं (तत्) उस को तू भी प्राप्त हो तू (इह) इस संसार में उक्त आयुर्दा को (बोधि) जान और तू (नः) हमारी उस आयुर्दा को (मा, प्र, मोषीः) मत चोर ॥४९॥

भावार्थः—सत्यवादी शास्त्रवेत्ता सज्जन विद्वान् जो चाहे वही चाहना मनुष्यों को भी करनी चाहिये किसी को किन्हीं विद्वानों का अनादर न करना चाहिये तथा स्त्री पुरुषों को ब्रह्मचर्यत्याग, अयोग्य आहार, विहार, व्यभिचार, अत्यन्त विषयासक्ति आदि खोटे कामों से आयुर्दा का नाश कभी न करना चाहिये ॥४९॥

स्वर्णं घर्म इत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । सूर्यो देवता । भुरिगार्च्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

कैसे जन पदार्थों को शुद्ध करते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

स्वर्ण घर्मः स्वाहा स्वर्णार्कः स्वाहा स्वर्ण शुक्रः स्वाहा स्वर्ण ज्योतिः स्वाहा स्वर्ण सूर्यःस्वाहा ॥५०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (स्वाहा) सत्य क्रिया से (स्वः) सुख के (न) समान (घर्मः) प्रताप (स्वाहा) सत्य क्रिया से (स्वः) सुख के (न) तुल्य (अर्कः) अग्नि (स्वाहा) सत्य क्रिया से (स्वः) सुख के (न) सदृश (शुक्रः) वायु (स्वाहा) सत्य क्रिया से (स्वः) सुख के (न) समान (ज्योतिः) बिजुली की चमक (स्वाहा) सत्य क्रिया से (स्वः) सुख के (न) समान (सूर्यः) सूर्य हो वैसे तुम भी आचरण करो ॥५०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। यज्ञ के करने वाले मनुष्य सुगन्धियुक्त आदि पदार्थों के होम से समस्त वायु आदि पदार्थों को शुद्ध कर सकते हैं जिससे रोग क्षय होकर सब की बहुत आयुर्दा हो ॥५०॥

अग्निमित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कैसे नर सुखी होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्निं युनज्मि शवसा घृतेन दिव्यꣳ सुपर्णं वयसा बृहन्तम् । तेन वयं गमेम ब्रध्नस्य विष्टपꣳ स्वो रुहाणा अधि नाकमुत्तमम् ॥५१॥

पदार्थः—मैं (वयसा) आयु की व्याप्ति से (बृहन्तम्) बड़े हुए (दिव्यम्) शुद्ध गुणों में प्रसिद्ध होने वाले (सुपर्णम्) अच्छे प्रकार रक्षा करने में परिपूर्ण (अग्निम्) अग्नि को (शवसा) बलदायक (घृतेन) घी आदि सुगन्धित पदार्थों से (युनज्मि) युक्त

करता हूं (तेन) उस से (स्वः) सुख को (रुहाणाः) आरूढ़ हुए (वयम्) हम लोग (ब्रध्नस्य) बड़े से बड़े के (विष्टपम्) उस व्यवहार को कि जिस से सामान्य और विशेष भाव से प्रवेश हुए जीवों की पालना की जाती है और (उत्तमम्) उत्तम (नाकम्) दुःखरहित सुखरूप स्थान है उस को (अधि, गमेम) प्राप्त होते हैं ॥५१॥

भावार्थः—जो मनुष्य अच्छे बनाये हुए सुगन्धि आदि से युक्त पदार्थों को आग में छोड़ कर पवन आदि की शुद्धि से सब प्राणियों को सुख देते हैं वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं ॥५१॥

इमावित्यस्य शुनःशेप ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इमौ ते प॒क्षाव॒जरौ॑ पत॒त्रिणौ॒ याभ्या॒ꣳ रक्षा॑ꣳस्यप॒हꣳस्य॑ग्ने। ताभ्यां॑ पतेम सु॒कृता॑मु लो॒कं यत्र॒ऽऋष॑यो ज॒ग्मुः प्र॑थम॒जाः पु॑रा॒णाः ॥५२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान प्रताप वाले विद्वान्! (ते) आप कि जो (इमौ) ये (पतत्रिणौ) उच्चश्रेणी को प्राप्त हुए (अजरौ) कभी नष्ट नहीं होते अजर अमर (पक्षौ) कार्य्यकारण रूप समीप के पदार्थ हैं (याभ्याम्) जिन से आप (रक्षांसि) दुष्ट प्राणियों वा दोषों को (अपहंसि) दूर बहा देते हैं (ताभ्याम्) उन से (उ) ही उस (सुकृताम्) सुकृती सज्जनों के (लोकम्) देखने योग्य आनन्द को हम लोग (पतेम) पहुंचें (यत्र) जिस आनन्द में (प्रथमजाः) सर्वव्याप्त परमेश्वर में प्रसिद्ध वा अतिविस्तारयुक्त वेद में प्रसिद्ध अर्थात् उस के जानने से कीर्त्ति पाये हुए (पुराणाः) पहिले पढ़ने के समय नवीन (ऋषयः) वेदार्थ जानने वाले विद्वान् ऋषिजन (जग्मुः) पहुंचे ॥५२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे शास्त्रवेत्ता विद्वान् जन दोषों को खोके धर्म आदि अच्छे गुणों का ग्रहण कर ब्रह्म को प्राप्त होके आनन्दयुक्त होते हैं वैसे उन को पाकर मनुष्यों को भी सुखी होना चाहिये ॥५२॥

इन्दुरित्यस्य शुनःशेप ऋषिः। इन्दुर्देवता। आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

विद्वानों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्दु॒र्दक्षः॑ श्ये॒नऽऋ॒तावा॒ हिर॑ण्यपक्षः शकु॒नो भु॑र॒ण्युः। म॒हान्त्स॒धस्थे॑ ध्रु॒वऽआ निष॑त्तो॒ नम॑स्तेऽअस्तु॒ मा मा॑ हिꣳसीः ॥५३॥

पदार्थः—हे विद्वन् सभापति ! जो आप (इन्दुः) चन्द्रमा के समान शीतल स्वभाव सहित (दक्षः) बल चतुराई युक्त (श्येनः) बाज के समान पराक्रमी (ऋतावा) जिन का सत्य का सम्बन्ध विद्यमान है (हिरण्यपक्षः) और सुवर्ण के लोभ वाले (शकुनः) शक्तिमान् (भुरण्युः) सब के पालने हारे (महान्) सब से बड़े (सधस्थे) दूसरे के साथ स्थान में (आ, निषत्तः) निरन्तर स्थित (ध्रुवः) निश्चल हुए (मा) मुझे (मां) मत (हिंसीः) मारो उन (ते) आप के लिये हमारा (नमः) सत्कार (अस्तु) प्राप्त हो ५३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। इस संसार में विद्वान् जन स्थिर होकर सब विद्यार्थियों को अच्छी शिक्षा से युक्त करें जिस से वे हिंसा करने हारे न होवें ॥५३॥

दिव इत्यस्य गालव ऋषिः। इन्दुर्देवता। भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

कैसा मनुष्य दीर्घजीवी होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

दि॒वो मू॒र्द्धासि॑ पृथि॒व्या नाभि॒रूर्ग॒पामोष॑धीनाम्।
वि॒श्वायुः॒ शर्म॑ स॒प्रथा॒ नम॑स्प॒थे ॥५४॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जो आप (दिवः) प्रकाश अर्थात् प्रताप के (मूर्द्धा) शिर के समान (पृथिव्याः) पृथिवी के (नाभिः) बन्धन के समान (अपाम्) जलों और (ओषधीनाम्) ओषधियों के (ऊर्क्) रस के समान (विश्वायुः) पूर्ण सौ वर्ष जीने वाले और (सप्रथाः) कीर्तियुक्त (असि) हैं सो आप (पथे) सन्मार्ग के लिये (नमः) अन्न (शर्म) शरण और सुख को प्राप्त होओ ॥५४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य न्यायवान् सहनशील औषध का सेवन करने और आहार विहार से यथायोग्य रहने वाला इन्द्रियों को वश में रखता है वह सौ वर्ष की अवस्था वाला होता है ॥५४॥

विश्वस्येत्यस्य गालव ऋषिः। इन्दुर्देवता। आर्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्व॑स्य मू॒र्द्धन्नधि॑ तिष्ठसि श्रि॒तः स॑मु॒द्रे ते॒ हृद॑यम॒प्स्वायु॑र॒पो द॑त्तोद॒धिं भि॑न्त। दि॒वस्प॒र्जन्या॑द॒न्तरि॑क्षात्पृथि॒व्यास्ततो॑ नो॒ वृष्ट्या॑व ॥५५॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जो आप (विश्वस्य) सब संसार के (मूर्द्धन्) शिर पर

(श्रितः) विराजमान सूर्य के समान (अधि, तिष्ठसि) अधिकार पाये हुए हैं जिन (ते) आप का (समुद्रे) अन्तरिक्ष के तुल्य व्यापक परमेश्वर में (हृदयम्) मन (अप्सु) प्राणों में (आयुः) जीवन है वह आप (अपः) प्राणों को (दत्त) देते हो (उदधिम्) समुद्र का (भिन्त) भेदन करते हो जिस से सूर्य (दिवः) प्रकाश (अन्तरिक्षात्) आकाश (पर्जन्यात्) मेघ और (पृथिव्याः) भूमि से (वृष्ट्या) वर्षा के योग से सब चराचर प्राणियों की रक्षा करता है (ततः) इस से अर्थात् सूर्य के तुल्य (नः) हम लोगों की (अव) रक्षा करो ।।५५।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सूर्य के समान सुख वर्षाने और उत्तम आचरणों के करने हारे हैं वे सब को सुखी कर सकते हैं ।।५५।।

इष्ट इत्यस्य गालव ऋषिः। यज्ञो देवता। आर्ष्युष्णिक् छन्द.। ऋषभः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

इ॒ष्टो य॒ज्ञो भृगु॑भिराशी॒र्दा वसु॑भिः।
तस्य॑ न इ॒ष्टस्य॑ प्री॒तस्य॒ द्रवि॑णे॒हाग॑मेः ।।५६।।

पदार्थः—हे विद्वन्! जो (भृगुभिः) परिपूर्ण विज्ञान वाले (वसुभिः) प्रथम कक्षा के विद्वानों ने (आशीर्दाः) इच्छासिद्धि को देने वाला (यज्ञः) यज्ञ (इष्टः) किया है (तस्य) उस (इष्टस्य) किये हुए (प्रीतस्य) मनोहर यज्ञ के सकाश से (इह) इस संसार में आप (नः) हम लोगों के (द्रविण) धन को (आ, गमेः) प्राप्त हूजिये ।।५६।।

भावार्थः—जो विद्वानों के तुल्य अच्छा यत्न करते हैं वे इस संसार में बहुत धन को प्राप्त होते हैं ।।५६।।

इष्ट इत्यस्य गालव ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी गायत्री छन्दः।
ऋषभः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

इ॒ष्टोऽअ॒ग्निराहु॑तः पिपर्त्तु न इ॒ष्टᳬ हविः। स्व॒गेदन्दे॒वेभ्यो॒ नमः॑ ।।५७।।

पदार्थः—(हविः) संस्कार किये पदार्थों से (आहुतः) अच्छे प्रकार तृप्त वा हवन किया (इष्टः) सत्कार किया वा आहुतियों से बढ़ाया हुआ (अग्निः) यह सभा आदि का अध्यक्ष विद्वान् वा अग्नि (नः) हमारे (इष्टम्) सुख वा सुख के साधनों को (पिपर्त्तु) पूरा करे वा हमारी रक्षा करे (इदम्) यह (स्वगा) अपने को प्राप्त होने वाला (नमः) अन्न वा सत्कार (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये हो ।।५७।।

भावार्थः—मनुष्य अग्नि में अच्छे संस्कार से बनाये हुए जिस पदार्थ

का होम करते हैं सो इस संसार में वहुत अन्न का उत्पन्न करने वाला होता है इस कारण उस से विद्वान् आदि सत्पुरुषों का सत्कार करना चाहिये ॥५७॥

यदेत्यस्य विश्वकर्म्मा ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अथ विद्वानों के विषय में सत्य का निर्णय यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

यदाकू॑तात्सम॒सुस्रो॑द्धृदो वा॒ मन॑सो वा॒ संभृ॑तं॒ चक्षु॑षो वा ।
तद॑नु॒प्रेत॑ सु॒कृता॑मु लो॒कं यत्र॒ऽऋष॑यो ज॒ग्मुः प्र॑थम॒जाः पु॑रा॒णाः ॥५८॥

पदार्थः—हे सत्य असत्य का ज्ञान चाहते हुए मनुष्यो ! तुम लोग (यत्) जो (आकूतात्) उत्साह (हृदः) आत्मा (वा) वा प्राण (मनसः) मन (वा) वा बुद्धि आदि तथा (चक्षुषः) नेत्रादि इन्द्रियों से उत्पन्न हुए प्रत्यक्षादि प्रमाणों से (वा) वा कान आदि इन्द्रियों से (संभृतम्) अच्छे प्रकार धारण किया अर्थात् निश्चय से ठीक जाना सुना देखा और अनुमान किया है (तत्) वह (समसुस्रोत्) अच्छे प्रकार प्राप्त हो इस कारण (प्रथमजाः) हम लोगों से पहिले उत्पन्न हुए (पुराणाः) हम से प्राचीन (ऋषयः) वेदविद्या के जानने वाले परमयोगी ऋषिजन (यत्र) जहां (जग्मुः) पहुंचें उस (सुकृताम्) सुकृति मोक्ष चाहते हुए सज्जनों के (उ) ही (लोकम्) प्रत्यक्ष सुख समूह वा मोक्षपद को (अनुप्रेत) अनुकूलता से पहुंचो ॥५८॥

भावार्थः—जब मनुष्य सत्य असत्य के निर्णय के जानने की चाहना करें तब जो जो ईश्वर के गुण कर्म और स्वभाव से तथा सृष्टिक्रम, प्रत्यक्ष आदि आठ प्रमाणों से अच्छे अच्छे सज्जनों के आचार से आत्मा और मन के अनुकूल हो वह वह सत्य उससे भिन्न और झूठ है यह निश्चय करें जो ऐसे परीक्षा करके धर्म का आचरण करते हैं वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं ॥५८॥

एतमित्यस्य विश्वकर्मा ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ए॒तꣳस॑धस्थ॒ परि॑ ते ददामि॒ यमा॒वहा॑च्छेव॒धिं जा॒तवे॑दाः ।
अ॒न्वा॒ग॒न्ता य॒ज्ञप॑ति॒र्वो॒ऽअत्र॒ तꣳ स्म॑ जानीत पर॒मे व्यो॑मन् ॥५९॥

पदार्थः—हे ईश्वर के ज्ञान चाहने वाले मनुष्यो और हे (सधस्थ) समान स्थान वाले सज्जन ! (जातवेदाः) जिसको ज्ञान प्राप्त है वह वेदार्थ को जानने

वाला (यज्ञपतिः) यज्ञ की पालना करने वाले के समान वर्त्तमान पुरुष (यम्) जिस (शेवधिम्) सुखनिधि परमेश्वर को (आवहात्) अच्छे प्रकार प्राप्त होवे (एतम्) इस को (अत्र) इस (परमे) परम उत्तम (व्योमन्) आकाश में व्याप्त परमात्मा को मैं (ते) तेरे लिये जैसे (परि, ददामि) सब प्रकार से देता हूं, उपदेश करता हूं (अन्वागन्ता) धर्म्म के अनुकूल चलने हारा मैं (वः) तुम सब के लिये जिस परमेश्वर का (स्म) उपदेश करूं (तम्) उस को तुम (जानीत) जानो ॥५९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य विद्वानों के अनुकूल आचरण करते हैं वे सर्वव्यापी परमेश्वर के पाने को योग्य होते हैं ॥५९॥

एतमित्यस्य विश्वकर्मर्षिः। प्रजापतिर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

एतं जानाथ परमे व्योमन् देवाः सधस्था विद रूपमस्य।
यदागच्छात् पथिभिर्देवयानैरिष्टापूर्त्ते कृणवाथाविरस्मै ॥६०॥

पदार्थ—हे (सधस्थाः) एकसाथ स्थान वाले (देवाः) विद्वानो ! तुम (परमे) परम उत्तम (व्योमन्) आकाश में व्याप्त (एतम्) इस परमात्मा को (जानाथ) जानो (अस्य) और इसके व्यापक (रूपम्) सत्य चैतन्यमात्र आनन्दमय स्वरूप को (विद) जानो (यत्) जिस सच्चिदानन्द-लक्षण परमेश्वर को (देवयानैः) धार्मिक विद्वानों के (पथिभिः) मार्गों से पुरुष (आगच्छात्) अच्छे प्रकार प्राप्त होवे (अस्मै) इस परमेश्वर के लिये (इष्टापूर्त्ते) वेदोक्त यज्ञादि कर्म और उस के साधक स्मार्त्त कर्म को (आविः) प्रकाशित (कृणवाथ) किया करो ॥६०॥

भावार्थः—सब मनुष्य विद्वानों के सङ्ग योगाभ्यास और धर्म के आचरण से परमेश्वर को अवश्य जानें ऐसा न करें तो यज्ञ आदि श्रौत स्मार्त्त कर्मों को नहीं सिद्ध करा सकें और न मुक्ति पा सकें ॥६०॥

उद्बुध्यस्वेत्यस्य गालव ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर वही विषय कहा जाता है ॥

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳसृजेथामयं च।
अस्मिन्त्सधस्थेऽअध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥६१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान ऋत्विक् पुरुष ! (त्वम्) तू (उद्, बुध्यस्व) उठ प्रबोध को प्राप्त हो (प्रति, जागृहि) यजमान को अविद्यारूप निद्रा से छुड़ा के विद्या में चेतन कर तू (च) और (अयम्) यह ब्रह्मविद्या का उपदेश करने हारा यजमान दोनों (इष्टापूर्त्ते) यज्ञसिद्धि कर्म और उसकी सामग्री को (संसृजेथाम्) उत्पन्न करो। हे (विश्वे) समग्र (देवाः) विद्वानो ! (च) और (यज-मानः) विद्या देने तथा यज्ञ करने हारे यजमान ! तुम सब (अस्मिन्) इस (सधस्थे) एक साथ के स्थान में (उत्तरस्मिन्) उत्तम आसन पर (अधि, सीदत) बैठो ॥६१॥

भावार्थः—जो चैतन्य और बुद्धिमान् विद्यार्थी हों वे पढ़ाने वालों को अच्छे प्रकार पढ़ाने चाहियें जो विद्या की इच्छा से पढ़ाने हारों के अनुकूल आचरण करने वाले हों और जो उनके अनुकूल पढ़ाने हारे हों वे परस्पर प्रीति से निरन्तर विद्याओं की बढ़ती करें और जो इन पढ़ने पढ़ाने हारों से पृथक् उत्तम विद्वान् हों वे इन विद्यार्थियों की सदा परीक्षा किया करें जिससे ये अध्यापक और विद्यार्थी लोग विद्याओं की बढ़ती करने में निरन्तर प्रयत्न किया करें वैसे ऋत्विज् यजमान और सभ्य परीक्षक विद्वान् लोग यज्ञ की उन्नति किया करें ॥६१॥

येनेत्यस्य देवश्रवदेववातावृषी । विश्वकर्माग्निर्वा देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम् ।
तेनेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥६२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) पढ़ने वा पढ़ाने वाले पुरुष ! तू (येन) जिस पढ़ने से (सहस्रम्) हजारों प्रकार के अतुल बोध को (सर्ववेदसम्) कि जिसमें सब वेद जाने जाते हैं उस को (वहसि) प्राप्त होता और (येन) जिस पढ़ाने से दूसरों को प्राप्त कराता है (तेन) उस से (इमम्) इस (यज्ञम्) पढ़ने पढ़ाने रूप यज्ञ को (नः) हम लोगों को (देवेषु) दिव्य गुण वा विद्वानों में (स्वर्गन्तवे) सुख के प्राप्त होने के लिये (नय) पहुंचा ॥६२॥

भावार्थः—जो धर्म के आचरण और निष्कपटता से विद्या देते और ग्रहण करते हैं वे ही सुख के भागी होते हैं ॥६२॥

प्रस्तरेणेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्रियायज्ञ कैसे सिद्ध करना चाहिये यह
विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रस्तरेण परिधिना स्रुचा वेद्या च बर्हिषा ।
ऋचेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥६३॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! आप (वेद्या) जिस में होम किया जाता है उस वेदी तथा (स्रुचा) होमने का साधन (बर्हिषा) उत्तम क्रिया (प्रस्तरेण) आसन (परिधिना) जो सब ओर धारण किया जाय उस यजुर्वेद (च) तथा (ऋचा) स्तुति वा ऋग्वेद आदि से (इमम्) इस पदार्थमय अर्थात जिस में उत्तम भोजनों के योग्य पदार्थ होमे जाते हैं उस (यज्ञम्) अग्निहोत्र आदि यज्ञ को (देवेषु) दिव्य पदार्थ वा विद्वानों में (गन्तवे) प्राप्त होने के लिये (स्वः) संसारसम्बन्धी सुख (नः) हम लोगों को (नय) पहुंचाओ ॥६३॥

भावार्थः—जो मनुष्य धर्म से पाये हुए पदार्थों तथा वेद की रीति से साङ्गोपाङ्ग यज्ञ को सिद्ध करते हैं वे सब प्राणियों के उपकारी होते हैं ॥६३॥

यद्दत्तमित्यस्य विश्वकर्मर्षिः । यज्ञो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यद्दत्तं यत्परादानं यत्पूर्तं याश्च दक्षिणाः ।
तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत् ॥६४॥

पदार्थः—हे गृहस्थ विद्वन् ! आपने (यत्) जो (दत्तम्) अच्छे धर्मात्माओं को दिया वा (यत्) जो (परादानम्) और से लिया वा (यत्) जो (पूर्त्तम्) पूर्ण सामग्री (याश्च) और जो कर्म के अनुसार (दक्षिणाः) दक्षिणा दी जाती है (तत्) उस सब को तथा (स्वः) इन्द्रियों के सुख को (वैश्वकर्मणः) जिसके समग्र कर्म विद्यमान हैं उस (अग्निः) अग्नि के समान गृहस्थ विद्वान् आप (देवेषु) दिव्य धर्मसम्बन्धी व्यवहारों में (नः) हम लोगों को (दधत्) स्थापन करें ॥६४॥

भावार्थः—जो पुरुष और जो स्त्री गृहाश्रम किया चाहें वे विवाह से पूर्व प्रगल्भता अर्थात् अपने में बल पराक्रम परिपूर्णता आदि सामग्री कर ही के युवावस्था में स्वयंवरविधि के अनुकूल विवाह कर धर्म से दान आदान मान सन्मान आदि व्यवहारों को करें ॥६४॥

यत्र धारा इत्यस्य विश्वकर्मर्षिः । यज्ञो देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

यत्र॒ धारा॒ अन॑पेता॒ मधो॑र्घृ॒तस्य॑ च॒ याः ।
तद॒ग्निर्वै॑श्वक॒र्म॒णः स्व॑र्दे॒वेषु॑ नो दधत् ।।६५।।

पदार्थः—(यत्र) जिस यज्ञ में (मधोः) मधुरादि गुणयुक्त सुगन्धित द्रव्यों (च, और (घृतस्य) घृत के (याः) जिन (अनपेताः) संयुक्त (धाराः) प्रवाहों को विद्वान् लोग करते हैं (तत्) उन धाराओं से (वैश्वकर्मणः) सब कर्म होने का निमित्त (अग्निः)अग्नि (नः) हमारे लिये (देवेषु) दिव्य व्यवहारों में (स्वः) सुख को (दधत्) धारण करता है ।।६५।।

भावार्थः—जो मनुष्य वेदि आदि को बना के सुगन्ध और मिष्टादियुक्त बहुत घृत को अग्नि में हवन करते हैं वे सब रोगों का निवारण करके अतुल सुख को उत्पन्न करते हैं ।।६५।।

अग्निरस्मीत्यस्य देवश्रवोदेववातावृषी । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः ।।
धैवतः स्वरः ।।

यज्ञ से क्या होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

अ॒ग्निर॑स्मि॒ जन्म॑ना जा॒तवे॑दा घृ॒तं मे॒ चक्षु॑र॒मृतं॑ म आ॒सन् ।
अ॒र्कस्त्रि॒धातू॒ रज॑सो वि॒मानो॒ऽज॑स्रो घ॒र्मो ह॒विर॑स्मि॒ नाम॑ ।।६६।।

पदार्थः—मैं (जन्मना) जन्म से (जातवेदाः) उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान (अग्निः) अग्नि के समान (अस्मि) हूं जैसे अग्नि का (घृतम्। घृतादि (चक्षुः) प्रकाशक है वैसे (मे) मेरे लिये हो, जैसे अग्नि में अच्छे प्रकार संस्कार किया (हविः) हवन करने योग्य द्रव्य होमा हुआ (अमृतम्) सर्वरोगनाशक आनन्दप्रद होता है वैसे (मे) मेरे (आसन्) मुख में प्राप्त हो जैसे (त्रिधातुः) सत्त्व रज और तमोगुण तत्त्व जिस में हैं उस (रजसः) लोक लोकान्तर को (विमानः) विमान यान के समान धारण करता (अजस्रः) निरन्तर गमनशील (घर्मः) प्रकाश के समान यज्ञ कि जिस से सुगन्ध का ग्रहण होता है (अर्कः जो सत्कार का साधन जिस का (नाम) प्रसिद्ध होना अच्छे प्रकार शोधा हुआ हवन करने योग्य पदार्थ है वैसे मैं (अस्मि) हूं ।।६६।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। अग्नि होम किये हुये पदार्थ को वायु में फला कर दुर्गन्ध का निवारण, सुगन्ध की प्रकटता और रोगों को निर्मूल (नष्ट) कर के सब प्राणियों को सुखी करता है वैसे ही सब मनुष्यों को होना योग्य है ।।६६।।

ऋचो नामेत्यस्य देवश्रवोदेववातावृषी । अग्निर्देवता । आर्षी जगती छन्दः ॥
निषादः स्वरः ॥

अब ऋग्वेद आदि को पढ़के क्या करना चाहिये इस विषय
का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

ऋचो नामास्मि यजूꣳषि नामास्मि सामानि नामास्मि । ये अग्नयः पाञ्चजन्या अस्यां पृथिव्यामधि । तेषामसि त्वमुत्तमः प्र नो जीवातवे सुव ॥६७॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जो मैं (ऋचः) ऋचाओं की (नाम) प्रसिद्धिकर्त्ता (अस्मि) हूं (यजूंषि) यजुर्वेद की (नाम) प्रख्यातिकर्ता (अस्मि) हूं (सामानि) सामवेद के मन्त्रगान का (नाम) प्रकाशकर्ता (अस्मि) हूँ उस मुझ से वेदविद्या का ग्रहण कर (ये) जो (अस्याम्) इस (पृथिव्याम्) पृथिवी में (पाञ्चजन्याः) मनुष्यों के हितकारी (अग्नयः) अग्नि (अधि) सर्वोपरि हैं (तेषाम्) उनके मध्य (त्वम्) तू (उत्तमः) अत्युत्तम (असि) है सो तू (नः) हमारे (जीवातवे) जीवन के लिये सत्कर्मों में (प्र, सुव) प्रेरणा कर ॥६७॥

भावार्थः—जो मनुष्य ऋग्वेद को पढ़ते वे ऋग्वेदी जो यजुर्वेद को पढ़ते वे यजुर्वेदी जो सामवेद को पढ़ते वे सामवेदी और जो अथर्ववेद को पढ़ते हैं वे अथर्ववेदी जो दो वेदों को पढ़ते वे द्विवेदी जो तीन वेदों को पढ़ते वे त्रिवेदी और जो चार वेदों को पढ़ते हैं वे चतुर्वेदी जो किसी वेद को नहीं पढ़ते वे किसी संज्ञा को प्राप्त नहीं होते जो वेदवित् हों वे अग्निहोत्रादि यज्ञों से सब मनुष्यों के हित को सिद्ध करें जिससे उनकी उत्तम कीर्ति होवे और सब प्राणी दीर्घायु होवें ॥६७॥

वार्त्रहत्यायेत्यस्य इन्द्र ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

सेनाध्यक्ष कैसे विजयी हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च । इन्द्र त्वा वर्तयामसि ॥६८॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य्ययुक्त सेनापते ! जैसे हम लोग (वार्त्रहत्याय) विरुद्ध भाव से वर्त्तमान शत्रु के मारने में जो कुशल (शवसे) उत्तम बल (पृतनाषाह्याय) जिस से शत्रुसेना का बल सहन किया जाय उस से (च) और अन्य योग्य साधनों से युक्त (त्वा) तुझ को (आ, वर्त्तयामसि) चारों ओर से यथायोग्य वर्त्ताया करें वैसे तू यथायोग्य वर्त्ता कर ॥६८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वान् जैसे

सूर्य मेघ को वैसे शत्रुओं के मारने को शूरवीरों की सेना का सत्कार करता है वह सदा विजयी होता है ॥६८॥

सहदानुमित्यस्येन्द्रविश्वामित्रावृषी । इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः ॥
धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कैसा होना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया हैं ॥

सहदानुम्पुरुहूत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र सम्पिणक् कुणारुम् ।
अभि वृत्रं वर्द्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ॥६९॥

पदार्थः—हे (पुरुहूत) बहुत विद्वानों से सत्कार को प्राप्त (इन्द्र) शत्रुओं को नष्ट करने हारे सेनापति ! जैसे सूर्य (सहदानुम्) साथ देने हारे (क्षियन्तम्) आकाश में निवास करने (कुणारुम्) शब्द करने वाले (अहस्तम्) हस्त से रहित (पियारुम्) पान करने हारे (अपादम्) पादेन्द्रियरहित (अभि)(वर्द्धमानम्) सब ओर से बढ़े हुए (वृत्रम्) मेघ को (सं, पिणक्) अच्छे प्रकार चूर्णीभूत करता है वैसे हे (इन्द्र) सभापति ! आप शत्रुओं को (तवसा) बल से (जघन्थ) मारा करो ॥६९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य सूर्य के समान प्रतापयुक्त होते हैं वे शत्रुरहित होते हैं ॥६९॥

वि न इत्यस्य शास ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब सेनापति कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
योऽअस्माँ२ऽ अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥७०॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परम बलयुक्त सेना के पति ! तू (मृधः) संग्रामों को (वि, जहि) विशेष करके जीत (पृतन्यतः) सेनायुक्त (नः) हमारे शत्रुओं को (नीचा) नीच गति को (यच्छ) प्राप्त करा (यः) जो (अस्मान्) हम को (अभिदासति) नष्ट करने की इच्छा करता है उसको (अधरम्) अधोगतिरूप (तमः) अन्धकार को (गमय) प्राप्त कर ॥७०॥

भावार्थः—सेनापति को योग्य है कि संग्रामों को जीते उस विजयकारक संग्राम से नीचकर्म करनेहारों का निरोध करे राज प्रजा में विरोध करानेहारे को अत्यन्त दण्ड देवे ॥७०॥

मृगो नेत्यस्य जय ऋषिः । इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

राजपुरुषों को कैसा होना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः ।
सृकथं संशायं पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून्ताढि विमृधो नुदस्व ॥७१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सेनाओं के पति ! तू (कुचरः) कुटिल चाल चलता (गिरिष्ठाः) पर्वतों में रहता (भीमः) भयङ्कर (मृगः) सिंह के (न) समान (परावतः) दूरदेशस्थ शत्रुओं को (आ, जगन्थ) चारों ओर से घेरे (परस्याः) शत्रु की सेना पर (तिग्मम्) अति तीव्र (पविम्) दुष्टों को दण्ड से पवित्र करने हारे (सृकम्) वज्र के तुल्य शस्त्र को (संशाय) सम्यक् तीव्र करके (शत्रून्) शत्रुओं को (वि, ताढि) ताड़ित कर और (मृधः) संग्रामों को (वि, नुदस्व) जीतकर अच्छे कर्मों में प्रेरित कर ॥७१॥

भावार्थः—जो सेना के पुरुष सिंह के समान पराक्रम कर तीक्ष्ण शस्त्रों से शत्रुओं के सेनाङ्गों का छेदन कर संग्रामों को जीतते हैं वे अतुल प्रशंसा को प्राप्त होते हैं इतर क्षुद्राशय मनुष्य विजयसुख को प्राप्त कभी नहीं हो सकते ॥७१॥

वैश्वानरो न इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी गायत्री छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वैश्वानरो न ऊतयऽआ प्र यातु परावतः ।
अग्निर्नः सुष्टुतीरुप ॥७२॥

पदार्थः—हे सेना सभा के पति ! जैसे (वैश्वानरः) सम्पूर्ण नरों में विराजमान (अग्निः) सूर्यरूप अग्नि (परावतः) दूरदेशस्थ सब पदार्थों को प्राप्त होता है वैसे आप (ऊतये) रक्षादि के लिए (नः) हमारे समीप (आ, प्र, यातु) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये जैसे बिजुली सब में व्यापक होकर समीपस्थ रहती है वैसे (नः) हमारी (सुष्टुतीः) उत्तम स्तुतियों को (उप) अच्छे प्रकार सुनिये ॥७२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो पुरुष सूर्य के समान दूरस्थ होकर भी न्याय से सब व्यवहारों को प्रकाशित कर देता है और जैसे दूरस्थ सत्यगुणों से युक्त सत्पुरुष प्रशंसित होता है वैसे ही राजपुरुषों को होना चाहिये ॥७२॥

पृष्टो दिवीत्यस्य कुत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पृ॒ष्टो दि॒वि पृ॒ष्टोऽअ॒ग्निः पृ॑थि॒व्यां पृ॒ष्टो विश्वा॒ ओष॑धी॒रावि॑वेश ।
वै॒श्वा॒न॒रः सह॑सा पृ॒ष्टोऽअ॒ग्निः स नो॒ दिवा॒ स रि॒षस्पा॑तु॒ नक्त॑म् ॥७३॥

पदार्थः—मनुष्यों से कि जो (दिवि) प्रकाशस्वरूप सूर्य में (पृष्टः) जानने के योग्य (अग्निः) अग्नि (पृथिव्याम्) पृथिवी में (पृष्टः) जानने को इष्ट अग्नि तथा जल और वायु में (पृष्टः) जानने के योग्य पावक (सहसा) बलादि गुणों से युक्त (वैश्वानरः) विश्व में प्रकाशमान (पृष्टः) जानने के योग्य (अग्निः) विजुली रूप अग्नि (विश्वाः) समग्र (ओषधीः) ओषधियों में (आ, विवेश) प्रविष्ट हो रहा है (सः) सो अग्नि (दिवा) दिन और (सः) वह अग्नि (नक्तम्) रात्रि में जैसे रक्षा करता वैसे सेना के पति आप (नः) हमको (रिषः) हिंसक जन से निरन्तर (पातु) रक्षा करें ॥७३॥

भावार्थः—जो मनुष्य आकाशस्थ सूर्य और पृथिवी में प्रकाशमान सब पदार्थों में व्यापक विद्युद्रूप अग्नि को विद्वानों से निश्चय कर कार्यों में संयुक्त करते हैं वे शत्रुओं से निर्भय होते हैं ॥७३॥

अश्यामेत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब प्रजा और राजपुरुषों को परस्पर क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अ॒श्याम॒ तं काम॑मग्ने॒ तवो॒तीऽअ॒श्याम॑ र॒यिꣳ र॑यिवः सु॒वीर॑म् ।
अ॒श्याम॒ वाज॑म॒भि वा॒जय॑न्तो॒ऽश्याम॑ द्यु॒म्नम॑जरा॒जरं॑ ते ॥७४॥

पदार्थः—हे (अग्ने) युद्धविद्या के जानने हारे सेनापति ! हम लोग (तव) तेरी (ऊती) रक्षा आदि की क्रिया से (तम्) उस (कामम्) कामना को (अश्याम) प्राप्त हों। हे (रयिवः) प्रशस्त धन युक्त ! (सुवीरम्) अच्छे वीर प्राप्त होते हैं जिस से उस (रयिम्) धन को (अश्याम) प्राप्त हों (वाजयन्तः) संग्राम करते कराते हुए हम लोग (वाजम्) संग्राम में विजय को (अभ्यश्याम) अच्छे प्रकार प्राप्त हों । हे (अजर) वृद्धपन से रहित सेनापते ! हम लोग (ते) तेरे प्रताप से (अजरम्) अक्षय (द्युम्नम्) धन और कीर्ति को (अश्याम) प्राप्त हों ॥७४॥

भावार्थः—प्रजा के मनुष्यों को योग्य है कि राजपुरुषों की रक्षा से और राजपुरुष प्रजाजन की रक्षा से परस्पर सब इष्ट कामों को प्राप्त हों ॥७४॥

वयमित्यस्योत्कील ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुरुषार्थ से क्या सिद्ध करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

वयं ते अद्य ररिमा हि काममुत्तानहस्ता नमसोपसद्य ।
यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवानस्रेधता मन्मना विप्रोऽअग्ने ॥७५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् ! (उत्तानहस्ताः) उत्कृष्टता से अभय देने हारे हस्तयुक्त (वयम्) हम लोग (ते) आप के (नमसा) सत्कार से (उपसद्य) समीप प्राप्त होके (अद्य) आज ही (कामम्) कामना को (हि) निश्चय (ररिम) देते हैं जैसे (विप्रः) बुद्धिमान् (अस्रेधता) इधर उधर गमन अर्थात् चञ्चलतारहित स्थिर (मन्मना) बल और (यजिष्ठेन) अतिशय करके संयमयुक्त (मनसा) चित्त से (देवान्) विद्वानों और शुभ गुणों को प्राप्त होता है और जैसे तू (यक्षि) शुभ कर्मों में युक्त हो हम भी वैसे ही संगत होवें ॥७५॥

भावार्थः—जो मनुष्य पुरुषार्थ से पूर्ण कामना वाले हों वे विद्वानों के सङ्ग से इस विषय को प्राप्त होने को समर्थ होवें ॥७५॥

धामच्छदग्निरित्यस्योत्कील ऋषिः । विश्वेदेवाः देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब सब विद्वानों को जो करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

धामच्छदग्निरिन्द्रो ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः ।
सचेतसो विश्वे देवा यज्ञं प्रावन्तु नः शुभे ॥७६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (देवः) विद्वान् (धामच्छत्) जन्म स्थान नाम का विस्तार करने हारे (अग्निः) पावक (इन्द्रः) विद्युत् के समान अमात्य और राजा (ब्रह्मा) चारों वेदों का जानने हारा (बृहस्पतिः) वेदवाणी का पठन पाठन से पालन करने हारा (सचेतसः) विज्ञान वाले (विश्वे, देवाः) सब विद्वान् लोग (नः) हमारे (शुभे) कल्याण के लिये (यज्ञम्) विज्ञान योगरूप क्रिया को (प्र, अवन्तु) अच्छे प्रकार कामना करें ॥७६॥

भावार्थः—सब विद्वान् लोग सब मनुष्यादि प्राणियों के कल्याणार्थ निरन्तर सत्य उपदेश करें ॥७६॥

त्वमित्यस्योशना ऋषिः । विश्वेदेवाः देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब सभापति तथा सेनापति के कर्त्तव्य को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुधी गिरः ।
रक्षा तोकमुत त्मना ॥७७॥

पदार्थः—हे (यविष्ठ) पूर्ण युवावस्था को प्राप्त राजन् ! (त्वम्) तू (दाशुषः) विद्यादाता (नॄन्) मनुष्यों की (पाहि) रक्षा कर और इन की (गिरः) विद्या शिक्षा-युक्त वाणियों को (शृणुधि) सुन । जो वीर पुरुष युद्ध में मर जावे उस के (तोकम्) छोटे सन्तानों की (उत) और स्त्री आदि की भी (त्मना) आत्मा से (रक्ष) रक्षा कर ॥७७॥

भावार्थः—सभा और सेना के अधिष्ठाताओं को दो कर्म अवश्य कर्त्तव्य हैं एक विद्वानों का पालन और उनके उपदेश का श्रवण, दूसरा युद्ध में मरे हुओं के सन्तान स्त्री आदि का पालन, ऐसे आचरण करने वाले पुरुषों के सदैव विजय धन और सुख की वृद्धि होती है ॥७७॥

इस अठारहवें अध्याय में गणितविद्या राजा प्रजा और पढ़ने पढ़ाने हारे पुरुषों के कर्म आदि के वर्णन से इस अध्याय में कहे हुए अर्थों की पूर्व अध्याय में कहे हुए अर्थों के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह यजुर्वेदभाषाभाष्य का अट्ठारहवां (१८) अध्याय पूरा हुआ ॥१८॥

---

* ओ३म् *

अथैकोनविंशोऽध्याय आरभ्यते

—❀:०❀:०❀:०❀—

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ।।

स्वाद्वीमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सोमो देवता । निचृच्छक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

अब उन्नीसवें अध्याय का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिये क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश किया है ।।

स्वाद्वीं त्वा स्वादुना तीव्रां तीव्रेणामृताममृतेन मधुमतीम्मधुमता सृजामि सᳬसोमेन सोमोऽस्यश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व ।।१।।

पदार्थः—हे वैद्यराज ! जो तू (सोमः) सोम के सदृश ऐश्वर्ययुक्त (असि) है उस (त्वा) तुझ को ओषधियों की विद्या में (सं, सृजामि) अच्छे प्रकार उत्तम शिक्षा-युक्त करता हूँ जैसे मैं जिस (स्वादुना) मधुर रसादि के साथ (स्वाद्वीम्) सुस्वादयुक्त (तीव्रेण) शीघ्रकारी तीक्ष्ण स्वभाव सहित (तीव्राम्) तीक्ष्ण स्वभावयुक्त को (अमृतेन) सर्वरोगापहारी गुण के साथ (अमृताम्) नाशरहित (मधुमता) स्वादिष्ट गुणयुक्त (सोमेन) सोमलता आदि से (मधुमतीम्) प्रशस्त मीठे गुणों से युक्त ओषधि को सम्यक् सिद्ध करता हूँ वैसे तू इस को (अश्विभ्याम्) विद्यायुक्त स्त्री पुरुषों सहित (पच्यस्व) पका (सरस्वत्यै) उत्तम शिक्षित वाणी से युक्त स्त्री के अर्थ (पच्यस्व) पका (सुत्राम्णे) सब को दुःख से अच्छे प्रकार बचाने वाले (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त पुरुष के लिये (पच्यस्व) पका ।।१।।

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि वैद्यकशास्त्र की रीति से अनेक मधुरादि प्रशंसित स्वादयुक्त अत्युत्तम औषधों को सिद्ध कर उन के सेवन से आरोग्य को प्राप्त होकर धर्मार्थ काम मोक्ष की सिद्धि के लिये निरन्तर प्रयत्न किया करें ॥१॥

परीत इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । सोमो देवता । स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

परीतो षिञ्चता सुतꣳ सोमो य उत्तमꣳ हविः ।
दधन्वान् यो नर्योऽअप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! (यः) जो (उत्तमम्) उत्तम श्रेष्ठ (हविः) खाने योग्य अन्न को (सोमः) प्रेरणा करने हारा विद्वान् (इतः) प्राप्त होवे (यः) जो (नर्यः) मनुष्यों में उत्तम (दधन्वान्) धारण करता हुआ (अप्सु) जलों के (अन्तः) मध्य में (आसुषाव) सिद्ध करे उस (अद्रिभिः) मेघों में (सुतम्) उत्पन्न हुए (सोमम्) ओषधिगण को तुम लोग (परिसिञ्चत) सब ओर से सींच के बढ़ाओ ॥२॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि उत्तम ओषधियों को जल में डाल मंथन कर सार रस को निकाल इस से यथायोग्य जाठराग्नि को सेवन करके बल और आरोग्यता को बढ़ाया करें ॥२॥

वायोरित्यस्य आभूतिर्ऋषिः । सोमो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमोऽअतिद्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा । वायोः पूतः पवित्रेण प्राङ् सोमोऽअतिद्रुतः इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! जो (सोमः) सोमलतादि ओषधियों का गुण (प्राङ्) जो प्रकृष्टता से (अतिद्रुतः) शीघ्रगामी (वायोः) वायु से (पवित्रेण) शुद्ध करने वाले कर्म से (पूतः) पवित्र (इन्द्रस्य) इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव का (युज्यः) योग्य (सखा) मित्र के समान रहता है और जो (सोमः) सिद्ध किया हुआ ओषधियों का रस (प्रत्यङ्) प्रत्यक्ष शरीरों से युक्त हो के (अतिद्रुतः) अत्यन्त वेग वाला (वायोः) वायु से (पवित्रेण) पवित्रता कर के (पूतः) शुद्ध और (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य-

युक्त राजा का (युज्यः) अतियोग्य (सखा) मित्र के समान है उस का तुम निरन्तर सेवन किया करो ॥३॥

भावार्थः—जो ओषधि शुद्ध स्थल जल और वायु में उत्पन्न होती और पूर्व और पश्चात् होने वाले रोगों का शीघ्र निवारण करती हैं उन का मनुष्य लोग मित्र के समान सदा सेवन करें ॥३॥

पुनातीत्यस्य आभूतिर्ऋषिः । सोमो देवता । आर्षी गायत्रीच्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पुनाति ते परिस्रुतꣳ सोमꣳ सूर्य्यस्य दुहिता ।
वारेण शश्वता तना ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! जो (तना) विस्तीर्ण प्रकाश से (सूर्य्यस्य) सूर्य की (दुहिता) कन्या के समान उषा (शश्वता) अनादिरूप (वारेण) ग्रहण करने योग्य स्वरूप से (ते) तेरे (परिस्रुतम्) सब ओर से प्राप्त (सोमम्) ओषधियों के रस को (पुनाति) पवित्र करती है उस में तू ओषधियों के रस का सेवन कर ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य सूर्योदय से पूर्व शौचकर्म करके यथानुकूल ओषधि का सेवन करते हैं वे रोगरहित हो कर सुखी होते हैं ॥४॥

ब्रह्मेत्यस्याभूतिर्ऋषिः । सोमो देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ब्रह्म क्षत्रं पवते तेज इन्द्रियꣳ सुरया सोमः सुत आसुतो मदाय ।
शुक्रेण देव देवताः पिपृग्धि रसेनान्नं यजमानाय धेहि ॥५॥

पदार्थः—हे (देव) सुखदाता विद्वन् ! जो (शुक्रेण) शीघ्र शुद्ध करने हारे व्यवहार से (मदाय) आनन्द के लिये (सुरया) उत्पन्न होती हुई क्रिया से (सुतः) उत्पादित (आसुतः) अच्छे प्रकार रोगनिवारण के निमित्त सेवित (सोमः) ओषधियों का रस (तेजः) प्रगल्भता (इन्द्रियम्) मन आदि इन्द्रियगण (ब्रह्म) ब्रह्मवित् कुल और (क्षत्रम्) न्यायकारी क्षत्रिय-कुल को (पवते) पवित्र करता है उस (रसेन) रस से युक्त (अन्नम्) अन्न को (यजमानाय) धर्मात्मा जन के लिये (धेहि) धारण कर (देवताः) विद्वानों को (पिपृग्धि) प्रसन्न कर ॥५॥

भावार्थः—इस जगत् में किसी मनुष्य को योग्य नहीं है कि जो श्रेष्ठ रसके विना अन्न खावे, सदा विद्या शूरवीरता बल और बुद्धि की वृद्धि के के लिये महौषधियों के सारों को सेवन करना चाहिये ॥५॥

कुविदङ्गेत्यस्याऽऽभूतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराड् प्रकृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूयं इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति । उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णऽएष ते योनिस्तेजसे त्वा वीर्याय त्वा बलाय त्वा ॥६॥

पदार्थः—हे (अङ्ग) मित्र ! (ये) जो (बर्हिषः) अन्नादि की प्राप्ति कराने वाले (यवमन्तः) यवादि धान्ययुक्त किसान लोग (नमउक्तिम्) अन्नादि की वृद्धि के लिये उपदेश (यजन्ति) देते हैं (एषाम्) उनके पदार्थों का (इहेह) इस संसार और इस व्यवहार में तू (भोजनानि) पालन वा भोजन आदि (कृणुहि) किया कर (यथा) जैसे ये किसान लोग (यवम्) यव को (चित्) भी (वियूय) बुषादि से पृथक् कर (अनुपूर्वम्) पूर्वापर की योग्यता से (दान्ति) काटते हैं वैसे तू इन के विभाग से (कुवित्) बड़ा बल प्राप्त कर जिस (ते) तेरी उन्नति का (एषः) यह (योनिः) कारण है उस (त्वा) तुझ को (अश्विभ्याम्) प्रकाश भूमि की विद्या के लिये (त्वा) तुझ को (सरस्वत्यै) कृषिकर्म प्रचार करने हारी उत्तम वाणी के लिये (त्वा) तुझ को (इन्द्राय) शत्रुओं के नाश करने वाले (सुत्राम्णे) अच्छे रक्षक के लिये (त्वा) तुझ को (तेजसे) प्रगल्भता के लिये (त्वा) तुझ को (वीर्याय) पराक्रम के लिये (त्वा) तुझ को (बलाय) बल के लिये जो प्रसन्न करते हैं वा जिन से तू (उपयामगृहीतः) श्रेष्ठ व्यवहारों से स्वीकार किया हुआ (असि) है उन के साथ तू विहार कर ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो राजपुरुष कृषि आदि कर्म करने, राज्य में कर देने और परिश्रम करने वाले मनुष्यों को प्रीति से रखते और सत्य उपदेश करते हैं वे इस संसार में सौभाग्य वाले होते हैं ॥६॥

नानेत्यस्याऽऽभूतिर्ऋषिः । सोमो देवता । विराड् जगतीच्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

राजा और प्रजा कैसे हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

नाना हि वां देवहितꣳ सदस्कृतं मा सꣳसृक्षाथां परमे व्योमन् । सुरा त्वमसि शुष्मिणी सोमऽएष मा मा हिꣳसीः स्वां योनिमाविशन्ती ॥७॥

पदार्थः—हे राजा और प्रजा के जनो ! (नाना) अनेक प्रकार (सद्यः, कृतम्) स्थान किया हुआ (देवहितम्) विद्वानों को प्रियाचरण (वाम्) तुम दोनों को प्राप्त होवे जो (हि) निश्चय से (स्वाम्) अपने (योनिम्) कारण को (आविशन्ती) अच्छा प्रवेश करती हुई (शुष्मिणी) बहुत बल करने वाली (सुरा) सोमवल्ली आदि की लता है (त्वम्) वह (परमे) उत्कृष्ट (व्योमन्) बुद्धिरूप अवकाश में वर्त्तमान (असि) है उस को तुम दोनों प्राप्त होओ और प्रमादकारी पदार्थों का (मा) मत (संसृक्षाथाम्) संग किया करो, हे विद्वत्पुरुष ! जो (एषः) यह (सोमः) सोमादि ओषधिगण है उस को तथा (मा) मुझ को तू (मा) मत (हिंसीः) नष्ट कर ॥७॥

भावार्थः—जो राजा प्रजा के सम्बन्धी मनुष्य बुद्धि, बल, आरोग्य और आयु बढ़ाने हारे ओषधियों के रसों को सदा सेवन करते और प्रमादकारी पदार्थों का सेवन नहीं करते वे इस जन्म और परजन्म में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करने वाले होते हैं ॥७॥

उपयामगृहीत इत्यस्याऽऽभूतिर्ऋषिः । सोमो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उपयामगृहीतोऽस्याश्विनं तेजः सारस्वतं वीर्यमैन्द्रं बलम् ।
एष ते योनिर्मोदाय त्वानन्दाय त्वा महसे त्वा ॥८॥

पदार्थः—हे राजप्रजाजन ! जो तू (उपयामगृहीतः) प्राप्त धर्मयुक्त यमसम्बन्धी नियमों से संयुक्त (असि) है जिस (ते) तेरा (एषः) यह (योनिः) घर है उस तेरा जो (आश्विनम्) सूर्य और चन्द्रमा के रूप के समान (तेजः) तीक्ष्ण कोमल तेज (सारस्वतम्) विज्ञानयुक्त वाणी का (वीर्यम्) तेज (ऐन्द्रम्) बिजुली के समान (बलम्) बल हो उस (त्वा) तुझ को (मोदाय) हर्ष के लिये (त्वा) तुझ को (आनन्दाय) परम सुख के अर्थ (त्वा) तुझे (महसे) महापराक्रम के लिये सब मनुष्य स्वीकार करें ॥८॥

भावार्थः—जो मनुष्य सूर्य चन्द्रमा के समान तेजस्वी विद्या पराक्रम वाले बिजुली के तुल्य अति बलवान् हो के आप आनन्दित हों और अन्य सब को आनन्द किया करते हैं वे यहां परमानन्द को भोगते हैं ॥८॥

तेजोसीत्यस्याऽऽभूतिर्ऋषिः । सोमो देवता । शक्वरीच्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि बलमसि

वलं मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥९॥

पदार्थः—हे सकल शुभगुणाकर राजन् ! जो तेरे में (तेजः) तेज (असि) है उस (तेजः) तेज को (मयि) मेरे में (धेहि) धारण कीजिये जो तेरे में (वीर्यम्) पराक्रम (असि) है उस (वीर्यम्) पराक्रम को (मयि) मुझ में (धेहि) धरिये जो तेरे में (वलम्) वल (असि) है उस (वलम्) वल को (मयि) मुझ में भी (धेहि) धरिये जो तेरे में (ओजः) प्राण का सामर्थ्य (असि) है उस (ओजः) सामर्थ्य को (मयि) मुझ में (धेहि) धरिये जो तुझ में (मन्युः) दुष्टों पर क्रोध (असि) है उस (मन्युम्) क्रोध को (मयि) मुझ में (धेहि) धरिये जो तुझ में (सहः) सहनशीलता (असि) है उस (सहः) सहनशीलता को (मयि) मुझ में भी (धेहि) धारण कीजिये ॥९॥

भावार्थः—सब मनुष्यों के प्रति ईश्वर की यह आज्ञा है कि जिन शुभ गुण कर्म स्वभावों को विद्वान् लोग धारण करें उन को औरों में भी धारण करावें और जैसे दुष्टाचारी मनुष्यों पर क्रोध करें वैसे धार्मिक मनुष्यों में प्रीति भी निरन्तर किया करें ॥९॥

या व्याघ्रमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । सोमो देवता । आर्ष्युष्णिक् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुष कैसे वर्त्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

या व्याघ्रं विषूचिकोभौ वृकं॑च रक्षति ।
श्येनं पतत्रिणꣳ सिꣳहꣳ सेमं पात्वꣳहसः ॥१०॥

पदार्थः—(या) जो (विषूचिका) विविध अर्थों की सूचना करने हारी राजा की राणी (व्याघ्रम्) जो कूद के मारता है उस बाघ और (वृकम्) बकरे आदि को मारने हारा भेड़िया (उभौ) इन दोनों को (पतत्रिणम्) शीघ्र चलने के लिये बहुवेग वाले और (श्येनम्) शीघ्र धावन कर के अन्य पक्षियों को मारने हारे पक्षी और (सिंहम्) हस्ति आदि को (च) भी मारने वाले दुष्ट पशु को मार के प्रजा की (रक्षति) रक्षा करती है (सा) सो राणी (इमम्) इस राजा को (अंहसः) अपराध से (पातु) रक्षा करे ॥१०॥

भावार्थः—जैसे शूरवीर राजा स्वयं व्याघ्रादि को मारने न्याय से प्रजा की रक्षा करने और अपनी स्त्री को प्रसन्न करने को समर्थ होता है वैसे ही राजा की राणी भी होवे जैसे अच्छे प्रिय आचरण से राणी अपने

पति राजा को प्रमाद से पृथक् कर के प्रसन्न करती है वैसे राजा भी अपनी स्त्री को सदा प्रसन्न करे ॥१०॥

यदित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । शक्वरीच्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

सन्तानों को अपने माता पिता के साथ कैसे वर्त्तना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

यदापिपेष मातरं पुत्रः प्रमुदितो धयन् । एतत्तदग्नेऽअनृणो भवाम्यहतौ पितरौ मया । सम्पृच स्थ सं मा भद्रेण पृङ्क्त विपृच स्थ वि मा पाप्मना पृङ्क्त ॥११॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् ! (यत्) जो (प्रमुदित.) अत्यन्त आनन्दयुक्त (पुत्रः) पुत्र दुग्ध को (धयन्) पीता हुआ (मातरम्) माता को (आपिपेष) सब ओर से पीड़ित करता है उस पुत्र से मैं (अनृणः) ऋणरहित (भवामि) होता हूं जिस से मेरे (पितरौ) माता पिता (अहतौ) हननरहित और (मया) मुझ से (भद्रेण) कल्याण के साथ वर्त्तमान हों । हे मनुष्यो ! तुम (संपृचः) सत्यसम्बन्धी (स्थ) हो (मा) मुझ को कल्याण के साथ (सं, पृङ्क्त) संयुक्त करो और (पाप्मना) प.प से (विपृचः) पृथक् रहने हारे (स्थ) होओ इसलिये (मा) मुझे भी इस पाप से (विपृङ्क्त) पृथक् कीजिये और (तदेतत्) परजन्म तथा इस जन्म के सुख को प्राप्त कीजिये ॥११॥

भावार्थः—जैसे माता पिता पुत्र का पालन करते हैं वैसे पुत्र को माता पिता की सेवा करनी चाहिये सब मनुष्यों को इस जगत् में यह ध्यान देना चाहिये कि हम माता पिता का यथावत् सेवन करके पितृऋण से मुक्त होवें जैसे विद्वान् धार्मिक माता पिता अपने सन्तानों को पापरूप आचरण से पृथक् करके धर्माचरण में प्रवृत्त करें वैसे सन्तान भी अपने माता पिता को वर्त्ताव करावें ॥११॥

देवा यज्ञमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । विद्वांसो देवताः । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

माता पिता और सन्तान परस्पर कैसे वर्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवा यज्ञमतन्वत भेषजं भिषजाश्विना ।
वाचा सरस्वती भिषगिन्द्रायेन्द्रियाणि दधतः ॥१२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (इन्द्रियाणि) उत्तम प्रकार विषयग्राहक नेत्र आदि इन्द्रियों वा धनों को (दधतः) धारण करते हुए (भिषक्) चिकित्सा आदि वैद्यकशास्त्र

के अंगों को जानने हारी (सरस्वती) प्रशस्त वैद्यकशास्त्र के ज्ञान से युक्त विदुषी स्त्री और (भिषजा) आयुर्वेद के जानने हारे (अश्विना) ओषधिविद्या में व्याप्तबुद्धि दो उत्तम विद्वान् वैद्य ये तीनों और (देवाः) उत्तम ज्ञानीजन (वाचा) वाणी से (इन्द्रियाय) परमैश्वर्य्य के लिये (भेषजम्) रोगविनाशक ओषधरूप (यज्ञम्) सुख देने वाले यज्ञ को (अतन्वत) विस्तृत करें वैसे ही तुम लोग भी करो ॥१२॥

भावार्थः—जब तक मनुष्य लोग पथ्य ओषधि और ब्रह्मचर्य के सेवन से शरीर के आरोग्य, बल और बुद्धि को नहीं बढ़ाते तब तक सब सुखों के प्राप्त होने को समर्थ नहीं होते ॥१२॥

दीक्षायामित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कैसे मनुष्य सुखी होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ॥

दीक्षायै रूपꣳ शष्पाणि प्रायणीयस्य तोक्मानि ।
क्रयस्य रूपꣳ सोमस्य लाजाः सोमाꣳशवो मधु ॥१३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (प्रायणीयस्य) जिस व्यवहार से उत्तम सुख को प्राप्त होते हैं उस में होने वाले की (दीक्षायै) यज्ञ के नियम की रक्षा के लिये (रूपम्) सुन्दर रूप और (तोक्मानि) अपत्य (क्रयस्य) द्रव्यों के बेचने का (रूपम्) रूप (शष्पाणि) छांट फटक शुद्ध कर ग्रहण करने योग्य धान्य (सोमस्य) सोमलतादि के रस के सम्बन्धी (लाजाः) परिपक्व फूले हुए अन्न (सोमांशवः) सोम के विभाग और (मधु) सहत हैं उनको तुम लोग विस्तृत करो ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से "अतन्वत" इस क्रियापद की अनुवृत्ति आती है जो मनुष्य यज्ञ के योग्य सन्तान और पदार्थों को सिद्ध करते हैं वे इस संसार में सुख को प्राप्त होते हैं ॥१३॥

आतिथ्यरूपमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । आतिथ्यादयो लिङ्गोक्ता देवताः ।
अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कैसे जन कीर्ति वाले होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

आतिथ्यरूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः ।
रूपमुपसदामेतत्तिस्रो रात्रीः सुरासुता ॥१४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (मासरम्) जिस से अतिथिजन महीनों में रमण करते हैं ऐसे (आतिथ्यरूपम्) अतिथियों का होना वा उन का सत्काररूप कर्म वा बड़े वीर (महावीरस्य) पुरुष का (नग्नहुः) जो नग्न अकिञ्चनों का धारण करता है वह

(रूपम्) रूप वा (उपसदाम्) गृहस्थादि के समीप में भोजनादि के अर्थ ठहरने हारे अतिथियों का (तिस्रः) तीन (रात्रीः) रात्रियों में निवास कराना (एतत्) यह रूप वा (सुरा) सोमरस (आसुता) सब ओर से सिद्ध की हुई क्रिया है उन सब का तुम लोग ग्रहण करो ॥१४॥

भावार्थः—जो मनुष्य धार्मिक विद्वान् अतिथियों के सत्कार सङ्ग और उपदेशों को और वीरों के मान्य तथा दरिद्रों को वस्त्रादि दान अपने भृत्यों को निवास देना और सोमरस की सिद्धि को सदा करते हैं वे कीर्त्तिमान् होते हैं ॥१४॥

सोमस्येत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । सोमो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कुमारी कन्याओं को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सोमस्य रूपं क्रीतस्य परिस्रुत्परि षिच्यते ।
अश्विभ्यां दुग्धं भेषजमिन्द्रायैन्द्रꣳ सरस्वत्या ॥१५॥

पदार्थः—हे स्त्री लोगो ! जैसे (सरस्वत्या) विदुषी स्त्री से (क्रीतस्य) ग्रहण किए हुए (सोमस्य) सोमादि ओषधिगण का (परिस्रुत्) सब ओर से प्राप्त होने वाला रस (रूपम्) सुस्वरूप और (अश्विभ्याम्) वैदिक विद्या में पूर्ण दो विद्वानों के लिये (दुग्धम्) दुहा हुआ (भेषजम्) ओषधरूप दूध तथा (इन्द्राय) ऐश्वर्य चाहने वाले के लिये (ऐन्द्रम्) विद्युत्सम्बन्धी विशेष ज्ञान (परिषिच्यते) सब ओर से सिद्ध किया जाता है वैसे तुम भी आचरण करो ॥१५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब कुमारियों को योग्य है कि ब्रह्मचर्य से व्याकरण, धर्म्म, विद्या और आयुर्वेदादि को पढ़ स्वयंवर विवाह कर ओषधियों को और ओषधिवत् अन्न और दाल, कढ़ी आदि को अच्छा पका उत्तम रसों से युक्त कर, पति आदि को भोजन करा तथा स्वयं भोजन करके बल आरोग्य की सदा उन्नति किया करें ॥१५॥

आसन्दीत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य को कैसे कार्य्यं साधना चाहिये इस विषय का
उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।

आसन्दी रूपꣳ राजासन्द्यै वेद्यै कुम्भी सुराधानी ।
अन्तरऽ उत्तरवेद्या रूपं कारोतरो भिषक् ॥१६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को योग्य है कि यज्ञ के लिये (आसन्दी)

जो सब ओर से सेवन की जाती है वह (रूपम्) सुन्दर क्रिया (राजासन्द्यै) राजा लोग जिस में बैठते हैं उस (वेद्यै) सुख प्राप्ति करने वाली वेदि के अर्थ (कुम्भी) धान्यादि पदार्थों का आधार (सुराधानी) जिस में सोमरस धरा जाता है वह गगरी (अन्तरः) जिससे जीवन होता है वह अन्नादि पदार्थ (उत्तरवेद्याः) उत्तर की वेदी के (रूपम्) रूप को (कारोतरः) कर्मकारी और (भिषक्) वैद्य इन सब का संग्रह करो ॥१६॥

भावार्थः—मनुष्य जिस जिस कार्य के करने की इच्छा करे उस उस के समस्त साधनों का सञ्चय करे ॥१६॥

वेद्या वेदिरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

किन जनों के कार्य्य सिद्ध होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

वेद्या वेदिः समाप्यते बर्हिषा बर्हिरिन्द्रियम् ।
यूपेन यूप आप्यते प्रणीतोऽअग्निरग्निना ॥१७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् लोग (वेद्या) यज्ञ की सामग्री से (वेदिः) वेदि और (बर्हिषा) महान् पुरुषार्थ से (बर्हिः) बड़ा (इन्द्रियम्) धन (समाप्यते) अच्छी प्रकार प्राप्त किया जाता है (यूपेन) मिले हुए वा पृथक् पृथक् व्यवहार से (यूपः) मिला हुआ व्यवहार के यत्न का प्रकाश और (अग्निना) बिजुली आदि अग्नि से (प्रणीतः) अच्छे प्रकार संमिलित (अग्निः) अग्नि (आप्यते) प्राप्त कराया जाता है वैसे ही तुम लोग भी साधनों से साधन मिला कर सब सुखों को प्राप्त हो ॥१७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य उत्तम साधन से साध्य कार्य्य को सिद्ध करने की इच्छा करते हैं वे ही साध्य की सिद्धि करने वाले होते हैं ॥१७॥

हविर्धानमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । गृहपतिर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

स्त्री पुरुषों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

हविर्धानं यदश्विनाग्नीध्रं यत्सरस्वती इन्द्रायैन्द्रꣳ सदस्कृतं पत्नीशालं गार्हपत्यः ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे गृहस्थ पुरुषो ! जैसे विद्वान् (अश्विना) स्त्री और पुरुष (यत्) जो (हविर्धानम्) देने वा लेने योग्य पदार्थों का धारण जिसमें किया जाता वह और (यत्) जो (सरस्वती) विदुषी स्त्री (आग्नीध्रम्) ऋत्विज् का धारण करती हुई तथा

विद्वानों ने (इन्द्राय) ऐश्वर्य से सुख देने हारे पति के लिये (ऐन्द्रम्) ऐश्वर्य के सम्बन्धी (सदः) जिस में स्थित होते हैं उस सभा और (पत्नीशालम्) पत्नी की शाला घर को (कृतम्) किया है सो यह सब (गार्हपत्यः) गृहस्थ का संयोगी धर्म ही है वैसे उस सब कर्त्तव्य को तुम भी करो ॥१८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे ऋत्विज् लोग सामग्री का सञ्चय करके यज्ञ को शोभित करते हैं वैसे प्रीतियुक्त स्त्री पुरुष घर के कार्य्यों को नित्य सिद्ध किया करें ॥१८॥

प्रैषेभिरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। यज्ञो देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

कैसा विद्वान् सुख को प्राप्त होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रैषेभिः प्रैषानाप्नोत्याप्रीभिराप्रीर्यज्ञस्य।
प्रयाजेभिरनुयाजान्वषट्कारेभिराहुतीः ॥१९॥

पदार्थः—जो विद्वान् (प्रैषेभिः) भेजने रूप कर्मों से (प्रैषान्) भेजने योग्य भृत्यों को (आप्रीभिः) सब ओर से प्रसन्नता करने हारी क्रियाओं से (आप्रीः) सर्वथा प्रीति उत्पन्न करने हारी परिचारिका स्त्रियों को (प्रयाजेभिः) उत्तम यज्ञ के कर्मों से (अनुयाजान्) अनुकूल यज्ञ-पदार्थों को और (यज्ञस्य) यज्ञ की (वषट्कारेभिः) क्रियाओं से (आहुतिः) अग्नि में छोड़ने योग्य आहुतियों को प्राप्त होता है वह सुखी रहता है ॥१९॥

भावार्थः—जो सुशिक्षित सेवकों तथा सेविकाओं वाला साधनों और उपसाधनों से युक्त श्रेष्ठ कार्यों को करता है वह सब को सुखी करने में समर्थ होता है ॥१९॥

पशुभिरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। यजमानो देवता। भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पशुभिः पशूनाप्नोति पुरोडाशैर्हवीꣳष्या।
छन्दोभिः सामिधेनीर्याज्याभिर्वषट्कारान् ॥२०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे सद्गृहस्थ (पशुभिः) गवादि पशुओं से (पशून्) गवादि पशुओं को (पुरोडाशैः) पचन क्रियाओं से पके हुए उत्तम पदार्थों से (हवींषि) हवन करने योग्य उत्तम पदार्थों को (छन्दोभिः) गायत्री आदि छन्दों की विद्या से (सामिधेनीः) जिन से अग्नि प्रदीप्त हों उन सुन्दर समिधाओं को (याज्याभिः)

यज्ञ की क्रियाओं से (वषट्कारान्) जो धर्मयुक्त क्रिया को करते हैं उन को (आ, आप्नोति) प्राप्त होता है वैसे इन को तुम भी प्राप्त होओ ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो इस संसार में बहुत पशु वाला होम करके हुतशेष का भोक्ता वेदवित् और सत्यक्रिया का कर्त्ता मनुष्य होवे सो प्रशंसा को प्राप्त होता है ॥२०॥

धानाः करम्भ इत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। सोमो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

कौन पदार्थ होम के योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

धानाः करम्भः सक्तवः परीवापः पयो दधि।
सोमस्य रूपꣳ हविषऽआमिक्षा वाजिनम्मधु ॥२१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! तुम लोग (हविषः) होम करने योग्य (सोमस्य) यन्त्र द्वारा खींचने योग्य ओषधिरूप रस के (रूपम्) रूप को (धानाः) भुने हुए अन्न (करम्भः) मथन का साधन (सक्तवः) सत्तू (परीवापः) सब ओर से बीज का बोना (पयः) दूध (दधि) दही (आमिक्षा) दही दूध मीठे का मिलाया हुआ (वाजिनम्) प्रशस्त अन्नों की सम्बन्धी सार वस्तु (मधु) और सहत के गुण को जानो ॥२१॥

भावार्थः—जो पदार्थ पुष्टिकारक सुगन्धयुक्त मधुर और रोगनाशक गुणयुक्त हैं वे होम करने के योग्य हविःसंज्ञक हैं ॥२१॥

धानानामित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। यज्ञो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

कैसे मनुष्य नीरोग होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

धानानाꣳ रूपं कुवलं परीवापस्य गोधूमाः।
सक्तूनाꣳ रूपम्बदरमुपवाकाः करम्भस्य ॥२२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! तुम लोग (धानानाम्) भुंजे हुए जौ आदि अन्नों का (कुवलम्) कोमल बेर सा रूप (परीवापस्य) पिसान आदि का (गोधूमाः) गेहूं (रूपम्) रूप (सक्तूनाम्) सत्तुओं का (बदरम्) बेरफल के समान रूप (करम्भस्य) दही मिले हुए सत्तू का (उपवाकाः) समीप प्राप्त जो (रूपम्) रूप है ऐसा जाना करो ॥२२॥

भावार्थः—जो मनुष्य सब अन्नों का सुन्दर रूप करके भोजन करते और कराते हैं वे आरोग्य को प्राप्त होते हैं ॥२२॥

पयसो रूपमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। सोमो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पयसो रूपं यद्यवा दध्नो रूपं कर्कन्धूनि ।
सोमस्य रूपं वाजिनꣳ सौम्यस्य रूपमामिक्षा ॥२३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग (यत्) जो (यवाः) यव हैं उन को (पयसः) पानी वा दूध के (रूपम्) रूप (कर्कन्धूनि) मोटे पके हुए बेरी के फलों के समान (दध्नः) दही के (रूपम्) स्वरूप (वाजिनम्) बहुत अन्न के सार के समान (सोमस्य) सोम ओषधि के (रूपम्) स्वरूप और (आमिक्षा) दूध दही के संयोग से बने पदार्थ के समान (सौम्यस्य) सोमादि ओषधियों के सार होने के (रूपम्) स्वरूप को सिद्ध किया करो ॥२३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि जिस जिस अन्न का सुन्दररूप जिस प्रकार हो उस उस के रूप को उसी प्रकार सदा सिद्ध करें ॥२३॥

आ श्रावयेत्यस्य हैमवर्चिऋर्षिः । विद्वान् देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कैसे विद्वान् होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

आ श्रावयेति स्तोत्रियाः प्रत्याश्रावोऽअनुरूपः ।
यजेति धाय्यारूपं प्रगाथा येयजामहाः ॥२४॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! तू विद्यार्थियों को विद्या (आ, श्रावय) सब प्रकार से सुना जो (स्तोत्रियाः) स्तुति करने योग्य हैं उन को (प्रत्याश्रावः) पीछे सुनाया जाता है और (अनुरूपः) अनुकूल जैसा यज्ञ है वैसा (येयजामहाः) जो यज्ञ करते हैं (इति) इस प्रकार अर्थात् उन के समान (प्रगाथाः) जो अच्छे प्रकार गान किये जाते हैं उन को (यजेति) संगत कर इस प्रकार (धाय्यारूपम्) धारण करने योग्य रूप को यथावत् जानें ॥२४॥

भावार्थः—जो परस्पर प्रीति से विद्या के विषयों को सुनते और सुनाते हैं वे विद्वान् होते हैं ॥२४॥

अर्द्धऽऋचैरित्यस्य हैमवर्चिऋर्षिः । सोमो देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अध्यापकों को कैसा होना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अर्द्धऽऋृचैरुक्थानाᳬं रूपं पदैराप्नोति निविदः ।
प्रणवैः शस्त्राणाᳬं रूपं पयसा सोमऽआप्यते ॥२५॥

पदार्थः—जो विद्वान् (अर्द्धऋचैः) ऋचाओं के अर्ध भागों से (उक्थानाम्) कथन करने योग्य वैदिक स्तोत्रों का (रूपम्) स्वरूप (पदैः) सुबन्त तिङन्त पदों और (प्रणवैः) ओंकारों से (शस्त्राणाम्) शस्त्रों का (रूपम्) स्वरूप और (निविदः) जो निश्चय से प्राप्त होते हैं उन को (आप्नोति) प्राप्त होता है वा जिस विद्वान् से (पयसा) जल के साथ (सोमः) सोम ओषधि का रस (आप्यते) प्राप्त होता है सो वेद का जानने वाला कहाता है ॥२५॥

भावार्थः—जो विद्वान् के समीप वस के पढ़ के वेदस्थ पद वाक्य मन्त्र विभागों के शब्द अर्थ और सम्बन्धों का यथावद्विज्ञान करते हैं वे इस संसार में अध्यापक होते हैं ॥२५॥

अश्विभ्यामित्यस्य हैमवर्चिऋर्षिः । यज्ञो देवता । अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

सत्पुरुषों को कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अश्विभ्यां प्रातःसवनमिन्द्रेणैन्द्रं माध्यन्दिनम् ।
वैश्वदेवᳬं सरस्वत्या तृतीयमाप्तᳬं सवनम् ॥२६॥

पदार्थः—जिन मनुष्यों ने (अश्विभ्याम्) सूर्य्य चन्द्रमा से प्रथम (प्रातःसवनम्) प्रातःकाल यज्ञक्रिया की प्रेरणा (इन्द्रेण) बिजुली से (ऐन्द्रम्) ऐश्वर्य्यकारक दूसरा (माध्यन्दिनम्) मध्याह्न में होने और (सवनम्) आरोग्यता करने वाला होमादि कर्म और (सरस्वत्या) सत्यवाणी से (वैश्वदेवम्) सम्पूर्ण विद्वानों के सत्काररूप (तृतीयम्) तीसरा सवन अर्थात् सायङ्काल की क्रिया को यथावत् (आप्तम्) प्राप्त किया है वे जगत् के उपकारक हैं ॥२६॥

भावार्थः—जो भूत भविष्यत् वर्त्तमान इन तीनों कालों में सब मनुष्यादि प्राणियों का हित करते हैं वे जगत् में सत्पुरुष होते हैं ॥२६॥

वायव्यैरित्यस्य हैमवर्चिऋर्षिः । यज्ञो देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

विद्वान् को कैसा होना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वायव्यैर्वायव्यान्याप्नोति सतेन द्रोणकलशम् ।
कुम्भीभ्यामम्भृणौ सुते स्थालीभिः स्थालीराप्नोति ॥२७॥

पदार्थः—जो विद्वान् (वायव्यैः) वायु में होने वाले गुणों वा वायु जिन का देवता दिव्यगुणोत्पादक है उन पदार्थों से (वायव्यानि) वायु में होने वा वायु देवता वाले कर्मों को (सतेन) विभागयुक्त कर्म से (द्रोणकलशम्) द्रोणपरिमाण और कलश को (आप्नोति) प्राप्त होता है (कुम्भीभ्याम्) धान्य और जल के पात्रों से (अम्भृणौ) जिन से जल धारण किया जाता है उन (सुते) सिद्ध किये हुए दो प्रकार के रसों को (स्थालीभिः) जिन में पदार्थ धरते वा पकाते हैं उन स्थालियों से (स्थालीः) स्थालियों को (आप्नोति) प्राप्त होता है वही धनाढ्य होता है ॥२७॥

भावार्थः— कोई भी मनुष्य वायु के कर्मों को न जान कर इस के कारण के विना परिमाणविद्या को इस विद्या के विना पाकविद्या को और इस के विना अन्न के संस्कार की क्रिया को प्राप्त नहीं हो सकता ॥२७॥

यजुर्भिरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

सब लोग वेद का अभ्यास करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यजुर्भिराप्यन्ते ग्रहा॑ ग्रहैः स्तोमा॑श्च विष्टुतीः ।
छन्दो॑भिरुक्थाशस्त्राणि सा॒म्नाव॑भृथऽआप्यते ॥२८॥

पदार्थः— हे मनुष्यो ! तुम लोगों को जिन (यजुर्भिः) यजुर्वेदोक्त विद्या के अवयवों से (ग्रहाः) जिन से समस्त क्रियाकाण्ड का ग्रहण किया जाता है वे व्यवहार (ग्रहैः) ग्रहों से (स्तोमाः) पदार्थों के गुणों की प्रशंसा (च) और (विष्टुतीः) विविध स्तुतियां (छन्दोभिः) गायत्र्यादि छन्द वा विद्वान् और गुणों की स्तुति करने वालों से (उक्थाशस्त्राणि) कथन करने योग्य वेद के स्तोत्र और शस्त्र (आप्यन्ते) प्राप्त होते हैं तथा (साम्ना) सामवेद से (अवभृथः) शोधन (आप्यते) प्राप्त होता है उन का उपयोग यथावत् करना चाहिये ॥२८॥

भावार्थः—कोई भी मनुष्य वेदाभ्यास के विना सम्पूर्ण साङ्गोपाङ्ग वेदविद्याओं को प्राप्त होने योग्य नहीं होता ॥२८॥

इडाभिरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । इडा देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

गृहस्थ पुरुषों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इडा॑भिर्भ॒क्षाना॑प्नोति सूक्तवा॒केना॒शिषः॑ ।
शंयुना॑ पत्नीसं॒याजान्त्स॑मिष्टयजु॒षा॑ स॒ᳪं॑स्थाम् ॥२९॥

पदार्थः—जो विद्वान् (इडाभिः) पृथिवियों से (भक्षान्) भक्षण करने योग्य

के पति और (अग्निम्) पावक के समान शत्रु को जलाने हारे योद्धा को (जिन्व) प्रसन्न कीजिये ॥३३॥

भावार्थः—जो विद्वान् मनुष्य महौषधियों के सारों को आप सेवन कर अन्यों को सेवन कराके निरन्तर आनन्द बढ़ावें वे धन्यवाद के योग्य हैं ॥३३॥

यमश्विनेत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कैसे मनुष्य सुखी होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

यमश्विना नमुचेरासुरादधि सरस्वत्यसुनोदिन्द्रियाय ।
इमन्तꣳ शुक्रम्मधुमन्तमिन्दुꣳ सोमꣳ राजानमिह भक्षयामि ॥३४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (इह) इस संसार में (इन्द्रियाय) धन और इन्द्रिय-बल के लिये (यम्) जिस (नमुचेः) जल को जो नहीं छोड़ता (आसुरात्) उस मेघ-व्यवहार से (अधि) अधिक (शुक्रम्) शीघ्रबलकारी (मधुमन्तम्) उत्तम मधुरादिगुण-युक्त (इन्दुम्) परमैश्वर्य्य करने हारे (राजानम्) प्रकाशमान (सोमम्) पुरुषार्थ में प्रेरक सोम ओषधि को (सरस्वती) विदुषी स्त्री (असुनोत्) सिद्ध करती तथा (अश्विना) सभा और सेना के पति सिद्ध करते हैं (तम्, इमम्) उस इस को मैं (भक्षयामि) भोग करता और भोगवाता हूँ ॥३४॥

भावार्थः—जो मनुष्य उत्तम अन्न रस के भोजन करने हारे होते हैं वे बलयुक्त इन्द्रियों वाले होकर सदा आनन्द को भोगते हैं ॥३४॥

यदत्रमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । सोमो देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को चाहिये कि सब को आनन्द करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यदत्र रिप्तꣳ रसिनः सुतस्य यदिन्द्रोऽअपिबच्छचीभिः ।
अहं तदस्य मनसा शिवेन सोमꣳ राजानमिह भक्षयामि ॥३५॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! जैसे (अहम्) मैं (इह) इस संसार में (अस्य) इस (सुतस्य) सिद्ध किये हुए (रसिनः) प्रशंसित रसयुक्त पदार्थ का (यत्) जो भाग (अत्र) इस संसार ही में (रिप्तम्) लिप्त प्राप्त है वा (इन्द्रः) सूर्य्य (शचीभिः) आकर्षणादि कर्मों के साथ (यत्) जो (अपिबत्) पीता है (तत्) उस को और (राजानम्) प्रकाशमान (सोमम्) ओषधियों के रस को (शिवेन) कल्याणकारक (मनसा)

मन से (भक्षयामि) भक्षण करता और पीता हूं वैसे तुम भी भक्षण किया और पिया करो ॥३५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य अपनी किरणों से जलों का आकर्षण कर और वर्षा के सब को सुखी करता है वैसे ही अनकूल क्रियाओं से रसों का सेवन अच्छे प्रकार करके बल को बढ़ा कीर्ति से सब को तुम लोग आनन्दित करो ॥३५॥

पितृभ्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । पितरो देवताः । निचृदष्टि त्रिष्टुप् छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

माता पिता पुत्रादि को परस्पर कैसे वर्त्तना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः । प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः । अक्षन् पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः पितरः शुन्धध्वम् ॥३६॥

पदार्थः—हम पुत्र शिष्यादि मनुष्य (स्वधायिभ्यः) जिस स्वधा अन्न और जल को प्राप्त होने के स्वभाव वाले (पितृभ्यः) ज्ञानियों को (स्वधा) अन्न देते और (नमः) सत्कार करते (स्वधायिभ्यः) बहुत अन्न को चाहने वाले (पितामहेभ्यः) पिता के पिताओं को (स्वधा) सुन्दर अन्न देते तथा (नमः) सत्कार करते और (स्वधायिभ्यः) उत्तम अन्न के चाहने वाले (प्रपितामहेभ्यः) पितामह के पिताओं को (स्वधा) अन्न देते और उन का (नमः) सत्कार करते हैं वे हे (पितरः) पिता आदि ज्ञानियो ! आप लोग हम से अच्छे प्रकार बनाये हुए अन्न आदि का (अक्षन्) भोजन कीजिये । हे (पितरः) अध्यापक लोगो ! आप आनन्दित होके हम को (अमीमदन्त) आनन्दयुक्त कीजिये । हे (पितरः) उपदेशक लोगो ! आप तृप्त होकर हम को (अतीतृपन्त) तृप्त कीजिये । हे (पितरः) विद्वानो ! आप लोग शुद्ध होकर हम को (शुन्धध्वम्) शुद्ध कीजिये ॥३६॥

भावार्थः—हे पुत्र शिष्य और पुत्रवधू आदि लोगो ! तुम उत्तम अन्नादि पदार्थों से पिता आदि वृद्धों का निरन्तर सत्कार किया करो तथा पितर लोग तुम को भी आनन्दित करें जैसे माता पितादि बाल्यावस्था में तुम्हारी सेवा करते हैं वैसे ही तुम लोग वृद्धावस्था में उनकी सेवा यथावत् किया करो ॥३६॥

अन्नादि पदार्थों को (सूक्तवाकेन) जो सुन्दरता से कहा जाय उस के कहने से (आशिषः) इच्छा-सिद्धियों को (शंयुना) जिस से सुख प्राप्त होता है । उस से (पत्नी-संयाजान्) जो पत्नी के साथ मिलते हैं उन को (समिष्टयजुषा) अच्छे इष्टसिद्धि करने वाले यजुर्वेद के कर्म से (संस्थाम्) अच्छे प्रकार रहने के स्थान को (आप्नोति) प्राप्त होता है वह सुखी क्यों न होवे ॥२९॥

भावार्थः—गृहस्थ लोग वेदविज्ञान ही से पृथिवी के राज्यभोग की इच्छा और उनकी सिद्धि को प्राप्त होवें ॥२९॥

व्रतेनेत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यों को सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥३०॥

पदार्थः—जो बालक कन्या वा पुरुष (व्रतेन) ब्रह्मचर्यादि नियमों से (दीक्षाम्) ब्रह्मचर्य्यादि सत्कर्मों के आरम्भरूप दीक्षा को (आप्नोति) प्राप्त होता है (दीक्षया) उस दीक्षा से (दक्षिणाम्) प्रतिष्ठा और धन को (आप्नोति) प्राप्त होता है (दक्षिणा) उस प्रतिष्ठा वा धनरूप से (श्रद्धाम्) सत्य के धारण में प्रीतिरूप श्रद्धा को (आप्नोति) प्राप्त होता है वा उस (श्रद्धया) श्रद्धा से जिस ने (सत्यम्) नित्य पदार्थ वा व्यवहारों में उत्तम परमेश्वर वा धर्म की (आप्यते) प्राप्ति की है वह सुखी होता है ॥३०॥

भावार्थः—कोई भी मनुष्य विद्या अच्छी शिक्षा और श्रद्धा के विना सत्य व्यवहारों को प्राप्त होने और दुष्ट व्यवहारों के छोड़ने को समर्थ नहीं होता ॥३०॥

एतावद्रूपमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

एतावद्रूपं यज्ञस्य यद्देवैर्ब्रह्मणा कृतम् ।
तदेतत्सर्वमाप्नोति यज्ञे सौत्रामणी सुते ॥३१॥

पदार्थः—जो मनुष्य (यत्) जिस (देवैः) विद्वानों और (ब्रह्मणा) परमेश्वर वा चार वेदों ने (यज्ञस्य) यज्ञ के (एतावत्) इतने (रूपम्) स्वरूप को (कृतम्) सिद्ध किया वा प्रकाशित किया है (तत्) उस (एतत्) इस (सर्वम्) समस्त को (सौत्रामणी)

जिस में यज्ञोपवीतादि ग्रन्थियुक्त सूत्र धारण किये जाते हैं उस (सुते) सिद्ध किये हुए (यज्ञे) यज्ञ में (आप्नोति) प्राप्त होता है वह द्विज होने का आरम्भ करता है ॥३१॥

भावार्थः—विद्वान् मनुष्यों को योग्य है कि जितना यज्ञ के अनुष्ठान का अनुसन्धान किया जाता है उतना ही अनुष्ठान करके बड़े उत्तम यज्ञ के फल को प्राप्त होवें ॥३१॥

सुरावन्तमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदतिजगतीच्छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सुरावन्तं बर्हिषदꣳ सुवीरं यज्ञꣳ हिन्वन्ति महिषा नमोभिः ।
दधानाः सोमन्दिवि देवतासु मदेमेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः ॥३२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (महिषाः) महान् पूजनीय (स्वर्काः) उत्तम अन्न आदि पदार्थों से युक्त (यजमानाः) यज्ञ करने वाले विद्वान् लोग (नमोभिः) अन्नादि से (सुरावन्तम्) उत्तम सोमरसयुक्त (बर्हिषदम्) जो प्रशस्त आकाश में स्थिर होता उस (सुवीरम्) उत्तम शरीर तथा आत्मा के बल से युक्त वीरों की प्राप्ति कराने हारे (यज्ञम्) यज्ञ को (हिन्वन्ति) बढ़ाते हैं वे और (दिवि) शुद्ध व्यवहारों में तथा (देवतासु) विद्वानों में (सोमम्) ऐश्वर्य्य और (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्ययुक्त जन को (दधानाः) धारण करते हुए हम लोग (मदेम) आनन्दित हों ॥३२॥

भावार्थः—जो मनुष्य अन्नादि ऐश्वर्य का सञ्चय कर उससे विद्वानों को प्रसन्न और सत्य विद्याओं में शिक्षा ग्रहण कर के सब के हितैषी हों व इस संसार में पुत्र स्त्री के आनन्द को प्राप्त होवें ॥३२॥

यस्ते रस इत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कैसे पुरुष धन्यवाद के योग्य हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

यस्ते रसः सम्भृतऽओषधीषु सोमस्य शुष्मः सुरया सुतस्य ।
तेन जिन्व यजमानं मदेन सरस्वतीमश्विनाविन्द्रमग्निम् ॥३३॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! (यः) जो (ते) आप का (ओषधीषु) सोमलतादि ओषधियों में वर्त्तमान (सुतस्य) सिद्ध किये हुए (सोमस्य) अंशुमान् आदि चौबीस प्रकार के भेद वाले सोम का (सुरया) उत्तम दानशील स्त्री ने (सम्भृतः) अच्छे प्रकार धारण किया हुआ (शुष्मः) बलकारी (रसः) रस है (तेन) उस (मदेन) आनन्ददायक रस से (यजमानम्) सब को सुख देने वाले यजमान (सरस्वतीम्) उत्तम विद्यायुक्त स्त्री (अश्विनौ) विद्याव्याप्त अध्यापक और उपदेशक (इन्द्रम्) ऐश्वर्यंयुक्त सभा और सेना

के पति और (अग्निम्) पावक के समान शत्रु को जलाने हारे योद्धा को (जिन्व) प्रसन्न कीजिये ॥३३॥

भावार्थः—जो विद्वान् मनुष्य महौषधियों के सारों को आप सेवन कर अन्यों को सेवन कराके निरन्तर आनन्द बढ़ावें वे धन्यवाद के योग्य हैं ॥३३॥

यमश्विनेत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कैसे मनुष्य सुखी होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

यमश्विना नमुचेरासुरादधि सरस्वत्यसुनोदिन्द्रियाय ।
इमन्तꣳ शुक्रम्मधुमन्तमिन्दुꣳ सोमꣳ राजानमिह भक्षयामि ॥३४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (इह) इस संसार में (इन्द्रियाय) धन और इन्द्रिय-बल के लिये (यम्) जिस (नमुचेः) जल को जो नहीं छोड़ता (आसुरात्) उस मेघ-व्यवहार से (अधि) अधिक (शुक्रम्) शीघ्रबलकारी (मधुमन्तम्) उत्तम मधुरादिगुण-युक्त (इन्दुम्) परमैश्वर्य्य करने हारे (राजानम्) प्रकाशमान (सोमम्) पुरुषार्थ में प्रेरक सोम ओषधि को (सरस्वती) विदुषी स्त्री (असुनोत्) सिद्ध करती तथा (अश्विना) सभा और सेना के पति सिद्ध करते हैं (तम्, इमम्) उस इस को मैं (भक्षयामि) भोग करता और भोगवाता हूं ॥३४॥

भावार्थः—जो मनुष्य उत्तम अन्न रस के भोजन करने हारे होते हैं वे बलयुक्त इन्द्रियों वाले होकर सदा आनन्द को भोगते हैं ॥३४॥

यदत्रमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । सोमो देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को चाहिये कि सब को आनन्द करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यदत्र रिप्तꣳ रसिनः सुतस्य यदिन्द्रोऽअपिबच्छचीभिः ।
अहं तदस्य मनसा शिवेन सोमꣳ राजानमिह भक्षयामि ॥३५॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! जैसे (अहम्) मैं (इह) इस संसार में (अस्य) इस (सुतस्य) सिद्ध किये हुए (रसिनः) प्रशंसित रसयुक्त पदार्थ का (यत्) जो भाग (अत्र) इस संसार ही में (रिप्तम्) लिप्त प्राप्त है वा (इन्द्रः) सूर्य्य (शचीभिः) आकर्षणादि कर्मों के साथ (यत्) जो (अपिबत्) पीता है (तत्) उस को और (राजानम्) प्रकाशमान (सोमम्) ओषधियों के रस को (शिवेन) कल्याणकारक (मनसा)

मन से (भक्षयामि) भक्षण करता और पीता हूं वैसे तुम भी भक्षण किया और पिया करो ॥३५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य अपनी किरणों से जलों का आकर्षण कर और वर्षा के सब को सुखी करता है वैसे ही अनकूल क्रियाओं से रसों का सेवन अच्छे प्रकार करके वल को बढ़ा कीर्ति से सब को तुम लोग आनन्दित करो ॥३५॥

पितृभ्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । पितरो देवताः । निचृवष्टि त्रिष्टुप् छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

माता पिता पुत्रादि को परस्पर कैसे वर्त्तना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः। प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः । अक्षन् पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः पितरः शुन्धध्वम् ॥३६॥

पदार्थः—हम पुत्र शिष्यादि मनुष्य (स्वधायिभ्यः) जिस स्वधा अन्न और जल को प्राप्त होने के स्वभाव वाले (पितृभ्यः) ज्ञानियों को (स्वधा) अन्न देते और (नमः) सत्कार करते (स्वधायिभ्यः) बहुत अन्न को चाहने वाले (पितामहेभ्यः) पिता के पिताओं को (स्वधा) सुन्दर अन्न देते तथा (नमः) सत्कार करते और (स्वधायिभ्यः) उत्तम अन्न के चाहने वाले (प्रपितामहेभ्यः) पितामह के पिताओं को (स्वधा) अन्न देते और उन का (नमः) सत्कार करते हैं वे हे (पितरः) पिता आदि ज्ञानियो ! आप लोग हम से अच्छे प्रकार बनाये हुए अन्न आदि का (अक्षन्) भोजन कीजिये । हे (पितरः) अध्यापक लोगो ! आप आनन्दित होके हम को (अमीमदन्त) आनन्दयुक्त कीजिये । हे (पितरः) उपदेशक लोगो ! आप तृप्त होकर हम को (अतीतृपन्त) तृप्त कीजिये । हे (पितरः) विद्वानो ! आप लोग शुद्ध होकर हम को (शुन्धध्वम्) शुद्ध कीजिये ॥३६॥

भावार्थः—हे पुत्र शिष्य और पुत्रवधू आदि लोगो ! तुम उत्तम अन्नादि पदार्थों से पिता आदि वृद्धों का निरन्तर सत्कार किया करो तथा पितर लोग तुम को भी आनन्दित करें जैसे माता पितादि बाल्यावस्था में तुम्हारी सेवा करते हैं वैसे ही तुम लोग वृद्धावस्था में उनकी सेवा यथावत् किया करो ॥३६॥

पुनन्तु मा पितर इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सरस्वती देवता । भुरिगष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः । पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा । पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः । पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै ॥३७॥

पदार्थः—(सोम्यासः) ऐश्वर्य से युक्त वा चन्द्रमा के तुल्य शान्त (पितरः) ज्ञान देने से पालक पितर लोग (पवित्रेण) शुद्ध (शतायुषा) सौ वर्ष की आयु से (मा) मुझ को (पुनन्तु) पवित्र करें अतिबुद्धिमान् चन्द्रमा के तुल्य आनन्दकर्त्ता (पितामहाः) पिताओं के पिता उस अतिशुद्ध सौ वर्षयुक्त आयु से (मा) मुझ को (पुनन्तु) पवित्र करें । ऐश्वर्यदाता चन्द्रमा के तुल्य शीतल स्वभाव वाले (प्रपितामहाः) पितामहों के पिता लोग शुद्ध सौ वर्ष पर्यन्त जीवन से (मा) मुझ को (पुनन्तु) पवित्र करें । विद्यादि ऐश्वर्ययुक्त वा शान्तस्वभाव (पितामहाः) पिताओं के पिता (पवित्रेण) अतीव शुद्धानन्दयुक्त (शतायुषा) शतवर्षपर्यन्त आयु से मुझ को (पुनन्तु) पवित्राचरणयुक्त करें । सुन्दर ऐश्वर्य के दाता वा शान्तियुक्त (प्रपितामहाः) पितामहों के पिता पवित्र धर्माचरणयुक्त सौ वर्ष पर्यन्त आयु से मुझ को (पुनन्तु) पवित्र करें जिस से मैं (विश्वम्) सम्पूर्ण (आयुः) जीवन को (व्यश्नवै) प्राप्त होऊं ॥३७॥

भावार्थः—पिता, पितामह और प्रपितामहों को योग्य है कि अपने कन्या और पुत्रों को ब्रह्मचर्य, अच्छी शिक्षा और धर्मोपदेश से संयुक्त कर के विद्या और उत्तम शील से युक्त करें । सन्तानों को योग्य है कि पितादि की सेवा और अनुकूल आचरण से पिता आदि सभों की नित्य सेवा करें, ऐसे परस्पर उपकार से गृहाश्रम में आनन्द के साथ वर्त्तना चाहिये ॥३७॥

अग्न आयूंषि इत्यस्य वैखानस ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

अग्नऽआयूंषि पवसऽआ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥३८॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् पिता, पितामह और प्रपितामह ! जो आप (नः) हमारे (आयूंषि) आयुर्दाओं को (पवसे) पवित्र करें सो आप (ऊर्जम्) पराक्रम (च) और (इषम्) इच्छासिद्धि को (आ, सुव) चारों ओर से सिद्ध करिये और दूर और

निकट वसने हारे (वृच्छुनाम्) दुष्ट कुत्तों के समान मनुष्यों के सङ्ग को (बाधस्व) छुड़ा दीजिये ॥

भावार्थः—पिता आदि लोग अपने सन्तानों में दीर्घ आयु पराक्रम और शुभ इच्छा का धारण कराके अपने सन्तानों को दुष्टों के सङ्ग से रोक और श्रेष्ठों के सङ्ग में प्रवृत्त करा के धार्मिक चिरञ्जीवी करें जिससे वे वृद्धावस्था में भी अप्रियाचरण कभी न करें ॥३८॥

पुनन्तु मा देवजना इत्यस्य वैखानस ऋषिः। विद्वांसो देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥३९॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) उत्पन्न हुए जनों में ज्ञानी विद्वन् ! जैसे (देवजनाः) विद्वान् जन (मनसा) विज्ञान और प्रीति से (मा) मुझ को (पुनन्तु) पवित्र करें और हमारी (धियः) बुद्धियों को (पुनन्तु) पवित्र करें और (विश्वा) सम्पूर्ण (भूतानि) भूत प्राणिमात्र मुझ को (पुनन्तु) पवित्र करें वैसे आप (मा) मुझ को (पुनीहि) पवित्र कीजिये ॥३९॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुष और विदुषी स्त्रियों का मुख्य कर्त्तव्य यही है कि जो पुत्र और पुत्रियों को ब्रह्मचर्य और सुशिक्षा से विद्वान् और विदुषी सुन्दर शीलयुक्त निरन्तर किया करें ॥३९॥

पवित्रेणेत्यस्य वैखानस ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत्।
अग्ने क्रत्वा क्रतूँ२ऽरनु ॥४०॥

पदार्थः—हे (दीद्यत्) प्रकाशमान (देव) विद्या के देने हारे (अग्ने) विद्वन् ! आप (पवित्रेण) शुद्ध (शुक्रेण) वीर्य पराक्रम से स्वयं पवित्र होकर (मा) मुझ को इस से (अनु, पुनीहि) पीछे पवित्र कर अपनी (क्रत्वा) बुद्धि वा कर्म से अपनी प्रज्ञा और कर्म को पवित्र कर के हमारी (क्रतून्) बुद्धियों वा कर्मों को पुनः पुनः पवित्र किया करो ॥४०॥

भावार्थः—पिता अध्यापक और उपदेशक लोग स्वयं धार्मिक और

विद्वान् होकर अपने सन्तानों को भी ऐसे ही धार्मिक योग्य विद्वान् करें ॥४०॥

यत्त इत्यस्य वैखानस ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्यों को कैसे शुद्ध होना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यत्ते प॒वित्र॑म॒र्चिष्यग्ने॒ वित॑तमन्त॒रा । ब्रह्म॒ तेन॑ पुनातु मा ॥४१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) स्वप्रकाशस्वरूप जगदीश्वर (ते) तेरे (अर्चिषि) सत्कार करने योग्य शुद्ध तेजःस्वरूप में (अन्तरा) सब से भिन्न (यत्) जो (विततम्) विस्तृत सब में व्याप्त (पवित्रम्) शुद्धस्वरूप (ब्रह्म) उत्तम वेद विद्या है (तेन) उस से (मा) मुझ को आप (पुनातु) पवित्र कीजिये ॥४१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो देवों का देव पवित्रों का पवित्र व्याप्तों में व्याप्त अन्तर्यामी ईश्वर और उस की विद्या वेद है उस के अनुकूल आचरण से निरन्तर पवित्र हूजिये ॥४१॥

पवमान इत्यस्य वैखानस ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को पुत्रादि कैसे पवित्र करने चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पव॑मान॒: सो॒ऽअ॒द्य नः॑ प॒वित्रे॑ण॒ विच॑र्षणिः ।

यः पोता॒ स पु॑नातु मा ॥४२॥

पदार्थः—(यः) जो जगदीश्वर (नः) हमारे मध्य में (पवित्रेण) शुद्ध आचरण से (पवमानः) पवित्र (विचर्षणिः) विविध विद्याओं का दाता है (सः) सो (अद्य) आज हम को पवित्र करने वाला और हमारा उपदेशक है (सः) सो (पोता) पवित्रस्वरूप परमात्मा (मा) मुझ को (पुनातु) पवित्र करे ॥४२॥

भावार्थः—मनुष्य लोग ईश्वर के समान धार्मिक होकर अपने सन्तानों को धर्मात्मा करें ऐसे किये विना अन्य मनुष्यों को भी वे पवित्र नहीं कर सकते ॥४२॥

उभाभ्यामित्यस्य वैखानस ऋषिः । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्यों को अधर्म से कैसे डरना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उ॒भाभ्यां॑न्देव॒ सवितः प॒वित्रे॑ण स॒वेन॑ च ।

मा पु॑नीहि वि॒श्वतः॑ ॥४३॥

पदार्थः—हे (देव) सुख के देने हारे (सवितः) सत्यकर्मों में प्रेरक जगदीश्वर आप (पवित्रेण) पवित्र वर्त्ताव (च) और (सवेन) सकलैश्वर्य्य तथा (उभाभ्याम्) विद्या और पुरुषार्थ से (विश्वतः) सब ओर से (माम्) मुझ को (पुनीहि) पवित्र कीजिये ॥४३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो ईश्वर सब मनुष्यों को शुद्धि और धर्म को ग्रहण कराता है उसी का आश्रय कर के अधर्माचरण से सदा भय किया करो ॥४३॥

वैश्वदेवीत्यस्य वैखानस ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

राजा को कैसे राज्य बढ़ाना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वैश्वदेवी पुनती देव्यागाद्यस्यामिमा बह्व्यस्तन्वो वीतपृष्ठाः ।
तया मदन्तः सधमादेषु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥४४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (वैश्वदेवी) सब विदुषी स्त्रियों में उत्तम (पुनती) सब की पवित्रता करती हुई (देवी) सकल विद्या और धर्म के आचरण से प्रकाशमान विद्याओं को पढ़ाने हारी ब्रह्मचारिणी कन्या हम को (आ, अगात्) प्राप्त होवे (यस्याम्) जिन के होने में (इमाः) ये (बह्व्यः) बहुतसी (तन्व) विस्तृत विद्यायुक्त (वीतपृष्ठाः) विविध प्रश्नों को जाननेहारी हों (तया) उस से अच्छी शिक्षा को प्राप्त भार्य्याओं को प्राप्त होकर (वयम्) हम लोग (सधमादेषु) समान स्थानों में (मदन्तः) आनन्दयुक्त हुए (रयीणाम्) धनादि ऐश्वर्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ॥४४॥

भावार्थः—जैसे राजा सब कन्याओं को पढ़ाने के लिये पूर्ण विद्या वाली स्त्रियों को नियुक्त करके सब बालिकाओं को पूर्ण विद्या और सुशिक्षायुक्त करें, वैसे ही बालकों को भी किया करे जब ये सब पूर्णयुवावस्था वाले हों तभी स्वयंवर विवाह करावे ऐसे राज्य की वृद्धि को सदा किया करें ॥४४॥

ये समाना इत्यस्य वैखानस ऋषिः । पितरो देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कहां मनुष्य सुखपूर्वक निवास करते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये ।
तेषां लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम् ॥४५॥

पदार्थः—(ये) जो (समानाः) सदृश (समनसः) तुल्य विज्ञान युक्त (पितरः) प्रजा के रक्षक लोग (यमराज्ये) यथावत् न्यायकारी सभाधीश राजा के राज्य में हैं (तेषाम्) उन का (लोकः) सभा का दर्शन (स्वधा) अन्न (नमः) सत्कार और (यज्ञः) प्राप्त होने योग्य न्याय (देवेषु) विद्वानों में (कल्पताम्) समर्थ होवे ॥४५॥

भावार्थः—जहां बहुदर्शी अन्नादि ऐश्वर्य से संयुक्त सज्जनों से सत्कार को प्राप्त एक धर्म ही में जिन की निष्ठा है उन विद्वानों की सभा सत्य-न्याय को करती है उसी राज्य में सब मनुष्य ऐश्वर्य और सुख में निवास करते हैं ॥४५॥

ये समाना इत्यस्य वैखानस ऋषिः । श्रीर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

माता पिता और सन्तान आपस में कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ये स॒मा॒नाः सम॑नसो जी॒वा जी॒वेषु॑ माम॒काः ।
तेषा॒ᳬ श्रीर्मयि॑ कल्पताम॒स्मिँल्लो॒के श॒तᳬ समाः॑ ॥४६॥

पदार्थः—(ये) जो (अस्मिन्) इस (लोके) लोक में (जीवेषु) जीवते हुओं में (समानाः) समान गुण कर्म स्वभाव वाले (समनसः) समान धर्म में मन रखने हारे (मामकाः) मेरे (जीवाः) जीते हुए पिता आदि हैं (तेषाम्) उन की (श्रीः) लक्ष्मी (मयि) मेरे समीप (शतम्) सौ (समाः) वर्षपर्यन्त (कल्पताम्) समर्थ होवे ॥४६॥

भावार्थः—सन्तान लोग जबतक पिता आदि जीवें तबतक उनकी सेवा किया करें पुत्र लोग जबतक पिता आदि की सेवा करें तबतक वे सत्कार के योग्य होवें और जो पिता आदि का धनादि वस्तु हो वह पुत्रों और जो पुत्रों का हो वह पिता आदि का रहे ॥४६॥

द्वे सृती इत्यस्य वैखानस ऋषिः । पितरो देवताः । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

जीवों के दो मार्ग हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

द्वे सृ॒तीऽअ॑शृणवं पि॒तॄ॒णाम॒हं दे॒वाना॑मु॒त मर्त्या॑नाम् ।
ताभ्या॑मि॒दं विश्व॒मेज॒त्समे॑ति॒ यद॑न्त॒रा पि॒तरं॑ मा॒तरं॑ च ॥४७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (अहम्) मैं जो (पितृणाम्) पिता आदि (मर्त्यानाम्) मनुष्यों (च) और (देवानाम्) विद्वानों की (द्वे) दो गतियों (सृती) जिन में आते जाते अर्थात् जन्म मरण को प्राप्त होते हैं उनको (अशृणवम्) सुनता हूं (ताभ्याम्) उन दोनों गतियों से (इदम्) यह (विश्वम्) सब जगत् (एजत्) चलायमान हुआ (समेति) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है (उत) और (यत्) जो (पितरम्) पिता और (मातरम्)

माता से (अन्तरा) पृथक् होकर दूसरे शरीर से अन्य माता पिता को प्राप्त होता है सो यह तुम लोग जानो ॥४७॥

भावार्थः—दो ही जीवों की गति हैं एक माता पिता से जन्म को प्राप्त होकर संसार में विषय-सुख के भोगरूप और दूसरी विद्वानों के सङ्ग आदि से मुक्ति-सुख के भोगरूप है, इन दोनों गतियों के साथ ही सब प्राणी विचरते हैं ॥४७॥

इदं हविरित्यस्य वैखानस ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

सन्तानों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इदं हविः प्रजननं मेऽअस्तु दशवीरꣳ सर्वगणꣳ स्वस्तये । आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि । अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतोऽअस्मासु धत्त ॥४८॥

पदार्थः—(अग्निः) अग्नि के समान प्रकाशमान पति (मे) मेरे लिये (बहुलाम्) बहुत सुख देनेवाली (प्रजाम्) प्रजा को (करोतु) करे (मे) मेरा जो (इदम्) यह (प्रजननम्) उत्पत्ति करने का निमित्त (हविः) लेने देने योग्य (दशवीरम्) दश सन्तानों का उत्पन्न करने हारा (सर्वगणम्) सब समुदायों से सहित (आत्मसनि) जिससे आत्मा का सेवन (प्रजासनि) प्रजा का सेवन (पशुसनि) पशु का सेवन (लोकसनि) लोकों का अच्छे प्रकार सेवन और (अभयसनि) अभय का दानरूप कर्म होता है उस संतान को करे वह (स्वस्तये) सुख के लिये (अस्तु) होवे । हे माता पिता आदि लोगो ! आप (अस्मासु) हमारे बीच में प्रजा (अन्नम्) अन्न (पयः) दूध और (रेतः) वीर्य को (धत्त) धारण करो ॥४८॥

भावार्थः—जो स्त्री पुरुष पूर्ण ब्रह्मचर्य से सकल विद्या की शिक्षाओं का संग्रह कर परस्पर प्रीति से स्वयंवर विवाह करके ऋतुगामी होकर विधि-पूर्वक प्रजा की उत्पत्ति करते हैं उनकी वह प्रजा शुभगुणयुक्त होकर माता पिता आदि को निरन्तर सुखी करती है ॥४८॥

उदीरतामित्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पिता आदि को कैसे होकर क्या करना चाहिये इस विषय
को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उदीरतामवरऽउत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं यऽईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥४९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (ये) जो (अवृकाः) चौर्यादि दोष रहित (ऋतज्ञाः) सत्य के जानने हारे (पितरः) पिता आदि बड़े लोग (हवेषु) संग्रामादि व्यवहारों में (असुम्) प्राण को (उदीयुः) उत्तमता से प्राप्त हों (ते) वे (नः) हमारी (उत, अवन्तु) उत्कृष्टता से रक्षा करें और जो (सोम्यासः) शान्त्यादिगुणसम्पन्न (अवरे) प्रथम अवस्था युक्त (परासः) उत्कृष्ट अवस्था वाले (मध्यमाः) बीच के विद्वान् (पितरः) पिता आदि लोग हैं वे हम को संग्रामादि कामों में (उदीरताम्) अच्छे प्रकार प्रेरणा करें ॥४९॥

भावार्थः—जो जीते हुए प्रथम मध्यम और उत्तम चोरी आदि दोष-रहित जानने के योग्य विद्या को जाननेहारे तत्त्वज्ञान को प्राप्त विद्वान् लोग हैं वे विद्या के अभ्यास और उपदेश से सत्य धर्म के ग्रहण कराने हारे कर्म से बाल्यावस्था में विवाह का निषेध करके सब प्रजाओं को पालें ॥४९॥

अङ्गिरस इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

माता पिता और सन्तानों को परस्पर कैसा वर्त्तना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
तेषां वयꣳ सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥५०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (नः) हमारे (अङ्गिरसः) सब विद्याओं के सिद्धान्तों को जानने और (नवग्वाः) नवीन नवीन ज्ञान के उपदेशों को करने हारे (अथर्वाणः) अहिंसक (भृगवः) परिपक्वविज्ञानयुक्त (सोम्यासः) ऐश्वर्य्य पाने योग्य (पितरः) पितादि ज्ञानी लोग हैं (तेषाम्) उन (यज्ञियानाम्) उत्तम व्यवहार करने हारों की (सुमतौ) सुन्दर प्रज्ञा और (भद्रे) कल्याणकारक (सौमनसे) प्राप्त हुए श्रेष्ठ बोध में (वयम्) हम लोग प्रवृत्त (स्याम) होवें वैसे तुम (अपि) भी होओ ॥५०॥

भावार्थः—सन्तानों को योग्य है कि जो जो पिता आदि बड़ों का धर्मयुक्त कर्म होवे उस उस का सेवन करें और जो जो अधर्मयुक्त हो उस उस को छोड़ देवें ऐसे ही पिता आदि बड़े लोग भी सन्तानों के अच्छे अच्छे गुणों का ग्रहण और बुरों का त्याग करें ॥५०॥

ये न इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।
तेभिर्यमः सꣳरराणो हवीꣳष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥५१॥

पदार्थः—(ये) जो (नः) हमारे (सोम्यासः) शान्त्यादि गुणों के योग से योग्य (वसिष्ठाः) अत्यन्त धनी (पूर्वे) पूर्वज (पितरः) पालन करने हारे ज्ञानी पिता आदि (सोमपीथम्) सोमपान को (अनूहिरे) प्राप्त होते और कराते हैं (तेभिः) उन (उशद्भिः) हमारे पालन की कामना करने हारे पितरों के साथ (हवींषि) लेने देने योग्य पदार्थों की (उशन्) कामना करने हारा (संरराणः) अच्छे प्रकार सुखों का दाता (यमः) न्याय और योगयुक्त सन्तान (प्रतिकामम्) प्रत्येक काम को (अत्तु) भोगे ॥५१॥

भावार्थः—पिता आदि पुत्रों के साथ और पुत्र पिता आदि के साथ सब सुख दुःखों के भोग करें और सदा सुख की वृद्धि और दुःख का नाश किया करें ॥५१॥

त्वꣳ सोम इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वꣳ सोम प्र चिकितो मनीषा त्वꣳ रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम् ।
तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः ॥५२॥

पदार्थः—हे (सोम) ऐश्वर्य्ययुक्त ! (प्र, चिकितः) विज्ञान को प्राप्त (त्वम्) तू (मनीषा) उत्तम प्रज्ञा से जिस (रजिष्ठम्) अतिशय कोमल सुखदायक (पन्थाम्) मार्ग को (नेषि) प्राप्त होता है उस को (त्वम्) तू मुझ को भी (अनु) अनुकूलता से प्राप्त कर। हे (इन्दो) आनन्दकारक चन्द्रमा के तुल्य वर्त्तमान ! जो (तव) तेरी (प्रणीती) उत्तम नीति के साथ वर्त्तमान (धीराः) योगीराज (पितरः) पिता आदि ज्ञानी लोग (देवेषु) विद्वानों में (नः) हमारे लिये (रत्नम्) उत्तम धन का (अभजन्त) सेवन करते हैं वे हम को नित्य सत्कार करने योग्य हों ॥५२॥

भावार्थः—जो सन्तान माता पिता आदि के सेवक होते हुए विद्या और विनय से धर्म का अनुष्ठान करते हैं वे अपने जन्म की सफलता करते हैं ॥५२॥

त्वयेत्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी पूर्वोक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः ।
वन्वन्नवातः परिधीँ२ऽ रपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ॥५३॥

पदार्थः—हे (पवमान) पवित्रस्वरूप पवित्रकर्मकर्त्ता और पवित्र करने हारे (सोम) ऐश्वर्य्ययुक्त सन्तान (त्वया) तेरे साथ (नः) हमारे (पूर्वे) पूर्वज (धीराः) बुद्धिमान् (पितरः) पिता आदि ज्ञानी लोग जिन धर्मयुक्त (कर्माणि) कर्मों को (चक्रुः) करने वाले हुए (हि) उन्हीं का सेवन हम लोग भी करें (अवातः) हिंसाकर्मरहित (वन्वन्) धर्म का सेवन करते हुए सन्तान तू (वीरेभिः) वीर पुरुष और (अश्वैः) घोड़े आदि के साथ (नः) हमारे शत्रुओं की (परिधीन्) परिधि अर्थात् जिन में चारों ओर से पदार्थों को धारण किया जाय उन मार्गों को (अपोर्णु) आच्छादन कर और हमारे मध्य में (मघवा) धनवान् (भव) हूजिये ॥५३॥

भावार्थः—मनुष्य लोग अपने धार्मिक पिता आदि का अनुकरण कर और शत्रुओं को निवारण करके अपनी सेना के अङ्गों की प्रशंसा से युक्त हुए सुखी होवें ॥५३॥

त्वᳬ सोमेत्यस्य शङ्ख ऋषिः । सोमो देवता: । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वᳬ सोम पितृभिः संविदानोऽनु द्यावापृथिवीऽआ ततन्थ ।
तस्मै तऽइन्दो हविषा विधेम वयᳬ स्याम पतयो रयीणाम् ॥५४॥

पदार्थः—हे (सोम) चन्द्रमा के सदृश आनन्दकारक उत्तम सन्तान ! (पितृभिः) ज्ञानयुक्त पितरों के साथ (संविदानः) प्रतिज्ञा करता हुआ जो (त्वम्) तू (अनु, द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी के मध्य में धर्मानुकूल आचरण से सुख का (आ, ततन्थ) विस्तार कर। हे (इन्दो) चन्द्रमा के समान प्रियदर्शन ! (तस्मै) उस (ते) तेरे लिये (वयम्) हम लोग (हविषा) लेने देने योग्य व्यवहार से सुख का (विधेम) विधान करें जिससे हम लोग (रयीणाम्) धनों के (पतयः) पालन करने हारे स्वामी (स्याम) हों ॥५४॥

भावार्थः—हे सन्तानो ! तुम लोग जैसे चन्द्रलोक पृथिवी के चारों ओर भ्रमण करता हुआ सूर्य की परिक्रमा देता है वैसे ही माता पिता आदि के अनुचर होओ जिससे तुम श्रीमन्त हो जाओ ॥५४॥

बर्हिषद इत्यस्य शंख ऋषिः । पितरो देवताः । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

बर्हिषदः पितरः ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
तऽआगतावसा शन्तमेनाथा नः शंयोररपो दधात ॥५५॥

पदार्थः—हे (बर्हिषदः) उत्तम सभा में बैठने हारे (पितरः) न्याय से पालना करने वाले पितर लोगो ! हम (अर्वाक्) पश्चात् जिन (वः) तुम्हारे लिये (ऊती) रक्षणादि क्रिया से (इमा) इन (हव्या) भोजन के योग्य पदार्थों का (चकृम) संस्कार करते हैं उन का तुम लोग (जुषध्वम्) सेवन किया करो । वे आप लोग (शन्तमेन) अत्यन्त कल्याणकारक (अवसा) रक्षणादि कर्म के साथ (आ, गत) आवें (अथ) इसके अनन्तर (नः) हमारे लिये (शम्) सुख तथा (अरपः) सत्याचरण को (दधात) धारण करें और दुःख को (योः) हम से पृथक् रक्खें ॥५५॥

भावार्थः— जिन पितरों की सेवा सन्तान लोग करें वे अपने सन्तानों में अच्छी शिक्षा से सुशीलता को धारण करें ॥५५॥

आहमित्यस्य शंख ऋषिः । पितरो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ२ऽअवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्तऽइहागमिष्ठाः ॥५६॥

पदार्थः—(ये) जो (बर्हिषदः) उत्तम आसन में बैठने योग्य पितर लोग (इह) इस वर्त्तमान काल में (स्वधया) अन्नादि से तृप्त (सुतस्य) सिद्ध किये हुए (पित्वः) सुगन्ध युक्त पान का (च) भी (आ, भजन्त) सेवन करते हैं (ते) वे (आगमिष्ठाः) हमारे पास आवें जो इस संसार में (विष्णोः) व्यापक परमात्मा के (नपातम्) नाशरहित (विक्रमणम्) विविध सृष्टिक्रम को (च) भी जानते हैं उन (सुविदत्रान्) उत्तम सुखादि के दान देने हारे (पितॄन्) पितरों को (अहम्) मैं (अवित्सि) जानता हूं ॥५६॥

भावार्थः—जो पितर लोग विद्या की उत्तम शिक्षा करते और कराते हैं वे पुत्र और कन्याओं के सम्यक् सेवन करने योग्य हैं ॥५६॥

उपहूता इत्यस्य शंख ऋषिः । पितरो देवताः । निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
तऽआगमन्तु तऽइह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥५७॥

पदार्थः—जो (सोम्यासः) ऐश्वर्य्य को प्राप्त होने के योग्य (पितरः) पितर

लोग (बर्हिष्येषु) अत्युत्तम (प्रियेषु) प्रिय (निधिषु) रत्नादि से भरे हुए कोशों के निमित्त (उपहूताः) बुलाये हुए हैं (ते) वे (इह) इस हमारे समीप स्थान में (आ, गमन्तु) आवें (ते) वे हमारे वचनों को (श्रुवन्तु) सुनें वे (अस्मान्) हम को (अधि, ब्रुवन्तु) अधिक उपदेश से बोधयुक्त करें (ते) वे हमारी (अवन्तु) रक्षा करें ॥५७॥

भावार्थः—जो विद्यार्थीजन अध्यापकों को बुला उनका सत्कार कर उन से विद्याग्रहण की इच्छा करें उन विद्यार्थियों को वे अध्यापक भी प्रीतिपूर्वक पढ़ावें और सर्वथा विषयासक्ति आदि दुष्कर्मों से पृथक् रक्खें ॥५७॥

आयन्त्वित्यस्य शंख ऋषिः । पितरो देवताः । विराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ यन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः ।
अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥५८॥

पदार्थः—जो (सोम्यासः) चन्द्रमा के तुल्य शान्त शमदमादि गुणयुक्त (अग्निष्वात्ताः) अग्न्यादि पदार्थविद्या में निपुण (नः) हमारे (पितरः) अन्न और विद्या के दान से रक्षक जनक अध्यापक और उपदेशक लोग हैं (ते) वे (देवयानैः) आप्त लोगों के जाने आने योग्य (पथिभिः) धर्मयुक्त मार्गों से (आ, यन्तु) आवें (अस्मिन्) इस (यज्ञे) पढ़ाने उपदेश करने रूप व्यवहार में वर्त्तमान हो के (स्वधया) अन्नादि से (मदन्तः) आनन्द को प्राप्त हुए (अस्मान्) हम को (अधि, ब्रुवन्तु) अधिष्ठाता होकर उपदेश करें और पढ़ावें और हमारी (अवन्तु) सदा रक्षा करें ॥५८॥

भावार्थः—विद्यार्थियों को योग्य है कि विद्या और आयु में वृद्ध विद्वानों से विद्या और रक्षा को प्राप्त होकर सत्यवादी निष्कपटी परोपकारी उपदेशकों के मार्ग से जा आ के सब की रक्षा करें ॥५८॥

अग्निष्वात्ता इत्यस्य शंख ऋषिः । पितरो देवताः । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिं सर्ववीरं दधातन ॥५९॥

पदार्थः—हे (सुप्रणीतयः) अत्युत्तम न्यायधर्म से युक्त (अग्निष्वात्ताः) अग्न्यादि पदार्थविद्या में निपुण (पितरः) पालन करनेहारे पितरो ! आप लोग (इह) इस वर्त्तमान समय में विद्याप्रचार के लिये (आ, गच्छत) आओ (सदःसदः) जहां जहां

बैठें उस उस घर में (सदत) स्थित होम्रो (प्रयतानि) प्रति विचार से सिद्ध किये हुए (हवींषि) भोजन के योग्य अन्नादि का (अत्त) भोग करो (अथ) इसके पश्चात् (बर्हिषि) विद्याप्रचाररूप उत्तम व्यवहार में स्थित होकर हमारे लिये (सर्ववीरम्) सब वीर पुरुषों को प्राप्त कराने हारे (रयिम्) धन को (दधातन) धारण कीजिये ॥५९॥

भावार्थः—जो विद्वान् लोग उपदेश के लिये घर घर के प्रति गमनागमन कर के सत्यधर्म का प्रचार करते हैं वे गृहस्थों में श्रद्धा से दिये हुए अन्नपानादि का सेवन करें सब को शरीर और आत्मा के बल से योग्य पुरुषार्थी करके श्रीमान् करें ॥५९॥

ये अग्निष्वात्ता इत्यस्य शंख ऋषिः। पितरो देवताः। स्वराट्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्यों को ईश्वर की प्रार्थना कैसे करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ये॑ऽअ॒ग्नि॒ष्वा॒त्ता ये॒ऽअन॑ग्निष्वात्ता॒ मध्ये॑ दि॒वः स्व॒धया॑ मा॒दय॑न्ते।
तेभ्यः॑ स्व॒राडसु॑नीतिमे॒तां य॑थाव॒शं त॒न्वं॑ कल्पयाति ॥६०॥

पदार्थः—(ये) जो (अग्निष्वात्ताः) अच्छे प्रकार अग्निविद्या के ग्रहण करने तथा (ये) जो (अनग्निष्वात्ताः) अग्नि से भिन्न अन्य पदार्थविद्याओं को जानने हारे वा ज्ञानी पितृलोग (दिवः) वा विज्ञानादि प्रकाश के (मध्ये) बीच (स्वधया) अपने पदार्थ के धारण करने रूप क्रिया से (मादयन्ते) आनन्द को प्राप्त होते हैं (तेभ्यः) उन पितरों के लिये (स्वराट्) स्वयं प्रकाशमान परमात्मा (एताम्) इस (असुनीतिम्) प्राणों को प्राप्त होने वाले (तन्वम्) शरीर को (यथावशम्) कामना के अनुकूल (कल्पयाति) समर्थ करे ॥६०॥

भावार्थः—मनुष्यों को परमेश्वर से ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये कि हे परमेश्वर! जो अग्नि आदि की पदार्थविद्या को यथार्थ जान के प्रवृत्त करते और जो ज्ञान में तत्पर विद्वान् अपने ही पदार्थ के भोग से सन्तुष्ट रहते हैं उनके शरीरों को दीर्घायु कीजिये ॥६०॥

अग्निष्वात्तानित्यस्य शंख ऋषिः। पितरो देवताः। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

माता पिता और सन्तानों को परस्पर क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्निष्वात्तानृतुमतो हवामहे नाराशꣳसे सोमपीथं यऽआशुः ।
ते नो विप्रासः सुहवा भवन्तु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥६१॥

पदार्थः—(ये) जो (सोमपीथम्) सोम आदि उत्तम ओषधिरस को (आशुः) पीवें जिन (ऋतुमतः) प्रशंसित वसन्तादि ऋतु में उत्तम कर्म करने वाले (अग्निष्वात्तान्) अच्छे प्रकार अग्निविद्या को जानने हारे पिता आदि ज्ञानियों को हम लोग (नाराशंसे) मनुष्यों के प्रशंसारूप सत्कार के व्यवहार में (हवामहे) बुलाते हैं (ते) वे (विप्रासः) बुद्धिमान् लोग (नः) हमारे लिये (सुहवाः) अच्छे दान देने हारे (भवन्तु) हों और (वयम्) हम उन की कृपा से (रयीणाम्) धनों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ॥६१॥

भावार्थः—सन्तान लोग पदार्थविद्या और देश काल के जानने और प्रशंसित ओषधियों के रस को सेवन करने हारे विद्या और अवस्था में वृद्ध पिता आदि को सत्कार के अर्थ बुला के उनके सहाय से धनादि ऐश्वर्य वाले हों ॥६१॥

आच्या जान्वित्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभिगृणीत विश्वे ।
मा हिꣳसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ॥६२॥

पदार्थः—हे (विश्वे) सब (पितरः) पितृलोगो ! तुम (केन, चित्) किसी हेतु से (नः) हमारी जो (पुरुषता) पुरुषार्थता है उस को (मा, हिंसिष्ट) मत नष्ट करो जिस से हम लोग सुख को (कराम) प्राप्त करें (यत्) जो (वः) तुम्हारा (आगः) अपराध है उस को हम छुड़ावें तुम लोग (इमम्) इस (यज्ञम्) सत्कारक्रियारूप व्यवहार को (अभि, गृणीत) हमारे सन्मुख प्रशंसित करो हम (जानु) जानु अवयव को (आच्य) नीचे टेक के (दक्षिणतः) तुम्हारे दक्षिण पार्श्व में (निषद्य) बैठ के तुम्हारा निरन्तर सत्कार करें ॥६२॥

भावार्थः—जिनके पितृलोग जब समीप आवें अथवा सन्तान लोग इन के समीप जावें तब भूमि में घुटने टिका नमस्कार कर इनको प्रसन्न कर पितर लोग भी आशीर्वाद विद्या और अच्छी शिक्षा के उपदेश से अपने सन्तानों को प्रसन्न करके सदा रक्षा किया करें ॥६२॥

आसीनास इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवता । स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आसीनासोऽअरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्रयच्छत तऽइहोर्जं दधात ॥६३॥

पदार्थः—हे (पितरः) पितृ लोगो ! तुम (इह) इस गृहाश्रम में (अरुणीनाम्) गौरवर्णयुक्त स्त्रियों के (उपस्थे) समीप में (आसीनासः) बैठे हुए (पुत्रेभ्यः) पुत्रों के और (दाशुषे) दाता (मर्त्याय) मनुष्य के लिये (रयिम्) धन को (धत्त) धरो (तस्य) उस (वस्वः) धन के भागों को (प्र, यच्छत) दिया करो जिस से (ते) वे स्त्री आदि सब लोग (ऊर्जम्) पराक्रम को (दधात) धारण करें ॥६३॥

भावार्थः—वे ही वृद्ध हैं जो अपनी स्त्री ही के साथ प्रसन्न अपनी पत्नियों का सत्कार करने हारे सन्तानों के लिये यथायोग्य दायभाग और सत्पात्रों को सदा दान देते हैं और वे सन्तानों को सत्कार करने योग्य होते हैं ॥६३॥

यमग्न इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यमग्ने कव्यवाहन त्वं चिन्मन्यसे रयिम् ।
तन्नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ॥६४॥

पदार्थः—हे (कव्यवाहन) बुद्धिमानों के समीप उत्तम पदार्थ पहुंचाने हारे (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशयुक्त ! (त्वम्) आप (गीर्भिः) कोमल वाणियों से (श्रवाय्यम्) सुनाने योग्य (देवत्रा) विद्वानों में (युजम्) युक्त करने योग्य (यम्) जिस (रयिम्) ऐश्वर्य को (मन्यसे) जानते हो (तम्) उस को (चित्) भी (नः) हमारे लिये (पनय) कीजिये ॥६४॥

भावार्थः—पिता आदि ज्ञानी लोगों को चाहिये कि पुत्रों और सत्पात्रों से प्रशंसित धन का संचय करें उस धन से उत्तम विद्वानों को ग्रहण कर उनको सत्यधर्म के उपदेशक बना के विद्या और धर्म का प्रचार करें और करावें ॥६४॥

योऽअग्निरित्यस्य शङ्ख ऋषिः । अग्निर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

योऽअग्निः कव्यवाहनः पितॄन्यक्षदृतावृधः ।
प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ॥६५॥

पदार्थः—(यः) जो (कव्यवाहनः) विद्वानों के श्रेष्ठ कर्मों को प्राप्त कराने हारा (अग्निः) अग्नि के समान विद्याओं में प्रकाशमान विद्वान् (ऋतावृधः) वेदविद्या से वृद्ध (पितॄन्) पितरों का (यक्षत्) सत्कार करे सो (इत्) ही (उ) अच्छे प्रकार (देवेभ्यः) विद्वानों (च) और (पितृभ्यः) पितरों के लिये (हव्यानि) ग्रहण करने योग्य विज्ञानों का (प्रावोचति) अच्छे प्रकार सब ओर से उपदेश करता है ॥६५॥

भावार्थः—जो पूर्ण ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या वाले होते हैं वे विद्वानों में विद्वान् और पितरों में पितर गिने जाते हैं ॥६५॥

त्वमग्न इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वमग्नऽईडितः कव्यवाहनावाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया तेऽअक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवीꣳषि ॥६६॥

पदार्थः—हे (कव्यवाहन) कवियों के प्रगल्भतादि कर्मों को प्राप्त हुए (अग्ने) अग्नि के समान पवित्र विद्वन् ! पुत्र ! (ईडितः) प्रशंसित (त्वम्) तू (सुरभीणि) सुगन्धादि युक्त (हव्यानि) खाने के योग्य पदार्थ (कृत्वी)कर के (अवाट्) प्राप्त करता है उन को (पितृभ्यः) पितरों के लिये (प्रादाः) दिया कर (ते) वे पितर लोग (स्वधया) अन्नादि के साथ इन पदार्थों का (अक्षन्) भोग किया करें । हे (देव) विद्वन् दातः ! (त्वम्) तू (प्रयता) प्रयत्न से साधे हुए (हवींषि) खाने के योग्य अन्नों को (अद्धि) भोजन किया कर ॥६६॥

भावार्थः—पुत्रादि सब लोग अच्छे संस्कार किये हुए सुगन्धादि से युक्त अन्न पानों से पितरों को भोजन करा के आप भी इन अन्नों का भोजन करें यही पुत्रों की योग्यता है । जो अच्छे संस्कार किये हुए अन्न पानों को करते हैं वे रोगरहित होकर शतवर्षपर्यन्त जीते हैं ॥६६॥

ये चेहेत्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवता । स्वराड् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विद्म याँ२ऽउ च न प्रविद्म ।
त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञꣳ सुकृतं जुषस्व ॥६७॥

पदार्थः हे (जातवेदः) नवीन तीक्ष्ण बुद्धि वाले विद्वन्! (ये) जो (इह) यहां (च) ही (पितरः) पिता आदि ज्ञानी लोग हैं (च) और (ये) जो (इह) यहां (न) नहीं हैं (च) और हम (यान्) जिन को (विद्म) जानते (च) और (यान्) जिन को (न, प्रविद्म) नहीं जानते हैं उन (यति) यावत् पितरों को (त्वम्) आप (वेत्थ) जानते हो (उ) और (ते) वे आप को भी जानते हैं उन को सेवारूप (सुकृतम्) पुण्यजनक (यज्ञम्) सत्काररूप व्यवहार को (स्वधाभिः) अन्नादि से (जुषस्व) सेवन करो ॥६७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जो प्रत्यक्ष वा जो अप्रत्यक्ष विद्वान् अध्यापक और उपदेशक हैं उन सब को बुला अन्नादि से सदा सत्कार करो जिससे आप भी सर्वत्र सत्कारयुक्त होओ ॥६७॥

इदमित्यस्य शङ्ख ऋषिः। पितरो देवता। स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इदम्पितृभ्यो नमोऽअस्त्वद्य ये पूर्वासो यऽउपरास ईयुः।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनꣳ सुवृजनासु विक्षु ॥६८॥

पदार्थः—(ये) जो पितर लोग (पूर्वासः) हम से विद्या वा अवस्था में वृद्ध हैं (ये) जो (उपरासः) वानप्रस्थ वा संन्यासाश्रम को प्राप्त हो के गृहाश्रम के विषय-भोग से उदासीनचित्त हुए (ईयुः) प्राप्त हों (ये) जो (पार्थिवे) पृथिवी पर विदित (रजसि) लोक में (आ, निषत्ताः) निवास किये हुए (वा) अथवा (ये) जो (नूनम्) निश्चय कर के (सुवृजनासु) अच्छी गतिवाली (विक्षु) प्रजाओं में प्रयत्न करते हैं उन (पितृभ्यः) पितरों के लिये (अद्य) आज (इदम्) यह (नमः) सुसंस्कृत अन्न (अस्तु) प्राप्त हो ॥६८॥

भावार्थः—इस संसार में जो प्रजा के शोधने वाले हम से श्रेष्ठ विरक्ताश्रम अर्थात् संन्यासाश्रम को प्राप्त पिता आदि हैं वे पुत्रादि मनुष्यों को सदा सेवने योग्य हैं जो ऐसा न करें तो कितनी हानि हो ॥६८॥

अधेत्यस्य शङ्ख ऋषिः। पितरो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासोऽअग्नऽऋतमाशुषाणाः।
शुचीदयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तोऽअरुणीरप व्रन् ॥६९॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन्! (यथा) जैसे (नः) हमारे (परासः) उत्तम

(प्रत्नासः) प्राचीन (उक्थशासः) उत्तम शिक्षा करने हारे (शुचिः) पवित्र (ऋतम्) सत्य को (आशुषाणाः) अच्छे प्रकार प्राप्त हुए (पितरः) पिता आदि ज्ञानी जन (दीधितिम्) विद्या के प्रकाश (अरुणीः) सुशीलता से प्रकाश वाली स्त्रियों और (क्षामा) निवासभूमि को (अयन्) प्राप्त होते हैं (अध) इस के अनन्तर अविद्या का (भिन्दन्तः) विदारण करते हुए (इत्) ही अन्धकाररूप आवरणों को (अप, व्रन्) दूर करते हैं उन का तू वैसे सेवन कर ॥६९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो पिता आदि विद्या को प्राप्त करा के अविद्या का निवारण करते हैं वे इस संसार में सब लोगों से सत्कार करने योग्य हों ॥६९॥

उशन्त इत्यस्य शंख ऋषिः। पितरो देवताः। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। गान्धारः। स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उशन्तस्त्वा नि धीमह्युशन्तः समिधीमहि।
उशन्नुशत आ वह पितॄन्हविषे अत्तवे ॥७०॥

पदार्थः—हे विद्या की इच्छा करने वाले अथवा पुत्र! तेरी (उशन्तः) कामना करते हुए हम लोग (त्वा) तुझ को (नि, धीमहि) विद्या का निधिरूप बनावें (उशन्तः) कामना करते हुए हम तुझको (समिधीमहि) अच्छे प्रकार विद्या से प्रकाशित करें (उशन्) कामना करता हुआ तू (हविषे) भोजन करने योग्य पदार्थ के (अत्तवे) खानेको (उशतः) कामना करते हुए हम (पितॄन्) पितरों को (आ, वह) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥७०॥

भावार्थः जैसे विद्वान् लोग बुद्धिमान् जितेन्द्रिय कृतज्ञ परिश्रमी विचारशील विद्यार्थियों की नित्य कामना करें वैसे विद्यार्थी लोग भी ऐसे उत्तम अध्यापक विद्वान् लोगों की सेवा करके विद्वान् होवें ॥७०॥

अपामित्यस्य शंख ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब सेनापति कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्त्तयः।
विश्वा यदजय स्पृधः ॥७१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सूर्य के समान वर्त्तमान सेनापते! जैसे सूर्य (अपाम्) जलों की (फेनेन) वृद्धि से (नमुचेः) अपने स्वरूप को न छोड़ने वाले मेघ के (शिरः)

घनाकार बद्दलों को काटता है वैसे ही तू अपनी सेनाओं को (उदवर्त्तयः) उत्कृष्टता को प्राप्त कर (यत्) जो (विश्वाः) सब (स्पृधः) स्पर्द्धा करने हारी शत्रुओं की सेना हैं उन को (अजयः) जीत ।।७१।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य से आच्छादित भी मेघ वारंवार उठता है वैसे ही वे शत्रु भी वारंवार उत्थान करते हैं । वे जबतक अपने वल को न्यून और दूसरों का बल अधिक देखते हैं तबतक शान्त रहते हैं ।।७१।।

सोमो राजेत्यस्य शंख ऋषिः । सोमो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ।।

कौन पुरुष मुक्ति को प्राप्त होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

सोमो राजामृतꣳ सुत ऋजीषेणाजहान्मृत्युम् । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ।।७२।।

पदार्थः—जो (ऋतेन) सत्य ब्रह्म के साथ (अन्धसः) सुसंस्कृत अन्नादि के सम्बन्धी (सत्यम्) विद्यमान द्रव्यों में उत्तम पदार्थ (विपानम्) विविध पान करने के साधन (शुक्रम्) शीघ्र कार्य कराने हारे (इन्द्रियम्) धन (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य वाले जीव के (इन्द्रियम्) श्रोत्र आदि इन्द्रिय (इदम्) जल (पयः) दुग्ध (अमृतम्) अमृतरूप ब्रह्म वा ओषधि के सार और (मधु) सहत का संग्रह करे सो (अमृतम्) अमृतरूप आनन्द को प्राप्त हुआ (सुतः) संस्कारयुक्त (सोमः) ऐश्वर्यवान् प्रेरक (राजा) न्याय-विद्या से प्रकाशमान राजा (ऋजीषेण) सरल भाव से (मृत्युम्) मृत्यु को (अजहात्) छोड़ देवे ।।७२।।

भावार्थः—जो उत्तमशील और विद्वानों के सङ्ग से सब शुभलक्षणों को प्राप्त होते हैं वे मृत्यु के दुःख को छोड़ कर मोक्षसुख को ग्रहण करते हैं ।।७२।।

अद्भ्य इत्यस्य शंख ऋषिः । अङ्गिरसो देवताः । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ।।

कौन पुरुष विज्ञान को प्राप्त होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

अद्भ्यः क्षीरं व्यपिबत् क्रुङ्ङाङ्गिरसो धिया । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धसऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोऽमृतं मधु ।।७३।।

पदार्थः—जो (आङ्गिरसः) अङ्गिरा विद्वान् से किया हुआ विद्वान् (धिया) कर्म के साथ (अद्भ्यः) जलों से (क्षीरम्) दूध को (क्रुङ्) क्रुञ्चा पक्षी के समान

थोड़ा थोड़ा कर के (व्यपिबत्) पीवे वह (ऋतेन) यथार्थ योगाभ्यास से (इन्द्रस्य) ऐश्वर्ययुक्त जीव के (अन्धसः) अन्नादि के योग से (इदम्) इस प्रत्यक्ष (सत्यम्) सत्य पदार्थों में अविनाशी (विपानम्) विविध शब्दार्थ सम्बन्धयुक्त (शुक्रम्) पवित्र (इन्द्रियम्) दिव्यवाणी और (पयः) उत्तम रस (अमृतम्) रोगनाशक ओषधि (मधु) मधुरता और (इन्द्रियम्) दिव्य श्रोत्र को प्राप्त होवे ॥७३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सत्याचरणादि कर्मों करके वैद्यक शास्त्र के विधान से युक्ताहारविहार करते हैं वे सत्य बोध और सत्य विज्ञान को प्राप्त होते हैं ॥७३॥

सोममित्यस्य शंख ऋषिः। सोमो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सोम॑मद्भ्यो व्य॑पिब॒च्छन्द॑सा ह॒ꣳसः शु॑चि॒षत्। ऋ॒तेन॑ स॒त्यमि॑न्द्रि॒यं विपान॑ꣳ शु॒क्रमन्ध॑स॒ऽइन्द्र॑स्येन्द्रि॒यमि॒दं पयो॒ऽमृतं॒ मधु॑ ॥७४॥

पदार्थः—जो (शुचिषत्) पवित्र विद्वानों में बैठता है (हंसः) दुःख का नाशक विवेकी जन (छन्दसा) स्वच्छन्दता के साथ (अद्भ्यः) उत्तम संस्कारयुक्त जलों से (सोमम्) सोमलतादि महौषधियों के सार रस को (व्यपिबत्) अच्छे प्रकार पीता है सो (ऋतेन) सत्य वेदविज्ञान से (अन्धसः) उत्तम संस्कार किये हुए अन्न के दोषनिवर्तक (शुक्रम्) शुद्धि करनेहारे (विपानम्) विविध रक्षा से युक्त (सत्यम्) परमेश्वरादि सत्य पदार्थों में उत्तम (इन्द्रियम्) प्रज्ञानरूप (इन्द्रस्य) योगविद्या से उत्पन्न हुए परम ऐश्वर्य की प्राप्ति कराने हारे (इदम्) इस प्रत्यक्ष प्रतीति के आश्रय (पयः) उत्तम ज्ञान रस वाले (अमृतम्) मोक्ष (मधु) और मधु विद्यायुक्त (इन्द्रियम्) जीव ने सेवन किये हुए सुख को प्राप्त होने को योग्य होता है वही अखिल आनन्द को पाता है ॥७४॥

भावार्थः—जो युक्ताहार विहार करने हारे वेदों को पढ़, योगाभ्यास कर अविद्यादि क्लेशों को छुड़ा, योग की सिद्धियों को प्राप्त हो और उन के अभिमान को भी छोड़ के कैवल्य को प्राप्त होते हैं वे ब्रह्मानन्द का भोग करते हैं। ७४॥

अन्नात्परिस्रुत इत्यस्य शंख ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। भुरिगति जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

कैसे राज्य की उन्नति करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अन्नात्परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत् क्षत्रं पयः सोमं प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धसऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥७५॥

पदार्थः—जो (ब्रह्मणा) चारों वेद पढ़े हुए विद्वान् के साथ (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक सभाध्यक्ष राजा (परिस्रुतः) सब ओर से पके हुए (अन्नात्) जौ आदि अन्न से निकले (पयः) दुग्ध के तुल्य (सोमम्) ऐश्वर्ययुक्त (रसम्) सारूप रस और (क्षत्रम्) क्षत्रियकुल को (व्यपिबत्) ग्रहण करे सो (ऋतेन) विद्या तथा विनय से युक्त न्याय से (अन्धसः) अन्धकाररूप अन्याय के निवारक (शुक्रम्) पराक्रम करने हारे (विपानम्) विविध रक्षण के हेतु (सत्यम्) सत्य व्यवहारों में उत्तम (इन्द्रियम्) इन्द्र नामक परमात्मा ने दिये हुए (इन्द्रस्य) समग्र ऐश्वर्य के देने हारे राज्य की प्राप्ति कराने हारे (इदम्) इस प्रत्यक्ष (पयः) पीने के योग्य (अमृतम्) अमृत के तुल्य सुखदायक रस और (मधु) मधुरादि गुणयुक्त (इन्द्रियम्) राजादि पुरुषों ने सेवे हुए न्यायाचरण को प्राप्त होवे वह सदा सुखी होवे ॥७५॥

भावार्थः- जो विद्वानों की अनुमति से राज्य को बढ़ाने की इच्छा करते हैं वे अन्याय की निवृत्ति करने और राज्य को बढ़ाने में समर्थ होते हैं ॥७५॥

रेत इत्यस्य शंख ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिगतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

शरीर से वीर्य्य कैसे उत्पन्न होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम्। गर्भो जरायुणावृत उल्वं जहाति जन्मना। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥७६॥

पदार्थः -(इन्द्रियम्) पुरुष का लिंग इन्द्रिय (योनिम्) स्त्री की योनि में (प्रविशत्) प्रवेश करता हुआ (रेतः) वीर्य को (वि, जहाति) विशेष कर छोड़ता है इस से अलग (मूत्रम्) प्रस्राव को छोड़ता है वह वीर्य (जरायुणा) जरायु से (आवृतः) ढका हुआ (गर्भः) गर्भरूप होकर जन्मता है (जन्मना) जन्म से (उल्वम्) आवरण को (जहाति) छोड़ता है वह (ऋतेन) बाहर के वायु से (अन्धसः) आवरण को निवृत्त करने हारे (विपानम्) विविध पान के साधन (शुक्रम्) पवित्र (सत्यम्) वर्त्तमान में उत्तम (इन्द्रस्य) जीव के सम्बन्धी (इन्द्रियम्) धन को और (इदम्) इस (पयः) रस

के तुल्य (अमृतम्) नाशरहित (मधु) प्रत्यक्षादि ज्ञान के साधन (इन्द्रियम्) चक्षुरादि इन्द्रिय को प्राप्त होता है ॥७६॥

भावार्थः—प्राणी जो कुछ खाता पीता है परम्परा से वीर्य होकर शरीर का कारण होता है पुरुष का लिंग इन्द्रिय स्त्री के संयोग से वीर्य छोड़ता और इससे अलग मूत्र को छोड़ता है इससे जाना जाता है कि शरीर में मूत्र के स्थान से पृथक् स्थान में वीर्य रहता है वह वीर्य्य जिस कारण सब अंगों से उत्पन्न होता है इससे सब अंगों की आकृति उस में रहती है इसी से जिस के शरीर से वीर्य उत्पन्न होता है उसी की आकृति वाला सन्तान होता है ॥७६॥

दृष्ट्वेत्यस्य शंख ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । अतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब धर्म अधर्म कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः । अश्रद्धामनृतेऽदधा- च्छ्रद्धाᳮ सत्ये प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानᳮ शुक्रमन्ध- सऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥७७॥

पदार्थः – जो (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक परमेश्वर (ऋतेन) यथार्थ अपने सत्य विज्ञान से (सत्यानृते) सत्य और झूठ जो (रूपे) निरूपण किये हुए हैं उन को (दृष्ट्वा) ज्ञानदृष्टि से देखकर (व्याकरोत्) विविध प्रकार से उपदेश करता है जो (अनृते) मिथ्याभाषणादि में (अश्रद्धाम्) अप्रीति को (अदधात्) धारण कराता और (सत्ये) सत्य में (श्रद्धाम्) प्रीति को धारण कराता और जो (अन्धसः) अधर्माचरण के निवर्त्तक (शुक्रम्) शुद्धि करने हारे (विपानम्) विविध रक्षा के साधन (सत्यम्) सत्यस्वरूप (इन्द्रियम्) चित्त को और जो (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य्ययुक्त धर्म के प्रापक (इदम्) इस (पयः) अमृतरूप सुखदाता (अमृतम्) मृत्युरोगनिवारक (मधु) मानने योग्य (इन्द्रियम्) विज्ञान के साधन को धारण करे वह (प्रजापतिः) परमेश्वर सब का उपासनीय देव है ॥७७॥

भावार्थः—जो मनुष्य ईश्वर की आज्ञा किये धर्म का आचरण करते और निषेध किये हुए अधर्म का सेवन नहीं करते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं जो ईश्वर धर्म अधर्म को न जनावे तो धर्माऽधर्म्म के स्वरूप का ज्ञान किसी को भी नहीं हो, जो आत्मा के अनुकूल आचरण करते और प्रतिकूलाचरण को छोड़ देते हैं वे ही धर्माधर्म के बोध से युक्त होते हैं इतर जन नहीं ॥७७॥

वेदेनेत्यस्य शंख ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब वेद के जानने वाले कैसे होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

वेदेन॑ रू॒पे व्य॑पिब॒त्सुता॒सुतौ॑ प्र॒जाप॑तिः । ऋ॒तेन॑ स॒त्यमि॑न्द्रि॒यं वि॒पान॑ᳪ शु॒क्रमन्ध॑स॒ऽइन्द्र॑स्येन्द्रि॒यमि॒दं पयो॒ऽमृतं॒ मधु॑ ॥७८॥

पदार्थः जो (प्रजापतिः) प्रजा का पालन करने वाला जीव (ऋतेन) सत्य विज्ञानयुक्त (वेदेन) ईश्वरप्रकाशित चारों वेदों से (सुतासुतौ) प्रेरित अप्रेरित धर्मा-धर्म्म (रूपे) स्वरूपों को (व्यपिबत्) ग्रहण करे सो (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य्ययुक्त जीव के (अन्धसः) अन्नादि के (विपानम्) विविध पान के निमित्त (शुक्रम्) पराक्रम देने हारे (सत्यम्) सत्य धर्माचरण में उत्तम (इन्द्रियम्) धन और (इदम्) जलादि (पयः) दुग्धादि (अमृतम्) मृत्युधर्मरहित विज्ञान (मधु) मधुरादि गुणयुक्त पदार्थ और (इन्द्रि-यम्) ईश्वर के दिये हुए ज्ञान को प्राप्त होवे ॥७८॥

भावार्थः—वेदों को जानने वाले ही धर्माधर्म्म के जानने तथा धर्म के आचरण और अधर्म के त्याग से सुखी होने को समर्थ होते हैं ॥७८॥

दृष्ट्वेत्यस्य शंख ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

कैसा जन बल बढ़ा सकता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

दृ॒ष्ट्वा प॑रि॒स्रुतो॒ रस॑ᳪ शु॒क्रेण॑ शु॒क्रं व्य॑पिबत् पयः॒ सोमं॑ प्र॒जाप॑तिः । ऋ॒तेन॑ स॒त्यमि॑न्द्रि॒यं वि॒पान॑ᳪ शु॒क्रमन्ध॑स॒ऽइन्द्र॑स्येन्द्रि॒यमि॒दं पयो॒ऽमृतं॒ मधु॑ ॥७९॥

पदार्थः- जो (परिस्रुतः) सब ओर से प्राप्त (प्रजापतिः) प्रजा का स्वामी राजा आदि जन (ऋतेन) यथार्थ व्यवहार से (सत्यम्) वर्त्तमान उत्तम ओषधियों में उत्पन्न हुए रस को (दृष्ट्वा) विचारपूर्वक देख के (शुक्रेण) शुद्ध भाव से (शुक्रम्) शीघ्र सुख करने वाले (पयः) पान करने योग्य (सोमम्) महौषधि के रस को तथा (रसम्) विद्या के आनन्दरूप रस को (व्यपिबत्) विशेष कर के पीता वा ग्रहण करता है वह (अन्धसः) शुद्ध अन्नादि के प्रापक (विपानम्) विशेष पान से युक्त (शुक्रम्) वीर्य वाले (इन्द्रियम्) विद्वान् ने सेवे हुए इन्द्रिय को और (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्ययुक्त पुरुष के (इदम्) इस (पयः) अच्छे रस वाले (अमृतम्) मृत्युकारक रोग के निवारक (मधु) मधुरादि गुणयुक्त और (इन्द्रियम्) ईश्वर के बनाये हुए धन को प्राप्त होवे ॥७९॥

भावार्थः—जो वैद्यक शास्त्र की रीति से उत्तम ओषधियों के रसों को बना उचित समय जितना चाहिये उतना पीवे वह रोगों से पृथक् हो के शरीर और आत्मा के बल के बढ़ाने को समर्थ होता है ॥७९॥

सीसेनेत्यस्य शंख ऋषिः । सविता देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विद्वानों के तुल्य अन्यों को भी आचरण करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सीसे॑न॒ तन्त्रं॒ मन॑सा मनी॒षिण॑ ऊर्णासू॒त्रेण॑ क॒वयो॑ वयन्ति ।
अ॒श्विना॑ य॒ज्ञꣳ स॑वि॒ता सर॑स्व॒तीन्द्र॑स्य रू॒पं वरु॑णो भिष॒ज्यन् ॥८०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (कवयः) विद्वान् (मनीषिणः) बुद्धिमान् लोग (सीसेन) सीसे के पात्र के समान कोमल (ऊर्णासूत्रेण) ऊन के सूत्र से कम्बल के तुल्य प्रयोजनसाधक (मनसा) अन्तःकरण से (तन्त्रम्) कुटुम्ब के धारण के समान यन्त्र-कलाओं को (वयन्ति) रचते हैं जैसे (सविता) अनेक विद्या-व्यवहारों में प्रेरणा करने हारा पुरुष और (सरस्वती) उत्तम विद्यायुक्त स्त्री तथा (अश्विना) विद्याओं में व्याप्त पढ़ाने और उपदेश करने हारे दो पुरुष (यज्ञम्) संगति मेल करने योग्य व्यवहार को करते हैं जैसे (भिषज्यन्) चिकित्सा की इच्छा करता हुआ (वरुण.) श्रेष्ठ पुरुष (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य के (रूपम्) स्वरूप का विधान करता है वैसे तुम भी किया करो ॥८०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् लोग अनेक धातु और साधन विशेषों से वस्त्रादि को बना के अपने कुटुम्ब का पालन करते हैं तथा पदार्थों के मेलरूप यज्ञ को कर पथ्य ओषधिरूप पदार्थों को देके रोगों से छुड़ाते और शिल्प-क्रियाओं से प्रयोजनों को सिद्ध करते हैं वैसे अन्य लोग भी किया करें ॥८०॥

तदित्यस्य शंख ऋषिः । वरुणो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कौन पुरुष यज्ञ करने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तद॑स्य रू॒पम॒मृत॒ꣳ शची॑भिस्ति॒स्रो द॑धुर्दे॒वताः॑ सꣳररा॒णाः । लोमा॑नि॒
शष्पै॑र्बहु॒धा न तोक्म॑भिस्त्व॒ग॑स्य मा॒ꣳसम॑भव॒न्न ला॒जाः ॥८१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (संरराणाः) अच्छे प्रकार देने (तिस्रः) पढ़ाने पढ़ने और परीक्षा करने हारे तीन (देवताः) विद्वान् लोग (शचीभिः) उत्तम प्रज्ञा और कर्मों के साथ (बहुधा) बहुत प्रकारों से जिस यज्ञ को और (शष्पैः) दीर्घ लोगों के

साथ (लोमानि) लोमों को (बधुः) धारण करें और (तत्) उस (अस्य) इस यज्ञ के (अमृतम्) नाशरहित (रूपम्) रूप को तुम लोग जानो यह (तोक्मभिः) बालकों से (न) नहीं अनुष्ठान करने योग्य और (अस्य) इस के मध्य (त्वक्) त्वचा (मांसम्) मांस और (लाजाः) भुंजा हुआ सुखा अन्न आदि होम करने योग्य (न, अभवत्) नहीं होता इस को भी तुम जानो ॥८१॥

भावार्थः—जो वहुत काल पर्य्यन्त डाढ़ी मूंछ धारणपूर्वक ब्रह्मचारी अथवा पूर्ण विद्या वाले जितेन्द्रिय भद्रजन हैं वे ही यज धातु के अर्थ को जानने योग्य अर्थात् यज्ञ करने योग्य होते हैं अन्य बालबुद्धि अविद्वान् नहीं हो सकते वह हवनरूप यज्ञ ऐसा है कि जिस में मांस क्षार खट्टे से भिन्न पदार्थ वा तीखा आदि गुणरहित सुगन्धित पुष्ट मिष्ट तथा रोगनाशकादि गुणों के सहित हो वही हवन करने योग्य होवे ॥८१॥

तदित्यस्य शंख ऋषिः । अश्विनौ देवते । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विदुषी स्त्रियों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तद॒श्विना॑ भि॒षजा॑ रु॒द्रव॑र्तनी॒ सर॑स्वती वयति॒ पेशो॒ऽअन्त॑रम् ।
अस्थि॑ म॒ज्जानं॒ मास॑रैः कारोत॒रेण॒ दध॑तो॒ गवां॒ त्व॒चि ॥८२॥

पदार्थः—जिस को (सरस्वती) श्रेष्ठ ज्ञानयुक्त पत्नी (वयति) उत्पन्न करती है (तत्) उस (पेशः) सुन्दर स्वरूप (अस्थि) हाड़ (मज्जानम्) मज्जा (अन्तरम्) अन्तःस्थ को (मासरैः) परिपक्व ओषधि के सारों से (कारोतरेण) जैसे कूप से सब कामों को वैसे (गवाम्) पृथिव्यादि की (त्वचि) त्वचारूप उपरिभाग में (रुद्रवर्तनी) प्राण के मार्ग के समान मार्ग से युक्त (भिषजा) वैद्यक विद्या के जानने हारे (अश्विना) विद्याओं में पूर्ण दो पुरुष (दधतः) धारण करें ॥८२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वैद्यक शास्त्र के जानने हारे पति लोग शरीर को आरोग्य करके स्त्रियों को निरन्तर सुखी करें वैसे ही विदुषी स्त्री लोग भी अपने पतियों को रोगरहित किया करें ॥८२॥

सरस्वतीत्यस्य शंख ऋषिः । सरस्वती देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विद्वानों के समान अन्यों को आचरण करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सर॑स्वती॒ मन॑सा पेश॒लं वसु॒ नास॑त्याभ्यां वयति द॒र्शतं॒ वपुः॑ ।
रसं॑ परि॒स्रुता॒ न रोहि॑तं न॒ग्नहु॒र्धीर॒स्तस॑रं॒ न वेम॑ ॥८३॥

पदार्थः—(सरस्वती) उत्तम विज्ञानयुक्त स्त्री (मनसा) विज्ञान से (वेम) उत्पत्ति के (न) समान जिस (पेशलम्) उत्तम अङ्गों से युक्त (दर्शतम्) देखने योग्य (वपुः) शरीर वा जल को तथा (तसरम्) दुःखों के क्षय करने हारे (रोहितम्) प्रकट हुए (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त (रसम्) आनन्द को देने हारे रस के (न) समान (वसु) द्रव्य को (वयति) बनाती है जिन (नासत्याभ्याम्) असत्य व्यवहार से रहित माता पिता दोनों से (नग्नहुः) शुद्ध को ग्रहण करने हारा (धीरः) ध्यानवान् तेरा पति है उन दोनों को हम लोग प्राप्त होवें ॥८३॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् अध्यापक उपदेशक सार सार वस्तुओं का ग्रहण करते हैं वैसे ही सब स्त्री पुरुषों को ग्रहण करना योग्य है ॥८३॥

पयसेत्यस्य शंख ऋषिः । सोमो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अपने कुल को श्रेष्ठ करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पर्यसा शुक्रममृतं जनित्रᳬं सुरया मूत्राज्जनयन्त रेतः ।
अपामतिं दुर्मतिं बाधमाना ऊवध्यं वातᳬं सब्वं तदारात् ॥८४॥

पदार्थः—जो विद्वान् लोग (अमतिम्) नष्टबुद्धि (दुर्मतिम्) वा दुष्टबुद्धि को (अप, बाधमानाः) हटाते हुए जो (ऊवध्यम्) ऐसा है कि जिस से परिआं अंगुल आदि काटे जायं अर्थात् बहुत नाश करने का साधन (वातम्) प्राप्त (सब्वम्) सब पदार्थों में सम्बन्ध वाला (पयसा) जल दुग्ध वा (सुरया) सोमलता आदि ओषधि के रस से उत्पन्न हुए (मूत्रात्) मूत्राधार इन्द्रिय से (जनित्रम्) सन्तानोत्पत्ति का निमित्त (अमृतम्) अल्पमृत्यु रोगनिवारक (शुक्रम्) शुद्ध (रेतः) वीर्य है (तत्) उस को (आरात्) समीप से (जनयन्त) उत्पन्न करते हैं वे ही प्रजा वाले होते हैं ॥८४॥

भावार्थः—जो मनुष्यों के दुर्गुण और दुष्ट सङ्गों को छोड़ कर व्यभिचार से दूर रहते हुए वीर्य को बढ़ा के सन्तानों को उत्पन्न करते हैं वे अपने कुल को प्रशंसित करते हैं ॥८४॥

इन्द्र इत्यस्य शंख ऋषि.। सविता देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को रोग से पृथक् होना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रः सुत्रामा हृदयेन सत्यं पुरोडाशेन सविता जजान । यकृत्
क्लोमानं वरुणो भिषज्यन् मतस्ने वायव्यैर्न मिनाति पित्तम् ॥८५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (सुत्रामा) अच्छे प्रकार रोग से शरीर की रक्षा करने हारा (सविता) प्रेरक (इन्द्रः) रोगनाशक (वरुणः) श्रेष्ठ विद्वान् (भिषज्यन्)

चिकित्सा करता हुआ (हृदयेन) अपने आत्मा से (सत्यम्) यथार्थ भाव को (जजान) प्रसिद्ध करता और (पुरोडाशेन) अच्छे प्रकार संस्कार किए हुए अन्न और (वायव्यैः) पवनों में उत्तम अर्थात् सुख देने वाले मार्गों से (यकृत्) जो हृदय से दाहिनी ओर में स्थित मांसपिंड (क्लोमानम्) कंठनाड़ी (मतस्ने) हृदय के दोनों ओर के हाड़ों और (पित्तम्) पित्त को (न, मिनाति) नष्ट नहीं करता वैसे इन सबों की हिंसा तुम भी मत करो ॥८५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। रुद्वैद्य लोग स्वयं रोगरहित होकर अन्यों के शरीर में हुए रोग को जानकर रोगरहित निरन्तर किया करें ॥८५॥

आन्त्राणीत्यस्य शंख ऋषिः। सविता देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आन्त्राणि स्थालीर्मधुपिन्वमाना गुदाः पात्राणि सुदुघा न धेनुः।
श्येनस्य पत्रं न प्लीहा शचीभिरासन्दी नाभिरुदरं न माता ॥८६॥

पदार्थः– युक्ति वाले पुरुष को योग्य है कि (शचीभिः) उत्तम बुद्धि और कर्मों से (स्थालीः) दाल आदि पकाने के वर्त्तनों को अग्नि के ऊपर धर ओषधियों का पाक बना (मधु) उस में सहत डाल भोजन कर के (आन्त्राणि) उदरस्थ अन्न पकाने वाली नाड़ियों को (पिन्वमानाः) सेवन करते हुए प्रीति के हेतु (गुदाः) गुदेन्द्रियादि तथा (पात्राणि) जिन से खाया पिया जाय उन पात्रों को (सुदुघा) दुग्धादि से कामना सिद्ध करने वाली (धेनुः) गाय के (न) समान (प्लीहा) रक्तशोधक लोहू का पिण्ड (श्येनस्य) श्येन पक्षी के तथा (पत्रम्) पांख के (न) समान (माता) और माता के (न) तुल्य (आसन्दी) सब ओर से रस प्राप्त कराने हारी (नाभिः) नाभि नाड़ी (उदरम्) उदर को पुष्ट करती है ॥८६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य लोग उत्तम संस्कार किये हुए उत्तम अन्न और रसों से शरीर को रोगरहित करके प्रयत्न करते हैं वे अभीष्ट सुख को प्राप्त होते हैं ॥८६॥

कुम्भ इत्यस्य शंख ऋषिः। पितरो देवताः। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

स्त्री पुरुष कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

कुम्भो वनिष्टुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्रे योन्यां गर्भोऽअन्तः।
प्लाशिर्व्यक्तः शतधारऽउत्सो दुहे न कुम्भी स्वधां पितृभ्यः ॥८७॥

पदार्थः—जो (कुम्भः) कलश के समान वीर्यादि धातुओं से पूर्ण (वनिष्ठुः) सम विभाग करने हारा (जनिता) सन्तानों का उत्पादक (प्लाशिः) अच्छे प्रकार भोजन का करने वाला (व्यक्तः) विविध पुष्टियों से प्रसिद्ध (शचीभिः) उत्तम कर्मों कर के (शतधारः) सैकड़ों वाणियों से युक्त (उत्सः) जिस से गीला किया जाता है उस कूप के समान (दुहे) पूर्ति करने हारे व्यवहार में स्थित के (न) समान पुरुष और जो (कुम्भी) कुम्भी के सदृश स्त्री है इन दोनों को योग्य है कि (पितृभ्यः) पितरों को (स्वधाम्) अन्न देवें और (यस्मिन्) जिस (अग्रे) नवीन (योन्याम्) गर्भाशय के (अन्तः) बीच (गर्भः) गर्भ धारण किया जाता उस की निरन्तर रक्षा करें ॥८७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । स्त्री और पुरुष वीर्य वाले पुरुषार्थी होकर अन्नादि से विद्वान् को प्रसन्न कर धर्म से सन्तानों की उत्पत्ति करें ॥८७॥

मुखमित्यस्य शंख ऋषिः । सरस्वती देवता । स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

मुखꣳ सदस्य शिर इत् सतेन जिह्वा पवित्रमश्विना सन्त्सरस्वती ।
चप्यन्न पायुर्भिषगस्य वालो वस्तिर्न शेपो हरसा तरस्वी ॥८८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे ! (जिह्वा) जिस से रस ग्रहण किया जाता है वह (सरस्वती) वाणी के समान स्त्री (अस्य) इस पति के (सतेन) सुन्दर अवयवों से विभक्त शिर के साथ (शिरः) शिर करे तथा (आसन्) मुख के समीप (पवित्रम्) पवित्र (मुखम्) मुख करे इसी प्रकार (अश्विना) गृहाश्रम के व्यवहार में व्याप्त स्त्री पुरुष दोनों (इत) ही वर्त्तें तथा जो (अस्य) इस रोग से (पायुः) रक्षक (भिषक्) वैद्य (वालः) और बालक के (न) समान (वस्तिः) वास करने का हेतु पुरुष (शेपः) उपस्थेन्द्रिय को (हरसा) बल से (तरस्वी) करने हारा होता है वह (चप्यम्) शांति करने के (न) समान (सत्) वर्तमान में सन्तानोत्पत्ति का हेतु होवे उस सब को यथावत् करे ॥८८॥

भावार्थः—स्त्री पुरुष गर्भाधान के समय में परस्पर मिल कर प्रेम से पूरित होकर मुख के साथ मुख, आंख के साथ आंख, मन के साथ मन, शरीर के साथ शरीर का अनुसंधान करके गर्भ का धारण करें जिससे कुरूप वा वक्राङ्ग सन्तान न होवे ॥८८॥

अश्विभ्यामित्यस्य शंख ऋषिः । अश्विनौ देवते । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

अश्विभ्यां चक्षुरमृतं ग्रहाभ्यां छागेन तेजो हविषा शृतेन ।
पक्ष्माणि गोधूमैः कुवलैरुतानि पेशो न शुक्रमसितं वसाते ।।८९।।

पदार्थः—जैसे (ग्रहाभ्याम्) ग्रहण करने हारे (अश्विभ्यां) बहुभोजी स्त्री पुरुषों के साथ कोई भी विदुषी स्त्री और विद्वान् पुरुष (उतानि) विने हुए विस्तृत वस्त्र (पक्ष्माणि) और ग्रहण किये हुए अन्य रेशम और दुशाले आदि को (वसाते) ओढ़ें, पहनें वा जैसे आप भी (छागेन) अजा आदि के दूध के साथ और (शृतेन) पकाये हुए (हविषा) ग्रहण करने योग्य होम के पदार्थ के साथ (तेजः) प्रकाशयुक्त (अमृतम्) अमृतस्वरूप (चक्षुः) नेत्र को (कुवलैः) अच्छे शब्दों और (गोधूमैः) गेहूं के साथ (शुक्रम्) शुद्ध (असितम्) काले (पेशः) रूप के (न) समान स्वीकार करें वैसे अन्य गृहस्थ भी करें ।।८९।।

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे क्रिया किये हुए स्त्री पुरुष प्रियदर्शन प्रियभोजनशील पूर्णसामग्री को ग्रहण करने हारे होते हैं वैसे अन्य गृहस्थ भी होवें ।।८९।।

अविरित्यस्य शंख ऋषिः । सरस्वती देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।।

अब योगी का कर्त्तव्य अगले मन्त्र में कहा है ।।

अविर्न मेषो नसि वीर्याय प्राणस्य पन्था अमृतो ग्रहाभ्याम् ।
सरस्वत्युपवाकैर्व्यानं नस्यानि बर्हिर्बदरैर्जजान ।।९०।।

पदार्थः—जैसे (ग्रहाभ्याम्) ग्रहण करने हारों के साथ (सरस्वती) प्रशस्त विज्ञानयुक्त स्त्री (बदरैः) बेरों के समान (उपवाकैः) सामीप्यभाव किया जाय जिनसे उन कर्मों से (जजान) उत्पत्ति करती है वैसे जो (वीर्याय) वीर्य के लिये (नसि) नासिका में (प्राणस्य) प्राण का (अमृतः) नित्य (पन्थाः) मार्ग वा (मेषः) दूसरे से स्पर्द्धा करने वाला और (अविः) जो रक्षा करता है उस के (न) समान (व्यानम्) सब शरीर में व्याप्त वायु (नस्यानि) नासिका के हितकारक धातु और (बर्हिः) बढ़ाने हारा उपयुक्त किया जाता है ।।९०।।

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे धार्मिक न्यायाधीश प्रजा की रक्षा करता है वैसे ही प्राणायामादि से अच्छे प्रकार सिद्ध किये हुए प्राण योगी की सब दुःखों से रक्षा करते हैं जैसे विदुषी माता विद्या और अच्छी शिक्षा से अपने सन्तानों को बढ़ाती है वैसे अनुष्ठान किये हुए योग के अङ्ग योगियों को बढ़ाते हैं ।।९०।।

इन्द्रस्येत्यस्य शंख ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रस्य रूपमृषभो बलाय कर्णाभ्याᳬं श्रोत्रममृतं ग्रहाभ्याम् । यवा न बर्हिर्भ्रुवि केसराणि कर्कन्धु जज्ञे मधु सारघं मुखात् ॥९१॥

पदार्थः—जैसे (ग्रहाभ्याम्) जिन से ग्रहण करते हैं उन व्यवहारों के साथ (ऋषभः) ज्ञानी पुरुष (बलाय) योग-सामर्थ्य के लिये (यवाः) यवों के (न) समान (कर्णाभ्याम्) कानों से (श्रोत्रम्) शब्दविषय को (अमृतम्) नीरोग जल को और (कर्कन्धु) जिस से कर्म को धारण करें उस को (सारघम्) एक प्रकार के स्वाद से युक्त (मधु) सहत (बर्हिः) वृद्धिकारक व्यवहार और (भ्रुवि) नेत्र और ललाट के बीच में (केसराणि) विज्ञानों अर्थात् सुषुम्ना में प्राण वायु का निरोध कर ईश्वर-विषयक विशेष ज्ञानों को (मुखात्) मुख से उत्पन्न करता है वैसे यह सब (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य्य का (रूपम्) स्वरूप (जज्ञे) उत्पन्न होता है ॥९१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे निवृत्ति मार्ग में परम योगी योगबल से सिद्धियों को प्राप्त होता है वैसे ही अन्य गृहस्थ लोगों को भी प्रवृत्ति मार्ग में सब ऐश्वर्य्य को प्राप्त होना चाहिये ॥९१॥

आत्मन्नित्यस्य शंख ऋषिः । आत्मा देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आत्मन्नुपस्थे न वृकस्य लोम मुखे श्मश्रूणि न व्याघ्रलोम । केशा न शीर्षन्यशसे श्रियै शिखा सिᳬंहस्य लोम त्विषिरिन्द्रियाणि ॥९२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जिसके (आत्मन्) आत्मा में (उपस्थे) समीप स्थिति होने में (वृकस्य) भेड़िया के (लोम) बालों के (न) समान वा (व्याघ्रलोम) बाघ के बालों के (न) समान (मुखे) मुख पर (श्मश्रूणि) दाढ़ी और मूंछ (शीर्षन्) शिर में (केशाः) बालों के (न) समान (शिखा) शिखा (सिंहस्य) सिंह के (लोम) बालों के समान (त्विषिः) कान्ति तथा (इन्द्रियाणि) श्रोत्रादि शुद्ध इन्द्रियां हैं वह (यशसे) कीर्त्ति और (श्रियै) लक्ष्मी के लिये प्राप्त होने को समर्थ होता है ॥९२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो परमात्मा का उपस्थान करते हैं वे यशस्वी कीर्त्तिमान् होते हैं जो योगाभ्यास करते हैं, वे भेड़िया व्याघ्र और सिंह के समान एकान्त देश का सेवन करके पराक्रम वाले होते

हैं जो पूर्ण ब्रह्मचर्य करते हैं वे क्षत्रिय भेड़िया व्याघ्र और सिंह के समान पराक्रम वाले होते हैं ॥९२॥

अङ्गानीत्यस्य शंख ऋषिः । अश्विनौ देवते । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अङ्गान्यात्मन् भिषजा तदश्विनात्मानमङ्गैः समधात् सरस्वती ।
इन्द्रस्य रूपᳬं शतमानमायुश्चन्द्रेण ज्योतिरमृतं दधानाः ॥९३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (भिषजा) उत्तम वैद्य के समान रोगरहित (अश्विना) सिद्ध साधक दो विद्वान् जैसे (सरस्वती) योगयुक्त स्त्री (आत्मन्) अपने आत्मा में स्थित हुई (अङ्गानि) योग के अङ्गों का अनुष्ठान करके (आत्मानम्) अपने आत्मा को (समधात्) समाधान करती है वैसे ही (अङ्गैः) योगाङ्गों से जो (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य्य का (रूपम्) रूप है (तत्) उस का समाधान करें जैसे योग को (दधानाः) धारण करते हुए जन (शतमानम्) सौ वर्ष पर्यन्त (आयुः) जीवन को धारण करते हैं वैसे (चन्द्रेण) आनन्द से (अमृतम्) अविनाशी (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप परमात्मा का धारण करो ॥९३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे रोगी लोग उत्तम वैद्य को प्राप्त हो औषध और पथ्य का सेवन कर के रोगरहित होकर आनन्दित होते हैं वैसे योग को जानने की इच्छा करने वाले योगी लोग इस को प्राप्त हो योग के अङ्गों का अनुष्ठान कर और अविद्यादि क्लेशों से दूर हो के निरन्तर सुखी होते हैं ॥९३॥

सरस्वतीत्यस्य शंख ऋषिः । सरस्वती देवता । विराट् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सरस्वती योन्यां गर्भमन्तरश्विभ्यां पत्नी सुकृतं बिभर्त्ति ।
अपाᳬं रसेन वरुणो न साम्नेन्द्रᳬं श्रियै जनयन्नप्सु राजा ॥९४॥

पदार्थः—हे योग करनेहारे पुरुष ! जैसे (सरस्वती) विदुषी (पत्नी) स्त्री अपने पति से (योन्याम्) योनि के (अन्तः) भीतर (सुकृतम्) पुण्यरूप (गर्भम्) गर्भ को (बिभर्त्ति) धारण करती है वा जैसे (वरुणः) उत्तम (राजा) राजा (अश्विभ्याम्) अध्यापक और उपदेशक के साथ (अपाम्) जलों के (रसेन) रस से (अप्सु) प्राणों में (साम्ना) मेल के (न) समान सुख से (इन्द्रम्) ऐश्वर्य्य को (श्रियै) लक्ष्मी के लिये (जनयन्) प्रकट करता हुआ विराजमान होता है वैसे तू हो ॥९४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे धर्मपत्नी पति की सेवा करती है और जैसे राजा साम दाम आदि से राज्य के ऐश्वर्य को बढ़ाता है वैसे ही विद्वान् योग के उपदेशक की सेवा कर योग के अङ्गों से योग की सिद्धियों को बढ़ाया करें ॥९४॥

तेज इत्यस्य शंख ऋषिः। अश्विनौ देवते। निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तेजः पशूनाꣳ हविरिन्द्रियावत् परिस्रुता पयसा सारघं मधु। अश्विभ्यां दुग्धं भिषजा सरस्वत्या सुतासुताभ्याममृतः सोमऽ इन्दुः ॥९५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जिन (सुतासुताभ्याम्) सिद्ध असिद्ध किये हुए (भिषजा) वैद्यक विद्या के जानने हारे (अश्विभ्याम्) विद्या में व्याप्त दो विद्वान् (पशूनाम्) गवादि पशुओं के सम्बन्ध से (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त होने वाले (पयसा) दूध से (तेजः) प्रकाशरूप (इन्द्रियावत्) कि जिस में उत्तम इन्द्रिय होते हैं उस (सारघम्) उत्तम स्वादयुक्त (मधु) मधुर (हविः) खाने पीने योग्य (दुग्धम्) दुग्धादि पदार्थ और (सरस्वत्या) विदुषी स्त्री से (अमृतः) मृत्युधर्मरहित नित्य रहने वाला (सोमः) ऐश्वर्य्य (इन्दुः) और उत्तम स्नेहयुक्त पदार्थ उत्पन्न किया जाता है, वे योगसिद्धि को प्राप्त होते हैं ॥९५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे गौ के चराने वाले गोपाल लोग गौ आदि पशुओं की रक्षा करके दूध आदि से सन्तुष्ट होते हैं वैसे ही मन आदि इन्द्रियों को दुष्टाचार से पृथक् संरक्षण करके योगी लोगों को आनन्दित होना चाहिये ॥९५॥

इस अध्याय में सोम आदि पदार्थों के गुण वर्णन करने से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये॥

यह यजुर्वेदभाष्य का उन्नीसवां (१९) अध्याय पूरा हुआ ॥१९॥

* ओ३म् *

अथ विंशोऽध्यायारम्भः

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥१॥

क्षत्रस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभेशो देवता । द्विपदा विराड् गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

अब बीसवें अध्याय का आरम्भ है इसके आदि से राजधर्म
विषय का वर्णन करते हैं ॥

क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसि ।
मा त्वा हिꣳसीन्मा मा हिꣳसीः ॥१॥

पदार्थः—हे सभापते ! जिस से तू (क्षत्रस्य) राज्य का (योनिः) निमित्त (असि) है (क्षत्रस्य) राजकुल का (नाभिः) नाभि के समान जीवनहेतु (असि) है इससे (त्वा) तुझ को कोई भी (मा, हिंसीत्) मत मारे तू (मा) मुझे (मा, हिंसीः) मत मारे ॥१॥

भावार्थः—स्वामी और भृत्यजन परस्पर ऐसी प्रतिज्ञा करें कि राजपुरुष प्रजापुरुषों और प्रजापुरुष राजपुरुषों की निरन्तर रक्षा करें जिससे सब के सुख की उन्नति होवे ॥१॥

निषसादेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभेशो देवता । भुरिगुष्णिक्
छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा ।
साम्राज्याय सुक्रतुः मृत्योः पाहि विद्योत्पाहि ॥२॥

पदार्थः—हे सभापति ! आप (सुक्रतुः) उत्तम बुद्धि और कर्मयुक्त (धृतव्रतः) सत्य का धारण करने हारे (वरुणः) उत्तम स्वभावयुक्त होते हुए (साम्राज्याय) भूगोल में चक्रवर्त्ती राज्य करने के लिये (पस्त्यासु) न्यायघरों में (आ, नि, षसाद) निरन्तर स्थित हूजिये तथा हम वीरों की (मृत्योः) मृत्यु से (पाहि) रक्षा कीजिये और (विद्योत्) प्रकाशमान अग्नि अस्त्रादि से (पाहि) रक्षा कीजिये ॥२॥

भावार्थः—जो धर्मयुक्त गुण कर्म स्वभाव वाला न्यायाधीश सभापति होवे सो चक्रवर्ती राज्य और प्रजा की रक्षा करने को समर्थ होता है अन्य नहीं ॥२॥

देवस्येत्यस्याश्विनावृषी । सभेशो देवता । अतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् । अ॒श्विनो॒र्भैष॑ज्ये॒न तेज॑से ब्रह्मवर्च॒साया॒भि षि॑ञ्चामि । सर॑स्वत्यै॒ भैष॑ज्येन वी॒र्या॒या॒न्नाद्या॒या॒भि षि॑ञ्चा॒मीन्द्र॒स्ये॒न्द्रि॒येण॒ बला॑य श्रि॒यै यश॑से॒ऽभि षि॑ञ्चामि ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे शुभ लक्षणों से युक्त पुरुष ! (सवितुः) सकल ऐश्वर्य्य के अधिष्ठाता (देवस्य) सब ओर से प्रकाशमान जगदीश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए जगत् में (अश्विनोः) सम्पूर्ण विद्या में व्याप्त अध्यापक और उपदेशक के (बाहुभ्याम्) बल और पराक्रम से (पूष्णः) पूर्ण बल वाले वायुवत् वर्त्तमान पुरुष के (हस्ताभ्याम्) उत्साह और पुरुषार्थ से (अश्विनोः) वैद्यक विद्या में व्याप्त पढ़ाने और ओषधि करने हारे के (भैषज्येन) वैद्यकपन से (तेजसे) प्रगल्भता के लिये (ब्रह्मवर्चसाय) वेदों के पढ़ने के लिये (त्वा) तुझ को राज प्रजाजन में (अभि, षिञ्चामि) अभिषेक करता हूं (भैषज्येन) ओषधियों के भाव से (सरस्वत्यै) अच्छे प्रकार शिक्षा की हुई वाणी (वीर्याय) पराक्रम और (अन्नाद्याय) अन्नादि की प्राप्ति के लिये (अभि, षिञ्चामि) अभिषेक करता हूं (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य्य वाले के (इन्द्रियेण) धन से (बलाय) पुष्ट होने (श्रियै) सुशोभायुक्त राजलक्ष्मी और (यशसे) पुण्य कीर्ति के लिये (अभि, षिञ्चामि) अभिषेक करता हूं ॥३॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को योग्य है कि इस जगत् में धर्मयुक्त कर्मों का प्रकाश करने के लिये शुभ गुण कर्म और स्वभाव वाले जन को राज्य-पालन करने के लिये अधिकार देवें ॥३॥

कोऽसीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभापतिर्देवता । निचृदार्षी गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

कोऽसि कतमोऽसि कस्मै त्वा काय त्वा ।
सुश्लोक सुमङ्गल सत्यराजन् ॥४॥

पदार्थः—हे (सुश्लोक) उत्तम कीर्ति और सत्य बोलने हारे (सुमङ्गल) प्रशस्त मङ्गलकारी कर्मों के अनुष्ठान करने और (सत्यराजन्) सत्यन्याय के प्रकाश करने हारा जो तू (कः) सुखस्वरूप (असि) है और (कतमः) अतिसुखकारी (असि) है इससे (कस्मै) सुखस्वरूप परमेश्वर के लिये (त्वा) तुझ को तथा (काय) परमेश्वर जिसका देवता उस मन्त्र के लिये (त्वा) तुझ को मैं अभिषेकयुक्त करता हूं ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से (अभि, षिञ्चामि) इन पदों की अनुवृत्ति आती है। जो सब मनुष्यों के मध्य में अतिप्रशंसनीय होवे वह सभापतित्व के योग्य होता है ॥४॥

शिरो म इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभापतिर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

शिरो मे श्रीर्यशो मुखं त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि ।
राजा मे प्राणोऽअमृतꣳ सम्राट् चक्षुर्विराट् श्रोत्रम् ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! राज्य में अभिषेक को प्राप्त हुए (मे) मेरी (श्रीः) शोभा और धन (शिरः) शिरस्थानी (यशः) सत्कीर्ति का कथन (मुखम्) मुखस्थानी (त्विषिः) न्याय के प्रकाश के समान (केशाः) केश (च) और (श्मश्रूणि) दाढ़ी मूंछ (राजा) प्रकाशमान (मे) मेरा (प्राणः) प्राण आदि वायु (अमृतम्) मरणधर्मरहित चेतन ब्रह्म (सम्राट्) अच्छे प्रकार प्रकाशमान (चक्षुः) नेत्र (विराट्) विविधशास्त्र-श्रवण-युक्त (श्रोत्रम्) कान है ऐसा तुम लोग जानो ॥५॥

भावार्थः—जो राज्य में अभिषिक्त राजा होवे सो शिर आदि अवयवों को शुभ कर्मों में प्रेरित रक्खे ॥५॥

जिह्वा म इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभापतिर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

जिह्वा मे भद्रं वाङ्महो मनो मन्युः स्वराड् भामः ।
मोदाः प्रमोदा अङ्गुलीरङ्गानि मित्रं मे सहः ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (मे) मेरी (जिह्वा) जीभ (भद्रम्) कल्याणकारक अन्नादि के भोग करने हारी (वाक्) जिससे बोला जाता है वह वाणी (महः) बड़ी पूजनीय वेदशास्त्र के बोध से युक्त (मनः) विचार करने वाला अन्तःकरण (मन्युः) दुष्टाचारी मनुष्यों पर क्रोध करने हारा (स्वराट्) स्वयं प्रकाशमान बुद्धि (भामः) जिससे प्रकाश होता है (मोदाः) हर्ष उत्साह (प्रमोदाः) प्रकृष्ट आनन्द के योग (अङ्गुलीः) अङ्गुलियां (अङ्गानि) और अन्य सब अङ्ग (मित्रम्) सखा और (सहः) सहन (मे) मेरे सहायक हों ॥६॥

भावार्थः—जो राजपुरुष ब्रह्मचर्य जितेन्द्रिय और धर्माचरण से पथ्य आहार करने, सत्य वाणी बोलने, दुष्टों में क्रोध का प्रकाश करने हारे आनन्दित हो अन्यों को आनन्दित करते हुए पुरुषार्थी सब के मित्र और बलिष्ठ होवें वे सर्वदा सुखी रहें ॥६॥

बाहू इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजा देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

बाहू मे बलमिन्द्रियꣳ हस्तौ मे कर्म वीर्यम् ।
आत्मा क्षत्रमुरो मम ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (मे) मेरा (बलम्) बल और (इन्द्रियम्) धन (बाहू) भुजारूप (मे) मेरा (कर्म) कर्म और (वीर्य्यम्) पराक्रम (हस्तौ) हाथ रूप (मम) मेरा (आत्मा) स्वस्वरूप और (उरः) हृदय (क्षत्रम्) अति दुःख से रक्षा करने हारा हो ॥७॥

भावार्थः—राजपुरुषों को योग्य है कि आत्मा, अन्तःकरण और बाहुओं के बल को उत्पन्न कर सुख बढ़ावें ॥७॥

पृष्ठीरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभापतिर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पृष्ठीर्मे राष्ट्रमुदरमꣳसौ ग्रीवाश्च श्रोणी ।
ऊरूऽअरत्नी जानुनी विशो मेऽङ्गानि सर्वतः ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (मे) मेरा (राष्ट्रम्) राज्य (पृष्ठी) पीठ (उदरम्) पेट (अंसौ) स्कन्ध (ग्रीवाः) कण्ठप्रदेश (श्रोणीः) कटिप्रदेश (ऊरू) जंघा (अरत्नी) भुजाओं का मध्यप्रदेश और (जानुनी) गोड़ के मध्यप्रदेश तथा (सर्वतः) सब ओर से (च) और (अङ्गानि) अङ्ग (मे) मेरे (विशः) प्रजाजन हैं ॥८॥

भावार्थः—जो अपने अङ्गों के तुल्य प्रजा को जाने वही राजा सर्वदा बढ़ता रहता है ॥८॥

नाभिर्म इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभेशो देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

नाभिर्मे चित्तं विज्ञानं पायुर्मेऽपचितिर्भसत् । आनन्दनन्दावाण्डौ मे भगः सौभाग्यं पसः । जङ्घाभ्यां पद्भ्यां धर्मोऽस्मि विशि राजा प्रतिष्ठितः ॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (मे) मेरी (चित्तम्) स्मरण करने हारी वृत्ति (नाभिः) मध्यप्रदेश (विज्ञानम्) विशेष वा अनेक ज्ञान (पायुः) मूलेन्द्रिय (मे) मेरी (अपचितिः) प्रजाजनक (भसत्) योनि (आण्डौ) आण्ड के आकार वृषणावयव (आनन्दनन्दौ) संभोग के सुख से आनन्दकारक (मे) मेरा (भगः) ऐश्वर्य्य (पसः) लिंग और (सौभाग्यम्) पुत्र पौत्रादि युक्त होवे इसी प्रकार मैं (जङ्घाभ्याम्) जङ्घा और (पद्भ्याम्) पगों के साथ (विशि) प्रजा में (प्रतिष्ठितः) प्रतिष्ठा को प्राप्त (धर्मः) पक्षपातरहित न्यायधर्म के समान (राजा) राजा (अस्मि) हूं जिससे तुम लोग मेरे अनुकूल रहो ॥९॥

भावार्थः—जो सब अङ्गों से शुभ कर्म करता है सो धर्मात्मा होकर प्रजा में सत्कार के योग्य उत्तम प्रतिष्ठित राजा होवे ॥९॥

प्रतीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभेशो देवता । विराट् शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रति क्षत्रे प्रति तिष्ठामि राष्ट्रे प्रत्यश्वेषु प्रति तिष्ठामि गोषु । प्रत्यङ्गेषु प्रति तिष्ठाम्यात्मन्प्रति प्राणेषु प्रति तिष्ठामि पुष्टे प्रति द्यावापृथिव्योः प्रति तिष्ठामि यज्ञे ॥१०॥

पदार्थः—प्रजाजनों में प्रतिष्ठा को प्राप्त मैं राजा धर्मयुक्त व्यवहार से (क्षत्रे) क्षय से रक्षा करने हारे क्षत्रियकुल में (प्रति) प्रतिष्ठा को प्राप्त होता (राष्ट्रे) राज्य

में (प्रति, तिष्ठामि) प्रतिष्ठा को प्राप्त होता हूं (अश्वेषु) घोड़े आदि वाहनों में (प्रति) प्रतिष्ठा को प्राप्त होता (गोषु) गौ और पृथिवी आदि पदार्थों में (प्रति, तिष्ठामि) प्रतिष्ठित होता हूं (अंगेषु) राज्य के अङ्गों में (प्रति) प्रतिष्ठित होता (आत्मन्) आत्मा में (प्रति, तिष्ठामि) प्रतिष्ठित होता हूं (प्राणेषु) प्राणों में (प्रति) प्रतिष्ठित होता (पुष्टे) पुष्टि करने में (प्रति, तिष्ठामि) प्रतिष्ठित होता हूं (द्यावा-पृथिव्योः) सूर्य चन्द्र के समान न्याय-प्रकाश और पृथिवी में (प्रति) प्रतिष्ठित होता (यज्ञे) विद्वानों की सेवा संग और विद्यादानादि क्रिया में (प्रति, तिष्ठामि) प्रतिष्ठित होता हूं ॥१०॥

भावार्थः—जो राजा प्रिय अप्रिय को छोड़ न्यायधर्म से समस्त प्रजा का शासन सब राजकर्मों में चाररूप आंखों वाला अर्थात् राज्य के गुप्त हाल को देने वाले ही जिस के नेत्र के समान वैसा हो मध्यस्थ वृत्ति से सब प्रजाओं का पालन कर करा के निरन्तर विद्या की शिक्षा को बढ़ावे वही सब का पूज्य होवे ॥१०॥

त्रया इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । उपदेशका देवताः । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अत्र उपदेशक विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्रया देवा एकादश त्रयस्त्रिꣳशाः सुराधसः । बृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सवे । देवा देवैरवन्तु मा ॥११॥

पदार्थः—जो (त्रयाः) तीन प्रकार के (देवाः) दिव्यगुण वाले (बृहस्पति-पुरोहिताः) जिन में कि बड़ों का पालन करने हारा सूर्य्य प्रथम धारण किया हुआ है (सुराधसः) जिन से अच्छे प्रकार कार्यों की सिद्धि होती वे (एकादश) ग्यारह (त्रयस्त्रिशाः) तेंतीस दिव्यगुण वाले पदार्थ (सवितुः) सब जगत् की उत्पत्ति करने हारे (देवस्य) प्रकाशमान ईश्वर के (सवे) परमैश्वर्य्ययुक्त उत्पन्न किये हुए जगत् में हैं उन (देवैः) पृथिव्यादि तेंतीस पदार्थों से सहित (मा) मुझ को (देवाः) विद्वान् लोग (अवन्तु) रक्षा और बढ़ाया करें ॥११॥

भावार्थः—जो पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य्य, चन्द्र, नक्षत्र ये आठ और प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय तथा ग्यारहवां जीवात्मा, बारह महीने, बिजुली और यज्ञ इन तेंतीस दिव्यगुण वाले पृथिव्यादि पदार्थों के गुण कर्म और स्वभाव के उपदेश से सब मनुष्यों की उन्नति करते हैं वे सर्वोपकारक होते हैं ॥११॥

प्रथमा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । प्रकृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रथमा द्वितीयैर्द्वितीयास्तृतीयैस्तृतीयाः सत्येन सत्यं यज्ञेन यज्ञो यजुर्भिर्यजूंषि सामभिः सामान्यृग्भिर्ऋचः पुरोऽनुवाक्याभिः पुरोऽनुवाक्या याज्याभिर्याज्या वषट्कारैर्वषट्कारा आहुतिभिराहुतयो मे कामान्त्समर्धयन्तु भूः स्वाहा ॥१२॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! जैसे (प्रथमाः) आदि में कहे पृथिव्यादि आठ वसु (द्वितीयैः) दूसरे ग्यारह प्राण आदि रुद्रों के साथ (द्वितीयाः) दूसरे ग्यारह रुद्र (तृतीयैः) तीसरे बारह महीनों के साथ (तृतीयाः) तीसरे महीने (सत्येन) नाशरहित कारण के सहित (सत्यम्) नित्यकारण (यज्ञेन) शिल्पविद्यारूप क्रिया के साथ (यज्ञः) शिल्पक्रिया आदि कर्म (यजुर्भिः) यजुर्वेदोक्त क्रियाओं से युक्त (यजूंषि) यजुर्वेदोक्त क्रिया (सामभिः) सामवेदोक्त विद्या के साथ (सामानि) सामवेदस्थ क्रिया आदि (ऋग्भिः) ऋग्वेदस्थ विद्या क्रियाओं के साथ (ऋचः) ऋग्वेदस्थ व्यवहार (पुरोनुवाक्याभिः) अथर्ववेदोक्त प्रकरणों के साथ (पुरोनुवाक्याः) अथर्ववेदस्थ व्यवहार (याज्याभिः) यज्ञ के सम्बन्ध में जो क्रिया है उन के साथ (याज्याः) यज्ञक्रिया (वषट्कारैः) उत्तम कर्मों के साथ (वषट्काराः) उत्तम क्रिया (आहुतिभिः) होम क्रियाओं के साथ (आहुतयः) आहुतियां (स्वाहा) सत्य क्रिया के साथ ये सब (भूः) भूमि में (मे) मेरी (कामान्) इच्छाओं को (समर्धयन्तु) अच्छे प्रकार सिद्ध करें वैसे मुझ को आप लोग बोध कराओ ॥१२॥

भावार्थः—अध्यापक और उपदेशक प्रथम वेदों को पढ़ा पृथिव्यादि पदार्थ-विद्याओं को जना कार्य कारण के सम्बन्ध से उन के गुणों को साक्षात् करा के हस्तक्रिया से सब मनुष्यों को कुशल अच्छे प्रकार किया करें ॥१२॥

लोमानीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अध्यापकोपदेशकौ देवते । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

लोमानि प्रयतिर्मम त्वङ्म आनतिरागतिः ।
माᳬसं म उपनतिर्वस्वस्थि मज्जा म आनतिः ॥१३॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक लोगो ! जैसे (मम) मेरे (लोमानि) रोम वा (प्रयतिः) जिस से प्रयत्न करते हैं वा (मे) मेरी (त्वक्) त्वचा (आनतिः) वा

जिस से सब ओर से नम्र होते हैं वा (मांसम्) मांस वा (आगतिः) आगमन तथा (मे) मेरा (वसु) द्रव्य (उपनतिः) वा जिस से नम्र होते हैं (मे) मेरे (अस्थि) हाड़ और (मज्जा) हाड़ों के बीच का पदार्थ (आनतिः) वा अच्छे प्रकार नमन होता हो वैसे तुम लोग प्रयत्न किया करो ॥१३॥

भावार्थः—अध्यापक उपदेशक लोगों को इस प्रकार प्रयत्न करना चाहिये कि जिससे सुशिक्षायुक्त सब पुरुष, सब कन्या सुन्दर अङ्ग और स्वभाव वाले दृढ़, बलयुक्त, धार्मिक विद्याओं से युक्त होवें ॥१३॥

यदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यद्दे॒वा दे॑व॒हेड॑नं॒ देवा॑सश्चकृ॒मा व॒यम्।
अ॒ग्निर्मा॒ तस्मा॒देन॑सो॒ विश्वा॑न्मुञ्च॒त्वꣳह॑सः ॥१४॥

पदार्थः—हे विद्वन्! (यत्) जो (वयम्) हम (देवाः) अध्यापक और उपदेशक विद्वान् तथा अन्य (देवासः) विद्वान् लोग परस्पर (देवहेडनम्) विद्वानों का अनादर (चकृम) करें (तस्मात्) उस (विश्वात्) समस्त (एनसः) अपराध और (अंहसः) दुष्ट व्यसन से (अग्निः) पावक के समान सब विद्याओं में प्रकाशमान आप (मा) मुझ को (मुञ्चतु) पृथक् करो ॥१४॥

भावार्थः—जो कभी अकस्मात् भ्रान्ति से किसी विद्वान् का अनादर कोई करे तो उसी समय क्षमा करावे जैसे अग्नि सब पदार्थों में प्रविष्ट हुआ सब को अपने स्वरूप में स्थिर करता है वैसे विद्वान् को चाहिये कि सत्य के उपदेश से असत्याचरण से पृथक् और सत्याचरण में प्रवृत्त करके सब को धार्मिक करें ॥१४॥

यदीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। वायुर्देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यदि॒ दिवा॒ यदि॒ नक्त॒मेनाꣳसि चकृ॒मा व॒यम्।
वा॒युर्मा॒ तस्मा॒देन॑सो॒ विश्वा॑न्मुञ्च॒त्वꣳह॑सः ॥१५॥

पदार्थः—हे विद्वन्! (यदि) जो (दिवा) दिवस में (यदि) जो (नक्तम्) रात्रि में (एनांसि) अज्ञात अपराधों को (वयम्) हम लोग (चकृम) करें (तस्मात्) उस (विश्वात्) समग्र (एनसः) अपराध और (अंहसः) दुष्ट व्यसन से (मा) मुझे (वायुः) वायु के समान वर्त्तमान आप्त (मुञ्चतु) पृथक् करे ॥१५॥

भावार्थः—जो दिवस और रात्रि में अज्ञान से पाप करें उस पाप से भी सब शिष्यों को शिक्षक लोग पृथक् किया करें ॥१५॥

यदीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सूर्यो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यदि जाग्रद्यदि स्वप्नऽएनांᳬसि चकृमा वयम् ।
सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वᳬहसः ॥१६॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! (यदि) जो (जाग्रत्) जाग्रत अवस्था और (यदि) जो (स्वप्ने) स्वप्नावस्था में (एनांसि) अपराधों को (वयम्) हम (चकृम) करें (तस्मात्) उस (विश्वात्) समग्र (एनसः) पाप और (अंहसः) प्रमाद से (सूर्यः) सूर्य के समान वर्त्तमान आप (मा) मुझ को (मुञ्चतु) पृथक् करें ॥१६॥

भावार्थः—जिस किसी दुष्ट चेष्टा को मनुष्य लोग करें विद्वान् लोग उस चेष्टा से उन सब को शीघ्र निवृत्त करें ॥१६॥

यदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । लिङ्गोक्ता देवताः । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये । यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयं यदेकस्याऽधि धर्मणि तस्यावयजनमसि ॥१७॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! (वयम्) हम लोग (यत्) जो (ग्रामे) गांव में (यत्) जो (अरण्ये) जङ्गल में (यत्) जो (सभायाम्) सभा में (यत्) जो (इन्द्रिये) मन में (यत्) जो (शूद्रे) शूद्र में (यत्) जो (अर्ये) स्वामी वा वैश्य में (यत्)जो(एकस्य) एक के (अधि) ऊपर (धर्मणि) धर्म में तथा (यत्) जो और (एनः) अपराध (चकृम) करते हैं वा करने वाले हैं (तस्य) उस सब का आप (अवयजनम्) छुड़ाने के साधन हैं इस से महाशय (असि) हैं ॥१७॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि कभी कहीं पापाचरण न करें जो कथंचित् करते बन पड़े तो उस सब को अपने कुटुम्ब और विद्वान् के सामने और राजसभा में सत्यता से कहें जो पढ़ाने और उपदेश करने हारे स्वयं धार्मिक होकर अन्य सब को धर्माचरण में युक्त करते हैं उनसे अधिक मनुष्यों को सुभूषित करने हारा दूसरा कौन है ॥१७॥

यदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वरुणो देवता । भुरिगत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यदापोऽअघ्न्या इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च । अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः अव देवैर्देवकृतमेनोऽयक्ष्यव मर्त्यैर्मर्त्यकृतम्पुरु राव्णो देव रिषस्पाहि ॥१८॥

पदार्थः हे (वरुण) उत्तम प्राप्ति कराने और (देव) दिव्य बोध का देने हारा तू (यत्) जो (आपः) प्राण (अघ्न्याः) मारने को अयोग्य गौएं (इति) इस प्रकार से वा हे (वरुण) सर्वोत्कृष्ट (इति) इस प्रकार से हम लोग (शपामहे) उलाहना देते हैं (ततः) उस अविद्यादि क्लेश और अधर्माचरण से (नः) हम को (मुञ्च) अलग कर हे (अवभृथ) ब्रह्मचर्य और विद्या से निष्णात (निचुम्पुण) मन्द गमन करने हारे ! तू (निचेरुः) निश्चित आनन्द का देने हारा और (निचुम्पुणः) निश्चित आनन्दयुक्त (असि) है इस हेतु से (पुरुराव्णः) बहु दुःख देने हारी (रिषः) हिंसा से (पाहि) रक्षा कर (देवकृतम्) जो विद्वानों का किया (एनः) अपराध है उस को (देवैः) विद्वानों के साथ (अयायक्षि) नाश करता है जो (मर्त्यकृतम्) मनुष्यों का किया अपराध है उस को (मर्त्यैः) मनुष्यों के साथ से (अव) छुड़ा देता है ॥१८॥

भावार्थः अध्यापक और उपदेशक मनुष्यों को शिष्य जन ऐसे सत्यवादी सिद्ध करने चाहियें कि जो इनको कहीं शपथ करना न पड़े जो जो मनुष्यों को श्रेष्ठ कर्म का आचरण करना हो वह वह सब को आचरण करना चाहिये और अधर्मरूप हो वह किसी को कभी न करना चाहिये ॥१८॥

समुद्र इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । आपो देवताः । निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सन्त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः । सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥१९॥

पदार्थः—हे शिष्य ! (ते) तेरा (हृदयम्) हृदय (समुद्रे) आकाशस्थ (अप्सु) प्राणों के (अन्तः) बीच में हो (त्वा) तुझ को (ओषधीः) ओषधियां (सं, विशन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त हों (उत) और (आपः) प्राण वा जल अच्छे प्रकार प्रविष्ट हों

जिस से (नः) हमारे लिये (आपः) जल और (ओषधयः) ओषधि (सुमित्रियाः) उत्तम मित्र के समान सुखदायक (सन्तु) हों (यः) जो (अस्मान्) हमारा (द्वेष्टि) द्वेष करे (यं, च) और जिस का (वयम्) हम (द्विष्मः) द्वेष करें (तस्मै) उस के लिये ये सब (दुर्मित्रियाः) शत्रुओं के समान (सन्तु) होवें ॥१९॥

भावार्थः—अध्यापक लोगों को इस प्रकार करने की इच्छा करना चाहिये जिससे शिक्षा करने योग्य मनुष्य अवकाशसहित प्राण तथा ओषधियों की विद्या के जानने हारे शीघ्र हों ओषधि, जल और प्राण अच्छे प्रकार सेवा किये हुए मित्र के समान विद्वानों की पालना करें और अविद्वान् लोगों को शत्रु के समान पीड़ा देवें उनका सेवन और उनका त्याग अवश्य करें ॥१९॥

द्रुपदादिवेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । आपो देवताः । भुरिगनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव ।
पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः ॥२०॥

पदार्थः—हे (आपः) प्राण वा जलों के समान निर्मल विद्वान् लोगो ! आप (द्रुपदादिव, मुमुचानः) वृक्ष से जैसे फल, रस, पुष्प, पत्ता आदि अलग होते वा जैसे (स्विन्नः) स्वेदयुक्त मनुष्य (स्नातः) स्नान करके (मलादिव) मल से छूटता है वैसे वा (पवित्रेणेव) जैसे पवित्र करने वाले पदार्थ से (पूतम्) शुद्ध (आज्यम्) घृत होता है वैसे (मा) मुझ को (एनसः) अपराध से पृथक् कर के (शुन्धन्तु) शुद्ध करें ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। अध्यापक उपदेशक लोगों को योग्य है कि इस प्रकार सब को अच्छी शिक्षा से युक्त करें जिस से वे शुद्ध आत्मा, नीरोग शरीर और धर्मयुक्त कर्म करने वाले हों ॥२०॥

उद्वयमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्यो देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ प्रकृतविषय में उपासना विषय कहा है ॥

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥२१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (वयम्) हम लोग (तमसः) अन्धकार से परे (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप (सूर्यम्) सूर्यलोक वा चराचर के आत्मा परमेश्वर को (परि) सब ओर से (पश्यन्तः) देखते हुए (देवत्रा) दिव्यगुण वाले देवों में (देवम्) उत्तम

सुख के देने वाले (स्वः) सुखस्वरूप (उत्तरम्) सब से सूक्ष्म (उत्तमम्) उत्कृष्ट स्वप्रकाशस्वरूप परमेश्वर को (उवगन्म) उत्तमता से प्राप्त हों वैसे ही तुम लोग भी इस को प्राप्त होओ ॥२१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सूर्य्य के समान स्वप्रकाश सब आत्माओं का प्रकाशक महादेव जगदीश्वर है उसी की सब मनुष्य उपासना करें ॥२१॥

अप इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। पङ्क्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः॥

फिर अध्यापक और उपदेशक विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अपो अद्यान्वचारिषꣳ रसेन समसृक्ष्महि। पयस्वानग्नऽआगमन्तं मा सꣳ सृज वर्चसा प्रजया च धनेन च ॥२२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्वान्! जो (पयस्वान्) प्रशंसित जल की विद्या से युक्त मैं तुझ को (आ, अगमम्) प्राप्त होऊं वा (अद्य) आज (रसेन) मधुरादि रस से युक्त (अपः) जलों को (अन्वचारिषम्) अनुकूलता से पान करूं (तम्) उस (मा) मुझ को (वर्चसा) सांगोपांग वेदाध्ययन (प्रजया) प्रजा (च) और (धनेन) धन से (च) भी (सं, सृज) सम्यक् संयुक्त कर जिस से ये लोग और मैं सब हम सुख के लिये (समसृक्ष्महि) संयुक्त होवें ॥२२॥

भावार्थः—यदि विद्वान् लोग पढ़ाने और उपदेश करने से अन्य लोगों को विद्वान् करें तो वे भी नित्य अधिक विद्या वाले हों ॥२२॥

एधोसीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। समिद्देवता। स्वराडतिशक्वरी छन्दः। पंचमः स्वरः॥

अब प्रकरणगत विषय में फिर उपासना विषय कहते हैं॥

एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। समाववर्ति पृथिवी समुषाः समु सूर्यः। समु विश्वमिदं जगत्। वैश्वानरज्योतिर्भूयासं विभून्कामान्व्यश्नवै भूः स्वाहा ॥२३॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर! आप (एधः) बढ़ाने हारे (असि) हैं (समित्) जैसे अग्नि का प्रकाशक इन्धन है वैसे मनुष्यों के आत्मा का प्रकाश करने हारे (असि) हैं और (तेजः) तीव्रबुद्धि वाले (असि) हैं इससे (तेजः) ज्ञान के प्रकाश को (मयि) मुझ में (धेहि) धारण कीजिये जो आप सर्वत्र (समाववर्त्ति) अच्छे प्रकार व्याप्त हो जिन आपने (पृथिवी) भूमि और (उषाः) उषा (सम्) अच्छे प्रकार उत्पन्न की (सूर्य्यः) सूर्य्य (सम्) अच्छे प्रकार उत्पन्न किया (इदम्) यह (विश्वम्) सब

(जगत्) जगत् (सम्) उत्पन्न किया (उ) उसी (वैश्वानरज्योतिः) विश्व के नायक प्रकाशस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होके हम लोग (एधिषीमहि) नित्य बढ़ा करें जैसे मैं (स्वाहा) सत्य वाणी वा क्रिया से (भूः) सत्ता वाली प्रकृति (विभून्) व्यापक पदार्थ और (कामान्) कामों को (व्यश्नवै) प्राप्त होऊं और सुखी (भूयासम्) होऊं (उ) और वैसे तुम भी सिद्धकाम और सुखी होओ ।।२३।।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस शुद्ध सर्वत्र व्यापक सब के प्रकाशक जगत् के उत्पादन, धारण, पालन और प्रलय करने हारे ब्रह्म की उपासना करके तुम लोग जैसे आनन्दित होते हो वैसे इस को प्राप्त हो के हम भी आनन्दित होवें आकाश, काल और दिशाओं को भी व्यापक जानें ।।२३।।

अभ्यादधामीत्यस्याश्वतराश्वि ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

अभ्यादधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि ।
व्रतं च श्रद्धां चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितोऽअहम् ।।२४।।

पदार्थः—हे (व्रतपते) सत्यभाषणादि कर्मों के पालन करने हारे (अग्ने) स्वप्रकाशस्वरूप जगदीश्वर ! (त्वयि) तुझ में स्थिर होके (अहम्) मैं (समिधम्) अग्नि में समिधा के समान ध्यान को (अभ्यादधामि) धारण करता हूं जिससे (व्रतम्) सत्यभाषणादि व्यवहार (च) और (श्रद्धाम्) सत्य के धारण करने वाले नियम को (च) भी (उपैमि) प्राप्त होता हूं (दीक्षितः) ब्रह्मचर्य्यादि दीक्षा को प्राप्त होकर विद्या को प्राप्त हुआ मैं (त्वा) तुझे (इन्धे) प्रकाशित करता हूं ।।२४।।

भावार्थः—जो मनुष्य परमेश्वर ने करने के लिये आज्ञा दिये हुए सत्यभाषणादि नियमों को धारण करते हैं वे अतुल श्रद्धा को प्राप्त होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि को करने में समर्थ होते हैं ।।२४।।

यत्र ब्रह्मेत्यस्याश्वतराश्वि ऋषिः । अग्निर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह ।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना ।।२५।।

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (यत्र) जिस परमात्मा में (ब्रह्म) ब्राह्मण अर्थात् विद्वानों का कुल (च) और (क्षत्रम्) विद्या शौर्यादि गुणयुक्त क्षत्रियकुल ये

दोनों (सह) साथ (सम्यञ्चौ) अच्छे प्रकार प्रीतियुक्त (च) तथा वैश्य आदि के कुल (चरतः) मिल कर व्यवहार करते हैं और (यत्र) जिस ब्रह्म में (देवाः) दिव्यगुण वाले पृथिव्यादि लोक वा विद्वान् जन (अग्निना) बिजुली रूप अग्नि के (सह) साथ वर्त्तते हैं (तम्) उस (लोकम्) देखने के योग्य (पुण्यम्) सुखस्वरूप निष्पाप परमात्मा को (प्र, ज्ञेषम्) जानूं वैसे तुम लोग भी इस को जानो ॥२५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो ब्रह्म एक चेतनमात्र स्वरूप सब का अधिकारी पापरहित ज्ञान से देखने योग्य सर्वत्र व्याप्त सब के साथ वर्त्तमान है वही सब मनुष्यों का उपास्य देव है ॥२५॥

यत्रेत्यस्याश्वतराश्विऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यत्रेन्द्रश्च वायुश्च सम्यञ्चौ चरतः सह।

तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र सेदिर्न विद्यते ॥२६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे मैं (यत्र) जिस ईश्वर में (इन्द्रः) सर्वत्र व्याप्त बिजुली (च) और (वायुः) धनञ्जय आदि वायु (सह) साथ (सम्यञ्चौ) अच्छे प्रकार मिले हुए (चरतः) विचरते हैं (च) और (यत्र) जिस ब्रह्म में (सेदिः) नाश वा उत्पत्ति (न, विद्यते) नहीं विद्यमान है (तम्) उस (पुण्यम्) पुण्य से उत्पन्न हुए ज्ञान से जानने योग्य (लोकम्) सब को देखने हारे परमात्मा को (प्र, ज्ञेषम्) जानूं वैसे इस को तुम लोग भी जानो ॥२६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो कोई विद्वान् वायु बिजुली और आकाशादि की सीमा को जानना चाहे तो अन्त को प्राप्त नहीं होता जिस ब्रह्म में ये सब आकाशादि विभु पदार्थ भी व्याप्त हैं उस ब्रह्म के अन्त के जानने को कौन समर्थ हो सकता है ॥२६॥

अꣳशुनेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सोमो देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अꣳशुना ते अꣳशुः पृच्यतां परुषा परुः।

गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसोऽअच्युतः ॥२७॥

पदार्थः—हे विद्वन्! (ते) तेरे (अंशुना) भाग से (अंशुः) भाग और (परुषा) मर्म से (परुः) मर्म (पृच्यताम्) मिले तथा (ते) तेरा (अच्युतः) नाशरहित (गंधः)

गंध और (रसः) रस पदार्थ सार (मदाय) आनन्द के लिये (सोमम्) ऐश्वर्य्य की (अवतु) रक्षा करे ॥२७॥

भावार्थः—जब ध्यानावस्थित मनुष्य के मन के साथ इन्द्रियां और प्राण ब्रह्म में स्थित होते हैं तभी वह नित्य आनन्द को प्राप्त होता है ॥२७॥

सिंचन्तीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब विद्वानों के विषय में शरीरसम्बन्धी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सिञ्चन्ति परि षिञ्चन्त्युत्सिञ्चन्ति पुनन्ति च ।
सुरायै बभ्रवै मदे किन्त्वो वदति किन्त्वः ॥२८॥

पदार्थः—जो (बभ्रवै) बल के धारण करने हारे (सुरायै) सोम वा (मदे) आनन्द के लिये महौषधियों के रस को (सिञ्चन्ति) जाठराग्नि में सींचते सेवन करते (परि, सिंचन्ति) सब ओर से पीते (उत्सिञ्चन्ति) उत्कृष्टता से ग्रहण करते (च) और (पुनन्ति) पवित्र होते हैं वे शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त होते हैं और जो (किन्त्वः) क्या वह (किन्त्वः) क्या और ऐसा (वदति) कहता है वह भी कुछ नहीं पाता है ॥२८॥

भावार्थः—जो अन्नादि को पवित्र और संस्कार कर उत्तम रसों से युक्त करके युक्त आहार विहार से खाते पीते हैं वे बहुत सुख को प्राप्त होते हैं जो मूढ़ता से ऐसा नहीं करता वह बलबुद्धिहीन हो निरन्तर दुःख को भोगता है ॥२८॥

धानावन्तमित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥२९॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सुख की इच्छा करनेहारे विद्या और ऐश्वर्य्य से युक्त जन ! तू (नः) हमारे (धानावन्तम्) अच्छे प्रकार संस्कार किये हुए धान्य अन्नों से युक्त (करम्भिणम्) और अच्छी क्रिया से सिद्ध किये और (अपूपवन्तम्) सुन्दरता से इकट्ठे किये हुए मालपुये आदि से युक्त (उक्थिनम्) तथा उत्तम वाक्य से उत्पन्न हुए बोध को सिद्ध करने हारे और भक्ष्य आदि से युक्त भोजन-योग्य अन्न रसादि को (प्रातः) प्रातःकाल (जुषस्व) सेवन किया कर ॥२९॥

भावार्थः—जो विद्या के पढ़ाने और उपदेशों से सब को सुभूषित और विश्व का उद्धार करने हारे विद्वान् जन अच्छे संस्कार किये हुए रसादि

पदार्थों से युक्त अन्नादि को ठीक समय में भोजन करते हैं और जो उन को विद्या सुशिक्षा से युक्त वाणी का ग्रहण करावें वे धन्यवाद के योग्य होते हैं ॥२९॥

बृहदित्यस्य नृमेधपुरुषमेधावृषी । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।

येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥३०॥

पदार्थः – हे (मरुतः) विद्वान् लोगो ! (ऋतावृधः) सत्य के बढ़ाने हारे आप (येन) जिससे (देवाय) दिव्यगुण वाले (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य से युक्त ईश्वर के लिये (देवम्) दिव्य सुख देने वाले (जागृवि) जागरूक अर्थात् अतिप्रसिद्ध (ज्योतिः) तेज पराक्रम को (अजनयन्) उत्पन्न करें उस (वृत्रहन्तमम्) अतिशय करके मेघहन्ता सूर्य्य के समान (बृहत्) बड़े सामगान को उक्त उस ईश्वर के लिये (गायत) गाओ ॥३०॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि सर्वदा युक्त आहार और व्यवहार से शरीर और आत्मा के रोगों का निवारण कर पुरुषार्थ को बढ़ा के परमेश्वर का प्रतिपादन करनेहारे गान को किया करें ॥३०॥

अध्वर्यो इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर प्रकारान्तर से उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अध्वर्यो॒ऽअद्रि॑भिः सु॒तꣳसोमं॑ प॒वित्र॒ऽआ न॑य ।

पु॒नी॒हीन्द्रा॑य॒ पात॑वे ॥३१॥

पदार्थः—हे (अध्वर्यो) यज्ञ को युक्त करने हारे पुरुष ! तू (इन्द्राय) परमैश्वर्य्यवान् के लिये (पातवे) पीने को (अद्रिभिः) मेघों से (सुतम्) उत्पन्न हुए (सोमम्) सोमवल्ल्यादि ओषधियों से साररूप रस को (पवित्रे) शुद्ध व्यवहार में (आनय) लेआ उससे तू (पुनीहि) पवित्र हो ॥३१॥

भावार्थः—वैद्यराजों को योग्य है कि शुद्ध देश में उत्पन्न हुई ओषधियों के सारों को बना उस के दान से सब के रोगों की निवृत्ति निरन्तर करें ॥३१॥

यो भूतानामित्यस्य कौण्डिन्य ऋषिः । परमात्मा देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यो भूतानामधिपतिर्यस्मिँल्लोकाऽअधिश्रिताः । यऽईशे महतो महाँस्तेन गृह्णामि त्वामहं मयि गृह्णामि त्वामहम् ॥३२॥

पदार्थः हे सब के हित की इच्छा करनेहारे पुरुष ! (यः) जो (भूतानाम्) पृथिव्यादि तत्त्वों और उनसे उत्पन्न हुए कार्यरूप लोकों का (अधिपतिः) अधिष्ठाता (महतः) बड़े आकाशादि से (महान्) बड़ा है (यः) जो (ईशे) सब का ईश्वर है (यस्मिन्) जिस में सब (लोकाः) लोक (अधिश्रिताः) अधिष्ठित आश्रित हैं (तेन) उससे (त्वाम्) तुझ को (अहम्) मैं (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं (मयि) मुझ में (त्वाम्) तुझ को (अहम्) मैं (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ ॥३२॥

भावार्थः—जो उपासक अनन्त ब्रह्म में निष्ठा रखने वाला ब्रह्म से भिन्न किसी वस्तु को उपास्य नहीं जानता वही इस जगत् में विद्वान् माना जाना चाहिये ॥३२॥

उपयामगृहीतोसीत्यस्य काक्षीवतसुकीर्त्तिर्ऋषिः । सोमो देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे एष ते योनिरश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥३३॥

पदार्थः— हे विद्वन् ! जो तू (अश्विभ्याम्) पूर्ण विद्या वाले अध्यापक और उपदेशक से (उपयामगृहीतः) उत्तम नियमों के साथ ग्रहण किया हुआ (असि) है जिस (ते) तेरा (एषः) यह (अश्विभ्याम्) अध्यापक और उपदेशक के साथ (योनिः) विद्यासम्बन्ध है उस (त्वा) तुझको (सरस्वत्यै) अच्छी शिक्षायुक्त वाणी के लिये (त्वा) तुझको (इन्द्राय) उत्कृष्ट ऐश्वर्य्य के लिये और (त्वा) तुझको (सुत्राम्णे) अच्छे प्रकार रक्षा करने हारे के लिये मैं ग्रहण करता हूँ (सरस्वत्यै) उत्तम गुण वाली विदुषी स्त्री के लिये (त्वा) तुझको (इन्द्राय) परमोत्तम व्यवहार के लिये (त्वा) तुझको और (सुत्राम्णे) उत्तम रक्षा के लिये (त्वा) तुझको ग्रहण करता हूं ॥३३॥

भावार्थः—जो विद्वानों से शिक्षा पाये हुए स्वयं उत्तम बुद्धिमान् जितेन्द्रिय अनेक विद्याओं से युक्त विद्वानों में प्रेम करने हारा होवे वही विद्या और धर्म की प्रवृत्ति के लिये अधिष्ठाता करने योग्य होवे ॥३३॥

प्राणपा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । लिङ्गोक्ता देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्राणपा मेऽअपानपाश्चक्षुष्पाः श्रोत्रपाश्च मे ।
वाचो मे विश्वभेषजो मनसोऽसि विलायकः ॥३४॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जिससे तू (मे) मेरे (प्राणपाः) प्राण का रक्षक (अपानपाः) अपान का रक्षक (मे) मेरे (चक्षुष्पाः) नेत्रों का रक्षक (श्रोत्रपाः) श्रोत्रों का रक्षक (च) और (मे) मेरी (वाचः) वाणी का (विश्वभेषजः) सम्पूर्ण ओषधिरूप (मनसः) विज्ञान का सिद्ध करने हारे मन का (विलायकः) विविध प्रकार से सम्बन्ध करने वाला (असि) है इससे तू हमारे पिता के समान सत्कार करने योग्य है ॥३४॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि जो बाल्यावस्था का आरम्भ कर विद्या और अच्छी शिक्षा से जितेन्द्रियपन विद्या सत्पुरुषों के साथ प्रीति तथा धर्मात्मा और परोपकारीपन को ग्रहण कराते हैं वे माता के समान और मित्र के समान जानने चाहियें ॥३४॥

अश्विनकृतस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । लिङ्गोक्ता देवताः । निचृदुपरिष्टाद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अश्विनकृतस्य ते सरस्वतिकृतस्येन्द्रेण सुत्राम्णा कृतस्य ।
उपहूत उपहूतस्य भक्षयामि ॥३५॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! (उपहूतः) बुलाया हुआ मैं (ते) तेरा (अश्विनकृतस्य) जो सद्गुणों को व्याप्त होते हैं उनके लिये (सरस्वतिकृतस्य) विदुषी स्त्री के लिये (सुत्राम्णा) अच्छे प्रकार रक्षा करने हारे (इन्द्रेण) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त राजा के (कृतस्य) किये हुए (उपहूतस्य) समीप में लाये अन्नादि का (भक्षयामि) भक्षण करता हूं ॥३५॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि विद्वान् और ऐश्वर्ययुक्त जनों ने अनुष्ठान किये हुए का अनुष्ठान करें और अच्छी शिक्षा किये हुए पाककर्त्ता के बनाये हुए अन्न को खावें और सत्कार करने हारे का सत्कार किया करें ॥३५॥

समिद्ध इत्यस्यांगिरस ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

समिद्धऽइन्द्रऽउपसामनीके पुरोरुचा पूर्वकृद्वावृधानः ।
त्रिभिर्देवैस्त्रिꣳशता वज्रबाहुर्जघान वृत्रं वि दुरो ववार ॥३६॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! (पूर्वकृत्) पूर्व करने हारा (वावृधानः) बढ़ता हुआ (वज्रबाहुः) जिसके हाथ में वज्र है वह (उषसाम्) प्रभात वेलाओं की (अनीके) सेना में जैसे (पुरोरुचा) प्रथम बिथुरी हुई दीप्ति से (समिद्धः) प्रकाशित हुआ (इन्द्रः) सूर्य्य (त्रिभिः) तीन अधिक (त्रिंशता) तीस (देवैः) पृथिवी आदि दिव्य पदार्थों के साथ वर्त्तमान हुआ (वृत्रम्) मेघ को (जघान) मारता है (दुरः) द्वारों को (वि, ववार) प्रकाशित करता है वैसे अत्यन्त बलयुक्त योद्धाओं के साथ शत्रुओं को मार विद्या और धर्म के द्वारों को प्रकाशित कर ॥३६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् लोग सूर्य के समान विद्या धर्म के प्रकाशक हों विद्वानों के साथ शान्ति प्रीति के सत्य और असत्य के विवेक के लिये संवाद कर अच्छे प्रकार निश्चय करके सब मनुष्यों को संशयरहित करें ॥३६॥

नराशंस इत्यस्यांगिरस ऋषिः । तनूनपाद्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर प्रकारान्तर से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

नराशꣳसः प्रति शूरो मिमानस्तनूनपात्प्रति यज्ञस्य धाम ।
गोभिर्वपावान्मधुना समञ्जन्हिरण्यैश्चन्द्री यजति प्रचेताः ॥३७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (नराशंसः) जो मनुष्यों से प्रशंसा किया जाता (यज्ञस्य) सत्य व्यवहार के (धाम) स्थान का और (प्रति, मिमानः) अनेक उत्तम पदार्थों का निर्माण करने हारा (शूरः) सब ओर से निर्भय (तनूनपात्) जो शरीर का पात न करने हारा (गोभिः) गाय और बैलों से (वपावान्) जिससे क्षेत्र बोये जाते हैं उस प्रशंसित उत्तम क्रिया से युक्त (मधुना) मधुरादि रस से (समंजन्) प्रकट करता हुआ (हिरण्यैः) सुवर्णादि पदार्थों से (चन्द्री) बहुत सुवर्णवान् (प्रचेताः) उत्तम प्रज्ञायुक्त विद्वान् (प्रति, यजति) यज्ञ करता कराता है सो हमारे आश्रय के योग्य है ॥३७॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि किसी निन्दित, भीरु, अपने शरीर के नाश करने हारे, उद्यमहीन, आलसी, मूढ़ और दरिद्री का संग कभी न करें ॥३७॥

ईडित इत्यस्यांगिरस ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ईडितो देवैर्हरिवाँ२ऽअभिष्टिराजुह्वानो हविषा शर्द्धमानः ।
पुरन्दरो गोत्रभिद्वज्रबाहुरायातु यज्ञमुप नो जुषाणः ॥३८॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! आप जैसे (हरिवान्) उत्तम घोड़ों वाला (वज्रबाहुः) जिस की भुजाओं में वज्र विद्यमान (पुरन्दरः) जो शत्रुओं के नगरों का विदीर्ण करने हारा सेनापति (गोत्रभित्) मेघ को विदीर्ण करने हारा सूर्य जैसे रसों का सेवन करे वैसे अपनी सेना का सेवन करता है वैसे (देवैः) विद्वानों से (ईडितः) प्रशंसित (अभिष्टिः) सब ओर से यज्ञ के करने हारे (आजुह्वानः) विद्वानों ने सत्कारपूर्वक बुलाये हुए (हविषा) सद्विद्या के दान और ग्रहण से (शर्द्धमानः) सहन करते (जुषाणः) और प्रसन्न होते हुए आप (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ को (उप, आ, यातु) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥३८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सेनापति सेना को और सूर्य मेघ को बढ़ा कर सब जगत् की रक्षा करता है वैसे धार्मिक अध्यापकों को अध्ययन करनेहारों के साथ पढ़ना और पढ़ाना कर विद्या से सब प्राणियों की रक्षा करनी चाहिये ॥३८॥

जुषाण इत्यस्यांगिरस ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

जुषाणो बर्हिर्हरिवान्नऽइन्द्रः प्राचीनꣳ सीदत्प्रदिशा पृथिव्याः ।
उरुप्रथाः प्रथमानꣳ स्योनमादित्यैरक्तं वसुभिः सजोषाः ॥३९॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (बर्हिः) अन्तरिक्ष को (जुषाणः) सेवन करता हुआ (हरिवान्) जिस के हरणशील बहुत किरणें विद्यमान (उरुप्रथाः) बहुत विस्तार युक्त (आदित्यैः) महीनों और (वसुभिः) पृथिव्यादि लोकों के (सजोषाः) साथ वर्त्तमान (इन्द्रः) जलों का धारणकर्त्ता सूर्य्य (पृथिव्याः) पृथिवी से (प्रदिशा) उपदिशा के साथ (प्रथमानम्) विस्तीर्ण (अक्तम्) प्रसिद्ध (प्राचीनम्) पुरातन (स्योनम्) सुखकारक स्थान को (सीदत्) स्थिर होता है वैसे तू हमारे मध्य में हो ॥३९॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि रात दिन प्रयत्न से आदित्य के तुल्य अविद्यारूपी अन्धकार का निवारण करके जगत् में बड़ा सुख प्राप्त करें जैसे पृथिवी से सूर्य बड़ा है वैसे अविद्वानों में विद्वान् को बड़ा जानें ॥३९॥

इन्द्रमित्यस्यांगिरस ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर प्रकारान्तर से उपदेश विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रं दुरः कवष्यो धावमाना वृषाणं यन्तु जनयः सुपत्नीः ।
द्वारो देवीरभितो विश्रयन्ताᳬ सुवीरा वीरं प्रथमाना महोभिः ॥४०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (कवष्यः) बोलने में चतुर (वृषाणम्) अति वीर्यवान् (इन्द्रम्) परमैश्वर्य वाले (वीरम्) वीर पुरुष के प्रति (धावमानाः) दौड़ती हुई (जनयः) सन्तानों को जनने वाली स्त्रियां (दुरः) द्वारों को (यन्तु) प्राप्त हों वा जैसे (प्रथमानाः) प्रख्यात (सुवीराः) अत्युत्तम वीर पुरुष (महोभिः) अच्छे पूजित गुणों से युक्त (द्वारः) द्वार के तुल्य वर्त्तमान (देवीः) विद्यादि गुणों से प्रकाशमान (सुपत्नीः) अच्छी स्त्रियों को (अभितः) सब ओर से (वि, श्रयन्ताम्) विशेष कर आश्रय करें वैसे तुम भी किया करो ॥४०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिस कुल वा देश में परस्पर प्रीति से स्वयंवर विवाह करते हैं वहां मनुष्य सदा आनन्द में रहते हैं ॥४०॥

उषासानक्तेत्यस्यांगिरस ऋषिः । उषासानक्ता देवते । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उषासानक्ता बृहती बृहन्तं पयस्वती सुदुघे शूरमिन्द्रम् ।
तन्तुं ततं पेशसा संवयन्ती देवानां देवं यजतः सुरुक्मे ॥४१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (पेशसा) रूप से (संवयन्ती) प्राप्त करने हारे (पयस्वती) रात्रि के अन्धकार से युक्त (सुदुघे) अच्छे प्रकार पूर्ण करने वाले (बृहती) बढ़ते हुए (सुरुक्मे) अच्छे प्रकाश वाले (उषासानक्ता) रात्रि और दिन (ततम्) विस्तारयुक्त (देवानाम्) पृथिव्यादिकों के (देवम्) प्रकाशक (बृहन्तम्) बड़े (इन्द्रम्) सूर्यमंडल को (यजतः) संग करते हैं वैसे ही (तन्तुम्) विस्तार करने हारे (शूरम्) शूरवीर पुरुष को तुम लोग प्राप्त होओ ॥४१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सब लोक सब से बड़े सूर्यलोक का आश्रय करते हैं वैसे ही श्रेष्ठ पुरुष का आश्रय सब लोग करें ॥४१॥

दैव्येत्यस्यांगिरस ऋषिः । दैव्याध्यापकोपदेशकौ देवते । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

दैव्या मिमाना मनुषः पुरुत्रा होताराविन्द्रं प्रथमा सुवाचा ।
मूर्द्धन्यज्ञस्य मधुना दधाना प्राचीनं ज्योतिर्हविषा वृधातः ॥४२॥

पदार्थः—जो (दैव्या) दिव्य पदार्थों और विद्वानों में हुए (मिमाना) निर्माण करने हारे (होतारौ) दाता (सुवाचा) जिन की सुशिक्षित वाणी वे विद्वान् (यज्ञस्य) संग करने योग्य व्यवहार के (मूर्द्धन्) ऊपर (प्रथमा) प्रथम वर्त्तमान (पुरुत्रा) बहुत (मनुषः) मनुष्यों को (दधाना) धारण करते हुए (मधुना) मधुरादिगुणयुक्त (हविषा) होम करने योग्य पदार्थ से (प्राचीनम्) पुरातन (ज्योतिः) प्रकाश और (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को (वृधातः) बढ़ाते हैं वे सब मनुष्यों के सत्कार करने योग्य हैं ॥४२॥

भावार्थः—जो विद्वान् पढ़ने और उपदेश से सब मनुष्यों को उन्नति देते हैं वे संपूर्ण मनुष्यों को सुभूषित करने हारे हैं ॥४२॥

तिस्रो देवीरित्यस्यांगिरस ऋषिः । तिस्रो देव्यो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तिस्रो देवीर्हविषा वर्द्धमाना इन्द्रं जुषाणा जनयो न पत्नीः ।
अच्छिन्नं तन्तुं पयसा सरस्वतीडा देवी भारती विश्वतूर्त्तिः ॥४३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (विश्वतूर्त्तिः) जगत् में शीघ्रता करने हारी (देवी) प्रकाशमान (सरस्वती) उत्तम विज्ञानयुक्त वा (इडा) शुभ गुणों से स्तुति करने योग्य तथा (भारती) धारण और पोषण करनेहारी ये (तिस्रः) तीन (देवीः) प्रकाशमान शक्तियां (पयसा) शब्द अर्थ और सम्बन्धरूप रस से (हविषा) देने लेने के व्यवहार और प्राण से (वर्द्धमाना) बढ़ती हुई (जनयः) सन्तानोत्पत्ति करने हारी (पत्नीः) स्त्रियों के (न) समान (अच्छिन्नम्) छेदभेदरहित (तन्तुम्) विस्तारयुक्त (इन्द्रम्) बिजुली का (जुषाणाः) सेवन करने हारी हैं उन का सेवन तुम लोग किया करो ॥४३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो विद्वानों से युक्त वाणी नाड़ी और धारण करने वाली शक्ति ये तीन प्रकार की शक्तियां सर्वत्र व्याप्त सर्वदा उत्पन्न हुई व्यवहार के हेतु हैं उनको मनुष्य लोग व्यवहारों में यथावत् प्रयुक्त करें ॥४३॥

त्वष्टेत्यस्यांगिरस ऋषिः । त्वष्टा देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर विद्वज्जन के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वष्टा दधच्छुष्ममिन्द्राय वृष्णेऽपाकोऽचिष्टुर्यशसे पुरूणि ।
वृषा यजन्वृषणं भूरिरेता मूर्द्धन्यज्ञस्य समनक्तु देवान् ॥४४॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (त्वष्टा) विद्युत् के समान वर्त्तमान विद्वान् (वृषा) सेचनकर्त्ता (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य (वृष्णे) और पराये सामर्थ्य को रोकने हारे के लिये (शुष्मम्) बल को (अपाकः) अप्रशंसनीय (अचिष्टुः) प्राप्त होने हारा (यशसे) कीर्ति के लिये (पुरूणि) बहुत पदार्थों को (दधत्) धारण करते हुए (भूरिरेताः) अत्यन्तपराक्रमी (वृषणम्) मेघ को (यजन्) संगत करता (यज्ञस्य) संगति से उत्पन्न हुए जगत् के (मूर्द्धन्) उत्तम भाग में (देवान्) विद्वानों को (समनक्तु) कामना करे वैसे तू भी कर ॥४४॥

भावार्थः—जबतक मनुष्य शुद्धान्तःकरण नहीं होवे तबतक विद्वानों का संग, सत्यशास्त्र और प्राणायाम का अभ्यास किया करे जिससे शीघ्र शुद्धान्तःकरणवान् हो ॥४४॥

वनस्पतिरित्यस्याङ्गिरस ऋषिः । वनस्पतिर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वनस्पतिरवसृष्टो न पाशैस्त्मन्या समञ्जञ्छमिता न देवः ।
इन्द्रस्य हव्यैर्जठरं पृणानः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन ॥४५॥

पदार्थः—जो (पाशैः) दृढ़ बन्धनों से (वनस्पतिः) वृक्षसमूह का पालन करने हारा (अवसृष्टः) आज्ञा दिये हुए पुरुष के (न) समान (त्मन्या) आत्मा के साथ (समञ्जन्) सम्पर्क करता हुआ (देवः) दिव्य सुख का देने हारा (शमिता) यज्ञ के (न) समान (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य्य के (जठरम्) उदर के समान कोश को (पृणानः) पूर्ण करता हुआ (हव्यैः) खाने के योग्य (मधुना) सहत और (घृतेन) घृत आदि पदार्थों से (यज्ञम्) अनुष्ठान करने योग्य यज्ञ को करता हुआ (स्वदाति) अच्छे प्रकार स्वाद लेवे वह रोगरहित होवे ॥४५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे बड़ आदि वनस्पति बढ़कर फलों को देता है जैसे बन्धनों से बंधा हुआ चोर पाप से निवृत्त होता है वा जैसे यज्ञ सब जगत् की रक्षा करता है वैसे यज्ञकर्त्ता युक्त आहार विहार करने वाला मनुष्य जगत् का उपकारक होता है ॥४५॥

स्तोकानामित्यस्याङ्गिरस ऋषिः । स्वाहाकृतयो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स्तोकानामिन्दुं प्रति शूरऽइन्द्रो वृषायमाणो वृषभस्तुराषाट् ।
घृतप्रुषा मनसा मोदमानाः स्वाहा देवाऽअमृता मादयन्ताम् ॥४६॥

पदार्थः—जैसे (वृषायमाणः) बलिष्ठ होता हुआ (वृषभः) उत्तम (तुराषाट्) हिंसक शत्रुओं को सहने हारा (शूरः) शूरवीर ऐश्वर्य वाला (स्तोकानाम्) थोड़ों के (इन्दुम्) कोमल स्वभाव वाले मनुष्य के (प्रति) प्रति आनन्दित होता है वैसे (घृतप्रुषा) प्रकाश के सेवन करने वाले (मनसा) विज्ञान से और (स्वाहा) सत्य क्रिया से (मोदमानाः) आनन्दित होते हुए (अमृताः) आत्मस्वरूप से मृत्युधर्मरहित (देवाः) विद्वान् लोग (मादयन्ताम्) आप तृप्त होकर हम को आनन्दित करें ॥४६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य अल्प-गुण वाले भी मनुष्य को देखकर स्नेहयुक्त होते हैं वे सब ओर से सब को सुखी कर देते हैं ॥४६॥

आयात्वित्यस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

अब राजधर्मविषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आयात्विन्द्रोऽवसऽउप नऽइह स्तुतः सधमादस्तु शूरः ।
वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात् ॥४७॥

पदार्थः—जो (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य का धारण करने हारा (इह) इस वर्त्तमान काल में (स्तुतः) प्रशंसा को प्राप्त हुआ (शूरः) निर्भय वीर पुरुष (पूर्वीः) पूर्व विद्वानों ने अच्छी शिक्षा से उत्तम की हुई (तविषीः) सेनाओं को (वावृधानः) अत्यन्त बढ़ाने हारा जन (यस्य) जिस का (अभिभूति) शत्रुओं का तिरस्कार करने हारा (क्षत्रम्) राज्य (द्यौः) सूर्य के प्रकाश के (न) समान वर्त्तता है जो (नः) हम को (पुष्यात्) पुष्ट करे वह हमारे (अवसे) रक्षा आदि के लिये (उप, आ, यातु) समीप प्राप्त होवे और (सधमात्) समान स्थान वाला (अस्तु) होवे ॥४७॥

भावार्थः—जो मनुष्य सूर्य के समान न्याय और विद्या दोनों के प्रकाश करने हारे जिनकी सत्कृत हर्ष और पुष्टि से युक्त सेना वाले प्रजा की पुष्टि और दुष्टों का नाश करनेहारे हों वे राज्याधिकारी होवें ॥४७॥

आ न इत्यस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ नऽइन्द्रोऽदूरादा नंऽआसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः ।
ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः सङ्गेसमत्सु तुर्वणिः पृतन्यून् ॥४८॥

पदार्थः—जो (अभिष्टिकृत्) सब ओर से इष्ट सुख करे (वज्रबाहुः) जिस की वज्र के समान दृढ़ भुजा (नृपतिः) नरों का पालन करने हारा (ओजिष्ठेभिः) अति बल वाले योधाओं से (उग्रः) दुष्टों पर क्रोध करने और (तुर्वणिः) शीघ्र शत्रुओं का मारने हारा (इन्द्रः) शत्रुविदारक सेनापति (नः) हमारी (अवसे) रक्षादि के लिये (समत्सु) बहुत संग्रामों में (संगे) प्रसंग में (दूरात्) दूर से (आसात्) और समीप से (आ, यासत्) आवे और (नः) हमारे (पृतन्यून्) सेना और संग्राम की इच्छा करने हारों की (आ) सदा रक्षा और मान्य करे वह हम लोगों का भी सदा माननीय होवे ॥४८॥

भावार्थः—वे ही पुरुष राज्य करने को योग्य होते हैं जो दूरस्थ और समीपस्थ सब मनुष्यादि प्रजाओं की यथावत् समीक्षण और दूत भेजने से रक्षा करते और शूरवीर का सत्कार भी निरन्तर करते हैं ॥४८॥

आ न इत्यस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ नऽइन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छार्वाचीनोऽवसे राधसे च ।
तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ ॥४९॥

पदार्थः—जो (मघवा) परम प्रशंसित धन युक्त (विरप्शी) महान् (अर्वाचीनः) विद्यादि बल से सन्मुख जाने वाला (वज्री) प्रशंसित शस्त्रविद्या की शिक्षा पाये हुए (इन्द्रः) ऐश्वर्य का दाता सेनाधीश (हरिभिः) अच्छी शिक्षा किये हुए घोड़ों से (नः) हम लोगों की (अवसे) रक्षा आदि के लिये (धनाय, च) और धन के लिये (वाजसातौ) संग्राम में (अनु, तिष्ठाति) अनुकूल स्थित हो वह (नः) हमारे (इमम्) इस (यज्ञम्) सत्यन्याय पालन करने रूप राज्यव्यवहार को (अच्छ, आ, यातु) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥४९॥

भावार्थः—जो युद्धविद्या में कुशल बड़े बलवान् प्रजा और धन की वृद्धि करनेहारे उत्तम शिक्षा युक्त हाथी और घोड़ों से युक्त कल्याण ही के आचरण करनेहारे हों वे ही राजपुरुष होवें ॥४९॥

त्रातारमित्यस्य गर्ग ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ हवेहवे सुहवꣳशूरमिन्द्रम् ।

ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रꣳ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥५०॥

पदार्थः—हे सभाध्यक्ष ! जिस (हवेहवे) प्रत्येक संग्राम में (त्रातारम्) रक्षा करने (इन्द्रम्) दुष्टों के नाश करने (अवितारम्) प्रीति कराने (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य के देने (सुहवम्) सुन्दरता से बुलाये जाने (शूरम्) शत्रुओं का विनाश कराने (इन्द्रम्) राज्य का धारण करने और (शक्रम्) कार्यों में शीघ्रता करने हारे (पुरुहूतम्) बहुतों से सत्कार पाये हुए तथा (इन्द्रम्) शत्रुसेना के विदारण करने हारे तुझको (ह्वयामि) सत्कारपूर्वक बुलाता हूं सो (मघवा) बहुत धनयुक्त (इन्द्रः) उत्तम सेना का धारण करनेहारा तू (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) सुख का (धातु) धारण कर ॥५०॥

भावार्थः—मनुष्य उसी पुरुष का सदा सत्कार करे जो विद्या न्याय और धर्म्म का सेवक सुशील और जितेन्द्रिय हुआ सब के सुख को बढ़ाने के लिये निरन्तर यत्न किया करे ॥५०॥

इन्द्र इत्यस्य गर्ग ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर राज विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ२ऽअवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।

बाधतां द्वेषोऽअभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥५१॥

पदार्थः—जो (सुत्रामा) अच्छे प्रकार रक्षा करने हारा (स्ववान्) स्वकीय बहुत उत्तम जनों से युक्त (विश्ववेदाः) समग्र धनवान् (सुमृडीकः) अच्छा सुख करने और (इन्द्रः) ऐश्वर्य का बढ़ाने वाला राजा (अवोभिः) न्यायपूर्वक रक्षणादि से प्रजा की रक्षा करे वह (द्वेषः) शत्रुओं को (बाधताम्) हटावे (अभयम्) सब को भयरहित (कृणोतु) करे और आप भी वैसा ही (भवतु) हो जिस से हम लोग (सुवीर्यस्य) अच्छे पराक्रम के (पतयः) पालने हारे (स्याम) हों ॥५१॥

भावार्थः—जो विद्या विनय से युक्त होके राजपुरुष प्रजा की रक्षा करनेहारे न हों तो सुख की वृद्धि भी न होवे ॥५१॥

तस्येत्यस्य गर्ग ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।

स सुत्रामा स्ववाँ२ऽइन्द्रोऽअस्मेऽआराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥५२॥

पदार्थः—जो (सुत्रामा) अच्छे प्रकार से रक्षा करने (स्ववान्) और प्रशंसित अपना कुल रखने हारा (इन्द्रः) पिता के समान वर्त्तमान सभा का अध्यक्ष (अस्मे) हमारे (द्वेषः) शत्रुओं को (आरात्) दूर और समीप से (चित्) भी (सनुतः) सब काल में (युयोतु) दूर करे (तस्य) उस पूर्वोक्त (यज्ञियस्य) यज्ञ के अनुष्ठान करने योग्य राजा की (सुमतौ) सुन्दर मति में और (भद्रे) कल्याण करने हारे (सौमनसे) सुन्दर मन में उत्पन्न हुए व्यवहार में (अपि) भी हम लोग राजा के अनुकूल वरतने हारे (स्याम) होवें और (सः) वह हमारा राजा और (वयम्) हम उसकी प्रजा अर्थात् उस के राज्य में रहने वाले हों ॥५२॥

भावार्थः—मनुष्यों को उसकी सम्मति में स्थिर रहना उचित है जो पक्षपातरहित और न्याय से प्रजापालन में तत्पर हो ॥५२॥

आ मन्द्रैरित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृद्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः।
मा त्वा के चिन्नियमन्विं न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ२ऽइहि ॥५३॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) उत्तम ऐश्वर्य्य के बढ़ाने हारे सेनापति! तू (मन्द्रैः) प्रशंसायुक्त (मयूररोमभिः) मोर के रोमों के सदृश रोमों वाले (हरिभिः) घोड़ों से युक्त हो के (तान्) उन शत्रुओं के जीतने को (याहि) जा, वहां (त्वा) तुझ को (पाशिनः) बहुत पाशों से युक्त व्याध लोग (विम्) पक्षी को बांधने के (न) समान (केचित्)कोई भी (मा) मत (नि यमन्) बांधे, तू (अतिधन्वेव)बड़े धनुर्धारी के समान (इहि) अच्छे प्रकार आओ ॥५३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जब शत्रुओं के विजय को जावें तब सब ओर से अपने बल की परीक्षा कर पूर्ण सामग्री से शत्रुओं के साथ युद्ध कर : अपना विजय करें, जैसे शत्रुलोग अपने को वश न करें वैसा युद्धारम्भ करें ॥५३॥

एवेदित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासोऽअभ्यर्चन्त्यर्कैः।
स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५४॥

पदार्थः—हे (वसिष्ठासः) अतिशय वास करने हारे! जिस (वृषणम्) बलवान् (वज्रबाहुम्) शस्त्रधारी (इन्द्रम्) शत्रु के मारने हारे को (अर्कैः) प्रशंसित कर्मों से विद्वान् लोग (अभ्यर्चन्ति) यथावत् सत्कार करते हैं (एव) उसी का (यूयम्) तुम लोग (इत्) भी सत्कार करो (सः) सो (स्तुतः) स्तुति को प्राप्त होके (नः) हमको और (गोमत्) उत्तम गाय आदि पशुओं से युक्त (वीरवत्) शूरवीरों से युक्त राज्य को (धातु) धारण करे और तुम लोग (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः) हमको (सदा) सब दिन (पात) सुरक्षित रक्खो ॥५४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे राजपुरुष प्रजा की रक्षा करें वैसे राजपुरुषों की प्रजाजन भी रक्षा करें ॥५४॥

समिद्धो अग्निरित्यस्य विदर्भिऋषिः। अश्विसरस्वतीन्द्राः देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गांधारः स्वरः॥

अब स्त्री पुरुषों का विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

समिद्धोऽअग्निरश्विना तप्तो घर्मो विराट् सुतः।
दुहे धेनुः सरस्वती सोमꣳ शुक्रमिहेन्द्रियम् ॥५५॥

पदार्थः—जैसे (इह) इस संसार में (धेनुः) दूध देने वाली गाय के समान (सरस्वती) शास्त्र विज्ञान युक्त वाणी (शुक्रम्) शुद्ध (सोमम्) ऐश्वर्य्य और (इन्द्रियम्) धन को परिपूर्ण करती है वैसे उसे मैं (दुहे) परिपूर्ण करूं। हे (अश्विना) शुभगुणों में व्याप्त स्त्री पुरुषो! (तप्तः) तपा (विराट्) और विविध प्रकार से प्रकाशमान (सुतः) प्रेरणा को प्राप्त (समिद्धः) प्रदीप्त (घर्मः) यज्ञ के समान संगति युक्त (अग्निः) पावक जगत् की रक्षा करता है वैसे मैं इस सब जगत् की रक्षा करूं ॥५५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। इस संसार में तुल्य गुण कर्म स्वभाव वाले स्त्री पुरुष सूर्य के समान कीर्ति से प्रकाशमान पुरुषार्थी होके धर्म से ऐश्वर्य्य को निरन्तर संचित करें ॥५५॥

तनूपा इत्यस्य विदर्भिऋषिः। अश्विसरस्वतीन्द्राः देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गांधारः स्वरः॥

अब इस प्रकृत विषय में वैद्यविद्या के संचार को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

तनूपा भिषजा सुतेऽश्विनोभा सरस्वती।
मध्वा रजाꣳसीन्द्रियमिन्द्राय पथिभिर्वहान् ॥५६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग जैसे (भिषजा) वैद्यकविद्या के जानने हारे (तनूपा) शरीर के रक्षक (उभा) दोनों (अश्विना) शुभ गुण कर्म स्वभावों में व्याप्त स्त्री पुरुष (सरस्वती) बहुत विज्ञान युक्त वाणी (मध्वा) मीठे गुण से युक्त (सुते) उत्पन्न हुए इस जगत् में स्थित होकर (पथिभिः) मार्गों से (इन्द्राय) राजा के लिये (रजांसि) लोकों और (इन्द्रियम्) धन को धारण करें वैसे इनको (वहान्) प्राप्त हूजिये ॥५६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो स्त्री पुरुष वद्यकविद्या को न जानें तो रोगों को निवारण और शरीरादि की स्वस्थता को और धर्म व्यवहार में निरन्तर चलने को समर्थ नहीं होवें ॥५६॥

इन्द्रायेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः। अश्विसरस्वतीन्द्राः देवताः। अनुष्टुप् छंदः।
गांधारः स्वरः ॥

अब प्रधानता से वैद्यों के व्यवहार को कहते हैं ॥

इन्द्रा॒येन्दु॑ꣳ सर॑स्वती नरा॒शꣳसे॑न न॒ग्नहु॑म् ।
अधा॑ताम॒श्विना॒ मधु॑ भेष॒जं भि॒षजा॑ सु॒ते ॥५७॥

पदार्थः—(अश्विना) वैद्यकविद्या में व्याप्त (भिषजा) उत्तम वैद्यजन (इन्द्राय) दुःखनाश के लिये (सुते) उत्पन्न हुए इस जगत् में (मधु) ज्ञानवर्द्धक कोमलतादिगुणयुक्त (भेषजम्) औषध को (अधाताम्) धारण करें और (नराशंसेन) मनुष्यों से स्तुति किये हुए वचन से सरस्वती प्रशस्तविद्यायुक्त वाणी (नग्नहुम्) आनन्द कराने वाले विषय को ग्रहण करने वाले (इन्दुम्) ऐश्वर्य्य को धारण करे ॥५७॥

भावार्थः—वैद्य दो प्रकार के होते हैं एक ज्वरादि शरीररोगों के नाशक चिकित्सा करने हारे और दूसरे मन के रोग जो कि अविद्यादि मानस क्लेश हैं उनके निवारण करने हारे अध्यापक, उपदेशक हैं, जहां ये रहते हैं वहां रोगों के विनाश से प्राणी लोग शरीर और मन के रोगों से छूटकर सुखी होते हैं ॥५७॥

आजुह्वानेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः। अश्विसरस्वतीन्द्राः देवताः। निचृदनुष्टुप्छन्दः।
गांधारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ॒जुह्वा॑ना॒ सर॑स्वती॒न्द्रा॑येन्द्रि॒याणि॑ वी॒र्य॑म् ।
इडा॑भिर॒श्विना॒विष॒ꣳ समूर्ज॒ꣳ सꣳर॒यिं द॑धुः ॥५८॥

पदार्थः—(आजुह्वाना) सब ओर से प्रशंसा की हुई (सरस्वती) उत्तम ज्ञानवती स्त्री (इन्द्राय) परमैश्वर्य्ययुक्त पति के लिये (इन्द्रियाणि) श्रोत्र आदि इन्द्रिय वा ऐश्वर्य्य उत्पन्न करने हारे सुवर्ण आदि पदार्थों और (वीर्यम्) शरीर में बल के करने हारे घृतादि का तथा (अश्विनौ) सूर्य चन्द्र के सदृश वैद्यकविद्या के कार्य में प्रकाशमान वैद्यजन (इडाभिः) अति उत्तम ओषधियों के साथ (इषम्) अन्न आदि पदार्थ (समूर्जम्) उत्तम पराक्रम (रयिम्) और उत्तम धर्मश्री को (संदधुः) सम्यक् धारण करें ॥५८॥

भावार्थः—वे ही उत्तम विद्यावान् हैं जो मनुष्यों के रोगों का नाश करके शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाते हैं, वही पतिव्रता स्त्री जाननी चाहिये कि जो पति के सुख के लिये धन और घृत आदि वस्तु धर रखती है ॥५८॥

अश्विनेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्राः देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अश्विना नमुचेः सुतꣳ सोमꣳ शुक्रं परिस्रुता ।
सरस्वती तमाभरद् बर्हिषेन्द्राय पातवे ॥५९॥

पदार्थः—जो (परिस्रुता) सब ओर से अच्छे चलनयुक्त (अश्विना) शुभ गुण कर्म स्वभावों में व्याप्त (सरस्वती) प्रशंसायुक्त स्त्री तथा पुरुष (बर्हिषा) सुख बढ़ाने वाले कर्म्म से (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य के सुख के लिये और (नमुचेः) जो नहीं छोड़ता उस असाध्य रोग के दूर होने के लिये (शुक्रम्) वीर्यकारी (सुतम्) अच्छे सिद्ध किये (सोमम्) सोम आदि ओषधियों के समूह की (पातवे) रक्षा के लिये (तम्) उस रस को (आ, अभरत्) धारण करती और करता है वे ही सर्वदा सुखी रहते हैं ॥५९॥

भावार्थः—जो अङ्ग उपाङ्ग सहित वेदों को पढ़ के हस्तक्रिया जानते हैं वे असाध्य रोगों को भी दूर करते हैं ॥५९॥

कवष्य इत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्राः देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गांधारः स्वरः ॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

कवष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां न दुरो दिशः ।
इन्द्रो न रोदसीऽ उभे दुहे कामान्त्सरस्वती ॥६०॥

पदार्थः—(सरस्वती) अतिश्रेष्ठ ज्ञानवती मैं (इन्द्रः) बिजुली (अश्विभ्याम्) सूर्य और चन्द्रमा से (व्यचस्वतीः) व्याप्त होने वाली (कवष्यः) अत्यन्त प्रशंसित (दिशः) दिशाओं को (न) जैसे तथा (दुरः) द्वारों को (न) जैसे वा (उभे) दोनों (रोदसी) आकाश और पृथिवी को जैसे (न) वैसे (कामान्) कामनाओं को (दुहे) पूर्ण करती हूं ॥६०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे बिजुली सूर्य चन्द्रमा से दिशाओं के और द्वारों के अन्धकार का नाश करती है वा जैसे पृथिवी और प्रकाश का धारण करती है वैसे पण्डिता स्त्री पुरुषार्थ से अपनी इच्छा पूर्ण करे ॥६०॥

उषासानक्तमित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः। अश्विसरस्वतीन्द्राः देवताः। अनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उषासानक्तमश्विना दिवेन्द्रꣳ सायमिन्द्रियैः।
संजानाने सुपेशसा समञ्जाते सरस्वत्या ॥६१॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! जैसे (सुपेशसा) अच्छे रूप वाले (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा (सरस्वत्या) अच्छी उत्तम शिक्षा पाई हुई वाणी से (उषासा) प्रभात (नक्तम्) रात्रि (सायम्) संध्याकाल और (दिवा) दिन में (इन्द्रियैः) जीव के लक्षणों से (इन्द्रम्) बिजुली को (संजानाने) अच्छे प्रकार प्रकट करते हुए (समंजाते) प्रसिद्ध हैं वैसे तुम भी प्रसिद्ध होओ ॥६१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे प्रातःसमय रात्रि को और संध्याकाल दिन को निवृत्त करता है वैसे विद्वानों को चाहिये कि अविद्या और दुष्ट शिक्षा का निवारण करके सब लोगों को सब विद्याओं की शिक्षा में नियुक्त करें ॥६१॥

पातमित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः। अश्विसरस्वतीन्द्राः देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गांधारः स्वरः ॥

अब विद्वद्विषय में सामयिक रक्षा विषय और भैषज्यादि विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पातं नोऽअश्विना दिवा पाहि नक्तꣳ सरस्वति।
दैव्या होतारा भिषजा पातमिन्द्रꣳ सचा सुते ॥६२॥

पदार्थः—हे (दैव्या) दिव्यगुणयुक्त (अश्विना) पढ़ाने और उपदेश करने वालो ! तुम लोग (दिवा) दिन में (नक्तम्) रात्रि में (नः) हमारी (पातम्) रक्षा करो । हे (सरस्वति) बहुत विद्याओं से युक्त माता ! तू हमारी (पाहि) रक्षा कर । हे (होतारा) सब लोगों को सुख देने वाले (सचा) अच्छे मिले हुए (भिषजा) वैद्य लोगो ! तुम (सुते) उत्पन्न हुए इस जगत् में (इन्द्रम्) ऐश्वर्य्य देने वाले सोमलता के रस की (पातम्) रक्षा करो ॥६२॥

भावार्थः—जैसे अच्छे वैद्य रोग मिटाने वाली बहुत ओषधियों को जानते हैं वैसे अध्यापक और उपदेशक और माता पिता अविद्यारूप रोगों को दूर करने वाले उपायों को जानें ॥६२॥

तिस्र इत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्राः देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गांधारः स्वरः ॥

फिर भैषज्यादि विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

तिस्रस्त्रेधा सरस्वत्यश्विना भारतीडा ।
तीव्रं परिस्रुता सोममिन्द्राय सुषुवुर्मदम् ॥६३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (सरस्वती) अच्छे प्रकार शिक्षा पाई हुई वाणी (भारती) धारण करने हारी माता और (इडा) स्तुति के योग्य उपदेश करने हारी ये (तिस्रः) तीन और (अश्विना) अच्छे दो वैद्य (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (परिस्रुता) सब ओर से झरने के साथ (तीव्रम्) तीव्रगुणस्वभाव वाले (मदम्) हर्षकर्त्ता (सोमम्) ओषधि के रस वा प्रेरणा नाम के व्यवहार को (त्रेधा) तीन प्रकार से (सुषुवुः) उत्पन्न करें वैसे तुम भी इस की सिद्धि अच्छे प्रकार करो ॥६३॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सोम आदि ओषधियों के रस को सिद्ध कर उस को पीके शरीर आरोग्य करके उत्तम वाणी शुद्ध बुद्धि और यथार्थ वक्तृत्व शक्ति की उन्नति करें ॥६३॥

अश्विनेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्राः देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गांधारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अश्विना भेषजं मधु भेषजं नः सरस्वती ।
इन्द्रे त्वष्टा यशः श्रियꣳ रूपꣳ रूपमधुः सुते ॥६४॥

पदार्थः—(नः) हमारे लिये (अश्विना) विद्या सिखाने वाले अध्यापकोपदेशक (सरस्वती) विदुषी शिक्षा पाई हुई माता और (त्वष्टा) सूक्ष्मता करने वाला ये

विद्वान् लोग (सुते) उत्पन्न हुए (इन्द्रे) परमैश्वर्य्यं में (भेषजम्) सामान्य और (मधु, भेषजम्) मधुरादि गुणयुक्त औषध (यशः) कीर्त्ति (श्रियम्) लक्ष्मी और (रूपं रूपम्) रूप रूप को (अधुः) धारण करने को समर्थ होवें ॥६४॥

भावार्थः—जब मनुष्य लोग ऐश्वर्य को प्राप्त होवें तब इन उत्तम ओषधियों कीर्ति और उत्तम शोभा को सिद्ध करें ॥६४॥

ऋतुथेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्राः देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गांधारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऋतुथेन्द्रो वनस्पतिः शशमानः परिस्रुता ।
कीलालमश्विभ्यां मधु दुहे धेनुः सरस्वती ॥६५॥

पदार्थः—जैसे (धेनुः) दूध देने वाली गौ के समान (सरस्वती) अच्छी उत्तम शिक्षा से युक्त वाणी (परिस्रुता) सब ओर से झरने वाली जलादि पदार्थ के साथ (ऋतुथा) ऋतुओं के प्रकारों से और (शशमानः) बढ़ता हुआ (इन्द्रः) ऐश्वर्य करने हारा (वनस्पतिः) वट आदि वृक्ष (मधु) मधुर आदि रस और (कीलालम्) अन्न को (अश्विभ्याम्) वैद्यों से कामनाओं को पूर्ण करता है वैसे मैं (दुहे) पूर्ण करूं ॥६५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अच्छे वैद्यजन उत्तम उत्तम वनस्पतियों से सारग्रहण के लिये प्रयत्न करते हैं वैसे सब को प्रयत्न करना चाहिये ॥६५॥

गोभिरित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्राः देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गांधारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

गोभिर्न सोममश्विना मासरेण परिस्रुता ।
समधातꣳ सरस्वत्या स्वाहेन्द्रे सुतं मधु ॥६६॥

पदार्थः—हे (अश्विना) अच्छी शिक्षा पाये हुए वैद्यो ! (मासरेण) प्रमाण-युक्त मांड (परिस्रुता) सब ओर से मधुर आदि रस से युक्त (सरस्वत्या) अच्छी शिक्षा और ज्ञान से युक्त वाणी से और (स्वाहा) सत्यक्रियाओं से तथा (इन्द्रे) परमैश्वर्य्य के होते (गोभिः) गौओं से दुग्ध आदि पदार्थों को जैसे (न) वैसे (मधु) मधुर आदि गुणों से युक्त (सुतम्) सिद्ध किये (सोमम्) ओषधियों के रस को तुम (समधातम्) अच्छे प्रकार धारण करो ॥६६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। वैद्य लोग उत्तम हस्तक्रिया से सब ओषधियों के रस को ग्रहण करें ॥६६॥

अश्विना हविरित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः। अश्विसरस्वतीन्द्राः देवताः। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गांधारः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अश्विना॑ ह॒विरि॑न्द्रि॒यं नमु॑चेर्धि॒या सर॑स्वती।
आ शु॒क्रमा॑सु॒राद्वसु॑ म॒घमिन्द्रा॑य जभ्रिरे ॥६७॥

पदार्थः—(अश्विना) अच्छे वैद्य और (सरस्वती) अच्छी शिक्षायुक्त स्त्री (धिया) बुद्धि से (नमुचेः) नाशरहित कारण से उत्पन्न हुए कार्य से (हविः) ग्रहण करने योग्य (इन्द्रियम्) धन को (आसुरात्) मेघ से (शुक्रम्) पराक्रम और (मघम्) पूज्य (वसु) धन को (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (आजभ्रिरे) धारण करें ॥६७॥

भावार्थः—स्त्री और पुरुषों को चाहिये कि ऐश्वर्य से सुख की प्राप्ति के लिये ओषधियों का सेवन किया करें ॥६७॥

यमित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः। अश्विसरस्वतीन्द्राः देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गांधारः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यम॒श्विना॒ सर॑स्वती ह॒विषेन्द्र॒मव॑र्द्धयन्।
स बि॑भेद ब॒लं म॒घं नमु॑चावासु॒रे सचा॑ ॥६८॥

पदार्थः—(सचा) संयोग किये हुए (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक तथा (सरस्वती) विदुषी स्त्री (नमुचौ) नाशरहित कारण से उत्पन्न (आसुरे) मेघ में होने के निमित्त घर में (हविषा) अच्छी बनाई हुई होम की सामग्री से (यम्) जिस (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (अवर्द्धयन्) बढ़ाते (सः) वह (मघम्) परमपूज्य (बलम्) बल का (बिभेद) भेदन करे ॥६८॥

भावार्थः—जो ओषधियों के रस को कर्त्तव्यता के गुणों से उत्तम करे वह रोग का नाश करने हारा होवे ॥६८॥

तमित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः। अश्विसरस्वतीन्द्राः देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गांधारः स्वरः॥

अब विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तमिन्द्रं पशवः सचाश्विनोभा सरस्वती ।
दधाना अभ्यनूषत हविषा यज्ञ इन्द्रियैः ॥६९॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! (सचा) विद्या से युक्त (अश्विना) वैद्यकविद्या में चतुर अध्यापक और उपदेशक (उभा) दोनों (इन्द्रियैः) धनों से जिस (इन्द्रम्) बल आदि गुणों के धारण करने हारे सोम को धारण करें (तम्) उस को (सरस्वती) सत्य विज्ञान से युक्त स्त्री धारण करे और जिस को (पशवः) गौ आदि पशु धारण करें उस को (हविषा) सामग्री से (दधानाः) धारण करते हुए जन (यज्ञे) यज्ञ में (अभ्यनूषत) सब ओर से प्रशंसा करें ॥६९॥

भावार्थः—जो लोग धर्म्म के आचरण से धन के साथ धन को बढ़ाते हैं वे प्रशंसा को प्राप्त होते हैं ॥६९॥

य इत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । इन्द्रसवितृवरुणा देवताः । अनुष्टुप् छन्दः ।
गांधारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

य इन्द्र इन्द्रियं दधुः सविता वरुणो भगः ।
स सुत्रामा हविष्पतिर्यजमानाय सश्चत ॥७०॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! (ये) जो लोग (इन्द्रे) ऐश्वर्य्य में (इन्द्रियम्) धन को (दधुः) धारण करें वे सुखी होवें । इस कारण जो (भगः) सेवा करने के योग्य (वरुणः) श्रेष्ठ (सविता) ऐश्वर्य की इच्छा से युक्त (सुत्रामा) अच्छे प्रकार रक्षक (हविष्पतिः) होम करने योग्य पदार्थों की रक्षा करने हारा मनुष्य (यजमानाय) यज्ञ करने हारे के लिये धन को (सश्चत) सेवे (सः) वह प्रतिष्ठा को प्राप्त होवे ॥७०॥

भावार्थः—जैसे पुरोहित यजमान के ऐश्वर्य को बढ़ाता है वैसे यजमान भी पुरोहित के धन को बढ़ावे ॥७०॥

सवितेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । इन्द्रसवितृवरुणा देवताः । अनुष्टुप् छन्दः ॥
गांधारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सविता वरुणो दधद्यजमानाय दाशुषे ।
आदत्त नमुचेर्वसु सुत्रामा बलमिन्द्रियम् ॥७१॥

पदार्थः—(वरुणः) उत्तम (सविता) प्रेरक (सुत्रामा) और अच्छे प्रकार रक्षा करने हारा जन (दाशुषे) देने वाले (यजमानाय) यजमान के लिये (वसु) द्रव्य को (दधत्) धारण करता हुआ (नमुचेः) धर्म को नहीं छोड़ने वाले के (बलम्) बल और (इन्द्रियम्) अच्छी शिक्षा से युक्त मन का (आ, अदत्त) अच्छे प्रकार ग्रहण करे ॥७१॥

भावार्थः—देने वाले पुरुष की अच्छे प्रकार सेवा करके उससे अच्छे पदार्थों को प्राप्त होकर जो सब के बल को बढ़ाता है वह बलवान् होता है ॥७१॥

वरुण इत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । इन्द्रसवितृवरुणा देवताः । अनुष्टुप् छंदः । गांधारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वरुणः क्षत्रमिन्द्रियं भगेन सविता श्रियम् ।
सुत्रामा यशसा बलं दधाना यज्ञमाशत ॥७२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (वरुणः) उत्तम पुरुष (सविता) ऐश्वर्योत्पादक (सुत्रामा) अच्छे प्रकार रक्षा करने हारा राजा का अध्यक्ष (भगेन) ऐश्वर्य्य के साथ वर्त्तमान (क्षत्रम्) राज्य और (इन्द्रियम्) मन आदि (श्रियम्) राज्यलक्ष्मी और (यज्ञम्) यज्ञ को प्राप्त होता है वैसे (यशसा) कीर्ति के साथ (बलम्) बल को (दधानाः) धारण करते हुए तुम (आशत) प्राप्त होओ ॥७२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । ऐश्वर्य्य के विना राज्य, राज्य के विना राज्यलक्ष्मी और राज्यलक्ष्मी के विना भोग प्राप्त नहीं होते इसलिये नित्य पुरुषार्थ करना चाहिये ॥७२॥

अश्विनेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । निचृदनुष्टुप् छंदः । गांधारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अश्विना गोभिरिन्द्रियमश्वेभिर्वीर्यं बलम् ।
हविषेन्द्रꣳ सरस्वती यजमानमवर्द्धयन् ॥७३॥

पदार्थः—(अश्विना) अध्यापक उपदेशक और (सरस्वती) सुशिक्षायुक्त विदुषी स्त्री (गोभिः) अच्छे प्रकार शिक्षायुक्त वाणी वा पृथिवी और गौओं तथा (अश्वेभिः) अच्छे प्रकार शिक्षा पाये हुए घोड़ों और (हविषा) अंगीकार किये हुए

पुरुषार्थ से (इन्द्रियम्) धन (वीर्य्यम्) पराक्रम (बलम्) बल और (इन्द्रम्) ऐश्वर्य-युक्त (यजमानम्) सत्य अनुष्ठानरूप यज्ञ के करने हारे को (अवर्द्धयन्) बढ़ावें ॥७३॥

भावार्थः—जो लोग जिन के समीप रहें उन को योग्य है कि वे उनको सब अच्छे गुण कर्मों और ऐश्वर्य आदि से उन्नति को प्राप्त करें ॥७३॥

ता नासत्येत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ता नास॑त्या सु॒पेश॑सा॒ हिर॑ण्यवर्त्तनी॒ नरा॑ ।
सर॑स्वती ह॒विष्म॒तीन्द्र॒ कर्म॑सु नोऽवत ॥७४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य वाले विद्वन् ! (ता) वे (नासत्या) असत्य आचरण से रहित (सुपेशसा) अच्छे रूप युक्त (हिरण्यवर्त्तनी) सुवर्ण का वर्त्ताव करने हारी (नरा) सर्वगुणप्रापक पढ़ाने और उपदेश करने वाली (हविष्मती) उत्तम ग्रहण करने योग्य पदार्थ जिस के विद्यमान वह (सरस्वती) विदुषी स्त्री और आप (कर्मसु) कर्मों में (नः) हमारी (अवत) रक्षा करो ॥७४॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् पुरुष पढ़ने और उपदेश से सब को दुष्ट कर्मों से दूर करके अच्छे कर्मों में प्रवृत्त कर रक्षा करते हैं वैसे ही ये सब के रक्षा करने के योग्य हैं ॥७४॥

ता भिषजेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ता भि॒षजा॑ सु॒कर्म॑णा॒ सा सु॒दुघा॒ सर॑स्वती ।
स वृ॑त्र॒हा श॒तक्र॑तु॒रिन्द्रा॑य दधुरिन्द्रि॒यम् ॥७५॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! जैसे (ता) वे (भिषजा) शरीर और आत्मा के रोगों के निवारण करने हारे (सुकर्मणा) अच्छी धर्मयुक्त क्रिया से युक्त दो वैद्य (सा) वह (सुदुघा) अच्छे प्रकार इच्छा को पूरण करने हारी (सरस्वती) पूर्ण विद्या से युक्त स्त्री और (सः) वह (वृत्रहा) जो मेघ का नाश करता है उस सूर्य के समान (शतक्रतुः) अत्यन्त बुद्धिमान् (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य के लिये (इन्द्रियम्) धन को (दधुः) धारण करें वैसे तुम भी आचरण करो ॥७५॥

भावार्थः— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जगत् में जैसे विद्वान् लोग उत्तम आचरण वाले पुरुष के समान प्रयत्न करके विद्या और धन को बढ़ाते हैं वैसे सब मनुष्य करें ॥७५॥

युवमित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । विराडनुष्टुप् छंदः । गांधारः स्वरः ॥

फिर प्रकारान्तर से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

युवꣳ सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।
त्रिपिपानाः सरस्वतीन्द्रं कर्मस्वावत ॥७६॥

पदार्थः—हे (अश्विना) पालन आदि कर्म करनेहारे अध्यापक और उपदेशक ! (सचा) मिले हुए (युवम्) तुम दोनों और हे (सरस्वतिः) अतिश्रेष्ठ विज्ञान वाली प्रजा ! तू जैसे (नमुचौ) प्रवाह से नित्यस्वरूप (आसुरे) मेघ में और (कर्मसु) कर्मों में (सुरामम्) अतिसुन्दर (इन्द्रम्) परमैश्वर्य का (आवत) पालन करते हो वैसे (विपिपानाः) नाना प्रकार से रक्षा करने हारे होते हुए आचरण करो ॥७६॥

भावार्थः—जो लोग पुरुषार्थ से बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होकर धन की रक्षा करके आनन्द को भोगते हैं वे सदा ही बढ़ते हैं ॥७६॥

पुत्रमित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । विराडनुष्टुप् छंदः । गांधारः स्वरः ॥

फिर प्रकारान्तर से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दꣳसनाभिः ।
यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥७७॥

पदार्थः—हे (मघवन्) उत्तम धन (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्ययुक्त विद्वन् ! तू (शचीभिः) बुद्धियों के साथ (यत्) जिस से (सुरामम्) अति रमणीय महौषधि के रस को (व्यपिबः) पीता है इस से सरस्वती उत्तम शिक्षावती स्त्री (त्वा) तुझ को (अभिष्णक्) समीप सेवन करे (उभा) दोनों (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक (काव्यैः) कवियों के किये हुए (दंसनाभिः) कर्मों से जैसे (पितरौ) माता पिता (पुत्रमिव) पुत्र का पालन करते हैं वैसे तेरी (आवथुः) रक्षा करें ॥७७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे माता पिता अपने सन्तानों की रक्षा करके सदा बढ़ावें वैसे अध्यापक और उपदेशक शिष्य की रक्षा करके विद्या से बढ़ावें ॥७७॥

यस्मिन्नित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुताः ।
कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनय चारुमग्नये ॥७८॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! (अश्वासः) घोड़े और (ऋषभासः) उत्तम बैल तथा (उक्षणः) अतिवली वीर्य के सेचन करने हारे बैल (वशाः) बन्ध्या गायें और (मेषाः) मेढ़ा (अवसृष्टासः) अच्छे प्रकार शिक्षा पाये और (आहुताः) सब ओर से ग्रहण किये हुए (यस्मिन्) जिस व्यवहार में काम करने हारे हों उसमें तू (हृदा) अन्तःकरण से (सोमपृष्ठाय) सोमविद्या को पूछने और (कीलालपे) उत्तम अन्न के रस को पीने हारे (वेधसे) बुद्धिमान् (अग्नये) अग्नि के समान प्रकाशमान जन के लिये (चारुम्) अति उत्तम (मतिम्) बुद्धि को (जनय) प्रकट कर ॥७८॥

भावार्थः—पशु भी सुशिक्षा पाये हुए उत्तम कार्य सिद्ध करते हैं क्या फिर विद्या की शिक्षा से युक्त मनुष्य लोग सब उत्तम कार्य सिद्ध नहीं कर सकते ॥७८॥

अहाव्यीत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अहाव्यग्ने हविरास्ये ते स्रुचीव घृतं चम्वीव सोमः ।
वाजसनिꣳ रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धेहि यशसं बृहन्तम् ॥७९॥

पदार्थः—हे (अग्ने) उत्तम विद्यायुक्त पुरुष ! जिस तू ने (सोमः) ऐश्वर्ययुक्त (हविः) होम करने योग्य वस्तु (ते) तेरे (आस्ये) मुख में (घृतम्, स्रुचीव) जैसे घृत स्रुच् के मुख में और (चम्वीव) जैसे यज्ञ के पात्र में होम के योग्य वस्तु वैसे (अहावि) होमा है वह तू (अस्मे) हम लोगों में (प्रशस्तम्) बहुत उत्तम (सुवीरम्) अच्छे वीर पुरुषों के उपयोगी और (वाजसनिम्) अन्न विज्ञान आदि गुणों का विभाग (यशसम्) कीर्ति करने हारी (बृहन्तम्) बड़ी (रयिम्) राज्यलक्ष्मी को (धेहि) धारण कर ॥७९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । गृहस्थ पुरुषों को चाहिये कि उन्हीं का भोजन आदि से सत्कार करें जो लोग पढ़ाना उपदेश और अच्छे कर्मों के अनुष्ठान से जगत् में बल, पराक्रम, यश, धन और विज्ञान को बढ़ावें ॥७९॥

अश्विनेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । विराडनुष्टुप् छंदः । गांधारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्यम् ।
वाचेन्द्रो बलेनेन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥८०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (सरस्वती) विद्यावती स्त्री (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक और (इन्द्रः) सभा का अधिष्ठाता (इन्द्राय) जीव के लिये (प्राणेन) जीवन के साथ (वीर्यम्) पराक्रम और (तेजसा) प्रकाश से (चक्षुः) प्रत्यक्ष नेत्र (वाचा) वाणी और (बलेन) बल से (इन्द्रियम्) जीवन के चिह्न को (दधुः) धारण करें वैसे तुम भी धारण करो ॥८०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्य लोग जैसे जैसे विद्वानों के सङ्ग से विद्या को बढ़ावें वैसे वैसे विज्ञान में रुचि वाले होवें ॥८०॥

गोमदू षु णेत्यस्य गृत्समद ऋषिः । अश्विनौ देवते । विराड् गायत्री छंदः । षड्जः स्वरः ॥

अब विद्वानों के विषय में पशु आदिकों से पालना विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

गोमदू षु णासत्याश्वावद्यातमश्विना । वर्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥८१॥

पदार्थः—हे (नासत्या) सत्य व्यवहार से युक्त (रुद्रा) दुष्टों को रोदन कराने हारे (अश्विना) विद्या से बढ़े हुए लोगो ! तुम जैसे (गोमत्) गौ जिस में विद्यमान उस (वर्तिः) वर्त्तमान मार्ग (उ) और (अश्वावत्) उत्तम घोड़ों से युक्त (नृपाय्यम्) मनुष्यों के मान को (सुयातम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ वैसे हम लोग भी प्राप्त होवें ॥८१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । गाय, घोड़ा, हाथी आदि पालन किये पशुओं से अपनी और दूसरे की मनुष्यों को पालना करनी चाहिये ॥८१॥

न यदित्यस्य गृत्समद ऋषिः । अश्विनौ देवते । विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

न यत्परो नान्तर आदधर्षद्वृषण्वसू । दुःशꣳसो मर्त्यो रिपुः ॥८२॥

पदार्थः—हे (वृषण्वसू) श्रेष्ठों को वास कराने हारे सभा और सेना के पति ! तुम (यत्) जिससे (दुःशंसः) दुःख से स्तुति करने योग्य (परः) अन्य (मर्त्यः) मनुष्य

(रिपुः)शत्रु(न) न हो और (न) न (अन्तरः)मध्यस्थ हो कि जो हम को(आवयर्यंत) सब ओर से धर्षण करे उसको अच्छे यत्न से वश में करो ॥८२॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि जो अति बलवान् अत्यन्त दुष्ट शत्रु होवे उसको बड़े यत्न से जीतें ॥८२॥

ता न इत्यस्य गृत्समद ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ता न॒ आ वो॑ढमश्विना र॒यिं पि॒शङ्ग॑सन्दृशम् ।
धिष्ण्या॑ वरि॒वो॒विद॑म् ॥८३॥

पदार्थः—हे (अश्विना) सभा और सेना के पालने हारो ! (धिष्ण्या) जो बुद्धि के साथ वर्त्तमान (ता) वे तुम (नः) हम को (वरिवोविदम्) जिससे सेवन को प्राप्त हों और (पिशङ्गसंदृशम्) जो सुवर्ण के समान देखने में आता है उस (रयिम्) धन को (आ, वोढम्) सब ओर से प्राप्त करो ॥८३॥

भावार्थः—सभापति और सेनापतियों को चाहिये कि राज्य के सुख के लिये सब ऐश्वर्य को सिद्ध करें जिससे सत्यधर्म का आचरण बढ़े ॥८३॥

पावका न इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । सरस्वती देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर अध्यापक और उपदेशक विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पा॒व॒का नः॒ सर॑स्वती॒ वाजे॑भिर्वा॒जिनी॑वती ।
य॒ज्ञं व॑ष्टु धि॒याव॑सुः ॥८४॥

पदार्थः—हे पढ़ाने वाले और उपदेशक लोगो ! जैसे (वाजेभिः) विज्ञान आदि गुणों से (वाजिनीवती) अच्छी उत्तम विद्या से युक्त (पावका) पवित्र करने हारी (धियावसुः) बुद्धि के साथ जिस से धन हो वह (सरस्वती) अच्छे प्रकार संस्कार वाली वाणी (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ को (वष्टु) शोभित करे वैसे तुम लोग हम लोगों को शिक्षा करो ॥८४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि धर्मात्मा अध्यापक और उपदेशकों से विद्या और सुशिक्षा अच्छे प्रकार ग्रहण करके विज्ञान की वृद्धि सदा किया करें ॥८४॥

चोदयित्रीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । सरस्वती देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब स्त्रियों की शिक्षा का विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् ।
यज्ञं दधे सरस्वती ।।८५।।

पदार्थः हे स्त्री लोगो ! जैसे (सूनृतानाम्) सुशिक्षा पाई हुई वाणियों को (चोदयित्री) प्रेरणा करने हारी (सुमतीनाम्) शुभ बुद्धियों को (चेतन्ती) अच्छे प्रकार ज्ञापन करती (सरस्वती) उत्तम विज्ञान से युक्त हुई मैं (यज्ञम्) यज्ञ को (दधे) धारण करती हूं वैसे यह यज्ञ तुम को भी करना चाहिये ।।८५।।

भावार्थः जो स्त्रियों के बीच में विदुषी स्त्री हो वह सब स्त्रियों को सदा सुशिक्षा करे जिससे स्त्रियों में विद्या की वृद्धि हो ।।८५।।

महो अर्ण इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । सरस्वती देवता । गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

महो अर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुना ।
धियो विश्वा वि राजति ।।८६।।

पदार्थः—हे स्त्री लोगो ! जैसे (सरस्वती) वाणी (केतुना) उत्तम ज्ञान से (महः) बड़े (अर्णः) आकाश में स्थित शब्दरूप समुद्र को (प्रचेतयति) उत्तम प्रकार से जतलाती है और (विश्वाः) सब (धियः) बुद्धियों को (वि, राजति) नाना प्रकार से प्रकाशित करती है वैसे विद्याओं में तुम प्रवृत्त होओ ।।८६।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । कन्याओं को चाहिये कि ब्रह्मचर्य्य से विद्या और सुशिक्षा को समग्र ग्रहण करके अपनी बुद्धियों को बढ़ावें ।।८६।।

इन्द्रायाहीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ।।

अब सामान्य उपदेश विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

इन्द्रायाहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः ।
अण्वीभिस्तना पूतासः ।।८७।।

पदार्थः—हे (चित्रभानो) चित्र विचित्र विद्याप्रकाशों वाले (इन्द्र) सभापति ! आप जो (इमे) ये (अण्वीभिः) अङ्गुलियों से (सुता) सिद्ध किए (तना) विस्तारयुक्त

गुण से (पूतासः) पवित्र (स्वायवः)जो तुम को मिलते हैं उन पदार्थों को (आ, याहि) प्राप्त हूजिये ।।८७।।

भावार्थः—मनुष्य लोग अच्छी क्रिया से पदार्थों को अच्छे प्रकार शुद्ध करके भोजनादि करें ।।८७।।

इन्द्रायाहि धियेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ।।

फिर विद्वद्विषय अगले मन्त्र में कहते हैं ।

इन्द्रायाहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः ।
उप ब्रह्माणि वाघतः ।।८८।।

पदार्थः—हे (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य्य से युक्त ! (इषितः) प्रेरित और (विप्रजूतः) बुद्धिमानों से शिक्षा पाके वेगयुक्त (वाघतः) शिक्षा पाई हुई वाणी से जानने हारा तू (धिया) सम्यक् बुद्धि से (सुतावतः) सिद्ध किये (ब्रह्माणि) अन्न और धनों को (उप, आ, याहि) सब प्रकार से समीप प्राप्त हो ।।८८।।

भावार्थः—विद्वान् लोग जिज्ञासा वाले पुरुषों से मिल के उन में विद्या के निधि को स्थापित करें ।।८८।।

इन्द्रायाहि तूतुजान इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

इन्द्रायाहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः ।
सुते दधिष्व नश्चनः ।।८९।।

पदार्थः—हे (हरिवः) अच्छे उत्तम घोड़ों वाले (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य्य के बढ़ाने हारे विद्वन् ! आप (उपायाहि) निकट आइये (तूतुजानः) शीघ्र कार्य्यकारी हो कि (नः) हमारे लिये (सुते) उत्पन्न हुए व्यवहार में (ब्रह्माणि) धर्मयुक्त कर्म से प्राप्त होने योग्य धन और (चनः) भोग के योग्य अन्न को (दधिष्व) धारण कीजिये ।।८९।।

भावार्थः—विद्या और धर्म बढ़ाने के लिये किसी को आलस्य न करना चाहिये ।।८९।।

अश्विनेत्यस्य मधुच्छन्दाः ऋषिः। अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अश्विना पिबतां मधु सरस्वत्या सजोषसा ।

इन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ताᳬं सोम्यं मधु ॥९०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (सजोषसा) समान सेवन करने हारे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक (सरस्वत्या) अच्छे प्रकार संस्कार पाई हुई वाणी से (मधु) मधुर आदि गुणयुक्त विज्ञान को (पिबताम्) पान करें और जैसे (इन्द्रः) ऐश्वर्य्यवान् (सुत्रामा) अच्छे प्रकार रक्षा करने हारा (वृत्रहा) सूर्य के समान वर्त्ताव वर्त्तने वाला (सोम्यम्) सोमलता आदि ओषधिगण में हुए (मधु) मधुरादि गुण युक्त अन्न का (जुषन्ताम्) सेवन करें वैसे तुम लोगों को भी करना चाहिये ॥९०॥

भावार्थः—अध्यापक और उपदेशक अपने जैसे सब लोगों के विद्या और सुख बढ़ाने की इच्छा करें जिससे सब सुखी हों ॥९०॥

इस अध्याय में राज प्रजा, धर्म्म के अङ्ग और अङ्गि, गृहाश्रम का व्यवहार, ब्राह्मण, क्षत्रिय, सत्यव्रत, देवों के गुण, प्रजा के पालक, अभय, परस्पर सम्मति, स्त्रियों के गुण धन आदि पदार्थों की वृद्धयादि का वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की इससे प्रथम अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति है ऐसा जानना चाहिये ॥

यह यजुर्वेदभाषाभाष्य का बीसवां (२०) अध्याय पूरा हुआ ॥२०॥

* ओ३म् *

अथैकविंशतितमोऽध्याय आरभ्यते

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥

इममित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । वरुणो देवता । निचृद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब इक्कीसवें अध्याय का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र में विद्वानों के विषय में कहा है ॥

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके ॥१॥

पदार्थः—हे (वरुण) उत्तम विद्यावान् जन ! जो (अवस्युः) अपनी रक्षा की इच्छा करने हारा मैं (इमम्) इस (त्वाम्) तुझ को (आ, चके) चाहता हूं वह तू (मे) मेरी (हवम्) स्तुति को (श्रुधि) सुन (च) और (अद्य) आज मुझ को (मृडय) सुखी कर ॥१॥

भावार्थः—सब विद्या की इच्छा वाले पुरुषों को चाहिये कि अनुक्रम से उपदेश करने वाले बड़े विद्वान् की इच्छा करें, वह विद्यार्थियों के स्वाध्याय को सुन और उत्तम परीक्षा करके सबको आनन्दित करे ॥१॥

तत्त्वेत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । वरुणो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशꣳस मा नऽआयुः प्र मोषीः ॥२॥

पदार्थः—हे (वरुण) अति उत्तम विद्वान् पुरुष ! जैसे (यजमानः) यजमान (हविर्भिः) देने योग्य पदार्थों से (तत्) उस की (आ, शास्ते) इच्छा करता है वैसे (ब्रह्मणा) वेद के विज्ञान से (वन्दमानः) स्तुति करता हुआ मैं (तत्) उस (त्वा) तुझ को (यामि) प्राप्त होता हूँ । हे (उरुशंस) बहुत लोगों से प्रशंसा किये हुए जन ! मुझ से (अहेडमानः) सत्कार को प्राप्त होता हुआ तू (इह) इस संसार में (नः) हमारे (आयुः) जीवन वा विज्ञान को (मा) मत (प्र, मोषीः) चुरा लेवे और शास्त्र का (बोधि) बोध कराया कर ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य जिससे विद्या को प्राप्त हो वह उस को प्रथम नमस्कार करे जो जिसका पढ़ाने वाला हो वह उसको विद्या देने के लिये कपट न करे कदापि किसी को आचार्य का अपमान न करना चाहिये ॥२॥

त्वमित्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निवरुणौ देवते । स्वराड्पङ्क्ति-श्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वं नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽअवं यासिसीष्ठाः ।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांꣳसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य प्रकाशमान (यजिष्ठः) अतीव यजन करने (वह्नितमः) अत्यन्त प्राप्ति कराने और (शोशुचानः) शुद्ध करने हारे (विद्वान्) विद्या युक्त जन ! (त्वम्) तू (वरुणस्य) श्रेष्ठ (देवस्य) विद्वान् का जो (हेडः) अनादर उस को (अव) मत (यासिसीष्ठाः) करे । हे तेजस्वि ! तू जो (नः) हमारा अनादर हो उस को अङ्गीकार मत कर । हे शिक्षा करने हारे ! तू (अस्मत्) हम से (विश्वा) सब (द्वेषांसि) द्वेष आदि युक्त कर्मों को (प्र, मुमुग्धि) छुड़ा दे ॥३॥

भावार्थः—कोई भी मनुष्य विद्वानों का अनादर और कोई भी विद्वान् विद्यार्थियों का असत्कार न करे, सब मिल के ईर्ष्या क्रोध आदि दोषों को छोड़ के सब के मित्र होवें ॥३॥

स त्वमित्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निवरुणौ देवते । स्वराड्पङ्क्ति-श्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स त्वं नोऽअग्नेऽवमो भंवोती नेदिष्ठोऽअस्याऽउषसो व्युष्टौ ।
अवं यक्ष्व नो वरुणꣳ रराणो वीहि मृडीकꣳसुहवो नऽएधि ॥४॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्वान् ! जैसे (अस्याः) इस (उषसः) प्रभात समय के (व्युष्टौ) नाना प्रकार के दाह में अग्नि (नेदिष्ठः) अत्यन्त समीप और रक्षा करने हारा है वैसे (सः) वह (त्वम्) तू (नः) (ऊती) प्रीति से (नः) हमारा (अवमः) रक्षा करने हारा (भव) हो (नः) हम को (वरुणम्) उत्तम गुण वा उत्तम विद्वान् वा उत्तम गुणीजन का (अव, यक्ष्व) मेल कराओ और (रराणः) रमण करते हुए तुम (मृडीकम्) सुख देने हारे को (वीहि) व्याप्त होओ (नः) हम को (सुहवः) शुभदान देनेहारे (एधि) हूजिये ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे प्रातः समय में सूर्य समीप स्थित होके सब समीप के मूर्त्त पदार्थों को व्याप्त होता है वैसे शिष्यों के समीप अध्यापक होके इनको अपनी विद्या से व्याप्त करे ॥४॥

महीमित्यस्य वामदेव ऋषिः। आदित्या देवताः। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब पृथिवी के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

महीमू षु मातरꣳ सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम।
तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीꣳ सुशर्माणमदितिꣳ सुप्रणीतिम् ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (मातरम्) माता के समान स्थित (सुव्रतानाम्) जिन के शुभ सत्याचरण हैं उन को (ऋतस्य) प्राप्त हुए सत्य की (पत्नीम्) स्त्री के समान वर्त्तमान (तुविक्षत्राम्) बहुत धन वाली (अजरन्तीम्) जीर्णपन से रहित (उरूचीम्) बहुत पदार्थों को प्राप्त कराने हारी (सुशर्माणम्) अच्छे प्रकार के गृह से और (सुप्रणीतिम्) उत्तम नीतियों से युक्त (उ) उत्तम (अदितिम्) अखण्डित (महीम्) पृथिवी को (अवसे) रक्षा आदि के लिये (सु, हुवेम) ग्रहण करते हैं वैसे तुम भी ग्रहण करो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे माता सन्तानों और पतिव्रता स्त्री पति का पालन करती है वैसे यह पृथिवी सब का पालन करती है ॥५॥

सुत्रामाणमित्यस्य गयप्लात ऋषिः। अदितिर्देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब जलयान विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसꣳ सुशर्माणमदितिꣳ सुप्रणीतिम्।
दैवीं नावꣳ स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥६॥

पदार्थः—हे शिल्पि जनो ! जैसे हम (स्वस्तये) सुख के लिये (सुत्रामाणम्) अच्छे रक्षण आदि से युक्त (पृथिवीम्) विस्तार और (द्याम्) शुभ प्रकाश वाली (अनेहसम्) अहिंसनीय (सुशर्माणम्) जिस में सुशोभित घर विद्यमान उस (अदितिम्) अखण्डित (सुप्रणीतिम्) बहुत राजा और प्रजाजनों की पूर्ण नीति से युक्त (स्वरित्राम्) वा जिस में बल्ली पर बल्ली लगी हैं उस (अनागसम्) अपराधरहित और (अस्रवन्तीम्) छिद्ररहित (दैवीम्) विद्वान् पुरुषों की (नावम्) प्रेरणा करने हारी नाव पर (आ, रुहेम) चढ़ते हैं वैसे तुम लोग भी चढ़ो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जिस में बहुत घर, बहुत साधन, बहुत रक्षा करने हारे, अनेक प्रकार का प्रकाश और बहुत विद्वान् हों उस छिद्र रहित बड़ी नाव में स्थित होके समुद्र आदि जल के स्थानों में पारावार देशान्तर और द्वीपान्तर में जा आके भूगोल में स्थित देश और द्वीपों को जान के लक्ष्मीवान् होवें ॥६॥

सुनावमित्यस्य गयप्लात ऋषिः। स्वर्ग्या नौर्देवता। यवमध्या गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सुनावमा रुहेयमस्रवन्तीमनागसम्। शतारित्राᳬ स्वस्तये ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (स्वस्तये) सुख के लिये (अस्रवन्तीम्) छिद्रादि दोष वा (अनागसम्) बनावट के दोषों से रहित (शतारित्राम्) अनेकों लङ्गर वाली (सुनावम्) अच्छे बनी नाव पर (आ, रुहेयम्) चढ़ूं वैसे इस पर तुम भी चढ़ो ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य लोग बड़ी नावों की अच्छे प्रकार परीक्षा कर के और उन में स्थिर होके समुद्र आदि के पारावार जायें जिन में बहुत लङ्गर आदि होवें वे नावें अत्यन्त उत्तम हों ॥७॥

आ न इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम्।
मध्वा रजाᳬसि सुक्रतू ॥८॥

पदार्थः—हे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान वायु के समान वर्त्तने हारे (सुक्रतू) शुभ बुद्धि वा उत्तम कर्मयुक्त शिल्पी लोगो ! तुम (घृतैः) जलों से (नः)

हमारे (गव्यूतिम्) दो कोश को (उक्षतम्) सेचन करो और (आ, मध्वा) सब ओर से मधुर जल से (रजांसि) लोकों का सेचन करो ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो शिल्पी विद्या वाले लोग नाव आदि को जल आदि मार्ग से चलाव तो वे ऊपर और नीचे मार्गों में जाने को समर्थ हों ॥८॥

प्र बाहवेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर विद्वानों के विषय में अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्र बाहवा सिसृतं जीवसे नऽआ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन ।
आ मा जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥९॥

पदार्थः—(मित्रावरुणा) मित्र और वरुण उत्तम जन (बाहवा) दोनों बाहु के तुल्य (युवाना) मिलान और अलग करने हारे तुम (नः) हमारे (जीवसे) जीने के लिये (मा) मुझ को (प्र, सिसृतम्) प्राप्त होओ (घृतेन) जल से (नः) हमारे (गव्यूतिम्) दो कोश पर्यन्त (आ, उक्षतम्) सब ओर से सेचन करो । नाना प्रकार की कीर्ति को (आ, श्रवयतम्) अच्छे प्रकार सुनाओ और (मे) मेरे (जने) मनुष्यगण में (इमा) इन (हवा) वाद विवादों को (श्रुतम्) सुनो ॥९॥

भावार्थः—अध्यापक और उपदेशक प्राण और उदान के समान सब के जीवन के कारण होवें, विद्या और उपदेश से सब के आत्माओं को जल से वृक्षों के समान सेचन करें ॥९॥

शमित्यस्यात्रेय ऋषिः । ऋत्विजो देवताः । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

शन्नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः ।
जम्भयन्तोऽहिं वृकꣳ रक्षाꣳसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥१०॥

पदार्थः—हे (स्वर्काः) अच्छे अन्न वा वज्र से युक्त और (मितद्रवः) प्रमाणित चलने और (देवताता) विद्वानों के समान वर्त्तने हारे (वाजिनः) अति उत्तम विज्ञान से युक्त (हवेषु) लेने देने में चतुर आप लोग (अहिम्) मेघ को सूर्य के समान (वृकम्) चोर और (रक्षांसि) दुष्ट जीवों का (जम्भयन्तः) विनाश करते हुए (नः) हमारे लिये (सनेमि) सनातन (शम्) सुख करने हारे (भवन्तु) होओ और (अस्मत्) हमारे (अमीवाः) रोगों को (युयवन्) दूर करो ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य

अन्धकार को हटा के सब को सुखी करता है वैसे विद्वान् लोग प्राणियों के शरीर और आत्मा के सब रोगों को निवृत्त करके आनन्दयुक्त करें ॥१०॥

वाजेवाज इत्यस्य आत्रेय ऋषिः । विद्वांसो देवताः । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥११॥

पदार्थः—हे (अमृताः) आत्मस्वरूप से अविनाशी (ऋतज्ञाः) सत्य के जानने हारे (वाजिनः) विज्ञान वाले (विप्राः) बुद्धिमान् लोगो ! तुम (वाजेवाजे) युद्ध युद्ध में और (धनेषु) धनों में (नः) हमारी (अवत) रक्षा करो और (अस्य) इस (मध्वः) मधुर रस का (पिबत) पान करो और उस से (मादयध्वम्) विशेष आनन्द को प्राप्त होओ और इस से (तृप्ताः) तृप्त होके (देवयानैः) विद्वानों के जाने योग्य (पथिभिः) मार्गों से (यात) जाओ ॥११॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् लोग विद्यादान से और उपदेश से सब को सुखी करते हैं वैसे ही राजपुरुष रक्षा और अभय दान से सब को सुखी करें तथा धर्मयुक्त मार्गों में चलते हुए अर्थ, काम और मोक्ष इन तीन पुरुषार्थ के फलों को प्राप्त होवें ॥११॥

समिद्ध इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर विद्वान् के विषय में अगले मन्त्र में कहा है ॥

समिद्धोऽअग्निः समिधा सुसमिद्धो वरेण्यः ।
गायत्री छन्दऽइन्द्रियं त्र्यविर्गौर्वयो दधुः ॥१२॥

पदार्थः—जैसे (समिद्धः) अच्छे प्रकार देदीप्यमान (अग्निः) अग्नि (समिधा) उत्तम प्रकाश से (सुसमिद्धः) बहुत प्रकाशमान सूर्य (वरेण्यः) अङ्गीकार करने योग्य जन और (गायत्री, छन्दः) गायत्री छन्द (इन्द्रियम्) मन को प्राप्त होता है और जैसे (त्र्यविः) शरीर, इन्द्रिय, आत्मा इन तीनों की रक्षा करने और (गौः) स्तुति प्रशंसा करने हारा जन (वयः) जीवन को धारण करता है वैसे विद्वान् लोग (दधुः) धारण करें ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्वान् लोग

विद्या से सब के आत्माओं को प्रकाशित और सब को जितेन्द्रिय करके पुरुषों को दीर्घ आयु वाले करें ॥१२॥

तनूनपादित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विद्वांसो देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गांधारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तनूनपाच्छुचिंव्रतस्तनूपाश्च सरस्वती ।
उष्णिहा छन्दऽइन्द्रियं दित्यवाड्गौर्वयो दधुः ॥१३॥

पदार्थः—जैसे (शुचिव्रतः) पवित्र धर्म के आचरण करने (तनूनपात्) शरीर को पड़ने न देने (तनूपाः) किन्तु शरीर की रक्षा करने हारा (च) और (सरस्वती) वाणी तथा (उष्णिहा) उष्णिह (छन्दः) छन्द (इन्द्रियम्) जीव के चिह्न को धारण करता है वा जैसे (दित्यवाट्) खण्डनीय पदार्थों के लिये हित प्राप्त कराने और (गौः) स्तुति करने हारा जन (वयः) इच्छा को बढ़ाता है वैसे इन सब को विद्वान् लोग (दधुः) धारण करें ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो लोग पवित्र आचरण वाले हैं और जिनकी वाणी विद्याओं में सुशिक्षा पाई हुई है वे पूर्ण जीवन के धारण करने को योग्य हैं ॥१३॥

इडाभिरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विद्वांसो देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इडाभिरग्निरीड्यः सोमो देवोऽअमर्त्यः ।
अनुष्टुप् छन्दऽइन्द्रियं पञ्चाविर्गौर्वयो दधुः ॥१४॥

पदार्थ—जैसे (अग्निः) अग्नि के समान प्रकाशमान (अमर्त्यः) अपने स्वरूप से नाशरहित (सोमः) ऐश्वर्यवान् (ईड्यः) स्तुति करने वा खोजने के योग्य (देवः) दिव्य गुणी (पंचाविः) पांच से रक्षा को प्राप्त (गौः) विद्या से स्तुति के योग्य विद्वान् पुरुष (इडाभिः) प्रशंसाओं से (अनुष्टुप्, छन्दः) अनुष्टुप् छन्द (इन्द्रियम्) ज्ञान आदि व्यवहार को सिद्ध करने हारे मन और (वयः) तृप्ति को धारण करे वैसे इस को सब (दधुः) धारण करें ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो लोग धर्म से विद्या और ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं वे सब मनुष्यों को विद्या और ऐश्वर्य प्राप्त करा सकते हैं ॥१४॥

सुर्वहिरित्यस्यस्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विद्वांसो देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सुबर्हिर॒ग्निः पू॑ष॒ण्वान्त्स्ती॒र्णब॑र्हि॒रम॑र्त्यः।
बृ॒ह॒ती छन्द॑ऽइन्द्रि॒यं त्रि॒व॒त्सो गौर्वयो॑ दधुः॥१५॥

पदार्थः—जैसे (पूषण्वान्) पुष्टि करने हारे गुणों से युक्त (स्तीर्णबर्हिः) आकाश को व्याप्त होने वाला (अमर्त्यः) अपने स्वरूप से नाशरहित (सुबर्हिः) आकाश को शुद्ध करने हारा (अग्निः) अग्नि के समान जन और (बृहती) बृहती (छन्दः) छन्द (इन्द्रियम्) जीव के चिह्न को धारण करें और (त्रिवत्सः) त्रिवत्स अर्थात् देह, इन्द्रिय, मन जिस के अनुगामी वह (गौः) गौ के समान मनुष्य (वयः) तृप्ति को प्राप्त करे वैसे इस को सब लोग (दधुः) धारण करें॥१५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अग्नि अन्तरिक्ष में चलता है वैसे विद्वान् लोग सूक्ष्म और निराकार पदार्थों की विद्या में चलते हैं जैसे गाय के पीछे बछड़ा चलता है वैसे अविद्वान् जन विद्वानों के पीछे चला करें और अपनी इन्द्रियों को वश में लावें॥१५॥

दुरो देवीरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विद्वांसो देवताः। अनुष्टुप् छन्दः।
गांधारः स्वरः॥

अब वायु आदि पदार्थों के प्रयोजन विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दुरो॑ दे॒वीर्दिशो॑ म॒हीर्ब्र॒ह्मा दे॒वो बृह॒स्पतिः॑।
प॒ङ्क्तिश्छन्द॑ऽइ॒हेन्द्रि॒यं तु॑र्य॒वाड् गौर्वयो॑ दधुः॥१६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे (इह) यहां (देवीः) देदीप्यमान (महीः) बड़े (दुरः) द्वारे (दिशः) दिशाओं को (ब्रह्मा) अन्तरिक्षस्थ पवन (देवः) प्रकाशमान (बृहस्पतिः) बड़ों का पालन करने हारा सूर्य और (पङ्क्तिश्छन्दः) पङ्क्ति छन्द (इन्द्रियम्) धन तथा (तुर्यवाट्) चौथे को प्राप्त होने हारी (गौः) गाय (वयः) जीवन को (दधुः) धारण करें वैसे तुम लोग भी जीवन को धारण करो॥१६॥

भावार्थः—कोई भी प्राणी अन्तरिक्षस्थ पवन आदि के विना नहीं जी सकता॥१६॥

उष इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उषे यह्वी सुपेशसा विश्वे देवाऽअमर्त्याः ।
त्रिष्टुप् छन्दऽ इहेन्द्रियं पष्ठवाड् गौर्वयो दधुः ॥१७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (इह) इस जगत् में (सुपेशसा) सुन्दर रूपयुक्त पढ़ाने और उपदेश करने हारी (यह्वी) बड़ी (उषे) दहन करने वाली प्रभात वेला के समान दो स्त्री (अमर्त्याः) तत्त्वस्वरूप से नित्य (विश्वे) सब (देवाः) देदीप्यमान पृथिवी आदि लोक (त्रिष्टुप्छन्दः) त्रिष्टुप् छन्द और (पष्ठवाट्) पीठ से उठाने वाला (गौः) बैल (वयः) उत्पत्ति और (इन्द्रियम्) धन को धारण करते हैं वैसे (दधुः) तुम लोग भी आचरण करो ॥१७॥

भावार्थः—जैसे पृथ्वी आदि पदार्थ परोपकारी हैं वैसे इस जगत् में मनुष्यों को होना चाहिये ॥१७॥

दैव्येत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।
गांधारः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में वैद्य के तुल्य अन्यों को आचरण करना चाहिये इस विषय को कहा है ॥

दैव्या होतारा भिषजेन्द्रेण सयुजा युजा ।
जगती छन्दऽइन्द्रियमनड्वान् गौर्वयो दधुः ॥१८॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! जैसे (इन्द्रेण) ऐश्वर्य से (सयुजा) ओषधि आदि का तुल्य योग करने हारे (युजा) सावधान चित्त हुए (दैव्या) विद्वानों में निपुण (होतारा) विद्यादि के देने वाले (भिषजा) उत्तम दो वैद्य लोग (अनड्वान्) बैल (गौः) गाय और (जगती छन्दः) जगती छन्द (वयः) सुन्दर (इन्द्रियम्) धन को (दधुः) धारण करें वैसे इस को तुम लोग धारण करो ॥१८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वैद्यों से अपने और दूसरों के रोग मिटाके अपने आप और दूसरे ऐश्वर्यवान् किये जाते हैं वैसे सब मनुष्यों को वर्त्तना चाहिये ॥१८॥

तिस्र इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । अनुष्टुप् छन्दः ।
गांधारः स्वरः ॥

फिर विद्वानों के विषय में अगले मन्त्र में कहा है ॥

तिस्रऽइडा सरस्वती भारती मरुतो विशः ।
विराट् छन्दऽइहेन्द्रियं धेनुर्गौर्न वयो दधुः ॥१९॥

पदार्थः—जैसे (इह) इस जगत् में (इडा) पृथिवी (सरस्वती) वाणी और (भारती) धारणा वाली बुद्धि ये (तिस्रः) तीन (मरुतः) पवनगण (विशः) मनुष्य आदि प्रजा (विराट्) तथा अनेक प्रकार से देदीप्यमान (छन्दः) बल (इन्द्रियम्) धन को और (धेनुः) पान कराने हारी (गौः) गाय के (न) समान (वयः) प्राप्त होने योग्य वस्तु को (दधुः) धारण करें वैसे सब मनुष्य लोग इस को धारण करके वर्त्ताव करें ॥१९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग सुशिक्षित वाणी, विद्या, प्राण और पशुओं से ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं वैसे अन्य सब को प्राप्त होना चाहिये ॥१९॥

त्वष्टेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। अनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वष्टा तुरीपोऽद्भुतऽइन्द्राग्नी पुष्टिवर्धना ।
द्विपदा छन्दऽइन्द्रियमुक्षा गौर्न वयो दधुः ॥२०॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! जो (अद्भुतः) आश्चर्य्य गुणकर्मस्वभावयुक्त (तुरीपः) शीघ्र प्राप्त होने (त्वष्टा) और सूक्ष्म करने हारे तथा (पुष्टिवर्द्धना) पुष्टि को बढ़ाने हारे (इन्द्राग्नी) पवन और अग्नि दोनों और (द्विपदा) दो पाद वाले (छन्दः) छन्द (इन्द्रियम्) श्रोत्र आदि इन्द्रिय को तथा (उक्षा) सेचन करने में समर्थ (गौः) बैल के (न) समान (वयः) जीवन को (दधुः) धारण करें उनको जानो ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे प्रसिद्ध अग्नि, बिजुली, पेट में का अग्नि, बडवानल ये चार और प्राण, इन्द्रियां तथा गाय आदि पशु सब जगत् की पुष्टि करते हैं वैसे ही मनुष्यों को ब्रह्मचर्य आदि से अपना और दूसरों का बल बढ़ाना चाहिये ॥२०॥

शमितेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। अनुष्टुप् छन्दः।
गांधारः स्वरः ॥

फिर प्रजाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शमिता नो वनस्पतिः सविता प्रसुवन् भगम् ।
ककुप् छन्दऽ इहेन्द्रियं वशा वेहद्वयो दधुः ॥२१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (शमिता) शान्ति देने हारा (वनस्पतिः) ओषधियों का राजा वा वृक्षों का पालक (सविता) सूर्य (भगम्) धन को (प्रसुवन्) उत्पन्न करता हुआ (ककुप्) ककुप् (छन्दः) छन्द और (इन्द्रियम्) जीव के चिह्न को तथा (वशा) जिसके सन्तान नहीं हुआ और (वेहत्) जो गर्भ को गिराती है वह (इह) इस जगत् में (नः) हमारे (वयः) प्राप्त होने योग्य वस्तु को (दधुः) धारण करे उस को तुम लोग जान के उपकार करो ॥२१॥

भावार्थः—जिस मनुष्य से सर्वरोग की नाशक ओषधियां और ढांकने वाले उत्तम वस्त्र सेवन किये जाते हैं वह बहुत वर्षों तक जी सकता है ॥२१॥

स्वाहेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विद्वांसो देवताः । अनुष्टुप् छन्दः ।
गांधारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स्वाहा यज्ञं वरुणः सुक्षत्रो भेषजं करत् ।
अतिच्छन्दाऽइन्द्रियं बृहदृषभो गौर्वयो दधुः ॥२२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम जैसे (वरुणः) श्रेष्ठ (सुक्षत्रः) उत्तम धनवान् जन (स्वाहा) सत्य क्रिया से (यज्ञम्) संगममय (भेषजम्) ओषध को (करत्) करे और जो (अतिच्छन्दाः) अतिच्छन्द और (ऋषभः) उत्तम (गौः) बैल (बृहत्) बड़े (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य्य और (वयः) सुन्दर अपने व्यवहार को धारण करते हैं वैसे ही सब (दधुः) धारण करें इसको जानो ॥२२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो लोग अच्छे पथ्य और ओषध के सेवन से रोगों का नाश करते हैं और पुरुषार्थ से धन तथा आयु का धारण करते हैं वे बहुत सुख को प्राप्त होते हैं ॥२२॥

वसन्तेनेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । रुद्रा देवताः । भुरिगनुष्टुप् छन्दः ।
गांधारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वसन्तेनऽऋतुना देवा वसवस्त्रिवृता स्तुताः ।
रथन्तरेण तेजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥२३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (वसवः) पृथिवी आदि आठ वसु वा प्रथम कक्षा वाले विद्वान् लोग (देवाः) दिव्य गुणों से युक्त (स्तुताः) स्तुति को प्राप्त हुए (त्रिवृता) तीनों कालों में विद्यमान (वसन्तेन) जिस में सुख से रहते हैं उस प्राप्त होने योग्य वसन्त (ऋतुना) ऋतु के साथ वर्त्तमान हुए (रथन्तरेण) जहां रथ से तरते हैं उस (तेजसा) तीक्ष्ण स्वरूप से (इन्द्रे) सूर्य के प्रकाश में (हविः) देने योग्य (वयः) आयु बढ़ाने हारे वस्तु को (दधुः) धारण करें उनको स्वरूप से जानकर संगति करो ॥२३॥

भावार्थः—जो मनुष्य लोग रहने के हेतु दिव्य पृथिवी आदि लोकों वा विद्वानों की वसन्त में सङ्गति करें वे वसन्तसंबन्धी सुख को प्राप्त होवें ॥२३॥

ग्रीष्मेणेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मध्यम ब्रह्मचर्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ग्रीष्मेणऽऋतुना देवा रुद्राः पञ्चदशे स्तुताः ।
बृहता यशसा बलꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥२४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (स्तुताः) प्रशंसा किये हुए (रुद्राः) दश प्राण ग्यारहवां जीवात्मा वा मध्यम कक्षा के (देवाः) दिव्यगुणयुक्त विद्वान् (पंचदशे) पन्द्रहवें व्यवहार में (ग्रीष्मेण) सब रसों के खेंचने और (ऋतुना) उष्णपन प्राप्त करनेहारे ग्रीष्म ऋतु वा (बृहता) बड़े (यशसा) यश से (इन्द्रे) जीवात्मा में (हविः) ग्रहण करने योग्य (बलम्) बल और (वयः) जीवन को (दधुः) धारण करें उन को तुम लोग जानो ॥२४॥

भावार्थः—जो ४४ चवालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य से विद्वान् हुए अन्य मनुष्यों के शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाते हैं वे भाग्यवान् होते हैं ॥२४॥

वर्षाभिरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गांधारः स्वरः ॥

अब उत्तम ब्रह्मचर्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वर्षाभिर्ऋतुनादित्या स्तोमे सप्तदशे स्तुताः ।
वैरूपेण विशौजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥२५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (वर्षाभिः) जिस में मेघ वृष्टि करते हैं उस वर्षा

(ऋतुना) प्राप्त होने योग्य ऋतु (वैरूपेण) अनेक रूपों के होने से (ओजसा) जो बल और उस (विशा) प्रजा के साथ रहने वाले (आदित्याः) बारह महीने वा उत्तम कल्प के विद्वान् (सप्तदशे) सत्रहवें (स्तोमे) स्तुति के व्यवहार में (स्तुताः) प्रशंसा किये हुए (इन्द्रे) जीवात्मा में (हविः) देने योग्य (वयः) काल के ज्ञान को (दधुः) धारण करते हैं उन को तुम लोग जानकर उपकार करो ॥२५॥

भावार्थः—जो मनुष्य लोग विद्वानों के सङ्ग से काल की स्थूल सूक्ष्म गति को जान के एक क्षण भी व्यर्थ नहीं गमाते हैं वे नानाविध ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥२५॥

शारदेनेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। विराड् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

शारदेनऽऋतुना देवाऽएकविꣳशऽऋभवं स्तुताः।
वैराजेन श्रिया श्रियꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥२६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (एकविंशे) इक्कीसवें व्यवहार में (स्तुताः) स्तुति किये हुए (ऋभवः) बुद्धिमान् (देवाः) दिव्यगुणयुक्त (शारदेन) शरद् (ऋतुना) ऋतु वा (वैराजेन) विराट् छन्द में प्रकाशमान अर्थ के साथ (श्रिया) शोभा और लक्ष्मी के साथ वर्त्ताव वर्त्तने हारे जन (इन्द्रे) जीवात्मा में (श्रियम्) लक्ष्मी और (हविः) देने लेने योग्य (वयः) वाञ्छित सुख को (दधुः) धारण करें उन का तुम लोग सेवन करो ॥२६॥

भावार्थः—जो लोग अच्छे पथ्य करने हारे शरद् ऋतु में रोगरहित होते हैं वे लक्ष्मी को प्राप्त होते हैं ॥२६॥

हेमन्तेनेत्यस्य आत्रेय ऋषिः। विद्वांसो देवताः। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

हेमन्तेनऽऋतुना देवास्त्रिणवे मरुतः स्तुताः।
बलेन शक्वरीः सहो हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥२७॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! जो (त्रिणवे) सत्ताईसवें व्यवहार में (हेमन्तेन) जिस में जीवों के देह बढ़ते जाते हैं उस (ऋतुना) प्राप्त होने योग्य हेमन्त ऋतु के साथ वर्त्तते हुए (स्तुताः) प्रशंसा के योग्य (देवाः) दिव्यगुणयुक्त (मरुतः) मनुष्य (बलेन) मेघ से (शक्वरीः) शक्ति के निमित्त गौओं के (सहः) बल तथा (हविः)

देने लेने योग्य (वयः) वाञ्छित सुख को (इन्द्रे) जीवात्मा में (दधुः) धारण करें उन का तुम सेवन करो ॥२७॥

भावार्थः—जो लोग सब रसों को पकाने हारे हेमन्त ऋतु में यथायोग्य व्यवहार करते हैं वे अत्यन्त बलवान् होते हैं ॥२७॥

शैशिरेणेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गांधारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

शैशिरेणऽऋतुना देवास्त्रयस्त्रिꣳशेऽमृता स्तुताः ।
सत्येन रेवतीः क्षत्रꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥२८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अमृताः) अपने स्वरूप से नित्य (स्तुताः) प्रशंसा के योग्य (शैशिरेण, ऋतुना) प्राप्त होने योग्य शिशिर ऋतु से (देवाः) दिव्य गुण कर्म स्वभाव वाले (सत्येन) सत्य के साथ (त्रयस्त्रिंशे) तेंतीस वसु आदि के समुदाय में विद्वान् लोग (रेवतीः) धनयुक्त शत्रुओं की सेनाओं को कूद के जाने वाली प्रजाओं और (इन्द्रेः) जीव में (हविः) देने लेने योग्य (क्षत्रम्) धन वा राज्य और (वयः) वाञ्छित सुख को (दधुः) धारण करें उन से पृथिवी आदि की विद्याओं का ग्रहण करो ॥२८॥

भावार्थः—जो लोग पीछे कहे हुए आठ वसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, बिजुली और यज्ञ इन तेंतीस दिव्य पदार्थों को जानते हैं वे अक्षय सुख को प्राप्त होते हैं ॥२८॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अग्न्यश्विन्द्रसरस्वत्याद्या लिङ्गोक्ता देवताः । निचृदष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

होता यक्षत्समिधाग्निमिडस्पदेऽश्विनेन्द्रꣳ सरस्वतीमजो धूम्रो न गोधूमैः कुवलैर्भेषजं मधु शष्पैर्न तेजऽइन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥२९॥

पदार्थः—हे(होतः) यज्ञ करने हारे जन ! जैसे (होता) देने वाला (इडस्पदे) पृथिवी और अन्न के स्थान में (समिधा) इन्धनादि साधनों से (अग्निम्) अग्नि को (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा (इन्द्रम्) ऐश्वर्य्य वा जीव और (सरस्वतीम्) सुशिक्षायुक्त वाणी को (अजः) प्राप्त होने योग्य (धूम्रः) धुमैले भेड़े के

(न) समान कोई जीव (गोधूमैः) गेहूं और (कुवलैः) जिन से बल नष्ट हो उन बेरों से (भेषजम्) औषध को (यक्षत्) संगत करे वैसे (शष्पैः) हिंसाओं के (न) समान साधनों से जो (तेजः) प्रगल्भपन (मधु) मधुर जल (इन्द्रियम्) धन (पयः) दूध वा अन्न (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ (सोमः) ओषधियों का समूह (घृतम्) घृत (मधु) और सहत (व्यन्तु) प्राप्त हों उनके साथ (आज्यस्य) घी का (यज) होम कर ॥२९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो लोग इस संसार में साधन और उपसाधनों से पृथिवी आदि की विद्या को जानते हैं वे सब उत्तम पदार्थों को प्राप्त होते हैं। २९॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो लिङ्गोक्ता देवताः। भुरिगत्यष्टिश्छन्दः। गांधारः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता यक्षत्तनूनपात्सरस्वतीमविर्मेषो न भेषजं पथा मधुमता भरन्नश्विनेन्द्राय वीर्यं बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३०॥

पदार्थः—हे (होतः) हवनकर्त्ता जन! जैसे (तनूनपात्) देह की ऊनता को पालने अर्थात् उस को किसी प्रकार पूरी करने और (होता) ग्रहण करने वाला जन (सरस्वतीम्) बहुत ज्ञान वाली वाणी को वा (अविः) भेड़ और (मेषः) बकरा के (न) समान (मधुमता) बहुत जलयुक्त (पथा) मार्ग से (भेषजम्) औषध को (भरन्) धारण करता हुआ (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य के लिये (अश्विना) सूर्य चन्द्रमा और (वीर्यम्) पराक्रम को वा (बदरैः) बेर और (उपवाकाभिः) उपदेश रूप क्रियाओं से (भेषजम्) औषध को (यक्षत्) संगत करे वैसे जो (तोक्मभिः) सन्तानों के साथ (पयः) जल और (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ (सोमः) ओषधियों के समूह (घृतम्) घृत और (मधु) सहत (व्यन्तु) प्राप्त हों उनके साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन कर ॥३०॥

भावार्थः इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो सङ्गति करने हारे जन विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त वाणी को प्राप्त हो के पथ्याहारविहारों से पराक्रम बढ़ा और पदार्थों के ज्ञान को प्राप्त होके ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं वे जगत् के भूषक होते हैं ॥३०॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। अतिधृतिश्छन्दः।
षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता यक्षन्नराशꣳसं न नग्नहुं पतिꣳ सुरया भेषजं मेषः सरस्वती भिषग्रथो न चन्द्र्यश्विनोर्वपा इन्द्रस्य वीर्यं बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥३१॥

पदार्थः—हे (होत) हवनकर्त्ता जन! जैसे (होता) देने वाला (नराशंसम्) जो मनुष्यों से स्तुति किया जाय उसके (न) समान (नग्नहुम्) नग्न दुष्ट पुरुषों को कारागृह में डालने वाले (पतिम्) स्वामी वा (सुरया) जल के साथ (भेषजम्) औषध को वा (इन्द्रस्य) दुष्टगण का विदारण करने हारे जन के (वीर्यम्) शूरवीरों में उत्तम बल को (यक्षत्) संगत करे तथा (मेषः) उपदेश करने वाला (सरस्वती) विद्या-संबन्धिनी वाणी (भिषक्) वैद्य और (रथः) रथ के (न) समान (चन्द्री) बहुत सुवर्ण वाला जन (अश्विनोः) आकाश और पृथिवी के मध्य (वपाः) क्रियाओं को वा (बदरैः) बेरों के समान (उपवाकाभिः) समीप प्राप्त हुई वाणियों के साथ (भेषजम्) औषध को संगत करे वैसे जो (तोक्मभिः) सन्तानों के साथ (पयः) दूध (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ (सोमः) ओषधिगण (घृतम्) घी और (मधु) सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उनके साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन कर॥३१॥

भावार्थः इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो लोग लज्जाहीन पुरुषों को दंड देते स्तुति करने योग्यों की स्तुति और जल के साथ औषध का सेवन करते हैं वे बल और नीरोगता को पाके ऐश्वर्य वाले होते हैं॥३१॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। सरस्वत्यादयो देवताः। विराडतिधृतिश्छन्दः।
षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता यक्षदिडेडित ऽआजुह्वानः सरस्वतीमिन्द्रं बलेन वर्धयन्नृषभेण गवेन्द्रियमश्विनेन्द्राय भेषजं यवैः कर्कन्धुभिर्मधु लाजैर्न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥३२॥

पदार्थः—हे (होतः) हवनकर्त्ता जन ! जैसे (इडा) स्तुति करने योग्य वाणी से (ईडितः) प्रशंसायुक्त (आजुह्वानः) सत्कार से आह्वान किया हुआ (होता) प्रशंसा करने योग्य मनुष्य (बलेन) बल से (सरस्वतीम्) वाणी और (इन्द्रम्) ऐश्वर्य्य को (ऋषभेण) चलने योग्य उत्तम (गवा) बैल से (इन्द्रियम्) धन तथा (अश्विना) आकाश और पृथिवी को (यवैः) यव आदि अन्नों से (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य के लिये (भेषजम्) औषध को (वर्द्धयन्) बढ़ाता हुआ (कर्कन्धुभिः) बेर की क्रिया को धारण करने वालों से (मधु) मीठे (लाजैः) प्रफुल्लित अन्नों के (न) समान (मासरम्) भात को (यक्षत्) संगत करे वैसे जो (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ (सोमः) ओषधिसमूह (पयः) रस (घृतम्) घी (मधु) और सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उन के साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) होम कर ॥३२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य ब्रह्मचर्य्य से शरीर और आत्मा के बल को तथा विद्वानों की सेवा विद्या और पुरुषार्थ से ऐश्वर्य को प्राप्त हो पथ्य और ओषध के सेवन से रोगों का विनाश कर नारोगता को प्राप्त हों ॥३२॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। निचृदष्टि-
श्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता॑ यक्षद्ब॒र्हिरूर्ण॑म्रदा भि॒षङ्नास॑त्या भि॒षजा॒श्विनाश्वा॒ शिशु॑मती भि॒षग्धे॒नुः सर॑स्वती भि॒षग्दु॒हऽइन्द्रा॑य भेष॒जं पयः॒ सोमः॑ परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥३३॥

पदार्थः—हे (होतः) हवन करने हारे जन ! जैसे (होता) देने हारा (ऊर्णम्रदा) ढांपने हारों को मर्दन करने वाले जन (भिषक्) वैद्य (शिशुमती) और प्रशंसित बालकों वाली (अश्वा) शीघ्र चलने वाली घोड़ी (दुहे) परिपूर्ण करने के लिये (बर्हिः) अन्तरिक्ष को (यक्षत्) संगत करें वा जैसे (नासत्या) सत्यव्यवहार के करने हारे (अश्विना) वैद्यविद्या में व्याप्त (भिषजा) उत्तम वैद्य मेल करें वा जैसे (भिषक्) रोग मिटाने और (धेनुः) दुग्ध देने वाली गाय वा (सरस्वती) उत्तम विज्ञान वाली वाणी (भिषक्) सामान्य वैद्य (इन्द्राय) जीव के लिये मेल करे वैसे जो (परिस्रुता) प्राप्त हुए रस के साथ (भेषजम्) जल (पयः) दूध (सोमः) ओषधिगण (घृतम्) घी (मधु) सहत (व्यन्तु) प्राप्त हों उन के साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन कर ॥३३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य विद्या और संगति से सब पदार्थों से उपकार ग्रहण करें तो वायु और अग्नि के समान सब विद्याओं के सुखों को व्याप्त होवें ॥३३॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। भुरिगतिधृतिश्छंदः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता॑ यक्ष॒द्दुरो॒ दिश॑: कव॒ष्यो॒ न व्यच॑स्वतीर॒श्विभ्या॒ न दुरो॒ दिश॒ऽइन्द्रो॒ न रोद॑सी दु॒घे दु॒हे धे॒नुः सर॑स्वत्य॒श्विनेन्द्रा॑य भे॒षजँ॑ शु॒क्रं न ज्योति॑रिन्द्रि॒यं पय॒: सोम॑: परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥३४॥

पदार्थः—हे (होतः) देने हारे जन! जैसे (होता) लेने हारा (कवष्य) छिद्र-सहित वस्तुओं के (न) समान (दुरः) द्वारों और (व्यचस्वतीः) व्याप्त होने वाली (दिशः) दिशाओं को वा (अश्विभ्याम्) इन्द्र और अग्नि से जैसे (न) वैसे (दुरः) द्वारों और (दिशः) दिशाओं को वा (इन्द्रः) बिजुली के (न) समान (दुघे) परिपूर्णता करने वाले (रोदसी) आकाश और पृथिवी के और (धेनु) गाय के समान (सरस्वती) विज्ञान वाली वाणी (इन्द्राय) जीव के लिये (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा (शुक्रम्) वीर्य करने वाले जल के (न) समान (भेषजम्) औषध तथा (ज्योतिः) प्रकाश करने हारे (इन्द्रियम्) मन आदि को (दुहे) परिपूर्णता के लिये (यक्षत्) संगत करे वैसे जो (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ (पयः) दूध (सोमः) ओषधियों का समूह (घृतम्) घी (मधु) और सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उन के साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन किया कर ॥३४॥

भावार्थः—इस में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य सब दिशाओं के द्वारों वाले सब ऋतुओं में सुखकारी घर बनावें वे पूर्ण सुख को प्राप्त होवें इनके सब प्रकार के उदय के सुख की न्यूनता कभी नहीं होवे ॥३४॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। भुरिगतिधृतिश्छन्द। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता॑ यक्षत्सु॒पेश॑सो॒षे नक्तं॒ दिवा॒श्विना॒ सम॑ञ्जाते॒ सर॑स्वत्या

त्विषिमिन्द्रे न भेषजꣳ श्येनो न रजसा हृदा श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३५॥

पदार्थः—हे (होतः) देनेहारे जन ! जैसे (सुपेशसा) सुन्दर स्वरूपवती (उषे) काम का दाह करने वाली स्त्रियां (नक्तम्) रात्रि और (दिवा) दिन में (अश्विना) व्याप्त होने वाले सूर्य और चन्द्रमा (सरस्वत्या) विज्ञानयुक्त वाणी से (इन्द्रे) परमैश्वर्यवान् प्राणी में (त्विषिम्) प्रदीप्ति और (भेषजम्) जल को (समञ्जाते) अच्छे प्रकार प्रकट करते हैं उन के (न) समान और (रजसा) लोकों के साथ वर्त्तमान (श्येनः) विशेष ज्ञान कराने वाले विद्वान् के (न) समान (होता) लेने हारा (श्रिया) लक्ष्मी वा शोभा के (न) समान (हृदा) मन से (मासरम्) भात वा अच्छे प्रकार संस्कार किये हुए भोजन के पदार्थों को (यक्षत्) संगत करे वैसे जो (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ (पयः) सब ओषधि का रस (सोमः) सब ओषधिसमूह (घृतम्) जल (मधु) सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उन के साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन कर ॥३५॥

भावार्थः— इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो ! जैसे रातदिन सूर्य और चन्द्रमा सब को प्रकाशित करते और सुन्दर रूप यौवन सम्पन्न स्वधर्मपत्नी अपने पति की सेवा करती वा जैसे पाकविद्या जानने वाला विद्वान् पाककर्म का उपदेश करता है वैसे सब का प्रकाश और सब कामों का सेवन करो और भोजन के पदार्थों को उत्तमता से बनाओ ॥३५॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । निचृदष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

होता यक्षद्दैव्या होतारा भिषजाश्विनेन्द्रं न जागृवि दिवा नक्तं न भेषजैः । शूषꣳ सरस्वती भिषक् सीसेन दुहऽइन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३६॥

पदार्थः—हे (होतः) देने हारे जन ! जैसे (होता) लेनेहारा (दैव्या) दिव्य गुण वालों में प्राप्त (होतारा) ग्रहण करने और (भिषजा) वैद्य के समान रोग मिटाने वाले (अश्विना) अग्नि और वायु को (इन्द्रम्) बिजुली के (न) समान (यक्षत्) संगत करे वा (दिवा) दिन और (नक्तम्) रात्रि में (जागृवि) जागती अर्थात् काम के

सिद्ध करने में अतिचैतन्य (सरस्वती) वैद्यकशास्त्र जानने वाली उत्तम ज्ञानवती स्त्री और (भिषक्) वैद्य (भेषजैः) जलों और (सीसेन) धनुष् के विशेष व्यवहार से (शूषम्) बल के (न) समान (इन्द्रियम्) धन को (दुहे) परिपूर्ण करते हैं वैसे जो (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ (पयः) दुग्ध (सोमः) ओषधिगण (घृतम्) घी (मधु) सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उन के साथ वर्त्तमान (आज्यस्य) घी का (यज) हवन कर ॥३६॥

भावार्थः—इस में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे विद्वान् लोगो! जैसे अच्छी वैद्यक-विद्या पढ़ी हुई स्त्री काम सिद्ध करने को दिन रात उत्तम यत्न करती हैं वा जैसे वैद्य लोग रोगों को मिटा के शरीर का बल बढ़ाते हैं वैसे रहके सब को आनन्दयुक्त होना चाहिये ॥३६॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपसो रूपमिन्द्रे हिरण्ययमश्विनेडा न भारती वाचा सरस्वती मह इन्द्राय दुहऽ इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३७॥

पदार्थः—हे (होतः) विद्या देने वाले विद्वज्जन जैसे (होता) विद्या लेने वाला (तिस्रः) तीन (देवीः) देदीप्यमान नीतियों के (न) समान (भेषजम्) ओषध को (यक्षत्) अच्छे प्रकार प्राप्त करे वा जैसे (अपसः) कर्मवान् (त्रिधातवः, त्रयः) सब विषयों को धारण करने वाले सत्व रजस्तम गुण जिन में विद्यमान वे तीन अर्थात् अस्मद् युष्मद् और तद्पदवाच्य जीव (हिरण्ययम्) ज्योतिर्मय (रूपम्) नेत्र के विषय रूप को (इन्द्रे) बिजुली में प्राप्त करें वा (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा तथा (इडा) स्तुति करने योग्य (भारती) धारणा वाली बुद्धि के (न) समान (सरस्वती) अत्यन्त विदुषी (वाचा) विद्या और सुशिक्षायुक्त वाणी से (इन्द्राय) ऐश्वर्य्यवान् के लिये (महः) अत्यन्त (इन्द्रियम्) धन की (दुहे) परिपूर्णता करती वैसे जो (परिस्रुता) सब ओर प्राप्त हुए रस के साथ (पयः) दूध (सोमः) ओषधिसमूह (घृतम्) घी (मधु) सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उन के साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन कर ॥३७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो! जैसे हाड, मज्जा और वीर्य शरीर में कार्य के साधन हैं वा जैसे

सूर्य आदि और वाणी सब को जनाने वाले हैं वैसे हो और सृष्टि की विद्या को प्राप्त होके लक्ष्मी वाले होओ ॥३७॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। भुरिक्कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता यक्षत्सुरेतसमृषभं नर्यापसं त्वष्टारमिन्द्रमश्विना भिषजं न सरस्वतीमोजो न जूतिरिन्द्रियं वृको न रभसो भिषग् यशः सुरया भेषजꣳ श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३८॥

पदार्थः—हे (होतः) लेने हारे! जैसे (होता) ग्रहण करने वाला (सुरेतसम्) अच्छे पराक्रमी (ऋषभम्) बैल और (नर्यापसम्) मनुष्यों में अच्छे कर्म करने तथा (त्वष्टारम्) दुःख काटने वाले (इन्द्रम्) परमैश्वर्ययुक्त जन को (अश्विना) वायु और विजुली वा (भिषजम्) उत्तम वैद्य के (न) समान (सरस्वतीम्) बहुत विज्ञानयुक्त वाणी को (ओजः) बल के (न) समान (यक्षत्) प्राप्त करे (भिषक्) वैद्य (वृकः) वज्र के (न) समान (जूतिः) वेग (इन्द्रियम्) मन (रभसः) वेग (यशः) धन वा अन्न का (सुरया) जल से (भेषजम्) औषध को (श्रिया) धन के (न) समान क्रिया से (मासरम्) अच्छे पके हुए अन्न को प्राप्त करे वैसे (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त पुरुषार्थ से (पयः) पीने योग्य रस और (सोमः) ऐश्वर्य (घृतम्) घी और (मधु) सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उन के साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन कर ॥३८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे विद्वान् लोग ब्रह्मचर्य, धर्म के आचरण, विद्या और सत्संगति आदि से सब सुख को प्राप्त होते हैं वैसे मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ से लक्ष्मी को प्राप्त होवें ॥३८॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। निचृदत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता यक्षद्वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुं भीमं न मन्युꣳ राजानं

व्याघ्रं नमसाश्विना भाम॑ सरस्वती भिषगिन्द्राय दुहऽइन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३९॥

पदार्थः—हे (होतः) लेने हारे ! जैसे (भिषक्) वैद्य (होता) वा लेने हारा (इन्द्राय) धन के लिये (वनस्पतिम्) किरणों को पालने और (शमितारम्) शान्ति देने हारे (शतक्रतुम्) अनन्त बुद्धि वा बहुत कर्मयुक्त जन को (भीमम्) भयकारक के (न) समान (मन्युम्) क्रोध को वा (नमसा) वज्र से (व्याघ्रम्) सिंह और (राजानम्) देदीप्यमान राजा को (यक्षत्) प्राप्त करे वा (सरस्वती) उत्तम विज्ञान वाली स्त्री और (अश्विना) सभा और सेनापति (भामम्) क्रोध को (दुहे) परिपूर्ण करे वैसे (परिस्रुता) प्राप्त हुए पुरुषार्थ के साथ (इन्द्रियम्) धन (पयः) रस (सोमः) चन्द्र (घृतम्) घी (मधु) मधुर वस्तु (व्यन्तु) प्राप्त होवें उन के साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन कर ॥३९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जो मनुष्य लोग विद्या से अग्नि शान्ति से विद्वान् पुरुषार्थ से बुद्धि और न्याय से राज्य को प्राप्त होके ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं वे इस जन्म और परजन्म के सुख को प्राप्त होते हैं ॥३९॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । निचृदत्यष्टचौ छन्दसी । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

होता यक्षदग्निं स्वाहाज्यस्य स्तोकानाᳬ स्वाहा मेदसां पृथक् स्वाहा छागमश्विभ्याᳬ स्वाहा मेषं सरस्वत्यै स्वाहाऽऋषभमिन्द्राय सिंहाय सहसऽइन्द्रियं स्वाहाग्निं न भेषजं स्वाहा सोममिन्द्रियं स्वाहेन्द्रं सुत्रामाणं सवितारं वरुणं भिषजां पतिं स्वाहा वनस्पतिं प्रियं पाथो न भेषजं स्वाहा देवाऽआज्यपा जुषाणोऽअग्निर्भेषजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥४०॥

पदार्थः—हे (होतः) देने हारे जन ! जैसे (होता) ग्रहण करने हारा (आज्यस्य) प्राप्त होने योग्य घी की (स्वाहा) उत्तम क्रिया से वा (स्तोकानाम्) स्वल्प (मेदसाम्) स्निग्ध पदार्थों की (स्वाहा) अच्छे प्रकार रक्षण क्रिया से (अग्निम्) अग्नि को (पृथक्) भिन्न भिन्न (स्वाहा) उत्तम रीति से (अश्विभ्याम्) राज्य के स्वामी और

पशु के पालन करने वालों से (छागम्) दुःख के छेदन करने को (सरस्वत्यै) विज्ञान-युक्त वाणी के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (मेषम्) सेचन करने हारे को (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये (स्वाहा) परमोत्तम क्रिया से (ऋषभम्) श्रेष्ठ पुरुषार्थ को(सहसे) बल (सिंहाय) और जो शत्रुओं का हननकर्त्ता उसके लिये (स्वाहा) उत्तम वाणी से (इन्द्रियम्) धन को (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (अग्निम्) पावक के (न) समान (भेष-जम्) औषध (सोमम्) सोमलतादि ओषधिसमूह (इन्द्रियम्) वा मन आदि इन्द्रियों को (स्वाहा) शान्ति आदि क्रिया और विद्या से (सुत्रामाणम्) अच्छे प्रकार रक्षक (इन्द्रम्) सेनापति को (भिषजाम्) वैद्यों के (पतिम्) पालन करने हारे (सवितारम्) ऐश्वर्य के कर्त्ता (वरुणम्) श्रेष्ठ पुरुष को (स्वाहा) निदान आदि विद्या से (वनस्प-तिम्) वनों के पालन करने हारे को (स्वाहा) उत्तम विद्या से (प्रियम्) प्रीति करने योग्य (पाथः) पालन करने वाले अन्न के (न) समान (भेषजम्) उत्तम औषध को (यक्षत्) संगत करे वा जैसे (आज्यपाः) विज्ञान के पालन करने हारे (देवाः) विद्वान् लोग और (भेषजम्) चिकित्सा करने योग्य को (जुषाणः) सेवन करता हुआ (अग्निः) पावक के समान तेजस्वी जन संगत करें वैसे जो (परिस्रुता) चारों ओर से प्राप्त हुए रस के साथ (पयः) दूध (सोमः) ओषधियों का समूह (घृतम्) घी (मधु) सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उन के साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन किया कर ॥४०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य विद्या, क्रियाकुशलता और प्रयत्न से अग्न्यादि विद्या को जान के गौ आदि पशुओं का अच्छे प्रकार पालन करके सब के उपकार को करते हैं वे वैद्य के समान प्रजा के दुःख के नाशक होते हैं ॥४०॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विद्वांसो देवताः। अतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता यक्षदश्विनौ छागस्य वपाया मेदसो जुषेतांᳪ हविर्होतर्यज। होता यक्षत्सरस्वतीं मेषस्य वपाया मेदसो जुषताᳪ हविर्होतर्यज। होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य वपाया मेदसो जुषताᳪ हविर्होतर्यज ॥४१॥

पदार्थः—हे (होतः) देने हारे! तू जैसे (होता) और देने हारा (यक्षत्) अनेक प्रकार के व्यवहारों की संगति करे (अश्विनौ) पशु पालने वा खेती करने वाले (छागस्य) बकरा गौ भैंस आदि पशुसम्बन्धी वा (वपायाः) बीज बोने वा सूत के कपड़े आदि बनाने और (मेदसः) चिकने पदार्थ के (हविः) लेने देने योग्य व्यवहार का

(जुषेताम्) सेवन करें वैसे (यज) व्यवहारों की संगति कर हे (होतः) देने हारे जन ! तू जैसे (होता) लेने हारा (मेषस्य) मेढ़ा के (वपायाः) बीज को बढ़ाने वाली क्रिया और (मेदसः) चिकने पदार्थ सम्बन्धी (हविः) अग्नि आदि में छोड़ने योग्य संस्कार किये हुए अन्न आदि पदार्थ और (सरस्वतीम्) विशेष ज्ञान वाली वाणी का (जुषताम्) सेवन करे (यक्षत्) वा उक्त पदार्थों का यथायोग्य मेल करे वैसे (यज) सब पदार्थों का यथायोग्य मेल कर हे (होतः) देने हारे ! तू जैसे (होता) लेने हारा (ऋषभस्य) बैल को (वपायाः) बढ़ने वाली रीति और (मेदसः) चिकने पदार्थ सम्बन्धी (हविः) देने योग्य पदार्थ और (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य करने वाले का (जुषताम्) सेवन करे वा यथायोग्य (यक्षत्) उक्त पदार्थों का मेल करे वैसे (यज) यथायोग्य पदार्थों का मेल कर ।।४१।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य पशुओं की संख्या और बल को बढ़ाते हैं वे आप भी बलवान् होते और जो पशुओं से उत्पन्न हुए दूध और उससे उत्पन्न हुए घी का सेवन करते वे कोमल स्वभाव वाले होते हैं और जो खेती करने आदि के लिये इन बैलों को युक्त करते हैं वे धनधान्ययुक्त होते हैं ।।४१।।

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । होत्रादयो देवताः । पूर्वस्य त्रिपाद् गायत्री छन्दः । सुरामाण इत्यस्यातिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

होता यक्षदश्विनौ सरस्वतीमिन्द्रꣳ सुत्रामाणमिमे सोमाः सुरामाणश्छागैर्न मेषैर्ऋषभैः सुताः शष्पैर्न तोक्मभिर्लाजैर्महस्वन्तो मदा मासरेण परिष्कृताः शुक्राः । पयस्वन्तोऽमृताः प्रस्थिता वो मधुश्चुतस्तानश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ताꣳ सोम्यं मधु पिबन्तु मदन्तु व्यन्तु होतर्यज ।।४२।।

पदार्थः—हे (होतः) लेने हारा ! जैसे (होता) देने वाला (अश्विनौ) पढ़ाने और उपदेश करने वाले पुरुषों (सरस्वतीम्) तथा विज्ञान की भरी हुई वाणी और (सुत्रामाणम्) प्रजाजनों की अच्छी रक्षा करने हारे (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्ययुक्त राजा को (यक्षत्) प्राप्त हो वा (इमे) ये जो (सुरामाणः) अच्छे देने हारे (सोमाः) ऐश्वर्यवान् सभासद् (सुताः) जो कि अभिषेक पाये हुए हों वे (छागैः) विनाश करने योग्य पदार्थों वा बकरा आदि पशुओं (न) वैसे तथा (मेषैः) देखने योग्य पदार्थ वा मेढ़ों

(ऋषभैः) श्रेष्ठ पदार्थों वा बैलों और (शष्पैः) हिंसकों से जैसे (न) वैसे (तोक्मभिः) सन्तानों और (लाजैः) भुंजे अन्नों से (महस्वन्तः) जिन के सत्कार विद्यमान हों वे मनुष्य और (मदाः) आनन्द (मासरेण) पके हुए चावलों के साथ (परिष्कृता) शोभायमान (शुक्राः) शुद्ध (पयस्वन्तः) प्रशंसित जल और दूध आदि से युक्त (अमृताः) जिन में अमृत एक रस (मधुश्चुतः) जिन से मधुरादि गुण टपकते वा (प्रस्थिताः) एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हुए (वः) तुम्हारे लिये पदार्थ बनाये हैं (तान्) उन को प्राप्त होवे वा जैसे (अश्विना) सुन्दर सत्कार पाये हुए पुरुष (सरस्वती) प्रशंसित विद्यायुक्त स्त्री (सुत्रामा) अच्छी रक्षा करने वाला (वृत्रहा) मेघ को छिन्न भिन्न करने वाले सूर्य के समान (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् सज्जन (सोम्यम्) शीतलता गुण के योग्य (मधु) मीठेपन का (जुषन्ताम्) सेवन करें (पिबन्तु) पीवें (मदन्तु) हरखें और समस्त विद्याओं को (व्यन्तु) व्याप्त हों वैसे तू (यज) सब पदार्थों की यथायोग्य संगति किया कर ॥४२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो ससार के पदार्थों की विद्या सत्य वाणी और भलीभांति रक्षा करने हारे राजा को पाकर पशुओं के दूध आदि पदार्थों से पुष्ट होते हैं वे अच्छे रसयुक्त अच्छे संस्कार किये हुए अन्न आदि पदार्थ जो सुपरीक्षित हों उन को युक्ति के साथ खा और रसों को पी धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के निमित्त अच्छा यत्न करते हैं वे सदैव सुखी होते हैं ॥४२॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। होत्रादयो देवताः। आद्यस्य याजुषी पङ्क्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः। उत्तरस्योत्कृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता॑ यक्षद॒श्विनौ॒ छाग॑स्य ह॒विष॒ऽआत्ता॑म॒द्य म॑ध्य॒तो मेद॒ऽउद्भृ॑तं पु॒रा द्वेषो॑भ्यः पु॒रा पौरु॑षेय्या गृ॒भो घस्तां॑ नू॒नं घा॒सेऽअ॑ज्रा॒णां यव॑सप्रथमानाᳮं सु॒मत्क्ष॑राणाᳮं शतरु॒द्रिया॑णामग्निष्वा॒त्तानां॒ पीवो॑पवसनानां पार्श्व॒तः श्रो॑णि॒तः शि॑ता॒मत॒ऽउ॑त्साद॒तोऽङ्गा॑दङ्गा॒दव॑त्तानां॒ कर॑त॒ऽए॒वा॒श्विना॑ जु॒षेता॒ᳮ ह॒विर्होत॒र्यज॑ ॥४३॥

पदार्थः—हे (होतः) देने हारे! जैसे (होता) लेने वाला (अश्विनौ) पढ़ाने और उपदेश करने वालों को (यक्षत्) संगत करे और वे (अद्य) आज (छागस्य) बकरा आदि पशुओं के (मध्यतः) बीच से (हविषः) लेने योग्य पदार्थ का (मेदः)

चिकना भाग अर्थात् घी दूध आदि (उद्भृतम्) उद्धार किया हुआ (आत्ताम्) लेवें वा जैसे (द्वेषोभ्यः) दुष्टों से (पुरा) प्रथम (गृभः) ग्रहण करने योग्य (पौरुषेय्याः) पुरुषों के समूह में उत्तम स्त्री के (पुरा) पहिले (नूनम्) निश्चय करके (घस्ताम्) खावें वा जैसे (यवसप्रथमानाम्) जो जिन का पहिला अन्न (घासे अज्राणाम्) जो खाने में आगे पहुंचने योग्य (सुमत्क्षराणाम्) जिन के उत्तम उत्तम आनन्दों का कंपन आगमन (शतरुद्रियाणाम्) दुष्टों को रुलाने हारे सैकड़ों रुद्र जिन के देवता (पीवोपवसनानाम्) वा जिन के मोटे मोटे कपड़ों के ओढ़ने-पहिरने (अग्निष्वात्तानाम्) वा जिन्हों ने भली-भांति अग्निविद्या का ग्रहण किया हो इन सब प्राणियों के (पार्श्वतः) पार्श्वभाग (श्रोणितः) कटिप्रदेश (शितामतः) तीक्ष्ण जिस में कच्चा अन्न उस प्रदेश (उत्सादतः) उपाड़ते हुए अंग और (अंगादंगात्) प्रत्येक अंग से व्यवहार वा (अवत्तानाम्) नमे हुए उत्तम अंगों (एव) ही के व्यवहार को (अश्विना) अच्छे वैद्य (करतः) करें और (हविः) उत्तम पदार्थों से खाने योग्य पदार्थ का (जुषेताम्) सेवन करें वैसे (यज) सब पदार्थों या व्यवहारों की संगति किया कर ॥४३॥

भावार्थः—जो छेरी आदि पशुओं की रक्षा कर उनके दूध आदि का अच्छा अच्छा संस्कार और भोजन कर वैरभावयुक्त पुरुषों को निवारण कर और अच्छे वैद्यों का संग करके उत्तम खाना पहिरना करते हैं वे प्रत्येक अंग से रोगों को दूर कर सुखी होते हैं ॥४३॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विद्वांसो देवताः । पूर्वस्य याजुषी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । हविष इत्युत्तरस्य स्वराडुत्कृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

होता यक्षत् सरस्वतीं मेषस्य हविषऽआवयदद्य मध्यतो मेदऽउद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घसन्नूनं घासेऽअज्राणां यवसप्रथमानाᳪं सुमत्क्षराणाᳪं शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामतऽउत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेवᳪं सरस्वती जुषताᳪं हविर्होतर्यज ॥४४॥

पदार्थः—हे (होतः) लेने हारे ! जैसे (होता) देने वाला (अद्य) आज (मेषस्य) उपदेश को पाये हुए मनुष्य के (शितामतः) खरे स्वभाव से (हविषः) देने योग्य पदार्थ के (मध्यतः) बीच में प्रसिद्ध व्यवहार से जो (मेदः) चिकना पदार्थ (उद्भृतम्) उद्धार किया अर्थात् निकाला उसको (सरस्वतीम्) और वाणी को (आ, अवयत्) प्राप्त

होता तथा (यक्षत्) सत्कार करता और (द्वेषोभ्यः) शत्रुओं से (पुरा) पहिले तथा (गृभः) ग्रहण करने योग्य (पौरुषेय्याः) पुरुषसम्बन्धिनी स्त्री के (पुरा) प्रथम (नूनम्) निश्चय से (घसत्) खावे वा (घासे अज्राणाम्) जो भोजन करने में सुन्दर (यवसप्रथमानाम्) मिले न मिले हुए आदि (सुमत्क्षराणाम्) श्रेष्ठ आनन्द की वर्षा कराने और (पीवोपवसनानाम्) मोटे कपड़े पहरने वाले तथा (अग्निष्वात्तानाम्) अग्निविद्या को भलीभांति ग्रहण किये हुए और (शतरुद्रियाणाम्) बहुतों के बीच विद्वानों का अभिप्राय रखने हारों के (पार्श्वतः) समीप और (श्रोणितः) कटिभाग से (उत्सादतः) शरीर से जो त्याग उससे वा (अंगादंगात्) अङ्ग अङ्ग से (अवत्तानाम्) ग्रहण किये हुए व्यवहारों की विद्या को (करत्) ग्रहण करे (एवम्) ऐसे (सरस्वती) पण्डिता स्त्री उस का (जुषताम्) सेवन करे वैसे तू भी (हविः) ग्रहण करने योग्य व्यवहार की (यज) संगति किया कर ।।४४।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सज्जनों के संग से दुष्टों का निवारण कर युक्त आहार विहारों से आरोग्यपन को पाकर धर्म का सेवन करते वे कृतकृत्य होते हैं ।।४४।।

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। यजमानर्त्विजो देवताः। पूर्वस्य भुरिक्प्राजापत्योष्णिक्। आवयदित्युत्तरस्य भुरिगभिकृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य हविष्ऽआवयदद्य मध्यतो मेदऽउद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घसन्नूनं घासेऽअज्राणां यवसप्रथमानाᳬं सुमत्क्षराणाᳬं शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामतऽउत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेवमिन्द्रो जुषताᳬं हविर्होतर्यज ।।४५।।

पदार्थः—हे (होतः) देने हारे ! जैसे (होता) लेने हारा पुरुष (घासे अज्राणाम्) भोजन करने में प्राप्त होने (यवसप्रथमानाम्) जो आदि अन्न वा मिल न मिले हुए पदार्थों को विस्तार करने और (सुमत्क्षराणाम्) भलीभांति प्रमाद का विनाश करने वाले (अग्निष्वात्तानाम्) जाठराग्नि अर्थात् पेट में भीतर रहने वाली आग से अन्न ग्रहण किये हुए (पीवोपवसनानाम्) मोटे पोढ़े उढ़ाने ओढ़ने (शतरुद्रियाणाम्) और सैकड़ों दुष्टों को रुलाने हारे (अवत्तानाम्) उदारचित्त विद्वानों के (पार्श्वतः) और पास के अङ्ग वा (श्रोणितः) क्रम से वा (शितामतः) तीक्ष्णता के साथ जिससे

रोग छिन्न भिन्न हो गया हो उस अङ्ग वा (उत्सादतः) त्यागमात्र वा (अंगादंगात्) प्रत्येक अङ्ग से (हविः) रोग विनाश करने हारी वस्तु और (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्यं को सिद्ध (करत्) करे और (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य्य वाला राजा उस का (जुषताम्) सेवन करे तथा वह राजा जैसे (अद्य) आज (ऋषभस्य) उत्तम (हविषः) लेने योग्य पदार्थ के (मध्यतः) बीच में उत्पन्न हुआ (मेदः) चिकना पदार्थ (उद्भृतम्) जो कि उत्तमता से पुष्ट किया गया अर्थात् सम्हाला गया हो उस को (आ, अवयत्) व्याप्त हो सब ओर से प्राप्त हो (द्वेषोभ्यः) वैरियों से (पुरा) प्रथम (गृभः) ग्रहण करने योग्य (पौरुषेय्याः) पुरुषसम्बन्धिनी विद्या के सम्बन्ध से (पुरा) पहिले (नूनम्) निश्चय के साथ (यक्षत्) सत्कार करे था (एवम्) इस प्रकार (घसत्) भोजन करे वैसे तू (यज) सब व्यवहारों की संगति किया कर ॥४५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य विद्वानों के संग से दुष्टों को निवारण तथा श्रेष्ठ उत्तम जनों का सत्कार कर लेने योग्य पदार्थ को लेकर और दूसरों को ग्रहण करा सब की उन्नति करते हैं वे सत्कार करने योग्य होते हैं ॥४५॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । भुरिगभिकृती छन्दसी । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

होता यक्षद्वनस्पतिमभि हि पिष्टतमया रभिष्ठया रशनयाधित । यत्राश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामानि यत्र सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्यऽऋषभस्य हविषः प्रिया धामानि यत्राग्नेः प्रिया धामानि यत्र सोमस्य प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामानि यत्र सवितुः प्रिया धामानि यत्र वरुणस्य प्रिया धामानि यत्र वनस्पतेः प्रिया पाथांसि यत्र देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यत्राग्नेर्होतुः प्रिया धामानि तत्रैतान् प्रस्तुत्येवोपस्तुत्येवोपावस्रक्षद्रभीयसऽइव कृत्वी करदेवं देवो वनस्पतिर्जुषताꣳ हविर्होतर्यज ॥४६॥

पदार्थः—हे (होतः) देनेहारे ! जैसे (होता) लेने हारा सत्पुरुष (पिष्टतमया)

अति पिसी हुई (रभिष्ठया) अत्यन्त शीघ्रता से बढ़नेवाली वा जिसका बहुत प्रकार से प्रारम्भ होता है उस वस्तु और (रशनया) रश्मि के साथ (यत्र) जहां (अश्विनोः) सूर्य्य और चन्द्रमा के सम्बन्ध से पालित (छागस्य) घास को छेदने खाने हारे बकरा आदि पशु और (हविषः) देने योग्य पदार्थसम्बन्धी (प्रिया) मनोहर (धामानि) उत्पन्न होने ठहरने की जगह और नाम वा (यत्र) जहां (सरस्वत्याः) नदी (मेषस्य) मेंढ़ा और (हविषः) ग्रहण करने पदार्थ-संबन्धी (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म, स्थान और नाम वा (यत्र) जहां (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य्ययुक्त जन के (ऋषभस्य) प्राप्त होने और (हविषः) देने योग्य पदार्थ के (प्रिया) प्यारे मन के हरने वाले (धामानि) जन्म स्थान और नाम वा (यत्र) जहां (अग्नेः) प्रसिद्ध और बिजुलीरूप अग्नि के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम वा (यत्र) जहां (सोमस्य) ओषधियों के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम वा (यत्र) जहां (सुत्राम्णः) भली-भांति रक्षा करने वाले (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य्ययुक्त उत्तम पुरुष के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम वा (यत्र) जहां (सवितुः) सब को प्रेरणा देने हारे पवन के (प्रिया) मनोहर (धामानि) उत्पन्न होने ठहरने की जगह और नाम वा(यत्र) जहां (वरुणस्य) श्रेष्ठपदार्थ के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म, स्थान और नाम वा (यत्र) जहां (वनस्पतेः) वट आदि वृक्षों के(प्रिया) उत्तम (पाथांसि) अन्न अर्थात् उन के पीने के जल वा (यत्र) जहां (आज्यपानाम्) गति अर्थात् अपनी कक्षा में घूमने से जीवों के पालने वाले (देवानाम्) पृथिवी आदि दिव्य लोकों का (प्रिया) उत्तम (धामानि) उत्पन्न होना उनके ठहरने की जगह और नाम वा (यत्र) जहां (होतुः) उत्तम सुख देने और (अग्नेः) विद्या से प्रकाशमान होने हारे अग्नि के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम हैं (तत्र) वहां (एतान्) इन उक्त पदार्थों की (प्रस्तुत्येव) प्रकरण से अर्थात् समय समय से चाहना सी कर और (उपस्तुत्येव) उनकी समीप प्रशंसा सी करके (उपावस्रक्षत्) उनको गुण कर्म स्वभाव से यथायोग्य कामों में उपार्जन करे अर्थात् उक्त पदार्थों का संचय करे (रभीयस इव) बहुत प्रकार से अतीव आरब्ध के समान (कृत्वी) करके कार्य्यों के उपयोग में लावे (एवम्) और इस प्रकार (करत्) उनका व्यवहार करे वा जैसे (वनस्पतिः) सूर्य आदि लोकों की किरणों की पालना करने हारा और (देवः) दिव्यगुणयुक्त अग्नि (हविः) संस्कार किये अर्थात् उत्तमता से बनाये हुए पदार्थ का (जुषताम्) सेवन करे और (हि) निश्चय से (वनस्पतिम्) वट आदि वृक्षों को (अभि, यक्षत्) सब ओर से पहुंचे अर्थात् बिजुली रूप से प्राप्त हो और (अधित) उनका धारण करे वैसे तू (यज) सब व्यवहारों की संगति किया कर ।।४६।।

भावार्थः— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य ईश्वर के उत्पन्न किये हुए पदार्थों के गुण कर्म और स्वभावों को जान कर इन

को कार्य की सिद्धि के लिये भलीभांति युक्त करें तो वे अपने चाहे हुए सुखों को प्राप्त होवें ॥४६॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । पूर्वस्य भुरिगाकृतिर-याडित्युत्तरस्याऽऽकृतिश्छन्दः । पंचम स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

होता यक्षदग्निꣳ स्विष्टकृतमयाडग्निरश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामान्ययाट् सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्यऽ ऋषभस्य हविषः प्रिया धामान्ययाडग्नेः प्रिया धामान्ययाट् सोमस्य प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामान्ययाट् सवितुः प्रिया धामान्ययाड् वरुणस्य प्रिया धामान्ययाड् वनस्पतेः प्रिया पाथाꣳसि स्ययाड् देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यक्षदग्नेर्होतुः प्रिया धामानि यक्षत् स्वं महिमानमायजतामेज्याऽइषः कृणोतु सोऽअध्वरा जातवेदा जुषताꣳ हविर्होतर्यज ॥४७॥

पदार्थः—हे (होतः) देने हारे ! जैसे (होता) लेने हारा (स्विष्टकृतम्) भली भांति चाहे हुए पदार्थ से प्रसिद्ध किये (अग्निम्) अग्नि को (यक्षत्) प्राप्त और (अयाट्) उस की प्रशंसा करे वा जैसे (अग्निः) प्रसिद्ध आग (अश्विनोः) पवन बिजुली (छागस्य) बकरा आदि पशु (हविषः) और लेने योग्य पदार्थ के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम को (अयाट्) प्राप्त हो वा (सरस्वत्याः) वाणी और (मेषस्य) सींचने वा दूसरे के जीतने की इच्छा करने वाले प्राणी (हविषः) और ग्रहण करने योग्य पदार्थ के (प्रिया) प्यारे मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम की (अयाट्) प्रशंसा करे वा (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य्ययुक्त (ऋषभस्य) उत्तम गुण कर्म और स्वभाव वाले राजा और (हविषः) ग्रहण करने योग्य पदार्थ के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम की (अयाट्) प्रशंसा करे वा (अग्नेः) बिजुली रूप अग्नि के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम की (अयाट्) प्रशंसा करे वा (सोमस्य) ऐश्वर्य्य के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम की (अयाट्) प्रशंसा करे वा (सुत्राम्णः) भलीभांति रक्षा करने वाले (इन्द्रस्य) सेनापति के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम की (अयाट्) प्रशंसा करे वा (सवितुः) समस्त ऐश्वर्य्य के उत्पन्न करने हारे उत्तम पदार्थज्ञान के (प्रिया) मनोहर

(धामानि) जन्म स्थान और नाम की (अयाट्) प्रशंसा करे वा (वरुणस्य) सब से उत्तम जन और जल के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम की (अयाट्) प्रशंसा करे वा (वनस्पतेः) वट आदि वृक्षों के (प्रिया) तृप्ति कराने वाले (पाथांसि) फलों को (अयाट्) प्राप्त हो वा (आज्यपानाम्) जानने योग्य पदार्थ की रक्षा करने और रस पीने वाले (देवानाम्) विद्वानों के (प्रिया) प्यारे मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम का (यक्षत्) मिलाना वा सराहना करे वा (होतुः) जलादिक ग्रहण करने और (अग्नेः) प्रकाश करने वाले सूर्य्य के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम की (यक्षत्) प्रशंसा करे (स्वम्) अपने (महिमानम्) बड़प्पन का (आ, यजताम्) ग्रहण करे वा जैसे (जातवेदाः) उत्तम बुद्धि को प्राप्त हुआ जो पुरुष (एज्या) अच्छे प्रकार संगयोग्य उत्तम क्रियाओं और (इषः) चाहनाओं को (कृणोतु) करे (सः) वह (अध्वरा) न छोड़ने न विनाश करने योग्य यज्ञों का और (हविः) संग करने योग्य पदार्थ का (जुषताम्) सेवन करे वैसे तू (यज) सब व्यवहारों की संगति किया कर ।।४७।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य अपने चाहे हुए को सिद्ध करने वाले अग्नि आदि संसारस्थ पदार्थों को अच्छे प्रकार जानकर प्यारे मन से चाहे हुए सुखों को प्राप्त होते हैं वे अपने बड़प्पन का विस्तार करते हैं ।।४७।।

देवं बर्हिरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। सरस्वत्यादयो देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ।।

अब विद्वान् कैसे अपना वर्त्ताव वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

देवं बर्हिः सरस्वती सुदेवमिन्द्रेऽअश्विना। तेजो न चक्षुरक्ष्योर्बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ।।४८।।

पदार्थः—हे विद्वन्! जैसे (सरस्वती) प्रशंसित विज्ञानयुक्त स्त्री (इन्द्रे) परमैश्वर्य के निमित्त (देवम्) दिव्य (सुदेवम्) सुन्दर विद्वान् पति की (बर्हिः) अन्तरिक्ष (अश्विना) पढ़ाने और उपदेश करने वाले तथा (चक्षुः) आंख के (तेजः) तेज के (न) समान (यज) प्रशंसा वा संगति करती है और जैसे विद्वान् जन (वसुधेयस्य) जिस में धन धारण करने योग्य हो उस व्यवहारसम्बन्धी (वसुवने) धन की प्राप्ति कराने के लिये (अक्ष्योः) आंखों के (बर्हिषा) अन्तरिक्ष अवकाश से अर्थात् दृष्टि से देख के (इन्द्रियम्) उक्त धन को (दधुः) धारण करते और (व्यन्तु) प्राप्त होते हैं वैसे इसको तू धारण कर और प्राप्त हो ।।४८।।

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे

मनुष्यो ! जैसे विदुषी ब्रह्मचारिणी कुमारी कन्या अपने लिये मनोहर पति को पाकर आनन्द करती है वैसे विद्या और संसार के पदार्थ का बोध पाकर तुम लोगों को भी आनन्दित होना चाहिये ॥४८॥

देवीर्द्वार इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । साम्न्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर विद्वानों का उपदेश कैसा होता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवीर्द्वारोऽअश्विना भिषजेन्द्रे सरस्वती । प्राणं न वीर्य्यं नसि द्वारो दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥४९॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (अश्विना) पवन और सूर्य्य वा (सरस्वती) विशेष ज्ञान वाली स्त्री और (भिषजा) वैद्य (इन्द्रे) ऐश्वर्य के निमित्त (देवीः) अतीव दीपते अर्थात् चमकते हुए (द्वारः) पैठने और निकलने के अर्थ बने हुए द्वारों को प्राप्त होते हुए प्राणियों की (नसि) नासिका में (प्राणम्) जो श्वास आती उस के (न) समान (वीर्य्यम्) बल और (द्वारः) द्वारों अर्थात् शरीर के प्रसिद्ध नव छिद्रों को (दधुः) धारण करें (वसुवने) वा धन का सेवन करने के लिये (वसुधेयस्य) धनकोश के (इन्द्रियम्) धन को विद्वान् जन (व्यन्तु) प्राप्त हों वैसे तू (यज) सब व्यवहारों की संगति किया कर ॥४९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे सूर्य्य और चन्द्रमा का प्रकाश द्वारों से घर को पैठ घर के भीतर प्रकाश करता है वैसे विद्वानों का उपदेश कानों में प्रविष्ट होकर भीतर मन में प्रकाश करता है । ऐसे जो विद्या के साथ अच्छा यत्न करते हैं वे धनवान् होते हैं ॥४९॥

देवी उषासावित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्य कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवीऽउषासावश्विना सुत्रामेन्द्रे सरस्वती । बलं न वाचमास्यऽउषाभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५०॥

पदार्थः हे विद्वन् ! जैसे (देवीः) निरन्तर प्रकाश को प्राप्त (उषासौ) सायंकाल और प्रातःकाल की सन्धिवेला वा (सुत्रामा) भलीभांति रक्षा करने वाले (सरस्वती) विशेष ज्ञान की हेतु स्त्री (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा (वसुवने) धन

की सेवा करने वाले के लिये (वसुधेयस्य) जिस में धन धरा जाय उस व्यवहार-सम्बन्धी (इन्द्रे) उत्तम ऐश्वर्य में (न) जैसे (बलम्) बल को वैसे (आस्ये) मुख में (वाचम्) वाणी को वा (उषाभ्याम्) सायंकाल और प्रातःकाल की वेला से (इन्द्रियम्) धन को (दधुः) धारण करें और सब को (व्यन्तु) प्राप्त हों वैसे तू (यज) सब व्यवहारों की संगति किया कर ॥५०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो पुरुषार्थी मनुष्य सूर्य चन्द्रमा सायङ्काल और प्रातःकाल की वेला के समान नियम के साथ उत्तम उत्तम यत्न करते हैं तथा सायंकाल और प्रात काल की वेला में सोने और आलस्य आदि को छोड़ ईश्वर का ध्यान करते हैं वे बहुत धन को पाते हैं ॥५०॥

देवी जोष्ट्री इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वर ॥

फिर मनुष्य कैसे होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

दे॒वी जोष्ट्री॒ सर॑स्वत्य॒श्विनेन्द्र॑मवर्धयन् । श्रोत्रं॒ न कर्णयो॒र्यशो॒ जोष्ट्री॒भ्यां दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥५१॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (देवी) प्रकाश देने वाली (जोष्ट्री) सेवने योग्य (सरस्वती) विशेष ज्ञान की निमित्त सायंकाल और प्रातःकाल की वेला तथा (अश्विना) पवन और विजुलीरूप अग्नि (इन्द्रम्) सूर्य को (अवर्धयन्) बढ़ाते अर्थात् उन्नति देते हैं वा मनुष्य (जोष्ट्रीभ्याम्) संसार को सेवन करती हुई उक्त प्रातःकाल और सायंकाल की वेलाओं से (कर्णयोः) कानों में (यशः) कीर्ति को (श्रोत्रम्) जिस से वचन को सुनता है उस कान के ही (न) समान (दधुः) धारण करते हैं वा (वसुधेयस्य) जिस में धन धरा जाय उस कोशसम्बन्धी (वसुवने) धन को सेवन करने वाले के लिये (इन्द्रियम्) धन को (व्यन्तु) विशेषता से प्राप्त होते हैं वैसे तू (यज) सब व्यवहारों की संगति किया कर ॥५१॥

भावार्थः— इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जो सूर्य के कारणों को जानते हैं वे यशस्वी होकर धनवान् कान्तिमान् शोभायमान होते हैं ॥५१॥

देवी इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कैसे अपना वर्त्ताव वर्त्तना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवीऽऊर्जाहुती दुघे सुदुघेन्द्रे सरस्वत्यश्विना भिषजावतः । शुक्रं न ज्योतिस्तनयोराहुती धत्तऽइन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५२॥

पदार्थः—हे विद्वानों ! तुम लोग जैसे (देवी) मनोहर (दुघे) उत्तमता पूरण करने वाली प्रातःसायं वेला वा (इन्द्रे) परम ऐश्वर्य के निमित्त (ऊर्जाहुती) अन्न की आहुति (सरस्वती) विशेष ज्ञान कराने हारी स्त्री वा (सुदुघा) सुख पूरण करने हारे (भिषजा) अच्छे वैद्य (अश्विना) वा पढ़ाने और उपदेश करने हारे विद्वान् (शुक्रम्) शुद्ध जल के (न) समान (ज्योतिः) प्रकाश की (अवतः) रक्षा करते हैं वैसे (स्तनयो.) शरीर में स्तनों की जो (आहुती) ग्रहण करने योग्य क्रिया है उनको (धत्त) धारण करो और (वसुधेयस्य) जिस में धन धरा हुआ उस संसार के बीच (वसुवने) धन के सेवन करने वाले के लिये (इन्द्रियम्) धन को धारण करो जिससे उन उक्त पदार्थों को साधारण सब मनुष्य (व्यन्तु) प्राप्त हों, हे गुणों के ग्रहण करने हारे जन ! वैसे तू सब व्यवहारों की (यज) संगति किया कर ॥५२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे अच्छे वैद्य अपने और दूसरों के शरीरों की रक्षा करके वृद्धि करते कराते हैं वैसे सब को चाहिये कि धन की रक्षा करके उस की वृद्धि करें जिससे इस संसार में अतुल सुख हो ॥५२॥

देवा देवानामित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । अतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवा देवानां भिषजा होताराविन्द्रमश्विना । वषट्कारैः सरस्वती त्विषिं न हृदये मतिꣳ होतृभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५३॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! आप लोग जैसे (देवानाम्) सुख देने हारे विद्वानों के बीच (होतारौ) शरीर के सुख देने वाले (देवा) वैद्यविद्या से प्रकाशमान (भिषजा) वैद्यजन (अश्विना) विद्या में रमते हुए (वषट्कारैः) श्रेष्ठ कामों से (इन्द्रम्) परमैश्वर्य को धारण करें (सरस्वती) प्रशंसित विद्या और अच्छी शिक्षायुक्त वाणी वाली स्त्री (त्विषिम्) प्रकाश के (न) समान (हृदये) अन्तःकरण में (मतिम्) बुद्धि को धारण करे वैसे (होतृभ्याम्) देने वालों के साथ उक्त सद्वैद्य और वाणीयुक्त स्त्री को

वा (वसुधेयस्य) कोश के (वसुवने) धन को बांटने वाले के लिये (इन्द्रियम्) शुद्ध मन को (दधुः) धारण करें और (व्यन्तु) प्राप्त हों हे जन ! वैसे तू भी (यज) सब व्यवहारों की संगति किया कर ॥५३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे विद्वानों में से विद्वान् अच्छे वैद्य श्रेष्ठ क्रिया से सब को नीरोग कर कान्तिमान् धनवान् करते हैं वा जैसे विद्वानों की वाणी विद्यार्थियों के मन में उत्तम ज्ञान की उन्नति करती है वैसे साधारण मनुष्यों को विद्या और धन इकट्ठे करने चाहियें ॥५३॥

देवीरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर माता पिता अपने सन्तानों को कैसे करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीरश्विनेडा सरस्वती। शूषं न मध्ये नाभ्यामिन्द्राय दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५४॥

पदार्थः—हे विद्यार्थी ! जैसे (तिस्रः) माता, पढ़ाने और उपदेश करने वाली ये तीन (देवीः) निरन्तर विद्या से दीपती हुई स्त्री (वसुधेयस्य) जिस में धन धरने योग्य हैं उस संसार के (मध्ये) बीच (वसुवने) उत्तम धन चाहने वाले (इन्द्राय) जीव के लिये (तिस्रः) उत्तम मध्यम निकृष्ट तीन (देवीः) विद्या से प्रकाश को प्राप्त हुई कन्याओं को (दधुः) धारण करें वा (अश्विना) पढ़ाने और उपदेश करने हारे मनुष्य (इडा) स्तुति करने हारी स्त्री और (सरस्वती) प्रशंसित विज्ञानयुक्त स्त्री (नाभ्याम्) तोंदी में (शूषम्) बल वा सुख के (न) समान (इन्द्रियम्) मन को धारण करें वा जैसे ये सब उक्त पदार्थों को (व्यन्तु) प्राप्त हों वैसे तू (यज) सब व्यवहारों की संगति किया कर ॥५४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे माता पढ़ाने और उपदेश करने हारी ये तीन पण्डिता स्त्री कुमारियों को पण्डिता कर उनको सुखी करती हैं वैसे पिता पढ़ाने और उपदेश करने वाले विद्वान् कुमार विद्यार्थियों को विद्वान् कर उन्हें अच्छे सभ्य करें ॥५४॥

देव इन्द्र इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। स्वराट् शक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देवऽइन्द्रो नराशꣳसस्त्रिवरूथः सरस्वत्याश्विभ्यामीयते रथः। रेतो

न रूपममृतं जनित्रमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५५॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (त्रिवरूथः) तीन अर्थात् भूमि, भूमि के नीचे और अन्तरिक्ष में जिस के घर हैं वह (इन्द्रः) परमैश्वर्य्यवान् (देवः) विद्वान् (सरस्वत्या) अच्छी शिक्षा की हुई वाणी से (नराशंसः) जो मनुष्यों को भलीभांति शिक्षा देते हैं उनको (अश्विभ्याम्) आग और पवन से जैसे (रथः) रमणीय रथ (ईयते) पहुंचाया जाता वैसे अच्छे मार्ग में पहुंचाता है वा जैसे (त्वष्टा) दुःख का विनाश करने हारा (जनित्रम्) उत्तम सुख उत्पन्न करने हारे (अमृतम्) जल और (रेतः) वीर्य्य के (न) समान (रूपम्) रूप को तथा (वसुधेयस्य) संसार के बीच (वसुवने) धन की सेवा करने वाले (इन्द्राय) जीव के लिये (इन्द्रियाणि) कान आंख आदि इन्द्रियों को (दधत्) धारण करे वा जैसे उक्त पदार्थों को ये सब (व्यन्तु) प्राप्त हों वैसे तू (यज) सब व्यवहारों की संगति किया कर ॥५५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो ! यदि तुम लोग धर्मसम्बन्धी व्यवहार से धन को इकट्ठा करो तो जल और आग से चलाये हुए रथ के समान शीघ्र सब सुखों को प्राप्त होओ ॥५५॥

देवो देवैरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । निचृदत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्य कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यवर्णोऽअश्विभ्याᳪं सरस्वत्या सुपिप्पलऽ इन्द्राय पच्यते मधु । ओजो न जूतिर्ऋषभो न भामं वनस्पतिर्नो दधदिन्द्रियाणि वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५६॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (अश्विभ्याम्) जल और बिजुलीरूप आग से (देवैः) प्रकाश करने वाले गुणों के साथ (देवः) प्रकाशमान् (हिरण्यवर्णः) तेजःस्वरूप (वनस्पतिः) किरणों की रक्षा करने वाला सूर्यलोक वा (सरस्वत्या) बढ़ती हुई नीति के साथ (सुपिप्पलः) सुन्दर फलों वाला पीपल आदि वृक्ष (इन्द्राय) प्राणी के लिये (मधु) मीठा फल जैसे (पच्यते) पके वैसे पकता और सिद्ध होता वा (जूतिः) वेग (ओजः) जल को (न) जैसे (भामम्) तथा क्रोध को (ऋषभः) बलवान् प्राणी के (न) समान (वनस्पतिः) वटवृक्ष आदि (वसुधेयस्य) सब के आधार संसार के बीच (नः) हम लोगों के लिये (वसुवने) वा धन चाहने वाले के लिये (इन्द्रियाणि) धनों को

(वधत्) धारण कर रहा है जैसे इन सब उक्त पदार्थों को ये सब (व्यन्तु) व्याप्त हों वैसे तू सब व्यवहारों की (यज) संगति किया कर ॥५६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो ! तुम जैसे सूर्य वर्षा से और नदी अपने जल से वृक्षों की भलीभांति रक्षा कर सब ओर से मीठे मीठे फलों को उत्पन्न कराती है वैसे सब के अर्थ सब वस्तु उत्पन्न करो और जैसे धार्मिक राजा दुष्ट पर क्रोध करता वैसे दुष्टों के प्रति अप्रीति कर अच्छे उत्तम जनों में प्रेम को धारण करो ॥५६॥

देवं बर्हिरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। अतिशक्वरी-
छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देवं बर्हिर्वारितीनामध्वरे स्तीर्णमश्विभ्यामूर्णम्रदाः सरस्वत्या स्योनमिन्द्र ते सदः। ईशायै मन्युꣳ राजानं बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५७॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अपने इन्द्रिय के स्वामी जीव ! जिस (ते) तेरा (सरस्वत्या) उत्तम वाणी के साथ (स्योनम्) सुख और (सदः) जिस में बैठते वह नाव आदि यान है और जैसे (ऊर्णम्रदाः) ढांपने वाले पदार्थों से शिल्प की वस्तुओं को मीजते हुए विद्वान् जन (अश्विभ्याम्) पवन और बिजुली से (अध्वरे) न विनाश करने योग्य शिल्पयज्ञ में (वारितीनाम्) जिन की जल में चाल है उन पदार्थों के (स्तीर्णम्) ढांपने वाले (देवम्) दिव्य (बर्हिः) अन्तरिक्ष को वा (ईशायै) जिस क्रिया से ऐश्वर्य को मनुष्य प्राप्त होता उस के लिये (मन्युम्) विचार अर्थात् सब पदार्थों के गुण दोष और उन की क्रिया सोचने को (राजानम्) प्रकाशमान राजा के समान वा (बर्हिषा) अन्तरिक्ष से (वसुधेयस्य) पृथिवी आदि आधार के बीच (वसुवने) पृथिवी आदि लोकों की सेवा करने हारे जीव के लिये (इन्द्रियम्) धन को (दधुः) धारण करें और इन को (व्यन्तु) प्राप्त हों वैसे तू सब पदार्थों की (यज) संगति किया कर ॥५७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। यदि मनुष्य आकाश के समान निष्कम्प निडर आनन्द देने हारे एकान्तस्थानयुक्त और जिनकी आज्ञा भङ्ग न हो ऐसे पुरुषार्थी हों वे इस संसार के बीच धन-वान् क्यों न हों ? ॥५७॥

देवो अग्निरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। आद्यस्याऽत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः। स्विष्टोऽअग्निरित्युत्तरस्य निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः॥ धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवोऽअग्निः स्विष्टकृद्देवान्यक्षद्यथायथꣳ होताराविन्द्रमश्विना वाचा वाचꣳ सरस्वतीमग्निꣳ सोमꣳ स्विष्टकृत् स्विष्टऽइन्द्रः सुत्रामा सविता वरुणोभिषगिष्टो देवो वनस्पतिः स्विष्टा देवाऽआज्यपाः स्विष्टोऽअग्निरग्निना होता होत्रे स्विष्टकृद्यशो न दधदिन्द्रियमूर्जमपचितिꣳ स्वधां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५८॥

पदार्थः - हे विद्वन् ! जैसे (वसुधेयस्य) संसार के बीच में (वसुवने) ऐश्वर्य्य को सेवने वाले सज्जन मनुष्य के लिये (स्विष्टकृत्) सुन्दर चाहे हुए सुख का करने हारा (देवः) दिव्य सुन्दर (अग्निः) आग (देवान्) उत्तम गुण कर्म स्वभावों वाले पृथिवी आदि को (यथायथम्) यथायोग्य (यक्षत्) प्राप्त हो वा जैसे (होतारा) पदार्थों के ग्रहण करने हारे (अश्विना) पवन और बिजुलीरूप अग्नि (इन्द्रम्) सूर्य को (वाचा) वाणी से (सरस्वतीम्) विशेष ज्ञानयुक्त (वाचम्) वाणी और (अग्निम्) अग्नि (सोमम्) और चन्द्रमा को यथायोग्य चलाते हैं वा जैसे (स्विष्टकृत्) अच्छे सुख का करनेवाला (स्विष्टः) सुन्दर और सब का चाहा हुआ (सुत्रामा) भलीभांति पालने हारा (इन्द्रः) परमैश्वर्ययुक्त राजा (सविता) सूर्य (वरुणः) जल का समुदाय (भिषक्) रोगों का विनाश करने हारा वैद्य (इष्टः) संग करने योग्य (देवः) दिव्यस्वभाव वाला (वनस्पतिः) पीपल आदि (स्विष्टाः) सुन्दर चाहा हुआ सुख जिन से हो वे (आज्यपाः) पीने योग्य रस को पीने हारे (देवाः) दिव्यस्वरूप विद्वान् (अग्निना) बिजुली के साथ (स्विष्टः) (होता) देने वाला कि जिससे सुन्दर चाहा हुआ काम हो (स्विष्टकृत्) तथा उत्तम चाहे हुए काम को करने वाला (अग्निः) अग्नि (होत्रे) देने वाले के लिये (यशः) कीर्ति करने हारे धन के (न) समान (इन्द्रियम्) जीव के चिह्न कान आदि इन्द्रियां (ऊर्जम्) बल (अपचितिम्) सत्कार और (स्वधाम्) अन्न को (दधत्) प्रत्येक को धारण करे वा जैसे उन उक्त पदार्थों को ये सब (व्यन्तु) प्राप्त हों वैसे तू (यज) सब व्यवहारों की संगति किया कर ॥५८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य ईश्वर के बनाये हुए इन मन्त्र में कहे यज्ञ आदि पदार्थों को विद्या से उपयोग के लिये धारण करते हैं वे सुन्दर चाहे हुए सुखों को पाते हैं ॥५८॥

अग्निमद्य इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अग्न्यादयो देवताः। धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अ॒ग्निम॒द्य होता॑रमवृणीता॒यं यज॑मान॒ः पच॒न् पक्तीः॒ पच॑न् पुरो॒डाशा॑न्
ब॒ध्नन्न॒श्विभ्यां॒ छाग॑ꣳ सर॑स्वत्यै मे॒षमिन्द्रा॑यऽऋ॒षभ॑ꣳ सुन्वन्न॒-
श्विभ्या॒ꣳ सर॑स्वत्या॒ऽइन्द्रा॑य सु॒त्राम्णे॑ सुरासो॒मान् ॥५९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (अयम्) यह (पक्तीः) पचाने के प्रकारों को(पचन्) पचाता अर्थात् सिद्ध करता और (पुरोडाशान्) यज्ञ आदि कर्म में प्रसिद्ध पाकों को (पचन्) पचाता हुआ (यजमानः) यज्ञ करने हारा (होतारम्) सुखों के देने वाले (अग्निम्) आग को (अवृणीत) स्वीकार या जैसे (अश्विभ्याम्) प्राण और अपान के लिये (छागम्) छेरी (सरस्वत्यै) विशेष ज्ञानयुक्त वाणी के लिये (मेषम्) भेड़ और (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य के लिये (ऋषभम्) बैल को (बध्नन्) बांधते हुए वा (अश्वि-भ्याम्) प्राण, अपान (सरस्वत्यै) विशेष ज्ञानयुक्त वाणी और (सुत्राम्णे) भलीभांति रक्षा करने हारे (इन्द्राय) राजा के लिये (सुरासोमान्) उत्तम रसयुक्त पदार्थों का (सुन्वन्) सार निकालते हैं वैसे तुम (अद्य) आज करो ॥५९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे पदार्थों को मिलानेहारे वैद्य अपान के लिये छेरी का दूध, वाणी बढ़ने के लिये भेड़ का दूध, ऐश्वर्य के बढ़ने के लिये गोदुग्ध, रोग निवारण के लिये ओष-धियों के रसों को इकट्ठा और अच्छे संस्कार किये हुए अन्नों का भोजन कर उससे बलवान् होकर दुष्ट शत्रुओं को बांधते हैं वैसे वे परम ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥५९॥

सूपस्था इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। लिंगोक्ता देवताः। धृतिश्छन्दः।
ऋषभः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करके क्या करना चाहिये इस विषय को
अगले मन्त्र में कहा है ॥

सू॒प॒स्थाऽअ॒द्य दे॒वो वन॒स्पति॑रभवद॒श्विभ्यां॒ छागे॑न॒ सर॑स्वत्यै
मे॒षेणेन्द्रा॑यऽऋष॒भेणाक्षँ॒स्तान् मे॑द॒स्तः प्रति॑ पच॒ताग्रृ॑भीष॒तावी॑वृधन्त
पुरो॒डाशै॒रपु॑र॒श्विना॒ सर॑स्व॒तीन्द्रः॑ सु॒त्रामा॑ सुरासो॒मान् ॥६०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (अद्य) आज (सूपस्थाः) भलीभांति समीप स्थिर होने वाले और (देवः) दिव्य गुण वाला पुरुष (वनस्पतिः) वट वृक्ष आदि के समान जिस जिस (अश्विभ्याम्) प्राण और अपान के लिये (छागेन) दुःख विनाश करने

वाले छेरी आदि पशु से (सरस्वत्यै) वाणी के लिये (मेषेण) मेंढ़ा से (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य्य के लिये (ऋषभेण) बैल से (अक्षन्) भोग करें—उपयोग लें (तान्) उन (मेदस्तः) सुन्दर चिकने पशुओं के (प्रति) प्रति (पचता) पचाने योग्य वस्तुओं का (अगृभीषत) ग्रहण करें (पुरोडाशैः) प्रथम उत्तम संस्कार किये हुए विशेष अन्नों से (अवीवृधन्त) वृद्धि को प्राप्त हों (अश्विना) प्राण अपान (सरस्वती) प्रशंसित वाणी (सुत्रामा) भली भांति रक्षा करने हारा (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य्यवान् राजा (सुरासोमान्) जो अर्क खींचने से उत्पन्न हों उन ओषधिरसों को (अपुः) पीवें वैसे आप (अभवत्) होओ ॥६०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य छेरी आदि पशुओं के दूध आदि प्राण, अपान की रक्षा के लिये चिकने और पके हुए पदार्थों का भोजन कर उत्तम रसों को पीके वृद्धि को पाते हैं वे अच्छे सुख को प्राप्त होते हैं ॥६०॥

त्वामद्येत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। लिंगोक्ताः देवताः। भुरिग् विकृतिश्छन्दः। मध्यमः स्वर. ॥

फिर मनुष्य कैसे अपना वर्त्ताव वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वाम॒द्यऽऋ॑षऽआर्षेयऽऋषीणां नपादवृणीतायं यज॑मानो बहुभ्य॒ऽआ सङ्ग॑तेभ्य॒ऽए॒ष मे॑ दे॒वेषु॒ वसु॒ वार्यायक्ष्यत॒ऽइति॒ ता या दे॒वा दे॑व दानान्यदु॒स्तान्य॑स्मा॒ऽआ च॒ शास्स्वा च॒ गुरस्वेषि॒तश्च॑ हो॒तर॑सि भद्र॒वाच्या॑य॒ प्रेषि॑तो मानु॑षः सूक्तवा॒काय॑ सू॒क्ता ब्रू॑हि ॥६१॥

पदार्थः—हे (ऋषे) मन्त्रों के अर्थ जानने वाले वा हे (आर्षेय) मन्त्रार्थ जानने वालों में श्रेष्ठ पुरुष ! (ऋषीणाम्) मन्त्रों के अर्थ जानने वालों के (नपात्) सन्तान (यजमानः) यज्ञ करने वाला (अयम्) यह (अद्य) आज (बहुभ्यः) बहुत (संगतेभ्यः) योग्य पुरुषों से (त्वाम्) तुझ को (आ, अवृणीत) स्वीकार करे (एषः) यह (देवेषु) विद्वानों में (मे) मेरे (वसु) धन (च) और (वारि) जल को स्वीकार करे हे (देव) विद्वान् ! जो (आयक्ष्यते) सब ओर से संगत किया जाता (च) और (देवाः) विद्वान् जन (या) जिन (दानानि) देने योग्य पदार्थों को (अदुः) देते हैं (तानि) उन सबों को (अस्मै) इस यज्ञ करने वाले के लिये (आ, शास्स्व) अच्छे प्रकार कहो और (प्रेषितः) पढ़ाया हुआ तू (आ, गुरस्व) अच्छे प्रकार उद्यम कर (च) और हे (होतः) देने हारे ! (इषितः) सब का चाहा हुआ (मानुषः) मनुष्य तू (भद्रवाच्याय) जिस के लिये अच्छा कहना होता और (सूक्तवाकाय) जिस के वचनों में अच्छे कथन अच्छे व्याख्यान हैं उस

भद्रपुरुष के लिये (सूक्ता) अच्छी वोलचाल (ब्रूहि) वोलो (इति) इस कारण कि उक्त प्रकार से (ता) उन उत्तम पदार्थों को पाये हुए (असि) होते हो ॥६१॥

भावार्थः—जो मनुष्य वहुत विद्वानों में से अति उत्तम विद्वान् को स्वीकार कर वेदादि शास्त्रों की विद्या को पढ़कर महर्षि होवें वे दूसरों को पढ़ा सकें और जो देनेवाले उद्यमी होवें वे विद्या को स्वीकार कर जो अविद्वान् हैं उन पर दया कर विद्याग्रहण के लिये रोष से उन मूर्खों को ताड़ना दें और उन्हें अच्छे सभ्य करें वे इस संसार में सत्कार करने योग्य हैं ॥६१॥

इस अध्याय में वरुण अग्नि विद्वान् राजा प्रजा शिल्प अर्थात् कारीगरी वाणी घर अश्विन् शब्द के अर्थ ऋतु और होता आदि पदार्थों के गुणों का वर्णन होने से इन अध्याय में कहे अर्थ का पिछले अध्याय में कहे अर्थ के साथ मेल है यह जानना चाहिये ॥

यह इक्कीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

---

* ओ३म् *

अथ द्वाविंशोऽध्याय आरभ्यते

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥१॥

तेजोऽसीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब बाईसवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है उस के प्रथम मन्त्र में आप्त सकल शास्त्रों का जानने वाला विद्वान् कैसे अपना वर्त्ताव वर्त्ते इस विषय को कहा है ॥

तेजो॑ऽसि शु॒क्रम॒मृत॑मायु॒ष्पाऽआयु॑र्मे पाहि ।
दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्या॒माद॑दे ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! मैं (देवस्य) सब के प्रकाश करने (सवितुः) और समस्त जगत् के उत्पन्न करने हारे जगदीश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये जिस में कि प्राणी आदि उत्पन्न होते उस संसार में (अश्विनोः) पवन और बिजुली रूप आग के धारण और खैंचने आदि गुणों के समान (बाहुभ्याम्) भुजाओं और (पूष्णः) पुष्टि करनेवाले सूर्य की किरणों के समान (हस्ताभ्याम्) हाथों से जिस (त्वा) तुझे (आ, ददे) ग्रहण करता हूं वा जो तू (अमृतम्) स्व-स्वरूप से विनाशरहित (शुक्रम्) वीर्य्य और (तेजः) प्रकाश के समान जो (आयुष्पाः) आयुर्दा की रक्षा करने वाला (असि) है सो तू अपनी दीर्घ आयुर्दा कर के (मे) मेरी (आयुः) आयु की (पाहि) रक्षा कर ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे शरीर में रहने वाली बिजुली शरीर की रक्षा करती वा जैसे बाहरले सूर्य और पवन जीवन के हेतु हैं वैसे ईश्वर के बनाये इस जगत् में आप्त अर्थात् सकल शास्त्र का जानने वाला विद्वान् होता है यह सब को जानना चाहिये ॥१॥

इमामित्यस्य यज्ञपुरुषऋषिः । विद्वांसो देवता: । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को आयुर्दा कैसे वर्त्तनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इ॒माम॑गृभ्णन् रश॒नामृ॒तस्य॒ पूर्व॒ऽआयु॑षि वि॒दथे॑षु क॒व्या ।
सा नो॑ऽअ॒स्मिन्त्सु॒तऽआ ब॑भूवऽऋ॒तस्य॒ साम॑न्त्स॒रमा॒रप॑न्ती ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (ऋतस्य) सत्य कारण के (सरम्) पाने योग्य शब्द को (आरपन्ती) अच्छे प्रकार प्रगट बोलती हुई (आ, बभूव) भली भांति विख्यात होती वा जिस (इमाम्) इस को (ऋतस्य) सत्यकारण की (रशनाम्) व्याप्त होने वाली डोर के समान (विदथेषु) यज्ञादिकों में (पूर्वे) पहिली (आयुषि) प्राण धारण करने हारी आयुर्दा के निमित्त (कव्या) कवि मेधावी जन (अगृभ्णन्) ग्रहण करें (सा) वह बुद्धि (अस्मिन्) इस (सुते) उत्पन्न हुए जगत् में (नः) हम लोगों के (सामन्) अन्त के काम में प्रसिद्ध होती अर्थात् कार्य की समाप्ति पर्य्यन्त पहुँचाती है ॥२॥

भावार्थः—जैसे डोर से बंधे हुए प्राणी इधर उधर भाग नहीं जा सकते वैसे युक्ति के साथ धारण की हुई आयु ठीक समय के विना नहीं भाग जाती ॥२॥

अभिधा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर विद्वान् कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अभिधाऽअसि भुवनमसि यन्तासि धर्त्ता।
स त्वमग्निं वैश्वानरꣳसप्रथसं गच्छ स्वाहाकृतः॥३॥

पदार्थः—हे विद्वन्! जो तू (भुवनम्) जल के समान शीतल (असि) है (अभिधाः) कहने वाला (असि) है वा (यन्ता) नियम करने हारा (असि) है (सः) वह (स्वाहाकृतः) सत्य क्रिया से सिद्ध हुआ (धर्त्ता) सब व्यवहारों का धारण करने हारा (त्वम्) तू (सप्रथसम्) विख्याति के साथ वर्त्तमान (वैश्वानरम्) समस्त पदार्थों में नायक (अग्निम्) अग्नि को (गच्छ) जान॥३॥

भावार्थः—जैसे सब प्राणी और अप्राणियों के जीने का मूल कारण जल और अग्नि हैं वैसे विद्वान् को सब लोग जानें॥३॥

स्वगेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स्वगा त्वा देवेभ्यः प्रजापतये ब्रह्मन्नश्वं भन्त्स्यामि देवेभ्यः प्रजापतये तेन राध्यासम्। तं बधान देवेभ्यः प्रजापतये तेन राध्नुहि॥४॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मन्) विद्या से वृद्धि को प्राप्त! मैं (त्वा) तुझे (स्वगा) आप जाने वाला करता हूं (देवेभ्यः) विद्वानों और (प्रजापतये) संतानों की रक्षा करने हारे गृहस्थ के लिये (अश्वम्) बड़े सर्वव्यापी उत्तम गुण को (भन्त्स्यामि) बांधूंगा (तेन) उस से (देवेभ्यः) दिव्यगुणों और (प्रजापतये) संतानों को पालनेहारे गृहस्थ के लिये (राध्यासम्) अच्छे प्रकार सिद्ध होऊं (तम्) उस को तू (बधान) बांध (तेन) उस से (देवेभ्यः) दिव्य गुण कर्म और स्वभाव वालों तथा (प्रजापतये) प्रजा पालने वाले के लिये (राध्नुहि) अच्छे प्रकार सिद्ध होओ॥४॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि विद्या अच्छी शिक्षा ब्रह्मचर्य और अच्छे संग से शरीर और आत्मा के अत्यन्त बल को सिद्ध कर दिव्य गुणों को ग्रहण और विद्वानों के लिये सुख देकर अपनी और पराई वृद्धि करें॥४॥

प्रजापतय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रादयो देवताः । अतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ।।

फिर मनुष्य किन को बढ़ावें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामीन्द्राग्निभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वायवे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि । योऽअर्वन्तं जिघांसति तमभ्यमीति वरुणः । परो मर्त्तः परः श्वा ।।५।।

पदार्थः—हे विद्वन् ! (यः) जो (परः) उत्तम और (वरुणः) श्रेष्ठ (मर्त्तः) मनुष्य (अर्वन्तम्) शीघ्र चलने हारे घोड़े को (जिघांसति) ताड़ना देने वा चलाने की इच्छा करता है (तम्) उस को (अभि, अमीति) सब ओर से प्राप्त होता है और जो (परः) अन्य मनुष्य (श्वा) कुत्ते के समान वर्त्तमान अर्थात् दुष्कर्मी है उस को जो रोकता है उस (प्रजापतये) प्रजा की पालना करने वाले के लिये (जुष्टम्) प्रीति किये हुए (त्वा) तुझ को (प्रोक्षामि) अच्छे प्रकार सींचता हूं (इन्द्राग्निभ्याम्) जीव और अग्नि के लिये (जुष्टम्) प्रीति किये हुए (त्वा) तुझ को (प्रोक्षामि) अच्छे प्रकार सींचता हूं (वायवे) पवन के लिये (जुष्टम्) प्रीति किये हुए (त्वा) तुझको (प्रोक्षामि) अच्छे प्रकार सींचता हूं (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (जुष्टम्) प्रीति किये हुए (त्वा) तुझ को (प्रोक्षामि) अच्छे प्रकार सींचता हूं (सर्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) दिव्य पृथिवी आदि पदार्थों के लिये (जुष्टम्) प्रीति किये हुए (त्वा) तुझ को (प्रोक्षामि) अच्छी प्रकार सींचता हूं ।।५।।

भावार्थः—जो मनुष्य उत्तम पशुओं के मारने की इच्छा करते हैं वे सिंह के समान मारने चाहियें और जो इन पशुओं की रक्षा करने को अच्छा यत्न करते हैं वे सब की रक्षा करने के लिये अधिकार देने योग्य हैं । ५।।

अग्नय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ।।

फिर मनुष्य कैसे अपना वर्त्ताव वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहापां मोदाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा वायवे स्वाहा विष्णवे स्वाहेन्द्राय स्वाहा बृहस्पतये स्वाहा मित्राय स्वाहा वरुणाय स्वाहा ।।६।।

पदार्थः—यदि मनुष्य (अग्नये) अग्नि के लिये (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया वा (सोमाय) ओषधियों के शोधने के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया वा (अपाम्) जलों के सम्बन्ध से जो (मोदाय) आनन्द होता है उस के लिये (स्वाहा) सुख पहुंचाने वाली क्रिया वा (सवित्रे) सूर्यमण्डल के अर्थ (स्वाहा) उत्तम क्रिया वा (वायवे) पवन के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (विष्णवे) बिजुलीरूप आग में (स्वाहा) उत्तम क्रिया (इन्द्राय) जीव के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (बृहस्पतये) बड़ों की पालना करने वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (मित्राय) मित्र के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (वरुणाय) श्रेष्ठ के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया करें तो कौन कौन सुख न मिले ? ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो आग में उत्तमता से सिद्ध किया हुआ घी आदि हवि होमा जाता है वह ओषधि जल सूर्य के तेज वायु और बिजुली को अच्छे प्रकार शुद्ध कर ऐश्वर्य्य को बढ़ाने प्राण अपान और प्रजा की रक्षारूप श्रेष्ठों के सत्कार का निमित्त होता है कोई द्रव्यस्वरूप से नष्ट नहीं होता किन्तु अवस्थान्तर को पाके सर्वत्र ही परिणाम को प्राप्त होता है इसी से सुगन्ध मीठापन पुष्टि देने और रोगविनाश करने हारे गुणों से युक्त पदार्थ आग में छोड़कर ओषधि आदि पदार्थों की शुद्धि के द्वारा संसार का नीरोगपन सिद्ध करना चाहिये ॥६॥

हिंकारायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्राणादयो देवताः। अत्यष्टिश्छन्दः।
गान्धारः स्वरः॥

फिर मनुष्यों को जगत् कैसे शुद्ध करना चाहिये इस विषय को
अगले मन्त्र में कहा है॥

हिङ्काराय स्वाहा हिङ्कृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहाऽवक्रन्दाय स्वाहा प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा घ्राताय स्वाहा निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा सन्दिताय स्वाहा वल्गते स्वाहासीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा जाग्रते स्वाहा कूजते स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा विजृम्भमाणाय स्वाहा विचृताय स्वाहा सꣳहानाय स्वाहोपस्थिताय स्वाहाऽयनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहा ॥७॥

पदार्थः—जिन मनुष्यों ने (हिंकाराय) जो हिं ऐसा शब्द करता है उसके लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (हिंकृताय) जिसने हिं शब्द किया उसके लिये (स्वाहा) उत्तम

क्रिया (क्रन्दते) बुलाते वा रोते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (प्रवक्रन्दाय) नीचे होकर बुलाने वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (प्रोथते) सब कर्मों में परि॰ पूर्ण के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (प्रप्रोथाय) अत्यन्त पूर्ण के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (गन्धाय) सुगन्धित के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (घ्राताय) जो सूंघा गया उसके लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (निविष्टाय) जो निरन्तर प्रवेश करता बैठता है उसके लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (उपविष्टाय) जो बैठता उसके लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (संदिताय) जो भलीभांति दिया जाता उसके लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (वल्गते) जाते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (आसीनाय) बैठे हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (शयानाय) सोते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (स्वपते) नींद जिस को प्राप्त हुई उसके लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (जाग्रते) जागते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (कूजते) कूजते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (प्रबुद्धाय) उत्तम ज्ञान वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (विजृम्भमाणाय) अच्छे प्रकार जंभाई लेने के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (विचृताय) विशेष रचना करने वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (संहानाय) जिससे संघात पदार्थों का समूह किया जाता उसके लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (उपस्थिताय) समीपस्थित हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (अयनाय) अच्छे प्रकार विशेष ज्ञान के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया तथा (प्रायणाय) पहुंचाने हारे के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया की उन मनुष्यों को दुःख छूट के सुख प्राप्त होते हैं ॥७॥

भावार्थः—मनुष्यों से अग्निहोत्र आदि यज्ञ में जितना होम किया जाता है उतना सब प्राणियों के लिये सुख करने वाला होता है ॥७॥

यते स्वाहेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रयत्नवन्तो जीवादयो देवताः । निचृदतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यते स्वाहा धावते स्वाहोद्द्रावाय स्वाहोद्द्रुताय स्वाहा शूकाराय स्वाहा शूकृताय स्वाहा निषण्णाय स्वाहोत्थिताय स्वाहा जवाय स्वाहा बलाय स्वाहा विवर्त्तमानाय स्वाहा विवृत्ताय स्वाहा विधून्वानाय स्वाहा विधूताय स्वाहा शुश्रूषमाणाय स्वाहा शृण्वते स्वाहेक्षमाणाय स्वाहेक्षिताय स्वाहा वीक्षिताय स्वाहा निमेषाय स्वाहा यदत्ति तस्मै

स्वाहा यत् पिबंति तस्मै स्वाहा यन्मूत्रं करोति तस्मै स्वाहा कुर्वते स्वाहा कृताय स्वाहा ॥८॥

पदार्थः—जो मनुष्य (यते) अच्छा यत्न करते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (धावते) दौड़ते हुए के लिये (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया (उद्द्रावाय) ऊपर को गये हुए गीले पदार्थ के लिये (स्वाहा) सुन्दर क्रिया (उद्द्रुताय) उत्कर्ष को प्राप्त हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (शूकाराय) शीघ्रता करने वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (शूकृताय) शीघ्र किये हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (निषण्णाय) निश्चय से बैठे हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (उत्थिताय) उठे हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (जवाय) वेग के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (बलाय) बल के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (विवर्त्तमानाय) विशेष रीति से वर्त्तमान होते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (विवृत्ताय) विशेष रीति से वर्त्ताव किये हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (विधून्वानाय) जो पदार्थ विधूनता है उसके लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (विधूताय) जिसने नाना प्रकार से विधूना उस के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (शुश्रूषमाणाय) सुना चाहते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (शृण्वते) सुनते के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (ईक्षमाणाय) देखते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (ईक्षिताय) और से देखे हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (वीक्षिताय) भलीभांति देखे हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (निमेषाय) आंखों के पलक उठने बैठने के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (यत्) जो (अत्ति) खाता है (तस्मै) उस के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (यत्) जो (पिबति) पीता है (तस्मै) उसके लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (यत्) जो (मूत्रम्) मूत्र (करोति) करता है (तस्मै) उस के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (कुर्वते) करने वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया तथा (कृताय) किये हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया करते हैं वे सब सुखों को प्राप्त होते हैं ॥८॥

भावार्थः जो अच्छे यत्न और दौड़ने आदि क्रियाओं को सिद्ध करने वाले काम तथा सुगन्धि आदि वस्तुओं के होम आदि कामों को करते हैं वे समस्त सुख और चाहे हुए पदार्थों को प्राप्त होते हैं ॥८॥

तत्सवितुरित्यस्य विश्वामित्रऋषिः । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब ईश्वर के विषय में अगले मन्त्र में कहा है ॥

तत्स॑वि॒तुर्वरे॑ण्यं॒ भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि ।
धियो॒ यो नः॑ प्रचो॒दया॑त् ॥९॥

पदार्थः— हे मनुष्यो ! (सवितुः) समस्त संसार उत्पन्न करने हारे (देवस्य) आप से आप ही प्रकाशरूप सब के चाहने योग्य समस्त सुखों के देने हारे परमेश्वर के जिस (वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य उत्तम (भर्गः) समस्त दोषों के दाह करने वाले तेजोमय शुद्धस्वरूप को हम लोग (धीमहि) धारण करते हैं (तत्) उसको तुम लोग धारण करो (यः) जो (नः) हम सब लोगों की (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) प्रेरे अर्थात् उनको अच्छे अच्छे कामों में लगावे वह अन्तर्यामी परमात्मा सबके उपासना करने के योग्य है ॥९॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि सच्चिदानन्दस्वरूप नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव सब के अन्तर्यामी परमात्मा को छोड़के उसकी जगह में अन्य किसी पदार्थ की उपासना का स्थापन कभी न करें, किस प्रयोजन के लिये कि जो हम लोगों से उपासना किया हुआ परमात्मा हमारी बुद्धियों को अधर्म के आचरण से छुड़ाके धर्म के आचरण में प्रवृत्त करे जिससे शुद्ध हुए हम लोग उस परमात्मा को प्राप्त होकर इस लोक और परलोक के सुखों को भोगें इस प्रयोजन के लिये ॥९॥

हिरण्यपाणीत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । सविता देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

हिर॑ण्यपाणिमू॒तये॑ सवि॒तार॒मुप॑ह्वये । स चेत्ता॑ दे॒वता॑ प॒दम् ॥१०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! मैं जिस (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (हिरण्यपाणिम्) जिसकी स्तुति करने में सूर्य आदि तेज हैं (पदम्) उस पाने योग्य (सवितारम्) समस्त ऐश्वर्य्य की प्राप्ति कराने वाले जगदीश्वर को (उपह्वये) ध्यान के योग से बुलाता हूं (सः) वह (चेत्ता) अच्छे ज्ञानस्वरूप होने से सत्य और मिथ्या का जनाने वाला (देवता) उपासना करने योग्य इष्टदेव ही है यह तुम सब जानो ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि इस मन्त्र से लेके पूर्वोक्त मन्त्र गायत्री जो कि गुरुमन्त्र है उसी के अर्थ का तात्पर्य है ऐसा जानें। चेतनस्वरूप परमात्मा की उपासना को छोड़ किसी अन्य जड़ की उपासना कभी न करें क्योंकि उपासना अर्थात् सेवा किया हुआ जड़ पदार्थ हानि लाभ कारक और रक्षा करने हारा नहीं होता इससे चित्तवान् समस्त जीवों का चेतनस्वरूप जगदीश्वर ही की उपासना करनी योग्य है अन्य जड़ता आदि गुणयुक्त पदार्थ उपास्य नहीं ॥१०॥

देवस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवस्य चेततो महीरुप्र सवितुर्हवामहे ।
सुमतिꣳ सत्यराधसम् ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (सवितुः) समस्त संसार के उत्पन्न करने हारे (चेततः) चेतनस्वरूप (देवस्य) स्तुति करने योग्य ईश्वर की उपासना कर (महीम्) बड़ी (सत्यराधसम्) जिससे जीव सत्य को सिद्ध करता है उस (सुमतिम्) सुन्दर बुद्धि को (प्र, हवामहे) ग्रहण करते हैं वैसे उस परमेश्वर की उपासना कर उस बुद्धि को तुम लोग प्राप्त होओ ॥११॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस चेतनस्वरूप जगदीश्वर ने समस्त संसार को उत्पन्न किया है उसकी आराधना उपासना से सत्यविद्यायुक्त उत्तम बुद्धि को तुम लोग प्राप्त हो सकते हो किन्तु इतर जड़ पदार्थ की आराधना से कभी नहीं ॥११॥

सुष्टुतिमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सुष्टुतिꣳ सुमतीवृधो रातिꣳ सवितुरीमहे ।
प्र देवाय मतीविदे ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (सुमतीवृधः) जो उत्तम मति को बढ़ाता (सवितुः) सब को उत्पन्न करता उस ईश्वर की (सुष्टुतिम्) सुन्दर स्तुति कर इससे (मतीविदे) जो ज्ञान को प्राप्त होता है उस (देवाय) विद्या आदि गुणों की कामना करने वाले मनुष्य के लिये (रातिम्) देने को (प्रेमहे) भलीभांति मांगते हैं वैसे इस देने की क्रिया को इस ईश्वर से तुम लोग भी मांगो ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जब जब परमेश्वर की प्रार्थना करनी योग्य हो तब तब अपने लिये वा और के लिये समस्त शास्त्र के विज्ञान से युक्त उत्तम बुद्धि ही मांगनी चाहिये जिस के पाने पर समस्त सुखों के साधनों को जीव प्राप्त होते हैं ॥१२॥

रातिमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

रातिꣳ सत्पतिं महे सवितारमुप ह्वये । आसवं देववीतये ॥१३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (महे) बड़ी (देववीतये) दिव्यगुण और विद्वानों

की प्राप्ति के लिये (रातिम्) देने हारे (आसवम्) सब ओर से ऐश्वर्ययुक्त (सत्पतिम्) सत्य वा नित्य विद्यमान जीव वा पदार्थों की पालना करने और (सवितारम्) समस्त संसार को उत्पन्न करने हारे जगदीश्वर की (उपह्वये) ध्यान योग से समीप में स्तुति करूं वैसे तुम भी इसकी प्रशंसा करो ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यदि मनुष्य धर्म अर्थ और काम की सिद्धि को चाहें तो परमात्मा की ही उपासना कर उस ईश्वर की आज्ञा में वर्तें ॥१३॥

देवस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सविता देवता। पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देवस्य सवितुर्मतिमासवं विश्वदेव्यम्। धिया भर्गं मनामहे ॥१४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे हम लोग (सवितुः) सकल ऐश्वर्य और (देवस्य) समस्त सुख देने हारे परमात्मा के निकट से (मतिम्) बुद्धि और (आसवम्) समस्त ऐश्वर्य्य के हेतु को प्राप्त होकर उस (धिया) बुद्धि से समस्त (विश्वदेव्यम्) सब विद्वानों के लिये हित देनेहारे (भर्गम्) उत्तम ऐश्वर्य्य को (मनामहे) मांगते हैं वैसे तुम लोग भी मांगो ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की उपासना से उत्तम बुद्धि को पाके उससे पूर्ण ऐश्वर्य का विधान कर सब प्राणियों के हित को सम्यक् सिद्ध करें ॥१४॥

अग्निमित्यस्य सुतम्भर ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब यज्ञकर्मविषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्निꣳस्तोमेन बोधय समिधानोऽअमर्त्यम्।
हव्या देवेषु नो दधत् ॥१५॥

पदार्थः—हे विद्वन्! जो (समिधानः) भली भांति दीपता हुआ अग्नि (देवेषु) दिव्य वायु आदि पदार्थों में (हव्या) लेने देने योग्य पदार्थों को (नः) हमारे लिये (दधत्) धारण करता है उस (अमर्त्यम्) कारण रूप अर्थात् परमाणुभाव से विनाश होने के धर्म से रहित (अग्निम्) आग को (स्तोमेन) इन्धनसमूह से (बोधय) चिताओ अर्थात् अच्छे प्रकार जलाओ ॥१५॥

भावार्थः—यदि अग्नि में समिधा छोड़ दिव्य दिव्य सुगन्धित पदार्थ

को होमें तो यह अग्नि उस पदार्थ को वायु आदि में फैला के सब प्राणियों को सुखी करता है ॥१५॥

स हव्यवाडित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स हव्यवाडमर्त्यऽउशिग्दूतश्चनोहितः। अग्निर्धिया समृण्वति ॥१६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जो (अमर्त्यः) मृत्युधर्म से रहित (हव्यवाट्) होमे हुए पदार्थ को एक देश से दूसरे देश में पहुंचाता (उशिक्) प्रकाशमान (दूतः) दूत के समान वर्त्तमान (चनोहितः) और जो अन्नों की प्राप्ति कराने वाला (अग्निः) अग्नि है (सः) वह (धिया) कर्म अर्थात् उस के उपयोगी शिल्प आदि काम से (सम्, ऋण्वति) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है ॥१६॥

भावार्थः जैसे काम के लिये भेजा हुआ दूत करने योग्य काम को सिद्ध करने हारा होता है वैसे अच्छे प्रकार युक्त किया हुआ अग्नि सुखसम्बन्धी कार्य्यों को सिद्ध करने हारा होता है ॥१६॥

अग्निं दूतमित्यस्य विश्वरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब अग्नि के गुणों के विषय में अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुपब्रुवे।
देवाँ२ऽ आसादयादिह ॥१७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जो (इह) इस संसार में (देवान्) दिव्य भोगों को (आ, सादयात्) प्राप्त करावे उस (हव्यवाहम्) भोजन करने योग्य पदार्थों की प्राप्ति कराने और (दूतम्) दूत के समान कार्य्यसिद्धि करने हारे (अग्निम्) अग्नि को (पुरः) आगे (दधे) धरता हूं और तुम लोगों के प्रति (उप, ब्रुवे) उपदेश करता हूं कि तुम लोग भी ऐसे ही किया करो ॥१७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जैसे अग्नि दिव्य सुखों को देने वाला है वैसे पवन आदि पदार्थ भी सुख देने में प्रवर्त्तमान हैं यह जानना चाहिये ॥१७॥

अजीजन इत्यस्यारुणत्रसदस्यू ऋषी। पवमानो देवता। पिपीलिकामध्या विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर सूर्यरूप अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः ।
गोजीरया रꣳहमाणः पुरन्ध्या ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे (पवमान) पवित्र करनेहारे अग्नि के समान पवित्र जन ! तू अग्नि (पुरन्ध्या) जिस क्रिया से नगरी को धारण करता उस से (रंहमाणः) जाता हुआ (सूर्यम्) सूर्य को (अजीजनः) प्रगट करता उस को और (शक्मना) कर्म वा (गोजीरया) गौ आदि पशुओं की जीवनक्रिया से (पयः) जल को मैं (विधारे) विशेष करके धारण करता (हि) ही हूं ॥१८॥

भावार्थः—जो बिजुली सूर्य्य का कारण न होती तो सूर्य की उत्पत्ति कैसे होती, जो सूर्य न हो तो भूगोल का धारण और वर्षा से गो आदि पशुओं का जीवन कैसे हो ॥१८॥

विभूरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिग्विकृतिश्छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

विभूर्मात्रा प्रभूः पित्राश्वोऽसि हयोऽस्यत्योऽसि मयोऽस्यर्वासि सप्तिरसि वाज्यसि वृषासि नृमणाऽअसि । ययुर्नामासि शिशुर्नामास्यादित्यानां पत्वान्विहि । देवाऽआशापालाऽएतं देवेभ्योऽश्वं मेधाय प्रोक्षितꣳ रक्षतेह रन्तिरिह रमतामिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे (आशापालाः) दिशाओं के पालने वाले (देवाः) विद्वानो ! तुम जो लोग (मात्रा) माता के समान वर्त्तमान पृथिवी से (विभूः) व्यापक (पित्रा) पिता रूप पवन से (प्रभूः) समर्थ और (अश्वः) मार्गों को व्याप्त होने वाला (असि) है (हयः) घोड़े के समान शीघ्र चलने वाला (असि) है (अत्यः) जो निरन्तर जाने वाला (असि) है (मयः) सुख का करने वाला (असि) है (अर्वा) जो सब को प्राप्त होने हारा (असि) है (सप्तिः) मूर्त्तिमान् पदार्थों का सम्बन्ध करने वाला (असि) है (वाजी) वेगवान् (असि) है (वृषा) वर्षा का करने वाला (असि) है (नृमणाः) सब प्रकार के व्यवहारों को प्राप्त कराने हारे पदार्थों में मन के समान शीघ्र जाने वाला (असि) है (ययुः) जो प्राप्ति कराता वा जाता ऐसे (नाम) नाम वाला (असि) है जो (शिशुः) व्यवहार के योग्य विषयों को सूक्ष्म करती ऐसी (नाम) उत्तम वाणी (असि) है जो

(आवित्यानाम्) महीनों के (पत्वा) नीचे गिरता (अन्विहि) अन्वित अर्थात् मिलता है (एतम्) इस (अश्वम्) व्याप्त होने वाले अग्नि को (स्वाहा) सत्यक्रिया से (देवेभ्यः) दिव्य भोगों के लिये तथा (मेधाय) अच्छे गुणों के मिलाने, बुद्धि की प्राप्ति करने वा दुष्टों को मारने के लिये (प्रोक्षितम्) जल से सींचा हुआ (रक्षत) रक्खो जिस से (इह) इस संसार में (रन्तिः) रमण अर्थात् उत्तम सुख में रमना हो (इह) यहां (रमताम्) क्रीड़ा करें तथा (इह) यहां (धृतिः) सामान्य धारणा और (इह) यहां (स्वधृतिः) अपने पदार्थों की धारणा हो ॥१९॥

भावार्थः—जो मनुष्य पृथिवी आदि लोकों में व्याप्त और समस्त वेग वाले पदार्थों में अतीव वेगवान् अग्नि को गुण कर्म और स्वभाव से जानते हैं, वे इस संसार में सुख से रमते हैं ॥१९॥

कायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्रजापत्यादयो देवताः। आद्यस्य विराडतिधृतिः। उत्तरस्य निचृदतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब किस प्रयोजन के लिये होम करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

काय स्वाहा कस्मै स्वाहा कतमस्मै स्वाहा स्वाहाधिमाधीताय स्वाहा मनः प्रजापतये स्वाहा चित्तं विज्ञातायादित्यै स्वाहादित्यै मह्यै स्वाहादित्यै सुमृडीकायै स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा सरस्वत्यै बृहत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा पूष्णे प्रपथ्याय स्वाहा पूष्णे नरन्धिषाय स्वाहा त्वष्ट्रे स्वाहा त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा त्वष्ट्रे पुरुरूपाय स्वाहा विष्णवे स्वाहा विष्णवे निभूयपाय स्वाहा विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा ॥२०॥

पदार्थः—जिन मनुष्यों ने (काय) सुख साधने वाले के लिये (स्वाहा) सत्य-क्रिया (कस्मै) सुखस्वरूप के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (कतमस्मै) बहुतों में जो वर्त्तमान उस के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (आधिम्) जो अच्छे प्रकार पदार्थों को धारण करता उस को प्राप्त होकर (स्वाहा) सत्यक्रिया (आधीताय) सब ओर से विद्यावृद्धि के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (प्रजापतये) प्रजाजनों की पालना करने हारे के लिये (मनः) मन की (स्वाहा) सत्यक्रिया (विज्ञाताय) विशेष जाने हुए के लिये (चित्तम्) स्मृति सिद्ध कराने अर्थात् चेत दिलाने हारा चैतन्य मन (अदित्यै) पृथिवी

के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (मह्यै) बड़ी (अदित्यै) विनाशरहित वाणी के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (सुमृडीकायै) अच्छा सुख करने हारी (अदित्यै) माता के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (सरस्वत्यै) नदी के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (पावकायै) पवित्र करने वाली (सरस्वत्यै) विद्यायुक्त वाणी के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया, (बृहत्यै) बड़ी (सरस्वत्यै) विद्वानों की वाणी के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (पूष्णे) पुष्टि करने वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (प्रपथ्याय) उत्तमता से आराम के योग्य भोजन करने तथा (पूष्णे) पुष्टि के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (नरन्धिषाय) जो मनुष्यों को उपदेश देता है उस (पूष्णे) पुष्टि करने हारे के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (त्वष्ट्रे) प्रकाश करने वाले के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (तुरीपाय) नौकाओं के पालने (त्वष्ट्रे) और विद्या प्रकाश करने हारे के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (पुरुरूपाय) बहुत रूप और (त्वष्ट्रे) प्रकाश करने वाले के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (विष्णवे) व्याप्त होने वाले के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (निभूयपाय) निरन्तर आप रक्षित हो औरों की पालना करने हारे (विष्णवे) सर्वव्यापक के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया तथा (शिपिविष्टाय) वचन कहते हुए चैतन्य प्राणियों में व्याप्ति से प्रवेश हुए (विष्णवे) व्यापक ईश्वर के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया को वे कैसे न सुखी हों ॥२०॥

भावार्थः—जो विद्वानों के सुख, पढ़ने, अन्तःकरण के विशेष ज्ञान तथा वाणी और पवन आदि पदार्थों की शुद्धि के लिये यज्ञक्रियाओं को करते हैं वे सुखी होते हैं ॥२०॥

विश्वो देवस्येत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विद्वान् देवता । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषयको अगले मन्त्र में कहा है ॥

विश्वो॑ दे॒वस्य॑ ने॒तुर्मर्त्तो॑ वुरीत स॒ख्यम् ।
विश्वो॑ रा॒यऽइ॑षुध्यति द्यु॒म्नं वृ॑णीत पु॒ष्यसे॒ स्वाहा॑ ॥२१॥

पदार्थः—जैसे (विश्वः) समस्त (मर्त्तः) मनुष्य (नेतुः) नायक अर्थात् सब व्यवहारों की प्राप्ति कराने हारे (देवस्य) विद्वान् की (सख्यम्) मित्रता को (वुरीत) स्वीकार करें वा जैसे (विश्वः) समस्त मनुष्य (राये) धन के लिये (इषुध्यति) याचना करता अर्थात् मंगनी मांगता वा बाणों को अपने अपने धनुष् पर धारता है वैसे (स्वाहा) सत्यक्रिया वा सत्यवाणी से (पुष्यसे) पुष्टि के लिये (द्युम्नम्) धन और यश को (वृणीत) स्वीकार करे ॥२१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब मनुष्य

विद्वानों के साथ मित्र होकर विद्या और यश का ग्रहण कर धन और कान्तिमान् होकर उत्तम योग्य आहार वा अच्छे मार्ग से पुष्ट हों ॥२१॥

आ ब्रह्मन्नित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । लिंगोक्ता देवताः । स्वराडुत्कृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को किस की इच्छा करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ ब्रह्म॑न् ब्राह्म॒णो ब्र॑ह्मवर्च॒सी जा॑यता॒मा रा॒ष्ट्रे रा॑ज॒न्यः शूर॑ऽइष॒व्यो॒ऽतिव्या॒धी म॑हार॒थो जा॑यतां॒ दोग्ध्री॑ धे॒नुर्वोढा॑न॒ड्वाना॒शुः सप्तिः॒ पुर॑न्धि॒र्योषा॑ जि॒ष्णू र॑थे॒ष्ठाः स॒भेयो॒ युवास्य यज॑मानस्य वी॒रो जा॑यतां निका॒मे-नि॑कामे नः प॒र्जन्यो॑ वर्षतु॒ फल॑वत्यो न॒ऽओष॑धयः पच्यन्तां योगक्षे॒मो नः॑ कल्पताम् ॥२२॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मन्) विद्यादिगुणों करके सब से बड़े परमेश्वर ! जैसे हमारे (राष्ट्रे) राज्य में (ब्रह्मवर्चसी) वेदविद्या से प्रकाश को प्राप्त (ब्राह्मणः) वेद और ईश्वर को अच्छा जानने वाला ब्राह्मण (आ, जायताम्) सब प्रकार से उत्पन्न हो (इषव्यः) बाण चलाने में उत्तम गुणवान् (अतिव्याधी) अतीव शत्रुओं को व्यधने अर्थात् ताड़ना देने का स्वभाव रखने वाला (महारथः) कि जिस के बड़े बड़े रथ और अत्यन्त बली वीर हैं ऐसा (शूरः) निर्भय (राजन्यः) राजपुत्र (आ, जायताम्) सब प्रकार से उत्पन्न हो (दोग्ध्री) कामना वा दूध से पूर्ण करने वाली (धेनुः) वाणी वा गौ (वोढा) भार ले जाने में समर्थ (अनड्वान्) बड़ा बलवान् बैल (आशुः) शीघ्र चलने हारा (सप्तिः) घोड़ा (पुरन्धिः) जो बहुत व्यवहारों को धारण करती है वह (योषा) स्त्री (रथेष्ठाः) तथा रथ पर स्थिर होने और (जिष्णुः) शत्रुओं को जीतने वाला (सभेयः) सभा में उत्तम सभ्य (युवा) जवान पुरुष (आ, जायताम्) उत्पन्न हो (अस्य, यजमानस्य) जो यह विद्वानों का सत्कार करता वा सुखों की संगति करता वा सुखों को देता है इस राजा के राज्य में (वीरः) विशेष ज्ञानवान् शत्रुओं को हटाने वाला पुरुष उत्पन्न हो (नः) हम लोगों के (निकामे निकामे) निश्चययुक्त काम काम में अर्थात् जिस जिस काम के लिये प्रयत्न करें उस उस काम में (पर्जन्यः) मेघ (वर्षतु) वर्षे (ओषधयः) ओषधि (फलवत्यः) बहुत उत्तम फलवाली (नः) हमारे लिये (पच्यन्ताम्) पकें (नः) हमारा (योगक्षेमः) अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति

कराने वाले योग की रक्षा अर्थात् हमारे निर्वाह के योग्य पदार्थों की प्राप्ति (कल्पताम्) समर्थ हो वैसा विधान करो अर्थात् वैसे व्यवहार को प्रगट कराइये ॥२२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वानों को ईश्वर की प्रार्थनासहित ऐसा अनुष्ठान करना चाहिये कि जिससे पूर्णविद्या वाले शूरवीर मनुष्य तथा वैसे ही गुणवाली स्त्री, सुख देनेहारे पशु, सभ्य मनुष्य, चाही हुई वर्षा, मीठे फलों से युक्त अन्न और ओषधि हों तथा कामना पूर्ण हो ॥२२॥

प्राणायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्राणादयो देवताः। स्वराडनुष्टुप् छन्दः।
गांधारः स्वरः ॥

फिर किस लिये होम का विधान करना चाहिये इस विषय को अगले
मन्त्र में कहा है ॥

प्राणाय स्वाहाऽपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा ॥२३॥

पदार्थः—जिन मनुष्यों ने (प्राणाय) जो पवन भीतर से बाहर निकलता है उस के लिये (स्वाहा) योगविद्यायुक्त क्रिया (अपानाय) जो बाहर से भीतर को जाता है उस पवन के लिये (स्वाहा) वैद्यकविद्यायुक्तक्रिया (व्यानाय) जो विविध प्रकार के अङ्गों में व्याप्त होता है उस पवन के लिये (स्वाहा) वैद्यकविद्यायुक्त वाणी (चक्षुषे) जिस से प्राणी देखता है उस नेत्र इन्द्रिय के लिये (स्वाहा) प्रत्यक्षप्रमाणयुक्त वाणी (श्रोत्राय) जिस से सुनता है उस कर्णेन्द्रिय के लिये (स्वाहा) शास्त्रज्ञ विद्वान् के उपदेशयुक्त वाणी (वाचे) जिस से बोलता है उस वाणी के लिये (स्वाहा) सत्यभाषण आदि व्यवहारों से युक्त बोलचाल तथा (मनसे) विचार के निमित्त संकल्प और विकल्पवान् मन के लिये (स्वाहा) विचार से भरी हुई वाणी प्रयोग की जाती अर्थात् भलीभांति उच्चारण की जाती है वे विद्वान् होते हैं ॥२३॥

भावार्थः—जो मनुष्य यज्ञ से शुद्ध किये जल, ओषधि, पवन, अन्न, पत्र, पुष्प, फल, रस, कन्द अर्थात् अरबी, आलू, कसेरू, रतालू और शकरकन्द आदि पदार्थों का भोजन करते हैं वे नीरोग होकर बुद्धि, बल, आरोग्यपन और आयुर्दा वाले होते हैं ॥२३॥

प्राच्यै दिश इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। दिशो देवताः। निचृदतिधृतिश्छन्दः।
षड्जः स्वरः ॥

फिर किसलिये होम करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्राच्यै॑ दि॒शे स्वाहा॒र्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहा॒ दक्षि॑णायै दि॒शे स्वाहा॒र्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहा॑ प्र॒तीच्यै॑ दि॒शे स्वाहा॒र्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहोदी॑च्यै दि॒शे स्वाहा॒र्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहो॒र्ध्वायै॑ दि॒शे स्वाहा॒र्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहा॒र्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहा॒र्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहा॑ ॥२४॥

पदार्थः—जिन विद्वानों ने (प्राच्यै) जो प्रथम प्राप्त होती है अर्थात् प्रथम सूर्य-मण्डल का संयोग करती उस (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) ज्योतिःशास्त्रविद्यायुक्त वाणी (अर्वाच्यै) जो नीचे से सूर्यमण्डल को प्राप्त अर्थात् जब विषुमती रेखा से उत्तर का सूर्य नीचे नीचे गिरता है उस नीचे की (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) ज्योतिः-शास्त्रयुक्त वाणी (दक्षिणायै) जो पूर्वमुख वाले पुरुष के दाहिनी बांह के निकट है उस दक्षिण (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) उक्त वाणी जो (अर्वाच्यै) निम्न है उस (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) उक्त वाणी (प्रतीच्यै) जो सूर्यमण्डल के प्रतिमुख अर्थात् लौटने के समय में प्राप्त और पूर्वमुख वाले पुरुष के पीठ पीछे होती उस पश्चिम (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) ज्योतिःशास्त्रयुक्त वाणी (अर्वाच्यै) पश्चिम के नीचे जो (दिशे) दिशा है उस के लिये (स्वाहा) ज्योति.शास्त्रयुक्त वाणी (उदीच्यै) जो पूर्वाभिमुख पुरुष के वामभाग को प्राप्त होती उस उत्तम (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) ज्योतिःशास्त्रयुक्त वाणी (अर्वाच्यै) पृथिवी गोल में जो उत्तर दिशा के तले दिशा है उस (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) ज्योतिःशास्त्रयुक्त वाणी (ऊर्ध्वायै) जो ऊपर को वर्त्तमान है उस (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) ज्योति.शास्त्रयुक्त वाणी (अर्वाच्यै) जो विरुद्ध प्राप्त होती ऊपर वाली दिशा के नीचे अर्थात् कभी पूर्व गिनी जाती कभी उत्तर कभी दक्षिण कभी पश्चिम मानी जाती है उस (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) ज्योतिःशास्त्रयुक्त वाणी और (अर्वाच्यै) जो सब से नीचे वर्त्तमान उस (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) ज्योतिःशास्त्र-विचारयुक्त वाणी तथा (अर्वाच्यै) पृथिवी गोल में जो उक्त प्रत्येक कोण दिशाओं के तले की दिशा है उस (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) ज्योतिःशास्त्रविद्यायुक्त वाणी विधान की वे सब ओर कुशली अर्थात् आनन्दी होते हैं ॥२४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! चार मुख्य दिशा और चार उपदिशा अर्थात् कोण दिशा भी वर्त्तमान हैं। ऐसे ऊपर और नीचे की दिशा भी वर्त्तमान हैं। वे मिल कर सब दश होती हैं, यह जानना चाहिये और एक क्रम से निश्चय नहीं की हुई तथा अपनी अपनी कल्पना में समर्थ भी हैं, उनको उन

उन के अर्थ में समर्थन करने की यह रीति है कि जहां मनुष्य आप स्थित हो उस देश को लेके सब की कल्पना होती है इसको जानो ॥२४॥

अद्भ्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । जलादयो देवताः । अष्टिश्छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अद्भ्यः स्वाहा वार्भ्यः स्वाहोदकाय स्वाहा तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा स्रवन्तीभ्यः स्वाहा स्यन्दमानाभ्यः स्वाहा कूप्याभ्यः स्वाहा सूद्याभ्यः स्वाहा धार्याभ्यः स्वाहार्णवाय स्वाहा समुद्राय स्वाहा सरिराय स्वाहा ॥२५॥

पदार्थः—जिन मनुष्यों ने यज्ञकर्मों में सुगन्धि आदि पदार्थ होमने के लिये (अद्भ्य.) सामान्य जलों के लिये (स्वाहा) उन को शुद्ध करने की क्रिया (वार्भ्यः) स्वीकार करने योग्य अति उत्तम जलों के लिये (स्वाहा) उन को शुद्ध करने की क्रिया (उदकाय) पदार्थों को गीले करने वा सूर्य्य की किरणों से ऊपर को जाते हुए जल के लिये (स्वाहा) उन को शुद्ध करने वाली क्रिया (तिष्ठन्तीभ्यः) स्थिर जलों के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (स्रवन्तीभ्यः) शीघ्र बहते हुए जलों के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (स्यन्दमानाभ्यः) धीरे धीरे चलते जलों के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (कूप्याभ्यः) कुएं में हुए जलों के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (सूद्याभ्यः) भलीभांति भिगोने हारे अर्थात् वर्षा आदि से जो भिगोते हैं उन जलों के लिये (स्वाहा) उनके शुद्ध करने की क्रिया (धार्याभ्यः) धारण करने योग्य जो जल हैं उन के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (अर्णवाय) जिस में बहुत जल हैं उस बड़े नद के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (समुद्राय) जिस में अच्छे प्रकार नद महानद नदी महानदी झील झरना आदि के जल जा मिलते हैं उस सागर वा महासागर के लिये (स्वाहा) शुद्ध करने वाली क्रिया और (सरिराय) अति सुन्दर मनोहर जल के लिये (स्वाहा) उसकी रक्षा करने वाली क्रिया विधान की है वे सब को सुख देने हारे होते हैं ॥२५॥

भावार्थः—जो मनुष्य आग में सुगन्धि आदि पदार्थों को होमें वे जल आदि पदार्थों की शुद्धि करनेहारे हो पुण्यात्मा होते हैं और जल की शुद्धि से ही सब पदार्थों की शुद्धि होती है यह जानना चाहिये ॥२५॥

वातायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वातादयो देवताः । विराडभिकृतिश्छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वाताय स्वाहा धूमाय स्वाहाभ्राय स्वाहा मेघाय स्वाहा विद्योतमानाय स्वाहा स्तनयते स्वाहावस्फूर्जते स्वाहा वर्षते स्वाहावदर्षते स्वाहोग्रं वर्षते स्वाहा शीघ्रं वर्षते स्वाहोद्गृह्णते स्वाहोद्गृहीताय स्वाहा प्रुष्णते स्वाहा शीकायते स्वाहा प्रुष्वाभ्यः स्वाहा ह्रादुनीभ्यः स्वाहा नीहाराय स्वाहा ॥२६॥

पदार्थः—जिन मनुष्यों ने (वाताय) जो बहता है उस पवन के लिये (स्वाहा) उस को शुद्ध करने वाली यज्ञक्रिया (धूमाय) धूम के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया (अभ्राय) मेघ के कारण के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया (मेघाय) मेघ के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया (विद्योतमानाय) बिजुली से प्रवृत्त हुए सघन बद्दल के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया (स्तनयते) उत्तम शब्द करती हुई बिजुली के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया (अवस्फूर्जते) एक दूसरे के घिसने से वज्र के समान नीचे को चोट करते हुए विद्युत् के लिये (स्वाहा) शुद्ध करने हारी यज्ञक्रिया (वर्षते) जो बद्दल वर्षता है उसके लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया (अववर्षते) मिलावट से तले ऊपर हुए बद्दलों में जो नीचे वाला है उस बद्दल के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया (उग्रम्) अतितीक्ष्णता से (वर्षते) वर्षते हुए बद्दल के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया (शीघ्रम्) शीघ्र लपट झपट से (वर्षते) वर्षते हुए बद्दल के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (उद्गृह्णते) ऊपर से ऊपर बद्दलों के ग्रहण करने वाले बद्दल के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (उद्गृहीताय) जिसने ऊपर से ऊपर जल ग्रहण किया उस बद्दल के लिये (स्वाहा) शुद्धि करने वाली यज्ञक्रिया (प्रुष्णते) पुष्टि करते हुए मेघ के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया (शीकायते) जो सींचता अर्थात् ठहर ठहर के वर्षता उस मेघ के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया (प्रुष्वाभ्यः) जो पूर्ण घनघोर वर्षा करते हैं उन मेघों के अवयवों के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया (ह्रादुनीभ्यः) अव्यक्त गड़गड़ शब्द करते हुए बद्दलों के लिये (स्वाहा) शुद्धि करने वाली यज्ञक्रिया और (नीहाराय) कुहर के लिये (स्वाहा) उस की शुद्धि करने वाली यज्ञक्रिया की है वे संसार के प्राण-पियारे होते हैं ॥ २६ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य यथाविधि अग्निहोत्र आदि यज्ञों को करते हैं वे पवन आदि पदार्थों के शोधनेहारे होकर सब का हित करने वाले होते हैं ॥ २६ ॥

अग्नये स्वाहेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । जगतीच्छन्दः ॥
निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहेन्द्राय स्वाहा पृथिव्यै स्वाहाऽन्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा दिग्भ्यः स्वाहाऽऽशाभ्यः स्वाहोर्व्यै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा ॥२७॥

पदार्थः—मनुष्यों को (अग्नये) जाठराग्नि अर्थात् पेट के भीतर अन्न पचाने वाली आग के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (सोमाय) उत्तम रस के लिये (स्वाहा) सुन्दर क्रिया (इन्द्राय) जीव, बिजुली और परम ऐश्वर्य के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (पृथिव्यै) पृथिवी के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (अन्तरिक्षाय) आकाश के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (दिवे) प्रकाश के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (दिग्भ्यः) पूर्वादि दिशाओं के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (आशाभ्यः) एक दूसरी में जो व्याप्त हो रही अर्थात् ईशान आदि कोण दिशाओं के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (उर्व्यै) समय को पाकर अनेक रूप दिखाने वाली अर्थात् वर्षा गर्मी सर्दी के समय के रूप की अलग अलग प्रतीति कराने वाली (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया और (अर्वाच्यै) नीचे की (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया अवश्य विधान करनी चाहिये ॥ २७ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्नि के द्वारा अर्थात् आग में होम कर ओषधि आदि पदार्थों में सुगन्धि आदि पदार्थ का विस्तार करें वे जगत् के हित करने वाले होवें ॥२७॥

नक्षत्रेभ्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । नक्षत्रादयो देवताः । भुरिगष्टी छन्दसी । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

नक्षत्रेभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्यः स्वाहाहोरात्रेभ्यः स्वाहार्द्धमासेभ्यः स्वाहा मासेभ्यः स्वाहऽऋतुभ्यः स्वाहार्त्तवेभ्यः स्वाहा संवत्सराय स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याᳬस्वाहा चन्द्राय स्वाहा सूर्याय स्वाहा रश्मिभ्यः स्वाहा वसुभ्यः स्वाहा रुद्रेभ्यः स्वाहादित्येभ्यः स्वाहा मरुद्भ्यः स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा मूलेभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः

स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा पुष्पेभ्यः स्वाहा फलेभ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा ॥२८॥

पदार्थः— मनुष्यों को चाहिये कि (नक्षत्रेभ्यः) जो पदार्थ कभी नष्ट नहीं होते उन के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया (नक्षत्रियेभ्यः) उक्त पदार्थों के समूहों के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया (अहोरात्रेभ्यः) दिन रात्रि के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया (अर्द्धमासेभ्यः) शुक्ल कृष्ण पक्ष अर्थात् पखवाड़ों के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (मासेभ्यः) महीनों के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (ऋतुभ्यः) वसन्त आदि छः ऋतुओं के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (आर्त्तवेभ्यः) ऋतुओं में उत्पन्न हुए ऋतु ऋतु के पदार्थों के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया (संवत्सराय) वर्षों के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया (द्यावापृथिवीभ्याम्) प्रकाश और भूमि के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया (चन्द्राय) चन्द्रलोक के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ-क्रिया (सूर्य्याय) सूर्य्यलोक के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया (रश्मिभ्यः) सूर्य्य आदि की किरणों के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया (वसुभ्यः) पृथिवी आदि लोकों के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (रुद्रेभ्यः) दश प्राणों के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया (आदित्ये-भ्यः) काल के अवयव जो अविनाशी हैं उन के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (मरुद्भ्यः) पवनों के लिये (स्वाहा) उनके अनुकूल क्रिया (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) दिव्य गुणों के लिये (स्वाहा) सुन्दर क्रिया (मूलेभ्यः) सभों की जड़ों के लिये (स्वाहा) तदनुकूल क्रिया (शाखाभ्यः) शाखाओं के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (वनस्पतिभ्यः) वनस्पतियों के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (पुष्पेभ्यः) फूलों के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (फलेभ्यः) फलों के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया और (ओषधिभ्य) ओषधियों के लिये (स्वाहा) नित्य उत्तम क्रिया अवश्य करनी चाहिये ॥ २८ ॥

भावार्थः— मनुष्य नित्य सुगन्ध्यादि पदार्थों को अग्नि में छोड़ अर्थात् हवन कर पवन और सूर्य की किरणों द्वारा वनस्पति, ओषधि, मूल, शाखा पुष्प और फलादिकों में प्रवेश करा के सब पदार्थों की शुद्धि कर आरोग्यता की सिद्धि करें ॥ २८ ॥

पृथिव्या इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । लिङ्गोक्ता देवताः । निचृदत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्य्याय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाद्भ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा

वनस्पतिभ्यः स्वाहा परिप्लवेभ्यः स्वाहा चराचरेभ्यः स्वाहा सरीसृपेभ्यः स्वाहा ॥२९॥

पदार्थः—जो मनुष्य (पृथिव्यै) विथरी हुई इस पृथिवी के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया (अन्तरिक्षाय) अवकाश अर्थात् पदार्थों के बीच की पोल के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (दिवे) बिजुली की शुद्धि के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया (सूर्य्याय) सूर्य्य-मण्डल की उत्तमता के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया (चन्द्राय) चन्द्रमण्डल के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (नक्षत्रेभ्यः) अश्विनी आदि नक्षत्रलोकों की उत्तमता के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया (अद्भ्यः) जलों के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया (ओषधीभ्यः) ओषधियों के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया (वनस्पतिभ्यः) वट वृक्ष आदि के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया (परिप्लवेभ्यः) जो सब ओर से आते जाते उन तारागणों के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया (चराचरेभ्यः) स्थावर जंगम जीवों और जड़ पदार्थों के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया तथा (सरीसृपेभ्यः) जो रिंगते हैं उन सर्प्य आदि जीवों के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया को अच्छे प्रकार युक्त करें तो वे सब की शुद्धि करने को समर्थ हों ॥२९॥

भावार्थः—जो सुगन्धित आदि पदार्थ को पृथिवी आदि पदार्थों में अग्नि के द्वारा विस्तार के अर्थात् फैला के पवन और जल के द्वारा ओषधि आदि पदार्थों में प्रवेश करा सब को अच्छे प्रकार शुद्ध कर आरोग्यपन को सिद्ध कराते हैं वे आयुर्दा के बढ़ाने वाले होते हैं ॥२९॥

असव इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। वस्वादयो देवताः। कृतिश्छन्दः।
निषादः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

असवे स्वाहा वसवे स्वाहा विभुवे स्वाहा विवस्वते स्वाहा गणश्रिये स्वाहा गणपतये स्वाहाभिभुवे स्वाहाधिपतये स्वाहा शूषाय स्वाहा सꣳसर्पाय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा ज्योतिषे स्वाहा मलिम्लुचाय स्वाहा दिवा पतये स्वाहा ॥३०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! तुम (असवे) प्राणों के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया (वसवे) जो इस शरीर में वसता है उस जीव के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया (विभुवे) व्याप्त होने वाले पवन के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया (विवस्वते) सूर्य्य के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया (गणश्रिये) जो पदार्थों के लिये समूहों की शोभा

बिजुली है उसके लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया (गणपतये) पदार्थों के समूहों के पालने हारे पवन के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया (अभिभुवे) सम्मुख होने वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया (अधिपतये) सब के स्वामी राजा के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (शूषाय) बल और तीक्ष्णता के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया (संसर्पाय) जो भलीभांति करके रिंगे उस जीव के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया (चन्द्राय) सुवर्ण के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (ज्योतिषे) ज्योतिः अर्थात् सूर्य चन्द्र और तारागणों के प्रकाश के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया (मलिम्लुचाय) चोर के लिये (स्वाहा) उसके प्रबन्ध करने की क्रिया तथा (दिवा, पतये) दिन के पालने हारे सूर्य के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया को अच्छे प्रकार युक्त करो ॥३०॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि प्राण आदि की शुद्धि के लिये आग में पुष्टि करने वाले आदि पदार्थ का होम करें ॥३०॥

मधवे स्वाहेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । मासा देवताः । भुरिगत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

मधवे स्वाहा माधवाय स्वाहा शुक्राय स्वाहा शुचये स्वाहा नभसे स्वाहा नभस्याय स्वाहेषाय स्वाहोर्जाय स्वाहा सहसे स्वाहा सहस्याय स्वाहा तपसे स्वाहा तपस्याय स्वाहांहसस्पतये स्वाहा ॥३१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग (मधवे) मीठेपन आदि को उत्पन्न करने हारे चैत्र के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया (माधवाय) मधुरपन में उत्तम वैशाख के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया (शुक्राय) जल आदि को पवन के वेग से निर्मल करने हारे ज्येष्ठ के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया (शुचये) वर्षा के योग से भूमि आदि को पवित्र करने वाले आषाढ़ के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया (नभसे) भलीभांति सघन घन बद्दलों की घनघोर सुनवाने वाले श्रावण के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया (नभस्याय) आकाश में वर्षा से प्रसिद्ध होने हारे भादों के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया (इषाय) अन्न को उत्पन्न कराने वाले क्वार के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया (ऊर्जाय) बल और अन्न को उत्पन्न कराने वा बलयुक्त अन्न अर्थात् कुआंर में फूले हुए बाजरा आदि अन्न को पकाने पुष्ट करने हारे कार्तिक के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया (सहसे) बल देने वाले अगहन के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया (सहस्याय) बल देने में उत्तम पौष के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया (तपसे) ऋतु बदलने से धीरे धीरे शीत की निवृत्ति और जीवों के शरीरों में गरमी की प्रवृत्ति

कराने वाले माघ के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया (तपस्याय) जीवों के शरीरों में गरमी की प्रवृत्ति कराने में उत्तम फाल्गुन मास के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया और (अंहसः) महीनों में मिले हुए मलमास के लिये (पतये) पालने वाले के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया का अनुष्ठान करो ॥३१॥

भावार्थः—जो मनुष्य प्रतिदिन अग्निहोत्र आदि यज्ञ और अपनी प्रकृति के योग्य आहार और विहार आदि को करते हैं वे नीरोग होकर बहुत जीने वाले होते हैं ॥३१॥

वाजायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वाजादयो देवताः । अत्यष्टिश्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहापिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा स्वः स्वाहा मूर्ध्ने स्वाहा व्यश्नुविने स्वाहान्त्याय स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा ॥३२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम (वाजाय) अन्न के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (प्रसवाय) पदार्थों की उत्पत्ति करने के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (अपिजाय) घर के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (क्रतवे) बुद्धि वा कर्म के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (स्वः) अत्यन्त सुख के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (मूर्ध्ने) शिर की शुद्धि होने के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (व्यश्नुविने) व्याप्त होने वाले वीर्य के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (आन्त्याय) व्यवहारों के अन्त में होने वाले व्यवहार के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया अन्त में होने वाले (भौवनाय) जो संसार में प्रसिद्ध होता उस के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (भुवनस्य) संसार की (पतये) पालना करने वाले स्वामी के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया, (अधिपतये) सब के अधिष्ठाता अर्थात् सब पर जो एक शिक्षा देता है उसके लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया तथा (प्रजापतये) सब प्रजाजनों की पालना करने वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया को सदा भली भांति युक्त करो ॥३२॥

भावार्थः—जो मनुष्य अन्न, सन्तान, घर, बुद्धि और शिर आदि के शोधन से सुख बढ़ाने के लिये सत्यक्रिया को करते हैं वे परमात्मा की उपासना करके प्रजा के अधिक पालना करने वाले होते हैं ॥३२॥

आयुर्यज्ञेनेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । आयुरादयो देवताः । प्रकृतिश्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को अपना सर्वस्व अर्थात् सब पदार्थसमूह किसके अनुष्ठान के लिये भलीभांति अर्पण करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आयुर्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा प्राणो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहाऽपानो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा व्यानो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहोदानो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा समानो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा चक्षुर्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा वाग्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा मनो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहाऽऽत्मा यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा ब्रह्मा यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा स्वर्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा पृष्ठं यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा यज्ञो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को ऐसी इच्छा करनी चाहिये कि हमारी (आयुः) आयु कि जिससे हम जीते हैं वह (स्वाहा) अच्छी क्रिया से (यज्ञेन) परमेश्वर और विद्वानों के सत्कार से मिले हुए कर्म विद्या देने आदि के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (प्राणः) जीवाने का मूल मुख्य कारण पवन (स्वाहा) अच्छी क्रिया और (यज्ञेन) योगाभ्यास आदि के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (अपानः) जिससे दुःख को दूर करता है वह पवन (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) श्रेष्ठ काम के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (व्यानः) सब सन्धियों में व्याप्त अर्थात् शरीर को चलाने कर्म कराने आदि का जो निमित्त है वह पवन (स्वाहा) अच्छी क्रिया से (यज्ञेन) उत्तम काम के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (उदानः) जिससे बली होता है वह पवन (स्वाहा) अच्छी क्रिया से (यज्ञेन) उत्तम कर्म के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (समानः) जिससे अङ्ग अङ्ग में अन्न पहुंचाया जाता है वह पवन (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) यज्ञ के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (चक्षुः) नेत्र (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) सत्कर्म के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (श्रोत्रम्) कान आदि इन्द्रियां जो कि पदार्थों का ज्ञान कराती हैं (स्वाहा) अच्छी क्रिया से (यज्ञेन) सत्कर्म के साथ (कल्पताम्) समर्पित हों (वाक्) वाणी आदि कर्मेन्द्रियां (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) अच्छे काम के साथ (कल्पताम्) समर्पित हों (मनः) मन अर्थात् अन्तःकरण (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) सत्कर्म के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (आत्मा) जीव (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) सत्कर्म के साथ (कल्पताम्)

[समर्पित हो (ब्रह्मा) चार वेदों का जानने वाला (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) यज्ञादि सत्कर्म के साथ (कल्पताम्) समर्थ हो (ज्योतिः) ज्ञान का प्रकाश (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) यज्ञ के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (स्वः) सुख (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) यज्ञ के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (पृष्ठम्) पूछना वा जो बचा हुआ पदार्थ हो वह (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) यज्ञ के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (यज्ञः) यज्ञ अर्थात् व्यापक परमात्मा (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) अपने साथ (कल्पताम्) समर्पित हो ॥३३॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जितना अपना जीवन शरीर, प्राण, अन्तःकरण, दशों इन्द्रियां और सब से उत्तम सामग्री हो उसको यज्ञ के लिये समर्पित करें जिससे पापरहित कृतकृत्य होके परमात्मा को प्राप्त होकर इस जन्म और द्वितीय जन्म में सुख को प्राप्त होवें ॥३३॥

एकस्मा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर किसके अर्थ यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये इस विषय को
अगले मन्त्र में कहा है ॥

एक॑स्मै॒ स्वाहा॑ द्वाभ्या॒ᳬ᳭ स्वाहा॑ श॒ताय॒ स्वाहैक॑शताय॒ स्वाहा॒ व्युष्ट्यै॒ स्वाहा॑ स्व॒र्गाय॒ स्वाहा॑ ॥३४॥

पदार्थः - हे मनुष्यो ! तुम लोगों को (एकस्मै) एक अद्वितीय परमात्मा के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (द्वाभ्याम्) दो अर्थात् कार्य और कारण के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (शताय) अनेक पदार्थों के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (एकशताय) एकसौ एक व्यवहार वा पदार्थों के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (व्युष्ट्यै) प्रकाशित हुई पदार्थों को जलाने की क्रिया के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया और (स्वर्गाय) सुख को प्राप्त होने के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया भलीभांति युक्त करनी चाहिये ॥३४॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि, विशेष भक्ति से जिसके समान दूसरा नहीं वह ईश्वर तथा प्रीति और पुरुषार्थ से असंख्य जीवों को प्रसन्न करें जिससे संसार का सुख और मोक्ष सुख प्राप्त होवे ॥३४॥

इस अध्याय में आयु, वृद्धि, अग्नि के गुण, कर्म, यज्ञ, गायत्री मन्त्र का अर्थ और सब पदार्थों के शोधने के विधान आदि का वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की पिछले अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

अब बाईसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

---

* ओ३म् *

अथ त्रयोविंशोऽध्यायारम्भः

—❁:०❁:०❁:०❁—

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥

हिरण्यगर्भेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमेश्वरो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब तेईसवें अध्याय का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में ईश्वर क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकआसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (भूतस्य) उत्पन्न कार्यरूप जगत् के (अग्रे) पहिले (हिरण्यगर्भः) सूर्य चन्द्र तारे आदि ज्योति गर्भरूप जिसके भीतर हैं वह सूर्य आदि कारणरूप पदार्थों में गर्भ के समान व्यापक स्तुति करने योग्य (समवर्त्तत) अच्छे प्रकार वर्त्तमान और इस सब जगत् का (एकः) एक ही (जातः) प्रसिद्ध (पतिः) पालना करने हारा (आसीत्) होता है (सः) वह (इमाम्) इस (पृथिवीम्) विस्तारयुक्त पृथिवी (उत) और (द्याम्) सूर्य आदि लोकों को रच के इन को (दाधार) तीनों काल में धारण करता है उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सुख देने हारे परमात्मा के लिये जैसे हम लोग (हविषा) सर्वस्व दान करके उस की (विधेम) परिचर्या सेवा करें वैसे तुम भी किया करो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जब सृष्टि प्रलय को प्राप्त होकर प्रकृति में स्थिर होती है और फिर उत्पन्न होती है, उस के आगे जो एक जागता हुआ परमात्मा वर्त्तमान रहता है, तब सब जीव मूर्छा

सी पाये हुए होते हैं। वह कल्प के अन्त में प्रकाशरहित पृथिवी आदि सृष्टि तथा प्रकाशसहित सूर्य आदि लोकों की सृष्टि का विधान धारण और सब जीवों के कर्मों के अनुकूल जन्म देकर सब के निर्वाह के लिये सब पदार्थों का विधान करता है. वही सब को उपासना करने योग्य देव है यह जानना चाहिये ॥१॥

उपयामगृहीत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। परमेश्वरो देवता। निचृदाकृतिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिः सूर्य्यस्ते महिमा। यस्तेऽहन्त्संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते वायावन्तरिक्षे महिमा सम्बभूव यस्ते दिवि सूर्य्ये महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये स्वाहा देवेभ्यः ॥२॥

पदार्थः—हे भगवन् जगदीश्वर! जो आप (उपयामगृहीतः) यम जो योगाभ्यास सम्बन्धी काम हैं, उन से समीप में साक्षात् किये अर्थात् हृदयाकाश में प्रगट किये हुए (असि) हैं उन (जुष्टम्) सेवा किये हुए वा प्रसन्न किये (त्वा) आप को (प्रजापतये) प्रजापालन करने हारे राजा की रक्षा के लिये मैं (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं जिन (ते) आप की (एषः) यह (योनिः) प्रकृति जगत् का कारण है जो (ते) आप का (सूर्यः) सूर्यमण्डल (महिमा) बड़ाई रूप तथा (यः) जो (ते) आप की (अहन्) दिन और (संवत्सरे) वर्ष में नियम बन्धनद्वारा (महिमा) बड़ाई (सम्बभूव) संभावित है (यः) जो (ते) आप की (वायौ) पवन और (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (महिमा) बड़ाई (सम्बभूव) प्रसिद्ध है तथा (यः) जो (ते) आप की (दिवि) बिजुली अर्थात् सूर्य आदि के प्रकाश और (सूर्ये) सूर्य में (महिमा) बड़ाई (सम्बभूव) प्रत्यक्ष है (तस्मै) उस (महिम्ने, प्रजापतये) प्रजापालनरूप बड़ाई वाले (ते) आप के लिये और (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (स्वाहा) उत्तम विद्यायुक्त बुद्धि सब को ग्रहण करनी चाहिये ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जिस परमेश्वर के महिमा को यह सब जगत् प्रकाश [=प्रकाशित] करता है उस परमेश्वर की उपासना को छोड़ और किसी की उपासना उस के स्थान में नहीं करनी चाहिये और जो कोई कहे कि परमेश्वर के होने में क्या प्रमाण है, उसके प्रति जो यह जगत् वर्त्तमान है सो सब परमेश्वर का प्रमाण कराता है यह उत्तर देना चाहिये ॥२॥

यः प्राणत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमेश्वरो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैकऽइद्राजा जगतो बभूव ।
यऽईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (यः) जो (एकः) एक (इव) ही (महित्वा) अपनी महिमा से (निमिषतः) नेत्र आदि से चेष्टा को करते हुए (प्राणतः) प्राणी रूप (द्विपदः) दो पग वाले मनुष्य आदि वा (चतुष्पद) चार पग वाले गौ आदि पशुसम्बन्धी इस (जगतः) संसार का (राजा) अधिष्ठाता (बभूव) होता है और (यः) जो (अस्य) इस संसार का (ईशे) सर्वोपरि स्वामी है उस (कस्मै) आनन्द-स्वरूप (देवाय) अतिमनोहर परमेश्वर की (हविषा) विशेष भक्तिभाव से (विधेम) सेवा करें वैसे विशेष भक्तिभाव [का] आप लोगों को भी विधान करना चाहिये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो एक ही सब जगत् का महाराजाधिराज समस्त जगत् का उत्पन्न करने हारा सकल ऐश्वर्ययुक्त महात्मा न्यायाधीश है, उसी की उपासना से तुम सब धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के फलों को पाकर सन्तुष्ट होओ ॥३॥

उपयामगृहीत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमेश्वरो देवता । विकृतिश्छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिश्चन्द्र-मास्ते महिमा । यस्ते रात्रौ संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते पृथिव्या-मग्नौ महिमा सम्बभूव यस्ते नक्षत्रेषु चन्द्रमसि महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये देवेभ्यः स्वाहा ॥४॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! जो आप (उपयामगृहीतः) सत्कर्म अर्थात् योगा-भ्यास आदि उत्तम काम से स्वीकार किये हुए (असि) हो उन (त्वा, जुष्टम्) सेवा किये हुए आप को (प्रजापतये) प्रजा की पालना करने वाले राजा की रक्षा के लिये मैं (गृह्णामि) ग्रहण करता अर्थात् मन में धरता हूं जिन (ते) आप के संसार में (एषः)

यह (योनिः) जल वा जिन (ते) आप का संसार में (चन्द्रमाः) चन्द्रलोक (महिमा) बड़प्पन वा जिन (ते) आप का (यः) जो (रात्रौ) रात्रि और (संवत्सरे) वर्ष में (महिमा) बड़प्पन (सम्बभूव) सम्भव हुआ, होता और होगा (यः) जो (ते) आप की सृष्टि में (पृथिव्याम्) अन्तरिक्ष वा भूमि और (अग्नौ) आग में (महिमा) बड़प्पन (सम्बभूव) सम्भव हुआ, होता और होगा तथा जिन (ते) आप की सृष्टि में (यः) जो (नक्षत्रेषु) कारण रूप से विनाश को न प्राप्त होने वाले लोक लोकान्तरों में और (चन्द्रमसि) चन्द्रलोक में (महिमा) बड़प्पन (सम्बभूव) सम्भव हुआ, होता और होगा उन (ते) आप के (तस्मै) उस (महिम्ने) बड़प्पन (प्रजापतये) प्रजा पालने हारे राजा (देवेभ्यः) और विद्वानों के लिये (स्वाहा) सत्याचरणयुक्त क्रिया का हम लोगों को अनुष्ठान करना चाहिये ।।४।।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिसके महिमा सामर्थ्य से सब जगत् विराजमान जिसका अनन्त महिमा और जिसकी सिद्धि करने में रचना से भरा हुआ समस्त जगत् दृष्टान्त है, उसी की सब मनुष्य उपासना करें ।।४।।

युञ्जन्तीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमेश्वरो देवता । गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ।।

फिर ईश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः ।
रोचन्ते रोचना दिवि ।।५।।

पदार्थः—जो पुरुष (परि) सब ओर से (तस्थुषः) स्थावर जीवों को (चरन्तम्) प्राप्त होते हुए बिजुली के समान वर्त्तमान (अरुषम्) प्राणियों के मर्मस्थल जिन में पीड़ा होने से प्राण का वियोग शीघ्र हो जाता है, उन स्थानों की रक्षा करने के लिये स्थिर होते हुए (ब्रध्नम्) सब से बड़े सर्वोपरि विराजमान परमात्मा को अपने आत्मा के साथ (युञ्जन्ति) युक्त करते हैं, वे (दिवि) सूर्य में (रोचनाः) किरणों के समान (रोचन्ते) परमात्मा में प्रकाशमान होते हैं ।।५।।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे प्रत्येक ब्रह्माण्ड में सूर्य प्रकाशमान है, वैसे सर्वजगत् में परमात्मा प्रकाशमान है । जो योगाभ्यास से उस अन्तर्यामी परमेश्वर को अपने आत्मा से युक्त करते हैं, वे सब ओर से प्रकाश को प्राप्त होते हैं ।।५।।

युञ्जन्ती त्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सूर्यो देवता । विराड्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ।।

अब किस से ईश्वर की प्राप्ति होने योग्य है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे शिक्षा करने वाले सज्जन (काम्या) मनोहर(हरी) ले जाने हारे (विपक्षसा) जो कि विविध प्रकारों से भली भांति ग्रहण किये हुए (शोणा) लाल लाल रङ्ग से युक्त (धृष्णू) अतिपुष्ट (नृवाहसा) मनुष्यों को एक देश से दूसरे देश को पहुंचानेहारे दो घोड़ों को (रथे) रथ में (युञ्जन्ति) जोड़ते हैं वैसे योगीजन (अस्य) इस परमेश्वर के बीच इन्द्रियां अन्तःकरण और प्राणों को युक्त करते हैं ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे मनुष्य अच्छे सिखाये हुए घोड़ों से युक्त रथ से एक स्थान से दूसरे स्थान को शीघ्र प्राप्त होते हैं, वसे ही विद्या सज्जनों का संग और योगाभ्यास से परमात्मा को शीघ्र प्राप्त होते हैं ॥६॥

यद्वात इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर मनुष्य किस का सङ्ग करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यद्वातोऽअपोऽअगनीगन्प्रियामिन्द्रस्य तन्वम् ।
एतᳬस्तोतरनेन पथा पुनरश्वमावर्त्तयासि नः ॥७॥

पदार्थः—हे (स्तोतः) स्तुति करने हारे जन ! जैसे शिल्पी लोग (इन्द्रस्य) बिजुली के (प्रियाम्) अति सुन्दर (तन्वम्) विस्तारयुक्त शरीर को (वातः) पवन के समान पाकर (यत्) जिस कलायन्त्र रूपी घोड़े और (अपः) जलों को (अगनीगन्) प्राप्त होते हैं वैसे (एतम्) इस (अश्वम्) शीघ्र चलने हारे कलायन्त्र रूप घोड़े को (अनेन) उक्त बिजुली रूप (पथा) मार्ग से आप प्राप्त होते (पुनः) फिर (नः) हम लोगों को (आ, वर्त्तयासि) भली भांति वर्त्ताते अर्थात् इधर उधर लेजाते हो उन आप का हम लोग सत्कार करें ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्य ! जो तुम को अच्छे मार्ग से चलाते हैं, उन के संग से तुम लोग पवन और बिजुली आदि की विद्या को प्राप्त होओ ॥७॥

वसव इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वाय्वादयो देवताः । अत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वसवस्त्वाञ्जन्तु गायत्रेण छन्दसा रुद्रास्त्वाञ्जन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसादित्यास्त्वाञ्जन्तु जागतेन छन्दसा। भूर्भुवः स्वर्लाजी३ञ्छाची३न्यव्ये गव्यऽएतदन्नमत्त देवाऽएतदन्नमद्धि प्रजापते ॥८॥

पदार्थः--हे (प्रजापते) प्रजाजनों को पालने हारे राजन्! (वसवः) प्रथम कक्षा के विद्वान् (गायत्रेण) गायत्री छन्द से कहने योग्य (छन्दसा) स्वच्छन्द अर्थ से जिन (त्वाम्) आप को (अञ्जन्तु) चाहें (रुद्राः) मध्यम कक्षा के विद्वान् जन (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप् छन्द से प्रकाश किये हुए (छन्दसा) स्वच्छन्द अर्थ से जिन (त्वा) आप को (अञ्जन्तु) चाहें वा (आदित्याः) उत्तम कक्षा के विद्वान् जन (जागतेन) जगती छन्द से प्रकाशित किये हुए (छन्दसा) स्वच्छन्द अर्थ से जिन (त्वा) आप को (अञ्जन्तु) चाहें सो आप (एतत्) इस (अन्नम्) अन्न को (अद्धि) खाइये। हे (देवाः) विद्वानो! तुम (यव्ये) यवों के खेत में उत्पन्न (गव्ये) गौ के दूध दही आदि उत्तम पदार्थ में मिले हुए (एतम्) इस (अन्नम्) अन्न को (अत्त) खाओ तथा (लाजीन्) अपनी अपनी कक्षा में चलते हुए (शाचीन्) प्रगट (भूः) इस प्रत्यक्ष लोक (भुवः) अन्तरिक्षस्थ लोक और (स्वः) प्रकाश में स्थिर सूर्य्यादि लोकों को प्राप्त होओ ॥८॥

भावार्थः—जो विद्वान् जन अंगों और उपांगों (अंगों के अंगों) से युक्त चारों वेदों को मनुष्यों को पढ़ाते हैं वे धन्यवाद के योग्य होते हैं ॥८॥

कः स्विदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। जिज्ञासुर्देवता। निचृदत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

अब विद्वान् जनों को क्या २ पूछना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

कः स्विदेकाकी चरति कऽउं स्विज्जायते पुनः।
किंस्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत् ॥९॥

पदार्थः—हे विद्वानो! हम लोग तुम को यह पूछते हैं कि (कः स्वित्) कौन (एकाकी) एकाएकी अकेला (चरति) विचरता है (उ) और (कः, स्वित्) कौन (पुनः) वार वार (जायते) प्रगट होता है (किम्, स्वित्) क्या (हिमस्य) शीत का (भेषजम्) औषध और (किम्) क्या (उ) तो (महत्) बड़ा (आवपनम्) बीज बोने का स्थान है ॥९॥

भावार्थः—इन उक्त प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहे हुए हैं यह

जानना चाहिये । मनुष्यों को योग्य है कि सदा इसी प्रकार के प्रश्न किया करें ॥९॥

सूर्य्यं इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सूर्यो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब पिछले मन्त्र में कहे प्रश्नों के उत्तर को कहते हैं ॥

सूर्यऽएकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः ।
अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥१०॥

पदार्थः—हे जानने की इच्छा करने वाले मनुष्यो ! (सूर्य्यः) सूर्य्य (एकाकी) विना सहाय अपनी कक्षा में (चरति) चलता है (पुनः) फिर इसी सूर्य के प्रकाश से (चन्द्रमाः) चन्द्र लोक (जायते) प्रकाशित होता है (अग्निः) आग (हिमस्य) शीत का (भेषजम्) औषध है (भूमिः) पृथिवी (महत्) बड़ा (आवपनम्) बोने का स्थान है इस को तुम लोग जानो ॥१०॥

भावार्थः—इस संसार में सूर्यलोक अपनी आकर्षण शक्ति से अपनी ही कक्षा में वर्त्तमान है और उसी के प्रकाश से चन्द्र आदि लोक प्रकाशित होते हैं। अग्नि के समान शीत के हटाने को कोई वस्तु और पृथिवी के तुल्य बड़ा पदार्थों के बोने का स्थान नहीं है यह मनुष्यों को जानना चाहिये ॥१०॥

कास्विदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । जिज्ञासुर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर प्रश्नों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किंस्विदासीद् बृहद्वयः ।
का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ॥११॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! हम लोग तुम्हारे प्रति पूछते हैं कि (का, स्वित्) कौन (पूर्वचित्तिः) स्मरण का प्रथम पहिला विषय (आसीत्) हुआ है (किम्, स्वित्) कौन (बृहत्) बड़ा (वयः) उड़ने हारा पक्षी (आसीत्) है (का, स्वित्) कौन (पिलिप्पिला) पिलपिली चिकनी वस्तु (आसीत्) तथा (का, स्वित्) कौन (पिशङ्गिला) प्रकाश-रूप को निगल जाने वाली वस्तु है ॥११॥

भावार्थः—इन प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में हैं । जो विद्वानों के प्रति न पूछें तो आप विद्वान् भी न हों ॥११॥

द्यौरासीदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विद्युदादयो देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब पिछले प्रश्नों के उत्तरों को कहते हैं ॥

द्यौरा॑सीत्पू॒र्वचि॑त्ति॒रश्व॑ऽआसीद् बृ॒हद्वयः॑ ।
अवि॑रासीत्पिलि॒प्पिला॒ रात्रि॑रासीत्पिश॒ङ्गिला॑ ॥१२॥

पदार्थः—हे जानने की इच्छा करने वालो ! (पूर्वचित्तिः) प्रथम स्मृति का विषय (द्यौः) दिव्यगुण देने हारी वर्षा (आसीत्) है (बृहत्) बड़े (वयः) उड़ने हारे (अश्वः) मार्गों को व्याप्त होने वाले पक्षी के तुल्य अग्नि (आसीत्) है (पिलिप्पिला) वर्षा से पिलिपिली चिकनी शोभायमान (अविः) अन्नादि से रक्षा आदि उत्तम गुण प्रगट करने वाली पृथिवी (आसीत्) है और (पिशङ्गिला) प्रकाशरूप को निगलने अर्थात् अन्धकार करने हारी (रात्रिः) रात (आसीत्) है यह तुम जानो ॥१२॥

भावार्थः—हवन और सूर्य रूपादि अग्नि के ताप से सब गुणों से युक्त अन्नादि से संसार की स्थिति करने वाली वर्षा होती है। उस वर्षा से सब ओषधि आदि उत्तम पदार्थ युक्त पृथिवी होती और सूर्य्य रूप अग्नि से ही प्राणियों के विश्राम के लिये रात्रि होती है ॥१२॥

वायुरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ब्रह्मादयो देवताः । भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब विद्वानों को मनुष्य कहां युक्त करने चाहियें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वा॒युष्ट्वा॑ पच॒तैर॑व॒त्वसि॑तग्रीव॒श्छागै॒र्न्य॒ग्रोध॑श्चम॒सैः श॒ल्मलि॒र्वृद्ध्या॑ ।
ए॒ष स्य रा॒थ्यो॒ वृषा॑ प॒ड्भिश्च॒तुर्भि॒रेद॑गन्ब्र॒ह्माकृ॑ष्णश्च॒ नोऽवतु॒
नमो॒ऽग्नये॑ ॥१३॥

पदार्थः—हे विद्यार्थी जन ! (पचतैः) अच्छे प्रकार पाकों से (वायुः) स्थूल कार्यरूप पवन (छागैः) काटने की क्रियाओं से (असितग्रीवः) काली चोटियों वाला अग्नि और (चमसैः) मेघों से (न्यग्रोधः) वट वृक्ष (वृद्ध्या) उन्नति के साथ (शल्मलिः) सेंबर वृक्ष (त्वा) तुझ को (अवतु) पाले जो (एषः) यह (राथ्यः) सड़कों में चलने में कुशल और (वृषा) सुखों की वर्षा करने हारा है (स्यः) वह (चतुर्भिः, पड्भिः, इव) जिन से गमन करता है उन चारों पगों से तुझ को (आऽगन्) प्राप्त हो (च) तथा जो (अकृष्णः) अविद्यारूप अन्धकार से पृथक् (ब्रह्मा) चार वेदों को जानने हारा उत्तम विद्वान् (नः) हम लोगों को सब गुणों में (अवतु) पहुंचावे । उस

(अग्नये) विद्या से प्रकाशमान चारों वेदों को पढ़े हुए विद्वान् के लिये (नमः) अन्न देना चाहिये ॥१३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! पवन श्वास आदि के चलने, आग अन्न आदि के पकाने, सूर्यमण्डल, वर्षा, वृक्ष, फल आदि, घोड़े आदि गमन और विद्वान् शिक्षा से तुम्हारी रक्षा करते हैं उनको तुम जानो और विद्वानों का सत्कार करो ॥१३॥

संशितो रश्मिनेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ब्रह्मा देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

संशितो रश्मिना रथः संशितो रश्मिना हयः ।

संशितो अप्स्वप्सुजा ब्रह्मा सोमपुरोगवः ॥१४॥

पदार्थः—जो मनुष्यों से (रश्मिना) किरण समूह से (रथः) आनन्द को सिद्ध करने वाला यान (संशितः) अच्छे प्रकार सूक्ष्म कारीगरी से बनाया (रश्मिना) लगाम की रस्सी आदि से (हयः) घोड़ा (संशितः) भलीभांति चलने में तीक्ष्ण अर्थात् उत्तम क्रिया तथा (अप्सु) प्राणों में (अप्सुजाः) जो प्राणवायु रूप से संचार करने वाला पवन वा बाष्प (सोमपुरोगवः) ओषधियों का बोध और ऐश्वर्य्य का योग जिस से पहिले प्राप्त होने वाला है वह (ब्रह्मा) बड़ा योगी विद्वान् (संशितः) अतिप्रशंसित किया जाय तो क्या क्या सुख न मिले ॥१४॥

भावार्थः—जो मनुष्य पदार्थों के विशेष ज्ञान से विद्वान् होते हैं वे औरों को विद्वान् करके प्रशंसा को पावें ॥१४॥

स्वयमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विद्वान् देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब पढ़ने वा उत्तम विद्या-बोध चाहने वाले कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स्वयं वाजिँस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व ।

महिमा तेऽन्येन न सन्नशे ॥१५॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) बोध चाहने वाले जन ! तू (स्वयम्) आप (तन्वम्) अपने शरीर को (कल्पयस्व) समर्थ कर (स्वयम्) आप अच्छे विद्वानों को (यजस्व) मिल और (स्वयम्) आप उनकी (जुषस्व) सेवा कर जिससे (ते) तेरी (महिमा) बड़ाई तेरा प्रताप (अन्येन) और के साथ (न) मत (संनशे) नष्ट हो ॥१५॥

भावार्थः—जैसे अग्नि आप से आप प्रकाशित होता आप मिलता तथा आप सेवा को प्राप्त है वैसे जो वोध चाहने वाले जन आप पुरुषार्थयुक्त होते हैं उनका प्रताप, बड़ाई कभी नहीं नष्ट होती ॥१५॥

न वा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सविता देवता। विराड्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अब मनुष्य कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

न वाऽउँऽएतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ२ऽइदेषि पथिभिः सुगेभिः। यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥१६॥

पदार्थः—हे विद्यार्थी! (यत्र) जहां (ते) वे (सुकृतः) धर्मात्मा योगी विद्वान् (आसते) बैठते और सुख को (ययुः) प्राप्त होते हैं वा (यत्र) जहां (सुगेभिः) सुख से जाने योग्य (पथिभिः) मार्गों से तू (देवान्) दिव्य अच्छे अच्छे गुण वा विद्वानों को (एषि) प्राप्त होता है और जहां (एतत्) यह पूर्वोक्त सब वृत्तान्त (उ) तो वर्त्तमान है और स्थिर हुआ तू (न) नहीं (म्रियसे) नष्ट हो (न, वै) नहीं (रिष्यसि) दूसरे का नाश करे (तत्र) वहां (इत्) ही (त्वा) तुझे (सविता) समस्त जगत् का उत्पन्न करने वाला परमेश्वर (देवः) जोकि आप प्रकाशमान है वह (दधातु) स्थापन करे ॥१६॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपने अपने रूप को जानें तो अविनाशीभाव को जान सकें जो धर्म्मयुक्त मार्ग से चलें तो अच्छे कर्म करने हारों के आनन्द को पावें जो परमात्मा की सेवा करें तो जीवों को सत्यमार्ग में स्थापन करें ॥१६॥

अग्निरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अग्न्यादयो देवताः। अतिशक्वर्य्यौ छन्दसी। पञ्चमः स्वरः॥

अब पशु कौन हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्निः पशुरासीत्तेनायजन्त सऽएतं लोकमजयद्यस्मिन्नग्निः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैताऽअपः। वायुः पशुरासीत्तेनायजन्त सऽएतं लोकमजयद्यस्मिन्वायुः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैताऽअपः। सूर्य्यः पशुरासीत्तेनायजन्त सऽएतं लोकमजयद्यस्मिन्त्सूर्य्यः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैताऽअपः ॥१७॥

पदार्थः - हे विद्याबोध चाहने वाले पुरुष ! (अस्मिन्) जिस देखने योग्य लोक में (सः) वह (अग्निः) अग्नि (पशुः) देखने योग्य (आसीत्) है (तेन) उस से जिस प्रकार यज्ञ करने वाले (अयजन्त) यज्ञ करें उस प्रकार से तू यज्ञ कर जैसे (सः) वह विद्वान् (एतम्) इस (लोकम्) देखने योग्य स्थान को (अजयत्) जीतता है वैसे इस को जीत यदि (तम्) उस को (जेष्यसि) जीतेगा तो वह (अग्निः) अग्नि (ते) तेरा (लोकः) देखने योग्य (भविष्यति) होगा इस से तू (एताः) इन यज्ञ से शुद्ध किये हुए (अपः) जलों को (पिब) पी। (यस्मिन्) जिस में (सः) वह (वायुः) पवन (पशुः) देखने योग्य (आसीत्) है और जिस से यज्ञ करने वाले (अयजन्त) यज्ञ करें (तेन) उससे तू यज्ञ कर जैसे (सः) वह विद्वान् (एतम्) इस वायुमण्डल के रहने के (लोकम्) लोक को (अजयत्) जीते वैसे तू जीत जो (तम्) उस को (जेष्यसि) जीतेगा तो वह (वायुः) पवन (ते) तेरा (लोकः) देखने योग्य (भविष्यति) होगा इस से तू (एताः) इन (अपः) यज्ञ से शुद्ध किये हुए प्राण रूपी पवनों को (पिब) धारण कर (यस्मिन्) जिस में वह (सूर्य्यः) सूर्य्यमण्डल (पशुः) देखने योग्य (आसीत्) है (तेन) उस से (अयजन्त) यज्ञ करने वाले यज्ञ करें जैसे (सः) वह विद्वान् (एतम्) इस सूर्य्यमण्डल के ठहरने के (लोकम्) लोक को (अजयत्) जीतता है वैसे तू जीत जो तू (तम्) उस को (जेष्यसि) जीतेगा तो (सः) वह (सूर्य) सूर्य्यमण्डल (ते) तेरा (लोकः) देखने योग्य (भविष्यति) होगा इससे तू (एताः) यज्ञ से शुद्धि किये हुए (अपः) संसार में व्याप्त हो रहे सूर्यप्रकाशों को (पिब) ग्रहण कर ॥१७॥

भावार्थः— हे मनुष्यो ! सब यज्ञों में अग्नि आदि को ही पशु जानो किन्तु प्राणी इन यज्ञों में मारने योग्य नहीं न होमने योग्य हैं जो ऐसे जान कर सुगन्धि आदि अच्छे अच्छे पदार्थों को भली भांति बना आग में होम करने हारे होते हैं वे पवन और सूर्य को प्राप्त होकर वर्षा के द्वारा वहां से छूट कर ओषधि, प्राण, शरीर और बुद्धि को क्रम से प्राप्त होकर सब प्राणियों को आनन्द देते हैं। इस यज्ञकर्म के करने वाले पुण्य की बहुताई से परमात्मा को प्राप्त होकर सत्कारयुक्त होते हैं ॥१७॥

अथ प्राणायेत्यस्य मंत्रस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्राणादयो देवताः। विराड् जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर मनुष्यों को क्या क्या जानना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है

प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा। अम्बेऽअम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन। ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ॥१८॥

पदार्थः—हे (अम्बे) माता (अम्बिके) दादी (अम्बालिके) वा परदादी (कश्चन) कोई (अश्वकः) घोड़े के समान शीघ्रगामी जन जिस (कांपीलवासिनीम्) सुखग्राही मनुष्य को बसाने वाली (सुभद्रिकाम्) उत्तम कल्याण करने हारी लक्ष्मी को ग्रहण कर (ससस्ति) सोता है वह (मा) मुझे (न) नहीं (नयति) अपने वश में लाती इस से मैं (प्राणाय) प्राण के पोषण के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी (अपानाय) दुःख के हटाने के लिये (स्वाहा) सुशिक्षित वाणी और (व्यानाय) सब शरीर में व्याप्त होने वाले अपने आत्मा के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी को युक्त करता हूं ॥१८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे माता, दादी, परदादी अपने अपने सन्तानों को अच्छी सिखावट पहुँचाती है वैसे तुम लोगों को भी अपने सन्तान शिक्षित करने चाहियें । धन का स्वभाव है कि जहां यह इकट्ठा होता है उन जनों को निद्रालु आलसी और कर्महीन कर देता है इससे धन पाकर भी मनुष्य को पुरुषार्थ ही करना चाहिये ॥१८॥

गणानां त्वेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । गणपतिर्देवता । शक्वरी छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्य को कैसे परमात्मा की उपासना करनी चाहिये इस विषय को
अगले मन्त्र में कहा है ॥

गणानां त्वा गणपतिꣳहवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳहवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥१९॥

पदार्थः हे जगदीश्वर ! हम लोग (गणानाम्) गणों के बीच (गणपतिम्) गणों के पालने हारे (त्वा) आप को (हवामहे) स्वीकार करते (प्रियाणाम्) अति-प्रिय सुन्दरों के बीच (प्रियपतिम्) अतिप्रिय सुन्दरों के पालने हारे (त्वा) आप की (हवामहे) प्रशंसा करते (निधीनाम्) विद्या आदि पदार्थों की पुष्टि करने हारों के बीच (निधिपतिम्) विद्या आदि पदार्थों की रक्षा करने हारे (त्वा) आप को (हवा-महे) स्वीकार करते हैं । हे (वसो) परमात्मन् ! जिस आप में सब प्राणी बसते हैं सो आप (मम) मेरे न्यायाधीश हूजिये जिस (गर्भधम्) गर्भ के समान संसार को धारण करने हारी प्रकृति को धारण करने हारे (त्वम्) आप (आ, अजासि) जन्मादि दोष-रहित भली भांति प्राप्त होते हैं उस (गर्भधम्) प्रकृति के धर्त्ता आप को (अहम्) मैं (आ, अजानि) अच्छे प्रकार जानूं ॥१९॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो सब जगत् की रक्षा, चाहे हुए सुखों का

विधान, ऐश्वर्यों को भली भांति देता, प्रकृति का पालन और सब बीजों का विधान करता है उसी जगदीश्वर की उपासना सब करो ॥१९॥

ता उभावित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। राजप्रजे देवते। स्वराडनुष्टुप्छन्दः।
गान्धारः स्वरः॥

अब राजा और प्रजाजन परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ताऽउभौ चतुरः पदः सम्प्रसारयाव स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथां वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु ॥२०॥

पदार्थः—हे राजाप्रजाजनो! तुम (उभा) दोनों (तौ) प्रजा राजाजन जैसे (स्वर्गे) सुख से भरे हुए (लोके) देखने योग्य व्यवहार वा पदार्थ में (चतुरः) चारों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष (पदः) जो कि पाने योग्य हैं उनको (प्रोर्णुवाथाम्) प्राप्त होओ वैसे इन का हम अध्यापक और उपदेशक दोनों (संप्रसारयाव) विस्तार करें जैसे (रेतोधाः) आलिंगन अर्थात् दूसरे से मिलने को धारण करने और (वृषा) दुष्टों के सामर्थ्य को बांधने अर्थात् उन की शक्ति को रोकने हारा (वाजी) विशेष ज्ञानवान् राजा प्रजाजनों में (रेतः) अपने पराक्रम को स्थापन करे वैसे प्रजाजन (दधातु) स्थापन करें॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजा प्रजा पिता और पुत्र के समान अपना वर्त्ताव वर्त्तें तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष फल की सिद्धि को यथावत् प्राप्त हों जैसे राजा प्रजा के सुख और बल को बढ़ावें वैसे प्रजा भी राजा के सुख और बल की उन्नति करे॥२०॥

उत्सक्थ्या इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। न्यायाधीशो देवता। भुरिग्गायत्री
छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर राजा को दुष्टाचारी प्राणी भलीभांति दण्ड देने योग्य हैं इस
विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उत्सक्थ्याऽअव गुदं धेहि समञ्जिं चारया वृषन्।
य स्त्रीणां जीवभोजनः ॥२१॥

पदार्थः—हे (वृषन्) शक्तिमन्! (यः) जो (स्त्रीणाम्) स्त्रियों के बीच (जीवभोजनः) प्राणियों का मांस खाने वाला व्यभिचारी पुरुष वा पुरुषों के बीच उक्त प्रकार की व्यभिचारिणी स्त्री वर्त्तमान हो उस पुरुष और स्त्री को बांध कर (उत्सक्थ्याः) ऊपर को पग और नीचे को शिर कर ताड़ना करके और अपनी प्रजा

के मध्य (प्र, गुदम्) उत्तम सुख को (धेहि) धारण करो और (अंजिम्) अपने प्रकट न्याय को (संचारय) भली भांति चलाओ ॥२१॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो विषय-सेवा में रमते हुए जन वा वैसी स्त्री व्यभिचार को बढ़ावें उन उन को प्रबल दण्ड से शिक्षा देनी चाहिये ॥२१॥

यकासकावित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजप्रजे देवते । विराडनुष्टुप् छन्दः । गांधारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यकासकौ शकुन्तिकाहलगिति वञ्चति ।
आहन्ति गभे पसो निगल्गलीति धारका ॥२२॥

पदार्थः—जिस (गभे) प्रजा में राजा अपने (पसः) राज्य को (आहन्ति) जाने वा प्राप्त हो वह (धारका) सुख को धारण करने वाली प्रजा (निगल्गलीति) निरन्तर सुख को निगलती सी वर्त्तमान होती है और जिससे (यका) जो (असकौ) यह प्रजा (शकुन्तिका) छोटी चिड़िया के समान निर्बल है इससे इस प्रजा को (आहलक्) अच्छे प्रकार जो हल से भूमि करोदता है उस को प्राप्त होने वाला अर्थात् हल से जुती हुई भूमि से कर को लेने वाला राजा (वञ्चतीति) ऐसे वञ्चता अपना कर धन लेता है कि जैसे प्रजा को सुख प्राप्त हो ॥२२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । यदि राजा न्याय से प्रजा की रक्षा न करे और प्रजा से कर लेवे तो जैसे जैसे प्रजा नष्ट हो वैसे राजा भी नष्ट होता है । यदि विद्या और विनय से प्रजा की भली भांति रक्षा करे तो राजा और प्रजा सब ओर से वृद्धि को पावें ॥२२॥

यकोऽसकावित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजप्रजे देवते । बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यकोऽसकौ शकुन्तकऽआहलगिति वञ्चति ।
विवक्षतऽइव ते मुखमध्वर्यो मा नस्त्वमभिभाषथाः ॥२३॥

पदार्थः—हे (अध्वर्यो) यज्ञ के समान आचरण करने हारे राजा ! (त्वम्) तू (नः) हम लोगों के प्रति (मा, अभिभाषथाः) झूठ मत बोलो और (विवक्षत इव) बहुत गप्प सप्प बकते हुए मनुष्य के मुख के समान (ते) तेरा (मुखम्) मुख मत हो यदि इस प्रकार (यकः) जो (असकौ) यह राजा गप्प सप्प करेगा तो (शकुन्तकः) निर्बल पखेरू के समान (आहलक्) भली भांति उच्छिन्न जैसे हो (इति) इस प्रकार (वञ्चति) ठगा जायगा ॥२३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। राजा कभी झूठी प्रतिज्ञा करने और कटुवचन बोलने वाला न हो तथा न किसी को ठगे जो यह राजा अन्याय करे तो आप भी प्रजाजनों से ठगा जाय ॥२३॥

माता चेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। भूमिसूर्यौ देवते। निचृदनुष्टुप्छन्दः। गांधारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

माता च ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्य रोहतः।
प्रतिलामीति ते पिता गभे मुष्टिमतंसयत् ॥२४॥

पदार्थः—हे राजन्! यदि (ते) आप की (माता) पृथिवी के तुल्य सहनशील मान करने वाली माता (च) और (ते) आप का (पिता) सूर्य्य के समान तेजस्वी पालन करने वाला पिता (च) भी (वृक्षस्य) छेदन करने योग्य संसार रूप वृक्ष के राज्य की (अग्रम्) मुख्य श्री शोभा वा लक्ष्मी पर (रोहतः) आरूढ़ होते हैं आप का (पिता) पिता (गभे) प्रजा में (मुष्टिम्) मुट्ठी से धन लेने वाले राज्य को, धन लेकर (अतंसयत्)प्रकाशित करता है तो मैं (इति) इस प्रकार प्रजाजन (प्र, तिलामि) भलीभांति उस राजा से प्रीति करता हूं ॥२४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो माता पिता पृथिवी और सूर्य्य के तुल्य धैर्य और विद्या से प्रकाश को प्राप्त न्याय से राज्य को पाल कर उत्तम लक्ष्मी वा शोभा को पाकर प्रजा को सुशोभित कर अपने पुत्र को राजनीति से युक्त करें वे राज्य करने को योग्य हों ॥२४॥

माता चेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। भूमिसूर्य्यौ देवते। निचृदनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर माता पिता कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

माता च ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्य क्रीडतः।
विवक्षतऽइव ते मुखं ब्रह्मन्मा त्वं वदो बहु ॥२५॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मन्) चारों वेदों के जानने वाले सज्जन! जिन (ते) आप की (माता) पृथिवी के समान माता (च) और जिन (ते) सूर्य के समान तेजस्वी आप का (पिता) पिता (च) भी (वृक्षस्य) संसाररूप राज्य के बीच (अग्रे) विद्या और राज्य की शोभा में (क्रीडतः) रमते हैं उन (ते) आप का (विवक्षत इव) बहुत

कहा चाहते हुए मनुष्य के मुख के समान (मुखम्) मुख है उस से (त्वम्) तू (वहु) बहुत (मा) मत (वदः) कहा कर ॥२५॥

भावार्थः—जो माता पिता सुशील धर्मात्मा लक्ष्मीवान् कुलीन हों उन्होंने सिखाया हुआ ही पुत्र प्रमाणयुक्त थोड़ा बोलने वाला होकर कीर्ति को प्राप्त होता है ॥२५॥

ऊर्ध्वमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। श्रीर्देवता। अनुष्टुप्छन्दः। गांधारः स्वरः ॥

फिर राजपुरुष किसकी उन्नति करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रापय गिरौ भारꣳ हरन्निव।
अथास्यै मध्यमेधताꣳ शीते वाते पुनन्निव ॥२६॥

पदार्थः- हे राजन्! तू (गिरौ) पर्वत पर (भारम्) भार (हरन्निव) पहुंचाते हुए के समान (एनाम्) इस राज्यलक्ष्मीयुक्त (ऊर्ध्वाम्) उत्तम कक्षा वाली प्रजा को (उच्छ्रापय) सदा अधिक अधिक उन्नति दिया कर (अथ) अब (अस्यै) इस प्रजा के (मध्यम्) मध्यभाग लक्ष्मी को पाकर (शीते) शीतल (वाते) पवन में (पुनन्निव) खेती करने वालों की क्रिया से जैसे अन्न आदि शुद्ध हो वा पवन के योग से जल स्वच्छ हो वैसे आप (एधताम्) वृद्धि को प्राप्त हूजिये ॥२६॥

भावार्थः- इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। राजा जैसे कोई बोझा लेजाने वाला अपने शिर वा पीठ पर बोझा को उठा पर्वत पर चढ़ उस भार को ऊपर स्थापन करे वैसे लक्ष्मी को उन्नति होने को पहुँचावे वा जैसे खेती करने वाले भूसा आदि से अन्न को अलग कर उस अन्न को खाके बढ़ते हैं वैसे सत्य न्याय से सत्य असत्य को अलग कर न्याय करने हारा राजा नित्य बढ़ता है ॥२६॥

ऊर्ध्वमेनमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। श्रीर्देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गांधारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऊर्ध्वमेनमुच्छ्रयताद् गिरौ भारꣳ हरन्निव।
अथास्य मध्यमेजतु शीते वाते पुनन्निव ॥२७॥

पदार्थः—हे प्रजास्थ विद्वान्! आप (गिरौ) पर्वत पर (भारम्) भार को (हरन्निव) पहुंचाने के समान (एनम्) इस राजा को (ऊर्ध्वम्) सब व्यवहारों में अग्रगन्ता (उच्छ्रयतात्) उन्नतियुक्त करें (अथ) इस के अनन्तर जैसे (अस्य) इस राज्य के (मध्यम्) मध्यभाग लक्ष्मी को पाकर (शीते) शीतल (वाते) पवन में (पुनन्निव)

शुद्ध होते हुए अन्न आदि के समान (एजतु) उत्तम कर्मों में चेष्टा किया कीजिये ॥२७॥

भावार्थः — इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। जैसे सूर्य मेघमण्डल में जल के भार को पहुँचा और वहां से वरसा के सब को उन्नति देता है वैसे ही प्रजाजन राजपुरुषों को उन्नति दें और अधर्म के आचरण से डरें ॥२७॥

यदस्या इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गांधारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यद॑स्याऽअँहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपातसत्।
मुष्कावि॑दस्याऽएजतो गोशफे शकुलावि॑व ॥२८॥

पदार्थः—(यत्) जो राजा वा राजपुरुष (अस्याः) इस (अंहुभेद्याः) अपराध का विनाश करने वाली प्रजा के (कृधु) थोड़े और (स्थूलम्) बहुत कर्म को (उपातसत्) सुशोभित करें वे दोनों (अस्याः) इसको (एजतः) कर्म कराते हैं और वे आप (गोशफे) गौ के खुर से भूमि में हुए गढ़ेले में (शकुलाविव) छोटी दो मछलियों के समान (मुष्कौ) प्रजा से पाये हुए कर को चोरते हुए कंपते हैं ॥२८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे एक दूसरे से प्रीति रखने वाली मछली छोटी ताल तलैया में निरन्तर वसती है वैसे राजा और राजपुरुष थोड़े भी कर के लाभ में न्यायपूर्वक प्रीति के साथ वर्त्तें और यदि दु.ख को दूर करने वाली प्रजा के थोड़े बहुत उत्तम काम की प्रशंसा करें तो वे दोनों प्रजाजनों को प्रसन्न कर अपने में उनसे प्रीति करावें ॥२८॥

यद्देवास इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। विद्वांसो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यद्देवासो॑ ललाम॑गुं प्र विष्टीमिनमावि॑षुः।
सक्थ्ना दे॑दिश्यते नारी॑ सत्यस्या॑क्षिभुवो॑ यथा ॥२९॥

पदार्थः—हे राजन्! (यथा) जैसे (सत्यस्य) सत्य (अक्षिभुवः) आंख के सामने प्रगट हुए प्रत्यक्ष व्यवहार के मध्य में वर्त्तमान (देवासः) विद्वान् लोग (सक्थ्ना) जांघ वा और अपने शरीर के अंग से (नारी) स्त्री के समान (यत्) जिस (विष्टीमिनम्) जिस में सुन्दर बहुत गीले पदार्थ विद्यमान हैं (ललामगुम्) और जिस

से मनोवाञ्छित फल को प्राप्त होते हैं ऐसे न्याय को (प्राविषुः) व्याप्त हों वा जैसे शास्त्रवेत्ता विद्वान् जन सत्य का (देदिश्यते) निरन्तर उपदेश करें वैसे आप आचरण करो ॥२९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे शरीर के अङ्गों से स्त्री पुरुष लखे जाते हैं वैसे प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से सत्य लखा जाता है उस सत्य से विद्वान् लोग जैसे पाने योग्य कोमलता को पावें वैसे राजा प्रजा के स्त्री पुरुष विद्या से नम्रता को पाकर सुख को ढूंढ़ें ॥२९॥

यद्धरिण इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। राजा देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः॥

फिर वह राजा कैसे आचरण करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यद्ध॑रि॒णो यव॒मत्ति॒ न पु॒ष्टं प॒शु मन्य॑ते।
शू॒द्रा यदर्यै॑जारा॒ न पोषा॑य धनायति ॥३०॥

पदार्थः—(यत्) जो राजा (हरिणः) हरिण जैसे (यवम्) खेत में उगे हुए जौ आदि को (अत्ति) खाता है वैसे (पुष्टम्) पुष्ट (पशु) देखने योग्य अपने प्रजाजन को (न) नहीं (मन्यते) मानता अर्थात् प्रजा को हृष्ट-पुष्ट नहीं देख के, खाता है वह (यत्) जो (अर्य्यजारा) स्वामी वा वैश्य कुल को अवस्था से बुड्ढा करने हारी दासी (शूद्रा) शूद्र की स्त्री के समान (पोषाय) पुष्टि के लिये (न) नहीं (धनायति) अपने धन को चाहता है ॥३०॥

भावार्थः—जो राजा पशु के समान व्यभिचार में वर्त्तमान प्रजा की पुष्टि को नहीं करता वह धनाढ्य शूद्रकुल की स्त्री जो कि जारकर्म करती हुई दासी है उस के समान शीघ्र रोगी होकर अपनी पुष्टि का विनाश करके धनहीनता से दरिद्र हुआ मरता है इससे राजा न कभी ईर्ष्या और न व्यभिचार का आचरण करें ॥३०॥

यद्धरिण इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। राजप्रजे देवते। अनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः॥

फिर वह राजा किस हेतु से नष्ट होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यद्ध॑रि॒णो य॒व॒मत्ति॒ न पु॒ष्टं ब॒हु मन्य॑ते।
शू॒द्रो यदर्यो॑यै जा॒रो न पोष॒मनु॑ मन्यते ॥३१॥

पदार्थः—(यत्) जो (शूद्रः) मूर्खों के कुल में जन्मा हुआ मूढ़जन (अर्य्यायै) अपने स्वामी अर्थात् जिस का सेवक उसकी वा वैश्यकुल की स्त्री के अर्थ (जारः)

जार अर्थात् व्यभिचार से अपनी अवस्था का नाश करने वाला होता है वह जैसे (पोषम्) पुष्टि का (न) नहीं (अनुमन्यते) अनुमान रखता वा (यत्) जो राजा (हरिणः) हरिण जैसे (यवम्) उगे हुए जौ आदि को (अत्ति) खाता है वैसे (पुष्टम्) धन सन्तान स्त्री सुख ऐश्वर्य्य आदि से पुष्ट अपने प्रजाजन को (बहु) अधिक (न) नहीं (मन्यते) मानता वह सब ओर से क्षीण नष्ट और भ्रष्ट होता है ॥३१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो राजा और राजपुरुष परस्त्रीवेश्यागमन के लिये पशु के समान अपना वर्त्ताव करते हैं उन को सब विद्वान् शूद्र के समान जानते हैं। जैसे शूद्र मूर्खजन श्रेष्ठों के कुल में व्यभिचारी होकर सब को वर्णसंकर कर देता है वैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य शूद्रकुल में व्यभिचार करके वर्णसंकर के निमित्त होकर नाश को प्राप्त होते हैं ॥३१॥

दधिक्राव्ण इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। राजा देवता। अनुष्टुप्छन्दः। गांधारः स्वरः ॥

फिर वह राजा किस के समान यश बढ़ावे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

दधिक्राव्णोऽअकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः।
सुरभि नो मुखा करत्प्र णऽआयूꣳषि तारिषत् ॥३२॥

पदार्थः—हे राजन्! जैसे मैं (दधिक्राव्णः) जो धारण पोषण करने वालों को प्राप्त होता (वाजिनः) बहुत वेगयुक्त (जिष्णोः) जीतने और (अश्वस्य) शीघ्र जाने वाला है उस घोड़े के समान पराक्रम को (अकारिषम्) करूं वैसे आप (नः) हम लोगों के (सुरभि) सुगन्धियुक्त (मुखा) मुखों के तुल्य पराक्रम को (प्र, करत्) भली भांति करो और (नः) हमारे (आयूꣳषि) आयुओं को (तारिषत्) उन की अवधि के पार पहुंचाओ ॥३२॥

भावार्थः—जैसे घोड़ों के सिखाने वाले घोड़ों को पराक्रम की रक्षा के नियम से बलिष्ठ और संग्राम में जिताने वाले करते हैं वैसे पढ़ाने और उपदेश करने हारे कुमार और कुमारियों को पूरे ब्रह्मचर्य्य के सेवन से पण्डित पण्डिता कर उन को शरीर और आत्मा के बल के लिये प्रवृत्त करा के बहुत आयु वाले और अति युद्ध करने में कुशल बनावें ॥३२॥

गायत्रीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। विद्वांसो देवताः ॥ उष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप्पङ्क्त्या सह ।
बृहत्युष्णिहा ककुप्सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३३॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जो विद्वान् जन (पंक्त्या) विस्तारयुक्त पंक्ति छन्द के (सह) साथ जो (गायत्री) गाने वाले की रक्षा करती हुई गायत्री (त्रिष्टुप्) आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीनों दुःखों को रोकने वाला त्रिष्टुप् (जगती) जगत् के समान विस्तीर्ण अर्थात् फैली हुई जगती (अनुष्टुप्) जिससे पीछे से संसार के दुःखों को रोकते हैं वह अनुष्टुप् तथा (उष्णिहा) जिससे प्रातः समय की वेला को प्राप्त करता है उस उष्णिह् छन्द के साथ (बृहती) गम्भीर आशय वाली बृहती (ककुप्) ललित पदों के अर्थ से युक्त ककुप् छन्द (सूचीभिः) सूइयों से जैसे वस्त्र सिया जाता है वैसे (त्वा) तुझको (शम्यन्तु) शान्तियुक्त करें वा सब विद्याओं का बोध करावें उनका तू सेवन कर ॥३३॥

भावार्थः—जो विद्वान् गायत्री आदि छन्दों के अर्थ को बताने से मनुष्यों को विद्वान् करते हैं और सूई से फटे वस्त्र को सीवें त्यों अलग अलग मत वालों का सत्य में मिलाप कर देते हैं और उन को एक मत में स्थापन करते हैं वे जगत् के कल्याण करने वाले होते हैं ॥३३॥

द्विपदा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजा देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

द्विपदा याश्चतुष्पदास्त्रिपदा याश्च षट्पदाः ।
विच्छन्दाः याश्च सच्छन्दाः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३४॥

पदार्थः—जो विद्वान् जन (सूचीभिः) सन्धियों को मिला देने वाली क्रियाओं से (या.) जो (द्विपदाः) दो दो पद वाली वा जो (चतुष्पदाः) चार चार पद वाली वा (त्रिपदाः) तीन पदों वाली (च) और (याः) जो (षट्पदाः) छः पदों वाली जो (विच्छन्दाः) अनेकविध पराक्रमों वाली (च) और (याः) जो (सच्छन्दाः) ऐसी हैं कि जिन में एक से छन्द हैं वे क्रिया (त्वा) तुम को ग्रहण कराके (शम्यन्तु) शान्ति सुख को प्राप्त करावें उन का नित्य सेवन करो ॥३४॥

भावार्थः—जो विद्वान् मनुष्यों को ब्रह्मचर्य्य नियम से वीर्य्यवृद्धि को पहुंचा कर नीरोग जितेन्द्रिय और विषयासक्ति से रहित करके धर्मयुक्त व्यवहार में चलाते हैं वे सब के पूज्य अर्थात् सत्कार करने के योग्य होते हैं ॥३४॥

महानाम्न्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजा देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

फिर विद्वान् कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

महानाम्न्यो रेवत्यो विश्वा आशाः प्रभूवरीः ।
मैघीर्विद्युतो वाचः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३५॥

पदार्थः—हे ज्ञान चाहने हारे (सूचीभिः) सन्धान करने वाली क्रियाओं से जो (महानाम्न्यः) बड़े नाम वाली (रेवत्यः) बहुत प्रकार के धन और (प्रभूवरीः) प्रभुता से युक्त (विश्वाः) समस्त (आशाः) दिशाओं के समान (मैघीः) वा मेघों की तड़फ(विद्युतः)जो बिजुली उन के समान (वाचः) वाणी (त्वा) तुझ को (शम्यन्तु) शान्तियुक्त करें उन का तू ग्रहण कर ॥३५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिनकी वाणी दिशा के तुल्य सब विद्याओं में व्याप्त होने और मेघ में ठहरी हुई बिजुली के समान अर्थ का प्रकाश करने वाली है वे विद्वान् शान्ति से जितेन्द्रियता को प्राप्त होकर बड़ी कीर्त्ति वाले होते हैं ॥३५॥

नार्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । स्त्रियो देवताः । भुरिगुष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

अब कन्या कितना ब्रह्मचर्य करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

नार्य्यस्ते पत्न्यो लोम विचिन्वन्तु मनीषया ।
देवानां पत्न्यो दिशः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३६॥

पदार्थः—हे पण्डिता पढ़ाने वाली विदुषी स्त्री ! जो कुमारी (मनीषया) तीक्ष्ण बुद्धि से (ते) तेरी (लोम) अनुकूल आज्ञा को (विचिन्वन्तु) इकट्ठा करें वे (देवानाम्) पण्डितों की (नार्य्यः) पण्डितानी हों। हे कुमारी ! जो पण्डितों की (पत्न्यः) पण्डितानी होके (सूचीभिः) मिलाप की क्रियाओं से (दिशः) दिशाओं के समान शुद्ध पाकविद्या पढ़ी हुई हैं वे (त्वा) तुझे (शम्यन्तु) शान्ति और ज्ञान दें ॥३६॥

भावार्थः—जो कन्या प्रथम अवस्था में सोलह वर्ष की अवस्था से चौबीस वर्ष की अवस्था तक ब्रह्मचर्य से विद्या उत्तम शिक्षा को पाकर अपने सदृश पुरुषों की पत्नी हों वे दिशाओं के समान उत्तम प्रकाशयुक्त कीर्ति वाली हों ॥३६॥

रजता इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । स्त्रियो देवताः । अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर वे कैसी हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

रजता हरिणीः सीसा युजो युज्यन्ते कर्मभिः ।
अश्वस्य वाजिनस्त्वचि सिमाः शम्यन्तु शम्यन्तीः ॥३७॥

पदार्थः—जैसे स्वयंवर विवाह से विवाही हुई स्त्री (वाजिनः) प्रशंसित बल युक्त (अश्वस्य) उत्तम गुणों में व्याप्त अपने पति के (त्वचि) उढ़ाने में (युज्यन्ते) संयुक्त की जाती अर्थात् पति को वस्त्र उढ़ाने आदि सेवा में लगाई जाती हैं वैसे (कर्मभिः) धर्मयुक्त क्रियाओं से (रजताः) अनुराग अर्थात् प्रीति को प्राप्त हुई (हरिणीः) जिन का प्रशंसित स्वीकार करना है वे (सीसाः) प्रेमवाली (युजः) सावधान चित्त उचित काम करने वाली (शम्यन्तीः) शान्ति को प्राप्त होती वा प्राप्त कराती हुई वा (सिमाः) प्रेम से बंधी स्त्री अपने हृदय से प्रिय पतियों को प्राप्त हो के (शम्यन्तु) आनन्द भोगें ॥३७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त आप विवाह को प्राप्त स्त्री पुरुष अपनी इच्छा से एक दूसरे से प्रीति किये हुए विवाह को करते हैं वे लावण्य अर्थात् अतिसुन्दरता गुण और उत्तमस्वभावयुक्त सन्तानों को उत्पन्न कर सदा आनन्दयुक्त होते हैं ॥३७॥

कुविदङ्गेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभासदो देवताः । निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

अब पढ़ने और पढ़ाने हारे कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवञ्चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमऽउक्तिं यजन्ति ॥३८॥

पदार्थः—हे (अङ्ग) मित्र ! (कुवित्) बहुत विज्ञानयुक्त तू (इहेह) इस इस व्यवहार में (एषाम्) इन मनुष्यों में से (यथा) जैसे (यवमन्तः) बहुत जौ आदि अन्नयुक्त खेती करने वाले (यवम्) जौ आदि अनाज के समूह को बुस आदि से (वियूय) पृथक् कर (चित्) और (अनुपूर्वम्) क्रम से (दान्ति) छेदन करते हैं उन के और (ये) जो (बर्हिषः) जल वा (नमउक्तिम्) अन्नसम्बन्धी वचन को (यजन्ति) कह कर सत्कार करते हैं उनके (भोजनानि) भोजनों को (कृणुहि) करो ॥३८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे पढ़ाने और पढ़ने वालो ! तुम लोग जैसे खेती करने हारे एक दूसरे के खेत को पारी

से काटते और भूसा से अन्न को अलग कर औरों को भोजन कराके फिर आप भोजन करते हैं वैसे ही यहां विद्या के व्यवहार में निष्कपट भाव से विद्यार्थियों को पढ़ाने वालों की सेवा और पढ़ाने वालों को विद्यार्थियों की विद्यावृद्धि कर एक दूसरे को खान पान से सत्कार कर सब कोई आनन्द भोगें ॥३८॥

कस्त्वा छ्यतीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अध्यापको देवता। भुरिग्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर पढ़ाने वाले विद्यार्थियों की कैसी परीक्षा लेवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कस्त्वा छ्यति कस्त्वा विशास्ति कस्ते गात्राणि शम्यति।
कऽउं ते शमिता कविः ॥३९॥

पदार्थः—हे पढ़ने वाले विद्यार्थिजन! (त्वा) तुझे (कः) कौन (आछ्यति) छेदन करता (कः) कौन (त्वा) तुझे (विशास्ति) अच्छा सिखाता (कः) कौन (ते) तेरे (गात्राणि) अङ्गों को (शम्यति) शान्ति पहुंचाता और (कः) कौन (उ) तो (ते) तेरा (शमिता) यज्ञ करने वाला (कविः) समस्त शास्त्र को जानता हुआ पढ़ाने हारा है ॥३९॥

भावार्थः—अध्यापक लोग पढ़ने वालों के प्रति ऐसे परीक्षा में पूछें कि कौन तुम्हारे पढ़ने को काटते अर्थात् पढ़ने में विघ्न करते, कौन तुम को पढ़ने के लिये उपदेश देते हैं, कौन अंगों की शुद्धि और योग्य चेष्टा को जनाते हैं कौन पढ़ाने वाला है क्या पढ़ा, क्या पढ़ने योग्य है ऐसे ऐसे पूछ उत्तम परीक्षा कर उत्तम विद्यार्थियों को उत्साह देकर दुष्ट स्वभाव वालों को धिक्कार दे के विद्या की उन्नति करावें ॥३९॥

ऋतव इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्रजा देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर स्त्री पुरुष कैसे अपना वर्त्ताव वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ऋतवस्तऽऋतुथा पर्वं शमितारो विशासतु।
संवत्सरस्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा ॥४०॥

पदार्थः—हे विद्यार्थी जन! जैसे (ते) तेरे (ऋतवः) वसन्त आदि ऋतु (ऋतुथा) ऋतु ऋतु के गुणों से (पर्व) पालना करें (शमितारः) वैसे पढ़ने पढ़ाने रूप यज्ञ में शम दम आदि गुणों की प्राप्ति कराने हारे अध्यापक पढ़ने वालों को (वि,

शासतु) विशेषता से उपदेश करें (संवत्सरस्य) और संवत् के (तेजसा) जल (शमीभिः) और कर्मों से (त्वा) तुझे (शम्यन्तु) शान्ति दें उन की तू सदैव सेवा कर ॥४०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ऋतु पारी से अपने अपने चिह्नों को प्राप्त होते हैं वैसे स्त्री पुरुष पारी से ब्रह्मचर्य, गृहस्थ का धर्म, वानप्रस्थ वन में रहकर तप करना और संन्यास आश्रम को कर के, ब्राह्मण और ब्राह्मणी पढ़ावें; क्षत्रिय और क्षत्रिया प्रजा की रक्षा करें, वैश्य और वैश्या खेती आदि की उन्नति करें और शूद्र शूद्रा उक्त ब्राह्मण आदि की सेवा किया करें ॥४०॥

अर्द्धमासा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्रजा देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

अब बालकों में माता आदि कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अर्द्धमासाः परूꣳषि ते मासाऽआ च्छ्यन्तु शम्यन्तः।
अहोरात्राणि मरुतो विलिष्टꣳ सूदयन्तु ते ॥४१॥

पदार्थः—हे विद्यार्थी लोग! (अहोरात्राणि) दिन रात (अर्द्धमासाः) उजेले अंधियारे पखवाड़े और (मासाः) चैत्रादि महीने जैसे आयु अर्थात् उमरों को काटते हैं वैसे (ते) तेरे (परूंषि) कठोर वचनों को (शम्यन्तः) शान्ति पहुंचाते हुए (मरुतः) उत्तम मनुष्य दुष्ट कामों का (आच्छ्यन्तु) विनाश करें और (ते) तेरे (विलिष्टम्) थोड़े भी कुव्यसन को (सूदयन्तु) दूर करें ॥४१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो माता पिता पढ़ाने और उपदेश करने वाले तथा अतिथि लोग बालकों के दुष्ट गुणों को न निवृत्त करें तो वे शिष्ट अर्थात् उत्तम कभी न हों ॥४१॥

दैव्या इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अध्यापको देवता। भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

अब पढ़ाने वाले आदि सज्जन कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

दैव्याऽअध्वर्य्यवस्त्वा च्छ्यन्तु वि च शासतु।
गात्राणि पर्वशस्ते सिमाः कृण्वन्तु शम्यन्तीः ॥४२॥

पदार्थः—हे विद्यार्थी वा विद्यार्थिनी! (दैव्याः) विद्वानों में कुशल (अध्वर्यवः) अपनी रक्षारूप यज्ञ को चाहते हुए अध्यापक उपदेशक लोग (त्वा) तुझे (वि, शासतु) विशेष उपदेश दें (च) और (ते) तेरे दोषों का (आ, छ्यन्तु) विनाश करें (पर्वशः)

सन्धि सन्धि से (गात्राणि) अंगों को परखें (सिमाः) प्रेम से बँधी हुईं (शम्यन्तीः) दुष्ट स्वभाव को दूर करती हुईं माता आदि सती स्त्रियां भी ऐसी ही शिक्षा (कृण्वन्तु) करें ॥४२॥

भावार्थः—अध्यापक उपदेशक और अतिथि लोग जब बालकों को सिखलावें तब दोषों का विनाश कर उन को विद्या की प्राप्ति करावें ऐसे पढ़ाने और उपदेश करने वाली स्त्री भी कन्याओं के प्रति आचरण करें और वैद्यक शास्त्र की रीति से शरीर के अङ्गों की अच्छे प्रकार परीक्षा कर औषधि भी देवें ॥४२॥

द्यौरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। राजा देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर अध्यापकादि कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

द्यौस्ते पृथिव्यन्तरिक्षं वायुश्छिद्रं पृणातु ते।
सूर्य्यस्ते नक्षत्रैः सह लोकं कृणोतु साधुया ॥४३॥

पदार्थः—हे पढ़ने वा पढ़ाने हारी स्त्रियो ! जैसे (द्यौः) प्रकाशरूप बिजुली (पृथिवी) भूमि (अन्तरिक्षम्) आकाश (वायुः) पवन (सूर्य्यः) सूर्यलोक और (नक्षत्रैः) तारागणों के (सह) साथ चन्द्रलोक (ते) तेरे (छिद्रम्) प्रत्येक इन्द्रिय को (पृणातु) सुख देवें (ते) तेरे व्यवहार को सिद्ध करें वैसे (ते) तेरे (साधुया) उत्तम सत्य (लोकम्) देखने योग्य लोक को (कृणोतु) सिद्ध करें ॥४३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पृथिवी आदि सुख देने और सूर्य आदि पदार्थ प्रकाश करने वाले हैं वैसे ही पढ़ाने वाले और उपदेश करने वाले वा पढ़ाने और उपदेश करने वाला स्त्री सब को अच्छे मार्ग में स्थापन कर विद्या के प्रकाश को उत्पन्न करें ॥४३॥

शन्त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। राजा देवता। उष्णिक् छन्दः।
ऋषभः स्वरः ॥

फिर माता आदि को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

शन्ते परेभ्यो गात्रेभ्यः शमस्त्ववरेभ्यः।
शमस्थभ्यो मज्जभ्यः शम्वस्तु तन्वै तव ॥४४॥

पदार्थः—हे विद्या चाहने वाले ! जैसे पृथिवी आदि तत्त्व (तव) तेरे (तन्वै) शरीर के लिये (शम्) सुखहेतु (अस्तु) हो वा (परेभ्यः) अत्यन्त उत्तम (गात्रेभ्यः) अंगों के लिये (शम्) सुख (उ) और (अवरेभ्यः) उत्तमों से न्यून मध्य तथा निकृष्ट

अंगों के लिये (शम्) सुखरूप (अस्तु) हो और (अस्थभ्यः) हड्डी (मज्जभ्यः) और शरीर में रहने वाली चरबी के लिये (शम्) सुखहेतु हो वैसे अपने उत्तम गुण कर्म और स्वभाव से अध्यापक लोग (ते) तेरे लिये सुख के करने वाले हों ॥४४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे माता,पिता, पढ़ाने और उपदेश करने वालों को अपने सन्तानों के पुष्ट अङ्ग और पुष्ट धातु हों जिनसे दूसरों के कल्याण करने के योग्य हों वैसे पढ़ाना और उपदेश करना चाहिये ॥४४॥

कः स्विदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। जिज्ञासुर्देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब विद्वानों के प्रति प्रश्न ऐसे करने चाहियें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कः स्विदेकाकी चरति कऽउं स्विज्जायते पुनः।
किꣳ स्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत् ॥४५॥

पदार्थः—हे विद्वान्! इस संसार में (कः, स्वित्) कौन (एकाकी) एकाएकी अकेला (चरति) चलता वा प्राप्त होता है (उ) और (कः, स्वित्) कौन (पुनः) फिर फिर (जायते) उत्पन्न होता (किं, स्वित्) कौन (हिमस्य) शीत का (भेषजम्) औषध (किम्, उ) और क्या (महत्) बड़ा (आवपनम्) अच्छे प्रकार सब बीज बोने का आधार है इस सब को आप कहिये ॥४५॥

भावार्थः—विना सहाय के कौन भ्रमता, कौन फिर फिर उत्पन्न होता शीत की निवृत्ति कर्त्ता कौन और बड़ा उत्पत्ति का स्थान क्या है इन सब प्रश्नों के समाधान अगले मन्त्र से जानने चाहियें ॥४५॥

सूर्य्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सूर्यादयो देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर पूर्वोक्त प्रश्नों के उत्तरों को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

सूर्य्यऽएकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः।
अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥४६॥

पदार्थः—हे जिज्ञासु जानने की इच्छा करने वाले पुरुष! (सूर्य्यः) सूर्यलोक (एकाकी) अकेला (चरति) स्वपरिधि में घूमता है (चन्द्रमाः) आनन्द देने वाला चन्द्रमा (पुनः) फिर फिर (जायते) प्रकाशित होता है (अग्निः) पावक (हिमस्य) शीत का (भेषजम्) औषध और (महत्) बड़ा (आवपनम्) अच्छे प्रकार बोने का आधार कि जिस में सब वस्तु बोते हैं (भूमिः) वह भूमि है ॥४६॥

भावार्थः—हे विद्वानो! सूर्य अपनी ही परिधि में घूमता है किसी लोकान्तर के चारों ओर नहीं घूमता। चन्द्रादि लोक उसी सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। अग्नि ही शीत का नाशक और सब बीजों के बोने को बड़ा क्षेत्र भूमि ही है ऐसा तुम लोग जानो ॥४६॥

किं स्विदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। जिज्ञासुर्देवता। अनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर प्रश्नों को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

किꣳस्वित्सूर्य्यसमं ज्योतिः किꣳसमुद्रसमꣳसरः।
किꣳस्वित्पृथिव्यै वर्षीयः कस्य मात्रा न विद्यते ॥४७॥

पदार्थः—हे विद्वन्! (किं, स्वित्) कौन (सूर्यसमम्) सूर्य के समान (ज्योति) प्रकाशस्वरूप (किम्) कौन (समुद्रसमम्) समुद्र के समान (सरः) जिस में जल बहते वा गिरते वा आते जाते हैं ऐसा तालाब (किं, स्वित्) कौन (पृथिव्यै) पृथिवी से (वर्षीयः) अति बड़ा और (कस्य) किस का (मात्रा) जिस से तोल हो वह परिमाण (न) नहीं (विद्यते) विद्यमान है ॥४७॥

भावार्थः—आदित्य के तुल्य तेजस्वी, समुद्र के समान जलाधार और भूमि से बड़ा कौन है और किस का परिमाण नहीं है इन चार प्रश्नों का उत्तर अगले मन्त्र में जानना चाहिये ॥४७॥

ब्रह्मेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। ब्रह्मादयो देवताः। अनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब उक्त प्रश्नों के उत्तरों को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिर्द्यौः समुद्रसमꣳसरः।
इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान् गोस्तु मात्रा न विद्यते ॥४८॥

पदार्थः—हे ज्ञान चाहने वाले जन! तू (सूर्य्यसमम्) सूर्य के समान (ज्योतिः) स्वप्रकाशस्वरूप (ब्रह्म) सब से बड़े अनन्त परमेश्वर (समुद्रसमम्) समुद्र के समान (सरः) ताल (द्यौः) अन्तरिक्ष (पृथिव्यै) पृथिवी से (वर्षीयान्) बड़ा (इन्द्रः) सूर्य और (गोः) वाणी का (तु) तो (मात्रा) मान परिमाण (न) नहीं (विद्यते) विद्यमान है इसको जान ॥४८॥

भावार्थः—कोई भी, आप प्रकाशमान जो ब्रह्म है उसके समान ज्योति विद्यमान नहीं वा सूर्य के प्रकाश से युक्त मेघ के समान जल के ठहरने का स्थान वा सूर्यमण्डल के तुल्य लोकेश वा वाणी के तुल्य व्यवहार का सिद्ध करनेहारा कोई भी पदार्थ नहीं होता इसका निश्चय सब करें ॥४८॥

पृच्छामीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रष्टृसमाधातारौ देवते । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर प्रश्नों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

पृच्छामि त्वा चितये देवसख यदि त्वमत्र मनसा जगन्थ ।
येषु विष्णुस्त्रिषु पदेष्वेष्टस्तेषु विश्वं भुवनमाविवेशाँ३॥ ॥४९॥

पदार्थः—हे (देवसख) विद्वानों के मित्र ! यदि जो (त्वम्) तू (अत्र) यहां (मनसा) अन्तःकरण से (जगन्थ) प्राप्त हो तो (त्वा) तुझे (चितये) चेतन के लिये (पृच्छामि) पूछता हूं जो (विष्णुः) व्यापक ईश्वर (येषु) जिन (त्रिषु) तीन प्रकार के (पदेषु) प्राप्त होने योग्य जन्म, नाम और स्थान में (एष्टः) अच्छे प्रकार इष्ट है (तेषु) उन में व्याप्त हुआ (विश्वम्) सम्पूर्ण (भुवनम्) पृथिवी आदि लोकों को (आ, विवेश) भली भांति प्रवेश कर रहा है उस परमात्मा को भी तुझ से पूछता हूं ।.४९॥

भावार्थः—हे विद्वान् ! जो चेतनस्वरूप सर्वव्यापी पूजा, उपासना, प्रशंसा, स्तुति करने योग्य परमेश्वर है उस का मेरे लिये उपदेश करो ॥४९॥

अपीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ईश्वरो देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब उक्त प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अपि तेषु त्रिषु पदेष्वस्मि येषु विश्वं भुवनमा विवेश ।
सद्यः पर्येमि पृथिवीमुत द्यामेकेनाङ्गेन दिवोऽअस्य पृष्ठम् ॥५०॥

पदार्थः— हे मनुष्यो ! जो जगत् का रचनेहारा ईश्वर मैं (येषु) जिन (त्रिषु) तीन (पदेषु) प्राप्त होने योग्य जन्म नाम स्थानों में (विश्वम्) समस्त (भुवनम्) जगत् (आविवेश) सब ओर से प्रवेश को प्राप्त हो रहा हूं । (तेषु) उन जन्म नाम और स्थानों में (अपि) भी मैं व्याप्त (अस्मि) हूं । (अस्य) इस (दिवः) प्रकाशमान सूर्य आदि लोकों के (पृष्ठम्) ऊपरले भाग (पृथिवीम्) भूमि वा अन्तरिक्ष (उत) और (द्याम्) समस्त प्रकाश को (एकेन) एक (अङ्गेन) अति मनोहर प्राप्त होने योग्य व्यवहार वा देश से (सद्यः) शीघ्र (परि एमि) सब ओर से प्राप्त हूं उस मेरी उपासना तुम सब किया करो ॥५०॥

भावार्थः— जैसे सब जीवों के प्रति ईश्वर उपदेश करता है कि मैं कार्य्य कारणात्मक जगत् में व्याप्त हूं मेरे विना एक परमाणु भी अव्याप्त नहीं है । सो मैं जहां जगत् नहीं है वहां भी अनन्त स्वरूप से परिपूर्ण हूँ ।

जो इस अतिविस्तारयुक्त जगत् को आप लोग देखते हैं सो यह मेरे आगे अणुमात्र भी नहीं है इस बात को वैसे ही विद्वान् सब को जनावें ॥५०॥

केष्वन्त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । पुरुषेश्वरो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब ईश्वर-विषय में दो प्रश्न कहते हैं ॥

केष्वन्तः पुरुषऽआ विवेश कान्यन्तः पुरुषेऽअर्पितानि ।
एतद् ब्रह्मन्नुप वल्हामसि त्वा किंस्विन्नः प्रति वोचास्यत्र ॥५१॥

पदार्थः— हे (ब्रह्मन्) वेदज्ञ विद्वन् ! (केषु) किन में (पुरुषः) सर्वत्र पूर्ण परमेश्वर (अन्तः) भीतर (आ, विवेश) प्रवेश कर रहा है और (कानि) कौन (पुरुषे) पूर्ण ईश्वर में (अन्तः) भीतर (अर्पितानि) स्थापन किये हैं जिस ज्ञान से हम लोग (उप, वल्हामसि) प्रधान हों (एतत्) यह (त्वा) आप को पूछते हैं सो (किं, स्वित्) क्या है (अत्र) इस में (नः) हमारे (प्रति) प्रति (वोचासि) कहिये ॥५१॥

भावार्थः—इतर मनुष्यों को चाहिये कि चारों वेद के ज्ञाता विद्वान् को ऐसे पूछें कि, हे वेदज्ञ विद्वन् ! पूर्ण परमेश्वर किन में प्रविष्ट है और कौन उसके अन्तर्गत हैं । यह बात आप से पूछी है यथार्थता से कहिये जिस के ज्ञान से हम उत्तम पुरुष हों ॥५१॥

पञ्चस्वन्त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमेश्वरो देवता । विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पूर्व मन्त्र में कहे प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

पञ्चस्वन्तः पुरुषऽआविवेश तान्यन्तः पुरुषेऽअर्पितानि ।
एतत्त्वात्र प्रतिमन्वानोऽअस्मि न मायया भवस्युत्तरो मत् ॥५२॥

पदार्थः—हे जानने के इच्छा वाले पुरुष (पञ्चसु) पांच भूतों वा उन की सूक्ष्म मात्राओं में (अन्तः) भीतर (पुरुषः) पूर्ण परमात्मा (आ, विवेश) अपनी व्याप्ति से अच्छे प्रकार व्याप्त हो रहा है (तानि) वे पञ्चभूत वा तन्मात्रा (पुरुषे) पूर्ण परमात्मा पुरुष के (अन्तः) भीतर (अर्पितानि) स्थापित किये हैं (एतत्) यह (अत्र) इस जगत् में (त्वा) आप को (प्रतिमन्वानः) प्रत्यक्ष जानता हुआ मैं समाधान-कर्त्ता (अस्मि) हूं जो (मायया) उत्तम बुद्धि से युक्त तू (भवसि) होता है तो (मत्) मुझ से (उत्तरः) उत्तम समाधान-कर्त्ता कोई भी (न) नहीं है, यह तू जान ॥५२॥

भावार्थः—परमेश्वर उपदेश करता है कि, हे मनुष्यो ! मेरे ऊपर कोई भी नहीं है। मैं ही सब का आधार सब में व्याप्त हो के धारण करता

हूँ। मेरे व्याप्त होने से सब पदार्थ अपने अपने नियम में स्थित हैं। हे सब से उत्तम योगी विद्वान् लोगो ! आप लोग इस मेरे विज्ञान को जनाओ ॥५२॥

का स्विदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्रष्टा देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः

फिर भी अगले मन्त्र में प्रश्नों को कहते हैं ॥

का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किंस्विदासीद् बृहद्वयः।
का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत् पिशङ्गिला ॥५३॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! इस जगत् में (का, स्वित्) कौन (पूर्वचित्तिः) पूर्व अनादि समय में संचित होने वाली (आसीत्) है (किं, स्वित्) क्या (बृहत्) बड़ा (वयः) उत्पन्न स्वरूप (आसीत्) है (का, स्वित्) कौन (पिलिप्पिला) पिलपिली चिकनी (आसीत्) है और (का, स्वित्) कौन (पिशङ्गिला) अवयवों को भीतर करने वाली (आसीत्) है यह आप को पूछता हूँ ॥५३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में चार प्रश्न हैं उनके समाधान अगले मन्त्र में देखने चाहियें ॥५३॥

द्यौरासीदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। समाधाता देवता। निचृदनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पूर्व मन्त्र के प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरश्वऽआसीद् बृहद्वयः।
अविरासीत्पिलिप्पिला रात्रिरासीत्पिशङ्गिला ॥५४॥

पदार्थः हे जिज्ञासु मनुष्य ! (द्यौः) बिजुली (पूर्वचित्तिः) पहिला संचय (आसीत्) है (अश्वः) महत्तत्त्व (बृहत्) बड़ा (वयः) उत्पत्ति स्वरूप (आसीत्) है (अविः) रक्षा करने वाली प्रकृति (पिलिप्पिला) पिलपिली चिकनी (आसीत्) है (रात्रिः) रात्रि के समान वर्त्तमान प्रलय (पिशङ्गिला) सब अवयवों को निगलने वाला (आसीत्) है यह तू जान ॥५४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो अतिसूक्ष्म विद्युत् है सो प्रथम परिणाम, महत्तत्त्वरूप द्वितीय परिणाम और प्रकृति सब का मूल कारण परिणाम से रहित है और प्रलय सब स्थूल जगत् का विनाशरूप है यह जानना चाहिये। ५४॥

का ईमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्रष्टा देवता। अनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर अगले मन्त्र में प्रश्न कहते हैं ॥

काऽईमरे पिशङ्गिला काऽईं कुरुपिशङ्गिला ।
कऽईमास्कन्दमर्षति कऽईं पन्थां विसर्पति ॥५५॥

पदार्थः—(अरे) हे विदुषि स्त्रि ! (का, ईम्) कौन वार वार (पिशङ्गिला) रूप का आवरण करने हारी (का, ईम्) कौन वार वार (कुरुपिशङ्गिला) यवादि अन्नों के अवयवों को निगलने वाली (क, ईम्) कौन वार वार (आस्कन्दम्) न्यारी न्यारी चाल को (अर्षति) प्राप्त होता और (कः) कौन (ईम्) जल के (पन्थाम्) मार्ग को (वि, सर्पति) विशेष पसर के चलता है ॥५५॥

भावार्थः—किससे रूप का आवरण और किस से खेती आदि का विनाश होता कौन शीघ्र भागता और कौन मार्ग में पसरता है ये चार प्रश्न हैं इन के उत्तर अगले मन्त्र में जानो ॥५५॥

अजेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । समाधाता देवता । स्वराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

पूर्व मन्त्र में कहे प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अजारे पिशङ्गिला श्वावित्कुरुपिशङ्गिला ।
शशऽआस्कन्दमर्षत्यहिः पन्थां वि सर्पति ॥५६॥

पदार्थः—(अरे) हे मनुष्यो ! (अजा) जन्मरहित प्रकृति (पिशङ्गिला) विश्व के रूप को प्रलय समय में निगलनेवाली (श्वावित्) सेही (कुरुपिशङ्गिला) किये हुए खेती आदि के अवयवों का नाश करती है (शशः) खरहा के तुल्य वेगयुक्त कृषि आदि में खरखराने वाला वायु (आस्कन्दम्) अच्छे प्रकार कूद के चलने अर्थात् एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ को शीघ्र (अर्षति) प्राप्त होता और (अहिः) मेघ (पंथाम्) मार्ग में (वि, सर्पति) विविध प्रकार से जाता है इस को तुम जानो ॥५६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो प्रकृति सब कार्यरूप जगत् का प्रलय करने हारी कार्य्यकारणरूप अपने कार्य को अपने में लय करने हारी है जो सेही खती आदि का विनाश करती है जो वायु खरहा के समान चलता हुआ सब को सुखाता है और जो मेघ सांप के समान पृथिवी पर जाता है उन सब को जानो ॥५६॥

कस्यस्वेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रष्टा देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी अगले मन्त्र में प्रश्न कहते हैं ॥

कत्यस्य विष्ठाः कत्यक्षराणि कति होमासः कतिधा समिद्धः ।
यज्ञस्य त्वा विदथा पृच्छमत्र कति होतारऽऋतुशो यजन्ति ॥५७॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! (अस्य) इस (यज्ञस्य) संयोग से उत्पन्न हुए संसाररूप यज्ञ के (कति) कितने (विष्ठाः) विशेष कर संसाररूप यज्ञ जिनमें स्थित हो वे (कति) कितने इस के (अक्षराणि) जलादि साधन (कति) कितने (होमासः) देने लेने योग्य पदार्थ (कतिधा) कितने प्रकारों से (समिद्धः) ज्ञानादि के प्रकाशक पदार्थ समिधरूप (कति) कितने (होतारः) होता अर्थात् देने लेने आदि व्यवहार के कर्त्ता (ऋतुश) वसन्तादि प्रत्येक ऋतु में (यजन्ति) संगम करते हैं इस प्रकार (अत्र) इस विषय में (विदथा) विज्ञानों को (त्वा) आप से मैं (पृच्छम्) पूछता हूं ॥५७॥

भावार्थः—यह जगत् कहां स्थित है, कितने इस की उत्पत्ति के साधन, कितने व्यापार के योग्य वस्तु, कितने प्रकार का ज्ञानादि प्रकाशक वस्तु और कितने व्यवहार करने हारे हैं इन पांच प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में जान लेना चाहिये ॥५७॥

षडस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । समिधा देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

पूर्व मन्त्र में कहे प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

षडस्य विष्ठाः शतमक्षराण्यशीतिर्होमाः समिधो ह तिस्रः ।
यज्ञस्य ते विदथा प्र ब्रवीमि सप्त होतारऽऋतुशो यजन्ति ॥५८॥

पदार्थः—हे जिज्ञासु लोगो ! (अस्य) इस (यज्ञस्य) संगत जगत् के (षट्) छः ऋतु (विष्ठाः) विशेष स्थिति के आधार (शतम्) असंख्य (अक्षराणि) जलादि उत्पत्ति के साधन (अशीतिः) असंख्य (होमाः) देने लेने योग्य वस्तु (तिस्रः) आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक तीन (ह) प्रसिद्ध (समिधः) ज्ञानादि की प्रकाशक विद्या (सप्त) पांच प्राण, मन और आत्मा सात (होतारः) देने लेने आदि व्यवहार के कर्त्ता (ऋतुशः) प्रति वसन्तादि ऋतु में (यजन्ति) संगत होते हैं उस जगत् के (विदथा) विज्ञानों को (ते) तेरे लिये मैं (प्रब्रवीमि) कहता हूं ॥५८॥

भावार्थः—हे ज्ञान चाहने वाले लोगो ! जिस जगत्रूप यज्ञ में छः ऋतु स्थिति के साधक, असंख्य जलादि वस्तु व्यवहारसाधक बहुत व्यवहार के योग्य पदार्थ और सब प्राणी अप्राणी होता आदि संगत होते हैं और

जिस में ज्ञान आदि का प्रकाश करने वाली तीन प्रकार की विद्या हैं, उस यज्ञ को तुम लोग जानो ॥५८॥

कोऽअस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रष्टा देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी अगले मन्त्र में प्रश्नों को कहते हैं ॥

कोऽअस्य वेद भुवनस्य नाभिं को द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्षम् ।
कः सूर्य्यस्य वेद बृहतो जनित्रं को वेद चन्द्रमसं यतोजाः ॥५९॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! (अस्य) इस (भुवनस्य) सब के आधारभूत संसार के (नाभिम्) बन्धन के स्थान मध्यभाग को (कः) कौन (वेद) जानता (कः) कौन (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी तथा (अन्तरिक्षम्) आकाश को जानता (कः) कौन (बृहतः) बड़े (सूर्यस्य) सूर्यमण्डल के (जनित्रम्) उपादान वा निमित्त कारण को (वेद) जानता और जो (यतोजाः) जिस से उत्पन्न हुआ है उस चन्द्रमा के उत्पादक को और (चन्द्रमसम्) चन्द्रलोक को (कः) कौन (वेद) जानता है इनका समाधान कीजिये ॥५९॥

भावार्थः—इस जगत् के धारणकर्त्ता बन्धन, भूमि सूर्य अन्तरिक्षों महान् सूर्य के कारण और चन्द्रमा जिससे उत्पन्न हुआ है उसको कौन जानता है इन चार प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में हैं यह जानना चाहिये ॥५९॥

वेदाहमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । समाधाता देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पूर्व मन्त्र में कहे प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वेदाहमस्य भुवनस्य नाभिं वेद द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्षम् ।
वेद सूर्य्यस्य बृहतो जनित्रमथो वेद चन्द्रमसं यतोजाः ॥६०॥

पदार्थः—हे जिज्ञासो पुरुष ! (अस्य) इस (भुवनस्य) सब के अधिकरण जगत् के (नाभिम्) बन्धन के स्थान कारणरूप मध्यभाग परब्रह्म को (अहम्) मैं (वेद) जानता हूं तथा (द्यावापृथिवी) प्रकाशित और अप्रकाशित लोकसमूहों और (अन्तरिक्षम्) आकाश को भी (वेद) मैं जानता हूं (बृहतः) बड़े (सूर्य्यस्य) सूर्यलोक के (जनित्रम्) उपादान तैजस कारण और निमित्तकारण ब्रह्म को (वेद) मैं जानता हूं (अथो) इस के अनन्तर (यतोजाः) जिस परमात्मा से उत्पन्न हुआ जो चन्द्र उस परमात्मा को तथा (चन्द्रमसम्) चन्द्रमा को (वेद) मैं जानता हूं ॥६०॥

भावार्थः—विद्वान् उत्तर देवे कि हे जिज्ञासु पुरुष ! इस जगत् के

वन्धन अर्थात् स्थिति के कारण प्रकाशित अप्रकाशित मध्यस्थ आकाश इन तीनों लोक के कारण और सूर्य्य चन्द्रमा के उपादान और निमित्तकारण इस सब को मैं जानता हूं ब्रह्म ही इस सब का निमित्तकारण और प्रकृति उपादानकारण है ॥६०॥

पृच्छामीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्रष्टा देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर भी अगले मन्त्र में प्रश्नों को कहते हैं॥

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः।
पृच्छामि त्वा वृष्णोऽअश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम॥६१॥

पदार्थः—हे विद्वान् जन! मैं (त्वा) आप को (पृथिव्याः) पृथिवी के (अन्तम्, परम्) परभाग अवधि को (पृच्छामि) पूछता (यत्र) जहां इस (भुवनस्य) लोक का (नाभिः) मध्य से खेंच के वन्धन करता है उस को (पृच्छामि) पूछता हूं। जो (वृष्णः) सेचनकर्त्ता (अश्वस्य) बलवान् पुरुष का (रेतः) पराक्रम है उस को (पृच्छामि) पूछता हूं और (वाचः) तीन वेदरूप वाणी के (परमम्) उत्तम (व्योम) आकाशरूप स्थान को (त्वा) आप से (पृच्छामि) पूछता हूं आप उत्तर कहिये॥६१॥

भावार्थः—पृथिवी की सीमा क्या, जगत् का आकर्षण से वन्धन कौन, बली जन का पराक्रम कौन और वाणी का पारगन्ता कौन है इन चार प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में जानने चाहियें॥६१॥

इयमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। समाधाता देवता। विराट्त्रिष्टुप् छन्दः।
धैवतः स्वरः॥

पूर्व मन्त्र में कहे प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहे हैं॥

इयं वेदिः परोऽअन्तः पृथिव्याऽअयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।
अयꣳ सोमो वृष्णोऽअश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम॥६२॥

पदार्थः—हे जिज्ञासु जन! (इयम्) यह (वेदिः) मध्यरेखा (पृथिव्याः) भूमि के (परः) परभाग की (अन्तः) सीमा है (अयम्) यह प्रत्यक्ष गुणों वाला (यज्ञः) सब को पूजनीय जगदीश्वर (भुवनस्य) संसार की (नाभिः) नियत स्थिति का वन्धक है (अयम्) यह (सोमः) ओषधियों में उत्तम अंशुमान् आदि सोम (वृष्णः) पराक्रम-कर्त्ता (अश्वस्य) वलवान् जन का (रेतः) पराक्रम है और (अयम्) यह (ब्रह्मा) चारों वेद का ज्ञाता (वाचः) तीन वेदरूप वाणी का (परमम्) उत्तम (व्योम) स्थान है तू इस को जान॥६२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो इस भूगोल की मध्यस्थ रेखा की जावे तो वह ऊपर से भूमि के अन्त को प्राप्त होती हुई व्याससंज्ञक होती है । यही भूमि की सीमा है । सब लोकों के मध्य आकर्षणकर्त्ता जगदीश्वर है । सब प्राणियों को पराक्रमकर्त्ता ओषधियों में उत्तम अंशुमान् आदि सोम है और वेदपारग पुरुष वाणी का पारगन्ता है यह तुम जानो ॥६२॥

सुभूरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । समाधाता देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः ।
गांधारः स्वरः ॥

ईश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सुभूः स्वयम्भूः प्रथमोऽन्तर्महत्यर्णवे ।
दधे ह गर्भमृत्वियं यतो जातः प्रजापतिः ॥६३॥

पदार्थः—हे जिज्ञासु जन ! (यतः) जिस जगदीश्वर से (प्रजापतिः) विश्व का रक्षक सूर्य (जातः) उत्पन्न हुआ है और जो (सुभूः) सुन्दर विद्यमान (स्वयम्भूः) जो अपने आप प्रसिद्ध उत्पत्ति नाशरहित (प्रथमः) सब से प्रथम जगदीश्वर (महति) बड़े विस्तृत (अर्णवे) जलों से सम्बद्ध हुए संसार के (अन्तः) बीच (ऋत्वियम्) समयानुकूल प्राप्त (गर्भम्) बीज को (दधे) धारण करता है (ह) उसी की सब लोग उपासना करें ॥६३॥

भावार्थः—यदि जो मनुष्य लोग सूर्यादि लोकों के उत्तम कारण प्रकृति को और उस प्रकृति में उत्पत्ति की शक्ति को धारण करनेहारे परमात्मा को जानें तो वे जन इस जगत् में विस्तृत सुख वाले होवें ॥६३॥

होता यक्षदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ईश्वरो देवता । विराडुष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

ईश्वर की उपासना कैसे करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

होता यक्षत्प्रजापतिꣳ सोमस्य महिम्नः ।
जुषतां पिबतु सोमꣳ होतर्यज ॥६४॥

पदार्थः—हे (होतः) दान देने हारे जन ! जैसे (होता) ग्रहीता पुरुष (सोमस्य) सब ऐश्वर्य से युक्त (महिम्नः) बड़प्पन के होने से (प्रजापतिम्) विश्व के पालक स्वामी की (यक्षत्) पूजा करे वा उस को (जुषताम्) सेवन से प्रसन्न करे और (सोमम्) सब उत्तम ओषधियों के रस को (पिबतु) पीवे वैसे तू (यज) उस की पूजा कर और उत्तम ओषधि के रस को पिया कर ॥६४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् लोग इस जगत् में रचना आदि विशेष चिह्नों से परमात्मा के महिमा को जान के इस की उपासना करते हैं वैसे ही तुम लोग भी इस की उपासना करो जैसे ये विद्वान् युक्तिपूर्वक पथ्य पदार्थों का सेवन कर नीरोग होते हैं वैसे आप लोग भी हों ॥६४॥

प्रजापते नेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। ईश्वरो देवता। विराट्त्रिष्टुप् छन्दः।
धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥६५॥

पदार्थः—हे (प्रजापते) सब प्रजा के रक्षक स्वामिन् ईश्वर ! कोई भी (त्वत्) आप से (अन्यः) भिन्न (ता) उन (एतानि) इन पृथिव्यादि भूतों तथा (विश्वा) सब (रूपाणि) स्वरूपयुक्त वस्तुओं पर (न) नहीं (परि, बभूव) बलवान् है (यत्कामाः) जिस जिस पदार्थ की कामना वाले होकर (वयम्) हम लोग आप की (जुहुमः) प्रशंसा करें (तत्) वह वह कामना के योग्य वस्तु (नः) हम को (अस्तु) प्राप्त हो (ते) आप की कृपा से हम लोग (रयीणाम्) विद्या सुवर्ण आदि धनों के (पतयः) रक्षक स्वामी (स्याम) होवें ॥६५॥

भावार्थः—जो परमेश्वर से उत्तम, बड़ा, ऐश्वर्ययुक्त, सर्वशक्तिमान् पदार्थ कोई भी नहीं है तो उस के तुल्य भी कोई नहीं। जो सब का आत्मा, सब का रचने वाला, समस्त ऐश्वर्य का दाता ईश्वर है उसकी भक्तिविशेष और अपने पुरुषार्थ से इस लोक के ऐश्वर्य और योगाभ्यास के सेवन से परलोक के सामर्थ्य को हम लोग प्राप्त हों ॥६५॥

इस अध्याय में परमात्मा की महिमा, सृष्टि के गुण, योग की प्रशंसा, प्रश्नोत्तर, सृष्टि के पदार्थों की प्रशंसा, राजा प्रजा के गुण, शास्त्र आदि का उपदेश, पठन-पाठन, स्त्री पुरुषों के परस्पर गुण, फिर प्रश्नोत्तर, ईश्वर के गुण, यज्ञ की व्याख्या और रेखागणित आदि का वर्णन किया है इससे इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये॥

अब तेईसवां अध्याय समाप्त हुआ॥

---

* ओ३म् *

अथ चतुर्विंशाऽध्यायारम्भः

—।*:०*०:*०।*:—

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥१॥

विश्व इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। भुरिक्संकृतिश्छन्दः।
गांधारः स्वरः ॥

अब चौबीसवें अध्याय का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को पशुओं से कैसा उपकार लेना चाहिये इस विषय का वर्णन है ॥

अश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्याः कृष्णग्रीवऽआग्नेयो रराटे पुरस्तात्सारस्वती मेष्यधस्ताद्धन्वोराश्विनावधोरामौ बाह्वोः सौमापौष्णः श्यामो नाभ्याꣳ सौर्ययामौ श्वेतश्च कृष्णश्च पार्श्वयोस्त्वाष्ट्रौ लोमशसक्थौ सक्थ्योर्वायव्यः श्वेतः पुच्छऽइन्द्राय स्वपस्याय वेहद्वैष्णवो वामनः ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम जो (अश्वः) शीघ्र चलने हारा घोड़ा (तूपरः) हिंसा करने वाला पशु (गोमृगः) और गौ के समान वर्त्तमान नीलगाय है (ते) वे (प्राजापत्याः) प्रजापालक सूर्य देवता वाले अर्थात् सूर्यमण्डल के गुणों से युक्त (कृष्णग्रीवः) जिस की काली गर्दन वह पशु (आग्नेयः) अग्नि देवता वाला (पुरस्तात्) प्रथम से (रराटे) ललाट के निमित्त (मेषी) मेंढ़ी (सारस्वती) सरस्वती देवता वाली (अधस्तात्) नीचे से (हन्वोः) ठोढ़ी वामदक्षिण भागों के और (बाह्वोः) भुजाओं के निमित्त (अधोरामौ) नीचे रमण करने वाले (आश्विनौ) जिनका अश्विदेवता वे पशु (सौमापौष्णः) सोम और पूषा देवता वाला (श्यामः) काले रंग से युक्त पशु (नाभ्याम्)

तुन्दी के निमित्त और (पार्श्वयोः) बाईं दाहिनी ओर के निमित्त (श्वेतः) सुफेद रंग (च) और (कृष्णः) काला रंग वाला (च) और (सौर्ययामौ) सूर्य वा यमसम्बन्धी पशु वा (सक्थ्योः) पैरों की गांठियों के पास के भागों के निमित्त (लोमशसक्थौ) जिस के बहुत रोम विद्यमान ऐसे गांठियों के पास के भाग से युक्त (त्वाष्ट्रौ) त्वष्टा देवता वाले पशु वा (पुच्छे) पूंछ के निमित्त (श्वेतः) सुफेद रंग वाला (वायव्यः) वायु जिस का देवता है वह वा (वेहत्) जो कामोद्दीपन समय के विना वैल के समीप जाने से गर्भ नष्ट करने वाली गौ वा (वैष्णवः) विष्णु देवता वाला और (वामनः) नाटा शरीर से कुछ टेढ़े अंगवाला पशु इन सबों को (स्वपस्याय) जिन के सुन्दर सुन्दर कर्म उस (इन्द्राय) ऐश्वर्य्ययुक्त पुरुष के लिये संयुक्त करो अर्थात् उक्त प्रत्येक अंग के आनन्दनिमित्तक उक्त गुण वाले पशुओं को नियत करो ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य अश्व आदि पशुओं से कार्य्यों को सिद्ध कर ऐश्वर्य्य को उन्नति देके धर्म के अनुकूल काम करें वे उत्तम भाग्य वाले हों। इस प्रकरण में सब स्थानों में देवता पद से उस उस पद के गुणयोग से पशु जानने चाहियें ॥१॥

रोहित इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सोमादयो देवताः। निचृत्संकृतिश्छन्दः। गांधारः स्वरः ॥

फिर कौन पशु कैसे गुण वाले हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

रोहितो धूम्ररोहितः कर्कन्धुरोहितस्ते सौम्या बभ्रुररुणबभ्रुः शुकबभ्रुस्ते वारुणाः शितिरन्ध्रोऽन्यतःशितिरन्ध्रः समन्तशितिरन्ध्रस्ते सावित्राः शितिबाहुरन्यतःशितिबाहुः समन्तशितिबाहुस्ते बार्हस्पत्याः पृषती क्षुद्रपृषती स्थूलपृषती ता मैत्रावरुण्यः ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को जो (रोहितः) सामान्य लाल (धूम्ररोहितः) धुमेला लाल और (कर्कन्धुरोहितः) पके वेर के समान लाल पशु हैं (ते) वे (सौम्याः) सोम देवता अर्थात् सोम गुण वाले। जो (बभ्रुः) न्योला के समान धुमेला (अरुणबभ्रुः) लालाभी लिये हुए न्योले के समान रंग वाला और (शुकबभ्रुः) सुग्गा की समता को लिये हुए न्योले के समान रंगयुक्त पशु हैं (ते) वे सब (वारुणाः) वरुण देवता वाले अर्थात् श्रेष्ठ जो (शितिरन्ध्रः) शितिरन्ध्र अर्थात् जिस के मर्मस्थान आदि में सुपेदी (अन्यतःशितिरन्ध्रः) जो और अंग से और अंग में छेद से हों वैसी जिस के जहां तहां सुपेदी (समन्तशितिरन्ध्रः) और जिस के सब ओर से छेदों के समान सुपेदी के चिह्न हैं (ते) वे सब (सावित्राः) सविता देवता वाले (शितिबाहुः) जिस के अगले

भुजाओं में सुपेदी के चिह्न (अन्यतःशितिबाहुः) जिस के ओर अंग से ओर अंग में सुपेदी के चिह्न और (समन्तशितिबाहुः) जिस के सब ओर से अगले गोड़ों में सुपेदी के चिह्न हैं ऐसे जो पशु हैं (ते) वे (बार्हस्पत्याः) बृहस्पति देवता वाले तथा जो (पृषती) सब अंगों से अच्छी छिटकी हुई सी (क्षुद्रपृषती) जिस के छोटे छोटे रंग बिरंग छींटे और (स्थूलपृषती) जिस के मोटे मोटे छींटे हैं (ताः) वे सब (मैत्रावरुण्यः) प्राण और उदान देवता वाले होते हैं यह जानना चाहिये ॥२॥

भावार्थः—जो चन्द्रमा आदि के उत्तम गुणवाले पशु हैं उन से उन उन के गुण के अनुकूल काम मनुष्यों को सिद्ध करने चाहियें ॥२॥

शुद्धवाल इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर कैसे गुण वाले पशु हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्तऽआश्विनाः श्येतः श्येताक्षोऽरुणस्ते रुद्राय पशुपतये कर्णा यामाऽअवलिप्ता रौद्रा नभोरूपाः पार्जन्याः ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुमको जो (शुद्धवालः) जिस के शुद्ध बाल वा शुद्ध छोटे छोटे अंग (सर्वशुद्धवालः) जिसके समस्त शुद्ध बाल और (मणिवालः) जिस के मणि के समान चिलकते हुए बाल हैं ऐसे जो पशु (ते) वे सब (आश्विनाः) सूर्य चन्द्र देवता वाले अर्थात् सूर्य चन्द्रमा के समान दिव्य गुण वाले जो (श्येतः) सुपेद रंगयुक्त (श्येताक्षः) जिस की सुपेद आंखें और (अरुणः) जो लाल रंग वाला है (ते) वे (पशुपतये) पशुओं की रक्षा करने और (रुद्राय) दुष्टों को रुलानेहारे के लिये। जो ऐसे हैं कि (कर्णाः) जिन से काम करते हैं वे (यामाः) वायु देवता वाले (अवलिप्ताः) जिन के उन्नतियुक्त अङ्ग अर्थात् स्थूल शरीर हैं वे (रौद्राः) प्राणवायु आदि देवता वाले तथा (नभोरूपाः) जिन का आकाश के समान नीला रूप है ऐसे जो पशु हैं वे सब (पार्जन्याः) मेघ देवता वाले जानने चाहियें ॥३॥

भावार्थः—जो जिस पशु का देवता है वह उस का गुण है यह जानना चाहिये ॥३॥

पृश्निरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । मारुतादयो देवताः । विराडतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पृश्निस्तिरश्चीनपृश्निरूर्ध्वपृश्निस्ते मारुताः फल्गूर्लोहितोर्णी पलक्षी

ताः सा॒र॒स्व॒त्यः प्ली॒हा॒क॒र्णः शु॒ण्ठा॒क॒र्णो॑ऽध्याॅलोहकर्ण॒स्ते त्वा॒ष्ट्राः कृ॒ष्णग्री॑वः शिति॒कक्षो॑ऽञ्जिस॒क्थस्त॑ऽऐन्द्रा॒ग्नाः कृ॒ष्णाञ्जि॒र॒ल्पा॑ञ्जि॒र्म॒हाञ्जि॒स्त॑ऽउष॒स्याः ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (पृश्निः) पूछने योग्य (तिरश्चीनपृश्निः) जिस का तिरछा स्पर्श और (ऊर्ध्वपृश्निः) जिसका ऊँचा वा उत्तम स्पर्श है (ते) वे (मारुताः) वायु देवता वाले। जो (फल्गूः) फलों को प्राप्त हों (लोहितोर्णी) जिस की लाल ऊर्णा अर्थात् देह के वाल और (पलक्षी) जिस की चंचल चपल आंखें ऐसे जो पशु हैं (ताः) वे (सारस्वत्यः) सरस्वती देवता वाले (प्लीहाकर्णः) जिस के कान में प्लीहा रोग के आकार के चिह्न हों (शुण्ठाकर्णः) जिस के सूखे कान और जिस के (अध्यालोहकर्णः) अच्छे प्रकार प्राप्त हुए सुवर्ण के समान कान ऐसे जो पशु हैं (ते) वे सब (त्वाष्ट्राः) त्वष्टा देवता वाले जो (कृष्णग्रीवः) काले गले वाले (शितिकक्षः) जिसके पांजर की ओर सुपेद अङ्ग और (अञ्जिसक्थः) जिस की प्रसिद्ध जङ्घा अर्थात् स्थूल होने से अलग विदित हों ऐसे जो पशु हैं (ते) वे सब (ऐन्द्राग्नाः) पवन और बिजुली देवता वाले तथा (कृष्णाञ्जिः) जिस की करोदी हुई चाल (अल्पाञ्जिः) जिस की थोड़ी चाल और (महाञ्जिः) जिस की बड़ी चाल ऐसे जो पशु हैं (ते) वे सब (उषस्याः) उषा देवता वाले होते हैं यह जानना चाहिये ॥४॥

भावार्थः—जो पशु और पक्षी पवन गुण वा जो नदी गुण वा जो सूर्य गुण वा जो पवन और बिजुली गुण तथा जो प्रातःसमय की वेला के गुण वाले हैं उनसे उन्हीं के अनुकूल काम सिद्ध करने चाहियें ॥४॥

शिल्पा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृद्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

शि॒ल्पा वै॑श्वदे॒व्यो रोहि॑ण्य॒स्त्र्यव॑यो वा॒चेऽवि॑ज्ञाता॒ऽअदि॑त्यै॒ सरू॑पा धा॒त्रे व॑त्सत॒र्यो॑ दे॒वानां॒ पत्नी॑भ्यः ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! तुम को (शिल्पाः) जो सुन्दर रूपवान् और शिल्पकार्यों की सिद्धि करने वाली (वैश्वदेव्यः) विश्वेदेव देवता वाले (वाचे) वाणी के लिये (रोहिण्यः) नीचे से ऊपर को चढ़ने योग्य (त्र्यवयः) जो तीन प्रकार की भेड़ें (अदित्यै) पृथिवी के लिये (अविज्ञाताः) विशेषकर न जानी हुई भेड़ आदि (धात्रे) धारण करने के लिये (सरूपाः) एक से रूप वाली तथा (देवानाम्) दिव्यगुण वाले विद्वानों की

(पत्नीभ्यः) स्त्रियों के लिये (वत्सतर्य्यः) अतीव छोटी छोटी थोड़ी अवस्था वाली बछिया जाननी चाहिये ।।५।।

भावार्थः—जो सब विद्वान् शिल्पविद्या से अनेकों यान आदि बनावें और पशुओं की पालना कर उनसे उपयोग लेवें वे धनवान् हों ।।५।।

कृष्णग्रीवा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । विराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

कृष्णग्रीवा आग्नेयाः शितिभ्रवो वसूनाᳬ रोहिता रुद्राणाᳬ श्वेता अंवरोकिणं आदित्यानां नभौरूपाः पार्जन्याः ।।६।।

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (कृष्णग्रीवाः) ऐसे हैं कि जिनकी खिंची हुई गर्दन वा खिचा हुआ खाना निगलना वे (आग्नेयाः) अग्नि देवता वाले (शितिभ्रवः) जिनकी सुपेद भौंहें हैं वे (वसूनाम्) पृथिवी आदि वसुओं के । जो (रोहिता.) लाल रंग के हैं वे (रुद्राणाम्) प्राण आदि ग्यारह रुद्रों के । जो (श्वेता) सुपेद रंग के और (अवरोकिणः) अवरोध करने अर्थात् रोकने वाले हैं वे (आदित्यानाम्) सूर्यसम्बन्धी महीनों के और जो (नभोरूपाः) ऐसे हैं कि जिनका जल के समान रूप है वे जीव (पार्जन्याः) मेघदेवता वाले अर्थात् मेघ के सदृश गुणों वाले जानने चाहियें ।।६।।

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अग्नि की खींचने की, पृथिवी आदि की धारण करने की, पवनों की अच्छे प्रकार चढ़ने की, सूर्य आदि की रोकने की और मेघों की जल वर्षाने की क्रिया को जान कर सब कामों में सम्यक् निरन्तर उपयुक्त किया करें ।।६।।

उन्नत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रादयो देवताः । अतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

उन्नत ऋषभो वामनस्तऽऐन्द्रावैष्णवा उन्नतः शितिबाहुः शितिपृष्ठस्तऽऐन्द्राबार्हस्पत्याः शुकरूपा वाजिनाः कल्माषा आग्निमारुताः श्यामाः पौष्णाः ।।७।।

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को जो (उन्नतः) ऊंचा (ऋषभः) और श्रेष्ठ (वामनः) टेढ़े अंगों वाले नाटा पशु है (ते) वे (ऐन्द्र वैष्णवाः) बिजुली और पवन देवता वाले जो (उन्नतः) ऊंचा (शितिबाहुः) जिस का दूसरे पदार्थ को काटती छांटती

हुई भुजाओं के समान बल और (शितिपृष्ठः) जिस की सूक्ष्म की हुई पीठ ऐसे जो पशु हैं (ते) वे (ऐन्द्राबार्हस्पत्याः) वायु और सूर्य देवता वाले (शुकरूपाः) जिन का सुग्गों के समान रूप और (वाजिनाः) वेग वाले (कल्माषाः) कबरे भी हैं वे (आग्निमारुताः) अग्नि और पवन देवता वाले तथा जो (श्यामाः) काले रंग के हैं वे (पौष्णाः) पुष्टिनिमित्तक मेघ देवता वाले जानने चाहियें ॥७॥

भावार्थः—जो मनुष्य पशुओं की उन्नति और पुष्टि करते हैं वे नाना प्रकार के सुखों को पाते हैं ॥७॥

एता इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्राग्न्यादयो देवताः । विराड्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

एता ऐन्द्राग्ना द्विरूपा अग्नीषोमीया वामना अनड्वाह आग्नावैष्णवा वशा मैत्रावरुण्योऽन्यतएन्यो मैत्र्यः ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को (एताः) ये पूर्वोक्त (द्विरूपाः) द्विरूप पशु अर्थात् जिनके दो दो रूप हैं वे (ऐन्द्राग्नाः) वायु और बिजुली के संगी जो (वामनाः) टेढ़े अङ्गों वाले व नाटे और (अनड्वाहः) बैल हैं वे (अग्नीषोमीयाः) सोम और अग्नि देवता वाले तथा (आग्नावैष्णवाः) अग्नि और वायु देवता वाले जो (वशाः) वन्ध्या गौ हैं वे (मैत्रावरुण्यः) प्राण और उदान देवता वाली और जो (अन्यतएन्यः) कहीं से प्राप्त हों वे (मैत्र्यः) मित्र के प्रिय व्यवहार में जानने चाहियें ॥८॥

भावार्थः—जो मनुष्य वायु और अग्नि आदि के गुणों वाले गौ आदि पशु हैं उनकी पालना करते हैं वे सब का उपकार करने वाले होते हैं ॥८॥

कृष्णग्रीवा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

कृष्णग्रीवा आग्नेया बभ्रवः सौम्याः श्वेता वायव्या अविज्ञाता अदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतर्यो देवानां पत्नीभ्यः ॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को जो (कृष्णग्रीवाः) काले गले के हैं वे (आग्नेयाः) अग्निदेवता वाले जो (बभ्रवः) न्योले के रंग के समान रंग वाले हैं वे (सौम्याः) सोम देवता वाले जो (श्वेताः) सुपेद हैं वे (वायव्याः) वायु देवता वाले । जो (अविज्ञाताः) विशेष चिह्न से कुछ न जाने गये वे (अदित्यै) जो कभी नाश नहीं होती उस उत्पत्ति-

रूप क्रिया के लिये जो (सरूपाः) ऐसे हैं कि जिन का एकसा रूप है वे (धात्रे) धारण करने हारे पवन के लिये। और जो(वत्सतर्यः)छोटी छोटी बछियां हैं वे (देवानाम्)सूर्य आदि लोकों की(पत्नीभ्यः) पालना करने वाली क्रियाओं के लिये जानने चाहिये ॥९॥

भावार्थः—जो पशु जोतने और निगलने वाले अग्नि के समान वर्त्तमान जो ओषधी के समान गुणों को धारण करने और ढांपने वाले हैं वे पवन के समान वर्त्तमान जो नहीं जानने योग्य वे उत्पत्ति के लिये जो धारण करते हुए के तुल्य गुणयुक्त हैं वे धारण करने के लिये। तथा जो सूर्य की किरणों के समान वर्त्तमान पदार्थ हैं वे व्यवहारों की सिद्धि करने में अच्छे प्रकार युक्त करने चाहियें ॥९॥

कृष्णा भौमा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अन्तरिक्षादयो देवताः। विराड्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कृष्णा भौमा धूम्रा आन्तरिक्षा बृहन्तो दिव्याः शबला वैद्युताः सिध्मास्तारकाः ॥१०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को जो (कृष्णाः) काले रंग के वा खेत आदि के जुताने वाले हैं वे (भौमाः) भूमि देवता वाले (धूम्राः) घुमेले हैं वे (आन्तरिक्षाः) अन्तरिक्ष देवता वाले। जो (दिव्याः) दिव्य गुण कर्म स्वभावयुक्त (बृहन्तः) बढ़ते हुए और (शबलाः)थोड़े सुपेद हैं वे (वैद्युताः) बिजुली देवता वाले। और जो (सिध्माः) मंगल कराने हारे हैं वे (तारकाः) दुःख के पार उतारने वाले जानने चाहियें ॥१०॥

भावार्थः—यदि मनुष्य जोतने आदि कार्यों के साधक पशु आदि पदार्थों को भूमि आदि में संयुक्त करें तो वे आनन्द मंगल को प्राप्त होवें ॥१०॥

धूम्रानित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। वसन्तादयो देवताः। विराड्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

धूम्रान् वसन्तायालभते श्वेतान् ग्रीष्माय कृष्णान् वर्षाभ्योऽरुणाञ्छरदे पृषतो हेमन्ताय पिशङ्गाञ्छिशिराय ॥११॥

पदार्थः—जो मनुष्य (वसन्ताय) वसन्त ऋतु में सुख के लिये (धूम्रान्) घुमेले पदार्थों के (ग्रीष्माय)ग्रीष्म ऋतु में आनन्द के लिये (श्वेतान्) सुपेद रंग के (वर्षाभ्यः) वर्षा ऋतु में कार्यसिद्धि के लिये (कृष्णान्) काले रंग के वा खेती की सिद्धि कराने

वाले (शरदे) शरद् ऋतु में सुख के लिये (अरुणान्) लाल रंग के (हेमन्ताय) हेमन्त ऋतु में कार्य साधने के लिये (पृषतः) मोटे और (शिशिराय) शिशिर ऋतुसम्बन्धी व्यवहार साधने के लिये (पिशङ्गान्) लालामी लिये हुए पीले पदार्थों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वह निरन्तर सुखी होता है ॥११॥

भावार्थः—मनुष्यों को जिस ऋतु में जो पदार्थ इकट्ठे करने वा सेवने योग्य हों उनको इकट्ठे और उनका सेवन कर नीरोग हो के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सिद्ध करने के व्यवहारों का आचरण करें ॥११॥

त्र्यवय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । विराडनुष्टुप् छंदः । गांधारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्र्यवयो गायत्र्यै पञ्चावयस्त्रिष्टुभे दित्यवाहो जगत्यै त्रिवत्साऽ-अनुष्टुभे तुर्यवाहऽउष्णिहे ॥१२॥

पदार्थः—जो (त्र्यवयः) ऐसे हैं कि जिन की तीन भेड़ें वे (गायत्र्यै) गाते हुओं की रक्षा करने वाली के लिये (पञ्चावयः) जिन के पांच भेड़ें हैं वे (त्रिष्टुभे) तीन अर्थात् शरीर, वाणी और मनसम्बन्धी सुखों के स्थिर करने के लिये। जो (दित्यवाहः) विनाश में न प्रसिद्ध हों उन की प्राप्ति कराने वाले (जगत्यै) संसार की रक्षा करने की जो क्रिया उस के लिये (त्रिवत्साः) जिन के तीन स्थानों में निवास वे (अनुष्टुभे) पीछे से रोकने की क्रिया के लिये और (तुर्यवाहः) जो अपने पशुओं में चौथे को प्राप्त कराने वाले हैं वे (उष्णिहे) जिस क्रिया से उत्तमता के साथ प्रसन्न हों उस क्रिया के लिये अच्छा यत्न करें वे सुखी हों ॥१२॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् जन पढ़े हुए गायत्री आदि छन्दों के अर्थों से सुखों को बढ़ाते हैं वैसे पशुओं के पालने वाले घी आदि पदार्थों को बढ़ावें ॥१२॥

पष्ठवाडित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विराजादयो देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पष्ठवाहो विराजऽउक्षाणो बृहत्याऽऋषभाः ककुभेऽनड्वाहः पङ्क्त्यै धेनवोऽतिछन्दसे ॥१३॥

पदार्थः—जिन मनुष्यों ने (विराजे) विराट् छन्द के लिये (पष्ठवाहः) जो पीठ से पदार्थों को पहुंचाते (बृहत्यै) बृहती छन्द के अर्थ को (उक्षाणः) वीर्य सींचने में

समर्थ (ककुभे) ककुप् उष्णिक् छन्द के अर्थ को (ऋषभाः) अतिबलवान् प्राणी (पङ्क्त्यै) पंक्ति छन्द के अर्थ को (अनड्वाहः) लढ़ा पहुंचाने में समर्थ बैलों को (अतिछन्दसे) अतिजगती आदि छन्द के अर्थ को (धेनवः) दूध देने वाली गौएं स्वीकार कीं वे अतीव सुख पाते हैं ॥१३॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् त्रिराट् आदि छन्दों के लिये बहुत विद्याविषयक कामों को सिद्ध करते हैं वैसे ऊंट आदि पशुओं से गृहस्थ लोग समस्त कामों को सिद्ध करें ॥१३॥

कृष्णग्रीवा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

कृष्णग्रीवा आग्नेया बभ्रवः सौम्याऽउपध्वस्ताः सावित्रा वत्सतर्यः सारस्वत्यः श्यामाः पौष्णाः पृश्नयो मारुता बहुरूपा वैश्वदेवा वशा द्यावापृथिवीयाः ॥१४॥

पदार्थः— हे मनुष्यो तुम को जो (कृष्णग्रीवाः) काले गले वाले हैं वे (आग्नेयाः) अग्नि देवता वाले । जो (बभ्रवः) सब का धारण पोषण करने वाले हैं वे (सौम्याः) सोम देवता वाले । जो (उपध्वस्ताः) नीचे के समीप गिरे हुए हैं वे (सावित्राः) सविता देवता वाले । जो (वत्सतर्य्यः) छोटी छोटी बछिया हैं वे (सारस्वत्यः) वाणी देवता वाली । जो (श्यामाः) काले वर्ण के हैं वे (पौष्णाः) पुष्टि करने हारे मेघ देवता वाले । जो (पृश्नयः) पूछने योग्य हैं वे (मारुताः) मनुष्य देवता वाले जो (बहुरूपाः) बहुरूपी अर्थात् जिन के अनेक रूप हैं वे (वैश्वदेवाः) समस्त विद्वान् देवता वाले और जो (वशाः) निरन्तर चिलकते हुए हैं वे (द्यावापृथिवीयाः) आकाश पृथिवी देवता वाले जानने चाहियें ॥१४॥

भावार्थः—जैसे शिल्पविद्या जानने वाले विद्वान् जन अग्नि आदि पदार्थों से अनेक कार्य सिद्ध करते हैं वैसे खेती करनेवाले पुरुष पशुओं से बहुत कार्य सिद्ध करें ॥१४॥

उक्ता इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रादयो देवताः । विराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उक्ताः सञ्चराऽएता ऐन्द्राग्नाः कृष्णा वारुणाः पृश्नयो मारुताः कायास्तूपराः ॥१५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को (एताः) ये (उक्ताः) कहे हुए (संचराः) जो अच्छे प्रकार चलने हारे पशु आदि हैं वे (ऐन्द्राग्नाः) इन्द्र और अग्नि देवता वाले। जो (कृष्णाः) खींचने वा जोतने हारे हैं (वारुणाः) वे वरुण देवता वाले और जो (पृश्नयः) चित्र विचित्र चिह्न युक्त (मारुताः) मनुष्य के से स्वभाव वाले (तूपराः) हिंसक हैं वे (कायाः) प्रजापति देवता वाले हैं यह जानना चाहिये ॥१५॥

भावार्थः—जो नाना प्रकार के देशों में आने जाने वाले पशु आदि प्राणी हैं उनसे मनुष्य यथायोग्य उपकार लेवें ॥१५॥

अग्नय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अग्न्यादयो देवताः। शक्वरी छन्दः।
धैवतः स्वरः॥

फिर किस के लिये कौन रक्षा करने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒ग्नयेऽनी॑कवते प्रथम॒जाना॒लभ॑ते म॒रुद्भ्यः॑ सान्तप॒नेभ्यः॑ सवा॒त्यान् म॒रुद्भ्यो॑ गृहमे॒धिभ्यो॒ बष्कि॑हान् म॒रुद्भ्यः॑ क्रीडि॒भ्यः॑ स॒ꣳसृष्टान् म॒रुद्भ्यः॑ स्वत॑वद्भ्योऽनुसृ॒ष्टान् ॥१६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे विद्वान् जन (अनीकवते) प्रशंसित सेना रखने वाले (अग्नये) अग्नि के समान वर्त्तमान तेजस्वी सेनाधीश के लिये (प्रथमजान्) विस्तारयुक्त कारण से उत्पन्न हुए (सान्तपनेभ्यः) जिन का अच्छे प्रकार ब्रह्मचर्य्य आदि आचरण है उन (मरुद्भ्यः) प्राण के समान प्रीति उत्पन्न करने वाले मनुष्यों के लिये (सवात्यान्) एक से पवन में हुए पदार्थों (गृहमेधिभ्यः) घर में जिन की धीर बुद्धि है उन (मरुद्भ्यः) मनुष्यों के लिये (बष्किहान्) बहुत काल के उत्पन्न हुओं (क्रीडिभ्यः) प्रशंसायुक्त विहार आनन्द करने वाले (मरुद्भ्यः) मनुष्यों के लिये (संसृष्टान्) अच्छे प्रकार गुणयुक्त और (स्वतवद्भ्यः) जिन का आप से आप निवास है उन (मरुद्भ्यः) स्वतन्त्र मनुष्यों के लिये (अनुसृष्टान्) मिलने वालों को (आ, लभते) प्राप्त होता है तुम लोग इन को प्राप्त होओ ॥१६॥

भावार्थः—जैसे विद्वानों से विद्यार्थी और पशु पाले जाते हैं वैसे अन्य मनुष्यों को भी पालने चाहियें ॥१६॥

उक्ता इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। इन्द्राग्न्यादयो देवताः। भुरिग्गायत्री छन्दः।
षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उ॒क्ताः स॑ञ्च॒रा ए॒ता ऐ॑न्द्रा॒ग्नाः प्रा॑शृ॒ङ्गा मा॑हे॒न्द्रा ब॑हुरू॒पा वै॑श्वक॒र्म॒णाः ॥१७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को जो (एताः) ये (ऐन्द्राग्नाः) वायु और बिजुली देवता वाले (प्राशृङ्गाः) जिन के उत्तम सींग है वे (माहेन्द्राः) महेन्द्र देवता वाले वा (बहुरूपाः) बहुत रंगयुक्त (वैश्वकर्मणाः) विश्वकर्म देवता वाले (संचराः) जिन में अच्छे प्रकार आते जाते हैं वे मार्ग (उक्ताः) निरूपण किये उन में जाना आना चाहिये ॥१७॥

भावार्थः--जैसे विद्वानों ने पशुओं की पालना आदि के मार्ग कहे हैं वैसे ही वेद में प्रतिपादित हैं ॥१७॥

धूम्रा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। पितरो देवताः। भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

धूम्रा बभ्रुनीकाशाः पितृणाᳪं सोमवतां बभ्रवो धूम्रनीकाशाः पितृणां बर्हिषदां कृष्णा बभ्रुनीकाशाः पितृणामग्निष्वात्तानां कृष्णाः पृषन्तस्त्रैयम्बकाः ॥१८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को (सोमवताम्) सोमशान्ति आदि गुणयुक्त उत्पन्न करने वाले (पितृणाम्) माता पिताओं के (बभ्रुनीकाशाः) न्योले के समान (धूम्राः) धुमेले रंगवाले (बर्हिषदाम्) जो सभा के बीच बैठते हैं उन (पितृणाम्) पालना करने हारे विद्वानों के (कृष्णाः) काले रंग वाले (धूम्रनीकाशाः) धुम्रां के समान अर्थात् धुमेले और (बभ्रवः) पुष्टि करने वाले तथा (अग्निष्वात्तानाम्) जिन्होंने अग्निविद्या ग्रहण की है उन (पितृणाम्) पालना करने हारे विद्वानों के (बभ्रुनीकाशाः) पालने हारे के समान (कृष्णाः) काले रंग वाले (पृषन्तः) मोटे अङ्गों से युक्त (त्रैयम्बकाः) जिन का तीन अधिकारों में चिह्न हैं वे प्राणी वा पदार्थ हैं यह जानना चाहिये ॥१८॥

भावार्थः—जो उत्पन्न करने और विद्या देने वाले विद्वान् हैं उनका घी आदि पदार्थ वा गो आदि के दान से यथायोग्य सत्कार करना चाहिये ॥१८॥

उक्ताः संचरा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। वायुर्देवता। त्रिपाद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उक्ताः सञ्चराऽएताः शुनासीरीयाः श्वेता वायव्याः श्वेताः सौर्याः ॥१९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम जो (एताः) ये (शुनासीरीयाः) शुनासीर देवता वाले अर्थात् खेती की सिद्धि करने वाले (संचराः) आने जाने हारे (वायव्याः) पवन के समान दिव्यगुणयुक्त (श्वेताः) सुपेद रंग वाले वा (सौर्याः) सूर्य के समान प्रकाशमान (श्वेताः) सुपेद रंग के पशु (उक्ताः) कहे हैं उन को अपने कार्यों में अच्छे प्रकार नियुक्त करो ॥१९॥

भावार्थः—जो जिस पशु का देवता कहा है वह उस पशु का गुणग्रहण करना चाहिये ॥१९॥

वसन्तायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। वसन्तादयो देवताः। विराड्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर किस के लिये कौन अच्छे प्रकार आश्रय करने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वसन्ताय कपिञ्जलानालभते ग्रीष्माय कलविङ्कान्वर्षाभ्यस्तित्तिरीञ्छरदे वर्त्तिका हेमन्ताय ककराञ्छिशिराय विककरान् ॥२०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! पक्षियों को जानने वाला जन (वसन्ताय) वसन्त ऋतु के लिये (कपिञ्जलान्) जिन कपिंजल नाम के विशेष पक्षियों (ग्रीष्माय) ग्रीष्म ऋतु के लिये (कलविङ्कान्) चिरौटा नाम के पक्षियों (वर्षाभ्यः) वर्षा ऋतु के लिये (तित्तिरीन्) तीतरों (शरदे) शरद् ऋतु के लिये (वर्त्तिकाः) बतकों (हेमन्ताय) हेमन्त ऋतु के लिये (ककरान्) ककर नाम के पक्षियों और (शिशिराय) शिशिर ऋतु के अर्थ (विककरान्) विककर नाम के पक्षियों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है उन को तुम जानो ॥२०॥

भावार्थः—जिस जिस ऋतु में जो जो पक्षी अच्छे आनन्द को पाते हैं वे वे उस गुण वाले जानने चाहियें ॥२०॥

समुद्रायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। वरुणो देवता। विराट् छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर कौन किस के अर्थ सेवन करने चाहियें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

समुद्राय शिशुमारानालभते पर्जन्याय मण्डूकानद्भ्यो मत्स्यान्मित्राय कुलीपयान्वरुणाय नाक्रान् ॥२१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे जल के जीवों की पालना करने को जानने वाला जन (समुद्राय) महाजलाशय समुद्र के लिये (शिशुमारान्) जो अपने बालकों को मार डालते हैं उन शिशुमारों (पर्जन्याय) मेघ के लिये (मण्डूकान्) मेंढकों (अद्भ्यः) जलों

के लिये (मत्स्यान्) मछलियों (मित्राय) मित्र के समान सुख देते हुए सूर्य्य के लिये (कुलीपयान्) कुलीपय नाम के जङ्गली पशुओं और (वरुणाय) वरुण के लिये (नाक्रान्) नाके मगर जलजन्तुओं को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ ॥२१॥

भावार्थः—जैसे जलचर जन्तुओं के गुण जानने वाले पुरुष उन जल के जन्तुओं को बढ़ा वा पकड़ सकते हैं वैसा आचरण और लोग भी करें ॥२१॥

सोमायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सोमादयो देवताः । विराड्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सोमा॑य ह॒ꣳसाना॒लभ॑ते वा॒यवे॑ ब॒लाका॑ऽइन्द्रा॒ग्निभ्या॒ं क्रुञ्चा॑न्मि॒त्राय॑ म॒द्गून्वरु॑णाय चक्र॒वाका॑न् ॥२२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे पक्षियों के गुण का विशेष ज्ञान रखने वाला पुरुष (सोमाय) चन्द्रमा वा ओषधियों में उत्तम सोम के लिये (हंसान्) हंसों (वायवे) पवन के लिये (बलाकाः) बगुलियों (इन्द्राग्निभ्याम्) इन्द्र और अग्नि के लिये (क्रुञ्चान्) सारसों (मित्राय) मित्र के लिये (मद्गून्) जल के कौओं वा सुतरमुर्गों और (वरुणाय) वरुण के लिये (चक्रवाकान्) चकई चकवों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ ॥२२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को जो उत्तम पक्षी हैं वे अच्छे यत्न के साथ पालन कर बढ़ाने चाहियें ॥२२॥

अग्नय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अ॒ग्नये॑ कु॒टरू॑ना॒लभ॑ते॒ वन॒स्पति॑भ्य॒ऽउलू॑का॒नग्नीषोमा॑भ्यां॒ चाषा॑न॒श्विभ्यां॑ म॒यूरा॑न्मि॒त्रावरु॑णाभ्यां॒ क॒पोता॑न् ॥२३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे पक्षियों के गुण जानने वाला जन (अग्नये) अग्नि के लिये (कुटरून्) मुर्गों (वनस्पतिभ्यः) वनस्पति अर्थात् विना पुष्प फल देने वाले वृक्षों के लिये (उलूकान्) उल्लू पक्षियों (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और सोम के लिये (चाषान्) नीलकण्ठ पक्षियों (अश्विभ्याम्) सूर्य चन्द्रमा के लिये (मयूरान्) मयूरों

तथा (मित्रावरुणाभ्याम्) मित्र और वरुण के लिये (कपोतान्) कबूतरों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे इन को तुम भी प्राप्त होओ ॥२३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मुर्गा आदि पक्षियों के गुणों को जानते हैं वे सदा इनको बढ़ाते हैं ॥२३॥

सोमायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सोमादयो देवताः। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सोमा॑य लवाना॒लभते॒ त्वष्ट्रे॑ कौली॒कान्गो॑षा॒दीर्दे॒वानां॒ पत्नी॑भ्यः कु॒लीका॑ देव॒जामि॒भ्यो॒ऽग्नये॑ गृ॒हप॑तये पारु॒ष्णान् ॥२४॥

पदार्थः— हे मनुष्यो ! जैसे पक्षियों का काम जाननेवाला जन (सोमाय) ऐश्वर्य के लिये (लवान्) बटेरों (त्वष्ट्रे) प्रकाश के लिये (कौलीकान्) कौलीक नाम के पक्षियों (देवानाम्) विद्वानों की (पत्नीभ्यः) स्त्रियों के लिये (गोसादीः) जो गौओं को मारती हैं उन पखेरियों (देवजामिभ्यः) विद्वानों की बहिनियों के लिये (कुलीकाः) कुलीक नामक पखेरियों और (अग्नये) जो अग्नि के समान वर्त्तमान (गृहपतये) गृह-पालन करने वाला उस के लिये (पारुष्णान्) पारुष्ण पक्षियों को (आ, लभते) प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ ॥२४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य पक्षियों के स्वभावज कामों को जानकर उनकी अनुहारि किया करते हैं वे बहुश्रुत के समान होते हैं ॥२४॥

अह्न इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। कालावयवा देवताः। विराट्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अह्ने॑ पारा॒वता॒नाल॑भते॒ रात्र्यै॑ सीचा॒पूर॑होरा॒त्रयोः॑ स॒न्धिभ्यो॑ ज॒तूर्मासे॑भ्यो दात्यौ॒हान्त्सं॑वत्स॒राय॑ मह॒तः सु॑प॒र्णान् ॥२५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे काल का जानने वाला (अह्ने) दिवस के लिये (पारावतान्) कोमल शब्द करने वाले कबूतरों (रात्र्यै) रात्रि के लिये (सीचापूः) सीचापूनामक पक्षियों (अहोरात्रयोः) दिन रात्रि के (सन्धिभ्यः) सन्धियों अर्थात् प्रातः सायंकाल के लिये (जतूः) जतूनामक पक्षियों (मासेभ्यः) महीनों के लिये (दात्यौहान्) काले कौओं और (संवत्सराय) वर्ष के लिये (महतः) बड़े बड़े (सुपर्णान्) सुन्दर

सुन्दर पंखों वाले पक्षियों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी इन को प्राप्त होओ ॥२५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य अपने अपने समय के अनुकूल क्रीड़ा करने वाले पक्षियों के स्वभाव को जानकर अपने स्वभाव को वैसा करें वे वहुत जानने वाले हों ॥२५॥

भूम्या इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। भूम्यादयो देवताः। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

भूम्या आखूनालंभतेऽन्तरिक्षाय पाङ्क्त्रान् दिवे कशान् दिग्भ्यो नकुलान् बभ्रुकानवान्तरदिशाभ्यः ॥२६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे भूमि के जन्तुओं के गुण जानने वाला पुरुष (भूम्यै) भूमि के लिये (आखून्) मूषों (अन्तरिक्षाय) अन्तरिक्ष के लिये (पाङ्क्त्रान्) पङ्क्तिरूप से चलने वाले विशेष पक्षियों (दिवे) प्रकाश के लिये (कशान्) कशनाम के पक्षियों (दिग्भ्यः) पूर्व आदि दिशाओं के लिये (नकुलान्) नेउलों और (अवान्तरदिशाभ्यः) अवान्तर अर्थात् कोण दिशाओं के लिये (बभ्रुकान्) भूरे भूरे विशेष नेउलों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ ॥२६॥

भावार्थः—जो मनुष्य भूमि आदि के समान मूषे आदि के गुणों को जानकर उपकार करें वे वहुत विज्ञान वाले हों ॥२६॥

वसुभ्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। वस्वादयो देवताः। निचृद्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वसुभ्य ऋश्यानालंभते रुद्रेभ्यो रुरूनादित्येभ्यो न्यङ्कून् विश्वेभ्यो देवेभ्यः पृषतान्त्साध्येभ्यः कुलुङ्गान् ॥२७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे पशुओं के गुणों का जानने वाला जन (वसुभ्यः) अग्नि आदि वसुओं के लिये (ऋश्यान्) ऋश्य जाति के हरिणों (रुद्रेभ्यः) प्राण आदि रुद्रों के लिये (रुरून्) रोजनामी जन्तुओं (आदित्येभ्यः) बारह महीनों के लिये (न्यङ्कून्) न्यङ्कुनामक पशुओं (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) दिव्य पदार्थों वा विद्वानों के लिये (पृषतान्) पृषत् जाति के मृगविशेषों और (साध्येभ्यः) सिद्ध करने के जो योग्य हैं उन के लिये (कुलुङ्गान्) कुलुङ्ग नाम के पशुविशेषों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे इन को तुम भी प्राप्त होओ ॥२७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य हरिण आदि के वेगरूप गुणों को जानकर उपकार करें वे अत्यन्त सुख को प्राप्त हों ॥२७॥

ईशानायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। ईशानादयो देवताः। बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ईशा॑नाय त्वा पर॑स्वत आ ल॑भते मि॒त्राय॑ गौ॒रान् वरु॑णाय महि॒षान् बृह॒स्पत॑ये गव॒याँस्त्वष्ट्र॒ उष्ट्रा॑न् ॥२८॥

पदार्थः—हे राजा जो मनुष्य (ईशानाय) समर्थ जन के लिये (त्वा) आप और (परस्वतः) परस्वत् नामी मृगविशेषों को (मित्राय) मित्र के लिये (गौरान्) गोरे मृगों को (वरुणाय) अति श्रेष्ठ के लिये (महिषान्) भैंसों को (बृहस्पतये) बृहस्पति अर्थात् महात्माओं के रक्षक के लिये (गवयान्) नीलगायों को और (त्वष्ट्रे) त्वष्टा अर्थात् पदार्थविद्या से पदार्थों को सूक्ष्म करने वाले के लिये (उष्ट्रान्) ऊंटों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वह धनधान्य युक्त होता है ॥२८॥

भावार्थः—जो पशुओं से यथावत् उपकार लेवें वे समर्थ होवें ॥२८॥

प्रजापतय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्रजापत्यादयो देवताः। विराडनुष्टुप् छंदः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्र॒जाप॑तये॒ पुरु॑षान ह॒स्तिन॒ आ ल॑भते वा॒चे प्लु॒षीँश्चक्षु॑षे म॒श॒का॒ञ्छ्रोत्रा॑य भृ॒ङ्गाः ॥२९॥

पदार्थ—जो मनुष्य (प्रजापतये) प्रजा पालने हारे राजा के लिये (पुरुषान्) पुरुषों (हस्तिन) और हाथियों (वाचे) वाणी के लिये (प्लुषीन्) प्लुषि नाम के जीवों (चक्षुषे) नेत्र के लिये (मशकान्) मशाओं और (श्रोत्राय) कान के लिये (भृङ्गाः) भौंरों को (आ, लभते) प्राप्त होता है वह बली और पुष्ट इन्द्रियों वाला होता है ॥२९॥

भावार्थः—जो प्रजा की रक्षा के लिये चतुरङ्गिणी अर्थात् चारों दिशाओं को रोकने वाली सेना और जितेन्द्रियता का अच्छे प्रकार आचरण करते हैं वे धनवान् और कान्तिमान् होते हैं ॥२९॥

प्रजापतय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजापत्यादयो देवताः । निचृदतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रजापतये च वायवे च गोमृगो वरुणायारण्यो मेषो यमाय कृष्णो मनुष्यराजाय मर्कटः शार्दूलाय रोहिदृषभाय गवयी क्षिप्रश्येनाय वर्त्तिका नीलङ्गोः कृमिः समुद्राय शिशुमारो हिमवते हस्ती ॥३०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को (प्रजापतये) प्रजा पालने वाले (च) और उस के सम्बन्धियों तथा (वायवे) वायु (च) और वायु के सम्बन्धी पदार्थों के लिये (गोमृगः) जो पृथिवी को शुद्ध करता वह (वरुणाय) अति उत्तम के लिये (आरण्यः) वन का (मेषः) मेंढा (यमाय) न्यायाधीश के लिये (कृष्णः) काला हरिण (मनुष्यराजाय) मनुष्यों के राजा के लिये (मर्कटः) वानर (शार्दूलाय) बड़े सिंह अर्थात् केशरी के लिये (रोहित्) लालमृग (ऋषभाय) श्रेष्ठ सभ्य पुरुष के लिये (गवयी) नीलगाहिनी (क्षिप्रश्येनाय) शीघ्र चलने हारे बाज पखेरू के समान जो वर्त्तमान उस के लिये (वर्त्तिका) वतक (नीलङ्गोः) जो नील को प्राप्त होता उस छोटे कीड़े के हेतु (कृमिः) छोटा कीड़ा (समुद्राय) समुद्र के लिये (शिशुमारः) बालकों को मारने वाला शिशुमार और (हिमवते) जिस के अनेकों हिमखण्ड विद्यमान हैं उस पर्वत के लिये (हस्ती) हाथी अच्छे प्रकार युक्त करना चाहिये ॥३०॥

भावार्थः—जो मनुष्य मनुष्यसम्बन्धी उत्तम प्राणियों की रक्षा करते हैं वे साङ्गोपाङ्ग बलवान् होते हैं ॥३०॥

मयुरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्राजापत्यादयो देवताः । स्वराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

मयुः प्राजापत्य उलो हलिक्ष्णो वृषदꣳशस्ते धात्रे दिशां कङ्को धुङ्क्षाग्नेयी कलविङ्को लोहिताहिः पुष्करसादस्ते त्वाष्ट्रा वाचे क्रुञ्चः ॥३१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुमको (प्राजापत्यः) प्रजापति देवता वाला (मयुः) किंनर निन्दित मनुष्य और जो (उलः) छोटा कीड़ा (हलिक्ष्णः) विशेष सिंह और (वृषदंशः) बिलार हैं (ते) वे (धात्रे) धारण करने वाले के लिये (कङ्कः) उजली

चोल्ह (विशाम्) दिशाओं के हेतु (धुङ्क्षा) धुङ्क्षा नाम की पक्षिणी (आग्नेयी) अग्नि देवता वाली जो (कलविङ्कः) चिरौटा (लोहिताहिः) लाल सांप और (पुष्कर-सादः) तालाब में रहने वाला है (ते) वे सब (त्वाष्ट्राः) त्वष्टा देवता वाले तथा (वाचे) वाणी के लिये (क्रुञ्चः) सारस जानना चाहिये ।।३१।।

भावार्थः—जो सियार और सांप आदि को वश में लाते हैं वे मनुष्य धुरन्धर होते हैं ।।३१।।

सोमायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सोमादयो देवताः । भुरिग्जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

सोमा॑य कुलु॒ङ्ग आ॑र॒ण्यो॒ऽजो न॑कु॒लः शका॒ ते पौ॒ष्णाः क्रोष्टा मा॒योरिन्द्र॑स्य गौरमृ॒गः पि॒द्वो न्यङ्कुः॑ कक्क॒टस्ते॑ऽनु॒मत्यै प्रति॒श्रुत्का॑यै च॒क्रवा॒कः ।।३२।।

पदार्थः—हे मनुष्यो ! यदि तुमने (सोमाय) सोम के लिये जो (कुलुङ्गः) कुलुङ्ग नामक पशु वा (आरण्यः) वनेला (अजः) बकरा (नकुलः) न्योला और (शका) सामर्थ्य वाले विशेष पशु हैं (ते) वे (पौष्णाः) पुष्टि करने वाले के सम्बन्धी वा (मायोः) विशेष सियार के हेतु (क्रोष्टा) सामान्य सियार वा (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य्ययुक्त पुरुष के अर्थ (गौरमृगः) गोरा हरिण वा जो (पिद्वः) विशेष मृग (न्यङ्कुः) किसी और जाति का हरिण और (कक्कटः) कक्कट नाम का मृग है (ते) वे (अनुमत्यै) अनुमति के लिये तथा (प्रतिश्रुत्कायै) सुने पीछे सुनाने वाली के लिये (चक्रवाकः) चकई चकवा पक्षी अच्छे प्रकार युक्त किये जावें तो बहुत काम करने को समर्थ हो सकें ।।३२।।

भावार्थः—जो वनेले पशुओं से भी उपकार करना जानें वे सिद्ध कार्यों वाले होते हैं ।।३२।।

सौरीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । मित्रादयो देवताः । भुरिग्जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

सौरी॒ ब॒लाका॑ शा॒र्गः सृ॒ज॒यः श॒या॒ण्ड॑कस्ते मै॒त्राः सर॑स्वत्यै॒ शारिः॑ पुरुष॒वाक् श्वा॒विद्भौ॒मी शा॑र्दू॒लो वृकः॑ पृदा॑कुस्ते म॒न्यवे॒ सर॑स्वते॒ शुकः॑ पुरुष॒वाक् ।।३३।।

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुमको (सौरी) जिसका सूर्य देवता है वह (बलाका) बगुलिया तथा जो (शार्गः) पपीहा पक्षी (सृजयः) सृजय नाम वाला और (शयाण्डकः) शयाण्डक पक्षी हैं (ते) वे (मैत्राः) प्राण देवता वाले (शारिः) शुग्गी (पुरुषवाक्) पुरुष के समान बोलने हारा शुग्गा (सरस्वत्यै) नदी के लिये (श्वावित्) सेही (भौमी) भूमि देवता वाली जो (शार्दूलः) केशरी सिंह (वृकः) भेड़िया और (पृदाकुः) सांप हैं (ते) वे (मन्यवे) क्रोध के लिये तथा (शुकः) शुद्धि करने हारा सुवा पक्षी और (पुरुषवाक्) जिस की मनुष्य की बोली के समान बोली है वह पक्षी (सरस्वते) समुद्र के लिये जानना चाहिये ।।३३।।

भावार्थः—जो बलाका आदि पशु पक्षी हैं उनमें से कोई पालने और कोई ताड़ना देने योग्य हैं यह जानना चाहिये ।।३३।।

सुपर्ण इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । स्वराट्शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

सुपर्णः पार्जन्य आतिर्वाहसो दर्विदा ते वायवे बृहस्पतये वाचस्पतये पैङ्गराजोऽलज आन्तरिक्षः प्लवो मद्गुर्मत्स्यस्ते नदीपतये द्यावापृथिवीयः कूर्मः ।।३४।।

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को जो (सुपर्णः) सुन्दर गिरने वा जाने वाला पक्षी वह (पार्जन्यः) मेघके समान गुण वाला जो (आतिः) आति नाम वाला पक्षी (वाहसः) अजगर सांप (दर्विदा) और काठ को छिन्न भिन्न करने वाला पक्षी है (ते) वे सब (वायवे) पवन के लिये (पैङ्गराजः) पैङ्गराज नाम का पक्षी (बृहस्पतये) बड़े बड़े पदार्थों और (वाचः, पतये) वाणी की पालना करने हारे के लिये (अलजः) अलज पक्षी (आन्तरिक्षः) अन्तरिक्ष देवता वाला जो (प्लवः) जल में तरने वाला बतक पक्षी (मद्गुः) जल का कौआ और (मत्स्यः) मछली हैं (ते) वे सब (नदीपतये) समुद्र के लिये और जो (कूर्मः) कछुआ है वह (द्यावापृथिवीयः) प्रकाश भूमि देवता वाला जानना चाहिये ।।३४।।

भावार्थः—जो मेघ आदि के समान गुण वाले विशेष विशेष पशु पक्षी हैं वे काम के उपयोग के लिये युक्त करने चाहियें ।।३४।।

पुरुषमृग इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । चन्द्रादयो देवताः । निचृच्छक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

पुरुषमृगश्चन्द्रमसो गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनां कृकवाकुः सावित्रो हंसो वातस्य नाक्रो मकरः कुलीपयस्तेऽकूपारस्य ह्रियै शल्यकः ॥३५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को जो (पुरुषमृगः) पुरुषों को शुद्ध करने हारा विशेष पशु वह (चन्द्रमसः) चन्द्रमा के अर्थ जो (गोधा) गोह (कालका) कालका पक्षी और (दार्वाघाटः) कठफोरवा हैं (ते) वे (वनस्पतीनाम्) वनस्पतियों के सम्बंधी जो (कृकवाकुः) मुर्गा वह (सावित्रः) सविता देवता वाला जो (हंसः) हंस है वह (वातस्य) पवन के अर्थ जो (नाक्रः) नाके का बच्चा (मकरः) मगरमच्छ (कुलीपयः) और विशेष जलजन्तु हैं (ते) वे (अकूपारस्य) समुद्र के अर्थ और जो (शल्यकः) सेही है वह (ह्रियै) लज्जा के लिये जानना चाहिये ॥३५॥

भावार्थः—जो चन्द्रमा आदि के गुणों से युक्त विशेष पशु पक्षी हैं वे मनुष्यों को जानने चाहियें ॥३५॥

एणीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अश्विन्यादयो देवताः । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

एण्यह्नो मण्डूको मूषिका तित्तिरिस्ते सर्पाणां लोपाश आश्विनः कृष्णो रात्र्या ऋक्षो जतूः सुषिलीका त इतरजनानां जहका वैष्णवी ॥३६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को जो (एणी) हरिणी है वह (अह्नः) दिन क अर्थ जो (मण्डूकः) मेंडुका (मूषिका) मूषटी और (तित्तिरिः) तीतरि पक्षिणी हैं (ते) वे (सर्पाणाम्) सर्पों के अर्थ जो (लोपाशः) कोई वनचर विशेष पशु वह (आश्विनः) अश्वि देवता वाला जो (कृष्णः) काले रंग का हरिण आदि है वह (रात्र्यै) रात्रि के लिये जो (ऋक्षः) रीछ (जतूः) जतू नाम वाला और (सुषिलीका) सुषिलीका पक्षी है (ते) वे (इतरजनानाम्) और मनुष्यों के अर्थ और (जहका) अंगों का संकोच करने हारी पक्षिणी (वैष्णवी) विष्णु देवता वाली जानना चाहिये ॥३६॥

भावार्थः—जो दिन आदि के गुण वाले पशु पक्षी विशेष हैं वे उस उस गुण से जानने चाहियें ॥३६॥

अन्यवाप इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अर्द्धमासादयो देवताः । भुरिग्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अन्यवापोऽर्द्धमासानामृश्यो मयूरः सुपर्णस्ते गन्धर्वाणामपामुद्रो मासान् कश्यपो रोहित्कुण्डृणाची गोलत्तिका तेऽप्सरसां मृत्यवेऽसितः ॥३७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को जो (अन्यवापः) कोकिला पक्षी है वह (अर्द्धमासानाम्) पखवाड़ों के अर्थ जो (ऋश्यः) ऋश्य जाति का मृग (मयूरः) मयूर और (सुपर्णः) अच्छे पंखों वाला विशेष पक्षी है (ते) वे (गन्धर्वाणाम्) गाने वालों के और (अपाम्) जलों के अर्थ जो (उद्रः) जलचर गिगचा है वह (मासान्) महीनों के अर्थ जो (कश्यपः) कछुआ (रोहित्) विशेष मृग (कुण्डृणाची) कुण्डृणाची नाम की वन में रहने वाली और (गोलत्तिका) गोलत्तिका नाम वाली विशेष पशुजाति है (ते) वे (अप्सरसाम्) किरण आदि पदार्थों के अर्थ और जो (असितः) काले गुण वाला विशेष पशु है वह (मृत्यवे) मृत्यु के लिये जानना चाहिये ॥३७॥

भावार्थः—जो काल आदि गुण वाले पशु पक्षी हैं वे उपकार वाले हैं यह जानना चाहिये ॥३७॥

वर्षाहूरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वर्षादयो देवताः । स्वराड्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वर्षाहूर्ऋतूनामाखुः कशो मान्थालस्ते पितृणां बलायाजगरो वसूनां कपिञ्जलः कपोत उलूकः शशस्ते निर्ऋत्यै वरुणायारण्यो मेषः ॥३८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को जो (वर्षाहूः) वर्षा को बुलाती है वह मेंडुकी (ऋतूनाम्) वसन्त आदि ऋतुओं के अर्थ (आखुः) मूषा (कशः) सिखाने योग्य कश नाम वाला पशु और (मान्थालः) मान्थाल नाभी विशेष जन्तु हैं (ते) वे (पितृणाम्) पालना करने वालों के अर्थ (बलाय) बल के लिये (अजगरः) बड़ा सांप (वसूनाम्) अग्नि आदि वसुओं के अर्थ (कपिञ्जलः) कपिञ्जल नामक (कपोतः) जो कबूतर (उलूकः) उल्लू और (शशः) खरहा हैं (ते) वे (निर्ऋत्यै) निर्ऋति के लिये (वरुणाय) और वरुण के लिये (आरण्यः) बनेला (मेषः) मेढ़ा जानना चाहिये ॥३८॥

भावार्थः—जो ऋतु आदि के गुण वाले पशु पक्षी विशेष हैं वे उन गुणों से युक्त जानने चाहियें ॥३८॥

श्वित्र इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । आदित्यादयो देवताः । स्वराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

श्वित्र आदित्यानामुष्ट्रो घृणीवान् वार्ध्रीनसस्ते मत्याऽअरण्याय सृमरो रुरू रौद्रः क्वयिः कुटरुर्दात्यौहस्ते वाजिनां कामाय पिकः ।।३९।।

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को जो (श्वित्रः) चित्र विचित्र रंग वाला पशु-विशेष वह (आदित्यानाम्) समय के अवयवों के अर्थ, जो (उष्ट्रः) ऊंट (घृणीवान्) तेजस्वि विशेष पशु और (वार्ध्रीनसः) कण्ठ में जिस के थन ऐसा बड़ा बकरा है (ते) वे सब (मत्यै) बुद्धि के लिये, जो (सृमरः) नीलगाय वह (अरण्याय) वन के लिये, जो (रुरुः) मृगविशेष है वह (रौद्रः) रुद्र देवता वाला, जो (क्वयिः) क्वयिनाम का पक्षी (कुटरुः) मुर्गा और (दात्यौहः) कौआ हैं (ते) वे (वाजिनाम्) घोड़ों के अर्थ और जो (पिकः) कोकिला है वह (कामाय) काम के लिये अच्छे प्रकार जानने चाहियें ।।३९।।

भावार्थः—जो सूर्य आदि के गुण वाले पशु पक्षी विशेष हैं वे उस उस स्वभाव वाले हैं यह जानना चाहिये ।।३९।।

खड्ग इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विश्वेदेवादयो देवताः । शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

खड्गो वैश्वदेवः श्वा कृष्णः कर्णो गर्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसामिन्द्राय सूकरः सिꣳहो मारुतः कृकलासः पिप्पका शकुनिस्ते शरव्यायै विश्वेषां देवानां पृषतः ।।४०।।

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को जो (खड्गः) ऊंचे और पैने सींगों वाला गैंडा है वह (वैश्वदेवः) सब विद्वानों का, जो (कृष्णः) काले रंग वाला (श्वा) कुत्ता (कर्णः) बड़े कानों वाला (गर्दभः) गदहा और (तरक्षुः) व्याघ्र हैं (ते) वे सब (रक्षसाम्) राक्षस दुष्ट हिंसक हवियों के अर्थ, जो (सूकरः) सुअर है वह (इन्द्राय) शत्रुओं को विदारने वाले राजा के लिये, जो (सिंहः) सिंह है वह (मारुतः) मरुत देवता वाला, जो (कृकलासः) गिरगिटान (पिप्पका) पिप्पका नाम की पक्षिणी और (शकुनिः)

पक्षिमात्र हैं (ते) वे सब (शरव्यायै) जो शरवियों में कुशल उत्तम है उस के लिये और जो (पृषतः) पृषज्जाति के हरिण हैं वे (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) विद्वानों के अर्थ जानना चाहिये ॥४०॥

भावार्थः—जो सब पशु पक्षी सब गुण भरे हैं उनको जानकर व्यवहारसिद्धि के लिये सब मनुष्य निरन्तर युक्त करें ॥४०॥

इस अध्याय में पशु पक्षी रिंगने वाले सांप आदि, वन के मृग, जल में रहने वाले प्राणी और कीड़े मकोड़े आदि के गुणों का वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की पिछले अध्याय में कहे हुए अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये ॥

अथ चौवीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

---

* ओ३म् *

अथ पञ्चविंशोऽध्याय आरभ्यते

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ॥

शादमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सरस्वत्यादयो देवताः । पूर्वस्य भुरिक्छक्वरी । आदित्यानित्युत्तरस्य निचृदतिशक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पच्चीसवें अध्याय का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में किसको क्या करना चाहिये इस विषय को कहा है ॥

शादं दद्भिरवकां दन्तमूलैर्मृदं बर्स्वैस्तेगान्दंष्ट्राभ्याᳬसरस्वत्या अग्रजिह्वं जिह्वाया उत्सादमवक्रन्देन तालु वाजᳬहनुभ्यामप आस्येन

वृषणमाण्डाभ्याम् । आदित्यान् श्मश्रुभिः पन्थानं भ्रूभ्यां द्यावापृथिवी वर्त्तोभ्यां विद्युतं कनीनकाभ्याᳬशुक्राय स्वाहा कृष्णाय स्वाहा पार्याणि पक्ष्माण्यवार्या इक्षवोऽवार्याणि पक्ष्माणि पार्या इक्षवः ॥१॥

पदार्थः—हे अच्छे ज्ञान की चाहना करते हुए विद्यार्थी जन ! (ते) तेरे (दद्भिः) दांतों से (शादम्) जिस में छेदन करता है उस व्यवहार को (दन्तमूलैः) दांतों की जड़ों और (बर्स्वैः) दांतों की पछाड़ियों से (अवकाम्) रक्षा करने वाली (मृदम्) मट्टी को (दंष्ट्राभ्याम्) डाढ़ों से (सरस्वत्यै) विशेष ज्ञान वाली वाणी के लिये (गाम्) वाणी को (जिह्वायाः) जीभ से (अग्रजिह्वम्) जीभ के अगले भाग को (अवक्रन्देन) विकलतारहित व्यवहार से (उत्सादम्) जिस में ऊपर को स्थिर होती है उस (तालु) को (हनुभ्याम्) ठोढ़ी के पास के भागों से (वाजम्) अन्न को (आस्येन) जिससे भोजन आदि पदार्थ को गीला करते उस मुख से (अपः) जलों को (आण्डाभ्याम्) वीर्य को अच्छे प्रकार धारण करने हारे आण्डों से (वृषणम्) वीर्य वर्षाने वाले अङ्ग को (श्मश्रुभिः) मुख के चारों ओर जो केश अर्थात् दाढ़ी उससे (आदित्यान्) मुख्य विद्वानों को (भ्रूभ्याम्) नेत्र-गोलकों के ऊपर जो भौं हैं उन से (पन्थानम्) मार्ग को (वर्त्तोभ्याम्) जाने आने से (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि तथा (कनीनकाभ्याम्) तेज से भरे हुए काले नेत्रों के तारों के सदृश गोलों से (विद्युतम्) बिजुली को मैं समझाता हूं। तुझ को (शुक्राय) वीर्य के लिये (स्वाहा) ब्रह्मचर्य क्रिया से और (कृष्णाय) विद्या खींचने के लिये (स्वाहा) सुन्दरशीलयुक्त क्रिया से (पार्याणि) पूरे करने योग्य (पक्ष्माणि) जो सब ओर से लेने चाहिये उन कामों वा पलकों के ऊपर के बिन्ने वा (अवार्याः) नदी आदि के प्रथम ओर होने वाले (इक्षवः) गन्नों के पौंडे वा (अवार्याणि) नदी आदि के पहिले किनारे पर होने वाले पदार्थ (पक्ष्माणि) सब ओर से जिनका ग्रहण करें वा लोम और (पार्याः) पालना करने योग्य (इक्षवः) ऊख जो गुड़ आदि के निमित्त हैं वे पदार्थ अच्छे प्रकार ग्रहण करने चाहियें ॥१॥

भावार्थः—अध्यापक लोग अपने शिष्यों के अङ्गों को उपदेश से अच्छे प्रकार पुष्ट कर तथा आहार वा विहार का अच्छा बोध, समस्त विद्याओं की प्राप्ति, अखण्डित ब्रह्मचर्य का सेवन और ऐश्वर्य की प्राप्ति करा के सुखयुक्त करें ॥१॥

वातमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्राणादयो देवताः । भुरगतिशक्वर्यौ छन्दसी ॥
धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वातं॑ प्राणेना॑पानेन॒ ना॑सिके॒ऽउपयाम॒मध॑रे॒णौष्ठे॑न॒ सदुत्त॑रेण प्रका॑शे॒-नान्त॑रमनूका॒शेन॒ वाह्यं॑ निवे॒ष्यं॑ मूर्ध्ना स्त॑नयि॒त्नुं निर्बा॑धेनाश॒निं म॒स्तिष्के॑ण वि॒द्युतं॑ क॒नीन॑काभ्यां॒ कर्णा॑भ्या॒ᳬश्रोत्रं॒ श्रोत्रा॑भ्यां॒ कर्णौ॑ तेद॒नीम॑धरक॒ण्ठेना॒पः शु॑ष्कक॒ण्ठेन॑ चि॒त्तं मन्या॑भि॒रदि॑तिं॒ शी॒र्ष्णा निर्ऋ॑तिं॒ निर्जी॑र्जल्पेन॒ शी॒र्ष्णा सं॑क्रो॒शैः प्रा॒णान् रे॒ष्माणं॑स्तु॒पेन॑ ॥२॥

पदार्थः—हे जानने को इच्छा करने वाले ! मेरे उपदेश के ग्रहण से तू (प्राणेन) प्राण और (अपानेन) अपान से (वातम्) पवन और (नासिके) नासिका-छिद्रों और (उपयामम्) प्राप्त हुए नियम को (अधरेण) नीचे के (ओष्ठेन) ओष्ठ के (उत्तरेण) ऊपर के (प्रकाशेन) प्रकाशरूप ओठ से (सदन्तरम्) बीच में विद्यमान मुख आदि स्थान को (अनूकाशेन) पीछे से प्रकाश होने वाले अङ्ग से (बाह्यम्) बाहर हुए अङ्ग को (मूर्ध्ना) शिर से (निवेष्यम्) जो निश्चय से व्याप्त होने योग्य उस को (निर्बाधेन) निरन्तर ताड़ना के हेतु के साथ (स्तनयित्नुम्) शब्द करने हारी (अशनिम्) बिजुली को (मस्तिष्केण) शिर की चरबी और नसों से (विद्युतम्) अति प्रकाशमान बिजुली को (कनीनकाभ्याम्) दिपते हुए (कर्णाभ्याम्) शब्द को सुनवाने हारे पवनों से (कर्णौ) जिनसे श्रवण करता उन कानों को और (श्रोत्राभ्याम्) जिन गोल गोल छेदों से सुनता उन से (श्रोत्रम्) श्रवणेन्द्रिय और (तेदनीम्) श्रवण करने की क्रिया (अधरकण्ठेन) कण्ठ के नीचे के भाग से (अपः) जलों (शुष्ककण्ठेन) सूखते हुए कण्ठ से (चित्तम्) विशेष ज्ञान सिद्ध कराने हारे अन्तःकरण के वर्त्ताव को (मन्याभिः) विशेष ज्ञान की क्रियाओं से (अदितिम्) न विनाश को प्राप्त होने वाली उत्तम बुद्धि को (शीर्ष्णा) शिर से (निर्ऋतिम्) भूमि को (निर्जर्जल्पेन) निरन्तर जीर्ण सब प्रकार परिपक्व हुए (शीर्ष्णा) शिर और (संक्रोशैः) अच्छे प्रकार बुलावाओं से (प्राणान्) प्राणों को प्राप्त हो तथा (स्तुपेन) हिंसा से (रेष्माणम्) हिंसक अविद्या आदि रोग का नाश कर ॥२॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि पहिली अवस्था में समस्त शरीर आदि साधनों से शारीरिक और आत्मिक बल को अच्छे प्रकार सिद्ध करें और अविद्या दुष्ट सिखावट निन्दित स्वभाव आदि रोगों को सब प्रकार हनन करें ॥२॥

मशकानित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रादयो देवताः । भुरिक्कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

मशकान्केशैरिन्द्रꣳ स्वपसा वहेन बृहस्पतिꣳ शकुनिसादेन कूर्म्माञ्छफैराक्रमणꣳ स्थूराभ्यामृक्षलाभिः कपिञ्जलान् जवं जङ्घाभ्यामध्वानं बाहुभ्यां जाम्बीलेनारण्यमग्निमतिरुग्भ्यां पूषणं दोर्भ्यामश्विनावꣳसाभ्याꣳ रुद्रꣳ रोराभ्याम् ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (केशैः) शिर के बालों से (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (शकुनिसादेन) जिससे पक्षियों को स्थिर कराता उस व्यवहार से (कूर्मान्) कछुओं और (मशकान्) मशकों को (स्वपसा) उत्तम काम और (वहेन) प्राप्ति कराने से (बृहस्पतिम्) बड़ी वाणी के स्वामी विद्वान् को (स्थूराभ्याम्) स्थूल (ऋक्षलाभिः) चाल और ग्रहण करने आदि क्रियाओं से (कपिञ्जलान्) कपिञ्जल नामक पक्षियों को (जङ्घाभ्याम्) जङ्घाओं से (अध्वानम्) मार्ग और (जवम्) वेग को (अंसाभ्याम्) भुजाओं के मूल अर्थात् बगलों (बाहुभ्याम्) भुजाओं और (शफैः) खुरों से (आक्रमणम्) चाल को (जाम्बीलेन) जमुनी आदि के फल से (अरण्यम्) वन और (अग्निम्) अग्नि को (अतिरुग्भ्याम्) अतीव रुचि प्रीति और इच्छा से (पूषणम्) पुष्टि को तथा (दोर्भ्याम्) भुजदण्डों से (अश्विनौ) प्रजा और राजा को प्राप्त होओ और (रोराभ्याम्) कहने सुनने से (रुद्रम्) रुलानेहारे को प्राप्त होओ ॥३॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि बहुत उपायों से उत्तम गुणों की प्राप्ति और विघ्नों की निवृत्ति करें ॥३॥

अग्नेरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । स्वराड्धृतिश्छन्दः ॥
ऋषभः स्वरः ॥

फिर किस को क्या क्रिया करने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्नेः पक्षतिर्वायोर्निपक्षतिरिन्द्रस्य तृतीया सोमस्य चतुर्थ्यदित्यै पञ्चमीन्द्राण्यै षष्ठी मरुताꣳ सप्तमी बृहस्पतेरष्टम्यर्यम्णो नवमी धातुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यमस्य त्रयोदशी ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को (अग्नेः) अग्नि की (पक्षतिः) सब ओर से ग्रहण करने योग्य व्यवहार की मूल (वायोः) पवन की (निपक्षतिः) निश्चित विषय का मूल (इन्द्रस्य) सूर्य की (तृतीया) तीन को पूरा करने वाली क्रिया (सोमस्य) चन्द्रमा की (चतुर्थी) चार को पूरा करने वाली (अदित्यै) अन्तरिक्ष की (पंचमी) पांचवीं

(इन्द्राण्यै) स्त्री के समान वर्त्तमान जो विजुलीरूप अग्नि की लपट उसकी (षष्ठी) छठी (मरुताम्) पवनों की (सप्तमी) सातवीं (बृहस्पतेः) बड़ों की पालना करने वाले महत्तत्त्व की (अष्टमी) आठवीं (अर्यम्णः) स्वामी जनों का सत्कार करने वाले की (नवमी) नवीं (धातुः) धारण करने हारे की (दशमी) दशमी (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् की (एकादशी) ग्यारहवीं (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुष की (द्वादशी) बारहवीं और (यमस्य) न्यायाधीश राजा की (त्रयोदशी) तेरहवीं क्रिया करनी चाहिये ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को क्रिया के विशेष ज्ञान और साधनों से अग्नि आदि पदार्थों के गुणों को जानकर सब कार्यों की सिद्धि करनी चाहिये ॥४॥

इन्द्राग्न्योरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रादयो देवताः । स्वराड्विकृतिश्छन्दः ॥ मध्यमः स्वरः ॥

फिर किसके अर्थ कौन होती है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्राग्न्योः पक्षतिः सरस्वत्यै निपक्षतिर्मित्रस्य तृतीयाऽपां चतुर्थी निर्ऋत्यै पञ्चम्यग्नीषोमयोः षष्ठी सर्पाणाᳬसप्तमी विष्णोरष्टमी पूष्णो नवमी त्वष्टुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यम्यै त्रयोदशी द्यावापृथिव्योर्दक्षिणं पार्श्वं विश्वेषां देवानामुत्तरम् ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो (इन्द्राग्न्योः) पवन और अग्नि की (पक्षतिः) सब ओर से ग्रहण करने योग्य व्यवहार की मूल पहिली (सरस्वत्यै) वाणी के लिये (निपक्षतिः) निश्चित पक्ष का मूल दूसरी (मित्रस्य) मित्र की (तृतीया) तीसरी (अपाम्) जलों की (चतुर्थी) चौथी (निर्ऋत्यै) भूमि की (पंचमी) पांचवीं (अग्नीषोमयोः) गर्मी सरदी को उत्पन्न करने वाले अग्नि तथा जल की (षष्ठी) छठी (सर्पाणाम्) सांपों की (सप्तमी) सातवीं (विष्णोः) व्यापक ईश्वर की (अष्टमी) आठवीं (पूष्णः) पुष्टि करने वाले की (नवमी) नवमी (त्वष्टुः) उत्तम दिपते हुए की (दशमी) दशमी (इन्द्रस्य) जीव की (एकादशी) ग्यारहवीं (वरुणस्य) श्रेष्ठ जन की (द्वादशी) बारहवीं और (यम्यै) न्याय करने वाले की स्त्री के लिये (त्रयोदशी) तेरहवीं क्रिया है उन सब को तथा (द्यावापृथिव्योः) प्रकाश और भूमि के (दक्षिणम्) दक्षिण (पार्श्वम्) ओर को और (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) विद्वानों के (उत्तरम्) उत्तर ओर को जानो ॥५॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि इन उक्त पदार्थों के विशेष ज्ञान के लिये अनेक क्रियाओं को करके अपने अपने कामों को सिद्ध करें ॥५॥

मरुतामित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । मरुतादयो देवताः । निचृदतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

मरुतांᳪस्कन्धा विश्वेषां देवानां प्रथमा कीकसा रुद्राणां द्वितीयादित्यानां तृतीया वायोः पुच्छमग्नीषोमयोर्भासदौ क्रुञ्चौ श्रोणिभ्यामिन्द्राबृहस्पती ऊरुभ्यां मित्रावरुणावल्गाभ्यामाक्रमणᳪस्थूराभ्यां बलं कुष्ठाभ्याम् ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को (मरुताम्) मनुष्यों के (स्कन्धाः) कंधा (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) विद्वानों की (प्रथमा) पहिली क्रिया और (कीकसा) निरन्तर सिखावटें (रुद्राणाम्) रुलाने हारे विद्वानों की (द्वितीया) दूसरी ताड़नरूप क्रिया (आदित्यानाम्) अखण्डित न्याय करने वाले विद्वानों की (तृतीया) तीसरी न्यायक्रिया (वायोः) पवन सम्बन्धी (पुच्छम्) पशु की पूंछ अर्थात् जिससे पशु अपने शरीर को पवन देता (अग्नीषोमयोः) अग्नि और जल सम्बन्धी (भासदौ) जो प्रकाश को देवें वे (क्रुञ्चौ) कोई विशेष पक्षी वा सारस (श्रोणिभ्याम्) चूतड़ों से (इन्द्राबृहस्पती) पवन और सूर्य (ऊरुभ्याम्) जांघों से (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान (अल्गाभ्याम्) परिपूर्ण चलने वाले प्राणियों से (आक्रमणम्) चाल तथा (कुष्ठाभ्याम्) निचोड़ और (स्थूराभ्यां) स्थूल पदार्थों से (बलम्) बल को सिद्ध करना चाहिये ॥६॥

भावार्थः—मनुष्यों को भुजाओं का बल, अपने अङ्ग की पुष्टि, दुष्टों को ताड़ना और न्याय का प्रकाश आदि काम सदा करने चाहियें ॥६॥

पूषणमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । पूषादयो देवताः । निचृदष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पूषणं वनिष्ठुनान्धाहीन्त्स्थूलगुदया सर्पान् गुदाभिर्विह्रुत आन्त्रैरपो वस्तिना वृषणमाण्डाभ्यां वाजिनᳪशेपेन प्रजाᳪरेतसा चाषान् पित्तेन प्रदरान् पायुना कूश्माञ्छकपिण्डैः ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम (वनिष्ठुना) मांगने से (पूषणम्) पुष्टि करने वाले को (स्थूलगुदया) स्थूल गुदेन्द्रिय के साथ वर्त्तमान (अन्धाहीन्) अन्धे सांपों को (गुदाभिः) गुदेन्द्रियों के साथ वर्त्तमान (विह्रुतः) विशेष कुटिल (सर्पान्) सर्पों को

(आन्त्रैः) आंतों से (अपः) जलों को (वस्तिना) नाभि के नीचे के भाग से (वृषणम्) अण्डकोष को (आण्डाभ्याम्) आंडों से (वाजिनम्) घोड़ा को (शेपेन) लिङ्ग और (रेतसा) वीर्य से (प्रजाम्) सन्तान को (पित्तेन) पित्त से (चाषान्) भोजनों को (प्रदरान्) पेट के अंगों को (पायुना) गुदेन्द्रिय से और (शकपिण्डैः) शक्तियों से (कूश्मान्) सिखावटों को निरन्तर लेओ ॥७॥

भावार्थः—जिस जिस से जो जो काम सिद्ध हो उस उस अङ्ग वा पदार्थ से वह वह काम सिद्ध करना चाहिये ॥७॥

इन्द्रस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रादयो देवताः । निचृदभिकृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर किस किस के गुण पशुओं में हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्र॑स्य क्रो॒डोऽदि॑त्यै पाज॒स्यं॒ दि॒शां ज॒त्रवोऽदि॑त्यै भ॒सज्जी॒मूता॑न् हृदयौप॒शेना॒न्तरि॑क्षं पु॒री॒त॒ता नभ॑ उद॒र्ये॒ण चक्रवा॒कौ मत॑स्नाभ्यां॒ दिवं॑ वृ॒क्काभ्यां॑ गि॒रीन् प्ला॒शिभि॒रुप॑लान् प्ली॒ह्ना व॒ल्मीका॑न् क्लो॒मभि॑र्ग्लौ॒भिर्गु॒ल्मा॑न् हि॒राभि॒ः स्रव॑न्तीर्ह्र॒दान् कु॒क्षिभ्या॑ᳪं समु॒द्रमु॒दरे॑ण वैश्वान॒रं भस्म॑ना ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को उत्तम यत्न के साथ (इन्द्रस्य) बिजुली का (क्रोडः) डूबना (अदित्यै) पृथिवी के लिये (पाजस्यम्) अन्नों में जो उत्तम वह (दिशाम्) दिशाओं की (जत्रवः) सन्धि अर्थात् उनका एक दूसरे से मिलना (अदित्यै) अखण्डित प्रकाश के लिये (भसत्) लपट ये सब पदार्थ जानने चाहियें तथा (जीमूतान्) मेघों को (हृदयौपशेन) जो हृदय में सोता है उस जीव से (पुरीतता) हृदयस्थ नाड़ी से (अन्तरिक्षम्) हृदय के अवकाश को (उदर्येण) उदर में होते हुए व्यवहार से (नभः) जल और (चक्रवाकौ) चकई चकवा पक्षियों के समान जो पदार्थ उन को (मतस्नाभ्याम्) गले के दोनों ओर के भागों से (दिवम्) प्रकाश को (वृक्काभ्याम्) जिन क्रियाओं से अवगुणों का त्याग होता है उनसे (गिरीन्) पर्वतों को (प्लाशिभिः) उत्तम भोजन आदि क्रियाओं से (उपलान्) दूसरे प्रकार के मेघों को (प्लीह्ना) हृदयस्थ प्लीहा अंग से (वल्मीकान्) मार्गों को (क्लोमभिः) गीलेपन और (ग्लौभिः) हर्ष तथा ग्लानियों से (गुल्मान्) दाहिनी ओर उदर में स्थित जो पदार्थ उनको (हिराभिः) बढ़तियों से (स्रवन्तीः) नदियों को (ह्रदान्) छोटे बड़े जलाशयों को (कुक्षिभ्याम्) कोखों से (समुद्रम्) अच्छे प्रकार जहां जल जाता उस समुद्र को (उदरेण) पेट और (भस्मना)

जले हुए पदार्थ का जो शेषभाग उस राख से (वैश्वानरम्) सब के प्रकाश करने हारे अग्नि को तुम लोग जानो ॥८॥

भावार्थः—जो मनुष्य अनेक विद्याबोधों को प्राप्त होकर ठीक ठीक यथोचित आहार और विहारों से सब अङ्गों को अच्छे प्रकार पुष्ट कर रोगों की निवृत्ति करें तो वे धर्म अर्थ काम और मोक्ष को अच्छे प्रकार प्राप्त होवें ॥८॥

विधृतिमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। पूषादयो देवताः। भुरिगत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर किससे क्या होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

विधृ॑तिं॒ नाभ्या॑ घृ॒तꣳ रसे॑ना॒पो यू॒ष्णा मरी॑ची॒र्विप्रुड्भि॑र्नीहा॒रमू॒ष्मणा॑ शी॒नं वस॑या॒ प्रुष्वा॒ अश्रु॑भिर्ह्रा॒दुनी॑र्दू॒षीका॑भिर॒स्ना रक्षा॑ꣳसि चि॒त्राण्यङ्गै॒र्नक्ष॑त्राणि रू॒पेण॑ पृथि॒वीं त्वचा॑ जु॒म्बका॑य॒ स्वाहा॑ ॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! तुम लोग (नाभ्या) नाभि से (विधृतिम्) विशेष करके धारणा को (घृतम्) घी को (रसेन) रस से (अपः) जलों को (यूष्णा) क्वाथ किये रस से (मरीचीः) किरणों को (विप्रुड्भिः) विशेषतर पूरण पदार्थों से (नीहारम्) कुहर को (ऊष्मणा) गरमी से (शीनम्) जमे हुए घी को (वसया) निवासहेतु जीवन से (प्रुष्वाः) जिनसे सींचते हैं उन क्रियाओं को (अश्रुभिः) आंसुओं से (ह्रादुनीः) शब्दों की अप्रकट उच्चारण-क्रियाओं को (दूषीकाभिः) विकाररूप क्रियाओं से (चित्राणि) चित्र विचित्र (रक्षांसि) पालना करने योग्य (अस्ना) रुधिरादि पदार्थों को (अङ्गैः) अंगों और (रूपेण) रूप से (नक्षत्राणि) तारागणों को और (त्वचा) मांस रुधिर आदि को ढांपने वाली खाल आदि से (पृथिवीम्) पृथिवी को जानकर (जुम्बकाय) अतिवेगवान् के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी का प्रयोग अर्थात् उच्चारण करो॥९॥

भावार्थः—मनुष्यों को धारणा आदि क्रियाओं से खोटे आचरण और रोगों की निवृत्ति और सत्यभाषण आदि धर्म के लक्षणों का विचार कर प्रवृत्त करना चाहिये॥९॥

हिरण्यगर्भ इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। हिरण्यगर्भो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब परमात्मा कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग जो (हिरण्यगर्भः) सूर्यादि तेज वाले पदार्थ जिसके भीतर हैं वह परमात्मा (जातः) प्रादुर्भूत और (भूतस्य) उत्पन्न हुए जगत् का (एकः) असहाय एक (अग्रे) भूमि आदि सृष्टि से पहिले भी (पतिः) पालन करने हारा (आसीत्) है और सब का प्रकाश करने वाला (अवर्त्तत) वर्त्तमान हुआ (सः) वह (पृथिवीम्) अपनी आकर्षण शक्ति से पृथिवी (उत) और (द्याम्) प्रकाश को (सम् दाधार) अच्छे प्रकार धारण करता है तथा जो (इमाम्) इस सृष्टि को बनाता हुआ अर्थात् जिसने सृष्टि की उस (कस्मै) सुख करने हारे (देवाय) प्रकाशमान परमात्मा के लिये (हविषा) होम करने योग्य पदार्थ से (विधेम) सेवन का विधान करें वैसे तुम लोग भी सेवन का विधान करो ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जिस परमात्मा ने अपने सामर्थ्य से सूर्य आदि समस्त जगत् को बनाया और धारण किया है उसी की उपासना किया करो ॥१०॥

यः प्राणत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ईश्वरो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (यः) जो सूर्य (प्राणतः) श्वास लेते हुए प्राणी और (निमिषतः) चेष्टा करते हुए (जगतः) संसार का (महित्वा) बड़ेपन से (एकः) असहाय एक (इत्) ही (राजा) प्रकाश करने वाला (बभूव) होता है (यः) तथा जो (अस्य) इस (द्विपदः) दो दो पग वाले मनुष्यादि और (चतुष्पदः) चार चार पग वाले गौ आदि पशुरूप जगत् का (ईशे) प्रकाश करता है उस (कस्मै) सुख करने हारे (देवाय) प्रकाशक जगदीश्वर के लिये (हविषा) ग्रहण करने योग्य पदार्थ वा व्यवहार से (विधेम) सेवन करें वैसे तुम लोग भी अनुष्ठान किया करो ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सूर्य न हो तो स्थावर वृक्ष आदि और जङ्गम मनुष्यादि जगत् अपना अपना काम देने को समर्थ न हो । जो सब से बड़ा सब का प्रकाश करने वाला और ऐश्वर्य की प्राप्ति का हेतु है वह ईश्वर सब को युक्ति के साथ सेवने योग्य है ॥११॥

यस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ईश्वरो देवता । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर सूर्य के वर्णन विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रꣳ रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यस्य) जिस सूर्य के (महित्वा) बड़ेपन से (इमे) ये (हिमवन्तः) हिमालय आदि पर्वत आकर्षित और प्रकाशित हैं (यस्य) जिस के (रसया) स्नेह के (सह) साथ (समुद्रम्) अच्छे प्रकार जिस में जल ठहरते हैं उस अन्तरिक्ष को (आहुः) कहते हैं तथा (यस्य) जिस की (इमाः) इन दिशा और (यस्य) जिसकी (प्रदिशः) विदिशाओं को (बाहू) भुजाओं के समान वर्त्तमान कहते हैं उस (कस्मै) सुखरूप (देवाय) मनोहर सूर्यमण्डल के लिये (हविषा) होम करने योग्य पदार्थ से हम लोग (विधेम) सेवन का विधान करें ऐसे ही तुम भी विधान करो ॥१२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो सब से बड़ा सब का प्रकाश करने और सब पदार्थों से रस का लेने हारा जिस के प्रताप से दिशा और विदिशाओं का विभाग होता है, वह सूर्य्यलोक युक्ति के साथ सेवन करने योग्य है ॥१२॥

य आत्मदा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमात्मा देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर उपासना किया ईश्वर क्या देता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्वऽउपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य च्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (आत्मदाः) आत्मा को देने और (बलदाः) बल देने वाला (यस्य) जिस की (प्रशिषम्) उत्तम शिक्षा को (विश्वे) समस्त (देवाः) विद्वान् लोग (उपासते) सेवते (यस्य) जिसके समीप से सब व्यवहार उत्पन्न होते (यस्य) जिस का (छाया) आश्रय (अमृतम्) अमृतस्वरूप और (यस्य) जिसकी आज्ञा का भंग (मृत्युः) मरण के तुल्य है उस (कस्मै) सुखरूप (देवाय) स्तुति के योग्य परमात्मा के लिये हम लोग (हविषा) होमने के पदार्थ से (विधेम) सेवा का विधान करें ॥१३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर की उत्तम शिक्षा में की हुई मर्यादा में सूर्य आदि लोक नियम के साथ वर्त्तमान हैं, जिस सूर्य के विना

जल की वर्षा और अवस्था का नाश नहीं होता वह सवितृमण्डल जिसने बनाया है उसी की उपासना सब मिलकर करें ॥१३॥

आ न इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृज्जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को किस की इच्छा करनी चाहिये इस विषय को
अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ नों भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः ।
देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारों दिवेदिवे ॥१४॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! जैसे(नः) हम लोगों को(विश्वतः) सब ओर से(भद्राः) कल्याण करने वाले (अदब्धासः) जो विनाश को न प्राप्त हुए (अपरीतासः) औरों ने जो न व्याप्त किये अर्थात् सब कामों से उत्तम (उद्भिदः) जो दुःखों को विनाश करते वे (क्रतवः) यज्ञ वा बुद्धि बल (आ, यन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त हों (यथा) जैसे (नः) हम लोगों की (सदम्) उस सभा को कि जिसमें स्थित होते हैं प्राप्त हुए (अप्रायुवः) जिन को अवस्था नष्ट नहीं होती वे (देवाः) पृथिवी आदि पदार्थों के समान विद्वान् जन (इत्) ही (दिवेदिवे) प्रतिदिन (वृधे) वृद्धि के लिये (रक्षितारः) पालना करने वाले (असन्) हों वैसा आचरण करो ॥१४॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को परमेश्वर के विज्ञान और विद्वानों के संग से बहुत बुद्धियों को प्राप्त होकर सब ओर से धर्म का आचरण कर नित्य सब की रक्षा करनेवाले होना चाहिये ॥१४॥

देवानामित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विद्वांसो देवताः । जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानांꣳरातिरभि नो निवर्त्तताम् ।
देवानांꣳसख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥१५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (देवानाम्) विद्वानों की (भद्रा) कल्याण करने वाली (सुमतिः) उत्तम बुद्धि हम लोगों को और (ऋजूयताम्) कठिन विषयों को सरल करते हुए (देवानाम्) देने वाले विद्वानों का (रातिः) विद्या आदि पदार्थों का देना (नः) हम लोगों को (अभि, नि, वर्त्तताम्) सब ओर से सिद्ध करे सब गुणों से पूर्ण करे (वयम्) हम लोग (देवानाम्) विद्वानों की (सख्यम्) मित्रता को (उप, आसेदिम) अच्छे प्रकार पावें (देवाः) विद्वान् (नः) हम को (जीवसे) जीने के लिये

(आयुः) जिस से प्राण का धारण होता उस आयुर्दा को (प्र, तिरन्तु) पूरी भुगावें वैसे तुम्हारे प्रति वर्त्ताव रक्खें ॥१५॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि पूर्ण शास्त्रवेत्ता विद्वानों के समीप से उत्तम बुद्धियों को पाकर ब्रह्मचर्य आश्रम से आयु को बढ़ा के सदैव धार्मिक जनों के साथ मित्रता रक्खें ॥१५॥

तान्पूर्वयेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम् ।
अर्यमणं वरुणꣳ सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥१६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (वयम्) हम लोग (पूर्वया) अगले सज्जनों ने स्वीकार की हुई (निविदा) वेदवाणी से (दक्षम्) चतुर (अर्यमणम्) प्रजापालक (अस्रिधम्) न विनाश करने योग्य (भगम्) ऐश्वर्य कराने वाले (मित्रम्) सब के मित्र (अदितिम्) जिस की बुद्धि कभी खण्डित नहीं होती उस (वरुणम्) श्रेष्ठ (सोमम्) ऐश्वर्यवान् तथा (अश्विना) पढ़ाने और पढ़ने वाले को (हूमहे) परस्पर हिरस करते हुए चाहते हैं। जैसे (सुभगा) सुन्दर ऐश्वर्य वाली (सरस्वती) समस्त विद्याओं से पूर्ण वेदवाणी (नः) हमारे और तुम्हारे लिये (मयः) सुख को (करत्) करे वैसे (तान्) उन उक्त सज्जनों को तुम भी चाहो और सुख करो ॥१६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जो जो वेद में कहा हुआ काम है उस उस का ही अनुष्ठान करें। जैसे अच्छे विद्यार्थी दूसरे की हिरस से अपनी विद्या को बढ़ाते हैं वैसे ही सब को विद्या बढ़ानी चाहिये। जैसे परिपूर्ण विद्यायुक्त माता अपने सन्तानों को अच्छी शिक्षा दे, विद्याओं की प्राप्ति करा, उनकी विद्या बढ़ाती है वैसे ही सब को सब के लिये सुख देकर सब की वृद्धि करनी चाहिये ॥१६॥

तन्न इत्यस्य गोतम ऋषिः । वायुर्देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर कौन क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः ।
तद्ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥१७॥

पदार्थः—हे (अश्विना) पढ़ाने और पढ़ने हारे सज्जनो ! (धिष्ण्या) भूमि के समान धारण करने वाले (युवम्) तुम दोनों हम लोगों ने जो पढ़ा है उस को (शृणुतम्) सुनो। जैसे (नः) हम लोगों के लिये (वातः) पवन (तत्) उस (मयोभु)

सुख करने हारी (भेषजम्) ओषधि की (वातु) प्राप्ति करे (तत्) उस ओषधि को (माता) मान्य देने वाली (पृथिवी) विस्तारयुक्त भूमि तथा (तत्) उस को (पिता) पालना का हेतु (द्यौः) सूर्यमण्डल प्राप्त करे तथा (तत्) उस को (सोमसुतः) ओषधि और ऐश्वर्य को उत्पन्न करने और (मयोभुवः) सुख की भावना कराने हारे (ग्रावाणः) मेघ प्राप्त करें (तत्) यह सब व्यवहार तुम्हारे लिये भी होवें ॥१७॥

भावार्थः—जिसकी पृथिवी के समान माता और सूर्य के समान पिता हो वह सब ओर से कुशली सुखी होकर सब को नीरोग और चतुर करे ॥१७॥

तमीशानमित्यस्य गोतम ऋषिः । ईश्वरो देवता । भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर ईश्वर कैसा है और किस लिये उपासना के योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तमीशा॑नं॒ जग॑तस्त॒स्थुष॒स्पतिं॑ धियंजि॒न्वमव॑से हूमहे व॒यम् ।
पू॒षा नो॒ यथा॒ वेद॑सा॒मस॑द्वृ॒धे र॑क्षि॒ता पा॒युरद॑ब्धः स्व॒स्तये॑ ॥१८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (वयम्) हम लोग (अवसे) रक्षा आदि के लिये (जगतः) चर और (तस्थुषः) अचर जगत् के (पतिम्) रक्षक (धियंजिन्वम्) बुद्धि को तृप्त प्रसन्न वा शुद्ध करने वाले (तम्) उस अखण्ड (ईशानम्) सब को वश में रखने वाले सब के स्वामी परमात्मा की (हूमहे) स्तुति करते हैं वह (यथा) जैसे (नः) हमारे (वेदसाम्) धनों की (वृधे) वृद्धि के लिये (पूषा) पुष्टिकर्त्ता तथा (रक्षिता) रक्षा करने हारा (स्वस्तये) सुख के लिये (पायुः) सब का रक्षक (अदब्धः) नहीं मारने वाला (असत्) होवे वैसे तुम लोग भी उस की स्तुति करो और वह तुम्हारे लिये भी रक्षा आदि का करने वाला होवे ॥१८॥

भावार्थः—सब विद्वान् लोग सब मनुष्यों के प्रति ऐसा उपदेश करें कि जिस सर्वशक्तिमान् निराकार सर्वत्र व्यापक परमेश्वर की उपासना हम लोग करें तथा उसी को सुख और ऐश्वर्य का बढ़ाने वाला जानें, उसी की उपासना तुम लोग भी करो और उसी को सब की उन्नति करने वाला जानो ॥१८॥

स्वस्ति न इत्यस्य गोतम ऋषिः । ईश्वरो देवता । स्वराड्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को किस की इच्छा करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥१९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (वृद्धश्रवाः) बहुत सुनने वाला (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् ईश्वर (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) उत्तम सुख जो (विश्ववेदाः) समस्त जगत् में वेद ही जिस का धन है वह (पूषा) सब का पुष्टि करने वाला (नः) हम लोगों के लिये (स्वस्ति) सुख जो (तार्क्ष्यः) घोड़े के समान (अरिष्टनेमिः) सुखों की प्राप्ति कराता हुआ (नः) हम लोगों के लिये (स्वस्ति) उत्तम सुख तथा जो (बृहस्पतिः) महत्तत्त्व आदि का स्वामी वा पालना करने वाला परमेश्वर (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) उत्तम सुख को (दधातु) धारण करे वह तुम्हारे लिये भी सुख को धारण करे ॥१९॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जैसे अपने सुख को चाहें वैसे और के लिये भी चाहें जैसे कोई भी अपने लिये दुःख नहीं चाहता वैसे और के लिये भी न चाहें ॥१९॥

पृषदश्वा इत्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वांसो देवताः । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर कौन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः ।
अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसागमन्निह ॥२०॥

पदार्थः—जो (पृश्निमातरः) जिन को मान्य देने वाला अन्तरिक्ष माता के तुल्य है उन वायुओं के समान (पृषदश्वाः) जिन के पुष्टि आदि से सींचे अङ्गों वाले घोड़े हैं वे (मरुतः) मनुष्य तथा (विदथेषु) संग्रामों में (शुभंयावानः) जो उत्तम सुख को प्राप्त होने और (जग्मयः) संग करने वाले (अग्निजिह्वाः) जिन की अग्नि के समान प्रकाशित वाणी और (सूरचक्षसः) जिन का ऐश्वर्य वा प्रेरणा में दर्शन होवे ऐसे (विश्वे) समस्त (देवाः) विद्वान् (मनवः) जन (अवसा) रक्षा आदि के साथ वर्त्तमान हैं वे लोग (इह) इस संसार वा इस समय में (नः) हम लोगों को (आ, अगमन्) प्राप्त होवें ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को विद्वानों का संग सदैव प्रार्थना करने योग्य है। जैसे इस जगत् में सब वायु आदि पदार्थ सब मनुष्यों वा प्राणियों के जीवन के हेतु हैं वैसे इस जगत् में चेतनों में विद्वान् हैं ॥२०॥

भद्रमित्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वांसो देवताः । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥२१॥

पदार्थः—हे (यजत्राः) संग करने वाले (देवाः) विद्वानो ! आप लोगों के साथ से हम (कर्णेभिः) कानों से (भद्रम्) जिस से सत्यता जानी जावे उस वचन को (शृणुयाम) सुनें (अक्षभिः) आंखों से (भद्रम्) कल्याण को (पश्येम) देखें (स्थिरैः) दृढ़ (अंगैः) अवयवों से (तुष्टुवांसः) स्तुति करते हुए (तनूभिः) शरीरों से (यत्) जो (देवहितम्) विद्वानों के लिये सुख करने हारी (आयुः) अवस्था है उस को (वि, अशेमहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हों ॥२१॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों के साथ से विद्वान् होकर सत्य सुनें, सत्य देखें और जगदीश्वर की स्तुति करें तो वे बहुत अवस्था वाले हों। मनुष्यों को चाहिये कि असत्य का सुनना, खोटा देखना, झूठी स्तुति प्रार्थना प्रशंसा और व्यभिचार कभी न करें ॥२१॥

शतमित्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वांसो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर हमारे लिये कौन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥२२॥

पदार्थः—हे (देवाः) विद्वानो ! आप के (अन्ति) समीप स्थित (नः) हम लोगों के (यत्र) जिस व्यवहार में (तनूनाम्) शरीरों की (जरसम्) वृद्धावस्था और (शतम्) सौ (शरदः) वर्ष पूरे हों उस व्यवहार को (नु) शीघ्र (चक्र) करो (यत्र) जहां (पुत्रासः) बुढ़ापे के दुःखों से रक्षा करने वाले लड़के (इव) ही (पितरः) पिता के समान वर्त्तमान (भवन्ति) होते हैं उस (नः) हम लोगों की (गन्तोः) चाल और (आयुः) अवस्था को (मध्या) पूरी अवस्था भोगने के बीच (मा, रीरिषत) मत नष्ट करो ॥२२॥

भावार्थः—मनुष्यों को सदा दीर्घ काल अर्थात् अड़तालीस वर्ष प्रमाणे ब्रह्मचर्य सेवना चाहिये। जिससे पिता आदि के विद्यमान होते ही लड़के भी पिता हो जावें अर्थात् उनके भी लड़के हो जावें। और जब सौ वर्ष आयु बीते तभी शरीरों की वृद्धावस्था होवे। जो ब्रह्मचर्य के साथ कम से कम

पच्चीस वर्ष व्यतीत होवें उससे पीछे भी अतिमैथुन करके जो लोग वीर्य का नाश करते हैं तो वे रोगसहित निर्बुद्धि होके अधिक अवस्था वाले कभी नहीं होते ॥२२॥

अदितिरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । द्यौरित्यादयो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब अदिति शब्द के अनेक अर्थ हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अदि॑ति॒र्द्यौरदि॑तिर॒न्तरि॑क्ष॒मदि॑तिर्मा॒ता स पि॒ता स पु॒त्रः ।
विश्वे॑ दे॒वा अदि॑तिः॒ पञ्च॒ जना॒ अदि॑तिर्जा॒तमदि॑ति॒र्जनि॑त्वम् ॥२३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को (द्यौः) कारणरूप से जो प्रकाश वह (अदितिः) अखण्डित (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (अदितिः) अविनाशी (माता) सब जगत् की उत्पन्न करने वाली प्रकृति (सः) वह परमेश्वर (पिता) नित्य पालन करने हारा और (सः) वह (पुत्रः) ईश्वर के पुत्र के समान वर्त्तमान (अदितिः) कारणरूप से अविनाशी संसार (विश्वे) समस्त (देवाः) दिव्यगुण वाले पृथिवी आदि पदार्थ (अदितिः) कारणरूप से विनाशरहित (पंच) पांच (जनाः) मनुष्य वा प्राण (अदितिः) कारणरूप से अविनाशी तथा (जातम्) जो कुछ उत्पन्न हुआ कार्यरूप जगत् और (जनित्वम्) जो उत्पन्न होने वाला वह सब (अदितिः) कारणरूप से नित्य है यह जानना चाहिये ॥२३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग जितने कुछ कार्यरूप जगत् को देखते हो वह अदृष्ट कारण रूप जानो जगत् का बनाने वाला परमात्मा, जीव, पृथिवी आदि तत्त्व जो उत्पन्न हुआ वा जो होगा और जो प्रकृति वह सब स्वरूप से नित्य है कभी इस का अभाव नहीं होता और यह भी जानना चाहिये कि अभाव से भाव की उत्पत्ति कभी नहीं होती ॥२३॥

मा न इत्यस्य गोतम ऋषिः । मित्रादयो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर कौन हम लोगों के किस काम को न करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

मा नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो अर्य॒मायुरिन्द्र॑ ऋभु॒क्षा म॒रुतः॒ परि॑ख्यन् ।
यद्वा॒जिनो॑ दे॒वजा॑तस्य सप्तेः॑ प्रव॒क्ष्यामो॑ वि॒दथे॑ वी॒र्या॒णि ॥२४॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! जैसे (मित्रः) प्राण के समान मित्र (वरुणः) उदान के समान श्रेष्ठ (अर्यमा) और न्यायाधीश के समान नियम करने वाला (इन्द्रः) राजा तथा (ऋभुक्षाः) महात्मा (मरुतः) जन (नः) हम लोगों की (आयुः) आयुर्दा को

(मा) मत (परिख्यन्) विनाश करावें जिस से हम लोग (देवजातस्य) दिव्यगुणों से प्रसिद्ध (वाजिनः) वेगवान् (सप्तेः) घोड़ा के समान उत्तम वीर पुरुष के (विदथे) युद्ध में (यत्) जिन (वीर्याणि) बलों को (प्रवक्ष्यामः) कहें उन का मत विनाश करावें, वैसा आप लोग उपदेश करें ॥२४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सब मनुष्य अपने बलों को बढ़ाना चाहें वैसे औरों के भी बल को बढ़ाने की इच्छा करें ॥२४॥

यन्निर्णिजेत्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वांसो देवताः । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः ॥ धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीताम्मुखतो नयन्ति ।
सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः ॥२५॥

पदार्थः—(यत्) जो मनुष्य (निर्णिजा) सुन्दररूप और (रेक्णसा) धन से (प्रावृतस्य) युक्त जन की (रातिम्) देनी वा (गृभीताम्) ली हुई वस्तु को (मुखतः) आगे से (नयन्ति) प्राप्त कराते तथा जो (मेम्यत्) प्राप्त होता हुआ (सुप्राङ्) अच्छे प्रकार पूछने वाला (विश्वरूपः) संसार जिस का रूप वह (अजः) जन्म और मरण आदि दोषों से रहित अविनाशी जीव (इन्द्रापूष्णोः) विजुली और पवन सम्बन्धी (प्रिम्) मनोहर (पाथः) अन्न को (अप्येति) सब ओर से पाता है वे मनुष्य और वह जीव सब आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥२५॥

भावार्थः—जो मनुष्य धन को पाकर अच्छे कामों में खर्च करते हैं वे सब कामनाओं को पाते हैं ॥२५॥

एष इत्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर किस के साथ कौन पालना करने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

एष छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः ।
अभिप्रियं यत्पुरोडाशमर्वता त्वष्टेदेनᳬं सौश्रवसाय जिन्वति ॥२६॥

पदार्थः - विद्वानों को चाहिये कि जो (एषः) यह (पुरः) प्रथम (विश्वदेव्यः) सब विद्वानों में उत्तम (पूष्णः) पुष्टि करने वाले का (भागः) सेवने योग्य (छागः) पदार्थों को छिन्न भिन्न करता हुआ प्राणी (वाजिना) वेगवान् (अश्वेन) घोड़े के साथ (नीयते) प्राप्त किया जाता और (यत्) जिस (अभिप्रियम्) सब ओर स

मनोहर (पुरोडाशम्) पुरोडाश नामक यज्ञभाग को (अर्वता) पहुंचाते हुए घोड़े के साथ (त्वष्टा) पदार्थों को सूक्ष्म करने वाला (एनम्) उक्त भाग को (सौश्रवसाय) उत्तम कीर्त्तिमान् होने के लिये (इत्) ही (जिन्वति) पाकर प्रसन्न होता है वह सदैव पालने योग्य है ॥२६॥

भावार्थः—यदि अश्वादिकों के साथ अन्य बकरी आदि पशुओं को बढ़ावें तो वे मनुष्य सुख की उन्नति करें ॥२६॥

यद्धविष्यमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर किससे कौन क्या करते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वन्नयन्ति ।

अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञन्देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥२७॥

पदार्थः—(यत्) जो (मानुषाः) मनुष्य (ऋतुशः) ऋतु ऋतु के योग्य (हविष्यम्) होम में चढ़ाने के पदार्थों के लिये हितकारी (देवयानम्) दिव्य गुण वाले विद्वानों की प्राप्ति कराने हारे (अश्वम्) शीघ्रगामी प्राणी को (त्रिः) तीनवार (परि, नयन्ति) सब ओर पहुंचाते हैं वा जो (अत्र) इस संसार में (पूष्णः) पुष्टिसम्बन्धी (प्रथमः) प्रथम (भागः) सेवने योग्य (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (यज्ञम्) सत्कार को (प्रतिवेदयन्) जनाता हुआ (अजः) विशेष पशु बकरा (एति) प्राप्त होता है वह सदा रक्षा करने योग्य है ॥२७॥

भावार्थः जो मनुष्य ऋतु ऋतु के प्रति उनके गुणों के अनुकूल आहार विहारों को करते तथा घोड़ा और बकरा आदि पशुओं से संगत हुए कामों को करते हैं वे अत्यन्त सुख को पाते हैं ॥२७॥

होतेत्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवताः । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शꣳस्ता सुविप्रः ।

तेन यज्ञेन स्वरङ्कृतेन स्विष्टेन वक्षणाऽआ पृणध्वम् ॥२८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (होता) ग्रहण करने हारा वा (आवयाः) जिससे अच्छे प्रकार यज्ञ संग और दान करते वह वा (अग्निमिन्धः) अग्नि को प्रदीप्त करने हारा वा (ग्रावग्राभः) मेघ को ग्रहण करने हारा वा (शंस्ता) प्रशंसा करने हारा (उत) और (सुविप्रः) जिसके समीप अच्छे अच्छे बुद्धिमान् हैं वह (अध्वर्युः) अहिंसा यज्ञ का चाहने वाला उत्तम जन जिस (स्वरंकृतेन) सुन्दर सुशोभित किये (स्विष्टेन) सुन्दर भाव से चाहे और (यज्ञेन) मिले हुए यज्ञ आदि उत्तम काम से

(वक्षणाः) नदियों को पूर्ण करता अर्थात् यज्ञ करने से पानी वर्षा उस वर्षे हुए जल से नदियों को भरता वैसे (तेन) उस काम से तुम लोग भी (आ, पृणध्वम्) अच्छे प्रकार सुख भोगो ॥२८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सुगन्धि आदि से उत्तम बनाये हुए होम करने योग्य पदार्थों को अग्नि में छोड़ने से पवन और वर्षा जल आदि पदार्थों को शोध कर नदी नद आदि के जलों की शुद्धि करते हैं वे सदैव सुख भोगते हैं ॥२८॥

यूपव्रस्का इत्यस्य गोतम ऋषिः। यज्ञो देवता। भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर वे क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यूपव्रस्काऽउत ये यूपवाहाश्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति।
ये चार्वते पचनꣳ सम्भरन्त्युतो तेषामभिगूर्त्तिर्नऽइन्वतु ॥२९॥

पदार्थः—(ये) जो (यूपव्रस्काः) यज्ञखंभा के छेदने बनाने (उत) और (ये) जो (यूपवाहाः) यज्ञस्तम्भ को पहुंचाने वाले (अश्वयूपाय) घोड़ा के बांधने के लिये (चषालम्) खंभा के खण्ड को (तक्षति) काटने छांटते (ये, च) और जो (अर्वते) घोड़ा के लिये (पचनम्) जिस में पाक किया जाय उस काम को (सम्भरन्ति) अच्छे प्रकार धारण करते वा पुष्ट करते (उतो) और जो उत्तम यत्न करते हैं (तेषाम्) उनका (अभिगूर्त्तिः) सब प्रकार से उद्यम (नः) हम लोगों को (इन्वतु) व्याप्त और प्राप्त होवे ॥२९॥

भावार्थः—जो कारुक शिल्पीजन घोड़ा के बांधने आदि काम के काठों से विशेष काम बनाते और जो वैद्य घोड़े आदि पशुओं की ओषधि और उन की सजावट की सामग्रियों को इकट्ठा करते हैं वे सदा उद्यम करते हुए हम लोगों को प्राप्त होवें ॥२९॥

उप प्रागादित्यस्य गोतम ऋषिः। विद्वांसो देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर कौन किनसे क्या लेवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उप प्रागात्सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशाऽउप वीतपृष्ठः।
अन्वेनं विप्राऽऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥३०॥

पदार्थः—जिसने (सुमत्) आप ही (देवानाम्) विद्वानों का (वीतपृष्ठः) जिस का पिछला भाग व्याप्त वह उत्तम व्यवहार (अधायि) धारण किया वा जिससे इनके और (मे) मेरे (मन्म) विज्ञान को तथा (आशाः) दिशा दिशान्तरों को (उप,

प्र, अगात्) प्राप्त हो वा जिस (एनम्) इस प्रत्यक्ष व्यवहार के (अनु) अनुकूल (देवानाम्) विद्वानों के बीच (पुष्टे) पुष्ट बलवान् जन के निमित्त (ऋषयः) मन्त्रों का अर्थ जानने वाले (विप्राः) धीरबुद्धि पुरुष (उप, मवन्ति) समीप होकर आनन्द को प्राप्त होते हैं उस (सुबन्धुम्) सुन्दर सुन्दर भाइयों वाले जन को हम लोग (चकृम) उत्पन्न करें ॥३०॥

भावार्थः—जो विद्वानों के समीप से उत्तम ज्ञान को पाके ऋषि होते हैं वे सब को विज्ञान देने से पुष्ट करते हैं जो परस्पर एक दूसरे की उन्नति कर परिपूर्ण काम वाले होते हैं वे जगत् के हितैषी होते हैं ॥३०॥

यद्वाजिन इत्यस्य गोतम ऋषिः। यज्ञो देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर कौन किनसे क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यद्वाजिनो दाम सन्दानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य।
यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये तृणꣳ सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥३१॥

पदार्थः—हे विद्वन्! (वाजिनः) प्रशस्त वेग वाले (अस्य) इस (अर्वतः) बलवान् घोड़े का (यत्) जो (दाम) उदरबन्धन अर्थात् तंगी और (संदानम्) अगाड़ी पछाड़ी पैर आदि में बांधने की रस्सी वा (या) जो (शीर्षण्या) शिर में होने वाली (रशना) मुंह में व्याप्त (रज्जुः) रस्सी मुहेरा आदि (यत्, वा) अथवा जो (अस्य) इस घोड़े के (आस्ये) मुख में (तृणम्) घास दूब आदि विशेष तृण (प्रभृतम्) उत्तमता से धरी हो (ता) वे (सर्वा) सब पदार्थ (ते) तेरे हों और यह उक्त समस्त वस्तु (घ) ही (देवेषु) विद्वानों में (अपि) भी (अस्तु) हो ॥३१॥

भावार्थः—जो मनुष्य घोड़ों को अच्छी शिक्षा कर उनके सब अङ्गों के बन्धन सुन्दर सुन्दर तथा खाने पीने के श्रेष्ठ पदार्थ और उत्तम उत्तम औषध करते हैं वे शत्रुओं को जीतना आदि काम सिद्ध कर सकते हैं ॥३१॥

यदश्वस्येत्यस्य गोतम ऋषिः। यज्ञो देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर कैसे कौन रक्षा करने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति।
यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥३२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! (यत्) जो (मक्षिका) मक्खी (क्रविषः) चलते हुए (अश्वस्य) शीघ्र जाने वाले घोड़े का (आश) भोजन करती अर्थात् कुछ मल रुधिर आदि खाती (वा) अथवा (यत्) जो (स्वरौ) स्वर (स्वधितौ) वज्र के समान वर्त्तमान हैं वा (शमितुः) यज्ञ करने हारे के (हस्तयोः) हाथों में (यत्) जो वस्तु (रिप्तम्)

प्राप्त और (यत्) जो (नखेषु) नखों में प्राप्त (अस्ति) है (ताः) वे (सर्वाः) सब पदार्थ (ते) तुम्हारे हों तथा यह समस्त व्यवहार (देवेषु) विद्वानों में (अपि) भी (अस्तु) होवे ।।३२।।

भावार्थः—मनुष्यों को ऐसी घुड़शाल में घोड़े बांधने चाहियें जहां इनका रुधिर आदि मांछि आदि न पीवं। जैसे यज्ञ करने हारे के हाथ में लिपटे हुए हवि को धोने आदि से छुड़ाते हैं वैसे ही घोड़े आदि पशुओं के शरीर में लिपटी धूलि आदि को नित्य छुड़ावें ।।३२।।

यदूवध्यमित्यस्य गोतम ऋषिः। यज्ञो देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ।।

फिर कौन किसलिये क्या न करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

यदूवंध्यमुदरस्यापवाति य आमस्यं क्रविषों गन्धोऽअस्ति ।
सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधंꣳ शृतपाकं पचन्तु ।।३३।।

पदार्थः—हे मनुष्यो! (उदरस्य) पेट के कोष्ठ से (यत्) जो (ऊवध्यम्) मलीन मल (अपवाति) निकलता और (यः) जो (आमस्य) न पचे कच्चे (क्रविषः) खाये हुए पदार्थ का (गन्धः) गन्ध (अस्ति) है (तत्) उस को (शमितारः) शान्ति करने अर्थात् आराम देने वाले (सुकृता) अच्छा सिद्ध (कृण्वन्तु) करें (उत) और (मेधम्) पवित्र (शृतपाकम्) जिसका सुन्दर पाक बने उस को (पचन्तु) पकावें ।।३३।।

भावार्थः—जो लोग यज्ञ करना चाहें वे दुर्गन्धयुक्त पदार्थ को छोड़ सुगन्धि आदि युक्त सुन्दरता से बना पाक कर अग्नि में होम करें वे जगत् का हित चाहने वाले होते हैं ।।३३।।

यत्ते गात्रादित्यस्य गोतम ऋषिः। यज्ञो देवता। भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः।
धैवतः स्वरः ।।

फिर मनुष्य को किस से क्या निकालना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधावति ।
मा तद्भूम्यामाश्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ।।३४।।

पदार्थः—हे मनुष्य! (निहतस्य) निश्चय से श्रम किये हुए (ते) तेरे (अग्निना) अन्तःकरणरूप तेज से (पच्यमानात्) पकाये जाते (गात्रात्) अङ्ग से (यत्) जो (शूलम्) शीघ्र बोध का हेतु वचन (अभि, अवधावति) चारों ओर से निकलता है (तत्) वह (भूम्याम्) भूमि पर (मा, आ, श्रिषत्) नहीं आता है तथा (तत्) वह

(तृणेषु) तृणों पर (मा) नहीं आता किन्तु वह तो (उशद्भ्य:) सत्पुरुष (देवेभ्य:) विद्वानों के लिये (रातम्) दिया (अस्तु) होवे ।।३४।।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो ज्वर आदि से पीड़ित अङ्ग हों उन को वैद्यजनों से नीरोग कराना चाहिये क्योंकि उन वैद्यजनों से जो औषध दिया जाता है वह रोगी जन के लिये हितकारी होता है ।।३४।।

ये वाजिनमित्यस्य गोतम ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । स्वराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

फिर कौन रोकने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति ।
ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्त्तिर्न इन्वतु ।।३५।।

पदार्थः—(ये) जो (अर्वत:) घोड़े के (मांसभिक्षाम्) मांस के मांगने की (उपासते) उपासना करते (च) और (ये) जो घोड़ा को (ईम्) पाया हुआ मारने योग्य (आहु:) कहते हैं उन को (निः, हर) निरन्तर हरो, दूर पहुंचाओ (ये) जो (वाजिनम्) वेगवान् घोड़ों को (पक्वम्) पक्का सिखा के (परिपश्यन्ति) सब ओर से देखते हैं (उतो) और (तेषाम्) उन का (सुरभि:) अच्छा सुगन्ध और (अभिगूर्तिः) सब ओर से उद्यम (नः) हम लोगों को (इन्वतु) प्राप्त हों उन के अच्छे काम हमको प्राप्त हों (इति) इस प्रकार दूर पहुंचाओ ।।३५।।

भावार्थः—जो घोड़े आदि उत्तम पशुओं का मांस खाना चाहें वे राजा आदि श्रेष्ठ पुरुषों को रोकने चाहियें जिस से मनुष्यों का उद्यम सिद्ध हो ।।३५।।

यन्नीक्षणमित्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ।।

फिर किस को क्या देखना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि ।
ऊष्मण्याऽपिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परिभूषन्त्यश्वम् ।।३६।।

पदार्थः—(या) जो (ऊष्मण्या) गरमियों में उत्तम (अपिधाना) ढांपने (आसेचनानि) और सिचाने हारे (पात्राणि) पात्र वा (यत्) जो (मांस्पचन्या:) मांस जिस में पकाया जाय उस (उखायाः) बटलोई का (नीक्षणम्) निकृष्ट देखना वा (चरूणाम्) पात्रों के (अङ्काः) लक्षण किये हुए (सूनाः) प्रसिद्ध पदार्थ तथा (यूष्णः)

बढ़ाने वाले के (अश्वम्) घोड़े को (परि, भूषन्ति) सब ओर से सुशोभित करते हैं वे सब स्वीकार करने योग्य हैं ॥३६॥

भावार्थः—यदि कोई घोड़े आदि उपकारी पशुओं और उत्तम पक्षियों का मांस खावें तो उन को यथापराध अवश्य दण्ड देना चाहिये ॥३६॥

मात्वेत्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वांसो देवताः । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को मांस न खाना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

मा त्वाग्निर्ध्वनयीद्धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः ।
इष्टं वीतमभिगूर्त्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ॥३७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (देवासः) विद्वान् जन जिस (इष्टम्) चाहे हुए (वीतम्) प्राप्त (अभिगूर्तम्) चारों ओर से जिस में उद्यम किया गया (वषट्कृतम्) ऐसी क्रिया से सिद्ध हुए (अश्वम्) वेगवान् घोड़े को (प्रति गृभ्णन्ति) प्रतीति से ग्रहण करते उस को तुम (अभि) सब ओर से (विक्त) जानो (त्वा) उस को (धूमगन्धिः) धूम्रां में गन्ध जिस का वह (अग्निः) अग्नि (मा) मत (ध्वनयीत्) शब्द करे वा (तम्) उस को (जघ्रिः) जिस से किसी वस्तु को सूंघते हैं वह (भ्राजन्ती) चमकती हुई (उखा) बटलोई (मा) मत हिंसवावे ॥३७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन मांसाहारियों को निवृत्त कर घोड़ा आदि पशुओं की वृद्धि और रक्षा करते हैं वैसे तुम भी करो और अग्नि आदि के विघ्नों से अलग रक्खो ॥३७॥

निक्रमणमित्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । विराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

निक्रमणं निषदनं विवर्त्तनं यच्च पड्वीशमर्वतः ।
यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥३८॥

पदार्थः—हे विद्वान् जो (ते) तेरे (अर्वतः) घोड़े का (निक्रमणम्) निकलना (निषदनम्) बैठना (विवर्त्तनम्) विशेष कर वर्त्तात्र वर्त्तना (च) और (यत्) जो (पड्वीशम्) पछाड़ी (यत्, च) और जो यह (पपौ) पीता (यत्, च) और जो (घासिम्) घास (जघास) खाता (ताः) वे (सर्वा) सब काम युक्ति के साथ हों और यह सब (देवेषु) दिव्य उत्तम गुण वालों में (अपि) भी (अस्तु) होवे ॥३८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप घोड़े आदि पशुओं को अच्छी शिक्षा तथा खान पान के देने से अपने सब कामों को सिद्ध किया करो ॥३८॥

यदश्वायेत्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वांसो देवताः । विराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यदश्वा॑य॒ वास॑ उपस्तृ॒णन्त्य॑धीवा॒सं या हिर॑ण्यान्यस्मै ।
सं॒दान॒मर्व॑न्तं॒ पड्वी॑शं॒ प्रि॒या दे॒वेष्वा या॑मयन्ति ॥३९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! आप (अस्मै) इस (अश्वाय) घोड़े के लिये (यत्) जो (वासः) वस्त्र (अधीवासम्) चारजामा (सन्दानम्) मुहेरा आदि और (या) जिन (हिरण्यानि) सुवर्ण के बनाये हुए आभूषणों को (उपस्तृणन्ति) ढापते वा जिस (पड्वीशम्) पैरों से प्रवेश करते और (अर्वन्तम्) जाते हुए घोड़े को (आ, यामयन्ति) अच्छे प्रकार नियम में रखते हैं वे सब पदार्थ और काम (देवेषु) विद्वानों में (प्रिया) प्रीति देने वाले हों ॥३९॥

भावार्थः—जो मनुष्य घोड़े आदि पशुओं की यथावत् रक्षा करके उपकार लेवें तो बहुत कार्यों की सिद्धि से उपकारयुक्त हों ॥३९॥

यत्त इत्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यत्ते॑ सा॒दे मह॑सा॒ शूकृ॑तस्य॒ पार्ष्ण्या॑ वा॒ कश॑या वा तु॒तोद॑ ।
स्रु॒चेव॒ ता ह॒विषो॑ अध्व॒रेषु॒ सर्वा॒ ता ते॒ ब्रह्म॑णा सूदयामि ॥४०॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! (ते) आप के (सादे) बैठने के स्थान में (महसा) बड़प्पन से (वा) अथवा (शूकृतस्य) जल्दी सिखाये हुए घोड़े के (कशया) कोड़े से (यत्) जिस कारण (पार्ष्ण्या) पसुली आदि स्थान (वा) वा कक्षाओं में जो उत्तम ताड़ना आदि काम वा (तुतोद) साधारण ताड़ना देना (ता) उन सब को (अध्वरेषु) यज्ञों में (हविषः) होमने योग्य पदार्थ सम्बन्धी (स्रुचेव) जैसे स्रुचा प्रेरणा देती वैसे करते हो (ता) वे (सर्वा) सब काम (ते) तेरे लिये (ब्रह्मणा) धन से (सूदयामि) प्राप्त करता हूं ॥४०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे यज्ञ के साधनों से होमने योग्य पदार्थों को अग्नि में प्रेरणा देते है वैसे ही घोड़े आदि पशुओं को अच्छी सिखावट की रीति से प्रेरणा देवें ॥४०॥

चतुस्त्रिंशदित्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

चतु॑स्त्रिꣳशद्वा॒जिनो॑ दे॒वब॑न्धो॒र्वङ्क्री॒रश्व॑स्य॒ स्वधि॑तिः॒ समे॑ति ।
अच्छि॑द्रा॒ गात्रा॑ व॒युना॑ कृणोतु॒ परु॑ष्परुरनु॒घुष्या॒ वि श॑स्त ।।४१।।

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे घुड़चढ़ा चाबुकी जन (देवबन्धोः) जिस के विद्वान् बन्धु के समान उस (वाजिनः) वेगवान् (अश्वस्य) घोड़े की (चतुस्त्रिंशत्) चौंतीस (वङ्क्रीः) टेढ़ी मेंढ़ी चालों को (सम्, एति) अच्छे प्रकार प्राप्त होता और (अच्छिद्रा) छेद भेद रहित (गात्रा) अङ्ग और (वयुना) उत्तम ज्ञानों को (कृणोतु) करे वैसे उस के (परुष्परुः) प्रत्येक मर्मस्थान को (अनुघुष्य) अनुकूलता से बजाकर (स्वधितिः) वज्र के समान वर्त्तमान तुम लोग रोगों को (वि, शस्त) विशेषता से छिन्न भिन्न करो ।।४१।।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे घोड़ों को सिखाने वाला चतुर जन चौंतीस चित्र विचित्र गतियों को घोड़े को पहुंचाता और वैद्यजन प्राणियों को नीरोग करता है वैसे ही और पशुओं की रक्षा से उन्नति करनी चाहिये ।।४१।।

एकस्त्वष्टुरित्यस्य गोतम ऋषिः । यजमानो देवता । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ।।

फिर किस प्रकार पशु सिखाने चाहियें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

एक॒स्त्वष्टु॒रश्व॑स्या विश॒स्ता द्वा य॒न्तारा॑ भवत॒स्तथ॑ऽऋ॒तुः ।
या ते॒ गात्रा॑णामृतु॒था कृ॒णोमि॒ ताता॒ पिण्डा॑नां॒ प्र जु॑होम्य॒ग्नौ ।।४२।।

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (एकः) अकेला (ऋतुः) वसन्त आदि ऋतु (त्वष्टुः) शोभायमान (अश्वस्य) घोड़े का (विशस्ता) विशेष करके रूपादि का भेद करने वाला होता है वा जो (द्वा) दो (यन्तारा) नियम करने वाले (भवतः) होते हैं (तथा) वैसे (या) जिन (ते) तुम्हारे (गात्राणाम्) अङ्गों वा (पिण्डानाम्) पिण्डों के (ऋतुथा) ऋतु सम्बन्धी पदार्थों को मैं (कृणोमि) करता हूं (ताता) उन उन को (अग्नौ) आग में (प्र, जुहोमि) होमता हूं ।।४२।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे घोड़ों के सिखाने वाले ऋतु ऋतु के प्रति घोड़ों को अच्छा सिखलाते हैं वैसे गुरुजन विद्यार्थियों को क्रिया करना सिखलाते हैं वा जैसे अग्नि में पिण्डों का होम

कर पवन की शुद्धि करते हैं वैसे विद्यारूपी अग्नि में अविद्यारूप भ्रमों को होम के आत्माओं की शुद्धि करते हैं ॥४२॥

मात्वेत्यस्य गोतम ऋषिः । आत्मा देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को आत्मादि पदार्थ कैसे शुद्ध करने चाहियें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

मा त्वा तपत् प्रिय आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व आ तिष्ठिपत्ते ।
मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ॥४३॥

पदार्थः—हे विद्वान् (ते) आप का जो (प्रियः) प्रीति वा आनन्द देने वाला वह (आत्मा) अपना निज रूप आत्मतत्त्व भी (अपियन्तम्) निश्चय से प्राप्त होते हुए (त्वा) आप को (अतिहाय) अतीव छोड़ के (मा, तपत्) मत संताप को प्राप्त हो (स्वधितिः) वज्र (ते) आप के (तन्वः) शरीर के बीच (मा, तिष्ठिपत्) मत स्थित करावे आप के (छिद्रा) छिन्न भिन्न (गात्राणि) अङ्गों को (अविशस्ता) विशेष न काटने और (गृध्नुः) चाहने वाला जन (मा) मत स्थित करावे तथा (असिना) तलवार से (मिथू) परस्पर मत (कः) चेष्टा करे ॥४३॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि अपने अपने आत्मा को शोक में न डालें किसी के ऊपर वज्र न छोड़ें और किसी का उपकार किया हुआ न नष्ट किया करें ॥४३॥

न वा इत्यस्य गोतम ऋषिः । आत्मा देवता । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कैसे रथ निर्माण करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

न वाऽउऽएतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ२॥ऽइदेषि पथिभिः सुगेभिः ।
हरी ते युञ्जा पृषतीऽअभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ॥४४॥

पदार्थः—हे विद्वान् ! यदि (एतत्) इस पूर्वोक्त विज्ञान को पाते हो तो (न) न तुम (म्रियसे) मरते (न) न (वै) ही (रिष्यसि) मारते हो किन्तु (सुगेभिः) सुगम (पथिभिः) मार्गों से (देवान्) विद्वानों (इत्) ही को (एषि) प्राप्त होते हो यदि (ते) आप के (पृषती) स्थूल शरीरयुक्त (युंजा) योग करने हारे घोड़े (हरी) पहुंचाने वाले (अभूताम्) हों (उ) तो (वाजी) वेगवान् एक घोड़ा (रासभस्य) अश्वजाति से सम्बंध रखने वाले खिच्चर की (धुरि) धारणा के निमित्त (उप, अस्थात्) उपस्थित हो ॥४४॥

भावार्थः—जैसे विद्या से अच्छे प्रकार जिन का प्रयोग किया उन पवन जल और अग्नि से युक्त रथ में स्थिर होके मार्गों को सुख से जाते हैं वैसे ही आत्मज्ञान से अपने स्वरूप को नित्य जान के मरण और हिंसा के डर को छोड़ दिव्य सुखों को प्राप्त हों ॥४४॥

सुगव्यमित्यस्य गोतम ऋषिः । प्रजा देवता । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

किन से राज्य की उन्नति होवे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंसः पुत्राँ२॥ऽउत विश्वापुषंꣳ रयिम् । अनागास्त्वं नोऽअदितिः कृणोतु क्षत्रं नोऽअश्वो वनताꣳ हविष्मान् ॥४५॥

पदार्थः—जो (नः) हमारा (वाजी) घोड़ा (सुगव्यम्) सुन्दर गौओं के लिये सुखस्वरूप (स्वश्व्यम्) अच्छे घोड़ों में प्रसिद्ध हुए काम को करता है वा जो विद्वान् (पुंसः) पुरुषपन से युक्त पुरुषार्थी (पुत्रान्) पुत्रों (उत) और (विश्वापुषम्) समग्र पुष्टि करने वाले (रयिम्) धन को प्राप्त होता वा जैसे (अदितिः) कारणरूप से अविनाशी भूमि (नः) हमारे लिये (अनागास्त्वम्) अपराधरहित होने को करती है वैसे आप (कृणोतु) करें वा जैसे (हविष्मान्) प्रशंसित सुख देने जिस में हैं वह (अश्वः) व्याप्तिशील प्राणी (नः) हम लोगों के (क्षत्रम्) राज्य को (वनताम्) सेवे वैसे आप सेवा किया करो ॥४५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो जितेन्द्रिय और ब्रह्मचर्य से वीर्यवान् घोड़े के समान अमोघवीर्य पुरुषार्थ से धन पाये हुए न्याय से राज्य की उन्नति देवें वे सुखी होवें ॥४५॥

इमा नु कमित्यस्य गोतम ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । भुरिक्शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर कौन धनवान् होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः । आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत् । यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधाति ॥४६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (इन्द्रः) परमैश्वर्य्यवान् राजा (च) और (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (च) भी (इमा) इन समस्त (भुवना) लोकों को धारण करते वैसे हम लोग (कम्) सुख को (नु) शीघ्र (सीषधाम) सिद्ध करें वा जैसे

(सगणः) अपने सहचारी आदि गणों के साथ वर्त्तमान (इन्द्रः) सूर्य (आदित्यैः) महीनों के साथ वर्त्तमान समस्त लोकों को प्रकाशित करता वैसे (मरुद्भिः) मनुष्यों के साथ वैद्यजन (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (भेषजा) ओषधियां (करत्) करे जैसे (आदित्यैः) उत्तम विद्वानों के (सह) साथ (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् सभापति (नः) हम लोगों के (यज्ञम्) विद्वानों के सत्कार आदि उत्तम काम (च) और (तन्वम्) शरीर (च) और (प्रजाम्) सन्तान आदि को (च) भी (सीषधाति) सिद्ध करे वैसे हम लोग सिद्ध करें ।।४६।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य सूर्य के तुल्य नियम से वर्त्ताव रखके शरीर को नीरोग और आत्मा को विद्वान् बना तथा पूर्ण ब्रह्मचर्य कर स्वयंवरविधि से हृदय को प्यारी स्त्री को स्वीकार कर उस में सन्तानों को उत्पन्न कर और अच्छी शिक्षा देके विद्वान् करते हैं वे धनपति होते हैं ।।४६।।

अग्ने त्वमित्यस्य गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

फिर कौन सत्कार करने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

अग्ने त्वन्नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ।
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳरयिन्दाः ।।४७।।

पदार्थः—हे (अग्ने) वेदवेत्ता पढ़ाने और उपदेश करने हारे विद्वान् ! आप (अग्निः) अग्नि के समान (नः) हम लोगों के (अन्तमः) समीपस्थ (त्राता) रक्षा करने वाले (शिवः) कल्याणकारी (उत) और (वरूथ्यः) घरों में उत्तम (वसुश्रवाः) जिन के श्रवण में बहुत धन और (वसुः) विद्याओं में वसाने हारे हों ऐसे (भव) हूजिये जो (द्युमत्तमम्) अतीव प्रकाशवान् (रयिम्) धन हम लोगों के लिये (अच्छ, दाः) भली-भांति देओ तथा हम को (नक्षि) प्राप्त होते हो सो (त्वम्) आप हम लोगों से सत्कार पाने योग्य हो ।।४७।।

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सब के उपकारी वेदादि शास्त्रों के ज्ञाता अध्यापक उपदेशक विद्वानों का सदैव सत्कार करें और वे सत्कार को प्राप्त हुए विद्वान् लोग भी सब के लिये उत्तम उपदेशादि अच्छे गुणों और धनादि पदार्थों को सदा देवें जिससे परस्पर प्रीति और उपकार से बड़े बड़े सुखों का लाभ होवे ।।४७।।

तन्त्वेत्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वान् देवता । भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।।

फिर मनुष्यों को इस जगत् में कैसे वर्त्तना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

तं त्वां शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ।
स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो अघायतः समस्मात् ॥४८॥

पदार्थः—हे (शोचिष्ठ) उत्तम गुणों से प्रकाशमान (दीदिवः) विद्यादि गुणों से शोभायुक्त विद्वन् ! जो आप (नः) हम लोगों को (बोधि) बोध कराते (तम्) उन (त्वा) आप को (सुम्नाय) सुख और (सखिभ्यः) मित्रों के लिये (नूनम्) निश्चय से हम लोग (ईमहे) याचते हैं (सः) सो आप (नः) हम लोगों के (हवम्) पुकारने को (श्रुधी) सुनिये और (समस्मात्) अधर्म के तुल्य गुण कर्म स्वभाव वाले (अघायतः) आत्मा के अपराध का आचरण करते हुए दुष्ट डाकू चोर लम्पट से हमारी (उरुष्य) रक्षा कीजिये ॥४८॥

भावार्थः—विद्यार्थी लोग पढ़ाने वालों के प्रति ऐसे कहें कि आप से जो हम लोगों ने पढ़ा है उसकी परीक्षा लीजिये और हम को दुष्ट आचरण से पृथक् रखिये जिससे हम लोग सब के साथ मित्र के समान वर्त्ताव रक्खें ॥४८॥

इस अध्याय में संसार के पदार्थों के गुणों का वर्णन, पशु आदि प्राणियों को सिखलाना, पालना, अपने अङ्गों की रक्षा, परमेश्वर की प्रार्थना, यज्ञ की प्रशंसा, बुद्धि का देना, धर्म में इच्छा, घोड़े के गुण कहना, उस की चाल आदि सिखलाना, आत्मा का ज्ञान और धन की प्राप्ति होने का विधान कहा है इससे इस अध्याय में कहे अर्थ की पिछले अध्याय में कहे हुए अर्थ के साथ एकता जाननी चाहिये ॥

अब पच्चीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

* ओ३म् *

अथ षड्विंशोऽध्याय आरभ्यते

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥१॥

अग्निरित्यस्य याज्ञवल्क्य ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । अभिकृतिश्छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

अब छब्बीसवें अध्याय का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को तत्त्वों से यथावत् उपकार लेने चाहियें इस विषय का वर्णन किया है ॥

अग्निश्च पृथिवी च सन्नते ते मे सन्नमतामदो वायुश्चान्तरिक्षं च सन्नते ते मे सन्नमतामदऽआदित्यश्च द्यौश्च सन्नते ते मे सन्नमतामदऽ आपश्च वरुणश्च सन्नते ते मे सन्नमतामदः । सप्त सꣳसदो अष्टमी भूतसाधनी । सकामाँ २॥ऽअध्वनस्कुरु संज्ञानमस्तु मेऽमुना ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो जैसे (मे) मेरे लिये (अग्निः) अग्नि (च) और (पृथिवी) भूमि (च) भी (सन्नते) अनुकूल हैं (ते) वे (अदः) इस को (सन्नमताम्) अनुकूल करें जो (मे) मेरे लिये (वायुः) पवन (च) और (अन्तरिक्षम्) आकाश (च) भी (सन्नते) अनुकूल हैं (ते) वे (अदः) इस को (सन्नमताम्) अनुकूल करें जो (मे) मेरे लिये (आदित्यः) सूर्य (च) और (द्यौः) उसका प्रकाश (च) भी (सन्नते) अनुकूल हैं (ते) वे (अदः) इस को (सन्नमताम्) अनुकूल करें जो (मे) मेरे अर्थ (आपः) जल (च) और (वरुणः) जल जिस का अवयव है वह (च) भी (सन्नते) अनुकूल हैं (ते) वे दोनों (अदः) इस को (सन्नमताम्) अनुकूल करें जो (अष्टमी) आठमी

(भूतसाधनी) प्राणियों के कार्यों को सिद्ध करने हारी वा (सप्त) सात (संस्रवः) वे सभा जिन में अच्छे प्रकार स्थिर होते (सकामान्) समान कामना वाले (अध्वनः) मार्गों को करे वैसे तुम (कुरु) करो (अमुना) इस प्रकार से (मे) मेरे लिये (संज्ञानम्) उत्तम ज्ञान (अस्तु) प्राप्त होवे वैसे ही यह सब तुम लोगों के लिये भी प्राप्त होवे ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यदि अग्नि आदि पंचतत्त्वों को यथावत् जान के कोई उन का प्रयोग करे तो वे वर्त्तमान उस अत्युत्तम सुख की प्राप्ति कराते हैं ॥१॥

यथेमामित्यस्य लौगाक्षिर्ऋषिः। ईश्वरो देवता। स्वराडत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

अब ईश्वर सब मनुष्यों के लिये वेद के पढ़ने और सुनने का अधिकार देता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्याᳬं शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय। प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमतु ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! मैं ईश्वर जैसे (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) ब्राह्मण क्षत्रिय (अर्याय) वैश्य (शूद्राय) शूद्र (च) और (स्वाय) अपने स्त्री सेवक आदि (च) और (अरणाय) और उत्तम लक्षणयुक्त प्राप्त हुए अन्त्यज के लिये (च) भी (जनेभ्यः) इन उक्त सब मनुष्यों के लिये (इह) इस संसार में (इमाम्) इस प्रगट की हुई (कल्याणीम्) सुख देने वाली (वाचम्) चारों वेदरूप वाणी का (आवदानि) उपदेश करता हूं वैसे आप लोग भी अच्छे प्रकार उपदेश करें। जैसे मैं (दातुः) दान देने वाले के संसर्गी (देवानाम्) विद्वानों की (दक्षिणायै) दक्षिणा अर्थात् दान आदि के लिये (प्रियः) मनोहर पियारा (भूयासम्) होऊं और (मे) मेरी (अयम्) यह (कामः) कामना (समृध्यताम्) उत्तमता से बढ़े तथा (मा) मुझे (अदः) वह परोक्षसुख (उप, नमतु) प्राप्त हो वैसे आप लोग भी होवें और वह कामना तथा सुख आप को भी प्राप्त होवे ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। परमात्मा सब मनुष्यों के प्रति इस उपदेश को करता है कि यह चारों वेदरूप कल्याणकारिणी वाणी सब मनुष्यों के हित के लिये मैंने उपदेश की है इस में किसी को अनधिकार नहीं है जैसे मैं पक्षपात को छोड़ के सब मनुष्यों में वर्त्तमान हुआ

पियारा हूं वैसे आप भी होओ। ऐसे करने से तुम्हारे सब काम सिद्ध होंगे ॥२॥

बृहस्पत इत्यस्य गृत्समद ऋषिः। ईश्वरो देवता। भुरिगत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह ईश्वर क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु। यद्दीदयच्छवसऽऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्। उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतये त्वैष ते योनिर्बृहस्पतये त्वा ॥३॥

पदार्थः—हे (बृहस्पते) बड़े बड़े प्रकृति आदि पदार्थों और जीवों के पालने हारे ईश्वर ! जो आप (उपयामगृहीतः) प्राप्त हुए यम नियमादि योगसाधनों से जाने गये (असि) हैं उन (त्वा) आप को (बृहस्पतये) बड़ी वेदवाणी की पालना के लिये तथा जिन (ते) आप का (एषः) यह (योनिः) प्रमाण है उन (बृहस्पतये) बड़े बड़े आप्त विद्वानों की पालना करने वाले के लिये (त्वा) आप को हम लोग स्वीकार करते हैं। हे भगवन् (ऋतप्रजात) जिन से सत्य उत्तमता से उत्पन्न हुआ वे (अर्यः) परमात्मा आप (जनेषु) मनुष्यों में (अर्हात्) योग्य काम से (यत्) जो (द्युमत्) प्रशंसित प्रकाशयुक्त मन (क्रतुमत्) वा प्रशंसित बुद्धि और कर्मयुक्त मन (अति विभाति) विशेष कर प्रकाशमान है वा (यत्) जो (शवसा) बल से (दीदयत्) प्रकाशित होता हुआ वर्त्तमान है (तत्) उस (चित्रम्) आश्चर्यरूप ज्ञान (द्रविणम्) धन और यश को (अस्मासु) हम लोगों में (धेहि) धारण स्थापन कीजिये ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिससे बड़ा दयावान् न्यायकारी और अत्यन्त सूक्ष्म कोई भी पदार्थ नहीं वा जिसने वेद प्रकट करने द्वारा सब मनुष्य सुशोभित किये वा जिसने अद्भुत ज्ञान और धन जगत् में विस्तृत किया और जो योगाभ्यास से प्राप्त होने योग्य है वही ईश्वर हम सब लोगों को अति उपासना करने योग्य है यह तुम जानो ॥३॥

इन्द्रेत्यस्य रम्याक्षी ऋषिः। इन्द्रो देवता। स्वराड्जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्र गोमन्निहा याहि पिबा सोमꣳ शतक्रतो विद्यद्भिर्ग्रावभिः सुतम्। उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा गोमत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥४॥

पदार्थः—हे (शतक्रतो) जिस की सैकड़ों प्रकार की बुद्धि और (गोमन्) प्रशंसित वाणी हैं सो ऐसे हे (इन्द्र) विद्वन् पुरुष ! आप (आ, याहि) आइये (इह) इस संसार में (विद्यद्भिः) विद्यमान (ग्रावभिः) मेघों से (सुतम्) उत्पन्न हुए (सोमम्) सोमवल्ली आदि ओषधियों के रस को (पिब) पियो जिससे आप (उपयामगृहीतः) यम नियमों से इन्द्रियों को ग्रहण किये अर्थात् इन्द्रियों को जीते हुए (असि) हो इसलिये (गोमते) प्रशस्त पृथिवी के राज्य से युक्त पुरुष के लिये और (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य के लिये (त्वा) आप को और जिन (ते) आप का (एषः) यह (योनिः) निमित्त है उस (गोमते) प्रशंसित वाणी और (इन्द्राय) प्रशंसित ऐश्वर्य से युक्त पुरुष के लिये (त्वा) आप का हम लोग सत्कार करते हैं ॥४॥

भावार्थः—जो वैद्यकशास्त्र विद्या से और सिद्ध मेघों से उत्पन्न हुई ओषधियों का सेवन और योगाभ्यास करते हैं वे सुख तथा ऐश्वर्य्ययुक्त होते हैं ॥४॥

इन्द्रेत्यस्य रम्याक्षी ऋषिः । सूर्यो देवता । भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रायांहि वृत्रहन् पिबा सोमं॑ शतक्रतो । गोम॑द्भिः ग्राव॑भिः सुतम् । उपयामगृ॑हीतोऽसीन्द्रा॑य त्वा गोम॑तऽएष ते योनिरिन्द्रा॑य त्वा गोम॑ते ॥५॥

पदार्थः—हे (शतक्रतो) बहुत बुद्धि और कर्मयुक्त (वृत्रहन्) मेघहन्ता सूर्य के समान शत्रुओं के हनने वाले (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त विद्वान् आप (गोमद्भिः) जिन में बहुत चमकती हुई किरणें विद्यमान उन पदार्थों और (ग्रावभिः)गर्जनाओं से गर्जते हुए मेघों के साथ (आ, याहि) आइये और (सुतम्) उत्पन्न हुए (सोमम्) ऐश्वर्य करने हारे रस को (पिब) पीओ जिस कारण आप (गोमते) बहुत दूध देती हुई गौओं से युक्त (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (उपयामगृहीतः) अच्छे नियमों से आत्मा को ग्रहण किये हुए (असि) हैं उन (त्वा) आप को तथा जिन (ते) आप का (एषः) यह (गोमते) प्रशंसित भूमि के राज्य से युक्त (इन्द्राय) ऐश्वर्य चाहने वाले के लिये (योनिः) घर है उन (त्वा) आप का हम लोग सत्कार करें ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्य ! जैसे मेघहन्ता सूर्य सब जगत् से रस पी के और वर्षा के सब जगत् को प्रसन्न करता है वैसे ही तू बड़ी बड़ी ओषधियों के रस को पी तथा ऐश्वर्य की उन्नति के लिये अच्छे प्रकार यत्न किया कर ॥५॥

ऋतावानमित्यस्य प्राबुराक्षिर्ऋषिः । वैश्वानरो देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं घर्ममीमहे । उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (ऋतावानम्) जो जल का सेवन करता उस (वैश्वानरम्) समस्त मनुष्यों में प्रकाशमान (ऋतस्य) जल और (ज्योतिषः) प्रकाश की (पतिम्) पालना करने हारे (घर्मम्) प्रताप को (अजस्रम्) निरन्तर (ईमहे) मांगते हैं वैसे तुम इस को मांगो जो आप (वैश्वानराय) संसार के नायक के लिये (उपयामगृहीतः) अच्छे नियमों से मन को जीते हुए (असि) हैं उन (त्वा) आपको तथा जिन (ते) आपका (एषः) यह (योनिः) घर है उन (त्वा) आप को (वैश्वानराय) समस्त संसार के हित के लिये सत्कार युक्त करते हैं वैसे तुम भी करो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो अग्नि जल आदि मूर्त्तिमान् पदार्थों को अपने तेज से छिन्न भिन्न करता और निरन्तर जल खींचता है उसको जान के मनुष्य सब ऋतुओं में सुख करने हारे घर को पूर्ण करें बनावें ॥६॥

वैश्वानरस्येत्यस्य कुत्स ऋषिः । वैश्वानरोऽग्निर्देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः । इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण । उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥७॥

पदार्थः—हम लोग जैसे (राजा) प्रकाशमान (भुवनानाम्) लोकों के बीच (अभिश्रीः) सब ओर से ऐश्वर्य की शोभा से युक्त सूर्य (कम्) सुख को (हि) ही सिद्ध करता है और (इतः) इस कारण (जातः) प्रसिद्ध हुआ (इदम्) इस (विश्वम्) विश्व को (वि, चष्टे) प्रकाशित करता है वा जैसे (सूर्येण) सूर्य के साथ (वैश्वानरः) बिजुली रूप अग्नि (यतते) यत्नवान् है वैसे हम लोग (वैश्वानरस्य) संसार के नायक परमेश्वर वा उत्तम सभापति की (सुमतौ) अति उत्तम देश काल को जानने

हारी कपट छलादि दोष रहित बुद्धि में (स्याम) होवें । हे विद्वान् ! जिससे आप (उपयामगृहीतः) सुन्दर नियमों से स्वीकृत (असि) हैं इससे (वैश्वानराय) अग्नि के लिये (त्वा) आपको तथा जिस (ते) आप का (एषः) यह (योनि) घर है उन (त्वा) आप को भी (वैश्वानराय) अग्निसाध्य कार्य साधने के लिये सत्कार करता हूं ॥७॥

भावार्थः— जैसे सूर्य के साथ चन्द्रमा रात्रि को सुशोभित करता है वैसे उत्तम राजा से प्रजा प्रकाशित होती है और विद्वान् शिल्पी जन सर्वोपयोगी कार्यों को सिद्ध करता है ॥७॥

वैश्वानर इत्यस्य कुत्स ऋषिः । वैश्वानरो देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्य किसके समान क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वैश्वानरो न ऊतयऽआ प्रयांतु परावतः । अग्निरुक्थेन वाहसा । उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥८॥

पदार्थः—जैसे (वैश्वानरः) समस्त नायक जनों में प्रकाशमान विद्वान् (परावतः) दूर से (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये (आ, प्र, यातु) अच्छे प्रकार आवे वैसे (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी मनुष्य (उक्थेन) प्रशंसा करने योग्य (वाहसा) व्यवहार के साथ प्राप्त हो । जो आप (वैश्वानराय) प्रकाशमान के लिये (उपयामगृहीतः) विद्या के विचार से युक्त (असि) हैं उन (त्वा) आप को तथा जिन (ते) आप का (एषः) यह घर (वैश्वानराय) समस्त नायकों में उत्तम के लिये (योनिः) है उन (त्वा) आप को भी हम लोग स्वीकार करें ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य दूर देश से अपने प्रकाश से दूरस्थ पदार्थों को प्रकाशित करता है वैसे ही विद्वान् जन अपने सुन्दर उपदेश से दूरस्थ जिज्ञासुओं को प्रकाशित करते हैं ॥८॥

अग्निरित्यस्य कुत्स ऋषिः । वैश्वानरो देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर किन को किस से क्या मांगना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयम् । उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा वर्चस एष ते योनिरग्नये त्वा वर्चसे ॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (पाञ्चजन्यः) पांच जनों वा प्राणों की क्रिया में उत्तम (पुरोहित.) पहिले हित करने हारा (पवमानः) पवित्र (ऋषिः) मन्त्रार्थवेत्ता और (अग्निः) अग्नि के समान विद्या से प्रकाशित है (तम्) उस (महागयम्) बड़े बड़े घर

सन्तान वा धन वाले की जैसे हम लोग (ईमहे) याचना करें वैसे आप (वर्चसे) पढ़ाने हारे और (अग्नये) विद्वान् के लिये (उपयामगृहीतः) समीप के नियमों से ग्रहण किये हुए (असि) हैं इस से (त्वा) आप को तथा जिन (ते) आप का (एषः) यह (योनिः) निमित्त (वर्चसे) विद्याप्रकाश और (अग्नये) विद्वान् के लिये है उन (त्वा) आप की हम लोग प्रार्थना करते हैं वैसे तुम भी चेष्टा करो ॥९॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि वेदवेत्ता विद्वानों से सदा विद्याप्राप्ति की प्रार्थना किया करें जिससे वे सब मनुष्य महत्त्व को प्राप्त होवें ॥९॥

महानित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अब राजा के सत्कार विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

महाँ२॥ऽइन्द्रो वज्रहस्तः षोडशी शर्म यच्छतु हन्तु पाप्मानं योऽस्मान् द्वेष्टि। उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥१०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! (वज्रहस्तः) जिस के हाथों में वज्र (षोडशी) सोलह कला युक्त (महान्) बड़ा (इन्द्रः) और परम ऐश्वर्यवान् राजा (शर्म) जिस में दुःख विनाश को प्राप्त होते हैं उस घर को (यच्छतु) देवे (यः) जो (अस्मान्) हम लोगों को (द्वेष्टि) वैरभाव से चाहता उस (पाप्मानम्) पापात्मा खोटे कर्म करने वाले को (हन्तु) मारे। जो आप (महेन्द्राय) बड़े बड़े गुणों से युक्त के लिये (उपयामगृहीतः) प्राप्त हुए नियमों से ग्रहण किये हुए (असि) हैं उन (त्वा) आप को तथा जिन (ते) आप का (एषः) यह (महेन्द्राय) उत्तम गुण वाले के लिये (योनिः) निमित्त है उन (त्वा) आप का भी हम लोग सत्कार करें॥१०॥

भावार्थः—हे प्रजाजनो! जो तुम्हारे लिये सुख देवे, दुष्टों को मारे और महान् ऐश्वर्य को बढ़ावे वह तुम लोगों को सदा सत्कार करने योग्य है ॥१०॥

तं व इत्यस्य नोधा गोतम ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः।
अभि वत्सन्न स्वसरेषु धेनवऽइन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! हम लोग (स्वसरेषु) दिनों में (धेनवः) गौएं (वत्सम्) जैसे बछड़े को (न) वैसे जिस (वस्मम्) दुःखविनाशक (ऋतीषहम्) चाल को सहने वाले (वसोः) धन और (अन्धसः) अन्न के (मन्द्रानम्) आनन्द को पाए हुए (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान् सभापति की (वः) तुम्हारे लिये (गीर्भिः) वाणियों से (अभि, नवामहे) सब ओर से स्तुति करते हैं वैसे ही (तम्) उस सभापति को आप लोग भी सदा प्रीतिभाव से स्तुति कीजिये ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे गौएं प्रतिदिन अपने अपने बछड़ों को पालती हैं वैसे ही प्रजाजनों की रक्षा करने वाला पुरुष प्रजा का नित्य रक्षा करे और प्रजा के लिये धन और अन्न आदि पदार्थों से सुखों को नित्य बढ़ाया करे ॥११॥

यद्वाहिष्ठमित्यस्य नोधा गोतम ऋषिः। अग्निर्देवता। विराड्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

फिर वह रानी क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यद्वाहिष्ठन्तदग्नये बृहदर्च विभावसो।
महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥१२॥

पदार्थः—हे (विभावसो) प्रकाशित धन वाले विद्वन् ! (अग्नये) अग्नि के लिये (यत्) जो (बृहत्) बड़ा और (वाहिष्ठम्) अत्यन्त पहुंचाने हारा है उस का (अर्च) सत्कार करो (तत्) उस का हम भी सत्कार करें (महिषीव) और रानी के समान (त्वत्) तुम से (रयिः) धन और (त्वत्) तुम से (वाजाः) अन्न आदि पदार्थ (उत्, ईरते) भी प्राप्त होते हैं उन आप का हम लोग सत्कार करें ॥१२॥

भावार्थः—जैसे रानी सुख पहुंचाती और बहुत धन देने वाली होती है वैसे ही राजा के समीप से सब लोग धन और अन्य उत्तम उत्तम वस्तुओं को पावें ॥१२॥

एहीत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। अग्निर्देवता। विराड्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः। एभिर्वर्द्धास इन्दुभिः ॥१३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) प्रकाशित बुद्धि वाले विद्वन् ! मैं (इत्था) इस हेतु से (ते) आप के लिये (इतराः) जिन को तुम ने नहीं जाना है उन (गिरः) वाणियों का (सु, ब्रवाणि) सुन्दर प्रकार से उपदेश करूं कि जिस से आप इन वाणियों को

(आ, इहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये (उ) और (एभिः) इन (इन्दुभिः) जलादि पदार्थों से (वर्द्धसे) वृद्धि को प्राप्त हूजिये ॥१३॥

भावार्थः—जिस शिक्षा से विद्यार्थी लोग विज्ञान से बढ़ें उसी शिक्षा का विद्वान् लोग उपदेश किया करें ॥१३॥

ऋतव इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। संवत्सरो देवता। भुरिग्बृहती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ऋतवस्ते यज्ञं वितन्वन्तु मासा रक्षन्तु ते हविः।
संवत्सरस्ते यज्ञं दधातु नः प्रजां च परिपातु नः ॥१४॥

पदार्थः—हे विद्वन्! (ते) आप के (यज्ञम्) सत्कार आदि व्यवहार को (ऋतवः) वसन्तादि ऋतु (वि, तन्वन्तु) विस्तृत करें (ते) आप के (हविः) होमने योग्य वस्तु की (मासाः) कार्त्तिक आदि महीने (रक्षन्तु) रक्षा करें (ते) आप के (यज्ञम्) यज्ञ को (नः) हमारा (संवत्सरः) वर्ष (दधातु) पुष्ट करे (च) और (नः) हमारी (प्रजाम्) प्रजा की (परि, पातु) सब ओर से आप रक्षा करो ॥१४॥

भावार्थः—विद्वान् मनुष्यों को योग्य है कि सब सामग्री से विद्यावर्द्धक व्यवहार को सदा बढ़ावें और न्याय से प्रजा की रक्षा किया करें ॥१४॥

उपह्वर इत्यस्य वत्स ऋषिः। विद्वान् देवता। विराड्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उपह्वरे गिरीणाꣳ सङ्गमे च नदीनाम्। धिया विप्रो अजायत ॥१५॥

पदार्थः—जो मनुष्य (गिरीणाम्) पर्वतों के (उपह्वरे) निकट (च) और (नदीनाम्) नदियों के (सङ्गमे) मेल में योगाभ्यास से ईश्वर की और विचार से विद्या की उपासना करे वह (धिया) उत्तम बुद्धि वा कर्म से युक्त (विप्रः) विचारशील बुद्धिमान् (अजायत) होता है ॥१५॥

भावार्थः—जो विद्वान् लोग पढ़ के एकान्त में विचार करते हैं वे योगियों के तुल्य उत्तम बुद्धिमान् होते हैं ॥१५॥

उच्चेत्यस्य महीयव ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उच्चा तें जातमन्धसो दिवि सद्भूम्यादंदे ।
उग्रꣳशर्म महि श्रवंः ॥१६॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! मैं (ते) आप के जिस (उच्चा) ऊंचे (अन्धसः) अन्न से (जातम्) प्रसिद्ध हुए (दिवि) प्रकाश में (सत्) वर्त्तमान (उग्रम्) उत्तम (महि) बड़े (श्रवः) प्रशंसा के योग्य (शर्म) घर को (आ, ददे) अच्छे प्रकार ग्रहण करता हूं वह (भूमि) पृथिवी के तुल्य दृढ़ हो ॥१६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि सूर्य का प्रकाश और वायु जिस में पहुंचा करे ऐसे अन्नादि से युक्त बड़े ऊंचे घरों को बना के उन में बसने से सुख भोगें ॥१६॥

स न इत्यस्य महीयव ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद्गायत्री छन्द. । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स नु इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः । वरिवोवित्परि स्रव ॥१७॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! (सः) सो (मरुद्भ्यः) मनुष्यों के लिये (नः) हमारे (इन्द्र य) परमैश्वर्य की (यज्यवे) संगति और (वरुणाय) श्रेष्ठ जन के लिये (वरिवो-वित्) सेवाकर्म को जानते हुए आप (परि, स्रव) सब ओर से प्राप्त हुआ करो ॥१७॥

भावार्थः—जिस विद्वान् ने जितना सामर्थ्य प्राप्त किया है उसको चाहिये कि उस सामर्थ्य से सब का सुख बढ़ाया करे ॥१७॥

एनेत्यस्य महीयव ऋषिः । विद्वान् देवता । स्वराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

ईश्वर की उपासना कैसी करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुंषाणाम् ।
सिषांसन्तो वनामहे ॥१८॥

पदार्थः—जो (अर्यः) ईश्वर (मानुषाणाम्) मनुष्यों की (एना) इन (विश्वानि) सब (द्युम्नानि) शोभायमान कीर्त्तियों की शिक्षा करता है उस की (सिषासन्त) सेवा करने की इच्छा करते हुए हम लोग (आ, वनामहे) सुखों को मांगते हैं ॥१८॥

भावार्थः—जिस ईश्वर ने मनुष्यों के सुख के लिये धनों, वेदों और खाने पीने योग्य वस्तुओं को उत्पन्न किया है उसी की उपासना सब मनुष्यों को सदा करनी चाहिये ॥१८॥

अनुवीरैरित्यस्य मुद्गल ऋषिः । विद्वांसो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अनु वीरैरनु पुष्यास्म गोभिरन्वश्वैरनु सर्वेण पुष्टैः ।
अनु द्विपदानु चतुष्पदा वयन्देवा नो यज्ञमृतुथा नयन्तु ॥१९॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! जैसे (वयम्) हम लोग (पुष्टैः) पुष्ट (वीरैः) प्रशस्त बल वाले वीरपुरुषों की (अनु. पुष्यास्म) पुष्टि से पुष्ट हों, बलवती (गोभिः) गौओं की पुष्टि से (अनु) पुष्ट हों, बलवान् (अश्वैः) घोड़े आदि की पुष्टि से (अनु) पुष्ट हों, (सर्वेण) सब की पुष्टि से (अनु) पुष्ट हों, (द्विपदा) दो पग वाले मनुष्य आदि प्राणियों की पुष्टि से (अनु) पुष्ट हों और (चतुष्पदा) चार पग वाले गौ आदि की (अनु) पुष्टि से पुष्ट हों वैसे (देवाः) विद्वान् लोग (नः) हमारे (यज्ञम्) धर्मयुक्त व्यवहार को (ऋतुथा) ऋतुओं से (नयन्तु) प्राप्त करें ॥१९॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि वीर पुरुषों और पशुओं को अच्छे प्रकार पुष्ट करके पश्चात् आप पुष्ट हों। और सदा वसन्तादि ऋतुओं के अनुकूल व्यवहार किया करें ॥१९॥

अग्न इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विद्वान् देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

सन्तान कैसे उत्तम हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप ।
त्वष्टारꣳ सोमपीतये ॥२०॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अध्यापक वा अध्यापिके ! तू (इह) इस गृहाश्रम में अपने तुल्य गुणवाले पतियों वा (उशतीः) कामनायुक्त (देवानाम्) विद्वानों की (पत्नीः) स्त्रियों को और (सोमपीतये) उत्तम ओषधियों के रस को पीने के लिये (त्वष्टारम्) तेजस्वी पुरुष को (उप, आ, वह) अच्छे प्रकार समीप प्राप्त कर वा करें ॥२०॥

भावार्थः—जो मनुष्य कन्याओं को अच्छी शिक्षा दे विदुषी बना और स्वयंवर से प्रिय पतियों को प्राप्त करा के प्रेम से सन्तानों को उत्पन्न करावें तो वे सन्तान अत्यन्त प्रशंसित होते हैं ॥२०॥

अभीत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विद्वान् देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

कौन विद्वान् हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिब ऋतुना ।
त्वꣳहि रत्नधा असि ॥२१॥

पदार्थः—हे (ग्नावः) प्रशस्त वाणी वाले (नेष्टः) नायक जन ! आप (ऋतुना) वसन्त आदि ऋतु के साथ (नः) हमारे (यज्ञम्) उत्तम व्यवहार की (अभि, गृणीहि) सन्मुख स्तुति कीजिये जिस कारण(त्वं, हि)तुम ही (रत्नधाः)प्रसन्नता के हेतु रमणीय वस्तु के धारणकर्त्ता(असि) हो इस से उत्तम ओषधियों के रसों को (पिब) पी ॥२१॥

भावार्थः—जो अच्छी शिक्षा को प्राप्त वाणी के संगत व्यवहार को जानने की इच्छा करें वे विद्वान् होवें ॥२१॥

द्रविणोदा इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर विद्वान् मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत ।
नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ॥२२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (द्रविणोदाः) धन वा यश का देने वाला जन (ऋतुभिः) वसन्तादि ऋतुओं के साथ (नेष्ट्रात्) विनय से रस को (पिपीषति) पिया चाहता है वैसे तुम लोग रस को (इष्यत) प्राप्त होओ (जुहोत) ग्रहण वा हवन करो (च) और (प्र, तिष्ठत) प्रतिष्ठा को प्राप्त होओ ॥२२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वान् जैसे उत्तम वैद्य सुन्दर पथ्य भोजन और उत्तम विद्या से आप रोगरहित हुए दूसरों को रोगों से पृथक् करके प्रशंसा को प्राप्त होते हैं वैसे ही तुम लोगों को भी आचरण करना अवश्य चाहिये ॥२२॥

तवायमित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विद्वान् देवता । भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तवायं सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वत्तमꣳ सुमना अस्य पाहि ।
अस्मिन्यज्ञे बर्हिष्यानिषद्या दधिष्वेमं जठरऽइन्दुमिन्द्र ॥२३॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्य की इच्छा करने वाले विद्वन् ! जो (तव) आप का (अयम्) यह (सोमः) ऐश्वर्य का योग है उस को (त्वम्) आप (आ, इहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये (सुमनाः) धर्म कार्य्यों में प्रसन्नचित्त (अर्वाङ्) सन्मुख प्राप्त हुए (अस्य) इस अपने आत्मा के (शश्वत्तमम्) अधिकतर अनादि धर्म की (पाहि) रक्षा कीजिये (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) उत्तम (यज्ञे) प्राप्त होने योग्य व्यवहार में (निषद्य) निरन्तर स्थित हो के (जठरे) जाठराग्नि में (इमम्) इस प्रत्यक्ष

(इन्दुम्) रोगनाशक ओषधियों के रस को (आ, वृषस्व) अच्छे प्रकार धारण कीजिये ॥२३॥

भावार्थः—विद्वान् लोग सब के साथ सदा सन्मुखता को प्राप्त होके प्रसन्न चित्त हुए सनातन धर्म तथा विज्ञान का उपदेश किया करें, पथ्य अन्न आदि का भोजन करें और सदा पुरुषार्थ में प्रवृत्त रहें ॥२३॥

अमेवेत्यस्य गृत्समद ऋषिः। विद्वान् देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अमेव नः सुहवा आ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन।

अथा मदस्व जुजुषाणो अन्धसस्त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः॥२४॥

पदार्थः—हे (त्वष्टः) तेजस्वि विद्वन्! (जुजुषाणः) प्रसन्नचित्त गुरु आदि की सेवा करते हुए (सुमद्गणः) सुन्दर प्रसन्न मण्डली वाले आप (देवेभिः) उत्तम गुण वाले (जनिभिः) जन्मों के साथ (अन्धसः) अन्नादि उत्तम पदार्थों की प्राप्ति में (मदस्व) आनन्दित हूजिये (अथ) इस के अनन्तर (अमेव) उत्तम घर के तुल्य औरों को आनन्दित कीजिये। हे विद्वान् लोगो! (सुहवाः) सुन्दर प्रकार बुलाने हारे तुम लोग उत्तम घर के समान (बर्हिषि) उत्तम व्यवहार में (नः) हम को (आ, गन्तन) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये। इस स्थान में (हि) निश्चित होकर (नि, सदतन) निरन्तर बैठिये और (रणिष्टन) अच्छा उपदेश कीजिये ॥२४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो आप उत्तम व्यवहार में स्थित हो के औरों को स्थित करें वे सदा आनन्दित हों। स्त्री पुरुष उत्कण्ठा पूर्वक संयोग करके जिन सन्तानों को उत्पन्न करें वे उत्तम गुण वाले होते हैं ॥२४॥

स्वादिष्ठयेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। सोमो देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया।

इन्द्राय पातवे सुतः॥२५॥

पदार्थः—हे (सोम) ऐश्वर्ययुक्त विद्वन्! आप जो (इन्द्राय) संपत्ति की (पातवे) रक्षा करने के लिये (सुतः) निकाला हुआ उत्तम रस है उस की (स्वादिष्ठया) अतिस्वादयुक्त (मदिष्ठया) अति आनन्द देने वाली (धारया) धारण करने हारी क्रिया से (पवस्व) पवित्र हूजिये ॥२५॥

भावार्थः—जो विद्वान् मनुष्य सब रोगों के नाशक आनन्द देने वाले ओषधियों के रस को पीके अपने शरीर और आत्मा को पवित्र करते हैं वे धनाढ्य होते हैं ॥२५॥

रक्षोहेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्द. । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते । द्रोणे सधस्थमासदत् ॥२६॥

पदार्थः—जो (रक्षोहा) दुष्ट प्राणियों को मारने द्दारा (विश्वचर्षणिः) सब संसार का प्रकाशक विद्वान् (अयोहते) सुवर्ण से प्राप्त हुए (द्रोणे) बीस सेर अन्न रखने के पात्र में (सधस्थम्) समान स्थिति वाले (योनिम्) घर में (अभि, आ, असदत्) अच्छे प्रकार स्थित होवे वह संपूर्ण सुख को प्राप्त होवे ॥२६॥

भावार्थः—जो अविद्या अज्ञान के नाशक विज्ञान के प्रकाशक सब ऋतुओं में सुखकारी सुवर्ण आदि से युक्त घरों में बैठ के विचार करें वे सुखी होते हैं ॥२६॥

इस अध्याय में पुरुषार्थ के फल, सब मनुष्यों को वेद पढ़ने सुनने का अधिकार, परमेश्वर, विद्वान् और सत्य का निरूपण, अग्न्यादि पदार्थ, यज्ञ, सुन्दर घरों को बनाना और उत्तम स्थान में स्थिति आदि कही है इससे इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह छब्बीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

* ओ३म् *

अथ सप्तविंशोऽध्याय आरभ्यते

—*।०*।०*।०*—

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न॒ऽ आसुव ॥

समा इत्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब सत्ताईसवें अध्याय का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र में आप्तों को कैसा आचरण करना चाहिये इस विषय को कहा है ॥

समास्त्वाऽग्न ऋतवो वर्द्धयन्तु संवत्सराऽऋषयो यानि सत्या ।
सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा आ भाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् ! (समाः) वर्ष (ऋतवः) शरद् आदि ऋतु (संवत्सराः) प्रभवादि संवत्सर (ऋषयः) मन्त्रों के अर्थ जानने वाले विद्वान् और (यानि) जो (सत्या) कर्म हैं वे (त्वा) आप को (वर्द्धयन्तु) बढ़ावें । जैसे अग्नि (दिव्येन) शुद्ध (रोचनेन) प्रकाश से (विश्वाः) सब (प्रदिशः) उत्तम गुणयुक्त (चतस्रः) चार दिशाओं को प्रकाशित करता है वैसे विद्या की (सं, दीदिहि) सुन्दर प्रकार कामना कीजिये और न्याययुक्त धर्म का (आ, भाहि) अच्छे प्रकार प्रकाश कीजिये ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । आप्तपुरुषों को चाहिये कि सब काल में सत्य विद्या और उत्तम कामों का उपदेश करके सब शरीरधारियों के आरोग्य, पुष्टि, विद्या और सुशीलता को बढ़ावें जैसे सूर्य अपने सन्मुख के पदार्थों को प्रकाशित करता है वैसे सब मनुष्यों को शिक्षा से सदैव आनन्दित किया करें ॥१॥

सं चेत्यस्याग्निर्ऋषिः । सामिधेन्यो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विद्वानों को ही उत्तम अधिकार पर नियुक्त करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सं चेध्यस्वाग्ने प्र च बोधयैनमुच्च तिष्ठ महते सौभगाय ।
मा च रिषदुपसत्ता ते अग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु माऽन्ये ॥२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी विद्वन् ! आप (सम्, इध्यस्व) अच्छे प्रकार प्रकाशित हूजिये (च) और (एनम्) इस जिज्ञासु जन को (प्रबोधय) अच्छा बोध कराइये (च) और (महते) बड़े (सौभगाय) सौभाग्य होने के लिये (उत्, तिष्ठ) उद्यत हूजिये तथा (उपसत्ता) समीप बैठने वाले आप सौभाग्य को (मा, रिषत्) मत बिगाड़िये । हे (अग्ने) तेजस्वि जन ! (ते) आप के (ब्रह्माणः) चारों वेद के जानने वाले (अन्ये) भिन्न बुद्धि वाले (च) भी (मा, सन्तु) न हो जावें (च) और (ते) आप अपने (यशसः) यश कीर्ति की उन्नति को न बिगाड़िये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वानों से भिन्न इतर जनों को उत्तम अधिकार में नहीं युक्त करते सदा उन्नति के लिये प्रयत्न करते और अन्याय से किसी को नहीं मारते, हैं वे कीर्त्ति और ऐश्वर्य से युक्त हो जाते हैं ॥२॥

त्वामित्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

जिज्ञासु लोगों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवो अग्ने संवरणे भवा नः ।
सपत्नहा नो अभिमातिजिच्च स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन् ॥३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान तेजस्वी विद्वन् ! जो (इमे) ये (ब्राह्मणाः) ब्रह्मवेत्ता जन (त्वाम्) आप को (वृणते) स्वीकार करते हैं उन के प्रति आप (संवरणे) सम्यक् स्वीकार करने में (शिवः) मङ्गलकारी (भव) हूजिये (नः) हमारे (सपत्नहा) शत्रुओं के दोषों के हननकर्त्ता हूजिये । हे (अग्ने) अग्निवत् प्रकाशमान ! (अप्रयुच्छन्) प्रमाद नहीं करते हुए (च) और (अभिमातिजित्) अभिमान को जीतने वाले आप (स्वे) अपने (गये) घर में (जागृहि) जागो अर्थात् गृहकार्य करने में निद्रा आलस्यादि को छोड़ो (नः) हम को शीघ्र चेतन करो ॥३॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् लोग ब्रह्म को स्वीकार करके आनन्द मङ्गल को प्राप्त होते और दोषों को निर्मूल नष्ट कर देते हैं वैसे जिज्ञासु लोग ब्रह्मवेत्ता विद्वानों को प्राप्त हो के आनन्द मङ्गल का आचरण करते हुए बुरे स्वभावों के मूल को नष्ट करें और आलस्य को छोड़ के विद्या की उन्नति किया करें ॥३॥

इहैवेत्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब राजधर्म विषय अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इहैवाग्नेऽ अधि धारया रयिं मा त्वा नि क्रन्पूर्वचितो निकारिणः ।
क्षत्रमग्ने सुयममस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्द्धतां तेऽअनिष्टृतः ॥४॥

पदार्थः—हे (अग्ने) बिजुली के समान वर्त्तमान विद्वन् ! आप (इह) इस संसार में (रयिम्) लक्ष्मी को (धारय) धारण कीजिये (पूर्वचितः) प्रथम प्राप्त किये विज्ञानादि से श्रेष्ठ (निकारिणः) निरन्तर कर्म करने के स्वभाव वाले जन (त्वा) आप को (मा, नि, क्रन्) नीच गति को प्राप्त न करें ! हे (अग्ने) विनय से शोभायमान सभापते ! (ते) आप का (सुयमम्) सुन्दर नियम जिस से चले वह (क्षत्रम्) धन वा राज्य (अस्तु) होवे जिससे (उपसत्ता) समीप बैठते हुए (अनिष्टृतः) हिंसा वा विघ्न को नहीं प्राप्त हो के (एव) ही आप (अधि, वर्द्धताम्) अधिकता से वृद्धि को प्राप्त हूजिये (तुभ्यम्) आप के लिये राज्य वा धन सुखदायी होवे ॥४॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप ऐसे उत्तम विनय को धारण कीजिये जिस से प्राचीन वृद्ध जन आप को बड़ा माना करें। राज्य में अच्छे नियमों को प्रवृत्त कीजिये जिससे आप और आपका राज्य विघ्न से रहित होकर सब ओर से बढ़े और प्रजाजन आप को सर्वोपरि माना करें ॥४॥

क्षत्रेणेत्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

क्षत्रेणाग्ने स्वायुः सꣳरभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधेये यतस्व ।
सजातानां मध्यमस्था एधि राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ॥५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वि विद्वन् ! आप (इह) इस जगत् में वा राज्याधिकार में (क्षत्रेण) राज्य वा धन के साथ (स्वायुः) सुन्दर युवाऽवस्था का (सम्, रभस्व) अच्छे प्रकार आरम्भ कीजिये। हे (अग्ने) विद्या और विनय से शोभायमान राजन् ! (मित्रेण) धर्मात्मा विद्वान् मित्रों के साथ (मित्रधेये) मित्रों से धारण करने योग्य व्यवहार में (यतस्व) प्रयत्न कीजिये। हे (अग्ने) न्याय का प्रकाश करने हारे सभापति ! (सजातानाम्) एक साथ उत्पन्न हुए बराबर की अवस्था वाले (राज्ञाम्) धर्मात्मा राजाधिराजों के बीच (मध्यमस्थाः) मध्यस्थ— वादिप्रतिवादि के साक्षि (एधि) हूजिये और (विहव्यः) विशेष कर स्तुति के योग्य हुए (दीदिहि) प्रकाशित हूजिये ॥५॥

भावार्थः—सभापति राजा सदा ब्रह्मचर्य से दीर्घायु, सत्य धर्म में प्रीति रखने वाले मन्त्रियों के साथ विचारकर्त्ता अन्य राजाओं के साथ

अच्छी सन्धि रखने वाला, पक्षपात को छोड़ न्यायाधीश सब शुभ लक्षणों से युक्त हुआ दुष्ट व्यसनों से पृथक् हो के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को धीरज शान्ति अप्रमाद से धीरे धीरे सिद्ध करे ॥५॥

अति निह इत्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यम स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अति निहो अति स्रिधोऽत्यचित्तिमत्यरातिमग्ने ।
विश्वा ह्यग्ने दुरिता सहस्वाथाऽस्मभ्यं सहवीरा रयिं दाः ॥६॥

पदार्थः—हे (अग्ने) तेजस्वि सभापते ! आप (अति, निहः) निश्चय करके असत्य को छोड़ने वाले होते हुए (स्रिधः) दुष्टाचारियों को (अति, सहस्व) अधिक सहन कीजिये (अचित्तिम्) अज्ञान का (अति) अतिक्रमण कर (अरातिम्) दान के निषेध को सहन कीजिये हे (अग्ने) दृढ़ विद्या वाले तेजस्वि विद्वन् ! आप (हि) ही (विश्वा) सब (दुरिता) दुष्ट आचरणों का (अति) अधिक सहन कीजिये (अथ) इस के पश्चात् (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (सहवीराम्) वीरपुरुषों से युक्त सेना और (रयिम्) धन को (दाः) दीजिये ॥६॥

भावार्थः—जो दुष्ट आचारों के त्यागी कुत्सित जनों के रोकने वाले अज्ञान तथा अदान को पृथक् करते और दुर्व्यसनों से पृथक् हुए, सुख दुःख के सहने और वीरपुरुषों की सेना से प्रीति करने वाले गुणों के अनुकूल जनों का ठीक सत्कार करते हुए न्याय से राज्य पालें वे सदा सुखी होवें ॥६॥

अनाधृष्य इत्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अनाधृष्यो जातवेदा अनिष्टृतो विराडग्ने क्षत्रभृद्दीदिहीह ।
विश्वा आशाः प्रमुञ्चन्मानुषीर्भियः शिवेभिरद्य परि पाहि नो वृधे ॥७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अच्छे प्रकार राजनीति का संग्रह करने वाले राजन् ! जो आप (अद्य) इस समय (इह) इस राजा के व्यवहार में (मानुषीः) मनुष्यसम्बन्धी (भियः) रोगशोकादि भयों को नष्ट कीजिये और (शिवेभिः) कल्याणकारी सभ्य सज्जनों के साथ (अनिष्टृतः) दुःख से पृथक् हुए (अनाधृष्यः) अन्यों से नहीं धमकाने योग्य (जातवेदाः) विद्या को प्राप्त (विराट्) विशेषकर प्रकाशमान (क्षत्रभृत्) राज्य के पोषक हैं सो आप (नः) हमारी (दीदिहि) कामना कीजिये (विश्वाः) सब (आशाः)

दिशाओं को (प्रमुञ्चन्) अच्छे प्रकार मुक्त करते हुए हमारी (वृधे) वृद्धि के लिये (परि, पाहि) सब ओर से रक्षा कीजिये ॥७॥

भावार्थः—जो राजा वा राजपुरुष प्रजाओं को सन्तुष्ट कर मंगलरूप आचरण करने और विद्याओं से युक्त न्याय में प्रसन्न रहते हुए प्रजाओं की रक्षा करें वे सब दिशाओं में प्रवृत्त कीर्त्ति वाले होवें ॥७॥

बृहस्पत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

बृहस्पते सवितर्बोधयैनꣳसꣳशितं चित्सन्तराꣳ सꣳशिशाधि ।
वर्धयैनं महते सौभगाय विश्वऽएनमनु मदन्तु देवाः ॥८॥

पदार्थः—हे (बृहस्पते) बड़े सज्जनों के रक्षक (सवितः) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त संपूर्ण विद्या के उपदेशक आप (एनम्) इस राजा को (संशितम्) तीक्ष्ण बुद्धि के स्वभाव वाला करते हुए (बोधय) चेतनतायुक्त कीजिये और (सम्, शिशाधि) सम्यक् शिक्षा कीजिये (चित्) और (सन्तराम्) अतिशय करके प्रजा को शिक्षा कीजिये (एनम्) इस राजा को (महते) बड़े (सौभगाय) उत्तम ऐश्वर्य होने के लिये (वर्धय) बढ़ाइये और (विश्वे) सब (देवाः) सुन्दर सभ्य विद्वान् (एनम्) इस राजा के (अनु, मदन्तु) अनुकूल प्रसन्न हों ॥८॥

भावार्थः—जो राजसभा का उपदेशक है वह इन राजादि को दुर्व्य-सनों से पृथक् कर और सुशीलता को प्राप्त कराके बड़े ऐश्वर्य की वृद्धि के लिए प्रवृत्त करे ॥८॥

अमुत्रेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब अध्यापक और उपदेशकों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहा है ॥

अमुत्रभूयादध यद्यमस्य बृहस्पते अभिशस्तेरमुञ्चः ।
प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्माद्देवानामग्ने भिषजा शचीभिः ॥९॥

पदार्थः—हे (बृहस्पते) बड़ों के रक्षक विद्वन् ! आप (अमुत्रभूयात्) पर-जन्म में होने वाले (अभिशस्तेः) सब प्रकार के अपराध से (अमुञ्चः) छूटिये (अध) इस के अनन्तर (यत्) जो (यमस्य) धर्मात्मा नियमकर्त्ता जन की शिक्षा में रहे उस के (मृत्युम्) मृत्यु को छुड़ाइये । हे (अग्ने) उत्तम वैद्य आप जैसे (अश्विना) अध्या-पक और उपदेशक (शचीभिः) कर्म वा बुद्धियों से (भिषजाः) रोगनिवारक पदार्थों को (प्रति, औहताम्) विशेष तर्क से सिद्ध करें वैसे (अस्मात्) इससे (देवानाम्) विद्वानों के आरोग्य को सिद्ध कीजिये ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। वे ही श्रेष्ठ अध्यापक और उपदेशक हैं जो इस लोक और परलोक में सुख होने के लिये सब को अच्छी शिक्षा करें जिससे ब्रह्मचर्यादि कर्मों का सेवन कर मनुष्य अल्पावस्था में मृत्यु और आनन्द की हानि को न प्राप्त होवें ॥९॥

उद्वयमित्यस्याग्निर्ऋषिः । सूर्यो देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब ईश्वर की उपासना का विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥१०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (वयम्) हम लोग (तमसः) अन्धकार से पृथक् वर्त्तमान (ज्योतिः) प्रकाशमान सूर्यमण्डल को (पश्यन्तः) देखते हुए (स्वः) सुख के साधक (उत्तरम्) सब लोगों को दुःख से पार उतारने वाले (देवत्रा) दिव्य पदार्थों वा विद्वानों में वर्त्तमान (उत्तमम्) अतिश्रेष्ठ (सूर्यम्) चराचर के आत्मा (देवम्) प्रकाशमान जगदीश्वर को (परि, उत्, अगन्म) सब ओर से उत्कर्षपूर्वक प्राप्त हों वैसे उस ईश्वर को तुम लोग भी प्राप्त होओ ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सूर्य के समान अविद्यारूप अन्धकार से पृथक् हुए स्वयं प्रकाशित बड़े देवता सब से उत्तम सब के अन्तर्यामी परमात्मा की ही उपासना करते हैं वे मुक्ति के सुख को भी अवश्य निर्विघ्न प्रीतिपूर्वक प्राप्त होते हैं ॥१०॥

ऊर्ध्वा इत्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचीꣳष्यग्नेः ।
द्युमत्तमा सुप्रतीकस्य सूनोः ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जिस (अस्य) इस (सुप्रतीकस्य) सुन्दर प्रतीतिकारक कर्मों से युक्त (सूनोः) प्राणियों के गर्भों को छुड़ाने हारे (अग्नेः) अग्नि की (ऊर्ध्वाः) उत्तम (समिधः) सम्यक् प्रकाश करने वाली समिधा तथा (ऊर्ध्वा) ऊपर को जाने वाले (द्युमत्तमा) अति उत्तम प्रकाशयुक्त (शुक्रा) शुद्ध (शोचींषि) तेज (भवन्ति) होते हैं उस को तुम जानो ॥११॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो यह ऊपर को उठने वाला सब के देखने का हेतु सब की रक्षा का निमित्त अग्नि है उस को जान के कार्यों को निरन्तर सिद्ध किया करो ॥११॥

तनूनपादित्यस्याऽग्निॠषिः । विश्वेदेवा देवताः । उष्णिक् छन्दः ।
ॠषभः स्वरः ॥

अब वायु किस के समान कार्यसाधक है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः ।
पथो अनक्तु मध्वा घृतेन ॥१२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (देवेषु) उत्तम गुण वाले पदार्थों में (देवः) उत्तम गुण वाला (असुरः) प्रकाशरहित वायु (विश्ववेदाः) सब को प्राप्त होने वाला (तनूनपात्) जो शरीर में नहीं गिरता (देवः) कामना करने योग्य (मध्वा) मधुर (घृतेन) जल के साथ (पथः) श्रोत्रादि के मार्गों को (अनक्तु) प्रकट करे उस को तुम जानो ॥१२॥

भावार्थः—जैसे परमेश्वर बड़ा देव सब में व्यापक और सब को सुख करनेहारा है वैसा वायु भी है क्योंकि इस वायु के विना कोई कहीं भी नहीं जा सकता ॥१२॥

मध्वेत्यस्याग्निॠषिः । यज्ञो देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः । ॠषभः स्वरः ॥

फिर कैसे मनुष्य सुखी होवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

मध्वा यज्ञं नक्षसे प्रीणानो नराशꣳसोऽअग्ने ।
सुकृद्देवः सविता विश्ववारः ॥१३॥

पदार्थः- हे (अग्ने) विद्वन् ! जो (नराशंसः) मनुष्यों की प्रशंसा करने (सुकृत्) उत्तम काम करने और (विश्ववारः) विश्व को स्वीकार करने वाले (प्रीणानः) चाहना करते हुए (सविता) ऐश्वर्य को चाहने वाले (देवः) व्यवहार में चतुर आप (मध्वा) मधुर वचन से (यज्ञम्) संगत व्यवहार को (नक्षसे) प्राप्त होते हो उन आप को हम लोग प्रसन्न करें ॥१३॥

भावार्थः जो मनुष्य यज्ञ में सुगन्धादि पदार्थों के होम से वायु जल को शुद्ध कर सब को सुखी करते हैं वे सब सुखों को प्राप्त होते हैं ॥१३॥

अच्छेत्यस्याग्निॠषिः । वह्निर्देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ॠषभः स्वरः ॥

अब अग्नि से उपकार लेना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अच्छायमेति शवसा घृतेनेडानो वह्निर्नमसा ।
अग्निꣳस्रुचो अध्वरेषु प्रयत्सु ॥१४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अयम्) यह (ईडानः) स्तुति करता हुआ (वह्निः) विद्या का पहुंचाने वाला विद्वान् जन (प्रयत्सु) प्रयत्न से सिद्ध करने योग्य (अध्वरेषु) विघ्नों से पृथक् वर्त्तमान यज्ञों में (शवसा) बल (घृतेन) जल और (नमसा) पृथिवी आदि अन्न के साथ वर्त्तमान (अग्निम्) अग्नि तथा (स्रुचः) होम के साधन स्रुवा आदि को (अच्छ, एति) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है उस का तुम लोग सत्कार करो ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो अग्नि इन्धनों और जल से युक्त यानों में प्रयुक्त किया हुआ बल से शीघ्र चलाता है उस को जान के उपकार में लाओ ॥१४॥

स यक्षदित्यस्याग्निर्ऋषिः। वायुर्देवता। स्वराडुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स य॑क्षदस्य महि॒मान॑म॒ग्नेः स ईं॑ म॒न्द्रा सु॑प्र॒यसः॑ ।
वसु॒श्चेति॑ष्ठो वसु॒धात॑मश्च ॥१५॥

पदार्थः—(सः) वह पूर्वोक्त विद्वान् मनुष्य (सुप्रयसः) प्रीतिकारक सुन्दर अन्नादि के हेतु (अस्य) इस (अग्नेः) अग्नि के (महिमानम्) बड़प्पन को (यक्षत्) सम्यक् प्राप्त हो तथा (सः) वह (वसुः) निवास का हेतु (चेतिष्ठः) अतिशय कर जानने वाला (च) और (वसुधातमः) अत्यन्त धनों को धारण करने वाला हुआ (ईम्) जल तथा (मन्द्रा) आनन्ददायक होमने योग्य पदार्थों को प्राप्त होवे ॥१५॥

भावार्थः—जो पुरुष इस प्रकार अग्नि के बड़प्पन को जाने सो अतिधनी होवे ॥१५॥

द्वारो देवीरित्यस्याऽग्निर्ऋषिः। देव्यो देवताः। निचृदुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

द्वारो॑ दे॒वीरन्व॑स्य॒ विश्वे॑ व्र॒ता द॑दन्ते अ॒ग्नेः ।
उ॒रु॒व्यच॑सो॒ धाम्ना॒ पत्य॑मानाः ॥१६॥

पदार्थः—जो (विश्वे) सब (पत्यमानाः) मालिकपन करते हुए विद्वान् (उरुव्यचसः) बहुतों में व्यापक (अस्य) इस (अग्नेः) अग्नि के (धाम्ना) स्थान से (देवीः) प्रकाशित (द्वारः) द्वारों तथा (व्रता) सत्यभाषणादि व्रतों का (अनु, ददन्ते) अनुकूल उपदेश देते हैं वे सुन्दर ऐश्वर्य वाले होते हैं ॥१६॥

भावार्थः—जो लोग अग्नि की विद्या के द्वारों को जानते हैं वे सत्य आचरण करते हुए अति आनन्दित होते हैं ॥१६॥

ते अस्येत्यस्याग्निर्ऋषिः । यज्ञा देवता । विराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ते अस्य योषणे दिव्ये न योना उषासानक्ता ।
इमं यज्ञमवतामध्वरं नः ॥१७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (ते) वे (उषासानक्ता) रात्रि और दिन (अस्य) इस पुरुष के (योनौ) घर में (दिव्ये) उत्तम रूप वाली (योषणे) दो स्त्रियों के (न) समान वर्त्तमान (नः) हमारे जिस (इमम्) इस (अध्वरम्) विनाश न करने योग्य (यज्ञम्) यज्ञ की (अवताम्) रक्षा करें उस को तुम लोग जानो ॥१७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे विदुषी स्त्री घर के कार्यों को सिद्ध करती हैं वैसे अग्नि से उत्पन्न हुए रात्रि दिन सब व्यवहार को सिद्ध करते हैं ॥१७॥

दैव्येत्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिग्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

दैव्या होतारा ऊर्ध्वमध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वामभि गृणीतम् ।
कृणुतं नः स्विष्टिम् ॥१८॥

पदार्थः—जो (दैव्या) विद्वानों में प्रसिद्ध हुए दो विद्वान् (होतारा) सुख के देने वाले (नः) हमारे (ऊर्ध्वम्) उन्नति को प्राप्त (अध्वरम्) नहीं बिगाड़ने योग्य व्यवहार की (अभि, गृणीतम्) सब ओर से प्रशंसा करें वे दोनों (नः) हमारी (स्विष्टिम्) सुन्दर यज्ञ के निमित्त (अग्नेः) अग्नि की (जिह्वाम्) ज्वाला को (कृणुतम्) सिद्ध करें ॥१८॥

भावार्थः—जो जिज्ञासु और अध्यापक लोग अग्नि की विद्या को जानें तो विश्व की उन्नति करें ॥१८॥

तिस्रो देवीरित्यस्याऽग्निर्ऋषिः । इडादयो लिङ्गोक्ता देवताः । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कैसी वाणी का सेवन करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तिस्रो देवीर्बर्हिरेदᳪं सदन्त्विडा सरस्वती भारती ।
मही गृणाना ॥१९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो (मही) बड़ी (गृणाना) स्तुति करती हुई (इडा) स्तुति करने योग्य (सरस्वती) प्रशस्त विज्ञान वाली और (भारती) सब शास्त्रों को धारण करने हारी जो (तिस्रः) तीन (देवीः) चाहने योग्य वाणी (इदम्) इस (बर्हिः) अन्तरिक्ष को (आ, सदन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त हों उन तीनों प्रकार की वाणियों को सम्यक् जानो ॥१९॥

भावार्थः—जो मनुष्य व्यवहार में चतुर सब शास्त्र की विद्याओं से युक्त सत्यादि व्यवहारों को धारण करने हारी वाणी को प्राप्त हों वे स्तुति के योग्य हुए महान् होवें ॥१९॥

तन्न इत्यस्याग्निर्ऋषिः । त्वष्टा देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

ईश्वर से क्या प्रार्थना करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु त्वष्टा सुवीर्यम् ।
रायस्पोषं विष्यतु नाभिमस्मे ॥२०॥

पदार्थः—(त्वष्टा) विद्या से प्रकाशित ईश्वर (अस्मे) हमारे (नाभिम्) मध्यप्रदेश के प्रति (तुरीपम्) शीघ्रता को प्राप्त होने वाले (अद्भुतम्) आश्चर्यरूप गुण कर्म और स्वभावों से युक्त (पुरुक्षु) बहुत पदार्थों में वसने वाले (सुवीर्यम्) सुन्दर बलयुक्त (तम्) उस प्रसिद्ध (रायः) धन की (पोषम्) पुष्टि को देवे और (नः) हम लोगों को दुःख से (वि, स्यतु) छुड़ावे ॥२०॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो शीघ्रकारी आश्चर्यरूप बहुतों में व्यापक धन वा बल है उस को तुम लोग ईश्वर की प्रार्थना से प्राप्त होके आनन्दित होओ ॥२०॥

वनस्पत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विद्वांसो देवताः । विराडुष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

जिज्ञासु कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वनस्पतेऽव सृजा रराणस्त्मना देवेषु ।
अग्निर्हव्यᳪं शमिता सूदयाति ॥२१॥

पदार्थः—हे (वनस्पते) सेवन योग्य शास्त्र के रक्षक जिज्ञासु पुरुष ! जैसे

(शमिता) यज्ञसम्बन्धी (अग्निः) अग्नि (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य होम के द्रव्यों को (सूदयाति) सूक्ष्म कर वायु में पसारता है वैसे (त्मना) अपने आत्मा से (देवेषु) दिव्य गुणों के समान विद्वानों में (रराणः) रमण करते हुए ग्रहण करने योग्य पदार्थों को (अव, सृज) उत्तम प्रकार से बनाओ ॥२१॥

भावार्थः— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे शुद्ध आकाश आदि में अग्नि शोभायमान होता है वैसे विद्वानों में स्थित जिज्ञासु पुरुष सुन्दर प्रकाशित स्वरूप वाला होता है ॥२१॥

अग्ने स्वाहेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृदुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेद इन्द्राय हव्यम्।
विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् ॥२२॥

पदार्थः— हे (जातवेदः) विद्या में प्रसिद्ध (अग्ने) विद्वन् पुरुष! आप (इन्द्राय) उक्त ऐश्वर्य के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी और (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य पदार्थ को (कृणुहि) प्रसिद्ध कीजिये (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (इदम्) इस (हविः) ग्रहण करने योग्य उत्तम वस्तु को (जुषन्ताम्) सेवन करें ॥२२॥

भावार्थः—जो मनुष्य ऐश्वर्य बढ़ाने के लिये प्रयत्न करें तो सत्य परमात्मा और विद्वानों का सेवन किया करें ॥२२॥

पीवो अन्नेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। वायुर्देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

कैसा सन्तान सुखी करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पीवोअन्ना रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्रीः।
ते वायवे समनसो वितस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥२३॥

पदार्थः— जो (समनसः) तुल्य ज्ञान वाले (रयिवृधः) धन को बढ़ाने वाले (सुमेधाः) सुन्दर बुद्धिमान् (नरः) नायक पुरुष (पीवोअन्ना) पुष्टिकारक अन्न वाले (विश्वा) सब (स्वपत्यानि) सुन्दर सन्तानों को (चक्रुः) करें (ते) वे (इत्) ही (वायवे) वायु की विद्या के लिये (वि, तस्थुः) विशेष कर स्थित हों जब (नियुताम्) निश्चित चलने हारे जनों का (अभिश्रीः) सब ओर से शोभायुक्त (श्वेतः) गमनशील वा उन्नति करनेहारा वायु सब को (सिषक्ति) सींचता है तब वह शोभायुक्त होता है ॥२३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वायु सब के जीवन का मूल है वैसे उत्तम सन्तान सब के सुख के निमित्त होते हैं ॥२३॥

राय इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। वायुर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवम्।
अध वायुं नियुतः सश्चत स्वा उत श्वेतं वसुधितिं निरेके ॥२४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! (इमे) ये (रोदसी) आकाश भूमि (राये) धन के अर्थ (यम्) जिस को (जज्ञतुः) उत्पन्न करें। (देवी) उत्तम गुण वाली (धिषणा) बुद्धि के समान वर्त्तमान स्त्री जिस (देवम्) उत्तम पति को (राये) धन के लिये (नु) शीघ्र (धाति) धारण करती है (अध) इस के अनन्तर (निरेके) निश्शङ्क स्थान में (स्वाः) अपने सम्बन्धी (नियुतः) निश्चय कर मिलाने वा पृथक् करने वाले जन (श्वेतम्) वृद्ध (उत) और (वसुधितिम्) पृथिव्यादि वसुओं के धारण के हेतु (वायुम्) वायु को (सश्चत) प्राप्त होते हैं उस को तुम लोग जानो ॥२४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! आप लोग बल आदि गुणों से युक्त सब के धारण करने वाले वायु को जान के धन और बुद्धि को बढ़ावें। जो एकान्त में स्थित हो के इस प्राण के द्वारा अपने स्वरूप और परमात्मा को जानना चाहें तो इन दोनों आत्माओं का साक्षात्कार होता है ॥२४॥

आप इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। स्वराट्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आपो ह यद्बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्।
ततो देवानाᳬसमवर्त्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२५॥

पदार्थः—(बृहतीः) महत् परिमाण वाली (जनयन्तीः) पृथिव्यादि को प्रकट करने हारी (यत्) जिस (विश्वम्) सब में प्रवेश किये हुए (गर्भम्) सब के मूल प्रधान को (दधानाः) धारण करती हुई (आपः) व्यापक जलों की सूक्ष्ममात्रा (आयन्) प्राप्त हों (ततः) उस से (अग्निम्) सूर्यादि रूप अग्नि को (देवानाम्) उत्तम पृथिव्यादि पदार्थों का सम्बन्धी (एकः) एक असहाय (असुः) प्राण (सम्, अवर्त्तत) सम्यक् प्रवृत्त करे उस (ह) ही (कस्मै) सुख के निमित्त (देवाय) उत्तम गुण युक्त

ईश्वर के लिये हम लोग (हविषा) धारण करने से (विधेम) सेवा करने वाले हों ॥२५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो स्थूल पञ्चतत्त्व दीख पड़ते हैं उनको सूक्ष्म प्रकृति के कार्य पञ्चतन्मात्र नामक से उत्पन्न हुए जानो। जिनके बीच जो एक सूत्रात्मा वायु है वह सब को धारण करता है यह जानो। जो उस वायु के द्वारा योगाभ्यास से परमात्मा को जानना चाहो तो उसको साक्षात् जान सको ॥२५॥

यश्चिदित्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

कौन मनुष्य आनन्दित होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम्।
यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२६॥

पदार्थः—(यः) जो परमेश्वर (महिना) अपने व्यापकपन के महिमा से (दक्षम्) बल को (दधानाः) धारण करती (यज्ञम्) सङ्गत संसार को (जनयन्तीः) उत्पन्न करती हुई (आपः) व्याप्तिशील सूक्ष्म जल की मात्रा हैं उन को (पर्यपश्यत्) सब ओर से देखता है (यः) जो ईश्वर (देवेषु) उत्तम गुण वाले प्रकृति आदि और जीवों में (एकः) एक (अधि, देवः) उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाला (आसीत्) है उस (चित्) ही (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सब सुखों के दाता ईश्वर की हम लोग (हविषा) आज्ञा-पालन और योगाभ्यास के धारण से (विधेम) सेवा करें ॥२६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो आप लोग सब के द्रष्टा धर्त्ता कर्त्ता अद्वितीय अधिष्ठाता परमात्मा के जानने को नित्य योगाभ्यास करते हैं वे आनन्दित होते हैं ॥२६॥

प्रयाभिरित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। वायुर्देवता। स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

विद्वान् को कैसा होना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रयाभिर्यासि दाश्वाꣳसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे।
नि नो रयिꣳ सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥२७॥

पदार्थः—हे (वायो) विद्वन् ! वायु के समान वर्त्तमान आप (प्र, याभिः) अच्छे प्रकार चाहने योग्य (नियुद्भिः) नियत गुणों से (इष्टये) अभीष्ट सुख के अर्थ (अच्छ, यासि) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हो (दुरोणे) घर में (नः) हमारे (सुभोजसम्) सुन्दर भोगने के हेतु (दाश्वांसम्) सुख के दाता (रयिम्) धन को (नि, युवस्व) निर-

न्तर मिश्रित कीजिये (वीरम्) विज्ञानादि गुणों को प्राप्त (गव्यम्) गौ के हितकारी (च) तथा (अश्व्यम्) घोड़े के लिये हितैषी (राधः) धन को (नि) निरन्तर प्राप्त कीजिये ॥२७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वायु सब जीवन आदि इष्ट कर्मों को सिद्ध करता है वैसे विद्वान् पुरुष इस संसार में वर्त्तें ॥२७॥

आ न इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। वायुर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ नो॑ नि॒युद्भिः॑ श॒तिनी॑भिरध्व॒रꣳ स॑ह॒स्रिणी॑भि॒रुप॑ याहि य॒ज्ञम्।
वायो॑ अ॒स्मिन्त्सव॑ने मादयस्व यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥२८॥

पदार्थः—हे (वायो) वायु के तुल्य बलवान् विद्वन्! जैसे वायु (नियुद्भिः) निश्चित मिली वा पृथक् जाने आने रूप (शतिनीभिः) बहुत कर्मों वाली (सहस्रिणीभिः) बहुत वेगों वाली गतियों से (अस्मिन्) इस (सवने) उत्पत्ति के आधार जगत् में (नः) हमारे (अध्वरम्) न विगाड़ने योग्य (यज्ञम्) सङ्गति के योग्य व्यवहार को (उप) निकट प्राप्त होता है वैसे आप (आयाहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये (मादयस्व) और आनन्दित कीजिये। हे विद्वानो! (यूयम्) आप लोग इस विद्या से (स्वस्तिभि.) सुखों के साथ (नः) हम लोगों की (सदा) सब काल में (पात) रक्षा कीजिये ॥२८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् लोग, जैसे वायु विविध प्रकार की चालों से सब पदार्थों को पुष्ट करते हैं वैसे ही अच्छी शिक्षा से सब को पुष्ट करें ॥२८॥

नियुत्वानित्यस्य गृत्समद ऋषिः। वायुर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः।
षड्जः स्वरः॥

अब ईश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

नि॒युत्वा॑न् वाय॒वा ग॑ह्य॒यꣳ शु॒क्रो अ॑यामि ते।
गन्ता॑सि सुन्व॒तो गृ॒हम् ॥२९॥

पदार्थः—हे (वायो) वायु के तुल्य शीघ्रगन्ता (नियुत्वान्) नियमकर्त्ता ईश्वर! आप जैसे (अयम्) यह (शुक्रः) पवित्रकर्त्ता (गन्ता) गमनशील वायु (सुन्वतः) रस खींचने वाले के (गृहम्) घर को प्राप्त होता है वैसे मुझ को (आ, गहि) अच्छे

प्रकार प्राप्त हूजिये जिस से आप ईश्वर (असि) हैं इस से (ते) आप के स्वरूप को मैं (अयामि) प्राप्त होता हूं ॥२९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वायु सब को शोधने और सर्वत्र पहुंचने वाला तथा सब को प्राण से भी प्यारा है वैसे ईश्वर भी है ॥२९॥

वायो शुक्र इत्यस्य पुरुमीढ ऋषिः। वायुर्देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर मनुष्य को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वायो॑ शु॒क्रोऽअ॑यामि ते॒ मध्वो॒ऽअग्रं॒ दिवि॑ष्टिषु।
आ या॑हि॒ सोम॑पीतये स्पा॒र्हो दे॑व नि॒युत्व॑ता ॥३०॥

पदार्थः—हे (वायो) जो वायु के समान वर्त्तमान विद्वन्! (शुक्रः) शुद्धिकारक आप हैं (ते) आप के (मध्वः) मधुर वचन के (अग्रम्) उत्तम भाग को (दिविष्टिषु) उत्तम संगतियों में मैं (अयामि) प्राप्त होता हूं। हे (देव) उत्तम गुणयुक्त विद्वान् पुरुष! (स्पार्हः) उत्तम गुणों की अभिलाषा से युक्त के पुत्र आप (नियुत्वता) वायु के साथ (सोमपीतये) उत्तम ओषधियों का रस पीने के लिये (आ, याहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥३०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे वायु सब रस और गन्ध आदि को पीके सब को पुष्ट करता है वैसे तू भी सब को पुष्ट किया कर ॥३०॥

वायुरित्यस्याजमीढ ऋषिः। वायुर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वा॒युर॑ग्रे॒गा य॑ज्ञ॒प्रीः सा॒कं ग॒न्मन॑सा य॒ज्ञम्।
शि॒वो नि॒युद्भिः॑ शि॒वाभिः॑ ॥३१॥

पदार्थः—हे विद्वन्! जैसे (वायुः) पवन (नियुद्भिः) निश्चित (शिवाभिः) मङ्गलकारक क्रियाओं से (यज्ञम्) यज्ञ को (गन्) प्राप्त होता है वैसे (शिवः) मंगलस्वरूप (अग्रेगाः) अग्रगामी (यज्ञप्रीः) यज्ञ को पूर्ण करने हारे हुए आप (मनसा) मन की वृत्ति के (साकम्) साथ यज्ञ को प्राप्त हूजिये ॥३१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। इस मन्त्र में (आ, याहि) इस पद की अनुवृत्ति पूर्व मन्त्र से आती है। जैसे वायु अनेक पदार्थों

के साथ जाता आता है वैसे विद्वान् लोग धर्मयुक्त कर्मों को विज्ञान से प्राप्त होवें ॥३१॥

वाय इत्यस्य गृत्समद ऋषिः। वायुर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरा गहि।
नियुत्वान्त्सोमपीतये ॥३२॥

पदार्थः—हे (वायो) पवन के तुल्य वर्त्तमान विद्वन्! (ये) जो (ते) आप के (सहस्रिणः) प्रशस्त सहस्रों मनुष्यों से युक्त (रथासः) सुन्दर आराम देने वाले यान हैं (तेभिः) उन के सहित (नियुत्वान्) समर्थ हुए आप (सोमपीतये) सोम ओषधि का रस पीने के लिये (आ, गहि) आइये ॥३२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे वायु की असंख्य रमण करने योग्य गति हैं वैसे अनेक प्रकार की गतियों से समर्थ होके ऐश्वर्य को भोगो ॥३२॥

एकयेत्यस्य गृत्समद ऋषिः। वायुर्देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

एकया च दशभिश्च स्वभूते द्वाभ्यामिष्टये विꣳशती च।
तिसृभिश्च वहसे त्रिꣳशता च नियुद्भिर्वायविह ता वि मुञ्च ॥३३॥

पदार्थः—हे (स्वभूते) अपने ऐश्वर्य से शोभायमान (वायो) वायु के तुल्य अर्थात् जैसे पवन (इह) इस जगत् में सङ्गति के लिये (एकया) एक प्रकार की गति (च) और (दशभिः) दशविध गतियों (च) और (द्वाभ्याम्) विद्या और पुरुषार्थ से (इष्टये) विद्या की संगति के लिये (विंशती) दो बीसी (च) और (तिसृभिः) तीन प्रकार की गतियों से (च) और (त्रिंशता) तीस (च) और (नियुद्भिः) निश्चित नियमों के साथ यज्ञ को प्राप्त होता वैसे (वहसे) प्राप्त होते सो आप (ता) उन सब को (वि मुञ्च) विशेष कर छोड़िये अर्थात् उन का उपदेश कीजिये ॥३३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वायु इन्द्रिय प्राण और अनेक गतियों और पृथिव्यादि लोकों के साथ सब के इष्ट को सिद्ध करता है वैसे विद्वान् भी सिद्ध करें ॥३३॥

तव वाय इत्यस्याऽङ्गिरस ऋषिः। वायुर्देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब किसके तुल्य वायु का स्वीकार करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तवं वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत । अवाᳫँस्या वृणीमहे ॥३४॥

पदार्थः—हे (ऋतस्पते) सत्य के रक्षक ! (जामातः) जमाई के तुल्य वर्त्तमान (अद्भुत) आश्चर्यरूप कर्म करने वाले (वायो) बहुत बलयुक्त विद्वन् हम लोग जो (त्वष्टुः) विद्या से प्रकाशित (तव) आप के (अवांसि) रक्षा आदि कर्मों का (आ, वृणीमहे) स्वीकार करते हैं उन का आप भी स्वीकार करो ॥३४॥

भावार्थः—जैसे जमाई उत्तम आश्चर्य गुणों वाला सत्य ईश्वर का सेवक हुआ स्वीकार के योग्य होता है वैसे वायु भी स्वीकार करने योग्य है ॥३४॥

अभि त्वेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । वायुर्देवता । स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब राजधर्म विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥३५॥

पदार्थः—हे (शूर) निर्भय (इन्द्र) सभापते ! (अदुग्धा इव) विना दूध की (धेनवः) गौओं के समान हम लोग (अस्य) इस (जगतः) चर तथा (तस्थुषः) अचर संसार के (ईशानम्) नियन्ता (स्वर्दृशम्) सुखपूर्वक देखने योग्य ईश्वर के तुल्य (ईशानम्) समर्थ (त्वा) आप को (अभि, नोनुमः) सन्मुख से सत्कार वा प्रशंसा करें ॥३५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे राजन् ! जो आप पक्षपात छोड़ के ईश्वर के तुल्य न्यायाधीश होवें जो कदाचित् हम लोग कर भी न देवें तो भी हमारी रक्षा करें तो आप के अनुकूल हम सदा रहें ॥३५॥

न त्वावानित्यस्य शम्युर्बार्हस्पत्य ऋषिः । परमेश्वरो देवता । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

ईश्वर ही उपासना करने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

न त्वावाँ२ऽअन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥३६॥

पदार्थः—हे (मघवन्) पूजित उत्तम ऐश्वर्य से युक्त (इन्द्र) सब दुःखों के

विनाशक परमेश्वर ! (वाजिनः) वेगवाले (गव्यन्तः) उत्तम वाणी बोलते हुए (अश्वायन्तः) अपने को शीघ्रता चाहते हुए हम लोग (त्वा) आप की (हवामहे) स्तुति करते हैं क्योंकि जिस कारण कोई (अन्यः) अन्य पदार्थ (त्वावान्) आप के तुल्य (दिव्यः) शुद्ध (न) न कोई (पार्थिवः) पृथिवी पर प्रसिद्ध (न) न कोई (जातः) उत्पन्न हुआ और (न) न (जनिष्यते) होगा इससे आप ही हमारे उपास्य देव हैं ॥३६॥

भावार्थः—न कोई परमेश्वर के तुल्य शुद्ध हुआ, न होगा और न है। इसी से सब मनुष्यों को चाहिये कि इस को छोड़ अन्य किसी की उपासना इस के स्थान में कदापि न करें। यही कर्म इस लोक परलोक में आनन्द-दायक जानें ॥३६॥

त्वामिदित्यस्य शम्युर्बार्हस्पत्य ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर राजधर्म विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥३७॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सूर्य के तुल्य जगत् के रक्षक राजन् ! (वाजस्य) विद्या वा विज्ञान से हुए कार्य के (हि) ही (कारवः) करने वाले (नरः) नायक हम लोग (सातौ) रण में (त्वाम्) आप को जैसे (वृत्रेषु) मेघों में सूर्य को वैसे (सत्पतिम्) सत्य के प्रचार से रक्षक (त्वाम्) आप को (अर्वतः) शीघ्रगामी घोड़े के तुल्य सेना में देखें (काष्ठासु) दिशाओं में (त्वाम्) आप को (इत्) ही (हवामहे) ग्रहण करें ॥३७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे सेना और सभा के पति ! तुम दोनों सूर्य के तुल्य न्याय और अभय के प्रकाशक शिल्पियों का संग्रह करने और सत्य के प्रचार करने वाले होओ ॥३७॥

स त्वमित्यस्य शम्युर्बार्हस्पत्य ऋषिः। इन्द्रो देवता। स्वराड्बृहती छन्दः। निषादः स्वरः॥

विद्वान् क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महस्तवानोऽअद्रिवः।
गामश्वꣳ रथ्यमिन्द्र संकिर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥३८॥

पदार्थः—हे (चित्र) आश्चर्यस्वरूप (वज्रहस्त) वज्र हाथ में लिये (अद्रिवः) प्रशस्त पत्थर के बने हुए वस्तुओं वाले (इन्द्र) शत्रुनाशक विद्वन् ! (धृष्णुया) ढीठता से (महः) बहुत (स्तवानः) स्तुति करते हुए (सः) सो पूर्वोक्त (त्वम्) आप (जिग्युषे) जय करने वाले पुरुष के लिये तथा (नः) हमारे लिये (सत्रा) सत्य (वाजम्) विज्ञान के (न) तुल्य (गाम्) बैल तथा (रथ्यम्) रथ के योग्य (अश्वम्) घोड़े को (सं किर) सम्यक् प्राप्त कीजिये ॥३८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे मेघसम्बन्धी सूर्य वर्षा से सब को सम्बद्ध करता है वैसे विद्वान् सत्य के विज्ञान से सब के ऐश्वर्य को प्रकाशित करता है ॥३८॥

कया न इत्यस्य वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा।

कया शचिष्ठया वृता ॥३९॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष ! (चित्रः) आश्चर्य कर्म करने हारे (सदावृधः) जो सदा बढ़ता है उस के (सखा) मित्र (आ, भुवत्) हूजिये (कया) किसी (ऊती) रक्षणादि क्रिया से (नः) हमारी रक्षा कीजिये (कया) किसी (शचिष्ठया) अत्यन्त निकट सम्बन्धिनी (वृता) वर्त्तमान क्रिया से हम को युक्त कीजिये ॥३९॥

भावार्थः—जो आश्चर्य गुण कर्म स्वभाव वाला विद्वान् सब का मित्र हो और कुकर्मों की निवृत्ति करके उत्तम कर्मों से हम को युक्त करे उस का हमको सत्कार करना चाहिये ॥३९॥

कस्त्वेत्यस्य वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः।

दृढा चिदारुजे वसु ॥४०॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जो (कः) सुखदाता (सत्यः) श्रेष्ठों में उत्तम (मंहिष्ठः) अति महत्त्वयुक्त विद्वान् (त्वा) आप को (अन्धसः) अन्न से हुए (मदानाम्) आनन्दों में (मत्सत्) प्रसन्न करे (आरुजे) अतिरोग के अर्थ ओषधियों को जैसे इकट्ठा करे (चित्) वैसे (दृढा) दृढ़ (वसु) द्रव्यों का सञ्चय करे सो हम को सत्कार के योग्य होवे ॥४०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो सत्य में प्रीति [illegible]

और आनन्द देने वाला विद्वान् परोपकार के लिये रोगनिवारणार्थं ओष-धियों के तुल्य वस्तुओं का सञ्चय करे वही सत्कार के योग्य होवे ॥४०॥

अभीषुण इत्यस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । पादनिचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

कैसे जन धन को प्राप्त होते इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अभीषुणः सखीनामविता जरितॄणाम् शतं भवास्यूतये ॥४१॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जो आप (नः) हमारे (सखीनाम्) मित्रों तथा (जरितॄणाम्) स्तुति करने वाले जनों के (अविता) रक्षक (ऊतये) प्रीति आदि के अर्थ (शतम्) सैकड़ों प्रकार से (सु, भवासि) सुन्दर रीति कर के हूजिये सो आप (अभि) सब ओर से सत्कार के योग्य हों ॥४१॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपने मित्रों के रक्षक असंख्य प्रकार का सुख देने हारे अनाथों की रक्षा में प्रयत्न करते हैं वे असंख्य धन को प्राप्त होते हैं ॥४१॥

यज्ञायज्ञेत्यस्य शम्युर्ऋषिः । यज्ञो देवता । बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यज्ञायज्ञावोऽअग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
प्र प्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥४२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (अग्नये) अग्नि के लिये (च) और (गिरागिरा) वाणी वाणी से (दक्षसे) बल के अर्थ (यज्ञायज्ञा) यज्ञ यज्ञ में (वः) तुम लोगों की (प्र प्र, शंसिषम्) प्रशंसा करूं (वयम्) हम लोग (जातवेदसम्) ज्ञानी (अमृतम्) आत्म-रूप से अविनाशी (प्रियम्) प्रीति के विषय (मित्रम्) मित्र के (न) तुल्य तुम्हारी प्रशंसा करें वैसे तुम भी आचरण किया करो ॥४२॥

भावार्थः इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य उत्तम शिक्षित वाणी से यज्ञों का अनुष्ठान कर बल बढ़ा और मित्रों के समान विद्वानों का सत्कार करके समागम करते हैं वे बहुत ज्ञान वाले धनी होते हैं ॥४२॥

पाहि न इत्यस्य भार्गव ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

आप्त धर्मात्मा जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पाहि नो अग्न एकया पाह्युत द्वितीयया ।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥४३॥

पदार्थः—हे (वसो) सुन्दर वास देने हारे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी विद्वन् ! आप(एकया) उत्तम शिक्षा से (नः) हमारी (पाहि) रक्षा कीजिये (द्वितीयया) दूसरी अध्यापन क्रिया से (पाहि) रक्षा कीजिये (तिसृभिः) कर्म उपासना ज्ञान की जताने वाली तीन (गीर्भिः) वाणियों से (पाहि) रक्षा कीजिये । हे (ऊर्जाम्) बलों के (पते) रक्षक आप हमारी (चतसृभिः) धर्म अर्थ काम और मोक्ष इनका विज्ञान कराने वाली चार प्रकार की वाणी से (उत) भी (पाहि) रक्षा कीजिये ॥४३॥

भावार्थः—सत्यवादी धर्मात्मा आप्तजन उपदेश करने और पढ़ाने से भिन्न अन्य किसी साधन को मनुष्य का कल्याणकारक नहीं जानते इससे नित्यप्रति अज्ञानियों पर कृपा कर सदा उपदेश करते और पढ़ाते हैं ॥४३॥

ऊर्जो नपातमित्यस्य शम्युर्ऋषिः । वायुर्देवता । स्वराड्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऊर्जो नपात॑ꣳ स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।
भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृधऽउत त्राता तनूनाम् ॥४४॥

पदार्थः—हे विद्यार्थिन् ! (सः) सो आप (ऊर्जः) पराक्रम को (नपातम्) न नष्ट करने हारे विद्याबोध को (हिन) बढ़ाइये जिससे (अयम्) यह प्रत्यक्ष आप (अस्मयुः) हम को चाहने और (वाजेषु) संग्रामों में (अविता) रक्षा करने वाले (भुवत्) होवें (उत) और (तनूनाम्) शरीरों के (वृधे) बढ़ने के अर्थ (त्राता) पालन करनेवाले (भुवत्) होवें । इससे आपको (हव्यदातये) देने योग्य पदार्थों के देने के लिये हम लोग (दाशेम) स्वीकार करें ॥४४॥

भावार्थः—जो पराक्रम और बल को न नष्ट करे, शरीर और आत्मा की उन्नति करता हुआ रक्षक हो उसके लिये आप्तजन विद्या देवें । जो इस से विपरीत लम्पट दुष्टाचारी निन्दक हो वह विद्याग्रहण में अधिकारी नहीं होता यह जानो ॥४४॥

संवत्सर इत्यस्य शम्युर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदभिकृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीद्वत्सरोऽसि वत्सरोऽसि ।

उषसंस्ते कल्पन्तामहोरात्रास्तें कल्पन्तामर्द्धमासास्तें कल्पन्तां मासास्तें कल्पन्तामृतवंस्ते कल्पन्ताᳪं संवत्सरस्तें कल्पताम्। प्रेत्याऽएत्यै सं चाञ्च प्र चं सारय। सुपर्णचिदंसि तया देवतयाऽङ्गिरस्वद्ध्रुवः सींद ॥४५॥

पदार्थः—हे विद्वन् वा जिज्ञासु पुरुष ! जिस से तू (संवत्सरः) संवत्सर के तुल्य नियम से वर्त्तमान (असि) है (परिवत्सरः) त्याज्य वर्ष के समान दुराचरण का त्यागी (असि) है (इदावत्सरः) निश्चय से अच्छे प्रकार वर्त्तमान वर्ष के तुल्य (असि) है (इद्वत्सरः) निश्चित संवत्सर के सदृश (असि) है (वत्सरः) वर्ष के समान (असि) है इस से (ते) तेरे लिये (उषसः) कल्याणकारिणी उषा प्रभात वेला (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (ते) तेरे लिये (अहोरात्राः) दिन रातें मंगलदायक (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (ते) तेरे अर्थ (अर्द्धमासाः) शुक्ल कृष्ण पक्ष (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (ते) तेरे लिये (मासाः) चैत्र आदि महीने (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (ते) तेरे लिये (ऋतवः) वसन्तादि ऋतु (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (ते) तेरे अर्थ (संवत्सरः) वर्ष (कल्पताम्) समर्थ हों। (च) और तू (प्रेत्यै) उत्तम प्राप्ति के लिये (सम्, अंच) सम्यक् प्राप्त हो (च) और तू (एत्यै) अच्छे प्रकार जाने के लिये (प्र, सारय) अपने प्रभाव का विस्तार कर जिस कारण तू (सुपर्णचित्) सुन्दर रक्षा के साधनों का संचयकर्त्ता (असि) है इस से (तया) उस (देवतया) उत्तम गुणयुक्त समय रूप देवता के साथ (अङ्गिरस्वत्) सूत्रात्मा प्राण वायु के समान (ध्रुवः) दृढ़ निश्चल (सीद) स्थिर हो ॥४५॥

भावार्थः—जो प्राप्त मनुष्य व्यर्थ काल नहीं खोते सुन्दर नियमों से वर्त्तते हुए कर्त्तव्य कर्मों को करते, छोड़ने योग्यों को छोड़ते हैं उनके प्रभात काल, दिन रात, पक्ष, महीने, ऋतु सब सुन्दर प्रकार व्यतीत होते हैं इसलिये उत्तम गति के अर्थ प्रयत्न कर अच्छे मार्ग से चल शुभ गुणों और सुखों का विस्तार करें। सुन्दर लक्षणों वाली वाणी वा स्त्री के सहित धर्म ग्रहण और अधर्म के त्याग में दृढ़ उत्साही सदा होवें ॥४५॥

इस अध्याय में सत्य की प्रशंसा का जानना, उत्तम गुणों का स्वीकार, राज्य का बढ़ाना, अनिष्ट की निवृत्ति, जीवन को बढ़ाना, मित्र का विश्वास, सर्वत्र कीर्ति करना, ऐश्वर्य को बढ़ाना, अल्पमृत्यु का निवारण, शुद्धि करना, सुकर्म का अनुष्ठान, यज्ञ करना, बहुत धन का धारण, मालिकपन का प्रतिपादन, सुन्दर वाणी का ग्रहण, सद्गुणों की

इच्छा, अग्नि की प्रशंसा, विद्या और धन का बढ़ाना, कारण का वर्णन, धन का उपयोग, परस्पर की रक्षा, वायु के गुणों का वर्णन, आधार आधेय का कथन, ईश्वर के गुणों का वर्णन, शूरवीर के कृत्यों का कहना, प्रसन्नता करना, मित्र की रक्षा, विद्वानों का आश्रय, अपने आत्मा की रक्षा, वीर्य की रक्षा और युक्त आहार विहार कहे हैं इससे इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सत्ताईसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

---

* ओ३म् *

अथाष्टाविंशोऽध्याय आरम्भ्यते

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्नऽआसुव ॥१॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब अट्ठाईसवें अध्याय का आरम्भ है उस के पहिले मन्त्र में मनुष्यों को यज्ञ से कैसे बल बढ़ाना चाहिये इस विषय का वर्णन किया है ॥

होता यक्षत्समिधेन्द्रमिडस्पदे नाभा पृथिव्या अधि ।
दिवो वर्ष्मन्त्समिध्यतऽओजिष्ठश्चर्षणीसहां वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥१॥

पदार्थः—हे (होतः) यजमान ! तू जैसे (होता) शुभ गुणों का ग्रहणकर्त्ता जन (समिधा) ज्ञान के प्रकाश से (इडः) वाणी सम्बन्धी (पदे) प्राप्त होने योग्य व्यवहार में (पृथिव्याः) भूमि के (नाभा) मध्य और (दिवः) प्रकाश के (अधि) ऊपर (वर्ष्मन्) वर्षने हारे मेघमण्डल में (इन्द्रम्) बिजुली रूप अग्नि को (यक्षत्) सङ्गत

करे उस से (ओजिष्ठः) अतिशय कर बली हुआ (चर्षणीसहाम्) मनुष्यों के झुण्डों को सहने वाले योद्धाओं में (सम्, इध्यते) सम्यक् प्रकाशित होता है और (आज्यस्य) घृत आदि को (वेतु) प्राप्त होवे (यज) वैसे समागम किया कर ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि वेद मन्त्रों से सुगन्धित आदि द्रव्य अग्नि में छोड़ मेघमण्डल को पहुँचा और जल को शुद्ध करके सब के लिये बल बढ़ावें ॥१॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृज्जगतीछन्दः।
निषादः स्वरः॥

राजपुरुष कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता॑ यक्ष॒त्तनू॒नपा॑तमू॒तिभि॒र्जेता॑र॒मप॑राजितम्। इन्द्रं॑ दे॒वꣳ स्व॒र्विदं॑ प॒थिभि॒र्मधु॑मत्तमै॒र्नरा॒शꣳसे॑न तेज॑सा॒ वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥२॥

पदार्थः हे (होतः) ग्रहण करने वाले पुरुष! आप जैसे (होता) सुख का दाता (ऊतिभिः) रक्षाओं तथा (मधुमत्तमैः) अति मीठे जल आदि से युक्त (पथिभिः) धर्मयुक्त मार्गों से (तनूनपातम्) शरीरों के रक्षक (जेतारम्) जयशील (अपराजितम्) शत्रुओं से न जीतने योग्य (स्वर्विदम्) सुख को प्राप्त (देवम्) विद्या और विनय से सुशोभित (इन्द्रम्) परमऐश्वर्यकारक राजा का (यक्षत्) संग करे (नराशंसेन) मनुष्यों से प्रशंसा की गई (तेजसा) प्रगल्भता से (आज्यस्य) जानने योग्य विषय को (वेतु) प्राप्त हो वैसे (यज) संग कीजिये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजा लोग स्वयं राज्य के न्याय मार्ग में चलते हुए प्रजाओं की रक्षा करें वे पराजय को न प्राप्त होते हुए शत्रुओं के जीतने वाले हों ॥२॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः।
पंचमः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता॑ यक्ष॒दिडा॑भि॒रिन्द्र॑मीडि॒तमा॒जुह्वा॑न॒मम॑र्त्यम्।
दे॒वो दे॒वैः सवी॑र्यो॒ वज्र॑हस्तः पुरन्द॒रो वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥३॥

पदार्थः—हे (होतः) ग्रहीता पुरुष! आप जैसे (होता) सुखदाता जन (इडाभिः) अच्छी शिक्षित वाणियों से (अमर्त्यम्) साधारण मनुष्यों से विलक्षण (आजुह्वानम्) स्पर्द्धा करते हुए (ईडितम्) प्रशंसित (इन्द्रम्) उत्तम विद्या और ऐश्वर्य से युक्त राजपुरुष को (यक्षत्) प्राप्त होवे जैसे यह (वज्रहस्तः) हाथों में शस्त्र

अस्त्र धारण किये (पुरन्दरः) शत्रुओं के नगरों को तोड़ने वाला (सवीर्यः) बलयुक्त (देवः) विद्वान् जन (देवैः) विद्वानों के साथ (आज्यस्य) विज्ञान से रक्षा करने योग्य राज्य के अवयवों को (वेतु) प्राप्त होवे वैसे (यज) समागम कीजिये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे राजा और राजपुरुष पिता के समान प्रजाओं की पालना करें वैसे ही प्रजा इन को पिता के तुल्य सेवें जो आप्त विद्वानों की अनुमति से सब काम करें वे भ्रम को नहीं पावें ॥३॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः। रुद्रो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता॑ यक्षद् ब॒र्हिषी॒न्द्रं॑ निषद्व॒रं वृ॑ष॒भं नर्या॑पसम्।

वसु॑भी रु॒द्रैरा॑दि॒त्यैः स॒युग्भि॑र्ब॒र्हिरास॑द॒द्वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥४॥

पदार्थः—हे (होतः) उत्तम दान के दाता पुरुष ! (होता) सुख चाहने वाला पुरुष जैसे (सयुग्भिः) एक साथ योग करने वाले (वसुभिः) प्रथम कक्षा के (रुद्रैः) मध्यम कक्षा के और (आदित्यैः) उत्तम कक्षा के विद्वानों के साथ (बर्हिषि) उत्तम विद्वानों की सभा में (निषद्वरम्) जिस के निकट श्रेष्ठ जन बैठें उस (वृषभम्) सब से उत्तम बली (नर्यापसम्) मनुष्यों के उत्तम कामों का सेवन करने हारे (इन्द्रम्) नीति से शोभित राजा को (यक्षत्) प्राप्त होवे (आज्यस्य) करने योग्य न्याय की (बर्हिः) उत्तम सभा में (आ, असदत्) स्थित होवे और (वेतु) सुख को प्राप्त होवे वैसे (यज) प्राप्त हूजिये ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पृथिवी आदि लोक प्राण आदि वायु तथा काल के अवयव महीने सब साथ वर्त्तमान हैं वैसे जो राज और प्रजा के जन आपस में अनुकूल वर्त्त के सभा से प्रजा का पालन करें वे उत्तम प्रशंसा को पाते हैं ॥४॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृदतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर कैसे मनुष्य सुखी होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता॑ यक्ष॒दोजो॒ न वी॒र्य॑ꣳ सहो॒ द्वार॒ इन्द्र॑मवर्द्धयन्। सु॒प्राय॒णा अ॒स्मिन् य॒ज्ञे वि श्र॑यन्तामृ॒तावृ॒धो॒ द्वार॒ इन्द्रा॑य मी॒ढुषे॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥५॥

पदार्थः—हे (होतः) यज्ञ करने हारे जन ! जैसे जो (सुप्रायणाः) सुन्दर अवकाश वाले (द्वारः) द्वार (ओज) जल वेग के (न) समान (वीर्यम्) बल (सहः) सहन और (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (अवर्द्धयन्) बढ़ावें उन (ऋतावृधः) सत्य को बढ़ाने वाले (द्वारः) विद्या और विनय के द्वारों को (मीढुषे) स्निग्ध वीर्यवान् (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त राजा के लिये (अस्मिन्) इस (यज्ञे) संगति के योग्य संसार में विद्वान् लोग (वि, श्रयन्ताम्) विशेष सेवन करें (आज्यस्य) जानने योग्य राज्य के विषय को (व्यन्तु) प्राप्त हों और (होता) ग्रहीता जन (यक्षत्) यज्ञ करे वैसे (यज) यज्ञ कीजिये ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य इस संसार में विद्या और धर्म के द्वारों को प्रसिद्ध कर पदार्थविद्या को सम्यक् सेवन करके ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं वे अतुल सुखों को पाते हैं ॥५॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

होता यक्षदुषे इन्द्रस्य धेनू सुदुघे मातरा मही ।
सवातरौ न तेजसा वत्समिन्द्रमवर्द्धतां वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥६॥

पदार्थः—हे (होतः) सुखदाता जन ! आप जैसे (इन्द्रस्य) बिजुली की (सुदुघे) सुन्दर कामनाओं की पूरक (मातरा) माता के तुल्य वर्त्तमान (मही) बड़ी (धेनू, सवातरौ) वायु के साथ वर्त्तमान दुग्ध देने वाली दो गौ के (न) समान (उषे) प्रतापयुक्त (इन्द्रस्य) भौतिक और सूर्यरूप अग्नि के (तेजसा) तीक्ष्ण प्रताप से (इन्द्रम्) परमऐश्वर्ययुक्त (वत्सम्) बालक को (वीताम्) प्राप्त हों तथा (होता) दाता (आज्यस्य) फेंकने योग्य वस्तु का (यक्षत्) संग करे और (अवर्द्धताम्) बढ़े वैसे (यज) यज्ञ कीजिये ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो ! तुम जैसे वायु से प्रेरणा किये भौतिक और विद्युत् अग्नि सूर्यलोक के तेज को बढ़ाते हैं और जैसे दुग्धदात्री गौ के तुल्य वर्त्तमान प्रतापयुक्त दिन रात सब व्यवहारों के आरम्भ और निवृत्ति करानेहारे होते हैं वैसे यत्न किया करो ॥६॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो गोतम ऋषिः । अश्विनौ देवते । जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

होता यक्षद्दैव्या होतारा भिषजा सखाया हविषेन्द्रं भिषज्यतः ।
कवी देवौ प्रचेतसाविन्द्राय धत्त इन्द्रियं वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥७॥

पदार्थः— हे (होतः) युक्त आहार विहार के करने हारे वैद्यजन ! जैसे (होता) सुख देनेहारे आप (आज्यस्य) जानने योग्य निदान आदि विषय को (यक्षत्) संगत करते हैं (दैव्या) विद्वानों में उत्तम (होतारा) रोग को निवृत्त कर सुख के देने वाले (सखाया) परस्पर मित्र (कवी) बुद्धिमान् (प्रचेतसौ) उत्तम विज्ञान से युक्त (देवौ) वैद्यक विद्या से प्रकाशमान (भिषजा) चिकित्सा करने वाले दो वैद्य (हविषा) यथायोग्य ग्रहण करने योग्य व्यवहार से (इन्द्रम्) परमऐश्वर्य के चाहने वाले जीव की (भिषज्यतः) चिकित्सा करते (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य के लिये (इन्द्रियम्) धन को (धत्तः) धारण करते और अवस्था को (वीताम्) प्राप्त होते हैं वैसे (यज) प्राप्त हूजिये ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे श्रेष्ठ वैद्य रोगियों पर कृपाकर ओषधि आदि के उपाय से रोगों को निवृत्त कर ऐश्वर्य और आयुर्दा को बढ़ाते हैं वैसे तुम लोग सब प्राणियों में मित्रता की वृत्ति कर सब के सुख और अवस्था को बढ़ाओ ॥७॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृज्जगती छन्दः।
निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपस इडा सरस्वती भारती महीः । इन्द्रपत्नीर्हविष्मतीर्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥८॥

पदार्थः—हे (होतः) सुख चाहने वाले जन ! जैसे (होता) विद्या का देने लेने वाला अध्यापक (आज्यस्य) प्राप्त होने योग्य पढ़ने पढ़ाने रूप व्यवहार को (यक्षत्) प्राप्त होवे जैसे (त्रिधातवः) हाड़, चरबी और वीर्य इन तीन धातुओं के वर्धक (अपसः) कर्मों में चेष्टा करते हुए (त्रयः) अध्यापक, उपदेशक और वैद्य (तिस्रः) तीन (देवीः) सब विद्याओं की प्रकाशिका वाणियों के (न) समान (भेषजम्) औषध को (महीः) बड़ी पूज्य (इडा) प्रशंसा के योग्य (सरस्वती) बहुत विज्ञान वाली और (भारती) सुन्दर विद्या का धारण वा पोषण करने वाली (हविष्मतीः) विविध विज्ञानों के सहित (इन्द्रपत्नीः) जीवात्मा की स्त्रियों के तुल्य वर्त्तमान वाणी (व्यन्तु) प्राप्त हों वैसे (यज) उन को संगत कीजिये ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे प्रशंसित विज्ञानवती और उत्तम बुद्धिमती स्त्रियां अपने योग्य पतियों को प्राप्त होकर प्रसन्न होती हैं वैसे अध्यापक उपदेशक और वैद्य लोग स्तुति ज्ञान और योगधारणायुक्त तीन प्रकार की वाणियों को प्राप्त होकर आनन्दित होते हैं ॥८॥

होतेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृदतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

होता॑ यक्षत्त्वष्टा॑रमिन्द्रं॑ दे॒वं भि॒षजं॑ सु॒यजं॑ घृत॒श्रिय॑म्। पु॒रु॒रूपं॑ सु॒रेत॑सं म॒घोन॒मिन्द्रा॑य॒ त्वष्टा॒ दध॑दिन्द्रि॒याणि॒ वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥९॥

पदार्थः—हे (होतः) शुभ गुणों के दाता! जैसे (होता) पथ्य आहार विहार कर्त्ता जन (त्वष्टारम्) धातुवैषम्य से हुए दोषों को नष्ट करने वाले सुन्दर पराक्रम-युक्त (मघोनम्) परम प्रशस्त धनवान् (पुरुरूपम्) बहुरूप (घृतश्रियम्) जल से शोभायमान (सुयजम्) सुन्दर संग करने वाले (भिषजम्) वैद्य (देवम्) तेजस्वी (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् पुरुष का (यक्षत्) संग करता है और (आज्यस्य) जानने योग्य वचन के (इन्द्राय) प्रेरक जीव के लिये (इन्द्रियाणि) कान आदि इन्द्रियों वा धनों को (दधत्) धारण करता हुआ (त्वष्टा) तेजस्वी हुआ (वेतु) प्राप्त होता है वैसे तू (यज) संग कर ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! तुम लोग आप्त सत्यवादी रोगनिवारक सुन्दर ओषधि देने, धन ऐश्वर्य के बढ़ाने वाले वैद्यजन का सेवन कर शरीर आत्मा अन्तःकरण और इन्द्रियों के बल को बढ़ा के परम ऐश्वर्य को प्राप्त होओ ॥९॥

होतेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। स्वराडतिजगती छन्दः।
निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

होता॑ यक्ष॒द्वन॒स्पति॑ꣳ शमि॒तार॑ꣳ श॒तक्र॑तुं॒ धियो॒ जो॒ष्टार॑मिन्द्रि॒यम्। मध्वा॑ सम॒ञ्जन्प॒थिभिः॑ सु॒गेभिः॒ स्वदा॑ति य॒ज्ञं मधु॑ना घृ॒तेन॒ वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥१०॥

पदार्थः—हे (होतः) दान देने हारे जन ! जैसे (होता) यज्ञकर्त्ता पुरुष (वनस्पतिम्) किरणों के स्वामी सूर्य के तुल्य (शमितारम्) यजमान (शतक्रतुम्) अनेक प्रकार की बुद्धि से युक्त (धियः) बुद्धि वा कर्म को (जोष्टारम्) प्रसन्न वा सेवन करते हुए पुरुष का (यक्षत्) संग करे (मध्वा) मधुर विज्ञान से (सुगेभिः) सुखपूर्वक गमन करने के आधार (पथिभिः) मार्गों कर के (आज्यस्य) जानने योग्य संसार के (इन्द्रियम्) धन को (समञ्जन्) सम्यक् प्रकट करता हुआ (स्वदाति) स्वाद लेवे और (मधुना) मधुर (घृतेन) घी वा जल से (यज्ञम्) संगति के योग्य व्यवहार को (वेतु) प्राप्त होवे वैसे (यज) तुम भी प्राप्त होओ ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सूर्य के तुल्य विद्या बुद्धि धर्म और ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले धर्मयुक्त मार्गों से चलते हुए सुखों को भोगें वे औरों को भी सुख देनेवाले होते हैं ॥१०॥

होतेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृच्छक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता यक्षदिन्द्रꣳ स्वाहाऽऽज्यस्य स्वाहा मेदसः स्वाहा स्तोकानाꣳ स्वाहा स्वाहाकृतीनाꣳ स्वाहा हव्यसूक्तीनाम्। स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणा इन्द्र आज्यस्य व्यन्तु होतर्यज ॥११॥

पदार्थः—हे (होतः) विद्यादाता पुरुष ! जैसे (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य का दाता (होता) विद्योन्नति को ग्रहण करने हारा जन (आज्यस्य) जानने योग्य शास्त्र की (स्वाहा) सत्य वाणी को (मेदसः) चिकने धातु की (स्वाहा) यथार्थ क्रिया को (स्तोकानाम्) छोटे बालकों की (स्वाहा) उत्तम प्रिय वाणी को (स्वाहाकृतीनाम्) सत्य वाणी तथा क्रिया के अनुष्ठानों की (स्वाहा) होमक्रिया को और (हव्यसूक्तीनाम्) बहुत ग्रहण करने योग्य शास्त्रों के सुन्दर वचनों से युक्त बुद्धियों की (स्वाहा) उत्तम क्रियायुक्त (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को (यक्षत्) प्राप्त होता है जैसे (स्वाहा) सत्यवाणी करके (आज्यस्य) स्निग्ध वचन को (जुषाणाः) प्रसन्न किये हुए (आज्यपाः) घी आदि को पीने वा उस से रक्षा करने वाले (देवाः) विद्वान् लोग ऐश्वर्य को (व्यन्तु) प्राप्त हों वैसे (यज) यज्ञ कीजिये ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो पुरुष शरीर, आत्मा, सन्तान, सत्कार और विद्या वृद्धि करना चाहते हैं वे सब ओर से सुखयुक्त होते हैं ॥११॥

देवमित्यस्याश्विनावृषी। इन्द्रो देवता। निचृदतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवं बर्हिरिन्द्रꣳ सुदेवं देवैर्वीरवत्स्तीर्णं वेद्यामवर्द्धयत्। वस्तोर्वृतं प्राक्तोर्भृतꣳ राया। बर्हिष्मतोऽत्यगाद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ १२ ॥

पदार्थः- हे विद्वन्! जैसे (बर्हिष्मतः) अन्तरिक्ष के साथ सम्बन्ध रखने वाले वायु जलों को (अति, अगात्) उल्लङ्घन कर जाता (वसुधेयस्य) जिस में धनों का धारण होता है उस जगत् के (वसुवने) धनों के सेवने तथा (वेद्याम्) हवन के कुण्ड में (स्तीर्णम्) समिधा और घृतादि से रक्षा करने योग्य (वस्तोः) दिन में (वृतम्) स्वीकार किया (अक्तोः) रात्रि में (भृतम्) धारण किया हवन किया हुआ द्रव्य नीरोगता को (प्र, अवर्द्धयत्) अच्छे प्रकार बढ़ावे तथा सुख को (वेतु) प्राप्त करे वैसे (बर्हिः) अन्तरिक्ष के तुल्य (राया) धन के साथ (देवम्) उत्तम गुण वाले (देवैः) विद्वानों के साथ (वीरवत्) वीरजनों के तुल्य वर्त्तमान (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य करने वाले (सुदेवम्) सुन्दर विद्वान् का (यज) संग कीजिये ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे यजमान वेदि में समिधाओं में सुन्दर प्रकार चयन किये और घृत चढ़ाये हुए अग्नि को बढ़ा अन्तरिक्षस्थ वायु जल आदि को शुद्ध कर रोग के निवारण से सब प्राणियों को तृप्त करता है वैसे ही सज्जन जन धनादि से सब को सुखी करते हैं ॥१२॥

देवीरित्यस्याश्विनावृषी। इन्द्रो देवता। भुरिक् शक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवीर्द्वार इन्द्रꣳ सङ्घाते वीड्वीर्यामन्नवर्द्धयन्। आ वत्सेन तरुणेन कुमारेण च मीवतापार्वाणꣳ रेणुककाटं नुदन्तां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥१३॥

पदार्थः—हे विद्वन्! जैसे (वीड्वीः) विशेष कर स्तुति के योग्य (देवीः) प्रकाशमान (द्वारः) द्वार (रेणुककाटम्) धूलि से युक्त कूप अर्थात् अन्धकुआ को (यामन्) मार्ग में छोड़ के (तरुणेन) ज्वान (मीवता) शूर दुष्टहिंसा करते हुए (च) और (कुमारेण) ब्रह्मचारी (वत्सेन) बछरे के तुल्य जन के साथ वर्त्तमान (अर्वाणम्) चलते हुए घोड़े यथा (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (आ, अवर्धयन्) बढ़ाते हैं (वसुवने) धन के सेवने योग्य (सङ्घाते) सम्बन्ध में (वसुधेयस्य) धनधारक संसार के विघ्न

को (अप, नुदन्ताम्) प्रेरित करो और (व्यन्तु) प्राप्त होओ वैसे (यज) प्राप्त हूजिये ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे बटोही जन मार्ग में वर्त्तमान कूप को छोड़ शुद्ध मार्ग कर प्राणियों को सुख से पहुंचाते हैं वैसे बाल्यावस्था में विवाहादि विघ्नों को हटा विद्या प्राप्त करा के अपने सन्तानों को सुख के मार्ग में चलावें ॥१३॥

देवीत्यस्याश्विनावृषी। अहोरात्रं देवते। स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देवी उषासानक्तेन्द्रं यज्ञे प्रयत्यह्वेताम्। देवीर्विशः प्रायासिष्टाꣳ सुप्रीते सुधिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥१४॥

पदार्थः—हे विद्वन्! जैसे (सुप्रीते) सुन्दर प्रीति के हेतु (सुधिते) अच्छे हितकारी (देवी) प्रकाशमान (उषासानक्ता) रात दिन (प्रयति) प्रयत्न के निमित्त (यज्ञे) संगति के योग्य यज्ञ आदि व्यवहार में (इन्द्रम्) परमैश्वर्ययुक्त यजमान को (अह्वेताम्) शब्द व्यवहार कराते (वसुधेयस्य) जिसमें धन धारण हो उस खजाने के (वसुवने) धन विभाग में (देवीः) न्यायकारी विद्वानों की इन (विशः) प्रजाओं को (प्र, अयासिष्टाम्) प्राप्त होते हैं और सब जगत् को (वीताम्) प्राप्त हों वैसे आप (यज) यज्ञ कीजिये ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे दिन रात नियम से वर्त्तकर प्राणियों को शब्दादि व्यवहार कराते हैं वैसे तुम लोग नियम से वर्त्तकर प्रजाओं को आनन्द दे सुखी करो ॥१४॥

देवी इत्यस्याश्विनावृषी। इन्द्रो देवता। भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रमवर्धताम्। अयाव्यन्याघा द्वेषाꣳसि-स्यान्या वक्षद्वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥१५॥

पदार्थः—हे विद्वन्! जैसे (वसुधिती) द्रव्य को धारण करने वाले (जोष्ट्री) सब पदार्थों को सेवन करते हुए (देवी) प्रकाशमान दिन रात (देवम्) प्रकाशस्वरूप (इन्द्रम्) सूर्य को (अवर्द्धताम्) बढ़ाते हैं उन दिन रात के बीच (अन्या) एक (अघा) अन्धकाररूप रात्रि (द्वेषांसि) द्वेषयुक्त जन्तुओं को (आ, अयावि) अच्छे प्रकार

पृथक् करती और (अन्या) उन दोनों में से एक प्रातःकाल रूप उषा (वसु) धन तथा (वार्याणि) उत्तम जलों को (वक्षत्) प्राप्त करे (यजमानाय) पुरुषार्थी मनुष्य के लिये (वसुधेयस्य) आकाश के बीच (वसुवने) जिस में पृथिवी आदि का विभाग हो ऐसे जगत् में (शिक्षिते) जिन में मनुष्यों ने शिक्षा की ऐसे हुए दिन रात (वीताम्) व्याप्त होवें (यज) यज्ञ कीजिये ॥१५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे रात दिन विभाग को प्राप्त हुए मनुष्यादि प्राणियों के सब व्यवहार को बढ़ाते हैं। उन में से रात्रि प्राणियों को सुलाकर द्वेष आदि को निवृत्त करती और दिन उन द्वेषादि को प्राप्त और सब व्यवहारों को प्रकट करता है वैसे प्रातःकाल में योगाभ्यास से रागादि दोषों को निवृत्त और शान्ति आदि गुणों को प्राप्त होकर सुखों को प्राप्त होओ ॥१५॥

देवी इत्यस्याश्विनावृषी । इन्द्रो देवता । भुरिगाकृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवी ऊर्जाहुती दुघे सुदुघे पयसेन्द्रमवर्द्धताम् । इषमूर्जमन्या वक्षत्सग्धिꣳसपीतिमन्या नवेन पूर्वं दयमाने पुराणेन नवमधातामूर्जमूर्जाहुती ऊर्जयमाने वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥१६॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (वसुधेयस्य) ऐश्वर्य धारण करने योग्य ईश्वर के (वसुवने) धन दान के स्थान जगत् में वर्त्तमान विद्वानों ने (वार्याणि) ग्रहण करने योग्य (वसु) धन की (शिक्षिते) जिन में शिक्षा की जावे वे रात दिन (यजमानाय) संगति के लिये प्रवृत्त हुए जीव के लिये व्यवहार को (वीताम्) व्याप्त हों वैसे (ऊर्जाहुती) बल तथा प्राण को धारण करने और (देवी) उत्तम गुणों को प्राप्त करने वाले दिन रात (पयसा) जल से (दुघे) सुखों को पूर्ण और (सुदुघे) सुन्दर कामनाओं के बढ़ाने वाले होते हुए (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (अवर्धताम्) बढ़ाते हैं उन में से (अन्या) एक (इषम्) अन्न और (ऊर्जम्) बल को (वक्षत्) पहुंचाती और (अन्या) दिनरूप वेला (सपीतिम्) पीने के सहित (सग्धिम्) ठीक समान भोजन को पहुँचाती है (दयमाने) आवागमन गुण वाली अगली पिछली दो रात्रि प्रवृत्त हुई (नवेन) नये पदार्थ के साथ (पूर्वम्) प्राचीन और (पुराणेन) पुराणे के साथ (नवम्) नवीन स्वरूप वस्तु को (अधाताम्) धारण करे (ऊर्जयमाने) बल करते हुए (ऊर्जाहुती)

अवस्था घटाने से बल को लेने हारे दिन रात (ऊर्जम्) जीवन को धारण करे वैसे आप (यज) यज्ञ कीजिये ॥१६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे रात दिन अपने वर्त्तमान रूप से पूर्वापररूप को जताने तथा आहार विहार को प्राप्त करने वाले होते हैं वैसे अग्नि में होमी हुई आहुती सब सुखों को पूर्ण करने वाली होती हैं। जो मनुष्य काल की सूक्ष्म वेला को भी व्यर्थ गमायें, वायु आदि पदार्थों को शुद्ध न करें, अदृष्ट पदार्थ को अनुमान से न जानें तो सुख को भी न प्राप्त हों ॥१६॥

देवा इत्यस्याश्विनावृषी। अश्विनौ देवते। भुरिग्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देवा दैव्या होतारा देवमिन्द्रमवर्द्धताम्। हुताघशꣳसावाभार्ष्टां वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षितौ वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥१७॥

पदार्थः—हे विद्वन्! जैसे (दैव्या) उत्तम गुणों में प्रसिद्ध (होतारा) जगत् के धर्त्ता (देवा) सुख देने हारे वायु और अग्नि (देवम्) दिव्यगुणयुक्त (इन्द्रम्) सूर्य को (अवर्द्धताम्) बढ़ावें (हुताघशंसौ) चोरों को मारने के हेतु हुए रोगों को (आ, अभार्ष्टाम्) अच्छे प्रकार नष्ट करें (यजमानाय) कर्म में प्रवृत्त हुए जीव के लिये (शिक्षितौ) जताये हुए (वसुधेयस्य) सब ऐश्वर्य के आधार ईश्वर के (वसुवने) धन दान के स्थान जगत् में (वसु) धन और (वार्याणि) ग्रहण करने योग्य जलों को (वीताम्) व्याप्त होवें वैसे आप (यज) यज्ञ कीजिये ॥१७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सूर्य-लोक के निमित्त वायु और बिजुली को जान और उपयोग में लाके धनों का सञ्चय करें तो चोरों को मारने वाले होवें ॥१७॥

देवी इत्यस्याश्विनावृषी। इन्द्रो देवता। अतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीः पतिमिन्द्रमवर्धयन्। अस्पृक्षद्भारती दिवꣳ रुद्रैर्यज्ञꣳ सरस्वतीडावसुमती गृहान्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥१८॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जो (रुद्रैः) प्राणों से (भारती) धारण करने हारी (दिवम्) प्रकाश को (सरस्वती) विज्ञानयुक्त वाणी (यज्ञम्) संगति के योग्य व्यवहार को (वसुमती) बहुत द्रव्यों वाली (इडा) प्रशंसा के योग्य वाणी (गृहान्) घरों वा गृहस्थों को धारण करती हुई (देवीः, तिस्रः) (तिस्रः, देवीः) तीन दिव्य क्रिया "यहां पुनरुक्ति आवश्यकता जताने के लिये है" (पतिम्) पालन करने हारे (इन्द्रम्) सूर्य के तुल्य तेजस्वी जीव को (अवर्धयन्) बढ़ाती हैं (वसुधेयस्य) धन कोष के (वसुवने) धन दान में घरों को (व्यन्तु) प्राप्त हों उनको आप (यज) प्राप्त हूजिये और आप (अस्पृक्षत्) अभिलाषा कीजिये ॥१८॥

भावार्थः—जैसे जल अग्नि और वायु की गति उत्तम क्रियाओं और सूर्य के प्रकाश को बढ़ाती हैं वैसे जो मनुष्य सब विद्याओं को धारण करने सब क्रिया का हेतु और सब दोष गुणों को जताने वाली तीन प्रकार की वाणी को जानते हैं वे इस सब द्रव्यों के आधार संसार में लक्ष्मी को प्राप्त हो जाते हैं ॥१८॥

देव इत्यस्याश्विनावृषी । इन्द्रो देवता । कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

देव इन्द्रो नराशꣳसस्त्रिवरूथस्त्रिवन्धुरो देवमिन्द्रमवर्धयत् । शतेन शितिपृष्ठानामाहितः सहस्रेण प्रवर्त्तते मित्रावरुणेदस्य होत्रमर्हतो बृहस्पतिस्तोत्रमश्विनाऽध्वर्यवं वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥१९॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (त्रिबन्धुरः) ऋषि आदि रूप तीन बन्धनों वाला (त्रिवरूथः) तीन सुखदायक घरों का स्वामी (नराशंसः) मनुष्यों की स्तुति करने और (इन्द्रः) ऐश्वर्य को चाहने वाला (देवः) जीव (शतेन) सैकड़ों प्रकार के कर्म से (देवम्) प्रकाशमान (इन्द्रम्) विद्युत्‌रूप अग्नि को (अवर्धयत्) बढ़ावे । जो (शितिपृष्ठानाम्) जिन की पीठ पर बैठने से शीघ्र गमन होते हैं उन पशुओं के बीच (आहितः) अच्छे प्रकार स्थिर हुआ (सहस्रेण) असङ्ख्य प्रकार के पुरुषार्थ से (प्र, वर्त्तते) प्रवृत्त होता है (मित्रावरुणा) प्राण और उदान (अस्य) इस (इत्) ही (होत्रम्) भोजन की (अर्हतः) योग्यता रखने वाले जीव के सम्बन्धी (वसुधेयस्य) संसार के (बृहस्पतिः) बड़े बड़े पदार्थों का रक्षक बिजुली रूप अग्नि (स्तोत्रम्) स्तुति के साधन (अश्विना) सूर्य चन्द्रमा और (अध्वर्यवम्) अपने को यज्ञ की इच्छा करने वाले जन को (वसुवने) धन मांगने वाले के लिये (वेतु) कमनीय करे वैसे (यज) संग कीजिये ॥१९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य विविध प्रकार के सुख करने वाले तीनों अर्थात् भूत भविष्यत् वर्त्तमान काल का प्रबन्ध जिन में हो सके ऐसे घरों को बना उन में असङ्ख्य सुख पा और पथ्य भोजन करके मांगने वाले के लिये यथायोग्य पदार्थ देते हैं वे कीर्त्ति को प्राप्त होते हैं ॥१९॥

देव इत्यस्याश्विनावृषी। इन्द्रो देवता। निचृदतिशक्वरी छन्दः। पंचमः स्वरः॥

फिर विद्वान् लोग क्या करते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो मधुशाखः सुपिप्पलो देवमिन्द्रमवर्धयत्। दिवमग्रेणास्पृक्षदान्तरिक्षं पृथिवीमदृंहीद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज॥२०॥

पदार्थः—हे विद्वन्! जैसे (देवैः) दिव्य प्रकाशमान गुणों के साथ वर्त्तमान (हिरण्यपर्णः) सुवर्ण के तुल्य चिलकते हुए पत्तों वाला (मधुशाखः) मीठी डालियों से युक्त (सुपिप्पलः) सुन्दर फलों वाला (देवः) उत्तम गुणों का दाता (वनस्पतिः) सूर्य की किरणों से जल पहुंचा कर उष्णता की शान्ति से किरणों का रक्षक वनस्पति (देवम्) उत्तम गुणों वाले (इन्द्रम्) दरिद्रता के नाशक मेघ को (अवर्धयत्) बढ़ावे (अग्रेण) अग्रगामी होने से (दिवम्) प्रकाश को (अस्पृक्षत्) चाहे (अन्तरिक्षम्) अवकाश, उस में स्थित लोकों और (पृथिवीम्) भूमि को (आ, अदृंहीत्) अच्छे प्रकार धारण करे (वसुधेयस्य) संसार के (वसुवने) धनदाता जीव के लिये (वेतु) उत्पन्न होवे वैसे आप (यज) यज्ञ कीजिये ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वनस्पति ऊपर जल चढ़ाकर मेघ का बढ़ाते और सूर्य अन्य लोकों को धारण करता है वैसे विद्वान् लोग विद्या को चाहने वाले विद्यार्थी को बढ़ाते हैं ॥२०॥

देवमित्यस्याश्विनावृषी। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रमवर्धयत्। स्वासस्थमिन्द्रेणासन्नमन्या बर्हींष्यभ्यभूद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज॥२१॥

पदार्थः—हे विद्वन्! जैसे (देवम्) दिव्य (वारितीनाम्) ग्रहण करने योग्य पदार्थों के बीच वर्त्तमान (स्वासस्थम्) सुन्दर प्रकार स्थिति के आधार (इन्द्रेण) परमेश्वर के साथ (आसन्नम्) निकटवर्ती (बर्हिः) आकाश (देवम्) उत्तम गुण वाले

(इन्द्रम्) बिजुली को (अवर्धयत्) बढ़ाता है (अन्या) और (बर्हींषि) अन्तरिक्ष के अवयवों को (अभि, अभूत्) सब ओर से व्याप्त होवे (वसुधेयस्य) सब द्रव्यों के आधार जगत् के बीच (वसुवने) पदार्थविद्या को चाहने वाले जन के लिये (वेतु) प्राप्त होवे वैसे आप (यज) प्राप्त हूजिये ॥२१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वान्। मनुष्यो ! तुम लोग जैसे सब ओर से व्याप्त आकाश सब पदार्थों को व्याप्त होता और सब के समीप है वैसे ईश्वर के निकटवर्ती जीव को जान के इस ससार में मांगने वाले सुपात्र के लिये धनादि का दान देवो ॥२१॥

देव इत्यस्याश्विनावृषी । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवो अग्निः स्विष्टकृद्देवमिन्द्रमवर्धयत् । स्विष्टं कुर्वन्त्स्विष्टकृत् स्विष्टमद्य करोतु नो वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥२२॥

पदार्थः—हे विद्वन् जैसे (स्विष्टकृत्) सुन्दर प्रकार इष्ट का साधक (देव.) उत्तम गुणों वाला (अग्निः) अग्नि (इन्द्रम्, देवम्) उत्तम गुणों वाले जीव को (अवर्धयत्) बढ़ावे तथा जैसे (स्विष्टम्) सुन्दर इष्ट को (कुर्वन्) सिद्ध करता और (स्विष्टकृत्) उत्तम इष्टकारी हुआ अग्नि (स्विष्टम्) अत्यन्त चाहे हुए कार्य को करता है वैसे (अद्य) आज (नः) हमारे लिये सुख को (करोतु) कीजिये (वेतु) धन को प्राप्त हूजिये और (वसुधेयस्य) सब द्रव्यों के आधार जगत् के बीच (वसुवने) पदार्थविद्या को चाहते हुए मनुष्य के लिये (यज) दान दीजिये ॥२२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे गुण कर्म स्वभावों करके जाना गया कर्मों में नियुक्त किया अग्नि अभीष्ट कार्यों को सिद्ध करता है वैसे विद्वानों को वर्त्तना चाहिये ॥२२॥

अग्निमित्यस्याश्विनावृषी । अग्निर्देवता । कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन् पक्तीः पचन् पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय च्छागम् । सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय च्छागेन । अघत्तं मेदस्तः प्रति पचताग्रभीदवीवृधत्पुरोडाशेन त्वामद्य ऋषे ॥२३॥

पदार्थः—हे (ऋषे) मन्त्रार्थं जानने हारे विद्वन् ! जैसे (अयम्) यह (यजमानः) यज्ञ करने हारा पुरुष (अद्य) आज (इन्द्राय) ऐश्वर्य प्राप्ति के अर्थं (पक्तीः) पाकों को (पचन्) पकाता (पुरोडाशम्) होम के लिये पाक विशेष को (पचन्) पकाता और (छागम्) रोगों को नष्ट करने हारी बकरी को (बध्नन्) बांधता हुआ (होतारम्) यज्ञ करने में कुशल (अग्निम्) तेजस्वी विद्वान् को (अवृणीत) स्वीकार करे। जैसे (वनस्पतिः) किरणसमूह का रक्षक (देवः) प्रकाशयुक्त सूर्यमण्डल (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (छागेन) छेदन करने के साथ (अद्य) इस समय (अभवत्) प्रसिद्ध होवे (मेदस्तः) चिकनाई वा गीलेपन से (तम्) उस हुत पदार्थ को (अद्यत्) खाता (पचता) सब पदार्थों को पकाते हुए सूर्य से (सुपस्थाः) सुन्दर उपस्थान करने वाले हों वैसे (प्रति, अग्रभीव्) ग्रहण करता है (पुरोडाशेन) होम के लिये पकाये पदार्थ विशेष से (अवीवृधत्) अधिक वृद्धि को प्राप्त होता है वैसे (त्वाम्) आप को (अद्य) मैं बढ़ाऊं और आर भी वैसे ही वर्त्ताव कीजिये ॥२३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे रसोइये लोग साग आदि को काट कूट के अन्न और कढ़ी आदि पकाते हैं वैसे सूर्य सब पदार्थों को पकाता है जैसे सूर्य वर्षा के द्वारा सब पदार्थों को बढ़ाता है वैसे सब मनुष्यों को चाहिये कि सेवादि के द्वारा मन्त्रार्थ देखने वाले विद्वानों को बढ़ावें ॥२ ॥

होतेत्यस्य सरस्वती ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराड्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता यक्षत्समिधानं महद्यशः सुसमिद्धं वरेण्यमग्निमिन्द्रं वयोधसम्। गायत्रीं छन्द इन्द्रियं त्र्यविं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२४॥

पदार्थः—हे (होतः) विद्यादि का ग्रहण करने हारे जन ! आप जैसे (होता) दाता पुरुष (अग्निम्) अग्नि के तुल्य (समिधानम्) सम्यक् प्रकाशमान (सुसमिद्धम्) सुन्दर शोभायमान (वरेण्यम्) ग्रहण करने योग्य (महत्) बड़ा (यशः) कीर्त्ति (वयोधसम्) अभीष्ट अवस्था के धारक (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य करने वाले योग (गायत्रीम्) सत्य अर्थों का प्रकाश करने वाली गायत्री (छन्दः) स्वतन्त्रता (इन्द्रियम्) धन वा श्रोत्रादि इन्द्रियों (त्र्यविम्) तीन प्रकार से रक्षा करने वाली (गाम्) पृथिवी और (वयः) जीवन को (दधत्) धारण करता हुआ (यक्षत्) सग करे और (आज्यस्य) विज्ञान के रस को (वेतु) प्राप्त होवे वैसे आप भी (यज) समागम कीजिये ॥२४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो पुरुष सत्

विद्या आदि पदार्थों का दान करते हैं वे अतुल कीर्ति को पाकर आप सुखी होते और दूसरों को सुखी करते हैं ॥२४॥

होतेत्यस्य सरस्वती ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

होतां यक्षत्तनूनपांतमुद्भिदं यं गर्भमदिंतिर्दधे शुचिमिन्द्रं वयो-धसंम् । उष्णिहं छन्दं इन्द्रियं दिंत्यवाहं गां वयो दधद्वेत्वाज्यंस्य होतर्यजं ॥२५॥

पदार्थः—हे (होतः) ज्ञान के यज्ञ के कर्त्तः ! जैसे (होता) शुभ गुणों का ग्रहण करने वाला जन (तनूनपातम्) शरीरादि के रक्षक (उद्भिदम्) शरीर का भेदन कर निकलने वाले (गर्भम्) गर्भ को जैसे (अदितिः) माता धारण करती है वैसे (यम्) जिस को (दधे) धारण करता है (वयोधसम्) अवस्था के वर्धक (शुचिम्) पवित्र (इन्द्रम्) सूर्य्य को (यक्षत्) हवन का पदार्थ पहुंचाता है (आज्यस्य) विज्ञान सम्बन्धी (उष्णिहम्) उष्णिक् छन्द से कहे हुए (छन्दः) बलकारी (इन्द्रियम्) जीव के श्रोत्रादि चिह्नों और (दित्यवाहम्) खण्डितों को पहुंचाने वाले (गाम्) वाणी और (वयः) सुन्दर सुन्दर पक्षियों को (दधत्) धारण करता हुआ (वेतु) प्राप्त होवे वैसे इन सब को आप (यज) संगत कीजिये ॥२५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! आप लोग जैसे माता गर्भ और उत्पन्न हुए वालक की रक्षा करती है वैसे शरीर और इन्द्रियों की रक्षा करके विद्या और आयुर्दा को बढ़ाओ ॥२५॥

होतेत्यस्य सरस्वती ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृच्छक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

होतां यक्षदीडेन्यमीडितं वृत्रहन्तममिडांभिरीड्यᳬसहः सोमंमिन्द्रं वयोधसंम् । अनुष्टुभं छन्दं इन्द्रियं पञ्चाविं गां वयो दधद्वेत्वाज्यंस्य होतर्यजं ॥२६॥

पदार्थः हे (होतः) यज्ञ करने हारे जन ! जैसे (होता) शुभ गुणों का ग्रहीता पुरुष (वृत्रहन्तमम्) मेघ को अत्यन्त काटने वाले सूर्य को जैसे वैसे (इडाभिः) अच्छी शिक्षित वाणियों से (ईडेन्यम्) स्तुति करने योग्य (ईडितम्) प्रशंसित (सहः) बल (ईड्यम्) प्रशंसा के योग्य (सोमम्) सोम आदि ओषधिगण और (वयोधसम्)

मनोहर प्राणों के धारक (इन्द्रम्) जीवात्मा को (यक्षत्) संगत करे और (इन्द्रियम्) श्रोत्र आदि (अनुष्टुभम्) अनुकूल थांभने वाली (छन्दः) स्वतन्त्रता से (पञ्चाविम्) पांच प्राणों की रक्षा करने वाली (गाम्) पृथिवी और (आज्यस्य) जानने योग्य जगत् के बीच (वयः) अभीष्ट वस्तु को (दधत्) धारण करता हुआ (वेतु) प्राप्त होवे वैसे आप इन सब को (यज) संगत कीजिये ॥२६॥

भावार्थः— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य न्याय के साथ प्रशंसित गुण वाले सूर्य के तुल्य प्रशंसित हो के विज्ञान के योग्य वस्तुओं को जान के स्तुति, बल, जीवन, धन, जितेन्द्रियपन और राज्य को धारण करते हैं वे प्रशंसा के योग्य होते हैं ॥२६॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। स्वराडतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता यक्षत्सुवर्हिषं पूषण्वन्तममर्त्यꣳ सीदन्तं वर्हिषि प्रियेऽमृतेन्द्रं वयोधसम्। बृहतीं छन्दऽइन्द्रियं त्रिवत्सं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२७॥

पदार्थः—हे (होतः) दान देने वाले पुरुष! तू जैसे वह (होता) शुभ गुणों का ग्रहीता पुरुष (अमृता) नाशरहित (बर्हिषि) आकाश के तुल्य व्याप्त (प्रिये) चाहने योग्य परमेश्वर के स्वरूप में (सीदन्तम्) स्थिर हुए (अमर्त्यम्) शुद्ध स्वरूप से मृत्युरहित (पूषण्वन्तम्) बहुत पोढ़ा (सुबर्हिषम्) सुन्दर अवकाश वा जलों वाला (वयोधसम्) व्याप्ति को धारण करने हारे (इन्द्रम्) अपने जीवस्वरूप का (यक्षत्) संग करे वह (आज्यस्य) जानने योग्य विज्ञान का सम्बन्धी (बृहतीम्) बृहती (छन्दः) छन्द (इन्द्रियम्) श्रोत्र आदि इन्द्रिय (त्रिवत्सम्) कर्म, उपासना, ज्ञान जिस को पुत्रवत् हैं उस वेदसम्बन्धी (गाम्) प्राप्त होने योग्य बोध तथा (वयः) मनोहर सुख को (दधत्) धारण करता हुआ कल्याण को (वेतु) प्राप्त होवे वैसे इन को (यज) संगत करे ॥२७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य वेदपाठी ब्रह्मनिष्ठ योगी पुरुष का सेवन करते हैं वे सब अभीष्ट सुखों को प्राप्त होते हैं ॥२७॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। स्वराट् शक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता यक्षद्व्यचस्वतीः सुप्रायणा ऋतावृधो द्वारो देवीर्हिरण्ययी-

ब्रह्माणमिन्द्रं वयोधसम् । पङ्क्तिं छन्दं इहेन्द्रियं तुर्यवाहं गां वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥२८॥

पदार्थः—हे (होतः) यज्ञ करने वाले पुरुष ! तू जैसे (इह) इस संसार में (होता) ग्रहीता जन (व्यचस्वतीः) निकलने के अवकाश वाले (सुप्रायणाः) सुन्दर निकलना जिन में हो (ऋतावृधः) सत्य को बढ़ाने हारे (हिरण्ययीः) सुनहरी चित्रों वाले (देवीः) उत्तम गुणयुक्त (द्वारः) द्वारों को (वयोधसम्) कामना के योग्य विद्या तथा बोध आदि के धारण करने हारे (ब्रह्माणम्) चारों वेद के ज्ञाता (इन्द्रम्) विद्यारूप ऐश्वर्य्य वाले विद्वान् को (पङ्क्तिम्) पंक्ति (छन्दः) छन्द (इन्द्रियम्) धन (तुर्यवाहम्) चौगुणा बोझ ले चलने हारे (गाम्) बैल और (वयः) गमन को (दधत्) धारण करता हुआ (आज्यस्य) प्राप्त होने योग्य घृतादि के सम्बन्धी इन उक्त पदार्थों को (यक्षत्) संगत करें और जैसे मनुष्य को (व्यन्तु) प्राप्त होवें इन सब को (यज) प्राप्त हो ॥२८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य लोग अत्युत्तम सुन्दर द्वारों वाले सुवर्णादि पदार्थों से युक्त घरों को बना के वहां निवास और विद्या का अभ्यास करें वे रोगरहित होते हैं ॥२८॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः । अहोरात्रे देवते । निचृदतिशक्वरी छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

होता यक्षत्सुपेशसा सुशिल्पे बृहतीऽउभे नक्तोषासा न दर्शते विश्वमिन्द्रं वयोधसम् । त्रिष्टुभं छन्दऽइहेन्द्रियं पष्ठवाहं गां वयो दधद्वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥२९॥

पदार्थः—हे (होतः) यज्ञ करने हारे पुरुष ! तू जैसे (इह) इस जगत् में (बृहती) बड़े (उभे) दोनों (सुशिल्पे) सुन्दर शिल्पकार्य जिन में हों वे (दर्शते) देखने योग्य (नक्तोषासा) रात्रि दिन के (न) समान (सुपेशसा) सुन्दर रूप वाले अध्यापक उपदेशक दो विद्वान् (विश्वम्) सब (वयोधसम्) कामना के आधार (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य (त्रिष्टुभम्) त्रिष्टुप् छन्द का अर्थ (छन्दः) बल (वयः) अवस्था (इन्द्रियम्) श्रोत्रादि इन्द्रिय और (पष्ठवाहम्) पीठ पर भार लेचलने वाले (गाम्) बैल को (वीताम्) प्राप्त हों जैसे (आज्यस्य) प्राप्त होने योग्य घृतादि पदार्थ के सम्बन्धी इन को (दधत्) धारण करता हुआ (होता) ग्रहणकर्त्ता पुरुष (यक्षत्) प्राप्त होवे वैसे (यज) यज्ञ कीजिये ॥२९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो संपूर्ण ऐश्वर्य करने हारे शिल्पकार्यों को इस जगत् में सिद्ध करते हैं वे सुखी होते हैं ॥२९॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः। अश्विनौ देवते। निचृदतिशक्वरी छन्दः। पंचमः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता॑ यक्षत्प्रचे॑तसा दे॒वाना॑मु॒त्तमं॒ यशो॒ होता॑रा॒ दैव्या॑ क॒वी स॒युजेन्द्रं॒ वयो॒धसं॑म्। जग॑तीं॒ छन्द॑ऽइन्द्रि॒यम॑न॒ड्वाहं॒ गां वयो॒ दध॑द्वी॒ता॒माज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥३०॥

पदार्थः—हे (होतः) दान देनेहारे पुरुष! तू जैसे (देवानाम्) विद्वानों के सम्बन्धी (प्रचेतसा) उत्कृष्ट विज्ञान वाले (सयुजा) साथ योग रखने वाले (दैव्या) उत्तम कर्मों में साधु (होतारा) दाता (कवी) बुद्धिमान् पढ़ने पढ़ाने वा सुनने सुनाने हारे (उत्तमम्) उत्तम (यशः) कीर्त्ति (वयोधसम्) अभीष्ट सुख के धारक (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य (जगतीम्, छन्दः) जगती छन्द (वयः) विज्ञान (इन्द्रियम्) धन और (अनड्वाहम्) गाड़ी चलाने हारे (गाम्) बैल को (वीताम्) प्राप्त हों जैसे (आज्यस्य) जानने योग्य पदार्थ के बीच इन उक्त सब का (दधत्) धारण करता हुआ (होता) ग्रहणकर्त्ता जन (यक्षत्) प्राप्त होवे वैसे (यज) प्राप्त हूजिये ॥३०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यदि मनुष्य पुरुषार्थ करें तो विद्या कीर्त्ति और धन को प्राप्त हो के माननीय होवें ॥३०॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः। वाण्यो देवताः। भुरिक्शक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता॑ यक्ष॒त्पेश॑स्वतीस्ति॒स्रो दे॒वीर्हि॑र॒ण्ययी॒र्भार॑तीर्बृह॒तीर्म॒हीः पति॒मिन्द्रं॒ वयो॒धसं॑म्। वि॒राजं॒ छन्द॑ऽइ॒हेन्द्रि॒यं धे॒नुं गां न वयो॒ दध॑द्व्य॒न्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥३१॥

पदार्थः—हे (होतः) यज्ञ करनेहारे जन! जैसे (इह) इस जगत् में जो (होता) शुभ गुणों का ग्रहीता जन (तिस्रः) तीन (हिरण्ययीः) सुवर्ण के तुल्य प्रिय (पेशस्वतीः) सुन्दर रूपों वाली (भारतीः) धारण करने हारी (बृहतीः) बड़ी गम्भीर (महीः) महान् पुरुषों ने ग्रहण की (देवीः) दानशील स्त्रियों, तीन प्रकार की वाणियों

(वयोधसम्) बहुत अवस्था वाले (पतिम्) रक्षक (इन्द्रम्) राजा, (विराजम्) विविध पदार्थों के प्रकाशक (छन्दः) विराट् छन्द, (वयः) कामना के योग्य वस्तु और (इन्द्रियम्) जीवों ने सेवन किये सुख को (यक्षत्) प्राप्त होता है वह (धेनुम्) दूध देनेहारी (गाम्) गौ के (न) समान हम को (व्यन्तु) प्राप्त हो वैसे इन सब को (दधत्) धारण करता हुआ (आज्यस्य) प्राप्त होने योग्य विज्ञान के फल को (यज) प्राप्त हूजिये ॥३१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य कर्म उपासना और विज्ञान के जानने वाली वाणी को जानते हैं वे बड़ी कीर्ति को प्राप्त होते हैं। जैसे धेनु बछड़ों को तृप्त करती है वैसे विद्वान् लोग मूर्ख बालबुद्धि लोगों को तृप्त करते हैं ॥३१॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। भुरिक् छक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

होता॑ यक्षत्सु॒रेत॑सं॒ त्वष्टा॑रं पुष्टि॒वर्द्ध॑नं रू॒पाणि॒ बिभ्र॑तं पृथ॒क् पुष्टि॒मिन्द्रं॑ वयो॒धस॑म्। द्वि॒पदं॒ छन्दं॑ऽइन्द्रि॒यमु॒क्षाणं॒ गां न वयो॒ दध॒द्वेत्वाज्य॑स्य होत॒र्यज॑ ॥३२॥

पदार्थः—हे (होतः) दान देनेहारे पुरुष! जैसे (होता) शुभ गुणों का ग्रहीता पुरुष (सुरेतसम्) सुन्दर पराक्रम वाले (त्वष्टारम्) प्रकाशमान (पुष्टिवर्धनम्) जो पुष्टि से बढ़ाता उस (रूपाणि) सुन्दर रूपों को (पृथक्) अलग अलग (बिभ्रतम्) धारण करने हारे (वयोधसम्) बड़ी अवस्था वाले (पुष्टिम्) पुष्टियुक्त (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य को (द्विपदम्) दो पग वाले मनुष्यादि (छन्दः) स्वतन्त्रता (इन्द्रियम्) श्रोत्रादि इन्द्रिय (उक्षाणम्) वीर्य सींचने में समर्थ (गाम्) जवान बैल के (न) समान (वयः) अवस्था को (दधत्) धारण करता हुआ (आज्यस्य) विज्ञान के सम्बन्धी पदार्थ का (यक्षत्) होम करे तथा (वेतु) प्राप्त होवे वैसे (यज) होम कीजिये ॥३२॥

भावार्थः इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे बैल गौओं को गाभिन करके पशुओं को बढ़ाता है वैसे गृहस्थ लोग स्त्रियों को गर्भवती कर प्रजा को बढ़ावें। जो सन्तानों की चाहना करें तो शरीरादि की पुष्टि अवश्य करनी चाहिये। जैसे सूर्य रूप को जताने वाला है वैसे विद्वान् पुरुष विद्या और अच्छी शिक्षा का प्रकाश करने वाला होता है ॥३२॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। निचृदत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

होता यक्षद्वनस्पतिँ शमितारँ शतक्रतुँ हिरण्यपर्णमुक्थिनँ रशनां बिभ्रतं वशिं भगमिन्द्रं वयोधसम्। ककुभं छन्दऽइहेन्द्रियं वशां वेहतं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥३३॥

पदार्थः—हे (होतः) दान देनेहारे जन! जैसे (इह) इस संसार में (आज्यस्य) घी आदि उत्तम पदार्थ का (होता) होम करने वाला (शमितारम्) शान्तिकारक (हिरण्यपर्णम्) तेजरूप रक्षाओं वाले (वनस्पतिम्) किरणपालक सूर्य के तुल्य (शतक्रतुम्) बहुत बुद्धि वाले (उक्थिनम्) प्रशस्त कहने योग्य वचनों से युक्त (रशनाम्) अंगुलि को (बिभ्रतम्) धारण करते हुए (वशिम्) वश में करने हारे (भगम्) सेवने योग्य ऐश्वर्य (वयोधसम्) अवस्था के धारक (इन्द्रम्) जीव (ककुभम्) अर्थ के निरोधक (छन्दः) प्रसन्नताकारक (इन्द्रियम्) धन (वशाम्) वन्ध्या तथा (वेहतम्) गर्भ गिराने हारी (गाम्) गौ और (वयः) अभीष्ट वस्तु को (दधत्) धारण करता हुआ (यक्षत्) यज्ञ करे तथा (वेतु) चाहना करे वैसे (यज) यज्ञ कीजिये ॥३३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सूर्य के तुल्य विद्या धर्म और उत्तम शिक्षा के प्रकाश करनेहारे बुद्धिमान् अपने अङ्गों का धारण करते हुए विद्या और ऐश्वर्य को प्राप्त होके औरों को देते वे प्रशंसा पाते हैं ॥३३॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः। अग्निर्देवता। अतिशक्वरी छन्दः। पंचमः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता यक्षत्स्वाहाकृतीरग्निं गृहपतिं पृथग्वरुणं भेषजं कविं क्षत्रमिन्द्रं वयोधसम्। अतिछन्दसं छन्द इन्द्रियं बृहदृषभं गां वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३४॥

पदार्थः—हे (होतः) यज्ञ करनेहारे जन! तू जैसे (होता) ग्रहणकर्त्ता पुरुष (स्वाहाकृतीः) वाणी आदि से सिद्ध किया (अग्निम्) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान तेजस्वी (गृहपतिम्) घर के रक्षक (वरुणम्) श्रेष्ठ (पृथक्) अलग (भेषजम्) औषध (कविम्) बुद्धिमान् (वयोधसम्) मनोहर अवस्था को धारण करने हारे (इन्द्रम्) राजा (क्षत्रम्) राज्य (अतिछन्दसम्) अति जगती आदि छन्द से कहे हुए अर्थ (छन्दः) गायत्री आदि छन्द (बृहत्) बड़े (इन्द्रियम्) कान आदि इन्द्रिय (ऋषभम्) अति उत्तम (गाम्) बैल और (वयः) अवस्था को (दधत्) धारण करता हुआ (आज्यस्य) घी की आहुति

का (यक्षत्) होम करे और जैसे लोग इन सब को (व्यन्तु) चाहें वैसे (यज) होम यज्ञ कीजिये ।।३४।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य वेदस्थ गायत्री आदि छन्द तथा अतिजगती आदि अतिछन्दों को पढ़ के अर्थ जाननेवाले होते हैं वे सब विद्याओं को प्राप्त होजाते हैं ।।३४।।

देवमित्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

कैसे मनुष्य बढ़ते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

देवं बर्हिर्वयोधसं देवमिन्द्रमवर्धयत् । गायत्र्या छन्दसेन्द्रियं चक्षुरिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ।।३५।।

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष ! जैसे (देवम्) उत्तम गुणों वाला (बर्हिः) अन्तरिक्ष (वयोधसम्) अवस्थावर्धक (देवम्) उत्तम रूप वाले (इन्द्रम्) सूर्य को (अवर्धयत्) बढ़ाता है अर्थात् चलने का अवकाश देता है और जैसे (गायत्र्या, छन्दसा) गायत्री छन्द से (इन्द्रियम्) जीव के चिह्न (चक्षुः) नेत्र इन्द्रिय को और (वयः) जीवन को (इन्द्रे) जीव में (दधत्) धारण करता हुआ (वसुधेयस्य) द्रव्य के आधार संसार के (वसुवने) धन का विभाग करने हारे मनुष्य के लिये (वेतु) प्राप्त होवे वैसे (यज) समागम कीजिये ।।३५।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे आकाश में सूर्य का प्रकाश बढ़ता है वैसे वेदों का अभ्यास करने में बुद्धि बढ़ती है । जो इस जगत् में वेद के द्वारा सब सत्य विद्याओं को जानें वे सब ओर से बढ़ें ।।३५।।

देवीरित्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

मनुष्यों को कैसे घर बनाने चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

देवीर्द्वारो वयोधसꣳ शुचिमिन्द्रमवर्धयन् । उष्णिहा छन्दसेन्द्रियं प्राणमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ।।३६।।

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (देवीः) प्रकाशमान हुए (द्वारः) जाने आने के लिये द्वार (वयोधसम्) जीवन के आधार (शुचिम्) पवित्र (इन्द्रम्) शुद्ध वायु (इन्द्रियम्) जीवने से सेवे हुए (प्राणम्) प्राण को (इन्द्रे) जीव के निमित्त (वसुधेयस्य) धन के आधार कोष के (वसुवने) धन को मांगने वाले के लिये (अवर्धयत्) बढ़ाते हैं और (व्यन्तु) शोभायमान होवें वैसे (उष्णिहा, छन्दसा) उष्णिक् छन्द से इन

पूर्वोक्त पदार्थों और (वयः) कामना के योग्य प्रिय पदार्थों को (दधत्) धारण करते हुए (यज) हवन कीजिये ॥३६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो घर समुहे द्वार वाले जिन में सब ओर से वायु आवे ऐसे हैं उनमें निवास करने से अवस्था, पवित्रता, बल और नीरोगता बढ़ती है इसलिये बहुत द्वारों वाले बड़े बड़े घर बनाने चाहियें ॥३६॥

देवीत्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। भुरिगतिजगती छन्दः। निषाद स्वर ॥

फिर मनुष्य कैसे बढ़ें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवीऽउपासानक्ता देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्धताम्। अनुष्टुभा छन्दसेन्द्रियं बलमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥३७॥

पदार्थः—हे विद्वन् जन! जैसे (उषासानक्ता) दिन रात्रि के समान (देवी) सुन्दर शोभायमान पढ़ाने पढ़ने वाली दो स्त्रियां (वयोधसम्) जीवन को धारण करने वाले (देवम्) उत्तम गुणयुक्त (इन्द्रम्) जीव को जैसे (देवी) उत्तम पतिव्रता स्त्री (देवम्) उत्तम स्त्रीव्रत लम्पटतादि दोषरहित पति को बढ़ावे वैसे (अवर्धताम्) बढ़ावें और जैसे (वसुधेयस्य) धनाऽऽधार कोष के (वसुवने) धन को चाहने वाले के अर्थ (वीताम्) उत्पत्ति करें वैसे (वयः) प्राणों के धारण को (दधत्) पुष्ट करते हुए (अनुष्टुभा, छन्दसा) अनुष्टुप् छन्द से (इन्द्रे) जीवात्मा में (इन्द्रियम्) जीवने से सेवन किये (बलम्) बल को (यज) संगत कीजिये ॥३७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे प्रीति से स्त्रीपुरुष और व्यवस्था से दिन रात बढ़ते हैं वैसे प्रीति और धर्म की व्यवस्था से आप लोग बढ़ा करें ॥३७॥

देवीत्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

अब स्त्रीपुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्धताम्। बृहत्या छन्दसेन्द्रियꣳ श्रोत्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥३८॥

पदार्थः—हे विद्वान् जन! जैसे (देवी) तेजस्विनी (जोष्ट्री) प्रीति वाली (वसुधिती) विद्या को धारण करने हारी पढ़ने पढ़ाने वाली दो स्त्रियां (वयोधसम्) जीवन धारक (इन्द्रम्) अन्नदाता (देवम्) दिव्य गुणयुक्त सन्तान को (देवी) धर्मात्मा स्त्री जैसे (देवम्) धर्मात्मा पति को प्राप्त होके (अवर्धताम्) उन्नति को प्राप्त हों

(बृहत्या, छन्दसा) बृहतीछन्द से (इन्द्रे) जीवात्मा में (इन्द्रियम्) ईश्वर ने रचे हुए (श्रोत्रम्) शब्द सुनने के हेतु कान को (वीताम्) व्याप्त हों वैसे (वसुधेयस्य) धन के आधारकोष के (वसुवने) धन की चाहना के अर्थ (वयः) उत्तम मनोहर सुख को (दधत्) धारण करते हुए (यज) यज्ञादि कीजिये ॥३८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे पढ़ाने और उपदेश करने वाली स्त्रियां अपने सन्तानों अन्य कन्याओं वा स्त्रियों को विद्या तथा शिक्षा से बढ़ाती हैं वैसे स्त्री पुरुष परमप्रीति से विद्या के विचार के साथ अपने सन्तानों को बढ़ावें और आप बढ़ें ॥३८॥

देवी इत्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। निचृच्छक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देवीऽऊर्जाहुती दुघे सुदुघे पयसेन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्धताम्। पङ्क्त्या छन्दसेन्द्रियꣳ शुक्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥३९॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष ! जैसे (दुघे) पदार्थों को पूर्ण करने और (सुदुघे) सुन्दर प्रकार कामनाओं को पूर्ण करने हारी (देवी) सुगन्धि को देने वाली (ऊर्जाहुती) अच्छे संस्कार किये हुए अन्न की दो आहुती (पयसा) जल की वर्षा से (वयोधसम्) प्राणधारी (इन्द्रम्) जीव को जैसे (देवी) पतिव्रता विदुषी स्त्री (देवम्) व्यभिचारादि दोषरहित पति को बढ़ाती है वैसे (अवर्धताम्) बढ़ावें (पङ्क्त्या, छन्दसा) पंक्ति छन्द से (इन्द्रे) जीवात्मा के निमित्त (शुक्रम्) पराक्रम और (इन्द्रियम्) धन को (वीताम्) प्राप्त करें वैसे (वसुधेयस्य) धन के कोष के (वसुवने) धन का सेवन करने हारे के लिये (वयः) सुन्दर ग्राह्य सुख को (दधत्) धारण करते हुए (यज) यज्ञ कीजिये ॥३९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे अग्नि में छोड़ी हुई आहुति मेघमण्डल को प्राप्त हो फिर आकर शुद्ध किये हुए जल से सब जगत् को पुष्ट करती है वैसे विद्या के ग्रहण और दान से सब को पुष्ट किया करो ॥३९॥

देवा इत्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। अतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर स्त्री पुरुषों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देवा दैव्या होतारा देवमिन्द्रं वयोधसं देवौ देवमवर्धताम्।

त्रिष्टुभा छन्दसेन्द्रियं त्विषिमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥४०॥

पदार्थः—हे (होतारा) दानशील अध्यापक उपदेशक लोगो ! जैसे (दैव्या) कामना के योग्य पदार्थ बनाने में कुशल (देवा) चाहने योग्य दो विद्वान् (वयोधसम्) अवस्था के धारक (देवम्) कामना करते हुए (इन्द्रम्) जीवात्मा को जैसे (देवौ) शुभ गुणों की चाहना करते हुए माता पिता (देवम्) अभीष्ट पुत्र को बढ़ावें वैसे (अवर्धताम्) बढ़ावें (वसुधेयस्य) धनकोष के (वसुवने) धन सेवने वाले जन के लिये (वीताम्) प्राप्त हूजिये तथा हे विद्वन् पुरुष ! (त्रिष्टुभा, छन्दसा) त्रिष्टुप् छन्द से (इन्द्रे) आत्मा में (त्विषिम्) प्रकाशयुक्त (इन्द्रियम्) कान आदि इन्द्रिय और (वयः) सुख को (दधत्) धारण करता हुआ तू (यज) यज्ञादि उत्तम कर्म कर ॥४०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पढ़ने और उपदेश करने हारे विद्यार्थी और शिष्यों को तथा माता पिता सन्तानों को बढ़ाते हैं वैसे विद्वान् स्त्री पुरुष वेदविद्या से सब को बढ़ावें ॥४०॥

देवीरित्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। भुरिग् जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अब राजप्रजा का धर्म विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीर्वयोधसं पतिमिन्द्रमवर्धयन्। जगत्या छन्दसेन्द्रियꣳशूषमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥४१॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (तिस्रः) तीन (देवीः) तेजस्विनी विदुषी (तिस्रः) तीन पढ़ाने, उपदेश करने और परीक्षा लेने वाली (देवीः) विदुषी स्त्री (वयोधसम्) जीवन धारण करनेहारे (पतिम्) रक्षक स्वामी (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य वाले चक्रवर्ती राजा को (अवर्धयन्) बढ़ावें तथा (व्यन्तु) व्याप्त होवें वैसे (जगत्या छन्दसा) जगती छन्द से (इन्द्रे) अपने आत्मा में (शूषम्, वयः) शत्रुसेना में व्यापक होने वाले अपने बल तथा (इन्द्रियम्) कान आदि इन्द्रिय को (दधत्) धारण करते हुए (वसुधेयस्य) धनकोष के (वसुवने) धनदाता के अर्थ (यज) अग्निहोत्रादि यज्ञ कीजिये ॥४१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पढ़ने उपदेश करने और परीक्षा लेने वाले स्त्री पुरुष प्रजाओं में विद्या और श्रेष्ठ उपदेशों का प्रचार करें वैसे राजा इनकी यथावत् रक्षा करे इस प्रकार राजपुरुष और प्रजापुरुष आपस में प्रसन्न हुए सब ओर से वृद्धि को प्राप्त हुआ करें ॥४१॥

देव इत्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। निचृदतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवो नराशꣳसों देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्द्धयत् । विराजा छन्दसेन्द्रियꣳ रूपमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥४२॥

पदार्थः—हे विद्वन् जन ! जैसे (नराशंसः) मनुष्यों से प्रशंसा करने योग्य (देवः) विद्वान् (वयोधसम्) बहुत अवस्था वाले (देवम्) उत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त (इन्द्रम्) राजा को जैसे (देवः) विद्वान् (देवम्) विद्वान् को (अवर्धयत्) बढ़ावे (विराजा, छन्दसा) विराट् छन्द से (इन्द्रे) आत्मा में (रूपम्) सुन्दर रूप वाले (इन्द्रियम्) श्रोत्रादि इन्द्रिय को (वेतु) प्राप्त करे वैसे (वसुधेयस्य) धनकोष के (वसुवने) धन को सेवने वाले जन के लिये (वयः) अभीष्ट सुख को (दधत्) धारण करता हुआ तू (यज) संगम वा दान कर ॥४२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वानों को चाहिय कि कभी आपस में ईर्ष्या करके एक दूसरे की हानि नहीं करें किन्तु सदैव प्रीति से उन्नति किया करें ॥४२॥

देव इत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा हैं ॥

देवो वनस्पतिर्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्धयत् । द्विपदा छन्दसेन्द्रियं भगमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥४३॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (वनस्पतिः) वनों का रक्षक वट आदि (देवः) उत्तम गुणों वाला (वयोधसम्) अधिक उमर वाले (देवम्) उत्तम गुणयुक्त (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को जैसे (देवः) उत्तम सभ्य जन (देवम्) उत्तम स्वभाव वाले विद्वान् को वैसे (अवर्धयत्) बढ़ावे (द्विपदा) दो पाद वाले (छन्दसा) छन्द से (इन्द्रे) आत्मा में (भगम्) ऐश्वर्य तथा (इन्द्रियम्) धन को (वेतु) प्राप्त हो वैसे (वसुधेयस्य) धनकोष के (वसुवने) धन को देनेहारे के लिये (वयः) अभीष्ट सुख को (दधत्) धारण करता हुआ तू (यज) यज्ञ कर ॥४३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम को जैसे वनस्पति पुष्कल जल को नीचे पृथिवी से आकर्षण करके वायु और मेघमण्डल में फैला के सब घास आदि की रक्षा करते और जैसे राजपुरुष राजपुरुषों की रक्षा करते हैं वैसे वर्त्त के ऐश्वर्य की उन्नति करनी चाहिये ॥४३॥

देवमित्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा हैं ॥

देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रं वयोधसं देवं देवमवर्धयत् । ककुभा छन्दसेन्द्रियं यशऽइन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥४४॥

पदार्थः– हे विद्वन् जन ! जैसे (वारितीनाम्) अन्तरिक्ष के समुद्र का (देवम्) उत्तम (बर्हिः) जल (वयोधसम्) बहुत अवस्था वाले (देवम्) उत्तम (इन्द्रम्) राजा को और (देवम्) उत्तम गुणवान् (देवम्) प्रकाशमान प्रत्येक जीव को (अवर्धयत्) बढ़ाता है (ककुभा, छन्दसा) ककुप्छन्द से उत्तम ऐश्वर्य के निमित्त (यशः) कीर्त्ति तथा (इन्द्रियम्) जीव के चिह्नरूप श्रोत्रादि इन्द्रिय को (वेतु) प्राप्त होवे वैसे (वसुधेयस्य) धनकोष के (वसुवने) धन को सेवने हारे के लिये (वयः) अभीष्ट सुख को (दधत्) धारण करते हुए (यज) यज्ञ कीजिये ॥४४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे जल समुद्रों को भर और जीवों की रक्षा करके मोती आदि रत्नों को उत्पन्न करता है वैसे धर्म से धन के कोष को पूर्ण कर और अन्य दरिद्रियों की सम्यक् रक्षा करके कीर्त्ति को बढ़ाओ ॥४४॥

देव इत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । स्वराडतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा हैं ॥

देवोऽअग्निः स्विष्टकृद्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्धयत् । अतिच्छन्दसा छन्दसेन्द्रियं क्षत्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥४५॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (स्विष्टकृत्) सुन्दर अभीष्ट को सिद्ध करनेहारा (देवः) सर्वज्ञ (अग्निः) स्वयं प्रकाशस्वरूप ईश्वर (वयोधसम्) अवस्था के धारक (देवम्) धार्मिक (इन्द्रम्) जीव को जैसे (देवः) विद्वान् (देवम्) विद्यार्थी को वैसे (अवर्धयत्) बढ़ाता है (अतिच्छन्दसा, छन्दसा) अतिजगती आदि आनन्दकारक छन्द से (इन्द्रे) विद्या विनय से युक्त राजा के निमित्त (वसुधेयस्य) धनकोष के (वसुवने) धन के दाता के लिये (वयः) मनोहर वस्तु (क्षत्रम्) राज्य और (इन्द्रियम्) जीवने से सेवन किये हुए इन्द्रिय को (दधत्) धारण करता हुआ (वेतु) व्याप्त होवे वैसे (यज) यज्ञादि उत्तम कर्म कीजिये ॥४५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे परमेश्वर ने अपनी दया से सब पदार्थों को उत्पन्न कर और

जीवों के लिये समर्पण करके जगत् की वृद्धि की है वैसे विद्या, विनय, सत्सङ्ग, पुरुषार्थ और धर्म के अनुष्ठानों से राज्य को बढ़ाओ ॥४५॥

अग्निमद्येत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । आकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन् पक्तीः पचन् पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय वयोधसे छागम् । सूपस्थाऽअद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय वयोधसे छागेन । अघत्तं मेदस्तः प्रतिपचताग्रभीदवीवृधत्पुरोडाशेन त्वामद्यऽऋषे ॥४६॥

पदार्थः—हे (ऋषे) मन्त्रार्थ जानने वाले विद्वान् पुरुष ! जैसे (अयम्) (यजमानः) यज्ञ करने हारा (अद्य) इस समय (पक्तीः) नाना प्रकार के पाकों को (पचन्) पकाता और (पुरोडाशम्) यज्ञ में होमने के पदार्थ को (पचन्) पकाता हुआ (अग्निम्) तेजस्वी (होतारम्) होता को (अद्य) आज (अवृणीत) स्वीकार करे वैसे (वयोधसे) सब के जीवन को बढ़ाने हारे (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य के लिये (छागम्) छेदन करने वाले बकरी आदि पशु को (बध्नन्) बांधते हुए स्वीकार कीजिये जैसे आज (वनस्पतिः) वनों का रक्षक (देवः) विद्वान् (वयोधसे) अवस्थावर्धक (इन्द्राय) शत्रुविनाशक राजा के लिये (छागेन) छेदन के साथ उद्यत (अभवत्) होवे वैसे सब लोग (सूपस्थाः) सुन्दर प्रकार समीप रहने वाले हों वैसे (पचता) पकाये हुए (पुरोडाशेन) यज्ञपाक से (मेदस्तः) चिकनाई से (त्वाम्) आपको (प्रति, अग्रभीत्) ग्रहण करे और (अवीवृधत्) बढ़े वैसे हे यजमान और होता लोगो ! तुम दोनों यज्ञ के शेष भाग को (अघत्तम्) खाओ ॥४६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे रसोइये लोग उत्तम अन्न व्यञ्जनों को बना के भोजन करावें वैसे ही भोक्ता लोग उनका मान्य करें जैसे बकरी आदि पशु घास आदि को खाके सम्यक् पचा लेते हैं वैसे ही भोजन किये हुए अन्नादि को पचाया करें ॥४६॥

इस अध्याय में होता के गुणों, वाणी और अश्वियों के गुणों, फिर भी होता के कर्त्तव्य, यज्ञ की व्याख्या और विद्वानों की प्रशंसा को कहा है इस से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति है ऐसा जानना चाहिये ॥

यह अट्ठाईसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

* ओ३म् *

अथ एकोनत्रिंशोऽध्याय आरभ्यते

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्नऽ आसुव ॥

समिद्ध इत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अब उनतीसवें अध्याय का आरम्भ है इसके पहिले मन्त्र में मनुष्यों को अग्नि जलादि से क्या सिद्ध करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

समिद्धोऽअञ्जन् कृदरं मतीनां घृतमग्ने मधुमत् पिन्वमानः ।
वाजी वहन्वाजिनं जातवेदो देवानां वक्षि प्रियमा सधस्थम् ॥१॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) प्रसिद्ध बुद्धिमान् (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी विद्वन् जन ! जैसे (समिद्धः) सम्यक् जलाया (अञ्जन्) प्रकट होता हुआ अग्नि (मतीनाम्) मनुष्यों के (कृदरम्) पेट और (मधुमत्) बहुत उत्तम गुणों वाले (घृतम्) जल वा घी को (पिन्वमानः) सेवन करता हुआ जैसे (वाजी) वेगवान् मनुष्य (वाजिनम्) शीघ्रगामी घोड़े को (वहन्) चलाता वैसे (देवानाम्) विद्वानों के (सधस्थम्) साथ स्थिति को (आ) प्राप्त करता है वैसे (प्रियम्) प्रीति के निमित्त स्थान को (वक्षि) प्राप्त कीजिये ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य जाठराग्नि को तेज रक्खें और बाहर के अग्नि को कलाकौशलादि में युक्त किया करें तो यह अग्नि घोड़े के तुल्य सवारियों को देशान्तर में शीघ्र पहुंचावे ॥१॥

घृतेनेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट् त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

घृतेनाञ्जन्त्सं पथो देवयानान् प्रजानन्वाज्यप्येतु देवान् ।
अनु त्वा सप्ते प्रदिशः सचन्ताथं स्वधामस्मै यजमानाय धेहि ।।२।।

पदार्थः—हे (सप्ते) घोड़े के समान वेग से वर्त्तमान विद्वान् जन ! जैसे (वाजी, अपि) वेगवान् भी अग्नि (घृतेन) घी वा जल से (अञ्जन्) प्रकट हुआ (देवयानान्) विद्वान् लोग जिन में चलते हैं उन (पथः) मार्गों को (सम, एतु) सम्यक् प्राप्त होवे उसको (प्रजानन्) अच्छे प्रकार जानते हुए आप (देवान्) विद्वानों को (एहि) प्राप्त हूजिये जिससे (त्वा) आपके (अनु) अनुकूल (प्रदिशः) सब दिशा विदिशाओं को (सचन्ताम्) सम्बन्ध करें आप (अस्मै) इस (यजमानाय) यज्ञ करने-वाले पुरुष के लिये (स्वधाम्) अन्न को (धेहि) धारण कीजिये ।।२।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो पुरुष अग्नि और जलादि से युक्त किये भाफ से चलने वाले यानों से शीघ्र मार्गों में जा आ के सब दिशाओं में भ्रमण करें वे वहां २ सर्वत्र पुष्कल अन्नादि को प्राप्त कर बुद्धि से कार्यों को सिद्ध कर सकते हैं ।।२।।

ईड्य इत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । अग्निर्देवता । पङ्क्तिश्छन्दः ।
पंचमः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

ईड्यश्चासि वन्द्यश्च वाजिन्नाशुश्चासि मेध्यश्च सप्ते ।
अग्निष्ट्वा देवैर्वसुभिः सजोषाः प्रीतं वह्निं वहतु जातवेदाः ।।३।।

पदार्थः—हे (वाजिन्) प्रशंसित वेग वाले (सप्ते) घोड़े के तुल्य पुरुषार्थी उत्साही कारीगर विद्वन् ! जिस कारण (जातवेदाः) प्रसिद्ध भोगों वाले (सजोषाः) समान प्रीतियुक्त हुए आप (वसुभिः) पृथिवी आदि (देवैः) दिव्य गुणों वाले पदार्थों के साथ (प्रीतम्) प्रशंसा को प्राप्त (वह्निम्) यज्ञ में होमे हुए पदार्थों को मेघमण्डल में पहुंचाने वाले अग्नि को (वहतु) प्राप्त कीजिये और जिस (त्वा) आप को (अग्निः) अग्नि पहुंचावे । इसलिये आप (ईड्यः) स्तुति के योग्य (च) भी (असि) हैं (वन्द्यः) नमस्कार करने योग्य (च) भी हैं (च) और (आशुः) शीघ्रगामी (च) तथा (मेध्यः) समागम करने योग्य (असि) हैं ।।३।।

भावार्थः—जो मनुष्य पृथिवी आदि विकारों से सवारी आदि को रच के उस में वेगवान् पहुँचाने वाले अग्नि को संप्रयुक्त करें वे प्रशंसा के योग्य मान्य होवें ।।३।।

स्तीर्णमित्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः ।
पंचमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स्तीर्णं वर्हिः सुष्टरीमा जुषाणोरु पृथु प्रथमानं पृथिव्याम् ।
देवेभिर्युक्तमदितिः सजोषाः स्योनं कृण्वाना सुविते दधातु ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! हम लोग जैसे (पृथिव्याम्) भूमि में (उरु) बहुत (पृथु) विस्तीर्ण (प्रथमानम्) प्रख्यात (स्तीर्णम्) सब ओर से अङ्ग उपांगों से पूर्ण यान और (बर्हिः) जल वा अन्तरिक्ष को (जुषाणा) सेवन करती हुई (सजोषाः) समान गुण वालों ने सेवन की (देवेभिः) दिव्य पदार्थों से (युक्तम्) युक्त (स्योनम्) सुख को (कृण्वाना) करती हुई (अदितिः) नाशरहित विजुली सब को (सुविते) प्रेरणा किये यन्त्र में (दधातु) धारण करे उस को (सुष्टरीम) सुन्दर रीति से विस्तार करे वैसे आप भी प्रयत्न कीजिये ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो पृथिवी आदि में व्याप्त अखण्डित विजुली विस्तृत बड़े बड़े कार्य्यों को सिद्ध कर सुख को उत्पन्न करती है उस को कार्यों में प्रयुक्त कर प्रयोजनों की सिद्धि करो ॥४॥

एता इत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

कैसे द्वारों वाले घर हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

एताऽउ वः सुभगा विश्वरूपा वि पक्षोभिः श्रयमाणाऽउदातैः ।
ऋष्वाः सतीः कवषाः शुम्भमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा भवन्तु ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (वः) तुम्हारी (एताः) ये दीप्ति (सुभगाः) सुन्दर ऐश्वर्यदायक (विश्वरूपाः) विविध प्रकार के रूपों वाले (ऋष्वाः) बड़े ऊंचे चौड़े (कवषाः) जिन में बोलने से शब्द की प्रतिध्वनि हो (शुम्भमानाः) सुन्दर शोभायुक्त (सतीः) हुए (देवीः) रंगों से चिलचिलाते हुए (उत, आतैः) उत्तम रीति से निरन्तर जाने के हेतु (पक्षोभिः) बायें दहिने भागों से (श्रयमाणाः) सेवित पक्षियों की पङ्क्तियों के तुल्य (सुप्रायणाः) सुख से जाने के आधार (द्वारः) द्वार (वि, भवन्तु) सर्वत्र घरों में हों वैसे (उ) ही आप लोग भी बनावें ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि ऐसे द्वारों वाले घर बनावें कि जिनसे वायु न रुके । जैसे आकाश

में विना रुकावट के पक्षी सुखपूर्वक उड़ते हैं वैसे उन द्वारों में जावें आवें ॥५॥

अन्तरेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । मनुष्या देवताः । त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती मुखं यज्ञानामभि संविदाने ।
उषासा वाथं सुहिरण्ये सुशिल्पेऽऋतस्य योनाविह सादयामि ॥६॥

पदार्थः—हे शिल्पविद्या के प्रचारक दो विद्वानो ! जैसे मैं (अन्तरा) भीतर शरीर में (मित्रावरुणा) प्राण तथा उदान (चरन्ती) प्राप्त होते हुए (यज्ञानाम्) संगति के योग्य पदार्थों के (मुखम्) मुख्य भाग को (अभि, संविदाने) सब ओर से सम्यक् ज्ञान के हेतु (सुहिरण्ये) सुन्दर तेजयुक्त (सुशिल्पे) सुन्दर कारीगरी जिस में हो (उषासा) प्रातः तथा सायंकाल की वेलाओं को (ऋतस्य) सत्य के (योनौ) निमित्त (इह) इस घर में (सादयामि) स्थापन करता हूं वैसे (वाम्) तुम दोनों मेरे लिये स्थापन करो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सवेरे तथा सायंकाल की वेला शुद्ध स्थान में सेवी हुई मनुष्यों को प्राण उदान के समान सुखकारिणी होती हैं वैसे शुद्ध देश में वनाया बड़े बड़े द्वारों वाला घर सब प्रकार सुखी करता है ॥६॥

प्रथमेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । अश्विनौ देवते । त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अब पढ़ने पढ़ाने वाले कैसे होवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रथमा वाथं सरथिना सुवर्णा देवौ पश्यन्तौ भुवनानि विश्वा ।
अपिप्रयं चोदना वां मिमाना होतारा ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥७॥

पदार्थः—हे दो विद्यार्थियो ! जो (प्रथमा) पहिले (सरथिना) रथ वालों के साथ वर्त्तमान (सुवर्णा) सुन्दर गोरे वर्ण वाले दो विद्वान् (विश्वा) सब (भुवनानि) वसने के आधार लोकों को (पश्यन्तौ) देखते हुए (वाम्) तुम दोनों के (चोदना) प्रेरणारूप कर्मों को (मिमाना) जांचते हुए (ज्योतिः) प्रकाश को (प्रदिशा) अच्छे प्रकार जानते तथा (दिशन्ता) उच्चारण करते हुए तुम को (होतारा) दानशील (देवौ) तेजस्वी विद्वान् करें जैसे उनको मैं (अपिप्रयम्) तृप्त करता हूं वैसे (वाम्) तुम दोनों उन विद्वानों को प्राप्त होओ ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्यार्थी लोग निष्कपटता से विद्वानों का सेवन करते हैं वे विद्या के प्रकाश को प्राप्त होते हैं जो विद्वान् लोग कपट और आलस्य को छोड़ सब को सत्य का उपदेश करें तो वे सुखी कैसे न होवें ॥७॥

आदित्यैरित्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः। सरस्वती देवता। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आदित्यैर्नो भारती वष्टु यज्ञꣳ सरस्वती सह रुद्रैर्नऽआवीत्।
इडोपहूता वसुभिः सजोषा यज्ञं नो देवीरमृतेषु धत्त ॥८॥

पदार्थः—हे विद्वन्! आप जो (आदित्यैः) पूर्ण विद्या वाले उत्तम विद्वानों ने उपदेश की (उपहूता) यथावत् स्पर्द्धा से ग्रहण की (भारती) सब विद्याओं को धारण और सब प्रकार की पुष्टि करने हारी वाणी (नः) हमारे लिये (यज्ञम्) संगत हमारे योग्य बोध को सिद्ध करती है उस के (सह) साथ (नः) हम को (वष्टु) कामना वाले कीजिये जो (रुद्रैः) मध्य कक्षा के विद्वानों ने उपदेश की (सरस्वती) उत्तम प्रशस्त विज्ञानयुक्त वाणी (नः) हम को (आवीत्) प्राप्त होवे जो (सजोषाः) एक से विद्वानों ने सेवी (इडा) स्तुति की हेतु वाणी (वसुभिः) प्रथम कक्षा के विद्वानों ने उपदेश की हुई (यज्ञम्) प्राप्त होने योग्य आनन्द को सिद्ध करती है। हे मनुष्यो! ये (देवीः) दिव्यरूप तीन प्रकार की वाणी हम को (अमृतेषु) नाशरहित जीवादि नित्य पदार्थों में धारण करें उनको तुम लोग भी हमारे अर्थ (धत्त) धारण करो॥८॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि उत्तम मध्यम निकृष्ट विद्वानों से सुनी वा पढ़ी विद्या तथा वाणी का स्वीकार करें किन्तु मूर्खों से नहीं, वह वाणी मनुष्यों को सब काल में सुख सिद्ध करने वाली होती है॥८॥

त्वष्टेरयस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः। त्वष्टा देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वष्टा वीरं देवकामं जजान त्वष्टुरर्वा जायतऽआशुरश्वः।
त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान बहोः कर्त्तारमिह यक्षि होतः ॥९॥

पदार्थः—हे (होतः) ग्रहण करनेहारे जन! तू जैसे (त्वष्टा) विद्या आदि उत्तम गुणों से शोभित विद्वान् (देवकामम्) विद्वानों की कामना करनेहारे (वीरम्)

वीर पुरुष को (जजान) उत्पन्न करता है जैसे (त्वष्टुः) प्रकाशरूप शिक्षा से (आशुः) शीघ्रगामी (अर्वा) वेगवान् (अश्व.) घोड़ा (जायते) होता है। जैसे (त्वष्टा) अपने स्वरूप से प्रकाशित ईश्वर (इदम्) इस (विश्वम्) सब (भुवनम्) लोकमात्र को (जजान) उत्पन्न करता है उस (बहोः) बहुविध संसार के (कर्त्तारम्) रचनेवाले परमात्मा का (इह) इस जगत् में (यक्षि) पूजन कीजिये वैसे हम लोग भी करें ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्वान् लोग विद्या चाहने वाले मनुष्यों को विद्वान् करें, शीघ्र जिसको शिक्षा हुई हो उस घोड़े के समान तीक्ष्णता से विद्या को प्राप्त होता है जैसे बहुत प्रकार के संसार का स्रष्टा ईश्वर सब की व्यवस्था करता है वैसे अध्यापक और अध्येता होवें ॥९॥

अश्व इत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः। सूर्यो देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः।

धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अश्वो॑ घृतेन॑ त्मन्या॒ सम॑क्त॒ऽउप॑ दे॒वाँ२ऽऋ॑तु॒शः पाथ॑ऽएतु।
वन॒स्पति॑र्दे॒वलो॒कं प्र॑जा॒नन्न॒ग्निना॑ ह॒व्या स्व॑दि॒तानि॑ वक्षत् ॥१०॥

पदार्थः—हे विद्वन्! (देवलोकम्) सब को मार्ग दिखाने वाले विद्वानों के मार्ग को (प्रजानन्) अच्छे प्रकार जानते हुए जैसे (घृतेन) जल से संयुक्त किया (अश्वः) शीघ्रगामी अग्नि (त्मन्या) आत्मा से (ऋतुशः) ऋतु ऋतु में (देवान्) उत्तम व्यवहारों को (समक्तः) सम्यक् प्रकट करता हुआ (पाथः) अन्न को (उप, एतु) निकट मे प्राप्त हूजिये (अग्निना) अग्नि के साथ (वनस्पतिः) किरणों का रक्षक सूर्य (स्वदितानि) स्वादिष्ठ (हव्या) भोजन के योग्य अन्नों को (वक्षत्) प्राप्त करे वैसे आत्मा से वर्त्ताव कीजिये ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वान् मनुष्यो! जैसे सूर्य ऋतुओं का विभाग कर उत्तम सेवने योग्य वस्तुओं को उत्पन्न करता है वैसे उत्तम अधम विद्यार्थी और विद्या अविद्या की अलग अलग परीक्षा कर अच्छे शिक्षित करें और अविद्या की निवृत्ति करें ॥१०॥

प्रजापतेरित्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्छन्दः।

धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रजापतेस्तपसा वावृधानः सद्यो जातो दधिषे यज्ञमग्ने ।
स्वाहाकृतेन हविषा पुरोगा याहि साध्या हविरदन्तु देवाः ॥११॥

पदार्थः—हे विद्वन् (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी ! आप (सद्यः) शीघ्र (जातः) प्रसिद्ध हुए (प्रजापतेः) प्रजारक्षक ईश्वर के (तपसा) प्रताप से (वावृधानः) बढ़ते हुए (स्वाहाकृतेन) सुन्दर संस्काररूप क्रिया से सिद्ध हुए (हविषा) होम में देने योग्य पदार्थ से (यज्ञम्) यज्ञ को (दधिषे) धारते हो । जो (पुरोगाः) मुखिया वा अगुआ (साध्याः) साधनों से सिद्ध करने योग्य (देवाः) विद्वान् लोग (हविः) ग्राह्य अन्न का (अदन्तु) भोजन करें उन को (याहि) प्राप्त हूजिये ॥११॥

भावार्थः—जो मनुष्य सूर्य के समान प्रजा के रक्षक धर्म से प्राप्त हुए पदार्थ के भोगने वाले होते हैं वे सर्वोत्तम गिने जाते हैं ॥११॥

यदक्रन्द इत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । यजमानो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यदक्रन्दः प्रथमं जायमानऽउद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहूऽउपस्तुत्यं महि जातं तेऽअर्वन् ॥१२॥

पदार्थः—हे (अर्वन्) घोड़े के तुल्य वेग वाले विद्वान् पुरुष ! (यत्) जब (समुद्रात्) अन्तरिक्ष (उत, वा) अथवा (पुरीषात्) रक्षक परमात्मा से (प्रथमम्) पहिले (जायमानः) उत्पन्न हुए वायु के समान (उद्यन्) उदय को प्राप्त हुए (अक्रन्दः) शब्द करते हो तब (हरिणस्य) हरणशील वीरजन (ते) आप के (बाहू) भुजा (श्येनस्य) श्येनपक्षी के (पक्षा) पंखों के तुल्य बलकारी हैं यह (महि) महत् कर्म (जातम्) प्रसिद्ध (उपस्तुत्यम्) समीपस्थ स्तुति का विषय होता है ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे अन्तरिक्ष से उत्पन्न हुआ वायु कर्मों को कराता वैसे मनुष्यों के शुभगुणों को तुम लोग ग्रहण करो जैसे पशुओं में घोड़ा वेगवान् है वैसे शत्रुओं को रोकने में वेगवान् श्येन पक्षी के तुल्य वीर पुरुषों की सेना वाले दृढ़ ढीठ होओ यदि ऐसे करो तो सब कर्म तुम्हारा प्रशंसित होवे ॥१२॥

यमेनेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यमेन॑ द॒त्तं त्रि॒त ए॑नमायुन॒गिन्द्र॑ऽएणं प्रथ॒मोऽअध्य॑तिष्ठत् ।
ग॒न्ध॒र्वोऽअ॑स्य रश॒नाम॑गृभ्णा॒त्सूरा॑दश्वं वसवो॒ निर॑तष्ट ॥१३॥

पदार्थः—हे (वसवः) विद्वान् ! जो (इन्द्रः) बिजुली (त्रितः) पृथिवी जल और आकाश से (यमेन) नियमकर्त्ता वायु ने (दत्तम्) दिये अर्थात् उत्पन्न किये (एनम्) इस अग्नि को (आयुनक्) युक्त करती है (एनम्) इस को प्राप्त हो के (प्रथमः) विस्तीर्ण प्रख्यात विद्युत् (अध्यतिष्ठत्) सर्वोपरि स्थित होती है (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण करता हुआ (अस्य) इस सूर्य की (रशनाम्) रस्सी के तुल्य किरणों की गति को (अगृभ्णात्) ग्रहण करता है इस (सूरात्) सूर्यरूप से (अश्वम्) शीघ्र-गामी वायु को (निरतष्ट) सूक्ष्म करता है उस को तुम लोग विस्तृत करो ॥१३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! ईश्वर ने इस संसार में जिस पदार्थ में जैसी रचना की है उस को तुम लोग विद्या से जानो और इस सृष्टिविद्या को ग्रहण कर अनेक सुखों को सिद्ध करो ॥१३॥

असीत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट् त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

असि॑ य॒मोऽअस्या॑दि॒त्योऽअ॑र्व॒न्नसि॑ त्रि॒तो गुह्ये॑न व्र॒तेन॑ ।
असि॒ सोमे॑न स॒मया॒ विपृ॑क्तऽआ॒हुस्ते॒ त्रीणि॑ दि॒वि बन्ध॑नानि ॥१४॥

पदार्थः—हे (अर्वन्) वेगवान् अग्नि के समान जन ! जिससे तू (गुह्येन) गुप्त (व्रतेन) स्वभाव तथा (त्रितः) कर्म उपासना ज्ञान से युक्त (यमः) नियमकर्त्ता न्यायाधीश के तुल्य (असि) है (आदित्यः) सूर्य के तुल्य विद्या से प्रकाशित जैसा (असि) है विद्वान् के सदृश (असि) है (सोमेन) ऐश्वर्य के निकट (विपृक्तः) विशेष-कर संबद्ध (असि) है । उस (ते) तेरे (दिवि) प्रकाश में (त्रीणि) तीन (बन्धनानि) बन्धनों को अर्थात् ऋषि देव पितृ ऋणों के बन्धनों को (आहुः) कहते हैं ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम को योग्य है कि न्यायाधीश सूर्य और चन्द्रमा आदि के गुणों से युक्त होवें जैसे इस संसार के बीच वायु और सूर्य के आकर्षणों से बन्धन हैं वैसे ही परस्पर शरीर वाणी मन के आकर्षणों से प्रेम के बन्धन करें ॥१४॥

त्रीणीत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्रीणि तऽआहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे ।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा तऽआहुः परमं जनित्रम् ॥१५॥

पदार्थः—हे (अर्वन्) विज्ञानयुक्त विद्वान् जन ! (यत्र) जिस (दिवि) विद्या के प्रकाश में (ते) आप के (त्रीणि) तीन (बन्धनानि) बन्धनों को विद्वान् लोग(आहुः) कहते हैं जहां(अप्सु) प्राणों में (त्रीणि) तीन जहां(अन्तः) बीच में और(समुद्रे) अन्तरिक्ष में (त्रीणि) तीन बन्धनों को (आहुः) कहते हैं और (ते) आप के (परमम्) उत्तम (जनित्रम्) जन्म को कहते हैं जिस से (वरुणः) श्रेष्ठ हुए विद्वानों का (छन्त्सि) सत्कार करते हो (उतेव) उत्प्रेक्षा के तुल्य वे सब (मे) मेरे होवें ॥१५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! आत्मा मन और शरीर से ब्रह्मचर्य के साथ विद्याओं में नियत होके विद्या और सुशिक्षा का संचय करो। द्वितीय विद्याजन्म को पाकर पूजित होवो जिस जिस के साथ अपना जितना सम्बन्ध है उस को जानो ॥१५॥

इमेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः।
धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को घोड़ों के रखने से क्या सिद्ध करना चाहिये इस विषय
को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानांᳫं सनितुर्निधाना ।
अत्रा ते भद्रा रशनाऽअपश्यमृतस्य याऽअभिरक्षन्ति गोपाः ॥१६॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) घोड़े के तुल्य वेगादि गुणों से युक्त सेनाधीश ! जैसे मैं (ते) आप के (इमा) इन प्रत्यक्ष घोड़ों की (अवमार्जनानि) शुद्धि क्रियाओं और (इमा) इन (शफानाम्) खुरों के (सनितुः) रखने के नियम के (निधाना) स्थानों को (अपश्यम्) देखता हूं (अत्र) इस सेना में (ते) आप के घोड़े की (याः) जो (भद्राः) सुन्दर शुभकारिणी (गोपाः) उपद्रव से रक्षा करनेहारी (रशनाः) लगाम का रस्सी (ऋतस्य) सत्य की (अभिरक्षन्ति) सब ओर से रक्षा करती हैं उन को मैं देखूं वैसे आप भी देखें ॥१६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग स्नान से घोड़े आदि की शुद्धि तथा उनके शुम्मों की रक्षा के लिये लोहे के बनाये नालों को संयुक्त और लगाम की रस्सी आदि सामग्री को संयुक्त कर अच्छी शिक्षा दे रक्षा करते हैं वे युद्धादि कार्यों में सिद्धि करनेवाले होते हैं ॥१६॥

आत्मानमित्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

यानरचना से क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आत्मानं॑ ते॒ मन॑सा॒राद॑जानाम॒वो दि॒वा प॒तय॑न्तं पत॒ङ्गम् ।
शिरो॑ऽअपश्यं प॒थिभि॑: सु॒गेभि॑ररे॒णुभि॒र्जेह॑मानं पत॒त्रि ॥१७॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! मैं जैसे (मनसा) विज्ञान से (आरात्) निकट में (अवः) नीचे से (दिवा) आकाश के साथ (पतङ्गम्) सूर्य के प्रति (पतयन्तम्) चलते हुए (ते) आप के (आत्मानम्) आत्मास्वरूप को (अजानाम्) जानता हूं और (अरेणुभिः) धूलिरहित निर्मल (सुगेभिः) सुखपूर्वक जिन में चलना हो उन (पथिभिः) मार्गों से (जेहमानम्) प्रयत्न के साथ जाते हुए (पतत्रि) पक्षीवत् उड़ने वाले (शिरः) दूर से शिर के तुल्य गोलाकार लक्षित होते विमानादि यान को (अपश्यम्) देखता हूं वैसे आप भी देखिये ॥१७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! तुम लोग सब से अतिवेग वाले शीघ्र चलाने हारे अग्नि के तुल्य अपने आत्मा को देखो, सम्प्रयुक्त किये अग्नि आदि के सहित यानों में बैठ के जल स्थल और आकाश में प्रयत्न से जाओ आओ, जैसे शिर उत्तम है वैसे विमान यान को उत्तम मानना चाहिये ॥१७॥

अत्रेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब शूरवीर लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अत्रा॑ ते रू॒पमु॑त्त॒मम॑पश्यं॒ जिगी॑षमाणमि॒षऽआ प॒दे गोः ।
य॒दा ते॒ मर्त्तो॒ऽअनु॒ भोग॒मान॒डादिद्॒ ग्रसि॑ष्ठ॒ऽओष॑धीरजीगः ॥१८॥

पदार्थः—हे वीर पुरुष ! (ते) आप के (जिगीषमाणम्) शत्रुओं को जीतते हुए (उत्तमम्) उत्तम (रूपम्) और (गोः) पृथिवी के (पदे) प्राप्त होने योग्य (अत्र) इस व्यवहार में (इषः) अन्नों के दानों को (आ, अपश्यम्) अच्छे प्रकार देखूं (ते) आप का (मर्त्तः) मनुष्य (यदा) जब (भोगम्) भोग्य वस्तु को (आनट्) व्याप्त होता है तब (आत्) (इत्) इस के अनन्तर ही (ग्रसिष्ठः) अति खाने वाले हुए आप (ओषधीः) ओषधियों को (अनु, अजीगः) अनुकूलता से भोगते हो ॥१८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे उत्तम घोड़े आदि सेना के अङ्ग विजय करने वाले हों वैसे शूरवीर विजय के हेतु होकर भूमि के राज्य में भोगों को प्राप्त हों ॥१८॥

अनु त्वेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । मनुष्यो देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को कैसे राजप्रजा के कार्य सिद्ध करने चाहियें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अनु त्वा रथोऽअनु मर्योऽअर्वन्ननु गावोऽनु भगः कनीनाम् ।
अनु व्रातासस्तव सख्यमीयुरनु देवा ममिरे वीर्यं ते ॥१९॥

पदार्थः—हे (अर्वन्) घोड़े के तुल्य वर्त्तमान विद्वन् ! (ते) आप के (कनीनाम्) शोभायमान मनुष्यों के बीच वर्त्तमान (देवाः) विद्वान् (व्रातासः) मनुष्य (अनु, वीर्यम्) वल पराक्रम के अनकूल (अनु, ममिरे) अनुमान करें और (तव) आप की (सख्यम्) मित्रता को (अनु, ईयुः) अनुकूल प्राप्त हों (त्वा) आप के (अनु) अनुकूल (रथः) विमानादि यान (त्वा) आप के (अनु) अनुकूल वा पीछे आश्रित (मर्यः) साधारण मनुष्य (त्वा) आप के (अनु) अनुकूल वा पीछे (गावः) गौ और (त्वा) आप के (अनु) अनुकूल (भगः) ऐश्वर्य होवे ॥१९॥

भावार्थः—यदि मनुष्य अच्छे शिक्षित होकर औरों को सुशिक्षित करें उन में से उत्तमों को सभासद् और सभासदों में से अत्युत्तम सभापति को स्थापन कर राजप्रजा के प्रधान पुरुषों की एक अनुमति से राजकार्यों को सिद्ध करें तो सब आपस में अनुकूल हो के सब कार्यों को पूर्ण करें॥१९॥

हिरण्यशृङ्ग इत्यस्य भार्गवो जमदग्नि ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को अग्न्यादि पदार्थों के गुण-ज्ञान से क्या सिद्ध करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

हिरण्यशृङ्गोऽयोऽअस्य पादा मनोजवाऽअवरऽइन्द्रऽआसीत् ।
देवाऽइदस्य हविरद्यमायन्योऽअर्वन्तं प्रथमोऽअध्यतिष्ठत् ॥२०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (अवरः) नवीन (हिरण्यशृङ्गः) शृङ्ग के तुल्य जिस के तेज हैं वह (इन्द्रः) उत्तम ऐश्वर्य वाला विजुली के समान सभापति (आसीत्) होवे जो (प्रथमः) पहिला (अर्वन्तम्) घोड़े के तुल्य मार्ग को प्राप्त होते हुए अग्नि तथा (अयः) सुवर्ण का (अध्यतिष्ठत्) अधिष्ठाता अर्थात् अग्निप्रयुक्त यान पर बैठ के चलाने वाला होवे (अस्य) इस के (पादाः) पग (मनोजवाः) मन के तुल्य वेग वाले हों अर्थात् पग का चलना काम विमानादि से लेवे (देवाः) विद्वान्

सभासद् लोग (अस्य) इस राजा के (हविरद्यम्) देने और भोजन करने योग्य अन्न को (इत्, आयन्) ही प्राप्त होवें उस को तुम लोग जानो ॥२०॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्न्यादि पदार्थों के गुण कर्म स्वभावों को यथावत् जानें वे बहुत अद्भुत कार्यों को सिद्ध कर सकें, जो प्रीति से राजकार्यों को सिद्ध करें वे सत्कार को और जो नष्ट करें वे दण्ड को अवश्य प्राप्त होवें ॥२०॥

ईर्मान्तास इत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । मनुष्या देवताः । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

कैसे राजपुरुष विजय पाते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ई॒र्मान्ता॑सः॒ सिलि॑कमध्यमासः॒ सᳬ शूर॑णासो दि॒व्यासो॒ऽअत्याः॑ ।
ह॒ᳬसाऽइ॑व श्रेणि॒शो य॑तन्ते॒ यदाक्षि॑षुर्दि॒व्यमज्म॒मश्वाः॑ ॥२१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्) जो अग्नि आदि पदार्थों के तुल्य (ईर्मान्तासः) जिन का बैठने का स्थान प्रेरणा किया गया (सिलिकमध्यमासः) गदा आदि से लगा हुआ है मध्यप्रदेश जिन का ऐसे (शूरणासः) शीघ्र युद्ध में विजय के हेतु (दिव्यासः) उत्तम शिक्षित (अत्याः) निरन्तर चलने वाले (अश्वाः) शीघ्रगामी घोड़े (श्रेणिशः) पंक्ति बांधे हुए (हंसा इव) हंस पक्षियों के तुल्य (यतन्ते) प्रयत्न करते हैं और (दिव्यम्) शुद्ध (अज्मम्) मार्ग को (सम्, आक्षिषुः) व्याप्त होवें उन को तुम लोग प्राप्त होओ ॥२१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जिन राजपुरुषों के सुशिक्षित उत्तम गति वाले घोड़े अग्न्यादि पदार्थों के समान कार्यसाधक होते हैं वे सर्वत्र विजय पाते हैं ॥२१॥

तवेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । वायवो देवताः । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को अनित्य शरीर पाके क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तव॒ शरी॑रं पतयि॒ष्ण्व॑र्व॒न्तव॑ चि॒त्तं वात॑ऽइव॒ ध्रजी॑मान् ।
तव॒ शृङ्गा॑णि॒ विष्ठि॑ता पुरु॒त्रार॑ण्येषु॒ जर्भु॑राणा चरन्ति ॥२२॥

पदार्थः—हे (अर्वन्) घोड़े के तुल्य वर्त्तमान वीर पुरुष ! जिस (तव) तेरा (पतयिष्णु) नाशवान् (शरीरम्) शरीर (तव) तेरे (चित्तम्) अन्तःकरण की वृत्ति (वात इव) वायु के सदृश (ध्रजीमान्) वेगवाली अर्थात् शीघ्र दूरस्थ विषयों के तत्व

जानने वाली (तव) तेरे (पुरुत्रा) बहुत (अरण्येषु) जङ्गलों में (जर्भुराणा) शीघ्र धारण पोषण करने वाले (विष्ठिता) विशेषकर स्थित (शृङ्गाणि) शृङ्गों के तुल्य ऊंचे सेना के अवयव (चरन्ति) विचरते हैं सो तू धर्म का आचरण कर ॥२२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य अनित्य शरीरों में स्थित हो नित्य कार्यों को सिद्ध करते हैं वे अतुल सुख पाते हैं और जो वन के पशुओं के तुल्य भृत्य और सेना हैं वे घोड़े के तुल्य शीघ्रगामी हो के शत्रुओं को जीतने को समर्थ होते हैं ॥२२॥

उप प्रेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः। मनुष्या देवताः। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

कैसे विद्वान् हितैषी होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उप प्रागाच्छसंनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः।
अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यन्ति रेभाः ॥२३॥

पदार्थः—जो (दीध्यानः) सुन्दर प्रकाशमान हुआ (अजः) फेंकने वाला (वाजी) वेगवान् (अर्वा) चालाक घोड़ा (देवद्रीचा) विद्वानों को प्राप्त होते हुए (मनसा) मन से (शसनम्) जिसमें हिंसा होती है उस युद्ध को (उप, प्र, अगात्) अच्छे प्रकार समीप प्राप्त होता है। विद्वानों से (अस्य) इस का (नाभिः) मध्यभाग अर्थात् पीठ (पुरः) आगे (नीयते) प्राप्त की जाती अर्थात् उस पर बैठते हैं उस को (पश्चात्) पीछे (रेभाः) सब विद्याओं की स्तुति करने वाले (कवयः) बुद्धिमान् जन (अनु, यन्ति) अनुकूलता से प्राप्त होते हैं ॥२३॥

भावार्थः—जो विद्वान् लोग उत्तम विचार से घोड़ों को अच्छी शिक्षा दे और अग्नि आदि पदार्थों को सिद्ध कर ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं वे जगत् के हितैषी होते हैं ॥२३॥

उप प्रेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः। मनुष्यो देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

कौन जन राज्यशासन करने योग्य होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उप प्रागात्परमं यत्सधस्थमर्वाँ२ऽअच्छा पितरं मातरं च।
अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्याऽअथा शास्ते दाशुषे वार्याणि ॥२४॥

पदार्थः—हे विद्वन्! (यत्) जो (अर्वान्) ज्ञानी जन (जुष्टतमः) अतिशय कर सेवन किया हुआ (परमम्) उत्तम (सधस्थम्) साथियों के स्थान (पितरम्) पिता (मातरम्) माता (च) और (देवान्) विद्वानों को (अद्य) इस समय (आ, शास्ते)

अधिक इच्छा करता है (अथ) इस के अनन्तर (दाशुषे) दाता जन के लिये (वार्याणि) स्वीकार करने और भोजन के योग्य वस्तुओं को (उप, प्र, अगात्) प्रकर्ष कर के समीप प्राप्त होता है उस को (हि) ही आप (अच्छ, गम्याः) प्राप्त हूजिये ॥२४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग न्याय और विनय से परोपकारों को करते हैं वे उत्तम २ जन्म श्रेष्ठ पदार्थों विद्वान् पिता और विदुषी माता को प्राप्त हो और विद्वानों के सेवक होके महान् सुख को प्राप्त हो वे राज्यशासन करने को समर्थ होवें ॥२४॥

समिद्ध इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। विद्वान् देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

धर्मात्मा लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

समिद्धोऽअद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान्यजसि जातवेदः।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ॥२५॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) उत्तम बुद्धि को प्राप्त हुए (मित्रमहः) मित्रों का सत्कार करने वाले विद्वन्! जो (त्वम्) आप (अद्य) इस समय (समिद्धः) सम्यक् प्रकाशित अग्नि के तुल्य (मनुषः) मननशील (देवः) विद्वान् हुए (यजसि) सङ्ग करते हो (च) और (चिकित्वान्) विज्ञानवान् (दूतः) दुष्टों को दुःखदाई (प्रचेताः) उत्तम चेतनता वाला (कविः) सब विषयों में अव्याहतबुद्धि (असि) हो सो आप (दुरोणे) घर में (देवान्) विद्वानों वा उत्तम गुणों को (आ, वह) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥२५॥

भावार्थः—जैसे अग्नि दीपक आदि के रूप से घरों को प्रकाशित करता है वैसे धार्मिक विद्वान् लोग अपने कुलों को प्रकाशित करते हैं जो सब के साथ मित्रवत् वर्त्तते हैं वे ही धर्मात्मा हैं ॥२५॥

तनूनपादित्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। विद्वान् देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तनूनपात्पथऽऋतस्य यानान्मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन्देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः ॥२६॥

पदार्थः—हे (सुजिह्व) सुन्दर जीभ वा वाणी से युक्त (तनूनपात्) विस्तृत पदार्थों को न गिराने वाले विद्वान् जन! आप (ऋतस्य) सत्य वा जल के (यानान्) जिन में चलें उन (पथः) मार्गों को अग्नि के तुल्य (मध्वा) मधुरता अर्थात् कोमल

भाव से (समञ्जन्) सम्यक् प्रकार करते हुए (स्वदय) स्वाद लीजिये अर्थात् प्रसन्न कीजिये (धीभिः) बुद्धियों वा कर्मों से (मन्मानि) यानों को (उत) और (नः) हमारे (अध्वरम्) नष्ट न करने और (यज्ञम्) संगत करने योग्य व्यवहार को (ऋन्धन्) सम्यक् सिद्ध करता हुआ (च) भी (देवत्रा) विद्वानों में स्थित होकर (कृणुहि) कीजिये ॥२६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। धार्मिक मनुष्यों को चाहिये कि पथ्य औषध पदार्थों का सेवन करके सुन्दर प्रकार प्रकाशित होवें, आप्त विद्वानों की सेवा में स्थित हो तथा बुद्धियों को प्राप्त हो के अहिंसारूप धर्म को सेवें ॥२६॥

नराशꣳसस्येत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। विद्वान्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

नराशꣳसस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः।
ये सुक्रतवः शुचयो धियन्धाः स्वदन्ति देवाऽउभयानि हव्या ॥२७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (ये) जो (सुक्रतवः) सुन्दरबुद्धियों और कर्मों वाले (शुचयः) पवित्र (धियन्धाः) श्रेष्ठ धारणावती बुद्धि और कर्म को धारण करने हारे (देवाः) विद्वान् लोग (उभयानि) दोनों शरीर आत्मा को सुखकारी (हव्या) भोजन के योग्य पदार्थों को (स्वदन्ति) भोगते हैं (एषाम्) इन विद्वानों के (यज्ञैः) सत्संगादि रूप यज्ञों से (नराशंसस्य) मनुष्यों से प्रशंसित (यजतस्य) संग करने योग्य व्यवहार के (महिमानम्) बड़प्पन को (उप, स्तोषाम) समीप प्रशंसा करें वैसे तुम लोग भी करो ॥२७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग स्वयं पवित्र बुद्धिमान् वेद शास्त्र के वेत्ता नहीं होते वे दूसरों को भी विद्वान् पवित्र नहीं कर सकते। जिनके जैसे गुण जैसे कर्म हों उनकी धर्मात्मा लोगों को यथार्थ प्रशंसा करनी चाहिये ॥२७॥

आजुह्वान इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराड्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आजुह्वानऽईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः।
त्वं देवानामसि यह्व होता सऽएनान्यक्षीषितो यजीयान् ॥२८॥

पदार्थः—हे (यह्व) बड़े उत्तम गुणों से युक्त (अग्ने) अग्नि के तुल्य पवित्र विद्वन् ! जो (त्वम्) आप (देवानाम्) विद्वानों के बीच (होता) दानशील (यजीयान्) अति समागम करने हारे (असि) हैं (इषितः) प्रेरणा किये हुए (एनान्) इन विद्वानों का (यक्षि) सङ्ग कीजिये (सः) सो आप (वसुभिः) निवास के हेतु विद्वानों के साथ (सजोषाः) समान प्रीति निबाहने वाले (आजुह्वानः) अच्छे प्रकार स्पर्द्धा ईर्ष्या करते हुए (ईड्यः) प्रशंसा (च) तथा (वन्द्यः) नमस्कार के योग्य इन विद्वानों के निकट (आ) (याहि) आया कीजिये ॥२८॥

भावार्थः—जो मनुष्य पवित्रात्मा प्रशसित विद्वानों के संग से आप पवित्रात्मा होव तो वे धर्मात्मा हुए सर्वत्र सत्कार को प्राप्त होवें ॥२८॥

प्राचीनमित्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । अन्तरिक्षं देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यतेऽअग्रेऽअह्नाम् ।
व्युं प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्योऽअदितये स्योनम् ॥२९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अस्याः) इस (पृथिव्याः) भूमि के बीच (प्राचीनम्) सनातन (बर्हिः) अन्तरिक्ष के तुल्य व्यापक ब्रह्म (वस्तो) दिन के प्रकाश से (वृज्यते) अलग होता (अह्नाम्) दिनों के (अग्रे) आरम्भ प्रातःकाल में (देवेभ्यः) विद्वानों (उ) और (अदितये) अविनाशी आत्मा के लिये (वितरम्) विशेषकर दुःखों से पार करनेहारे (वरीयः) अतिश्रेष्ठ (स्योनम्) सुख को (वि, प्रथते) विशेषकर प्रकट करता उस को तुम लोग (प्रदिशा) वेद शास्त्र के निर्देश से जानो और प्राप्त होओ ॥२९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वानों के लिये सुख देवें वे सर्वोत्तम सुख को प्राप्त हों जैसे आकाश सब दिशाओं और पृथिव्यादि में व्याप्त है वैसे जगदीश्वर सर्वत्र व्याप्त है । जो लोग ऐसे ईश्वर की प्रातःकाल उपासना करते वे धर्मातमा हुए विस्तीण सुखों वाले होते हैं ॥२९॥

व्यचस्वतीरित्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । स्त्रियो देवताः । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

व्यच॑स्वतीरुर्वि॒या वि श्र॑यन्तां॒ पति॑भ्यो॒ न जन॑यः॒ शुम्भ॑मानाः ।
दे॒वीर्द्वा॑रो बृहतीर्विश्वमिन्वा दे॒वेभ्यो॑ भवत सुप्राय॒णाः ॥३०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (उर्विया) अधिकता से शुभ गुणों में (व्यचस्वतीः) व्याप्ति वाली (बृहतीः) महती (विश्वमिन्वाः) सब व्यवहारों में व्याप्त (सुप्रायणाः) जिन के होने में उत्तम घर हों (देवीः) आभूषणादि से प्रकाशमान (द्वारः) दरवाजों के (न) समान अवकाश वाली (पतिभ्यः) पाणिग्रहण विवाह करने वाले (देवेभ्यः) उत्तम गुणयुक्त पतियों के लिये (शुम्भमानाः) उत्तम शोभायमान हुई (जनयः) सब स्त्रियां अपने अपने पतियों को (वि, श्रयन्ताम्) विशेष कर सेवन करें वैसे तुम लोग सब विद्याओं में व्यापक (भवत) होओ ॥३०।

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे व्यापक हुई दिशा अवकाश देने और सब के व्यवहारों की साधक होने से आनन्द देने वाली होती हैं वैसे ही आपस में प्रसन्न हुए स्त्री पुरुष उत्तम सुखों को प्राप्त हो के अन्यों के हितकारी होवें ॥३०॥

आ सुष्वयन्तीत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । स्त्रियो देवताः । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब राजप्रजा धर्म अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ सु॒ष्वय॑न्ती यज॒तेऽउपा॑केऽउ॒षासा॒नक्ता॑ सदतां॒ नि योनौ॑ ।
दि॒व्ये योष॑णे बृह॒ती सु॑रु॒क्मेऽअधि॒ श्रिय॑ꣳ शु॒क्रपि॑शं॒ दधा॑ने ॥३१॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! यदि (दिव्ये) उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाली (योषणे) दो स्त्रियों के समान (सुरुक्मे) सुन्दर शोभायुक्त (बृहती) बड़ी (अधि) अधिक (श्रियम्) शोभा वा लक्ष्मी को तथा (शुक्रपिशम्) प्रकाश और अन्धकाररूपों को (दधाने) धारण करती हुई (सुष्वयन्ती) सोती हुइयों के समान (उपाके) निकटवर्तिनी (उषासानक्ता) दिन रात (योनौ) कालरूप कारण में (नि, आ, सदताम्) निरन्तर अच्छे प्रकार चलते हैं उन को (यजते) सङ्गत करते तो अतोल शोभा को प्राप्त होओ ॥३१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे काल के साथ वर्त्तमान रातदिन एक दूसरे से सम्बद्ध विलक्षण स्वरूप से वर्त्तते हैं वैसे राजा प्रजा परस्पर प्रीति के साथ वर्त्ता करें ॥३१॥

दैव्येत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । विद्वांसो देवताः । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब कारीगर लोगों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै ।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥३२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (दैव्या) विद्वानों में कुशल (होतारा) दानशील (प्रथमा) प्रसिद्ध (सुवाचा) प्रशंसित वाणी वाले (मिमाना) विधान करते हुए (यज्ञम्) संगतिरूप यज्ञ के (यजध्यै) करने को (मनुषः) मनुष्यों को (विदथेषु) विज्ञानों में (प्रचोदयन्ता) प्रेरणा करते हुए (प्रदिशा) वेदशास्त्र के प्रमाण से (प्राचीनम्) सनातन (ज्योतिः) शिल्पविद्या के प्रकाश का (दिशन्ता) उपदेश करते हुए (कारू) दो कारीगर लोग होवें उन से शिल्प विज्ञान शास्त्र पढ़ना चाहिये ॥३२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में (कारू) शब्द में द्विवचन अध्यापक और हस्तक्रियाशिक्षक इन दो शिल्पियों के अभिप्राय से है। जो कारीगर होवें वे जितनी शिल्पविद्या जानें उतनी सब दूसरों के लिये शिक्षा करें जिससे उत्तर २ विद्या की सन्तति बढ़े ॥३२॥

आ न इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । वाग्देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विडा मनुष्वदिह चेतयन्ती ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदꣳ स्योनꣳ सरस्वती स्वपसः सदन्तु ॥३३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (भारती) शिल्पविद्या को धारण करनेहारी क्रिया (इडा) सुन्दर शिक्षित मीठी वाणी (सरस्वती) विज्ञान वाली बुद्धि (इह) इस शिल्पविद्या के ग्रहणरूप व्यवहार में (न) हम को (तूयम्) वर्धक (यज्ञम्) शिल्पविद्या के प्रकाशरूप यज्ञ को (मनुष्वत्) मनुष्य के तुल्य (चेतयन्ती) जनाती हुई हम को (आ, एतु) सब ओर से प्राप्त होवे ये पूर्वोक्त (तिस्रः) तीन (देवीः) प्रकाशमान (इदम्) इस (बर्हिः) बढ़े हुए (स्योनम्) सुखकारी काम को (स्वपसः) सुन्दर कर्मों वाले हमको (आ, सदन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त करावें ॥३३॥

भावार्थः—इस शिल्पव्यवहार में सुन्दर उपदेश और क्रियाविधि को जताना और विद्या का धारण इष्ट है। यदि इन तीन रीतियों को मनुष्य ग्रहण करें तो बड़ा सुख भोगें ॥३३॥

य इम इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । विद्वान् देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

य॒ऽइ॒मे द्यावा॑पृथि॒वी जनि॑त्री रू॒पैरपि॑ꣳशद्भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ।
त॒मद्य हो॑तरिषि॒तो यजी॑यान्दे॒वं त्वष्टा॑र॒मिह य॑क्षि वि॒द्वान् ॥३४॥

पदार्थः—हे (होतः) ग्रहण करनेवाले जन ! (यः) जो (यजीयान्) अतिसमागम करने वाला (इषितः) प्रेरणा किया हुआ (विद्वान्) सब ओर से विद्या को प्राप्त विद्वान् जैसे ईश्वर (इह) इस व्यवहार में (रूपैः) चित्र विचित्र आकारों से (इमे) इन (जनित्री) अनेक कार्यों को उत्पन्न करने वाली (द्यावापृथिवी) बिजुली और पृथिवी आदि (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (अपिंशत्) अवयवरूप करता है वैसे (तम्) उस (त्वष्टारम्) वियोग संयोग अर्थात् प्रलय उत्पत्ति करनेहारे (देवम्) ईश्वर का (अद्य) आज तू (यक्षि) संग करता है इस से सत्कार करने योग्य है ॥३४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को इस सृष्टि में परमात्मा की रचनाओं की विशेषताओं को जान के वैसे ही शिल्पविद्या का प्रयोग करना चाहिये ॥३४॥

उपावसृजेत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

ऋतु २ में होम करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उ॒पाव॑सृज॒ त्मन्या॑ सम॒ञ्जन्दे॒वानां॒ पाथ॑ऽऋतु॒था ह॒वीꣳषि॑ ।
व॒नस्पति॑ः शमि॒ता दे॒वोऽअ॒ग्निः स्वद॑न्तु ह॒व्यं मधु॑ना घृ॒तेन॑ ॥३५॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष ! तू (देवानाम्) विद्वानों के (पाथः) भोगने योग्य अन्न आदि को (मधुना) मीठे कोमल आदि रसयुक्त(घृतेन) घी आदि से (समञ्जन्) सम्यक् मिलाते हुए (त्मन्या) अपने आत्मा से (हवींषि) लेने भोजन करने योग्य पदार्थों को (ऋतुथा) ऋतु २ में (उपावसृज) यथावत् दिया कर अर्थात् होम किया कर । उस तैंने दिये (हव्यम्) भोजन के योग्य पदार्थ को (वनस्पतिः) किरणों का स्वामी सूर्य्य (शमिता) शान्तिकर्त्ता (देवः) उत्तम गुणों वाला मेघ और (अग्निः) अग्नि (स्वदन्तु) प्राप्त होवें अर्थात् हवन किया पदार्थ उन को पहुंचे ॥३५॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि शुद्ध पदार्थों का ऋतु २ में होम किया करें जिससे वह द्रव्य सूक्ष्म हो और क्रम से अग्नि, सूर्य तथा मेघ को प्राप्त होके वर्षा के द्वारा सब का उपकारी होवे ॥३५॥

सद्य इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कैसा मनुष्य सब को आनन्द कराता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्पुरोगाः ।
अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतꣳ हविरदन्तु देवाः ॥३६॥

पदार्थः– हे मनुष्यो ! जो (सद्यः) शीघ्र (जातः) प्रसिद्ध हुआ (अग्निः) विद्या से प्रकाशित विद्वान् (होतुः) ग्रहण करने हारे पुरुष के (ऋतस्य) सत्य का (प्रदिशि) जिस से निर्देश किया जाता है उस (वाचि) वाणी में (यज्ञम्) अनेक प्रकार के व्यवहार को (वि, अमिमीत) विशेष कर निर्माण करता और (देवानाम्) विद्वानों में (पुरोगाः) अग्रगामी (अभवत्) होता है (अस्य) इस के (स्वाहाकृतम्) सत्य व्यवहार से सिद्ध किये वा होम किये से बचे (हविः) भोजन के योग्य अन्नादि को (देवाः) विद्वान् लोग (अदन्तु) खायें उस को सर्वोपरि विराजमान मानो ॥३६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य सब प्रकाशक पदार्थों के बीच प्रकाशक है वैसे जो विद्वानों में विद्वान् सब का उपकारी जन होता है वही सब को आनन्द का भुगवाने वाला होता है ॥३६॥

केतुमित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । विद्वांसो देवताः । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

आप्त लोग कैसे होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्याऽअपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥३७॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष ! जैसे (मर्याः) मनुष्य (अपेशसे) जिनके सुवर्ण नहीं है उसके लिये (पेशः) सुवर्ण को और (अकेतवे) जिस को बुद्धि नहीं है उसके लिये (केतुम्) बुद्धि को करते हैं उन (उषद्भिः) होम करने वाले यजमान पुरुषों के साथ बुद्धि और धन को (कृण्वन्) करते हुए आप (सम्, अजायथाः) सम्यक् प्रसिद्ध हूजिये ॥३७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। वे ही आप्त-जन हैं जो अपने आत्मा के तुल्य अन्यों का भी सुख चाहते हैं उन्हीं के संग से विद्या की प्राप्ति अविद्या की हानि धन का लाभ और दरिद्रता का विनाश होता है ॥३७॥

जीमूतस्येवेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । विद्वान्देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

वीर राजपुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे ।
अनाविद्धया तन्वा जय त्वꣳ स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्त्तु ॥३८॥

पदार्थः—(यत्) जो (वर्मी) कवच वाला योद्धा (अनाविद्धया) जिसमें कुछ भी घाव न लगा हो उस (तन्वा) शरीर से (समदाम्) आनन्द के साथ जहां वर्त्तें उन युद्धों के (उपस्थे) समीप में (प्रतीकम्) जिससे निश्चय करे उस चिह्न को (याति) प्राप्त होता है (सः) वह (जीमूतस्येव) मेघ के निकट जैसे बिजुली वैसे (भवति) होता है। हे विद्वन्! जिस (त्वा) आप को (वर्मणः) रक्षा का (महिमा) महत्त्व (पिपर्त्तु) पाले सो (त्वम्) आप शत्रुओं को (जय) जीतिये ॥३८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे मेघ की सेना सूर्य के प्रकाश को रोकती है वैसे कवच आदि से शरीर का आच्छादन करे जैसे समीपस्थ सूर्य और मेघ का संग्राम होता है वैसे ही वीर राजपुरुषों को युद्ध और रक्षा भी करनी चाहिये ॥३८॥

धन्वनेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वीरा देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥३९॥

पदार्थः—हे वीर पुरुषो! जैसे हम लोग जो (धनुः) शस्त्र अस्त्र (शत्रोः) वैरी की (अपकामम्) कामनाओं को नष्ट (कृणोति) करता है उस (धन्वना) धनुष् आदि शस्त्र अस्त्र विशेष से (गाः) पृथिवियों को और (धन्वना) उक्त शस्त्र विशेष से (आजिम्) संग्राम को (जयेम) जीतें (धन्वना) तोप आदि शस्त्र अस्त्रों से (तीव्राः) तीव्र वेग वाली (समदः) आनन्द के साथ वर्त्तमान शत्रुओं की सेनाओं को (जयेम) जीतें (धन्वना) धनुष् से (सर्वाः) सब (प्रदिशः) दिशा प्रदिशाओं को (जयेम) जीतें वैसे तुम लोग भी इस धनुष् आदि से जीतो ॥३९॥

भावार्थः—जो मनुष्य धनुर्वेद के विज्ञान की क्रियाओं में कुशल हों तो सब जगह ही उन का विजय प्रकाशित होवे जो विद्या विनय और शूरता आदि गुणों से भूगोल के एक राज्य को चाहें तो कुछ भी अशक्य न हो ॥३९॥

वक्ष्यन्तीवेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वीरा देवताः। निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियꣳ सखायं परिषस्वजाना।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयꣳ समने पारयन्ती ॥४०॥

पदार्थः—हे वीर पुरुषो ! जो (इयम्) यह (वितता) विस्तारयुक्त (धन्वन्) धनुष् में (अधि) ऊपर लगी (ज्या) प्रत्यञ्चा तांत (वक्ष्यन्तीव) कहने को उद्यत हुई विदुषी स्त्री के तुल्य (इव) ही (आगनीगन्ति) शीघ्र बोध को प्राप्त कराती हुई जैसे (कर्णम्) जिस की स्तुति सुनी जाती (प्रियम्) प्यारे (सखायम्) मित्र के तुल्य वर्त्तमान पति को (परिषस्वजाना) सब ओर से संग करती हुई (योषेव) स्त्री बोलती वैसे (शिङ्क्ते) शब्द करती है (समने) संग्राम में (पारयन्ती) विजय को प्राप्त कराती हुई वर्त्तमान है उसके बनाने बांधने और चलाने को जानो ॥४०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य धनुष् की प्रत्यञ्चा आदि शस्त्र अस्त्रों की रचना सम्बन्ध और चलाना आदि क्रियाओं को जाने तो उपदेश करने और माता के तुल्य सुख देने वाली पत्नी और विजय सुख को प्राप्त हों ॥४०॥

त आचरन्ती इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वीरा देवताः। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तेऽआचरन्ती समनेव योषां मातेवं पुत्रं बिभृतामुपस्थे ।

अप शत्रून्विध्यताᳬं संविदानेऽआर्त्नीऽइमे विस्फुरन्तीऽअमित्रान् ॥४१॥

पदार्थः—हे वीर पुरुषो ! दो धनुष् की प्रत्यञ्चा जैसे (योषा) विदुषी (समनेव) सम्यक् प्राण के समान पति को प्यारी स्त्री स्वपति को और (मातेव) जैसे माता (पुत्रम्) अपने सन्तान को (बिभृताम्) धारण करे वैसे (उपस्थे) समीप में (आचरन्ती) अच्छे प्रकार प्राप्त हुई (शत्रुन्) शत्रुओं को (अप) (विध्यताम्) दूर तक ताड़ना करें। (इमे) ये (संविदाने) अच्छे प्रकार विज्ञान की निमित्त (आर्त्नी) प्राप्त हुई (अमित्रान्) शत्रुओं को (विस्फुरन्ती) विशेष कर चलायमान करती वर्त्तमान हैं (ते) उन दोनों का यथावत् सम्यक् प्रयोग करो अर्थात् उन को काम में लाओ ॥४१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। जैसे हृदय को प्यारी स्त्री पति को और विदुषी माता अपने पुत्र को अच्छे प्रकार पुष्ट करती हैं वैसे सम्यक् प्रसिद्ध काम देने वाली धनुष् की दो प्रत्यञ्चा शत्रुओं को पराजित कर वीरों को प्रसन्न करती हैं ॥४१॥

बह्वीनामित्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वीरा देवताः। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है ॥

बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्यं ।

इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥४२॥

पदार्थः—हे वीर पुरुषो ! जो (बह्वीनाम्) बहुत प्रत्यञ्चाओं का (पिता) पिता के तुल्य रखने वाला (अस्य) इस पिता का (बहुः) बहुत गुण वाले (पुत्रः) पुत्र के समान सम्बन्धी (पृष्ठे) पिछले भाग में (निनद्धः) निश्चित बंधा हुआ (इषुधिः) बाण जिस में धारण किये जाते वह तूणीर (प्रसूतः) उत्पन्न हुआ (समनाः) संग्रामों को (अवगत्य) प्राप्त होके (चिश्चा) चि, चि, चि ऐसा शब्द (कृणोति) करता है और जिससे वीर पुरुष (सर्वाः) सब (संकाः) इकट्ठी वा फैली हुई (पृतनाः) सेनाओं को (जयति) जीतता है उसकी यथावत् रक्षा करो ॥४२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अनेक कन्याओं और बहुत पुत्रों का पिता अपत्य शब्द से संयुक्त होता है वैसे ही धनुष् प्रत्यञ्चा और वाण मिलकर अनेक प्रकार के शब्दों को उत्पन्न करते हैं जिस के वाम हाथ में धनुष् पीठ पर वाण दाहिने हाथ से बाण को निकाल के धनुष् की प्रत्यञ्चा से संयुक्त कर छोड़ के अभ्यास से शीघ्रता करने की शक्ति को करता है वही विजयी होता है ॥४२॥

रथ इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वीरा देवताः। जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

रथे तिष्ठ॑न्नयति वा॒जिन॑: पु॒रो यत्र॑यत्र का॒मय॑ते सुषार॒थिः ।
अ॒भीशू॑नां महि॒मानं॑ पनायत॒ मन॑: प॒श्चादनु॑ यच्छन्ति र॒श्मय॑: ॥४३॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! (सुषारथिः) सुन्दर सारथि घोड़ों वा अग्न्यादि को नियम में रखनेवाला (रथे) रमण करने योग्य पृथिवी जल वा आकाश में चलाने वाले यान में (तिष्ठन्) बैठा हुआ (यत्रयत्र) जिस जिस संग्राम वा देश में (कामयते) चाहता है वहां वहां (वाजिनः) घोड़ों वा वेग वाले अग्न्यादि पदार्थों को (पुरः) आगे (नयति) चलाता है जिन का (मनः) मन अच्छा शिक्षित (रश्मयः) लगाम की रस्सी वा किरण हस्तगत हैं (पश्चात्) पीछे से घोड़ों वा अग्न्यादि का (अनु, यच्छन्ति) अनुकूल निग्रह करते हैं उन (अभीशूनाम्) सब ओर से शीघ्र चलनेहारों के (महिमानम्) महत्त्व की तुम लोग (पनायत) प्रशंसा करो ॥४३।

भावार्थः—जो राजा और राजपुरुष चक्रवर्ती राज्य और निश्चल विजय चाहें तो अच्छे शिक्षित मन्त्री अश्व आदि तथा अन्य चलाने वाली सामग्री अध्यक्षों शस्त्र अस्त्रों और शरीर आत्मा के बल को अवश्य सिद्ध करें ॥४३॥

तीव्रानित्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वीरा देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तीव्रान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः ।
अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान् क्षिणन्ति शत्रूँ१ऽरनपव्ययन्तः ।।४४।।

पदार्थः—हे वीर पुरुष ! जो (वृषपाणयः) जिन के बलवान् बैल आदि उत्तम प्राणी हाथों के समान रक्षा करने वाले हैं (रथेभिः) रमण के योग्य यानों के (सह) साथ (वाजयन्तः) वीर आदि को शीघ्र चलाने हारे (प्रपदैः) उत्तम पगों की चालों से (अमित्रान्) मित्रता रहित दुष्टों को (अवक्रामन्तः) धमकाते हुए (अश्वाः) शीघ्र चलने हारे घोड़े (तीव्रान्) तीखे (घोषान्) शब्दों को (कृण्वते) करते हैं और जो (अनपव्ययन्तः) व्यर्थ खर्च न कराते हुए योद्धा (शत्रून्) वैरियों को (क्षिणन्ति) क्षीण करते हैं उन को तुम लोग प्राण के तुल्य पालो ।।४४।।

भावार्थः—जो राजपुरुष हाथी, घोड़ा, बैल आदि भृत्यों और अध्यक्षों को अच्छी शिक्षा दे तथा अनेक प्रकार के यानों को बना के शत्रुओं के जीतने की अभिलाषा करते हैं तो उनका निश्चल दृढ़ विजय होता है ।।४४।।

रथवाहनमित्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवताः । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

रथवाहनꣳ हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म ।
तत्रा रथमुप शग्मꣳ सदेम विश्वाहा वयꣳ सुमनस्यमानाः ।।४५।।

पदार्थः—हे वीर पुरुषो ! (अस्य) इस योद्धा जन के (यत्र) जिस यान में (रथवाहनम्) जिस से विमानादि यान चलते वह (हविः) ग्रहण करने योग्य अग्नि, इन्धन, जल, काठ और धातु आदि सामग्री तथा (आयुधम्) बन्दूक तोप खड्ग धनुष् बाण शक्ति और पद्मफांसी आदि शस्त्र और (अस्य) इस योद्धा के (वर्म) कवच और (नाम) नाम (निहितम्) स्थित हैं (तत्र) उस यान में (सुमनस्यमानाः) सुन्दर विचार करते हुए (वयम्) हम लोग (शग्मम्) सुख तथा उस (रथम्) रमण योग्य यान को (विश्वाहा) सब दिन (उप, सदेम) निकट प्राप्त होवें ।।४५।।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस यान में अग्नि आदि तथा घोड़े आदि संयुक्त किये जाते उस में युद्ध की सामग्री धर नित्य उस की देख भाल कर उस में बैठ और सुन्दर विचार से शत्रुओं के साथ सम्यक् युद्ध करके नित्य सुख को प्राप्त होओ ।।४५।।

स्वादुषꣳसद इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवताः । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

स्वादुषꣳसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः ।
चित्रसेनाऽइषुबलाऽअमृध्राः सतोवीराऽउरवो व्रातसाहाः ।।४६।।

पदार्थः—हे युद्ध करने हारे वीर पुरुषो ! तुम लोग जो (स्वादुषंसदः) भोजन के योग्य अन्नादि पदार्थों को सम्यक् सेवने वाले (वयोधाः) अधिक अवस्था युक्त (कृच्छ्रेश्रितः) उत्तम कार्यों की सिद्धि के लिये कष्ट सेवते हुए (शक्तीवन्तः) सामर्थ्य वाले (गभीराः) महाशय (चित्रसेनाः) आश्चर्य गुण युक्त सेना वाले (इषुबला) शस्त्र अस्त्रों के सहित जिन की सेना (अमृध्राः) दृढ़ शरीर वाले (उरवः) बड़े बड़े जिन के जंघा और छाती (व्रातसाहाः) वीरों के समूहों को सहने वाले (सतोवीराः) विद्यमान सेना के बीच युद्धविद्या की शिक्षा को प्राप्त वीर (पितरः) पालन करने-हारे राजपुरुष हों उन का आश्रय ले युद्ध करो ।।४६।।

भावार्थः—उन्हीं का सदा विजय राज्य श्री प्रतिष्ठा बड़ी अवस्था बल और विद्या होती है जो अपने अधिष्ठाता आप्त सत्यवादी सज्जनों की शिक्षा में स्थित होते हैं ।।४६।।

ब्राह्मणास इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । धनुर्वेदाऽध्यापका देवताः । विराट्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ।।

किनका सत्कार करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवीऽअनेहसा ।
पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नोऽअघशꣳसऽईशत ।।४७।।

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (सोम्यासः) उत्तम आनन्दकारक गुणों के योग्य (ऋतावृधः) सत्य को बढ़ाने वाले (पितरः) रक्षक (ब्राह्मणासः) वेद और ईश्वर के जानने हारे विद्वान् जन(नः)हमारे लिये कल्याण करने हारे और (अनेहसा) कारणरूप से अविनाशी (द्यावापृथिवी) प्रकाश पृथिवी (शिवे) कल्याणकारी हों (पूषा) पुष्टि करने हारा परमात्मा (नः) हम को (दुरितात्) दुष्ट अन्याय के आचरण से (पातु) बचावे जिससे (नः) हम को मारने को (अघशंस) पाप की प्रशंसा करने हारा चोर (माकिः) न (ईशत) समर्थ हो उन विद्वानों की तू (रक्षा) रक्षा कर और चोरों को मार ।।४७।।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् जन तुम को धर्मयुक्त कर्त्तव्य में प्रवृत्त कर दुष्ट आचरण से पृथक् रखते दुष्टाचारियों के बल को नष्ट और हमारी पुष्टि करते वे सदैव सत्कार करने योग्य हैं ।।४७।।

सुपर्णमित्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवताः । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

फिर राजधर्म अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

सुपर्णं वस्ते मृगोऽअस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता ।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यꣳसन् ।।४८।।

पदार्थः—हे वीर पुरुषो ! (यत्र) जिस सेना में (नरः) नायक लोग हों जो (सुपर्णम्) सुन्दर पूर्ण रक्षा के साधन उस रथादि को (वस्ते) धारण करती और जहां (गोभिः) गौओं के सहित (दन्तः) जिस का दमन किया जाता उस (मृगः) कस्तूरी से युद्ध करने वाले मृग के तुल्य (इषवः) बाण आदि शस्त्र विशेष चलते हैं जो (सन्नद्धा) सम्यक् गोष्ठी बंधी (प्रसूता) प्रेरणा की हुई शत्रुओं में (पतति) गिरती (च) और इधर उधर (अस्याः) इस सेना के वीर पुरुष (सम्, द्रवन्ति) सम्यक् चलते (च) और (वि) विशेषकर दौड़ते हैं (तत्र) उस सेना में (अस्मभ्यम्) हमारे लिये आप लोग (शर्म) सुख (यंसन्) देओ ।।४८।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राजपुरुषो ! तुम लोगों को चाहिये कि शत्रुओं से न धमकने वाली रुष्ट पुष्ट सेना सिद्ध करो उसमें सुन्दर परीक्षित योद्धा और अध्यक्ष रक्खो उन शस्त्र अस्त्रों के चलाने में कुशल जनों से विजय को प्राप्त होओ ।।४८।।

ऋजीत इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वीरा देवताः। विराडनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः ।।

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

ऋजीते परि वृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः ।
सोमोऽअधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ।।४९।।

पदार्थः हे विद्वन् पुरुष ! आप (ऋजीते) सरल व्यवहार में (नः) हमारे शरीर से रोगों को (परि, वृङ्धि) सब ओर से पृथक् कीजिये जिस से (नः) हमारा (तनूः) शरीर (अश्मा) पत्थर के तुल्य दृढ़ (भवतु) हो जो (सोमः) उत्तम ओषधि है उसका और जो (अदितिः) पृथिवी है उन दोनों का आप (अधि, ब्रवीतु) साधिकार उपदेश कीजिये और (नः) हमारे लिये (शर्म) सुख वा घर (यच्छतु) दीजिये ।।४९।।

भावार्थः—जो मनुष्य ब्रह्मचर्य, औषध, पथ्य और सुन्दर नियमों के सेवन से शरीरों की रक्षा करें तो उन के शरीर दृढ़ होवें जैसे शरीरों का पृथिवी आदि का बना घर है वैसे जीव का यह शरीर घर है ।।४९।।

आजङ्घन्तीत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वीरा देवताः। विराडनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः ।।

फिर राजधर्म को कहते हैं ॥

आ जंङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ२ऽउप जिघ्नते ।
अश्वाजनि प्रचेतसोऽ श्वान्त्समत्सु चोदय ॥५०॥

पदार्थः—हे (अश्वाजनि) घोड़ों को शिक्षा देने वाली विदुषि राणी ! जैसे वीर पुरुष (एषाम्) इन घोड़े आदि के (सानु) अवयव को (आ, जङ्घन्ति) अच्छे प्रकार शीघ्र ताड़ना करते हैं (जघनान्) जघानों को (उप जिघ्नते) समीप से चलाते हैं वैसे तू (समत्सु) संग्रामों में (प्रचेतसः) शिक्षा से विशेष कर चेतन किये (अश्वान्) घोड़ों को (चोदय) प्रेरणा कर ॥५०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे राजा और राजपुरुष विमानादि रथ और घोड़ों के चलाने तथा युद्ध के व्यवहारों को जाने वैसे उनकी स्त्रियां भी जानें ॥५०॥

अहिरिवेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । महावीरः सेनापतिर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अहिंरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः ।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमांसं परि पातु विश्वतः ॥५१॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! जो (हस्तघ्नः) हाथों से मारने वाले (विद्वान्) विद्वान् (पुमान्) पुरुषार्थी आप (ज्यायाः) प्रत्यञ्चा से (हेतिम्) बाण को चला के (बाहुम्) बाधा देनेवाले शत्रु को (परिबाधमानः) सब ओर से निवृत्त करते हुए (पुमांसम्) पुरुषार्थी जन की (विश्वतः) सब प्रकार से (परि, पातु) चारों ओर से रक्षा कीजिये सो (अहिरिव) मेघ के तुल्य गर्जते हुए आप (भोगैः) उत्तम भोगों के सहित (विश्वा) सब (वयुनानि) विज्ञानों को (परि, एति) सब ओर से प्राप्त होते हो ॥५१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो विद्वान् भुजबल वाला शस्त्र अस्त्र के चलाने का ज्ञाता शत्रुओं को निवृत्त करता पुरुषार्थ से सब की सबसे रक्षा करता हुआ मेघ के तुल्य सुख और भोगों का बढ़ाने वाला हो वह सब मनुष्यों को विद्या प्राप्त कराने को समर्थ होवे ॥५१॥

वनस्पत इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । सुवीरो देवता । भुरिक् पंक्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर राजप्रजा धर्म विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूयाऽअस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।

गोभिः सन्नद्धोऽसि वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥५२॥

पदार्थः—हे (वनस्पते) किरणों के रक्षक सूर्य के समान वन आदि के रक्षक विद्वन् राजन् ! आप (अस्मत्सखा) हमारे रक्षक मित्र (प्रतरणः) शत्रुओं के बल का उल्लङ्घन करने हारे (सुवीरः) सुन्दर वीर पुरुषों से युक्त (वीड्वङ्गः) प्रशंसित अवयव वाले (हि) निश्चय कर (भूयाः) हूजिये जिस कारण आप (गोभिः) पृथिवी आदि के साथ (सन्नद्धः) सम्बन्ध रखते तत्पर (असि) हैं इसलिये हम को (वीडयस्व) दृढ़ कीजिये (ते) आप का (आस्थाता) युद्ध में अच्छे अच्छे प्रकार स्थिर रहने वाला वीर सेनापति (जेत्वानि) जीतने योग्य शत्रुओं को (जयतु) जीते ॥५२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य के साथ किरणें और किरणों के साथ सूर्य का नित्य सम्बन्ध है वैसे राजा सेना तथा प्रजाओं का सम्बन्ध होने योग्य है जो सेनापति आदि जितेन्द्रिय शूरवीर हों तो सेना और प्रजा भी वैसी ही जितेन्द्रिय होवे ॥५२॥

दिव इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरो देवता । विराड् जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

दिवः पृथिव्याः पर्योजऽउद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतꣳ सहः ।

अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रꣳ हविषा रथं यज ॥५३॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! आप (दिवः) सूर्य और (पृथिव्याः) पृथिवी से (उद्भृतम्) उत्कृष्टता से धारण किये (ओजः) पराक्रम को (परि, यज) सब ओर से दीजिये (वनस्पतिभ्यः) वट आदि वनस्पतियों से (आभृतम्) अच्छे प्रकार पुष्ट किये (सहः) बल को (परि) सब ओर से दीजिये (अपाम्) जलों के सम्बन्ध से (ओज्मानम्) पराक्रम वाले रस को (परि) चारों ओर से दीजिये तथा (इन्द्रस्य) सूर्य की (गोभिः) किरणों से (आवृतम्) युक्त चिलकते हुए (वज्रम्) वज्र के तुल्य (रथम्) यान को (हविषा) ग्रहण से सङ्गत कीजिये ॥५३॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि पृथिवी आदि भूतों और उनसे उत्पन्न हुई सृष्टि के सम्बन्ध से बल और पराक्रमों को बढ़ावें और उनके योग से विमान आदि यानों को बनाया करें ॥५३॥

इन्द्रस्येत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः ।
सेमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय ॥५४॥

पदार्थः—हे (देव) उत्तम विद्या वाले (रथ) रमणीयस्वरूप विद्वन् ! (इमाम्) इस (हव्यदातिम्) देने योग्य पदार्थों के दान को (जुषाणः) सेवते हुए (सः) पूर्वोक्त आप जो (इन्द्रस्य) बिजुली का (वज्रः) गिरना (मरुताम्) मनुष्यों की (अनीकम्) सेना (मित्रस्य) मित्र के (गर्भः) अन्तःकरण का आशय और (वरुणस्य) श्रेष्ठ जन कि (नाभिः) आत्मा का मध्यवर्त्ती विचार है उसको (नः) और हमको (हव्या) ग्रहण करने योग्य वस्तुओं को (प्रति गृभाय) प्रतिग्रह अर्थात् स्वीकार कीजिये ॥५४॥

भावार्थः—जिन मनुष्यों की सेना अतिश्रेष्ठ, बिजुली की विद्या, मित्र का आशय, आप्त सत्यवक्ताओं का विचार और विद्यादि का दान स्वीकार किये तथा दूसरों को दिये हैं वे सब ओर से मङ्गलयुक्त होवें ॥५४॥

उपश्वासयेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवताः । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयोऽअप सेध शत्रून् ॥५५॥

पदार्थः—हे (दुन्दुभे) नगाड़े के तुल्य गरजने हारे ! (सः) सो आप (इन्द्रेण) ऐश्वर्य से युक्त (देवैः) उत्तम विद्वान् वा गुणों के साथ (सजूः) संयुक्त (दूरात्) दूर से भी (दवीयः) अतिदूर (शत्रून्) शत्रुओं को (अपसेध) पृथक् कीजिये (पुरुत्रा) बहुत विध (पृथिवीम्) आकाश (उत) और (द्याम्) बिजुली के प्रकाश को (उप, श्वासय) निकट जीवन धारण कराइये आप उन अन्तरिक्ष और बिजुली से (विष्ठितम्) व्याप्त (जगत्) संसार को (मनुताम्) मानो उस (ते) आप को राज्य आनन्दित होवे ॥५५॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्युत् विद्या से हुए अस्त्रों से शत्रुओं को दूर फेंक ऐश्वर्य से विद्वानों को दूर से बुला के सत्कार करें अन्तरिक्ष और बिजुली से व्याप्त सब जगत् को जान विविध प्रकार की विद्या और क्रियाओं को सिद्ध करें वे जगत् को आनन्द कराने वाले होते हैं ॥५५॥

आक्रन्दयेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । शादयितारो वीरा देवताः । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ क्रन्दय बलमोजो नऽआधा निष्टनिहि दुरिता बाधमानः ।
अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुनाऽइतऽइन्द्रस्य मुष्टिरसि वीडयस्व ॥५६॥

पदार्थः—हे (दुन्दुभे) नगाड़ों के तुल्य जिन की सेना गर्जती ऐसे सेनापते ! (दुरिता) दुष्ट व्यसनों को (बाधमानः) निवृत्त करते हुए आप (नः) हमारे लिये (बलम्) बल को (आ, क्रन्दय) पहुंचाइये (ओजः) पराक्रम को (आ, धा) अच्छे प्रकार धारण कीजिये सेना को (निष्टनिहि) विस्तृत कीजिये जो (दुच्छुनाः) दुष्ट कुत्तों के तुल्य वर्त्तमान हैं उन को (अप, आक्रन्दय) बुरे प्रकार रुलाइये जिस कारण आप (मुष्टिः) मूठों के तुल्य प्रबन्धकर्त्ता(असि) हैं इस से (इतः)इस सेना से(इन्द्रस्य) बिजुली के अवयवों को (वीडयस्व) दृढ़ कीजिये और सुखों को (प्रोथ) पूरण कीजिये ॥५६॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि श्रेष्ठों का सत्कार करें दुष्टों को रुलावें सब मनुष्यों के दुर्व्यसनों को दूर कर के सुखों को प्राप्त करें ॥५६॥

आमूरित्यस्य भारद्वाज ऋषिः । बादयितारो वीरा देवताः । भुरिक् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आमूरज प्रत्यावर्त्तयेमाः केतुमद्दुन्दुभिर्वावदीति ।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥५७॥

पदार्थः हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्ययुक्त राजपुरुष ! आप (अमूः) उन शत्रुसेनाओं को (आ अज) अच्छे प्रकार दूर फेंकिये (केतुमत्) ध्वजा वाली (इमाः) इन अपनी सेनाओं को (प्रति, आवर्त्तय) लौटा लाओ जैसे (दुन्दुभिः) नगाड़ा (वावदीति) अत्यन्त बजता है वैसे (नः) हमारी (अश्वपर्णाः) घोड़ों का जिन में पालन हो वे सेना (सम, चरन्ति) सम्यक् विचरती हैं जो (अस्माकम्) हमारे (रथिनः) प्रशंसित रथों पर चढ़े हुए वीर (नरः) नायक जन शत्रुओं को (जयन्तु) जीतें वे सत्कार को प्राप्त हों ॥५७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजपुरुष शत्रुओं की सेनाओं को निवृत्त करने और अपनी सेनाओं को युद्ध कराने को समर्थ हों वे सर्वत्र शत्रुओं को जीत सकें ॥५७॥

आग्नेय इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। विद्वांसो देवताः। भुरिगत्यष्टिश्छन्दः।
गान्धारः स्वरः॥

अब कैसे पशु कैसे गुणों वाले होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आग्नेयः कृष्णग्रीवः सारस्वती मेषी बभ्रुः सौम्यः पौष्णः श्यामः शितिपृष्ठो बार्हस्पत्यः शिल्पो वैश्वदेवऽऐन्द्रोऽरुणो मारुतः कल्माषऽऐन्द्राग्नः संहितोऽधोरामः सावित्रो वारुणः कृष्णऽएकशितिपात्पेत्वः ॥५८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो (आग्नेयः) अग्नि देवता वाला अर्थात् अग्नि के उत्तम गुणों से युक्त है वह (कृष्णग्रीवः) काले गले वाला पशु जो (सारस्वती) सरस्वती वाणी के गुणों वाली वह (मेषी) भेड़ जो (सौम्यः) चन्द्रमा के गुणों वाला वह (बभ्रुः) धुमेला पशु जो (पौष्णः) पुष्टि आदि गुणों वाला वह (श्यामः) श्याम रंग से युक्त पशु जो (बार्हस्पत्यः) बड़े आकाशादि के पालन आदि गुणयुक्त वह (शितिपृष्ठः) काली पीठ वाला पशु जो (वैश्वदेवः) सब विद्वानों के गुणों वाला वह (शिल्पः) अनेक वर्णयुक्त जो (ऐन्द्रः) सूर्य्य के गुणों वाला वह (अरुणः) लाल रंगयुक्त जो (मारुतः) वायु के गुणों वाला वह (कल्माषः) खाखी रंग युक्त जो (ऐन्द्राग्नः) सूर्य्य अग्नि के गुणों वाला वह (संहितः) मोटे दृढ़ अंगयुक्त जो (सावित्रः) सूर्य के गुणों से युक्त वह (अधोरामः) नीचे विचरने वाला पक्षी जो (एकशितिपात्) जिस का एक पग काला (पेत्वः) उड़ने वाला और (कृष्णः) काले रंग से युक्त वह (वारुणः) जल के शान्त्यादि गुणों वाला है इस प्रकार इन सब को जानो ॥५८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिये कि जिस २ देवता वाले जो २ पशु विख्यात हैं वे २ उन २ गुणों वाले उपदेश किये हैं ऐसा जानों ॥५८॥

अग्नय इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। अग्न्यादयो देवताः। भुरिगतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

अग्नयेऽनीकवते रोहिताञ्जिरनड्वानधोरामौ सावित्रौ पौष्णौ रजतनाभी वैश्वदेवौ पिशङ्गौ तूपरौ मारुतः कल्माषऽआग्नेयः कृष्णोऽजः सारस्वती मेषी वारुणः पेत्वः ॥५९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग (अनीकवते) प्रशंसित सेना वाले (अग्नये) विज्ञान आदि गुणों के प्रकाशक सेनापति के लिये (रोहिताञ्जिः) लाल चिह्नों वाला (अनड्वान्) बैल (सावित्रौ) सूर्य के गुण वाले (अधोरामौ) नीचे भाग में श्वेत वर्ण वाले (पौष्णौ) पुष्टि आदि गुण युक्त (रजतनाभी) चांदी के वर्ण के तुल्य जिन की नाभि (वैश्वदेवौ) सब विद्वानों के सम्बन्धी (तूपरौ) मुण्डे (पिशाङ्गौ) पीले दो पशु (मारुत) वायु देवता वाला (कल्माषः) खाखी रङ्गयुक्त (आग्नेयः) अग्नि देवता वाला (कृष्णः, अजः) काला बकरा (सारस्वती) वाणी के गुणों वाली (मेषी) भेड़ और (वारुणः) जल के गुणों वाला (पेत्वः) शीघ्रगामी पशु है उन सब को गुणों के अनुकूल काम में लाओ ।।५९।।

भावार्थः—इस मन्त्र में पशुओं के जितने गुण कहे हैं वे सब एक अग्नि में इकट्ठे हैं यह जानना चाहिये ।।५९।।

अग्नय इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । पूर्वस्य विराट् प्रकृतिः, वैराजाभ्यामित्युत्तरस्य प्रकृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

कैसे मनुष्य कार्यसिद्धि कर सकते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

अग्नये गायत्राय त्रिवृते राथन्तरायाष्टाकपालऽइन्द्राय त्रैष्टुभाय पञ्चदशाय बार्हतायैकादशकपालो विश्वेभ्यो देवेभ्यो जागतेभ्यः सप्तदशेभ्यो वैरूपेभ्यो द्वादशकपालो मित्रावरुणाभ्यामानुष्टुभाभ्यामेकविꣳशाभ्यां वैराजाभ्यां पयस्या बृहस्पतये पाङ्क्ताय त्रिणवाय शाक्वराय चरुः सवित्रऽऔष्णिहाय त्रयस्त्रिꣳशाय रैवताय द्वादशकपालः प्राजापत्यश्चरुरदित्यै विष्णुपत्न्यै चरुरग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालोऽनुमत्याऽ अष्टाकपालः ।।६०।।

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिये कि (त्रिवृते) सत्व रज और तमोगुण इन तीन गुणों से युक्त (राथन्तराय) रथों अर्थात् जलयानों से समुद्रादि को तरने वाले (गायत्राय) गायत्री छन्द से जताये हुए (अग्नये) अग्नि के अर्थ (अष्टाकपालः) आठ खपरों में संस्कार किया (पञ्चदशाय) पन्द्रहवें प्रकार के (त्रैष्टुभाय) त्रिष्टुप् छन्द से प्रख्यात (बार्हताय) बड़ों के साथ सम्बन्ध रखने वाले (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (एकादशकपालः) ग्यारह खपरों में संस्कार किया पाक (विश्वेभ्यः) सब (जागतेभ्य.) जगती छन्द से जताये हुए (सप्तदशेभ्यः) सत्रहवें (वैरूपेभ्यः)

विविध रूपों वाले (देवेभ्यः) दिव्य गुणयुक्त मनुष्यों के लिये (द्वादशकपालः) बारह खपरों में संस्कार किया पाक (आनुष्टुभाभ्याम्) अनुष्टुप् छन्द से प्रकाशित हुए (एकविंशाभ्याम्) इक्कीसवें (वैराजाभ्याम्) विराट् छन्द से जताये हुए (मित्रावरुणाभ्याम्) प्राण और उदान के अर्थ (पयस्या) जलक्रिया में कुशल विद्वान् (बृहस्पतये) बड़ों के रक्षक (पाङ्क्ताय) पाङ्क्तों में श्रेष्ठ (त्रिणवाय) कर्म उपासना और ज्ञानों से स्तुति किये (शाक्वराय) शक्ति से प्रकट हुए के लिये (चरुः) पाकविशेष (औष्णिहाय) उष्णिक् छन्द से जताये हुए (त्रयस्त्रिंशाय) तेंतीसवें (रैवताय) धन के सम्बन्धी (सवित्रे) ऐश्वर्य उत्पन्न करने हारे के लिये (द्वादशकपालः) बारह खपरों में संस्कार किया (प्राजापत्यः) प्रजापति देवता वाला (चरुः) बटलोई में पका अन्न (अदित्यै) अखण्डित (विष्णुपत्न्यै) विष्णु व्यापक ईश्वर से रक्षित अन्तरिक्ष रूप के लिये (चरुः) पाक (वैश्वानराय) सब मनुष्यों में प्रकाशमान (अग्नये) बिजुलीरूप अग्नि के लिये (द्वादशकपालः) बारह खपरों में पकाया हुआ और (अनुमत्यै) पीछे मानने वाले के लिये (अष्टाकपालः) आठ खपरों में सिद्ध किया पाक बनाना चाहिये ॥६०॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्नि आदि के प्रयुक्त करने के लिये आठ प्रकार आदि के यन्त्रों को बनावें वे रचे हुए प्रसिद्ध पदार्थों से अनेक कार्यों को सिद्ध कर सकें ॥६०॥

इस अध्याय में अग्नि, विद्वान्, घर, प्राण, अपान, अध्यापक उपदेशक, वाणी, घोड़ा, अग्नि, विद्वान्, प्रशस्त पदार्थ, घर, द्वार, रात्रि, दिन, शिल्पी, शोभा, शस्त्र, अस्त्र सेना, ज्ञानियों की रक्षा, सृष्टि से उपकारग्रहण, विघ्ननिवारण, शत्रुसेना का पराजय, अपनी सेना का सङ्ग और रक्षा, पशुओं के गुण और यज्ञों का निरूपण होने से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

अब उनतीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

* ओ३म् *

अथ त्रिंशोऽध्याय आरभ्यते

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥१॥

देवेत्यस्य नारायण ऋषिः। सविता देवता। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब तीसवें अध्याय का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में ईश्वर से क्या प्रार्थना करनी चाहिये इस विषय को कहा है ॥

दे॑व॒ सवि॒तः॒ प्र सु॑व य॒ज्ञं प्र सु॑व य॒ज्ञप॑तिं॒ भगा॑य। दि॒व्यो ग॑न्ध॒र्वः के॑त॒पूः केतं॑ नः पुनातु वा॒चस्पति॒र्वाचं॑ नः स्वदतु ॥१॥

पदार्थः—हे (देव) दिव्यस्वरूप (सवितः) समस्त ऐश्वर्य से युक्त और जगत् को उत्पन्न करने हारे जगदीश्वर! जो आप (दिव्यः) शुद्ध स्वरूप में हुआ (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण करने हारा (केतपूः) विज्ञान को पवित्र करने वाला राजा (नः) हमारी (केतम्) बुद्धि को (पुनातु) पवित्र करे और जो (वाचः) वाणी का (पतिः) रक्षक (नः) हमारी (वाचम्) वाणी को (स्वदतु) मीठी चिकनी कोमल प्रिय करे उस (यज्ञपतिम्) राज्य के रक्षक राजा को (भगाय) ऐश्वर्ययुक्त धन के लिये (प्र, सुव) उत्पन्न कीजिये और (यज्ञम्) राजधर्मरूप यज्ञ को भी (प्र, सुव) सिद्ध कीजिये ॥१॥

भावार्थः—जो विद्या की शिक्षा को बढ़ाने वाला शुद्ध गुण कर्म स्वभावयुक्त राज्य की रक्षा करने को यथायोग्य ऐश्वर्य को बढ़ानेहारा धर्मात्माओं का रक्षक परमेश्वर का उपासक और समस्त शुभ गुणों से युक्त हो वही राजा होने के योग्य होता है ॥१॥

तत्सवितुरित्यस्य नारायण ऋषिः । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (नः) हमारी (धियः) बुद्धि वा कर्मों को (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे उस (सवितुः) समग्र जगत् के उत्पादक सब ऐश्वर्य तथा (देवस्य) सुख के देने हारे ईश्वर के जो (वरेण्यम्) ग्रहण करने योग्य अत्युत्तम (भर्गः) जिस से दुःखों का नाश हो उस शुद्ध स्वरूप को जैसे हम लोग (धीमहि) धारण करें वैसे (तत्) उस ईश्वर के शुद्ध स्वरूप को तुम लोग भी धारण करो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे परमेश्वर जीवों को अशुभाचरण से अलग कर शुभ आचरण में प्रवृत्त करता है वैसे राजा भी करे जैसे परमेश्वर में पितृभाव करते अर्थात् उस को पिता मानते हैं वैसे राजा को भी मानें जैसे परमेश्वर जीवों में पुत्रभाव का आचरण करता है वैसे राजा भी प्रजाओं में पुत्रवत् वर्त्तें जैसे परमेश्वर सब दोष क्लेश और अन्यायों से निवृत्त है वैसे राजा भी होवे ॥२॥

विश्वानीत्यस्य नारायण ऋषिः । सविता देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥३॥

पदार्थः—हे (देव) उत्तम गुणकर्मस्वभावयुक्त (सवितः) उत्तम गुण कर्म स्वभावों में प्रेरणा देने वाले परमेश्वर ! आप हमारे (विश्वानि) सब (दुरितानि) दुष्ट आचरण वा दुःखों को (परा, सुव) दूर कीजिये और (यत्) जो (भद्रम्) कल्याणकारी धर्मयुक्त आचरण वा सुख है (तत्) उस को (नः) हमारे लिये (आ, सुव) अच्छे प्रकार उत्पन्न कीजिये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे उपासना किया हुआ जगदीश्वर अपने भक्तों को दुष्ट आचरण से निवृत्त कर श्रेष्ठ आचरण में प्रवृत्त करता है वैसे राजा भी अधर्म से प्रजाओं को निवृत्त कर धर्म में प्रवृत्त करे और आप भी वैसा होवे ॥३॥

विभक्तारमित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । सविता देवता । गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

विभक्तारꣳ हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः। सवितारं नृचक्षसम् ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जिस (वसोः) सुखों के निवास के हेतु (चित्रस्य) आश्चर्यस्वरूप (राधसः) धन का (विभक्तारम्) विभाग करने हारे (सवितारम्) सब के उत्पादक (नृचक्षसम्) सब मनुष्यों के अन्तर्यामिस्वरूप से सब कामों के देखने हारे परमात्मा की हम लोग (हवामहे) प्रशंसा करें उस की तुम लोग भी प्रशंसा करो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राजन्! जैसे परमेश्वर अपने अपने कर्मों के अनुकूल सब जीवों को फल देता है वैसे आप भी देओ जैसे जगदीश्वर जैसा जिसका पाप वा पुण्यरूप जितना कर्म है उतना वैसा फल उसके लिये देता वैसे आप भी जिस का जैसा वस्तु वा जितना कर्म है उस को वैसा वा उतना फल दीजिये जैसे परमेश्वर पक्षपात को छोड़ के सब जीवों में वर्त्तता है वैसे आप भी हूजिये ॥४॥

ब्रह्मण इत्यस्य नारायण ऋषिः। परमेश्वरो देवता। स्वराडतिशक्वरी छन्दः। पंचमः स्वरः ॥

ईश्वर के तुल्य राजा को भी करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रं तमसे तस्करं नारकाय वीरहणं पाप्मने क्लीबमाक्रयायाऽअयोगूं कामाय पुँश्चलूमतिक्रुष्टाय मागधम् ॥५॥

पदार्थः—हे परमेश्वर वा राजन्! आप इस जगत् में (ब्रह्मणे) वेद और ईश्वर के ज्ञान के प्रचार के अर्थ (ब्राह्मणम्) वेद ईश्वर के जानने वाले को (क्षत्राय) राज्य वा राज्य की रक्षा के लिये (राजन्यम्) राजपूत को (मरुद्भ्यः) पशु आदि प्रजा के लियें (वैश्यम्) प्रजाओं में प्रसिद्ध जन को (तपसे) दुःख से उत्पन्न होने वाले सेवन के अर्थ (शूद्रम्) प्रीति से सेवा करने तथा शुद्धि करनेहारे शूद्र को सब ओर से उत्पन्न कीजिये (तमसे) अन्धकार के लिये प्रवृत्त हुए (तस्करम्) चोर को (नारकाय) दुःख बन्धन में हुए कारागार के लिये (वीरहणम्) वीरों को मारनेहारे जन को (पाप्मने) पापाचरण के लिये प्रवृत्त हुए (क्लीबम्) नपुंसक को (आक्रयायै) प्राणियों की जिसमें भागाभूगी होती उस हिंसा के अर्थ प्रवृत्त हुए (अयोगूम्) लोहे के हथियार विशेष के साथ चलनेहारे जन को (कामाय) विषय सेवन के लिये प्रवृत्त हुई (पुंश्चलूम्) पुरुषों के साथ जिस का चित्त चलायमान उस व्यभिचारिणी स्त्री को

और (अतिक्रुष्टाय) अत्यन्त निन्दा करने के लिये प्रवृत्त हुए (मागधम्) भाट को दूर पहुंचाइये ।।५।।

भावार्थः—हे राजन् ! जैसे जगदीश्वर जगत् में परोपकार के लिये पदार्थों को उत्पन्न करता और दोषों को निवृत्त करता है वैसे आप इस राज्य में सज्जनों की उन्नति कीजिये, दुष्टों को निकालिये, दण्ड और ताड़ना भी दीजिये, जिससे शुभ गुणों की प्रवृत्ति और दुष्ट व्यसनों की निवृत्ति होवे ।।५।।

नृत्तायेत्यस्य नारायण ऋषिः । परमेश्वरो देवता । निचृदष्टिश्छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ।।

फिर राजपुरुषों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं धर्माय सभाचरं नरिष्ठायै भीमलं नर्माय रेभꣳ हसाय कारिमानन्दाय स्त्रीषखं प्रमदे कुमारीपुत्रं मेधायै रथकारं धैर्य्याय तक्षाणम् ।।६।।

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! वा राजन् ! आप (नृत्ताय) नाचने के लिये (सूतम्) क्षत्रिय से ब्राह्मणी में उत्पन्न हुए सूत को (गीताय) गाने के अर्थ (शैलूषम्) गाने हारे नट को (धर्माय) धर्म की रक्षा के लिये (सभाचरम्) सभा में विचरने हारे सभापति को (नर्माय) कोमलता के अर्थ (रेभम्) स्तुति करनेहारे को (आनन्दाय) आनन्द भोगने के अर्थ (स्त्रीषखम्) स्त्री से मित्रता रखनेवाले पति को (मेधायै) बुद्धि के लिये (रथकारम्) विमानादि को रचनेहारे कारीगर को (धैर्याय) धीरज के लिये (तक्षाणम्) महीन काम करनेवाले बढ़ई को उत्पन्न कीजिये (नरिष्ठायै) अति दुष्ट नरों की गोष्ठी के लिये प्रवृत्त हुए (भीमलम्) भयंकर विषयों को ग्रहण करनेवाले को (हसाय) हंसने के अर्थ प्रवृत्त हुए (कारिम्)उपहासकर्त्ता को और (प्रमदे) प्रमाद के लिये प्रवृत्त हुए (कुमारीपुत्रम्) विवाह से पहिले व्यभिचार से उत्पन्न हुए को दूर कर दीजिये ।।६।।

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि परमेश्वर के उपदेश और राजा की आज्ञा से सब श्रेष्ठ धर्मात्मा जनों को उत्साह दें हंसी करने और भय देने वालों को निवृत्त करें अनेक सभाओं को बना के सब व्यवस्था और शिल्पविद्या की उन्नति किया करें ।।६।।

तपस इत्यस्य नारायण ऋषिः । विद्वांसो देवताः । निचृदष्टिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तपसे कौलालं मायायै कर्मार१ रूपाय मणिकार१ शुभे वप१ शरव्याया इषुकार१ हेत्यै धनुष्कारं कर्मणे ज्याकारं दिष्टाय रज्जुसर्जं मृत्यवे मृगयुमन्तकाय श्वनिनम् ॥७॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा राजन् ! आप (तपसे) वर्त्तन पकाने के ताप को झेलने के अर्थ (कौलालम्) कुम्हार के पुत्र को (मायायै) बुद्धि बढ़ाने के लिये (कर्मारम्) उत्तम शोभित काम करनेहारे को (रूपाय) सुन्दर स्वरूप बनाने के लिये (मणिकारम्) मणि के बनाने वाले को (शुभे) शुभ आचरण के अर्थ (वपम्) जैसे किसान खेत को वैसे विद्यादि शुभ गुणों के बोने वाले को (शरव्यायै) बाणों के बनाने के लिये (इषुकारम्) बाणकर्त्ता को (हेत्यै) वज्र आदि हथियार बनाने के अर्थ (धनुष्कारम्) धनुष् आदि के कर्त्ता को (कर्मणे) क्रियासिद्धि के लिये (ज्याकारम्) प्रत्यञ्चा के कर्त्ता को (दिष्टाय) और जिस से अतिरचना हो उस के लिये (रज्जुसर्जम्) रज्जु बनाने वाले को उत्पन्न कीजिये और (मृत्यवे) मृत्यु करने को प्रवृत्त हुए (मृगयुम्) व्याध को तथा (अन्तकाय) अन्त करनेवाले के हितकारी (श्वनिनम्) बहुत कुत्ते पालने वाले को अलग बसाइये ॥७॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि जैसे परमेश्वर ने सृष्टि में रचनाविशेष दिखाये हैं वैसे शिल्पविद्या से और सृष्टि के दृष्टान्त से विशेष रचना किया करें और हिंसक तथा कुत्तों के पालने वाले चाण्डालादि को दूर बसावें ॥७॥

नदीभ्य इत्यस्य नारायण ऋषिः । विद्वांसो देवताः । कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

नदीभ्यः पौञ्जिष्ठमृक्षीकाभ्यो नैषादं पुरुषव्याघ्राय दुर्मदं गन्धर्वाप्सरोभ्यो व्रात्यं प्रयुग्भ्य उन्मत्त१ सर्पदेवजनेभ्योऽप्रतिपदमयेभ्यः कितवमीर्यताया अकितवं पिशाचेभ्यो विदलकारीं यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीम् ॥८॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा राजन् ! आप (नदीभ्यः) नदियों को बिगाड़ने के लिये प्रवृत्त हुए (पौञ्जिष्ठम्) धानुक को (ऋक्षीकाभ्यः) गमन करने वाली स्त्रियों के अर्थ प्रवृत्त हुए (नैषादम्) निषाद के पुत्र को (पुरुषव्याघ्राय) व्याघ्र के तुल्य

हिंसक पुरुष के हितकारी (दुर्मदम्) दुष्ट अभिमानी को (गन्धर्वाप्सरोभ्यः) गाने नाचने वाली स्त्रियों के लिये प्रवृत्त हुए (व्रात्यम्) संस्काररहित मनुष्य को (प्रयुग्भ्यः) प्रयोग करने वालों के अर्थ प्रवृत्त हुए (उन्मत्तम्) उन्माद रोग वाले को (सर्पदेवजनेभ्यः) सांप तथा मूर्खों के लिये हितकारी (अप्रतिपदम्) संशयात्मा को (अयेभ्यः) जो पदार्थ प्राप्त किये जाते उन के लिये प्रवृत्त (कितवम्) ज्वारी को (ईर्य्यतायै) कम्पन के लिये प्रवृत्त हुए (अकितवम्) जुआ न करनेहारे को (पिशाचेभ्यः) दुष्टाचार करने से जिन की आशा नष्ट हो गई वा रुधिरसहित कच्चा मांस खाने के लिये प्रवृत्त (विदलकारीम्) पृथक् पृथक् टुकड़ों को करनेहारी को और (यातुधानेभ्यः) मार्गों से जिनके धन आता उसके लिये प्रवृत्त हुई (कण्टकीकारीम्) कांटे बोने वाली को पृथक् कीजिये ॥८॥

भावार्थः—हे राजन् ! जैसे परमेश्वर दुष्टों से महात्माओं को दूर वसाता और दुष्ट परमेश्वर से दूर वसते हैं वैसे आप दुष्टों से दूर वसो और अपने से दुष्टों को दूर वसाइये वा सुशिक्षा से श्रेष्ठ कीजिये ॥८॥

सन्धय इत्यस्य नारायण ऋषिः । विद्वान् देवता । भुरिगत्यष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सन्धये जारं गेहायोपपतिमार्त्यै परिवित्तं निर्ऋत्यै परिविविदानमराध्याऽएदिधिषुःपतिं निष्कृत्यै पेशस्कारीᳬं संज्ञानाय स्मरकारीं प्रकामोद्यायोपसदं वर्णायानुरुधं बलायोपदाम् ॥९॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा सभापति राजन् ! आप (सन्धये) परस्त्रीगमन के लिये प्रवृत्त (जारम्) व्यभिचारी को (गेहाय) गृहपत्नी के संग के लिये प्रवृत्त हुए (उपपतिम्) पति की विद्यमानता में दूसरे व्यभिचारी पति को (आर्त्यै) कामपीड़ा के लिये प्रवृत्त हुए (परिवित्तम्) छोटे भाई का विवाह होने में विना विवाहे ज्येष्ठ भाई को (निर्ऋत्यै) पृथिवी के लिये प्रवृत्त हुए(परिविविदानम्) ज्येष्ठ भाई के दाय को न प्राप्त होने पर दाय को प्राप्त हुए छोटे भाई को (अराध्यै) अविद्यमान पदार्थ को सिद्ध करने के लिये प्रवृत्त हुए (एदिधिषुः पतिम्) ज्येष्ठ पुत्री के विवाह से पहिले विवाहित हुई छोटी पुत्री के पति को(निष्कृत्यै)प्रायश्चित्त के लिये प्रवृत्त हुई(पेशस्कारीम्)शृङ्गार विशेष से रूप करनेहारी व्यभिचारिणी को(सम्, ज्ञानाय)उत्तम कामदेव को जगाने के अर्थ प्रवृत्त हुई (स्मरकारीम्) कामदेव को चेतन कराने वाली दूती को (प्रकामोद्याय) उत्कृष्ट कामों से उद्यत हुए के लिये (उपसदम्) साथी को (वर्णाय)

स्वीकार के लिये प्रवृत्त हुए (अनुरुधम्) पीछे से रोकने वाले को (वलाय) बल बढ़ाने के अर्थ (उपदाम्) नजर भेंट वा घूंस को पृथक् कीजिये ॥९॥

भावार्थः – हे राजन् ! जैसे परमेश्वर जार आदि दुष्टजनों को दंड देता वैसे आप भी इन को दण्ड दीजिये और ईश्वर पाप छोड़ने वालों पर कृपा करता है वैसे आप धार्मिक जनों पर अनुग्रह किया कीजिये ॥९॥

उत्सादेभ्य इत्यस्य नारायण ऋषिः । विद्वान् देवता । भुरिगत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उत्सादेभ्यः कुब्जं प्रमुदे वामनं द्वार्भ्यः स्रामꣳ स्वप्नायान्धमधर्माय बधिरं पवित्राय भिषजं प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शमाशिक्षायै प्रश्निनमुपशिक्षायाऽअभिप्रश्निनं मर्यादायै प्रश्नविवाकम् ॥१०॥

पदार्थः—हे परमेश्वर वा राजन् ! आप (उत्सादेभ्यः) नाश करने को प्रवृत्त हुए (कुब्जम्) कुबड़े को (प्रमुदे) प्रबल कामादि के आनन्द के लिये (वामनम्) छोटे मनुष्य को (द्वार्भ्यः) आच्छादन के अर्थ (स्रामम्) जिस के नेत्रों से निरन्तर जल निकले उस को (स्वप्नाय) सोने के लिये (अन्धम्) अन्धे को और (अधर्माय) धर्माचरण से रहित के लिये (बधिरम्) बहिरे को पृथक् कीजिये और (पवित्राय) रोग की निवृत्ति करने के अर्थ (भिषजम्) वैद्य को (प्रज्ञानाय) उत्तम ज्ञान बढ़ाने के अर्थ (नक्षत्रदर्शम्) नक्षत्रों को देखने वा इनसे उत्तम विषयों को दिखानेहारे गणितज्ञ ज्योतिषी को (आशिक्षायै) अच्छे प्रकार विद्या-ग्रहण के लिये (प्रश्निनम्) प्रशंसित प्रश्नकर्त्ता को (उपशिक्षायै) उपदेशादि विद्या के ग्रहण के लिये (अभि, प्रश्निनम्) सब ओर से बहुत प्रश्न करने वाले को और (मर्यादायै) न्याय अन्याय की व्यवस्था के लिये (प्रश्नविवाकम्) प्रश्नों के विवेचन कर उत्तर देने वाले को उत्पन्न कीजिये ॥१०॥

भावार्थः– हे राजन् ! जैसे ईश्वर पापाचरण के फल देने से लूले, लंगड़े, बौने, चिपड़े, अन्धे, बहिरे मनुष्यादि को करता और वैद्य, ज्योतिषी, अध्यापक, परीक्षक तथा प्रश्नोत्तरों के विवेचकों के अर्थ श्रेष्ठ कर्मों के फल देने से पवित्रता, बुद्धि, विद्या के ग्रहण, पढ़ने, परीक्षा लेने और प्रश्नोत्तर करने का सामर्थ्य देता है वैसे ही आप भी जिस जिस अङ्ग से मनुष्य विरुद्ध करते हैं उस उस अङ्ग पर दण्ड मारने और वैद्यादि की प्रतिष्ठा करने से राजधर्म की निरन्तर उन्नति कीजिये ॥१०॥

अर्मेभ्य इत्यस्य नारायण ऋषिः । विद्वान् देवता । स्वराडतिशक्वरी छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अर्मेभ्यो हस्तिपं जवायाश्वपं पुष्ट्यै गोपालं वीर्य्यायाविपालं तेजसेऽजपालमिरायै कीनाशं कीलालाय सुराकारं भद्राय गृहपꣳ श्रेयसे वित्तधमाध्यक्ष्यायानुक्षत्तारम् ॥११॥

पदार्थः—हे ईश्वर वा राजन् ! आप (अर्मेभ्यः) प्राप्ति कराने वालों के लिये (हस्तिपम्) हाथियों के रक्षक को (जवाय) वेग के अर्थ (अश्वपम्) घोड़ों के रक्षक शिक्षक को (पुष्ट्यै) पुष्टि रखने के लिये (गोपालम्) गौओं के पालनेहारे को (वीर्य्याय) वीर्य्य बढ़ाने के अर्थ (अविपालम्) गड़रिये को (तेजसे) तेजवृद्धि के लिये (अजपालम्) बकरे बकरियों के रक्षक को (इरायै) अन्नादि के बढ़ाने के अर्थ (कीनाशम्) खेतिहर को (कीलालाय) अन्न के लिये (सुराकारम्) सोम ओषधियों के रस को निकालने वाले को और (भद्राय) कल्याण के अर्थ (गृहपम्) घरों के रक्षक को (श्रेयसे) धर्म, अर्थ और कामना की प्राप्ति के अर्थ (वित्तधम्) धन धारण करने वालों को और (आध्यक्ष्याय) अध्यक्षों के स्वत्व के लिये (अनुक्षत्तारम्) अनुकूल सारथि को उत्पन्न कीजिये ॥११॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि अच्छे शिक्षित हाथी आदि को रखने वाले पुरुषों को ग्रहण कर इन से बहुत से व्यवहार सिद्ध करें ॥११॥

भाया इत्यस्य नारायण ऋषिः । विद्वान् देवता । विराट् पङ्क्तिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

भायै दार्वाहारं प्रभाया अग्न्येधं ब्रध्नस्य विष्टपायाभिषेक्तारं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारं देवलोकाय पेशितारं मनुष्यलोकाय प्रकरितारꣳ सर्वेभ्यो लोकेभ्यऽउपसेक्तारमवऽऋत्यै वधायोपमन्थितारं मेधाय वासःपल्पूलीं प्रकामाय रजयित्रीम् ॥१२॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा राजन् ! आप (भायै) दीप्ति के लिये (दार्वाहारम्) काष्ठों को पहुँचाने वाले को (प्रभायै) कान्ति शोभा के लिये (अग्न्येधम्) अग्नि और इन्धन को (ब्रध्नस्य) घोड़े के (विष्टपाय) मार्ग के अर्थ (अभिषेक्तारम्)

अभिषेक राजतिलक करने वाले को (वर्षिष्ठाय) अतिश्रेष्ठ (नाकाय) सब दुःखों से रहित सुखविशेष के लिये (परिवेष्टारम्) परोसने वाले को (देवलोकाय) विद्वानों के दर्शन के लिये (पेशितारम्) विद्या के अवयवों को जानने वाले को (मनुष्यलोकाय) मनुष्यपन के देखने को (प्रकरितारम्) विक्षेप करनेवाले को (सर्वेभ्यः) सब (लोकेभ्यः) लोकों के लिये (उपसेक्तारम्) उपसेचन करनेवाले को (मेधाय) सङ्गम के अर्थ (वासःपल्पूलीम्) वस्त्रों को शुद्ध करने वाली ओषधि को और (प्रकामाय) उत्तम कामना की सिद्धि के लिये (रजयित्रीम्) उत्तम रङ्ग करने वाली ओषधि को उत्पन्न प्रकट कीजिये और (अवऋत्यै) विरुद्ध प्राप्ति जिसमें हो उस (बधाय) मारने के लिये प्रवृत्त हुए (उपमन्थितारम्) ताड़नादि से पीड़ा देने वाले दुष्ट को दूर कीजिये ॥१२॥

भावार्थः—राजपुरुषादि मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वररचित सृष्टि से सब सामग्रियों को ग्रहण करें उन से शरीर का वल विद्या और न्याय का प्रकाश वड़ा सुख राज्य का अभिषेक दुःखों का विनाश विद्वानों का संग मनुष्यों का स्वभाव वस्त्रादि की पवित्रता अच्छी सिद्ध करें और विरोध को छोड़ें ॥१२॥

ऋतय इत्यस्य नारायण ऋषिः। ईश्वरो देवता। कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऋतयें स्तेनहृदयं वैरहत्याय पिशुनं विविक्त्यै क्षत्तारमौपद्रष्ट्र्यायाऽनुक्षत्तारं बलायानुचरं भूम्ने परिष्कन्दं प्रियाय प्रियवादिनमरिष्ट्याऽअश्वसादꣳ स्वर्गाय लोकाय भागदुघं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम् ॥१३॥

पदार्थः—हे परमात्मन् वा राजन्! आप (ऋतये) हिंसा करने के लिये प्रवृत्त हुए (स्तेनहृदयम्) चोर के तुल्य छली कपटी को और (वैरहत्याय) वैर तथा हत्या जिस कर्म में हो उस के लिये प्रवृत्त हुए (पिशुनम्) निन्दक को पृथक् कीजिये। (विविक्त्यै) विवेक करने के लिये (क्षत्तारम्) ताड़ना से रक्षा करने हारे धर्मात्मा को (औपद्रष्ट्र्याय) उपद्रष्टा होने के लिये (अनुक्षत्तारम्) धर्मात्मा के अनुकूलवर्त्ती को (बलाय) बल के अर्थ (अनुचरम्) सेवक को (भूम्ने) सृष्टि की अधिकता के लिये (परिष्कन्दम्) सब ओर से वीर्य्य सींचने वाले को (प्रियाय) प्रीति के अर्थ (प्रियवादिनम्) प्रियवादी को (अरिष्ट्यै) कुशलप्राप्ति के लिये (अश्वसादम्) घोड़ों के चलाने वाले को (स्वर्गाय) सुखविशेष के (लोकाय) देखने वा संचित करने के लिये (भागदुघम्) अंशों को पूर्ण करने वाले को (वर्षिष्ठाय) अतिश्रेष्ठ (नाकाय) सब दुःखों

से रहित आनन्द के लिये (परिवेष्टारम्) सब ओर से व्याप्त विद्या वाले विद्वान् को प्रकट कीजिये ॥१३॥

भावार्थः—राजा आदि उत्तम मनुष्यों को चाहिये कि दुष्टों के सङ्ग को छोड़ श्रेष्ठों का संग कर विवेक आदि को उत्पन्न कर सुखी होवें ॥१३॥

मन्यव इत्यस्य नारायण ऋषिः। राजेश्वरौ देवते। निचृदत्यष्टिश्छन्दः।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

मन्यवेऽयस्तापं क्रोधाय निसरं योगाय योक्तारꣳ शोकायाऽभिसर्त्तारं क्षेमाय विमोक्तारमुत्कूलनिकूलेभ्यस्त्रिष्ठिनं वपुषे मानस्कृतꣳ शीलायाञ्जनीकारीं निर्ऋत्यै कोशकारीं यमायासूम् ॥१४॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा सभापते राजन् ! आप (मन्यवे) आन्तर्य क्रोध के अर्थ प्रवृत्त हुए (अयस्तापम्) लोहे वा सुवर्ण को तपाने वाले को (क्रोधाय) बाह्य क्रोध के लिये प्रवृत्त हुए (निसरम्) निश्चित चलने वाले को (शोकाय) शोच के लिये प्रवृत्त हुए (अभिसर्त्तारम्) सन्मुख चलने वाले को और (यमाय) दण्ड देने के लिये प्रवृत्त हुई (असूम्) क्रोध से इधर उधर हाथ आदि फेंकने वाली को दूर कीजिये और (योगाय) योगाभ्यास के लिये (योक्तारम्) योग करने वाले को (क्षेमाय) रक्षा के लिये (विमोक्तारम्) दुःख से छुड़ाने वाले को (उत्कूलनिकूलेभ्यः) ऊपर नीचे किनारों पर चढ़ाने उतारने के लिये (त्रिष्ठिनम्) जल स्थल और आकाश में रहने वाले विमानादि यानों से युक्त पुरुष को (वपुषे) शरीरहित के लिये (मानस्कृतम्) मन से किये विचारों में प्रवीण को (शीलाय) जितेन्द्रियता आदि उत्तम स्वभाव वाले के लिये (आञ्जनीकारीम्) प्रसिद्ध क्रियाओं के करने हारे स्वभाववाली स्त्री को और (निर्ऋत्यै) भूमि के लिये (कोशकारीम्) कोश का संचय करने वाली स्त्री को उत्पन्न वा प्रकट कीजिये ॥१४॥

भावार्थः—हे राजा आदि मनुष्यो ! जो तपे लोहे के तुल्य क्रोध को प्राप्त हुए औरों को दुःख देने और धर्म नियमों को नष्ट करने वाले हों उनको दण्ड देकर योगाभ्यास करने वाले आदि का सत्कार कर सब जगह सवारी चलाने वालों को इकट्ठा कर तुम को यथावत् सुख बढ़ाना चाहिये ॥१४॥

यमायेत्यस्य नारायण ऋषिः। राजेश्वरौ देवते। विराट् कृतिश्छन्दः।
निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यमायं यमसूमथर्वभ्योऽवतोकाᳬ संवत्सरायं पर्य्यायिणीं परिवत्सरायाविंजातामिदावत्सरायातीत्वरीमिद्वत्सरायांतिष्कद्वरीं वत्सराय विजर्जराᳬ संवत्सराय पलिक्नीमृभुभ्योऽजिनसन्धᳬ साध्येभ्यश्चर्मम्नम् ॥१५॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा राजन्! आप (यमाय) नियमकर्त्ता के लिये (यमसूम्) नियन्ताओं को उत्पन्न करने वाली को (अथर्वभ्यः) अहिंसकों के लिये (अवतोकाम्) जिसकी सन्तान बाहर निकल गई हो उस स्त्री को (संवत्सराय) प्रथम संवत्सर के अर्थ (पर्यायिणीम्) सब ओर से काल के क्रम को जानने वाली को (परिवत्सराय) दूसरे वर्ष के निर्णय के लिये (अविजाताम्) ब्रह्मचारिणी कुमारी को (इदावत्सराय) तीसरे इदावत्सर में कार्य साधने के अर्थ (अतीत्वरीम्) अत्यन्त चलने वाली को (इद्वत्सराय) पांचवें इद्वत्सर के ज्ञान के अर्थ (अतिष्कद्वरीम्) अतिशय कर जानने वाली को (वत्सराय) सामान्य संवत्सर के लिये (विजर्जराम्) वृद्धा स्त्री को (संवत्सराय) चौथे अनुवत्सर के लिये (पलिक्नीम्) श्वेत केशों वाली को (ऋभुभ्यः) बुद्धिमानों के अर्थ (अजिनसन्धम्) नहीं जीतने योग्य पुरुषों से मेल रखने वाले को (साध्येभ्यः) और साधने योग्य कार्यों के लिये (चर्मम्नम्) विज्ञान शास्त्र का अभ्यास करनेवाले पुरुष को उत्पन्न कीजिये ॥१५॥

भावार्थः—प्रभव आदि ६० संवत्सरों में पांच पांच कर १२ बारह युग होते हैं उन प्रत्येक युग में क्रम से संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर और इद्वत्सर--ये पांच सञ्ज्ञा हैं। उन सब काल के अवयवों के मूल संवत्सरों को विशेष कर जो स्त्री लोग यथावत् जान के व्यर्थ नहीं गंवातीं वे सब प्रयोजनों की सिद्धि को प्राप्त होती हैं ॥१५॥

सरोभ्य इत्यस्य नारायण ऋषिः। राजेश्वरौ देवते। विराट् कृतिश्छन्दः। निषाद स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सरोभ्यो धैवरमुपस्थावराभ्यो दाशं वैशन्ताभ्यो वैन्दं नड्वलाभ्यः शौष्कलं पारायं मार्गारमवारायं केवर्त्तं तीर्थेभ्यऽआन्दं विषमेभ्यो मैनालᳬ स्वनेभ्यः पर्णकं गुहाभ्यः किरातᳬ सानुभ्यो जम्भकं पर्वतेभ्यः किम्पूरुषम् ॥१६॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा राजन्! आप (सरोभ्यः) बड़े तालाबों के लिये (धैवरम्) धीवर के लड़के को (उपस्थावराभ्यः) समीपस्थ निकृष्ट क्रियाओं के अर्थ (दाशम्) जिसको दिया जावे उस सेवक को (वैशन्ताभ्यः) छोटे छोटे जलाशयों के प्रबन्ध के लिये (बैन्दम्) निषाद के अपत्य को (नड्वलाभ्यः) नरसल वाली भूमि के लिये (शौष्कलम्) मच्छियों से जीवने वाले को और (विषमेभ्यः) विकट देशों के लिये (मैनालम्) कामदेव को रोकने वाले को (अवाराय) अपनी ओर आने के लिये (कैवर्त्तम्) जल में नौका को इस पार उस पार पहुंचाने वाले को (तीर्थेभ्यः) तरने के साधनों के लिये (आन्दम्) बांधने वाले को उत्पन्न कीजिये (पाराय) हरिण आदि की चेष्टा को समाप्त करने को प्रवृत्त हुए (मार्गारम्) व्याध के पुत्र को (स्वनेभ्यः) शब्दों के लिये (पर्णकम्) रक्षा करने में निन्दित भील को (गुहाभ्यः) गुहाओं के अर्थ (किरातम्) बहेलिये को (सानुभ्यः) शिखरों पर रहने के लिये प्रवृत्त हुए (जम्भकम्) नाश करने वाले को और (पर्वतेभ्यः) पहाड़ों से (किम्पूरुषम्) खोटे जंगली मनुष्य को दूर कीजिये ॥१६॥

भावार्थः—मनुष्य लोग ईश्वर के गुण कर्म स्वभावों के अनुकूल कर्मों से कहार आदि की रक्षा कर और बहेलिये आदि हिंसकों को छोड़ के उत्तम सुख पावें ॥१६॥

बीभत्साया इत्यस्य नारायण ऋषिः। राजेश्वरौ देवते। विराड् धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

बीभत्सायै पौल्कसं वर्णाय हिरण्यकारं तुलायै वाणिजं पश्चादोषाय ग्लाविनं विश्वेभ्यो भूतेभ्यः सिध्मलं भूत्यै जागरणमभूत्यै स्वपनमार्त्यै जनवादिनं व्यृद्ध्याऽअपगल्भꣳ संꣳशराय प्रच्छिदम् ॥१७॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा राजन्! आप (बीभत्सायै) धमकाने के लिये प्रवृत्त हुए (पौल्कसम्) भंगी के पुत्र को (पश्चादोषाय) पीछे दोष देने को प्रवृत्त हुए (ग्लाविनम्) हर्ष को नष्ट करने वाले को (अभूत्यै) दरिद्रता के अर्थ समर्थ (स्वपनम्) सोने को (व्यृद्ध्यै) संपत् के बिगाड़ने के अर्थ प्रवृत्त हुए (अपगल्भम्) प्रगल्भतारहित पुरुष को तथा (संशराय) सम्यक् मारने के लिये प्रवृत्त हुए (प्रच्छिदम्) अधिक छेदन करने वाले को पृथक् कीजिये और (वर्णाय) सुन्दर रूप बनाने के लिये (हिरण्यकारम्) सुनार वा सुवर्ण को (तुलायै) तोलने के अर्थ (वाणिजम्) बणिये के पुत्र को (विश्वेभ्यः) सब (भूतेभ्यः) प्राणियों के लिये (सिध्मलम्) सुख सिद्ध करने

वाले जिस के सहायी हों उस जन को (भूत्यै) ऐश्वर्य्य होने के अर्थ (जागरणम्) प्रबोध को और (आर्त्यै) पीड़ा की निवृत्ति के लिये (जनवादिनम्) मनुष्यों की प्रशंसा के योग्य वाद विवाद करने वाले उत्तम मनुष्य को उत्पन्न वा प्रकट कीजिये ॥१७॥

भावार्थः—जो मनुष्य नीचों का संग छोड़ के उत्तम पुरुषों की सङ्गति करते हैं वे सब व्यवहारों की सिद्धि से ऐश्वर्य वाले होते हैं जो अनालसी होके सिद्धि के लिये यत्न करते वे सुखी और जो आलसी होते वे दरिद्रता को प्राप्त होते हैं ॥१७॥

अक्षराजायेत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरो देवते । निचृत्प्रकृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अक्षराजायं कितवं कृतायादिनवदर्शं त्रेतायै कल्पिनं द्वापरायाधिकल्पिनमास्कन्दाय सभास्थाणुं मृत्यवे गोव्यच्छमन्तकाय गोघातं क्षुधे यो गां विकृन्तन्तं भिक्षमाणऽउप तिष्ठति दुष्कृताय चरकाचार्य्यं पाप्मने सैलगम् ॥१८॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! वा राजन् ! आप (अक्षराजाय) पासों से खेलने वालों के प्रधान के हितकारी (कितवम्) जुआ करने वाले को (मृत्यवे) मारने के अर्थ (गोव्यच्छम्) गौओं में बुरी चेष्टा करने वाले को (अन्तकाय) नाश के अर्थ (गोघातम्) गौओं के मारने वाले को (क्षुधे) क्षुधा के लिये (यः) जो (गाम्) गौ को मारता उस (विकृन्तन्तम्) काटते हुए को जो (भिक्षमाणः) भीख मांगता हुआ (उपतिष्ठति) उपस्थित होता है (दुष्कृताय) दुष्ट आचरण के लिये प्रवृत्त हुए उस (चरकाचार्य्यम्) भक्षण करने वालों के गुरु को (पाप्मने) पापी के हितकारी (सैलगम्) दुष्ट के पुत्र को दूर कीजिये (कृताय) किये हुए के अर्थ (आदिनवदर्शम्) आदि में नवीनों को देखने वाले को (त्रेतायै) तीन के होने के अर्थ (कल्पिनम्) प्रशंसित सामर्थ्य वाले को (द्वापराय) दो जिस के इधर सम्बन्धी हों उस के अर्थ (अधिकल्पिनम्) अधिकतर सामर्थ्ययुक्त को और (आस्कन्दाय) अच्छे प्रकार सुखाने के अर्थ (सभास्थाणुम्) सभा में स्थिर होने वाले को प्रकट वा उत्पन्न कीजिये ॥१८॥

भावार्थः—जो मनुष्य ज्योतिषी आदि सत्याचारियों का सत्कार करते और दुष्टाचारी गोहत्यारे आदि को ताड़ना देते हैं वे राज्य करने को समर्थ होते हैं ॥१८॥

प्रतिश्रुत्काया इत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते । भुरिग्धृतिश्छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रतिश्रुत्कायाऽअर्त्तनं घोषाय भषमन्ताय बहुवादिनमनन्ताय मूकꣳ शब्दायाडम्बराघातं महसे वीणावादं क्रोशाय तूणवध्ममवरस्पराय शङ्खध्मं वनाय वनपमन्यतोऽरण्याय दावपम् ॥१९॥

पदार्थः—हे परमेश्वर वा राजन् ! आप (प्रतिश्रुत्कायै) प्रतिज्ञा करने वाली के अर्थ (अर्त्तनम्) प्राप्ति कराने वाले को (घोषाय) घोषणे के लिये (भषम्) सब ओर से बोलने वाले को (अन्ताय) समीप वा मर्य्यादा वाले के लिये (बहुवादिनम्) बहुत बोलने वाले को (अनन्ताय) मर्यादा रहित के लिये (मूकम्) गूंगे को (महसे) बड़े के लिये (वीणावादम्) वीणा बजाने वाले को (अवरस्पराय) नीचे के शत्रुओं के अर्थ (शङ्खध्मम्) शङ्ख बजाने वाले को और (वनाय) वन के लिये (वनपम्) जङ्गल की रक्षा करने वाले को उत्पन्न वा प्रकट कीजिये (शब्दाय) शब्द करने को प्रवृत्त हुए (आडम्बराघातम्) हल्ला गुल्ला करने वाले को (क्रोशाय) कोशने को प्रवृत्त हुए (तूणवध्मम्) बाजे विशेष को बजाने वाले को (अन्यतोरण्याय) अन्य अर्थात् ईश्वरीय सृष्टि से जहां वन हों उस देश की हानि के लिये (दावपम्) वन को जलाने वाले को दूर कीजिये ॥१९॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अपने स्त्री पुरुष आदि के साथ पढ़ाने और संवाद करने आदि व्यवहारों को सिद्ध करें ॥१९॥

नर्मायेत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते । भुरिगतिजगति छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

नर्माय पुँश्चलूꣳ हसाय कारिं यादसे शाबल्यां ग्रामण्यं गणकमभिक्रोशकं तान्महसे वीणावादं पाणिघ्नं तूणवध्मं तान्नृत्तायानन्दाय तलवम् ॥२०॥

पदार्थः—हे परमेश्वर वा राजन् ! आप (नर्माय) क्रीड़ा के लिये प्रवृत्त हुई (पुंश्चलूम्) व्यभिचारिणी स्त्री को (हसाय) हंसने को प्रवृत्त हुए (कारिम्) विक्षिप्त पागल को और (यादसे) जलजन्तुओं के मारने को प्रवृत्त हुई (शाबल्याम्) कबरे मनुष्य की कन्या को दूर कीजिये । (ग्रामण्यम्) ग्रामाधीश (गणकम्) ज्योतिषी

और (अभिक्रोशकम्) सब ओर से बुलाने वाले जन (तान्) इन सब को (महसे) सत्कार के अर्थ (वीणावादम्) वीणा बजाने (पाणिघ्नम्) हाथों से वादित्र बजाने और (तूणवध्मम्) तूणवनामक बाजे को बजाने वाले (तान्) उन सब को (नृत्ताय) नाचने के लिये और (आनन्दाय) आनन्द के अर्थ (तलवम्) ताली आदि बजाने वाले को उत्पन्न वा प्रसिद्ध कीजिये ॥२०॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि हंसी और व्यभिचारादि दोषों को छोड़ और गाने बजाने नाचने आदि की शिक्षा को प्राप्त होके आनन्दित होवें ॥२०॥

अग्नय इत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते । भुरिगत्यष्टिश्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्नये पीवानं पृथिव्यै पीठसर्पिणं वायवे चाण्डालमन्तरिक्षाय वꣳशनर्त्तिनं दिवे खलतिꣳ सूर्य्याय हर्य्यक्षं नक्षत्रेभ्यः किर्मिरं चन्द्रमसे किलासमह्ने शुक्लं पिङ्गाक्षꣳरात्र्यै कृष्णं पिङ्गाक्षम् ॥२१॥

पदार्थः—हे परमेश्वर वा राजन् ! आप (अग्नये) अग्नि के लिये (पीवानम्) मोटे पदार्थ को (पृथिव्यै) पृथिवी के लिये (पीठसर्पिणम्) विना पगों के कढ़िरि के चलने वाले सांप आदि को (अन्तरिक्षाय) आकाश और पृथिवी के बीच में खेलने को (वंशनर्त्तिनम्)बांस से नाचने वाले नट आदि को(सूर्याय) सूर्य के ताप प्रकाश मिलने के लिये (हर्यक्षम्) बांदर की सी छोटी आंखों वाले शीतप्राय देशी मनुष्यों को (चन्द्रमसे) चन्द्रमा के तुल्य आनन्द देने के लिये (किलासम्) थोड़े श्वेतवर्ण वाले को और (अह्ने) दिन के लिये (शुक्लम्) शुद्ध (पिङ्गलम्) पीली आंखों वाले को उत्पन्न कीजिये (वायवे) वायु के स्पर्श के अर्थ (चाण्डालम्) भंगी को (दिवे) क्रीड़ा के अर्थ प्रवृत्त हुए (खलतिम्) गंजे को (नक्षत्रेभ्यः) राज्य विरोध के लिये प्रवृत्त हुओं के लिये (किर्मिरम्) कबरों को और (रात्र्यै) अन्धकार के लिये प्रवृत्त हुए (कृष्णम्) काले रंग वाले (पिङ्गाक्षम्) पीले नेत्रों से युक्त पुरुष को दूर कीजिये ॥२१॥

भावार्थः—अग्नि स्थूल पदार्थों के जलाने को समर्थ होता है सूक्ष्म को नहीं । पृथिवी पर निरन्तर सर्पादि फिरते हैं किन्तु पक्षी आदि नहीं । भङ्गी के शरीर से आया वायु दुर्गन्धयुक्त होने से सेवने योग्य नहीं होता इत्यादि तात्पर्य्य जानना चाहिये ॥२१॥

अथैतानित्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते । निचृत्कृतिश्छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अथैतानष्टौ विरूपाना लंभतेऽतिदीर्घं चातिह्रस्वं चातिस्थूलं चातिकृशं चातिशुक्लं चातिकृष्णं चातिकुल्वं चातिलोमशं च । अशूद्राऽअब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः । मागधः पुँश्चली कितवः क्लीबोऽशूद्राऽअब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः ॥२२॥

पदार्थः—हे राजा लोगो ! जैसे विद्वान् (अतिदीर्घम्) बहुत बड़े (च) और (अतिह्रस्वम्)बहुत छोटे (च) और (अतिस्थूलम्) बहुत मोटे (च) और (अतिकृशम्) बहुत पतले (च) और (अतिशुक्लम्) अतिश्वेत (च) और (अतिकृष्णम्) बहुत काले (च) और (अतिकुल्वम्) लोमरहित (च) और (अतिलोमशम्) बहुत लोमों वाले की (च) भी (एतान्) इन (विरूपान्) अनेक प्रकार के रूपों वाले (अष्टौ) आठों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम लोग भी प्राप्त होओ (अथ) इस के अनन्तर जो (अशूद्राः) शूद्रभिन्न (अब्राह्मणाः) तथा ब्राह्मण भिन्न (प्राजापत्याः) प्रजापति देवता वाले हैं (ते) वे भी प्राप्त हों जो (मागधः) मनुष्यों में निन्दित जो (पुंश्चली) व्यभिचारिणी (कितवः) जुआरी (क्लीवः) नपुंसक (अशूद्राः) जिन में शूद्र और (अब्राह्मणाः) ब्राह्मण नहीं उन को दूर बसाना चाहिये और जो (प्राजापत्याः) राजा वा ईश्वर के सम्बन्धी हैं (ते) वे समीप में बसने चाहियें ॥२२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् लोग छोटे बड़े पदार्थों को जान के यथायोग्य व्यवहार को सिद्ध करते हैं वैसे और लोग भी करें । सब लोगों को चाहिये कि प्रजा के रक्षक ईश्वर और राजा की आज्ञा का सेवन तथा उपासना नित्य किया करें ॥२२॥

इस अध्याय में परमेश्वर के स्वरूप और राजा के कृत्य का वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह तीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

---

* ओ३म् *

अथैकत्रिंशत्तमाऽध्यायारम्भः

—:०:ॐ:०:ॐ:—

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआसु॑व ॥

सहस्रशीर्षेत्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब इकतीसवें अध्याय का आरम्भ है । उस के प्रथम मन्त्र में परमात्मा की उपासना स्तुतिपूर्वक सृष्टिविद्या के विषय को कहते हैं ॥

सह॒स्र॑शीर्षा॒ पुरु॑षः सहस्रा॒क्षः स॒हस्र॑पात् ।
स भूमि॑ᳪ स॒र्वत॑ स्पृ॒त्वाऽत्य॑तिष्ठद्दशाङ्गु॒लम् ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (सहस्रशीर्षा) सब प्राणियों के हजारों शिर (सहस्राक्षः) हजारों नेत्र और (सहस्रपात्) असंख्य पाद जिस के बीच में हैं ऐसा (पुरुषः) सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक जगदीश्वर है (सः) वह (सर्वतः) सब देशों से (भूमिम्) भूगोल में (स्पृत्वा) सब ओर से व्याप्त हो के (दशाङ्गुलम्) पांच स्थूल भूत पांच सूक्ष्म भूत ये दश जिस के अवयव हैं उस सब जगत् को (अति, अतिष्ठत्) उल्लंघकर स्थित होता अर्थात् सब से पृथक् भी स्थिर होता है ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस पूर्ण परमात्मा में हम मनुष्य आदि के असंख्य शिर आँखें पग आदि अवयव हैं जो भूमि आदि से उपलक्षित हुए पांच स्थूल और पांच सूक्ष्म भूतों से युक्त जगत् को अपनी सत्ता से पूर्ण कर जहां जगत् नहीं वहां भी पूर्ण हो रहा है उस सब जगत् के बनानेवाले परिपूर्ण सच्चिदानन्दस्वरूप नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव परमेश्वर को छोड़ के अन्य की उपासना तुम कभी न करो किन्तु उस ईश्वर की उपासना से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करो ॥१॥

पुरुष इत्यस्य नारायण ऋषिः । ईशानो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

पुरुषऽएवेद९ँ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (भूतम्) उत्पन्न हुआ (च) और (यत्) जो (भाव्यम्) उत्पन्न होने वाला (उत) और (यत्) जो (अन्नेन) पृथिवी आदि के सम्बन्ध से (अतिरोहति) अत्यन्त बढ़ता है उस (इदम्) इस प्रत्यक्ष परोक्ष रूप (सर्वम्) समस्त जगत् को (अमृतत्वस्य) अविनाशी मोक्षसुख वा कारण का (ईशानः) अधिष्ठाता (पुरुषः) सत्य गुण कर्म स्वभावों से परिपूर्ण परमात्मा (एव) ही रचता है ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस ईश्वर ने जब २ सृष्टि हुई तब २ रची इस समय धारण करता फिर विनाश करके रचेगा । जिसके आधार से सब वर्त्तमान है और बढ़ता है उसी सब के स्वामी परमात्मा की उपासना करो इससे भिन्न की नहीं ॥२॥

एतावानित्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (अस्य) इस जगदीश्वर का (एतावान्) यह दृश्य अदृश्य ब्रह्माण्ड (महिमा) महत्त्वसूचक है (अतः) इस ब्रह्माण्ड से यह (पूरुषः) परिपूर्ण परमात्मा (ज्यायान्) अति प्रशंसित और बड़ा है (च) और (अस्य) इस ईश्वर के (विश्वा) सब (भूतानि) पृथिव्यादि चराचर जगत् एक (पादः) अंश है और (अस्य) इस जगत्स्रष्टा का (त्रिपात्) तीन अंश (अमृतम्) नाशरहित महिमा (दिवि) द्योतनात्मक अपने स्वरूप में है ॥३॥

भावार्थः—यह सब सूर्य्य चन्द्रादि लोकलोकान्तर चराचर जितना जगत् है वह सब चित्र विचित्र रचना के अनुमान से परमेश्वर के महत्व को सिद्ध कर उत्पत्ति स्थिति और प्रलय रूप से तीनों काल में घटने बढ़ने से भी परमेश्वर के एक चतुर्थांश में ही रहता किन्तु इस ईश्वर के चौथे अंश की भी अवधि को नहीं पाता । और इस ईश्वर के सामर्थ्य के तीन अंश अपने अविनाशि मोक्षस्वरूप में सदैव रहते हैं । इस कथन से उस ईश्वर का

अनन्तपन नहीं विगड़ता किन्तु जगत् की अपेक्षा उसका महत्त्व और जगत् का न्यूनत्व जाना जाता है ॥३॥

त्रिपादित्यस्य नारायण ऋषिः। पुरुषो देवता। अनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः।

ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥४॥

पदार्थः—पूर्वोक्त (त्रिपात्) तीन अंशों वाला (पुरुषः) पालक परमेश्वर (ऊर्ध्वः) सब से उत्तम मुक्तिस्वरूप संसार से पृथक् (उत्, ऐत्) उदय को प्राप्त होता है। (अस्य) इस पुरुष का (पादः) एक भाग (इह) इस जगत् में (पुनः) वार वार उत्पत्ति प्रलय के चक्र से (अभवत्) होता है (ततः) इसके अनन्तर (साशनानशने) खाने वाले चेतन और न खाने वाले जड़ इन दोनों के (अभि) प्रति (विष्वङ्) सर्वत्र प्राप्त होता हुआ (वि, अक्रामत्) विशेष कर व्याप्त होता है ॥४॥

भावार्थः—यह पूर्वोक्त परमेश्वर कार्य जगत् से पृथक् तीन अंश से प्रकाशित हुआ एक अंश अपने सामर्थ्य से सब जगत् को वार २ उत्पन्न करता है पीछे उस चराचर-जगत् में व्याप्त होकर स्थित है ॥४॥

ततो विराडित्यस्य नारायण ऋषिः। स्रष्टा देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः।

स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! (ततः) उस सनातन पूर्ण परमात्मा से (विराट्) विविध प्रकार के पदार्थों से प्रकाशमान विराट् ब्रह्माण्डरूप संसार (अजायत) उत्पन्न होता (विराजः) विराट् संसार के (अधि) ऊपर अधिष्ठाता (पूरुषः) परिपूर्ण परमात्मा होता है (अथो) इसके अनन्तर (सः) वह पुरुष (पुरः) पहिले से (जातः) प्रसिद्ध हुआ (अति, अरिच्यत) जगत् से अतिरिक्त होता है (पश्चात्) पीछे (भूमिम्) पृथिवी को उत्पन्न करता है उसको जानो ॥५॥

भावार्थः—परमेश्वर ही से सब समष्टिरूप जगत् उत्पन्न होता है वह उस जगत् से पृथक् उसमें व्याप्त भी हुआ उसके दोषों से लिप्त न होके इस सब का अधिष्ठाता है। इस प्रकार सामान्य कर जगत् की रचना कह के विशेष कर भूमि आदि की रचना को क्रम से कहते हैं ॥५॥

तस्मादित्यस्य नारायण ऋषिः। पुरुषो देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! (तस्मात्) उस पूर्वोक्त (सर्वहुतः) जो सब से ग्रहण किया जाता उस (यज्ञात्) पूजनीय पुरुष परमात्मा से सब (पृषदाज्यम्) दध्यादि भोगने योग्य वस्तु (सम्भृतम्) सम्यक् सिद्ध उत्पन्न हुआ (ये) जो (आरण्याः) वन के सिंह आदि (च) और (ग्राम्याः) ग्राम में हुए गौ आदि हैं (तान्) उन (वायव्यान्) वायु के तुल्य गुणों वाले (पशून्) पशुओं को जो (चक्रे) उत्पन्न करता है उसको तुम लोग जानो॥६॥

भावार्थः—जिस सब को ग्रहण करने योग्य, पूजनीय परमेश्वर ने सब जगत् के हित के लिये दही आदि भोगने योग्य पदार्थों और ग्राम के तथा वन के पशु बनाये हैं उसकी सब लोग उपासना करो॥६॥

तस्मादित्यस्य नारायण ऋषिः। स्रष्टेश्वरो देवता। अनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऽऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दाꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! तुम को चाहिये कि (तस्मात्) उस पूर्ण (यज्ञात्) अत्यन्त पूजनीय (सर्वहुतः) जिसके अर्थ सब लोग समस्त पदार्थों को देते वा समर्पण करते उस परमात्मा से (ऋचः) ऋग्वेद (सामानि) सामवेद (जज्ञिरे) उत्पन्न होते (तस्मात्) उस परमात्मा से (छन्दांसि) अथर्ववेद (जज्ञिरे) उत्पन्न होता और (तस्मात्) उस पुरुष से (यजुः) यजुर्वेद (अजायत) उत्पन्न होता है उसको जानो॥७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! आप लोग जिससे सब वेद उत्पन्न हुए हैं उस परमात्मा की उपासना करो वेदों को पढ़ो और उसकी आज्ञा के अनुकूल वर्त्त के सुखी होओ॥७॥

तस्मादित्यस्य नारायण ऋषिः। पुरुषो देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तस्मादश्वाऽअजायन्त ये के चौभयादंतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाताऽअजावयः ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को (अश्वाः) घोड़े तथा (ये) जो (के) कोई (च) गदहा आदि (उभयादतः) दोनों ओर ऊपर नीचे दांतों वाले हैं वे (तस्मात्) उस परमेश्वर से (अजायन्त) उत्पन्न हुए (तस्मात्) उसी से (गावः) गौवें यह एक ओर दांतवालों का उपलक्षण है इससे अन्य भी एक ओर दांतवाले लिये जाते हैं) (ह) निश्चय कर (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए और (तस्मात्) उससे (अजावयः) बकरी भेड़ (जाताः) उत्पन्न हुए हैं इस प्रकार जानना चाहिये ॥८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग गौ घोड़े आदि ग्राम के सब पशु जिस सनातन पूर्ण पुरुष परमेश्वर से ही उत्पन्न हुए हैं उसकी आज्ञा का उल्लङ्घन कभी मत करो ॥८॥

तं यज्ञमित्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवाऽअयजन्त साध्याऽऋषयश्च ये ॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (ये) जो (देवाः) विद्वान् (च) और (साध्याः) योगाभ्यास आदि साधन करते हुए (ऋषयः) मन्त्रार्थ जाननेवाले ज्ञानी लोग जिस (अग्रतः) सृष्टि से पूर्व (जातम्) प्रसिद्ध हुए (यज्ञम्) सम्यक् पूजने योग्य (पुरुषम्) पूर्ण परमात्मा को (बर्हिषि) मानस ज्ञान यज्ञ में (प्र, औक्षन्) सींचते अर्थात् धारण करते हैं वे ही (तेन) उसके उपदेश किये हुए वेद से और (अयजन्त) उसका पूजन करते हैं (तम्) उसको तुम लोग भी जानो ॥९॥

भावार्थः—विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि सृष्टिकर्त्ता ईश्वर का योगाभ्यासादि से सदा हृदयरूप अवकाश में ध्यान और पूजन किया करें ॥९॥

यत्पुरुषमित्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्यासीत्किं बाहू किमूरू पादाऽउच्येते ॥१०॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! आप (यत्) जिस (पुरुषम्) पूर्ण परमेश्वर को (वि, अदधुः) विविध प्रकार से धारण करते हो उसको (कतिधा) कितने प्रकार से (वि, अकल्पयन्) विशेषकर कहते हैं और (अस्य) इस ईश्वर की सृष्टि में (मुखम्) मुख के समान श्रेष्ठ (किम्) कौन (आसीत्) है (बाहू) भुजबल का धारण करने वाला (किम्) कौन (ऊरू) घोंटू के कार्य्य करनेहारे और (पादौ) पांव के समान निचले स्थान के (किम्) कौन (उच्येते) कहे जाते हैं ॥१०॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! इस संसार में असंख्य सामर्थ्य ईश्वर का है उस समुदाय में उत्तम अङ्ग मुख और बाहू आदि अङ्ग कौन हैं ? यह कहिये ॥१०॥

ब्राह्मण इत्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्या शूद्रोऽअजायत ॥११॥

पदार्थः—हे जिज्ञासु लोगो ! तुम (अस्य) इस ईश्वर की सृष्टि में (ब्राह्मणः) वेद ईश्वर का ज्ञाता इनका सेवक वा उपासक (मुखम्) मुख के तुल्य उत्तम ब्राह्मण (आसीत्) है (बाहू) भुजाओं के तुल्य बल पराक्रमयुक्त (राजन्यः) राजपूत (कृतः) किया (यत्) जो (ऊरू) जांघों के तुल्य वेगादि काम करने वाला (तत्) वह (अस्य) इसका (वैश्यः) सर्वत्र प्रवेश करनेहारा वैश्य है (पद्भ्याम्) सेवा और अभिमान रहित होने से (शूद्रः) मूर्खपन आदि गुणों से युक्त शूद्र (अजायत) उत्पन्न हुआ ये उत्तर क्रम से जानो ॥११॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्या और शमदमादि उत्तम गुणों में मुख के तुल्य उत्तम हों वे ब्राह्मण, जो अधिक पराक्रम वाले भुजा के तुल्य कार्य्यों को सिद्ध करने हारे हों वे क्षत्रिय, जो व्यवहार विद्या में प्रवीण हों वे वैश्य और जो सेवा में प्रवीण विद्याहीन पगों के समान मूर्खपन आदि नीच गुण-युक्त हैं वे शूद्र करने और मानने चाहिये ॥११॥

चन्द्रमा इत्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥१२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! इस पूर्ण ब्रह्म के (मनसः) ज्ञानस्वरूप सामर्थ्य से (चन्द्रमाः) चन्द्रलोक (जातः) उत्पन्न हुआ (चक्षोः) ज्योतिस्वरूप सामर्थ्य से (सूर्य्यः) सूर्य्यमण्डल (अजायत) उत्पन्न हुआ (श्रोत्रात्) श्रोत्र नाम अवकाशरूप सामर्थ्य से (वायुः) वायु (च) तथा आकाश प्रदेश (च) और (प्राणः) जीवन के निमित्त दश प्राण और (मुखात्) मुख्य ज्योतिर्मय भक्षणस्वरूप सामर्थ्य से (अग्निः) अग्नि (अजायत) उत्पन्न हुआ है ऐसा तुम को जानना चाहिये ॥१२॥

भावार्थः—जो यह सब जगत् कारण से ईश्वर ने उत्पन्न किया है उसमें चन्द्रलोक मनरूप सूर्य्यलोक नेत्ररूप वायु और प्राण श्रोत्र के तुल्य मुख के तुल्य अग्नि ओषधि और वनस्पति रोमों के तुल्य नदी नाड़ियों के तुल्य और पर्वतादि हड्डी के तुल्य हैं ऐसा जानना चाहिये ॥१२॥

नाभ्या इत्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

नाभ्याऽआसीदन्तरिक्षꣳ शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ२ऽअकल्पयन् ॥१३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे इस पुरुष परमेश्वर के (नाभ्याः) अवकाशरूप मध्यम सामर्थ्य से (अन्तरिक्षम्) लोकों के बीच का आकाश (आसीत्) हुआ (शीर्ष्णः) शिर के तुल्य उत्तम सामर्थ्य से (द्यौः) प्रकाशयुक्त लोक (पद्भ्याम्) पृथिवी के कारणरूप सामर्थ्य से (भूमिः) पृथिवी (सम्, अवर्त्तत) सम्यक् वर्त्तमान हुई और (श्रोत्रात्) अवकाशरूप सामर्थ्य से (दिशः) पूर्व आदि दिशाओं को (अकल्पयन्) कल्पना करते हैं (तथा) वैसे ही ईश्वर के सामर्थ्य से अन्य (लोकान्) लोकों को उत्पन्न हुए जानो ॥१३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो जो इस सृष्टि में कार्यरूप वस्तु है वह वह सब विराट्रूप कार्यकारण का अवयवरूप है ऐसा जानना चाहिये ॥१३॥

यत्पुरुषेणेत्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।

वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्मऽइध्मः शरद्धविः ॥१४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्) जब (हविषा) ग्रहण करने योग्य (पुरुषेण) पूर्ण परमात्मा के साथ (देवाः) विद्वान् लोग (यज्ञम्) मानसज्ञान यज्ञ को (अतन्वत) विस्तृत करते हैं (अस्य) इस यज्ञ के (वसन्तः) पूर्वाह्ण काल ही (आज्यम्) घी (ग्रीष्म.) मध्याह्न काल (इध्मः) इन्धन प्रकाशक और (शरत्) आधी रात (हविः) होमने योग्य पदार्थ (आसीत्) है। ऐसा जानो ॥१४॥

भावार्थः—जब बाह्य सामग्री के अभाव में विद्वान् लोग सृष्टिकर्त्ता ईश्वर की उपासनारूप मानसज्ञान यज्ञ को विस्तृत करें तब पूर्वाह्न आदि काल ही साधनरूप से कल्पना करना चाहिये ॥१४॥

सप्तास्येत्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।

देवा यद्यज्ञं तन्वानाऽअबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥१५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्) जिस (यज्ञम्) मानसज्ञान यज्ञ को (तन्वानाः) विस्तृत करते हुए (देवाः) विद्वान् लोग (पशुम्) जानने योग्य (पुरुषम्) परमात्मा को हृदय में (अबध्नन्) बांधते हैं (अस्य) इस यज्ञ के (सप्त) सात गायत्री आदि छन्द (परिधयः) चारों ओर से सूत के सात लपेटों के समान (आसन्) हैं (त्रिः, सप्त) इक्कीस अर्थात् प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, पांच सूक्ष्मभूत, पांच स्थूलभूत, पांच ज्ञानेन्द्रिय और सत्व, रजस्, तमस्, तीन गुण ये (समिधः) सामग्री रूप (कृताः) किये उस यज्ञ को यथावत् जानो ॥१५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग इस अनेक प्रकार से कल्पित परिधि आदि सामग्री से युक्त मानस यज्ञ को कर उससे पूर्ण ईश्वर को जान के सब प्रयोजनों को सिद्ध करो ॥१५॥

यज्ञेनेत्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।

ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (देवाः) विद्वान् लोग (यज्ञेन) पूर्वोक्त ज्ञान यज्ञ से (यज्ञम्) पूजनीय सर्वरक्षक अग्निवत् तेजस्वी ईश्वर की (अयजन्त) पूजा करते हैं (तानि) वे ईश्वर की पूजा आदि (धर्माणि) धारणरूप धर्म (प्रथमानि) अनादि रूप से मुख्य (आसन्) हैं (ते) वे विद्वान् (महिमानः) महत्त्व से युक्त हुए (यत्र) जिस सुख में (पूर्वे) इस समय से पूर्व हुए (साध्याः) साधनों को किये हुए (देवाः) प्रकाशमान विद्वान् (सन्ति) हैं उस (नाकम्) सब दुःखरहित मुक्तिसुख को (ह) ही (सचन्त) प्राप्त होते हैं उस को तुम लोग भी प्राप्त होओ ॥१६॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि योगाभ्यास आदि से सदा ईश्वर की उपासना करें इस अनादिकाल से प्रवृत्त धर्म से मुक्तिसुख को पाके पहिले मुक्त हुए विद्वानों के समान आनन्द भोगें ॥१६॥

अद्भ्य इत्यस्योत्तरनारायण ऋषिः । आदित्यो देवता । भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे ।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥१७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अद्भ्यः) जलों (पृथिव्यै) पृथिवी (च) और (विश्वकर्मणः) सब कर्म जिसके आश्रय से होते उस सूर्य से (सम्भृतः) सम्यक् पुष्ट हुआ उस (रसात्) रस से (अग्रे) पहिले यह सब जगत् (सम्, अवर्त्तत) वर्त्तमान होता है (तस्य) उस इस जगत् के (तत्) उस (रूपम्) स्वरूप को (त्वष्टा) सूक्ष्म करने वाला ईश्वर (विदधत्) विधान करता हुआ (अग्रे) आदि में (मर्त्यस्य) मनुष्य के (आजानम्) अच्छे प्रकार कर्त्तव्य कर्म और (देवत्वम्) विद्वत्ता को (एति) प्राप्त होता है ॥१७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो सम्पूर्ण कार्य करने हारा परमेश्वर कारण से कार्य बनाता है सब जगत् के शरीरों के रूपों को बनाता है उसका ज्ञान और उसकी आज्ञा का पालन ही देवत्व है ऐसा जानो ॥१७॥

वेदाहमित्यस्योत्तरनारायण ऋषिः । आदित्यो देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब विद्वान् जिज्ञासु के लिये कैसा उपदेश करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥१८॥

पदार्थः—हे जिज्ञासु पुरुष ! (अहम्) मैं जिस (एतम्) इस पूर्वोक्त (महान्तम्) बड़े २ गुणों से युक्त (आदित्यवर्णम्) सूर्य के तुल्य प्रकाशस्वरूप (तमसः) अन्धकार वा अज्ञान से (परस्तात्) पृथक् वर्त्तमान (पुरुषम्) स्वस्वरूप से सर्वत्र पूर्ण परमात्मा को (वेद) जानता हूं (तम्, एव) उसी को (विदित्वा) जान के आप (मृत्युम्) दुःखदायी मरण को (अति, एति) उल्लङ्घन कर जाते हो किन्तु (अन्यः) इस से भिन्न (पन्थाः) मार्ग (अयनाय) अभीष्ट स्थान मोक्ष के लिये (न, विद्यते) नहीं विद्यमान है ।।१८।।

भावार्थः—यदि मनुष्य इस लोक परलोक के सुखों की इच्छा करें तो सब से अति बड़े स्वयंप्रकाश और आनन्दस्वरूप अज्ञान के लेश से पृथक् वर्त्तमान परमात्मा को जान के ही मरणादि अथाह दुःखसागर से पृथक् हो सकते हैं यही सुखदायी मार्ग है इससे भिन्न कोई भी मनुष्यों की मुक्ति का मार्ग नहीं है ।।१८।।

प्रजापतिरित्यस्योत्तरनारायण ऋषिः । आदित्यो देवता । भुरिक्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

फिर ईश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

प्रजापतिश्चरति गर्भेऽअन्तरजायमानो बहुधा वि जायते ।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ।।१९।।

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अजायमानः) अपने स्वरूप से उत्पन्न नहीं होने वाला (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक जगदीश्वर (गर्भे) गर्भस्थ जीवात्मा और (अन्तः) सब के हृदय में (चरति) विचरता है और (बहुधा) बहुत प्रकारों से (वि, जायते) विशेषकर प्रकट होता (तस्य) उस प्रजापति के जिस (योनिम्) स्वरूप को (धीराः) ध्यानशील विद्वान् जन (परि, पश्यन्ति) सब ओर से देखते हैं (तस्मिन्) उसमें (ह) प्रसिद्ध (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक लोकान्तर (तस्थुः) स्थित हैं ।।१९।।

भावार्थः—जो यह सर्वरक्षक ईश्वर आप उत्पन्न न होता हुआ अपने सामर्थ्य से जगत् को उत्पन्न कर और उसमें प्रविष्ट हो के सर्वत्र विचरता है जिस अनेक प्रकार से प्रसिद्ध ईश्वर को विद्वान् लोग ही जानते हैं उस जगत् के आधाररूप सर्वव्यापक परमात्मा को जान के मनुष्यों को आनन्द भोगना चाहिये ।।१९।।

यो देवेभ्य इत्यस्योत्तरनारायण ऋषिः । सूर्यो देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ।।

अब सूर्य कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

यो देवेभ्यऽआतपति यो देवानां पुरोहितः ।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥२०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो सूर्यलोक (देवेभ्यः) उत्तम गुणों वाले पृथिवी आदि के अर्थ (आतपति) अच्छे प्रकार तपता है (यः) जो (देवानाम्) पृथिवी आदि लोकों के (पुरोहितः) प्रथम से हितार्थ बीच में स्थित किया (यः) जो (देवेभ्यः) पृथिवी आदि से (पूर्वः) प्रथम (जातः) उत्पन्न हुआ उस (रुचाय) रुचि कराने वाले (ब्राह्मये) परमेश्वर के सन्तान के तुल्य सूर्य्य से (नमः) अन्न उत्पन्न होता है ॥२०॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर ने सब के हित के लिये अन्न आदि की उत्पत्ति का निमित्त सूर्य्य को बनाया है उसी परमेश्वर की उपासना करो ॥२०॥

रुचमित्यस्योत्तरनारायण ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

अब विद्वानों का कृत्य कहते हैं ॥

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवाऽअग्रे तदब्रुवन् ।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवाऽअसन्वशे ॥२१॥

पदार्थः— हे ब्रह्मनिष्ठ पुरुष ! जो (रुचम्) रुचिकारक (ब्राह्मम्) ब्रह्म के उपासक (त्वा) आप को (जनयन्तः) सम्पन्न करते हुए (देवाः) विद्वान् लोग (अग्रे) पहिले (तत्) ब्रह्म जीव और प्रकृति के स्वरूप को (अब्रुवन्) कहें (यः) जो (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (एवम्) ऐसे (विद्यात्) जाने (तस्य) उसके वे (देवाः) विद्वान् (वशे) वश में (असन्) हों ॥२१॥

भावार्थः—यही विद्वानों का पहिला कर्त्तव्य है कि जो वेद ईश्वर और धर्मादि में रुचि, उपदेश, अध्यापन, धर्मात्मता, जितेन्द्रियता, शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाना, ऐसा करने से ही सब उत्तम गुण और भोग प्राप्त हो सकते हैं ॥२१॥

श्रीश्च त इत्यस्योत्तरनारायण ऋषिः । आदित्यो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अब ईश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् । इष्णन्निषाणामुं मऽइषाण सर्वलोकं मऽइषाण ॥२२॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! जिस (ते) आप की (श्रीः) समग्र शोभा (च) और (लक्ष्मीः) सब ऐश्वर्य्य (च) भी (पत्न्यौ) दो स्त्रियों के तुल्य वर्त्तमान (अहोरात्रे) दिन रात (पार्श्वे) आगे पीछे जिस आप की सृष्टि में (अश्विनौ) सूर्य चन्द्रमा (व्यात्तम्) फैले मुख के समान (नक्षत्राणि) नक्षत्र (रूपम्) रूप वाले हैं सो आप (मे) मेरे (अमुम्) परोक्ष सुख को (इष्णन्) चाहते हुए (इषाण) चाहना कीजिये (मे) मेरे लिये (सर्वलोकम्) सब के दर्शन को (इषाण) प्राप्त कीजिये मेरे लिये सब सुखों को (इषाण) पहुंचाइये ॥२२॥

भावार्थः—हे राजा आदि मनुष्यो ! जैसे ईश्वर के न्याय आदि गुण, व्याप्ति, कृपा, पुरुषार्थ, सत्य रचना और सत्य नियम हैं वैसे ही तुम लोगों के भी हों जिससे तुम्हारा उत्तरोत्तर सुख बढ़े ॥२२॥

इस अध्याय में ईश्वर सृष्टि और राजा के गुणों का वर्णन होने से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्वाध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह इकतीसवां अध्यायः समाप्त हुआ ॥

---

* ओ३म् *

अथ द्वात्रिंशत्तमाध्यायारम्भः

—:०:०:०:०:—

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒ता॑नि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आसु॑व ॥

तदेवेत्यस्य स्वयम्भुब्रह्म ऋषिः । परमात्मा देवता । अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

अब परमेश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तदे॒वाग्निस्तदा॑दि॒त्यस्तद्वा॒युस्तदु॑ च॒न्द्रमाः॑ ।
तदे॒व शु॒क्रं तद् ब्र॒ह्म ताऽआपः॒ स प्र॒जाप॑तिः ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (तत्) वह सर्वज्ञ सर्वव्यापी सनातन अनादि सच्चिदानन्दस्वरूप नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव, न्यायकारी, दयालु, जगत् का स्रष्टा, धारणकर्त्ता और सब का अन्तर्यामी (एव) ही (अग्निः) ज्ञानस्वरूप और स्वयंप्रकाशित होने से अग्नि (तत्) वह (आदित्यः) प्रलय समय सब को ग्रहण करने से आदित्य (तत्) वह (वायुः) अनन्त बलवान् और सब का धर्त्ता होने से वायु (तत्) वह (चन्द्रमाः) आनन्दस्वरूप और आनन्दकारक होने से चन्द्रमा (तत्, एव) वही (शुक्रम्) शीघ्रकारी वा शुद्ध भाव से शुक्र (तत्) वह (ब्रह्म) महान् होने से ब्रह्म (ताः) वह (आपः) सर्वत्र व्यापक होने से आप (उ) और (सः) वह (प्रजापतिः) सब प्रजा का स्वामी होने से प्रजापति है ऐसा तुम लोग जानो ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे ईश्वर के ये अग्नि आदि गौण नाम हैं वैसे और भी इन्द्रादि नाम हैं उसी की उपासना फलवाली है ऐसा जानो ॥१॥

सर्वं इत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । परमात्मा देवता । अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि ।
नैनमूर्ध्वं न तिर्य्यञ्चं न मध्ये परि जग्रभत् ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जिस (विद्युतः) विशेषकर प्रकाशमान (पुरुषात्) पूर्ण परमात्मा से (सर्वे) सब (निमेषाः) निमेष कलाकाष्ठा आदि काल के अवयव (अधि, जज्ञिरे) अधिकतर उत्पन्न होते हैं उस (एनम्) इस परमात्मा को कोई भी (न) न (ऊर्ध्वम्) ऊपर (न) न (तिर्य्यञ्चम्) तिरछा सब दिशाओं में वा नीचे और (न) न (मध्ये) बीच में (परि, जग्रभत्) सब ओर से ग्रहण कर सकता है उस को तुम सेवो ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिसके रचने से सब काल के अवयव उत्पन्न हुए और जो ऊपर नीचे बीच में पीछे दूर समीप कहा नहीं जा सकता जो सर्वत्र पूर्ण ब्रह्म है उस को योगाभ्यास से जान के सब आप लोग उपासना करो ॥२॥

न तस्येत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । हिरण्यगर्भः परमात्मा देवता । निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

न तस्य प्रतिमाऽअस्ति यस्य नाम महद्यशः ।
हिरण्यगर्भऽइत्येष मा मा हिꣳसीदित्येषा यस्मान्न जातऽइत्येषः ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यस्य) जिस का (महत्) पूज्य बड़ा (यशः) कीर्त्ति करनेहारा धर्मयुक्त कर्म का आचरण ही (नाम) नामस्मरण है जो (हिरण्यगर्भः) सूर्य बिजुली आदि पदार्थों का आधार (इति) इस प्रकार (एषः) अन्तर्यामी होने से प्रत्यक्ष जिस की (मा) मुझ को (मा, हिंसीत्) मत ताड़ना दे वा वह अपने से मुझ को विमुख मत करे (इति) इस प्रकार (एषा) यह प्रार्थना वा बुद्धि और (यस्मात्) जिस कारण (न) नहीं (जातः) उत्पन्न हुआ (इति) इस प्रकार (एषः) यह परमात्मा उपासना के योग्य है । (तस्य) उस परमेश्वर की (प्रतिमा) प्रतिमा—परिमाण उस के तुल्य अवधि का साधन प्रतिकृति, मूर्ति वा आकृति (न, अस्ति) नहीं है । अथवा द्वितीय पक्ष यह है कि (हिरण्यगर्भः०) इस पच्चीसवें अध्याय में १० मन्त्र से १३ मन्त्र तक का (इति, एषः) यह कहा हुआ अनुवाक (मा, मा, हिंसीत्) (इति) इसी प्रकार (एषा) यह ऋचा बारहवें अध्याय की १०२ मन्त्र है और (यस्मान्न जातः इत्येषः०) यह आठवें अध्याय के ३६ । ३७ दो मन्त्र का अनुवाक (यस्य) जिस

परमेश्वर की (नाम) प्रसिद्ध (महत्) महती (यशः) कीर्ति है (तस्य) उस का (प्रतिमा) प्रतिविम्ब [तस्वीर] नहीं है ॥३॥

भावार्थः हे मनुष्यो ! जो कभी देहधारी नहीं होता जिस का कुछ भी परिमाण सीमा का कारण नहीं है जिसकी आज्ञा का पालन ही नामस्मरण है जो उपासना किया हुआ अपने उपासकों पर अनुग्रह करता है वेदों के अनेक स्थलों में जिस का महत्त्व कहा गया है जो नहीं मरता न विकृत होता न नष्ट होता उसी की उपासना निरन्तर करो जो इससे भिन्न की उपासना करोगे तो इस महान् पाप से युक्त हुए आप लोग दुःख क्लेशों से नष्ट होगे ॥३॥

एष इत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । आत्मा देवता । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

एषो ह॑ दे॒वः प्र॒दिशोऽनु॒ सर्वाः॒ पूर्वो॑ ह जा॒तः सऽउ॒ गर्भे॑ अ॒न्तः ।
सऽए॒व जा॒तः स ज॑निष्यमा॒णः प्र॒त्यङ् जना॑स्तिष्ठति स॒र्वतो॑मुखः ॥४॥

पदार्थः—हे (जनाः) विद्वानो ! (एष.) यह (ह) प्रसिद्ध परमात्मा (देवः) उत्तम स्वरूप (सर्वाः) सब दिशा और (प्रदिशः) विदिशाओं को (अनु) अनुकूलता से व्याप्त हो के (सः) (उ) वही (गर्भे) अन्तःकरण के (अन्तः) बीच (पूर्वः) प्रथम कल्प के आदि में (ह) प्रसिद्ध (जातः) प्रकटता को प्राप्त हुआ (सः, एव) वही (जात.) प्रसिद्ध हुआ (सः) वह (जनिष्यमाणः) आगामी कल्पों में प्रथम प्रसिद्धि को प्राप्त होगा (सर्वतोमुखः) सब ओर से मुखादि अवयवों वाला अर्थात् मुखादि इन्द्रियों के काम सर्वत्र करता (प्रत्यङ्) प्रत्येक पदार्थ को प्राप्त हुआ (तिष्ठति) अचल सर्वत्र स्थिर है । वही तुम लोगों को उपासना करने और जानने योग्य है ॥४॥

भावार्थः—यह पूर्वोक्त ईश्वर जगत् को उत्पन्न कर प्रकाशित हुआ सब दिशाओं में व्याप्त हो के इन्द्रियों के विना सब इन्द्रियों के काम सर्वत्र व्याप्त होने से करता हुआ सब प्राणियों के हृदय में स्थिर है वह भूत भविष्यत् कल्पों में जगत् की उत्पत्ति के लिये पहिले प्रकट होता है वह ध्यानशील मनुष्य के जानने योग्य है अन्य के जानने योग्य नहीं है ॥४॥

यस्मादित्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । परमेश्वरो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यस्माज्जातं न पुरा किं चनैव य आबभूव भुवनानि विश्वा ।
प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतींꣳषि सचते स षोडशी ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यस्मात्) जिस परमेश्वर से (पुरा) पहिले (किम्, चन) कुछ भी (न जातम्) नहीं उत्पन्न हुआ (यः) जो सब ओर (आबभूव) अच्छे प्रकार से वर्त्तमान है जिस में (विश्वा) सब (भुवनानि) वस्तुओं के आधार सब लोक वर्त्तमान हैं (सः, एव) वही (षोडशी) सोलह कला वाला (प्रजया) प्रजा के साथ (सम्, रराणः) सम्यक् रमण करता हुआ (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक अधिष्ठाता (त्रीणि) तीन (ज्योतींषि) तेजोमय बिजुली, सूर्य्य, चन्द्रमारूप प्रकाशक ज्योतियों को (सचते) संयुक्त करता है ॥५॥

भावार्थः जिससे ईश्वर अनादि है इस कारण उससे पहिले कुछ भी हो नहीं सकता वही सब प्रजाओं में व्याप्त जीवों के कर्मों को देखता और उनके अनुकूल फल देता हुआ न्याय करता है जिसने प्राण आदि सोलह वस्तुओं को वनाया है इससे वह षोडशी कहाता है (प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक और नाम) ये षोडश कला प्रश्नोपनिषद् में हैं यह सब षोडश वस्तुरूप जगत् परमात्मा में है उसी ने वनाया और वही पालन करता है ॥५॥

येनेत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । परमात्मा देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
योऽअन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (येन) जगदीश्वर ने (उग्रा) तीव्र तेज वाले (द्यौः) प्रकाशयुक्त सूर्य्यादि पदार्थ (च) और (पृथिवी) भूमि (दृढा) दृढ़ की है (येन) जिसने (स्वः) सुख को (स्तभितम्) धारण किया (येन) जिसने (नाकः) सब दुःखों से रहित मोक्ष धारण किया (यः) जो (अन्तरिक्षे) मध्यवर्ती आकाश में वर्त्तमान (रजसः) लोक समूह का (विमानः) विविध मान करने वाला है उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) स्वयं प्रकाशमान सकल सुखदाता ईश्वर के लिये हम लोग (हविषा) प्रेम भक्ति से (विधेम) सेवाकारी वा प्राप्त होवें ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो समस्त जगत् का धर्त्ता सब सुखों का

दाता मुक्ति का साधक आकाश के तुल्य व्यापक परमेश्वर है उसी की भक्ति करो ॥६॥

यं क्रदसीत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । परमात्मा देवता । स्वराडतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यं क्रन्दसीऽअवसा तस्तभानेऽअभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने ।
यत्राधि सूरऽउदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ।
आपो ह यद्बृहतीर्यश्चिदापः ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यम्) जिस परमात्मा को प्राप्त अर्थात् उस के अधिकार में रहने वाले (तस्तभाने) सब को धारण करने हारे (रेजमाने) चलायमान (क्रन्दसी) स्वगुणों से प्रशंसा करने योग्य सूर्य्य और पृथिवी लोक (अवसा) रक्षा आदि से सब को धारण करते हैं (यत्र) जिस ईश्वर में (सूरः) सूर्य्य लोक (अधि, उदितः) अधिकतर उदय को प्राप्त हुआ (यत्) जो (बृहतीः) महत् (आपः) व्याप्त जल (ह) ही (यः) और जो कुछ (चित्) भी (आपः) आकाश है उस को भी (विभाति) विशेष कर प्रकाशित करता हुआ प्रकाशक होता है उस ईश्वर को अध्यापक और उपदेशक (मनसा) विज्ञान से (अभि, ऐक्षेताम्) आभिमुख्य कर देखते उस (कस्मै) सुखसाधक (देवाय) शुद्धस्वरूप परमात्मा के लिये (हविषा) ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास से हम (विधेम) सेवा करने वाले हों उस को तुम लोग भी भजो ॥७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस सब ओर से व्यापक परमेश्वर में सूर्य्य पृथिवी आदि लोक भ्रमते हुए दीखते हैं जिसने प्राण और आकाश को भी व्याप्त किया उस अपने आत्मा में स्थित ईश्वर की तुम लोग उपासना करो ॥७॥

वेन इत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । परमात्मा देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् ।
तस्मिन्निदꣳ सं च वि चैति सर्वꣳ सऽओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्र) जिस में (विश्वम्) सब जगत् (एकनीडम्) एक आश्रम वाला (भवति) होता (तत्) उस (गुहा) बुद्धि वा गुप्त कारण में (निहि-

तम्) स्थित (सत्) नित्य चेतन ब्रह्म को (वेनः) पण्डित विद्वान् जन (पश्यत्) ज्ञान-दृष्टि से देखता है (तस्मिन्) उसमें (इदम्) यह (सर्वम्) सब जगत् (सम्, एति) प्रलय समय में सङ्गत होता (च) और उत्पत्ति समय में (वि) पृथक् स्थूलरूप (च) भी होता है (सः) वह (विभूः) विविध प्रकार व्याप्त हुआ (प्रजासु) प्रजाओं में (ओतः) ठाढ़े सूतों में जैसे वस्त्र (च) तथा (प्रोतः) आड़े सूतों में जैसे वस्त्र वैसे ओत प्रोत हो रहा है वही सब को उपासना करने योग्य है ।।८।।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! विद्वान् ही जिस को बुद्धि बल से जानता जो सब आकाशादि पदार्थों का आधार प्रलय समय में सब जगत् जिसमें लीन होता और उत्पत्ति समय में जिससे निकलता है और जिस व्याप्त ईश्वर के विना कुछ भी वस्तु खाली नहीं है उसको छोड़ किसी अन्य को उपास्य ईश्वर मत जानो ।।८।।

प्र तदित्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । विद्वान् देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान् गन्धर्वो धाम विभृतं गुहा सत् ।
त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पिताऽसत् ।।९।।

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (गन्धर्वः) वेदवाणी को धारण करने वाला (विद्वान्) पण्डित (गुहा) बुद्धि में (विभृतम्) विशेष धारण किये (अमृतम्) नाश-रहित (धाम) मुक्ति के स्थान (तत्) उस (सत्) नित्य चेतन ब्रह्म का (नु) शीघ्र (प्र, वोचेत्) गुणकर्मस्वभावों के सहित उपदेश करे और जो (अस्य) इस अविनाशी ब्रह्म के (गुहा) ज्ञान में (निहिता) स्थित (पदानि) जानने योग्य (त्रीणि) तीन उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय वा भूत, भविष्यत् वर्त्तमान काल हैं (तानि) उन को (वेद) जानता है (सः) वह (पितुः) अपने पिता वा सर्वरक्षक ईश्वर का (पिता) ज्ञान देने वा आस्तिकत्व से रक्षक (असत्) होवे ।।९।।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् लोग ईश्वर के मुक्तिसाधक बुद्धिस्थ स्वरूप का उपदेश करें ठीक २ पदार्थों के और ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव को जानें वे अवस्था में वड़े पितादिकों के भी रक्षा के योग्य होते हैं ऐसा जानो ।।९।।

स न इत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । परमात्मा देवता । निचृत्त्रिष्टुप्
छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

स नो॒ बन्धु॑र्जनि॒ता स वि॑धा॒ता धामा॑नि वेद॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ।
यत्र॑ दे॒वाऽअ॒मृत॑मानशा॒नास्तृ॒तीये॒ धाम॑न्न॒ध्यैर॑यन्त ॥१०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्र) जिस (तृतीये) जीव और प्रकृति से विलक्षण (धामन्) आधाररूप जगदीश्वर में (अमृतम्) मोक्ष सुख को (आनशानाः) प्राप्त होते हुए (देवाः) विद्वान् लोग (अध्यैरयन्त) सर्वत्र अपनी इच्छापूर्वक विचरते हैं जो (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक लोकान्तरों और (धामानि) जन्म स्थान नामों को (वेद) जानता है (सः) वह परमात्मा (नः) हमारा (बन्धुः) भाई के तुल्य मान्य सहायक (जनिता) उत्पन्न करने हारा (सः) वही (विधाता) सब पदार्थों और कर्म फलों का विधान करने वाला है यह निश्चय करो ॥१०॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस शुद्धस्वरूप परमात्मा में योगिराज विद्वान् लोग मुक्तिसुख को प्राप्त हो आनन्द करते हैं उसी को सर्वज्ञ सर्वोत्पादक और सर्वदा सहायकार मानना चाहिये अन्य को नहीं ॥१०॥

परीत्येत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । परमात्मा देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प॒रीत्य॑ भू॒तानि॑ प॒रीत्य॑ लो॒कान् प॒रीत्य॒ सर्वाः॑ प्र॒दिशो॒ दिश॑श्च ।
उ॒प॒स्थाय॑ प्रथम॒जामृ॒तस्या॒त्मना॒त्मान॑म॒भि सं वि॑वेश ॥११॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! आप जो (भूतानि) प्राणियों को (परीत्य) सब ओर से व्याप्त हो के (लोकान्) पृथिवी सूर्यादि लोकों को (परीत्य) सब ओर से व्याप्त हो के (च) और ऊपर नीचे (सर्वाः) सब (प्रदिशः) आग्नेयादि उपदिशा तथा (दिशः) पूर्वादि दिशाओं को (परीत्य) सब ओर से व्याप्त हो के (ऋतस्य) सत्य के (आत्मानम्) स्वरूप वा अधिष्ठान को (अभि, सम्, विवेश) सन्मुखता से सम्यक् प्रवेश करता है (प्रथमजाम्) प्रथम कल्पादि में उत्पन्न चार वेदरूप वाणी को (उपस्थाय) पढ़ वा सम्यक् सेवन कर के (आत्मना) अपने शुद्धस्वरूप वा अन्तःकरण से उस को प्राप्त हूजिये ॥११॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग धर्म के आचरण, वेद और योग के अभ्यास तथा सत्संग आदि कर्मों से शरीर की पुष्टि और आत्मा तथा अन्तःकरण की शुद्धि को संपादन कर सर्वत्र अभिव्याप्त परमात्मा को प्राप्त हो के सुखी होओ ॥११॥

परीत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । परमात्मा देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

परि द्यावापृथिवी सद्यऽइत्वा परि लोकान् परि दिशः परि स्वः ।
ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य तदपश्यत्तदभवत्तदासीत् ॥१२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो परमेश्वर (द्यावापृथिवी) सूर्य्य और भूमि को (सद्यः) शीघ्र (इत्वा) प्राप्त होके (परि, अपश्यत्) सब ओर से देखता है जो (लोकान्) देखने योग्य सृष्टिस्थ भूगोलों को शीघ्र प्राप्त हो के (परि, अभवत्) सब ओर से प्रकट होता जो (दिशः) पूर्वादि दिशाओं को शीघ्र प्राप्त हो के (परि, आसीत्) सब ओर से विद्यमान है जो (स्वः) सुख को शीघ्र प्राप्त हो के (परि) सब ओर से देखता है जो (ऋतस्य) सत्य के (विततम्) विस्तृत (तन्तुम्) कारण को (विचृत्य) विविध प्रकार से बांध के (तत्) उस सुख को देखता जिस से (तत्) वह सुख हुआ और जिससे (तत्) वह विज्ञान हुआ है उसको यथावत् जान के उपासना करो ॥१२॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमेश्वर ही का भजन करते और उस की रची सृष्टि को सुख के लिये उपयोग में लाते हैं वे इस लोक परलोक और विद्या से हुए सुख को शीघ्र प्राप्त हो के निरन्तर आनन्दित होते हैं ॥१२॥

सदसस्पतिमित्यस्य मेधाकाम ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिग्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
सनिं मेधामयासिषꣳ स्वाहा ॥१३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! मैं (स्वाहा) सत्य क्रिया वा वाणी से जिस (सदसः) सभा, ज्ञान, न्याय वा दण्ड के (पतिम्) रक्षक (अद्भुतम्) आश्चर्य्य गुण कर्म स्वभाव वाले (इन्द्रस्य) इन्द्रियों के मालिक जीव के (काम्यम्) कमनीय (प्रियम्) प्रीति के विषय प्रसन्न करने हारे वा प्रसन्नरूप परमात्मा की उपासना और सेवा करके (सनिम्) सत्य असत्य का जिस से सम्यक् विभाग किया जाय उस (मेधाम्) उत्तम बुद्धि को (अयासिषम्) प्राप्त होऊं, उस ईश्वर की सेवा करके इस बुद्धि को तुम लोग भी प्राप्त होओ ॥१३॥

भावार्थः—जो मनुष्य सर्वशक्तिमान् परमात्मा का सेवन करते हैं वे सब विद्याओं को पाकर शुद्ध बुद्धि से सब सुखों को प्राप्त होते हैं ॥१३॥

यामित्यस्य मेधाकाम ऋषिः । परमात्मा देवता । निचृदनुष्टुप् छन्द । गान्धारः स्वरः ।।

मनुष्यों को ईश्वर से बुद्धि की याचना करनी चाहिये इस विषय को कहते हैं ।।

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ।।१४।।

पदार्थः—हे (अग्ने) स्वयं प्रकाशरूप होने से विद्या के जताने हारे ईश्वर ! वा अध्यापक विद्वन् ! (देवगणाः) अनेकों विद्वान् (च) और (पितरः) रक्षा करने हारे ज्ञानी लोग (याम्) जिस (मेधाम्) बुद्धि वा धन को (उपासते) प्राप्त होके सेवन करते हैं (तया) उस (मेधया) बुद्धि वा धन से (माम्) मुझ को (अद्य) आज (स्वाहा) सत्य वाणी से (मेधाविनम्) प्रशंसित बुद्धि वा धन वाला (कुरु) कीजिये ।।१४।।

भावार्थः—मनुष्य लोग परमेश्वर की उपासना और आप्त विद्वान् की सम्यक् सेवा करके शुद्ध विज्ञान और धर्म से हुए धन को प्राप्त होने की इच्छा करें और दूसरों को भी ऐसे ही प्राप्त करावें ।।१४।।

मेधामित्यस्य मेधाकाम ऋषिः । परमेश्वरविद्वांसो देवते । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः ।
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ।।१५।।

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (वरुणः) अति श्रेष्ठ परमेश्वर वा विद्वान् (स्वाहा) धर्मयुक्त क्रिया से (मे) मेरे लिये (मेधाम्) शुद्ध बुद्धि वा धन को (ददातु) देवे (अग्निः) विद्या से प्रकाशित (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक (मेधाम्) बुद्धि को देवे (इन्द्रः) परमऐश्वर्य्यवान् (मेधाम्) बुद्धि को देवे (च) और (वायुः) बलदाता बलवान् (मेधाम्) बुद्धि को देवे (च) और (धाता) सब संसार वा राज्य का धारण करने हारा ईश्वर वा विद्वान् (मे) मेरे लिये बुद्धि धन को (ददातु) देवे वैसे तुम लोगों को भी देवे ।।१५।।

भावार्थः—मनुष्य जैसे अपने लिये गुण कर्म स्वभाव और सुख को चाहे वैसे औरों के लिये भी चाहें । जैसे अपनी अपनी उन्नति की चाहना करें वैसे परमेश्वर और विद्वानो के निकट से अन्यों की उन्नति की प्रार्थना करें । केवल प्रार्थना ही न करें, किन्तु सत्य आचरण भी करें । जब जब

विद्वानों के निकट जावें तब तब सब के कल्याण के लिये प्रश्न और उत्तर किया करें ॥१५॥

इदं म इत्यस्य श्रीकाम ऋषिः । विद्वद्राजानौ देवते । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम् ।
मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा ॥१६॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! आपकी कृपा और हे विद्वन् ! तेरे पुरुषार्थ से (स्वाहा) सत्याचरणरूप क्रिया से (मे) मेरे (इदम्) ये (ब्रह्म) वेद ईश्वर का विज्ञान वा इनका ज्ञाता पुरुष (च) और (क्षत्रम्) राज्य धनुर्वेद विद्या और क्षत्रिय कुल (च) भी ये (उभे) दोनों (श्रियम्) राज्य की लक्ष्मी को (अश्नुताम्) प्राप्त हों जैसे (देवाः) विद्वान् लोग (मयि) मेरे निमित्त (उत्तमाम्) अतिश्रेष्ठ (श्रियम्) शोभा वा लक्ष्मी को (दधतु) धारण करें। हे जिज्ञासु जन ! (ते) तेरे लिये भी (तस्यै) उस श्री के अर्थ हम लोग प्रयत्न करें ॥१६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञापालन और विद्वानों की सेवा सत्कार से सब मनुष्यों के बीच से ब्राह्मण क्षत्रिय को सुन्दर शिक्षा विद्यादि सद्गुणों से संयुक्त और सब की उन्नति का विधान कर अपने आत्मा के तुल्य सब में वर्त्तें वे सबको पूजने योग्य होवें ॥१६॥

इस अध्याय में परमेश्वर विद्वान् और बुद्धि तथा धन की प्राप्ति के उपायों का वर्णन होने से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह बत्तीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

॥ ओ३म् ॥

अथ त्रयस्त्रिंशत्तमाऽध्यायारम्भः

— ॥॥ —

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥१॥

अस्यैत्यस्य वत्सप्रीऋर्षिः । अग्नयो देवताः । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब तेंतीसवें अध्याय का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में अग्न्यादि पदार्थों को जान कार्य साधना चाहिये इस विषय को कहा है ॥

अ॒स्याज॒रासो॑ द॒माम॒रित्रा॑ऽअ॒र्चद्धू॑मासो॒ऽअ॒ग्नय॑ः पाव॒काः ।
श्वि॒ती॒चय॑ः श्वा॒त्रासो॑ भुर॒ण्यवो॑ वन॒र्षदो॑ वा॒यवो॒ न सोमा॑ः ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अस्य) इस पूर्वाध्यायोक्त ईश्वर की सृष्टि में (अजरासः) एकसी अवस्था वाले (अरित्राः) शत्रुओं से बचाने हारे (अर्चद्धूमासः) सुगन्धित धूमों से युक्त (पावकाः) पवित्रकारक (श्वितीचयः) श्वेतवर्ण को सञ्चित करने हारे (श्वात्रासः) धन को बढ़ाने के हेतु (भुरण्यवः) धारण करने हारे वा गमनशील (सोमाः) ऐश्वर्य को प्राप्त करने हारे (अग्नयः) विद्युत् आदि अग्नि (वनर्षदः) वनों वा किरणों में रहने हारे (वायवः) पवनों के (न) समान (दमाम्) घरों के धारण करने हारे उन को तुम लोग जानो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य अग्नि वायु आदि सृष्टिस्थ पदार्थों को जानें तो इनसे बहुत उपकारों को ग्रहण कर सकते हैं ॥१॥

हरय इत्यस्य विश्वरूप ऋषिः । अग्नयो देवताः । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

हर॑यो धूमके॑तवो वात॑जूता॒ऽउप॒ द्यवि॑ । यत॑न्ते॒ वृथ॑गग्नय॑ः ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (धूमकेतवः) जिन का जताने वाला धूम ही पताका के तुल्य है (वातजूताः) वायु से तेज को प्राप्त हुए (हरयः) हरणशील (अग्नयः) पावक (वृथक्) नाना प्रकार से (द्यवि) प्रकाश के निमित्त (उप, यतन्ते) यत्न करते हैं उनको कार्य्यसिद्धि के अर्थ उपयोग में लाओ ।।२।।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिन का धूम ज्ञान कराने और वायु जलाने वाला है और जिन में हरणशीलता वर्त्तमान है वे अग्नि हैं ऐसा जानो ।।२।।

यजान इत्यस्य गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।।

विद्वान् मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

यजा॑ नो मि॒त्रावरु॑णा॒ यजा॑ दे॒वाँ२ऽऋ॒तं बृ॒हत् ।

अग्ने॒ यक्षि॒ स्वं दम॑म् ।। ३ ।।

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् ! आप (नः) हमारे (मित्रावरुणा) मित्र और श्रेष्ठ जनों तथा (देवान्) विद्वानों का (यज) सत्कार कीजिये (बृहत्) बड़े (ऋतम्) सत्य का (यज) उपदेश कीजिये जिससे (स्वम्) अपने (दमम्) घर को (यक्षि) संगत कीजिये ।।३।।

भावार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो ! हमारे मित्र, श्रेष्ठ और विद्वानों का सत्कार करने हारे सत्य के उपदेशक और अपने घर के कार्यों को सिद्ध करने हारे तुम लोग होओ ।।३।।

युक्ष्वेत्यस्य विश्वरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

युक्ष्वा हि दे॑वहूत॑माँ २ऽअश्वाँ२ अग्ने॒ऽ रथीरि॑व ।

नि होता॑ पूर्व्यः॑ सद॑ः ।। ४ ।।

पदार्थः हे (अग्ने) विद्वन् ! आप (रथीरिव) सारथि के समान (देवहूतमान्) विद्वानों से अत्यन्त स्तुति किये हुए (अश्वान्) शीघ्रगामी अग्नि आदि वा घोड़ों को (युक्ष्व) युक्त कीजिये (पूर्व्यः) पूर्वज विद्वानों से विद्या को प्राप्त (होता) ग्रहण करते हुए (हि) निश्चय कर (नि, सदः) स्थिर हूजिये ।।४।।

भावार्थः - इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे उत्तम शिक्षित सारथि घोड़ों से अनेक कार्य्यों को सिद्ध करता है वैसे विद्वान् जन अग्नि आदि से अनेक कार्यों को सिद्ध करें ।।४।।

द्वे इत्यस्य कुत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

रात्रि दिन जगत् की रक्षा करने वाले हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थेऽअन्यान्या वत्समुप धापयेते ।

हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रोऽअन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (स्वर्थे) सुन्दर प्रयोजन वाली (द्वे) दो (विरूपे) भिन्न भिन्न रूप की स्त्रियां (चरतः) भोजनादि आचरण करती हैं और (अन्यान्या) एक एक अलग अलग समय में (वत्सम्) निरन्तर बोलने वाले एक बालक को (उप, धापयेते) निकट कर दूध पिलाती हैं उन दोनों में से (अन्यस्याम्) एक में (स्वधावान्) प्रशस्त शान्ति आदि अमृततुल्य गुणयुक्त (हरिः) मन को हरने वाला पुत्र (भवति) होता और (शुक्रः) शीघ्रकारी (सुवर्चाः) सुन्दर तेजस्वी (अन्यस्याम्) दूसरी में हुआ (ददृशे) दीख पड़ता है वैसे ही सुन्दर प्रयोजन वाले दो काले श्वेत भिन्न रूप वाले रात्रि दिन वर्त्तमान हैं और एक एक भिन्न भिन्न समय में एक संसार रूप बालक को दुग्धादि पिलाते हैं उन दोनों में से एक रात्रि में अमृतरूप गुणों वाला मन का प्रसादक चन्द्रमा उत्पन्न होता और द्वितीय दिन रूप वेला में पवित्रकर्त्ता सुन्दर तेज वाला सूर्य रूप पुत्र दीख पड़ता है ऐसा तुम लोग जानो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में अनुभयाभेदरूपकालङ्कार है । जैसे दो स्त्रियां वा गायें सन्तान प्रयोजन वालीं पृथक् पृथक् वर्त्तमान भिन्न भिन्न समय में एक बालक की रक्षा करें उन दोनों में से एक में हृदय को प्यारा महागुणी शान्तिशील बालक हो और दूसरी में शीघ्रकारी तेजस्वी शत्रुओं को दुःख-दायी बालक होवे वैसे भिन्नस्वरूप वाले दो रात्रि दिन अलग अलग समय में एक संसाररूप बालक की पालना करते हैं किस प्रकार—रात्रि अमृत-वर्षक चित्त को प्रसन्न करनेहारे चन्द्रमारूप बालक को उत्पन्न करके और दिन रूप स्त्री तेजोमय सुन्दर प्रकाश वाले सूर्य्यरूप पुत्र को उत्पन्न करके ॥५॥

अयमित्यस्य कुत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठोऽअध्वरेष्वीड्यः ।

यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (धातृभिः) धारण करने वालों से (इह) इस संसार में (विशे विशे) प्रजा प्रजा के लिये (अयम्) यह (प्रथमः) विस्तार वाला

(होता) सुखदाता (यजिष्ठः) अतिशय कर सङ्गत करने वाला (अध्वरेषु) रक्षणीय व्यवहारों में (ईड्यः) खोजने योग्य विद्युत् आदि स्वरूप अग्नि (धायि) धारण किया जाता और जैसे (भृगवः) दृढ़ ज्ञान वाले (अप्नवानः) सुसन्तानों के सहित उत्तम शिष्य लोग (यम्) जिस (वनेषु) वनों वा किरणों में (चित्रम्) आश्चर्यरूप गुण कर्म स्वभाव वाले (विभ्वम्) व्यापक विद्युत्रूप अग्नि को (विरुरुचुः) विशेष कर प्रदीप्त करें वैसे उसको तुम लोग भी धारण और प्रकाशित करो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्वान् लोग इस संसार में बिजुली की विद्या को जानते हैं वे सब प्रकार प्रजाओं को सब सुखों से युक्त करने को समर्थ होते हैं ॥६॥

त्रीणि शतेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। विद्वांसो देवताः। स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

कारीगर विद्वान् क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिꣳशच्च देवा नव चासपर्यन्।
औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे (त्रिंशत्) पृथिवी आदि तीस (च) और (नव) नव प्रकार के (च) ये सब और (देवाः) विद्वान् लोग (त्रीणि) तीन (शता) सौ (त्री) तीन (सहस्राणि) हजार कोश मार्ग में (अग्निम्) अग्नि को (असपर्य्यन्) सेवन करें (घृतैः) घी वा जलों से (औक्षन्) सींचें (बर्हिः) अन्तरिक्ष को (अस्तृणन्) आच्छादित करें (अस्मै) इस अग्नि के अर्थ (होतारम्) हवन करने वाले को (आत्, इत्) सब ओर शीघ्र ही (नि, असादयन्त) निरन्तर स्थापित करें वैसे तुम लोग भी करो ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो शिल्पी विद्वान् लोग अग्नि जलादि पदार्थों को यानों में संयुक्त कर उत्तम, मध्यम, निकृष्ट वेगों से अनेक सैकड़ों हजारों कोस मार्ग को जा सकें वे आकाश में भी जा आ सकते हैं ॥७॥

मूर्द्धानमित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। विद्वांसो देवताः। भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः ॥ धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

मूर्द्धानं दिवोऽअरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृतऽआ जातमग्निम्।
कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (देवाः) विद्वान् लोग (दिवः) आकाश के (मूर्द्धानम्) उपरिभाग में सूर्यरूप से वर्त्तमान (पृथिव्याः) पृथिवी को (अरतिम्) प्राप्त होने वाले (वैश्वानरम्) सब मनुष्यों के हितकारी (ऋते) यज्ञ के निमित्त (आ, जातम्) अच्छे प्रकार प्रकट हुए (कविम्) सर्वत्र दिखाने वाले (सम्राजम्) सम्यक् प्रकाशमान (जनानाम्) मनुष्यों के (अतिथिम्) अतिथि के तुल्य प्रथम भोजन का भाग लेने वाले (पात्रम्) रक्षा के हेतु (आसन्) ईश्वर के मुखरूप सामर्थ्य में उत्पन्न हुए जो (अग्निम्) अग्नि को (आ, जनयन्त) अच्छे प्रकार प्रकट करें वैसे तुम लोग भी इस को प्रकट करो ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग पृथिवी जल वायु और आकाश में व्याप्त विद्युत्रूप अग्नि को प्रकट कर यन्त्र कलादि और युक्ति से चलावें वे किस किस कार्य को न सिद्ध करें ॥८॥

अग्निरित्यस्य भरद्वाज ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

मनुष्य सूर्य के तुल्य दोषों को विनाशे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया ।
समिद्धः शुक्रऽआहुतः ॥९॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (समिद्धः) सम्यक् प्रदीप्त (शुक्रः) शीघ्रकारी (अग्निः) सूर्य्यादि रूप अग्नि (वृत्राणि) मेघ के अवयवों को (जङ्घनत्) शीघ्र काटता है वैसे (द्रविणस्युः) अपने को धन चाहने वाले (आहुतः) बुलाये हुए आप (विपन्यया) विशेष व्यवहार की युक्ति से दुष्टों को शीघ्र मारिये ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे व्यवहार का जानने वाला पुरुष धन को पाके सत्कार को प्राप्त होकर दोषों को नष्ट करता है वैसे सूर्य्य मेघ को ताड़ना देता है ॥९॥

विश्वेभिरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। विराट् गायत्री छन्दः।
षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्नऽइन्द्रेण वायुना ।
पिबा मित्रस्य धामभिः ॥१०॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान तेजस्वि विद्वन् ! आप जैसे सूर्य (विश्वेभिः) (धामभिः) धामों से (इन्द्रेण) धन के धारक (वायुना) बलवान् पवन के साथ (सोम्यम्) उत्तम ओषधियों में हुए (मधु) मीठे आदि गुण वाले रस को पीता

है वैसे (मित्रस्य) मित्र के सब स्थानों से सुन्दर ओषधियों के रस को (पिब) पीजिये ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे सूर्य सब पदार्थों से रस को खींच के वर्षा के सब पदार्थों को पुष्ट करता है वैसे विद्या और विनय से सब को पुष्ट करो ॥१०॥

आ यदित्यस्य पराशर ऋषिः। अग्निर्देवता। विराट्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ यदिषे नृपतिं तेजऽआनट् शुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके।
अग्निः शर्द्धमनवद्यं युवानꣳस्वाध्यं जनयत्सूदयच्च ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्) जब (इषे) वर्षा के लिये (निषिक्तम्) अग्नि में घृतादि के पड़ने से निरन्तर बढ़ा हुआ (शुचि) पवित्र (तेजः) यज्ञ से उठा तेज (नृपतिम्) जैसे राजा का तेज व्याप्त हो वैसे सूर्य को (आ, आनट्) अच्छे प्रकार व्याप्त होता है तब (अग्निः) सूर्यरूप अग्नि (शर्द्धम्) बलहेतु (अनवद्यम्) निर्दोष (युवानम्) ज्वानी को करने हारे (स्वाध्यम्) जिन का सब चिन्तन करते (रेतः) ऐसे पराक्रमकारी वृष्टि जल को (द्यौः) आकाश के (अभीके) निकट (जनयत्) उत्पन्न करता (च) और (सूदयत्) वर्षा करता है ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अग्नि में होम किया द्रव्य तेज के साथ ही सूर्य को प्राप्त होता और सूर्य जलादि को आकर्षण कर वर्षा करके सब की रक्षा करता है वैसे राजा प्रजाओं से करों को ले, दुर्भिक्ष काल में फिर दे श्रेष्ठों को सम्यक् पालन और दुष्टों को सम्यक् ताड़ना देके प्रगल्भता और बल को प्राप्त होता है ॥११॥

अग्न इत्यस्य विश्ववारा ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने शर्द्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु।
सं जास्पत्यꣳसुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांꣳसि ॥१२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् वा राजन् ! आप (महते) बड़े (सौभगाय) सौभाग्य के अर्थ (शर्द्ध) दुष्ट गुणों और शत्रुओं के नाशक बल को (आकृणुष्व) अच्छे प्रकार उन्नत कीजिये जिससे (तव) आपके (द्युम्नानि) धन वा यश (उत्तमानि) श्रेष्ठ (सन्तु) हों और (जास्पत्यम्) स्त्री पुरुष के भाव को (सुयमम्) सुन्दर नियमयुक्त शास्त्रानुकूल ब्रह्मचर्ययुक्त (सम्, आ) सम्यक् अच्छे प्रकार कीजिये और आप

(शत्रूयताम्) शत्रु बनने की इच्छा करते हुए मनुष्यों के (महांसि) तेजों को (अभि, तिष्ठ) तिरस्कृत कीजिये ॥१२॥

भावार्थः—जो अच्छे संयम में रहने वाले मनुष्य हैं उनके बड़ा ऐश्वर्य, बल, कीर्ति, उत्तम स्वभाववाली स्त्री और शत्रुओं का पराजय होता है ॥१२॥

त्वामित्यस्य भरद्वाज ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वाᳬं हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने।
इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ॥१३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान राजन्! वा विद्वज्जन! (हि) जिससे आप (न) हम ब्रह्मचर्यादि सत्कर्मों में प्रवृत्त जनों के (महि) महत् गम्भीर वचन को (श्रोषि) सुनते हो इस से (मन्द्रतमम्) अतिशय कर प्रशंसादि से सत्कार को प्राप्त (त्वाम्) आप को (अर्कशोकैः) सूर्य के समान प्रकाश से युक्त जनों के साथ हम लोग (ववृमहे) स्वीकार करते हैं और (नृतमाः) अतिशय कर नायक श्रेष्ठजन (शवसा) बल से युक्त (इन्द्रम्) सूर्य के (न) समान तेजस्वी और (वायुम्) वायु के तुल्य वर्त्तमान बलवान् (देवता) दिव्य गुण युक्त (त्वा) आप को (राधसा) धन से (पृणन्ति) पालन वा पूर्ण करते हैं ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो दुःखों को सहन कर सूर्य के समान तेजस्वी और वायु के तुल्य बलवान् विद्वान् मनुष्य विद्या सुशिक्षा का ग्रहण करते हैं वे मेघ से सूर्य जैसे वैसे सब को आनन्द देने वाले उत्तम पुरुष होते हैं ॥१३॥

त्व इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। विद्वांसो देवताः। अनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

विद्वानों के तुल्य अन्य जनों को वर्त्तना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वेऽअग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः।
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान्दयन्त गोनाम् ॥१४॥

पदार्थः—हे (स्वाहुत) सुन्दर प्रकार से विद्या को ग्रहण किये हुए (अग्ने) विद्वन्! (ये) जो (जनानाम्) मनुष्यों के बीच वीर पुरुष (यन्तारः) जितेन्द्रिय (मघवानः) बहुत धन से युक्त जन (गोनाम्) पृथिवी वा गौ आदि के (ऊर्वान्)

हिंसकों को (दयन्त) मारते हैं वे (सूरयः) विद्वान् लोग (त्वे) आप के (प्रियासः) पियारे (सन्तु) हों ॥१४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् लोग अग्नि आदि पदार्थों की विद्या को ग्रहण कर विद्वानों के पियारे हों, दुष्टों को मार और गौ आदि की रक्षा कर मनुष्यों के पियारे होते हैं वैसे तुम भी करो ॥१४॥

श्रुधीत्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।
आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रोऽअर्य्यमा प्रातर्यावाणोऽअध्वरम् ॥१५॥

पदार्थः—हे (श्रुत्कर्ण) अर्थियों के वचनों को सुननेहारे (अग्ने) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान तेजस्वी विद्वन् ! वा राजन् ! आप (सयावभिः) जो साथ चलते उन (वह्निभिः) कार्यों का निर्वाह करनेहारे (देवैः) विद्वानों के साथ (अध्वरम्) रक्षा के योग्य राज्य के व्यवहार को (श्रुधि) सुनिये तथा (प्रातर्यावाणः) प्रातःकाल राजकार्यों को प्राप्त करनेहारे (मित्रः) पक्षपातरहित सब का मित्र और (अर्यमा) वैश्य वा अपने अधिष्ठाताओं को यथार्थ मानने वाला ये सब (बर्हिषि) अन्तरिक्ष के तुल्य सभा में (आ सीदन्तु) अच्छे प्रकार बैठें ॥१५॥

भावार्थः—सभापति राजा को चाहिये कि अच्छे परीक्षित मन्त्रियों को स्वीकार कर उनके साथ सभा में बैठ विवाद करने वालों के वचन सुन के उन पर विचार कर यथार्थ न्याय करे ॥१५॥

विश्वेषामित्यस्य गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानुषाणाम् ।
अग्निर्देवानामवऽआवृणानः सुमृडीको भवतु जातवेदाः ॥१६॥

पदार्थः—हे सभापते ! आप (विश्वेषाम्) सब (यज्ञियानाम्) पूजा सत्कार के योग्य (देवानाम्) विद्वानों के बीच (अदितिः) अखण्डित बुद्धि वाले (विश्वेषाम्) सब (मनुष्याणाम्) मनुष्यों में (अतिथिः) पूजनीय (अवः) रक्षा आदि को (आवृणानः) अच्छे प्रकार स्वीकार करते हुए (सुमृडीकः) सुन्दर सुख देने वाले (जातवेदाः) विद्या और योग के अभ्यास से प्रसिद्ध बुद्धि वाले (अग्निः) तेजस्वी राजा (भवतु) हूजिये ॥१६॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जो सब विद्वानों में गम्भीर बुद्धि वाला सब मनुष्यों में माननीय प्रजा की रक्षा आदि राजकार्य को स्वीकार करता सब सुखों का दाता और वेदादि शास्त्रों का जानने वाला शूरवीर हो उसी को राजा करें ॥१६॥

मह इत्यस्य लुशोधानाक ऋषिः । सविता देवता । भुरिक्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

महोऽअग्नेः संमिधानस्य शर्मण्यनागा मित्रे वरुणे स्वस्तये ।
श्रेष्ठे स्याम सवितुः सवीमनि तद्देवानामवोऽअद्या वृणीमहे ॥१७॥

पदार्थः—हम राजपुरुष (महः) बड़े (समिधानस्य) प्रकाशमान (अग्नेः) विज्ञानवान् सभापति के (शर्मणि) आश्रय में (श्रेष्ठे) श्रेष्ठ (मित्रे) मित्र और (वरुणे) स्वीकार के योग्य मनुष्यों के निमित्त (अनागाः) अपराध रहित (स्याम) हों (अद्य) आज (सवितुः) सब जगत् के उत्पादक परमेश्वर की (सवीमनि) आज्ञा में वर्त्तमान (स्वस्तये) सुख के लिये (देवानाम्) विद्वानों के (तत्) उस वेदोक्त (अवः) रक्षा आदि कर्म को (वृणीमहे) स्वीकार करते हैं ॥१७॥

भावार्थः—धार्मिक विद्वान् राजपुरुषों को चाहिये कि अधर्म को छोड़ धर्म में प्रवृत्त हों । परमेश्वर की सृष्टि में विविध प्रकार की रचना देख अपनी और दूसरों की रक्षा कर ईश्वर का धन्यवाद किया करें ॥१७॥

आप इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अध्यापक उपदेशक क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आपश्चित्पिप्युस्तर्यो न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्तऽइन्द्र ।
याहि वायुर्न नियुतो नोऽअच्छा त्वꣳ हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥१८॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त विद्वन् ! (ते) आप के (जरितारः) स्तुति करने हारे (आपः) जलों के तुल्य (पिप्युः) बढ़ते हैं और (स्तर्यः) विस्तार के हेतु (गावः) किरण (न) जैसे (ऋतम्) सत्य को (नक्षन्) व्याप्त होते हैं वैसे (वायुः) पवन के (न) तुल्य (वाजान्) विज्ञान वाले (नः) हम लोगों को और (नियुतः) वायु के वेग आदि गुणों को (त्वम्) आप (अच्छ) अच्छे प्रकार (याहि) प्राप्त हूजिये (हि) जिस कारण (धीभिः) बुद्धि वा कर्मों से (वि, दयसे) विशेष कर कृपा करते हो इस से (चित्) भी सत्कार के योग्य हो ॥१८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो पदार्थों के

गुण कर्म स्वभावों की स्तुति करने वाले उपदेशक और अध्यापक हों तो सब मनुष्य विद्या में व्याप्त हुए दया वाले हों ॥१८॥

गाव इत्यस्य पुरुमीढाजमीढावृषी । इन्द्रवायू देवते । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्यों को आभूषण आदि की रक्षा करनी चाहिये इस विषय को कहा है ॥

गावऽउपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा ।
उभा कर्णा हिरण्यया ॥१९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (गावः) गौवें वा किरणें (उभा) दोनों (रप्सुदा) रूप देने वाली (मही) बड़ी आकाश पृथिवी की रक्षा करती हैं वैसे तुम लोग (हिरण्यया) सुवर्ण के आभूषण से युक्त (कर्णा) दोनों कानों और (यज्ञस्य) संगत यज्ञ के (अवतम्) वेदी आदि अवयवों की (उप, अवत) निकट रक्षा करो ॥१९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्यकिरण और गौ आदि पशु सब वस्तुमात्र की रक्षा करते हैं वैसे ही मनुष्यों को चाहिये कि सुवर्ण आदि के बने कुण्डल आदि आभूषण की सदा रक्षा करें ॥१९॥

यदद्येत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यदद्य सूरऽउदितेऽनागा मित्रोऽअर्य्यमा ।
सुवाति सविता भगः ॥२०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (अद्य) आज (सूरे) सूर्य के (उदिते) उदय होते अर्थात् प्रातःकाल (अनागाः) अधर्म के आचरण से रहित (मित्रः) सुहृद् (सविता) राज्य के नियमों से प्रेरणा करने हारा (भगः) ऐश्वर्यवान् (अर्य्यमा) न्यायकारी राजा स्वस्थता को (सुवाति) उत्पन्न करे वह राज्य करने के योग्य होवे ॥२०॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य के उदय होते अन्धकार निवृत्त होके प्रकाश के होने में सब लोग आनन्दित होते हैं वैसे ही धर्मात्मा राजा के होते प्रजाओं में सब प्रकार से स्वस्थता होती है ॥२०॥

आ सुत इत्यस्य सुनीतिर्ऋषिः । वेनो देवता । निचृद्गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ सुते सिञ्चत श्रिय॑ रोद॑स्योरभिश्रिय॑म् ।
रसा द॑धीत वृषभम् । तं प्रत्नथा । अयं वेनः ॥२१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (रसा) आनन्द देने वाले तुम लोग (सुते) उत्पन्न हुए जगत् में (वृषभम्) अतिवली (रोदस्योः) आकाश पृथिवी को (अभिश्रियम्) सब ओर से शोभित करने हारे (श्रियम्) शोभायुक्त सभापति राजा का (आ, सिञ्चत) अच्छे प्रकार अभिषेक करो और वह सभापति तुम लोगों को (दधीत) धारण करे ॥२१॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि राज्य की उन्नति से जगत् का प्रकाशक सुन्दरता आदि गुणों से युक्त अति बलवान् विद्वान् शूर पूर्ण अवयवों वाले मनुष्य को राज्य में अभिषेक करें और वह राजा प्रजाओं में सुख धारण करे ॥२१॥

आतिष्ठन्तमित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब विद्युत् अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आतिष्ठ॑न्तं परि विश्वे॑ऽअभूषञ्छ्रियो वसा॑नश्चरति स्वरो॑चिः ।
महत्तद्वृष्णो॑ऽअसु॑रस्य नामा विश्वरू॑पोऽअमृता॑नि तस्थौ ॥२२॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! (विश्वे) आप सब जैसे (श्रियः) धनों वा शोभाओं को (वसानः) धारण करता हुआ (स्वरोचिः) स्वयमेव दीप्ति वाला (विश्वरूपः) सब पदार्थों में उन उन के रूप से व्याप्त अग्नि (चरति) विचरता और (अमृतानि) नाशरहित वस्तुओं में (तस्थौ) स्थित है वैसे इस (आतिष्ठन्तम्) अच्छे प्रकार स्थिर अग्नि को (परि, अभूषन्) सब ओर से शोभित कीजिये । जो (वृष्णः) वर्षा करने हारे (असुरस्य) हिंसक इस विजुलीरूप अग्नि का (महत्) बड़ा (तत्) वह परोक्ष (नाम) नाम है उस से सब कार्य्यों को शोभित करो ॥२२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिस कारण यह विद्युत्रूप अग्नि सब पदार्थों में स्थित हुआ भी किसी को प्रकाशित नहीं करता इससे इस की असुर संज्ञा है जो इस विद्युत् विद्या को जानते हैं वे सब ओर से सुभूषित होते हैं ॥२२॥

प्र व इत्यस्य सुचीक ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य को ईश्वर ही की पूजा करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्र वो॑ म॒हे मन्द॑मानाया॒न्धसो॒ऽर्चा॑ वि॒श्वान॑राय विश्वा॒भुवे॑ ।
इन्द्र॑स्य॒ यस्य॒ सु॒मख॒ꣳ सहो॒ महि॒ श्रवो॑ नृ॒म्णं च॒ रोद॑सी सप॒र्य्यतः॑ ॥२३॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! तुम (रोदसी) आकाश भूमि (यस्य) जिस (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (सुमखम्) सुन्दर यज्ञ जिस से हो ऐसे (नृम्णम्) धन (सहः) बल (च) और (महि) बड़े (श्रवः) यश को (सपर्यतः) सेवते हैं उस (विश्वानराय) सब मनुष्य जिस से हों (महे) महान् (मन्दमानाय) आनन्दस्वरूप (विश्वाभुवे) सब को प्राप्त वा सब पृथिवी के स्वामी वा संसार जिस से हो ऐसे ईश्वर के अर्थ (प्र, अर्च) पूजन करो अर्थात् उसको मानो वह (वः) तुम्हारे लिये (अन्धसः) अन्नादि के सुख को देवे ॥२३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिसके उत्पन्न किये धन और बलादि को सब सेवते उसी महाकीर्ति वाले सब के स्वामी आनन्दस्वरूप सर्वव्याप्त ईश्वर की तुमको पूजा और प्रार्थना करनी चाहिये वह तुम्हारे लिये धनादि से होने वाले सुख को देगा ॥२३॥

बृहन्निदित्यस्य त्रिशोक ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्य परमेश्वर को ही मित्र करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

बृ॒हन्निदि॒ध्मऽए॑षां॒ भूरि॑ श॒स्तं पृ॒थुः स्वरुः॑ ।
येषा॒मिन्द्रो॒ युवा॒ सखा॑ ॥२४॥

पदार्थः—(येषाम्) जिन का (इध्मः) तेजस्वी (पृथुः) विस्तार युक्त (स्वरुः) प्रतापी (युवा) ज्वान (बृहन्) महान् (इन्द्रः) उत्तम ऐश्वर्य वाला परमात्मा (सखा) मित्र है (एषाम्) उन (इत्) ही का (भूरि) बहुत (शस्तम्) स्तुति के योग्य कर्म होता है ॥२४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिसका उत्तम परमेश्वर मित्र होवे वह जैसे इस ब्रह्माण्ड में सूर्य्य प्रताप वाला है वैसे प्रताप युक्त हो ॥२४॥

इन्द्र इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रे॒हि मत्स्यन्ध॑सो॒ विश्वे॑भिः सोम॒पर्वे॑भिः ।
म॒हाँ२ऽअ॑भि॒ष्टिरोज॑सा ॥२५॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य देने वाले विद्वन् ! जिस कारण आप (ओजसा) पराक्रम के साथ (महान्) बड़े (अभिष्टिः) सब ओर से सत्कार के योग्य (विश्वेभिः) सब (सोमपर्वभिः) सोमादि ओषधियों के अवयवों और (अन्धसाः) अन्न से (मत्सि) तृप्त होते हो इस से हम को (आ, इहि) प्राप्त हूजिये ॥२५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस कारण अन्न आदि से मनुष्यादि प्राणियों के शरीरादि का निर्वाह होता है इससे इनके वृद्धि सेवन आहार और विहार यथावत् जानो ॥२५॥

इन्द्र इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

राजपुरुष कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रो॑ वृ॒त्रम॑वृणो॒च्छर्द्ध॑नीतिः॒ प्र मा॒यिना॑ममिना॒द्वर्प॑णीतिः ।
अह॒न् व्यꣳ॑सम॒ुशध॒ग्वने॒ष्वा॒विर्धेना॑ऽअकृणोद्रा॒म्याणा॑म् ॥२६॥

पदार्थः—(शर्द्धनीतिः) बल को प्राप्त (वर्पणीतिः) नाना प्रकार के रूपों वाला (उशधक्) पर पदार्थों को चाहने वाला चोरादि को नष्ट करनेहारा (इन्द्रः) सूर्य्य के तुल्य प्रतापी सभापति (वृत्रम्) प्रकाश को रोकने हारे मेघ के तुल्य धर्म के निरोधक दुष्ट शत्रु को (अवृणोत्) युद्ध के लिये स्वीकार करे (मायिनाम्) दुष्ट बुद्धि वाले छली कपटी आदि को (प्र, अमिनात्) मारे जो (वनेषु) वनों में रहने वाले (व्यंसम्) कपटी हैं भुजा जिस की ऐसे चोर को (अहन्) मारे और (राम्याणाम्) आनन्द देने वाले उपदेशकों की (धेनाः) वाणियों को (आविः, अकृणोत्) प्रकट करे वही राजा होने को योग्य है ॥२६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सूर्य के तुल्य सुशिक्षित वाणियों को प्रकट करते, जैसे अग्नि वनों को वैसे दुष्ट शत्रुओं को मारते, दिन जैसे रात्रि को निवृत्त करे वैसे छल कपटता और अविद्या-रूप अन्धकारादि को निवृत्त करते और बल को प्रकट करते हैं वे अच्छे प्रतिष्ठित राजपुरुष होते हैं ॥२६॥

कुत इत्यस्यागस्त्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

कुत॒स्त्वमि॑न्द्र॒ माहि॑नः॒ सन्नेको॑ यासि सत्पते॒ किं त॑ऽइ॒त्था ।
सं पृ॑च्छसे समरा॒णः शु॑भा॒नैर्वो॒चेस्तन्नो॑ हरिवो॒ यत्ते॑ऽअ॒स्मे ॥

महाँ२ऽ इन्द्रो यऽओजंसा ।
कदा चन स्तरीरंसि । कदा चन प्रयुच्छसि ॥२७॥

पदार्थः—हे (सत्पते) श्रेष्ठ सत्य व्यवहार वा श्रेष्ठ पुरुषों के रक्षक (इन्द्र) सभापते ! (माहिनः) महत्त्वयुक्त सत्कार को प्राप्त (त्वम्) आप (एकः) असहायी (सन्) होते हुए (कुतः) किस कारण (यासि) प्राप्त होते वा विचरते हो ? (किम् ते) (इत्था) इस प्रकार करने में आप का क्या प्रयोजन है ? हे (हरिवः) प्रशंसित मनोहारी घोड़ों वाले राजन् ! (यत्) जिस कारण (अस्मे) हम लोग (ते) आप के हैं इस से (समराणः) सम्यक् चलते हुए आप (नः) हम को (सम्, पृच्छसे) पूछिये और (शुभानैः) मंगलमय वचनों के साथ (तत्) उस एकाकी रहने के कारण को (वोचेः) कहिये ॥२७॥

भावार्थः—राज प्रजा पुरुषों को चाहिये कि सभाध्यक्ष राजा से ऐसा कहें कि हे सभापते ! आप को विना सहाय के कुछ राजकार्य न करना चाहिये किन्तु आपको उचित है कि सज्जनों की रक्षा और दुष्टों के ताड़न में अस्मदादि के सहाययुक्त सदैव रहें, शुभाचरण से युक्त अस्मदादि शिष्टों की सम्मति पूर्वक कोमल वचनों से सब प्रजाओं को शिक्षा करें ॥२७॥

आ तदित्यस्य गोरीवितिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः ।
पंचमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ तत्तंऽइन्द्रायवंः पनन्ताभि यऽऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान् ।
सकृत्स्वं ये पुंरुपुत्राँ महीᳬ सहस्रंधारां बृहतीं दुदुंक्षन् ॥२८॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) राजन् ! (ये) जो (आयवः) सत्य को प्राप्त होने वाले प्रजा जन (सकृत्स्वम्) एक वार उत्पन्न करने वाली (पुरुपुत्राम्) वहुत अन्नादि व्यक्ति वाले पुत्रों से युक्त (सहस्रधाराम्) असंख्य सुवर्णादि धातु जिस में धारारूप हों या असंख्य प्राणिमात्र को धारण करने हारी (वृहतीम्) विस्तारयुक्त (महीम्) बड़ी भूमि को (दुदुक्षन्) दोहना चाहें अर्थात् उससे इच्छा पूर्ति किया चाहें (ये) जो मनुष्य (गोमन्तम्) खोटे इन्द्रियों वाले लम्पट (ऊर्वम्) हिंसक जन को (अभि, तितृत्सान्) सन्मुख होकर मारने की इच्छा करें और जो (ते) आप के (तत्) उस राजकर्म की (आ, पनन्त) प्रशंसा करें उन की आप उन्नति किया कीजिये ॥२८॥

भावार्थः—जो लोग राजभक्त दुष्ट हिंसक एक वार में वहुत फल

फूल देने और सब को धारण करने वाली भूमि के दुहने को समर्थ हों वे राजकार्य करने के योग्य होवें ॥२८॥

इमामित्यस्य कुत्स ऋषिः । इन्द्रो देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्तऽआनजे ।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु ॥२९॥

पदार्थः—हे सभाध्यक्ष ! मैं (महीम्) सुन्दर पूज्य (इमाम्) इस (ते) आप की (धियम्) बुद्धि वा कर्म को (प्र, भरे) धारण करता हूं (स्तोत्रे) स्तुति होने में (अस्य) इस मेरी (धिषणा) बुद्धि (यत्) जिस (ते) आप को (आनजे) प्रकट करती है (तम्) उस (शवसा) बल के साथ (सासहिम्) शीघ्र सहने वाले (इन्द्रम्) उत्तम बल के योग से शत्रुओं को विदर्ण करने हारे सभापति को (महः) महान् कार्य के (उत्सवे) करने योग्य आनन्द समय (च) और (प्रसवे) उत्पत्ति में (च) भी (देवासः) विद्वान् लोग (अनु, अमदन्) अनुकूलता से आनन्दित करें ॥२९॥

भावार्थः—जो राजादि मनुष्य विद्वानों से उत्तम बुद्धि वा वाणी को ग्रहण करते हैं वे सत्य के अनुकूल हुए आप आनन्दित होके औरों को प्रसन्न करते हैं ॥२९॥

विभ्राडित्यस्य विभ्राडृषिः । सूर्यो देवता । विराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविहुतम् ।
वातजूतो योऽअभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा वि राजति ॥३०॥

पदार्थः—(यः) जो (वातजूतः) वायु से वेग को प्राप्त सूर्य्य के तुल्य (विभ्राड्) विशेष कर प्रकाश वाला राजपुरुष (अविह्रुतम्) अखण्ड संपूर्ण (आयुः) जीवन (यज्ञपतौ) युक्त व्यवहार पालक अधिष्ठाता में (दधत्) धारण करता हुआ (त्मना) आत्मा से (प्रजाः) प्रजाओं को (अभि, रक्षति) सब ओर से रक्षा करता हुआ (पुपोष) पुष्ट करता और (पुरुधा) बहुत प्रकारों से (वि, राजति) विशेषकर प्रकाशमान होता है सो आप (बृहत्) बड़े (सोम्यम्) सोमादि ओषधियों के (मधु) मिष्टादि गुण युक्त रस को (पिबतु) पीजिये ॥३०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजादि मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य वृष्टि द्वारा सब जीवों के जीवन व पालन को करता है

उसके तुल्य उत्तम गुणों से महान् होके न्याय और विनय से प्रजाओं की निरन्तर रक्षा करो ॥३०॥

उदु त्यमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्य्यो देवता । निचृद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब सूर्यमण्डल कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ॥३१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जिस (जातवेदसम्) उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान (देवम्) चिलचिलाते हुए (सूर्य्यम्) सूर्य्यमण्डल को (विश्वाय) संसार को (दृशे) देखने के लिये (केतवः) किरणें (उत्, वहन्ति) ऊपर को आश्चर्यरूप प्राप्त कराती हैं (त्यम्) उस (उ) ही को तुम लोग जानो ॥३१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य किरणों से संसार को दिखाता और आप सुशोभित होता वैसे विद्वान् लोग सब विद्या और शिक्षाओं को दिखाकर सुन्दर शोभायमान हों ॥३१॥

येनेत्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्य्यो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर राजधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ२ऽअनु ।
त्वं वरुण पश्यसि ॥३२॥

पदार्थः—हे (पावक) पवित्रकर्त्ता (वरुण) श्रेष्ठ विद्वन् वा राजन् ! (त्वम्) आप (येन, जिस (चक्षसा) प्रकट दृष्टि वा उपदेश से (भुरण्यन्तम्) रक्षा करते हुए (अनु, पश्यसि) अनुकूल देखते हो उससे (जनान्) हम आदि मनुष्यों को देखिये और आप के अनुकूल हम वर्त्तें ॥३२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे राजा और राजपुरुष जिस प्रकार के व्यवहार से प्रजाओं में वर्त्तें वैसे ही भाव से इनमें प्रजा लोग भी वर्त्तें ॥३२॥

दैव्यावित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । विद्वान् देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

दैव्यावध्वर्यूऽआ गतꣳ रथेन सूर्य्यत्वचा ।

मध्वा यज्ञꣳ समञ्जाथे तं प्रत्नथा ।
अयं वेनः । चित्रं देवानाम् ॥३३॥

पदार्थः—हे (दैव्यौ) अच्छे उत्तम विद्वानों वा गुणों में प्रवीण (अध्वर्यू) अपने को अहिंसारूप यज्ञ को चाहते हुए दो पुरुषो ! आप (सूर्यत्वचा) जिसका बाहरी आचरण सूर्य के तुल्य प्रकाशमान ऐसे (रथेन) चलने वाले विमानादि यान से (आ, गतम्) आइये और (मध्वा) कोमल सामग्री से (यज्ञम्) यात्रा, संग्राम वा हवनरूप यज्ञ को (सम्, अञ्जाथे) सम्यक् प्रकट करो ॥३३॥

भावार्थः—राजादि मनुष्यों को चाहिये कि सूर्य के प्रकाश के तुल्य विमानादि यान संग्राम वाहनादि को उत्पन्न कर यात्रादि अनेक व्यवहारों को सिद्ध किया करें ॥३३॥

आ न इत्यस्यागस्त्य ऋषिः । सविता देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब उपदेशक लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ नऽइडाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देवऽएतु ।
अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ॥३४॥

पदार्थः—हे (युवानः) ज्वान ब्रह्मचर्य के साथ विद्या पढ़े हुए उपदेष्टा लोगो! (यथा) जैसे (विश्वानरः) सब का नायक (देवः) उत्तम गुणों वाला (सविता) सूर्य्य के तुल्य प्रकाशमान विद्वान् (इडाभिः) वाणियों से (विदथे) जताने योग्य व्यवहार में (सुशस्ति) सुन्दर प्रशंसायुक्त (नः) हमारे (विश्वम्) सब (जगत्) चेतन पुत्र गौ आदि को (आ, एतु) अच्छे प्रकार प्राप्त होवे वैसे (अभिपित्वे) सन्मुख जाने में तुम लोग (मत्सथ) आनन्दित हूजिये जो (नः) हमारी (मनीषा) बुद्धि है उसको (अपि) भी शुद्ध कीजिये ॥३४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जो सूर्य के तुल्य विद्या से प्रकाशस्वरूप शरीर और आत्मा से युवावस्था को प्राप्त सुशिक्षित जितेन्द्रिय सुशील होते हैं वे सब को उपदेश से ज्ञान कराने को समर्थ होते हैं ॥३४॥

यदद्येत्यस्य श्रुतकक्षसुकक्षावृषी । सूर्यो देवता । पिपीलिकामध्या निचृद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करे इस विषय को कहा है ॥

यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगाऽअभि सूर्य्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥३५॥

पदार्थः—हे (वृत्रहन्) मेघहन्ता सूर्य्य के तुल्य शत्रुहन्ता (सूर्य्य) विद्यारूप ऐश्वर्य के उत्पादक (इन्द्र) अन्नदाता सज्जन पुरुष ! (ते) आप के (यत्) जो (अद्य) आज दिन (सर्वम्) सब कुछ (वशे) वश में है (तत्) उस को (कत् च) कब (अभि, उत्, अगाः) सब ओर से उदित प्रकट सन्नद्ध कीजिये ॥३५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो पुरुष सूर्य के तुल्य अविद्यारूप अन्धकार और दुष्टता को निवृत्त कर सब को वशीभूत करते हैं वे अभ्युदय को प्राप्त होते हैं ॥३५॥

तरणिरित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः। सूर्यो देवता। निचृदनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

अब राजपुरुष कैसे हों इस विषय को कहा है ॥

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य्य ।
विश्वमा भासि रोचनम् ॥३६॥

पदार्थः—हे (सूर्य) सूर्य के तुल्य वर्त्तमान तेजस्विन् ! जैसे (तरणिः) अन्धकार से पार करने वाला (विश्वदर्शतः) सब को देखने योग्य (ज्योतिष्कृत्) अग्नि, विद्युत्, चन्द्रमा, नक्षत्र, ग्रह, तारे आदि को प्रकाशित करने वाले सूर्यलोक (रोचनम्) रुचिकारक (विश्वम्) समग्र राज्य को प्रकाशित करता है वैसे आप (असि) हैं जिस कारण न्याय और विनय से राज्य को (आ, भासि) अच्छे प्रकार प्रकाशित करते हो इसलिये सत्कार पाने योग्य हो ॥३६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजपुरुष विद्या के प्रकाशक होवें तो सब को आनन्द देने को समर्थ होवें ॥३६॥

तत्सूर्यस्येत्यस्य कुत्स ऋषिः। सूर्य्यो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब ईश्वर के विषय में कहते हैं ॥

तत्सूर्य्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्त्तोर्विततꣳ सं जभार ।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥३७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जगदीश्वर अन्तरिक्ष के (मध्या) बीच (यदा) जब (हरितः) जिन में पदार्थ हरे जाते उन दिशाओं और (विततम्) विस्तृत कार्य जगत् को (सम् जभार) संहार अपने में लीन करता (सिमस्मै) सब के लिये (रात्री) रात्रि के तुल्य (वासः) अन्धकाररूप आच्छादन को (तनुते) फैलाता और (आत्) इसके अनन्तर (सधस्थात्) एक स्थान से अर्थात् सर्व साक्षित्वादि से निवृत्त हो के एकाग्र (इत्) ही (अयुक्त) समाधिस्थ होता है (तत्) वह (कर्त्तोः) करने को समर्थ (सूर्यस्य)

चराचर के आत्मा परमेश्वर का (देवत्वम्) देवतापन (तत्) वही उसका (महित्वम्) बड़प्पन तुम लोग जानो ॥३७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग जिस ईश्वर से सब जगत् रचा, धारण पालन और विनाश किया जाता है उसी को और उस की महिमा को जान के निरन्तर उस की उपासना किया करो ॥३७॥

तन्मित्रस्येत्यस्य कुत्स ऋषिः । सूर्य्यो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्य्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे ।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥३८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (द्योः) प्रकाश के (उपस्थे) निकट वर्त्तमान अर्थात् अन्धकार से पृथक् (सूर्यः) चराचर का आत्मा (मित्रस्य) प्राण और (वरुणस्य) उदान के (तत्) उस (रूपम्) रूप को (कृणुते) रचता है जिससे मनुष्य (अभिचक्षे) देखता जानता है (अस्य) इस परमात्मा का (रुशत्) शुद्धस्वरूप और (पाजः) बल (अनन्तम्) अपरिमित (अन्यत्) भिन्न है और (अन्यत्) दूसरे (कृष्णम्) अविद्यादि मलीन गुण वाले भिन्न जगत् को (हरितः) दिशा (सम्, भरन्ति) धारण करती हैं ॥३८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो अनन्त ब्रह्म वह प्रकृति और जीवों से भिन्न है । ऐसे ही प्रकृतिरूप कारण विभु है उससे जो जो उत्पन्न होता वह समय पाकर ईश्वर के नियम से नष्ट हो जाता है जैसे जीव प्राण उदान से सब व्यवहारों को सिद्ध करते वैसे ईश्वर अपने अनन्त सामर्थ्य से इस जगत् के उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयों को करता है ॥३८॥

बण्महानित्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

बण्महाँ२ऽअसि सूर्य्य बडादित्य महाँ२ऽअसि ।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ२ऽअसि ॥३९॥

पदार्थः—हे (सूर्य) चराचर के अन्तर्यामिन् ईश्वर ! जिस कारण आप (बट्) सत्य (महान्) महत्त्वादि गुणयुक्त (असि) हैं । हे (आदित्य) अविनाशीस्वरूप ! जिससे आप (बट्) अनन्त ज्ञानवान् (महान्) बड़े (असि) हो (सतः) सत्यस्वरूप (महः) महान् (ते) आप का (महिमा) महत्त्व (पनस्यते) लोगों से स्तुति किया जाता । हे (देव) दिव्य गुणकर्मस्वभावयुक्त ईश्वर ! जिससे आप (अद्धा) प्रसिद्ध (महान्) महान् (असि) हैं इसलिये हमको उपासना करने के योग्य हैं ॥३९॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस ईश्वर के महिमा को पृथिवी सूर्यादि पदार्थ जनाते हैं जो सब से बड़ा है उसको छोड़के किसी अन्य की उपासना नहीं करनी चाहिये ॥३९॥

बट्सूर्येत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । सूर्यो देवता । भुरिक् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

बट् सूर्य्य श्रवसा महाँ२ऽअसि सत्रा देव महाँ२ऽअसि ।
मह्ना देवानामसुर्य्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥४०॥

पदार्थः—हे (बट्) सत्य (सूर्य) सूर्य के तुल्य सब के प्रकाशक ! जिससे आप (श्रवसा) यश वा धन से (महान्) बड़े (असि) हो । हे (देव) उत्तम सुख के दाता (सत्रा) सत्य के साथ (महान्) बड़े (असि) हो । जिससे आप (देवानाम्) पृथिवी आदि वा विद्वानों के (पुरोहितः) प्रथम से हितकारी (मह्ना) महत्व से (असुर्यः) प्राणों के लिये हितैषी हुए (अदाभ्यम्) आस्तिकता से रक्षा करने योग्य (विभु) व्यापक (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप हैं इससे सत्कार के योग्य हैं ॥४०॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस ईश्वर ने सब की पालना के लिये अन्नादि को उत्पन्न करने वाली भूमि और मेघ का प्रकाश करने वाला सूर्य रचा है वही परमेश्वर उपासना करने को योग्य है ॥४०॥

श्रायन्त इवेत्यस्य नृमेध ऋषिः । सूर्यो देवता । निचृद् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

श्रायन्तऽइव सूर्य्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जाते जनमानऽओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥४१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (ओजसा) सामर्थ्य से (जाते) उत्पन्न हुए और (जनमाने) उत्पन्न होने वाले जगत् में (सूर्यम्) स्वयं प्रकाशस्वरूप सब के अन्तर्यामी परमेश्वर का (श्रायन्तइव) आश्रय करते हुए के समान (विश्वा) सब (वसूनि) वस्तुओं को (प्रति, दीधिम) प्रकाशित करें और (भागम्, न) सेवने योग्य अपने अंश के तुल्य सेवन करें वैसे (इत्) ही (इन्द्रस्य) उत्तम ऐश्वर्य्य के भाग को तुम लोग (भक्षत) सेवन करो ॥४१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो हम लोग परमेश्वर को सेवन करते हुए विद्वानों के तुल्य हों तो यहां सब ऐश्वर्य को प्राप्त होवें ॥४१॥

अद्या देवा इत्यस्य कुत्स ऋषिः । सूर्यो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

विद्वान् लोग कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

अद्या देवाऽउदिता सूर्य्यस्य निरᳲहसः पिपृता निरवद्यात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवीऽउत द्यौः ।।४२।।

पदार्थः—हे (देवाः) विद्वान् लोगो ! जिस कारण (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के (उदिता) उदय होते (अद्य) आज (अंहसः) अपराध से (नः) हम को (निः) निरन्तर बचाओ और (अवद्यात्) निन्दित दुःख से (निः, पिपृत) निरन्तर रक्षा करो (तत्) इस से (मित्रः) मित्र (वरुणः) श्रेष्ठ (अदितिः) अन्तरिक्ष (सिन्धुः) समुद्र (पृथिवी) भूमि (उत) और (द्यौः) प्रकाश ये सब हमारा (मामहन्ताम्) सत्कार करें ।।४२।।

भावार्थः—जो विद्वान् मनुष्य प्राणादि के तुल्य सब को सुखी करते और अपराध से दूर रखते हैं वे जगत् को शोभित करने वाले हैं ।।४२।।

आ कृष्णेनेत्यस्य हिरण्यस्तूप ऋषिः । सूर्यो देवता । विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

अब सूर्य्यमण्डल कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ।।४३।।

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो ज्योतिःस्वरूप रमणीय स्वरूप से (कृष्णेन) आकर्षण से परस्पर सम्बद्ध (रजसा) लोकमात्र के साथ (आ, वर्त्तमानः) अपने भ्रमण की आवृत्ति करता हुआ (भुवनानि) सब लोकों को (पश्यन्) दिखाता हुआ (देवः) प्रकाशमान (सविता) सूर्य्यदेव (अमृतम्) जल वा अविनाशी आकाशादि (च) और (मर्त्यम्) मरणधर्मा प्राणिमात्र को (निवेशयन्) अपने अपने प्रदेश में स्थापित करता हुआ (आ याति) उदयास्त समय में आता जाता है सो ईश्वर का बनाया सूर्य्यलोक है ।।४३।।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे इन भूगोलादि लोकों के साथ सूर्य्य का आकर्षण है जो वृष्टिद्वारा अमृतरूप जल को बरसाता और जो मूर्त्त द्रव्यों को दिखाने वाला है वैसे ही सूर्य्य आदि लोक भी ईश्वर के आकर्षण से धारण किये हुए हैं ऐसा जानना चाहिये ।।४३।।

प्र वायुम् इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । वायुर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

अब वायु सूर्य्य कैसे हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

प्र वा॑वृजे सुप्र॒या ब॒र्हिरे॑षा॒मा वि॒श्पती॑व बी॒रिट॑ऽइयाते ।
वि॒शाम॒क्तोरु॒षसः॑ पू॒र्वहू॑तौ वा॒युः पू॒षा स्व॒स्तये॑ नि॒युत्वा॑न् ॥४४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (पूर्वहूतौ) पूर्वजों ने प्रशंसा किये हुए (सुप्रयाः) सुन्दर प्रकार चलने वाला (नियुत्वान्) शीघ्रकारी वेगादि गुणों वाला (वायुः) पवन और (पूषा) सूर्य (एषाम्) इन मनुष्यों के (स्वस्तये) सुख के लिये (प्र, वावृजे) प्रकर्षता से चलता है (विशाम्) प्रजाओं के बीच (विश्पतीव) प्रजारक्षक दो राजाओं के तुल्य (बीरिटे) अन्तरिक्ष में (आ, इयाते) आते जाते हैं वैसे (अक्तोः) रात्रि और (उषसः) दिन के (बर्हिः) जल को प्राप्त होते हैं ॥४४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो वायु सूर्य न्यायकारी राजा के समान पालक हैं वे ईश्वर के बनाये हैं यह जानना चाहिये ॥४४॥

इन्द्रवायू इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रवायू देवते । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्य विद्युत् आदि पदार्थों को जान के क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इ॒न्द्र॒वा॒यू बृह॒स्पतिं॑ मि॒त्राग्निं पू॒षणं॒ भग॑म् ।
आ॒दि॒त्यान्मारु॑तं ग॒णम् ॥४५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (इन्द्रवायू) बिजुली, पवन (बृहस्पतिम्) बड़े लोकों के रक्षक सूर्य्य (मित्रा) प्राण (अग्निम्) अग्नि (पूषणम्) पुष्टिकारक (भगम्) ऐश्वर्य्य (आदित्यान्) बारह महीनों और (मारुतम्) वायुसम्बन्धि (गणम्) समूह को जान के उपयोग में लावें वैसे तुम लोग भी उनका प्रयोग करो ॥४५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि सृष्टिस्थ विद्युत् आदि पदार्थों को जान और सम्यक् प्रयोग कर कार्य्यों को सिद्ध करें ॥४५॥

वरुण इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । वरुणो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर अध्यापक और उपदेशक कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वरु॑णः प्रावि॒ता भु॑व॒न्मि॒त्रो विश्वा॑भिरू॒तिभिः॑ ।
कर॑तां नः सु॒राध॑सः ॥४६॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक विद्वान् लोगो ! जैसे (वरुणः) उदान वायु के तुल्य उत्तम विद्वान् और (मित्रः) प्राण के तुल्य प्रियमित्र (विश्वाभिः)

समग्र (ऊतिभिः) रक्षा आदि क्रियाओं से (प्राविता) रक्षक (भुवत्) होवे वैसे आप दोनों (नः) हम को (सुराधसः) सुन्दर धन से युक्त (करताम्) कीजिये ॥४६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो अध्यापक और उपदेशक लोग प्राणों के तुल्य सब में प्रीति रखने वाले और उदान के समान शरीर और आत्मा के बल को देने वाले हों वे ही सब के रक्षक सब को धनाढ्य करने को समर्थ होवें ॥४६॥

अधीत्यस्य कुत्सीदिर्ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृत्पिपीलिकामध्या गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अधि न इन्द्रैषां विष्णो सजात्यानाम्। इता मरुतो अश्विना।
तं प्रत्नथा। अयं वेनः। ये देवासः। आ नऽइडाभिः।
विश्वेभिः सोम्यं मधु। ओमासश्चर्षणीधृतः ॥४७॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमैश्वर्यदातः विद्वन्! हे (विष्णो) व्यापक ईश्वर! हे (मरुतः) मनुष्यो! तथा हे (अश्विना) अध्यापक उपदेशक लोगो! तुम सब (सजात्यानाम्) हमारे सहयोगी (एषाम्) इन (नः) हमारे बीच (अधि) स्वामीपन को (इत) प्राप्त होओ ॥४७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्वान् ईश्वर के समान पक्षपात छोड़ सम दृष्टि से हमारे विषय में वर्ते उन के विषय में हम भी वैसे ही वर्त्ता करें ॥४७॥

अग्न इत्यस्य प्रतिक्षत्र ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्नऽइन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्द्धः प्र यन्त मारुतोत विष्णो।
उभा नासत्या रुद्रोऽअध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त ॥४८॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्याप्रकाशक (इन्द्र) महान् ऐश्वर्य वाले (वरुण) अति श्रेष्ठ (मित्र) मित्र (मारुत) मनुष्यों में वर्त्तमान जन (उत) और (विष्णो) व्यापनशील (देवाः) विद्वान् तुम लोगो! हमारे लिये (शर्द्धः) शरीर और आत्मा के बल को (प्र, यन्त) देओ (उभा) दोनों (नासत्या) सत्यस्वरूप अध्यापक और उपदेशक (रुद्रः) दुष्टों को रुलाने हारा (ग्नाः) अच्छी शिक्षित वाणी (पूषा) पोषक

(भगः) ऐश्वर्यवान् (अथ) और इस के अनन्तर (सरस्वती) प्रशस्त ज्ञान वाली स्त्री ये सब हमारा (जुषन्त) सेवन करें ॥४८॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के सेवन से विद्या और उत्तम शिक्षा को ग्रहण कर दूसरों को भी विद्वान् करें ॥४८॥

इन्द्राग्नी इत्यस्य वत्सार ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

अध्यापक और अध्येता लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिꣳ स्वः पृथिवीं द्यां मरुतः पर्वताँ२ऽअपः। हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं नु शꣳसꣳ सवितारमूतये ॥४९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (इन्द्राग्नी) संयुक्त बिजुली और अग्नि (मित्रावरुणा) मिले हुए प्राण उदान (अदितिम्) अन्तरिक्ष (पृथिवीम्) भूमि (द्याम्) सूर्य (मरुतः) विचारशील मनुष्यों (पर्वतान्) मेघों वा पहाड़ों (अपः) जलों (विष्णुम्) व्यापक ईश्वर (पूषणम) पुष्टिकर्त्ता (ब्रह्मणस्पतिम्) ब्रह्माण्ड वा वेद के पालक ईश्वर (भगम्) ऐश्वर्य (शंसम) प्रशंसा के योग्य (सवितारम्) ऐश्वर्यकारक राजा और (स्वः) सुख की (नु) शीघ्र (हुवे) स्तुति करूं वैसे उन की तुम भी प्रशंसा करो ॥४९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। अध्यापक और अध्येता को चाहिये कि प्रकृति से लेकर पृथिवी पर्य्यन्त पदार्थों को रक्षा आदि के लिये जानें ॥४९॥

अस्मे इत्यस्य प्रगाथ ऋषिः। महेन्द्रो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

अब राजपुरुष कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः। यः शꣳसते स्तुवते धायि पज्रऽइन्द्रज्येष्ठाऽअस्माँ२ऽअवन्तु देवाः ॥५०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (पज्रः) संचित धन वाला जन जिनकी (शंसते) प्रशंसा और (स्तुवते) स्तुति करता और जिसने धन को (धायि) धारण किया है उस और (अस्मान्) हमारी जो (अस्मे) हमारे बीच (मेहना) धनादि को छोड़ने (रुद्राः) शत्रुओं को रुलाने और (पर्वतासः) उत्सवों वाले (वृत्रहत्ये) दुष्ट को मारने के लिये (भरहूतौ) संग्राम में बुलाने के विषय में (सजोषाः) एकसी प्रीति वाले (इन्द्रज्येष्ठाः) सभापति राजा जिनमें बड़ा है ऐसे (देवाः) विद्वान् लोग (अवन्तु) रक्षा करें वे तुम्हारी भी रक्षा करें ॥५०॥

भावार्थः—जो राजपुरुष पदार्थों की स्तुति करने वाले श्रेष्ठों के रक्षक दुष्टों के ताड़क युद्ध में प्रीति रखने वाले मेघ के तुल्य पालक प्रशंसा के योग्य हैं वे सब को सेवन योग्य होते हैं ॥५०॥

अर्वाञ्च इत्यस्य कूर्म ऋषिः। विश्वेदेवा देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अर्वाञ्चोऽअद्या भवता यजत्राऽआ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम्।
त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य त्राध्वं कर्त्तादवपदो यजत्राः ॥५१॥

पदार्थः—हे (यजत्राः) सङ्गति करने हारे (देवाः) विद्वानो! तुम लोग (अद्या) आज (अर्वाञ्च) हमारे सन्मुख (भवत) हूजिये अर्थात् हम से विरुद्ध विमुख मत रहिये (भयमानः) डरता हुआ मैं (व) तुम्हारे (हार्दि) मनोगत को (आ, व्ययेयम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होऊं (नः) हमको (निजुरः) हिंसक (वृकस्य) चोर वा व्याघ्र कि सम्बन्ध से (त्राध्वम्) बचाओ। हे (यजत्राः) विद्वानों का सत्कार करने वाले लोगो! तुम (अवपदः) जिस में गिर पड़ते उस (कर्त्तात्) कूप वा गढ़े से हमारी (त्राध्वम्) रक्षा करो ॥५१॥

भावार्थः—प्रजापुरुषों को राजपुरुषों से ऐसे प्रार्थना करनी चाहिये कि—हे पूज्य राजपुरुष विद्वानो! तुम सदैव हमारे अविरोधी कपटादिरहित और भय के निवारक होओ। चोर व्याघ्रादि और मार्ग शोधने से गढ़े आदि से हमारी रक्षा करो ॥५१॥

विश्व इत्यस्य लुश ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवत. स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्वेऽअद्य मरुतो विश्वऽऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः।
विश्वे नो देवाऽअवसा गमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजोऽअस्मे ॥५२॥

पदार्थः—हे राजा आदि मनुष्यो! (अद्य) आज जैसे (विश्वे) आप सब लोग (विश्वे) सब (मरुतः) मरणधर्मा मनुष्य और (विश्वे) सब (समिद्धाः) प्रदीप्त (अग्नय) अग्नि (ऊती) रक्षण क्रिया से (नः) हमारे रक्षक (भवन्तु) होवें (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (अवसा) रक्षा आदि के साथ (न.) हम को (आ, गमन्तु) प्राप्त हों वैसे (विश्वम्) सब (द्रविणम्) धन और (वाजः) अन्न (अस्मे) इस मनुष्य के लिये (अस्तु) प्राप्त होवे ॥५२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को

चाहिये कि जैसा सुख अपने लिये चाहें वैसा ही औरों के लिये भी, इस जगत् में जो विद्वान् हों वे आप अधर्माचरण से पृथक् हो के औरों को भी वैसा करें ॥५२॥

विश्वे देवा इत्यस्य सुहोत्र ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

विश्वे देवाः शृणुतेमꣳ हवं मे येऽअन्तरिक्षे यऽउप द्यवि ष्ठ ।
येऽअग्निजिह्वाऽउत वा यजत्राऽआसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ॥५३॥

पदार्थः—हे (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोगो ! तुम (ये) (अन्तरिक्षे) आकाश में (ये) जो (द्यवि) प्रकाश में (ये) जो (अग्निजिह्वाः) जिह्वा के तुल्य जिन के अग्नि हैं वे (उत) और (वा) अथवा (यजत्राः) सगति करने वाले पूजनीय पदार्थ हैं उनके जानने वाले (स्थ) हूजिये (मे) मेरे (इमम्) इस (हवम्) पढ़ने पढ़ाने रूप व्यवहार को (उप, शृणुत) निकट से सुनो (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) सभा वा आसन पर (आसद्य) बैठ कर (मादयध्वम्) आनन्दित होओ ॥५३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम जितने भूमि अन्तरिक्ष और प्रकाश में पदार्थ हैं उनको जान विद्वानो की सभा कर विद्यार्थियों की परीक्षा कर विद्या सुशिक्षा को बढ़ा और आप आनन्दित हो के दूसरों को निरन्तर आनन्दित करो ॥५३॥

देवेभ्य इत्यस्य वामदेव ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वꣳ सुवसि भागमुत्तमम् ।
आदिद्दामानꣳ सवितर्व्यूर्णुषेऽनूचीना जीविता मानुषेभ्यः ॥५४॥

पदार्थः—हे (सवितः) समस्त जगत् के उत्पादक जगदीश्वर ! (हि) जिससे आप (यज्ञियेभ्यः) यज्ञ-सिद्धि करनेहारे (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (उत्तमम्) श्रेष्ठ (प्रथमम्) मुख्य (अमृतत्वम्) मोक्षभाव (भागम्) सेवने योग्य सुख को (सुवसि) प्रेरित करते हो (आत्, इत्) इसके अनन्तर हो (दामानम्) सुख देने वाले प्रकाश और (अनूचीना) जानने के साधन (जीविता) जीवन के हेतु कर्मों को (मानुषेभ्यः) मनुष्यों के लिये (वि, ऊर्णुषे) विस्तृत करते हो इसलिये उपासना के योग्य हो ॥५४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! परमेश्वर ही के योग और विद्वानों के सङ्ग से सर्वोत्तम सुख वाले मोक्ष को प्राप्त होओ ॥५४॥

प्रवायुमित्यस्य ऋजिश्व ऋषिः । वायुर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारं रथप्राम् ।
द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥५५॥

पदार्थः—हे (प्रयज्यो) अच्छे प्रकार यज्ञ करनेहारे विद्वन् ! (नियुतः) निश्चयात्मक पुरुषों को (पत्यमानः) प्राप्त होते हुए (कविः) बुद्धिमान् विद्वान् आप जो तुम्हारी (बृहती) बड़ी तेज (मनीषा) बुद्धि है उस से (बृहद्रयिम्) बहुत धनों के निमित्त (विश्ववारम्) सब को ग्रहण करने हारे (रथप्राम्) विमानादि यानों को व्याप्त होने वाले (द्युतद्यामा) अग्नि को प्रदीप्त करने वाले (वायुम्) प्राणादिस्वरूप वायु और (कविम्) बुद्धिमान् जन का (अच्छ, प्र, इयक्षसि) अच्छे प्रकार संग करना चाहते हो इससे सब के सत्कार के योग्य हो ॥५५॥

भावार्थः—जो विद्वान् को प्राप्त हो पूर्ण विद्या बुद्धि और समग्र धन को प्राप्त होवें वे सत्कार के योग्य हों ॥५५॥

इन्द्रवायू इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रवायू देवते । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रवायूऽइमे सुताऽउप प्रयोभिरा गतम् ।
इन्दवो वामुशन्ति हि ॥५६॥

पदार्थः—हे (इन्द्रवायू) बिजुली और पवन की विद्या को जानने वाले विद्वानो ! तुम्हारे लिये (इमे) ये (सुताः) सिद्ध किये हुए पदार्थ हैं (हि) जिस कारण (इन्दवः) सोमादि ओषधियों के रस (वाम्) तुम को (उशन्ति) चाहते अर्थात् वे तुम्हारे योग्य हैं इससे (प्रयोभिः) उत्तम गुण कर्म स्वभावों के सहित उनको (उप, आ, गतम्) निकट से अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥५६॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! जिस कारण तुम लोग हमारे ऊपर कृपा करते हो इसलिये सब लोग तुमको मिलना चाहते हैं ॥५६॥

मित्रमित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

मित्रꣳ हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् ।
धियं घृताचीꣳ साधन्ता ॥५७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (धियम्) बुद्धि तथा (घृताचीम्) शीतलतारूप जल को प्राप्त होने वाली रात्रि को (साधन्ता) सिद्ध करते हुए (पूतदक्षम्) शुद्ध बलयुक्त (मित्रम्) मित्र और (रिशादसम्) दुष्ट हिंसक को मारने हारे (वरुणम्) धर्मात्मा जन को (हुवे) स्वीकार करता हूं वैसे इनको तुम लोग भी स्वीकार करो ॥५७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे प्राण और उदान बुद्धि और रात्रि को सिद्ध करते वैसे विद्वान् लोग सब उत्तम साधनों का ग्रहण कर कार्यों को सिद्ध करें ॥५७॥

दस्रेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अश्विनौ देवते । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः ।
आ यातꣳ रुद्रवर्त्तनी ॥ तं प्रत्नथा । अयं वेनः ॥५८॥

पदार्थः—हे (नासत्या) असत्य आचरण से पृथक् (रुद्रवर्त्तनी) दुष्टरोधक न्यायाधीश के तुल्य आचरण वाले (दस्रा) दुष्टों के निवारक विद्वानो ! जो (वृक्तबर्हिषः) यज्ञ से पृथक् अर्थात् भोजनार्थ (युवाकवः) तुम को चाहनेवाले (सुताः) सिद्ध किये पदार्थ हैं उनको तुम लोग (आ, यातम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥५८॥

भावार्थः—विद्वानों को योग्य है कि जो विद्याओं की कामना करते हैं उनको विद्या देवें ॥५८॥

विदद्यदीत्यस्य कुशिक ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब स्त्री क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

विदद्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यꣳ सध्र्यक्कः ।
अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥५९॥

पदार्थः—(यदि) जो (सरमा) पति के अनुकूल रमण करने हारी (प्रथमा) प्रख्यात (सुपदी) सुन्दर पगों वाली (अक्षराणाम्) अकारादि वर्णों के (रवम्) बोलने को (जानती) हुई (रुग्णम्) रोगी प्राणी को (विदत्) जाने (अग्रम्) आगे (नयत्) पहुंचाने वाला (सध्र्यक्) साथ प्राप्त होता (पूर्व्यम्) प्रथम के लोगों ने प्राप्त किये

(महि) महागुणयुक्त (अभ्रे) मेघ से उत्पन्न हुए (पाय:) अन्न को (क:) करे अर्थात् भोजनार्थं सिद्ध करे और पति को (अच्छ) अच्छे प्रकार (गात्) प्राप्त होवे तो वह सुख को पावे ॥५९॥

भावार्थः—जो स्त्री वैद्य के तुल्य सब की हितकारिणी ओषधि के तुल्य अन्न बनाने को समर्थ हो और यथायोग्य बोलना भी जाने वह उत्तम सुख को निरन्तर पावे ॥५९॥

नहीत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । वैश्वानरो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब मनुष्य कैसे मोक्ष को प्राप्त होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

नहि स्पशमविदन्नन्यमस्माद्वैश्वानरात्पुरऽएतारमग्नेः ।
एमेनमवृधन्नमृताऽअमर्त्यं वैश्वानरं क्षैत्रजित्याय देवाः ॥६०॥

पदार्थः—जो (अमृताः) आत्मस्वरूप से मरणधर्म रहित (देवाः) विद्वान् लोग (अमर्त्यम्) नित्य व्यापक रूप (वैश्वानरम्) सब के चलानेवाले (एनम्) इस अग्नि को (क्षैत्रजित्याय) जिस क्रिया से खेतों को जीतते उस भूमिराज्य के होने के लिये (आ, अवृधन्) अच्छे प्रकार बढ़ाते हैं वे (ईम्) सब ओर से (अस्मात्) इस (वैश्वानरात्) सब मनुष्यों के हितकारी (अग्ने:) अग्नि से (पुरएतारम्) पहिले पहुंचाने वाले (अन्यम्) किसी भिन्न को (स्पशम्) दूत (नहि) नहीं (अविदन्) जानते हैं ॥६०॥

भावार्थः जो उत्पत्ति नाश रहित मनुष्य देहधारी जीव विजय के लिये उत्पत्ति नाश रहित जगत् के स्वामी परमात्मा की उपासना कर उससे भिन्न की उसके तुल्य उपासना नहीं करते हैं वे बन्ध को छोड़ मोक्ष को प्राप्त होवें ॥६०॥

उग्रेत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब सभा सेनापति क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उग्रा विघनिना मृधऽइन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृडातऽईदृशे ॥६१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! हम जिन (उग्रा) अधिक बली तेजस्वी स्वभाव वाले (मृधः) और हिंसकों को (विघनिना) विशेष कर मारने हारे (इन्द्राग्नी) सभा और सेनापति को (हवामहे) बुलाते हैं (ता) वे (ईदृशे) इस प्रकार के संग्रामादि व्यवहार में (नः) हम लोगों को (मृडातः) सुखी करते हैं ॥६१॥

भावार्थः—जो सभा और सेना के अध्यापक पक्षपात को छोड़ बल को बढ़ा के शत्रुओं को जीतते हैं वे सब को सुख देनेवाले होते हैं ॥६१॥

उपास्मायित्यस्य देवल ऋषिः । सोमो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब पढ़ने पढ़ाने वाले कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे । अभि देवाँ२ऽइयक्षते ॥६२॥

पदार्थः—हे (नरः) नायक अध्यापकादि लोगो! तुम लोग (देवान्) विद्वानों को (अभि) सब ओर से (इयक्षते) सत्कार करना चाहते हुए (अस्मै) इस (पवमानाय) पवित्र करने हारे (इन्दवे) कोमल विद्यार्थी के लिये (उपगायत) निकटस्थ हो के शास्त्रों को पढ़ाया करो ॥६२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे जिज्ञासु लोग अध्यापकों को सन्तुष्ट करना चाहते हैं वैसे अध्यापक लोग भी उनको पढ़ाने की इच्छा रक्खा करें ॥६२॥

ये त्वेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्द्धन्ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ ।
ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमꣳ सगणो मरुद्भिः ॥६३॥

पदार्थः—हे (मघवन्) उत्तम पूजित धन वाले सेनापति ! (ये) जो (विप्राः) बुद्धिमान् लोग (अहिहत्ये) जहां मेघ का काटना और (गविष्टौ) किरणों की संगति हो उस संग्राम में जैसे किरणें सूर्य के तेज को वैसे (त्वा) आप को (अवर्धन्) उत्साहित करें। हे (हरिवः) प्रशंसित किरणों के तुल्य चिलकते घोड़ों वाले शूरवीर जन! (ये) जो लोग (शाम्बरे) मेघ सूर्य के संग्राम में बिजुली के तुल्य (त्वा) आप को बढ़ावें (ये) जो (नूनम्) निश्चय कर आप की (अनु, मदन्ति) अनुकूलता से आनन्दित होते हैं और (ये) जो आप की रक्षा करते हैं। हे (इन्द्र) उत्तम ऐश्वर्य वाले जन! (मरुद्भिः) जैसे वायु के (सगणः) गण के साथ सूर्य रस को ग्रहण करे वैसे मनुष्यों के साथ (सोमम्) श्रेष्ठ ओषधि रस को (पिब) पीजिये ॥६३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे मेघ और सूर्य के संग्राम में सूर्य का ही विजय होता है वैसे मूर्ख और विद्वानों के संग्राम में विद्वानों का ही विजय होता है ॥६३॥

जनिष्ठा इत्यस्य गौरीविति ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

जनिष्ठाऽउग्रः सहसे तुरायं मन्द्रऽओजिष्ठो बहुलाभिमानः ।
अवर्द्धन्निन्द्रं मरुतश्चिदत्र माता यद्वीरं दधनद्धनिष्ठा ॥६४॥

पदार्थः—हे राजन् ! (धनिष्ठा) अत्यन्त धनवती (माता) माता (यत्) जिस (वीरम्) शूरतादि गुणयुक्त आप पुत्र को (दधनत्) पुष्ट करती रही और (चित्) जैसे (इन्द्रम्) सूर्य्य को (मरुतः) वायु बढ़ावे वैसे सभासद् लोग जिस आप को (अवर्धन्) योग्यतादि से बढ़ावें सो आप (अत्र) इस राज्यपालन रूप व्यवहार में (सहसे) बल और (तुराय) शीघ्रता के लिये (उग्रः) तेजस्वी स्वभाव वाले (मन्द्रः) स्तुति प्रशंसा को प्राप्त आनन्ददाता (ओजिष्ठः) अतिशय पराक्रमी और (बहुलाभिमानः) अनेक प्रकार के पदार्थों के अभिमान वाले हुए सुख को (जनिष्ठाः) उत्पन्न कीजिये ॥६४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो स्वयं ब्रह्मचर्य से शरीरात्मबलयुक्त विद्वान् हुआ दुष्टों के प्रति कठिन स्वभाववाला श्रेष्ठ के विषय भिन्न स्वभाव वाला होता हुआ बहुत उत्तम सभ्यों से युक्त धर्मात्मा हुआ न्याय और विनय से राज्य की रक्षा करे वह सब ओर से बढ़े ॥६४॥

आ तू न इत्यस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ तू नऽइन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्द्धमा गहि ।
महान्महीभिरूतिभिः ॥६५॥

पदार्थः—हे (वृत्रहन्) शत्रुओं के विनाशक (इन्द्र) उत्तम ऐश्वर्य वाले राजन् ! आप (अस्माकम्) हम लोगों की (अर्द्धम्) वृद्धि उन्नति को (आ, गहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये और (महान्) अत्यन्त पूजनीय हुए (महीभिः) बड़ी (ऊतिभिः) रक्षादि क्रियाओं से (नः) हम को (तु, आ, दधनत्) शीघ्र अच्छे प्रकार पुष्ट कीजिये ॥६५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से (दधनत्) इस पद की अनुवृत्ति आती है। हे राजन् ! जैसे आप हमारे रक्षक और वर्द्धक हैं वैसे हम लोग भी आप को बढ़ावें, सब हम लोग प्रीति से मिल के दुष्टों को निवृत्त करके श्रेष्ठों को धनाढ्य करें ॥६५॥

त्वमिन्द्रेत्यस्य नृमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गांधारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वमिन्द्र प्रतूर्त्तिष्वभि विश्वाऽअसि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य्य तरुष्यतः ॥६६॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) उत्तम ऐश्वर्य देनेवाले राजन् ! जिस कारण (त्वम्) आप (प्रतूर्त्तिषु) जिसमें मारना होता उन संग्रामों में (विश्वाः) शत्रुओं की सब (स्पृधः) ईर्ष्यायुक्त सेनाओं को (अभि, असि) तिरस्कार करते हो तथा (अशस्तिहा) जिनकी कोई प्रशंसा न करे उन दुष्टों के हन्ता (जनिता) सुखों के उत्पन्न करने हारे (विश्वतूः) सब शत्रुओं को मारने वाले हुए (त्वम्) आप विजय वाले (असि) हो इससे (तरुष्यतः) हनन करने वाले शत्रुओं को (तूर्य्य) मारिये ॥६६॥

भावार्थः—जो राजपुरुष अधर्म्मयुक्त कर्मों के निवर्त्तक सुखों के उत्पादक और युद्धविद्या में कुशल हों वे शत्रुओं को जीतने को समर्थ हों ॥६६॥

अनु ते शुष्ममित्यस्य नृमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥६७॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) शत्रुओं के नाशक राजन् ! जिस (ते) आप के (तुरयन्तम्) शत्रुओं को मारते हुए (शुष्मम्) शत्रुओं को सुखाने हारे बल को (शिशुम्) बालक को (मातरा) माता पिता (न) के समान (क्षोणी) अपनी व पराई भूमि (अनु, ईयतुः) अनुकूल प्राप्त होतीं उस (ते) आपके (मन्यवे) क्रोध से (विश्वाः, स्पृधः) सब शत्रुओं की ईर्ष्या करने हारी सेना (श्नथयन्त) नष्ट भ्रष्ट मारी जाती हैं (यत्) जिस (वृत्रम्) न्याय के निरोधक शत्रु को आप (तूर्वसि) मारते हो वह पराजित हो जाता है ॥६७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जिन राजपुरुषों की हृष्ट पुष्ट युद्ध की प्रतिज्ञा करती हुई सेना हो वे सर्वत्र विजय को प्राप्त होवें ॥६७॥

यज्ञ इत्यस्य कुत्स ऋषिः । आदित्या देवताः । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादꣳहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् ॥६८॥

पदार्थः—हे (आदित्यासः) सूर्यवत्तेजस्वी पूर्णविद्या वाले लोगो ! जैसे (देवानाम्) विद्वानों का (यज्ञः) संगति के योग्य संग्रामादि व्यवहार (सुम्नम्) सुख करने को (प्रत्येति) उलटा प्राप्त होता है वैसे (मृडयन्त.) सुखी करने वाले (भवत) होवो। जैसे (वः) तुम्हारी (वरिवोवित्तरा) अत्यन्त सेवा को प्राप्त (अर्वाची) हमारे अनुकूल (सुमतिः) उत्तम बुद्धि (आ, ववृत्यात्) अच्छे प्रकार वर्त्ते (अंहोः) अपराधी की (चित्) भी वैसे सुख करने वाली हमारे अनुकूल बुद्धि (असत्) होवे ॥६८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिस देश में पूर्ण विद्या वाले राजकर्मचारी हों वहां सब की एकमति होकर अत्यन्त सुख बढ़े ॥६८॥

अदब्धेभिरित्यस्य भरद्वाज ऋषिः। सविता देवता। निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वꣳ शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम्।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नोऽअघशꣳसऽईशत ॥६९॥

पदार्थः हे (सवितः) अनेक पदार्थों के उत्पादक तेजस्वि विद्वन् राजन्! (त्वम्) आप (अदब्धेभि) अहिंसित (शिवेभि.) कल्याणकारी (पायुभिः) रक्षाओं से (अद्य) आज (नः) हमारे (गयम्) प्रशंसा के योग्य सन्तान, धन और घर की (परि, पाहि) सब ओर से रक्षा कीजिये (हिरण्यजिह्वः) सब के हित में रमण करने योग्य वाणी वाले हुए आप (नव्यसे) अत्यन्त नवीन (सुविताय) ऐश्वर्य के लिये (नः) हमारी (रक्ष) रक्षा कीजिये जिससे (अघशंसः) पाप की प्रशंसा करने वाला दुष्ट चोर हम पर (माकिः) न (ईशत) समर्थ होवे ॥६९॥

भावार्थः—प्रजाजनों को राजपुरुषों से ऐसा सम्बोधन करना चाहिये कि तुम लोग हमारे सन्तान, धन, घर और पदार्थों की रक्षा से नवीन नवीन ऐश्वर्य्य को प्राप्त करा के हम को पीड़ा देनेहारे दुष्टों से दूर रक्खो ॥६९॥

प्र वीरयेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। वायुर्देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वामध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुतासः।
वह वायो नियुतो याह्यच्छा पिबा सुतस्यान्धसो मदाय ॥७०॥

पदार्थः - हे राज प्रजा जनो! जो (वाम्) तुम दोनों के (मधुमन्तः) प्रशंसित ज्ञानयुक्त (सुतासः) विद्या और उत्तम शिक्षा से सिद्ध किये गये (शुचयः) पवित्र

मनुष्य (अध्वयुंभि) हिंसा और अन्याय से पृथक् रहने वालों के साथ (वीरया) वीर पुरुषों से युक्त सेना से शत्रुओं को (प्र, वद्रिरे) अच्छे प्रकार विदीर्ण करते हैं उनके साथ हे (वायो) वायु आदि के सदृश वर्त्तमान बलिष्ठ राजन्! आप (नियुतः) निरन्तर संयुक्त वियुक्त होने वाले वायु आदि गुणों को (वह) प्राप्त कीजिये और (अच्छ, याहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये तथा (मदाय) आनन्द के लिये (सुतस्य) सिद्ध किये हुए (अन्धसः) अन्न के रस को (पिब) पीजिये ॥७०॥

भावार्थः—जो पवित्र आचरण करने वाले राजप्रजा के हितैषी विज्ञानयुक्त पुरुष वीरों की सेना से शत्रुओं को विदीर्ण करते हैं उनको प्राप्त होके राजा आनन्दित होवे। राजा जैसा अपने लिये आनन्द चाहे वैसा राजप्रजाजनों के लिये भी चाहे ॥७०॥

गाव इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते। गायत्रीछन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब पृथिवी सूर्य कैसे हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

गावऽउपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा। उभा कर्णा हिरण्यया ॥७१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे (रप्सुदा) सुन्दर रूप देने वाले (उभा) दोनों (कर्णा) कार्यसाधक (हिरण्यया) ज्योतिःस्वरूप (मही) महत्परिमाण वाले सूर्य पृथिवी (यज्ञस्य) संगत संसार के (अवतम्) कूप के तुल्य रक्षा करने वाले होते और (गावः) किरण भी रक्षक होवें। वैसे इनकी तुम लोग (उप, अवत) रक्षा करो ॥७१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे किसान लोग कूप के जल से खेतों और वाटिकाओं की सम्यक् रक्षा कर धनवान् होते वैसे पृथिवी सूर्य सब के धनकारक होते हैं ॥७१॥

काव्ययोरित्यस्य दक्ष ऋषिः। विद्वान् देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब अध्यापक उपदेशक के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

काव्ययोराजानेषु क्रत्वा दक्षस्य दुरोणे।
रिशादसा सधस्थऽआ ॥७२॥

पदार्थः हे (रिशादसा) अविद्यादि दोषों के नाशक अध्यापक उपदेशक लोगो! (काव्ययोः) कवि विद्वानों ने बनाये व्यवहार परमार्थ के प्रतिपादक ग्रन्थों के (आजानेषु) जिनसे विद्वान् होते उन पठनपाठनादि व्यवहारों में (क्रत्वा) बुद्धि से वा कर्म करके (दक्षस्य) कुशल पुरुष के (सधस्थे) जिस में साथ मिल कर बैठें उस (दुरोणे) घर में तुम लोग (आ) आया करो ॥७२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जो अध्यापक तथा उपदेशक लोग राजा प्रजा

जनों को बुद्धिमान् बलयुक्त नीरोग आपस में प्रीति वाले धर्मात्मा और पुरुषार्थी करें वे पिता के तुल्य सत्कार करने योग्य हैं ॥७२॥

दैव्यावित्यस्य दक्ष ऋषिः। अध्वर्यू देवते। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब यान बनाने का विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

दैव्यावध्वर्यू आ गतꣳ रथेन सूर्यत्वचा।
मध्वा यज्ञꣳ समञ्जाथे। तं प्रत्नथा। अयं वेनः ॥७३॥

पदार्थः—हे (दैव्यौ) विद्वानों में कुशल प्रवीण (अध्वर्यू) अपने आत्मा को अहिंसा धर्म चाहते हुए विद्वानो! तुम दोनों (सूर्यत्वचा) सूर्य के तुल्य कान्ति वाले (रथेन) आनन्द के हेतु यान से (आ, गतम्) आया करो और आकर (मध्वा) मधुर भाषण से (यज्ञम्) चलने रूप व्यवहार को (सम्, अञ्जाथे) सम्यक् प्रकट किया करो ॥७३॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि पृथिवी जल और अन्तरिक्ष में चलने वाले उत्तम शोभायमान सूर्य के तुल्य प्रकाशित यानों को बनावें और उनसे अभीष्ट कामनाओं को सिद्ध करें ॥७३॥

तिरश्चीन इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सूर्यो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब बिजुली के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त्।
रेतोधाऽआसन्महिमानऽआसन्त्स्वधाऽअवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥७४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! (एषाम्) इन विद्युत् और सूर्य आदि की (तिरश्चीनः) तिरछे गमन वाली (विततः) विस्तार युक्त (रश्मिः) किरण वा दीप्ति (अधः) नीचे (स्वित्) भी (आसीत्) है (उपरि) ऊपर (स्वित्) भी (आसीत्) है तथा (अवस्तात्) इधर से और (परस्तात्) उधर से (प्रयतिः) प्रयतन शील है उसके विज्ञान से (रेतोधाः) पराक्रम को धारण करने वाले (आसन्) हों तथा (महिमानः) पूज्य और (स्वधा) अपने धनादि पदार्थ के धारक होते हुए आप लोग उपकारी (आसन्) हूजिये ॥७४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जिस बिजुली की दीप्ति सब के भीतर रहती हुई सब दिशाओं में व्याप्त है वही सब को धारण करती है ऐसा तुम लोग जानो ॥७४॥

आ रोदसीत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। विद्वान् देवता। निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा हैं ।।

आ रोदंसीऽअपृणदा स्वर्महज्जातं यदैनमपसोऽअधारयन् ।
सोऽअध्वराय परिं णीयते कविरत्यो न वाजंसातये चनोंहितः ।।७५।।

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्) जो विद्युत् रूप अग्नि (रोदसी) सूर्य पृथिवी और (महत्) महान् (जातम्) प्रसिद्ध (स्वः) अन्तरिक्ष को (आ, अपृणत्) अच्छे प्रकार व्याप्त होता (एनम्) इस अग्नि को (अपसः) कर्म (आ, अधारयन्) अच्छे प्रकार धारण करते तथा जो (कविः) शब्द होने का हेतु अग्नि (अध्वराय) अहिंसा नामक शिल्पविद्या रूप यज्ञ के तथा (वाजसातये) वेग के सम्यक् सेवन के लिये (अत्यः) मार्ग को व्याप्त होने वाले घोड़े के (न) समान विद्वानों ने (परि, नीयते) प्राप्त किया है (सः) वह (चनोहितः) पृथिवी आदि अन्न के लिये हितकारी है ऐसा तुम लोग जानो ।।७५।।

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अनेक प्रकार के विज्ञान और कर्मों से बिजुली रूप अग्नि की विद्या को प्राप्त हो के भूमि आदि में व्याप्त विभागकर्त्ता साधन किया हुआ यान आदि को शीघ्र पहुंचाने वाले अग्नि को कार्यों में उपयुक्त करें ।।७५।।

उक्थेभिरित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।

कैसे मनुष्य सत्कार के योग्य हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा या मन्दाना चिदा गिरा ।
आङ्गूषैराविवासतः ।।७६।।

पदार्थः—(या) जो (मन्दाना) आनन्द देने वाले (वृत्रहन्तमा) धर्म का निरोध करने हारे पापियों के नाशक सभा सेनापति के (चित्) समान (गिरा) वाणी (आङ्गूषैः) अच्छे घोष और (उक्थेभिः) प्रशंसा योग्य स्तुतियों के साधक वेद के भागरूप मन्त्रों से शिल्प विज्ञान का (आविवासतः) अच्छे प्रकार सेवन करते हैं उन अध्यापक उपदेशकों की मनुष्यों को (आ) अच्छे प्रकार सेवा करनी चाहिये ।।७६।।

भावार्थः—जो मनुष्य सभा सेनाध्यक्ष के तुल्य विद्यादि कार्यों के साधक सुन्दर उपदेशों से सब को विद्वान् करते हुए प्रवृत्त हों वे ही सब को सत्कार करने योग्य हों ।।७६।।

उप न इत्यस्य सुहोत्र ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृद्गायत्री छन्दः ।। षड्जः स्वरः ।।

अब माता पिता अपने सन्तानों के प्रति क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

उप॑ नः सू॒नवो॒ गिरः॑ शृ॒ण्वन्त्व॒मृत॑स्य॒ ये ।
सु॒मृ॒डी॒का भ॑वन्तु नः ।।७७।।

पदार्थः—(ये) जो (नः) हमारे (सूनवः) सन्तान (अमृतस्य) नाशरहित परमेश्वर के सम्बन्ध की वा नित्य वेद की (गिरः) वाणियों को (उप, शृण्वन्तु) अध्यापकादि के निकट सुनें वे (नः) हमारे लिये (सुमृडीकाः) उत्तम सुख करनेहारे (भवन्तु) होवें ।।७७।।

भावार्थः—जो माता पिता अपने पुत्रों और कन्याओं को ब्रह्मचर्य के साथ वेद विद्या और उत्तम शिक्षा से युक्त कर शरीर और आत्मा के बल वाले करें तो उन सन्तानों के लिये अत्यन्त हितकारी हों ।।७७।।

ब्रह्माणीत्यस्य अगस्त्य ऋषिः । इन्द्रमरुतौ देवते । विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

फिर विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

ब्रह्मा॑णि मे म॒तयः॒ शꣳ सु॒तासः॑ शु॒ष्मऽइ॑यर्त्ति॒ प्रभृ॑तो मे॒ऽअद्रिः॑ ।
आ शा॑सते॒ प्रति॑ हर्य्यन्त्यु॒क्थेमा हरी॑ वहत॒स्ता नो॒ऽअच्छ॑ ।।७८।।

पदार्थः—(सुतासः) विद्या और सुन्दर शिक्षा से युक्त ऐश्वर्य वाले (मतयः) बुद्धिमान् लोग (मे) मेरे लिये जिन (ब्रह्माणि) धनों की (प्रति, हर्यन्ति) प्रतीति से कामना करते और (इमा) इन (उक्था) प्रशंसा के योग्य वेदवचनों की (आ, शासते) अभिलाषा करते हैं और (शुष्म) बलकारी (प्रभृतः) अच्छे प्रकार हवनादि से पुष्ट किया (अद्रिः) मेघ (मे) मेरे लिये जिस (शम्) सुख को (इयर्त्ति) पहुंचाता (ता) उनको (नः) हमारे लिये (हरी) हरणशील अध्यापक और अध्येता (अच्छ, वहतः) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं ।।७८।।

भावार्थः—हे विद्वानो ! जिस कर्म से विद्या और मेधा की उन्नति हो उस की क्रिया करो । जो लोग तुम से विद्या और सुशिक्षा चाहते हैं उनको प्रीति से देओ और जो आप से अधिक विद्या वाले हों उनसे तुम विद्या ग्रहण करो ।।७८।।

अनुत्तमित्यस्य अगस्त्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

अब ईश्वर विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ२ऽअस्ति देवता विदानः ।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥७९॥

पदार्थः—हे (प्रवृद्ध) सब से श्रेष्ठ सर्वपूज्य (मघवन्) बहुत धन वाले ईश्वर ! जिस (ते) आप का (अनुत्तम्) अप्रेरित स्वरूप है (त्वावान्) आप के सदृश (देवता) पूज्य इष्टदेव (विदानः) विद्वान् (नु) निश्चय से कोई (न) नहीं है आप (जायमानः) उत्पन्न होने वाले (न) नहीं और (जातः) उत्पन्न हुए भी (न) नहीं हैं (यानि) जिन जगत् की उत्पत्ति आदि कर्मों को (करिष्या) करोगे तथा (कृणुहि) करते हो उन को कोई भी (नकि) नहीं (आ, नशते) स्मरणशक्ति से व्याप्त होता, सो आप सब के उपास्य देव हो ॥७९॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो परमेश्वर समस्त ऐश्वर्य वाला किसी के सदृश नहीं, अनन्त विद्यायुक्त, न उत्पन्न होता न हुआ न होगा और सब से बड़ा है उसी की तुम लोग निरन्तर उपासना करो ॥७९॥

तदित्यस्य बृहद्दिव ऋषिः । महेन्द्रो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो निरिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ॥८०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यतः) जिससे (उग्रः) तेज स्वभाव वाला (त्वेषनृम्णः) सुन्दर प्रकाशित धन से युक्त वीर पुरुष (जज्ञे) उत्पन्न हुआ, जो (जज्ञानः) उत्पन्न हुआ (शत्रून्) शत्रुओं को (सद्यः) शीघ्र (निरिणाति) निरन्तर मारता है, (विश्वे) सब (ऊमाः) रक्षादि कर्म करने वाले लोग (यम्) जिसके (अनु) पीछे (मदन्ति) आनन्द करते हैं (तत्, इत्) वही ब्रह्म परमात्मा (भुवनेषु) लोकलोकान्तरों में (ज्येष्ठम्) सब से बड़ा, मान्य और श्रेष्ठ (आस) है, ऐसा तुम जानो ॥८०॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिसकी उपासना से शूरवीरता को प्राप्त हो शत्रुओं को मार सकते हैं, जिसकी उपासना कर विद्वान् लोग आनन्दित होके सब को आनन्दित करते हैं उसी सब से उत्कृष्ट सब के उपास्य परमेश्वर का सब लोग निश्चय करें ॥८०॥

इमा इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इमाऽउं त्वा पुरूवसो गिरों वर्द्धन्तु या मम॑ ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैंरनूषत ॥८१॥

पदार्थः हे (पुरूवसो) बहुत पदार्थों में वास करनेहारे परमात्मन् ! (याः) जो (इमाः) ये (मम) मेरी (गिरः) वाणी आप को (उ) निश्चय कर (वर्द्धन्तु) बढ़ावें उनको प्राप्त होके (पावकवर्णाः) अग्नि के तुल्य वर्ण वाले तेजस्वी (शुचयः) पवित्र हुए (विपश्चितः) विद्वान् लोग (स्तोमैः) पदार्थविद्याओं की प्रशंसाओं से (अभि, अनूषत) सब ओर से प्रशंसा करें ॥८१॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सदैव ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना उस ईश्वर की सत्ता के प्रतिपादन तथा अभ्यास और सत्यभाषण से अपनी वाणियों को शुद्ध कर विद्वान् होके सब पदार्थविद्याओं को प्राप्त होवें ॥८१॥

यस्येत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृद्बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

अब राजधर्म विषय को कहते हैं ॥

यस्यायं विश्वऽआर्यो दासः शेवधिपाऽअरिः ।
तिरश्चिद्र्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सोऽअज्यते रयिः ॥८२॥

पदार्थः—हे राजन् ! (यस्य) जिस आप का (अयम्) यह (विश्वः) सब (आर्य्यः) धर्मयुक्त गुण कर्म स्वभाव वाला पुरुष (दासः) सेवकवत् आज्ञाकारी (शेवधिपाः) धरोहर धन का रक्षक अर्थात् धर्मादि कार्य वा राजकर देने में व्यय करनेहारा जन (अरिः) और शत्रु (पवीरवि) धनादि की रक्षा के लिये शस्त्र को प्राप्त होनेवाले और (रुशमे) हिंसक व्यवहार वा (अर्य्ये) धनस्वामी वैश्य आदि के निमित्त (तिरः) छिपने वाला (चित्) भी (तुभ्य) आप के लिये (इत्) निश्चय से है (सः) वह आप (रयिः) धन के समान (अज्यते) प्राप्त होते हैं ॥८२॥

भावार्थः—जिस राजा के सब आर्य राज्यरक्षक और आज्ञापालक हैं जो धनादि कर का अदाता शत्रु उससे भी जिन आपने धनादि कर ग्रहण किया वे आप सबसे उत्तम शोभा वाले हों ॥८२॥

अयमित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृत्सतोबृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अयꣳ सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्रऽइव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥८३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अयम्) यह सभापति राजा (ऋषिभिः) वेदार्थवेत्ता राजर्षियों के साथ (सहस्रम्) असंख्य प्रकार के ज्ञान को प्राप्त (सहस्कृतः) बल से संयुक्त (सत्यः) और श्रेष्ठ व्यवहारों वा विद्वानों में उत्तम चतुर है (अस्य) इस का (महिमा) महत्व (समुद्रइव) समुद्र वा अन्तरिक्ष के तुल्य (पप्रथे) प्रसिद्ध होता है तो (सः) वह पूर्वोक्त मैं प्रजाजन इस राजा के (यज्ञेषु) संगत राजकार्यों और (विप्रराज्ये) बुद्धिमानों के राज्य में (शवः) बल की (गृणे) स्तुति करता हूं ॥८३॥

भावार्थः—जो राजादि राजपुरुष विद्वानों के सङ्ग में प्रीति करने वाले साहसी सत्य गुण, कर्म, स्वभावों से युक्त बुद्धिमान् के राज्य में अधिकार को पाये हुए संगत न्याय और विनय से युक्त कामों को करें उन की आकाश के सदृश कीर्ति विस्तार को प्राप्त होती है ॥८३॥

अदब्धेभिरित्यस्य भरद्वाज ऋषिः । सविता देवता । निचृज्जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वꣳ शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम् ।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशꣳसऽईशत ॥८४॥

पदार्थः—हे (सवितः) समग्र ऐश्वर्य से युक्त राजन् ! (त्वम्) आप (अद्य) आज (अदब्धेभिः) न विगाड़ने योग्य (शिवेभिः) मङ्गलकारी (पायुभिः) अनेक प्रकार के रक्षा के उपायों से (नः) हमारी (गयम्) प्रजा की (परि, पाहि) सब ओर से रक्षा कीजिये (हिरण्यजिह्वः) सब के हित में रमण करने योग्य वाणी से युक्त हुए (नव्यसे) अतिशय कर नवीन (सुविताय) ऐश्वर्य के अर्थ (नः) हमारी (रक्ष) रक्षा कीजिये जिस से (अघशंसः) दुष्ट चोर हम पर (माकिः) न (ईशत) समर्थ वा शासक हो ॥८४॥

भावार्थः—राजाओं की योग्यता यह है कि सब प्रजा के सन्तानों को ब्रह्मचर्य, विद्यादान और स्वयंवर विवाह करा के और डाकुओं से रक्षा कर के उन्नति करें ॥८४॥

आ नो इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । वायुर्देवता । विराड्बृहती छन्दः ॥
मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ नो यज्ञं दिविस्पृशं वायो याहि सुमन्मभिः ।
अन्तः पवित्र उपरि श्रीणानोऽयꣳ शुक्रो अयामि ते ॥८५॥

पदार्थः—हे (वायो) वायु के तुल्य वर्त्तमान राजन् ! जैसे मैं (अन्तः) अन्तःकरण में (पवित्रः) शुद्धात्मा (उपरि) उन्नति में (श्रीणानः) आश्रय करता हुआ (अयम्) यह (शुक्रः) शीघ्रकारी पराक्रमी हुआ (सुमन्मभिः) सुन्दर विज्ञानों से (ते) आप के (दिविस्पृशम्) विद्याप्रकाशयुक्त (यज्ञम्) संगत व्यवहार को (अयामि) प्राप्त होता हूँ वैसे आप (नः) हमारे विद्याप्रकाशयुक्त उत्तम व्यवहार को (आ, याहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥८५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वर्त्तमान वर्त्ताव से राजा प्रजाओं में चेष्टा करता है वैसे ही भाव से प्रजा राजा के विषय में वर्त्तें। ऐसे दोनों मिल के सब न्याय के व्यवहार को पूर्ण करें ॥८५॥

इन्द्रवायू इत्यस्य तापस ऋषिः । इन्द्रवायू देवते । निचृद्बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रवायू सुसन्दृशा सुहवेह हवामहे ।
यथा नः सर्वऽइज्जनोऽनमीवः सङ्गमे सुमनाऽअसत् ॥८६॥

पदार्थः—हम लोग जिन (सुसन्दृशा) सुन्दर प्रकार से सम्यक् देखने वाले (सुहवा) सुन्दर बुलाने योग्य (इन्द्रवायू) राजप्रजाजनों को (इह) इस जगत् में (हवामहे) स्वीकार करते हैं (यथा) जैसे (सङ्गमे) संग्राम वा समागम में (नः) हमारे (सव, इत्) सभी (जनः) मनुष्य (अनमीवः) नीरोग (सुमनाः) प्रसन्न चित्त वाले (असत्) होवें, वैसे किया करें ॥८६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। वैसे ही राजप्रजा-पुरुष प्रयत्न करें जैसे सब मनुष्य आदि प्राणी नीरोग प्रसन्न मन वाले होकर पुरुषार्थी हों ॥८६॥

ऋधगित्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । निचृद्बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऋधगित्था स मर्त्यः शशमे देवतातये ।
यो नूनं मित्रावरुणावभिष्टयऽआचक्रे हव्यदातये ॥८७॥

पदार्थः—(यः) जो (देवतातये) विद्वानों वा दिव्यगुणों के लिये (ऋधक्) समृद्धिमान् (मर्त्यः) मनुष्य (अभिष्टये) अभीष्ट सुख की प्राप्ति के अर्थ तथा (हव्यदातये) ग्रहण करने योग्य पदार्थों की प्राप्ति के लिये (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान के तुल्य राजप्रजाजनों का (नूनम्) निश्चित (आचक्रे) सेवन करता (सः) वह जन (इत्था) इस उक्त हेतु से (शशमे) शान्त उपद्रवरहित होता है ॥८७॥

भावार्थः—जो शम दम आदि गुणों से युक्त राजपुरुष और प्रजाजन इष्ट सुख की सिद्धि के लिये प्रयत्न करें वे अवश्य समृद्धिमान् होवें ॥८७॥

आ यातमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ यातमुप भूषतं मध्वः पिबतमश्विना ।
दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिष्टमा गतम् ॥८८॥

पदार्थः—हे (वृषणा) पराक्रम वाले (जेन्यावसू) जयशील जनों को वसाने वाले वा जीतने योग्य अथवा जीता है धन जिन्होंने ऐसे (अश्विना) विद्यादि शुभगुणों में व्याप्त राजप्रजाजन तुम दोनों सुख को (आ, यातम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ प्रजाओं को (उप, भूषतम्) सुशोभित करो (मध्वः) वैद्यकशास्त्र की रीति से सिद्ध किये मधुर रस को (पिबतम्) पीओ (पयः) जल को (दुग्धम्) पूर्ण करो अर्थात् कोई जल विना दुःखी न रहे (नः) हम को (मा) मत (मर्धिष्टम्) मारो और धर्म से विजय को (आ, गतम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥८८॥

भावार्थः—जो राजप्रजाजन सब को विद्या और उत्तम शिक्षा से सुशोभित करें सर्वत्र नहर आदि के द्वारा जल पहुंचावें श्रेष्ठों को न मार के दुष्टों को मारें वे जीतने वाले हुए अतोल लक्ष्मी को पाकर निरन्तर सुख को प्राप्त होवें ॥८८॥

प्रैत्वित्यस्य कण्व ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥८९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे (नः) हम को (ब्रह्मणः, पतिः) धन वा वेद का रक्षक अधिष्ठाता विद्वान् (प्र, एतु) प्राप्त होवे (सूनृता) सत्य लक्षणों से उज्ज्वल (देवी) शुभ गुणों से प्रकाशमान वाणी (प्र, एतु) प्राप्त हो (नर्य्यम्) मनुष्यों में उत्तम (पङ्क्तिराधसम्) समूह की सिद्धि करने हारे (यज्ञम्) संगत धर्मयुक्त व्यवहारकर्त्ता (वीरम्) शूरवीर पुरुष को (देवाः) विद्वान् लोग (अच्छ, नयन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त करें वैसे हम को प्राप्त होओ ॥८९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग विद्वानों, सत्यवाणी और सर्वोपकारी वीर पुरुषों को प्राप्त हों वे सम्यक् सुख की उन्नति करें ॥८९॥

चन्द्रमा इत्यस्य त्रित ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृद्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

चन्द्रमाऽअप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहꣳ हरिरेति कनिक्रदत् ॥९०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे (सुपर्णः) सुन्दर चालों से युक्त (चन्द्रमाः) शीतकारी चन्द्रमा (कनिक्रदत्) शीघ्र शब्द करते हींसते हुए (हरिः) घोड़ों के तुल्य (दिवि) सूर्य के प्रकाश में (अप्सु) अन्तरिक्ष के (अन्तः) बीच (आ, धावते) अच्छे प्रकार शीघ्र चलता है और (पुरुस्पृहम्) बहुतों से चाहने योग्य (बहुलम्) बहुत (पिशङ्गम्) सुवर्णादि के तुल्य वर्णयुक्त (रयिम्) शोभा कान्ति को (एति) प्राप्त होता है वैसे पुरुषार्थी हुए वेग से लक्ष्मी को प्राप्त होओ ॥९०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य से प्रकाशित चन्द्र आदि लोक अन्तरिक्ष में जाते आते हैं जैसे उत्तम घोड़ा ऊंचा शब्द करता हुआ शीघ्र भागता है वैसे हुए तुम लोग अत्युत्तम अपूर्व शोभा को प्राप्त हो के सब को सुखी करो ॥९०॥

देवन्देवमित्यस्य मनुर्ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। विराड् बृहती छन्दः।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर राजधर्म विषय को कहा है ॥

देवं देवं वोऽवसे देवं देवमभिष्टये।
देवं देवꣳ हुवेम वाजसातये गृणन्तो देव्या धिया ॥९१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (देव्या) प्रकाशमान (धिया) बुद्धि वा कर्म से (गृणन्तः) स्तुति करते हुए हम लोग जैसे (वः) तुम्हारे (अवसे) रक्षादि के लिये (देवन्देवम्)

विद्वान् विद्वान् वा उत्तम उत्तम पदार्थ को (हुवेम) बुलावें वा ग्रहण करें तुम्हारे (अभिष्टये) अभीष्ट सुख के लिये (देवन्देवम्) विद्वान् विद्वान् वा उत्तम प्रत्येक पदार्थ को तथा तुम्हारे (वाजसातये) वेगादि के सम्यक् सेवन के लिये (देवन्देवम्) विद्वान् विद्वान् वा उत्तम प्रत्येक पदार्थ को बुलावें वा स्वीकार करें वैसे तुम लोग भी ऐसा हमारे लिये करो ॥९१॥

भावार्थः—जो राजपुरुष सब प्राणियों के हित के लिये विद्वानों का सत्कार कर इन से सत्योपदेश का प्रचार करा सृष्टि के पदार्थों को जान और सब अभीष्ट सिद्ध कर संग्रामों को जीतते हैं वे उत्तम कीर्ति और वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥९१॥

दिवीत्यस्य मेध ऋषिः । वैश्वानरो देवता । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

दिवि पृष्टोऽअरोचताग्निर्वैश्वानरो बृहत् ।
क्ष्मया वृधानऽओजसा चनोहितो ज्योतिषा बाधते तमः ॥९२॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे (दिवि) आकाश में (पृष्टः) स्थित (वैश्वानरः) सब मनुष्यों का हितकारी (क्ष्मया) पृथिवी के साथ (वृधानः) बढ़ा हुआ (ओजसा) बल से (बृहत्) महान् (चनोहितः) ओषधियों को पकाने रूप सामर्थ्य से अन्नादि का धारक (अग्निः) सूर्यरूप अग्नि (ज्योतिषा) अपने प्रकाश से (तमः) रात्रिरूप अन्धकार को (बाधते) निवृत्त करता और (अरोचत) प्रकाशित होता है वैसे उत्तम गुणों से अविद्यारूप अन्धकार को निवृत्त कर के तुम लोग भी प्रकाशित कीर्त्ति वाले हो ॥९२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वान् लोग सूर्य अन्धकार को जैसे वैसे दुष्टाचार और अविद्यान्धकार को निवृत्त कर विद्या को प्रकाशित करें वे सूर्य के तुल्य सर्वत्र प्रकाशित प्रशंसा वाले हों ॥९२॥

इन्द्राग्नीत्यस्य सुहोत्र ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब उषा के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्राग्नीऽअपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः ।
हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत्त्रिꣳशत्पदा न्यक्रमीत् ॥९३॥

पदार्थः—हे (इन्द्राग्नी) अध्यापक उपदेशक लोगो ! जो (इयम्) यह (अपात्) बिना पग की (पद्वतीभ्यः) बहुत पगों वाली प्रजाओं से (पूर्वा) प्रथम उत्पन्न होने वाली

(आ, अगात्) आती है (शिरः) शिर को (हित्वी) छोड़ के अर्थात् विना शिर की हुई प्राणियों की (जिह्वया) वाणी से (वावदत्) शीघ्र बोलती अर्थात् कुक्कुट आदि के बोल से उषःकाल की प्रतीति होती इस से बोलना धर्म उषा में आरोपण किया जाता है (चरत्) विचरती है और (त्रिंशत्) तीस (पदा) प्राप्ति के साधन मुहूर्त्तों को (नि, अक्रमीत्) निरन्तर आक्रमण करती है वह उषा प्रातः की वेला तुम लोगों को जाननी चाहिये ॥९३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो वेग वाली पाद शिर आदि अवयवों से रहित प्राणियों के जगने से पहिले होने वाली जागने का हेतु प्राणियों के मुखों से शीघ्र बोलती हुई सी तीस मुहूर्त्त (साठ घड़ी) के अनन्तर प्रत्येक स्थान को आक्रमण करती है वह उषा निद्रा आलस्य को छोड़ तुमको सुख के लिये सेवन करनी चाहिये ॥९३॥

देवास इत्यस्य मनुर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

कौन मनुष्य विद्वान् हो सकते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवासो हि ष्मा मनवे समन्यवो विश्वे साकꣳ सरातयः ।
ते नोऽअद्य ते अपरं तुचे तु नो भवन्तु वरिवोविदः ॥९४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (सरातयः) बराबर दाता (समन्यवः) तुल्य क्रोध वाले (विश्वे) सब (देवासः) विद्वान् लोग (साकम्) साथ मिल के (अद्य) आज (नः) हमारे (मनवे) मनुष्य के लिये (स्म) प्रसिद्ध (वरिवोविदः) सत्कार के जानने वा धन के प्राप्त कराने वाले (भवन्तु) हों (तु) और (ते) वे (अपरम्) भविष्यत् काल में (नः) हमारे (तुचे) पुत्रपौत्रादि सन्तान के अर्थ हमारे लिये सत्कार के जानने वा धन के प्राप्त कराने वाले हों (ते, हि) वे ही तुम लोगों के लिये भी सत्कार के जानने वा धन के प्राप्त कराने वाले हों ॥९४॥

भावार्थः—जो मनुष्य एक दूसरे के लिये सुख देवें जो मिल कर दुष्टों पर क्रोध करें वे पुत्र पौत्र वाले हो के मनुष्यों के सुख की उन्नति के लिये समर्थ विद्वान् होने योग्य होते हैं ॥९४॥

अपाधमदित्यस्य नृमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब कौन मनुष्य दुःखनिवारण में समर्थ हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अपाधमदभिशस्तीरशस्तिहाथेन्द्रो द्युम्न्याभवत् ।
देवास्तऽइन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण ॥९५॥

पदार्थः—हे (बृहद्भानो) महान् किरणों के तुल्य प्रकाशित कीर्त्ति वाले (मरुद्गण) मनुष्यों वा पवनों के समूह से कार्य्यसाधक (इन्द्र) परमैश्वर्य्य के देने वाले सभापति राजा ! (देवाः) विद्वान् लोग (ते) आप की (सख्याय) मित्रता के अर्थ (येमिरे) संयम करते हैं और (द्युम्नी) बहुत प्रशंसारूप धन से युक्त (इन्द्रः) परमैश्वर्य वाले आप (अभि) (शस्तीः) सब ओर से हिंसाओं को (अप, अधमत्) दूर धमकाते हो (अशस्तिहा) दुष्टों के नाशक (अभवत्) हूजिये ॥९५॥

भावार्थः—जो मनुष्य धार्मिक न्यायाधीशों वा धनाढ्यों से मित्रता करते हैं वे यशस्वी होकर सब दुःखनिवारण के लिये सूर्य के तुल्य होते हैं ॥९५॥

प्र व इत्यस्य नृमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्र वऽइन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत ।

वृत्रꣳ हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥९६॥

पदार्थः—हे (मरुतः) मनुष्यो ! जो (शतक्रतुः) असंख्य प्रकार की बुद्धि वा कर्मों वाले सेनापति (शतपर्वणा) जिस से असंख्य जीवों का पालन हो ऐसे (वज्रेण) शस्त्र अस्त्र से (वृत्रहा) जैसे मेघहन्ता सूर्य (वृत्रम्) मेघ को वैसे (बृहते) बड़े (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये शत्रुओं को (हनति) मारता है और (वः) तुम्हारे लिये (ब्रह्म) धन वा अन्न को प्राप्त करता है उस का तुम लोग (प्र, अर्चत) सत्कार करो ॥९६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो लोग मेघ को सूर्य के तुल्य शत्रुओं को मार के तुम्हारे लिये ऐश्वर्य की उन्नति करते हैं उनका सत्कार तुम करो । सदा कृतज्ञ हो के कृतघ्नता को छोड़ के प्राज्ञ हुए महान् ऐश्वर्य को प्राप्त होओ ॥९६॥

अस्येत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । महेन्द्रो देवता । स्वराट् सतोबृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को परमात्मा की स्तुति करना योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यꣳ शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।

अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥

इमा उ त्वा । यस्यायम् । अयꣳ सहस्रम् । ऊर्ध्वऽऊ षु णः ॥९७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य्य युक्त राजा (विष्णवि) व्यापक परमात्मा में (सुतस्य) उत्पन्न हुए (अस्य) इस संसार के (मदे) आनन्द के लिये (वृष्ण्यम्) पराक्रम (शवः) बल तथा जल को (अद्य) इस वर्त्तमान समय में (वावृधे) बढ़ाता है (अस्य) इस परमात्मा के (इत्) ही (महिमानम्) महिमा को (पूर्वथा) पूर्वज लोगों के तुल्य (आयवः) अपने कर्मफलों को प्राप्त होने वाले मनुष्य लोग (अनु, स्तुवन्ति) अनुकूल स्तुति करते हैं (तम्) उस की तुम लोग भी स्तुति करो ॥९७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो तुम लोग सर्वत्र व्यापक सब जगत् के उत्पादक सब के आधार और उत्तम ऐश्वर्य के प्रापक ईश्वर की आज्ञा और महिमा को जान के सब संसार का उपकार करो तो तुम को निरन्तर आनन्द प्राप्त होवे ॥९७॥

इस अध्याय में अग्नि, प्राण, उदान, दिन, रात, सूर्य्य, अग्नि, राजा, ऐश्वर्य, उत्तम यान, विद्वान्, लक्ष्मी, वैश्वानर, ईश्वर, इन्द्र, बुद्धि, वरुण, अश्वि, अन्न, सूर्य्य, राजप्रजा, परीक्षक, इन्द्र और वायु आदि पदार्थों के गुणों का वर्णन है इससे इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह तेतीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

* ओ३म् *

अथ चतुस्त्रिंशाऽध्यायारम्भः

—:०:०:०:०:—

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआसु॑व ॥

यज्जाग्रत इत्यस्य शिवसंकल्पऋषिः । मनो देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब मन को वश करने का विषय कहते हैं ॥

यज्जाग्र॑तो दू॒रमु॒दैति॒ दैवं॒ तदु॑ सु॒प्तस्य॒ तथै॒वैति॑ ।
दू॒र॒ङ्ग॒मं ज्योति॑षां॒ ज्योति॒रेकं॒ तन्मे॒ मनः॑ शि॒वस॑ङ्कल्पमस्तु ॥१॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा राजन् ! आप की कृपा से (यत्) जो (दैवम्) आत्मा में रहने वा जीवात्मा का साधन (दूरङ्गमम्) दूर जाने, मनुष्य को दूर तक लेजाने वा अनेक पदार्थों का ग्रहण करने वाला (ज्योतिषाम्) शब्द आदि विषयों के प्रकाशक श्रोत्र आदि इन्द्रियों को (ज्योतिः) प्रवृत्त करने हारा (एकम्) एक (जाग्रतः) जागृत अवस्था में (दूरम्) दूर दूर (उत्, ऐति) भागता है (उ) और (तत्) जो (सुप्तस्य) सोते हुए का (तथा, एव) उसी प्रकार (एति) भीतर अन्तःकरण में जाता है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) संकल्प विकल्पात्मक मन (शिवसंकल्पम्) कल्याणकारी धर्म विषयक इच्छा वाला (अस्तु) हो ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा का सेवन और विद्वानों का सङ्ग करके अनेक विध सामर्थ्ययुक्त मन को शुद्ध करते हैं जो जागृतावस्था में विस्तृत व्यवहार वाला वही मन सुषुप्ति अवस्था में शान्त होता है। जो वेग वाले पदार्थों में अतिवेगवान् ज्ञान के साधन होने से इन्द्रियों के प्रवर्त्तक मन को वश में करते हैं वे अशुभ व्यवहार को छोड़ शुभ व्यवहार में मन को प्रवृत्त कर सकते हैं ॥१॥

येन कर्माणीत्यस्य शिवसङ्कल्प ऋषिः । मनो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।।२।।

पदार्थः—हे परमेश्वर वा विद्वन् ! जब आप के सङ्ग से (येन) जिस (अपसः) सदा कर्म धर्मनिष्ठ (मनीषिणः) मन का दमन करने वाले (धीराः) ध्यान करने वाले बुद्धिमान् लोग (यज्ञे) अग्निहोत्रादि वा धर्मसंयुक्त व्यवहार वा योग यज्ञ में और (विदथेषु) विज्ञानसम्बन्धी और युद्धादि व्यवहारों में (कर्माणि) अत्यन्त इष्ट कर्मों को (कृण्वन्ति) करते हैं (यत्) जो (अपूर्वम्) सर्वोत्तम गुणकर्मस्वभाव वाला (प्रजानाम्) प्राणिमात्र के (अन्तः) हृदय में (यक्षम्) पूजनीय वा संगत एकीभूत हो रहा है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मनन विचार करना रूप मन (शिवसङ्कल्पम्) धर्मेष्ट (अस्तु) होवे ।।२।।

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की उपासना सुन्दर विचार विद्या और सत्संग से अपने अन्तःकरण को अधर्माचरण से निवृत्त कर धर्म के आचरण में प्रवृत्त करें ।।२।।

यत् प्रज्ञानमित्यस्य शिवसङ्कल्प ऋषिः । मनो देवता । स्वराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्नऽऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।।३।।

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा परमयोगिन् विद्वन् ! आप के जताने से (यत्) जो (प्रज्ञानम्) विशेष कर ज्ञान का उत्पादक बुद्धिरूप (उत) और भी (चेतः) स्मृति का साधन (धृतिः) धैर्यस्वरूप (च) और लज्जादि कर्मों का हेतु (प्रजासु) मनुष्यों के (अन्तः) अन्तःकरण में आत्मा का साथी होने से (अमृतम्) नाशरहित (ज्योतिः) प्रकाशकरूप (यस्मात्) जिस से (ऋते) विना (किम्, चन) कोई भी (कर्म) काम (न, क्रियते) नहीं किया जाता (तत्) वह (मे) मुझ जीवात्मा का (मनः) सब कर्मों का साधन रूप मन (शिवसंकल्पम्) कल्याणकारी परमात्मा में इच्छा रखने वाला (अस्तु) हो ।।३।।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो अन्तःकरण, बुद्धि, चित्त और अहंकाररूप वृत्ति वाला होने से चार प्रकार से भीतर प्रकाश करने वाला प्राणियों के सब कर्मों का साधक अविनाशी मन है उस को न्याय और सत्य आचरण में प्रवृत्त कर पक्षपात अन्याय और अधर्माचरण से तुम लोग निवृत्त करो ॥३॥

येनेदमित्यस्य शिवसंकल्प ऋषिः । मनो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (येन) जिस (अमृतेन) नाशरहित परमात्मा के साथ युक्त होने वाले मन से (भूतम्) व्यतीत हुआ (भुवनम्) वर्त्तमान काल सम्बन्धी और (भविष्यत्) होने वाला (सर्वम्, इदम्) यह सब त्रिकालस्थ वस्तुमात्र (परिगृहीतम्) सब ओर से गृहीत होता अर्थात् जाना जाता है (येन) जिस से (सप्तहोता) सात मनुष्य होता वा पांच प्राण छठा जीवात्मा और अव्यक्त सातवां ये सात लेने देने वाले जिस में हों वह (यज्ञः) अग्निष्टोमादि वा विज्ञानरूप व्यवहार (तायते) विस्तृत किया जाता है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) योगयुक्त चित्त (शिवसंकल्पम्) मोक्षरूप संकल्प वाला (अस्तु) होवे ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो चित्त योगाभ्यास के साधन और उपसाधनों से सिद्ध हुआ भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान तीनों काल का ज्ञाता सब सृष्टि का जानने वाला कर्म उपासना और ज्ञान का साधक है उस को सदा ही कल्याण में प्रिय करो ॥४॥

यस्मिन्नित्यस्य शिवसङ्कल्प ऋषिः । मनो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिँश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥५॥

पदार्थः—(यस्मिन्) जिस मन में (रथनाभाविव, अराः) जैसे रथ के पहिये के बीच के काष्ठ में अरा लगे होते हैं वैसे (ऋचः) ऋग्वेद (साम) सामवेद (यजूंषि) यजुर्वेद (प्रतिष्ठिता) सब ओर से स्थित और (यस्मिन्) जिसमें अथर्ववेद स्थित हैं (यस्मिन्) जिस में (प्रजानाम्) प्राणियों का (सर्वम्) समग्र (चित्तम्) सर्व पदार्थ-सम्बन्धी ज्ञान (ओतम्) सूत में मणियों के समान संयुक्त है (तत्) वह (मे) मेरा

(मनः) मन (शिवसङ्कल्पम्) कल्याणकारी वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रचाररूप संकल्प वाला (अस्तु) हो ।।५।।

भावार्थः—हे मनुष्यो! तुम लोगों को चाहिये, जिस मन के स्वस्थ रहने में ही वेदादि विद्याओं का आधार और जिस में सब व्यवहारों का ज्ञान एकत्र होता है उस अन्तःकरण को विद्या और धर्म के आचरण से पवित्र करो ।।५।।

सुषारथिरित्यस्य शिवसङ्कल्प ऋषिः । मनो देवता । स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽइव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।।६।।

पदार्थः—(यत्) जो मन (सुषारथिः) जैसे सुन्दर चतुर सारथि गाड़ीवान् (अश्वानिव) लगाम से घोड़ों को सब ओर से चलाता है वैसे (मनुष्यान्) मनुष्यादि प्राणियों को (नेनीयते) शीघ्र शीघ्र इधर उधर घुमाता है और (अभीशुभिः) जैसे रस्सियों से (वाजिनः) वेग वाले घोड़ों को सारथि वश में करता वैसे नियम में रखता (यत्) जो (हृत्प्रतिष्ठम्) हृदय में स्थित (अजिरम्) विषयादि में प्रेरक वा वृद्धादि अवस्था रहित और (जविष्ठम्) अत्यन्त वेगवान् है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) मङ्गलमय नियम में इष्ट (अस्तु) होवे ।।६।।

भावार्थः—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य जिस पदार्थ में आसक्त है वहीं बल से सारथि घोड़ों को जैसे वैसे प्राणियों को ले जाता और लगाम से सारथि घोड़ों को जैसे वैसे वश में रखता, सब मूर्खजन जिस के अनुकूल वर्त्तते और विद्वान् अपने वश में करते हैं जो शुद्ध हुआ सुखकारी और अशुद्ध हुआ दुःखदायी जो जीता हुआ सिद्धि को और न जीता हुआ असिद्धि को देता है वह मन मनुष्यों को अपने वश में रखना चाहिये ।।६।।

पितुमित्यस्यागस्त्य ऋषिः । अन्नं देवता । उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ।।

अब कौन मनुष्य शत्रुओं को जीत सकता है इसविषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

पितुं नु स्तोषम्महो धर्माणन्तविषीम् ।
यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् ।।७।।

पदार्थः—मैं (यस्य) जिसके (पितुम्) अन्न (महः) महान् (धर्माणम्) पक्षपात रहित न्यायाचरणरूप धर्म और (तविषीम्) बलयुक्त सेना की (नु) शीघ्र

(स्तोषम्) स्तुति करता हूं यह राजपुरुष (त्रितः) तीनों काल में जैसे सूर्य्य (श्रोजसा) जल के साथ वर्त्तमान (विपर्वम्) जिस की बादल रूप गांठ भिन्न भिन्न हों उस (वृत्रम्) मेघ को (वि, अर्दयत्) विशेष कर नष्ट करता है वैसे शत्रुओं के जीतने को समर्थ होता है ।।७।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिसने सत्य-धर्म, बलवती सेना और पुष्कल अन्नादि सामग्री धारण की है वह जैसे सूर्य्य मेघ को वैसे शत्रुओं को जीत सकता है ।।७।।

अन्विदित्यस्यागस्त्य ऋषिः । अनुमतिर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।।

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

अन्विदनुमते त्वं मन्यासै शञ्च नस्कृधि ।

क्रत्वे दक्षाय नो हिनु प्र ण आयूंषि तारिषः ।।८।।

पदार्थः—हे (अनुमते) अनुकूल बुद्धि वाले सभापति विद्वन् ! (त्वम्) आप जिस को (शम्) सुखकारी (अनु, मन्यासै) अनुकूल मानो उससे युक्त (नः) हम को (कृधि) करो (क्रत्वे) बुद्धि (दक्षाय) बल वा चतुराई के लिये (नः) हम को (हिनु) बढ़ाओ (च) और (नः) हमारी (आयूंषि) अवस्थाओं को (इत्) निश्चय कर (प्र, तारिषः) अच्छे प्रकार पूर्ण कीजिये ।।८।।

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जैसे स्वार्थसिद्धि के अर्थ प्रयत्न किया जाता वैसे अन्यार्थ में भी प्रयत्न करें जैसे आप अपना कल्याण वृद्धि चाहते हैं वैसे औरों की भी चाहें इस प्रकार सब की पूर्ण अवस्था सिद्ध करें ।।८।।

अनु न इत्यस्यागस्त्य ऋषिः । अनुमतिर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

अनु नोऽद्यानुमतिर्यज्ञन्देवेषु मन्यताम् ।

अग्निश्च हव्यवाहनो भवतं दाशुषे मयः ।।९।।

पदार्थः—जो (अनुमतिः) अनुकूल विज्ञान वाला जन (अद्य) आज (देवेषु) विद्वानों में (नः) हमारे (यज्ञम्) सुख देने के साधनरूप व्यवहार को (अनु, मन्यताम्) अनुकूल माने वह (च) और (हव्यवाहनः) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को प्राप्त कराने वाले (अग्निः) अग्नि के तुल्य तेजस्वी वा अग्निविद्या का विद्वान् तुम दोनों (दाशुषे) दानशील मनुष्य के लिये (मयः) सुखकारी (भवतम्) होओ ।।९।।

भावार्थः—जो मनुष्य सत्कर्मों के अनुष्ठान में अनुमति देने और दुष्टकर्मों के अनुष्ठान को निषेध करने वाले हैं वे अग्नि आदि की विद्या से सब के लिये सुख देवें ॥६॥

सिनीवालीत्यस्य गृत्समद ऋषिः। सिनीवाली देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब विदुषी कुमारी क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥१०॥

पदार्थः—हे (सिनीवालि) प्रेमयुक्त तथा बल करने हारी (पृथुष्टुके) जिसकी विस्तृत स्तुति, शिर के बाल वा कामना हो ऐसी (देवि) विदुषी कुमारी (या) जो तू (देवानाम्) विद्वानों की (स्वसा) बहिन (असि) है सो (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य (आहुतम्) अच्छे प्रकार वर दीक्षादि कर्म्मों से स्वीकार किये पति का (जुषस्व) सेवन कर और (नः) हमारे लिये (प्रजाम्) सुन्दर सन्तानरूप प्रजा को (दिदिड्ढि) दे ॥१०॥

भावार्थः—हे कुमारियो! तुम ब्रह्मचर्य्य आश्रम के साथ समस्त विद्याओं को प्राप्त हो युवती हो के अपने को अभीष्ट स्वयं परीक्षा किये वरने योग्य पतियों को आप वरो उन पतियों के साथ आनन्द कर प्रजा पुत्रादि को उत्पन्न किया करो ॥१०॥

पंचेत्यस्य गृत्समद ऋषिः। सरस्वती देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित् ॥११॥

पदार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि (सस्रोतसः) एक समान मनरूप प्रवाहों वाली (पञ्च) पांच ज्ञानेन्द्रियों की वृत्ति (नद्यः) नदी के तुल्य प्रवाहरूप (सरस्वतीम्) प्रशस्त विज्ञान युक्त वाणी को (अपि, यन्ति) प्राप्त होती हैं (सा, उ) वह भी (सरित्) चलने वाली (सरस्वती) वाणी (देशे) अपने निवासस्थान में (पंचधा) पांच ज्ञानेन्द्रियों के शब्दादि पांच विषयों का प्रतिपादन करने से पांच प्रकार की (तु) ही (अभवत्) होती है ऐसा जानें ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जो वाणी पांच शब्दादि विषयों के आश्रित हुई नदी के तुल्य

प्रवाह युक्त वर्त्तमान है उस को जानके यथावत् प्रचार कर मधुरलक्षण प्रयुक्त करें ॥११॥

त्वमग्न इत्यस्य हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को ईश्वराज्ञा पालनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा ।
तव व्रते कवयो विद्मनापसोऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥१२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) परमेश्वर वा विद्वन् ! जिस कारण (त्वम्) आप (प्रथमः) प्रख्यात (अङ्गिराः) अवयवों के सारभूत रस के तुल्य वा जीवात्माओं को सुख देने वाले (देवानाम्) विद्वानों के बीच (देव.) उत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त (शिवः) कल्याणकारी (सखा) मित्र (ऋषिः) ज्ञानी (अभवः) होवें इससे (तव) आप के (व्रते) स्वभाव वा नियम में (विद्मनापसः) प्रसिद्ध कर्मों वाले (भ्राजदृष्टयः) सुन्दर हथियारों से युक्त (कवयः) बुद्धिमान् (मरुतः) मनुष्य (अजायन्त) प्रकट होते हैं ॥१२॥

भावार्थः—यदि मनुष्य सब के मित्र विद्वान् जन और सब के हितैषी परमात्मा को मित्र मान विज्ञान के निमित्त कर्मों को कर प्रकाशित आत्मा-वाले हों तो वे विद्वान् होकर परमेश्वर की आज्ञा में वर्त्त सकें ॥१२॥

त्वमग्न इत्यस्य हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

राजा और ईश्वर की कैसी सेवा करनी चाहिये इस इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वन्नो अग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य ।
त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषꣳ रक्षमाणस्तव व्रते ॥१३॥

पदार्थः—हे (देव) उत्तम गुणकर्मस्वभावयुक्त (अग्ने) राजन् वा ईश्वर (तव) आप के (व्रते) उत्तम नियम में वर्त्तमान (मघोनः) बहुत धनयुक्त हम लोगों को (तव) आप के (पायुभिः) रक्षादि के हेतु कर्मों से (त्वम्) आप (रक्ष) रक्षा कीजिये (च) और (नः) हमारे (तन्वः) शरीरों की रक्षा कीजिये । हे (वन्द्य) स्तुति के योग्य भगवन् ! जिस कारण आप (अनिमेषम्) निरन्तर (रक्षमाणः) रक्षा करते हुए (तोकस्य) सन्तान पुत्र (तनये) पौत्र और (गवाम्) गो आदि के (त्राता) रक्षक (असि) हैं इसलिये हम लोगों के सर्वदा सत्कार और उपासना के योग्य हैं ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जो मनुष्य ईश्वर के गुण-कर्म स्वभावों और आज्ञा की अनुकूलता में वर्तमान हैं और जिनकी ईश्वर और विद्वान् लोग निरन्तर रक्षा करने वाले हैं वे लक्ष्मी, दीर्घावस्था और सन्तानों से रहित कभी नहीं होते ॥१३॥

उत्तानायामित्यस्य देवश्रवदेववातौ भारतावृषी। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उत्तानायामव भरा चिकित्वान्त्सद्यः प्रवीता वृषणं जजान।
अरुषस्तूपो रुशदस्य पाज इडायास्पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट ॥१४॥

पदार्थः हे विद्वन् पुरुष! आप जैसे (चिकित्वान्) ज्ञानवान् (प्रवीता) कामना करने हारा विद्वान् जन (उत्तानायाम्) उत्कर्षता के साथ विस्तीर्ण भूमि वा अन्तरिक्ष में (वृषणम्) वर्षा के हेतु यज्ञ को (जजान) प्रकट करता और (अरुषस्तूपः) रक्षक लोगों की उन्नति करने वाला (इडायाः) प्रशंसित स्त्री का (पुत्रः) पुत्र (वयुने) विज्ञान में (अजनिष्ट) प्रसिद्ध होता और (अस्य) इस का (रुशत्) सुन्दर रूप युक्त (पाजः) बल प्रसिद्ध होता है वैसे (सद्यः) शीघ्र (अव, भर) अपनी और पुष्ट कर ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यदि मनुष्य इस सृष्टि में ब्रह्मचर्य आदि के सेवन से कन्या और पुत्रों को द्विज करें तो ये सब शीघ्र विद्वान् हो जावें ॥१४॥

इडाया इत्यस्य देवश्रवदेववातौ भारतावृषी। अग्निर्देवता। विराडनुष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

कैसा मनुष्य राज्य के अधिकार पर स्थापित करने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इडायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि।
जातवेदो नि धीमह्यग्ने हव्याय वोढवे ॥१५॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) उत्पन्न बुद्धि वाले (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी विद्वन् राजन्! (वयम्) अध्यापक तथा उपदेशक हम लोग (इडायाः) प्रशंसित वाणी की (पदे) व्यवस्था तथा (पृथिव्याः) विस्तृत भूमि के (अधि) ऊपर (नाभा) मध्य-भाग में (त्वा) आप को (हव्याय) देने योग्य पदार्थों को (वोढवे) प्राप्त करने वा कराने के लिये (नि, धीमहि) निरन्तर स्थापित करते हैं ॥१५॥

भावार्थः—हे विद्वन् राजन् ! जिस अधिकार में आप को हम लोग स्थापित करें उस अधिकार को धर्म और पुरुषार्थ से यथावत् सिद्ध कीजिये ॥१५॥

प्रमन्महह इत्यस्य नोधा ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को विद्या और धर्म बढ़ाने चाहियें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्र मन्महे शवसानाय शूषमाङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत् ।
सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियायार्चामार्कं नरे विश्रुताय ॥१६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (सुवृक्तिभिः) निर्दोष क्रियाओं से (शवसानाय) विज्ञान के अर्थ (गिर्वणसे) सुशिक्षित वाणियों से युक्त (ऋग्मियाय) ऋचाओं को पढ़ने वाले (विश्रुताय) विशेष कर जिसमें गुण सुने जावें (स्तुवते) शास्त्र के अभिप्रायों को कहने वाले(नरे) नायक मनुष्य के लिये(अङ्गिरस्वत्) प्राण के तुल्य (आङ्गूषम्) विद्या शास्त्र के बोधरूप (शूषम्) बल को (प्र, मन्महे) चाहते हैं और इस (अर्कम्) पूजनीय पुरुष का (अर्चाम) सत्कार करें वैसे इस विद्वान् के प्रति तुम लोग भी वर्त्तो ॥१६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को चाहिये कि सत्कार के योग्य का सत्कार और निरादर के योग्य का निरादर करके विद्या और धर्म को निरन्तर बढ़ाया करें ॥१६॥

प्र व इत्यस्य नोधा ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब कौन पितर लोग हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्र वो महे महि नमो भरध्वमाङ्गूष्य᳖ꣳशवसानाय साम ।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन् ॥१७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (पदज्ञाः) जानने वा प्राप्त होने योग्य आत्मस्वरूप को जानने वाले (नः) हमारा (अर्चन्तः) सत्कार करते हुए (अङ्गिरसः) सब सृष्टि की विद्या के अवयवों को जानने वाले (पूर्वे) पूर्वज (पितरः) रक्षक ज्ञानी लोग (येन) जिस से (महे) बड़े (शवसानाय) ब्रह्मचर्य और उत्तम शिक्षा से शरीर और आत्मा के बल से युक्त जन और (वः) तुम लोगों के अर्थ (आङ्गूष्यम्) सत्कार वा बल के लिये उपयोगी (साम)सामवेद और (गाः) सुशिक्षित वाणियों को (अविन्दन्) प्राप्त करावें उसी से उनके लिये तुम (महि) महत्सत्कार के लिये (नमः) उत्तम कर्म वा अन्न को (प्र, भरध्वम्) धारण करो ॥१७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जो विद्वान् लोग तुम को विद्या और उत्तम शिक्षा से पण्डित धर्मात्मा करें उन्हीं प्रथम पठित लोगों को तुम पितर जानो ॥१७॥

इच्छन्तीत्यस्य देवश्रवा देववातश्च भारतावृषी। इन्द्रो देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब आप्त का लक्षण कहते हैं ॥

इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयांᳬसि।
तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः ॥१८॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सभाध्यक्ष राजन्! जो (सोम्यासः) ऐश्वर्य होने में उत्तम स्वभाव वाले (सखायः) मित्र हुए (सोमम्) ऐश्वर्यादि को (सुन्वन्ति) सिद्ध करते (प्रयांसि) चाहने योग्य विज्ञानादि गुणों को (दधति) धारण करते और (जनानाम्) मनुष्यों के (अभिशस्तिम्) दुर्वचन वाद विवाद को (आ, तितिक्षन्ते) अच्छे प्रकार सहते हैं उन का आप निरन्तर सत्कार कीजिये (हि) जिस कारण (त्वत्) आप से (प्रकेत.) उत्तम बुद्धिमान् (कः, चन) कोई भी नहीं है इस से (त्वा) आप को सब लोग (इच्छन्ति) चाहते हैं ॥१८॥

भावार्थः—जो मनुष्य इस संसार में निन्दा स्तुति और हानि लाभादि को सहने वाले पुरुषार्थी सब के साथ मित्रता का आचरण करते हुए आप्त हों वे सब को सेवने और सत्कार करने योग्य हैं तथा वे हीं सब के अध्यापक और उपदेशक होवें ॥१८॥

न त इत्यस्य देवश्रवा देववातश्च भारतावृषी। इन्द्रो देवता। निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर सभाध्यक्ष राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

न ते दूरे परमा चिद्रजांᳬस्या तु प्र याहि हरिवो हरिभ्याम्।
स्थिराय वृष्णे सवना कृतेमा युक्ता ग्रावाणः समिधाने अग्नौ ॥१९॥

पदार्थः—हे (हरिवः) प्रशस्त घोड़ों वाले राजन्! जैसे (समिधाने) प्रदीप्त किये हुए (अग्नौ) अग्नि में (इमाः, सवना) ये प्रातःसवनादि यज्ञकर्म (कृता) किये जाते हैं (तु) इसी हेतु से (ग्रावाणः) गर्जना करने वाले मेघ (युक्ताः) इकट्ठे होके आते हैं वैसे (स्थिराय) दृढ़ (वृष्णे) सुखदायी विद्यादि पदार्थ के लिये (हरिभ्याम्) धारण और आकर्षण के वेगरूप गुणों से युक्त घोड़ों वा जल और अग्नि से (आ, प्र,

याहि) अच्छे प्रकार आइये। इस प्रकार करने से (परमा) दूरस्थ (चित्) भी (रजांसि) स्थान (ते) आप के (दूरे) दूर (न) नहीं होते हैं ॥१९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वान् लोगो! जैसे अग्नि से उत्पन्न किये हुए वर्षा के मेघ पृथिवी के समीप होते आकर्षण से दूर भी जाते हैं वैसे अग्नि के यानों से गमन करने में कोई देश दूर नहीं होता इस प्रकार पुरुषार्थ करके सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को उत्पन्न करो ॥१९॥

अषाढमित्यस्य गोतम ऋषिः। सोमो देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अषांढं युत्सु पृतंनासु पप्रिं स्वर्षामप्सां वृजनंस्य गोपाम्।
भरेषुजाꣳ सुक्षितिꣳ सुश्रवंसं जयंन्तं त्वामनुं मदेम सोम ॥२०॥

पदार्थः—हे (सोम) समस्त ऐश्वर्य से युक्त राजन् वा सेनापते! हम लोग जिन (युत्सु) युद्धों में (अषाढम्) असह्य (पृतनासु) मनुष्य की सेनाओं में (पप्रिम्) पूर्ण बल विद्यायुक्त वा रक्षक (स्वर्षाम्) सुख का सेवन करने वा (अप्साम्) जलों वा प्राणों को देने वाले (वृजनस्य) बल के (गोपाम्) रक्षक (भरेषुजाम्) धारण करने योग्य संग्रामों में जीतने वाले (सुक्षितिम्) पृथिवी के सुन्दर राज्य वाले (सुश्रवसम्) सुन्दर अन्न वा कीर्तियों से युक्त (जयन्तम्) शत्रुओं को जीतने वाले (त्वाम्) आप को (अनु, मदेम) अनुमोदित करें ॥२०॥

भावार्थः—जिस राजा वा सेनापति के उत्तम स्वभाव से राजपुरुष सेनाजन और प्रजापुरुष प्रसन्न रहें और जिन की प्रसन्नता में राजा प्रसन्न हो वहां दृढ़ विजय उत्तम निश्चल ऐश्वर्य और अच्छी प्रतिष्ठा होती है ॥२०॥

सोम इत्यस्य गोतम ऋषिः। सोमो देवता। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सोमो धेनुꣳ सोमो अर्वन्तमाशुꣳ सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति।
सादन्यं विदथ्यꣳ सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै ॥२१॥

पदार्थः—जो प्रजास्थ मनुष्य (अस्मै) इस धर्मिष्ठ राजा वा अध्यापक वा उपदेशक के लिये उचित पदार्थ. (ददाशत्) देता है उस के लिये (सोमः) ऐश्वर्य्ययुक्त उक्त पुरुष (धेनुम्) विद्या की आधाररूप वाणी को (ददाति) देता (सोमः) सत्या-चरण में प्रेरणा करने द्वारा राजादि जन (अर्वन्तम्) वेग से चलने वाले तथा (आशुम्)

मार्ग को शीघ्र व्याप्त होने वाले घोड़े को देता और (सोमः) शरीर तथा आत्मा के बल से युक्त राजादि (कर्मण्यम्) कर्मों से युक्त पुरुषार्थी (सादन्यम्) बैठाने आदि में प्रवीण (विदथ्यम्) यज्ञ करने में कुशल (पितृश्रवणम्) आचार्य पिता से विद्या पढ़ने वाले (सभेयम्) सभा में बैठने योग्य (वीरम्) शत्रुओं के बलों को व्याप्त होने वाले शूरवीर पुरुष को देता है ॥२१॥

भावार्थः—जो अध्यापक उपदेशक वा राजपुरुष सुशिक्षित वाणी अग्नि आदि की तत्त्वविद्या पुरुष का ज्ञान और सभ्यता सब के लिये देवें वे सब के सत्कार करने योग्य हों ॥२१॥

त्वमित्यस्य गोतम ऋषिः । सोमो देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अंजनयस्त्वं गाः ।
त्वमा ततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥२२॥

पदार्थः—हे (सोम) उत्तम सोमवल्ली ओषधियों के तुल्य रोगनाशक राजन् ! (त्वम्) आप (इमाः) इन (विश्वाः) सब (ओषधीः) सोम आदि ओषधियों को (त्वम्) आप सूर्य्य के तुल्य(अपः) जलों वा कर्म को और(त्वम्) आप (गाः)पृथिवी वा गौओं को (अजनयः) उत्पन्न वा प्रकट कीजिये (त्वम्) आप सूर्य्य के समान (उरु) बहुत अवकाश को (आ, ततन्थ) विस्तृत करते तथा (त्वम्) आप सूर्य्य जैसे (ज्योतिषा) प्रकाश से (तमः) अन्धकार को दबाता वैसे न्याय से अन्याय को (वि, ववर्थ) आच्छादित वा निवृत्त कीजिये, सो आप हम को माननीय हैं ॥२२॥

भावार्थः—जो मनुष्य जैसे ओषधि रोगों को वैसे दुःखों को हर लेते हैं प्राणों के तुल्य बलों को प्रकट करते तथा जो राजपुरुष सूर्य्य रात्रि को जैसे वैसे अधर्म और अविद्या के अन्धकार को निवृत्त करते हैं वे जगत् को पूज्य क्यों नहीं हों ? ॥२२॥

देवेनेत्यस्य गोतम ऋषिः । सोमो देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागꣳ सहसावन्नभि युध्य ।
मा त्वा तनदीशिषे वीर्य्यस्योभयेभ्यः प्र चिकित्स गविष्टौ ॥२३॥

पदार्थः—हे (सहसावन्) अधिकतर सेनादि बल वाले (सोम) संपूर्ण ऐश्वर्य के प्रापक (देव) दिव्य गुणों से युक्त राजन ! जो आप (देवेन) उत्तम गुण कर्म स्वभाव युक्त (मनसा) मन से (रायः) धन के (भागम्) अंश को (नः) हमारे लिये

(अभि, युध्य) सब ओर से प्राप्त कीजिये जिस से आप (वीर्य्यस्य) वीरकर्म करने को (ईशिषे) समर्थ होते हो इस से (त्वा) आप को कोई (मा) न (आ, तनत्) दबावे सो आप (गविष्ठो) सुख विशेष की इच्छा के होते (उभयेभ्यः) दोनों इस लोक परलोक के सुखों के लिये (प्र, चिकित्स) रोग निवारण के तुल्य विघ्न निवृत्ति के उपाय को किया कीजिये ॥२३॥

भावार्थः—राजादि विद्वानों को चाहिये कि कपटादि दोषों को छोड़ शुद्ध भाव से सब के लिये सुख की चाहना करके पराक्रम बढ़ावें और जिस कर्म से दुःख की निवृत्ति तथा सुख की वृद्धि इस लोक परलोक में हो उसके करने में निरन्तर प्रयत्न करें ॥२३॥

अष्टावित्यस्याऽऽङ्गिरसो हिरण्यस्तूपऋषिः । सविता देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

अब सूर्य क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अष्टौ व्यख्यत्ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून् ।
हिरण्याक्षः सविता देव आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्य्याणि ॥२४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (हिरण्याक्षः) नेत्र के समान रूप दर्शाने वाली ज्योतियों वाला (देवः) प्रेरक (सविता) सूर्य (दाशुषे) दानशील प्राणियों के लिये (वार्य्याणि) स्वीकार करने योग्य (रत्ना) पृथिवी के उत्तम पदार्थों को (दधत्) धारण करता हुआ (त्री) तीन (धन्व) अवकाशरूप (योजना) अर्थात् बारह कोस और (सप्त) सात (सिन्धून्) पृथिवी के समुद्र से लेके मेघ के ऊपरले अवयवों पर्यन्त समुद्रों को तथा (पृथिव्याः) पृथिवी सम्बन्धिनी (अष्टौ) आठ (ककुभः) दिशाओं को (वि, अख्यत्) प्रसिद्ध प्रकाशित करता है वैसे ही तुम लोग होओ ॥२४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य पृथिवी से आरम्भ करके १२ कोस पर्यन्त हलके भारीपन से युक्त सात प्रकार के जल के अवयव और दिशा विभक्त होती तथा वर्षादि से सब को सुख दिया जाता वैसे शुभ गुण कर्म और स्वभावों से दिशाओं में कीर्ति फैला के अनेक प्रकार के ऐश्वर्य को देने से मनुष्यादि प्राणियों को निरन्तर सुखी करो ॥२४॥

हिरण्यपाणिरित्यस्याङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषिः । सविता देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

हिर॑ण्यपाणिः सवि॒ता विच॑र्षणिरु॒भे द्यावा॑पृथि॒वी अ॒न्तरी॑यते ।
अपामी॑वां बाध॑ते॒ वेति॒ सूर्य॑म॒भि कृ॒ष्णेन॒ रज॑सा॒ द्यामृ॑णोति ॥२५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (हिरण्यपाणिः) हाथों के तुल्य जलादि के ग्राहक प्रकाशरूप किरणों से युक्त (विचर्षणिः) विशेष कर सब को दिखाने वाला (सविता) सब पदार्थों की उत्पत्ति का हेतु (सूर्य्यम्) सूर्य्यलोक जब (उभे) दोनों (द्यावापृथिवी) आकाश भूमि के (अन्तः) बीच (ईयते) उदय होकर घूमता है तब (अमीवाम्) व्याधिरूप अन्धकार को (अप, बाधते) दूर करता और जब (वेति) अस्त समय को प्राप्त होता तब (कृष्णेन) (रजसा) काले अन्धकाररूप से (द्याम्) आकाश को (अभि, ऋणोति) सब ओर से व्याप्त होता है उस सूर्य्य को तुम लोग जानो ॥२५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य अपने समीपवर्त्ती लोकों का आकर्षण कर धारण करता है वैसे ही अनेक लोकों से शोभायमान सूर्यादि सब जगत् को सब ओर से व्याप्त हो और आकर्षण करके ईश्वर धारण करता है ऐसा जानो क्योंकि ईश्वर के विना सब का स्रष्टा तथा धर्त्ता अन्य कोई भी नहीं हो सकता ॥२५॥

हिरण्यहस्त इत्यस्य आङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषिः । सविता देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

हिर॑ण्यहस्तो॒ असु॑रः सुनी॒थः सु॑मृडी॒कः स्ववाँ॑ यात्व॒र्वाङ् ।
अ॒प॒सेध॑न्र॒क्षसो॑ यातु॒धाना॒नस्था॑द्दे॒वः प्र॑तिदो॒षं गृ॑णा॒नः ॥२६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (हिरण्यहस्तः) हाथों के तुल्य प्रकाशों वाला (सुनीथः) सुन्दर प्रकार प्राप्ति कराने (असुरः) जलादि को फेंकने वाला (सुमृडीकः) सुन्दर सुखकारी (स्ववान्) अपने प्रकाशादिक गुणों से युक्त (देवः) प्रकाशक सूर्य्यलोक (यातुधानान्) अन्याय से दूसरों के पदार्थों को धारण करने वाले (रक्षसः) डाकू चोर आदि को (अपसेधन्) निवृत्त करता अर्थात् डाकू चोर आदि सूर्योदय होने पर अपना काम नहीं बना सकते किन्तु प्रायः रात्रि को ही अपना काम बनाते हैं और (प्रतिदोषम्) मनुष्यों के प्रति जो दोष उस को (गृणानः) प्रकट करता हुआ (अस्थात्) उदित होता है वह (अर्वाङ्) अपने समीपवर्त्ती पदार्थों को प्राप्त होने वाला हमारे सुख के अर्थ (यातु) प्राप्त होवे वैसे तुम होओ ॥२६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! मांगने वालों के लिये उदारता से सुवर्णादि

दे तथा दुष्टाचारियों का तिरस्कार कर और धार्मिक जनों को सुख देके प्रतिदिन सूर्य्य के तुल्य प्रशंसित होओ ॥२६॥

ये त इत्यस्याङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषिः । सविता देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब अध्यापक और उपदेशक विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ।
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ॥२७॥

पदार्थः—हे (सवितः) सूर्य के तुल्य ऐश्वर्य देने वाले (देव) विद्या और सुख के दाता आप्त विद्वान् पुरुष ! जिस (ते) आप के जैसे सूर्य के (अन्तरिक्षे) आकाश में गमन के शुद्ध मार्ग हैं वैसे (ये) जो (पूर्व्यासः) पूर्वज आप्तजनों ने सेवन किये (अरेणवः) धूलि आदि रहित (सुकृताः) सुन्दर सिद्ध किये (पन्थाः) मार्ग हैं (तेभिः) उन (सुगेभिः) सुखपूर्वक जिन में चलें ऐसे (पथिभिः) मार्गों से (अद्य) आज (नः) हम लोगों को चलाइये उन मार्गों से चलते हुए हमारी (रक्ष) रक्षा (च) भी कीजिये (च) तथा (नः) हम को (अधि, ब्रूहि) अधिकतर उपदेश कीजिये । इसी प्रकार सबको चेतन कीजिये ॥२७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वानो ! तुम को चाहिये कि जैसे सूर्य के आकाश में निर्मल मार्ग हैं वैसे ही उपदेश और अध्यापन से विद्या धर्म और सुशीलता के दाता मार्गों का प्रचार करें ॥२७॥

उभेत्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम् ।
अविद्रियाभिरूतिभिः ॥२८॥

पदार्थः—हे (अश्विना) सूर्य चन्द्रमा के तुल्य अध्यापक उपदेशको ! (उभा) दोनों तुम लोग जिस जगह पर उत्तम रस को (पिबतम्) पिओ उस (शर्म) उत्तम आश्रय स्थान वा सुख को (उभा) दोनों तुम (अविद्रियाभिः) छिद्ररहित (ऊतिभिः) रक्षणादि क्रियाओं से रक्षित घर को (नः) हमारे लिये (यच्छतम्) देओ ॥२८॥

भावार्थः—अध्यापक और उपदेशक लोगों को चाहिये कि सदा उत्तम घर बनाने के और निवास के उपदेशों को कर जहां पूर्ण रक्षा हो उस विषय में सब को प्रेरणा करें ॥२८॥

अप्नस्वतीमित्यस्य कुत्स ऋषिः । अश्विनौ देवते । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अप्न॑स्वतीमश्विना॒ वाच॑म॒स्मे कृ॒तं नो॑ दस्रा वृषणा मनी॒षाम् ।
अ॒द्यू॒त्येऽव॑से॒ नि ह्व॑ये वां वृ॒धे च॑ नो भवतं॒ वाज॑सातौ ॥२९॥

पदार्थः—हे (दस्रा) दुःख के नाशक (वृषणा) सुख के वर्षाने वाले (अश्विना) सब विद्याओं में व्याप्त अध्यापक और उपदेशक लोगो ! तुम दोनों (अस्मे) हमारी (वाचम्) वाणी (च) और (मनीषाम्) बुद्धि को (अप्नस्वतीम्) प्रशस्त कर्मों वाली (कृतम्) करो (नः) हमारे (अद्यूत्ये) द्यूतरहित स्थान में हुए कर्म में (अवसे) रक्षा के लिये स्थित करो (वाजसातौ) धन का विभाग करने हारे संग्राम में (नः) हमारी (वृधे) वृद्धि के लिये (भवतम्) उद्यत होओ जिन (वाम्) तुम्हारी (नि, ह्वये) निरन्तर स्तुति करता हूँ वे दोनों आप मेरी उन्नति करो ॥२९॥

भावार्थः—जो मनुष्य निष्कपट आप्त दयालु विद्वानों का निरन्तर सेवन करते हैं वे प्रगल्भ धार्मिक विद्वान् होके सब ओर से बढ़ते और विजयी होते हुए सब के लिये सुखदायी होते हैं ॥२९॥

द्युभिरित्यस्य कुत्स ऋषिः । अश्विनौ देवते । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब सभासेनाधीश क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

द्यु॒भिर॒क्तुभिः॒ परि॑ पातम॒स्मानरि॑ष्टेभिरश्विना॒ सौभ॑गेभिः ।
तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑तिः॒ सिन्धुः॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौः ॥३०॥

पदार्थः—हे (अश्विना) सभासेनाधीशो ! जैसे (अदितिः) पृथिवी (सिन्धुः) सात प्रकार का समुद्र (पृथिवी) आकाश (उत) और (द्यौः) प्रकाश (तत्) वे (नः) हमारा (मामहन्ताम्) सत्कार करें वैसे (मित्रः) मित्र तथा (वरुणः) दुष्टों को बांधने वा रोकने वाले तुम दोनों (द्युभिः) दिन (अक्तुभिः) रात्रि (अरिष्टेभिः) अहिंसित (सौभगेभिः) श्रेष्ठ धनों के होने से (अस्मान्) हमारी (परि, पातम्) सब ओर से रक्षा करो ॥३०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सभाधीश आदि विद्वान् लोग जैसे पृथिवी आदि तत्त्व सब प्राणियों की रक्षा करते हैं वैसे ही बढ़े हुए ऐश्वर्यों से दिन रात सब मनुष्यों को बढ़ावें ॥३०॥

आ कृष्णेनेत्यस्य हिरण्यस्तूप ऋषिः । सूर्यो देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अब विद्युत् से क्या सिद्ध करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥३१॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! आप जो (आ, कृष्णेन) आकर्षित हुए (रजसा) लोक समूह के साथ (वर्त्तमानः) वर्त्तमान निरन्तर (अमृतम्) नाशरहित कारण (च) और (मर्त्यम्) नाशसहित कार्य्य को (निवेशयन्) अपनी अपनी कक्षा में स्थित करता हुआ (हिरण्ययेन) तेजःस्वरूप (रथेन) रमणीयस्वरूप के सहित (सविता) ऐश्वर्य्य का दाता (देवः) देदीप्यमान विद्युत्रूप अग्नि (भुवनानि) संसारस्थ वस्तुओं को (याति) प्राप्त होता है उसको (पश्यन्) देखते हुए सम्यक् प्रयुक्त कीजिये ॥३१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो बिजली कार्य और कारण को सम्यक् प्रकाशित कर सर्वत्र अभिव्याप्त तेजस्वरूप शीघ्रगामिनी सब का आकर्षण करने वाली है उसको देखते हुए सम्प्रयोग में अभीष्ट स्थानों को शीघ्र जाया करो ॥३१॥

आ रात्रीत्यस्य कुत्स ऋषिः । रात्रिर्देवता । पथ्या बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब रात्रि का वर्णन अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ रात्रि पार्थिवꣳ रजः पितुरप्रायि धामभिः ।
दिवः सदांꣳसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्त्तते तमः ॥३२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (बृहती) बड़ी (रात्रि) रात (दिवः) प्रकाश के (सदांसि) स्थानों को (वि, तिष्ठसे) व्याप्त होती है, जिस रात्रि ने (पितुः) अपने तथा सूर्य के मध्यस्थ लोक के (धामभिः) सब स्थानों के साथ (पार्थिवम्) पृथिवी सम्बन्धी (रजः) लोक को (आ, अप्रायि) अच्छे प्रकार पूर्ण किया है और जिसका (त्वेषम्) अपनी कान्ति से बढ़ा हुआ (तमः) अन्धकार (आ) (वर्त्तते) आता जाता है उसका युक्ति के साथ सेवन करो ॥३२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो पृथिव्यादि की छाया रात्रि में प्रकाश को रोकती अर्थात् सब का आवरण करती है उस का आप लोग यथावत् सेवन करें ॥३२॥

उष इत्यस्य गोतम ऋषिः । उषर्देवता । निचृत्परोष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उषःकाल का वर्णन अगले मन्त्र में करते हैं ॥

उपस्तच्चित्रमा भंरास्मभ्यं वाजिनीवति ।
येनं तोकं च तनयं च धामंहे ॥३३॥

पदार्थः- हे (वाजिनीवति) बहुत अन्नादि ऐश्वर्यों से युक्त (उषः) प्रातःसमय की वेला के तुल्य कान्तिसहित वर्त्तमान स्त्रि ! जैसे अधिकतर अन्नादि ऐश्वर्य की हेतु प्रातःकाल की वेला जिस प्रकार के (चित्रम्) आश्चर्य स्वरूप को धारण करती (तत्) वैसे रूप को तू (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (आ, भर) अच्छे प्रकार पुष्ट कर (येन) जिस से हम लोग (तोकम्) शीघ्र उत्पन्न हुए बालक (च) और (तनयम्) कुमारावस्था के लड़के को (च) भी (धामहे) धारण करें ॥३३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सब शोभा से युक्त मङ्गल देने वाली प्रभात समय की वेला सब व्यवहारों को धारण करने वाली है यदि वैसी स्त्रियां हों तो वे सदा अपने अपने पति को प्रसन्न कर पुत्रपौत्रादि के साथ आनन्द को प्राप्त होवें ॥३३॥

प्रातरित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्न्यादयो लिङ्गोक्ता देवताः । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं॑ हवामहे प्रातर्मित्रावरुंणा प्रातरश्विनां ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मंणस्पतिं प्रातः सोमंमुत रुद्रं॑ हुंवेम ॥३४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (प्रातः) प्रातःकाल (अग्निम्) पवित्र वा स्वयं प्रकाशस्वरूप परमात्मा वा अग्नि को (प्रातः) प्रातः समय (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य को (प्रातः) प्रभात समय (मित्रावरुणा) प्राण उदान को और (प्रातः) प्रभात समय (अश्विना) अध्यापक तथा उपदेशक को (हवामहे) ग्रहण करें वा बुलावें (प्रातः) प्रातः समय (भगम्) सेवन करने योग्य भाग (पूषणम्) पुष्टिकारक भोग (ब्रह्मणस्पतिम्) धन को वा वेद के रक्षक को (प्रात.) प्रभात समय (सोमम्) सोमादि ओषधिगण (उत) और (रुद्रम्) जीव को (हुवेम) ग्रहण वा स्वीकृत करें वैसे तुम लोग भी आचरण करो । ३४।

भावार्थः— जो मनुष्य प्रात काल परमेश्वर की उपासना, अग्निहोत्र, ऐश्वर्य की उन्नति का उपाय, प्राण और अपान की पुष्टि करना, अध्यापक, उपदेशक, विद्वानों तथा ओषधि का सेवन और जीवात्मा को प्राप्त होने वा जानने को प्रयत्न करते हैं वे सब सुखों से सुशोभित होते हैं ॥३४॥

प्रातर्जितमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । भगो देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य लोग ऐश्वर्य्य का सम्पादन करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रातर्जितं भगमुग्रꣳ हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्त्ता ।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥३५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (वयम्) हम लोग (प्रातः) प्रभात समय (यः) जो (विधर्त्ता) विविध पदार्थों को धारण करने हारा (आध्रः) न्यायादि में तृप्ति न करने वाले का पुत्र (चित्) भी (यम्) जिस ऐश्वर्य को (मन्यमानः) विशेष कर जानता हुआ (तुरः) शीघ्रकारी (चित्) भी (राजा) शोभायुक्त राजा है (यम्) जिस (भगम्) ऐश्वर्य को (चित्) भी (भक्षि, इति, आह) तू सेवन कर इस प्रकार ईश्वर उपदेश करता है उस (अदितेः) अविनाशी कारण के समान माता के (पुत्रम्) पुत्र रक्षक (जितम्) अपने पुरुषार्थ से प्राप्त (उग्रम्) उत्कृष्ट (भगम्) ऐश्वर्य को (हुवेम) ग्रहण करें वैसे तुम लोग स्वीकार करो ॥३५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम लोगों को सदा प्रातःकाल से लेकर सोते समय तक यथाशक्ति सामर्थ्य से विद्या और पुरुषार्थ से ऐश्वर्य की उन्नति कर आनन्द भोगना और दरिद्रों के लिये सुख देना चाहिये यह ईश्वर ने कहा है ॥३५॥

भग इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । भगवान् देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अब ईश्वर की प्रार्थना आदि विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥३६॥

पदार्थः—हे (भग) ऐश्वर्ययुक्त ! (प्रणेतः) पुरुषार्थ के प्रति प्रेरक ईश्वर वा हे (भग) ऐश्वर्य के दाता ! (सत्यराधः) विद्यमान पदार्थों में उत्तम धनों वाले (भग) सेवने योग्य विद्वान् आप (नः) हमारी (इमाम्) इस वर्त्तमान (धियम्) बुद्धि को (ददत्) देते हुए (उत, अव) उत्कृष्टता से रक्षा कीजिये । हे (भग) विद्यारूप ऐश्वर्य के दाता ईश्वर वा विद्वान् ! आप (गोभिः) गौ आदि पशुओं (अश्वैः) घोड़े आदि सवारियों और (नृभिः) नायक कुलनिर्वाहक मनुष्यों के साथ (नः) हम को (प्र, जनय) प्रकट कीजिये । हे (भग) सेवा करते हुए विद्वान् ! जिससे हम लोग (नृवन्तः) प्रशस्त मनुष्यों वाले (प्र स्याम) अच्छे प्रकार हों वैसे कीजिये ॥३६॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जब जब ईश्वर की प्रार्थना तथा विद्वानों का सङ्ग करें तब तब बुद्धि की ही प्रार्थना वा श्रेष्ठ पुरुषों की चाहना किया करें ॥३६॥

उतेदानीमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। भगो देवता। पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अब ऐश्वर्य की उन्नति का विषय कहते हैं॥

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्।
उतोदिता मघवन्त्सूर्य्यस्य वयं देवानाᳫं सुमतौ स्याम ॥३७॥

पदार्थः—हे (मघवन्) उत्तम धनयुक्त ईश्वर वा विद्वन्! (वयम्) हम लोग (इदानीम्) वर्त्तमान समय में (उत) और (प्रपित्वे) पदार्थों की प्राप्ति में (उत) और भविष्यत्काल में (उत) और (अह्नाम्) दिनों के (मध्ये) बीच (भगवन्तः) (स्याम) समस्त ऐश्वर्य से युक्त हों (उत) और (सूर्यस्य) सूर्य के (उदिता) उदय समय तथा (देवानाम्) विद्वानों की (सुमतौ) उत्तम बुद्धि में समस्त ऐश्वर्ययुक्त (स्याम) हों ॥३७॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि वर्त्तमान और भविष्यत् काल में योग के ऐश्वर्यों की उन्नति से लौकिक व्यवहार के बढ़ाने और प्रशंसा में निरन्तर प्रयत्न करें ॥३७॥

भग इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। भगवान् देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

भग एव भगवाँ२ऽअस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह ॥३८॥

पदार्थः—हे (देवाः) विद्वान् लोगो! जो (भग, एव) सेवनीय ही (भगवान्) प्रशस्त ऐश्वर्ययुक्त (अस्तु) होवे (तेन) उस ऐश्वर्यरूप ऐश्वर्य वाले परमेश्वर के साथ (वयम्) हम लोग (भगवन्तः) समग्र शोभायुक्त (स्याम) होवें। हे (भग) संपूर्ण शोभायुक्त ईश्वर! (तम्, त्वा) उन आप को (सर्वः, इत्) समस्त ही जन (जोहवीति) शीघ्र पुकारता है। हे (भग) सकल ऐश्वर्य के दाता! (सः) सो आप (इह) इस जगत् में (नः) हमारे (पुर, एता) अग्रगामी (भव) हूजिये ॥३८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! तुम लोग जो समस्त ऐश्वर्य से युक्त परमेश्वर है उसके और जो उसके उपासक विद्वान् हैं उनके साथ सिद्ध तथा श्रीमान् होओ, जो जगदीश्वर माता पिता के समान हम पर कृपा करता है उसकी

भक्तिपूर्वक इस संसार में मनुष्यों को ऐश्वर्य वाले निरन्तर किया करो ॥३८॥

समध्वराय इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । भगो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय ।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥३९॥

पदार्थः— हे मनुष्यो ! (उषसः) प्रभात समय (दधिक्रावेव) अच्छे चलाये धारण करने वाले घोड़े के तुल्य (शुचये) पवित्र (पदाय) प्राप्त होने योग्य (अध्वराय) हिंसारूप अधर्मरहित व्यवहार के लिये (सम्, नमन्त) सम्यक् नमते अर्थात् प्रातःसमय सत्त्व गुण की अधिकता से सब प्राणियों के चित्त शुद्ध नम्र होते हैं (अश्वाः) शीघ्रगामी (वाजिनः) घोड़े जैसे (रथमिव) रमणीय यान को वैसे (नः) हम को (अर्वाचीनम्) इस समय के (वसुविदम्) अनेक प्रकार के धनप्राप्ति के हेतु (भगम्) ऐश्वर्ययुक्त जन को प्राप्त करे वैसे इन को आप लोग (आ, वहन्तु) अच्छे प्रकार चलावें ॥३९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य प्रभात वेला के तुल्य विद्या और धर्म का प्रकाश करते और जैसे घोड़े यानों को वैसे शीघ्र समस्त ऐश्वर्य को पहुंचाते हैं वे पवित्र विद्वान् जानने योग्य हैं ॥३९॥

अश्वावतीरित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । उषा देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब विदुषी स्त्रियां क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥४०॥

पदार्थः— हे विदुषी स्त्रियो ! जैसे (अश्वावतीः) प्रशस्त व्याप्तिशील जलों वाली (गोमतीः) बहुत किरणों से युक्त (वीरवतीः) बहुत वीर पुरुषों से संयुक्त (भद्राः) कल्याणकारिणी (घृतम्) शुद्ध जल को (दुहानाः) पूर्ण करती हुई (विश्वतः) सब ओर से (प्रपीताः) प्रकर्षता से बढ़ी हुई (उषासः) प्रभातवेला हमारी (सदम्) सभा को प्राप्त होती अर्थात् प्रकाशित वा प्रवृत्त करती हैं वैसे हमारी सभा को आप लोग (उच्छन्तु) शोभित करो और (नः) हमारी (यूयम्) तुम लोग (स्वस्तिभिः) स्वस्थता देने वाले सुखों से (सदा) सदा (पात) रक्षा करो ॥४०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे प्रभातवेला जागते हुए मनुष्यों को सुख देने वाली हैं वैसे विदुषी स्त्रियां कुमारी विद्यार्थिनी कन्याओं के विद्या सुशिक्षा और सौभाग्य को बढ़ा के सदैव इन कन्याओं को आनन्दित किया करें ॥४०॥

पूषन्नित्यस्य सुहोत्र ऋषिः। पूषा देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब ईश्वर और आप्तजन के सेवक कैसे होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पूषन्तव॑ व्रते व॒यं न रि॑ष्येम॒ कदा॑ च॒न।
स्तो॒तार॑स्त इ॒ह स्म॑सि॥४१॥

पदार्थः—हे (पूषन्) पुष्टिकारक परमेश्वर वा आप्तविद्वन्! (वयम्) हम लोग (तव) आप के (व्रते) स्वभाव वा नियम में इस से वर्त्तें कि जिस से (कदा, चन) कभी भी (न) न (रिष्येम) चित्त बिगाड़ें (इह) इस जगत् में (ते) आप के (स्तोतारः) स्तुति करने वाले हुए हम सुखी (स्मसि) होते हैं॥४१॥

भावार्थः - जो मनुष्य परमेश्वर के वा आप्त विद्वान् के गुणकर्म-स्वभाव के अनुकूल वर्त्तते हैं वे कभी नष्ट सुख वाले नहीं होते॥४१॥

पथस्पथ इत्यस्य ऋजिश्व ऋषिः। पूषा देवता। विराट् त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प॒थस्प॑थः॒ परि॑पतिं वच॒स्या कामे॑न कृ॒तो अ॒भ्या॑नड॒र्कम्।
स नो॑ रासच्छु॒रुध॑श्च॒न्द्राग्रा॒ धियं॑ धियꣳ सीषधाति॒ प्र पू॒षा॥४२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जो (वचस्या) वचन और (कामेन) कामना कर के (कृतः) सिद्ध (पूषा) पुष्टिकर्त्ता जगदीश्वर वा आप्त जन (शुरुधः) शीघ्र दुःखों को रोकने वाले (चन्द्राग्राः) प्रथम से ही आनन्दकारी साधनों को (नः) हमारे लिये (रासत्) देवे (धियं धियम्) प्रत्येक बुद्धि वा कर्म को (प्रसीषधाति) प्रकर्षता से सिद्ध करे (सः) वह शुभ गुण कर्म स्वभावों को (अभि, आनट्) सब ओर से व्याप्त होता उस (अर्कम्) पूजनीय (पथस्पथः) प्रत्येक मार्ग के (परिपतिम्) स्वामी की हम लोग स्तुति करें॥४२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जो जगदीश्वर सब के सुख के लिये वेद के प्रकाश की और आप्त पुरुष पढ़ाने की इच्छा करता जो सब के लिये श्रेष्ठ बुद्धि उत्तम कर्म और शिक्षा को देते हैं उन सब श्रेष्ठ मार्गों के स्वामियों का सदा सत्कार करना चाहिये॥४२॥

त्रीणीत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब ईश्वर के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।

अतो धर्माणि धारयन् ॥४३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अदाभ्यः) अहिंसा धर्मवाला होने से दयालु (गोपाः) रक्षक (विष्णुः) चराचर जगत् में व्याप्त परमेश्वर (धर्माणि) पुण्यरूप कर्मों का धारक पृथिव्यादि को (धारयन्) धारण करता हुआ (अतः) इस कारण से (त्रीणि) तीन (पदा) जानने वा प्राप्त होने योग्य कारण सूक्ष्म और स्थूलरूप जगत् का (वि, चक्रमे) आक्रमण करता है वही हम लोगों को पूजनीय है ॥४३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस परमेश्वर ने भूमि अन्तरिक्ष और सूर्य्यरूप करके तीन प्रकार के जगत् को बनाया, सब को धारण किया और रक्षित किया है वही उपासना के योग्य इष्टदेव है ॥४३॥

तद्विप्रास इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।

विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥४४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (जागृवांसः) अविद्यारूप निद्रा से उठ के चेतन हुए (विपन्यवः) विशेषकर स्तुति करने योग्य वा ईश्वर की स्तुति करने हारे (विप्रासः) बुद्धिमान् योगी लोग (विष्णोः) सर्वत्र अभिव्यापक परमात्मा का (यत्) जो (परमम्) उत्तम (पदम्) प्राप्त होने योग्य मोक्षदायी स्वरूप है (तत्) उस को (सम्, इन्धते) सम्यक् प्रकाशित करते हैं उन के सत्संग से तुम लोग भी वैसे होओ ॥४४॥

भावार्थः—जो योगाभ्यासादि सत्कर्मों करके शुद्ध मन और आत्मा-वाले धार्मिक पुरुषार्थी जन हैं वे ही व्यापक परमेश्वर के स्वरूप को जानने और उस को प्राप्त होने योग्य होते हैं अन्य नहीं ॥४४॥

घृतवतीत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । द्यावापृथिव्यौ देवते । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा ।

द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥४५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जिस (वरुणस्य) सब से श्रेष्ठ जगदीश्वर के (धर्मणा) धारण करने रूप सामर्थ्य से (मधुदुघे) जल को पूर्ण करने वाली (सुपेशसा) सुन्दर रूप युक्त (पृथ्वी) विस्तार युक्त (उर्वी) बहुत पदार्थों वाली (घृतवती) बहुत जल के परिवर्त्तन से युक्त (अजरे) अपने स्वरूप से नाशरहित (भूरिरेतसा) बहुत जलों से युक्त वा अनेक वीर्य वा पराक्रमों की हेतु (भुवनानाम्) लोक लोकान्तरों की (अभि·श्रिया) सब ओर से शोभा करने वाली (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि (विष्कभिते) विशेष कर धारण वा दृढ़ किये हैं उसी को उपासना के योग्य तुम लोग जानो। ४५॥

भावार्थः—मनुष्यों को जिस परमेश्वर ने प्रकाशरूप और अप्रकाश-रूप दो प्रकार के जगत् को बना और धारण करके पालित किया है वही सर्वदा उपासना के योग्य है ॥४५॥

येन इत्यस्य विहव्य ऋषिः। लिङ्गोक्ता देवताः। भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामहे तान्।
वसवो रुद्रा आदित्या उपरिस्पृशं मोग्रं चेत्तारमधिराजमक्रन् ॥४६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो !. (ये) जो (नः) हमारे (सपत्नाः) शत्रु लोग हों (ते) वे (अप, भवन्तु) दूर हों अर्थात् पराजय को प्राप्त हों जैसे (तान्) उन शत्रुओं को हम (इन्द्राग्निभ्याम्) वायु और विद्युत् के शस्त्रों से (अव, बाधामहे) पीड़ित करें और जैसे (वसवः) पृथिवी आदि वसु (रुद्राः) दश प्राण ग्यारहवां आत्मा और (आदित्याः) बारह महीने (उपरिस्पृशम्) उच्च स्थान पर बैठने (उग्रम्) तेजस्वभाव और (चेत्तारम्) सत्यासत्य को यथावत् जानने वाले (मा) मुझ को (अधिराजम्) अधिपति स्वामी समर्थ (अक्रन्) करें वैसे उन शत्रुओं का तुम लोग निवारण और मेरा सत्कार करो ॥४६॥

भावार्थः— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिसके अधिकार में पृथिवी आदि पदार्थ हों वही सब के ऊपर राजा होवे। जो राजा होवे वह शस्त्र अस्त्रों से शत्रुओं का निवारण कर निष्कण्टक राज्य करे ॥४६॥

आ नासत्येत्यस्य हिरण्यस्तूप ऋषिः। अश्विनौ देवते। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अब कौन जगत् के हितैषी हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना।
आयुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतꣳ सेधतं द्वेषो भवतꣳ सचाभुवा ॥४७॥

पदार्थः—हे (नासत्या) असत्य आचरण से रहित (अश्विना) राज्य और प्रजा के विद्वानो ! जैसे तुम (इह) इस जगत् में (त्रिभिः) (एकादशैः) तेंतीस (देवेभिः) उत्तम पृथिवी आदि (आठ वसु, प्राणादि ग्यारह रुद्र, वारह महीनों तथा विजुली और यज्ञ) तेंतीस देवताओं के साथ (मधुपेयम्) मधुर गुणों से युक्त पीने योग्य ओषधियों के रस को (आ, यातम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ वा उस के लिये आया करो (रपांसि) पापों को (मृक्षतम्) शुद्ध किया करो (द्वेषः) द्वेषादि दोषयुक्त प्राणियों का (निः, सेधतम्) खण्डन वा निवारण किया करो (सचाभुवा) सत्य पुरुषार्थ के साथ कार्यों में संयुक्त (भवतम्) होओ और (आयुः) जीवन को (प्र, तारिष्टम्) अच्छे प्रकार बढ़ाओ वैसे हम लोग होवें ॥४७॥

भावार्थः—वे ही लोग जगत् के हितैषी हैं जो पृथिवी आदि सृष्टि की विद्या को जान के दूसरों को ग्रहण करावें दोषों को दूर करें और अधिक काल जीवन के विधान का प्रचार किया करें ॥४७॥

एष व इत्यस्यागस्त्य ऋषिः । मरुतो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर मनुष्य लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

एष वः॒ स्तोमो॑ मरुत इ॒यं गीर्मा॑न्दा॒र्यस्य॑ मा॒न्यस्य॑ का॒रोः ।
एषा या॑सीष्ट त॒न्वे व॒यां वि॒द्यामे॒षं वृ॒जनं॑ जी॒रदा॑नुम् ॥४८॥

पदार्थः—हे (मरुतः) मरण धर्म वाले मनुष्यो ! (मान्दार्यस्य) प्रशस्त कर्मों के सेवक उदार चित्त वाले (मान्यस्य) सत्कार के योग्य (कारोः) पुरुषार्थी कारीगर का (एषः) यह (स्तोमः) प्रशंसा और (इयम्) यह (गीः) वाणी (वः) तुम्हारे लिये उपयोगी होवे तुम लोग (इषा) इच्छा वा अन्न के निमित्त से (वयाम्) अवस्था वाले प्राणियों के (तन्वे) शरीरादि की रक्षा के लिये (आ, यासीष्ट) अच्छे प्रकार प्राप्त हुआ करो और हम लोग (जीरदानुम्) जीवन के हेतु (इषम्) विज्ञान वा अन्न तथा (वृजनम्) दुःखों के वर्जने वाले वल को (विद्याम) प्राप्त हों ॥४८॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सदैव प्रशंसनीय कर्मों का सेवन और शिल्पविद्या के विद्वानों का सत्कार करके जीवन वल और ऐश्वर्य को प्राप्त होवें ॥४८॥

सहस्तोमा इत्यस्य प्राजापत्यो यज्ञ ऋषिः । ऋषयो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ऋषि कौन होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सहस्तोमाः सहछन्दस आवृतः सहप्रमा ऋषयः सप्त दैव्याः ।
पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीरा अन्वालेभिरे रथ्यो न रश्मीन् ॥४९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (सहस्तोमाः) प्रशंसाओं के साथ वर्त्तमान वा जिनकी शास्त्रस्तुति एक साथ हो (सहछन्दसः) वेदादि का अध्ययन वा स्वतन्त्र सुख-भोग जिनका साथ हो (आवृतः) ब्रह्मचर्य्य के साथ समस्त विद्या पढ़ और गुरुकुल से निवृत्त होके घर आये (सहप्रमाः) साथ ही जिन का प्रमाणादि यथार्थ ज्ञान हो (सप्त) पांच ज्ञानेन्द्रिय अन्तःकरण और आत्मा ये सात (दैव्याः) उत्तम गुण कर्म स्वभावों में प्रवीण ध्यान वाले योगी (ऋषयः) वेदादि शास्त्रों के ज्ञाता लोग (रथ्यः) सारथि (न) जैसे (रश्मीन्) लगाम की रस्सी को ग्रहण करता वैसे (पूर्वेषाम्) पूर्वज विद्वानों के (पन्थाम्) मार्ग को (अनु, दृश्य) अनुकूलता से देख के (अन्वालेभिरे) पश्चात् प्राप्त होते हैं । वैसे होकर तुम लोग भी आप्तों के मार्ग को प्राप्त होओ ॥४९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो रागद्वेषादि दोषों को दूर से छोड़ आपस में प्रीति रखने वाले हों, ब्रह्मचर्य्य से धर्म के अनुष्ठानपूर्वक समस्त वेदों को जान के सत्य असत्य का निश्चय कर सत्य को प्राप्त हो और असत्य को छोड़ के आप्तों के भाव से वर्त्तते हैं वे सुशिक्षित सारथियों के समान अभीष्ट धर्मयुक्त मार्ग में जाने को समर्थ होते और वे ही ऋषिसंज्ञक होते हैं ॥४९॥

आयुष्यमित्यस्य दक्ष ऋषिः । हिरण्यन्तेजो देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

अब ऐश्वर्य और जय आदि सम्पादन विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आयुष्यं वर्चस्यꣳ रायस्पोषमौद्भिदम् ।
इदꣳ हिरण्यं वर्चस्वज्जैत्रायाविशतादु माम् ॥५०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (औद्भिदम्) दुःखों के नाशक (आयुष्यम्) जीवन के लिये हितकारी (वर्चस्यम्) अध्ययन के उपयोगी (रायः, पोषम्) धन की पुष्टि करने हारे (वर्चस्वत्) प्रशस्त अन्नों के हेतु (हिरण्यम्) तेजःस्वरूप सुवर्णादि ऐश्वर्य (जैत्राय) जय होने के लिये (माम्) मुझ को (आ, विशतात्) आवेश करे अर्थात् मेरे निकट स्थिर रहे वह तुम लोगों के निकट भी स्थिर होवे ॥५०॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपने तुल्य सब को जानते और विद्वानों के साथ विचार कर सत्यासत्य का निर्णय करते हैं वे दीर्घ अवस्था पूर्ण विद्याओं समग्र ऐश्वर्य और विजय को प्राप्त होते हैं ॥५०॥

न तदित्यस्य दक्ष ऋषिः । हिरण्यन्तेजो देवता । भुरिक् शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ब्रह्मचर्य्य की प्रशंसा का विषय अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

न तद्रक्षा॑ᳪसि॒ न पि॑शा॒चास्त॑रन्ति दे॒वाना॒मोजः॑ प्रथम॒जᳪ ह्ये॒तत् ।
यो बि॒भर्त्ति॑ दाक्षाय॒णᳪ हिर॑ण्य॒ᳪ स दे॒वेषु॑ कृणुते
दी॒र्घमायुः॒ स म॑नु॒ष्ये॑षु कृणुते दी॒र्घमायुः॑ ॥५१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (देवानाम्) विद्वानों का (प्रथमजम्) प्रथम अवस्था वा ब्रह्मचर्य्य आश्रम में उत्पन्न हुआ (ओजः) बल पराक्रम है (तत्) उस को (न, रक्षांसि) न अन्यों को पीड़ा विशेष देकर अपनी ही रक्षा करनेहारे और (न, पिशाचाः) न प्राणियों के रुधिरादि को खाने वाले हिंसक म्लेच्छाचारी दुष्टजन (तरन्ति) उल्लङ्घन करते (यः) जो मनुष्य (एतत्) इस (दाक्षायणम्) चतुर को प्राप्त होने योग्य (हिरण्यम्) तेजःस्वरूप ब्रह्मचर्य्य को (बिभर्त्ति) धारण वा पोषण करता है (सः) वह (देवेषु) विद्वानों में (दीर्घम्, आयुः) अधिक अवस्था को (कृणुते) प्राप्त होता और (सः) वह (मनुष्येषु) मननशील जनों में (दीर्घम्, आयुः) बड़ी अवस्था को (कृणुते) प्राप्त करता है ॥५१॥

भावार्थः—जो प्रथम अवस्था में बड़े धर्मयुक्त ब्रह्मचर्य्य से पूर्ण विद्या पढ़ते हैं उनको न कोई चोर न दायभागी और न उन को भार होता है जो विद्वान् इस प्रकार धर्मयुक्त कर्म के साथ वर्त्तते हैं वे विद्वानों और मनुष्यों में बड़ी अवस्था को प्राप्त हो के निरन्तर आनन्दित होते और दूसरों को आनन्दित करते हैं ॥५१॥

यदेत्यस्य दक्ष ऋषिः । हिरण्यन्तेजो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यदाब॑ध्नन्दाक्षाय॒णा हिर॑ण्यᳪ श॒तानी॑काय सुमन॒स्यमा॑नाः ।
तन्म॒ आ ब॑ध्नामि श॒तशा॑रदा॒यायु॑ष्मा॒ञ्जर॑दष्टि॒र्यथास॑म् ॥५२॥

पदार्थः—जो (दाक्षायणाः) चतुराई और विज्ञान से युक्त (सुमनस्यमानाः) सुन्दर विचार करते हुए सज्जन लोग (शतानीकाय) सैकड़ों सेनावाले (मे) मेरे लिये (यत्) जिस (हिरण्यम्) सत्याऽसत्यप्रकाशक विज्ञान का (आ, अबध्नन्) निबन्धन करें (तत्) उस को मैं (शतशारदाय) सौ वर्ष तक जीवन के लिये (आ, बध्नामि) नियत करता हूं । हे विद्वान् लोगो ! जैसे मैं (युष्मान्) तुम लोगों को प्राप्त होके (जर-

दष्टिः) पूर्ण अवस्था को व्याप्त होने वाला (असम्) होऊं वैसे तुम लोग मेरे प्रति उपदेश करो ॥५२॥

भावार्थः—एक ओर सैकड़ों सेना और दूसरी ओर एक विद्या ही विजय देनेवाली होती है। जो लोग बहुत काल तक ब्रह्मचर्य्य धारण करके विद्वानों से विद्या और सुशिक्षा को ग्रहण कर उसके अनुकूल वर्त्तते हैं वे थोड़ी अवस्था वाले कभी नहीं होते ॥५२॥

उत न इत्यस्य ऋजिश्व ऋषिः। लिंगोक्ता देवताः। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अब कौन सब के रक्षक होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात्पृथिवी समुद्रः।

विश्वे देवा ऋतावृधो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु ॥५३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! (बुध्न्यः) अन्तरिक्ष में होने वाला (अहिः) मेघ के तुल्य और (पृथिवी) तथा (समुद्रः) अन्तरिक्ष के तुल्य (एकपात्) एक प्रकार के निश्चल अव्यभिचारी बोध वाला (अजः) जो कभी उत्पन्न नहीं होता वह परमेश्वर (नः) हमारे वचनों को (शृणोतु) सुने तथा (ऋतावृधः) सत्य के बढ़ाने वाले (हुवानाः) स्पर्द्धा करते हुए (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (उत) और (कविशस्ताः) बुद्धिमानों से प्रशंसा किये हुए (स्तुताः) स्तुति के प्रकाशक (मन्त्राः) विचार के साधक मन्त्र हमारी (अवन्तु) रक्षा करें ॥५३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे पृथिवी आदि पदार्थ, मेघ और परमेश्वर सब की रक्षा करते हैं वैसे ही विद्या और विद्वान् लोग सब को पालते हैं ॥५३॥

इमेत्यस्य कूर्मगार्त्समद ऋषिः। आदित्या देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब वाणी का विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद्राजभ्यो जुह्वा जुहोमि।

शृणोतु मित्रो अर्य्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः ॥५४॥

पदार्थः—मैं (आदित्येभ्यः) तेजस्वी (राजभ्यः) राजाओं से जिन (इमाः) इन सत्य (गिरः) वाणियों को (जुह्वा) ग्रहण के साधन से (सनात्) नित्य (जुहोमि) ग्रहण स्वीकार करता हूं उन (घृतस्नूः) जल के तुल्य अच्छे व्यवहार को शोधने वाली (नः) हम लोगों की वाणियों को (मित्रः) मित्र (अर्यमा) न्यायकारी (भगः) ऐश्वर्य-

न तदित्यस्य दक्ष ऋषिः । हिरण्यन्तेजो देवता । भुरिक् छक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ब्रह्मचर्य की प्रशंसा का विषय अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

न तद्रक्षांꣳसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमजꣳ ह्येतत् ।
यो बिभर्ति दाक्षायणꣳ हिरण्यꣳ स देवेषु कृणुते
दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ॥५१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (देवानाम्) विद्वानों का (प्रथमजम्) प्रथम अवस्था वा ब्रह्मचर्य्य आश्रम में उत्पन्न हुआ (ओजः) बल पराक्रम है (तत्) उस को (न, रक्षांसि) न अन्यों को पीड़ा विशेष देकर अपनी ही रक्षा करनेहारे और (न, पिशाचाः) न प्राणियों के रुधिरादि को खाने वाले हिंसक म्लेच्छाचारी दुष्टजन (तरन्ति) उल्लङ्घन करते (यः) जो मनुष्य (एतत्) इस (दाक्षायणम्) चतुर को प्राप्त होने योग्य (हिरण्यम्) तेजःस्वरूप ब्रह्मचर्य को (बिभर्त्ति) धारण वा पोषण करता है (सः) वह (देवेषु) विद्वानों में (दीर्घम्, आयुः) अधिक अवस्था को (कृणुते) प्राप्त होता और (स.) वह (मनुष्येषु) मननशील जनों में (दीर्घम्, आयुः) बड़ी अवस्था को (कृणुते) प्राप्त करता है ॥५१॥

भावार्थः—जो प्रथम अवस्था में बड़े धर्मयुक्त ब्रह्मचर्य्य से पूर्ण विद्या पढ़ते हैं उनको न कोई चोर न दायभागी और न उन को भार होता है जो विद्वान् इस प्रकार धर्मयुक्त कर्म के साथ वर्त्तते हैं वे विद्वानों और मनुष्यों में बड़ी अवस्था को प्राप्त हो के निरन्तर आनन्दित होते और दूसरों को आनन्दित करते हैं ॥५१॥

यदेत्यस्य दक्ष ऋषिः । हिरण्यन्तेजो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यदाबध्नन्दाक्षायणा हिरण्यꣳ शतानीकाय सुमनस्यमानाः ।
तन्म आ बध्नामि शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम् ॥५२॥

पदार्थः—जो (दाक्षायणाः) चतुराई और विज्ञान से युक्त (सुमनस्यमानाः) सुन्दर विचार करते हुए सज्जन लोग (शतानीकाय) सैकड़ों सेनावाले (मे) मेरे लिये (यत्) जिस (हिरण्यम्) सत्याऽसत्यप्रकाशक विज्ञान का (आ, अबध्नन्) निबन्धन करें (तत्) उस को मैं (शतशारदाय) सौ वर्ष तक जीवन के लिये (आ, बध्नामि) नियत करता हूं । हे विद्वान् लोगो ! जैसे मैं (युष्मान्) तुम लोगों को प्राप्त होके (जर-

दष्टिः) पूर्ण अवस्था को व्याप्त होने वाला (असम्) होऊं वैसे तुम लोग मेरे प्रति उपदेश करो ॥५२॥

भावार्थः—एक ओर सैकड़ों सेना और दूसरी ओर एक विद्या ही विजय देनेवाली होती है। जो लोग बहुत काल तक ब्रह्मचर्य्य धारण करके विद्वानों से विद्या और सुशिक्षा को ग्रहण कर उसके अनुकूल वर्त्तते हैं वे थोड़ी अवस्था वाले कभी नहीं होते ॥५२॥

उत न इत्यस्य ऋजिश्व ऋषिः। लिंगोक्ता देवताः। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अब कौन सब के रक्षक होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात्पृथिवी समुद्रः।
विश्वे देवा ऋतावृधो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु ॥५३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! (बुध्न्यः) अन्तरिक्ष में होने वाला (अहिः) मेघ के तुल्य और (पृथिवी) तथा (समुद्रः) अन्तरिक्ष के तुल्य (एकपात्) एक प्रकार के निश्चल अव्यभिचारी बोध वाला (अजः) जो कभी उत्पन्न नहीं होता वह परमेश्वर (नः) हमारे वचनों को (शृणोतु) सुने तथा (ऋतावृधः) सत्य के बढ़ाने वाले (हुवानाः) स्पर्द्धा करते हुए (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (उत) और (कविशस्ताः) बुद्धिमानों से प्रशंसा किये हुए (स्तुताः) स्तुति के प्रकाशक (मन्त्राः) विचार के साधक मन्त्र हमारी (अवन्तु) रक्षा करें ॥५३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे पृथिवी आदि पदार्थ, मेघ और परमेश्वर सब की रक्षा करते हैं वैसे ही विद्या और विद्वान् लोग सब को पालते हैं ॥५३॥

इमेत्यस्य कूर्मगार्त्समद ऋषिः। आदित्या देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब वाणी का विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद्राजभ्यो जुह्वा जुहोमि।
शृणोतु मित्रो अर्य्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः ॥५४॥

पदार्थः—मैं (आदित्येभ्यः) तेजस्वी (राजभ्यः) राजाओं से जिन (इमाः) इन सत्य (गिरः) वाणियों को (जुह्वा) ग्रहण के साधन से (सनात्) नित्य (जुहोमि) ग्रहण स्वीकार करता हूं उन (घृतस्नूः) जल के तुल्य अच्छे व्यवहार को शोधने वाली (नः) हम लोगों की वाणियों को (मित्रः) मित्र (अर्यमा) न्यायकारी (भगः) ऐश्वर्य-

वान् (तुविजातः) बहुतों में प्रसिद्ध (दक्षः) चतुर (अंशः) विभागकर्त्ता और (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष (शृणोतु) सुने ।।५४।

भावार्थः—विद्यार्थी लोगों ने आचार्यों से जिन सुशिक्षित वाणियों को ग्रहण किया उनको अन्य आप्त लोग सुन और अच्छे प्रकार परीक्षा करके शिक्षा करें ।।५४।।

सप्तेत्यस्य कण्व ऋषिः । अध्यात्मं प्राणा देवताः । भुरिग्जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ।।

अब शरीर और इन्द्रियों का विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम् ।
सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ ।।५५।।

पदार्थः—जो (सप्त, ऋषयः) विषयों अर्थात् शब्दादि को प्राप्त कराने वाले पांच ज्ञानेन्द्रिय मन और बुद्धि ये सात ऋषि इस (शरीरे) शरीर में (प्रतिहिताः) प्रतीति के साथ स्थिर हुए हैं वे ही (सप्त) सात (अप्रमादम्) जैसे प्रमाद अर्थात् भूल न हो वैसे (सदम्) ठहरने के आधार शरीर को (रक्षन्ति) रक्षा करते हैं वे (स्वपतः) सोते हुए जन के (आपः) शरीर को व्याप्त होने वाले उक्त (सप्त) सात (लोकम्) जीवात्मा को (ईयुः) प्राप्त होते हैं (तत्र) उस लोक प्राप्ति समय में (अस्वप्नजौ) जिन को स्वप्न कभी नहीं होता (सत्रसदौ) जीवात्माओं की रक्षा करने वाले (च) और (देवौ) स्थिर उत्तम गुणों वाले प्राण और अपान (जागृतः) जागते हैं ।।५५।।

भावार्थः—इस शरीर में स्थिर व्यापक विषयों के जानने वाले अन्तःकरण के सहित पांच ज्ञानेन्द्रिय ही निरन्तर शरीर की रक्षा करते हैं और जब जीव सोता है तब उसी को आश्रय कर तमोगुण के बल से भीतर को स्थिर होते किन्तु बाह्य विषय का बोध नहीं कराते और स्वप्नावस्था में जीवात्मा की रक्षा में तत्पर तमोगुण से न दबे हुए प्राण और अपान जागते हैं अन्यथा यदि प्राण अपान भी सो जावें तो मरण का ही सम्भव करना चाहिये ।।५५।।

उत्तिष्ठेत्यस्य कण्व ऋषिः । ब्रह्मणस्पतिर्देवता । निचृद्बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ।।

विद्वान् पुरुष क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे ।
उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ।।५६।।

पदार्थः—हे (ब्रह्मणः) धन के (पते) रक्षक (इन्द्र) ऐश्वर्यकारक विद्वन्! (देवयन्तः) दिव्य विद्वानों की कामना करते हुए हम लोग जिस (त्वा) आप की (ईमहे) याचना करते हैं जिस आप को (सुदानवः) सुन्दर दान देने वाले (मरुतः) मनुष्य (उप, प्र, यन्तु) समीप से प्रयत्न के साथ प्राप्त हों सो आप (उत्, तिष्ठ) उठिये और (सचा) सत्य के सम्बन्ध से (प्राशूः) उत्तम भोग करनेहारे (भव) हूजिये ॥५६॥

भावार्थः—हे विद्वन्! जो लोग विद्या की कामना करते हुए आपका आश्रय लेवें उनके अर्थ विद्या देने के लिये आप उद्यत हूजिये ॥५६॥

प्रनूनमित्यस्य कण्व ऋषिः। ब्रह्मणस्पतिर्देवता। विराट् बृहती छन्दः।
मध्यमः स्वरः ॥

अब ईश्वर के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांꣳसि चक्रिरे ॥५७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! (यस्मिन्) जिस परमात्मा में (इन्द्रः) बिजुली वा सूर्य्य (वरुणः) जल वा चन्द्रमा (मित्रः) प्राण वा अन्य अपानादि वायु (अर्यमा) सूत्रात्मा वायु (देवाः) ये सब उत्तम गुण वाले (ओकांसि) निवासों को (चक्रिरे) किये हुए हैं वह (ब्रह्मणः) वेदविद्या का (पतिः) रक्षक जगदीश्वर (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय पदार्थों में श्रेष्ठ (मन्त्रम्) वेदरूप मन्त्रभाग को (नूनम्) निश्चय कर (प्र, वदति) अच्छे प्रकार कहता है ऐसा तुम जानो ॥५७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जिस परमात्मा में कार्यकारणरूप सब जगत् जीव वसते हैं तथा जो सब जीवों के हितसाधक वेद का उपदेश करता हुआ उसी की तुम लोग भक्ति, सेवा, उपासना करो ॥५७॥

ब्रह्मणस्पत इत्यस्य गृत्समद ऋषिः। ब्रह्मणस्पतिर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप्
छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व।
विश्वन्तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥
य इमा विश्वा। विश्वकर्म्मा। यो नः पिता।
अन्नपतेऽन्नस्य नो देहि ॥५८॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मणः) ब्रह्माण्ड के (पते) रक्षक ईश्वर ! (देवाः) विद्वान् लोग (विदथे) प्रकट करने योग्य व्यवहार में (यत्) जिस की रक्षा वा उपदेश करते हैं और जिस को (सुवीराः) सुन्दर उत्तम वीर पुरुष हम लोग (बृहत्)बड़ा श्रेष्ठ (वदेम) कहें उस (अस्य) इस (सूक्तस्य) अच्छे प्रकार कहने योग्य वचन के (त्वम्) आप (यन्ता) नियमकर्त्ता हूजिये (च) और (तनयम्) विद्या का शुद्ध विचार करने हारे पुत्रवत् प्रियपुरुष को (बोधि) बोध कराइये तथा (तत्) उस (भद्रम्) कल्याणकारी (विश्वम्) सब जीवमात्र को (जिन्व) तृप्त कीजिये ॥५८॥

भावार्थः—हे जगदीश्वर ! आप हमारी विद्या और सत्य व्यवहार के नियम करने वाले हूजिये हमारे सन्तानों को विद्यायुक्त कीजिये सब जगत् की यथावत् रक्षा, न्याययुक्त धर्म, उत्तम शिक्षा और परस्पर प्रीति उत्पन्न कीजिये ॥५८॥

इस अध्याय में मन का लक्षण, शिक्षा, विद्या की इच्छा, विद्वानों का सङ्ग, कन्याओं का प्रबोध, चेतनता, विद्वानों का लक्षण, रक्षा की प्रार्थना, बल ऐश्वर्य की इच्छा, सोमओषधि का लक्षण, शुभ कर्म की इच्छा, परमेश्वर और सूर्य का वर्णन, अपनी रक्षा, प्रातःकाल का उठना, पुरुषार्थ से ऋद्धि और सिद्धि पाना, ईश्वर के जगत् का रचना, महाराजाओं का वर्णन, अश्वि के गुणों का कथन, अवस्था का बढ़ाना, विद्वान् और प्राणों का लक्षण और ईश्वर का कर्त्तव्य कहा है। इससे इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह चौंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

॥ ओ३म् ॥

अथ पञ्चत्रिंशाऽध्यायारम्भः

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥१॥

अपेतेत्यस्य आदित्या देवा वा ऋषयः। पितरो देवताः। पूर्वस्य पिपीलिकामध्यागायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। द्युभिरित्युत्तरस्य प्राजापत्या बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

अब व्यवहार और जीव की गति विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अपे॒तो य॑न्तु प॒णयो॒ऽसु॑म्ना दे॑वपी॒यवः॑। अ॒स्य लो॒कः सु॒ताव॑तः।
द्यु॒भिरहो॑भिर॒क्तुभि॒र्व्य॑क्तं य॒मो द॑दात्वव॒सान॑मस्मै ॥१॥

पदार्थः—जो (देवपीयवः) विद्वानों के द्वेषी (पणयः) व्यवहारी लोग दूसरों के लिये (असुम्ना) दुःखों को देते हैं वे (इतः) यहां से (अप, यन्तु) दूर जावें (लोकः) देखने योग्य (यमः) सब का नियन्ता परमात्मा (द्युभिः) प्रकाशमान (अहोभिः) दिन (अक्तुभिः) और रात्रियों के साथ (अस्य) इस (सुतावतः) वेद वा विद्वानों से प्रेरित प्रशस्त कर्मों वाले जनों के सम्बन्धी (अस्मै) इस मनुष्य के लिये (व्यक्तम्) प्रसिद्ध (अवसानम्) अवकाश को (ददातु) देवे ॥१॥

भावार्थः—जो लोग आप्त सत्यवादी धर्मात्मा विद्वानों से द्वेष करते वे शीघ्र ही दुःख को प्राप्त होते हैं, जो जीव शरीर छोड़ के जाते हैं उनके लिये यथायोग्य अवकाश देकर उनके कर्मानुसार परमेश्वर सुख दुःख फल देता है ॥१॥

सविता तर्यित्यस्य आदित्या देवा ऋषयः। सविता देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

फिर ईश्वर के कर्त्तव्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सविता ते शरीरेभ्यः पृथिव्यां लोकमिच्छतु ।
तस्मै युज्यन्तामुस्रियाः ॥ २॥

पदार्थः—हे जीव ! (सविता) परमात्मा जिस (ते) तेरे (शरीरेभ्यः) जन्म-जन्मान्तरों के शरीरों के लिये (पृथिव्याम्) अन्तरिक्ष वा भूमि में (लोकम्) कर्मों के अनुकूल सुख दुःख के साधनप्रापक स्थान को (इच्छतु) चाहे (तस्मै) उस तेरे लिये (उस्रियाः) प्रकाशरूप किरण (युज्यन्ताम्) अर्थात् उपयोगी हों ॥२॥

भावार्थः—हे जीवो ! जो जगदीश्वर तुम्हारे लिये सुख चाहता है और किरणों के द्वारा लोकलोकान्तर को पहुँचाता है वही तुम लोगों को न्यायकारी मानना चाहिये ॥२॥

वायुरित्यस्य आदित्या देवा वा ऋषयः । सविता देवता । उष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

जीवों की कर्मगति का विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

वायुः पुनातु सविता पुनात्वग्नेर्भ्राजसा सूर्यस्य वर्चसा ।
विमुच्यन्तामुस्रियाः ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम (वायुः) पवन (अग्नेः) बिजुली की (भ्राजसा) दीप्ति से (सूर्यस्य) सूर्य के (वर्चसा) तेज से जिन हम लोगों को (पुनातु) पवित्र करे (सविता) सूर्य (पुनातु) पवित्र करे (उस्रियाः) किरण (मुच्यन्ताम्) छोड़े ॥३॥

भावार्थः—जब जीव शरीरों को छोड़ के विद्युत् सूर्य के प्रकाश और वायु आदि को प्राप्त होकर जाते हैं और गर्भ में प्रवेश करते हैं तब किरण उनको छोड़ देती हैं ॥३॥

अश्वत्थ इत्यस्य आदित्या देवा ऋषयः । वायुः सविता देवते । अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।
गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥४॥

पदार्थः—हे जीवो ! जिस जगदीश्वर ने (अश्वत्थे) कल ठहरेगा वा नहीं ऐसे अनित्य संसार में (वः) तुम लोगों की (निषदनम्) स्थिति की (पर्णे) पत्ते के तुल्य चञ्चल जीवन में (वः) तुम्हारा (वसतिः) निवास (कृता) किया (यत्) जिस

(पुरुषम्) सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा को (किल) ही (सनवथ) सेवन करो उसके साथ (गोभाजः) पृथिवी वाणी इन्द्रिय वा किरणों का सेवन करने वाले (इव) ही तुम लोग प्रयत्न के साथ धर्म में स्थिर (असथ) होओ ॥४॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अनित्य संसार में नित्य शरीरों और पदार्थों को प्राप्त हो के क्षणभंगुर जीवन में धर्माचरण के साथ नित्य परमात्मा की उपासना कर आत्मा और परमात्मा के संयोग से उत्पन्न हुए नित्य सुख को प्राप्त हों ॥४॥

सवितेत्यस्यादित्या देवा वा ऋषयः। वायुसवितारौ देवते। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

कन्या क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सविता ते शरीराणि मातुरुपस्थ आ वपतु ।
तस्मै पृथिवि शं भव ॥५॥

पदार्थः—हे (पृथिवि) भूमि के तुल्य सहनशील कन्या ! तू जिस (ते) तेरे (शरीराणि) आश्रयों को (मातुः) माता के तुल्य मान्य देने वाली पृथिवी के (उपस्थे) समीप में (सविता) उत्पत्ति करने वाला पिता (आ, वपतु) स्थापित करे सो तू (तस्मै) उस पिता के लिये (शम्) सुखकारिणी (भव) हो ॥५॥

भावार्थः—हे कन्याओ ! तुम को उचित है कि विवाह के पश्चात् भी माता और पिता में प्रीति न छोड़ो क्योंकि उन्हीं दोनों से तुम्हारे शरीर उत्पन्न हुए और पाले गये हैं इससे ॥५॥

प्रजापतावित्यस्यादित्या देवा ऋषयः। प्रजापतिर्देवता। उष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

ईश्वर की उपासना का विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रजापतौ त्वा देवतायामुपोदके लोके निदधाम्यसौ ।
अप नः शोशुचदघम् ॥६॥

पदार्थः—हे जीव ! जो (असौ) यह लोक (नः) हमारे (अघम्) पाप को (अप, शोशुचत्) शीघ्र सुखा देवे उस (प्रजापतौ) प्रजा के रक्षक (देवतायाम्) पूजनीय परमेश्वर में तथा (उपोदके) उपगत समीपस्थ उदक जिसमें हो (लोके) दर्शनीय स्थान में (त्वा) आप को (निदधामि) निरन्तर धारण करता हूं ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर उपासना किया हुआ पापा-

चरण से पृथक् कराता है उसी में भक्ति करने के लिये तुम को मैं स्थिर करता हूं जिस से सदैव तुम लोग श्रेष्ठ सुख के देखने को प्राप्त होओ ॥६॥

परमित्यस्य सङ्कुसुक ऋषिः । यमो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते अन्य इतरो देवयानात् ।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान् ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! (यः) जो (ते) तेरा (देवयानात्) जिस मार्ग से विद्वान् लोग चलते उससे (इतरः) भिन्न (अन्यः) और मार्ग है उस (पन्थाम्) मार्ग को (मृत्यो) मृत्यु (परा, इहि) दूर जावे जिस कारण तू (परम्) उत्तम देवमार्ग को (अनु) अनुकूलता से प्राप्त हो इसी से (चक्षुष्मते) उत्तम नेत्रवाले (शृण्वते) सुनते हुए (ते) तेरे लिये (ब्रवीमि) उपदेश करता हूं जैसे मृत्यु (नः) हमारी प्रजा को न मारे और वीर पुरुषों को भी न मारे वैसे तू (प्रजाम्) सन्तानादि को (मा, रीरिषः) मत मार वा विषयादि से नष्ट मत कर (उत) और (वीरान्) विद्या और शरीर के बल से युक्त वीर पुरुषों को (मा) मत नष्ट कर ॥७॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जीवन पर्यन्त विद्वानों के मार्ग से चल के उत्तम अवस्था को प्राप्त हों और ब्रह्मचर्य के विना स्वयंवर विवाह करके कभी न्यून अवस्था की प्रजा सन्तानों को न उत्पन्न करें और न इन सन्तानों को ब्रह्मचर्य के अनुष्ठान से अलग रक्खें ॥७॥

शं वात इत्यस्य आदित्या देवा वा ऋषयः । विश्वेदेवा देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

सृष्टि के पदार्थ मनुष्यों को कैसे सुखकारी हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

शं वातः शꣳहि ते घृणिः शं ते भवन्त्विष्टकाः ।
शं ते भवन्त्वग्नयः पार्थिवासो मा त्वाभिशूशुचन् ॥८॥

पदार्थः—हे जीव ! (ते) तेरे लिये (वातः) वायु (शम्) सुखकारी हो (घृणिः) किरणयुक्त सूर्य्य (शम्, हि) सुखकारी हो (इष्टकाः) वेदी में चयन की हुई ईंटें तेरे लिये (शम्) सुखदायिनी (भवन्तु) हों (पार्थिवासः) पृथिवी पर प्रसिद्ध (अग्नयः) विद्युत् आदि अग्नि (ते) तेरे लिये (शम्) कल्याणकारी (भवन्तु) होवें, ये सब (त्वा) तुझ को (मा, अभि शूशुचन्) सब ओर से शीघ्र शोककारी न हों ॥८॥

भावार्थः—हे जीवो ! वैसे ही तुम को धर्मयुक्त व्यवहार में वर्त्तना

चाहिये जैसे जीने वा मरने के बाद भी तुम को सृष्टि के वायु आदि पदार्थ सुखकारी हों ॥८॥

कल्पन्तामित्यस्यादित्या देवाः ऋषयः । विश्वेदेवा देवताः । विराड् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

कल्पन्तान्ते दिशस्तुभ्यमापः शिवतमास्तुभ्यं भवन्तु सिन्धवः । अन्तरिक्षꣳ शिवं तुभ्यं कल्पन्तां ते दिशः सर्वाः ॥९॥

पदार्थः—हे जीव (ते) तेरे लिये (दिशः) पूर्व आदि दिशा (शिवतमाः) अत्यन्त सुखकारिणी (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (तुभ्यम्) तेरे लिये (आपः) प्राण वा जल अति सुखकारी हों (तुभ्यम्) तेरे लिये (सिन्धवः) नदियां वा समुद्र अति सुखकारी (भवन्तु) होवें (तुभ्यम्) तेरे लिये (अन्तरिक्षम्) आकाश (शिवम्) कल्याणकारी हो और (ते) तेरे लिये (सर्वाः) सब (दिशः) ईशानादि विदिशा अत्यन्त कल्याणकारी (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥९॥

भावार्थः—जो लोग अधर्म को छोड़कर सब प्रकार से धर्म का आचरण करते हैं उनके लिये पृथिवी आदि सृष्टि के सब पदार्थ अत्यन्त मङ्गलकारी होते हैं ॥९॥

अश्मन्वतीत्यस्य सुचीक ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कौन लोग दुःख के पार होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अश्मन्वती रीयते सꣳरभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः । अत्रा जहीमोऽशिवा ये असञ्छिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥१०॥

पदार्थः—हे (सखायः) मित्रो ! जो (अश्मन्वती) बहुत मेघों वा पत्थरों वाली सृष्टि वा नदी प्रवाह से (रीयते) चलती है उसके साथ जैसे (वयम्) हम लोग (ये) जो (अत्र) इस जगत् में वा समय में (अशिवाः) अकल्याणकारी (असन्) हैं उनको (जहीमः) छोड़ते हैं तथा (शिवान्) सुखकारी (वाजान्) अत्युत्तम अन्नादि के भागों को (अभि, उत्, तरेम) सब ओर से पार करें अर्थात् भोग चुकें वैसे तुम लोग (संरभध्वम्) सम्यक् आरम्भ करो (उत्तिष्ठत) उद्यत होओ और (प्रतरत) दुःखों का उल्लंघन करो ॥१०॥

भावार्थः—जो मनुष्य बड़ी नौका से समुद्र के जैसे पार हों वैसे अशुभ

आचरणों और दुष्ट जनों के पार हो प्रयत्न के साथ उद्यमी होके मङ्गल-कारी आचरण करें वे दुःखसागर से सहज से पार होवें ॥१०॥

अपाघमित्यस्य शुनःशेप ऋषिः। आपो देवता। विराडनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब कौन मनुष्य पवित्र करनेवाले हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अपाघमप किल्बिषमप कृत्यामपो रपः।

अपामार्ग त्वमस्मदप दुःष्वप्न्यꣳ सुव ॥११।

पदार्थः—हे (अपामार्ग) अपामार्ग ओषधि जैसे रोगों को दूर करती वैसे पापों को दूर करने वाले सज्जन पुरुष ! (त्वम्) आप (अस्मत्) हमारे निकट से (अघम्) पाप को (अप, सुव) दूर कीजिये (किल्बिषम्) मन की मलिनता को आप दूर कीजिये (कृत्याम्) दुष्टक्रिया को (अप) दूर कीजिये (रपः) बाह्य इन्द्रियों के चञ्चलता रूप अपराध को (अपो) दूर कीजिये और (दुःष्वप्न्यम्) बुरे प्रकार की निद्रा में होने वाले बुरे विचार को (अप) दूर कीजिये ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य जैसे अपामार्ग आदि ओषधियां रोगों को निवृत्त कर प्राणियों को सुखी करती हैं वैसे आप सब दोषों से पृथक् होके अन्य मनुष्यों को अशुभ आचरण से अलग कर शुद्ध होते और दूसरों को करते हैं वे ही मनुष्यादि को पवित्र करने वाले हैं ॥११॥

सुमित्रिया न इत्यस्याथित्या देवाः ऋषयः। आपो देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु।

योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥१२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (आपः) प्राण वा जल तथा (ओषधयः) सोमादि ओषधियां (नः) हमारे लिये (सुमित्रियाः) सुन्दर मित्रों के तुल्य हितकारिणी (सन्तु) होवें तुम्हारे लिये भी वैसी हों (यः) जो (अस्मान्) हम धर्मात्माओं से (द्वेष्टि) द्वेष करता (च) और (यम्) जिस दुष्टाचारी से (वयम्) हम लोग (द्विष्मः) अप्रीति करें (तस्मै) उसके लिये वे पदार्थ (दुर्मित्रियाः) शत्रुओं के तुल्य दुःखदायी (सन्तु) होवें ॥१२॥

भावार्थः—जो राग द्वेष आदि दोषों को छोड़ कर सब में अपने आत्मा के तुल्य वर्त्ताव करते हैं उन धर्मात्माओं के लिये सब जल ओषधि

आदि पदार्थ सुखकारी होते और जो स्वार्थ में प्रीति तथा दूसरों से द्वेष करने वाले हैं उन अधर्मियों के लिये ये सब उक्त पदार्थ दुःखदायी होते हैं मनुष्यों को चाहिये कि धर्मात्माओं के साथ प्रीति और दुष्टों के साथ निरन्तर अप्रीति करें परन्तु उन दुष्टों का भी चित्त से सदा कल्याण ही चाहें ॥१२॥

अनड्वानित्यस्यादित्या देवाः ऋषयः। कृषीवला देवताः। स्वराडनुष्टुप्छन्दः।
गान्धारः स्वरः॥

कौन मनुष्य कार्य्यों को सिद्ध कर सकते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अनड्वाहमन्वारभामहे सौरभेयꣳ स्वस्तये।
स न इन्द्र इव देवेभ्यो वह्निः सन्तरणो भव ॥१३॥

पदार्थः—हे विद्वन्! जो (वह्निः) शीघ्र पहुंचाने वाला अग्नि (नः, देवेभ्यः) हम विद्वानों के लिये (सन्तरणः) सम्यक् मार्गों से पार करने वाला होता है उस (सौरभेयम्) सुरभि गौ के सन्तान (अनड्वाहम्) गाड़ी आदि को खींचने वाले बैल के तुल्य वर्त्तमान अग्नि के हम लोग (स्वस्तये) सुख के लिये (अन्वारभामहे) यान बना के उनमें प्राणियों को स्थिर करें (सः) वह आप के लिये (इन्द्र इव) बिजुली के तुल्य (भव) होवें ॥१३॥

भावार्थः—जो मनुष्य बिजुली आदि अग्नि की विद्या से यान बनाने आदि कार्य्यों के करने का अभ्यास करते हैं वे अति बली बैलों से खेती करने वालों के समान कार्य्यों को सिद्ध कर सकते और विद्युत् अग्नि के तुल्य शीघ्र इधर उधर जा सकते हैं ॥१३॥

उद्वयन्तमेत्यस्यादित्या देवाः ऋषयः। सूर्य्यो देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः॥

कौन मोक्ष को पाते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्य्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥१४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! हम लोग जिस (तमसः) अन्धकार से परे (स्वः) स्वयं प्रकाशरूप सूर्य्य के तुल्य वर्त्तमान (देवत्रा) विद्वानों वा प्रकाशमय सूर्य्यादि पदार्थों में (देवम्) विजयादि लाभ के देने वाले (ज्योतिः) स्वयं प्रकाशमयस्वरूप (उत्तमम्) सब से बड़े (उत्तरम्) दुःखों से पार करने वाले (सूर्य्यम्) अन्तर्यामी रूप से अपनी व्याप्ति कर सब चराचर के स्वामी परमात्मा को (पश्यन्तः) ज्ञानदृष्टि से देखते हुए

(परि, उत् अगन्म) सब ओर से उत्कृष्टता के साथ जानें उसी को तुम लोग भी जानो ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे सूर्य्य को देखते हुए दीर्घावस्था वाले धर्मात्मा जन सुख को प्राप्त होते वैसे ही धर्मात्मा योगीजन महादेव सब के प्रकाशक जन्ममृत्यु के क्लेश आदि से पृथक् वर्त्तमान सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा को साक्षात् जान मोक्ष को पाकर निरन्तर आनन्दित होते हैं ॥१४॥

इममित्यस्य सङ्कुसुक ऋषिः। ईश्वरो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम्।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥१५॥

पदार्थः—मैं परमेश्वर (एषाम्) इन जीवों के (एतम्) परिश्रम से प्राप्त किये (अर्थम्) द्रव्य को (अपरः) अन्य कोई (मा) नहीं (नु) शीघ्र (गात्) प्राप्त कर लेवे इस प्रकार (इमम्) इस (जीवेभ्यः) जीवों के लिये (परिधिम्) मर्यादा को (दधामि) व्यवस्थित करता हूं इस प्रकार आचरण करते हुए आप लोग (पुरूचीः) बहुत वर्षों के सम्बन्धी (शतम्) सौ (शरदः) शरद् ऋतुओं भर (जीवन्तु) जीवो (पर्वतेन) ज्ञान वा ब्रह्मचर्यादि से (मृत्युम्) मृत्यु को (अन्तः) (दधताम्) दबाओ अर्थात् दूर करो ॥१५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जो लोग परमेश्वर ने नियत किया कि धर्म का आचरण करना और अधर्म का आचरण छोड़ना चाहिये, इस मर्यादा को उल्लङ्घन नहीं करते अन्याय से दूसरे के पदार्थों को नहीं लेते वे नीरोग होकर सौ वर्ष तक जी सकते हैं और ईश्वराज्ञाविरोधी नहीं। जो पूर्ण ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ कर धर्म का आचरण करते हैं उनको मृत्यु मध्य में नहीं दबाता ॥१५॥

अग्न इत्यस्याविस्या देवा ऋषयः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

कौन मनुष्य दीर्घ अवस्था वाले होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥१६॥

पदार्थः—हे (अग्ने) परमेश्वर वा विद्वन्! आप (आयूंषि) अन्नादि पदार्थों वा अवस्थाओं को (पवसे) पवित्र करते हैं (नः) हमारे लिये (ऊर्जम्) बल (च) और

(इषम्) विज्ञान को (आ, सुव) अच्छे प्रकार उत्पन्न कीजिये तथा (दुच्छुनाम्) कुत्तों के तुल्य दुष्ट हिंसक प्राणियों को (आरे) दूर वा समीप में (बाधस्व) ताड़ना विशेष दीजिये ॥१६॥

भावार्थः—जो मनुष्य दुष्टों का आचरण और सङ्ग छोड़ के परमेश्वर और आप्त सत्यवादी विद्वान् की सेवा करते हैं वे धनधान्य से युक्त हुए दीर्घ अवस्था वाले होते हैं ॥१६॥

आयुष्मानित्यस्य वैखानस ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराट्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आयुष्मानग्ने हविषा वृधानो घृतप्रतीको घृतयोनिरेधि।
घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रमभि रक्षतादिमान्त्स्वाहा ॥१७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान तेजस्वी राजन्! जैसे (हविषा) घृतादि से (वृधानः) बढ़ा हुआ (घृतप्रतीकः) जल को प्रसिद्ध करने वाला (घृतयोनिः) प्रदीप्त तेज जिसका कारण वा घर है वह अग्नि बढ़ता है वैसे (आयुष्मान्) बहुत अवस्था वाले आप (एधि) हूजिये (मधु) मधुर (चारु) सुन्दर (गव्यम्) गौ के (घृतम्) घी को (पीत्वा) पी के (पुत्रम्) पुत्र की (पितेव) पिता जैसे वैसे (स्वाहा) सत्य क्रिया से (इमान्) इन प्रजास्थ मनुष्यों की (अभि) प्रत्यक्ष (रक्षतात्) रक्षा कीजिये ॥१७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्यादि रूप से अग्नि बाहर भीतर रह कर सब की रक्षा करता है वैसे ही राजा पिता के तुल्य वर्त्ताव करता हुआ पुत्र के समान इन प्रजाओं की निरन्तर रक्षा करे ॥१७॥

परीम इत्यस्य भरद्वाजः शिरिम्बिठ ऋषिः। इन्द्रो देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

परीमे गामनेषत पर्य्यग्निमहृषत।
देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँ२ऽआ दधर्षति ॥१८॥

पदार्थः—हे राजपुरुषो! जो (इमे) ये तुम लोग (गाम्) वाणी वा पृथिवी को (परि, अनेषत) स्वीकार करो (अग्निम्) अग्नि को (परि, अहृषत) सब ओर से

हरो अर्थात् कार्य में लाओ। इन (देवेषु) विद्वानों में (अवः) अन्न को (अकृत) करो इस प्रकार के आप लोगों को (कः) कौन (आ, वधयंति) धमका सकता है ॥१८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजपुरुष पृथिवी के समान धीर अग्नि के तुल्य तेजस्वी अन्न के समान अवस्थावर्द्धक होते हुए धर्म से प्रजा की रक्षा करते हैं वे अतुल राजलक्ष्मी को पाते हैं ॥१८॥

क्रव्यादमित्यस्य दमन ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

क्रव्यादम॒ग्निं प्र हि॑णोमि दू॒रं य॑मरा॒ज्यं ग॑च्छतु रिप्रवा॒हः।
इ॒हैवायमित॑रो जा॒तवे॑दा दे॒वेभ्यो॑ ह॒व्यं व॑हतु प्रजा॒नन् ॥१९॥

पदार्थः—(प्रजानन्) अच्छे प्रकार जानता हुआ मैं (क्रव्यादम्) कच्चे मांस को खाने और (अग्निम्) अग्नि के तुल्य दूसरों को दुःख से तपाने वाले जिस दुष्ट को (दूरम्) दूर (प्र हिणोमि) पहुंचाता और जिन (रिप्रवाहः) पाप उठाने वाले दुष्टों को दूर पहुंचाता हूं वह और वे सब पापी (यमराज्यम्) न्यायाधीश राजा के न्यायालय में (गच्छतु) जावें और (इह) इस जगत् में (इतरः) दूसरा (अयम्) यह (जातवेदाः) धर्मात्मा विद्वान् जन (देवेभ्यः) धार्मिक विद्वानों (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य विज्ञान को (एव) ही (वहतु) प्राप्त होवे ॥१९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे न्यायाधीश राजपुरुषो! तुम लोग दुष्टाचारी जनों को सम्यक् ताड़ना देकर प्राणों से भी छुड़ा के और श्रेष्ठ का सत्कार करके इस सृष्टि में साम्राज्य अर्थात् चक्रवर्त्ती राज्य करो ॥१९॥

वह वपामित्यस्यादित्या देवा ऋषयः। जातवेदा देवताः। स्वराट् त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब पितृ लोगों का सेवन विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

वह॑ व॒पां जा॑तवेदः पि॒तृभ्यो॒ यत्रै॑ना॒न्वेत्थ॒ निहि॑तान्परा॒के।
मेद॑सः कु॒ल्या उप॒ तान्त्स्र॑वन्तु स॒त्या
ए॑षामा॒शिषः॒ सं न॑मन्ता॒ᳬ स्वाहा॑ ॥२०॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) उत्तम ज्ञान को प्राप्त हुए जन आप (यत्र) जहां (एनान्) इन (पराके) दूर (निहितान्) स्थित पितृजनों को (वेत्थ) जानते हो वहां

(पितृभ्यः) जनक वा विद्या शिक्षा देने वाले सज्जन पितृयों से (वपाम्) खेती होने के योग्य भूमि को (वह) प्राप्त हूजिये जैसे (मेदसः) उत्तम (कुल्याः) जल के प्रवाह से युक्त नदी वा नहरें (तान्) उन सज्जनों को (उप, स्रवन्तु) निकट प्राप्त हों वैसे (स्वाहा) सत्यक्रिया से (एषाम्) इन लोगों की (आशिषः) इच्छा (सत्याः) यथार्थ (सम्, नमन्ताम्) सम्यक् प्राप्त होवें ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो दूर रहने वाले पितृ और विद्वानों को बुलाकर सत्कार करते हैं जैसे बाग बगीचों के वृक्षादि को जल वायु बढ़ाते वैसे उनकी इच्छा सत्य हुई सब ओर से बढ़ती हैं ॥२०॥

स्योनेत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। पृथिवी देवता। निचृद् गायत्री अप न इति प्राजापत्या गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

कुलीन स्त्री कैसी होवे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी।
यच्छा नः शर्म सप्रथाः। अप नः शोशुचदघम् ॥२१॥

पदार्थः—हे (पृथिवि) भूमि के तुल्य वर्त्तमान क्षमाशील स्त्री! तू जैसे (अनृक्षरा) कण्टक आदि से रहित (निवेशनी) बैठने का आधार भूमि (स्योना) सुख करने वाली होती वैसे (नः) हमारे लिये (शर्म) सुख को (यच्छ) दे जैसे न्यायाधीश (नः) हमारे (अघम्) पाप को (अप, शोशुचत्) शीघ्र दूर करे वा शुद्ध करे वैसे तू अपराध को दूर कर ॥२१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो स्त्री पृथिवी के तुल्य क्षमा करने वाली क्रूरता आदि दोषों से अलग बहुत प्रशंसित दूसरों के दोषों का निवारण करने हारी है वही घर के कार्य्यों में योग्य होती है ॥२१॥

अस्मादित्यस्यादित्या देवा ऋषयः। अग्निर्देवता। स्वराड् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अस्मात्त्वमधि जातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः।
असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ॥२२॥

पदार्थः—हे विद्वान पुरुष! (त्वम्) आप (अस्मात्) इस लोक से अर्थात् वर्त्तमान मनुष्यों से (अधि) सर्वोपरि (जातः) प्रसिद्ध विराजमान (असि) हैं इससे

(अयम्) यह पुत्र (त्वत्) आप से (पुनः) पीछे (असौ) विशेष नाम वाला (स्वाहा) सत्य क्रिया से (लोकाय) देखने योग्य (स्वर्गाय) विशेष सुख भोगने के लिये (जायताम्) प्रकट समर्थ होवे ।।२२।।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिये कि इस जगत् में मनुष्यों का शरीर धारण कर विद्या, उत्तम शिक्षा, अच्छा स्वभाव, धर्म, योगाभ्यास और विज्ञान का सम्यक् ग्रहण करके मुक्ति सुख के लिये प्रयत्न करो और यही मनुष्यजन्म की सफलता है ऐसा जानो ।।२२।।

इस अध्याय में व्यवहार, जीव की गति, जन्म, मरण, सत्य, आशीर्वाद, अग्नि और सत्य इच्छा आदि का व्याख्यान होने से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ।

यह पैंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।।

---

* ओ३म् *

अथ षट्त्रिंशाऽध्यायारम्भः

—:०:०:०:०:—

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्नऽआसुव ।।

ऋचमित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । अग्निर्देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।।

अब छत्तीसवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है इस के प्रथम मन्त्र में विद्वानों के संग से क्या होता है इस विषय को कहते हैं ।।

ऋचं वाचं प्र पद्ये मनो यजुः प्र पद्ये
साम प्राणं प्र पद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्र पद्ये ।
वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ।। १ ।।

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (मयि) मेरे आत्मा में (प्राणापानौ) प्राण और अपान ऊपर नीचे के श्वास दृढ़ हों मेरी (वाक्) वाणी (ओजः) मानस बल को प्राप्त हो उस वाणी और उन श्वासों के (सह) साथ मैं (ओजः) शरीर बल को प्राप्त होऊं (ऋचम्) ऋग्वेद रूप (वाचम्) वाणी को (प्र, पद्ये) प्राप्त होऊं (मनः) मनन करने वाले अन्तःकरण के तुल्य (यजुः) यजुर्वेद को (प्र, पद्ये) प्राप्त होऊं (प्राणम्) प्राण की क्रिया अर्थात् योगाभ्यासादिक उपासना के साधक (साम) सामवेद को (प्र, पद्ये) प्राप्त होऊं (चक्षुः) उत्तम नेत्र और (श्रोत्रम्) श्रेष्ठ कान को (प्र, पद्ये) प्राप्त होऊं वैसे तुम लोग इन सब को प्राप्त होओ ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वानो ! तुम लोगों के सङ्ग से मेरी ऋग्वेद के तुल्य प्रशंसनीय वाणी, यजुर्वेद के समान मन, सामवेद के सदृश प्राण और सत्रह तत्त्वों से युक्त लिंग शरीर स्वस्थ, सब उपद्रवों से रहित और समर्थ होवे ॥१॥

यन्मे छिद्रमित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

अब ईश्वर प्रार्थना विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यन्मे॒ छिद्रं॒ चक्षु॑षो॒ हृद॑यस्य॒ मन॑सो॒ वाति॑तृण्णं॒ बृह॒स्पति॑र्मे॒ तद्द॑धातु।
शं नो॑ भवतु॒ भुव॑नस्य॒ यस्पतिः॑ ॥२॥

पदार्थः—(यत्) जो (मे) मेरे (चक्षुषः) नेत्र की वा (हृदयस्य) अन्तःकरण की (छिद्रम्) न्यूनता (वा) वा (मनसः) मन की (अतितृण्णम्) व्याकुलता है (तत्) उस को (बृहस्पतिः) बड़े आकाशादि का पालक परमेश्वर (मे) मेरे लिये (दधातु) पुष्ट वा पूर्ण करे (यः) जो (भुवनस्य) सब संसार का (पतिः) रक्षक है वह (नः) हमारे लिये (शम्) कल्याणकारी (भवतु) होवे ॥२॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की उपासना और आज्ञापालन से अहिंसा धर्म को स्वीकार कर जितेन्द्रियता को सिद्ध करें ॥२॥

भूर्भुवः स्वरित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। सविता देवता। दैवी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। तत्सवितुरित्यस्य निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

अब ईश्वर की उपासना का विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

भूर्भुवः॒ स्वः॑। तत्स॑वि॒तुर्वरे॑ण्यं॒ भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि।
धियो॒ यो नः॑ प्रचो॒दया॑त् ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (भूः) कर्मकाण्ड की विद्या (भुवः) उपासना काण्ड की विद्या और (स्वः) ज्ञानकाण्ड की विद्या को संग्रहपूर्वक पढ़के (यः) जो (नः) हमारी (धियः) धारणावती बुद्धियों को (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे उस (देवस्य) कामना के योग्य (सवितुः) समस्त ऐश्वर्य के देने वाले परमेश्वर के (तत्) उस इन्द्रियों से न ग्रहण करने योग्य परोक्ष (भर्गः) सब दुःखों के नाशक तेजस्वरूप का (धीमहि) ध्यान करें वैसे तुम लोग भी इस का ध्यान करो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य कर्म उपासना और ज्ञान सम्बन्धिनी विद्याओं का सम्यक् ग्रहण कर सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य से युक्त परमात्मा के साथ अपने आत्मा को युक्त करते हैं तथा अधर्म अनैश्वर्य और दुःख रूप मलों को छुड़ा के धर्म ऐश्वर्य और सुखों को प्राप्त होते हैं उन को अन्तर्यामी जगदीश्वर आप ही धर्म के अनुष्ठान और अधर्म का त्याग कराने को सदैव चाहता है ॥३॥

कया न इत्यस्य वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

कया॑ नश्चि॒त्र आ भु॑वदू॒ती स॒दावृ॑धः॒ सखा॑।
कया॒ शचि॑ष्ठया वृ॒ता ॥४॥

पदार्थः—वह (सदावृधः) सदा बढ़ने वाला अर्थात् कभी न्यूनता को नहीं प्राप्त हो (चित्रः) आश्चर्य्यरूप गुण कर्म स्वभावों से युक्त परमेश्वर (नः) हम लोगों का (कया) किस (ऊती) रक्षण आदि क्रिया से (सखा) मित्र (आ, भुवत्) होवे तथा (कया) किस (वृता) वर्त्तमान (शचिष्ठया) अत्यन्त उत्तम बुद्धि से हम को शुभ गुण कर्म स्वभावों में प्रेरणा करे ॥४॥

भावार्थः—हम लोग इस बात को यथार्थ प्रकार से नहीं जानते कि वह ईश्वर किस युक्ति से हम को प्रेरणा करता है कि जिस के सहाय से ही हम लोग धर्म अर्थ काम और मोक्षों के सिद्ध करने को समर्थ हो सकते हैं ॥४॥

कस्त्वेत्यस्य वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

कस्त्वा॑ स॒त्यो मदा॑नां॒ मꣳहि॑ष्ठो मत्स॒दन्ध॑सः।
दृ॒ढा चि॑दा॒रुजे॒ वसु॑ ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (मदानाम्) आनन्दों के बीच (मंहिष्ठः) अत्यन्त बड़ा हुआ (कः) सुखस्वरूप (सत्यः) विद्यमान पदार्थों में श्रेष्ठतम प्रजा का रक्षक परमेश्वर (अन्धसः) अन्नादि पदार्थ से (त्वाम्) तुझ को (मत्सत्) आनन्दित करता और (आरुजे) दुःखनाशक तेरे लिये (चित्) भी (दृढा) दृढ (वसु) धनों को देता है ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो अन्नादि और सत्य के जताने से धनादि पदार्थ देके सब को आनन्दित करता है उस सुखस्वरूप परमात्मा की ही तुम लोग नित्य उपासना किया करो ॥५॥

अभी षु ण इत्यस्य वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। पादनिचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम्। शतम्भवास्यूतिभिः ॥६॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! आप (शतम्) असंख्य ऐश्वर्य देते हुए (अभि, ऊतिभिः) सब ओर से प्रवृत्त रक्षादि क्रियाओं से (नः) हमारे (सखीनाम्) मित्रों और (जरितॄणाम्) सत्य स्तुति करने वालों के (अविता) रक्षा करने वाले (सु, भवासि) सुन्दर प्रकार हूजिये इस से आप हम से सत्कार करने योग्य हैं ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो रागद्वेष रहित किन्हीं से वैरभाव न रखने अर्थात् सब से मित्रता रखने वाले सब मित्र मनुष्यों को असंख्य ऐश्वर्य और अधिकतर विज्ञान देके सब ओर से रक्षा करता है उसी परमेश्वर की नित्य सेवा किया करो ॥६॥

कया त्वमित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। इन्द्रो देवता। वर्द्धमाना गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कया त्वं न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन्। कया स्तोतृभ्य आ भर ॥७॥

पदार्थः—हे (वृषन्) सब ओर से सुखों को वर्षाने वाले ईश्वर (त्वम्) आप (कया) किस (ऊत्या) रक्षण आदि क्रिया से (नः) हम को (अभि, प्र, मन्दसे) सब ओर से आनन्दित करते और (कया) किस रीति से (स्तोतृभ्यः) आपकी प्रशंसा करने वाले मनुष्यों के लिये सुख को (आ, भर) अच्छे प्रकार धारण कीजिये ॥७॥

भावार्थः—हे भगवन् परमात्मन् ! जिस युक्ति से आप धर्मात्माओं को आनन्दित करते उनकी सब ओर से रक्षा करते हैं उस युक्ति को हम को जताइये ॥७॥

इन्द्र इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। इन्द्रो देवता। द्विपाद्विराड् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति। शन्नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥८॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर! जो आप (इन्द्रः) बिजुली के तुल्य (विश्वस्य) संसार के बीच (राजति) प्रकाशमान हैं उन आप की कृपा से (नः) हमारे (द्विपदे) पुत्रादि के लिये (शम्) सुख (अस्तु) होवे और हमारे (चतुष्पदे) गौ आदि के लिये (शम्) सुख होवे॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे जगदीश्वर! जिस से आप सर्वत्र सब ओर से अभिव्याप्त मनुष्य पश्वादि को सुख चाहने वाले हैं इस से सब को उपासना करने योग्य हैं॥८॥

शन्न इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। मित्रादयो लिङ्गोक्ता देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

मनुष्यों को अपने [और] दूसरों के लिये सुख की चाहना करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्य्यमा।
शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे (नः) हमारे लिये (मित्रः) प्राण के तुल्य प्रिय मित्र (शम्) सुखकारी (भवतु) हो (वरुणः) जल के तुल्य शान्ति देने वाला जन (शम्) सुखकारी हो (अर्यमा) पदार्थों के स्वामी वा वैश्यों को मानने वाला न्यायाधीश (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी हो (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् (बृहस्पतिः) महती वेद-रूप वाणी का रक्षक विद्वान् (नः) हमारे लिये (शम्) कल्याणकारी हो और (उरुक्रमः) संसार की रचना में बहुत शीघ्रता करने वाला (विष्णुः) व्यापक ईश्वर (नः) हमारे लिये (शम्) कल्याणकारी होवे वैसे हम लोगों के लिये भी होवे॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जैसे अपने लिये सुख चाहें वैसे दूसरों के लिये भी और जैसे आप सत्सङ्ग करना चाहें वैसे इस में अन्य लोगों को भी प्रेरणा किया करें॥९॥

शन्नो वात इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। वातादयो देवताः। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

शन्नो वातः पवताᳪ शन्नस्तपतु सूर्य्यः ।
शन्नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभि वर्षतु ॥१०॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! वा विद्वान् पुरुष ! जैसे (वातः) पवन (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी (पवताम्) चले (सूर्य्यः) सूर्य्य (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी (तपतु) तपे (कनिक्रदत्) अत्यन्त शब्द करता हुआ (देवः) उत्तम गुण युक्त विद्युत्रूप अग्नि (नः) हमारे लिये (शम्) कल्याणकारी हो और (पर्जन्यः) मेघ हमारे लिये (अभि, वर्षतु) सब ओर से वर्षा करे वैसे हम को शिक्षा कीजिये ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जिस प्रकार से वायु सूर्य्य बिजुली और मेघ सब को सुखकारी हों वैसा अनुष्ठान किया करो ॥१०॥

अहानि शमित्यस्य वध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । लिङ्गोक्ता देवताः । अतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अहानि शं भवन्तु नः शᳪ रात्रीः प्रति धीयताम् ।
शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः ॥११॥

पदार्थः—हे परमेश्वर वा विद्वान् जन ! जैसे (अवोभिः) रक्षा आदि के साथ (शंयोः) सुख की (सुविताय) प्रेरणा के लिये (नः) हमारे अर्थ (अहानि) दिन (शम्) सुखकारी (भवन्तु) हों (रात्रीः) रातें (शम्) कल्याण के (प्रति) प्रति (धीयताम्) हम को धारण करें (इन्द्राग्नी) बिजुली और प्रत्यक्ष अग्नि (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी (भवताम्) होवें (रातहव्या) ग्रहण करने योग्य सुख जिन से प्राप्त हुआ वे (इन्द्रावरुणा) विद्युत् और जल (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी हों (वाजसातौ) अन्नों के सेवन के हेतु संग्राम में (इन्द्रापूषणा) विद्युत् और पृथिवी (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी होवें और (इन्द्रासोमा) बिजुली और ओषधियां (शम्) सुखकारिणी हों वैसे हम को आप अनुकूल शिक्षा करें ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो ईश्वर और आप्त सत्यवादी विद्वान् लोगों की शिक्षा में आप लोग प्रवृत्त रहो तो दिन रात तुम्हारे भूमि आदि सब पदार्थ सुखकारी होवें ॥११॥

शन्नो देवीरित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। आपो देवताः। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

कैसे मनुष्य सुखों से युक्त होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

शन्नो॑ दे॒वीर॒भिष्ट॑य॒ आपो॑ भवन्तु पी॒तये॑। शंयोर॒भि स्र॑वन्तु नः॥१२॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा विद्वन्! जैसे (अभिष्टये) इष्ट सुख की सिद्धि के लिये (पीतये) पीने के अर्थ (देवीः) दिव्य उत्तम (आपः) जल (नः) हम को (शम्) सुखकारी (भवन्तु) होवें (नः) हमारे लिये (शंयोः) सुख की वृष्टि (अभि, स्रवन्तु) सब ओर से करें वैसे उपदेश करो॥१२॥

भावार्थः—जो मनुष्य यज्ञादि से जलादि पदार्थों को शुद्ध सेवन करते हैं उन पर सुखरूप अमृत की वर्षा निरन्तर होती है॥१२॥

स्योनेत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। पृथिवी देवता। पिपीलिका मध्या निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पतिव्रता स्त्री कैसी हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स्यो॒ना पृ॑थिवि नो भवानृक्ष॒रा नि॒वेश॑नी।
यच्छा॑ न॒ः शर्म॑ स॒प्रथा॑ः॥१३॥

पदार्थः—हे पृथिवी के तुल्य वर्त्तमान क्षमाशील स्त्री! जैसे (अनृक्षरा) कांटे गढ़े आदि से रहित (निवेशनी) नित्य स्थिर पदार्थों को स्थापन करनेहारी (पृथिवी) भूमि (नः) हमारे लिये होती है वैसे तू हो। वह पृथिवी (सप्रथाः) विस्तार के साथ वर्त्तमान (नः) हमारे लिये (शर्म) स्थान देवे वैसे (स्योना) सुख करनेहारी तू (नः) हमारे लिये घर के सुख को (यच्छ) दे॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सब प्राणियों को सुख ऐश्वर्य देने वाली पृथिवी वर्त्तमान है वैसे ही विदुषी पतिव्रता स्त्री पति आदि को आनन्द देने वाली होती है॥१३॥

आप इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। आपो देवताः। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आपो॒ हि ष्ठा म॑यो॒भुव॒स्ता न॑ ऊ॒र्जे द॑धातन। म॒हे रणा॑य॒ चक्ष॑से॥१४॥

पदार्थः—हे (आपः) जलों के तुल्य शान्तिशील विदुषी श्रेष्ठ स्त्रियो! जैसे (मयोभुवः) सुख उत्पन्न करनेहारे जल (हि) जिस कारण (नः) हम को (महे) बड़े

(रणाय, चक्षसे) प्रसिद्ध संग्राम के लिये वा (ऊर्जे) बल पराक्रम के अर्थ धारण वा पोषण करें वैसे इन को तुम लोग धारण करो और प्यारी (स्थ) होओ ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे श्रेष्ठ पतिव्रता स्त्रियां सब ओर से सब को सुखी करतीं वैसे जलादि पदार्थ सब को सुखकारी होते हैं ऐसा जानो ॥१४॥

यो व इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। आपो देवताः। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः॥१५॥

पदार्थः—हे श्रेष्ठ स्त्रियो! (यः) जो (वः) तुम्हारा (शिवतमः) अतिशय कल्याणकारी (रसः) आनन्दवर्द्धक स्नेहरूप रस है (तस्य) उस का (इह) इस जगत् में (नः) हमको (उशतीरिव, मातरः) पुत्रों की कामना करनेवाली माताओं के तुल्य (भाजयत) सेवा कराओ ॥१५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो होम आदि से जल शुद्ध किये जावें तो ये माता जैसे सन्तानों वा पतिव्रता स्त्रियां अपने पतियों को सुखी करती हैं वैसे सब प्राणियों को सुखी करते हैं ॥१५॥

तस्मा इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। आपो देवताः। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तस्मा अरंगमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च नः॥१६॥

पदार्थः—हे स्त्रियो! जैसे तुम लोग (नः) हम को (आपः) जलों के तुल्य शान्त (जनयथ) प्रकट करो वैसे (वः) तुम को हम लोग शान्त प्रकट करें (च) और तुम लोग (यस्य) जिस पति के (क्षयाय) निवास के लिये (जिन्वथ) उस को तृप्त करो (तस्मै) उस के लिये हम लोग (अरम्) पूर्ण सामर्थ्य युक्त (गमाम) प्राप्त होवें ॥१६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। स्त्री पुरुषों को योग्य है कि परस्पर आनन्द के लिये जल के तुल्य सरलता से वर्त्तें और शुभ आचरणों के साथ परस्पर सुशोभित ही रहें ॥१६॥

द्यौरित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। ईश्वरो देवता। भुरिक्शक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्यों को कैसे प्रयत्न करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी
शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः ।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ
शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥१७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (शान्तिः, द्यौः) प्रकाशयुक्त पदार्थ शान्तिकारक (अन्तरिक्षम्) दोनों लोक के बीच का आकाश (शान्तिः) शान्तिकारी (पृथिवी) भूमि (शान्तिः) सुखकारी निरुपद्रव (आपः) जल वा प्राण (शान्तिः) शान्तिदायी (ओषधयः) सोमलता आदि ओषधियां (शान्तिः) सुखदायी (वनस्पतयः) वट आदि वनस्पति (शान्तिः) शान्तिकारक (विश्वे, देवाः) सब विद्वान् लोग (शान्तिः) उपद्रवनिवारक (ब्रह्म) परमेश्वर वा वेद (शान्तिः) सुखदायी (सर्वम्) सम्पूर्ण वस्तु (शान्तिरेव) शान्ति ही (शान्तिः) शान्ति (मा) मुझ को (एधि) प्राप्त होवें (सा) वह (शान्तिः) शान्ति तुम लोगों के लिये भी प्राप्त होवे ॥१७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे प्रकाश आदि पदार्थ शान्ति करने वाले होवें वैसे तुम लोग प्रयत्न करो ॥१७॥

दृते इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । ईश्वरो देवता । भुरिग् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब कौन मनुष्य धर्मात्मा हो सकते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्
मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥१८॥

पदार्थः—हे (दृते) अविद्यारूपी अन्धकार के निवारक जगदीश्वर वा विद्वन् ! जिस से (सर्वाणि) सब (भूतानि) प्राणी (मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा) दृष्टि से (मा) मुझ को (सम, ईक्षन्ताम्) सम्यक् देखें (अहम्) मैं (मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा) दृष्टि से (सर्वाणि, भूतानि) सब प्राणियों को (समीक्षे) सम्यक् देखूं इस प्रकार सब हम लोग परस्पर (मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा) दृष्टि से (समीक्षामहे) देखें इस विषय में हम को (दृंह) दृढ़ कीजिये ॥१८॥

भावार्थः—वे ही धर्मात्मा जन हैं जो अपने आत्मा के सदृश सम्पूर्ण

प्राणियों को मानें किसी से भी द्वेष न करें और मित्र के सदृश सब का सदा सत्कार करें ॥१८॥

दृते दृ॑ᳬहमेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । ईश्वरो देवता । पादनिचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

दृते दृᳬह॑ मा ज्योक्ते॑ सं॒दृशि॑ जीव्या॒सं॒ ।
ज्योक्ते॑ सं॒दृशि॑ जीव्यासम् ॥१९॥

पदार्थः—हे (दृते) समग्र मोह के आवरण का नाश करनेहारे उपदेशक विद्वन् वा परमेश्वर ! जिस से हम (ते) आप के (संदृशि) सम्यक् देखने या ज्ञान में (ज्योक्) निरन्तर (जीव्यासम्) जीवें (ते) आप के (संदृशि) समान दृष्टि विषय में (ज्योक्) निरन्तर (जीव्यासम्) जीवन व्यतीत करें उस जीवन विषय में (मा) मुझ को (दृंह) दृढ़ कीजिये ॥१९॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि ईश्वर की आज्ञा पालने और युक्त आहार विहार से सौ वर्ष तक जीवन का उपाय करें ॥१९॥

नमस्ते हरस इत्यस्य लोपामुद्रा ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिग् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब ईश्वर की उपासना-विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नम॑स्ते॒ हर॑से शो॒चिषे॒ नम॑स्तेऽअस्त्व॒र्चिषे॑ ।
अ॒न्याँस्ते॑ऽअ॒स्मत्त॑पन्तु हे॒तयः॑ पाव॒को॑ऽअ॒स्मभ्य॑ᳬशि॒वो भ॑व ॥२०॥

पदार्थः—हे भगवन् ईश्वर ! (हरसे) पाप हरने वाले (शोचिषे) प्रकाशक (ते) आप के लिये (नमः) नमस्कार तथा (अर्चिषे) स्तुति के योग्य (ते) आप के लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) प्राप्त होवे (ते) आपकी (हेतयः) वज्र के तुल्य अमिट व्यवस्था (अस्मत्) हम से (अन्यान्) भिन्न अन्यायी शत्रुओं को (तपन्तु) दुःख देवें आप (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (पावकः) पवित्रकर्त्ता (शिवः) कल्याणकारी (भव) हूजिये ॥२०॥

भावार्थः—हे परमेश्वर ! हम लोग आप के शुभ गुण कर्म स्वभावों के तुल्य अपने गुण कर्म स्वभाव करने के लिये आप को नमस्कार करते हैं और यह निश्चित जानते हैं कि अधर्मियों को आप की शिक्षा पीड़ा और धर्मात्माओं को आनन्दित करती है । इस लिये मङ्गलस्वरूप आप की ही हम लोग उपासना करते हैं ॥२०॥

नमस्त इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । ईश्वरो देवता । अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

नम॑स्ते अस्तु वि॒द्युते॒ नम॑स्ते स्तनयि॒त्नवे॑ ।

नमस्ते भगवन्नस्तु य॒तः स्व॒: स॒मीह॑से ॥२१॥

पदार्थः—हे (भगवन्) अत्यन्त ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर ! (यतः) जिस कारण आप हमारे लिये (स्वः) सुख देने के अर्थ (समीहसे) सम्यक् चेष्टा करते हैं इस से (विद्युते) विजुली के समान अभिव्याप्त (ते) आप के लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो (स्तनयित्नवे) अधिकतर गर्जने वाले विद्युत् के तुल्य दुष्टों को भय देने वाले (ते) आप के लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो और सब की सब प्रकार रक्षा करने हारे (ते) तेरे लिये (नमः) निरन्तर नमस्कार करें ॥२१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जिस कारण ईश्वर हमारे लिये सदा आनन्द के अर्थ सब साधन-उपसाधनों को देता है इस से हम को सेवा करने योग्य है ॥२१॥

यतो यत इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । ईश्वरो देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यतो॑यतः स॒मीह॑से ततो॑ नो॒ अभ॑यं कुरु ।

शं न॑: कुरु प्र॒जाभ्यो॒ऽभ॑यं नः प॒शुभ्य॑: ॥२२॥

पदार्थः—हे भगवन् ईश्वर ! आप अपने कृपाकटाक्ष से (यतोयतः) जिस जिस स्थान से (समीहसे) सम्यक् चेष्टा करते हो (ततः) उस उस से (नः) हम को (अभयम्) भयरहित (कुरु) कीजिये (नः) हमारी (प्रजाभ्यः) प्रजाओं से और (नः) हमारे (पशुभ्यः) गौ आदि पशुओं से (शम्) सुख और (अभयम्) निर्भय (कुरु) कीजिये ॥२२॥

भावार्थः—हे परमेश्वर ! आप जिस कारण सब में अभिव्याप्त हैं इस से हम को और दूसरों को सब कालों और सब देशों में सब प्राणियों से निर्भय कीजिये ॥२२॥

सुमित्रियेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । सोमो देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

कैसे पदार्थ हितकारी होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु ।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥२३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो ये (आपः) प्राण वा जल (ओषधयः) जो आदि ओषधियां (नः) हमारे लिये (सुमित्रियाः) सुन्दर मित्र के समान वर्त्तमान (सन्तु) होवें वे ही (यः) जो अधर्मी (अस्मान्) हम धर्मात्माओं से (द्वेष्टि) द्वेष करें (च) और (यम्) जिससे (वयम्) हम लोग (द्विष्मः) द्वेष करें (तस्मै) उस के लिये (दुर्मित्रियाः) शत्रु के तुल्य विरुद्ध (सन्तु) होवें ॥२३॥

भावार्थः—जैसे अनुकूलता से जीते हुए इन्द्रिय मित्र के तुल्य हितकारी होते वैसे जलादि पदार्थ भी देशकाल के अनुकूल यथोचित सेवन किये हितकारी और विरुद्ध सेवन किये शत्रु के तुल्य दुःखदायी होते हैं ॥२३॥

तच्चक्षुरित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । सूर्यो देवता । भुरिग् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ईश्वर की प्रार्थना का विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम
शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम
शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥२४॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! आप जो (देवहितम्) विद्वानों के लिये हितकारी (शुक्रम्) शुद्ध (चक्षुः) नेत्र के तुल्य सब के दिखाने वाले (पुरस्तात्) पूर्वकाल अर्थात् अनादि काल से (उत्, चरत्) उत्कृष्टता के साथ सब के ज्ञाता हैं (तत्) उस चेतन ब्रह्म आप को (शतम्, शरदः) सौ वर्ष तक (पश्येम) देखें (शतम् शरदः) सौ वर्ष तक (जीवेम) प्राणों को धारण करें जीवें (शतम्, शरदः) सौ वर्ष पर्य्यन्त (शृणुयाम) शास्त्रों वा मंगल वचनों को सुनें (शतम, शरदः) सौ वर्ष पर्य्यन्त (प्रब्रवाम) पढ़ावें वा उपदेश करें (शतम्, शरदः) सौ वर्ष पर्य्यन्त (अदीनाः) दीनता रहित (स्याम) हों (च) और (शतात्, शरदः) सौ वर्ष से (भूयः) अधिक भी देखें जीवें सुनें पढ़ें उपदेश करें और अदीन रहें ॥२४॥

भावार्थः—हे परमेश्वर ! आप की कृपा और आप के विज्ञान से आप की रचना को देखते हुए आप के साथ युक्त नीरोग और सावधान हुए

हम लोग समस्त इन्द्रियों से युक्त सौ वर्ष से भी अधिक जीवें सत्य शास्त्रों और आप के गुणों को सुनें वेदादि को पढ़ावें सत्य का उपदेश करें कभी किसी वस्तु के विना पराधीन न हों सदैव स्वतन्त्र हुए निरन्तर आनन्द भोगें और दूसरों को आनन्दित करें ॥२४॥

इस अध्याय में परमेश्वर की प्रार्थना, सब के सुख का भान, आपस में मित्रता करने की आवश्यकता, दिनचर्य्या का शोधन, धर्म का लक्षण, अवस्था का वढ़ाना और परमेश्वर का जानना कहा है इस से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ संगति है ऐसा जानना चाहिये ॥

यह छत्तीसवां अध्याय समाप्तहुआ ॥

---

* ओ३म् *

अथ सप्तत्रिंशाध्यायारम्भः

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥

देवेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । सविता देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब सैंतीसवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है इस के पहिले मन्त्र में मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहा है ॥

दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् । आ द॑दे॒ नारि॑रसि ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जिस कारण आप (नारिः) नायक (असि) हैं इस से (सवितुः) जगत् के उत्पादक (देवस्य) समस्त सुख के दाता (प्रसवे) उत्पन्न हुए जगत् में (अश्विनोः) अध्यापक और उपदेशक के (बाहुभ्याम्) बल पराक्रम से (पूष्णः) पुष्टिकर्त्ता जन के (हस्ताभ्याम्) हाथों से (त्वा) आप को (आ, ददे) अच्छे प्रकार ग्रहण करता हूं ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग उत्तम विद्वानों को प्राप्त होके उन से विद्या शिक्षा ग्रहण कर इस सृष्टि में नायक हो ॥१॥

युञ्जत इत्यस्य श्यावाश्वः ऋषिः । सविता देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब योगाभ्यास का विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

युञ्जते मनं उत युंञ्जते धियो विप्रा विप्रंस्य बृहतो विंपश्चितंः ।
वि होत्रां दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्यं सवितुः परिंष्टुतिः ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (वयुनावित्) उत्कृष्ट ज्ञानों में प्रवीण (एकः) अद्वितीय जगदीश्वर सब को (वि, दधे) रचता जिस (सवितुः) सर्वान्तर्यामी (देवस्य) समग्र जगत के प्रकाशक ईश्वर की यह (मही) बड़ी (परिष्टुतिः) सब ओर से स्तुति प्रशंसा है (होत्राः) शुभगुणग्रहीता (विप्राः) अनेक प्रकार की बुद्धियों में व्याप्त बुद्धिमान् योगीजन जिस (बृहतः) सब से बड़े (विपश्चितः) अनन्त विद्यावाले (विप्रस्य) विशेष कर सर्वत्र व्याप्त परमेश्वर के बीच (मनः) संकल्प विकल्प रूप मन को (युञ्जते) समाहित करते (उत) और (धियः) बुद्धि वा कर्मों को (युञ्जते) युक्त करते हैं (इत्) उसी की तुम लोग उपासना किया करो ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो योगीजनों को ध्यान करने योग्य जिस की प्रशंसा के हेतु सूर्य्य आदि दृष्टान्त वर्त्तमान हैं जो सर्वज्ञ असहायी सच्चिदानन्दस्वरूप है जिसके लिये सब धन्यवाद देने योग्य हैं उसी को इष्टदेव तुम लोग मानो ॥२॥

देवीत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । द्यावापृथिव्यौ देवते । ब्राह्मी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब यज्ञ विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवीं द्यावापृथिवी मखस्यं वामद्य शिरों राध्यासं देवयजंने पृथिव्याः ।
मखायं त्वा मखस्यं त्वा शीर्ष्णे ॥३॥

पदार्थः—(देवी) उत्तम गुणों से युक्त (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि के तुल्य वर्तमान अध्यापिका और उपदेशिका स्त्रियो ! (अद्य) इस समय (पृथिव्याः)

पृथिवी के बीच (देवयजने) विद्वानों के यज्ञस्थल में (वाम्)तुम दोनों के (मखस्य) यज्ञ के (शिरः) उत्तम अवयव को मैं (राध्यासम्) सम्यक् सिद्ध करूं (मखस्य) यज्ञ के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव की सिद्धि के लिये (त्वा) तुझ को और (मखाय) यज्ञ के लिये (त्वा) तुझ को सम्यक् सिद्ध करूं ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! इस जगत् में जैसे सूर्य्य भूमि उत्तम अवयव के तुल्य वर्त्तमान हैं वैसे आप लोग सब से उत्तम वर्त्तो जिस से सब सङ्गतियों का आश्रय यज्ञ पूर्ण होवे ॥३॥

देव्य इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। यज्ञो देवता। निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अब विदुषी स्त्री कैसी होवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देव्यो वम्रयो भूतस्य प्रथमजा मखस्य वोऽद्य
शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥४॥

पदार्थः—हे (प्रथमजाः) पहिले से हुई (वम्रयः) थोड़ी अवस्था वाली (देव्यः) तेजस्विनी विदुषी स्त्रियो ! (भूतस्य) उत्पन्न सिद्ध हुए (मखस्य) यज्ञ की सबन्धिनी (पृथिव्याः) पृथिवी के (देवयजने) उस स्थान में जहां विद्वान् लोग संगति करते हैं (अद्य) आज (वः) तुम लोगों को (शिरः) शिर के तुल्य में (राध्यासम्) सम्यक् सिद्ध किया करूं (मखस्य) यज्ञ का निर्माण करने वाली (त्वा) तुझ को और (मखाय, शीर्ष्णे) शिर के तुल्य वर्त्तमान यज्ञ के लिये (त्वा) तुझ को सम्यक् उद्यत वा सिद्ध करूं ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जब तक स्त्रियां विदुषी नहीं होतीं तब तक उत्तम शिक्षा भी नहीं बढ़ती है ॥४॥

इयतीत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। यज्ञो देवता। स्वराड् ब्राह्मी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब अध्यापक विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इयत्यग्रऽआसीन्मखस्य तेऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! मैं (अग्रे) पहिले (मखाय) सत्कार रूप यज्ञ के लिये

(त्वा) तुझ को (मखस्य) संगतिकरण की (शीर्ष्णे) उत्तमता के लिये (त्वा) तुझ को (राध्यासम्) सिद्ध करूं जिस (ते) आप के (मखस्य) यज्ञ का (शिरः) उत्तम गुण (आसीत्) है उस आप को (अद्य) आज (पृथिव्याः) भूमि के बीच (इयति) इतने (देवयजने) विद्वानों के पूजने में सम्यक् सिद्ध होऊं ॥५॥

भावार्थः—वे ही अध्यापक श्रेष्ठ हैं जो पृथिवी के बीच सब को उत्तम शिक्षा और विद्या से युक्त करने को समर्थ हैं ॥५॥

इन्द्रस्येत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। यज्ञो देवता। भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्र॑स्यौज॑ः स्थ म॒खस्य॑ वो॒ऽद्य शिरो॑ राध्यासं देव॒यज॑ने पृथि॒व्याः। म॒खाय॑ त्वा म॒खस्य॑ त्वा शी॒र्ष्णे। म॒खाय॑ त्वा म॒खस्य॑ त्वा शी॒र्ष्णे। म॒खाय॑ त्वा म॒खस्य॑ त्वा शी॒र्ष्णे ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे मैं (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य्ययुक्त पुरुष के (ओजः) पराक्रम को (राध्यासम्) सिद्ध करूं वैसे (अद्य) आज (पृथिव्याः) भूमि के (देवयजने) उस स्थान में जहां विद्वानों का पूजन होता हो (शिरः) उत्तम अवयव के समान (वः) तुम लोगों को सिद्ध करूं (शीर्ष्णे) शिर सम्बन्धी (मखाय) धर्मात्माओं के सत्कार के निमित्त वचन के लिये (त्वा) तुझ को (मखस्य) प्रिय आचरणरूप व्यवहार के सम्बन्धी (त्वा) आप को सिद्ध करूं (शीर्ष्णे) उत्तम गुणों के प्रचारक (मखाय) शिल्पयज्ञ के विधान के लिये (त्वा) आप को (मखस्य) सत्याचरण रूप व्यवहार के सम्बन्धी (त्वा) आप को सिद्ध करूं (शीर्ष्णे) उत्तम (मखाय) विज्ञान की प्रकटता के लिये (त्वा) आप को और (मखस्य) विद्या को बढ़ाने हारे व्यवहार के सम्बन्धी (त्वा) आप को सिद्ध करूं। वैसे तुम लोग भी पराक्रमी (स्थ) होओ ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य धर्मयुक्त कार्यों को करते हैं वे सब के शिरोमणि होते हैं ॥६॥

प्रैत्वित्यस्य कण्व ऋषिः। ईश्वरो देवता। निचृदुष्णिक्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

स्त्री पुरुष कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रैतु॒ ब्रह्म॑ण॒स्पति॒ः प्र दे॒व्ये॑तु सू॒नृता॑।
अच्छा॑ वी॒रन्नर्यं॑ प॒ङ्क्तिरा॑धसन्दे॒वा य॒ज्ञन्न॑यन्तु नः।

मखायं त्वा मखस्यं त्वा शीर्ष्णे । मखायं त्वा मखस्यं त्वा शीर्ष्णे ।
मखायं त्वा मखस्यं त्वा शीर्ष्णे ॥७॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जिस (वीरम्) सब दुःखों को हटाने वाले (नर्य्यम्) मनुष्यों में उत्तम (पङ्क्तिराधसम्) समुदायों को सिद्ध करने वाले (यज्ञम्) सुख प्राप्ति के हेतु जन को (देवाः) विद्वान् लोग (नः) हम को (नयन्तु) प्राप्त करें (ब्रह्मणः, पतिः) धन का रक्षक जन (प्र, एतु) प्रकर्षता से प्राप्त हो (सूनृता) सत्य बोलना आदि सुशीलता वाली (देवी) विदुषी स्त्री (अच्छ) (प्र, एतु) अच्छे प्रकार प्राप्त होवे उस (त्वा) तुझ को (मखाय) विद्यावृद्धि के लिये (मखस्य) सुख रक्षा के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) आप को (मखाय) धर्माचरण निमित्त के लिये (त्वा) आप के (मखस्य) धर्मरक्षा के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) आप को (मखाय) सब सुख करने वाले के लिये (त्वा) आप को (मखस्य) सब सुख बढ़ाने वाले के सम्बन्धी (शीर्ष्णे) उत्तम सुखदायी जन के लिये (त्वा) आप का आश्रय करें ॥७॥

भावार्थः—जो मनुष्य और जो स्त्रियां स्वयं विद्यादि गुणों को पाकर अन्यों को प्राप्त कराके विद्या सुख और धर्म की वृद्धि के लिये अधिक सुशिक्षित जनों को विद्वान् करते हैं वे पुरुष और स्त्रियां निरन्तर आनन्दित होते हैं ॥७॥

मखस्येत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराडतिधृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

मनुष्य लोग विद्वान् के साथ कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

मखस्य शिरोंसि मखायं त्वा मखस्यं त्वा शीर्ष्णे ।
मखस्य शिरोंसि मखायं त्वा मखस्यं त्वा शीर्ष्णे ।
मखस्यं शिरोंसि मखायं त्वा मखस्यं त्वा शीर्ष्णे ।
मखायं त्वा मखस्यं त्वा शीर्ष्णे । मखायं त्वा मखस्यं त्वा शीर्ष्णे ।
मखायं त्वा मखस्यं त्वा शीर्ष्णे ॥८॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जिस कारण आप (मखस्य) ब्रह्मचर्य्य आश्रम रूप यज्ञ के (शिरः) शिर के तुल्य (असि) हैं इस से (मखाय) विद्याग्रहण के अनुष्ठान के लिये (त्वा) आप को (मखस्य) ज्ञान सम्बन्धी (शीर्ष्णे) उत्तम व्यवहार के लिये

(त्वा) आप को जिस कारण आप (मखस्य) विचार रूप यज्ञ के (शिरः) उत्तम अवयव के समान (असि) हैं इस से (मखाय) गृहस्थों के व्यवहार के लिये (त्वा) आप को (मखस्य) यज्ञ के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) आप को जिस कारण आप (मखस्य) गृहाश्रम के (शिरः) उत्तम अवयव के समान (असि) हैं इस से (मखाय) गृहस्थों के कार्य्यों को संगत करने के लिये (त्वा) आप को (मखस्य) यज्ञ के (शीर्ष्णे) उत्तम शिर के समान अवयव के लिये (त्वा) आप को सेवन करें। इस से (मखाय) उत्तम व्यवहार की सिद्धि के लिये (त्वा) आप को (मखस्य) सत् व्यवहार की सिद्धि सम्बन्धी (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के तुल्य वर्त्तमान होने के लिये (त्वा) आप को (मखाय) योगाभ्यास के लिये (त्वा) आप को (मखस्य) साङ्गोपाङ्ग योग के (शीर्ष्णे) सर्वोपरि वर्त्तमान विषय के लिये (त्वा) आप को (मखाय) ऐश्वर्य देने वाले के लिये (त्वा) आप को (मखस्य) ऐश्वर्य देने वाले के (शीर्ष्णे) सर्वोत्तम कार्य के लिये (त्वा) आप को हम लोग सेवन करें ॥८॥

भावार्थः—जो लोग सत्कार करने में उत्तम हैं वे दूसरों को भी सत्कारी बना के मस्तक के तुल्य उत्तम अवयवों वाले हों ॥८॥

अश्वस्येत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। विद्वान् देवता। पूर्वस्योत्तरस्य च अतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

कौन मनुष्य सुखी होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।
अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।
अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्य! जैसे मैं (पृथिव्याः) अन्तरिक्ष के (देवयजने) विद्वानों के यज्ञस्थल में (वृष्णः) बलवान् (अश्वस्य) अग्नि आदि के (शक्ना) दुर्गन्ध के निवारण में समर्थ धूम आदि से (त्वा) तुझ को (मखाय) वायु की शुद्धि करने के लिये (त्वा) तुझ को (मखस्य) शोधक पुरुष के (शीर्ष्णे) शिर रोग की निवृत्ति के

अर्थ (त्वा) तुझ को (धूपयामि) सम्यक् तपाता हूं। (पृथिव्याः) पृथिवी के बीच विद्वानों के (देवयजने) यज्ञस्थल में (वृष्णः) वेगवान् (अश्वस्य) घोड़े की (शक्ना) लेंडी लीद से (त्वा) तुझ को (मखाय) पृथिव्यादि के ज्ञान के लिये (त्वा) तुझ को (मखस्य) तत्त्वबोध के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) तुझ को (मखाय) यज्ञसिद्धि के लिये (त्वा) तुझ को (मखस्य) यज्ञ के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव की सिद्धि के लिये (त्वा) तुझ को (धूपयामि) सम्यक् तपाता हूं (पृथिव्याः) भूमि के बीच (देवयजने) विद्वानों की पूजास्थल में (वृष्णः) बलवान् (अश्वस्य) शीघ्रगामी अग्नि के (शक्ना) तेज आदि से (त्वा) आप को (मखाय) उपयोग के लिये (त्वा) तुझ को (मखस्य) उपयुक्त कार्य के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) तुझ को (मखाय) यश के लिये (त्वा) तुझ को (मखस्य) यज्ञ के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) तुझ को (मखाय) यज्ञ के लिये (त्वा) आप को और (मखस्य) यज्ञ के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) तुझ को (धूपयामि) सम्यक् तपाता हूं ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पुनरुक्ति अधिकता जताने के अर्थ है। जो मनुष्य रोगादि क्लेश की निवृत्ति के लिये अग्नि आदि पदार्थों का सम्प्रयोग करते हैं वे सुखी होते हैं ॥९॥

ऋजव इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। विद्वांसो देवताः। स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

कौन बड़े राज्य को प्राप्त होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऋजवे॑ त्वा सा॒धवे॑ त्वा सुक्षि॒त्यै त्वा॑। म॒खाय॑ त्वा म॒खस्य॑ त्वा शी॒र्ष्णे। म॒खाय॑ त्वा म॒खस्य॑ त्वा शी॒र्ष्णे। म॒खाय॑ त्वा म॒खस्य॑ त्वा शी॒र्ष्णे ॥१०॥

पदार्थ—हे विद्वन्! (ऋजवे) सरल स्वभाव वाले (त्वा) आप को (मखाय) विद्वानों के सत्कार के लिये (त्वा) आप को (मखस्य) यज्ञ के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) आप को (साधवे) परोपकार को सिद्ध करनेवाले के लिये (त्वा) आप को (मखाय) यज्ञ के लिये (त्वा) आप को (मखस्य) यज्ञ के (शीर्ष्णे) शिर के लिये (त्वा) आप को (सुक्षित्यै) उत्तम भूमि के लिये (त्वा) आप को (मखाय) यज्ञ के लिये (त्वा) आप को (मखस्य) यज्ञ के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) आप को हम लोग स्थापित करते हैं ॥१०॥

भावार्थः—जो लोग विनय और सीधेपन से युक्त प्रयत्न के साथ सर्वोपकार रूप यज्ञ को सिद्ध करते हैं वे बड़े राज्य को प्राप्त होते हैं ॥१०॥

यमायेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। सविता देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब सज्जन कैसे होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यमाय त्वा मखाय त्वा सूर्य्यस्य त्वा तपसे ।
देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु पृथिव्याः सꣳस्पृशस्पाहि ।
अर्चिरसि शोचिरसि तपोऽसि ॥११॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! (सविता) ऐश्वर्य्यकर्त्ता (देवः) दानशील पुरुष (मखाय) न्याय के अनुष्ठान के लिये (यमाय) नियम के अर्थ (त्वा) आप को (सूर्यस्य) प्रेरक ईश्वर-सम्बन्धी (तपसे) धर्म के अनुष्ठान के लिये (त्वा) आप को ग्रहण करे (पृथिव्याः) भूमि-सम्बन्धी (त्वा) आप को (मध्वा) मधुरता से (अनक्तु) संयुक्त करे सो आप (संस्पृशः) सम्यक् स्पर्श से (पाहि) रक्षा कीजिये जिस कारण आप (अर्चिः) तेजस्वी (असि) हैं (शोचिः) अग्नि की लपट के तुल्य पवित्र (असि) हैं और (तपः) धर्म में श्रम करने-हारे (असि) हैं इस से (त्वा) आप का सत्कार करें ॥११॥

भावार्थः—जो लोग यथार्थ व्यवहार से प्रकाशित कीर्ति वाले होते हैं वे दुःख के स्पर्श से अलग होकर तेजस्वी होते हैं और दुष्टों को दुःख देकर श्रेष्ठों को सुखी करते हैं ॥११॥

अनाधृष्टेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । पृथिवी देवता । स्वराडुत्कृतिश्छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अनाधृष्टा पुरस्तादग्नेराधिपत्य आयुर्मे दाः ।
पुत्रवती दक्षिणत इन्द्रस्याऽधिपत्ये प्रजां मे दाः ।
सुषदा पश्चाद्देवस्य सवितुराधिपत्ये चक्षुर्मे दाः ।
आश्रुतिरुत्तरतो धातुराधिपत्ये रायस्पोषं मे दाः ।
विधृतिरुपरिष्टाद्बृहस्पतेराधिपत्य ओजो मे दाः ।
विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्पाहि मनोरश्वासि ॥१२॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! तू (अनाधृष्टा) दूसरों से नहीं धमकाई हुई (पुरस्तात्) पूर्वदेश से (अग्नेः) अग्नि के (आधिपत्ये) स्वामीपन में (मे) मेरे लिये (आयुः) जीवन के हेतु अन्न को (दाः) दे (पुत्रवती) प्रशंसित पुत्रों वाली हुई (दक्षिणतः) दक्षिण देश से (इन्द्रस्य) बिजुली वा सूर्य्य के (आधिपत्ये) स्वामीपन में (मे) मेरे लिये (प्रजाम्)

प्रजा सन्तान (दाः) दीजिये (सुषदा) जिस के सम्बन्ध में सुन्दर प्रकार स्थित हो ऐसी हुई (पश्चात्) पश्चिम से (देवस्य) प्रकाशमान (सवितुः) सूर्य्यमण्डल के (आधिपत्ये) स्वामीपन में (मे) मेरे लिये (चक्षुः) नेत्र दीजिये (आश्रुतिः) अच्छे प्रकार जिस का सुनना हो ऐसी हुई तू (उत्तरतः) उत्तर से (धातुः) धारणकर्त्ता वायु के (आधिपत्ये) मालिकपन में (मे) मेरे लिये (रायः) धन की (पोषम्) पुष्टि को (दाः) दे (विधृतिः) अनेक प्रकार की धारणाओं वाली हुई (उपरिष्टात्) ऊपर से (बृहस्पतेः) बड़े बड़े पदार्थों के रक्षक सूत्रात्मा वायु के (आधिपत्ये) स्वामीपन में (मे) मेरे लिये (ओजः) बल (दाः) दे। जिस कारण (मनोः) मननशील अन्तःकरण की (अश्वा) व्यापिका (असि) है इस से (विश्वाभ्यः) सब (नाष्ट्राभ्यः) नष्टभ्रष्ट स्वभाव वाली व्यभिचारिणियों से (मा) मुझ को (पाहि) रक्षित कर ॥१२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे अग्नि जीवन को, जैसे बिजुली प्रजा को जैसे सूर्य देखने को, धारणकर्त्ता ईश्वर लक्ष्मी और शोभा को और महाशयजन बल को देता है वैसे ही सुलक्षणा पत्नी सब सुखों को देती है उस की तुम रक्षा किया करो ॥१२॥

स्वाहेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। विद्वान् देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स्वाहा मरुद्भिः परि श्रीयस्व दिवः सꣳस्पृशस्पाहि। मधु मधु मधु ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! आप (मरुद्भिः) मनुष्यों के साथ (स्वाहा) सत्क्रिया (मधु) कर्म (मधु) उपासना और (मधु) विज्ञान का (श्रीयस्व) सेवन कीजिये तथा (संस्पृशः) सम्यक् स्पर्श करने वाली (दिवः) प्रकाशरूप बिजुली से हमारी (परि, पाहि) सब ओर से रक्षा कीजिये ॥१३॥

भावार्थः—जो लोग पूर्ण विद्वानों के साथ कर्म उपासना और ज्ञान की विद्या तथा उत्तम क्रिया को ग्रहण कर सेवन करते हैं वे सब ओर से रक्षा को प्राप्त हुए बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥१३॥

गर्भ इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। ईश्वरो देवता। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब ईश्वर की उपासना के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

गर्भो॑ दे॒वानां॑ पि॒ता म॑ती॒नां पतिः॑ प्र॒जाना॑म् ।
सं दे॒वो दे॒वेन॑ सवि॒त्रा ग॑त॒ सꣳसूर्येण रोचते ॥१४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (देवानाम्) विद्वानों वा पृथिवी आदि तेंतीस देवों के (गर्भः) बीच स्थित व्याप्य (मतीनाम्) मननशील बुद्धिमान् मनुष्यों के (पिता) पिता के तुल्य (प्रजानाम्) उत्पन्न हुए पदार्थों का (पतिः) रक्षक स्वामी (देवः) स्वयं प्रकाशस्वरूप परमात्मा (सवित्रा) उत्पत्ति के हेतु (देवेन) (सूर्येण) प्रकाशक विद्वान् के साथ (सम्, रोचते) सम्यक् प्रकाशित होता है उस को तुम लोग (सम्, गत) सम्यक् प्राप्त होओ ॥१४॥

भावार्थः—मनुष्य लोग जो सब का उत्पन्न करने हारा पिता के तुल्य रक्षक प्रकाशक सूर्यादि पदार्थों का भी प्रकाशक सर्वत्र अभिव्याप्त जगदीश्वर है उसी पूर्ण परमात्मा की सदैव उपासना किया करें ॥१४॥

समग्नीत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सम॒ग्निर॒ग्निना॑ गत॒ सं दैवे॑न सवि॒त्रा सꣳसूर्येणारोचिष्ट ।
स्वाहा॒ सम॒ग्निस्तप॑सा गत॒ सं दैव्ये॑न सवि॒त्रा सꣳसूर्येणारूरुचत ॥१५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अग्निना) स्वयं प्रकाश जगदीश्वर से (अग्निः) प्रकाशक अग्नि (दैवेन) ईश्वर ने बनाये (सवित्रा) प्रेरक (सूर्य्येण) सूर्य्य के साथ (सम्) (अरोचिष्ठ) सम्यक् प्रकाशित होता है उस परमात्मा को तुम लोग (स्वाहा) सत्य क्रिया से (सम्, गत) सम्यक् जानो और जो (अग्निः) प्रकाशक ईश्वर (दैव्येन) पृथिवी आदि में हुए (सवित्रा) ऐश्वर्य का कारक (सूर्य्येण) प्रेरक (तपसा) धर्मानुष्ठान से (सम्, अरूरुचत) सम्यक् प्रकाशित होता है उस को तुम लोग (सम्, गत) सम्यक् प्राप्त होओ ॥१५॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्नि के उत्पादक के उत्पादक सूर्य्य के सूर्य परमात्मा को विशेष कर जानें उन के लिये इस लोक परलोक के सुख सम्यक् प्राप्त होते हैं ॥१५॥

धर्त्तेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । ईश्वरो देवता । भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

धर्त्ता दिवो वि भाति तपसस्पृथिव्यां धर्त्ता देवो देवानाममर्त्यस्तपोजाः ।
वाचमस्मे नि यच्छ देवायुवम् ॥१६॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जो (पृथिव्याम्) आकाश में (तपसः) सब को तपाने वाले (दिवः) प्रकाशमय सूर्य्य आदि का (धर्त्ता) धारणकर्त्ता जो (तपोजाः) तप से प्रकट होने वाला (अमर्त्यः) मरणधर्मरहित (देवः) प्रकाशस्वरूप (देवानाम्) पृथिव्यादि तेंतीस देवों का (धर्त्ता) धारणकर्त्ता जगदीश्वर (वि, भाति) विशेषकर प्रकाशित होता है उस के विज्ञान से (अस्मे) हमारे लिये (देवायुवम्) दिव्यगुण वाले पृथिव्यादि वा विद्वानों को संगत करने वाली (वाचम्) वाणी को (नि, यच्छ) निरन्तर दीजिये ॥१६॥

भावार्थः—हे विद्वान् लोगो ! जो परमेश्वर सब का धर्त्ता प्रकाशक तप से विशषकर जानने योग्य है उसको जनाने वाली विद्या को हमारे लिये देओ ॥१६॥

अपश्यमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । ईश्वरो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

ईश्वर के उपासक कैसे होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्त्ति भुवनेष्वन्तः ॥१७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! मैं जिस (पथिभिः) शुद्ध ज्ञान के मार्गों से (आ, चरन्तम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हुए (परा) पर भाग में भी प्राप्त होते हुए (अनिपद्यमानम्) अचल (गोपाम्) रक्षक जगदीश्वर को (अपश्यम्) देखूं (स, च) वह भी (सध्रीचीः) साथ वर्त्तमान दिशाओं (च) और (सः) वह (विषूचीः) व्याप्त उपदिशाओं को (वसानः) आच्छादित करनेवाला हुआ (भुवनेषु) लोक लोकान्तरों के (अन्तः) बीच (आ, वरीवर्त्ति) अच्छे प्रकार सब का आवरण करता वा वर्त्तमान है ॥१७॥

भावार्थः—जो मनुष्य सब लोकों में अभिव्यापी अन्तर्यामी रूप से प्राप्त अधर्मी अविद्वान् और अयोगी लोगों के न जानने योग्य परमात्मा को जानकर अपने आत्मा के साथ युक्त करते हैं वे सब धर्मयुक्त मार्गों को प्राप्त होकर शुद्ध होते हैं ॥१७॥

विश्वासामित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । ईश्वरो देवता । अत्यष्टिश्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

विश्वासां भुवां पते विश्वस्य मनसस्पते

विश्वस्य वचसस्पते सर्वस्य वचसस्पते ।

देवश्रुत्त्वन्देव घर्म देवो देवान् पाह्यत्र प्रावीरनु वान्देववीतये ।

मधु माध्वीभ्यां मधु माधूचीभ्याम् ॥१८॥

पदार्थः—हे (विश्वासाम्) सब (भुवाम्) पृथिवियों के (पते) स्वामिन् (विश्वस्य) सब (मनसः) संकल्प विकल्प आदि वृत्तियुक्त अन्तःकरण के (पते) रक्षक (विश्वस्य) समस्त (वचसः) वेदवाणी के (पते) पालक (सर्वस्य) सम्पूर्ण वचनमात्र के (पते) रक्षक (घर्म) प्रकाशक (देव) सब सुखों के दाता जगदीश्वर ! (देवश्रुत्) विद्वानों को सुनने हारे (देवः) रक्षक हुए (त्वम्) आप (अत्र) इस जगत् में (देवान्) धार्मिक विद्वानों की (पाहि) रक्षा कीजिये (माध्वीभ्याम्) मधुरादि गुणयुक्त विद्या और उत्तम शिक्षा के (मधु) मधुर विज्ञान को (प्र, अवीः) प्रकर्ष के साथ दीजिये (माधूचीभ्याम्) विष को विनाशने वाली मधुविद्या को प्राप्त होने वाले अध्यापक उपदेशकों के साथ (देववीतये) दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये विद्वानों की (अनु) अनुकूल रक्षा कीजिये । इस प्रकार हे अध्यापक उपदेशको ! (वाम्) तुम्हारे लिये मैं उपदेश को करूं ॥१८॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! तुम लोग सब देव आत्मा और मनों के स्वामी सब सुनने वाले सब के रक्षक परमात्मा को जान और उत्तम सुख को प्राप्त होकर दूसरों को सुख प्राप्त कराओ ॥१८॥

हृदे त्वेत्यस्याथर्वण ऋषिः । ईश्वरो देवता । विराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्य्याय त्वा ।

ऊर्ध्वो अध्वरं दिवि देवेषु धेहि ॥१९॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! जिस (हृदे) हृदय की चेतनता के लिये (त्वा) आप को (मनसे) विज्ञानवान् अन्तःकरण होने के अर्थ (त्वा) आप को (दिवे) विद्या के प्रकाश वा विद्युत् विद्या की प्राप्ति के लिये (त्वा) आप को (सूर्याय) सूर्यादि लोकों के ज्ञानार्थ (त्वा) आपका हम लोग ध्यान करें सो (ऊर्ध्वः) सब से उत्कृष्ट आप (दिवि) उत्तम व्यवहार और (देवेषु) विद्वानों में (अध्वरम्) अहिंसामय यज्ञ का (धेहि) प्रचार कीजिये ॥१९॥

भावार्थः—जो मनुष्य सत्यभाव से आत्मा और अन्तःकरण की शुद्धि के लिये और सृष्टिविद्या के अर्थ ईश्वर की उपासना करते हैं उनका वह कृपालु ईश्वर विद्या और धर्म के दान से सब दुःखों से उद्धार करता है ॥१९॥

पिता न इत्यस्याथर्वण ऋषिः । ईश्वरो देवता । निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पिता नोऽसि पिता नो बोधि नमस्तेऽअस्तु मा मा हिꣳसीः ।
त्वष्टृमन्तस्त्वा सपेम पुत्रान् पशून् मयि धेहि
प्रजामस्मासु धेह्यरिष्टाहꣳ सहपत्या भूयासम् ॥२०॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! आप (नः) हमारे (पिता) पिता के समान (असि) हैं (पिता) राजा के तुल्य रक्षक हुए (नः) हम को (बोधि) बोध कराइये (ते) आप के लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे आप (मा) मुझ को (मा, हिंसीः) मत हिंसायुक्त कीजिये (त्वष्टृमन्तः) बहुत स्वच्छ प्रकाशरूप पदार्थों वाले हम (त्वा) आप से (सपेम) सम्बन्ध करें । आप (पुत्रान्) पवित्र गुण कर्म स्वभाव वाले सन्तानों को तथा (पशून्) गौ आदि पशुओं को (मयि) मुझ में (धेहि) धारण कीजिये तथा (अस्मासु) हम में (प्रजाम्) प्रजा को (धेहि) धारण कीजिये जिस से (अहम्) मैं (अरिष्टा) अहिंसित हुई (सहपत्या) पति के साथ (भूयासम्) होऊं ॥२०॥

भावार्थः—हे जगदीश्वर ! आप हमारे पिता स्वामी बन्धु मित्र और रक्षक हैं इससे आपकी हम निरन्तर उपासना करते हैं । हे स्त्रियो ! तुम परमेश्वर ही की उपासना नित्य किया करो जिस से सब सुखों को प्राप्त होओ ॥२०॥

अहः केतुनेत्यस्याथर्वण ऋषिः । ईश्वरो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अहः केतुना जुषताꣳ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा ।
रात्रिः केतुना जुषताꣳ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा ॥२१॥

पदार्थः—हे विद्वन् वा विदुषी स्त्रि ! आप (स्वाहा) सत्य क्रिया से (केतुना) उत्कट ज्ञान वा जागृत अवस्था से और (ज्योतिषा) सूर्यादि वा धर्मादि के प्रकाश से (अहः, सुज्योतिः) दिन और विद्या के प्रकाश को (जुषताम्) सेवन कीजिये (स्वाहा)

सत्य वाणी (केतुना) बुद्धि वा सुन्दर कर्म और (ज्योतिषा) प्रकाश के साथ (सुज्योतिः) सुन्दर ज्योतियुक्त रात्रि हम को (जुषताम्) सेवन करे ॥२१॥

भावार्थः– जो स्त्री पुरुष दिन के सोने और रात्रि के अति जागने को छोड़ युक्त आहार विहार करने हारे ईश्वर की उपासना में तत्पर होवें उन को दिन रात सुखकर वस्तु प्राप्त होती है। इस से जैसे बुद्धि बढ़ वैसा अनुष्ठान करना चाहिये ॥२१॥

इस अध्याय में ईश्वर, योगी, सूर्य्य, पृथिवी, यज्ञ, सन्मार्ग, स्त्री, पति और पिता के तुल्य वर्त्तमान परमेश्वर का वर्णन तथा युक्त आहार विहार का अनुष्ठान कहा है इस से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सैंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

---

* ओ३म् *

अथाष्टात्रिंशोऽध्याय आरभ्यते

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥

देवस्येत्यस्याथर्वण ऋषिः। सविता देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब अड़तीसवें अध्याय का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में स्त्री को कैसी होना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वेऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम्।
आ द॒देऽदि॑त्यै॒ रास्ना॑ऽसि ॥१॥

पदार्थः—हे विदुषि स्त्री ! जिस कारण तू (अदित्यै) नाशरहित नीति के लिये (रास्ना) दानशील (असि) है इससे (सवितुः)समस्त जगत् के उत्पादक (देवस्य) कामना के योग्य परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न होने वाले जगत् में (अश्विनोः) सूर्य और चन्द्रमा के (बाहुभ्याम्) बल पराक्रम के तुल्य बाहुओं से (पूष्णः) पोषक वायु के (हस्ताभ्याम्) गमन और धारण के समान हाथों से (त्वा) तुझ को (आ, ददे) ग्रहण करूं ॥१॥

भावार्थः—हे स्त्रि ! जैसे सूर्य्य भूगोलों का, प्राण शरीर का और अध्यापक उपदेशक सत्य का ग्रहण करते हैं वैसे ही तुझ को मैं ग्रहण करता हूं। तू निरन्तर अनुकूल सुख देने वाली हो ॥१॥

इड इत्यस्याथर्वण ऋषिः। सरस्वती देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

स्त्री पुरुष कैसे विवाह करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इड एह्यदित एहि सरस्वत्येहि । असावेह्यसावेह्यसावेहि ॥२॥

पदार्थः—हे (इडे) सुशिक्षित वाणी के तुल्य स्त्रि ! तू मुझ को (एहि) प्राप्त हो जो (असौ) वह तुझ को प्राप्त हो उस को तू (एहि)प्राप्त हो। हे (अदिते) अखण्डित आनन्द देने वाली ! तू अखण्डित आनन्द को (एहि) प्राप्त हो जो (असौ) वह तुझ को अखण्डित आनन्द देवे उस को (एहि) प्राप्त हो। हे (सरस्वति) प्रशस्त विज्ञानयुक्त स्त्रि ! तू विद्वान् को (एहि) प्राप्त हो जो (असौ) वह सुशिक्षित हो उस को (एहि) प्राप्त हो ॥२॥

भावार्थः—जब स्त्री पुरुष विवाह करने की इच्छा करें तब ब्रह्मचर्य और विद्या से स्त्री और पुरुष के धर्म और आचरण को जान कर ही करें ॥२॥

अदित्या इत्यस्याथर्वण ऋषिः। पूषा देवता। भुरिक्साम्नी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

स्त्री को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अदित्यै रास्नासीन्द्राण्या उष्णीषः । पूषासि घर्माय दीष्व ॥३॥

पदार्थः—हे कन्ये ! जो तू (अदित्यै) नित्य विज्ञान के (रास्ना) देने वाली (असि) है (इन्द्राण्यै) परमैश्वर्य्य करने वाली नीति के लिये (उष्णीषः) शिरोवेष्टन पगड़ी के तुल्य (पूषा) भूमि के सदृश पोषण करनेहारी (असि) है सो तू (घर्माय) प्रसिद्ध अप्रसिद्ध सुख देनेवाले यज्ञ के लिये (दीष्व) दान कर ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे स्त्रि ! जैसे

पगड़ी आदि वस्त्र सुख देनेवाले होते हैं वैसे तू पति के लिये सुख देने वाली हो ॥३॥

अश्विभ्यामित्यस्याथर्वण ऋषिः । सरस्वती देवता । आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अश्विभ्यां पिन्वस्व सरस्वत्यै पिन्वस्वेन्द्राय पिन्वस्व ।
स्वाहेन्द्रवत्स्वाहेन्द्रवत्स्वाहेन्द्रवत् ॥४॥

पदार्थः—हे विदुषि स्त्रि ! तू (इन्द्रवत्) परम ऐश्वर्ययुक्त वस्तु को ग्रहण कर (स्वाहा) सत्यक्रिया से (अश्विभ्याम्) सूर्य्य चन्द्रमा के लिये (पिन्वस्व) तृप्त हो (इन्द्रवत्) चेतनता के गुणों से संयुक्त शरीर को पाकर (स्वाहा) सत्यवाणी से (सरस्वत्यै) सुशिक्षित वाणी के लिये (पिन्वस्व) संतुष्ट हो (इन्द्रवत्) विद्युत् विद्या को जानकर (स्वाहा) सत्यता से (इन्द्राय) परमोत्तम ऐश्वर्य्य के लिये (पिन्वस्व) संतुष्ट हो ॥४॥

भावार्थः—जो स्त्री पुरुष विद्युत् आदि विद्या से ऐश्वर्य की उन्नति करें वे सुख को भी प्राप्त होवें ॥४॥

यस्त इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । वाग् देवता । निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः ।
येन विश्वा पुष्यसि वार्य्याणि सरस्वति तमिह धातवेऽकः ।
उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥५॥

पदार्थः—हे (सरस्वति) बहुत विज्ञान वाली स्त्रि ! (यः) जो (ते) तेरा (शशयः) जिस के आश्रय से बालक सोवे वह (स्तनः) दूध का आधार थन तथा (यः) जो (मयोभूः) सुख सिद्ध करने हारा (यः) जो (रत्नधाः) उत्तम उत्तम गुणों का धारणकर्त्ता (वसुवित्) धनों को प्राप्त होने वाला और (यः) जो (सुदत्रः) सुन्दर दान देने वाला पति कि (येन) जिसके आश्रय से (विश्वा) सब (वार्य्याणि) ग्रहण करने योग्य वस्तुओं को (पुष्यसि) पुष्ट करती है (तम्) उसको (इह) इस संसार में वा घर में (धातवे) धारण करने वा दूध पिलाने को नियत (अकः) कर । उससे मैं (उरु) अधिकतर (अन्तरिक्षम्) आकाश का (अन्वेमि) अनुगामी होऊं ॥५॥

भावार्थः—जो स्त्री न होवे तो बालकों की रक्षा होना भी कठिन होवे जिस स्त्री से पुरुष बहुत सुख और पुरुष से स्त्री भी अधिकतर आनन्द पावे वे ही दोनों आपस में विवाह करें ॥५॥

गायत्रमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृदत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी स्त्री पुरुष का कैसा सम्बन्ध हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

गायत्रं छन्दोऽसि त्रैष्टुभं छन्दोऽसि द्यावापृथिवीभ्यान्त्वा परिगृह्णाम्यन्तरिक्षेणोप यच्छामि ।
इन्द्राश्विना मधुनः सारघस्य घर्मं पात वसवो यजत वाट् ।
स्वाहा सूर्य्यस्य रश्मये वृष्टिवनये ॥६॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्ययुक्त पुरुष ! जैसे आप (गायत्रम्) गायत्री छन्द से प्रकाशित (छन्दः) स्वतन्त्र आनन्दकारक अर्थ के समान हृदय को प्रिय स्त्री को प्राप्त (असि) हैं (त्रैष्टुभम्) त्रिष्टुप् छन्द से व्याख्यात हुए (छन्दः) स्वतन्त्र अर्थ-मात्र के समान प्रशंसित पत्नी को प्राप्त हुए (असि) हैं वैसे मैं (त्वा) तुम को देख कर (द्यावापृथिवीभ्याम्) सूर्य भूमि से अति शोभायमान प्रिया स्त्री को (परि, गृह्णामि) सब ओर से स्वीकार करता हूं और (अन्तरिक्षेण) हाथ में जल लेकर प्रतिज्ञा कराई हुई को (उप, यच्छामि) स्त्रीत्व के साथ ग्रहण करता हूं । हे (अश्विना) प्राण अपान के तुल्य कार्यसाधक स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों भी वैसे ही वर्त्ता करो । हे (वसवः) पृथिवी आदि वसुओं के तुल्य प्रथम कक्षा के विद्वानो ! तुम लोग (स्वाहा) सत्य क्रिया से (मधुनः सारघस्य) मक्खियों ने बनाये मधुरादि गुण युक्त शहद और (घर्मम्) सुख पहुंचाने वाले यज्ञ की (पात) रक्षा करो । (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के (वृष्टिवनये) वर्षा का विभाग करने वाले (रश्मये) संशोधक किरण के लिये (वाट्) अच्छे प्रकार (यजत) संगत होओ ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे शब्दों का अर्थों के साथ वाच्यवाचक सम्बन्ध, सूर्य्य के साथ पृथिवी का, किरणों के साथ वर्षा का, यज्ञ के साथ यजमान और ऋत्विजों का सम्बन्ध है वैसे ही विवाहित स्त्रीपुरुषों का सम्बन्ध होवे ॥६॥

समुद्रायेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । वातो देवता । भुरिगष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर विवाह किये स्त्रीपुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

समुद्राय त्वा वाताय स्वाहा । सरिराय त्वा वाताय स्वाहा ।
अनाधृष्याय त्वा वाताय स्वाहा । अप्रतिधृष्याय त्वा वाताय स्वाहा ।
अवस्यवे त्वा वाताय स्वाहा । अशिमिदाय त्वा वाताय स्वाहा ॥७॥

पदार्थः—हे स्त्रि वा पुरुष ! मैं (स्वाहा) सत्य क्रिया से (समुद्राय) आकाश में चलने के अर्थ (वाताय) वायुविद्या वा वायु के शोधन के लिये (त्वा) तुझ को (स्वाहा) सत्यक्रिया से (सरिराय) जल के तथा (वाताय) घर के वायु के शोधने के लिये (त्वा) तुझ को (स्वाहा) सत्यवाणी से (अनाधृष्याय) भय और धमकाने से रहित होने के लिये तथा (वाताय) ओषधिस्थ वायु के जानने को (त्वा) तुझ को (स्वाहा) सत्य वाणी वा क्रिया से (अप्रतिधृष्याय) नहीं धमकाने योग्यों के प्रति वर्त्तमान के अर्थ (वाताय) वायु के वेग की गति जानने के लिये (त्वा) तुझ को (स्वाहा) सत्यक्रिया से (अवस्यवे) अपनी रक्षा चाहने वाले के अर्थ तथा (वाताय) प्राणशक्ति को विशेष जानने के लिये (त्वा) तुझ को और (स्वाहा) सत्यक्रिया से (अशिमिदाय) भोग्य अन्न जिस में स्नेह करने वाला है उस रस और (वाताय) उदान वायु के लिये (त्वा) तुझ को समीप स्वीकार करता हूं ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र में से (उप, यच्छामि) इन पदों की अनुवृत्ति आती है। विवाह किये हुए स्त्री पुरुष सृष्टिविद्या की उन्नति के लिये प्रयत्न किया करें ॥७॥

इन्द्रायेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । इन्द्रो देवता । अष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुषों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवते स्वाहेन्द्राय त्वादित्यवते
स्वाहेन्द्राय त्वाभिमातिघ्ने स्वाहा ।
सवित्रे त्वऽऋभुमते विभुमते वाजवते स्वाहा
बृहस्पतये त्वा विश्वदेव्यावते स्वाहा ॥८॥

पदार्थः—हे स्त्री वा पुरुष ! मैं (स्वाहा) सत्यवाणी से (वसुमते) बहुत धनयुक्त (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य वाले सन्तान के अर्थ (त्वा) तुझ को (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (आदित्यवते) समस्त विद्याओं की पण्डिताई से युक्त (रुद्रवते) बहुत प्राणों के बल वाले (इन्द्राय) दुःखनाशक सन्तान के लिये (त्वा) तुझ को (स्वाहा) सत्य वाणी से (अभिमातिघ्ने) शत्रुओं को मारने वाले (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य देने वाले

सन्तान के लिये (त्वा) तुझ को (स्वाहा) सत्यक्रिया से (सवित्रे) सूर्यविद्या के ज्ञाता (ऋभुमते) अनेक बुद्धिमानों के साथी (विभुमते) विभु आकाशादि पदार्थों को जिसने जाना है (वाजवते) पुष्कल अन्नवाले सन्तान के अर्थ (त्वा) तुझ को और (स्वाहा) सत्यवाणी से (बृहस्पतये) बड़ी वेदरूप वाणी के रक्षक (विश्वदेव्यावते) समस्त विद्वानों के हितकारी पदार्थों वाले सन्तान के लिये (त्वा) तुझ को ग्रहण करता वा करती हूं ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में भी (उप, यच्छामि) इन पदों की अनुवृत्ति आती है। जो स्त्री पुरुष पृथिवी आदि वसुओं और चैत्रादि महीनों से अपने ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं वे विघ्नों को नष्ट कर बुद्धिमान् सन्तानों को प्राप्त होकर सब की रक्षा करने को समर्थ होते हैं ॥८॥

यमायेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। वायुर्देवता। भुरिग्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा।
स्वाहा घर्माय। स्वाहा घर्मः पित्रे ॥९॥

पदार्थः—हे स्त्रि वा पुरुष! (घर्मः) यज्ञ के तुल्य प्रकाशमान मैं (स्वाहा) सत्यवाणी से (अङ्गिरस्वते) विद्युत् आदि विद्या जानने वाले (यमाय) न्यायाधीश के अर्थ (पितृमते) रक्षक ज्ञानी जनों से युक्त सन्तान के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया से (यज्ञाय) यज्ञ के लिये और (स्वाहा) सत्यक्रिया से (पित्रे) रक्षक के लिये (त्वा) तुझ को स्वीकार करती वा करता हूं ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में भी (उप, यच्छामि) पदों की अनुवृति आती है। जो स्त्री पुरुष प्राण के तुल्य न्याय, पितरों और विद्वानों का सेवन करें वे यज्ञ के तुल्य सब को सुखकारी होवें ॥९॥

अश्वा इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। अश्विनौ देवते। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर अध्यापक उपदेशक क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्वा आशा दक्षिणसद्विश्वान्देवानयाडिह।
स्वाहाकृतस्य घर्मस्य मधोः पिबतमश्विना ॥१०॥

पदार्थः—हे (अश्विना) अध्यापक उपदेशक लोगो! तुम (इह) इस जगत् में (स्वाहाकृतस्य) सत्यक्रिया से सिद्ध हुए (घर्मस्य, मधोः) मधुरादि गुण युक्त यज्ञ के अवशिष्ट भाग को (पिबतम्) पिओ वैसे यह (दक्षिणसत्) वेदी से दक्षिण दिशा

में बैठने वाला आचार्य्य (विश्वाः) सब (आशाः) दिशाओं तथा (विश्वान्) समस्त (देवान्) उत्तम गुणों वा विद्वानों का (अयाट्) संग वा उनका सेवन पूजन करे ॥१०॥

भावार्थः—जैसे उपदेशक शिक्षा करें और अध्यापक पढ़ावें वैसे ही सब लोग ग्रहण करें ॥१०॥

दिवि धा इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । विराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

दिवि धा इमं यज्ञमिमं यज्ञं दिवि धाः ।
स्वाहाऽग्नये यज्ञियाय शं यजुर्भ्यः ॥११॥

पदार्थः—हे स्त्री वा पुरुष ! तू (यजुर्भ्यः) यज्ञ कराने हारे वा यजुर्वेद के विभागों से (स्वाहा) सत्यक्रिया के साथ (अग्नये) (यज्ञियाय) यज्ञ कर्म के योग्य अग्नि के लिये (दिवि) सूर्य्यादि के प्रकाश में (इमम्) इस (यज्ञम्) सङ्ग करने योग्य गृहाश्रम व्यवहार के उपयोगी यज्ञ को (शम्) सुखपूर्वक (धाः) धारण कर (दिवि) विज्ञान के प्रकाश में (इमम्) इस परमार्थ के साधक संन्यास आश्रम के उपयोगी (यज्ञम्) विद्वानों के संगरूप यज्ञ को सुख पूर्वक (धाः) धारण कर ॥११॥

भावार्थः—जो स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य के साथ समग्र विद्यायुक्त उत्तम शिक्षा को प्राप्त होकर वेद रीति से कर्मों का अनुष्ठान करें वे अतुल सुख को प्राप्त होवें ॥११॥

अश्विनेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अश्विनौ देवते । आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अश्विना घर्मं पातꣳ हार्द्वानमहर्दिवाभिरूतिभिः ।
तन्त्रायिणे नमो द्यावापृथिवीभ्याम् ॥१२॥

पदार्थः—हे (अश्विना) सुशिक्षित स्त्री पुरुषो ! तुम (अहः) प्रति दिन (दिवाभिः) दिन रात वर्त्तमान (ऊतिभिः) रक्षादि क्रियाओं से (तन्त्रायणे) शिल्पविद्या के शास्त्रों को जानने वा प्राप्त होने के लिये (हार्द्वानम्) हृदय को प्राप्त हुए ज्ञानसम्बन्धी (घर्मम्) यज्ञ की (पातम्) रक्षा करो और (द्यावापृथिवीभ्याम्) सूर्य और आकाश के सम्बन्ध से शिल्पशास्त्रज्ञ पुरुष के लिये (नमः) अन्न को देओ ॥१२॥

भावार्थः—जैसे भूमि और सूर्य परस्पर उपकारी हुए साथ वर्त्तमान हैं वैसे मित्र भाव से युक्त स्त्री पुरुष निरन्तर वर्त्ता करें ॥१२॥

अपातामित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अपा॑ताम॒श्विना॑ घ॒र्मम॑नु॒ द्यावा॑पृथि॒वी अ॑मꣳसाताम् ।
इ॒हैव रा॒तयः॑ सन्तु ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे (अश्विना) सुन्दर रीति से वर्त्तमान स्त्री पुरुषो ! तुम वायु और बिजुली के तुल्य (घर्मम्) गृहाश्रम व्यवहार के अनुष्ठान की (अपाताम्) रक्षा करो (द्यावापृथिवी) सूर्य्य भूमि के समान गृहाश्रम व्यवहार के अनुष्ठान का (अनु, अमंसाताम्) अनुमान किया करो जिससे कि (इह) इस गृहाश्रम में (रातयः) विद्यादिजन्य सुखों के दान (एव) ही (सन्तु) होवें ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वायु और बिजुली तथा सूर्य और भूमि साथ वर्त्तकर सुख देते हैं वैसे स्त्री पुरुष प्रीति के साथ वर्त्तमान हुए सब के लिये अतुल सुख देवें ॥१३॥

इषे पिन्वस्वेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । द्यावापृथिवी देवते । अतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इ॒षे पि॑न्वस्वो॒र्जे पि॑न्वस्व॒ ब्रह्म॑णे पिन्वस्व
क्ष॒त्राय॑ पिन्वस्व॒ द्यावा॑पृथि॒वीभ्यां॑ पिन्वस्व॒ ।
धर्मा॑सि सु॒धर्मामे॑न्य॒स्मे नृ॒म्णानि॑ धारय॒ ।
ब्रह्म॑ धारय क्ष॒त्रं धा॑रय॒ विशं॑ धारय ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे (धर्म) सत्य के धारक (सुधर्म) सुन्दर धर्मयुक्त पुरुष वा स्त्री ! तू (अमेनि) हिंसा धर्म से रहित (असि) है जिस से (अस्मे) हमारे लिये (नृम्णानि) धनों को (धारय) धारण कर (ब्रह्म) वेद वा ब्राह्मण को (धारय) धारण कर (क्षत्रम्) क्षत्रिय वा राज्य को (धारय) धारण कर (विशम्) प्रजा को (धारय) धारण कर उससे (इषे) अन्नादि के लिये (पिन्वस्व) सेवन कर (ऊर्जे) बल आदि के लिये (पिन्वस्व) सेवन कर (ब्रह्मणे) वेद विज्ञान परमेश्वर वा वेदज्ञ ब्राह्मण के

लिये (पिन्वस्व) सेवन कर (क्षत्राय) राज्य के लिये (पिन्वस्व) सेवन कर और (द्यावापृथिवीभ्याम्) भूमि और सूर्य के लिये (पिन्वस्व) सेवन कर १४॥

भावार्थः—जो स्त्री पुरुष अहिंसक धर्मात्मा हुए आप ही धन, विद्या, राज्य और प्रजा को धारण करें वे अन्न, बल, विद्या और राज्य को पाकर भूमि और सूर्य के तुल्य प्रत्यक्ष सुख वाले होवें ॥१४॥

स्वाहा पूष्ण इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। पूषादयो लिङ्गोक्ता देवताः। स्वराड् जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स्वाहा॑ पू॒ष्णे शर॑से॒ स्वाहा॒ ग्राव॑भ्य॒: स्वाहा॑ प्रतिर॒वेभ्य॑: ।
स्वाहा॑ पि॒तृभ्य॑ ऊ॒र्ध्वब॑र्हिभ्यो घ॒र्मपाव॑भ्य॒: स्वाहा॒
द्यावा॑पृथि॒वीभ्या॒ꣳ स्वाहा॒ विश्वे॑भ्यो दे॒वेभ्य॑: ॥१५॥

पदार्थः—स्त्री पुरुषों को योग्य है कि (पूष्णे) पुष्टिकारक (शरसे) हिंसक के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया अर्थात् अधर्म से बचाने का उपाय (प्रतिरवेभ्यः) शब्द के प्रति शब्द कहनेहारों के लिये (स्वाहा) सत्यवाणी (ग्रावभ्यः) गर्जने वाले मेघों के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (ऊर्ध्वबर्हिभ्यः) उत्तम कक्षा तक बढ़े हुए (घर्मपावभ्यः) यज्ञ से संसार को पवित्र करनेहारे (पितृभ्यः) रक्षक ऋतुओं के तुल्य वर्त्तमान सज्जनों के लिये (स्वाहा) सत्यवाणी (द्यावापृथिवीभ्याम्) सूर्य्य और आकाश के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया और (विश्वेभ्यः देवेभ्यः च) पृथिव्यादि वा समग्र विद्वानों के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया वा सत्यवाणी का सदा प्रयोग किया करें ॥१५॥

भावार्थः—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि सत्यविज्ञान और सत्यक्रिया से ऐसा पुरुषार्थ करें जिससे सब को पुष्टि और आनन्द होवे ॥१५॥

स्वाहा रुद्रायेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। रुद्रादयो देवताः। भुरिगतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स्वाहा॑ रु॒द्राय॑ रु॒द्रहू॑तये॒ स्वाहा॒ सं ज्योति॑षा॒ ज्योति॑: ।
अह॑: के॒तुना॑ जुषता॒ꣳ सु॒ज्योति॒र्ज्योति॑षा॒ स्वाहा॑ ।
रात्रि॑: के॒तुना॑ जुषता॒ꣳ सु॒ज्योति॒र्ज्योति॑षा॒ स्वाहा॑ ।

मधुं हुतमिन्द्रंतमेऽअग्नावश्याम ते देव घर्म्
नमंस्तेऽअस्तु मा मा हि॑ꣳसीः ॥१६॥

पदार्थः—हे स्त्रि वा पुरुष ! आप (केतुना) बुद्धि से (रुद्रहूतये) प्राण वा जीवों की स्तुति करने वाले (रुद्राय) जीव के लिये (स्वाहा) सत्यवाणी से (ज्योतिषा) प्रकाश के साथ (ज्योतिः) प्रकाश को (स्वाहा) सत्यक्रिया से युक्त (ज्योतिषा) सत्य विद्या के उपदेश रूप प्रकाश के साथ (सुज्योतिः) सुन्दर विद्यादि सद्गुणों के प्रकाश तथा (अह्नः) दिन को (स्वाहा) सत्यक्रिया से (सम्, जुषताम्) सम्यक् सेवन करो (केतुना) संकेतरूप चिह्न और (ज्योतिषा) मननादि रूप प्रकाश के साथ (सुज्योतिः) धर्मादि रूप सद्गुणों के प्रकाश और (रात्रिः) रात्रि को (स्वाहा) सत्यक्रिया से (जुषताम्) सेवन करो। हे (घर्म) प्रकाशमान (देव) विद्वान् जन जिससे (ते) आप के लिये (इन्द्रतमे) अतिशय ऐश्वर्य के हेतु विद्युत्रूप (अग्नौ) अग्नि में (हुतम्) होम किये (मधु) मधुरादि गुणयुक्त घृतादि पदार्थ को घ्राण द्वारा (अश्याम) प्राप्त होवें (ते) आप के लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) प्राप्त हो आप (मा) मुझ को (मा) मत (हिंसीः) मारिये ॥१६॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि प्राण जीवन और समाज की रक्षा के लिये विज्ञान के साथ कर्म और दिन रात्रि का युक्ति से सेवन करें और प्रति दिन प्रातः सायंकाल में कस्तूरी आदि सुगन्धित द्रव्ययुक्त घृत को अग्नि में होम कर वायु आदि की शुद्धि द्वारा नित्य आनन्दित होवें ॥१६॥

अभीममित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदतिशक्वरी छन्दः।
पञ्चमः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अभीमं महिमा दिवं विप्रो बभूव सप्रथाः।
उत श्रवसा पृथिवीꣳ सꣳ सीदस्व महाँ२ऽअसि रोचंस्व देववीतमः।
वि धूममंग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥१७॥

पदार्थः—हे (प्रशस्त) प्रशंसा को प्राप्त (मियेध्य) दुष्टों को दूर करनेहारे (अग्ने) अग्नि के तुल्य प्रकाशमान तेजस्वी विद्वन् (महिमा) महागुणविशिष्ट (सप्रथाः) प्रसिद्ध उत्तम कीर्ति वाले (विप्रः) बुद्धिमान् आप (इमम्) इस (दिवम्) अविद्यादि गुणों के प्रकाश को (अभि, बभूव) तिरस्कृत करते हैं (उत) और (श्रवसा) सुनने वा अन्न के साथ (पृथिवीम्) भूमि पर (सम्, सीदस्व) सम्यक् बैठिये जिस कारण (देववीतमः) दिव्य गुणों वा विद्वानों को अतिशय कर प्राप्त होने वाले (महान्)

महात्मा (असि) हैं जिस से (रोचस्व) सब ओर से प्रसन्न हूजिये और (अरुषम्) थोड़े लाल रङ्ग से युक्त इसी से (दर्शतम्) देखने योग्य (धूमम्) धुएं को होम द्वारा (वि, सृज) विशेष कर उत्पन्न कीजिये ॥१७॥

भावार्थः—यही मनुष्यों की महिमा है जो ब्रह्मचर्य के साथ विद्या को प्राप्त हो सर्वत्र फैलाकर शुभ गुणों का प्रचार करके सृष्टिविद्या की उन्नति करते हैं ॥१७॥

यात इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिगाकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

या ते घर्म दि॒व्या शुग्या गा॑य॒त्र्याᳬं ह॑वि॒र्धाने॑ ।
सा त॒ आ प्या॑यतां॒ निष्ट्या॑यतां॒ तस्यै॑ ते॒ स्वाहा॑ ।
या ते॑ घ॒र्मान्तरि॑क्षे॒ शुग्या त्रि॒ष्टुभ्या॒ग्नीध्रे॑ ।
सा त॒ आ प्या॑यतां॒ निष्ट्या॑यतां॒ तस्यै॑ ते॒ स्वाहा॑ ।
या ते घर्म पृथि॒व्याᳬं शुग्या जग॑त्याᳬं सद॒स्या॑ ।
सा त॒ आ प्या॑यतां॒ निष्ट्या॑यतां॒ तस्यै॑ ते॒ स्वाहा॑ ॥१८॥

पदार्थः—हे (घर्म) प्रकाशस्वरूप विद्वन् ! वा विदुषी स्त्रि ! (या) जो (ते) तेरी (गायत्र्याम्) पढ़ने वालों की रक्षक क्रिया और (हविर्धाने) होमने योग्य पदार्थों के धारण में (शुक्) विचार की साधनरूप क्रिया और (या) जो (दिव्या) दिव्य गुणों में हुई क्रिया है (सा) वह (ते) तेरी (आ, प्यायताम्) सब ओर से बढ़े और (निः, स्त्यायताम्) निरन्तर संयुक्त होवे । (तस्यै) उस क्रिया के लिये और (ते) तेरे लिये (स्वाहा) सत्यवाणी होवे । हे (घर्म) दिन के तुल्य प्रकाशित विद्यावाले जन वा स्त्रि ! (या) जो (ते) तेरी (अन्तरिक्षे) आकाश विषय में (शुक्) सूर्य्य की दीप्ति के समान विमानादि की गमन क्रिया और (या) जो (आग्नीध्रे) अग्नि के आश्रय में तथा (त्रिष्टुभि) त्रिष्टुप्छन्द से निकले अर्थ में विचार रूप क्रिया है (सा) वह (ते) तेरी (आ, प्यायताम्) बढ़े और (नि, स्त्यायताम्) निरन्तर संयुक्त होवे (तस्यै) उस क्रिया और (ते) तेरे लिये (स्वाहा) सत्यवाणी होवे । हे (घर्म) बिजुली के प्रकाश के तुल्य वर्त्तमान स्त्रि वा पुरुष ! (या) जो (ते) तेरी (पृथिव्याम्) भूमि पर और (या) जो (सदस्या) सभा में हुई (जगत्याम्) चेतन प्रजायुक्त सृष्टि में (शुक्) प्रकाशयुक्त क्रिया है (सा) वह (ते) तेरी (आ, प्यायताम्) बढ़े और (निः, स्त्यायताम्) निरन्तर सम्बद्ध होवे (तस्यै) उस क्रिया तथा (ते) तेरे लिये (स्वाहा) सत्यवाणी होवे ॥१८॥

भावार्थः—जो स्त्री पुरुष दिव्य क्रिया शुद्ध उपासना और पवित्र विज्ञान को पाकर प्रकाशित होते हैं वे ही मनुष्यजन्म के फल से युक्त होते हैं औरों को भी वैसा ही करें ॥१८॥

क्षत्रस्येत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृदुपरिष्टाद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब राजा और प्रजा क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

क्षत्रस्यं त्वा परस्पाय ब्रह्मणस्तन्वं पाहि ।
विशस्त्वा धर्मणा वयमनु क्रामाम सुविताय नव्यसे ॥१९॥

पदार्थः—हे राजन् ! वा राणी ! आप (परस्पाय) जिस कर्म से दूसरों की रक्षा हो उस के लिये (क्षत्रस्य) क्षत्रिय कुल वा राज्य के तथा (ब्रह्मणः) वेदवित् ब्राह्मणकुल के सम्बन्धी (त्वा) आप के (तन्वम्) शरीर की (पाहि) रक्षा कीजिये जैसे (वयम्) हम लोग (नव्यसे) नवीन (सुविताय) ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (धर्मणा) धर्म के साथ (अनुक्रामाम) अनुकूल चलें वैसे ही धर्म के साथ वर्त्तमान (त्वा) आप के अनुकूल (विशः) प्रजाजन चलें ॥१९॥

भावार्थः—राजा और राजपुरुषों को योग्य है कि धर्म के साथ विद्वानों और प्रजाजनों की रक्षा करें। वैसे ही प्रजा और राजपुरुषों को चाहिये कि राजा की सदैव रक्षा करें इस प्रकार न्याय तथा विनय के साथ वर्त्तकर राजा और प्रजा नवीन नवीन ऐश्वर्य की उन्नति किया करें ॥१९॥

चतुःस्त्रक्तिरित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

चतुःस्त्रक्तिर्नाभिर्ऋतस्यं सप्रथाः
स नो विश्वायुः सप्रथाः स नः सर्वायुः सप्रथाः ।
अप द्वेषोऽअप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिम ॥२०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (चतुःस्त्रक्तिः) चार कोने वाली (नाभिः) नाभि मध्य मार्ग के तुल्य निष्पक्ष (सप्रथाः) विस्तार के साथ वर्त्तमान सत्पुरुष (अन्यव्रतस्य) दूसरे सब जगत् की रक्षा करने के स्वभाव वाले (ऋतस्य) सत्यस्वरूप परमात्मा की सेवा करता (सः) वह (सप्रथाः) विस्तृत कार्य्यों वाला (विश्वायुः) सम्पूर्ण आयु से युक्त पुरुष (नः) हम लोगों को बोधित करे। (सः) वह (सप्रथाः) अधिक सुखी (सर्वायुः)

समग्र अवस्था वाला पुरुष (नः) हम को ईश्वरसम्बन्धी विद्या का ग्रहण करावे जिस से हम लोग (द्वेषः) द्वेषी शत्रुओं को (अप, सश्चिम) दूर पहुंचावें और (ह्वरः) कुटिल जनों को (अप) पृथक् करें। वैसे तुम लोग भी करो ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे रस को प्राप्त हुई नाभि रस को उत्पन्न कर शरीर के अवयवों को पुष्ट करती वैसे सेवन किये विद्वान् वा उपासना किया परमेश्वर द्वेष और कुटिलतादि दोषों को निवृत्त करा कर सब जीवों की रक्षा करते वा करता है, उन विद्वानों और उस परमेश्वर की निरन्तर सेवा करनी चाहिये ॥२०॥

घर्मैतदित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

घर्मैतत्ते पुरीषं तेन वर्द्धस्व चा च प्यायस्व।
वर्द्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि ॥२१॥

पदार्थः—हे (घर्म) अत्यन्त पूजनीय सब ओर से प्रकाशमय जगदीश्वर वा विद्वन्! जो (एतत्) यह (ते) आपका (पुरीषम्) व्याप्ति वा पालन है (तेन) उस से आप (वर्द्धस्व) वृद्धि को प्राप्त हूजिये (च) और दूसरों को बढ़ाइये। आप स्वयं (आ, प्यायस्व) पुष्ट हूजिये (च) और दूसरों को पुष्ट कीजिये, आप की कृपा वा शिक्षा से जैसे हम लोग (वर्द्धिषीमहि) पूर्ण वृद्धि को पावें (च) और वैसे ही दूसरों को बढ़ावें (च) और जैसे हम लोग (आ, प्यासिषीमहि) सब ओर से बढ़ें वैसे दूसरों को निरन्तर पुष्ट करें वैसे तुम लोग भी करो ॥२१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो ! जैसे सर्वत्र अभिव्याप्त ईश्वर ने सब की रक्षा वा पुष्टि की है वैसे ही बढ़े हुए पुष्ट हम लोगों को चाहिये कि सब जीवों को बढ़ावें और पुष्ट करें ॥२१॥

अचिक्रददित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता। परोष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः।
सꣳ सूर्येण दिद्युतदुदधिर्निधिः ॥२२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (वृषा) वर्षा का निमित्त (हरिः) शीघ्र चलने वाला (महान्) सब से बड़ा (अचिक्रदत्) शब्द करता हुआ (मित्रः) मित्र के तुल्य (दर्शतः) देखने योग्य (सूर्येण) सूर्य के साथ (उदधिः, निधिः) जिस में पदार्थ रक्खे जाते तथा

जिसमें जल इकट्ठे होते उस समुद्र वा आकाश में (सम्, विद्युतत्) सम्यक् प्रकाशित होता है वही बिजुली रूप अग्नि सब को कार्य में लाने योग्य है ॥२२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो! जैसे बैल वा घोड़े शब्द करते और जैसे मित्र मित्रों को तृप्त करता है वैसे ही सब लोकों के साथ वर्तमान विद्युत् रूप अग्नि सब को प्रकाशित करता है उसको जानो ॥२२॥

सुमित्रिया इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आपो देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब सज्जन और दुर्जनों का कर्त्तव्य विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥२३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! (आपः) प्राण वा जल तथा (ओषधयः) सोमलता आदि ओषधियां (नः) हमारे लिये (सुमित्रियाः) सुन्दर मित्रों के तुल्य सुखदायी (सन्तु) होवें (यः) जो पक्षपाती अधर्मी (अस्मान्) हम धर्मात्माओं से (द्वेष्टि) द्वेष करे (च) और (यम्) जिस दुष्ट से (वयम्) हम धर्मात्मा लोग (द्विष्मः) द्वेष करें (तस्मै) उस के लिये प्राण, जल वा ओषधियाँ (दुर्मित्रियाः) दुष्ट मित्रों के समान दुःखदायी (सन्तु) होवें ॥२३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य दूसरों के सुपथ्य ओषधि और प्राण के तुल्य रोग और दुःख दूर करते हैं वे धन्यवाद के योग्य हैं। और जो कुपथ्य दुष्ट ओषधि और मृत्यु के समान औरों को दुःख देते हैं उनको वार वार धिक्कार है ॥२३॥

उद्वयमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। सविता देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

कैसा पुरुष सुख को प्राप्त होवे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥२४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे (वयम्) हम लोग (तमसः) अन्धकार से पृथक् वर्त्तमान (उत्तरम्) सब पदार्थों से उत्तर भाग में वर्त्तमान (देवत्रा) दिव्य उत्तम पदार्थों में (देवम्) उत्तम गुणकर्म स्वभाव वाले (उत्तमम्) सब से श्रेष्ठ (ज्योतिः) सब के प्रकाशक (सूर्यम्) सूर्य के तुल्य प्रकाशस्वरूप ईश्वर को (पश्यन्तः) ज्ञानदृष्टि

से देखते हुए (स्वः) सुख को (परि, उत्, अगन्म) सब ओर से उत्कृष्टता के साथ प्राप्त होवें तुम लोग भी प्राप्त होओ ॥२४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य विद्युत् आदि विद्या को प्राप्त हो परमात्मा को साक्षात् देखें वे प्रकाशित हुए निरन्तर सुख को प्राप्त होवें ॥२४॥

एध इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। ईश्वरो देवता। साम्नी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अब अग्नि के विषय से योगियों के कर्त्तव्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ॥२५॥

पदार्थः—हे परमेश्वर! जो आप हमारे आत्माओं में (एधः) प्रकाश करने वाले इन्धन के तुल्य प्रकाशक (असि) हैं (समित्) सम्यक् प्रदीप्त समिधा के समान (असि) हैं (तेजः) प्रकाशमय बिजुली के तुल्य सब विद्या के दिखाने वाले (असि) हैं सो आप (मयि) मुझ में (तेजः) तेज को (धेहि) धारण कीजिये आप को प्राप्त होकर हम लोग (एधिषीमहि) सब ओर से वृद्धि को प्राप्त होवें ॥२५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जैसे इंधन से और घी से अग्नि की ज्वाला बढ़ती है वैसे उपासना किये जगदीश्वर से योगियों के आत्मा प्रकाशित होते हैं ॥२५॥

यावतीत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। इन्द्रो देवता। स्वराड् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यावती द्यावापृथिवी यावच्च सप्त सिन्धवो वितस्थिरे।
तावन्तमिन्द्र ते ग्रहमूर्जा गृह्णाम्यक्षितं मयि गृह्णाम्यक्षितम् ॥२६॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) विद्युत् के समान वर्त्तमान परमेश्वर! (ते) आप की (यावती) जितनी (द्यावापृथिवी) सूर्य भूमि (च) और (यावत्) जितने बड़े (सप्त) (सिन्धवः) सात समुद्र (वितस्थिरे) विशेषकर स्थित हैं (तावन्तम्) उतने (अक्षितम्) नाशरहित (ग्रहम्) ग्रहण के साधनरूप सामर्थ्य को (ऊर्जा) बल के साथ मैं (गृह्णामि) स्वीकार करता [तथा उतने] (अक्षितम्) नाशरहित सामर्थ्य को मैं (मयि) अपने में (गृह्णामि) [ग्रहण करता हूं ॥२६॥

भावार्थः—विद्वानों को योग्य है कि जहां तक हो सके वहां तक

पृथिवी और विजुली आदि के गुणों को ग्रहण कर अक्षय सुख को प्राप्त होवें ॥२६॥

मयि त्यदित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता। पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अब मनुष्यों को क्या वस्तु सुख देती है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

मयि त्यदिन्द्रियं बृहन्मयि दक्षो मयि क्रतुः।

धर्मस्त्रिशुग्विराजति विराजा ज्योतिषा सह ब्रह्मणा तेजसा सह ॥२७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे (विराजा) विशेषकर प्रकाशक (ज्योतिषा) प्रदीप्त ज्योति के (सह) साथ [और (ब्रह्मणा तेजसा सह च) तीक्ष्ण धन के] साथ (त्रिशुक्) कोमल मध्यम और तीव्र दीप्तियों वाला (धर्मः) प्रताप (विराजति) विशेष प्रकाशित होता है वैसे (मयि) मुझ जीवात्मा में (बृहत्) बड़े (त्यत्) उस (इन्द्रियम्) मन आदि इन्द्रिय (मयि) मुझ में (दक्षः) बल और (मयि) मुझ में (क्रतुः) बुद्धि वा कर्म विशेषकर प्रकाशित होवे ॥२७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे अग्नि विद्युत् और सूर्यरूप से तीन प्रकार का प्रकाश जगत् को प्रकाशित करता है वैसे उत्तम बल, कर्म, बुद्धि, धर्म से संचित धन, जीता गया इन्द्रिय महान् सुख को देता है ॥२७॥

पयस इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता। स्वराड्धृतिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर मनुष्य क्या क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पयसो रेतऽआभृतं तस्य दोहमशीमह्युत्तरामुत्तराꣳ समाम्।

त्विषः संवृक् क्रत्वे दक्षस्य ते सुषुम्णस्य ते सुषुम्णाग्निहुतः।

इन्द्रपीतस्य प्रजापतिभक्षितस्य मधुमतऽ

उपहूतऽउपहूतस्य भक्षयामि ॥२८॥

पदार्थः—हे (सुषुम्ण) शोभन सुखयुक्त जन! जैसे आप ने जिस (पयसः) जल वा दूध के (रेतः) पराक्रम को (आभृतम्) पुष्ट वा धारण किया (तस्य) उसकी (दोहम्) पूर्णता तथा (उत्तरामुत्तराम्) उत्तर उत्तर (समाम्) समय को (अशीमहि) हम प्राप्त होवें। उस (ते) आपकी (क्रत्वे) बुद्धि के लिये (त्विषः) प्रकाशित (दक्षस्य) बल के और (ते) आप की पुष्टि वा धारण को प्राप्त होवें (सुषुम्णस्य) सुन्दर सुख देने वाले (इन्द्रपीतस्य) सूर्य्य वा जीव ने ग्रहण किये (प्रजापतिभक्षितस्य) प्रजारक्षक ईश्वर ने सेवन वा जीव ने भोजन किये (उपहूतस्य) समीप लाये हुए दूध वा जल के

दोषों को (संवृक्) सम्यक् अलग करने वाला (उपहूतः) समीप बुलाया गया और (अग्निहुतः) अग्नि में होम करने वाला मैं भोजन वा सेवन करूं ॥२८॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि सदा वीर्य बढ़ावें विद्यादि शुभ गुणों का धारण करें। प्रतिदिन सुख बढ़ावें जैसे अपना सुख चाहें वैसे औरों के लिये भी सुख की आकाङ्क्षा किया करें ॥२८॥

इस अध्याय में इस सृष्टि में शुभ गुणों का ग्रहण, अपना और दूसरों का पोषण, यज्ञ से जगत् के पदार्थों का शोधन, सर्वत्र सुखप्राप्ति का साधन, धर्म का अनुष्ठान, पुष्टि का बढ़ाना, ईश्वर के गुणों की व्याख्या, सब ओर से वल बढ़ाना और सुखभोग कहा है इससे इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह अड़तीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

ओ३म्

अथैकोनचत्वारिंशोध्याय आरभ्यते

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव॥

स्वाहा प्राणेभ्य इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। प्राणादयो लिङ्गोक्ता देवताः। पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अब उनतालीसवें अध्याय का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अन्त्येष्टि कर्म का विषय कहते हैं॥

स्वाहा प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः।

पृथिव्यै स्वाहाऽग्नये स्वाहाऽन्तरिक्षाय स्वाहा
वायवे स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्य्याय स्वाहा ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को योग्य है कि (साधिपतिकेभ्यः) इन्द्रियादि के अधिपति जीव के साथ वर्त्तमान (प्राणेभ्य.) जीवनं के तुल्य प्राणों के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (पृथिव्यै) भूमि के लिये (स्वाहा) सत्यवाणी (अग्नये) अग्नि के अर्थं (स्वाहा) सत्यक्रिया (अन्तरिक्षाय) आकाश में चलने के लिये (स्वाहा) सत्यवाणी (वायवे) वायु की प्राप्ति के अर्थं (स्वाहा) सत्यक्रिया (दिवे) विद्युत् की प्राप्ति के अर्थं (स्वाहा)सत्यवाणी और (सूर्य्याय)सूर्यंमण्डल की प्राप्ति के लिये (स्वाहा)सत्यक्रिया को यथावत् संयुक्त करो ॥१॥

भावार्थः—इस अध्याय में अन्त्येष्टिकर्म जिस को नरमेध, पुरुषमेध और दाहकर्म भी कहते हैं। जब कोई मनुष्य मरे तब शरीर की बराबर तोल घी लेकर उस में प्रत्येक सेर में एक रत्तो कस्तूरी एक मासा केसर और चन्दन आदि काष्ठों को यथायोग्य सम्हाल के जितने उर्ध्वबाहु पुरुष होवे उतनी लम्बी, साढ़े तीन हाथ चौड़ी और इतनी ही गहरी एक बिलस्त नीचे तले में वेदी बनाकर उसमें नीचे से अधवर तक समिधा भरकर उस पर मुर्दे को धर कर फिर मुर्दे के इधर उधर और ऊपर से अच्छे प्रकार समिधा चुन कर वक्षःस्थल आदि में कपूर धर कपूर से अग्नि को जलाकर चिता में प्रवेश करा जब अग्नि जलने लगे तब इस अध्याय के इन स्वाहान्त मन्त्रों की वार वार आवृत्ति से घी का होम कर मुर्दे को सम्यक् जलावें इस प्रकार करने में दाह करने वालों को यज्ञकर्म के फल की प्राप्ति होवे। और मुर्दे को न कभी भूमि में गाढ़ें, न वन में छोड़ें, न जल में डुबावें, विना दाह किये सम्बन्धी लोग महापाप को प्राप्त होवें क्योंकि मुर्दे के बिगड़े शरीर से अधिक दुर्गन्ध बढ़ने के कारण चराचर जगत् में असंख्य रोगों की उत्पत्ति होती है इससे पूर्वोक्त विधि के साथ मुर्दे के दाह करने में ही कल्याण है अन्यथा नहीं ॥१॥

दिग्भ्य इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। दिगादयो लिङ्गोक्ता देवताः। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दिग्भ्यः स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाऽद्भ्यः
स्वाहा वरुणाय स्वाहा। नाभ्यै स्वाहा पूताय स्वाहा ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग शरीर के जलाने में (दिग्भ्यः) दिशाओं में हुतद्रव्य के पहुंचाने को (स्वाहा) सत्यक्रिया (चन्द्राय) चन्द्रलोक की प्राप्ति के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (नक्षत्रेभ्यः) नक्षत्रलोकों के प्रकाश की प्राप्ति के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (अद्भ्यः) जलों में चलने के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (वरुणाय) समुद्रादि में जाने के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (नाभ्यै) नाभि के जलने के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया और (पूताय) पवित्र करने के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया को सम्यक् प्रयुक्त करो ।।२।।

भावार्थः—मनुष्य लोग पूर्वोक्त विधि से शरीर जलाकर सब दिशाओं में शरीर के अवयवों को अग्निद्वारा पहुँचावें ।।२।।

वाच इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । वागादयो लिङ्गोक्ता देवताः । स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

वाचे स्वाहा प्राणाय स्वाहा प्राणाय स्वाहा ।
चक्षुषे स्वाहा चक्षुषे स्वाहा । श्रोत्राय स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा ।।३।।

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग मरे हुए शरीर के (वाचे) वाणी इन्द्रिय सम्बन्धी होम के लिये (स्वाहा) सुन्दरक्रिया (प्राणाय) शरीर के अवयवों को जगत् के प्राणवायु में पहुंचाने को (स्वाहा) सत्यक्रिया (प्राणाय) धनञ्जय वायु को प्राप्त होने के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (चक्षुषे) एक नेत्रगोलक के जलाने के लिये (स्वाहा) सुन्दर आहुति (चक्षुषे) दूसरे नेत्रगोलक के जलाने को (स्वाहा) अच्छी आहुति (श्रोत्राय) एक कान के विभाग के लिये (स्वाहा) सुन्दर आहुति (श्रोत्राय) दूसरे कान के विभाग के लिये (स्वाहा) यह शब्द कर घी की आहुति चिता में छोड़ो ।।३।।

भावार्थः—जो लोग सुगन्धियुक्त घृतादि सामग्री से मरे शरीर को जलावें वे पुण्यसेवी होते हैं ।।३।।

मनस इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । श्रीर्देवता । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीय ।
पशूनाᳬ रूपमन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा ।।४।।

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (स्वाहा) सत्यक्रिया से ऐसे आगे पीछे कहे प्रकार से मरे हुए शरीरों को जला के (मनसः) अन्तःकरण और (वाचः) वाणी के

(सत्यम्) विद्यमानों में उत्तम (कामम्) इच्छापूर्त्ति (आकूतिम्) उत्साह (पशूनाम्) गौ आदि के (रूपम्) सुन्दर स्वरूप को (अशीय) प्राप्त होऊं जैसे (मयि) मुझ जीवात्मा में (अन्नस्य) खाने योग्य अन्नादि के (रसः) मधुरादि रस (यशः) कीर्त्ति (श्रीः) शोभा वा ऐश्वर्य्य (श्रयताम्) आश्रय करें वैसे ही तुम इसको प्राप्त होओ और ये तुम में आश्रय करें ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सुन्दर विज्ञान उत्साह और सत्य वचनों से, मरे शरीरों को विधिपूर्वक जलाते हैं वे पशु प्रजा धनधान्य आदि को पुरुषार्थ से पाते हैं ॥४॥

प्रजापतिरित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रजापतिः सम्भ्रियमाणः सम्राट् सम्भृतो वैश्वदेवः
संᳫँसन्नो घर्मः प्रवृक्तस्तेज उद्यत आश्विनः
पयस्यानीयमाने पौष्णो विष्यन्दमाने मारुतः क्लथन्।
मैत्रः शरसि सन्ताय्यमाने वायव्यो
ह्रियमाण आग्नेयो हूयमानो वाग्घुतः ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जिस ईश्वर ने (सम्भ्रियमाणः) सम्यक् पोषण वा धारण किया हुआ (सम्राट्) सम्यक् प्रकाशमान (वैश्वदेवः) सब उत्तम जीव वा पदार्थों के सम्बन्धी (संसन्नः) सम्यक् प्राप्त होता हुआ (घर्मः) घाम रूप (तेजः) प्रकाश (प्रवृक्तः) शरीर से पृथक् हुआ (उद्यतः) ऊपर को चलता हुआ (आश्विन) प्राण अपान सम्बन्धी तेज (आनीयमाने) अच्छे प्रकार प्राप्त हुए (पयसि) जल में (पौष्णः) पृथिवी सम्बन्धी तेज (विष्यन्दमाने) विशेषकर प्राप्त हुए समय में (मारुतः) मनुष्यदेहसम्बन्धी तेज (क्लथन्) हिंसा करता हुआ (मैत्रः) मित्र प्राण-सम्बन्धी तेज (सन्ताय्यमाने) विस्तार किये वा पालन किये (शरसि) तालाब में (वायव्यः) वायुसम्बन्धी तेज (ह्रियमाणः) हरण किया हुआ (आग्नेयः) अग्निदेवता-सम्बन्धी तेज (हूयमानः) बुलाया हुआ (वाक्) बोलने वाला (हुतः) शब्द किया तेज और (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक जीव (सम्भृतः) सम्यक् पोषण वा धारण किया है उसी परमात्मा की तुम लोग उपासना करो ॥५॥

भावार्थः—जब यह जीव शरीर को छोड़ कर सब पृथिव्यादि पदार्थों में भ्रमण करता जहां तहां प्रवेश करता और इधर उधर जाता हुआ कर्मानुसार ईश्वर की व्यवस्था से जन्म पाता है तब ही सुप्रसिद्ध होता है ॥५॥

सवितेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । सवितादयो देवताः । विराड्धृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सविता प्रथमेऽहन्नग्निर्द्वितीये वायुस्तृतीयेऽआदित्यश्चतुर्थे चन्द्रमाः पञ्चमऽऋतुः षष्ठे मरुतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे मित्रो नवमे वरुणो दशमऽइन्द्रऽएकादशे विश्वे देवा द्वादशे ॥६॥

पदार्थः हे मनुष्यो ! इस जीव को (प्रथमे) शरीर छोड़ने के पहिले (अहन्) दिन (सविता) सूर्य (द्वितीये) दूसरे दिन (अग्निः) अग्नि (तृतीये) तीसरे (वायुः) वायु (चतुर्थे) चौथे (आदित्यः) महीना (पञ्चमे) पांचवें (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (षष्ठे) छठे (ऋतुः) वसन्तादि ऋतु (सप्तमे) सातवें (मरुतः) मनुष्यादि प्राणी (अष्टमे) आठवें (बृहस्पतिः) बड़ों का रक्षक सूत्रात्मा वायु (नवमे) नवमे में (मित्रः) प्राण (दशमे) दशवें में (वरुणः) उदान (एकादशे) ग्यारहवें में (इन्द्रः) बिजुली और (द्वादशे) बारहवें दिन (विश्वे) सब (देवाः) दिव्य उत्तम गुण प्राप्त होते हैं ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जब ये जीव शरीर को छोड़ते हैं तब सूर्य प्रकाश आदि पदार्थों को प्राप्त होकर कुछ काल भ्रमण कर अपने कर्मों के अनुकूल गर्भाशय को प्राप्त हो शरीर धारण कर उत्पन्न होते हैं तभी पुण्य पाप कर्म से सुख-दुःखरूप फलों को भोगते हैं ॥६॥

उग्रश्चेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । मरुतो देवता । भुरिग्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर कौन जीव किस गुण वाले हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च ।
सासह्वाँश्चाभियुग्वा च विक्षिपः स्वाहा ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! मरण को प्राप्त हुआ जीव (स्वाहा) अपने कर्म से (उग्रः) तीव्र स्वभाव वाला (च) शान्त (भीमः) भयकारी (च) निर्भय (ध्वान्तः) अन्धकार को प्राप्त (च) प्रकाश को प्राप्त (धुनिः) कांपता (च) निष्कम्प (सासह्वान्) शीघ्र सहनशील (च) न सहने वाला (अभियुग्वा) सब ओर से नियमधारी (च) सब से अलग और (विक्षेपः) विक्षेप को प्राप्त होता है ॥७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो जीव पापाचरणी हैं वे कठोर जो धर्मात्मा हैं वे शान्त जो भय देने वाले वे भीम शब्द वाच्य जो भय को प्राप्त हैं वे भीत शब्द वाच्य जो अभय देने वाले हैं वे निर्भय जो अविद्यायुक्त हैं वे अन्ध-

कार से झंपे जो विद्वान् योगी हैं वे प्रकाशयुक्त। जो जितेन्द्रिय नहीं हैं वे चञ्चल जो जितेन्द्रिय हैं वे चञ्चलतारहित अपने अपने कर्मफलों को सहते भोगते संयुक्त विक्षेप को प्राप्त हुए इस जगत् में नित्य भ्रमण करते हैं ऐसा जानो ॥७॥

अग्निमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। अग्न्यादयो लिङ्गोक्ता देवताः। निचृदत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

कौन मनुष्य दोनों जन्म में सुख पाते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अ॒ग्निꣳ हृद॑येना॒शनिꣳ॑ हृदया॒ग्रेण॑ पशु॒पतिं॑ कृत्स्नहृ॒द॑येन भ॒वं य॒क्ना।
श॒र्वं मत॑स्नाभ्यामीशा॑नं म॒न्युना॑ महा॒दे॒वम॑न्तः-
पर्शव्ये॒नो॒ग्रं दे॒वं व॑नि॒ष्ठुना॑ वसिष्ठहनुः शिङ्गी॑नि को॒श्याभ्या॑म् ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जो वे मरे हुए जीव (हृदयेन) हृदय रूप अवयव से (अग्निम्) अग्नि को (हृदयाग्रेण) हृदय के ऊपरले भाग से (अशनिम्) बिजुली को (कृत्स्नहृदयेन) संपूर्ण हृदय के अवयवों से (पशुपतिम्) पशुओं के रक्षक जगत् धारण कर्त्ता सब के जीवनहेतु परमेश्वर को (यक्ना) यकृत् रूप शरीर के अवयव से (भवम्) सर्वत्र होने वाले ईश्वर को (मतस्नाभ्याम्) हृदय के इधर उधर के अवयवों से (शर्वम्) विज्ञानयुक्त ईश्वर को (मन्युना) दुष्टाचारी और पाप के प्रति वर्त्तमान क्रोध से (ईशानम्) सब जगत् के स्वामी ईश्वर को (अन्तःपर्शव्येन) भीतरली पसुरियों के अवयवों में हुए विज्ञान से (महादेवम्) महादेव (उग्रम्, देवम्) तीक्ष्ण स्वभाव वाले प्रकाशमान ईश्वर को (वनिष्ठुना) आंत विशेष से (वसिष्ठहनुः) अत्यन्त वास के हेतु राजा के तुल्य ठोडी वाले जन को (कोश्याभ्याम्) पेट में हुए दो मांसपिण्डों से (शिङ्गीनि) जानने वा प्राप्त होने योग्य वस्तुओं को प्राप्त होते हैं ऐसा तुम लोग जानो ॥८॥

भावार्थः—जो मनुष्य शरीर के सब अङ्गों से धर्माचरण विद्याग्रहण सत्सङ्ग और जगदीश्वर की उपासना करते हैं वे वर्त्तमान और भविष्यत् जन्मों में सुखों को प्राप्त होते हैं ॥८॥

उग्रमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। उग्रादयो लिङ्गोक्ता देवताः। भुरिगष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

मनुष्य लोग कैसे उग्र स्वभाव आदि को प्राप्त होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उग्रं लोहितेन मित्रꣳ सौव्रत्येन रुद्रं दौर्व्रत्येनेन्द्रं
प्रक्रीडेन मरुतो बलेन साध्यान्प्रमुदा ।
भवस्य कण्ठ्यꣳ रुद्रस्यान्तः पार्श्व्यं महादेवस्य
यकृच्छर्वस्य वनिष्ठुः पशुपतेः पुरीतत् ॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! गर्भाशय में स्थित वा बाहर रहने वाले जीव (लोहितेन) शुद्ध रुधिर से (उग्रम्) तीव्र गुण (सौव्रत्येन) श्रेष्ठ कर्म से (मित्रम्) प्राण के तुल्य प्रिय (दौर्व्रत्येन) दुष्टाचरण से (रुद्रम्) रुलाने हारे (प्रक्रीडेन) उत्तम क्रीड़ा से (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य्य वा बिजुली (बलेन) बल से (मरुतः) उत्तम मनुष्यों को (प्रमुदा) उत्तम आनन्द से (साध्यान्) साधने योग्य पदार्थों को (भवस्य) प्रशंसा को प्राप्त होने वाले के (कण्ठ्यम्) कण्ठ में हुए स्वर (रुद्रस्य) दुष्टों को रुलाने हारे जन को (अन्त.पार्श्व्यम्) भीतर पसुरी में हुए (महादेवस्य) महादेव विद्वान् के (यकृत्) हृदय में स्थित लालपिण्ड के (शर्वस्य) सुखप्रापक मनुष्य का (वनिष्ठुः) आँत विशेष (पशुपतेः) पशुओं के रक्षक पुरुष के(पुरीतत्) हृदय की नाड़ी को प्राप्त होते हैं ॥९॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे देहधारी रुधिर आदि से तेजस्वी स्वभाव आदि को प्राप्त होते हैं वैसे ही गर्भाशय में भी प्राप्त होते हैं ॥९॥

लोमभ्य इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । आकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को भस्म होने तक शरीर का मन्त्रों से दाह करना चाहिये
इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

लोमभ्यः स्वाहा लोमभ्यः स्वाहा त्वचे स्वाहा त्वचे स्वाहा
लोहिताय स्वाहा लोहिताय स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा
मेदोभ्यः स्वाहा माꣳसेभ्यः स्वाहा माꣳसेभ्यः स्वाहा
स्नावभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहाऽस्थभ्यः
स्वाहाऽस्थभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा ।
रेतसे स्वाहा पायवे स्वाहा ॥१०॥

पदार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि दाहकर्म में घी आदि से (लोमभ्यः) त्वचा के ऊपरले बालों के लिये (स्वाहा) इस शब्द का (लोमभ्यः) नख आदि के लिये (स्वाहा) (त्वचे) शरीर की त्वचा जलाने को (स्वाहा) (त्वचे) भीतरली त्वचा

जलाने के लिये (स्वाहा) (लोहिताय) रुधिर जलाने को (स्वाहा) (लोहिताय) हृदय-स्थ रुधिर पिण्ड के जलाने को (स्वाहा) (मेदोभ्यः) चिकने धातुओं के जलाने को (स्वाहा) (मेदोभ्यः) सब शरीर के अवयवों को आर्द्र करने वाले भागों के जलाने को (स्वाहा) (मांसेभ्यः) बाहरले मांसों के जलाने को (स्वाहा) (मांसेभ्यः) भीतरले मांसों के जलाने के लिये (स्वाहा) (स्नावभ्यः) स्थूल नाड़ियों के जलाने को (स्वाहा) (स्नावभ्यः) सूक्ष्म नाड़ियों के जलाने को (स्वाहा) (अस्थभ्यः) शरीरस्थ कठिन अव-यवों के जलाने के लिये (स्वाहा) (अस्थभ्यः) सूक्ष्म अस्थिरूप अवयवों के जलाने को (स्वाहा) (मज्जभ्यः) हाड़ों के भीतर के धातुओं के लिये (स्वाहा) (मज्जभ्यः) उसके अन्तर्गत भाग के जलाने को (स्वाहा) (रेतसे) वीर्य के जलाने को (स्वाहा) और (पायवे) गुदारूप अवयव के दाह के लिये (स्वाहा) इस शब्द का निरन्तर प्रयोग करें ॥१०॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जब तक लोम से लेकर वीर्य्य पर्यन्त उस मृत शरीर का भस्म न हो तब तक घी और इन्धन डाला करो ॥१०॥

आयासायेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को जन्मान्तर में सुख के लिये क्या कर्त्तव्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आयासाय स्वाहा प्रायासाय स्वाहा संयासाय स्वाहा
वियासाय स्वाहोद्यासाय स्वाहा ।
शुचे स्वाहा शोचते स्वाहा शोचमानाय स्वाहा शोकाय स्वाहा ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग (आयासाय) अच्छे प्रकार प्राप्त होने को (स्वाहा) इस शब्द का (प्रायासाय) जाने के लिये (स्वाहा) (संयासाय) सम्यक् चलने के लिये (स्वाहा) (वियासाय) विविध प्रकार वस्तुओं की प्राप्ति को (स्वाहा) (उद्यासाय) ऊपर को जाने के लिये (स्वाहा) (शुचे) पवित्र के लिये (स्वाहा) (शोचते) शुद्धि करने वाले के लिये (स्वाहा) (शोचमानाय) विचार के प्रकाश के लिये (स्वाहा) और (शोकाय) जिस में शोक करते हैं उस के लिये (स्वाहा) इस शब्द का प्रयोग करो ॥११॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ-सिद्धि के लिये सत्य वाणी, बुद्धि और क्रिया का अनुष्ठान करें जिस से देहान्तर और जन्मान्तर में मङ्गल हो ॥११॥

तपस इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को किन साधनों से सुख प्राप्त करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तपसे स्वाहा तप्यते स्वाहा तप्यमानाय स्वाहा

तप्ताय स्वाहा घर्माय स्वाहा ।

निष्कृत्यै स्वाहा प्रायश्चित्यै स्वाहा भेषजाय स्वाहा ॥१२॥

पदार्थः—मनुष्यों को चाहिये (तपसे) प्रताप के लिये (स्वाहा) (तप्यते) सन्ताप को प्राप्त होने वाले के लिये (स्वाहा) (तप्यमानाय) ताप गर्मी को प्राप्त होने वाले के लिये (स्वाहा) (तप्ताय) तपे हुए के लिये (स्वाहा) (घर्माय) दिन के होने को (स्वाहा) (निष्कृत्यै) निवारण के लिये (स्वाहा) (प्रायश्चित्यै) पापनिवृत्ति के लिये (स्वाहा) और (भेषजाय) सुख के लिये (स्वाहा) इस शब्द का निरन्तर प्रयोग करें ॥१२॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि प्राणायाम आदि साधनों से सब किल्विष का निवारण करके सुख को स्वयं प्राप्त हों और दूसरों को प्राप्त करावें ॥१२॥

यमायेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यमाय स्वाहाऽन्तकाय स्वाहा मृत्यवे स्वाहा ब्रह्मणे स्वाहा

ब्रह्महत्यायै स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा

द्यावापृथिवीभ्याᳬं स्वाहा ॥१३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग (यमाय) नियन्ता न्यायाधीश वा वायु के लिये (स्वाहा) इस शब्द का (अन्तकाय) नाशकर्त्ता काल के लिये (स्वाहा) (मृत्यवे) प्राण-त्याग कराने वाले समय के लिये (स्वाहा) (ब्रह्मणे) बृहत्तम अति बड़े परमात्मा के लिये वा ब्राह्मण विद्वान् के लिये (स्वाहा) (ब्रह्महत्यायै) ब्रह्म वेद वा विद्वान् की हत्या के निवारण के लिये (स्वाहा) (विश्वेभ्यः) सब (देवेभ्यः) दिव्य गुणों से युक्त विद्वानों वा जलादि के लिये (स्वाहा) और (द्यावापृथिवीभ्याम्) सूर्य भूमि के शोधने के लिये (स्वाहा) इस शब्द का प्रयोग करो ॥१३॥

भावार्थः—जो मनुष्य न्यायव्यवस्था का पालन कर अल्पमृत्यु को

निवारण कर ईश्वर और विद्वानों का सेवन कर ब्रह्महत्यादि दोषों को छुड़ा के सृष्टिविद्या को जान के अन्त्येष्टिकर्मविधि करते हैं वे सब के मङ्गल देने वाले होते हैं सब काल में इस प्रकार मृतकशरीर को जला के सब सुख की उन्नति करनी चाहिये ॥१३॥

इस अध्याय में अन्त्येष्टि कर्म का वर्णन होने से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति है ऐसा जानना चाहिये ॥

उनतालीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

* ओ३म् *

अथ चत्वारिंशाऽध्यायारम्भः

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥

ईशावास्यमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । अनुष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब चालीसवें अध्याय का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में मनुष्य ईश्वर को जान के क्या करें इस विषय को कहा है ॥

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! तू (यत्) जो (इदम्) प्रकृति से लेकर पृथिवीपर्य्यन्त (सर्वम्) सब (जगत्याम्) प्राप्त होने योग्य सृष्टि में (जगत्) चरप्राणीमात्र (ईशा) संपूर्ण ऐश्वर्य से युक्त सर्वशक्तिमान् परमात्मा से (वास्यम्) आच्छादन करने योग्य अर्थात् सब ओर से व्याप्त होने योग्य है (तेन) उस (त्यक्तेन) त्याग किये हुए जगत् से (भुञ्जीथाः) पदार्थों के भोगने का अनुभव कर किन्तु (कस्य, स्वित्) किसी के भी (धनम्) वस्तुमात्र की (मा) मत (गृधः) अभिलाषा कर ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य ईश्वर से डरते हैं कि यह हम को सदा सब ओर से देखता है यह जगत् ईश्वर से व्याप्त और सर्वत्र ईश्वर विद्यमान है इस प्रकार व्यापक अन्तर्यामी परमात्मा का निश्चय करके भी अन्याय के आचरण से किसी का कुछ भी द्रव्य ग्रहण नहीं किया चाहते वे धर्मात्मा होकर इस लोक के सुख और परलोक में मुक्तिरूप सुख को प्राप्त कर के सदा आनन्द में रहें ॥१॥

कुर्वन्नित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब वेदोक्त कर्म की उत्तमता अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।।२।।

पदार्थः—मनुष्य (इह) इस संसार में (कर्माणि) धर्मयुक्त वेदोक्त निष्काम कर्मों को (कुर्वन्) करता हुआ (एव) ही (शतम्) सौ (समाः) वर्ष (जिजीविषेत्) जीवन की इच्छा करे (एवम्) इस प्रकार धर्मयुक्त कर्म में प्रवर्त्तमान (त्वयि) तुझ (नरे) व्यवहारों को चलाने हारे जीवन के इच्छुक होते हुए (कर्म) अधर्मयुक्त अवैदिक काम्यकर्म (न) नहीं (लिप्यते) लिप्त होता (इतः) इस से जो और प्रकार से (न, अस्ति) कर्म लगाने का अभाव नहीं होता है ।।२।।

भावार्थः—मनुष्य आलस्य को छोड़ कर सब देखने हारे न्यायाधीश परमात्मा और करने योग्य उस की आज्ञा को मान कर शुभ कर्मों को करते हुए और अशुभ कर्मों को छोड़ते हुए ब्रह्मचर्य के सेवने से विद्या और अच्छी शिक्षा को पाकर उपस्थ इन्द्रिय के रोकने से पराक्रम को बढ़ा कर अल्पमृत्यु को हटावें, युक्त आहार विहार से सौ वर्ष की आयु को प्राप्त होवें। जैसे जैसे मनुष्य सुकर्मों में चेष्टा करते हैं वैसे वैसे ही पापकर्म से बुद्धि की निवृत्ति होती है और विद्या, अवस्था और सुशीलता बढ़ती है ।।२।।

असुर्य्या इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ।।

अब आत्मा के हननकर्त्ता अर्थात् आत्मा को भूले हुए जन कैसे होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः ।
ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ।।३।।

पदार्थः—जो (लोकाः) देखने वाले लोग (अन्धेन) अन्धकाररूप (तमसा) ज्ञान का आवरण करनेहारे अज्ञान से (आवृताः) सब ओर से ढंपे हुए (च) और (ये) जो (के) कोई (आत्महनः) आत्मा के विरुद्ध आचरण करने हारे (जनाः) मनुष्य हैं (ते) वे (असुर्य्याः) अपने प्राणपोषण में तत्पर अविद्यादि दोषयुक्त लोगों के सम्बन्धी के सदृश पापकर्म करने वाले (नाम) प्रसिद्ध हैं (ते) वे (प्रेत्य) मरने के पीछे (अपि) और जीते हुए भी (तान्) उन दुःख और अज्ञानरूप अन्धकार से युक्त भोगों को (गच्छन्ति) प्राप्त होते हैं ।।३।।

भावार्थः—वे ही मनुष्य असुर, दैत्य, राक्षस तथा पिशाच आदि हैं जो आत्मा में और जानते, वाणी से और बोलते और करते कुछ और ही हैं। वे कभी अविद्यारूप दुःखसागर से पार हो आनन्द को नहीं प्राप्त हो सकते। और जो आत्मा मन वाणी और कर्म से निष्कपट एकसा आचरण करते हैं वे ही देव आर्य्य सौभाग्यवान् सब जगत् को पवित्र करते हुए इस लोक और परलोक में अतुल सुख भोगते हैं ॥३॥

अनेजदित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। ब्रह्म देवता। निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

कैसा जन ईश्वर को साक्षात् करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो! (जो) (एकम्) अद्वितीय (अनेजत्) नहीं कंपने वाला अर्थात् अचल; अपनी अवस्था से हटना कंपन कहाता है उस से रहित (मनसः) मन के वेग से भी (जवीयः) अति वेगवान् (पूर्वम्) सब से आगे (अर्षत्) चलता हुआ अर्थात् जहां कोई चलकर जावे वहां प्रथम ही सर्वत्र व्याप्ति से पहुंचता हुआ ब्रह्म है (एनत्) इस पूर्वोक्त ईश्वर को (देवाः) चक्षु आदि इन्द्रिय (न) नहीं (आप्नुवन्) प्राप्त होते (तत्) वह परब्रह्म अपने आप (तिष्ठत्) स्थिर हुआ अपनी अनन्तव्याप्ति से (धावतः) विषयों की ओर गिरते हुए (अन्यान्) आत्मा के स्वरूप से विलक्षण मन वाणी आदि इन्द्रियों का (अति, एति) उल्लङ्घन कर जाता है (तस्मिन्) उस सर्वत्र अभिव्याप्त ईश्वर की स्थिरता में (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष में प्राणों को धारण करनेहारे वायु के तुल्य जीव (अपः) कर्म वा क्रिया को (दधाति) धारण करता है यह जानो ॥४॥

भावार्थः—ब्रह्म के अनन्त होने से जहां जहां मन जाता है वहां वहां प्रथम से ही अभिव्याप्त पहिले से ही स्थिर ब्रह्म वर्त्तमान है उस का विज्ञान शुद्ध मन से होता है वह चक्षु आदि इन्द्रियों और अविद्वानों से देखने योग्य नहीं है। वह आप निश्चल हुआ सब जीवों को नियम से चलाता और धारण करता है। उसके अतिसूक्ष्म इन्द्रियगम्य न होने के कारण धर्मात्मा विद्वान् योगी को ही उसका साक्षात् ज्ञान होता है अन्य को नहीं ॥४॥

तदेजतीत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

विद्वानों के निकट और अविद्वानों के ब्रह्म दूर है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तदे॑जति॒ तन्नैज॑ति॒ तद्दू॒रे तद्व॑न्ति॒के ।
तद॒न्तर॑स्य॒ सर्व॑स्य॒ तदु॒ सर्व॑स्यास्य बाह्य॒तः ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (तत्) वह ब्रह्म (एजति) मूर्खों की दृष्टि से चलायमान होता (तत्) (न, एजति) अपने स्वरूप से न चलायमान और न चलाया जाता (तत्) वह (दूरे) अधर्मात्मा अविद्वान् अयोगियों से दूर अर्थात् क्रोड़ों वर्ष में भी नहीं प्राप्त होता (तत्) वह (उ) ही (अन्तिके) धर्मात्मा विद्वान् योगियों के समीप (तत्) वह (अस्य) इस (सर्वस्य) सब जगत् वा जीवों के (अन्तः) भीतर (उ) और (तत्) वह (अस्य, सर्वस्य) इस प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्षरूप जगत् के (बाह्यतः) बाहर भी वर्त्तमान है ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! वह ब्रह्म मूढ़ की दृष्टि में कम्पता जैसा है वह आप व्यापक होने से कभी नहीं चलायमान होता जो जन उसकी आज्ञा से विरुद्ध हैं वे इधर उधर भागते हुए भी उसको नहीं जानते और जो ईश्वर की आज्ञा का अनुष्ठान करने वाले हैं वे अपने आत्मा में स्थित अतिनिकट ब्रह्म को प्राप्त होते हैं जो ब्रह्म सब प्रकृति आदि के बाहर भीतर अवयवों में अभिव्याप्त होके अन्तर्यामिरूप से सब जीवों के सब पाप पुण्यरूप कर्मों को जानता हुआ यथार्थ फल देता है वही सब को ध्यान में रखना चाहिये और उसी से सब को डरना चाहिये ॥५॥

यस्त्वित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब ईश्वर विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यस्तु सर्वा॑णि भू॒तान्या॒त्मन्ने॒वानु॒पश्य॑ति ।
स॒र्व॒भू॒तेषु॑ चा॒त्मानं॒ ततो॒ न वि चि॑कित्सति ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो विद्वान् जन (आत्मन्) परमात्मा के भीतर (एव) ही (सर्वाणि) सब (भूतानि) प्राणी अप्राणियों को (अनु) (पश्यति) विद्या धर्म और योगाभ्यास करने के पश्चात् ध्यानदृष्टि से देखता है (तु) और जो (सर्वभूतेषु) सब प्रकृत्यादि पदार्थों में (आत्मानम्) आत्मा को (च) भी देखता है वह विद्वान् (ततः) तिस पीछे (न) नहीं (विचिकित्सति) संशय को प्राप्त होता ऐसा तुम जानो ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो लोग सर्वव्यापी न्यायकारी सर्वज्ञ सनातन सब के आत्मा अन्तर्यामी सब के द्रष्टा परमात्मा को जान कर सुख दुःख

हानि लाभों में अपने आत्मा के तुल्य सब प्राणियों को जान कर धार्मिक होते हैं वे ही मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥६॥

यस्मिन्नित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। निचृदनुष्टुप्छन्दः।
गान्धारः स्वरः॥

अब कौन अविद्यादि दोषों को त्यागते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! (यस्मिन्) जिस परमात्मा, ज्ञान, विज्ञान वा धर्म में (विजानतः) विशेष कर ध्यानदृष्टि से देखते हुए को (सर्वाणि) सब (भूतानि) प्राणिमात्र (आत्मा, एव) अपने तुल्य ही सुख दुःख वाले (अभूत्) होते हैं (तत्र) उस परमात्मा आदि में (एकत्वम्) अद्वीतीय भाव को (अनु, पश्यतः) अनुकूल योगाभ्यास से साक्षात् देखते हुए योगिजन को (कः) कौन (मोहः) मूढ़ावस्था और (कः) कौन (शोकः) शोक वा क्लेश होता है अर्थात् कुछ भी नहीं ॥७॥

भावार्थः—जो विद्वान् संयासी लोग परमात्मा के सहचारी प्राणिमात्र को अपने आत्मा के तुल्य जानते हैं अर्थात् जैसे अपना हित चाहते वैसे ही अन्यों में भी वर्त्तते हैं एक अद्वितीय परमेश्वर के शरण को प्राप्त होते हैं उन को मोह शोक और लोभादि कदाचित् प्राप्त नहीं होते। और जो लोग अपने आत्मा को यथावत् जान कर परमात्मा को जानते हैं वे सुखी सदा होते है ॥७॥

स पर्य्यगादित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। स्वराड्जगती छन्दः।
निषादः स्वरः॥

फिर परमेश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽ
र्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जो ब्रह्म (शुक्रम्) शीघ्रकारी सर्वशक्तिमान् (अकायम्) स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीर से रहित (अव्रणम्) छिद्ररहित और नहीं छेद करने योग्य (अस्नाविरम्) नाड़ी आदि के साथ सम्बन्धरूप बन्धन से रहित (शुद्धम्) अविद्यादि दोषों से रहित होने से सदा पवित्र और (अपापविद्धम्) जो पाप-

युक्त पापकारी और पाप में प्रीति करने वाला कभी नहीं होता (परि, अगात्) जो सब ओर से व्याप्त है जो (कविः) सर्वज्ञ (मनीषी) सब जीवों के मनों की वृत्तियों को जानने वाला (परिभूः) दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला और (स्वयम्भूः) अनादि स्वरूप जिस की संयोग से उत्पत्ति वियोग से विनाश माता पिता गर्भवास जन्म वृद्धि और मरण नहीं होते वह परमात्मा (शाश्वतीभ्यः) सनातन अनादिस्वरूप अपने अपने स्वरूप से उत्पत्ति और विनाशरहित (समाभ्यः) प्रजाओं के लिये (याथातथ्यतः) यथार्थ भाव से (अर्थान्) वेद द्वारा सब पदार्थों को (व्यदधात्) विशेष कर बनाता है वही परमेश्वर तुम लोगों को उपासना करने के योग्य है ॥८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो अनन्त शक्तियुक्त अजन्मा निरन्तर सदा मुक्त न्यायकारी निर्मल सर्वज्ञ सब का साक्षी नियन्ता अनादिस्वरूप ब्रह्म कल्प के आरम्भ में जीवों को अपने कहे वेदों से शब्द, अर्थ और उनके सम्बन्ध को जनाने वाली विद्या का उपदेश न करे तो कोई विद्वान् न होवे और न धर्म अर्थ काम और मोक्ष के फलों के भोगने को समर्थ हो इसलिये इसी ब्रह्म की सदैव उपासना करो ॥८॥

अन्धन्तम इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

कौन मनुष्य अन्धकार को प्राप्त होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।
ततो भूयऽइव ते तमो यऽउ सम्भूत्याᳬं रताः ॥९॥

पदार्थः—(ये) जो लोग परमेश्वर को छोड़ कर (असम्भूतिम्) अनादि अनुत्पन्न सत्व रज और तमोगुणमय प्रकृतिरूप जड़ वस्तु को (उपासते) उपास्यभाव से जानते हैं वे (अन्धम्, तमः) आवरण करने वाले अन्धकार को (प्रविशन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त होते और (ये) जो (सम्भूत्याम्) महत्तत्वादि स्वरूप से परिणाम को प्राप्त हुई सृष्टि में (रताः) रमण करते हैं (ते) वे (उ) वितर्क के साथ (ततः) उस से (भूय इव) अधिक जैसे वैसे (तमः) अविद्यारूप अन्धकार को प्राप्त होते हैं ॥९॥

भावार्थः—जो मनुष्य समस्त जड़ जगत् के अनादि नित्य कारण का उपासना भाव से स्वीकार करते हैं वे अविद्या को प्राप्त होकर क्लेश को प्राप्त होते और जो उस कारण से उत्पन्न स्थूल सूक्ष्म कार्य्यकारणाख्य अनित्य संयोगजन्य कार्य्यजगत् को इष्ट उपास्य मानते हैं वे गाढ़ अविद्या

को पाकर अधिकतर क्लेश को प्राप्त होते हैं इसलिये सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा की ही सब सदा उपासना करें ॥९॥

अन्यदित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अन्यदे॒वाहुः स॑म्भ॒वाद॒न्यदा॑हु॒रस॑म्भवात् ।
इति॑ शुश्रु॒म धीरा॑णां॒ ये न॒स्तद्वि॑चचक्षि॒रे ॥१०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (धीराणाम्) मेधावी योगी विद्वानों से जो वचन (शुश्रुम) सुनते हैं (ये) जो वे लोग (नः) हमारे प्रति (विचचक्षिरे) व्याख्यानपूर्वक कहते हैं वे लोग (सम्भवात्) संयोग जन्य कार्य्य से (अन्यत्, एव) और ही कार्य्य वा फल (आहुः) कहते (असम्भवात्) उत्पन्न नहीं होने वाले कारण से (अन्यत्) और (आहुः) कहते हैं (इति) इस बात को तुम भी सुनो ॥१०॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् लोग कार्य्यकारण रूप वस्तु से भिन्न भिन्न वक्ष्यमाण उपकार लेते और लिवाते हैं तथा उन कार्य्यकारण के गुणों को जानकर जनाते हैं । ऐसे ही तुम लोग भी निश्चय करो ॥१०॥

सम्भूतिमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कार्य्यकारण से क्या क्या सिद्ध करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सम्भू॑तिं च वि॒नाशं॑ च॒ यस्तद्वेदो॒भयं॑ᳫं सह ।
वि॒ना॒शेन॑ मृ॒त्युं ती॒र्त्वा सम्भू॑त्या॒मृत॑मश्नुते ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो विद्वान् (सम्भूतिम्) जिस में सब पदार्थ उत्पन्न होते उस कार्यरूप सृष्टि (च) और उस के गुण, कर्म स्वभावों को तथा (विनाशम्) जिस में पदार्थ नष्ट होते उस कारणरूप जगत् (च) और उसके गुण, कर्म्म, स्वभावों को (सह) एक साथ (उभयम्) दोनों (तत्) उन कार्य्य और कारण स्वरूपों को (वेद) जानता है वह विद्वान् (विनाशेन) नित्यस्वरूप जाने हुए कारण के साथ (मृत्युम्) शरीर छूटने के दुःख से (तीर्त्वा) पार होकर (सम्भूत्या) शरीर इन्द्रिय और अन्तःकरणरूप उत्पन्न हुई कार्यरूप धर्म में प्रवृत्त कराने वाली सृष्टि के साथ (अमृतम्) मोक्षसुख को (अश्नुते) प्राप्त होता है ॥११॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! कार्य्यकारणरूप वस्तु निरर्थक नहीं है किन्तु कार्यकारण के गुण कर्म और स्वभावों को जान कर धर्म आदि मोक्ष के

साधनों में संयुक्त करके अपने शरीरादि कार्यकारण को नित्यत्व से जान के मरण का भय छोड़ कर मोक्ष की सिद्धि करो। इस प्रकार कार्यकारण से अन्य ही फल सिद्ध करना चाहिये। इन कार्यकारण का निषेध परमेश्वर के स्थान में जो उपासना उस प्रकरण में करना चाहिये ॥११॥

अन्धन्तमः इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः॥ गान्धारः स्वरः॥

अब विद्या अविद्या की उपासना का फल कहते हैं॥

अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूयऽइव ते तमो यऽउ विद्यायाꣳ रताः ॥१२॥

पदार्थः—(ये) जो मनुष्य (अविद्याम्) अनित्य में नित्य, अशुद्ध में शुद्ध, दुःख में सुख और अनात्मा शरीरादि में आत्मबुद्धिरूप अविद्या उस की अर्थात् ज्ञानादि गुणरहित कारणरूप परमेश्वर से भिन्न जड़ वस्तु की (उपासते) उपासना करते हैं वे (अन्धम्, तमः) दृष्टि के रोकने वाले अन्धकार और अत्यन्त अज्ञान को (प्र, विशन्ति) प्राप्त होते हैं और (ये) जो अपने आत्मा को पण्डित मानने वाले (विद्यायम्) शब्द, अर्थ और इनके सम्बन्ध के जानने मात्र अवैदिक आचरण में (रताः) रमण करते (ते) वे (उ) भी (ततः) उस से (भूय इव) अधिकतर (तमः) अज्ञानरूपी अन्धकार में प्रवेश करते हैं॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो जो चेतन ज्ञानादि गुणयुक्त वस्तु है वह जानने वाला, जो अविद्यारूप है वह जानने योग्य है और जो चेतन ब्रह्म तथा विद्वान् का आत्मा है वह उपासना के योग्य है जो इससे भिन्न है वह उपास्य नहीं है किन्तु उपकार लेने योग्य है। जो मनुष्य अविद्या अस्मिता राग द्वेष और अभिनिवेश नामक क्लेशों से युक्त हैं वे परमेश्वर को छोड़ इससे भिन्न जड़ वस्तु की उपासना कर महान् दुःखसागर में डूबते हैं और जो शब्द अर्थ का अन्वयमात्र संस्कृत पढ़कर सत्यभाषण पक्षपातरहित न्याय का आचरण रूप धर्म नहीं करते अभिमान में आरूढ़ हुए विद्या का तिरस्कार कर अविद्या को ही मानते हैं वे अत्यन्त तमोगुणरूप दुःखसागर में निरन्तर पीड़ित होते हैं॥१२॥

अन्यदित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब जड़ चेतन का भेद कहते हैं॥

अन्यदेवाहुर्विद्यायाऽअन्यदाहुरविद्यायाः ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥१३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् लोग (नः) हमारे लिये (विचचक्षिरे) व्याख्यापूर्वक कहते थे (विद्यायाः) पूर्वोक्त विद्या का (अन्यत्) अन्य ही कार्य वा फल (आहुः) कहते थे (अविद्यायाः) पूर्व मन्त्र से प्रतिपादन की अविद्या का (अन्यत्) अन्य फल (आहुः) कहते हैं इस प्रकार उन (धीराणाम्) आत्मज्ञानी विद्वानों से (तत्) उस वचन को हम लोग (शुश्रुम) सुनते थे ऐसा जानो ॥१३॥

भावार्थः—अनादि गुणयुक्त चेतन से जो उपयोग होने योग्य है वह अज्ञानयुक्त जड़ से कदापि नहीं और जो जड़ से प्रयोजन सिद्ध होता है वह चेतन से नहीं । सब मनुष्यों को विद्वानों के संग, योग, विज्ञान और धर्माचरण से इन दोनों का विवेक करके दोनों से उपयोग लेना चाहिये ॥१३॥

विद्यामित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । स्वराडुष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳ सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥१४॥

पदार्थः—(यः) जो विद्वान् (विद्याम्) पूर्वोक्त विद्या (च) और उस के सम्बन्धी साधन उपसाधनों को (अविद्याम्) पूर्व कही अविद्या (च) और इसके उपयोगी साधन समूह को और (तत्) उस ध्यानगम्य मर्म (उभयम्) इन दोनों को (सह) साथ ही (वेद) जानता है वह (अविद्यया) शरीरादि जड़ पदार्थसमूह से किये पुरुषार्थ से (मृत्युम्) मरणदुःख के भय को (तीर्त्वा) उल्लङ्घ कर (विद्यया) आत्मा और शुद्ध अन्तःकरण के संयोग में जो धर्म उस से उत्पन्न हुए यथार्थ दर्शनरूप विद्या से (अमृतम्) नाशरहित अपने स्वरूप वा परमात्मा को (अश्नुते) प्राप्त होता है ॥१४॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्या और अविद्या को उनके स्वरूप से जान कर इन के जड़ चेतन साधक हैं ऐसा निश्चय कर सब शरीरादि जड़ पदार्थ और चेतन आत्मा को धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि के लिये साथ ही प्रयोग करते हैं वे लौकिक दुःख को छोड़ परमार्थ के सुख को प्राप्त होते हैं। जो जड़ प्रकृति आदि कारण वा शरीरादि कार्य्य न हो तो परमेश्वर जगत् की उत्पत्ति और जीव कर्म उपासना और ज्ञान के करने को कैसे समर्थ

हो। इससे न केवल जड़ न केवल चेतन से अथवा न केवल कर्म से तथा न केवल ज्ञान से कोई धर्मादि पदार्थों की सिद्धि करने में समर्थ होता है ॥१४॥

वायुरित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। स्वराडुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अब देहान्त के समय क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम्।
ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतꣳ स्मर ॥१५॥

पदार्थः—हे (क्रतो) कर्म करने वाले जीव! तू शरीर छूटते समय (ओ३म्) इस नामवाच्य ईश्वर को (स्मर) स्मरण कर (क्लिबे) अपने सामर्थ्य के लिये परमात्मा और अपने स्वरूप का (स्मर) स्मरण कर (कृतम्) अपने किये का (स्मर) स्मरण कर। इस संस्कार का (वायुः) धनञ्जयादिरूप वायु (अनिलम्) कारणरूप वायु को, कारणरूप वायु (अमृतम्) अविनाशी कारण को धारण करता (अथ) इसके अनन्तर (इदम्) यह (शरीरम्) नष्ट होने वाला सुखादि का आश्रय शरीर (भस्मान्तम्) अन्त में भस्म होने वाला होता है ऐसा जानो॥१५॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जैसी मृत्यु समय में चित्त की वृत्ति होती है और शरीर से आत्मा का पृथक् होना होता है वैसे ही इस समय भी जानें। इस शरीर की जलाने पर्य्यन्त क्रिया करें। जलाने पश्चात् शरीर का कोई संस्कार न करें। वर्त्तमान समय में एक परमेश्वर की ही आज्ञा का पालन उपासना और अपने सामर्थ्य को बढ़ाया करें। किया हुआ कर्म निष्फल नहीं होता ऐसा मान कर धर्म में रुचि और अधर्म में अप्रीति किया करें॥१५॥

अग्ने नयेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

ईश्वर किन मनुष्यों पर कृपा करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥१६॥

पदार्थः—हे (देव) दिव्यस्वरूप (अग्ने) प्रकाशस्वरूप करुणामय जगदीश्वर! जिस से हम लोग (ते) आप के लिये (भूयिष्ठाम्) अधिकतर (नमउक्तिम्) सत्कारपूर्वक प्रशंसा का (विधेम) सेवन करें, इससे (विद्वान्) सब को जानने वाले आप

(अस्मत्) हम लोगों से (जुहुराणम्) कुटिलतारूप (एनः) पापाचरण को (युयोधि) पृथक् कीजिये (अस्मान्) हम जीवों को (राये) विज्ञान धन वा धन से हुए सुख के लिये (सुपथा) धर्मानुकूल मार्ग से (विश्वानि) समस्त (वयुनानि) प्रशस्त ज्ञानों को (नय) प्राप्त कीजिये ॥१६॥

भावार्थः—जो सत्यभाव से परमेश्वर की उपासना करते यथाशक्ति उसकी आज्ञा का पालन करते और सर्वोपरि सत्कार के योग्य परमात्मा को मानते हैं उनको दयालु ईश्वर पापाचरणमार्ग से पृथक् कर धर्मयुक्त मार्ग में चला के विज्ञान देकर धर्म अर्थ काम और मोक्ष को सिद्ध करने के लिये समर्थ करता है इससे एक अद्वितीय ईश्वर को छोड़ किसी की उपासना कदापि न करें ॥१६॥

हिरण्मयेनेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

अब अन्त में मनुष्यों को ईश्वर उपदेश करता है ॥

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् । ओ३म् खं ब्रह्म ॥१७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जिस (हिरण्मयेन) ज्योतिःस्वरूप (पात्रेण) रक्षक मुझ से (सत्यस्य) अविनाशी यथार्थ कारण के (अपिहितम्) आच्छादित (मुखम्) मुख के तुल्य उत्तम अङ्ग का प्रकाश किया जाता (यः) जो (असौ) वह (आदित्ये) प्राण वा सूर्य्यमण्डल में (पुरुषः) पूर्ण परमात्मा है (सः) वह (असौ) परोक्षरूप (अहम्) मैं (खम्) आकाश के तुल्य व्यापक (ब्रह्म) सब से गुण कर्म और स्वरूप करके अधिक हूं (ओ३म्) सब का रक्षक जो मैं उसका (ओ३म्) ऐसा नाम जानो ॥१७॥

भावार्थः—सब मनुष्यों के प्रति ईश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो! जो मैं यहां हूं वही अन्यत्र सूर्य्यादि लोक में जो अन्यस्थान सूर्य्यादि लोक में हूँ वही यहां हूं सर्वत्र परिपूर्ण आकाश के तुल्य व्यापक मुझ से भिन्न कोई बड़ा नहीं मैं ही सबसे बड़ा हूँ। मेरे सुलक्षणों से युक्त पुत्र के तुल्य प्राणों से प्यारा मेरा निज नाम "ओ३म्" यह है। जो मेरा प्रेम और सत्याचरण से शरण लेता अन्तर्यामीरूप से मैं उसकी अविद्या का विनाश कर उसके आत्मा का प्रकाश करके शुभ गुण कर्म स्वभाव वाला कर सत्यस्वरूप का आवरण स्थिर कर योग से हुए विज्ञान को दे और सब दुःखों से अलग करके मोक्षसुख को प्राप्त कराता हूं। इति ॥१७॥

इस अध्याय में ईश्वर के गुणों का वर्णन, अधर्म त्याग का उपदेश,

सब काल में सत् कर्म के अनुष्ठान की आवश्यकता, अधर्माचरण की निन्दा, परमेश्वर के अतिसूक्ष्म स्वरूप का वर्णन, विद्वान् को जानने योग्य का होना, अविद्वान् को अज्ञेयपन का होना, सर्वत्र आत्मा जान के अहिंसा धर्म की रक्षा, उससे मोह शोकादि का त्याग, ईश्वर का जन्मादि दोषरहित होना, वेदविद्या का उपदेश, कार्य्य कारण रूप जड़ जगत् की उपासना का निषेध, उन कार्य्य कारणों से मृत्यु का निवारण करके मोक्षादि सिद्धि करना, जड़ वस्तु की उपासना का निषेध, चेतन की उपासना की विधि, उन जड़ चेतन दोनों के स्वरूप के जानने की आवश्यकता, शरीर के स्वभाव का वर्णन, समाधि से परमेश्वर को अपने आत्मा में धर के शरीर त्यागना, शरीर दाह के पश्चात् अन्य क्रिया के अनुष्ठान का निषेध, अधर्म के त्याग और धर्म के बढ़ाने के लिये परमेश्वर की प्रार्थना, ईश्वर के स्वरूप का वर्णन और सब नामों से "ओ३म्" इस नाम की उत्तमता का प्रतिपादन किया है। इससे इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्वाध्याय में कहे अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये ॥

चालीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्याणां श्रीपरमविदुषां विरजानन्द-सरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिते यजुर्वेदभाषाभाष्ये चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः समाप्तः।

समाप्तश्चायं ग्रन्थ इति ॥

मार्गशीर्ष कृष्ण १ शनौ संवत् १९३९ में समाप्त किया
वैशाख शुक्ल ११ शनौ संवत् १९४६ में छप कर समाप्त हुआ ॥

---

* ओ३म् *

वेदभाष्य के लिये दानदाता महानुभाव

जिन्होंने ५०००) रुपया प्रदान किया

१. श्री मन्त्रीजी आर्यसमाज काकड़वाड़ी, गिरगांव, वी० पी० रोड वम्बई ५०००)
२. श्री जयदेवजी आर्य, ३१० सत्य बिंडिल्ग, पीपं सर्किल, वम्बई-२२ ५०००)
३. श्री ओ० पी० गोयल-मैसर्स एयर ट्रांसपोर्ट कार्पोरेशन, ३/५ आसफअली रोड नई दिल्ली-१ ५०००)
४. मैसर्स रैनवक्सी लेबोरेट्रीज प्रा० लिमिटेड, ओखला, नई दिल्ली ५०००)
५. श्री सरदारीलालजी अग्रवाल, C/O वेल्डन इलैक्ट्रिकल्स प्रा० लि० वम्बई ५०००)
६. श्री सेठ योगेन्द्र भाई मफतलालजी वम्बई ५०००)
७. श्री आदित्य प्रतापसिंह छूरजी, कच्छ कैसल, वी० पी० रोड, वम्बई ५०००)
८. श्री सेठ धरमसी मूलराज खटाऊ, दि खटाऊ मकनजी स्पिनिंग एण्ड वीविंग कं० लि०, लक्ष्मी बिल्डिंग, बेलार्ड स्ट्रीट, वम्बई-१ ५०००)
९. श्री सदा जीवितलालजी, पंजाबी चन्दू हलवाई, वम्बई ५०००)
१०. श्री पी० डी० सिंहजी, राजगृह, २९ रास्ता, वान्द्रा, वम्बई- ५०००)
११. श्री मा० शिवचरणदास जी, ११३ दरियागंज, दिल्ली-६ ५०००)

जिन्होंने २०००) रु० प्रदान किया

१. श्री आर० के० मेहरा चेरिटेबल ट्रस्ट, द्वारा श्री मोहनलाल भयाना, सी० ५४ महारानी बाग, नई दिल्ली-१४ २०००)

जिन्होंने १००१) रु० प्रदान किया

१. श्री जगदीश चड्डाजी द्वारा पावर इंजीनीयरिंग कम्पनी, ४९५।४९७ कालबादेवी रोड, वम्बई-२ १००१)

२. मैसर्स मोहिन्द्रनाथ एण्ड कम्पनी, डब्ल्यू ६०, ग्रेटर कैलास, नई दिल्ली १००१)
३. श्री के० एस० दिग्विजय सिंह जी, दरबारगढ़ खरेड़ी,
जामनगर (गुजरात) १००१)
४. श्री जोशी बुढ़ा काका महिम हलवा वाला बम्बई १००१)
५. श्री मैसर्स व्रजवासी दुग्धालय प्रा० लि० कालबादेवी रोड बम्बई १००१)

जिन्होंने १०००) रु० प्रदान किया

१. श्री डा० दुःखनराम जी, व्रजकिशोर पथ, पटना (बिहार) १०००)
२. श्री बा० सोमनाथ जी मरवाहा एडवोकेट, ८ मलकागंज, दिल्ली-७ १०००)
३. श्री दीवान रामशरणदास जी मण्डी केसरगंज, लुधियाना १०००)
४. श्री सेठ भगवतीप्रसाद जी गुप्त, सागर विहार होटल,
८९ डिमोली रोड बम्बई-९ १०००)
६. श्री बाबूलालजी गुप्त, बुद्धिभवन, सूबे की गोठ, लश्कर (ग्वालियर) १०००)
७. श्री पं० मनोहर जी विद्यालंकार, ईश्वरभवन, खारीबावली, दिल्ली-६ १०००)
८. श्री ला० ज्योति प्रसादजी प्रधान आर्यसमाज दीवानहाल, दिल्ली-६ १०००)
९. श्री गजानन्द जी आर्य, ९६ मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता-७ १०००)
१०. श्री राय साहब चौधरी प्रतापसिंह जी, माडल टाऊन, करनाल १०००)
११. श्री ला० दीवानचन्द जी, ३३ बी पूसा रोड, नई दिल्ली-५ १०००)
१२. श्री सत्याचरण शर्मा, रिटायर्ड फोरेस्टरेंजर, पाटी गली के
आगे, मुहल्ला छपेटी, इटावा (उ० प्र०) १०००)
१३. श्री स्वामी देवानन्द जी महाराज ग्राम कुनकुरा पो० इंचौली (मेरठ) १०००)
१४. श्रीमती प्रेमदेवी दर्गन, द्वारा श्री आसकरन दास सरदाना,
८, सरक्यूलर एवेन्यू, ईस्ट नांगल टाऊन शिप (पंजाब) १०००)
१५. श्री गोविन्द भाई के० नन्दवाना, २५६-सरदार वल्लभभाई पटेल
मार्ग बम्बई-४ १०००)
१६. श्री ओम्प्रकाश जी मेहरा, प्रेम कुटीर, थर्डफ्लोर, मैरिन ड्राईव, बम्बई १०००)
१७. श्री रतनचन्द जी सूद, श्री रतनचन्द चैरीटेबलट्रस्ट,
१९ गाल्फलिंक रोड, नई दिल्ली-३ १०००)
१८. श्री गुलजारीलाल जी आर्य, ८०।८२ नागदेवी स्ट्रीट, बम्बई-३ १०००)
१९. श्री गण्डाराम जी मेहता, भारत टिम्बर, रे० रोड, बम्बई-१० १०००)
२०. श्री जीवनदास जी चरला, हंसराज कालेज के सामने, मलकागंज,
दिल्ली-७ १०००)

२१. श्री हरिश्चन्द्र जी खन्ना, म० न० ३४७, गली परजा, अमृतसर १०००)
२२. श्री डा० जगन्नाथ जी, भगवती देवी, कूचा घासीराम, दिल्ली-६ १०००)
२३. श्रीमती माता जानकी देवी जी तथा पुत्र श्री किशनदास जी, २६५ कूचा घासीराम, फतेहपुरी, दिल्ली-६ १०००)
२४. मैसर्स अमर डाई स्टफस कम्पनी, अतुल प्रोडक्ट्स, क्लाथ मार्केट दिल्ली-६ १०००)
२५. श्री मन्त्री जी आर्यसमाज , आर्यसमाज रोड, जामनगर (गुजरात) १०००)
२६. श्री रामजी प्रसाद गुप्त, पूर्णमासी भवन, मुगलसराय (वाराणसी) १०००)
२७. श्री आचार्य जी गुरुकुल सूपा (जि० नवसारी) गुजरात १०००)
२८. मैसर्स हरिनगर शुगर मिल्स बम्बई, द्वारा श्री राजा नारायण लाल, मालावार हिल, बम्बई १०००)
२९. श्री डा० नारायणदास जी, फिजीशियन एण्ड आई स्पेशलिस्ट, फैंसी बाजार, गोहाटी (आसाम) १०००)
३०. श्री लेखराज जी गुप्त, ४७ ए जैसावाला फोर्ट, बम्बई १०००)
३१. श्री राजेश गुप्ता जी, १०३२८ मोतियाखान, नई दिल्ली-५५ १०००)
३२. श्री जगदीशचन्द्र भयाना जी, आर ४१. ग्रेटर कैलाश, नई दिल्ली-४८ १०००)
३३. मैसर्स कंवर किशन सिंह भयाना एण्ड कं०, सी० ५४ महारानी बाग, नई दिल्ली-१४ १०००)
३४. श्री पन्नालाल जी मित्तल, सुभाष नगर, देहरादून (उ० प्र०) १०००)
३५. श्री मन्त्री जी आर्यसमाज दीवानहाल, दिल्ली-६ १०००)
३६. श्री मन्त्री जी आर्यसमाज बाजार श्रद्धानन्द, अमृतसर (पंजाब) १०००)
३७. श्री मन्त्री जी, आर्य केन्द्रीय सभा, १५ हनुमान रोड, नई दिल्ली-१ १०००)
३८. श्री मन्त्री जी आर्यसमाज, १९ विधानसरणि, कलकत्ता-६ १०००)
३९. श्री मन्त्री जी आर्यसमाज, ९४ रवीन्द्र सरणि, बड़ा बाजार, कलकत्ता-७ १०००)
४०. श्री मन्त्री जी आर्यसमाज,बोकारो स्टील सिटी (धनबाद) बिहार १०००)
४१. श्री गुरुदास राम भण्डारी, ८३ ब्रेज्यूक्रीसेण्ट एस० यू० कैलगरी, १४ अलब्रेटा, कनाड़ा १०००)
४२. श्री एल० के० नन्दवाना जी, प्यूपिल्स बैंक बिल्डिंग, थर्ड फ्लोर, भद्र, अहमदाबाद-६ १०००)
४३. श्री ओंकारनाथ जी, १५४ रे० रोड, बम्बई-१० १०००)
४४. श्री छगनलाल जी विजय वर्गीय, बेगम बाजार, हैदराबाद १०००)

४५.	श्री वनवारीलाल राधेमोहन, श्रद्धानन्द वाजार, दिल्ली-६	१०००)
४६.	श्री मन्त्री जी आर्यसमाज करोलवाग, नई दिल्ली-५	१०००)
४७.	श्री वीरेन्द्र जी एम० ए० जालन्धर	१०००)
४८.	श्री नारायणदास जी जुनेजा, वान्द्रा, वम्बई	१०००)
४९.	श्री ला० रामगोपाल शालवाले मोती वाजार चांदनी चौक दिल्ली	१०००)
५०.	श्री आनंदीलाल पोद्दार चैरिटेवल ट्रस्ट, ३६ चौरंगीरोड़ कलकत्ता	१०००)
५१.	श्री राधा कृष्ण जी जालान, जालान हाऊस भरिया	१०००)
५२.	श्री वालगोविन्द जी एडवोकेट, रांची (द्वारा श्री डा० डी० राम जी सभाप्रधान)	१०००)
५३.	श्री पं० श्रवणकुमार जी विद्यालंकार, देसरी (विहार)	१०००)

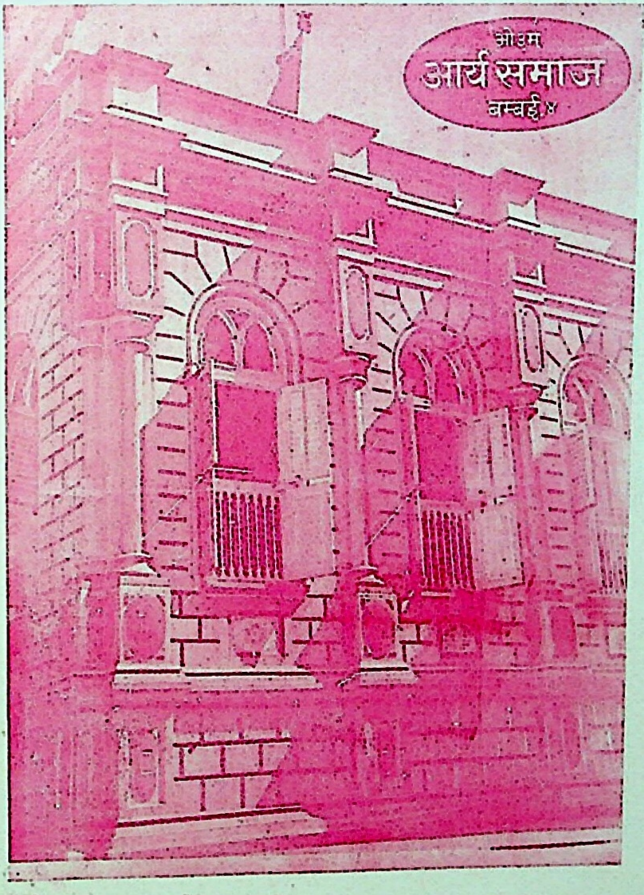
सभी दान दाताओं का धन्यवाद

ओम्प्रकाश त्यागी

मन्त्री

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

महर्षि दयानन्द भवन, नई दिल्ली-१

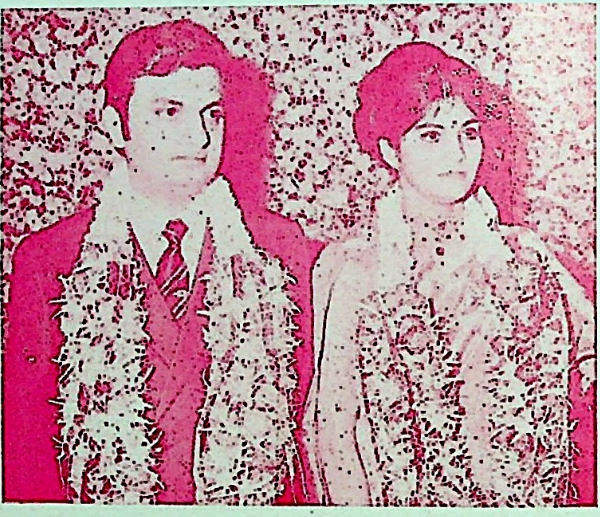


आर्य समाज काकड़वाड़ी

विट्ठलभाई पटेल रोड, बम्बई-४ ने वेदभाष्य प्रकाशनार्थं

पांच हजार रुपये प्रदान किये—धन्यवाद

पांच हजार रुपया वेदभाष्य प्रकाशनार्थ देने वाले महानुभाव



माननीय श्री सेठ प्रतापसिंह शूरजी वल्लभदास बम्बई ने अपने चि० सुपुत्र श्री आदित्य जी के शुभ विवाह के अवसर पर ५०००) रुपये सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली को वेद भाष्य के प्रकाशन में सहायतार्थ प्रदान किए।



श्री जयदेव जी आर्य, बम्बई।



श्री ओ० पी० गोयल, दिल्ली



धर्म परायणा स्व० श्रीमती राजदेवी जी
(धर्मपत्नी श्री प्रद्युम्न सिंह जी बम्बई)
आपका ३१-८-७२ को बम्बई में स्वर्गवास हो गया। आपने अपने जीवनकाल में ही वेद भाष्य की सहायतार्थ सभा को ५०००) रुपये प्रदान करने का संकल्प किया था।



श्रीयुत भाई ज्ञानचन्द्र जी

आपके सुपुत्र श्री भाई मोहनसिंह जी, मैनेजिंग डायरेक्टर रनबक्सी लेबोरेट्रीज ओखला दिल्ली ने ५०००) वेदभाष्य के लिए सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली को सहायतार्थ प्रदान किये।



श्री मास्टर शिवचरणदास जी

दरियागंज दिल्ली ने वेदभाष्य की सहायतार्थ ५ हजार रुपये प्रदान किये।

वेद सब
सत्य विद्याओं
का पुस्तक है।

— महर्षि दयानन्द